ठाणं

भगवान महावीर की २५वीं निर्वाण-शताब्दी के उपलक्ष में

ठाणं

(मूल पाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पण)

वाचना प्रमुख

आचार्य तुलसी

संपादक-विवेचक

मुनि नथमल

प्रकाशक

जैन विश्व भारती

लाडनूं (राजस्थान)

प्रकाशक
जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

प्रबन्ध सम्पादक
श्रीचन्द रामपुरिया
निदेशक
आगम और साहित्य प्रकाशन
(जै० वि० भा०)

प्रथम संस्करण
महावीर जन्म-तिथि
विक्रम संवत् २०३३

पृष्ठ
१०९०

मूल्य
१२५.०० [illegible] रुपये

मुद्रक
मॉडर्न प्रिंटर्स
के-३०, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००३२

(Text, Sanskrit Rendering & Hindi Version With Notes)

Vāçanā Pramukh
ĀCHĀRYA TULSI

Editor and Commentator
MUNI NATHMAL

PUBLISHER
JAIN VISHVA BHĀRATI
LADNUN (RAJASTHAN)

Publisher
Jain Vishva Bharati
Ladnun (Rajasthan)

Managing Editor
Shreechand Rampuria
Director :
Agama and Sahitya Prakashan

First Edition
1976

Pages : 1090

Price : Rs. [illegible] 125.00

Printers
Modern Printers
K-30, Naveen Shahdara,
Delhi-110032

समर्पण

पुट्ठो वि पण्णापुरिसो सुदक्खो,
आणापहाणो जणि जस्स निच्चं।
सच्चप्पओगे पवरासयस्स,
भिक्खुस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं॥

विलोडिय आगमदुद्धमेव,
लद्धं सुलद्धं णवणीयमच्छं।
सज्झायसज्झाणरयस्स निच्चं,
जयस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं॥

पवाहिया जेण सुयस्स धारा,
गणे समत्थे मम माणसे वि।
जो हेउभूओ स्स पवायणस्स,
कालुस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं॥

जिसका प्रज्ञा-पुरुष पुष्ट पटु,
होकर भी आगम-प्रधान था।
सत्य-योग में प्रवर चित्त था,
उसी भिक्षु को विमल भाव से॥

जिसने आगम-दोहन कर-कर,
पाया प्रवर प्रचुर नवनीत।
श्रुत-सद्ध्यान लीन चिर चिन्तन,
जयाचार्य को विमल भाव से॥

जिसने श्रुत की धार बहाई,
सकल संघ में मेरे मन में।
हेतुभूत श्रुत-सम्पादन में,
कालुगणी को विमल भाव से॥

अन्तस्तोष

अन्तस्तोष अनिर्वचनीय होता है उस माली का, जो अपने हाथों से उप्त और सिंचित द्रुम-निकुञ्ज को पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ देखता है; उस कलाकार का, जो अपनी तूलिका से निराकार को साकार हुआ देखता है और उस कल्पनाकार का, जो अपनी कल्पना को अपने प्रयत्नों से प्राणवान् बना देखता है। चिरकाल से मेरा मन इस कल्पना से भरा था कि जैन-आगमों का शोध-पूर्ण सम्पादन हो और मेरे जीवन के बहुश्रमी क्षण उसमे लगे। संकल्प फलवान् बना और वैसा ही हुआ। मुझ केन्द्र मान मेरा धर्म-परिवार उस कार्य में संलग्न हो गया। अतः मेरे इस अन्तस्तोष में मैं उन सबको समभागी बनाना चाहता हूँ, जो इस प्रवृत्ति में संविभागी रहे है। संक्षेप मे यह सविभाग इस प्रकार है :

संपादक-विवेचक : मुनि नथमल
सहयोगी : मुनि सुखलाल
,, : मुनि श्रीचन्द्र
,, : मुनि दुलहराज
संस्कृत-छाया ,, : मुनि दुलीचन्द 'दिनकर'
,, : मुनि हीरालाल

संविभाग हमारा धर्म है। जिन-जिन ने इस गुरुतर प्रवृत्ति में उन्मुक्त भाव से अपना संविभाग समर्पित किया है, उन सबको मैं आशीर्वाद देता हूँ और कामना करता हूँ कि उनका भविष्य इस महान् कार्य का भविष्य बने।

आचार्य तुलसी

प्रकाशकीय

'ठाणं' तृतीय अंग है। जैनों के द्वादशाङ्गों में विषय की दृष्टि से इसका बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामान्य गणना से इसमें कम-से-कम १२०० विषयों का वर्गीकरण है; भेद-प्रभेद की दृष्टि से इसके द्वारा लाखो विषयों की ओर दृष्टि जाती है।

'ठाणं' में विषय-सामग्री दस स्थानों में विभक्त है। प्रथम स्थान में संख्या मे एक-एक विषयो की सूची है। दूसरे स्थान में दो-दो विषयों का संकलन है। तीसरे में सख्या मे तीन-तीन विषयों की परिगणना है। इस तरह उत्तरोत्तर क्रम से दसवें स्थान मे दस-दस तक के विषयों का प्रतिपादन हुआ है। इस एक अङ्ग का परिशीलन कर लेने पर हजारो विविध प्रतिपाद्यों के भेद-प्रभेदों का गंभीर ज्ञान प्राप्त हो जाता है। व्यापकता की दृष्टि से इसका विषय ज्ञान के अनगिनत विविध पहलुओं का स्पर्श करता है। भारतीय ज्ञान-गरिमा और सौष्ठव का इससे बड़ा अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

इस अंग की प्रतिपादन शैली का बौद्ध पिटक अंगुत्तर निकाय में अनुकरण देखा जाता है। इसके परिशीलन मे ठाणं के अनेक विषयो का स्पष्टीकरण होता है।

विज्ञान के एक विद्यार्थी के नाते यह कहने में जरा भी हिचकिचाहट का बोध नही होता कि इस अग में वस्तु-तत्त्व के प्रागण में ऐसे अनेक सार्वभौम सिद्धान्तों का सकलन है जो आधुनिक विज्ञान जगत में मूलभूत सिद्धान्तों के रूप में स्वीकृत है।

हर ज्ञान-पिपासु और अभिसन्धित्सु व्यक्ति के लिए यह अत्यन्त हर्ष का ही विषय होगा कि ज्ञान का एक विशाल सपुट संशोधित मूल पाठ, संस्कृत छायानुवाद एवं प्राजल हिन्दी अनुवाद और विस्तृत टिप्पणों से अलंकृत होकर उनके सम्मुख उपस्थित हो रहा है। जैन विश्व भारती ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रथ के प्रकाशन का सौभाग्य प्राप्त कर अपने को गौरवान्वित अनुभव करती है।

परम श्रद्धेय आचार्य श्री तुलसी एव उनके इंगित-आकार पर सब कुछ नयौछावर कर देने के लिए प्रस्तुत मुनिवृन्द की यह समवेत उपलब्धि आगमों के हिन्दी रूपान्तरण के क्षेत्र मे युग-कृति है। बहुमुखी प्रवृत्तियों के केन्द्र तपोमूर्ति आचार्य श्री तुलसी ज्ञान-क्षितिज के देदीप्यमान् सूर्य है और उनका मुनि-मण्डल ज्योतिर्मय नक्षत्रों का प्रकाशपुंज, यह श्रमसाध्य प्रस्तुतीकरण से अपने-आप स्पष्ट है।

आचार्यश्री ने विविध पहलुओं से आगम-सम्पादन के कार्य को हाथ में लेने की घोषणा २०११ की चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को की। इसके पूर्व ही श्रीचरणो मे विनम्र निवेदन रहा—आपके तत्त्वावधान में आगमो का सम्पादन और अनुवाद हो—यह भारत के सास्कृतिक अनुवाद की एक मूल्यवान कड़ी के रूप में अपेक्षित है। यह एक अत्यन्त स्थायी कार्य होगा, जिसका लाभ एक-दो-तीन नही, अचिन्त्य भावी पीढ़ियों को प्राप्त होता रहेगा।

मुझे हर्ष है कि आगम ग्रन्थों के ऐसे प्रकाशनों के साथ मेरी मनोकामना फलवती हो रही है।

मुनि श्री नथमलजी तेरापंथ संघ और आचार्य श्री तुलसी के अप्रतिम मेधावी श्रमण और शिष्य हैं। उनका श्रम पद-पद पर मुखरित हो रहा है। आचार्य श्री तुलसी की दीर्घ पैनी दृष्टि और नेतृत्व एवं मुनि श्री नथमल जी की तूष्टि

सौष्ठव—यह मणिकांचन योग है। अन्तस्तोष, भूमिका और सम्पादकीय में अन्य मुनियों के सहयोग का स्मरण हुआ है।

जहाँ तक मेरी परिक्रमा का प्रश्न है, मैं तीन संतों का नामोल्लेख किए बिना नहीं रह सकता—मुनि श्री दुलहराजजी, हीरालालजी और सुमेरमलजी। मुनि श्री दुलहराजजी आरम्भ से अन्त तक अपनी अनन्य कलात्मक दृष्टि से कार्य को निहारते और निखारते रहे हैं, मुनि श्री हीरालाल जी अथक परिश्रम करते हुए अशुद्धियों के आस्रव को रोकते रहे हैं, मुनि श्री सुमेरमलजी तो ऐसे सजग प्रहरी रहे हैं जिन्होंने कभी आलस्य की नींद नहीं लेने दी।

दुरूह कार्य सम्पन्न हो पाया, इसकी आनन्दानुभूति हो रही है। प्रकाशन में सामान्य विलम्ब हुआ, उसके लिए तो क्षमा-प्रार्थना ही है। केवल इतना स्पष्ट कर दूँ कि वह आलस्य अथवा प्रमाद पर आधारित नहीं है।

श्री देवीप्रसाद जायसवाल मेरे अनन्य सहयोगी रहे हैं। ग्रन्थों के प्रकाशन-कार्य और प्रूफ के संशोधन आदि विविध श्रमसाध्य कार्यों में उनके सहयोग से मेरा परिश्रम काफी हल्का रहा।

श्री मन्नालाल जी बोरड भी प्रूफ-संशोधन मे सहयोगी रहे है।

माडर्न प्रिन्टर्स के निर्देशक श्री रघुबीरशरण बंसल एवं संचालक श्री अरुण बसल के सौजन्य ने कृति को सुन्दर रूप दे पाने मे जो सहयोग प्रदान किया है, उसके लिए उन्हे तथा प्रेस के सम्बन्धित कर्मचारियों के प्रति धन्यवाद व्यक्त करना नहीं भूल सकता।

जैन विश्व भारती के पदाधिकारी गण भी परोक्ष भाव से मेरे सहभागी रहे है। उनके प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ।

आशा है, जैन विश्व भारती का यह प्रकाशन सभी के लिए उपादेय सिद्ध होगा।

दिल्ली
महावीर जन्म-तिथि
(चैत्र शुक्ला १३)
वि० स० २०३३

श्रीचन्द रामपुरिया
निदेशक
आगम और साहित्य प्रकाशन

भूमिका

जैन आगम चार वर्गों में विभक्त हैं—१. अंग, २. उपांग, ३. मूल और ४. छेद। यह वर्गीकरण बहुत प्राचीन नहीं है। विक्रम की १३-१४ वीं शताब्दी से पूर्व इस वर्गीकरण का उल्लेख प्राप्त नहीं है। नंदी सूत्र में दो वर्गीकरण प्राप्त होते हैं—

पहला वर्गीकरण—१. गमिक—दृष्टिवाद

२. अगमिक—कालिकश्रुत—आचारांग आदि।

दूसरा वर्गीकरण—१. अंगप्रविष्ट

२. अंगबाह्य।

अंग बारह हैं—१. आचार, २. सूत्रकृत, ३. स्थान, ४. समवाय, ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति—भगवती, ६. ज्ञाताधर्मकथा, ७. उपासकदशा, ८. अन्तकृतदशा, ९. अनुत्तरोपपातिकदशा, १०. प्रश्नव्याकरणदशा, ११. विपाकश्रुत, १२. दृष्टिवाद।

भगवान् महावीर की वाणी के आधार पर गौतम आदि गणधरों ने अंग-साहित्य की रचना की। अंगों की संख्या बारह है, इसलिए उन्हें द्वादशाङ्गी कहा जाता है। प्रस्तुत सूत्र उसका तीसरा अंग है। इसका नाम 'स्थान' [प्रा० ठाण] है। इसमें एक स्थान से लेकर दश स्थान तक जीव और पुद्गल के विविध भाव वर्णित है, इसलिए इसका नाम 'स्थान' रखा गया है।[1]

संख्या के अनुपात से एक द्रव्य के अनेक विकल्प करना, इस आगम की रचना का मुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है। उदाहरणस्वरूप प्रत्येकशरीर की दृष्टि से जीव एक है।[2] संसारी और मुक्त इस अपेक्षा से जीव दो प्रकार के है,[3] अथवा ज्ञानचेतना और दर्शनचेतना की दृष्टि से वह द्विगुणात्मक है। कर्म-चेतना, कर्मफल-चेतना और ज्ञान-चेतना की दृष्टि से वह त्रिगुणात्मक है। अथवा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य—इस त्रिपदी से युक्त होने के कारण वह त्रिगुणात्मक है। गतिचतुष्टय में सचरणशील होने के कारण वह चार प्रकार का है। पारिणामिक तथा कर्म के उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षय जनित भावों के कारण वह पंचगुणात्मक है। मृत्यु के उपरान्त वह पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व और अधः—इन छहों दिशाओं में गमन करता है, इसलिए उसे षड्विकल्पक कहा जाता है। उसकी सत्ता सप्तभंगी के द्वारा स्थापित की जाती है—

१. स्यात् अस्त्येव जीवः—स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा जीव है ही।

२. स्यात् नास्त्येव जीवः—परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा जीव नही ही है।

---

१. (क) नन्दी, सूत्र ८२: ठाणेण एगाइयाए एगुत्तरियाए वुड्ढीए दसट्ठाणगविवड्ढियाण भावाणं परूवणया आघविज्जति।

(ख) कसायपाहुड, भाग १, पृ० १२३:

ठाण णाम जीवपुग्गलादीणमेगादिएगुत्तरकमेण ठाणाणि वण्णेदि।

२. ठाणं, १।१७.

एगे जीवे पाडिक्कएणं सरीरएणं।

३. ठाणं, २।४०९:

दुविहा सव्व जीवा पण्णत्ता, तं जहा—सिद्धा चेव, असिद्धा चेव।

३. स्यात् अवक्तव्य एव जीवः—अस्तित्व और नास्तित्व—दोनों एक साथ नहीं कहे जा सकते। इस अपेक्षा से जीव अवक्तव्य ही है।

४. स्यात् अस्त्येव जीवः, स्यात् नास्त्येव जीवः—अस्तित्व और नास्तित्व की क्रमिक विवक्षा से जीव है ही और नहीं ही है।

इस प्रकार अस्तित्व धर्म की प्रधानता और अवक्तव्य, नास्तित्व धर्म की प्रधानता और अवक्तव्य तथा अस्तित्व और नास्तित्व की क्रम-विवक्षा और अवक्तव्य—ये तीन सांयोगिक भंग बनते हैं। इस सप्तभंगी से निरूपित होने के कारण जीव सात विकल्प वाला है।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि आठ कर्मों से युक्त होने के कारण जीव आठ विकल्प वाला है।

पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय—इन विविध कार्यों में उत्पत्तिशील होने के कारण वह नौ प्रकार का है। वनस्पतिकाय के दो विकल्प होते हैं—साधारण वनस्पति-काय और प्रत्येक वनस्पतिकाय। उक्त आठ स्थानों तथा द्विविध वनस्पतिकाय में उत्पत्तिशील होने के कारण वह दश प्रकार का है।[1] इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र में संख्यात्मक दृष्टिकोण से जीव, अजीव आदि द्रव्यों की स्थापना की गई है।

प्रस्तुत सूत्र में भूगोल, खगोल तथा नरक और स्वर्ग का भी विस्तृत वर्णन है। इसमें अनेक ऐतिहासिक तथ्य भी उपलब्ध होते हैं। बौद्धपिटकों में जो स्थान अंगुत्तरनिकाय का है वही स्थान अंग-साहित्य में प्रस्तुत सूत्र का है।

प्रस्तुत सूत्र में संख्या के आधार पर विषय संकलित हैं, अतः यह नाना विषय वाला है। एक विषय का दूसरे विषय से सम्बन्ध नहीं खोजा जा सकता। द्रव्य, इतिहास, गणित, भूगोल, खगोल, आचार, मनोविज्ञान, संगीत आदि विषय किसी क्रम के बिना पाठक के सम्मुख प्रस्तुत होते है। उत्तराध्ययन सूत्र में केशी-गौतम का एक संवाद-प्रकरण है। केशी ने गौतम से पूछा—"जो चातुर्याम-धर्म है, उसका प्रतिपादन महामुनि पार्श्व ने किया है और जो यह पंच-शिक्षात्मक-धर्म है उसका प्रतिपादन महामुनि वर्धमान ने किया है। एक ही उद्देश्य के लिए हम चले है तो फिर इस भेद का क्या कारण है? मेधाविन्! धर्म के इन दो प्रकारों में तुम्हें सन्देह कैसे नहीं होता?"[2] केशी के प्रश्न की पृष्ठभूमि में जो तथ्य है उसका स्पष्टीकरण प्रस्तुत सूत्र में मिलता है। चतुर्थ स्थान के एक सूत्र में यह निरूपित है—भरत और ऐरवत क्षेत्र में प्रथम और अन्तिम को छोड़कर शेष बाईस अर्हन्त भगवान् चातुर्याम धर्म का उपदेश देते है। वह इस प्रकार है—

सर्व प्राणातिपात से विरमण करना।

सर्व मृषावाद से विरमण करना।

सर्व अदत्तादान से विरमण करना।

सर्व बाह्य-आदान से विरमण करना।[3]

प्रस्तुत सूत्र में वस्त्र धारण के तीन प्रयोजन बतलाए गए हैं—लज्जानिवारण, जुगुप्सानिवारण और शीत आदि से बचाव।[4] वस्त्र का विधान होने पर भी वस्त्र-त्याग को प्रशंसनीय बतलाया गया है। पांचवें स्थान में कहा है—पांच कारणों से निर्वस्त्र होना प्रशस्त है—१. उसके प्रतिलेखना अल्प होती है। २. उसका लाघव प्रशस्त होता है। ३. उसका

---

१ कसायपाहुड, भाग १, पृष्ठ १२३ :

एक्को चेव महप्पा सो दुवियप्पो तिलक्खणो भणिओ।
चदुसंकमणाजुत्तो पंचग्गगुणप्पहाणो य ॥६४॥
छक्कायक्कमजुत्तो उवजुत्तो सत्तभंगिसब्भावो।
अट्ठासवो णवट्ठो जीवो दसट्ठाणिओ भणिओ ॥६५॥

२. उत्तरज्झयणाणि, २३।२३,२४।

३. ठाण, ४।१३६,१३७।

४. ठाण, ३।३४७।

रूप (वेष) वैश्वासिक होता है। ४. उसका तप अनुज्ञात—जिनानुमत होता है। ५. उसके विपुल इन्द्रिय-निग्रह होता है।[1]

भगवान् महावीर के समय में श्रमणों के अनेक संघ विद्यमान थे। उनमें आजीवकों का संघ बहुत शक्तिशाली था। वर्तमान में उसकी परंपरा विच्छिन्न हो चुकी है। उसका साहित्य भी लुप्त हो चुका है। जैन साहित्य में उस परम्परा के विषय में कुछ जानकारी मिलती है। प्रस्तुत सूत्र में भी आजीवकों की तपस्या के विषय में एक उल्लेख मिलता है।[2]

प्रस्तुत सूत्र में भगवान् महावीर के समकालीन और उत्तरकालीन—दोनों प्रकार के प्रसंग और तथ्य संकलित हैं। जहां धर्म का संगठन होता है वहाँ व्यवहार होता है। जहाँ व्यवहार होता है वहां विचारों की विविधता भी होती है। विचारों की विविधता और स्वतन्त्रता का इतिहास नया नहीं है। भगवान् महावीर के समय में भी जमालि ने वैचारिक भिन्नता प्रदर्शित की थी। उनकी उत्तरकालीन परम्परा मे भी वैचारिक भिन्नता प्रकट करने वाले कुछ व्यक्ति हुए। ऐसे सात व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है। उन्हें निन्हव कहा गया है। उनके नाम इस प्रकार हैं—जमालि, तिष्यगुप्त, आषाढ़, अश्वमित्र, गंग, रोहगुप्त और गोष्ठामाहिल।[3]

इसी प्रकार नौवें स्थान मे भगवान् महावीर के नौ गणों का उल्लेख है। उनके नाम इस प्रकार हैं—गोदासगण, उत्तरबलिस्सहगण, उद्देहगण, चारणगण, उद्दवाइयगण, विस्सवाइयगण, कामड्ढियगण, माणवगण, कोडियगण।[4]

ये सब भगवान् महावीर के निर्वाण के उत्तरकालीन है। इन उत्तरवर्ती तथ्यों का आगमो के संकलन-काल में समावेश किया गया। प्रस्तुत सूत्र मे ज्ञान-मीमांसा का भी लंबा प्रकरण मिलता है। इसमें ज्ञान के प्रत्यक्ष और परोक्ष—ये दो भेद किए गए है। प्रत्यक्ष के दो प्रकार हैं—केवलज्ञान और नो-केवलज्ञान—अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान।[5] परोक्ष ज्ञान के दो प्रकार हैं—आभिनिबोधिज्ञान और श्रुतज्ञान।[6] भगवती सूत्र में ज्ञान के प्रत्यक्ष और परोक्ष—ये विभाग नहीं हैं। ज्ञान के पांच प्रकारो का वर्गीकरण प्रत्यक्ष और परोक्ष—इन दो विभागों में होता है। यह विभाग नंदी सूत्र में तथा उत्तरवर्ती समग्र प्रमाण-व्यवस्था मे समादृत हुआ है।

रचनाकार—

अंगों की रचना गणधर करते हैं। इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि गणधरों के द्वारा जो ग्रन्थ रचे गए उनकी संज्ञा अग है। उपलब्ध अग सुधर्मास्वामी की वाचना के हैं। सुधर्मास्वामी भगवान् महावीर के अनन्तर शिष्य होने के कारण उनके समकालीन हैं, इसलिए प्रस्तुत सूत्र का रचनाकाल ईस्वी पूर्व छठी शताब्दी है। आगम-संकलन के समय अनेक सूत्र सकलित हुए हैं। इसलिए संकलन-काल की दृष्टि से इसका समय ईसा की चौथी शताब्दी है।

कार्यसंपूर्ति—

प्रस्तुत आगम की समग्र निष्पत्ति में अनेक मुनियों का योग रहा है। उन सबको मैं आशीर्वाद देता हूं कि उनकी कार्यजाशक्ति और अधिक विकसित हो।

इसकी निष्पत्ति का बहुत कुछ श्रेय शिष्य मुनि नथमल को है क्योंकि इस कार्य में अहर्निश वे जिस मनोयोग से लगे हैं, उसी से यह कार्य सम्पन्न हो सका है। अन्यथा यह गुरुतर कार्य बड़ा दुरूह होता। इनकी वृत्ति मूलतः योगनिष्ठ होने से मन की एकाग्रता सहज बनी रहती है। आगम का कार्य करते-करते अन्तर्रहस्य पकड़ने में इनकी मेधा

---

१. ठाण, ५।२०१।
२. ठाणं, ४।३५०।
३. ठाण, ७।१४०।
४. ठाण, ६।२६।
५. ठाणं, २।८६,८७।
६. ठाण, २।१००।

काफी पैनी हो गई है। विनयशीलता, श्रम-परायणता और गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण भाव ने इनकी प्रगति में बड़ा सहयोग दिया है। यह वृत्ति इनकी बचपन से ही है। जब से मेरे पास आए, मैंने इनकी इस वृत्ति में क्रमशः वर्धमानता ही पाई है। इनकी कार्य-क्षमता और कर्त्तव्यपरता ने मुझे बहुत सन्तोष दिया है।

मैंने अपने संघ के ऐसे शिष्य साधु-साध्वियों के बल-बूते पर ही आगम के इस गुरुतर कार्य को उठाया है। अब मुझे विश्वास हो गया है कि मेरे शिष्य साधु-साध्वियों के निःस्वार्थ, विनीत एवं समर्पणात्मक सहयोग से इस बृहत् कार्य को असाधारणरूप से सम्पन्न कर सकूंगा।

भगवान् महावीर की पचीसवीं निर्वाण शताब्दी के अवसर पर उनकी वाणी को राष्ट्रभाषा हिन्दी में जनता के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव होता है।

जयपुर
२०३२, निर्वाण शताब्दी वर्ष

आचार्य तुलसी

सम्पादकीय

आगम-सम्पादन की प्रेरणा

वि० सं० २०११ का वर्ष और चैत्र मास। आचार्य श्री तुलसी महाराष्ट्र की यात्रा कर रहे थे। पूना से नारायणगाव की ओर जाते-जाते मध्यावधि में एक दिन का प्रवास मंचर मे हुआ। आचार्यश्री एक जैन परिवार के भवन में ठहरे थे। वहा मासिक पत्रों की फाइलें पडी थीं। गृह-स्वामी की अनुमति ले, हम लोग उन्हें पढ रहे थे। सांझ की वेला, लगभग छ: बजे होंगे। मैं एक पत्र के किसी अंश का निवेदन करने के लिए आचार्यश्री के पास गया। आचार्यश्री पत्रों को देख रहे थे। जैसे ही मैं पहुचा, आचार्यश्री ने 'धर्मदूत' के सद्यस्क अंक की ओर सकेत करते हुए पूछा—"यह देखा कि नही ?" मैंने उत्तर मे निवेदन किया—"नही, अभी नही देखा।" आचार्यश्री बहुत गम्भीर हो गए। एक क्षण रुककर बोले—"इसमे बौद्ध-पिटकों के सम्पादन की बहुत बडी योजना है। बौद्धों ने इस दिशा मे पहले ही बहुत कार्य किया है और अब भी बहुत कर रहे हैं। जैन-आगमो का सम्पादन वैज्ञानिक पद्धति से अभी नही हुआ है और इस ओर अभी ध्यान भी नहीं दिया जा रहा है।" आचार्यश्री की वाणी मे अन्तर्-वेदना टपक रही थी, पर उसे पकडने में समय की अपेक्षा थी।

आगम-सम्पादन का संकल्प

रात्रि-कालीन प्रार्थना के पश्चात् आचार्यश्री ने साधुओं को आमंत्रित किया। वे आए और वन्दना कर पंक्तिबद्ध बैठ गए। आचार्यश्री ने सायं-कालीन चर्चा का स्पर्श करते हुए कहा—"जैन आगमों का कायाकल्प किया जाए, ऐसा संकल्प उठा है। उसकी पूर्ति के लिए कार्य करना होगा। बोलो, कौन तैयार है ?"

सारे हृदय एक साथ बोल उठे—"सब तैयार हैं ?"

आचार्यश्री ने कहा—"महान् कार्य के लिए महान् साधना चाहिए। कल ही पूर्व तैयारी मे लग जाओ, अपनी-अपनी रुचि का विषय चुनो और उसमें गति करो।"

मंचर से विहार कर आचार्यश्री सगमनेर पहुचे। पहले दिन वैयक्तिक बातचीत होती रही। दूसरे दिन साधु-साध्वियों की परिषद् बुलाई गई। आचार्यश्री ने परिषद् के सम्मुख आगम-संपादन के संकल्प की चर्चा की। सारी परिषद् प्रफुल्ल हो उठी। आचार्यश्री ने पूछा—"क्या इस संकल्प को अब निर्णय का रूप देना चाहिए ?"

समस्वर से प्रार्थना का स्वर निकला—"अवश्य, अवश्य।" आचार्यश्री औरंगाबाद पधारे। सुराना भवन, चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (वि० सं० २०११), महावीर जयन्ती का पुण्य-पर्व। आचार्यश्री ने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका—इस चतुर्विध संघ की परिषद् में आगम-सम्पादन की विधिवत् घोषणा की।

आगम-सम्पादन का कार्यारम्भ

वि० सं० २०१२ श्रावण मास (उज्जैन चातुर्मास) से आगम सम्पादन का कार्यारम्भ हो गया। न तो सम्पादन का कोई अनुभव और न कोई पूर्व तैयारी। अकस्मात् 'धर्मदूत' का निमित्त पा आचार्यश्री के मन में संकल्प उठा और उसे सबने शिरोधार्य कर लिया। चिन्तन की भूमिका से इसे निरी भावुकता ही कहा जाएगा, किन्तु भावुकता का मूल्य चिन्तन से कम नही है। हम अनुभव-विहीन थे, किन्तु आत्म-विश्वास से शून्य नहीं थे। अनुभव आत्म-विश्वास का अनुगमन करता है, किन्तु आत्म-विश्वास अनुभव का अनुगमन नहीं करता।

प्रथम दो-तीन वर्षों में हम अज्ञात दिशा में यात्रा करते रहे। फिर हमारी सारी दिशाएं और कार्य-पद्धतियां निश्चित व सुस्थिर हो गईं। आगम-सम्पादन की दिशा में हमारा कार्य सर्वाधिक विशाल व गुरुतर कठिनाइयों से परिपूर्ण है, यह कहकर मैं स्वल्प भी अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हू। आचार्यश्री के अदम्य उत्साह व समर्थ प्रयत्न से हमारा कार्य निरन्तर गतिशील हो रहा है। इस कार्य मे हमे अन्य अनेक विद्वानो की सद्भावना, समर्थन व प्रोत्साहन मिल रहा है। मुझे विश्वास है कि आचार्यश्री की यह वाचना पूर्ववर्ती वाचनाओ से कम अर्थवान् नही होगी।

सम्पादन का कार्य सरल नही है—यह उन्हे सुविदित है, जिन्होने उस दिशा मे कोई प्रयत्न किया है। दो-ढाई हजार वर्ष पुराने ग्रन्थों के सम्पादन का कार्य और भी जटिल है, क्योंकि उनकी भाषा और भावधारा आज की भाषा और भावधारा से बहुत व्यवधान पा चुकी है। इतिहास की यह अपवाद-शून्य गति है कि जो विचार या आचार जिस आकार मे आरब्ध होता है, वह उसी आकार मे स्थिर नही रहता। या तो वह बड़ा हो जाता है या छोटा। यह ह्रास और विकास की कहानी ही परिवर्तन की कहानी है। और कोई भी आकार ऐसा नही है, जो कृत है और परिवर्तनशील नहीं है। परिवर्तनशील घटनाओं, तथ्यों, विचारों और आचारों के प्रति अपरिवर्तनशीलता का आग्रह मनुष्य को असत्य की ओर ले जाता है। सत्य का केन्द्र-बिन्दु यह है कि जो कृत है, वह सब परिवर्तनशील है। अकृत या शाश्वत भी ऐसा क्या है, जहा परिवर्तन का स्पर्श न हो। इस विश्व मे जो है, वह वही है जिसकी सत्ता शाश्वत और परिवर्तन की धारा से सर्वथा विभक्त नही है।

शब्द की परिधि मे बंधने वाला कोई भी सत्य क्या ऐसा हो सकता है, जो तीनो कालों मे समान रूप से प्रकाशित रह सके ? शब्द के अर्थ का उत्कर्ष या अपकर्ष होता है—भाषा-शास्त्र के इस नियम को जानने वाला यह आग्रह नही रख सकता कि दो हजार वर्ष पुराने शब्द का आज वही अर्थ सही है, जो आज प्रचलित है। 'पाषण्ड' शब्द का जो अर्थ आगम-ग्रन्थों और अशोक के शिलालेखों में है, वह आज के श्रमण साहित्य मे नहीं है। आज उसका अपकर्ष हो चुका है। आगम साहित्य के सैकड़ो शब्दो की यही कहानी है कि वे आज अपने मौलिक अर्थ का प्रकाश नही दे रहे है। इस स्थिति मे हर चिन्तनशील व्यक्ति अनुभव कर सकता है कि प्राचीन साहित्य के सम्पादन का काम कितना दुरूह है।

मनुष्य अपनी शक्ति मे विश्वास करता है और अपने पौरुष से खेलता है, अतः वह किसी भी कार्य को इसलिए नही छोड़ देता कि वह दुरूह है। यदि यह पलायन की प्रवृत्ति होती तो प्राप्य की सभावना नष्ट ही नही हो जाती किन्तु आज जो प्राप्त है, वह अतीत के किसी भी क्षण मे विलुप्त हो जाता। आज से हजार वर्ष पहले नवागी टीकाकार (अभयदेव सूरि) के सामने अनेक कठिनाइयां थी। उन्होने उनकी चर्चा करते हुए लिखा है—

१. सत् सम्प्रदाय (अर्थ-बोध की सम्यक् गुरु-परम्परा) प्राप्त नही है।
२. सत् ऊह (अर्थ की आलोचनात्मक कृति या स्थिति) प्राप्त नही है।
३. अनेक वाचनाएँ (आगमिक अध्यापन की पद्धतिया) है।
४. पुस्तकें अशुद्ध हैं।
५. कृतियां सूत्रात्मक होने के कारण बहुत गभीर है।
६. अर्थ विषयक मतभेद भी है।[1]

इन सारी कठिनाइयो के उपरान्त भी उन्होने अपना प्रयत्न नही छोड़ा और वे कुछ कर गये।

कठिनाइयां आज भी कम नही है, किन्तु उनके होते हुए भी आचार्य श्री तुलसी ने आगम-सम्पादन के कार्य को अपने हाथों मे ले लिया। उनके शक्तिशाली हाथो का स्पर्श पाकर निष्प्राण भी प्राणवान् बन जाता है तो भला आगम-साहित्य, जो स्वय प्राणवान् है, उसमे प्राण-सचार करना क्या बडी बात है ? बड़ी बात यह है कि आचार्यश्री ने उसमे प्राण-सचार मेरी

---

१. स्थानांगवृत्ति, प्रशस्ति श्लोक, १,२ :

सत्सम्प्रदायहीनत्वात्, सदूहस्य वियोगत: ।
सर्वस्वपरशास्त्राणा-मदृष्टेरस्मृतेश्च मे ।।
वाचनानामनेकत्वात्, पुस्तकानामशुद्धित: ।
सूत्राणामतिगाम्भीर्याद्, मतभेदाश्च कुत्रचित् ।।

और मेरे सहयोगी साधु-साध्वियों की असमर्थ अंगुलियों द्वारा कराने का प्रयत्न किया है। सम्पादन-कार्य में हमें आचार्यश्री का आशीर्वाद ही प्राप्त नहीं है किन्तु मार्ग-दर्शन और सक्रिय योग भी प्राप्त है। आचार्यवर ने इस कार्य को प्राथमिकता दी है और इसकी परिपूर्णता के लिए अपना पर्याप्त समय दिया है। उनके मार्ग-दर्शन, चिन्तन और प्रोत्साहन का संबल पा हम अनेक दुस्तर धाराओं का पार पाने में समर्थ हुए हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ ठाणं का सानुवाद संस्करण है। आगम साहित्य के अध्येता दोनो प्रकार के लोग हैं, विद्वद्‌जन और साधारण जन। मूल पाठ के आधार पर अनुसंधान करने वाले विद्वानों के लिए मूल पाठ का सम्पादन अंगसुत्ताणि भाग १ में किया गया। प्रस्तुत संस्करण में मूल पाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद और टिप्पण है और टिप्पणों के सन्दर्भस्थल भी उपलब्ध हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ की भूमिका बहुत ही लघुकाय है। हमारी परिकल्पना है कि सभी अगों और उपांगों की बृहद् भूमिका एक स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में हो।

संस्कृत छाया

संस्कृत छाया को हमने वस्तुत: छाया रखने का ही प्रयत्न किया है। टीकाकार प्राकृत शब्द की व्याख्या करते हैं अथवा उसका सस्कृत पर्यायान्तर देते हैं। छाया में वैसा नहीं हो सकता।

हिन्दी अनुवाद और टिप्पण

'ठाणं' का हिन्दी अनुवाद मूलस्पर्शी है। इसमें कोरे शब्दानुवाद की-सी विरसता और जटिलता नही है तथा भावानुवाद जैसा विस्तार भी नही है। सूत्र का आशय जितने शब्दों मे प्रतिबिम्बित हो सके, उतने ही शब्दो की योजना करने का प्रयत्न किया गया है। मूल शब्दों की सुरक्षा के लिए कही-कही उनका प्रचलित अर्थ कोष्ठकों मे दिया गया है। सूत्रगत-हार्द की स्पष्टता टिप्पणो मे की गई है। वि० स० २०१७ के चैत्र में अनुवाद कार्य शुरू हुआ। आचार्यश्री बाडमेर की यात्रा मे पधारे और हम लोग जोधपुर मे रहे। आचार्यश्री जोधपुर पहुचे तब तक, तीन मास की अवधि मे, हमारा अनुवाद कार्य सम्पन्न हो गया। उस समय कुछ विशिष्ट स्थलो पर टिप्पण लिखे।

व्यापक स्तर पर टिप्पण लिखने की योजना भविष्य के लिए छोड़ दी गई। वर्षों तक वह कार्य नही हो सका। अन्यान्य आगमों के कार्य मे होने वाली व्यस्तता ने इस कार्य को अवकाश नही दिया। वि० सं० २०२७ रायपुर मे मुनि दुलहराजजी ने अवशिष्ट टिप्पण लिखे और प्रस्तुत सूत्र का कार्य पूर्णत: सम्पन्न हो गया। किन्तु कोई ऐसा ही योग रहा कि प्रस्तुत आगम प्रकाश मे नही आ सका। भगवान् महावीर की पचीसवीं निर्वाण शताब्दी के वर्ष मे जैन विश्व भारती ने अगसुत्ताणि के तीन भागो के साथ इसका प्रकाशन भी शुरू किया। वे तीन भाग प्रकाशित हो गए। इसके प्रकाशन मे अवरोध आते गए। न जाने क्यो? पर यह सच है कि अवरोधों की लम्बी यात्रा के बाद प्रस्तुत ग्रन्थ जनता तक पहुंच रहा है। इस सम्पादन मे हमने जिन ग्रन्थो का उपयोग किया है उनके लेखको के प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

प्रस्तुत सम्पादन में सहयोगी

प्रस्तुत आगम के अनुवाद और टिप्पण-लेखन मे मुनि सुखलाल जी, मुनि श्रीचन्द्रजी और मुख्यतया मुनि दुलहराजजी ने बड़ी तत्परता से योग दिया है। इसकी सस्कृत छाया मे मुनि दुलीचन्दजी 'दिनकर' का योगदान रहा है। मुनि हीरालाल जी ने संस्कृत छाया, प्रति-शोधन आदि प्रवृत्तियों मे अथक परिश्रम किया है। विषयानुक्रम और प्रयुक्त-ग्रन्थसूची मुनि दुलहराजजी ने तैयार की है। विशेषनामानुक्रम का परिशिष्ट मुनि हीरालालजी ने तैयार किया है।

'अंगसुत्ताणि' भाग १ में प्रस्तुत सूत्र का संपादित पाठ प्रकाशित है। इसलिए इस संस्करण में पाठान्तर नहीं दिए गए हैं। पाठान्तरों तथा तत्संबंधी अन्य सूचनाओ के लिए 'अंगसुत्ताणि' भाग १ द्रष्टव्य है। प्रस्तुत सूत्र के पाट-संपादन मे मुनि सुदर्शनजी, मुनि मधुकरजी और मुनि हीरालालजी सहयोगी रहे हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ मे अनेक साधुओं की पवित्र अंगुलियों का योग है। आचार्यश्री के वरदहस्त की छाया में बैठकर कार्य करने वाले हम सब सभागी है, फिर भी मैं उन सब साधु-साध्वियों के प्रति सद्भावना व्यक्त करता हूं, जिनका इस कार्य मे योग है और आशा करता हूं कि वे इस महान् कार्य के अग्रिम चरण मे और अधिक दक्षता प्राप्त करेंगे।

आगमो के प्रबन्ध-सम्पादक श्री श्रीचन्दजी रामपुरिया तथा स्वर्गीय श्री मदनचन्दजी गोठी का भी इस कार्य में निरन्तर सहयोग रहा है।

आदर्श साहित्य सघ के संचालक व व्यवस्थापक स्वर्गीय श्री हनूतमलजी सुराना व जयचन्दलालजी दफ्तरी का भी अविरल योग रहा है। आदर्श साहित्य संघ की सहयुक्त सामग्री ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। एक लक्ष्य के लिए समान गति से चलने वालों की सम-प्रवृत्ति मे योगदान की परम्परा का उल्लेख व्यवहार-पूर्ति मात्र है। वास्तव में यह हम सबका पवित्र कर्त्तव्य है और उसी का हम सबने पालन किया है।

आचार्यश्री प्रेरणा के अनन्त स्रोत हैं। हमें इस कार्य में उनकी प्रेरणा और प्रत्यक्ष योग दोनों प्राप्त हैं इसलिए हमारा कार्य-पथ बहुत ऋजु हुआ है। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर मैं कार्य की गुरुता को बढ़ा नहीं पाऊँगा। उनका आशीर्वाद दीप बनकर हमारा कार्य-पथ प्रकाशित करता रहे, यही हमारी आशंसा है।

सुजानगढ़
२०३३ चैत्र
महावीर जन्म-जयन्ती

—मुनि नथमल

विषय-सूची

पहला स्थान

दूसरा स्थान

तीसरा स्थान

चौथा स्थान

पांचवां स्थान

छठा स्थान

सातवां स्थान

आठवां स्थान

नौवां स्थान

दसवां स्थान

पढमं ठाणं

प्रथम स्थान

आमुख

स्थानांग संख्या-निबद्ध आगम है। इसमे समग्र प्रतिपाद्य का समावेश एक से दस तक की संख्या मे हुआ है। इसी आधार पर इसके दस अध्ययन है। प्रथम अध्ययन मे एक से सम्बन्धित विषय प्रतिपादित है।

प्रतिपादन और नयदृष्टि

एक और अनेक सापेक्ष है। इनकी विचारणा नयदृष्टि से की जाती है। संग्रहनय अभेददृष्टि है। उसके द्वारा जब हम वस्तुतत्त्व का विचार करते है, तब भेद अभेद से आवृत हो जाता है। व्यवहारनय भेददृष्टि है। उसके द्वारा वस्तुतत्त्व का विचार करने पर अभेद भेद से आवृत हो जाता है। प्रस्तुत अध्ययन मे वस्तुतत्त्व का संग्रहनय की दृष्टि से विचार किया गया है। तीसरे अध्ययन मे दण्ड के तीन प्रकार बतलाए गए है और प्रस्तुत अध्ययन[१] के अनुसार दण्ड एक है। ये दोनों सूत्र परस्पर विरोधी नहीं है, किन्तु सापेक्ष दृष्टि से प्रतिपादित हैं।

आत्मा एक है।[२] यह एकत्व द्रव्य की दृष्टि से है। जम्बूद्वीप एक है।[३] यह एकत्व क्षेत्र की दृष्टि से है।

एक समय मे एक ही मन होता है।[४] यह काल-सापेक्ष एकत्व का प्रतिपादन है। एक समय मे मन की दो प्रवृत्तियां नही होती, इसलिए यह एकत्व काल की दृष्टि से है।

शब्द एक है।[५] यह एकत्व भाव (पर्याय, अवस्था-भेद) की दृष्टि से है। शब्द पुद्गल का एक पर्याय है। प्रस्तुत अध्ययन मे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव —इन चारों दृष्टियों से वस्तुतत्त्व का विमर्श किया गया है।

विषय-वस्तु

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य प्रतिपाद्य तत्त्ववाद (द्रव्यानुयोग) है। कुछ सूत्र आचार (चरण-करणानुयोग) से भी सम्बन्धित है।[६]

भगवान् महावीर अकेले ही निर्वाण को प्राप्त हुए थे। इस ऐतिहासिक तथ्य की सूचना भी प्रस्तुत अध्ययन मे मिलती है।[७]

इसमे कालचक्र[८] और ज्योतिश्चक्र[९] सम्बन्धी सूत्र भी उपलब्ध है।

इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन मे अनेक विषय संगृहीत है।

रचना-शैली

प्रस्तुत अध्ययन के अधिकांश सूत्र विशेषण और वर्णन रहित है। जम्बूद्वीप[१०] का लम्बा वर्णन किया है। वह समूचे अध्ययन के रचनाक्रम से भिन्न-सा प्रतीत होता है। किन्तु प्रस्तुत स्थान में वर्णन अनावश्यक नही है। अभयदेव सूरी ने उसकी सार्थकता बतलाते हुए लिखा है—"उक्त वर्णन वाला जम्बूद्वीप एक ही है। इस वर्णन से भिन्न आकार वाले जम्बूद्वीप बहुत है।"[११]

---

१ १।३
२. १।२
३ १।२४८
४. १।४१
५. १।४५
६. १।१०६-१२६
७ १।२४९
८ १।१२७-१४०
९. १।२५१-२५३
१०. १।२४८
११. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३३:
उत्तरविशेषणश्च जम्बूद्वीप एक एव, अन्यथा अनेकेपि ते सन्तीति।

स्थान या अध्ययन ?

स्थानांग के विभाग अधिकांशतया स्थान के नाम से प्रसिद्ध है। वृत्तिकार ने उन्हें 'अध्ययन' भी कहा है।[1] प्रत्येक अध्ययन में एक ही संख्या के लिए स्थान है, इसलिए अध्ययन का नाम स्थान रखना भी उचित है। प्रस्तुत विभाग को प्रथम स्थान या प्रथम अध्ययन दोनों कहा जा सकता है।

निक्षेप

प्रस्तुत अध्ययन का आकार छोटा है। इसका कारण विषय का संक्षेप है। इसके अनेक विषयों का विस्तार अग्रिम अध्ययनों में मिलता है। आधार-संकलन की दृष्टि से यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३ :

तत्र च दशाध्ययनानि।

पढमं ठाणं : प्रथम स्थान

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. सुयं मे आउसं ! तेणं भगवता एवमक्खायं—	श्रुत मया आयुष्मन् ! तेन भगवता एवं आख्यातम्—	१. आयुष्मान् ! मैंने सुना, भगवान् ने ऐसा कहा है—
अत्थिवाय-पदं	**अस्तिवाद-पदम्**	**अस्तिवाद-पद**
२. एगे आया।	एक आत्मा।	२. आत्मा[1] एक है।
३. एगे दंडे।	एको दण्ड।	३. दण्ड[2] एक है।
४. एगा किरिया।	एका क्रिया।	४. क्रिया[3] (प्रवृत्ति) एक है।
५. एगे लोए।	एको लोक.।	५. लोक[4] एक है।
६. एगे अलोए।	एको ऽलोकः।	६. अलोक[5] एक है।
७. एगे धम्मे।	एको धर्म.।	७. धर्म[6] (धर्मास्तिकाय) एक है।
८. एगे अहम्मे।	एको ऽधर्म.।	८. अधर्म[7] (अधर्मास्तिकाय) एक है।
९. एगे बंधे।	एको बन्ध.।	९. बन्ध[8] एक है।
१०. एगे मोक्खे।	एको मोक्षः।	१०. मोक्ष[9] एक है।
११. एगे पुण्णे।	एक पुण्यम्।	११. पुण्य[10] एक है।
१२. एगे पावे।	एक पापम्।	१२. पाप[11] एक है।
१३. एगे आसवे।	एक आश्रव.।	१३. आस्रव[12] एक है।
१४. एगे संवरे।	एकः सवर।	१४. सवर[13] एक है।
१५. एगा वेयणा।	एका वेदना।	१५. वेदना[14] एक है।
१६. एगा णिज्जरा।	एका निर्जरा।	१६ निर्जरा[15] एक है।
पइण्णग-पदं	**प्रकीर्णक-पदम्**	**प्रकीर्णक-पद**
१७. एगे जीवे पाडिक्कएणं सरीरएणं।	एको जीव प्रत्येककेन शरीरकेण।	१७ प्रत्येक शरीर में जीव एक है।[16]
१८. एगा जीवाणं अपरिआइत्ता विगुव्वणा।	एका जीवानां अपर्यादाय विकरणम्।	१८. अपर्यादाय (बाह्य पुद्गलो को ग्रहण किये बिना होने वाली विक्रिया) एक है।
१९. एगे मणे।	एकं मनः।	१९. मन[17] एक है।
२०. एगा वई।	एका वाक्।	२०. वचन[18] एक है।
२१. एगे काय-वायामे।	एकः काय-व्यायामः।	२१. कायव्यायाम[19] एक है।

२२. एगा उप्पा।
एक उत्पादः।
२२. उत्पत्ति[२०] एक है।

२३. एगा वियती।
एका विगतिः।
२३. विगति[२१] (विनाश) एक है।

२४. एगा वियच्चा।
एका विगतार्चा।
२४. विशिष्ट चित्तवृत्ति[२२] एक है।

२५. एगा गती।
एका गतिः।
२५. गति[२३] एक है।

२६. एगा आगती।
एका आगतिः।
२६. आगति[२४] एक है।

२७. एगे चयणे।
एक च्यवनम्।
२७. च्यवन[२५] एक है।

२८. एगे उववाए।
एक उपपातः।
२८. उपपात[२६] एक है।

२९. एगा तक्का।
एकः तर्कः।
२९. तर्क[२७] एक है।

३०. एगा सण्णा।
एका संज्ञा।
३०. संज्ञा[२८] एक है।

३१. एगा मण्णा।
एका मति।
३१. मनन[२९] एक है।

३२. एगा विण्णू।
एको विज्ञ.।
३२ विद्वत्ता[३०] एक है।

३३. एगा वेयणा।
एका वेदना।
३३. वेदना[३१] एक है।

३४. एगे छेयणे।
एक छेदनम्।
३४. छेदन[३२] एक है।

३५. एगे भेयणे।
एक भेदनम्।
३५. भेदन[३३] एक है।

३६. एगे मरणे अंतिमसारीरियाणं।
एक मरण अन्तिमशारीरिकाणाम्।
३६. अन्तिमशरीरी[३४] जीवो का मरण एक है।

३७. एगे संसुद्धे अहाभूए पत्ते।
एक. सशुद्ध यथाभूत. पात्रम्।
३७. जो सशुद्ध यथाभूत[३५] और पात्र है, वह एक है।

३८ एगे दुक्खे जीवाणं एगभूए।
एक दुःख जीवाना एकभूतम्।
३८. प्रत्येक जीव का दुःख एक और एकभूत है[३६]।

३९. एगा अहम्मपडिमा, जं से आया परिकिलेसति।
एका अधर्म-प्रतिमा यत् तस्याः आत्मा परिक्लिश्यते।
३९. अधर्मप्रतिमा[३७] एक है, जिससे आत्मा परिक्लेश को प्राप्त होता है।

४० एगा धम्मपडिमा, जं से आया पज्जवजाए।
एका धर्म-प्रतिमा यत् तस्याः आत्मा पर्यवजातः।
४०. धर्मप्रतिमा[३८] एक है, जिससे आत्मा पर्यवजात होता है (ज्ञान आदि की विशेष शुद्धि को प्राप्त होता है)।

४१ एगे मणे देवासुरमणुयाणं तंसि तंसि समयंसि।
एक मनः देवासुरमनुजाना तस्मिन् तस्मिन् समये।
४१. देव, असुर और मनुष्य जिस समय चिंतन करते है, उस समय उनके एक मन होता है।[३९]

४२ एगा वई देवासुरमणुयाणं तंसि तंसि समयंसि।
एका वाक् देवासुरमनुजाना तस्मिन् तस्मिन् समये।
४२. देव, असुर और मनुष्य जिस समय बोलते है, उस समय उनके एक वचन होता है।[४०]

४३ एगे काय-वायामे देवासुर-मणुयाणं तंसि तंसि समयंसि।
एक. काय—व्यायाम. देवासुरमनुजाना तस्मिन् तस्मिन् समये।
४३. देव, असुर और मनुष्य जिस समय काय-व्यापार करते हैं, उस समय उनके एक कायव्यायाम होता है।[४१]

४४. एगे उट्ठाण-कम्म-बल-वीरिय-पुरिसकार-परक्कमे देवासुर-मणुयाणं तंसि तंसि समयंसि।
एक उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरुषाकार-पराक्रम देवासुरमनुजानां तस्मिन् तस्मिन् समये।
४४. देव, असुर और मनुष्यों के एक समय में एक ही उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुष-कार अथवा पराक्रम होता है।[४२]

४५. एगे णाणे।	एकं ज्ञानम्।	४५. ज्ञान[४३] एक है।
४६. एगे दंसणे।	एकं दर्शनम्।	४६. दर्शन[४४] एक है।
४७. एगे चरित्ते।	एकं चरित्रम्।	४७. चरित्र[४५] एक है।
४८. एगे समए।	एकः समयः।	४८. समय[४६] एक है।
४९. एगे पएसे।	एकः प्रदेशः।	४९. प्रदेश[४७] एक है।
५० एगे परमाणू।	एकः परमाणुः।	५०. परमाणु[४८] एक है।
५१. एगा सिद्धी।	एका सिद्धिः।	५१. सिद्धि एक है।
५२ एगे सिद्धे।	एकः सिद्धः।	५२. सिद्ध एक है।
५३ एगे परिणिव्वाणे।	एकं परिनिर्वाणम्।	५३. परिनिर्वाण एक है।
५४ एगे परिणिव्वुए।	एकः परिनिर्वृतः।	५४. परिनिर्वृत एक है।

पोग्गल-पदं	पुद्गल-पदम्	पुद्गल-पद
५५ एगे सद्दे।	एकः शब्दः।	५५ शब्द[४९] एक है।
५६ एगे रूवे।	एकं रूपम्।	५६. रूप[५०] एक है।
५७. एगे गंधे।	एको गन्धः।	५७. गंध[५१] एक है।
५८. एगे रसे।	एको रसः।	५८. रस[५२] एक है।
५९. एगे फासे।	एकः स्पर्शः।	५९. स्पर्श[५३] एक है।
६०. एगे सुब्भिसद्दे।	एकः सुशब्दः।	६०. शुभ-शब्द[५४] एक है।
६१. एगे दुब्भिसद्दे।	एकः दुःशब्दः।	६१. अशुभ-शब्द[५५] एक है।
६२. एगे सुरूवे।	एकं सुरूपम्।	६२. शुभ-रूप[५६] एक है।
६३. एगे दुरूवे।	एकं दूरूपम्।	६३. अशुभ-रूप[५७] एक है।
६४. एगे दीहे।	एको दीर्घः।	६४. दीर्घ[५८] एक है।
६५. एगे हस्से।	एको ह्रस्वः।	६५. ह्रस्व[५९] एक है।
६६. एगे वट्टे।	एको वृत्तः।	६६. वृत्त[६०] एक है।
६७. एगे तंसे।	एकः त्र्यस्रः।	६७. त्रिकोण[६१] एक है।
६८. एगे चउरंसे।	एकः चतुरस्रः।	६८. चतुष्कोण[६२] एक है।
६९. एगे पिहुले।	एकः पृथुलः।	६९. विस्तीर्ण[६३] एक है।
७०. एगे परिमंडले।	एकः परिमण्डलः।	७०. परिमण्डल[६४] एक है।
७१. एगे किण्हे।	एकः कृष्णः।	७१. कृष्ण[६५] एक है।
७२. एगे णीले।	एको नीलः।	७२. नील[६६] एक है।
७३. एगे लोहिए।	एको लोहितः।	७३. लोहित[६७] एक है।
७४. एगे हालिद्दे।	एको हारिद्रः।	७४. हारिद्र[६८] एक है।
७५. एगे सुक्किल्ले।	एकः शुक्लः।	७५. शुक्ल[६९] एक है।
७६. एगे सुब्भिगंधे।	एकः सुगन्धः।	७६. शुभ-गंध[७०] एक है।

७७. एगे दुब्भिगंधे।	एको दुर्गन्धः।	७७. अशुभ-गंध[७१] एक है।
७८. एगे तित्ते।	एकः तिक्तः।	७८. तीता[७२] एक है।
७९. एगे कडुए।	एकः कटुकः।	७९. कड़ुआ[७३] एक है।
८०. एगे कसाए।	एकः कषायः।	८०. कसैला[७४] एक है।
८१. एगे अंबिले।	एक अम्लः।	८१. आम्ल[७५] (खट्टा) एक है।
८२. एगे महुरे।	एको मधुरः।	८२. मधुर[७६] एक है।
८३. एगे कक्खडे।	एक. कर्कश.।	८३. कर्कश[७७] एक है।
८४. •एगे मउए।	एको मृदुकः।	८४. मृदु[७८] एक है।
८५. एगे गरुए।	एको गुरुकः।	८५. गुरु[७९] एक है।
८६. एगे लहुए।	एको लघुकः।	८६. लघु[८०] एक है।
८७. एगे सीते।	एकः शीतः।	८७. शीत[८१] एक है।
८८. एगे उसिणे।	एकः उष्णः।	८८. उष्ण[८२] एक है।
८९. एगे णिद्धे।	एकः स्निग्धः।	८९. स्निग्ध[८३] एक है।
९०. एगे° लुक्खे।	एको रूक्षः।	९०. रूक्ष[८४] एक है।

अट्ठारसपाव-पदं	अष्टादशपाप-पदम्	अष्टादशपाप-पद
९१. एगे पाणातिवाए।	एकः प्राणातिपातः।	९१. प्राणातिपात एक है।
९२. •एगे मुसावाए।	एको मृषावादः।	९२. मृषावाद एक है।
९३. एगे अदिण्णादाणे।	एकं अदत्तादानम्।	९३. अदत्तादान एक है।
९४. एगे मेहुणे°।	एकं मैथुनम्।	९४. मैथुन एक है।
९५. एगे परिग्गहे।	एकः परिग्रहः।	९५. परिग्रह एक है।
९६. एगे कोहे।	एकः क्रोधः।	९६. क्रोध एक है।
९७. •एगे माणे।	एकः मानः।	९७. मान एक है।
९८. एगा माया°।	एका माया।	९८. माया एक है।
९९. एगे लोभे।	एको लोभः।	९९. लोभ एक है।
१००. एगे पेज्जे।	एकः प्रेयान्।	१००. प्रेम एक है।
१०१. एगे दोसे।	एको दोषः।	१०१. द्वेष एक है।
१०२. •एगे कलहे।	एकः कलहः।	१०२. कलह एक है।
१०३. एगे अब्भक्खाणे।	एकं अभ्याख्यानम्।	१०३. अभ्याख्यान एक है।
१०४. एगे पेसुण्णे°।	एकं पैशुन्यम्।	१०४. पैशुन्य एक है।
१०५. एगे परपरिवाए।	एकः परपरिवादः।	१०५. परपरिवाद एक है।
१०६. एगा अरतिरती।	एका अरतिरतिः।	१०६. अरति-रति एक है।
१०७. एगे मायामोसे।	एका मायामृषा।	१०७. मायामृषा[८५] एक है।
१०८. एगे मिच्छादंसणसल्ले।	एकं मिथ्यादर्शनशल्यम्।	१०८. मिथ्यादर्शनशल्य एक है।

अट्ठारसपाव-वेरमण-पदं	अष्टादशपाप-विरमण-पदम्	अष्टादशपाप-विरमण-पद
१०९. एगे पाणाइवाय-वेरमणे।	एकं प्राणातिपात-विरमणम्।	१०९. प्राणातिपात-विरमण एक है।
११०. *एगे मुसावाय-वेरमणे।	एक मृषावाद-विरमणम्।	११०. मृषावाद-विरमण एक है।
१११. एगे अदिण्णादाण-वेरमणे।	एक अदत्तादान-विरमणम्।	१११. अदत्तादान-विरमण एक है।
११२. एगे मेहुण-वेरमणे।	एक मैथुन-विरमणम्।	११२. मैथुन-विरमण एक है।
११३. एगे° परिग्गह-वेरमणे।	एक परिग्रह-विरमणम्।	११३. परिग्रह-विरमण एक है।
११४. एगे कोह-विवेगे।	एकः क्रोध-विवेकः।	११४. क्रोध-विवेक एक है।
११५. *एगे माण-विवेगे।	एको मान-विवेकः।	११५. मान-विवेक एक है।
११६. एगे माया-विवेगे।	एको माया-विवेकः।	११६. माया-विवेक एक है।
११७. एगे लोभ-विवेगे।	एको लोभ-विवेकः।	११७. लोभ-विवेक एक है।
११८. एगे पेज्ज-विवेगे।	एकः प्रेयो-विवेकः।	११८. प्रेम-विवेक एक है।
११९. एगे दोस-विवेगे।	एको दोष-विवेकः।	११९. द्वेष-विवेक एक है।
१२०. एगे कलह-विवेगे।	एकः कलह-विवेकः।	१२०. कलह-विवेक एक है।
१२१. एगे अब्भक्खाण-विवेगे।	एकोऽभ्याख्यान-विवेकः।	१२१. अभ्याख्यान-विवेक एक है।
१२२. एगे पेसुण्ण-विवेगे।	एकः पैशुन्य-विवेकः।	१२२. पैशुन्य-विवेक एक है।
१२३. एगे परपरिवाय-विवेगे।	एकः परपरिवाद-विवेकः।	१२३. परपरिवाद-विवेक एक है।
१२४. एगे अरतिरति-विवेगे।	एकोऽरतिरति-विवेकः।	१२४. अरति-रति-विवेक एक है।
१२५. एगे मायामोस-विवेगे।	एको मायामृषा-विवेकः।	१२५. मायामृषा-विवेक एक है।
१२६. एगे° मिच्छादंसणसल्ल-विवेगे।	एको मिथ्यादर्शनशल्य-विवेकः।	१२६. मिथ्यादर्शनशल्य-विवेक एक है।

ओसप्पिणी-उस्सप्पिणी-पदं	अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी-पदम्	अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी-पद
१२७. एगा ओसप्पिणी।	एका अवसर्पिणी।	१२७. अवसर्पिणी एक है।
१२८. एगा सुसम-सुसमा।	एका सुषम-सुषमा।	१२८. सुषमसुषमा एक है।
१२९. *एगा सुसमा।	एका सुषमा।	१२९. सुषमा एक है।
१३०. एगा सुसम-दूसमा।	एका सुषम-दुष्षमा।	१३०. सुषमदुषमा एक है।
१३१. एगा दूसम-सुसमा।	एका दुष्षम-सुषमा।	१३१. दुषमसुषमा एक है।
१३२. एगा दूसमा°।	एका दुष्षमा।	१३२. दुषमा एक है।
१३३. एगा दूसम-दूसमा।	एका दुष्षम-दुष्षमा।	१३३. दुषमदुषमा एक है।
१३४. एगा उस्सप्पिणी।	एका उत्सर्पिणी।	१३४. उत्सर्पिणी एक है।
१३५. एगा दुस्सम-दुस्समा।	एका दुष्षम-दुष्षमा।	१३५. दुषमदुषमा एक है।
१३६. *एगा दुस्समा।	एका दुष्षमा।	१३६. दुषमा एक है।
१३७. एगा दुस्सम-सुसमा।	एका दुष्षम-सुषमा।	१३७. दुषमासुषमा एक है।
१३८. एगा सुसम-दुस्समा।	एका सुषम-दुष्षमा।	१३८. सुषमदुषमा एक है।

१३९. एगा सुसमा°।	एका सुषमा।	१३९ सुषमा एक है।
१४०. एगा सुसम-सुसमा।	एका सुषम-सुषमा।	१४०. सुषमसुषमा एक है।
चउवीसदंडग–पदं	**चतुर्विशतिदण्डक-पदम्**	**चतुर्विशतिदण्डक-पद**
१४१ एगा णेरइयाणं वग्गणा।	एका नैरयिकाणा वर्गणा।	१४१. नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।[८]
१४२ एगा असुरकुमाराणं वग्गणा।	एका असुरकुमाराणा वर्गणा।	१४२. असुरकुमार देवों की वर्गणा एक है।
१४३ °एगा णागकुमाराणं वग्गणा।	एका नागकुमाराणा वर्गणा।	१४३ नागकुमार देवों की वर्गणा एक है।
१४४. एगा सुवण्णकुमाराणं वग्गणा।	एका सुपर्णकुमाराणा वर्गणा।	१४४. सुपर्णकुमार देवों की वर्गणा एक है।
१४५. एगा विज्जुकुमाराणं वग्गणा	एका विद्युत्कुमाराणा वर्गणा।	१४५ विद्युत्कुमार देवो की वर्गणा एक है।
१४६ एगा अग्गिकुमाराणं वग्गणा।	एका अग्निकुमाराणा वर्गणा।	१४६. अग्निकुमार देवो की वर्गणा एक है।
१४७ एगा दीवकुमाराणं वग्गणा।	एका द्वीपकुमाराणा वर्गणा।	१४७ द्वीपकुमार देवो की वर्गणा एक है।
१४८ एगा उदहिकुमाराणं वग्गणा।	एका उदधिकुमाराणा वर्गणा।	१४८ उदधिकुमार देवो की वर्गणा एक है।
१४९. एगा दिसाकुमाराणं वग्गणा।	एका दिक्कुमाराणा वर्गणा।	१४९. दिशाकुमार देवो की वर्गणा एक है।
१५०. एगा वायुकुमाराणं वग्गणा।	एका वायुकुमाराणा वर्गणा।	१५०. वायुकुमार देवो की वर्गणा एक है।
१५१ एगा थणियकुमाराणं वग्गणा।	एका स्तनितकुमाराणा वर्गणा।	१५१. स्तनितकुमार देवो की वर्गणा एक है।
१५२. एगा पुढविकाइयाणं वग्गणा।	एका पृथिवीकायिकाना वर्गणा।	१५२ पृथ्वीकायिक जीवो की वर्गणा एक है।
१५३. एगा आउकाइयाणं वग्गणा।	एका अप्कायिकाना वर्गणा।	१५३ अप्कायिक जीवो की वर्गणा एक है।
१५४ एगा तेउकाइयाणं वग्गणा।	एका तेजस्कायिकाना वर्गणा।	१५४. तेजस्कायिक जीवो की वर्गणा एक है।
१५५. एगा वाउकाइयाणं वग्गणा।	एका वायुकायिकानां वर्गणा।	१५५. वायुकायिक जीवो की वर्गणा एक है।
१५६. एगा वणस्सइकाइयाणं वग्गणा।	एका वनस्पतिकायिकाना वर्गणा।	१५६. वनस्पतिकायिक जीवो की वर्गणा एक है।
१५७. एगा बेइंदियाणं वग्गणा।	एका द्वीन्द्रियाणा वर्गणा।	१५७ द्वीन्द्रिय जीवो की वर्गणा एक है।
१५८ एगा तेइंदियाणं वग्गणा।	एका त्रीन्द्रियाणा वर्गणा।	१५८. त्रीन्द्रिय जीवो की वर्गणा एक है।
१५९. एगा चउरिंदियाणं वग्गणा।	एका चतुरिन्द्रियाणा वर्गणा।	१५९ चतुरिन्द्रिय जीवो की वर्गणा एक है।
१६० एगा पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं वग्गणा।	एका पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाना वर्गणा।	१६० पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवो की वर्गणा एक है।
१६१ एगा मणुस्साणं वग्गणा।	एका मनुष्याणा वर्गणा।	१६१. मनुष्यो की वर्गणा एक है।
१६२. एगा वाणमंतराणं वग्गणा।	एका वानमन्तराणां वर्गणा।	१६२ वानमतर देवों की वर्गणा एक है।
१६३ एगा जोइसियाणं वग्गणा°।	एका ज्योतिष्काणा वर्गणा।	१६३. ज्योतिष्क देवो की वर्गणा एक है।
१६४ एगा वेमाणियाणं वग्गणा।	एका वैमानिकाना वर्गणा।	१६४. वैमानिक देवो की वर्गणा एक है।
भव-अभव-सिद्धिय-पदं	**भव-अभव-सिद्धिक-पदम्**	**भव-अभव सिद्धिक पद**
१६५ एगा भवसिद्धियाणं वग्गणा।	एका भवसिद्धिकानां वर्गणा।	१६५. भवसिद्धिक[९] जीवों की वर्गणा एक है।
१६६. एगा अभवसिद्धियाणं वग्गणा।	एका अभवसिद्धिकाना वर्गणा।	१६६. अभवसिद्धिक[१०] जीवो की वर्गणा एक है।

१६७ एगा भवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा।	एका भवसिद्धिकानां नैरयिकाणां वर्गणा।	१६७. भवसिद्धिक नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।
१६८. एगा अभवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा।	एका अभवसिद्धिकानां नैरयिकाणां वर्गणा।	१६८. अभवसिद्धिक नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।
१६९ एवं जाव एगा भवसिद्धियाणं वेमाणियाणं वग्गणा। एगा अभवसिद्धियाणं वेमाणियाणं वग्गणा।	एवं यावत् एका भवसिद्धिकानां वैमानिकानां वर्गणा। एका अभवसिद्धिकानां वैमानिकानां वर्गणा।	१६९. इसी प्रकार भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक वैमानिक तक के सभी दण्डकों की वर्गणा एक है।

दिट्ठि-पदं	दृष्टि-पदम्	दृष्टि-पद
१७० एगा सम्मद्दिट्ठियाणं वग्गणा।	एका सम्यग्दृष्टिकानां वर्गणा।	१७०. सम्यक्‌दृष्टि जीवों की वर्गणा एक है।
१७१ एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं वग्गणा।	एका मिथ्यादृष्टिकानां वर्गणा।	१७१. मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है।
१७२ एगा सम्मामिच्छद्दिट्ठियाणं वग्गणा।	एका सम्यग्मिथ्यादृष्टिकानां वर्गणा।	१७२ सम्यक्‌मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है।
१७३ एगा सम्मद्दिट्ठियाणं णेरइयाणं वग्गणा।	एका सम्यग्दृष्टिकानां नैरयिकाणां। वर्गणा।	१७३. सम्यक्‌दृष्टि नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।
१७४ एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं णेरइयाणं वग्गणा।	एका मिथ्यादृष्टिकानां नैरयिकाणां वर्गणा।	१७४ मिथ्यादृष्टि नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।
१७५ एगा सम्मामिच्छद्दिट्ठियाणं णेरइयाणं वग्गणा।	एका सम्यग्मिथ्यादृष्टिकानां नैरयिकाणां वर्गणा।	१७५. सम्यक्‌मिथ्यादृष्टि नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।
१७६ एवं जाव थणियकुमाराणं वग्गणा।	एवं यावत् स्तनितकुमाराणां वर्गणा।	१७६. इसी प्रकार असुरकुमार से स्तनितकुमार तक के सम्यक्‌दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यक्‌मिथ्यादृष्टि देवों की वर्गणा एक-एक है।
१७७ एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं पुढविक्काइयाणं वग्गणा।	एका मिथ्यादृष्टिकानां पृथिवीकायिकानां वर्गणा।	१७७. पृथ्वीकायिक मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है।
१७८. एवं जाव वणस्सइकाइयाणं।	एवं यावत् वनस्पतिकायिकानाम्।	१७८. इसी प्रकार अप्कायिक जीवों से लेकर वनस्पतिकायिक तक के जीवों की वर्गणा एक-एक है।
१७९. एगा सम्मद्दिट्ठियाणं बेइंदियाणं वग्गणा।	एका सम्यग्दृष्टिकानां द्वीन्द्रियाणां वर्गणा।	१७९ सम्यक्‌दृष्टि द्वीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।
१८०. एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं बेइंदियाणं वग्गणा।	एका मिथ्यादृष्टिकानां द्वीन्द्रियाणां वर्गणा।	१८०. मिथ्यादृष्टि द्वीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।

१८१. *एगा सम्मद्दिट्ठियाणं तेइंदियाणं वग्गणा	एका सम्यग्दृष्टिकानां त्रीन्द्रियाणां वर्गणा।	१८१. सम्यक्दृष्टि त्रीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।
१८२. एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं तेइंदियाणं वग्गणा।	एका मिथ्यादृष्टिकानां त्रीन्द्रियाणां वर्गणा।	१८२. मिथ्यादृष्टि त्रीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।
१८३. एगा सम्मद्दिट्ठियाणं चउरिंदियाणं वग्गणा।	एका सम्यग्दृष्टिकानां चतुरिन्द्रियाणा वर्गणा।	१८३. सम्यक्दृष्टि चतुरिन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।
१८४ एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं चउरिंदियाणं वग्गणा[7]।	एका मिथ्यादृष्टिकानां चतुरिन्द्रियाणां वर्गणा।	१८४. मिथ्यादृष्टि चतुरिन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।
१८५ सेसा जहा णेरइया जाव एगा सम्मामिच्छद्दिट्ठियाणं वेमाणियाणं वग्गणा।	शेषा यथा नैरयिका यावत् एका सम्यग्मिथ्यादृष्टिकाना वैमानिकानां वर्गणा।	१८५. सम्यक्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यक्-मिथ्यादृष्टि शेष दण्डकों (पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य, वानमन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों) की वर्गणा एक-एक है।

कण्ह-सुक्क-पक्खिय-पदं	**कृष्ण-शुक्ल-पाक्षिक-पदम्**	**कृष्ण-शुक्ल-पाक्षिक-पद**
१८६. एगा कण्हपक्खियाणं वग्गणा।	एका कृष्णपाक्षिकाणां वर्गणा।	१८६. कृष्ण-पाक्षिक[11] जीवों की वर्गणा एक है।
१८७ एगा सुक्कपक्खियाणं वग्गणा।	एका शुक्लपाक्षिकाणा वर्गणा।	१८७. शुक्ल-पाक्षिक[12] जीवों की वर्गणा एक है।
१८८. एगा कण्हपक्खियाणं णेरइयाणं वग्गणा।	एका कृष्णपाक्षिकाणा नैरयिकाणां वर्गणा।	१८८. कृष्ण-पाक्षिक नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।
१८९. एगा सुक्कपक्खियाणं णेरइयाणं वग्गणा।	एका शुक्लपाक्षिकाणां नैरयिकाणां वर्गणा।	१८९. शुक्ल-पाक्षिक नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।
१९०. एवं—चउवीसदंडओ भाणियव्वो।	एवम्—चतुर्विंशतिदण्डक भणितव्य।	१९०. इसी प्रकार शेष सभी कृष्ण-पाक्षिक और शुक्ल-पाक्षिक दण्डकों की वर्गणा एक-एक है।

लेसा-पदं	**लेश्या-पदम्**	**लेश्या-पद**
१९१. एगा कण्हलेसाणं वग्गणा।	एका कृष्णलेश्याना वर्गणा।	१९१. कृष्णलेश्या[13] वाले जीवों की वर्गणा एक है।
१९२ एगा णीललेसाणं वग्गणा।	एका नीललेश्याना वर्गणा।	१९२. नीललेश्या[13] वाले जीवों की वर्गणा एक है।
१९३. एगा काउलेसाणं वग्गणा।	एका कापोतलेश्याना वर्गणा।	१९३. कापोतलेश्या[13] वाले जीवों की वर्गणा एक है।

१९४. एगा तेउलेसाणं वग्गणा।

एका तेजोलेश्यानां वर्गणा।

१९४. तेजोलेश्या[६६] वाले जीवों की वर्गणा एक है।

१९५. एगा पम्ह[म्म ?]लेसाणं वग्गणा।

एका पद्मलेश्यानां वर्गणा।

१९५. पद्मलेश्या[६७] वाले जीवों की वर्गणा एक है।

१९६. एगा° सुक्कलेसाणं वग्गणा।

एका शुक्ललेश्यानां वर्गणा।

१९६. शुक्ललेश्या[६८] वाले जीवों की वर्गणा एक है।

१९७ एगा कण्हलेसाणं णेरइयाणं वग्गणा।

एका कृष्णलेश्याना नैरयिकाणां वर्गणा।

१९७. कृष्णलेश्या वाले नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।

१९८ °एगा णीललेसाणं णेरइयाणं वग्गणा।

एका नीललेश्याना नैरयिकाणा वर्गणा।

१९८. नीललेश्या वाले नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।

१९९. एगा° काउलेसाणं णेरइयाणं वग्गणा।

एका कापोतलेश्याना नैरयिकाणा वर्गणा।

१९९. कापोतलेश्या वाले नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।

२००. एवं—जस्स जइ लेसाओ—भवणवइ-वाणमंतर-पुढवि-आउ-वणस्सइकाइयाणं च चत्तारि लेसाओ, तेउ-वाउ-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं तिण्णि लेसाओ, पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं मणुस्साणं छल्लेसाओ, जोतिसयाणं एगा तेउलेसा, वेमाणियाणं तिण्णि उवरिमलेसाओ।

एवम्—यस्य यति लेश्या — भवनपति-वानमन्तर-पृथिव्यब्-वनस्पति-कायिकाना च चतस्र लेश्या:, तेजोवायु-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियाणा तिस्र: लेश्या:, पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकाना मनुष्याणा षड्लेश्या:, ज्योतिष्काणां एका तेजोलेश्या:, वैमानिकाना तिस्र: उपरितनलेश्या:।

२००. इसी प्रकार जिनमें जितनी लेश्याएं होती हैं (उनके अनुपात से उनकी एक-एक वर्गणा है)।

भवनपति, वानमंतर, पृथ्वी, जल और वनस्पतिकायिक जीवों में प्रथम चार लेश्याएं होती है। अग्नि, वायु, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों मे प्रथम तीन लेश्याएं होती हैं। पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिज और मनुष्यों के छहों लेश्याएं होती है। ज्योतिष्क देवो के एक तेजोलेश्या होती है। वैमानिक देवो के अन्तिम तीन लेश्याएं होती हैं।

२०१. एगा कण्हलेसाणं भवसिद्धियाणं वग्गणा।

एका कृष्णलेश्याना भवसिद्धिकाना वर्गणा।

२०१ कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक जीवो की वर्गणा एक है।

२०२. एगा कण्हलेसाणं अभवसिद्धियाणं वग्गणा।

एका कृष्णलेश्यानां अभवसिद्धिकानां वर्गणा।

२०२ कृष्णलेश्या वाले अभवसिद्धिक जीवों की वर्गणा एक है।

२०३. एवं—छसुवि लेसासु दो दो पयाणि भाणियव्वाणि।

एवम्—षट्स्वपि लेश्यासु द्वौ द्वौ पदौ भणितव्यौ।

२०३. इसी प्रकार छहों (कृष्ण, नील, कापोत, तेज:, पद्म और शुक्ल) लेश्या वाले भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक जीवो की वर्गणा एक-एक है।

२०४. एगा कण्हलेसाणं भवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा।

एका कृष्णलेश्यानां भवसिद्धिकानां नैरयिकाणां वर्गणा।

२०४. कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक नारकीय जीवो की वर्गणा एक है।

२०५. एगा कण्हलेसाणं अभवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा।

एका कृष्णलेश्याना अभवसिद्धिकाना नैरयिकाणा वर्गणा।

२०५. कृष्णलेश्या वाले अभवसिद्धिक नारकीय जीवों की वर्गणा एक है।

२०६ एवं—जस्स जति लेसाओ तस्स ततियाओ भाणियव्वाओ जाव वेमाणियाणं।

एवम्—यस्य यति लेश्या. तस्य तावत्य: भणितव्या: यावत् वैमानिकानाम्।

२०६. इसी प्रकार जिनके जितनी लेश्याएं होती है, उनके अनुपात से भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों की वर्गणा एक-एक है।

२०७. एगा कण्हलेसाणं सम्मद्दिट्ठियाणं वग्गणा।

एका कृष्णलेश्याना सम्यग्दृष्टिकाना वर्गणा।

२०७ कृष्णलेश्या वाले सम्यक्दृष्टिक जीवों की वर्गणा एक है।

२०८. एगा कण्हलेसाणं मिच्छद्दिट्ठियाणं वग्गणा।

एका कृष्णलेश्याना मिथ्यादृष्टिकाना वर्गणा।

२०८. कृष्णलेश्या वाले मिथ्यादृष्टिक जीवों की वर्गणा एक है।

२०९ एगा कण्हलेसाणं सम्मामिच्छ-द्दिट्ठियाणं वग्गणा।

एका कृष्णलेश्याना सम्यग्मिथ्या-दृष्टिकाना वर्गणा।

२०९. कृष्णलेश्या वाले सम्यक्मिथ्यादृष्टिक जीवों की वर्गणा एक है।

२१० एवं—छसुवि लेसासु जाव वेमाणियाणं जेसिं जइ दिट्ठीओ।

एवम्—षट्स्वपि लेश्यासु यावत् वैमानिकाना यस्मिन् यति दृष्टय:।

२१०. इसी प्रकार कृष्ण आदि छहों लेश्या वाले वैमानिक पर्यन्त सभी जीवों में, जिन जीवों में जितनी दृष्टियां होती है, उनके अनुपात से उनकी एक-एक वर्गणा है।

२११ एगा कण्हलेसाणं कण्हपक्खियाणं वग्गणा।

एका कृष्णलेश्याना कृष्णपाक्षिकाणा वर्गणा।

२११. कृष्णलेश्या वाले कृष्ण-पाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है।

२१२ एगा कण्हलेसाणं सुक्कपक्खियाणं वग्गणा।

एका कृष्णलेश्याना शुक्लपाक्षिकाणा वर्गणा।

२१२. कृष्णलेश्या वाले शुक्ल-पाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है।

२१३ जाव वेमाणियाणं जस्स जति लेसाओ।

एए अट्ठ, चउवीसदंडया।

यावत् वैमानिकाना यस्य यति लेश्या।

एते अष्ट, चतुर्विंशतिदण्डका.।

२१३. इसी प्रकार जिनमें जितनी लेश्याएं होती है, उनके अनुपात से कृष्ण-पाक्षिक और शुक्ल-पाक्षिक जीवों की वर्गणा एक-एक है। ये ऊपर बताए हुए चौबीस दण्डकों की वर्गणा के आठ प्रकरण है।

सिद्ध-पदं

२१४ एगा तित्थसिद्धाणं वग्गणा।
२१५. एगा अतित्थसिद्धाणं वग्गणा।
२१६ *एगा तित्थगरसिद्धाणं वग्गणा।
२१७. एगा अतित्थगरसिद्धाणं वग्गणा।
२१८ एगा सयंबुद्धसिद्धाणं वग्गणा।
२१९. एगा पत्तेयबुद्धसिद्धाणं वग्गणा।
२२० एगा बुद्धबोहियसिद्धाणं वग्गणा।
२२१ एगा इत्थीलिंगसिद्धाणं वग्गणा।

सिद्ध-पदम्

एका तीर्थसिद्धाना वर्गणा।
एका अतीर्थसिद्धाना वर्गणा।
एका तीर्थंकरसिद्धाना वर्गणा।
एका अतीर्थंकरसिद्धाना वर्गणा।
एका स्वयबुद्धसिद्धाना वर्गणा।
एका प्रत्येकबुद्धसिद्धाना वर्गणा।
एका बुद्धबोधितसिद्धाना वर्गणा।
एका स्त्रीलिङ्गसिद्धाना वर्गणा।

सिद्ध-पद

२१४. तीर्थ-सिद्धों[९९] की वर्गणा एक है।
२१५. अतीर्थ-सिद्धों[१००] की वर्गणा एक है।
२१६. तीर्थङ्कर-सिद्धों[१०१] की वर्गणा एक है।
२१७. अतीर्थङ्कर-सिद्धों[१०२] की वर्गणा एक है।
२१८ स्वयबुद्ध-सिद्धों[१०३] की वगणा एक है।
२१९. प्रत्येकबुद्ध-सिद्धों[१०४] की वर्गणा एक है।
२२०. बुद्धबोधित-सिद्धों[१०५] की वर्गणा एक है।
२२१. स्त्रीलिंग-सिद्धों[१०६] की वर्गणा एक है।

२२२. एगा पुरिसलिंगसिद्धाणं वग्गणा।

एका पुरुषलिङ्गसिद्धानां वर्गणा।

२२२. पुरुषलिंग-सिद्धों[१०७] की वर्गणा एक है।

२२३. एगा णपुंसकलिंगसिद्धाणं वग्गणा।

एका नपुंसकलिङ्गसिद्धाना वर्गणा।

२२३. नपुंसकलिंग-सिद्धों[१०८] की वर्गणा एक है।

२२४. एगा सलिंगसिद्धाणं वग्गणा।

एका स्वलिङ्गसिद्धाना वर्गणा।

२२४. स्वलिंग-सिद्धों[१०९] की वर्गणा एक है।

२२५. एगा अण्णलिंगसिद्धाणं वग्गणा।

एका अन्यलिङ्गसिद्धाना वर्गणा।

२२५. अन्यलिंग-सिद्धों[११०] की वर्गणा एक है।

२२६ एगा गिहिलिंगसिद्धाणं वग्गणा°।

एका गृहिलिङ्गसिद्धाना वर्गणा।

२२६. गृहिलिंग-सिद्धों[१११] की वर्गणा एक है।

२२७ एगा एक्कसिद्धाणं वग्गणा।

एका एकसिद्धाना वर्गणा।

२२७ एक-सिद्धों[११२] की वर्गणा एक है।

२२८. एगा अणिक्कसिद्धाणं वग्गणा।

एका अनेकसिद्धानां वर्गणा।

२२८ अनेक-सिद्धों[११३] की वर्गणा एक है।

२२९ एगा अपढमसमयसिद्धाणं वग्गणा, एवं—जाव अणंतसमयसिद्धाणं वग्गणा।

एका अप्रथमसमयसिद्धाना वर्गणा, एवम्—यावत् अनन्तसमयसिद्धानां वर्गणा।

२२९. दूसरे समय के सिद्धों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार तीसरे, चौथे यावत् अनन्त समय के सिद्धों की वर्गणा एक-एक है।

पोग्गल-पदं

पुद्गल-पदम्

पुद्गल-पद

२३०. एगा परमाणुपोग्गलाणं वग्गणा, एवं—जाव एगा अणंतपएसियाणं खंधाणं वग्गणा।

एका परमाणुपुद्गलाना वर्गणा, एवम्—यावत् एका अनन्तप्रदेशिकाना स्कन्धाना वर्गणा।

२३० परमाणु-पुद्गलों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् अनन्त-प्रदेशी स्कंधों की वर्गणा एक-एक है।

२३१. एगा एगपएसोगाढाणं पोग्गलाणं वग्गणा जाव एगा असंखेज्जपएसोगाढाणं पोग्गलाणं वग्गणा।

एका एकप्रदेशावगाढाना पुद्गलाना वर्गणा यावत् एका असंखेयप्रदेशावगाढाना पुद्गलाना वर्गणा।

२३१. एक प्रदेशावगाढ पुद्गलों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार दो, तीन यावत् असंख्य-प्रदेशावगाढ पुद्गलों की वर्गणा एक-एक है।

२३२ एगा एगसमयठितियाणं पोग्गलाणं वग्गणा जाव एगा असंखेज्जसमयठितियाणं पोग्गलाणं वग्गणा।

एका एकसमयस्थितिकाना पुद्गलाना वर्गणा यावत् एका असंखेयसमयस्थितिकाना पुद्गलाना वर्गणा।

२३२. एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार दो, तीन यावत् असंख्य-समय की स्थिति वाले पुद्गलों की वर्गणा एक-एक है।

२३३. एगा एगगुणकालगाणं पोग्गलाणं वग्गणा जाव एगा असंखेज्जगुणकालगाणं पोग्गलाणं वग्गणा, एगा अणंतगुणकालगाणं पोग्गलाणं वग्गणा।

एका एकगुणकालकाना पुद्गलाना वर्गणा यावत् एका असंखेयगुणकालकानां पुद्गलाना वर्गणा, एका अनन्तगुणकालकाना पुद्गलानां वर्गणा।

२३३ एक गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार दो या तीन यावत् असंख्य गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक-एक है। अनन्त गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक है।

२३४ एवं—वण्णा गंधा रसा फासा भाणियव्वा जाव एगा अणंतगुणलुक्खाणं पोग्गलाणं वग्गणा।

एवम्—वर्णा गन्धा रसाः स्पर्शा भणितव्या यावत् एका अनन्तगुणरूक्षाणा पुद्गलाना वर्गणा।

२३४. इसी प्रकार सभी वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के एक गुण वाले यावत् अनन्त गुण रूक्ष स्पर्श वाले पुद्गलों की वर्गणा एक-एक है।

२३५. एगा जहण्णपएसियाणं खंधाणं वग्गणा।
एका जघन्यप्रदेशिकानां स्कन्धानां वर्गणा।
२३५. जघन्य-प्रदेशी स्कन्धों की वर्गणा एक है।

२३६. एगा उक्कस्सपएसियाणं खंधाणं वग्गणा।
एका उत्कर्षप्रदेशिकानां स्कन्धानां वर्गणा।
२३६. उत्कृष्ट-प्रदेशी स्कन्धों की वर्गणा एक है।

२३७. एगा अजहण्णुक्कस्सपएसियाणं खंधाणं वग्गणा।
एका अजघन्योत्कर्षप्रदेशिकानां स्कन्धानां वर्गणा।
२३७. मध्यम (न जघन्य, न उत्कृष्ट) प्रदेशी स्कन्धों की वर्गणा एक है।

२३८. °एगा जहण्णोगाहणगाणं खंधाणं वग्गणा।
एका जघन्यावगाहनकानां स्कन्धानां वर्गणा।
२३८. जघन्य अवगाहना वाले स्कन्धों की वर्गणा एक है।

२३९. एगा उक्कोसोगाहणगाणं खंधाणं वग्गणा।
एका उत्कर्षावगाहनकानां स्कन्धानां वर्गणा।
२३९. उत्कृष्ट अवगाहना वाले स्कन्धों की वर्गणा एक है।

२४०. एगा अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं खंधाणं वग्गणा।
एका अजघन्योत्कर्षावगाहनकानां स्कन्धानां वर्गणा।
२४०. मध्यम (न जघन्य, न उत्कृष्ट) अवगाहना वाले स्कन्धों की वर्गणा एक है।

२४१. एगा जहण्णठितियाणं खंधाणं वग्गणा।
एका जघन्यस्थितिकानां स्कन्धानां वर्गणा।
२४१. जघन्य स्थिति वाले स्कन्धों की वर्गणा एक है।

२४२. एगा उक्कस्सठितियाणं खंधाणं वग्गणा।
एका उत्कर्षस्थितिकानां स्कन्धानां वर्गणा।
२४२. उत्कृष्ट स्थिति वाले स्कन्धों की वर्गणा एक है।

२४३. एगा अजहण्णुक्कोसठितियाणं खंधाणं वग्गणा।
एका अजघन्योत्कर्षस्थितिकानां स्कन्धानां वर्गणा।
२४३. मध्यम (न जघन्य, न उत्कृष्ट) स्थिति वाले स्कन्धों की वर्गणा एक है।

२४४. एगा जहण्णगुणकालगाणं खंधाणं वग्गणा।
एका जघन्यगुणकालकानां स्कन्धानां वर्गणा।
२४४. जघन्य गुण काले स्कन्धों की वर्गणा एक है।

२४५. एगा उक्कस्सगुणकालगाणं खंधाणं वग्गणा।
एका उत्कर्षगुणकालकानां स्कन्धानां वर्गणा।
२४५. उत्कृष्ट गुण काले स्कन्धों की वर्गणा एक है।

२४६. एगा अजहण्णुक्कस्सगुणकालगाणं खंधाणं वग्गणा°।
एका अजघन्योत्कर्षगुणकालकानां स्कन्धानां वर्गणा।
२४६. मध्यम (न जघन्य, न उत्कृष्ट) गुण काले स्कन्धों की वर्गणा एक है।

२४७. एवं—वण्ण-गंध-रस-फासाणं वग्गणा भाणियव्वा जाव एगा अजहण्णुक्कस्सगुणलुक्खाणं पोग्गलाणं (खंधाणं ?) वग्गणा।
एवम्—वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शानां वर्गणा भणितव्या यावत् एका अजघन्योत्कर्ष-गुणरूक्षाणां पुद्गलानां (स्कन्धानां ?) वर्गणा।
२४७. इसी प्रकार शेष सभी वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के जघन्यगुण, उत्कृष्टगुण और मध्यम (न जघन्य, न उत्कृष्ट) गुण वाले पुद्गलों (स्कन्धों ?) की वर्गणा एक-एक है।

जंबुद्दीव-पदं

जम्बूद्वीप-पदम्

जम्बूद्वीप-पद

२४८. एगे जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं °सव्वब्भंतराए सव्वखुड्डाए, वट्टे तेल्लापूयसंठाणसंठिए, वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिए, वट्टे
एको जम्बूद्वीपो द्वीपः सर्वद्वीपसमुद्राणां सर्वाभ्यन्तरकः सर्वक्षुद्रकः, वृत्तः तैलापूपसंस्थानसंस्थितः, वृत्तः रथचक्रवालसंस्थानसंस्थितः, वृत्तः पुष्कर-
२४८. सब द्वीपों और समुद्रों में जम्बूद्वीप नाम का एक द्वीप है। वह सब द्वीपसमुद्रों के मध्य में है। वह सबसे छोटा है। वह तेल के पूडे के संस्थान जैसा, रथ के

पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिए, वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए, एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस-सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरसअंगुलाइं° अद्धंगुलगं च किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं।

कर्णिकासंस्थानसंस्थितः, वृत्तः परिपूर्ण-चन्द्रसंस्थानसंस्थितः, एकं योजनशत-सहस्रं आयामविष्कम्भेण, त्रीणि योजनशतसहस्राणि षोडशसहस्राणि द्वे च सप्तविंशतिं योजनशतं त्रयश्च क्रोशा अष्टाविंशतिं च धनुःशतं त्रयोदशांगुलानि अर्धाङ्गुलं च किंचिद्‌विशेषाधिकः परिक्षेपेण।

चक्के के संस्थान जैसा, कमल की कर्णिका के संस्थान जैसा तथा प्रतिपूर्ण चन्द्र के संस्थान जैसा वृत्त है। वह एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है। उसकी परिधि तीन लाख, सोलह हजार, दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, अट्ठाईस धनुष, तेरह अंगुल और अर्द्धाङ्गुल से कुछ अधिक है।

महावीर-णिव्वाण-पदं

२४९. एगे समणे भगवं महावीरे इमीसे ओसप्पिणीए चउव्वीसाए तित्थगराणं चरमतित्थयरे सिद्धे बुद्धे मुत्ते °अंतगडे परिणिव्वुडे° सव्वदुक्खप्पहीणे।

महावीर-निर्वाण-पदम्

एकः श्रमणः भगवान् महावीरः अस्यां अवसर्पिण्यां चतुर्विंशतेः तीर्थंकराणां चरमतीर्थंकरः सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रक्षीणः।

महावीर-निर्वाण-पद

२४९. इस अवसर्पिणी के चौबीस तीर्थंकरों में चरम तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर अकेले ही सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिवृत और सब दुःखों से रहित हुए।

देव-पदं

२५०. अणुत्तरोववाइया णं देवा एगं रयणिं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

देव-पदम्

अनुत्तरोपपातिका देवा एकं रत्निं ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्ताः।

देव-पद

२५०. अनुत्तरोपपातिक देवों की ऊंचाई एक हाथ की होती है।

णक्खत्त-पदं

२५१. अद्दाणक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते।
२५२. चित्ताणक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते।
२५३. सातिणक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते।

नक्षत्र-पदम्

आर्द्रानक्षत्रं एकतारं प्रज्ञप्तम्।
चित्रानक्षत्रं एकतारं प्रज्ञप्तम्।
स्वातिनक्षत्रं एकतारं प्रज्ञप्तम्।

नक्षत्र-पद

२५१. आर्द्रा नक्षत्र का तारा एक है।
२५२. चित्रा नक्षत्र का तारा एक है।
२५३. स्वाति नक्षत्र का तारा एक है।

पोग्गल-पदं

२५४. एगपदेसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।
२५५. °एगसमयठितिया पोग्गला अणंता पण्णत्ता°।
२५६. एगगुणकालगा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव एगगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

पुद्गल-पदम्

एकप्रदेशावगाढाः पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः।
एकसमयस्थितिकाः पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः।
एकगुणकालकाः पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः यावत् एकगुणरूक्षाः पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः।

पुद्गल-पद

२५४. एक प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त हैं।
२५५. एक समय स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं।
२५६. एक गुण काले पुद्गल अनन्त हैं। इसी प्रकार शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के एक गुण वाले पुद्गल अनन्त-अनन्त हैं।

टिप्पणियाँ

स्थान-१

१—आत्मा (सू० २) :

जैन पद्धति के अनुसार आगम-सूत्र का प्रतिपादन और उसकी व्याख्या नय दृष्टि के आधार पर की जाती है। प्रस्तुत सूत्र संग्रहनय की दृष्टि से लिखा गया है। जैन तत्त्ववाद के अनुसार आत्मा अनत हैं। सग्रहनय अनंत का एकत्व मे समाहार करता है। इसीलिए अनत आत्माओ का एक आत्मा के रूप मे प्रतिपादन किया गया है।

अनुयोगद्वार (सू० ६०५) मे तीन प्रकार की वक्तव्यता बतलाई गई है—

१. स्वसमयवक्तव्यता—जैन दृष्टिकोण का प्रतिपादन।

२. परसमयवक्तव्यता—जैनेतर दृष्टिकोण का प्रतिपादन।

३. स्वसमय-परसमयवक्तव्यता—जैन और जैनेतर दोनो दृष्टिकोणो का एक साथ प्रतिपादन।

नदी सूत्रगत स्थानाग के विवरण मे बतलाया गया है[1]—स्थानाग मे स्वसमय की स्थापना, परसमय की स्थापना और स्वसमय-परसमय की स्थापना की जाती है। इसके आधार पर जाना जा सकता है कि स्थानाग म तीनो प्रकार की वक्तव्यताए हैं।

'एगे आया' यह सूत्र उभयवक्तव्यता का है। अनुयोगद्वारचूर्णि मे इस सूत्र की जैन और वेदान्त दोनों दृष्टिकोणो से व्याख्या की गई है। जैन-दृष्टि के अनुसार उपयोग (चेतना का व्यापार) सब आत्मा का सदृश लक्षण है, अत उपयोग (चेतना का व्यापार) की दृष्टि से आत्मा एक है। वेदान्त-दृष्टि के अनुसार आत्मा या ब्रह्म एक है[2]।

इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र मे स्वसमय और परसमय दोनो स्थापित हैं।

जैन आगमो मे आत्मा की एकता और अनेकता दोनो प्रतिपादित हैं। भगवान् महावीर की दृष्टि मे उपनिषद् का एकात्मवाद और साख्य का अनेकात्मवाद दोनों समन्वित हैं। उस समन्वय के मूल मे दो नय है—सग्रह और व्यवहार। संग्रह अभेद-प्रधान और व्यवहार भेद-प्रधान नय है। सग्रहनय के अनुसार आत्मा एक है और व्यवहारनय के अनुसार आत्मा अनन्त हैं। आत्मा की इस एकानेकात्मकता का प्रतिपादन भगवान् महावीर के उत्तरकाल मे भी होता रहा है। आचार्य अकलंक ने नाना ज्ञान-स्वभाव की दृष्टि से आत्मा की अनेकता और चैतन्य के एक स्वभाव की दृष्टि से उसकी एकता का प्रतिपादन कर उसके एकानेकात्मक स्वरूप का प्रतिपादन किया है।[3] साख्य-दर्शन के महान् आचार्य ईश्वर कृष्ण ने अनेकात्मवाद के समर्थन मे तीन तत्त्व प्रस्तुत किये हैं[4]—

१—जन्म, मरण और करण (इद्रिय) की विशेषता सब जीवो का एक साथ जन्म लेना, एक साथ मरना और एक साथ इन्द्रियविकल होना दृष्ट नही है।

---

१ नदीसूत्र, ८३.

ससमए ठाविज्जई, परसमए ठाविज्जई, ससमयपरसमए-ठाविज्जई।

२ अनुयोगद्वारचूर्णि, पृ. ८६.

एव उभयसमयवक्तव्यतास्वरूपमपीच्छति जधा ठाणागे 'एगे आता' इत्यादि, परसमयव्यवस्थिता ब्रुवात—

एक एव हि भूतात्मा, भूते भूते प्रतिष्ठित.।

एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥१॥

स्वसमयव्यवस्थिता पुन. ब्रुवति उवयोगादिक सव्वजीवाण सरिसं लक्खण अतो सव्वभिचारिपरसमयवत्तव्वया स्वरूपेण ण घडति, श्वेताश्वरउपनिषद् (६।११) मे एक आत्मा का निरूपण इस प्रकार है—

एको देव. सर्वभूतेषु गूढ सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।

कर्माध्यक्ष सर्वभूताधिवास, साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

३ स्वरूपसंबोधन, श्लोक ६.

नाना ज्ञानस्वभावत्वात् एकोऽनेकोपि नैव स ॥

चेतनैकस्वभावत्वात्—एकानेकात्मको भवेत् ॥

४. साख्यकारिका, १८.

जन्ममरणकरणानां, प्रतिनियमात् अयुगपत् प्रवृत्तेश्च

पुरुषबहुत्वं सिद्धं, त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव ॥

२—अयुगपत् प्रवृत्ति—सब जीवो मे एक साथ एक प्रवृत्ति का न होना।

३—त्रिगुण का विपर्यय—सत्व, रजस् और तमस् का विपर्यय होना, सब जीवों में उनकी एकरूपता का न होना।

जैन आगमो मे नानात्मवाद के समर्थन में जो तर्क दिये गए हैं उनमे से कुछ वे हैं, जिनकी तुलना सांख्यदर्शन के तर्कों से की जा सकती है; और कुछ उनसे भिन्न हैं। जैन आगमो मे प्रस्तुत तर्क वर्गीकृत रूप मे पांच हैं—

१—एक व्यक्ति के दुःख को दूसरा व्यक्ति अपने में संक्रान्त नही कर सकता।

२—एक व्यक्ति के द्वारा कृत कर्म के फल का दूसरा व्यक्ति प्रतिसवेदन—अनुभव नही कर सकता।

३—मनुष्य अकेला जन्म लेता है, अकेला मरता है—सब न एक साथ जन्म लेते हैं और न एक साथ मरते है।

४—परित्याग और स्वीकार प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना होता है।

५—क्रोध आदि का आवेग, संज्ञा, मनन, विज्ञान और वेदना प्रत्येक व्यक्ति की अपनी-अपनी होती है[१]।

इन व्यक्तिगत विशेषताओं को देखते हुए एक समष्टि आत्मा को स्वीकार करने मे अनेक सैद्धान्तिक बाधाए उपस्थित होती है।

वेदान्त के आचार्यों ने प्रत्यग्-आत्मा को अपारमार्थिक सिद्ध करने मे जो तर्क दिये हैं, वे बहुत समाधानकारक नही है।

२–दण्ड (सू० ३) :

दण्ड दो प्रकार का होता है—द्रव्य दण्ड और भाव दण्ड।

द्रव्य दण्ड—लाठी आदि मारक सामग्री।

भाव दण्ड के तीन प्रकार है—

१. मनोदण्ड—मन की दुष्प्रवृत्ति।

२. वाक्-दण्ड—वचन की दुष्प्रवृत्ति।

३. काय-दण्ड—शरीर की दुष्प्रवृत्ति।

सूत्रकृताग[२] सूत्र मे क्रिया के १३ स्थान बतलाये गये है। वहा पाच स्थानो पर दण्ड शब्द का प्रयोग हुआ है—अर्थ दण्ड, अनर्थ दण्ड, हिंसा दण्ड, अकस्मात् दण्ड और दृष्टिविपर्यास दण्ड। यहा दण्ड शब्द हिंसा के अर्थ मे प्रयुक्त है। विशेष जानकारी के लिए देखे उत्तराध्ययन, अ० ३१ श्लोक ४ के दण्ड शब्द का टिप्पण।

३–क्रिया (सू० ४) :

क्रिया का सामान्य अर्थ प्रवृत्ति है। आगम साहित्य मे इसका अनेक अर्थों मे प्रयोग हुआ है। सदर्भ के अनुसार क्रिया का प्रयोग सत्प्रवृत्ति और असत्प्रवृत्ति—दोनो के अर्थ मे मिलता है। प्रथम आचाराग (१।५) मे चार प्रकार के वादों का उल्लेख है। उनमे एक क्रियावाद है। भगवान् महावीर स्वय क्रियावादी थे। दार्शनिक जगत् मे यह एक प्रश्न था कि आत्मा अक्रिय है या सक्रिय? कुछ दार्शनिक आत्मा को अक्रिय या निष्क्रिय मानते थे[३]। भगवान् महावीर आत्मा को सक्रिय मानते थे।

इस विश्व मे ऐसी कोई वस्तु नही हो सकती, जिसमे क्रियाकारित्व न हो। वस्तु की परिभाषा इसी आधार पर की गई है। वस्तु वही है, जिसमे अर्थक्रिया की क्षमता है। जिसमे अर्थक्रिया की क्षमता नही है, वह अवस्तु है। यहा 'क्रिया' का प्रयोग वस्तु की अर्थक्रिया (स्वाभाविक क्रिया) के अर्थ मे नही है, किन्तु वह विशेष प्रवृत्ति के अर्थ मे है।

दूसरे स्थान (सू० २-३७) मे क्रिया के वर्गीकृत प्रकार मिलते हैं।

---

१ सूत्रकृताग, २।१।५१.
अण्णस्स दुक्खं अण्णो णो परियाइयइ अण्णेण कत अण्णो णो पडिसंवेदेइ, पत्तेयं जायइ, पत्तेयं मरइ, पत्तेयं चयइ, पत्तेयं उववज्जइ, पत्तेयं झंझा, पत्तेयं सण्णा, पत्तेयं मण्णा, पत्तेयं विण्णू, पत्तेयं वेदणा।

२ सूत्रकृताग, २।२।२।

३ सूत्रकृताग, १।१।१३
कुव्वं च कारयं चेव, सव्वं कुव्वं न विज्जइ।
एव अकारओ अप्पा, ते उ एव पगब्भिया॥

४-७—लोक, अलोक, धर्म, अधर्म (सू० ५-८) :

आकाश लोक और अलोक, इन दो भागों में विभक्त है[1]। जिस आकाश में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय—ये पाचो द्रव्य मिलते हैं, उसे लोक कहा जाता है और जहा केवल आकाश ही होता है, वह अलोक कहलाता है[2]।

लोक और अलोक की सीमा रेखा धर्म (धर्मास्तिकाय) और अधर्म (अधर्मास्तिकाय) के द्वारा होती है। धर्म का लक्षण गति और अधर्म का लक्षण स्थिति है[3]। जीव और पुद्गल की गति धर्म और स्थिति अधर्म के आलम्बन से होती है।

८-१३—बंध यावत् संवर (सू० ९-१४) :

संख्याकित छह् सूत्रों (९-१४) मे नव तत्त्वो मे से परस्पर प्रतिपक्षी छह् तत्त्वो का निर्देश किया गया है।

बन्धन के द्वारा आत्मा के चैतन्य आदि गुण प्रतिबद्ध होते हैं। मोक्ष आत्मा की उस अवस्था का नाम है, जिसमें आत्मा के चैतन्य आदि गुण मुक्त हो जाते हैं, इसलिए बंध और मोक्ष मे परस्पर प्रतिपक्षभाव है।

पुण्य के द्वारा जीव को सुख की अनुभूति होती है और पाप के द्वारा उसे दु:ख की अनुभूति होती है, इसलिए पुण्य और पाप मे परस्पर प्रतिपक्षभाव है।

आश्रव कर्म पुद्गलों को आकर्षित करता है और सवर उनका निरोध करता है, इसलिए आश्रव और संवर मे परस्पर प्रतिपक्षभाव है। दूसरे स्थान (सू० १) मे इनका प्रतिपक्षी युगल के रूप मे उल्लेख मिलता है।

१४-१५—वेदना, निर्जरा (सू० १५-१६) .

प्रस्तुत स्थान मे वेदना शब्द का दो स्थानों (१५वे सूत्र मे और ३३वे सूत्र मे) पर उल्लेख हुआ है। तेतीसवे सूत्र मे वेदना का अर्थ अनुभूति है। यहा उसका अर्थ कर्मशास्त्रीय परिभाषा से संबद्ध है। निर्जरा नौ तत्त्वो मे एक तत्त्व है। वेदना उसका पूर्वरूप है। पहले कर्म-पुद्गलो की वेदना होती है, फिर उनकी निर्जरा होती है। वेदना का अर्थ है स्वभाव से या उदीरणाकरण के द्वारा उदय क्षण में आए हुए कर्म-पुद्गलो का अनुभव करना। निर्जरा का अर्थ है अनुभूत कर्म-पुद्गलो का पृथक्करण और आत्मशोधन।

१६-जीव (सू० १७) :

आत्मा और जीव पर्यायवाची शब्द हैं। भगवती सूत्र (२०।१७) मे जीव के तेईस नाम बतलाए गए हैं[4]। उनमे पहला नाम जीव और दशवा नाम आत्मा है। सामान्य दृष्टि से ये पर्यायवाची शब्द हैं, किन्तु विशेष दृष्टि (समभिरूढनय की दृष्टि) मे कोई भी शब्द दूसरे शब्द का पर्यायवाची नही होता। इस दृष्टि से आत्मा और जीव मे अर्थ-भेद है। आत्मा का अर्थ है—अपने चैतन्य आदि गुणों और पर्यायो मे सतत परिणमन करने वाला चेतनतत्त्व।

जीव का अर्थ है—शरीर और आयुष्य को धारण करने वाला चेतनतत्त्व[5]।

एगे आया (१।२) मे आत्मा का निर्देश देह्-मुक्त चेतनतत्त्व के अर्थ मे और प्रस्तुत सूत्र मे जीव का निर्देश देह्-बद्ध चेतनतत्त्व के अर्थ मे हुआ प्रतीत होता है।

---

१ स्थानाग, २।१५२ '
दुविहे आगासे पण्णत्ते, त जहा—
लोगागासे चेव, अलोगागासे चेव।

२ (क) उत्तराध्ययन, २८।७.
धम्मो अहम्मो आगास कालो पुग्गल जतवो।
एस लोगो त्ति पन्नत्तो, जिणेहि वरदंसिहि॥
(ख) उत्तराध्ययन, ३६।२ :
जीवा चेव अजीवा य, एस लोए वियाहिए।
अजीवदेसमागासे, अलोए से वियाहिए॥

३ उत्तराध्ययन, २८।९.
गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।

४. भगवती, २०।१७ :
जीवत्थिकायस्स ण भते! केवइया अभिवयणा पण्णत्ता ?
गोयमा! अणेगा अभिवयणा पण्णत्ता, त जहा—जीवेति वा ··
आयाति वा।

५ भगवती २।१५
जम्हा जीवे जीवेति जीवत्तं आउयं च कम्मं उवजीवति तम्हा
जीवेति वत्तव्व सिया।

प्रस्तुत सूत्र में जीव के एकत्व का हेतु प्रत्येक शरीर बतलाया गया है। जैनतत्त्ववाद के अनुसार मुक्त और बद्ध—दोनों प्रकार के चेतनतत्त्व संख्या-परिमाण की दृष्टि से अनन्त हैं, किन्तु यहां जीव का एकत्व संख्या की दृष्टि से विवक्षित नहीं है। एक चेतन से दूसरे चेतन को व्यवच्छिन्न करने वाला शरीर है। 'यह एक जीव है'—यह इकाई शरीर के द्वारा ही अभिज्ञात होती है। अतः इसी दृष्टि से जीव का एकत्व विवक्षित है। इसकी तुलना वेदान्त-सम्मत प्रत्यग् आत्मा से होती है। उसके अनुसार परमार्थदृष्टि से आत्मा एक है, जिसे विश्वग् आत्मा कहा जाता है और व्यवहार-दृष्टि से आत्मा अनेक है, जिन्हे प्रत्यग् आत्मा कहा जाता है[१]।

वेदान्त का दृष्टिकोण अद्वैतपरक है[२]। अत: उसके आचार्य प्रत्यग् आत्मा को मानते हुए भी आत्मा के नानात्व को स्वीकार नही करते। उनका सिद्धान्त है कि प्रत्यग् आत्माओ का अस्तित्व विश्वग् आत्मा से निष्पन्न होता है। जो वस्तु जिससे अस्तित्व (आत्म-लाभ) को प्राप्त करती है वह उससे भिन्न नही हो सकती, जैसे—मिट्टी से अस्तित्व पाने वाले घट आदि उससे भिन्न नहीं हो सकते[३]। इसी प्रकार समुद्र मे अस्तित्व पाने वाले तरङ्ग आदि उससे भिन्न नही हो सकते[४]।

जैनदर्शन के अनुसार भी आत्मा एक और अनेक—ये दोनो सम्मत हैं, किन्तु एक आत्मा से अनेक आत्माएं निष्पन्न होती हैं, यह जैनदर्शन को मान्य नही है। चैतन्य के सादृश्य की दृष्टि से आत्मा एक है और चैतन्य की विभिन्न स्वतंत्र इकाइयो और देह-बद्धता के कारण वे अनेक हैं। दोनो अभ्युपगम दूसरे और प्रस्तुत सूत्र (१७) मे फलित होते हैं।

१७-१९—मन, वचन, कायव्यायाम (सू० १९-२१) :

जीव की प्रवृत्ति के तीन स्रोत है—मन, वचन और काय। इन तीनो को एक शब्द मे योग कहा जाता है[५]। आगम साहित्य मे इनमे से प्रत्येक के साथ भी योग शब्द का प्रयोग मिलता है[६]।

आगम-साहित्य मे प्राय: काययोग शब्द का प्रयोग किया गया है। काय-व्यायाम शब्द का प्रयोग दो बार इसी स्थान (१।२१,४३) मे हुआ है। बौद्धसाहित्य[७] मे सम्यग् व्यायाम शब्द का प्रयोग प्राप्त है। उस समय मे सामान्यप्रवृत्ति के अर्थ मे भी व्यायाम शब्द का प्रयोग किया जाता था, ऐसा उक्त उद्धरणो से प्रतीत होता है। आयुर्वेद के ग्रन्थो मे व्यायाम शब्द का प्रयोग काय की एक विशेष प्रवृत्ति के अर्थ मे रूढ है[८]।

२०-२१—उत्पत्ति, विगति (सू० २२-२३) :

जैन तत्त्ववाद के अनुसार विश्व की व्याख्या त्रिपदी के द्वारा की गई है। त्रिपदी के तीन अग हैं—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य। उत्पाद और व्यय—ये दोनो परिवर्तन और ध्रौव्य वस्तु के स्थायित्व का सूचक है। इन दो सूत्रो मे त्रिपदी के दो अगो—उत्पाद और व्यय का निर्देश है—ऐसा अभयदेव सूरि का अभिमत है।

उन्होने 'वियती' पद की व्याख्या मे एक विकल्प भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है कि 'विगती' पद की व्याख्या विकृति आदि भी की जा सकती है, किन्तु इससे पहले सूत्र मे उत्पाद का उल्लेख है, उसी के आधार पर उसकी व्याख्या व्यय की गई है[९]।

---

१. कठोपनिषद्, ४।१।

२. माण्डूक्यकारिकाभाष्य, ३।१७-१८ :
अस्माक अद्वैतदर्शि ।

३. बृहदारण्यकभाष्य, ३।५ :
यस्य च यस्मादात्मलाभो भवति, स तेन अविभक्तो दृष्ट, यथा घटादीनि मृदा ।

४. शांकरभाष्य, ब्रह्मसूत्र, २।१।१३ :
न च समुद्रात् उदकात्मनोऽनन्यत्वेपि तद्विकाराणा फेनतरगादीनां इतरेतरभावापत्ति र्भवति । न च तेषा इतरेतरभावानापत्तावपि समुद्रात्मनोऽन्यत्व भवति ।

५. तत्त्वार्थसूत्र, ६।१ :
कायवाङ्मन:कर्म योग ।

६. स्थानाग, ३।१३ तिविहे जोगे पण्णत्ते, त जहा—
मणजोगे वइजोगे कायजोगे ।

७. दीघनिकाय, पृ० १६७ ।

८. चरक, सूत्रस्थान, अ० ७, श्लोक ३१ :
लाघव कर्मसामर्थ्यं, स्थैर्यं क्लेशसहिष्णुता ।
दोषक्षयोग्निवृद्धिश्च, व्यायामादुपजायते ॥

९. स्थानागवृत्ति, पत्र १९ :
'उप्प' त्ति प्राकृतत्वादुत्पाद, स चैक एकसमये एकपर्यायापेक्षया, नहि तस्य युगपदुत्पादव्ययादिरस्ति, अनपेक्षिततद्विशेषकपदार्थतया चैकोऽसाविति ।। 'वियइ' त्ति विगतिर्विगम, सा चैकोत्पादवदिति विकृतिर्विगतिरित्यादिव्याख्यान्तरमप्युचितमायोज्यम्, अस्माभिस्तु उत्पादसूत्रानुगुण्यतो व्याख्यातमिति ।

बाईसवें सूत्र मे 'उप्पा' पद है। अभयदेव सूरि ने प्राकृत भाषा का विशेष प्रयोग मानकर उसका अर्थ उत्पाद किया है। इसका अर्थ उत्पाद किया इसीलिए उन्होंने 'विगती' पद का अर्थ व्यय किया। 'उप्पा' एक स्वतन्त्र शब्द है। तब उसका उत्पाद रूप मानकर उसकी व्याख्या करने का अर्थ समझ मे नही आता। 'उप्पा' शब्द 'ओप्पा' का रूपान्तर प्रतीत होता है। ह्रस्वीकरण होने पर 'ओप्पा' का 'उप्प' बना है। 'ओप्पा' का अर्थ है शाण आदि पर मणि आदि का घर्षण करना[1]।

इस अर्थ के सदर्भ मे 'उप्पा' का अर्थ परिकर्म होना चाहिए। इसका प्रतिपक्ष है विकृति।

विकृति की संभावना अभयदेव सूरि ने भी प्रकट की है। किन्तु पाचवें स्थान के दो सूत्रों[2] का अवलोकन करने पर यहा 'उप्पा' का अर्थ उत्पाद और 'विगति' का अर्थ व्यय ही सगत लगता है।

२२-विशिष्ट चित्तवृत्ति (सू० २४) :

अभयदेव सूरि ने 'वियच्चा' शब्द का अर्थ मृत शरीर किया है। 'वि' का अर्थ विगत और 'अच्चा' का अर्थ शरीर—विगतार्चा अर्थात् मृतशरीर। इसका दूसरा सस्कृत रूप 'विवर्चा' मानकर दो अर्थ किए है—विशिष्ट उपपत्ति की पद्धति और विशिष्टभूषा[3]।

अर्चा का एक अर्थ चित्तवृत्ति (लेश्या) भी है[4]। विगतार्चा अथवा मृत जीव की अर्चा—यह अर्थ सहज प्राप्त नही है। विशिष्ट चित्तवृत्ति— यह अर्थ सहज प्राप्त है। इसलिए हमने यही अर्थ मान्य किया है।

२३-२६—गति, आगति, च्यवन, उपपात (सू० २५-२८) :

गति, आगति, च्यवन और उपपात—यहा ये चारो शब्द पारिभाषिक है।

गति—जीव का वर्तमान भव से आगामी भव मे जाना।

आगति—जीव का पूर्वभव से वर्तमान भव मे आना।

च्यवन—ऊपर से गिरकर नीचे आना। ज्योतिष्क और वैमानिक देव आयुष्य पूर्ण कर ऊपर से नीचे आकर उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनका मरण च्यवन कहलाता है।

उपपात—देव और नारको का जन्म उपपात कहलाता है[5]।

२७-३०—तर्क, संज्ञा, मनन, विद्वत्ता (सू० २९-३२) :

इन चार सूत्रों (२९-३२) मे ज्ञान के विविध पर्यायो का निरूपण किया गया है—

तर्क—ईहा से उत्तरवर्ती और अवाय (निर्णय) से पूर्ववर्ती विमर्श को तर्क कहा जाता है, जैसे—यह सिर को खुजला रहा है, इसलिए यह पुरुष होना चाहिए। यह तर्क की आगमिक व्याख्या है[6]। तर्क का एक अर्थ न्यायशास्त्रीय भी है। परोक्ष प्रमाण के पाच प्रकारो मे तीसरा प्रकार तर्क है। इसका अर्थ है—उपलब्धि और अनुपलब्धि से उत्पन्न होने वाला व्याप्तिज्ञान तर्क कहलाता है[7]।

---

१ देशीनाममाला, १।१४८ :
गलबिलो घणिओमहा अघम्मरोरप्पिगम् एक्कमुहो।
ओली कुलपरिपाडी ओज्झमचोक्खम्मि विमलणे ओप्पा ॥
टि० ओप्पा शाणादिना मण्यादेर्मार्जनम् ॥

२ स्थानाग, ५।२१५ २१६।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र १९ :
वियच्च त्ति विगते. प्रागुक्तत्वादिह विगतस्य विगमवतो र्ज वस्य मृतस्येत्यर्थः अर्चा—शरीरं विगतार्चा, प्राकृतत्वादिति, विवर्चा वा—विशिष्टोपपत्तिपद्धतिविशिष्टभूषा वा।

४ सूत्रकृताग, १।१५।१८, वृत्ति, पत्र २६७ :
अर्चा--लेश्याऽन्त करणपरिणति ।

५. स्थानाग, २।२५० ।

६ स्थानागवृत्ति, पत्र १९ :
तर्कण तर्को—विमर्श. अवायात् पूर्वा ईहाया उत्तरा प्राय शिर कण्डूयनादय पुरुषधर्म्मा इह घटन्त इति-सम्प्रत्ययरूपा।

७ प्रमाणनयतत्त्वालोकालकार, ३।७ .
उपलम्भानुपलम्भसंभव त्रिकालीकलितसाध्यसाधनसम्बन्धाद्या-लम्बन इदमस्मिन् सत्येव भवतीत्याकार सवेदनमूहापरनामा तर्क.।

मज्ञा—इसके दो अर्थ होते हैं—प्रत्यभिज्ञान और अनुभूति। नदीसूत्र मे मति (आभिनिबोधिक) ज्ञान का एक नाम संज्ञा निर्दिष्ट है[1]। उमास्वाति ने मति, स्मृति, सज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध इन्हे एकार्थक माना है[2]। मलयगिरि तथा अभयदेव सूरि दोनों ने संज्ञा का अर्थ व्यञ्जनावग्रह के बाद होनेवाली एक प्रकार की मति किया है[3]। अभयदेव सूरि ने इसका दूसरा अर्थ अनुभूति भी किया है[4]। इस अर्थ मे प्रयुक्त सज्ञा के दस प्रकार दसवें स्थान मे बतलाए गए हैं[5]। किन्तु यहा तर्क, मनन और विज्ञान के साथ प्रयुक्त तथा नदी मे मतिज्ञान के एक प्रकार के रूप मे निर्दिष्ट होने के कारण संज्ञा का अर्थ मतिज्ञान का एक प्रकार—प्रत्यभिज्ञान ही होना चाहिए। प्रत्यभिज्ञान का अर्थ उत्तरवर्ती न्यायग्रन्थो मे इस प्रकार किया गया है—

मनन—वस्तु के सूक्ष्म धर्मों का पर्यालोचन करनेवाली बुद्धि आलोचना या अभ्युपगम।

विज्ञता या विज्ञान—अभयदेव सूरि ने 'विन्नु' शब्द का अर्थ विद्वान् या विज्ञ किया है, और वैकल्पिक रूप में विद्वत्ता या विज्ञता किया है[6]। श्रुत-निश्रित मतिज्ञान के चार प्रकार हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा[7]। अवाय का अर्थ है—विमर्श के बाद होने वाला निश्चय। उसके पाच पर्यायवाची नाम हैं। उनमे पाचवा नाम विज्ञान है[8]। आचार्य मलयगिरि के अनुसार जो ज्ञान निश्चय के बाद होनेवाली धारणा को तीव्रतर बनाने मे निमित्त बनता है, वह विज्ञान है[9]। प्रस्तुत विषय मे 'विन्नु' शब्द का यही अर्थ उपयुक्त प्रतीत होता है। स्थानाग के तीसरे स्थान मे ज्ञान के पश्चात् विज्ञान का उल्लेख मिलता है[10]। वहा अभयदेव सूरि ने विज्ञान का अर्थ हेयोपादेय का विनिश्चय किया है।[11] इसमे भी इस बात की पुष्टि होती है कि विज्ञान का अर्थ निश्चयात्मक ज्ञान है।

३१—वेदना (सू० ३३) :

वेदना—प्रस्तुत स्थान मे वेदना शब्द का दो स्थानो पर उल्लेख है एक पन्द्रहवे सूत्र मे और दूसरा तेतीसवे सूत्र मे। पन्द्रहवें सूत्र मे वेदना का प्रयोग कर्म का अनुभव करने के अर्थ मे हुआ है[12], और यहा उसका प्रयोग पीडा अथवा सामान्य अनुभूति के अर्थ मे हुआ है[13]।

३२-३३—छेदन, भेदन (सू० ३४-३५) :

छेदन-भेदन—छेदन का सामान्य अर्थ है टुकडे करना और भेदन का सामान्य अर्थ है विदारण करना। कर्मशास्त्रीय परिभाषा के अनुसार छेदन का अर्थ है—कर्मों की स्थिति का घात करना—उदीरणा के द्वारा कर्मों की दीर्घ स्थिति को कम करना।

भेदन का अर्थ है—कर्मों के रस का घात करना—उदीरणा के द्वारा कर्मों के तीव्र विपाक को मद करना[14]।

---

१ नदी, सूत्र ५४, गा० ६
ईहाअपोहवीमंसा, मग्गणा य गवेसणा।
सण्णा सई मई पण्णा, सव्व आभिणिबोहियं॥

२ तत्त्वार्थसूत्र, १।१३
मति स्मृति सज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्।

३. क—नंदीवृत्ति, पत्र १८७ :
सज्ञान सज्ञा व्यञ्जनावग्रहोत्तरकालभावी मतिविशेष इत्यर्थः।
ख—स्थानागवृत्ति, पत्र १६ :
सज्ञान सज्ञा व्यञ्जनावग्रहोत्तरकालभावी मतिविशेष।

४. स्थानागवृत्ति, पत्र ४७
आहारभयाद्युपाधिका वा चेतना सज्ञा।

५. स्थानांग, १०।१०५।

६. स्थानांगवृत्ति, पत्र १६ :
एगा विन्नु त्ति विद्वान् विज्ञो वा तुल्यबोधत्वादेक इति, स्त्रीलिंगत्व प्राकृतत्वात् च उत्पाद (त्य) रुप्पावत्, लुप्तभाव-प्रत्ययत्वाद्वा एका विद्वत्ता विज्ञता वेत्यर्थः।

७. नदी, सूत्र ३९।

८ नंदी, सूत्र ४७।

९ नदीवृत्ति, पत्र १७६
विशिष्ट ज्ञान विज्ञान—क्षयोपशमविशेषादेवावधारितार्थविषय एव तीव्रतरधारणाहेतुर्बोधविशेष।

१० स्थानाग, ३।४१८।

११. स्थानांगवृत्ति, पत्र १४६ :
विज्ञानम्—अर्थादीना हेयोपादेयत्वविनिश्चय।

१२. देखें १४, १५ का टिप्पण

१३. स्थानांगवृत्ति, पत्र १६ :
प्राग्वेदना सामान्यकर्मानुभवलक्षणोक्ता इह तु पीडालक्षणैव।

१४. स्थानागवृत्ति, पत्र १६
छेदन कर्मण स्थितिघातः, भेदन तु रसघात इति।

३४–अन्तिम शरीरी (सू० ३६) :

प्रत्येक प्राणी के दो प्रकार के शरीर होते हैं—स्थूल और सूक्ष्म। मृत्यु के समय स्थूलशरीर छूट जाता है, किन्तु सूक्ष्मशरीर नहीं छूटता। जब तक सूक्ष्मशरीर रहता है, तब तक जन्म और मरण का चक्र चलता रहता है। सूक्ष्मशरीर से छुटकारा विशिष्ट साधना से मिलता है। जिस व्यक्ति का सूक्ष्मशरीर विलीन हो जाता है, वह अन्तिमशरीरी होता है। स्थूल-शरीर की प्राप्ति का निमित्त सूक्ष्मशरीर बनता है। उसके विलीन हो जाने पर शरीर प्राप्त नहीं होता, इसीलिए वह अन्तिमशरीरी कहलाता है। उसका मरण भी अन्तिम होने के कारण एक होता है। वह फिर जन्म धारण भी नहीं करता इसीलिए उसका मरण भी नहीं होता।

३५—संशुद्ध यथाभूत (सू० ३७) :

प्रस्तुत सूत्र में एकत्व का हेतु संख्या नहीं, किन्तु निर्लेपता या सहाय-निरपेक्षता है। जो व्यक्ति संशुद्ध होता है—जिसका चरित्र दोष-मुक्त होता है, जो यथाभूत—शक्ति सम्पन्न होता है और जो पात्र—अतिशायी ज्ञान आदि गुणों का आश्रयी होता है, वह अकेला अर्थात् निर्लिप्त या सहाय-निरपेक्ष होता है।

३६—एकभूत (सू० ३८) :

दुःख जीवों के साथ अग्नि और लोह की भांति लोलीभूत या अन्योन्य प्रविष्ट होता है, इसलिए उसे एकभूत कहा है। जैन साङ्ख्यदर्शन की भांति दुःख को बाह्य नहीं मानता।

३७-३८—प्रतिमा (सू० ३९-४०) :

प्रतिमा शब्द के अनेक अर्थ होते हैं—

१. तपस्या का विशेष मानदण्ड।

२. साधना का विशेष नियम।

३. कायोत्सर्ग।

४. मूर्ति।

५. प्रतिबिंब।

यहां उक्त अर्थों में से प्रतिबिंब का अर्थ ही अधिक संगत प्रतीत होता है। अधर्मप्रतिमा अर्थात् मन पर होनेवाला अधर्म का प्रतिबिंब। यही आत्मा के लिए क्लेश का हेतु बनता है। धर्मप्रतिमा अर्थात् मन पर होनेवाला धर्म का प्रतिबिंब। यही आत्मा के लिए शुद्धि का हेतु बनता है।

३९—एक मन (सू० ४१) :

एक क्षण में मानसिक ज्ञान एक ही होता है—यह सिद्धान्त जैन-दर्शन को आगम-काल से ही मान्य रहा है। नैयायिक-वैशेषिक-दर्शन में भी यह सिद्धान्त सम्मत है। इस सिद्धान्त के समर्थन में दोनों के हेतु भी समान हैं। जैन-दर्शन के अनुसार एक क्षण में दो उपयोग (ज्ञान-व्यापार) एक साथ नहीं होते, इसलिए एक क्षण में मानसिक ज्ञान एक ही होता है। एक आदमी नदी में खड़ा है, नीचे से उसके पैरों को जल की ठंडक का संवेदन हो रहा है और ऊपर से सिर को धूप की उष्णता का संवेदन हो रहा है। इस प्रकार एक व्यक्ति एक ही क्षण में शीत और उष्ण दोनों स्पर्शों का संवेदन करता है, किन्तु वस्तुतः यह सही नहीं है। क्षण और मन की सूक्ष्मता के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि वह एक ही क्षण में शीत और उष्ण दोनों स्पर्शों का संवेदन करता है, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। जिस क्षण में शीत-स्पर्श का अनुभव होता है, उस क्षण में मन शीत-स्पर्श की अनुभूति में ही व्याप्त रहता है, इसलिए उसे उष्ण-स्पर्श की अनुभूति नहीं हो सकती और जिस क्षण में वह उष्ण-स्पर्श की अनुभूति में व्यापृत रहता है, उस क्षण उसे शीत-स्पर्श की अनुभूति नहीं हो सकती।[1]

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २० : एकत्वं च तस्यैकोपयोगत्वात् जीवानाम्।

एक क्षण मे दो ज्ञानों और दो अनुभूतियों के न होने का कारण मन की शक्ति का सीमित विकास होना है[1]। नैयायिक-वैशेषिक दर्शन के अनुसार एक क्षण मे एक ही ज्ञान और एक ही क्रिया होती है, इसलिए मन एक है[2]। न्याय दर्शन के प्रणेता महर्षि गौतम तथा वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद मन की एकता के सिद्धान्त के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मन अणु है[3]। यदि मन अणु नही होता, तो प्रतिक्षण मनुष्य को अनेक ज्ञान होते। वह अणु है, इसलिए वह एक क्षण मे ही इन्द्रिय के साथ सयोग स्थापित कर सकता है[4]। इन्द्रिय के साथ उसका सयोग हुए बिना ज्ञान होता नही, इसलिए वह एक क्षण मे एक ही ज्ञान कर सकता है।

४०—एक वचन (सू० ४२) :

मानसिक ज्ञान की भाति एक क्षण मे एक ही वचन होता है। प्रस्तुत सूत्र के छठे स्थान मे छह असम्भव क्रियाए बतलाई गई है। उनमे तीसरी काल की क्रिया यह है कि एक क्षण मे कोई भी प्राणी दो भाषाए नही बोल सकता[5]। जैन न्याय मे 'स्यात्' शब्द का प्रयोग इसी सिद्धान्त के आधार पर किया गया। वस्तु अनतधर्मात्मक होती है। एक क्षण मे उसके एक धर्म का ही प्रतिपादन किया जा सकता है। शेष अनतधर्म अप्रतिपादित रहते हैं। इसका तात्पर्य यह होता है कि मनुष्य वस्तु के एक पर्याय का प्रतिपादन कर सकता है, किन्तु समग्र वस्तु का प्रतिपादन नही कर सकता। इस समस्या को सुलझाने के लिए 'स्यात्' शब्द का सहारा लिया गया।

'स्यात्' शब्द इस बात का सूचक है कि प्रतिपाद्यमान धर्म को मुख्यता देकर और शेष धर्मों की उपेक्षा करे, तभी वस्तु वाच्य होती है। एक साथ अनेक धर्मों की अपेक्षा से वस्तु अव्यक्तव्य हो जाती है। सप्तभगी का चतुर्थ भग इसी आधार पर बनता है[6]।

४१—शरीर (सू० ४३) :

शरीर पौद्गलिक है। वह जीव की शक्ति के योग मे क्रिया करता है। उसके पाच प्रकार है—

१. औदारिक—अस्थिचर्ममय शरीर।

२. वैक्रिय—विविध रूप निर्माण मे समर्थ शरीर।

३ आहारक—योगशक्ति से प्राप्त शरीर।

४ तैजस—तेजोमय शरीर।

५. कार्मण—कर्ममय शरीर।

इन्हे सचालित करनेवाली जीव की शक्ति को काययोग कहा जाता है। एक क्षण मे काययोग एक ही होता है। उपयोग (ज्ञान का व्यापार) एक क्षण मे दो नही हो सकता, किन्तु काया की प्रवृत्ति एक क्षण में दो हो सकती हैं। यहां उसका निषेध नही है। यहा एक क्षण में दो काययोगो का निषेध है। क्योकि जिस जीव-शक्ति मे औदारिकशरीर का सचालन होता है, उसी से वैक्रियशरीर का सचालन नही हो सकता। उसके लिए कुछ विशिष्ट शक्ति की अपेक्षा होती है। इस दृष्टि से जब एक काययोग सक्रिय होता है, तब दूसरा काययोग क्रियाशील नही हो सकता।

---

१. प्रमाणनयतत्त्वालोकालकार, ४।४६
तद् द्विभेदमपि प्रमाणमात्मीयप्रतिबन्धकापगमविशेषस्वभाव-रूपसामर्थ्यतः प्रतिनियतमर्थमवद्योतयति।

२. (क) न्यायदर्शन, ३।२।६०-६२
ज्ञानायौगपद्यादेकं मनः।
न युगपदनेकक्रियोपलब्धेः।
अलातचक्रदर्शनवत्तदुपलब्धिराशुसञ्चारात्।
(ख) वैशेषिकदर्शन, ३।२।३.
प्रयत्नायौगपद्यात् ज्ञानायौगपद्याच्चैकम्।

३. (क) न्यायदर्शन, ३।२।६२.
तदभावादणु मनः।
(ख) यथोक्तहेतुत्वाच्चाणु।

४. न्यायदर्शन, ३।२।६.
क्रमवृत्तित्वादयुगपद् ग्रहणम्।

५. स्थानांग, ६।५.
एगसमए ण वा दो भासाओ भसित्तए।

६ प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार, ४।१८ :
स्यादवक्तव्यमेवेति युगपद्विधिनिषेधकल्पनया चतुर्थः।

४२—(सू० ४४) :

भगवान् महावीर पुरुषार्थवादी थे। वे उत्थान आदि को कार्य-सिद्धि केलिए आवश्यक मानते थे। आजीवक सम्प्रदाय के आचार्य नियतिवादी थे। वे कार्य-सिद्धि के लिए उत्थान आदि को आवश्यक नही मानते थे और अपने अनुयायीगण को यही पाठ पढ़ाते थे। भगवान् महावीर ने सद्दालपुत्र से पूछा—ये तुम्हारे बर्तन उत्थान आदि से बने हैं या अनुत्थान आदि से ?

इसके उत्तर मे सद्दालपुत्र ने कहा—भंते ! ये बर्तन अनुत्थान आदि से बने हैं। सब कुछ नियत है, इसलिए उत्थान आदि का कोई प्रयोजन नही है[1]। इस पर भगवान ने कहा—सद्दालपुत्र ! कोई व्यक्ति तुम्हारे बर्तन को फोड़ डालता है, उसके साथ तुम कैसा व्यवहार करते हो ?

सद्दालपुत्र—भंते ! मैं उसे दण्डित करता हू।

भगवान्—सद्दालपुत्र ! सब कुछ नियत है, उत्थान आदि का कोई अर्थ नही है, तब तुम उस व्यक्ति को किसलिए दण्डित करते हो[2] ?

इस संवाद से भगवान् का पुरुषार्थवादी दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। उत्थान आदि का शब्दार्थ इस प्रकार है—

उत्थान—उठना, चेष्टा करना।

कर्म—भ्रमण आदि की क्रिया।

बल—शरीर-सामर्थ्य।

वीर्य—जीव की शक्ति, आन्तरिक सामर्थ्य।

पुरुषकार—पौरुष आत्मोत्कर्ष।

पराक्रम—कार्य-निष्पत्ति मे सक्षम प्रयत्न।

४३-४५—ज्ञान, दर्शन, चरित्र (सू० ४५-४७) :

ज्ञान, दर्शन और चरित्र—ये तीनो मोक्ष मार्ग है। उमास्वति ने इसी आधार पर 'सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्ष-मार्ग.' (तत्त्वार्थ सूत्र १।१) यह प्रसिद्ध सूत्र लिखा था। उत्तराध्ययन (२८।२) मे तप को भी मोक्ष का मार्ग बतलाया गया है। यहा उसका उल्लेख नही है। वह वस्तुत: चरित्र का ही एक प्रकार है, इसलिए वह यहां विवक्षित नही है।

४६-४८—समय, प्रदेश, परमाणु (सू० ४८-५०) :

विश्व में दो प्रकार के पदार्थ होते हैं—सूक्ष्म और स्थूल। सापेक्ष दृष्टि से अनेक पदार्थ सूक्ष्म और स्थूल दोनो रूपो मे होते है, किन्तु चरमसूक्ष्म और चरमस्थूल निरपेक्ष दृष्टि से होते हैं। निर्दिष्ट तीन सूत्रों मे चरमसूक्ष्म का निरूपण किया गया है। काल का चरमसूक्ष्म भाग समय कहलाता है। यह काल का अन्तिम खण्ड होता है। इसे फिर खण्डित नही किया जा सकता। वस्तु का चरमसूक्ष्म भाग प्रदेश कहलाता है।

यह वस्तु का अविभक्त अतिम खंड होता है। पुद्गल द्रव्य का चरमसूक्ष्म भाग परमाणु कहलाता है। इसे विभक्त नही किया जा सकता। वैज्ञानिको ने परमाणु का विखण्डन किया है, किन्तु जैन-दृष्टि से उसका विखण्डन नही होता। परमाणु दो प्रकार के होते हैं—निश्चयपरमाणु और व्यवहारपरमाणु[3]।

व्यवहारपरमाणु भी बहुत सूक्ष्म होता है। वह साधारणतया चक्षुगम्य नही होता। उसका विखण्डन हो सकता है, किन्तु निश्चयपरमाणु विखण्डित नहीं हो सकता। भगवती मे चार प्रकार के परमाणु बतलाए गए हैं—द्रव्यपरमाणु, क्षेत्र-परमाणु, कालपरमाणु और भावपरमाणु। इसमें समय को कालपरमाणु कहा गया है[4]।

---

१. उवासगदसाओ, ७।२३,२४।
२. उवासगदसाओ, ७।२५,२६।
३. अनुयोगद्वार, ३९६ : से कि तं परमाणू ? परमाणू दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुहुमे य वावहारिए य।
४. भगवती, २०।४०।

तीसरे स्थान में समय, प्रदेश और परमाणु को अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य, अग्राह्य, अनर्ध, अमध्य, अप्रदेश और अविभाज्य बतलाया गया है[1]।

४६-८४—शब्द,…रूक्ष (सू० ५५-६०) :

निर्दिष्ट सूत्रों (५५-६०) में पुद्गल के लक्षण, कार्य, संस्थान और पर्याय का प्रतिपादन किया गया है। रूप, गंध, रस और स्पर्श—ये चार पुद्गल के लक्षण हैं[2]। शब्द पुद्गल का कार्य है। जैन दर्शन वैशेषिक दर्शन की भांति शब्द को आकाश का गुण व नित्य नहीं मानता। उसके अनुसार पौद्गलिक होने के कारण वह अनित्य है। दूसरे स्थान में शब्द की उत्पत्ति के दो कारण बतलाए गए हैं—संघात और भेद[3]। जब पुद्गल संहति को प्राप्त होते हैं, तब शब्द की उत्पत्ति होती है, जैसे—घंटा का शब्द। जब पुद्गल भेद को प्राप्त होते हैं, तब शब्द की उत्पत्ति होती है, जैसे—बांस के फटने का शब्द।

दीर्घ, ह्रस्व, वृत्त (गेंद की तरह गोल), त्रिकोण, चतुष्कोण, विस्तीर्ण और परिमंडल (वलयाकार)—ये पुद्गल के संस्थान हैं। कृष्ण, नील आदि पुद्गल के लक्षणों का विस्तार है।

८५—मायामृषा (सू० १०७) :

मायामृषा—मायायुक्त असत्य को मायामृषा कहा जाता है। कुछ व्याख्याकारों ने इसका अर्थ वेश बदलकर लोगों को ठगना किया है[4]।

८६-८७—अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी (सू० १२७-१३४) :

काल अनादि अनन्त है। इस दृष्टि से वह निर्विभाग है, किन्तु व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से उसके अनेक वर्गीकरण किए गए हैं। उसका एक वर्गीकरण काल-चक्र है। उसके दो विभाग हैं—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी। इन दोनों के रथ-चक्र के आरों की भांति छह-छह आरे हैं। अवसर्पिणी के छह आरे ये हैं—

१. सुषम-सुषमा—एकान्त सुखमय।
२. सुषमा—सुखमय।
३. सुषम-दुषमा—सुख-दुःखमय।
४. दुषम-सुषमा—दुःख-सुखमय।
५. दुषमा—दुःखमय।
६. दुषम-दुषमा—एकान्त दुःखमय।

उत्सर्पिणी के छह आरे ये हैं—

१. दुषम-दुषमा—एकान्त दुःखमय।
२. दुषमा—दुःखमय।
३. दुषम-सुषमा—दुःख-सुखमय।
४. सुषम-दुषमा—सुख-दुःखमय।
५. सुषमा—सुखमय।
६. सुषम-सुषमा—एकान्त सुखमय।

अवसर्पिणी में वर्ण, गन्ध आदि गुणों की क्रमशः हानि और उत्सर्पिणी में उनकी क्रमशः वृद्धि होती है।

---

१. स्थानांग, ३।३२८-३३५।
२. उत्तराध्ययन, २८।१२।
३. स्थानांग, २।२२०।
४. स्थानांगवृत्ति, पत्र २४ :
मायया वा सह मृषा मायामृषा प्राकृतत्वान्मायामोसं, दोषद्वययोग, इदं च मानमृषादिसंयोगदोषोपलक्षणं, वेषान्तरकरणेन लोकप्रतारणमित्यन्ये।

८८—नारकीय (सू० १४१) :

(१।२१३) मे चौबीस दडको का उल्लेख है। दण्डक का अर्थ है—समान जाति वाले जीवों का वर्गीकरण। ससार के सभी जीवो को चौबीस वर्गों मे विभक्त किया गया है। यहा उन चौबीस वर्गों के नाम दिए गए है।

८९-९०—भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक (सू० १६५-१६६) :

ससारी जीव दो प्रकार के होते हैं—

१ भवसिद्धिक—जिसमे मुक्त होने की योग्यता हो।

२. अभवसिद्धिक—जिसमे मुक्त होने की योग्यता न हो।

भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक की भेद रेखा अनादि है[1]।

९१-९२—कृष्ण-पाक्षिक, शुक्ल-पाक्षिक (सू० १८६-१८७) :

मोक्ष की प्रक्रिया बहुत लम्बी है, उसमे आनेवाली बाधाओ को अनेक काल-चरणों मे पार किया जाता है। कृष्ण और शुक्ल—ये दोनो पक्ष उसी शृखला के काल-चरण है। जब तक जिस जीव की मोक्ष की अवधि निश्चित नहीं होती, तब तक वह कृष्ण-पक्ष की कोटि मे होता है और उस अवधि की निश्चितता होने पर जीव शुक्ल-पक्ष की कोटि मे आ जाता है। इसी कालावधि के आधार पर प्रस्तुत दोनो पक्षो की व्याख्या की गई है। जो जीव अपार्ध पुद्गलपरावर्त तक संसार मे रहकर मुक्त होना है, वह शुक्ल-पाक्षिक और इससे अधिक अवधि तक ससार मे रहनेवाला कृष्ण-पाक्षिक कहलाता है[2]।

यद्यपि अपार्ध पुद्गल परावर्त बहुत लम्बा काल है, फिर भी निश्चितता के कारण उसका कम महत्त्व नही है। शुक्ल-पक्ष की स्थिति प्राप्त होने पर ही आध्यात्मिक विकास के द्वार खुलते हैं, इस दृष्टि मे भी उसका बहुत महत्त्व है।

९३-९८—लेश्या (सू० १९१-१९६) :

विचार और पुद्गल द्रव्य मे गहरा सम्बन्ध है। जिस प्रकार के पुद्गल गृहीत होते है, उसी प्रकार की विचारधारा का निर्माण होता है। हर प्राणी के आस-पास पुद्गलो का एक वलय होता है। उनमे वर्ण, गध, रस और स्पर्श होते है, और वे प्रशस्त एव अप्रशस्त दोनो प्रकार के होते हैं। प्रशस्त वर्ण, गध, रस और स्पर्शवाले पुद्गल प्रशस्त विचार उत्पन्न करते है तथा अप्रशस्त वर्ण, गध, रस और स्पर्श वाले पुद्गल अप्रशस्त विचार उत्पन्न करते है। लेश्या को उत्पन्न करनेवाले पुद्गलो में गध आदि के होने पर भी उनमे विशेषता वर्णों (रगो) की होती है, ऐसा उनके नामकरण से प्रतीत होता है। लेश्याओं का नामकरण रगो के आधार पर किया गया है। रगो का हमारे जीवन तथा चिंतन पर बहुत बडा प्रभाव है। इस तथ्य को प्राचीन एव आधुनिक सभी तत्त्वविदो और मानसशास्त्रियो ने मान्यता दी है। उक्त विवरण के सदर्भ मे हम लेश्या को इस भाषा मे बाध सकते है—विचारो को उत्पन्न करनेवाले पुद्गल लेश्या कहलाते हैं। उन पुद्गलो से उत्पन्न होनेवाले विचार भी लेश्या कहलाते है। हमारे शरीर का वर्ण तथा शरीर के आस-पास निर्मित होनेवाला पौद्गलिक आभा-वलय भी लेश्या कहलाता है। इस प्रकार अनेक अर्थ लेश्या शब्द के द्वारा अभिहित किए गए है।

प्राचीन आचार्यों ने योग परिणाम को लेश्या कहा है[3]।

---

१. अनुयोगद्वार, २८८
अणाइ-पारिणामिए—धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए अद्धासमए लोए अलोए भवसिद्धिया अभवसिद्धिया।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र २६
कृष्णपाक्षिकेतरयोर्लक्षण—
"जेसिमवड्ढो पोग्गलपरियट्टो सेसओ उ ससारो।
ते सुक्कपक्खिया खलु अहिए पुण किण्हपक्खीआ॥"

३ स्थानागवृत्ति, पत्र २९
लिश्यते प्राणी कर्मणा यया सा लेश्या, यदाह—"श्लेष इव वर्णबन्धस्य कर्मबन्धस्थितिविधात्र्यः" तथा
कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्, परिणामो य आत्मन।
स्फटिकस्येव तत्राय, लेश्याशब्द प्रयुज्यते॥
इति, इय च शरीरनामकर्मपरिणतिरूपा योगपरिणतिरूपत्वात्, योगस्य च शरीरनामकर्मपरिणतिविशेषत्वात् यत उक्त प्रज्ञापनावृत्तिकृता—'योगपरिणामो लेश्या'।

योग तीन हैं—काययोग, वचनयोग और मनोयोग। लेश्या के पुद्गलों का ग्रहणात्मक सम्बन्ध काययोग से होता है, क्योंकि सभी प्रकार की पुद्गल-वर्गणाओं का ग्रहण और परिणमन उसी (काययोग) के द्वारा होता है और उनका प्रभावात्मक सम्बन्ध मनोयोग से होता है, क्योंकि काययोग द्वारा गृहीत पुद्गल मन के विचारों को प्रभावित करते हैं। इस परिभाषा के अनुसार विचारो की उत्पत्ति मे निमित्त बननेवाले पुद्गल तथा उनसे उत्पन्न होनेवाले विचार ही लेश्या कहलाते हैं। किंतु भगवती, प्रज्ञापना आदि सूत्रो से शारीरिक वर्ण और आभा-वलय व तैजस-वलय भी लेश्या के रूप में फलित होते हैं, अत. 'योगपरिणामो लेश्या'; यह लेश्या की सापेक्ष परिभाषा है, किन्तु परिपूर्ण परिभाषा नहीं है। इस तथ्य को स्मृति मे रखना आवश्यक है—प्रशस्त और अप्रशस्त पुद्गलो के द्वारा हमारी विचार-परिणति होती है और शरीर के आसपास निर्मित आभा-वलय हमारी विचार-परिणति का प्रतिबिंब होता है।

प्रस्तुत सूत्र के तीसरे स्थान मे लेश्या के गंध आदि के आधार पर दो वर्गीकरण किए गए हैं। प्रथम वर्गीकरण मे प्रथम तीन लेश्याए है—कृष्ण, नील और कापोत। दूसरे वर्गीकरण में अग्रिम तीन लेश्याएं हैं—तेजः, पद्म और शुक्ल। देखिए यन्त्र—

प्रथम वर्गीकरण	द्वितीय वर्गीकरण
अनिष्ट गध	इष्ट गध
दुर्गतिगामिनी	सुगतिगामिनी
सक्लिष्ट	असक्लिष्ट
अमनोज्ञ	मनोज्ञ
अविशुद्ध	विशुद्ध
अप्रशस्त	प्रशस्त
शीत-रूक्ष	स्निग्ध-उष्ण[1]

९९-११३—सिद्ध (सू० २१४-२२८) :

५२वे सूत्र मे सिद्ध की एकता का प्रतिपादन किया गया है और यहां उनके पन्द्रह प्रकार बतलाए गए हैं। जीव दो प्रकार के होते हैं—सिद्ध और ससारी[2]। कर्मबंधन से बधे हुए जीव ससारी और कर्ममुक्त जीव सिद्ध कहलाते है।

सिद्धों में आत्मा का पूर्ण विकास हो चुकता है, अत. आत्मिक विकास की दृष्टि से उनमें कोई भेद नही है। इस अभेद की दृष्टि से कहा गया है कि सिद्ध एक है। उनमे भेद का प्रतिपादन पूर्वजन्म के विविध सम्बन्ध-सूत्रों के आधार पर किया गया है—

१. तीर्थसिद्ध—जो तीर्थ की स्थापना के पश्चात् तीर्थ मे दीक्षित होकर सिद्ध होते हैं, जैसे ऋषभदेव के गणधर ऋषभसेन आदि।

२. अतीर्थसिद्ध—जो तीर्थ की स्थापना के पहले सिद्ध होते हैं, जैसे—मरुदेवी माता।

३. तीर्थंकरसिद्ध—जो तीर्थंकर के रूप मे सिद्ध होते है, जैसे—ऋषभ आदि।

४. अतीर्थंकरसिद्ध—जो सामान्य केवली के रूप मे सिद्ध होते हैं।

५. स्वयबुद्धसिद्ध—जो स्वय बोधि प्राप्त कर सिद्ध होते हैं।

६ प्रत्येकबुद्धसिद्ध—जो किसी एक बाह्य निमित से प्रबुद्ध होकर सिद्ध होते है।

७. बुद्धबोधितसिद्ध—जो आचार्य आदि के द्वारा बोधि प्राप्त कर सिद्ध होते है।

---

१. स्थानांग, ३।५१५,५१६।

२. उत्तराध्ययन, ३६।४८।
संसारत्था य सिद्धा य।
दुविहा जीवा वियाहिया।

८. स्त्रीलिङ्गसिद्ध—जो स्त्री के शरीर से सिद्ध होते हैं।

९. पुरुषलिङ्गसिद्ध—जो पुरुष के शरीर से सिद्ध होते हैं।

१०. नपुंसकलिङ्गसिद्ध—जो कृत नपुंसक के शरीर से सिद्ध होते हैं।

११. स्वलिङ्गसिद्ध—जो निर्ग्रन्थ के वेश में सिद्ध होते हैं।

१२. अन्यलिङ्गसिद्ध—जो निर्ग्रन्थेतर भिक्षु के वेश में सिद्ध होते हैं।

१३. गृहलिङ्गसिद्ध—जो गृहस्थ के वेश में सिद्ध होते हैं।

१४. एकसिद्ध—जो एक समय मे एक सिद्ध होता है।

१५. अनेकसिद्ध—जो एक समय मे दो से लेकर उत्कृष्टतः एक सौ आठ तक एक साथ सिद्ध होते हैं।

इन पन्द्रह भेदो के छह वर्ग बनते हैं। प्रथम वर्ग से यह ध्वनित होता है कि आत्मिक निर्मलता प्राप्त हो तो संघबद्धता और संघमुक्तता—दोनों अवस्थाओ मे सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

दूसरे वर्ग की ध्वनि यह है कि आत्मिक निर्मलता प्राप्त होने पर हर व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर सकता है, फिर वह धर्म-संघ का नेता हो या उसका अनुयायी।

तीसरे वर्ग का आशय यह है कि बोधि की प्राप्ति होने पर सिद्धि प्राप्त की जा सकती है, फिर वह (बोधि) किसी भी प्रकार से प्राप्त हुई हो।

चौथे वर्ग का हार्द यह है कि स्त्री और पुरुष दोनों शरीरो से यह सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

पांचवे वर्ग से यह ध्वनित होता है कि आत्मिक निर्मलता और वेशभूषा का घनिष्ठ सम्बन्ध नही है। साधना की प्रखरता प्राप्त होने पर किसी भी वेश मे सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

छठा वर्ग सिद्ध होने वाले जीवों की सख्या और समय से सम्बद्ध है।

वेदान्त का अभिमत यह है कि मुक्तजीव ब्रह्म के साथ एक-रूप हो जाता है, इसलिए मुक्तावस्था मे सख्याभेद नही होता। उपनिषद् का एक प्रसग है—

महर्षि नारद ने सनत्कुमार से पूछा—मुक्त जीव किसमे प्रतिष्ठित है?

सनत्कुमार ने कहा—वह स्वय की महिमा मे अर्थात् स्वरूप मे प्रतिष्ठित है[1]।

इसका तात्पर्य यह है कि वह ब्रह्म के साथ एकरूप है। जैन-दर्शन आत्म-स्वरूप की दृष्टि से सिद्धों मे भेद का प्रतिपादन नही करता, किन्तु सख्या की दृष्टि से उनकी अनेकता का प्रतिपादन करता है। जैन दर्शन के अनुसार मुक्तजीवों मे कोई वर्गभेद नही है, जिससे कि एक कोई आत्मा प्रतिष्ठापक बनी रहे और दूसरी सब आत्माएं उसमे प्रतिष्ठित हो जाएं। एक ब्रह्म या ईश्वर हो तथा दूसरी मुक्त आत्माएं उसमे विलीन हो, यह सम्मत नही है। सब मुक्त आत्माओ का स्वतंत्र अस्तित्व है। उनकी समानता मे कोई अन्तर नही है।

गणधर गौतम ने भगवान् महावीर से पूछा—भगवन्! सिद्ध कहा प्रतिष्ठित होते हैं?

भगवान् ने कहा—मुक्तजीव लोक के अतिम भाग मे प्रतिष्ठित होते हैं[2]।

एक मुक्तजीव दूसरे मुक्तजीव मे प्रतिष्ठित नही होता, इसीलिए भगवान् ने अपने उत्तर मे उनकी क्षेत्रीय प्रतिष्ठा का उल्लेख किया है।

---

१. छान्दोग्य उपनिषद्, ७।२४।१ :
स भगव कस्मिन् प्रतिष्ठित इति। स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति।

२. ओवाइय, सूत्र १६५ :
कहिं सिद्धा पइट्ठिया? (गाथा १)
लोयग्गे य पइट्ठिया। (गाथा २)

बीअं ठाण

द्वितीय स्थान

आमुख

प्रस्तुत स्थान मे दो की सख्या से सबद्ध विषय वर्गीकृत है। जैन न्याय का तर्क है कि जो सार्थक शब्द होता है, वह सप्रतिपक्ष होता है। इसका आधार प्रस्तुत स्थान का पहला सूत्र है। इसमे बताया गया है—

"जदत्थि ण लोगे त सव्व दुपओआर"

जैनदर्शन द्वैतवादी है। उसके अनुसार चेतन और अचेतन दो मूल तत्त्व हैं। शेष सब इन्हीं के अवान्तर प्रकार है। जैनदर्शन अनेकान्तवादी है। इसलिए वह केवल द्वैतवादी नहीं है। वह अद्वैतवादी भी है। उसकी दृष्टि मे केवल द्वैत और केवल अद्वैत-वाद की सगति नहीं है। इन दोनो की सापेक्ष सगति है। कोई भी जीव चैतन्य की मर्यादा से मुक्त नहीं है। अत चैतन्य की दृष्टि से जीव एक है। अचैतन्य की दृष्टि से अजीव भी एक है। जीव या अजीव कोई भी द्रव्य अस्तित्व की मर्यादा से मुक्त नहीं है। अत अस्तित्व की दृष्टि से द्रव्य एक है। इस सग्रहनय से अद्वैत सत्य है।

चेतन मे अचैतन्य और अचेतन मे चैतन्य का अत्यन्ताभाव है। इस दृष्टि से द्वैत सत्य है।

पहले स्थान मे अद्वैत और प्रस्तुत स्थान मे द्वैत का प्रतिपादन है। पहले स्थान मे उद्देशक नहीं है। इसमे चार उद्देशक है। आकार मे भी यह पहले से बडा है।

प्रस्तुत स्थान का प्रथम सूत्र सम्पूर्ण स्थान की सक्षिप्त रूपरेखा है। शेष प्रतिपादन उसी का विस्तार है। उदाहरण के लिए दो से सैंतीसवे सूत्र तक क्रियाओं का वर्गीकरण है। वह प्रथम सूत्र के आस्रव का विस्तार है। इसी प्रकार अन्य विषयो की योजना की जा सकती है।

मोक्ष के साधनों के विषय मे अनेक धारणाए प्रचलित है। कुछ दार्शनिक विद्या को मोक्ष का साधन मानते है, तो कुछ दार्शनिक आचरण को। जैनदर्शन का दृष्टिकोण अनेकान्तवादी है, इसलिए वह न केवल विद्या को मोक्ष का साधन मानता है और न केवल आचरण को। वह दोनों के समन्वितरूप को मोक्ष का साधन मानता है[1]। कुछ विद्वानों का मत है कि जैनदर्शन का अपना कुछ नही है। उसने दूसरे दर्शनों के सिद्धान्तों का समन्वय कर अपने दर्शन का प्रसाद खडा किया है। जैनदर्शन का आकार-प्रकार देखबे पर इस प्रकार का मत फलित होना बहुत कठिन नही है। किन्तु यह वस्तु-सत्य से परे है। कोई भी दर्शन सर्वात्मना दूसरों का ऋणी होकर अपने अस्तित्व को मौलिकता व महानता प्रदान नही कर सकता। जैनदर्शन का जगत् के अध्ययन का अपना मौलिक दृष्टिकोण है। उसका नाम अनेकान्त है। उस दृष्टिकोण के कारण वह विरोधी प्रतीत होने वाली विभिन्न विचारधाराओं का समन्वय कर सकता है, करता है और उसने अतीत मे ऐसा किया है। निष्कर्ष की भाषा मे कहा जा सकता है कि जैनदर्शन के अनेकान्तवादी दृष्टिकोण से अन्य दर्शनो के सिद्धान्तों का समन्वय हो सकता है और हुआ है।

भगवान् महावीर की दृष्टि मे सारी समस्याओं का मूल था हिसा और परिग्रह। उनका दृढ अभिमत था कि जो व्यक्ति हिंसा और परिग्रह की वास्तविकता को नही जानता, वह न धर्म सुन सकता है, न बोधि को प्राप्त कर सकता है और न सत्य का साक्षात्कार ही कर सकता है[2]।

हिंसा और परिग्रह का त्याग करने पर ही व्यक्ति सही अर्थ मे धर्म सुनता है, बोधि को प्राप्त करता है और सत्य का अनुभव करता है[3]।

आगम-साहित्य मे प्रमाण के दो वर्गीकरण मिलते है—एक स्थानांग और दूसरा नदी का। स्थानाग का वर्गीकरण

---

१. २।४०

२. २।४१-५१

३ २।५२-६२

नंदी के वर्गीकरण से प्राचीन प्रतीत होता है[1]। इसमें सांव्यवहारिकप्रत्यक्ष का उल्लेख नहीं है। प्रत्यक्ष के दो प्रकार निर्दिष्ट है—केवलज्ञान प्रत्यक्ष और नो-केवलज्ञान प्रत्यक्ष।

नो-केवलज्ञान प्रत्यक्ष के दो प्रकार हैं—अवधिज्ञान और मन पर्यवज्ञान। नंदी के अनुसार प्रत्यक्ष के दो प्रकार ये हैं—इन्द्रिय प्रत्यक्ष और नो-इन्द्रिय प्रत्यक्ष। नो-इन्द्रिय प्रत्यक्ष के तीन प्रकार है—अवधिज्ञान, मन.पर्यवज्ञान और केवलज्ञान[2]।

स्थानांग के केवलज्ञान प्रत्यक्ष और नो-केवलज्ञान प्रत्यक्ष इन दोनो का समावेश नंदी के नो-इन्द्रिय प्रत्यक्ष मे होता है। इन्द्रिय प्रत्यक्ष का अभ्युपगम जैनप्रमाण के क्षेत्र मे उत्तरकालीन विकास है। उत्तरवर्ती जैन तर्कशास्त्रों मे इसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

स्थानांग सूत्र सख्या-प्रधान होने के कारण सकलनात्मक है। इसलिए इसमे तत्त्व, आचार, क्षेत्र, काल आदि अनेक विषय निरूपित हैं। कहीं अतिरिक्त सख्या का दो में प्रकारांतर से निवेश किया गया है। उदाहरण के लिए आचार के प्रकार प्रस्तुत किए जा सकते हैं। आचार के पांच प्रकार है—ज्ञानआचार, दर्शनआचार, चरित्रआचार, तपआचार और वीर्य-आचार। प्रस्तुत स्थान मे इनका निरूपण इस प्रकार है[3]—

नो-ज्ञानाचार के दो प्रकार—दर्शनाचार, नो-दर्शनाचार। नो-दर्शनाचार के दो प्रकार—चरित्राचार, नो-चरित्राचार। नो-चरित्राचार के दो प्रकार—तपआचार, वीर्यआचार।

विविध विषयों के अध्ययन की दृष्टि से यह स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

---

१ २।८६-१०६
२ नदी ३-६
३. २।२३६-२४२

बीअं ठाणं : पढमो उद्देसो

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
दुपओआर-पदं	**द्विपदावतार-पदम्**	**द्विपदावतार-पद**
१. जदत्थि णं लोगे तं सव्वं दुपओआरं, तं जहा—	यदस्ति लोके तत् सर्वं द्विपदावतारम्, तद्यथा—	१. लोक मे जो कुछ है, वह सब द्विपदावतार [दो-दो पदो मे अवतरित] होता है,—
जीवच्चेव अजीवच्चेव।	जीवाश्चैव अजीवाश्चैव।	जीव और अजीव।
तसच्चेव थावरच्चेव।	त्रसाश्चैव स्थावराश्चैव।	त्रस और स्थावर।
सजोणियच्चेव अजोणियच्चेव।	सयोनिकाश्चैव अयोनिकाश्चैव।	सयोनिक और अयोनिक।
साउयच्चेव अणाउयच्चेव।	सायुष्काश्चैव अनायुष्काश्चैव।	आयु-सहित और आयु-रहित।
सइंदियच्चेव अणिंदियच्चेव।	सेन्द्रियाश्चैव अनिन्द्रियाश्चैव।	इन्द्रिय-सहित और इन्द्रिय-रहित।
सवेयगा चेव अवेयगा चेव।	सवेदकाश्चैव अवेदकाश्चैव।	वेद[1]-सहित और वेद-रहित।
सरूवी चेव अरूवी चेव।	सरूपिणश्चैव अरूपिणश्चैव।	रूप[2]-सहित और रूप-रहित।
सपोग्गला चेव अपोग्गला चेव।	सपुद्गलाश्चैव अपुद्गलाश्चैव।	पुद्गल-सहित और पुद्गल-रहित।
संसारसमावण्णगा चेव असंसारसमावण्णगा चेव।	ससारसमापन्नकाश्चैव असंसारसमापन्नकाश्चैव।	ससार समापन्नक [ससारी] अससार समापन्नक [सिद्ध]।
सासया चेव असासया चेव।	शाश्वताश्चैव अशाश्वताश्चैव।	शाश्वत और अशाश्वत।
आगासे चेव णोआगासे चेव।	आकाश चैव नो-आकाश चैव।	आकाश और नो-आकाश[3]।
धम्मे चेव अधम्मे चेव।	धर्मश्चैव अधर्मश्चैव।	धर्म[4] और अधर्म[5]।
बंधे चेव मोक्खे चेव।	बधश्चैव मोक्षश्चैव।	बन्ध और मोक्ष।
पुण्णे चेव पावे चेव।	पुण्य चैव पाप चैव।	पुण्य और पाप।
आसवे चेव संवरे चेव।	आश्रवश्चैव सवरश्चैव।	आस्रव और सवर।
वेयणा चेव णिज्जरा चेव।	वेदना चैव निर्जरा चैव।	वेदना और निर्जरा।

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
किरिया-पदं	**क्रिया-पदम्**	**क्रिया-पद**
२. दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	२. क्रिया दो प्रकार की है—
जीवकिरिया चेव,	जीवक्रिया चैव,	जीव क्रिया—जीव की प्रवृत्ति।
अजीवकिरिया चेव।	अजीवक्रिया चैव।	अजीव क्रिया—पुद्गल समुदाय का कर्म रूप मे परिणत होना[6]।

३. जीवकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	जीवक्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३. जीव क्रिया दो प्रकार की है—
सम्मत्तकिरिया चेव।	सम्यक्त्वक्रिया चैव,	सम्यक्त्व क्रिया—सम्यक् क्रिया।
मिच्छत्तकिरिया चेव।	मिथ्यात्वक्रिया चैव।	मिथ्यात्व क्रिया—मिथ्या क्रिया[8]।
४. अजीवकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	अजीवक्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	४. अजीव क्रिया दो प्रकार की है—
इरियावहिया चेव,	ऐर्यापथिकी चैव,	ऐर्यापथिकी—वीतराग के होनेवाला कर्मबन्ध।
संपराइगा चेव।	सापरायिकी चैव।	सापरायिकी—कषाय-युक्त जीव के होने वाला कर्मबन्ध।
५. दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	५. क्रिया दो प्रकार की है—
काइया चेव,	कायिकी चैव,	कायिक—काया की प्रवृत्ति।
अहिगरणिया चेव।	आधिकरणिकी चैव।	आधिकरणिकी—शस्त्र आदि की प्रवृत्ति[9]।
६. काइया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	कायिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	६. कायिकी क्रिया दो प्रकार की है—
अणुवरयकायकिरिया चेव,	अनुपरतकायक्रिया चैव,	अनुपरतकायक्रिया—विरति-रहित व्यक्ति की काया की प्रवृत्ति।
दुपउत्तकायकिरिया चेव।	दुष्प्रयुक्तकायक्रिया चैव।	दुष्प्रयुक्तकायक्रिया—इन्द्रिय और मन के विषयो म आसक्त मुनि की काया की प्रवृत्ति[10]।
७. अहिगरणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	आधिकरणिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	७. आधिकरणिकी क्रिया दो प्रकार की है—
संजोयणाधिकरणिया चेव,	सयोजनाधिकरणिकी चैव,	सयोजनाधिकरणिकी—पूर्व-निर्मित भागो को जोड़कर शस्त्र-निर्माण करने की क्रिया।
णिव्वत्तणाधिकरणिया चेव।	निर्वर्तनाधिकरणिकी चैव।	निर्वर्तनाधिकरणिकी—नये सिरे से शस्त्र निर्माण करने की क्रिया[11]।
८. दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	८. क्रिया दो प्रकार की है—
पाओसिया चेव,	प्रादोषिकी चैव,	प्रादोषिकी—मात्सर्य की प्रवृत्ति।
पारियावणिया चेव।	पारितापनिकी चैव।	पारितापनिकी—परिताप देने की प्रवृत्ति[12]।

९. पाओसिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	प्रादोषिकी क्रिया द्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	९. प्रादोषिकी क्रिया दो प्रकार की है—
जीवपाओसिया चेव,	जीवप्रादोषिकी चैव,	जीवप्रादोषिकी—जीव के प्रति होनेवाला मात्सर्य।
अजीवपाओसिया चेव।	अजीवप्रादोषिकी चैव।	अजीवप्रादोषिकी—अजीव के प्रति होनेवाला मात्सर्य[११]।
१०. पारियावणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	पारितापनिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	१०. पारितापनिकी क्रिया दो प्रकार की है—
सहत्थपारियावणिया चेव,	स्वहस्तपारितापनिकी चैव,	स्वहस्तपारितापनिकी—अपने हाथ से स्वयं या दूसरे को परिताप देना।
परहत्थपारियावणिया चेव।	परहस्तपारितापनिकी चैव।	परहस्तपारितापनिकी—दूसरे के हाथ से स्वयं या दूसरे को परिताप दिलाना[१२]।
११. दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	११. क्रिया दो प्रकार की है—
पाणातिवायकिरिया चेव,	प्राणातिपातक्रिया चैव,	प्राणातिपातक्रिया—जीव-वध से होनेवाला कर्म-बंध।
अपच्चक्खाणकिरिया चेव।	अप्रत्याख्यानक्रिया चैव।	अप्रत्याख्यानक्रिया—अविरति से होनेवाला कर्म-बंध[१३]।
१२. पाणातिवायकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	प्राणातिपातक्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	१२. प्राणातिपातक्रिया दो प्रकार की है—
सहत्थपाणातिवायकिरिया चेव,	स्वहस्तप्राणातिपात क्रिया चैव,	स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया—अपने हाथ से अपने या दूसरे के प्राणों का अतिपात करना।
परहत्थपाणातिवायकिरिया चेव।	परहस्तप्राणातिपातक्रिया चैव।	परहस्तप्राणातिपातक्रिया—दूसरे के हाथ से अपने या दूसरे के प्राणों का अतिपात करवाना[१४]।
१३. अपच्चक्खाणकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	अप्रत्याख्यानक्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	१३. अप्रत्याख्यानक्रिया दो प्रकार की है—
जीवअपच्चक्खाणकिरिया चेव,	जीवअप्रत्याख्यानक्रिया चैव,	जीवअप्रत्याख्यानक्रिया—जीवविषयक अविरति से होनेवाला कर्म-बंध।
अजीवअपच्चक्खाणकिरिया चेव।	अजीवअप्रत्याख्यानक्रिया चैव।	अजीवअप्रत्याख्यानक्रिया—अजीवविषयक अविरति से होनेवाला कर्म-बंध[१५]।
१४. दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	१४. क्रिया दो प्रकार की है—

प्राकृत	संस्कृत	हिन्दी
आरंभिया चेव,	आरम्भिकी चैव,	आरंभिकी—उपमर्दन की प्रवृत्ति।
पारिग्गहिया चेव।	पारिग्रहिकी चैव।	पारिग्रहिकी—परिग्रह में प्रवृत्ति[18]।
१५ आरंभिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	आरम्भिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	१५. आरंभिकी क्रिया दो प्रकार की है—
जीवआरंभिया चेव,	जीवारम्भिकी चैव,	जीव-आरंभिकी—जीव के उपमर्दन की प्रवृत्ति।
अजीवआरंभिया चेव।	अजीवारम्भिकी चैव।	अजीव-आरंभिकी—जीवकलेवर, जीवाकृति आदि के उपमर्दन की प्रवृत्ति[19]।
१६. ° पारिग्गहिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	पारिग्रहिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	१६. पारिग्रहिकी क्रिया दो प्रकार की है—
जीवपारिग्गहिया चेव,	जीवपारिग्रहिकी चैव,	जीवपारिग्रहिकी—सजीव परिग्रह मे प्रवृत्ति।
अजीवपारिग्गहिया चेव।°	अजीवपारिग्रहिकी चैव।	अजीवपारिग्रहिकी—निर्जीव परिग्रह मे प्रवृत्ति[20]।
१७ दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	द्वे क्रिये, प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	१७. क्रिया दो प्रकार की है—
मायावत्तिया चेव,	मायाप्रत्यया चैव,	मायाप्रत्यया—माया से होनेवाली प्रवृत्ति।
मिच्छादंसणवत्तिया चेव।	मिथ्यादर्शनप्रत्यया चैव।	मिथ्यादर्शनप्रत्यया—मिथ्यादर्शन से होनेवाली प्रवृत्ति[21]।
१८. मायावत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	मायाप्रत्यया क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	१८. मायाप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की है—
आयभाववंकणता चेव,	आत्मभाववक्रता चैव,	आत्मभाव वञ्चना—अप्रशस्त आत्मभाव को प्रशस्त प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति।
परभाववंकणता चेव।	परभाववक्रता चैव।	परभाव वञ्चना—कूटलेख आदि के द्वारा दूसरों को छलने की प्रवृत्ति[22]।
१९ मिच्छादंसणवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	१९. मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की है—
ऊणाइरियमिच्छादंसणवत्तिया चेव,	ऊनातिरिक्तमिथ्यादर्शनप्रत्यया चैव,	ऊनातिरिक्तमिथ्यादर्शनप्रत्यया—जिसमे तत्त्व के स्वरूप का न्यून या अधिक स्वीकार हो, जैसे शरीरव्यापी आत्मा को अंगुष्ठ प्रमाण या सर्वव्यापी स्वीकार करना।

तव्वइरित्तमिच्छादंसणवत्तिया चेव।	तद्व्यतिरिक्तमिथ्यादर्शनप्रत्यया चैव।	तद्व्यतिरिक्तमिथ्यादर्शनप्रत्यया—सद्भूत पदार्थ के अस्तित्व का अस्वीकार, जैसे आत्मा है ही नहीं[२३]।
२०. **दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—**	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	२०. क्रिया दो प्रकार की है—
दिट्ठिया चेव,	दृष्टिजा चैव,	दृष्टिजा—देखने के लिए होनेवाली रागात्मक प्रवृत्ति।
पुट्ठिया चेव।	स्पृष्टिजा चैव।	स्पृष्टिजा—स्पर्शन के लिए होनेवाली रागात्मक प्रवृत्ति[२४]।
२१ **दिट्ठिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—**	दृष्टिजा क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	२१. दृष्टिजा क्रिया दो प्रकार की है—
जीवदिट्ठिया चेव,	जीवदृष्टिजा चैव,	जीवदृष्टिजा—सजीव पदार्थों को देखने के लिए होनेवाली रागात्मक प्रवृत्ति।
अजीवदिट्ठिया चेव।	अजीवदृष्टिजा चैव।	अजीवदृष्टिजा—निर्जीव पदार्थों को देखने के लिए होनेवाली रागात्मक प्रवृत्ति[२५]।
२२ **°पुट्ठिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—**	स्पृष्टिजा क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	२२. स्पृष्टिजा क्रिया दो प्रकार की है—
जीवपुट्ठिया चेव,	जीवस्पृष्टिजा चैव,	जीवस्पृष्टिजा—जीव के स्पर्शन के लिए होनेवाली रागात्मक प्रवृत्ति।
अजीवपुट्ठिया चेव।°	अजीवस्पृष्टिजा चैव।	अजीवस्पृष्टिजा—अजीव के स्पर्शन के लिए होनेवाली रागात्मक प्रवृत्ति[२६]।
२३. **दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—**	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	२३. क्रिया दो प्रकार की है—
पाडुच्चिया चेव,	प्रातीत्यिकी चैव,	प्रातीत्यिकी—बाह्यवस्तु के सहारे होनेवाली प्रवृत्ति।
सामंतोवणिवाइया चेव।	सामन्तोपनिपातिकी चैव।	सामन्तोपनिपातिकी—अपने पास की वस्तुओं के बारे में जनसमुदाय की प्रतिक्रिया सुनने पर होनेवाली प्रवृत्ति[२७]।
२४. **पाडुच्चिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—**	प्रातीत्यिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	२४. प्रातीत्यिकी क्रिया दो प्रकार की है—
जीवपाडुच्चिया चेव,	जीवप्रातीत्यिकी चैव,	जीवप्रातीत्यिकी—जीव के सहारे होनेवाली प्रवृत्ति।
अजीवपाडुच्चिया चेव।	अजीवप्रातीत्यिकी चैव।	अजीवप्रातीत्यिकी—अजीव के सहारे होनेवाली प्रवृत्ति[२८]।

प्राकृत	संस्कृत	हिन्दी
२५. **•सामंतोवणिवाइया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—**	सामन्तोपनिपातिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	२५. सामन्तोपनिपातिकी क्रिया दो प्रकार की है—
जीवसामंतोवणिवाइया चेव,	जीवसामन्तोपनिपातिकी चैव,	जीवसामन्तोपनिपातिकी—अपने पास की सजीव वस्तुओ के बारे मे जनसमुदाय की प्रतिक्रिया सुनने पर होनेवाली प्रवृत्ति।
अजीवसामंतोवणिवाइया चेव।°	अजीवसामन्तोपनिपातिकी चैव।	अजीवसामन्तोपनिपातिकी—अपने पास की निर्जीव वस्तुओ के बारे मे जन-समुदाय की प्रतिक्रिया सुनने पर होनेवाली प्रवृत्ति[९]।
२६. **दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—**	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	२६. क्रिया दो प्रकार की है—
साहत्थिया चेव,	स्वाहस्तिकी चैव,	स्वाहस्तिकी—अपने हाथ से होनेवाली क्रिया।
णेसत्थिया चेव।	नैसृष्टिकी चैव।	नैसृष्टिकी—किसी वस्तु के फेंकने से होने-वाली क्रिया[१०]।
२७. **साहत्थिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—**	स्वाहस्तिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	२७. स्वाहस्तिकी क्रिया दो प्रकार की है—
जीवसाहत्थिया चेव,	जीवस्वाहस्तिकी चैव,	जीवस्वाहस्तिकी—अपने हाथ मे रहे हुए जीव के द्वारा किसी दूसरे जीव को मारने की क्रिया।
अजीवसाहत्थिया चेव।	अजीवस्वाहस्तिकी चैव।	अजीवस्वाहस्तिकी—अपने हाथ मे रहे हुए निर्जीव शस्त्र के द्वारा किसी दूसरे जीव को मारने की क्रिया[११]।
२८. **•णेसत्थिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—**	नैसृष्टिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	२८. नैसृष्टिकी क्रिया दो प्रकार की है—
जीवणेसत्थिया चेव,	जीवनैसृष्टिकी चैव,	जीवनैसृष्टिकी—जीव को फेंकने से होने-वाली क्रिया।
अजीवणेसत्थिया चेव।°	अजीवनैसृष्टिकी चैव।	अजीवनैसृष्टिकी—अजीव को फेंकने से होनेवाली क्रिया[१२]।
२९. **दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—**	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	२९. क्रिया दो प्रकार की है—
आणवणिया चेव,	आज्ञापनिका चैव,	आज्ञापनी—आज्ञा देने से होनेवाली क्रिया।
वेयारणिया चेव।	वैदारणिका चैव।	वैदारिणी—स्फोट से होनेवाली क्रिया[१३]।

प्राकृत	संस्कृत	हिन्दी
३०. °आणवणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	आज्ञापनिका क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३०. आज्ञापनी क्रिया दो प्रकार की है—
जीवआणवणिया चेव,	जीवाज्ञापनिका चैव,	जीवआज्ञापनी—जीव के विषय में आज्ञा देने से होनेवाली क्रिया।
अजीवआणवणिया चेव।	अजीवाज्ञापनिका चैव।	अजीवआज्ञापनी—अजीव के विषय में आज्ञा देने से होनेवाली क्रिया[14]।
३१. वेयारणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	वैदारणिका क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३१. वैदारिणी क्रिया दो प्रकार की है—
जीववेयारणिया चेव,	जीववैदारणिका चैव,	जीववैदारिणी—जीव के विदारण से होनेवाली क्रिया।
अजीववेयारणिया चेव।°	अजीववैदारणिका चैव।	अजीववैदारिणी—अजीव के विस्फोट से होनेवाली क्रिया[15]।
३२. दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	३२. क्रिया दो प्रकार की है—
अणाभोगवत्तिया चेव,	अनाभोगप्रत्यया चैव,	अनाभोगप्रत्यया—असावधानी से होनेवाली क्रिया।
अणवकंखवत्तिया चेव।	अनवकाङ्क्षाप्रत्यया चैव।	अनवकांक्षाप्रत्यया—अपेक्षा न रखकर (परिणाम की चिंता किये बिना) की जानेवाली क्रिया[16]।
३३. अणाभोगवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	अनाभोगप्रत्यया क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३३. अनाभोगप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की है—
अणाउत्तआइयणता चेव,	अनायुक्तादानता चैव,	अनायुक्तआदानता—असावधानी से वस्त्र आदि लेना।
अणाउत्तपमज्जणता चेव।	अनायुक्ताप्रमार्जनता चैव।	अनायुक्तप्रमार्जनता—असावधानी से पात्र आदि का प्रमार्जन करना[17]।
३४. अणवकंखवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	अनवकाङ्क्षाप्रत्यया क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३४. अनवकांक्षाप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की है—
आयसरीरअणवकंखवत्तिया चेव,	आत्मशरीरानवकाङ्क्षाप्रत्यया चैव,	आत्मशरीरअनवकांक्षाप्रत्यया—अपने शरीर की अपेक्षा न रखकर की जानेवाली क्रिया।
परसरीरअणवकंखवत्तिया चेव।	परशरीरानवकाङ्क्षाप्रत्यया चैव।	परशरीरअनवकांक्षाप्रत्यया—दूसरे के शरीर की अपेक्षा न रखकर की जानेवाली क्रिया[18]।
३५. दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—	३५. क्रिया दो प्रकार की है—

पेज्जवत्तिया चेव,	प्रेयःप्रत्यया चैव,	प्रेयःप्रत्यया—प्रेयस् के निमित्त से होने-वाली क्रिया।
दोसवत्तिया चेव।	द्वेषप्रत्यया चैव।	दोषप्रत्यया—द्वेष के निमित्त से होने-वाली क्रिया[१९]।
३६. पेज्जवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	प्रेयःप्रत्यया क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३६. प्रेयःप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की है—
मायावत्तिया चेव,	मायाप्रत्यया चैव,	मायाप्रत्यया।
लोभवत्तिया चेव।	लोभप्रत्यया चैव।	लोभप्रत्यया[२०]।
३७. दोसवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	द्वेषप्रत्यया क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३७. दोषप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की है—
कोहे चेव, माणे चेव।	क्रोधश्चैव, मानश्चैव।	क्रोधप्रत्यया। मानप्रत्यया[२१]।
गरहा-पदं	**गर्हा-पदम्**	**गर्हा-पद**
३८. दुविहा गरिहा पण्णत्ता तं जहा—	द्विविधा गर्हा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	३८. गर्हा दो प्रकार की है—
मणसा वेगे गरहति,	मनसा वैकः गर्हते,	कुछ लोग मन से गर्हा करते हैं।
वयसा वेगे गरहति।	वचसा वैकः गर्हते।	कुछ लोग वचन से गर्हा करते हैं।
अहवा— गरहा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—	अथवा—गर्हा द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	अथवा—गर्हा दो प्रकार की है—
दीहं वेगे अद्धं गरहति,	दीर्घं वैकः अद्ध्वानं गर्हते,	कुछ लोग दीर्घकाल तक गर्हा करते हैं।
रहस्सं वेगे अद्धं गरहति।	ह्रस्वं वैकः अद्ध्वानं गर्हते।	कुछ लोग अल्पकाल तक गर्हा करते हैं[२२]।
पच्चक्खाण-पदं	**प्रत्याख्यान-पदम्**	**प्रत्याख्यान-पद**
३९. दुविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा—	द्विविधं प्रत्याख्यानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—	३९. प्रत्याख्यान दो प्रकार का है—
मणसा वेगे पच्चक्खाति,	मनसा वैकः प्रत्याख्याति,	कुछ लोग मन से प्रत्याख्यान करते हैं।
वयसा वेगे पच्चक्खाति।	वचसा वैकः प्रत्याख्याति।	कुछ लोग वचन से प्रत्याख्यान करते हैं।
अहवा—पच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—	अथवा—प्रत्याख्यानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—	अथवा—प्रत्याख्यान दो प्रकार का है—
दीहं वेगे अद्धं पच्चक्खाति,	दीर्घं वैकः अद्ध्वानं प्रत्याख्याति,	कुछ लोग दीर्घकाल तक प्रत्याख्यान करते हैं।
रहस्सं वेगे अद्धं पच्चक्खाति।	ह्रस्वं वैकः अद्ध्वानं प्रत्याख्याति।	कुछ लोग अल्पकाल तक प्रत्याख्यान करते हैं।

विज्जाचरण-पदं

४०. दोहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अणादीयं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीतिवएज्जा, तं जहा—
विज्जाए चेव, चरणेण चेव।

विद्याचरण-पदम्

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां सम्पन्नः अनगारः अनादिकं अनवदग्र दीर्घाद्ध्वानं चातुरन्तं संसारकान्तारं व्यतिव्रजेत, तद्यथा—
विद्यया चैव, चरणेन चैव।

विद्याचरण-पद

४०. विद्या और चरण" (चरित्र) इन दो स्थानों से सम्पन्न अनगार अनादि-अनंत प्रलंब मार्गवाले तथा चार अन्तवाले ससार-रूपी कान्तार को पार कर जाता है—मुक्त हो जाता है।

आरंभ-परिग्गह-पदं

४१. दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

४२. दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं बोधि बुज्झेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

४३. दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

४४. *दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

४५. दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

४६. दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

४७. दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया

आरम्भ-परिग्रह-पदम्

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवलिप्रज्ञप्त धर्मं लभेत श्रवणतया, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहांश्चैव।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवला बोधि बुध्येत, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहांश्चैव।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवलं मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहांश्चैव।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवल ब्रह्मचर्यवासमावसेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवलेन सयमेन सयच्छेत्, तद्यथा—
आरम्भांश्चैव, परिग्रहांश्चैव।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवलेन संवरेण सवृणुयात्, तद्यथा—
आरम्भांश्चैव, परिग्रहांश्चैव।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवल

आरम्भ-परिग्रह-पद

४१. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जाने और छोडे बिना आत्मा केवली-प्रज्ञप्त धर्म को नही सुन पाता।

४२. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों के जाने और छोडे बिना आत्मा विशुद्ध-बोधि का अनुभव नही करता।

४३. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जाने और छोडे बिना आत्मा मुड होकर, घर को छोड़कर सम्पूर्ण अनगारिता (साधुपन) को नहीं पाता।

४४. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जाने और छोडे बिना आत्मा सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास (आचार) को प्राप्त नहीं करता।

४५. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जाने और छोडे बिना आत्मा सम्पूर्ण सयम के द्वारा संयत नही होता।

४६. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जाने और छोडे बिना आत्मा सम्पूर्ण सवर के द्वारा सवृत नही होता।

४७. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को

णो केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

आभिनिबोधिकज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।

जाने और छोडे बिना आत्मा विशुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान को प्राप्त नहीं करता।

४८. दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवल श्रुतज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहांश्चैव।

४८. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जाने और छोडे बिना आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त नहीं करता।

४९. दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवलं अवधिज्ञान उत्पादयेत् तद्यथा—
आरम्भाश्चै, परिग्रहाश्चैव।

४९. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जाने और छोडे बिना आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त नही करता।

५०. दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवलं मनःपर्यवज्ञानं उत्पादयेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहांश्चैव।

५०. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जाने और छोडे बिना आत्मा विशुद्ध मनःपर्यवज्ञान को प्राप्त नही करता।

५१. दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं केवलणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।°

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवल केवलज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहांश्चैव।

५१. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जाने और छोडे बिना आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान का प्राप्त नही करता।

५२. दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवलिप्रज्ञप्त धर्म लभेत श्रवणतया, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।

५२. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और छोडकर आत्मा केवली-प्रज्ञप्त धर्म को सुन पाता है।

५३. दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं बोधिं बुज्झेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवला बोधि बुध्येत, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।

५३. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और छोडकर आत्मा विशुद्ध बोधि का अनुभव करता है।

५४. दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवल मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजेत्, तद्यथा—
आरम्भांश्चैव, परिग्रहाश्चैव।

५४. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जानकर और छोडकर आत्मा मुंड होकर, घर छोडकर सम्पूर्ण अनगारिता(साधुपन) को पाता है।

५५. दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवलं ब्रह्मचर्यवासमावसेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहांश्चैव।

५५. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जानकर और छोड़कर आत्मा सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त करता है।

५६. दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवलेन संयमेन संयच्छेत्, तद्यथा—
आरम्भांश्चैव, परिग्रहांश्चैव।

५६. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जानकर और छोडकर आत्मा सम्पूर्ण संयम के द्वारा संयत होता है।

५७. दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवलेन संवरेण संवृणुयात्, तद्यथा—
आरम्भांश्चैव, परिग्रहांश्चैव।

५७ आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जानकर और छोडकर आत्मा सम्पूर्ण संवर के द्वारा संवृत होता है।

५८. दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवल आभिनिबोधिकज्ञानं उत्पादयेत् तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहांश्चैव।

५८. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और छोडकर आत्मा विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान को प्राप्त करता है।

५९. दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवल श्रुतज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
आरम्भांश्चैव, परिग्रहाश्चैव।

५९. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और छोडकर आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त करता है।

६०. दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवलं अवधिज्ञानं उत्पादयेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।

६०. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और छोडकर आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त करता है।

६१. दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवलं मनःपर्यवज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
आरम्भाश्चैव, परिग्रहाश्चैव।

६१. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और छोडकर आत्मा विशुद्ध मनःपर्यवज्ञान को प्राप्त करता है।

६२. दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं केवलणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।°

द्वे स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवलं केवलज्ञानं उत्पादयेत्, तद्यथा—
आरम्भांश्चैव, परिग्रहांश्चैव।

६२. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और छोडकर आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को प्राप्त करता है।

सोच्चा-अभिसमेच्च-पदं

श्रुत्वा-अभिसमेत्य-पदम्

श्रुत्वा-अभिसमेत्य-पद

६३. दोहिं ठाणेहिं आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा केवलिप्रज्ञप्तं धर्म लभेत श्रवणतया, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

६३. सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा केवलीप्रज्ञप्त धर्म को सुन पाता है।

६४. °दोहिं ठाणेहिं आया केवलं बोधि बुज्झेज्जा, तं जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा केवला बोधि बुध्येत, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

६४. सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध-बोधि का अनुभव करता है।

६५. दोहिं ठाणेहिं आया केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा, तं जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा केवल मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजेत्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

६५. सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा मुंड होकर, घर छोड़कर, सम्पूर्ण अनगारिता (साधुपन) को पाता है।

६६. दोहिं ठाणेहिं आया केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा, तं जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा केवलं ब्रह्मचर्यवासमावसेत्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

६६. सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त करता है।

६७. दोहिं ठाणेहिं आया केवलं संजमेणं संजमेज्जा तं जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्या स्थानाभ्यां आत्मा केवल सयमेण सयच्छेत्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

६७. सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा सम्पूर्ण सयम के द्वारा सयत होता है।

६८. दोहिं ठाणेहिं आया केवलं संवरेणं संवरेज्जा, तं जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा केवलं सवरेण सवृणुयात्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

६८. सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा सम्पूर्ण सवर के द्वारा सवृत होता है।

६९. दोहिं ठाणेहिं आया केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा केवल आभिनिबोधिकज्ञानं उत्पादयेत्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

६९. सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान को प्राप्त करता है।

७०. दोहिं ठाणेहिं आया केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा केवल श्रुतज्ञानं उत्पादयेत्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

७०. सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त करता है।

७१. दोहिं ठाणेहिं आया केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा केवलं अवधिज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

७१. सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त करता है।

७२. दोहिं ठाणेहिं आया केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा केवलं मनःपर्यवज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

७२. सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा विशुद्ध मनःपर्यवज्ञान को प्राप्त करता है।

७३. दोहिं ठाणेहिं आया केवलं केवलणाणं उप्पाडेज्जा त जहा—
सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।°

द्वाभ्या स्थानाभ्यां आत्मा केवलं केवलज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—
श्रुत्वा चैव, अभिसमेत्य चैव।

७३. सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को प्राप्त करता है।

कालचक्क-पदं

७४. दो समाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—
ओसप्पिणी समा चेव,
उस्सप्पिणी समा चेव।

कालचक्र-पदम्

द्वे समे प्रज्ञप्ते, तद्यथा—
अवसर्पिणी समा चैव,
उत्सर्पिणी समा चैव।

कालचक्र-पद

७४. समा (कालमर्यादा) दो प्रकार की है—
अवसर्पिणी समा—इसमें वस्तुओं के रूप, रस, गन्ध, आयु आदि का क्रमशः ह्रास होता है।
उत्सर्पिणी समा—इसमें वस्तुओं के रूप, रस, गन्ध, आयु आदि का क्रमशः विकास होता है।

उम्माय-पदं

७५. दुविहे उम्माए पण्णत्ते, तं जहा—
जक्खाएसे चेव,
मोहणिज्जस्स चेव कम्मस्स उदएणं।
तत्थ णं जे से जक्खाएसे, से णं सुहवेयतराए चेव सुहविमोयतराए चेव।
तत्थ णं जे से मोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, से णं दुहवेयतराए चेव दुहविमोयतराए चेव।

उन्माद-पदम्

द्विविधः उन्मादः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
यक्षावेशश्चैव,
मोहनीयस्य चैव कर्मणः उदयेन।
तत्र योऽसौ यक्षावेशः, स सुखवेद्यतरकश्चैव सुखविमोच्यतरकश्चैव।
तत्र योऽसौ मोहनीयस्य कर्मणः उदयेन, स दुःखवेद्यतरकश्चैव दुःखविमोच्यतरकश्चैव।

उन्माद-पद

७५. उन्माद दो प्रकार का होता है—
यक्षावेश—शरीर में यक्ष के आविष्ट होने से उत्पन्न।
मोहनीय—कर्म के उदय से उत्पन्न।
जो यक्षावेशजनित उन्माद है वह मोहजनित उन्माद की अपेक्षा सुख से भोगा जाने वाला और सुख से छूट सकने वाला होता है।
जो मोहजनित उन्माद है वह यक्षावेशजनित उन्माद की अपेक्षा दुःख से भोगा जाने वाला और दुःख से छूट सकने वाला होता है।

दंड-पदं

७६. दो दंडा पण्णत्ता, तं जहा—
अट्ठादंडे चेव,
अणट्ठादंडे चेव।
७७. णेरइयाणं दो दंडा पण्णत्ता, तं जहा—
अट्ठादंडे य,
अणट्ठादंडे य।

दण्ड-पदम्

द्वौ दण्डौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—
अर्थदण्डश्चैव,
अनर्थदण्डश्चैव।
नैरयिकाणां द्वौ दण्डौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—
अर्थदण्डश्च,
अनर्थदण्डश्च।

दण्ड-पद

७६. दण्ड दो प्रकार का होता है—
अर्थदण्ड।
अनर्थदण्ड।
७७. नैरयिकों के दो दण्ड होते हैं—
अर्थदण्ड।
अनर्थदण्ड।

७८. एवं—चउवीसादंडओ जाव वेमाणियाणं।

एवम्—चतुर्विंशतिदण्डक: यावत् वैमानिकानाम्।

७८. इसी प्रकार वैमानिक तक के सब दण्डकों में दो दण्ड होते हैं—अर्थदण्ड, अनर्थदण्ड।

दंसण-पदं

दर्शन-पदम्

दर्शन-पद

७९. दुविहे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—
सम्मद्दंसणे चेव,
मिच्छादंसणे चेव।

द्विविधं दर्शनं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
सम्यग्दर्शनञ्चैव,
मिथ्यादर्शनञ्चैव।

७९. दर्शन दो प्रकार का है—
सम्यग्दर्शन।
मिथ्यादर्शन[४४]।

८०. सम्मद्दंसणे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—
णिसग्गसम्मद्दंसणे चेव,
अभिगमसम्मद्दंसणे चेव।

सम्यग्दर्शनं द्विविधं प्रज्ञप्तम् तद्यथा—
निसर्गसम्यग्दर्शनञ्चैव,
अभिगमसम्यग्दर्शनञ्चैव।

८०. सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है—
निसर्गसम्यग्दर्शन—आन्तरिक दोषो की शुद्धि होने पर किसी बाह्य निमित्त के बिना सहज ही प्राप्त होनेवाला सम्यग्दर्शन।
अभिगमसम्यग्दर्शन—उपदेश आदि निमित्तो से प्राप्त होनेवाला सम्यग्दर्शन।[४५]

८१. णिसग्गसम्मद्दंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
पडिवाइ चेव,
अपडिवाइ चेव।

निसर्गसम्यग्दर्शनं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
प्रतिपाती चैव,
अप्रतिपाती चैव।

८१. निसर्गसम्यग्दर्शन दो प्रकार का है—
प्रतिपाती—जो वापस चला जाए।
अप्रतिपाती—जो वापस न जाए।[४६]

८२. अभिगमसम्मद्दंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
पडिवाइ चेव,
अपडिवाइ चेव।

अभिगमसम्यग्दर्शनं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
प्रतिपाती चैव,
अप्रतिपाती चैव।

८२. अभिगमसम्यग्दर्शन दो प्रकार का है—
प्रतिपाती।
अप्रतिपाती।[४७]

८३. मिच्छादंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
अभिग्गहियमिच्छादंसणे चेव,
अणभिग्गहियमिच्छादंसणे चेव।

मिथ्यादर्शनं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आभिग्रहिकमिथ्यादर्शनञ्चैव,
अनाभिग्रहिकमिथ्यादर्शनञ्चैव।

८३. मिथ्यादर्शन दो प्रकार का है—
आभिग्रहिक—विपरीत सिद्धान्त के आग्रह से उत्पन्न।
अनाभिग्रहिक—सहज या गुण-दोष की परीक्षा किये बिना उत्पन्न।[४८]

८४. अभिग्गहियमिच्छादंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
सपज्जवसिते चेव,
अपज्जवसिते चेव।

आभिग्रहिकमिथ्यादर्शनं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
सपर्यवसितञ्चैव,
अपर्यवसितञ्चैव।

८४. आभिग्रहिकमिथ्यादर्शन दो प्रकार का है—
सपर्यवसित—सान्त।
अपर्यवसित—अनन्त।[४९]

८५. *अणभिग्गहियमिच्छादंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सपज्जवसिते चेव, अपज्जवसिते चेव।°

अनाभिग्रहिकमिथ्यादर्शन द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सपर्यवसितञ्चैव, अपर्यवसितञ्चैव।

८५. अनाभिग्रहिकमिथ्यादर्शन दो प्रकार का है—
सपर्यवसित, अपर्यवसित।[५०]

णाण-पदं

ज्ञान-पदम्

ज्ञान-पद

८६. दुविहे णाणे पण्णत्ते, तं जहा—पच्चक्खे चेव, परोक्खे चेव।

द्विविध ज्ञान प्रज्ञप्तम् तद्यथा—प्रत्यक्षञ्चैव, परोक्षञ्चैव।

८६. ज्ञान दो प्रकार का है—
प्रत्यक्ष, परोक्ष।[५१]

८७. पच्चक्खे णाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—केवलणाणे चेव, णोकेवलणाणे चेव।

प्रत्यक्षं ज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—केवलज्ञानञ्चैव, नोकेवलज्ञानञ्चैव।

८७. प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का है—
केवलज्ञान।
नोकेवलज्ञान।

८८. केवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—भवत्थकेवलणाणे चेव, सिद्धकेवलणाणे चेव।

केवलज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—भवस्थकेवलज्ञानञ्चैव, सिद्धकेवलज्ञानञ्चैव।

८८. केवलज्ञान दो प्रकार का है—
भवस्थकेवलज्ञान—संसारी जीवों का केवलज्ञान। सिद्धकेवलज्ञान—मुक्त जीवों का केवलज्ञान।

८९. भवत्थकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
सजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव,
अजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव।

भवस्थकेवलज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
सयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव,
अयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव।

८९. भवस्थकेवलज्ञान दो प्रकार का है—
सयोगिभवस्थकेवलज्ञान।
अयोगिभवस्थकेवलज्ञान।

९०. सजोगिभवत्थकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव।
अहवा—चरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव,
अचरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव।

सयोगिभवस्थकेवलज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—प्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव, अप्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव।
अथवा—चरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव,
अचरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव।

९०. सयोगिभवस्थकेवलज्ञान दो प्रकार का है—
प्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान।
अप्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान।
अथवा—चरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान।
अचरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान।

९१. *अजोगिभवत्थकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अपढमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव।
अहवा—चरिमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव,

अयोगिभवस्थकेवलज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
प्रथमसमयायोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव,
अप्रथमसमयायोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव।
अथवा—चरमसमयायोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव,

९१. अयोगिभवस्थकेवलज्ञान दो प्रकार का है—
प्रथमसमयअयोगिभवस्थकेवलज्ञान।
अप्रथमसमयअयोगिभवस्थकेवलज्ञान।
अथवा—चरमसमयअयोगिभवस्थकेवलज्ञान।

अचरिमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव।[9]	अचरमसमयायोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चैव।	अचरमसमयअयोगिभवस्थकेवलज्ञान।
९२. सिद्धकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अणंतरसिद्धकेवलणाणे चेव, परंपरसिद्धकेवलणाणे चेव।	सिद्धकेवलज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानञ्चैव, परम्परसिद्धकेवलज्ञानञ्चैव।	९२. सिद्धकेवलज्ञान दो प्रकार का है— अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान। परम्परसिद्धकेवलज्ञान।
९३. अणंतरसिद्धकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा— एक्काणंतरसिद्धकेवलणाणे चेव, अणेक्काणंतरसिद्धकेवलणाणे चेव।	अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— एकानन्तरसिद्धकेवलज्ञानञ्चैव, अनेकानन्तरसिद्धकेवलज्ञानञ्चैव।	९३. अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान दो प्रकार का है— एकअनन्तरसिद्धकेवलज्ञान। अनेकअनन्तरसिद्धकेवलज्ञान।
९४. परंपरसिद्धकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा— एक्कपरंपरसिद्धकेवलणाणे चेव, अणेक्कपरंपरसिद्धकेवलणाणे चेव।	परम्परसिद्धकेवलज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— एकपरम्परसिद्धकेवलज्ञानञ्चैव, अनेकपरम्परसिद्धकेवलज्ञानञ्चैव।	९४. परम्परसिद्धकेवलज्ञान दो प्रकार का है— एकपरम्परसिद्धकेवलज्ञान। अनेकपरम्परसिद्धकेवलज्ञान।
९५. णोकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—ओहिणाणे चेव, मणपज्जवणाणे चेव।	नोकेवलज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अवधिज्ञानञ्चैव, मनःपर्यवज्ञानञ्चैव।	९५. नोकेवलज्ञान दो प्रकार का है— अवधिज्ञान। मन पर्यवज्ञान।
९६. ओहिणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—भवपच्चइए चेव, खओवसमिए चेव।	अवधिज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— भवप्रत्ययिकञ्चैव, क्षायोपशमिकञ्चैव।	९६ अवधिज्ञान दो प्रकार का है— भवप्रत्ययिक—जन्म के साथ उत्पन्न होने वाला। क्षायोपशमिक—ज्ञानावरण कर्म के क्षयउपशम से उत्पन्न होनेवाला।
९७. दोण्हं भवपच्चइए पण्णत्ते, तं जहा— देवाणं चेव, णेरइयाणं चेव।	द्वयोर्भवप्रत्ययिक प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— देवानाञ्चैव, नैरयिकाणाञ्चैव।	९७ दो के भवप्रत्ययिक होता है— देवताओ के, नैरयिको के।
९८. दोण्हं खओवसमिए पण्णत्ते, त जहा—मणुस्साणं चेव, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण चेव।	द्वयो क्षायोपशमिकं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मनुष्याणाञ्चैव, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव।	९८ दो के क्षायोपशमिक होता है— मनुष्यो के। पञ्चेन्द्रियतिर्यंचो के।
९९. मणपज्जवणाणे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—उज्जुमति चेव, विउलमति चेव।	मनःपर्यवज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—ऋजुमति चैव, विपुलमति चैव।	९९. मन.पर्यवज्ञान दो प्रकार का है— ऋजुमति—मानसिक चिन्तन के पुद्गलों को सामान्य रूप से जाननेवाला ज्ञान। विपुलमति—मानसिक चिन्तन के पुद्गलों की विविध पर्यायो को विशेष रूप से जाननेवाला ज्ञान।
१००. परोक्खे णाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—आभिणिबोहियणाणे चेव, सुयणाणे चेव।	परोक्ष ज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम् तद्यथा— आभिनिबोधिकज्ञानञ्चैव, श्रुतज्ञानञ्चैव।	१००. परोक्ष ज्ञान दो प्रकार का है— आभिनिबोधिकज्ञान। श्रुतज्ञान।

१०१. आभिणिबोहियणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुयणिस्सिए चेव, असुयणिस्सिए चेव।

आभिनिबोधिकज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—श्रुतनिश्रितञ्चैव, अश्रुतनिश्रितञ्चैव।

१०१. आभिनिबोधिकज्ञान दो प्रकार का है—
श्रुतनिश्रित।
अश्रुतनिश्रित।[५२]

१०२. सुयणिस्सिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अत्थोग्गहे चेव, वंजणोग्गहे चेव।

श्रुतनिश्रितं द्विविधं प्रज्ञप्तम् तद्यथा—अर्थावग्रहश्चैव, व्यञ्जनावग्रहश्चैव।

१०२. श्रुतनिश्रित दो प्रकार का है—
अर्थावग्रह।
व्यञ्जनावग्रह।[५३]

१०३. असुयणिस्सिते °दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अत्थोग्गहे चेव, वंजणोग्गहे चेव।°

अश्रुतनिश्रितं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अर्थावग्रहश्चैव, व्यञ्जनावग्रहश्चैव।

१०३. अश्रुतनिश्रित दो प्रकार का है—
अर्थावग्रह।
व्यञ्जनावग्रह।[५४]

१०४. सुयणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अंगपविट्ठे चेव, अंगबाहिरे चेव।

श्रुतज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अङ्गप्रविष्टञ्चैव, अङ्गबाह्यञ्चैव।

१०४. श्रुतज्ञान दो प्रकार का है—
अंगप्रविष्ट।
अंगबाह्य।

१०५. अंगबाहिरे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—आवस्सए चेव, आवस्सयवतिरित्ते चेव।

अङ्गबाह्यं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आवश्यकञ्चैव, आवश्यकव्यतिरिक्तञ्चैव।

१०५. अंगबाह्य दो प्रकार का है—
आवश्यक।
आवश्यकव्यतिरिक्त।

१०६. आवस्सयवतिरित्ते दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—कालिए चेव, उक्कालिए चेव।

आवश्यकव्यतिरिक्तं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—कालिकञ्चैव, उत्कालिकञ्चैव।

१०६. आवश्यकव्यतिरिक्त दो प्रकार का है—
कालिक—जो दिन-रात के प्रथम और अन्तिम प्रहर में ही पढ़ा जा सके।
उत्कालिक—जो अकाल के सिवाय सभी प्रहरों में पढ़ा जा सके।

धम्म-पदं — धर्म-पदम् — धर्म-पद

१०७. दुविहे धम्मे पण्णत्ते, तं जहा—सुयधम्मे चेव, चरित्तधम्मे चेव।

द्विविधः धर्मः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—श्रुतधर्मश्चैव, चरित्रधर्मश्चैव।

१०७. धर्म दो प्रकार का है—
श्रुतधर्म, चारित्रधर्म।

१०८. सुयधम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुत्तसुयधम्मे चेव, अत्थसुयधम्मे चेव।

श्रुतधर्मः द्विविधः प्रज्ञप्तः तद्यथा—सूत्रश्रुतधर्मश्चैव, अर्थश्रुतधर्मश्चैव।

१०८. श्रुतधर्म दो प्रकार का है—
सूत्रश्रुतधर्म, अर्थश्रुतधर्म।

१०९. चरित्तधम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अगारचरित्तधम्मे चेव, अणगारचरित्तधम्मे चेव।

चरित्रधर्मः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अगारचरित्रधर्मश्चैव, अनगारचरित्रधर्मश्चैव।

१०९. चारित्रधर्म दो प्रकार का है—
अगार (गृहस्थ) का चारित्रधर्म।
अनगार (मुनि) का चारित्रधर्म।

संजम-पदं — संयम-पदम् — संयम-पद

११०. दुविहे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—सरागसंजमे चेव, वीतरागसंजमे चेव।

द्विविधः संयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—सरागसंयमश्चैव, वीतरागसंयमश्चैव।

११०. संयम दो प्रकार का है—
सरागसंयम।
वीतरागसंयम।

१११. सरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
सुहुमसंपरायसरागसंजमे चेव,
बादरसंपरायसरागसंजमे चेव।

सरागसंयमः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
सूक्ष्मसंपरायसरागसंयमश्चैव,
बादरसंपरायसरागसंयमश्चैव।

१११. सरागसंयम दो प्रकार का है—
सूक्ष्मसंपरायसरागसंयम।
बादरसंपरायसरागसंयम।

११२. सुहुमसंपरायसरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
पढमसमयसुहुमसंपरायसरागसंजमे चेव,
अपढमसमयसुहुमसंपरायसरागसंजमे चेव।
अहवा—चरिमसमयसुहुमसंपरायसरागसंजमे चेव, अचरिमसमयसुहुमसंपरायसरागसंजमे चेव।
अहवा—सुहुमसंपरायसरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
संकिलेसमाणए चेव,
विसुज्झमाणए चेव।

सूक्ष्मसंपरायसरागसंयमः द्विविधः प्रज्ञप्तः तद्यथा—
प्रथमसमयसूक्ष्मसंपरायसरागसंयमश्चैव,
अप्रथमसमयसूक्ष्मसंपरायसरागसंयमश्चैव।
अथवा—चरमसमयसूक्ष्मसंपरायसरागसंयमश्चैव,
अचरमसमयसूक्ष्मसंपरायसरागसंयमश्चैव।
अथवा—सूक्ष्मसंपरायसरागसंयमः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
संक्लिश्यमानकश्चैव,
विशुद्ध्यमानकश्चैव।

११२. सूक्ष्मसंपरायसरागसंयम दो प्रकार का है—
प्रथमसमयसूक्ष्मसंपरायसरागसंयम।
अप्रथमसमयसूक्ष्मसंपरायसरागसंयम।
अथवा—चरमसमयसूक्ष्मसंपरायसरागसंयम।
अचरमसमयसूक्ष्मसंपरायसरागसंयम।
अथवा—सूक्ष्मसंपरायसरागसंयम दो प्रकार का है—
संक्लिश्यमान।
विशुद्ध्यमान।

११३. बादरसंपरायसरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयबादरसंपरायसरागसंजमे चेव,
अपढमसमयबादरसंपरायसरागसंजमे चेव।
अहवा—चरिमसमयबादरसंपरायसरागसंजमे चेव,
अचरिमसमयबादरसंपरायसरागसंजमे चेव।
अहवा—बायरसंपरायसरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
पडिवातिए चेव, अपडिवातिए चेव।

बादरसंपरायसरागसंयमः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— प्रथमसमयबादरसंपरायसरागसंयमश्चैव,
अप्रथमसमयबादरसंपरायसरागसंयमश्चैव।
अथवा—चरमसमयबादरसंपरायसरागसंयमश्चैव,
अचरमसमयबादरसंपरायसरागसंयमश्चैव।
अथवा—बादरसंपरायसरागसंयमः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
प्रतिपातिकश्चैव, अप्रतिपातिकश्चैव।

११३. बादरसंपरायसरागसंयम दो प्रकार का है—
प्रथमसमयबादरसंपरायसरागसंयम।
अप्रथमसमयबादरसंपरायसरागसंयम।
अथवा—चरमसमयबादरसंपरायसरागसंयम।
अचरमसमयबादरसंपरायसरागसंयम।
अथवा—बादरसंपरायसरागसंयम दो प्रकार का है—
प्रतिपाती, अप्रतिपाती।

११४. वीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
उवसंतकसायवीयरागसंजमे चेव,
खीणकसायवीयरागसंजमे चेव।

वीतरागसंयमः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
उपशान्तकषायवीतरागसंयमश्चैव,
क्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव।

११४. वीतरागसंयम दो प्रकार का है—
उपशान्तकषायवीतरागसंयम।
क्षीणकषायवीतरागसंयम।

११५. उवसंतकसायवीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
पढमसमयउवसंतकसायवीयरागसंजमे चेव,
अपढमसमयउवसंतकसायवीयरागसंजमे चेव।
अहवा—चरिमसमयउवसंतकसायवीयरागसंजमे चेव,
अचरिमसमयउवसंतकसायवीयरागसंजमे चेव।

उपशान्तकषायवीतरागसंयमः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
प्रथमसमयोपशान्तकषायवीतरागसंयमश्चैव,
अप्रथमसमयोपशान्तकषायवीतरागसंयमश्चैव।
अथवा—चरमसमयोपशान्तकषायवीतरागसंयमश्चैव,
अचरमसमयोपशान्तकषायवीतरागसंयमश्चैव।

११५. उपशान्तकषायवीतरागसंयम दो प्रकार का है—
प्रथमसमयउपशान्तकषायवीतरागसंयम।
अप्रथमसमयउपशान्तकषायवीतरागसंयम।
अथवा—चरमसमयउपशान्तकषायवीतरागसंयम।
अचरमसमयउपशान्तकषायवीतरागसंयम।

११६. खीणकसायवीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
छउमत्थखीणकसायवीयरागसंजमे चेव,
केवलिखीणकसायवीयरागसंजमे चेव।

क्षीणकषायवीतरागसंयमः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
छद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव,
केवलिक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव।

११६. क्षीणकषायवीतरागसंयम दो प्रकार का है—
छद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम।
केवलीक्षीणकषायवीतरागसंयम।

११७. छउमत्थखीणकसायवीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव,
बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव,

छद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
स्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव,
बुद्धबोधितछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव।

११७. छद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम दो प्रकार का है—
स्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम।
बुद्धबोधितछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम।

११८. सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
पढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव,
अपढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव।
अहवा—चरिमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव,
अचरिमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव।

स्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
प्रथमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव,
अप्रथमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव।
अथवा—चरमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव,
अचरमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चैव,

११८. स्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम दो प्रकार का है—
प्रथमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम।
अप्रथमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम।
अथवा—चरमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम।
अचरमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम।

१३४. °दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव।	द्विविधाः अप्कायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—परिणताश्चैव, अपरिणताश्चैव।	१३४. अप्कायिक जीव दो प्रकार के हैं— परिणत और अपरिणत।
१३५. दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव।	द्विविधाः तेजस्कायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—परिणताश्चैव, अपरिणताश्चैव।	१३५. तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के हैं— परिणत और अपरिणत।
१३६. दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव।	द्विविधाः वायुकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—परिणताश्चैव, अपरिणताश्चैव।	१३६. वायुकायिक जीव दो प्रकार के हैं— परिणत और अपरिणत।
१३७. दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव°।	द्विविधाः वनस्पतिकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—परिणताश्चैव, अपरिणताश्चैव।	१३७. वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं— परिणत और अपरिणत।
दव्व-पदं	**द्रव्य-पदम्**	**द्रव्य-पद**
१३८. दुविहा दव्वा पण्णत्ता, तं जहा— परिणता चेव, अपरिणता चेव।	द्विविधानि द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—परिणतानि चैव, अपरिणतानि चैव।	१३८. द्रव्य दो प्रकार के होते हैं— परिणत—बाह्य हेतुओं से जिसका रूपान्तर हुआ हो। अपरिणत।
जीव-णिकाय-पदं	**जीव-निकाय-पदम्**	**जीव-निकाय-पद**
१३९. दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव।	द्विविधाः पृथिवीकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—गतिसमापन्नकाश्चैव, अगतिसमापन्नकाश्चैव।	१३९. पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के हैं— गतिसमापन्नक—एक जन्म से दूसरे जन्म मे जाते समय अन्तराल गति मे वर्तमान। अगतिसमापन्नक—वर्तमान जीवन मे स्थित।
१४० °दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव।	द्विविधाः अप्कायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—गतिसमापन्नकाश्चैव, अगतिसमापन्नकाश्चैव।	१४०. अप्कायिक जीव दो प्रकार के है— गतिसमापन्नक। अगतिसमापन्नक।
१४१. दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव।	द्विविधाः तेजस्कायिकाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—गतिसमापन्नकाश्चैव, अगतिसमापन्नकाश्चैव।	१४१ तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के हैं— गतिसमापन्नक। अगतिसमापन्नक।
१४२. दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव।	द्विविधाः वायुकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—गतिसमापन्नकाश्चैव, अगतिसमापन्नकाश्चैव।	१४२. वायुकायिक जीव दो प्रकार के हैं— गतिसमापन्नक। अगतिसमापन्नक।

१४३. दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव ।°	द्विविधाः वनस्पतिकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—गतिसमापन्नकाश्चैव, अगतिसमापन्नकाश्चैव ।	१४३. वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के है— गतिसमापन्नक । अगतिसमापन्नक ।
दव्व-पदं	**द्रव्य-पदम्**	**द्रव्य-पद**
१४४. दुविहा दव्वा पण्णत्ता, तं जहा— गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव ।	द्विविधानि द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—गतिसमापन्नकानि चैव, अगतिसमापन्नकानि चैव ।	१४४. द्रव्य दो प्रकार के है— गतिसमापन्नक—गमन मे प्रवृत्त । अगतिसमापन्नक—अवस्थित ।
जीव-णिकाय-पदं	**जीव-निकाय-पदम्**	**जीव-निकाय-पद**
१४५. दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरोगाढा चेव, परंपरोगाढा चेव ।	द्विविधा· पृथिवीकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अनन्तरावगाढाश्चैव, परम्परावगाढाश्चैव ।	१४५. पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के हैं— अनंतरावगाढ—वर्तमान समय में किसी आकाशदेश में स्थित । परम्परावगाढ—दो या अधिक समयों से किसी आकाशदेश में स्थित ।
१४६. °दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरोगाढा चेव, परंपरोगाढा चेव ।	द्विविधा. अप्कायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अनन्तरावगाढाश्चैव, परम्परावगाढाश्चैव ।	१४६. अप्कायिक जीव दो प्रकार के है— अनतरावगाढ । परम्परावगाढ ।
१४७. दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरोगाढा चेव । परंपरोगाढा चेव ।	द्विविधाः तेजस्कायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अनन्तरावगाढाश्चैव, परम्परावगाढाश्चैव ।	१४७. तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के हैं— अनतरावगाढ । परम्परावगाढ ।
१४८. दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरोगाढा चेव, परंपरोगाढा चेव ।	द्विविधाः वायुकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अनन्तरावगाढाश्चैव, परम्परावगाढाश्चैव ।	१४८. वायुकायिक जीव दो प्रकार के हैं— अनतरावगाढ । परम्परावगाढ ।
१४९. दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरोगाढा चेव, परंपरोगाढा चेव ।	द्विविधाः वनस्पतिकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अनन्तरावगाढाश्चैव, परम्परावगाढाश्चैव ।	१४९ वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं— अनतरावगाढ । परम्परावगाढ ।
दव्वं-पदं	**द्रव्य-पदम्**	**द्रव्य-पद**
१५०. दुविहा दव्वा पण्णत्ता, तं जहा— अणंतरोगाढा चेव, परंपरोगाढा चेव ।°	द्विविधानि द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अनन्तरावगाढानि चैव, परम्परावगाढानि चैव ।	१५०. द्रव्य दो प्रकार के हैं— अनतरावगाढ । परम्परावगाढ ।

१५१. दुविहे काले पण्णत्ते, तं जहा—
ओसप्पिणीकाले चेव,
उस्सप्पिणीकाले चेव।

द्विविधः कालः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
अवसर्प्पिणीकालश्चैव,
उत्सर्प्पिणीकालश्चैव।

१५१. काल दो प्रकार का है—
अवसर्पिणीकाल।
उत्सर्पिणीकाल।

१५२. दुविहे आगासे पण्णत्ते तं जहा—
लोगागासे चेव।
अलोगागासे चेव।

द्विविधः आकाशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
लोकाकाशश्चैव,
अलोकाकाशश्चैव।

१५२. आकाश दो प्रकार का है—
लोकाकाश और
अलोकाकाश।

सरीर-पदं

शरीर-पदम्

शरीर-पद

१५३. णेरइयाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भंतरगे चेव,
बाहिरगे चेव।
अब्भंतरए कम्मए,
बाहिरए वेउव्विए।

नैरयिकाणा द्वे शरीरके प्रज्ञप्ते, तद्यथा—आभ्यन्तरकञ्चैव,
बाह्यकञ्चैव।
आभ्यन्तरक कर्मकं,
बाह्यक वैक्रियम्।

१५३. नैरयिकों के दो शरीर होते है—
आभ्यन्तर शरीर—कर्मक (सब शरीरो का हेतुभूत शरीर)।
बाह्य शरीर—वैक्रिय।

१५४. °देवाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भंतरगे चेव,
बाहिरगे चेव।
अब्भंतरए कम्मए,
बाहिरए वेउव्विए।°

देवाना द्वे शरीरके प्रज्ञप्ते, तद्यथा—
आभ्यन्तरकञ्चैव,
बाह्यकञ्चैव।
आभ्यन्तरक कर्मक,
बाह्यक वैक्रियम्।

१५४. देवों के दो शरीर होते है—
आभ्यन्तर शरीर—कर्मक।
बाह्य शरीर—वैक्रिय।

१५५. पुढविकाइयाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—
अब्भंतरगे चेव, बाहिरगे चेव।
अब्भंतरगे कम्मए,
बाहिरगे ओरालिए जाव वणस्सइकाइयाणं।

पृथिवीकायिकाना द्वे शरीरके प्रज्ञप्ते, तद्यथा—
आभ्यन्तरकञ्चैव, बाह्यकञ्चैव।
आभ्यन्तरकं कर्मक,
बाह्यक औदारिकम् यावत् वनस्पतिकायिकानाम्।

१५५ पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवो के दो-दो शरीर होते हैं—
आभ्यन्तर शरीर—कर्मक।
बाह्य शरीर—औदारिक।[५८]

१५६. बेइंदियाणं दो सरीरा पण्णत्ता, तं जहा—
अब्भंतरए चेव, बाहिरए चेव।
अब्भंतरगे कम्मए, अट्ठिमंससोणितबद्धे बाहिरए ओरालिए।

द्वीन्द्रियाणा द्वे शरीरे प्रज्ञप्ते, तद्यथा—
आभ्यन्तरकञ्चैव, बाह्यकञ्चैव।
आभ्यन्तरक कर्मक, अस्थिमासशोणितबद्ध बाह्यक औदारिकम्।

१५६. दो इन्द्रिय वाले जीवो के दो शरीर होते है—आभ्यन्तर शरीर—कर्मक।
बाह्य शरीर—हाड़, मास और रक्तयुक्त औदारिक।[५९]

१५७. °तेइंदियाणं दो सरीरा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भंतरए चेव,
बाहिरए चेव।
अब्भंतरगे कम्मए, अट्ठिमंससोणितबद्धे बाहिरए ओरालिए।

त्रीन्द्रियाणां द्वे शरीरे प्रज्ञप्ते, तद्यथा—
आभ्यन्तरकञ्चैव,
बाह्यकञ्चैव।
आभ्यन्तरक कर्मक, अस्थिमासशोणितबद्ध बाह्यक औदारिकम्।

१५७. तीन इन्द्रिय वाले जीवों के दो शरीर होते हैं—आभ्यन्तर शरीर—कर्मक।
बाह्य शरीर—हाड, मास और रक्तयुक्त औदारिक।[६०]

१५८. चउरिंदियाणं दो सरीरा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भंतरए चेव, बाहिरए चेव। अब्भंतरगे कम्मए, अट्ठिमंससोणितबद्धे बाहिरए ओरालिए।°

चतुरिन्द्रियाणां द्वे शरीरे प्रज्ञप्ते, तद्यथा—आभ्यन्तरकञ्चैव, बाह्यकञ्चैव। आभ्यन्तरकं कर्मकं, अस्थिमांसशोणितबद्धं बाह्यकं औदारिकम्।

१५८. चार इन्द्रिय वाले जीवों के दो शरीर होते हैं— आभ्यन्तर शरीर—कर्मक। बाह्य शरीर—हाड, मांस और रक्तयुक्त औदारिक।[1]

१५९. पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा— अब्भंतरए चेव, बाहिरए चेव। अब्भंतरगे कम्मए, अट्ठिमंससोणियण्हारुछिराबद्धे बाहिरए ओरालिए।

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां द्वे शरीरके प्रज्ञप्ते, तद्यथा— आभ्यन्तरकञ्चैव, बाह्यकञ्चैव। आभ्यन्तरकं कर्मकं, अस्थिमांसशोणितस्नायुशिराबद्धं बाह्यकं औदारिकम्।

१५९. पांच इन्द्रिय वाले तिर्यञ्चों के दो शरीर होते हैं— आभ्यन्तर शरीर—कर्मक। बाह्य शरीर—हाड, मांस, रक्त, स्नायु और शिरायुक्त औदारिक।[12]

१६०. *मणुस्साणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भंतरए चेव, बाहिरए चेव। अब्भंतरगे कम्मए, अट्ठिमंससोणियण्हारुछिराबद्धे बाहिरए ओरालिए।°

मनुष्याणां द्वे शरीरके प्रज्ञप्ते, तद्यथा— आभ्यन्तरकञ्चैव, बाह्यकञ्चैव। आभ्यन्तरकं कर्मकं, अस्थिमांसशोणितस्नायुशिराबद्धं बाह्यकं औदारिकम्।

१६०. मनुष्यों के दो शरीर होते हैं— आभ्यन्तर शरीर—कर्मक। बाह्य शरीर—हाड, मांस, रक्त, स्नायु और शिरायुक्त औदारिक।[13]

१६१. विग्गहगइसमावण्णगाणं णेरइयाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा— तेयए चेव, कम्मए चेव। णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

विग्रहगतिसमापन्नकानां नैरयिकाणां द्वे शरीरके प्रज्ञप्ते, तद्यथा— तैजसञ्चैव, कर्मकञ्चैव। निरन्तरं यावत् वैमानिकानाम्।

१६१. विग्रहगति[14] समापन्न नैरयिकों तथा वैमानिक पर्यंत सभी दण्डकों के जीवों के दो-दो शरीर होते हैं— तैजस और कर्मक।

१६२. णेरइयाणं दोहिं ठाणेहिं सरीरुप्पत्ती सिया, तं जहा— रागेण चेव, दोसेण चेव जाव वेमाणियाणं।

नैरयिकाणां द्वाभ्यां स्थानाभ्यां शरीरोत्पत्तिः स्यात्, तद्यथा— रागेण चैव, दोषेण चैव यावत् वैमानिकानाम्।

१६२. नैरयिकों तथा वैमानिक पर्यंत सभी दण्डकों के जीवों के दो-दो स्थानों से शरीर की उत्पत्ति (आरम्भ मात्र) होती है— राग से और द्वेष से।

१६३. णेरइयाणं दुट्ठाणणिव्वत्तिए सरीरगे पण्णत्ते, तं जहा— रागणिव्वत्तिए चेव, दोसणिव्वत्तिए चेव जाव वेमाणियाणं।

नैरयिकाणां द्विस्थाननिर्वर्तितं शरीरकं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— रागनिर्वर्तितञ्चैव, दोषनिर्वर्तितञ्चैव यावत् वैमानिकानाम्।

१६३. नैरयिकों तथा वैमानिक पर्यंत सभी दण्डकों के जीवों के दो-दो स्थानों से शरीर की निष्पत्ति (पूर्णता) होती है— राग से और द्वेष से।

काय-पदं

काय-पदम्

काय-पद

१६४. दो काया पण्णत्ता, तं जहा— तसकाए चेव, थावरकाए चेव।

द्वौ कायौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— त्रसकायश्चैव, स्थावरकायश्चैव।

१६४. काय दो प्रकार के हैं — त्रसकाय और स्थावरकाय।

१६५. तसकाए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
भवसिद्धिए चेव,
अभवसिद्धिए चेव।

त्रसकाय द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
भवसिद्धिकश्चैव,
अभवसिद्धिकश्चैव।

१६५. त्रसकाय दो प्रकार के है—
भवसिद्धिक—मुक्ति के लिए योग्य।
अभवसिद्धिक—मुक्ति के लिए अयोग्य।

१६६. °थावरकाए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—भवसिद्धिए चेव,
अभवसिद्धिए चेव।°

स्थावरकायः द्विविध. प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
भवसिद्धिकश्चैव,
अभवसिद्धिकश्चैव।

१६६. स्थावरकाय दो प्रकार के है—
भवसिद्धिक और
अभवसिद्धिक।

दिसादुगे करणिज्ज-पदं

दिशाद्विके करणीय-पदम्

दिशाद्विक में करणीय-पद

१६७. दो दिसाओ अभिगिज्झ कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पव्वावित्तए—
पाईणं चेव, उदीणं चेव।

द्वे दिशे अभिगृह्य कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा प्रव्राजयितुम्—
प्राचीनाञ्चैव,
उदीचीनाञ्चैव।

१६७. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया पूर्व और उत्तर इन दो दिशाओ की ओर मुह कर प्रव्रजित करे।

१६८. °दो दिसाओ अभिगिज्झ कप्पति णिग्गंथाणं वा णिग्गंथीण वा°—
मुंडावित्तए सिक्खावित्तए
उवट्ठावित्तए संभुंजित्तए
संवासित्तए सज्झायमुद्दिसित्तए
सज्झायं समुद्दिसित्तए
सज्झायमणुजाणित्तए आलोइत्तए
पडिक्कमित्तए णिंदित्तए गरहित्तए
विउट्टित्तए विसोहित्तए
अकरणयाए अब्भुट्ठित्तए
अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जित्तए—
°पाईणं चेव, उदीणं चेव।°

द्वे दिशे अभिगृह्य कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा—
मुण्डयितु शिक्षयितु उपस्थापयितु सभोजयितु सवासयितु स्वाध्यायमुद्देष्टु स्वाध्याय समुद्देष्टु स्वाध्याय अनुज्ञातु आलोचयितु प्रतिक्रमितु निन्दितु गर्हितु व्यतिवर्तयितु विशोधयितु अकरणतया अभ्युत्थातु यथार्ह प्रायश्चित्त तपःकर्म्म प्रतिपत्तुम्—
प्राचीनाञ्चैव, उदीचीनाञ्चैव।

१६८ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया पूर्व और उत्तर इन दो दिशाओ की ओर मुह कर—
मुडित करे, शिक्षा दे, महाव्रतो मे आरोपित करे, भोजन-मडली मे सम्मिलित करे, सस्तारक-मडली मे सम्मिलित करे, स्वाध्याय का उद्देश दें, स्वाध्याय का समुद्देश दे, स्वाध्याय की अनुज्ञा दे, आलोचना करे, प्रतिक्रमण करे, निंदा करें, गर्हा करे, व्यतिवर्तन करे, विशोधि करें, सावद्य-प्रवृत्ति न करने के लिए उठे, यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तपःकर्म स्वीकार करें।[५५]

१६९. दो दिसाओ अभिगिज्झ कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अपच्छिम-मारणंतियसंलेहणा-जूसणा-जूसियाणं भत्तपाणपडिया-इक्खिताणं पाओवगताणं कालं अणवकंखमाणाणं विहरित्तए, तं जहा—पाईणं चेव, उदीणं चेव।

द्वे दिशे अभिगृह्य कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा अपश्चिम-मारणान्तिकसंलेखना-जोषणा-जूषिताना भक्तपानप्रत्याख्याताना प्रायोपगताना काल अनवकाङ्क्षता विहर्त्तु, तद्यथा—
प्राचीनाञ्चैव उदीचीनाञ्चैव।

१६९ जो निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया अपश्चिम मारणान्तिक-सलेखना की आराधना से युक्त हैं, जो भक्त-पान का प्रत्याख्यान कर चुके हैं, जो प्रायोपगत अनशन[५६] से युक्त हैं, जो मरणकाल की आकाक्षा नही करते हुए विहर रहे हैं, वे पूर्व और उत्तर इन दो दिशाओं की ओर मुह कर रहें।

बीओ उद्देसो

वेदणा-पदं

१७०. जे देवा उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा चारट्ठितिया गतिरतिया गतिसमावण्णगा, तेसि णं देवाणं सता समितं जे पावे कम्मे कज्जति, तत्थगतावि एगतिया वेदणं वेदेंति, अण्णत्थगतावि एगतिया वेअणं वेदेंति।

वेदना-पदम्

ये देवा ऊद्ध्वोपपन्नकाः कल्पोपपन्नकाः विमानोपपन्नकाः चारोपपन्नकाः चारस्थितिकाः गतिरतिकाः गतिसमापन्नका, तेषा देवानां सदा समितं यत् पाप कर्म क्रियते, तत्रगताअपि एके वेदना वेदयन्ति, अन्यत्रगताअपि एके वेदना वेदयन्ति।

वेदना-पद

१७०. ऊर्ध्वलोक मे उत्पन्न देव, जो कल्प[६७] मे उपपन्न हैं, जो विमान[६८] मे उपपन्न हैं, जो चार[६९] मे उपपन्न हैं, जो चार मे स्थित[७०] हैं, जो गतिशील[७१] और सतत गति वाले है, उन देवों के सदा, समित (परिमित) जो पाप कर्म का बन्ध होता है, कई देव उसका उसी भव मे वेदन करते हैं और कई उसका वेदन भवान्तर मे करते हैं।

१७१. णेरइयाणं सता समियं जे पावे कम्मे कज्जति, तत्थगतावि एगतिया वेयणं वेदेंति, अण्णत्थगतावि एगतिया वेयणं वेदेंति जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं।

नैरयिकाणा सदा समित यत् पाप कर्म क्रियते, तत्रगताअपि एके वेदनां वेदयन्ति, अन्यत्रगताअपि एके वेदनां वेदयन्ति। यावत् पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाम्।

१७१. नैरयिक तथा द्वीन्द्रिय से तिर्यचपञ्चेन्द्रिय तक के दण्डकों के सदा, समित (परिमित) जो पाप-कर्म का बंध होता है, कई उसका उसी भव मे वेदन करते हैं और कई उसका वेदन भवान्तर मे करते हैं।

१७२. मणुस्साणं सता समितं जे पावे कम्मे कज्जति, इहगतावि एगतिया वेयणं वेयंति, अण्णत्थगतावि एगतिया वेयणं वेयंति। मणुस्सवज्जा सेसा एक्कगमा।

मनुष्याणा सदा समित यत् पाप कर्म क्रियते, इहगताअपि एके वेदना वेदयन्ति, अन्यत्रगताअपि एके वेदना वेदयन्ति। मनुष्यवर्जा शेषा एकगमाः।

१७२ मनुष्यों[७२] के सदा समित (परिमित) जो पाप-कर्म का बंध होता है, कई मनुष्य उसका इसी भव मे वेदन करते हैं और कई उसका वेदन भवान्तर मे करते है।

गति-आगति-पदं

१७३. णेरइया दुगतिया दुयागतिया पण्णत्ता, तं जहा—णेरइए णेरइएसु उववज्जमाणे मणुस्सेहिंतो वा पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वा उववज्जेज्जा।

से चेव णं से णेरइए णेरइयत्तं विप्पजहमाणे मणुस्सत्ताए वा पंचेंदियतिरिक्खजोणियत्ताए वा गच्छेज्जा।

गति-आगति-पदम्

नैरयिका द्विगतिका द्वयागतिकाः प्रज्ञप्ता., तद्यथा—नैरयिक नैरयिकेषु उपपद्यमानः मनुष्येभ्यो वा पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकेभ्यो वा उपपद्येत।

स चैव असौ नैरयिकः नैरयिकत्वं विप्रजहत् मनुष्यतया वा पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकतया वा गच्छेत्।

गति-आगति-पद

१७३. नैरयिक जीवों की दो गति और दो आगति होती है। नरक मे उत्पन्न होने वाले जीव—

मनुष्य अथवा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि से आकर उत्पन्न होते है।

नैरयिक नारक अवस्था को छोडकर—मनुष्य अथवा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनि मे जाते हैं।

१७४. एवं—असुरकुमारावि।

णवरं—से चेव णं से असुरकुमारे

एवम्—असुरकुमारा अपि।

नवर—स चैव असौ असुरकुमारः

१७४. असुरकुमार आदि देवो की दो गति और दो आगति होती हैं—देव गति में उत्पन्न

असुरकुमारत्तं विप्पजहमाणे मणुस्सत्ताए वा तिरिक्ख-जोणियत्ताए वा गच्छेज्जा। एवं—सव्वदेवा।

असुरकुमारत्व विप्रजहत् मनुष्यतया वा तिर्यग्योनिकतया वा गच्छेत्। एवम्—सर्वदेवाः।

होने वाले जीव मनुष्य अथवा पञ्चेन्द्रिय, तिर्यंच योनि से आकर उत्पन्न होते है। वे देव अवस्था को छोड़कर मनुष्य अथवा तिर्यञ्च[51] योनि में जाते है।

१७५. पुढविकाइया दुगतिया दुयागतिया पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइए पुढविकाइएसु उववज्जमाणे पुढविकाइएहिंतो वा णो पुढवि-काइएहिंतो वा उववज्जेज्जा। से चेव णं से पुढविकाइए पुढविकाइयत्तं विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा णो पुढवि-का इयत्ताए वा गच्छेज्जा।

पृथिवीकायिका द्विगतिका द्व्यागतिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पृथिवीकायिकः पृथिवीकायिकेषु उपपद्यमान पृथिवी-कायिकेभ्यो वा नो पृथिवीकायिकेभ्यो वा उपपद्येत। स चैव असौ पृथिवीकायिकः पृथिवी-कायिकत्व विप्रजहत् पृथिवीकायिकतया वा नो पृथिवीकायिकतया वा गच्छेत्।

१७५. पृथ्वीकायिक जीवो की दो गति और दो आगति होती है—
पृथ्वीकाय मे उत्पन्न होने वाले जीव पृथ्वीकाय अथवा अन्य योनियो से आकर उत्पन्न होते है।
वे पृथ्वी की अवस्था को छोड़कर पृथ्वी-काय अथवा अन्य योनियो मे जाते है।

१७६. एवं—जाव मणुस्सा।

एवम्—यावत् मनुष्याः।

१७६. अप्काय मे मनुष्य तक के सभी दण्डको की दो गति और दो आगति होती है—
वे अपने-अपने काय से अथवा अन्य योनियो से आकर उत्पन्न होते है।
वे अपनी-अपनी अवस्था को छोड़कर, अपने-अपने काय मे अथवा अन्य योनियो मे जाते हैं।

दंडग-मग्गणा-पदं

दण्डक-मार्गणा-पदम्

दण्डक-मार्गणा-पद

१७७. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—भवसिद्धिया चेव, अभवसिद्धिया चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—भवसिद्धिकाश्चैव, अभवसिद्धिकाश्चैव यावत् वैमानिकाः।

१७७ नैरयिको से वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों के दो-दो प्रकार है—
भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक।

१७८. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरोववण्णगा चेव, परंपरोववण्णगा चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अनन्तरोपपन्नकाश्चैव, परम्परोपपन्नकाश्चैव यावत् वैमानिकाः।

१७८. नैरयिको से वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों के दो-दो प्रकार है—
अन्तरोपपन्नक।
परम्परोपपन्नक।

१७९. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—गतिसमापन्नकाश्चैव, अगतिसमापन्नकाश्चैव यावत् वैमानिकाः।

१७९. नैरयिको से वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं—गतिसमापन्नक[54]—अपने-अपने उत्पत्ति स्थान की ओर जाते हुए। अगतिसमापन्नक[55]—अपने-अपने भव मे स्थित।

१८०. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—पढमसमओववण्णगा चेव, अपढमसमओववण्णगा चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— प्रथमसमयोपपन्नकाश्चैव, अप्रथमसमयोपपन्नकाश्चैव यावत् वैमानिका.।

१८०. नैरयिकों से वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों के दो-दो प्रकार है— प्रथमसमयोपपन्नक। अप्रथमसमयोपपन्नक।

१८१. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—आहारगा चेव, अणाहारगा चेव। एवं—जाव वेमाणिया।

द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा— आहारकाश्चैव, अनाहारकाश्चैव। एवम्—यावत् वैमानिकाः।

१८१. नैरयिको से वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं— आहारक। अनाहारक।[७१]

१८२. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—उस्सासगा चेव, णोउस्सासगा चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— उच्छ्वासकाश्चैव, नोउच्छ्वासकाश्चैव यावत् वैमानिकाः।

१८२. नैरयिको से वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको के दो-दो प्रकार है—उच्छ्वासक— उच्छ्वासपर्याप्ति से पर्याप्त। नोउच्छ्वासक—जिनके उच्छ्वास-पर्याप्ति पूर्ण न हुई हो।

१८३. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—सइंदिया चेव, अणिंदिया चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— सेन्द्रियाश्चैव, अनिन्द्रियाश्चैव यावत् वैमानिकाः।

१८३. नैरयिको से वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं— सइन्द्रिय। अनिन्द्रिय।

१८४. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधा नैरयिका प्रज्ञप्ता., तद्यथा— पर्याप्तकाश्चैव, अपर्याप्तकाश्चैव यावत् वैमानिकाः।

१८४ नैरयिको से वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों के दो-दो प्रकार हैं— पर्याप्तक। अपर्याप्तक।

१८५. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—सण्णी चेव, असण्णी चेव। एवं—पंचेंदिया सव्वे विगलिंदियवज्जा जाव वाणमंतरा।

द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— सज्ञिनश्चैव, असज्ञिनश्चैव। एवम्—पञ्चेन्द्रियाः सर्वे विकलेन्द्रियवर्जा. यावत् वानमन्तराः।

१८५. विकलेन्द्रियों को छोड़कर नैरयिक से वानमन्तर तक के सभी दण्डको के दो-दो प्रकार है— सज्ञी, असज्ञी।[७२]

१८६. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—भासगा चेव, अभासगा चेव। एवमेगिंदियवज्जासव्वे।

द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— भाषकाश्चैव, अभाषकाश्चैव। एव एकेन्द्रियवर्जाः सर्वे।

१८६. एकेन्द्रिय को छोडकर नैरयिक आदि सभी दण्डको के दो-दो प्रकार है— भाषक—भाषापर्याप्ति-युक्त। अभाषक—भाषापर्याप्ति-रहित।

१८७. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा— सम्मद्दिट्ठिया चेव, मिच्छद्दिट्ठिया चेव। एगिंदियवज्जासव्वे।

द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— सम्यग्दृष्टिकाश्चैव, मिथ्यादृष्टिकाश्चैव। एकेन्द्रियवर्जाः सर्वे।

१८७. एकेन्द्रिय को छोडकर नैरयिक आदि सभी दण्डको के दो-दो प्रकार है— सम्यग्दृष्टि। मिथ्यादृष्टि।

१८८. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—परित्तसंसारिता चेव, अणंतसंसारिता चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधा नैरयिका: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा— परीतसंसारिकाश्चैव, अनन्तसंसारिकाश्चैव यावत् वैमानिका:।

१८८. नैरयिक आदि सभी दण्डकों के दो-दो प्रकार हैं—परीतससारी—वे जीव जिनके भव सीमित हो गए हों। अनन्तससारी—वे जीव जिनके भव सीमित न हों।

१८९. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा— संखेज्जकालसमयट्ठितिया चेव, असंखेज्जकालसमयट्ठितिया चेव। एवं—पंचेंदिया एगिंदियविगलिंदियवज्जा जाव वाणमंतरा।

द्विविधा नैरयिका: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा— संख्येयकालस्थितिकाश्चैव, असंख्येयकालस्थितिकाश्चैव। एवम्—पञ्चेन्द्रिया: एकेन्द्रियविकलेन्द्रियवर्जा: यावत् वानमन्तरा:।

१८९. नैरयिक दो प्रकार के है— सख्येयकालसमय की स्थिति वाले। असंख्येयकालसमय की स्थिति वाले। इसी प्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोड़कर वानमन्तर पर्यन्त[८८] सभी पञ्चेन्द्रिय जीव दो-दो प्रकार के है।

१९०. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—सुलभबोधिया चेव, दुलभबोधिया चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधा नैरयिका: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा— सुलभबोधिकाश्चैव, दुर्लभबोधिकाश्चैव यावत् वैमानिका:।

१९०. नैरयिक आदि सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं—सुलभबोधिक, दुर्लभबोधिक।

१९१. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—कण्हपक्खिया चेव, सुक्कपक्खिया चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधा नैरयिका: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा— कृष्णपाक्षिकाश्चैव, शुक्लपाक्षिकाश्चैव यावत् वैमानिका:।

१९१. नैरयिक आदि सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं— कृष्णपाक्षिक शुक्लपाक्षिक।

१९२. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—चरिमा चेव, अचरिमा चेव जाव वेमाणिया।

द्विविधा नैरयिका: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा— चरमाश्चैव, अचरमाश्चैव यावत् वैमानिका:।

१९२. नैरयिक आदि सभी दण्डको के दो-दो प्रकार हैं—चरम, अचरम।

आहोहि-णाण-दंसण-पदं

अधोऽवधि-ज्ञान-दर्शन-पदम्

अधोऽवधि-ज्ञान-दर्शन-पद

१९३. दोहिं ठाणेहिं आया अहेलोगं जाणइ पासइ, तं जहा—
१. समोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया अहेलोगं जाणइ पासइ,
२. असमोहतेणं चेव, अप्पाणेणं आया अहेलोगं जाणइ पासइ।
१,२. आहोहि समोहतासमोहतेणं

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति, तद्यथा—
१ समवहतेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति,
२ असमवहतेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति।
१,२ अधोवधि: समवहताऽसम-

१९३. दो स्थानो से आत्मा अधोलोक को जानता-देखता है—
वैक्रिय आदि समुद्‌घात करके आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता-देखता है।
वैक्रिय आदि समुद्‌घात न करके भी आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता-देखता है।
अधोवधि[९१] (नियत क्षेत्र को जानने वाला

चेव अप्पाणेणं आया अहेलोगं जाणइ पासइ।

वहतेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति।

अवधिज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके या किए बिना भी अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता-देखता है।

१६४. *दोहिं ठाणेहिं आया तिरियलोगं जाणइ पासइ, तं जहा—

१. समोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया तिरियलोगं जाणइ पासइ,

२. असमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया तिरियलोगं जाणइ पासइ।

१,२ आहोहि समोहतासमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया तिरियलोगं जाणइ पासइ।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा तिर्यग्लोकं जानाति पश्यति, तद्यथा—

१. समवहतेन चैव आत्मना आत्मा तिर्यग्लोकं जानाति पश्यति,

२. असमवहतेन चैव आत्मना आत्मा तिर्यग्लोकं जानाति पश्यति।

१,२. अधोऽवधि समवहतासमवहतेन चैव आत्मना आत्मा तिर्यग्लोकं जानाति पश्यति।

१६४. दो स्थानों से आत्मा तिर्यग्लोक को जानता-देखता है—

वैक्रिय आदि समुद्घात करके आत्मा अवधिज्ञान से तिर्यग्लोक को जानता-देखता है।

वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधिज्ञान से तिर्यग्लोक को जानता-देखता है।

अधोवधि (नियत क्षेत्र को जानने वाला अवधिज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके या किए बिना भी अवधिज्ञान से तिर्यग्लोक को जानता-देखता है।

१६५. दोहिं ठाणेहिं आया उड्ढलोगं जाणइ पासइ, तं जहा—

१. समोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया उड्ढलोगं जाणइ पासइ,

२. असमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया उड्ढलोगं जाणइ पासइ।

१,२. आहोहि समोहतासमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया उड्ढलोगं जाणइ पासइ।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा ऊर्ध्वलोकं जानाति पश्यति, तद्यथा—

१. समवहतेन चैव आत्मना आत्मा ऊर्ध्वलोकं जानाति पश्यति,

२. असमवहतेन चैव आत्मना आत्मा ऊर्ध्वलोकं जानाति पश्यति।

१,२. अधोऽवधि समवहतासमवहतेन चैव आत्मना आत्मा ऊर्ध्वलोकं जानाति पश्यति।

१६५. दो स्थानो से आत्मा ऊर्ध्वलोक को जानता-देखता है।

वैक्रिय आदि समुद्घात करके आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता-देखता है।

वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता-देखता है।

अधोवधि (नियत क्षेत्र को जानने वाला अवधिज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके या किए बिना भी अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता-देखता है।

१६६. दोहिं ठाणेहिं आया केवलकप्पं लोगं जाणइ पासइ, तं जहा—

१. समोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया केवलकप्पं लोगं जाणइ पासइ,

२. असमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया केवलकप्पं लोगं जाणइ

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा केवलकल्पं लोकं जानाति पश्यति, तद्यथा—

१. समवहतेन चैव आत्मना आत्मा केवलकल्पं लोकं जानाति पश्यति,

२. असमवहतेन चैव आत्मना आत्मा केवलकल्पं लोकं जानाति

१६६. दो स्थानो से आत्मा सम्पूर्ण लोक को जानता-देखता है—

वैक्रिय आदि समुद्घात करके आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक[६०] को जानता-देखता है—

वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को

पासइ । पश्यति । जानता-देखता है ।

१,२. आहोहि समोहतासमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया केवलकप्पं लोगं जाणइ पासइ ।° १,२. अधोऽवधिः समवहतासमवहतेन चैव आत्मना आत्मा केवलकल्पं लोकं जानाति पश्यति । अधोवधि (नियत क्षेत्र को जानने वाला अवधिज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके या किए बिना भी अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता-देखता है।

१६७. दोहिं ठाणेहिं आता अहेलोगं जाणइ पासइ, तं जहा—
१. विउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता अहेलोगं जाणइ पासइ,
२. अविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता अहेलोगं जाणइ पासइ ।
१,२. आहोहि विउव्वियाविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता अहेलोगं जाणइ पासइ ।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति, तद्यथा—
१. विकृतेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति,
२. अविकृतेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति ।
१,२ अधोऽवधि विकृताऽविकृतेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति ।

१६७. दो स्थानों से आत्मा अधोलोक को जानता-देखता है—
वैक्रियशरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता-देखता है ।
वैक्रियशरीर का निर्माण किए बिना भी आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता-देखता है ।
अधोवधि वैक्रियशरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किए बिना भी अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता-देखता है ।

१६८. *दोहिं ठाणेहिं आता तिरियलोगं जाणइ पासइ, तं जहा—
१. विउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता तिरियलोगं जाणइ पासइ,
२. अविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता तिरियलोगं जाणइ पासइ।
१,२. आहोहि विउव्वियाविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता तिरियलोगं जाणइ पासइ ।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा तिर्यग्लोकं जानाति पश्यति, तद्यथा—
१. विकृतेन चैव आत्मना आत्मा तिर्यग्लोकं जानाति पश्यति,
२. अविकृतेन चैव आत्मना आत्मा तिर्यग्लोकं जानाति पश्यति ।
१,२. अधोऽवधि विकृताऽविकृतेन चैव आत्मना आत्मा तिर्यग्लोकं जानाति पश्यति ।

१६८. दो स्थानों से आत्मा तिर्यग्लोक को जानता-देखता है—
वैक्रियशरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधिज्ञान से तिर्यग्लोक को जानता-देखता है ।
वैक्रियशरीर का निर्माण किए बिना भी आत्मा अवधिज्ञान से तिर्यग्लोक को जानता-देखता है ।
अधोवधि वैक्रियशरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किए बिना भी अवधिज्ञान से तिर्यग्लोक को जानता-देखता है ।

१६६. दोहिं ठाणेहिं आता उड्ढलोगं जाणइ पासइ, तं जहा—
१. विउव्विणं चेव अप्पाणेणं आता उड्ढलोगं जाणइ पासइ,
२. अविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता उड्ढलोगं जाणइ पासइ ।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा ऊर्ध्वलोकं जानाति पश्यति, तद्यथा—
१. विकृतेन चैव आत्मना आत्मा ऊर्ध्वलोकं जानाति पश्यति,
२. अविकृतेन चैव आत्मना आत्मा ऊर्ध्वलोकं जानाति पश्यति ।

१६६. दो स्थानों से आत्मा ऊर्ध्वलोक को जानता-देखता है—वैक्रियशरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता-देखता है ।
वैक्रियशरीर का निर्माण किए बिना भी आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता-देखता है ।

१,२. आहोहि विउव्वियाविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता उड्ढलोगं जाणइ पासइ ।

१,२ अधोऽवधि विकृताऽविकृतेन चैव आत्मना आत्मा ऊर्ध्वलोकं जानाति पश्यति ।

अधोवधि वैक्रियशरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किए बिना भी अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता-देखता है ।

२००. दोहिं ठाणेहिं आता केवलकप्पं लोगं जाणइ पासइ, तं जहा—
१. विउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता केवलकप्पं लोगं जाणइ पासइ,
२. अविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता केवलकप्पं लोगं जाणइ पासइ ।
१,२. आहोहि विउव्वियाविअव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता केवलकप्पं लोगं जाणइ पासइ ।[10]

द्वाभ्या स्थानाभ्या आत्मा केवलकल्पं लोक जानाति पश्यति, तद्यथा—
१. विकृतेन चैव आत्मना आत्मा केवलकल्पं लोकं जानाति पश्यति,
२ अविकृतेन चैव आत्मना आत्मा केवलकल्प लोक जानाति पश्यति ।
१,२ अधोऽवधि विकृताऽविकृतेन चैव आत्मना आत्मा केवलकल्प लोक जानाति पश्यति ।

२००. दो स्थानो से आत्मा सम्पूर्ण लोक को जानता-देखता है—
वैक्रियशरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता-देखता है ।
वैक्रियशरीर का निर्माण किए बिना भी आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता-देखता है ।
अधोवधि वैक्रियशरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किए बिना भी अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता-देखता है ।

देसेण सव्वेण पदं

देशेन सर्वेण पदम्

देशेन सर्वेण पद

२०१. दोहिं ठाणेहिं आया सद्दाइं सुणेति, तं जहा—
देसेणवि आया सद्दाइं सुणेति,
सव्वेणवि आया सद्दाइं सुणेति ।

द्वाभ्यां स्थानाभ्या आत्मा शब्दान् शृणोति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा शब्दान् शृणोति,
सर्वेणापि आत्मा शब्दान् शृणोति ।

२०१. दो प्रकार से आत्मा शब्दो को सुनता है—
शरीर के एक भाग से भी आत्मा शब्दो को सुनता है ।
समूचे शरीर से भी आत्मा शब्दों को सुनता है ।[11]

२०२. दोहिं ठाणेहिं आया रुवाइं पासइ, तं जहा—
देसेणवि आया रूवाइं पासइ,
सव्वेणवि आया रूवाइं पसाइ ।

द्वाभ्यां स्थानाभ्या आत्मा रूपाणि पश्यति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा रूपाणि पश्यति,
सर्वेणापि आत्मा रूपाणि पश्यति ।

२०२. दो प्रकार से आत्मा रूपो को देखता है—
शरीर के एक भाग से भी आत्मा रूपो को देखता है ।
समूचे शरीर से भी आत्मा रूपो को देखता है ।[12]

२०३. दोहिं ठाणेहिं आया गंधाइं अग्घाति, तं जहा—
देसेणवि आया गंधाइं अग्घाति,
सव्वेणवि आया गंधाइं अग्घाति ।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा गन्धान् आजिघ्रति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा गन्धान् आजिघ्रति,
सर्वेणापि आत्मा गन्धान् आजिघ्रति ।

२०३. दो प्रकार से आत्मा गंधों को सूंघता है—
शरीर के एक भाग से भी आत्मा गधों को सूंघता है ।
समूचे शरीर से भी आत्मा गंधों को सूंघता है ।[13]

२०४. दोहिं ठाणेहिं आया रसाइं आसादेति, तं जहा—
देसेणवि आया रसाइं आसादेति,
सव्वेणवि आया रसाइं आसादेति।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा रसान् आस्वादयति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा रसान् आस्वादयति,
सर्वेणापि आत्मा रसान् आस्वादयति।

२०४. दो प्रकार से आत्मा रसों का आस्वाद लेता है—शरीर के एक भाग से भी आत्मा रसों का आस्वाद लेता है।
समूचे शरीर से भी आत्मा रसों का आस्वाद लेता है।[८]

२०५. दोहिं ठाणेहिं आया फासाइं पडिसंवेदेति, तं जहा—
देसेणवि आया फासाइं पडिसंवेदेति,
सव्वेणवि आया फासाइं पडिसंवेदेति।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा स्पर्शान् प्रतिसवेदयति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा स्पर्शान् प्रतिसवेदयति,
सर्वेणापि आत्मा स्पर्शान् प्रतिसवेदयति।

२०५. दो प्रकार से आत्मा स्पर्शों का प्रतिसंवेदन करता है—
शरीर के एक भाग से भी आत्मा स्पर्शों का प्रतिसंवेदन करता है।[८]
समूचे शरीर से भी आत्मा स्पर्शों का प्रतिसवेदन करता है।

२०६. दोहिं ठाणेहिं आया ओभासति, तं जहा—
देसेणवि आया ओभासति,
सव्वेणवि आया ओभासति।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा अवभासते, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा अवभासते,
सर्वेणापि आत्मा अवभासते।

२०६. दो प्रकारों से आत्मा अवभास करता है—शरीर के एक भाग से भी आत्मा अवभास करता है।
समूचे शरीर से भी आत्मा अवभास करता है।[८]

२०७. एवं पभासति, विकुव्वति, परियारेति, 'भासं भासति', आहारेति, परिणामेति, वेदेति, णिज्जरेति।

एवम्—प्रभासते, विकुरुते, परिचारयति, भाषा भाषते, आहरति, परिणामयति, वेदयति, निर्ज्जरयति।

२०७. इसी तरह दो प्रकारों से शरीर के एक भाग से भी और समूचे शरीर से भी आत्मा—प्रभास करता है, वैक्रिय करता है, मैथुन सेवन करता है, भाषा बोलता है, आहार करता है, उसका परिणमन करता है, उसका अनुभव करता है, उसका उत्सर्ग करता है।

२०८. दोहिं ठाणेहिं देवे सद्दाइं सुणेति, तं जहा—
देसेणवि देवे सद्दाइं सुणेति,
सव्वेणवि देवे सद्दाइं सुणेति जाव णिज्जरेति।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां देव शब्दान् शृणोति, तद्यथा—
देशेनापि देव शब्दान् शृणोति,
सर्वेणापि देव शब्दान् शृणोति यावत् निर्ज्जरयति।

२०८ दो स्थानों से देव शब्द सुनता है—
शरीर के एक भाग से भी देव शब्द सुनता है।
समूचे शरीर से भी देव शब्द सुनता है।
इसी प्रकार दो स्थानों से—शरीर के एक भाग से भी और समूचे शरीर से भी देव—प्रभास करता है, वैक्रिय करता है, मैथुन सेवन करता है, भाषा बोलता है, आहार करता है, उसका परिणमन करता है, उसका अनुभव करता है, उसका उत्सर्ग करता है।

सरीर-पदं

२०९. मरुया देवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—एगसरीरी चेव, दुसरीरी चेव।

२१०. एवं—किण्णरा किंपुरिसा गंधव्वा णागकुमारा सुवण्णकुमारा अग्गिकुमारा वायुकुमारा।

२११. देवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा एगसरीरी चेव, दुसरीरी चेव।

शरीर-पदम्

मरुतो देवा द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—एकशरीरिणश्चैव, द्विशरीरिणश्चैव।

एवम्—किन्नराः, किंपुरुषाः, गन्धर्वाः, नागकुमाराः, सुपर्णकुमाराः, अग्निकुमाराः, वायुकुमाराः।

देवा द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—एकशरीरिणश्चैव, द्विशरीरिणश्चैव।

शरीर-पद

२०९. मरुत्‌देव दो प्रकार के है—
एक शरीर वाले।
दो शरीर वाले।

२१०. इसी प्रकार—किन्नर, किंपुरुष, गन्धर्व, नागकुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वायुकुमार ये देव दो-दो प्रकार के हैं—एक शरीर वाले, दो शरीर वाले।

२११. देव दो प्रकार के है—
एक शरीर वाले, दो शरीर वाले।

तइओ उद्देसो

सद्द-पदं

२१२. दुविहे सद्दे पण्णत्ते, तं जहा—भासासद्दे चेव, णोभासासद्दे चेव।

२१३. भासासद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा अक्खरसंबद्धे चेव, णोअक्खरसंबद्धे चेव।

२१४. णोभासासद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—आउज्जसद्दे चेव, णोआउज्जसद्दे चेव।

२१५. आउज्जसद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—तते चेव, वितते चेव।

२१६. तते दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—घणे चेव, सुसिरे चेव।

२१७. °वितते दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—घणे चेव, सुसिरे चेव।°

शब्द-पदम्

द्विविधः शब्द प्रज्ञप्तः, तदयथा—भाषाशब्दश्चैव, नोभाषाशब्दश्चैव।

भाषाशब्द द्विविध प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अक्षरसबद्धश्चैव, नोअक्षरसबद्धश्चैव।

नोभाषाशब्द द्विविधः प्रज्ञप्त, तद्यथा—आतोद्यशब्दश्चैव, नोआतोद्यशब्दश्चैव।

आतोद्यशब्दः द्विविध प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ततश्चैव, विततश्चैव।

ततः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—घनश्चैव, शुषिरश्चैव।

विततः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—घनश्चैव, शुषिरश्चैव।

शब्द-पद

२१२. शब्द दो प्रकार का है—
भाषा-शब्द, नोभाषा-शब्द।

२१३. भाषा-शब्द दो प्रकार का है—
अक्षर सबद्ध—वर्णात्मक।
नोअक्षर सबद्ध।

२१४. नोभाषा-शब्द दो प्रकार का है—
आतोद्यशब्द,
नोआतोद्यशब्द।

२१५. आतोद्य शब्द दो प्रकार का है—
तत, वितत।

२१६. तत शब्द दो प्रकार का है—
घन, शुषिर।

२१७. वितत शब्द दो प्रकार का है—
घन, शुषिर।

२१८. णोआउज्जसद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा— भूसणसद्दे चेव, णोभूसणसद्दे चेव।	नोआतोद्यशब्दः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— भूषणशब्दश्चैव, नोभूषणशब्दश्चैव।	२१८. नोआतोद्य शब्द दो प्रकार का है— भूषणशब्द नोभूषणशब्द।
२१९. णोभूसणसद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा— तालसद्दे चेव, लत्तिआसद्दे चेव।	नोभूषणशब्दः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— तालशब्दश्चैव, लतिकाशब्दश्चैव।	२१९. नोभूषणशब्द दो प्रकार का है— तालशब्द लतिकाशब्द।
२२०. दोहिं ठाणेहिं सद्दुप्पाते सिया, तं जहा— साहण्णंताणं चेव पोग्गलाणं सद्दुप्पाए सिया, भिज्जंताणं चेव पोग्गलाणं सद्दुप्पाए सिया।	द्वाभ्यां स्थानाभ्यां शब्दोत्पातः स्यात्, तद्यथा— संहन्यमानानां चैव पुद्गलानां शब्दोत्पातः स्यात्, भिद्यमानानां चैव पुद्गलानां शब्दोत्पातः स्यात्।	२२०. दो कारणों से शब्द की उत्पत्ति होती है— जब पुद्गल संहति को प्राप्त होते हैं तब शब्द की उत्पत्ति होती है, जैसे— घड़ी का शब्द। जब पुद्गल भेद को प्राप्त होते हैं तब शब्द की उत्पत्ति होती है, जैसे—बांस के फटने का शब्द।

पोग्गल-पदं	**पुद्गल-पदम्**	**पुद्गल-पद**
२२१. दोहिं ठाणेहिं पोग्गला साहण्णंति, तं जहा— सइं वा पोग्गला साहण्णंति, परेण वा पोग्गला साहण्णंति।	द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पुद्गलाः संहन्यन्ते, तद्यथा— स्वयं वा पुद्गलाः संहन्यन्ते, परेण वा पुद्गलाः संहन्यन्ते।	२२१. दो स्थानों से पुद्गल संहत होते हैं— स्वयं—अपने स्वभाव से पुद्गल संहत होते हैं। दूसरे निमित्तों से पुद्गल संहत होते हैं।
२२२. दोहिं ठाणेहिं पोग्गला भिज्जंति, तं जहा— सइं वा पोग्गला भिज्जंति, परेण वा पोग्गला भिज्जंति।	द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पुद्गलाः भिद्यन्ते, तद्यथा— स्वयं वा पुद्गलाः भिद्यन्ते, परेण वा पुद्गलाः भिद्यन्ते।	२२२. दो स्थानों से पुद्गलों का भेद होता है— स्वयं—अपने स्वभाव से पुद्गलों का भेद होता है। दूसरे निमित्तों से पुद्गलों का भेद होता है।
२२३. दोहिं ठाणेहिं पोग्गला परिपडंति, तं जहा— सइं वा पोग्गला परिपडंति, परेण वा पोग्गला परिपडंति।	द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पुद्गलाः परिपतन्ति, तद्यथा— स्वयं वा पुद्गलाः परिपतन्ति, परेण वा पुद्गलाः परिपतन्ति।	२२३. दो स्थानों से पुद्गल नीचे गिरते हैं— स्वयं—अपने स्वभाव से पुद्गल नीचे गिरते हैं। दूसरे निमित्तों से पुद्गल नीचे गिरते हैं।
२२४. *दोहिं ठाणेहिं पोग्गला परिसडंति, तं जहा— सइं वा पोग्गला परिसडंति, परेण वा पोग्गला परिसडंति।	द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पुद्गलाः परिशटंति, तद्यथा— स्वयं वा पुद्गलाः परिशटंति, परेण वा पुद्गलाः परिशटंति।	२२४. दो स्थानों से पुद्गल विकृत होकर नीचे गिरते हैं— स्वयं—अपने स्वभाव से पुद्गल विकृत होकर नीचे गिरते हैं। दूसरे निमित्तों से पुद्गल विकृत होकर नीचे गिरते हैं।

२२५. दोहिं ठाणेहिं पोग्गला विद्धंसंति, तं जहा—
सइं वा पोग्गला विद्धंसंति,
परेण वा पोग्गला विद्धंसंति।

द्वाभ्या स्थानाभ्यां पुद्गला. विध्वसते, तद्यथा—
स्वय वा पुद्गलाः विध्वसंते,
परेण वा पुद्गलाः विध्वसंते।

२२५. दो स्थानों से पुद्गल विध्वस को प्राप्त होते है—
स्वय अपने स्वभाव से पुद्गल विध्वंस को प्राप्त होते हैं। दूसरे निमित्तो से पुद्गल विध्वस को प्राप्त होते है।

२२६. दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा
भिण्णा चेव, अभिण्णा चेव।

द्विविधा पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
भिन्नाश्चैव, अभिन्नाश्चैव।

२२६. पुद्गल दो प्रकार के है—
भिन्न, अभिन्न।

२२७. दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—
भेउरधम्मा चेव,
णोभेउरधम्मा चेव।

द्विविधाः पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
भिदुरधर्माणश्चैव,
नोभिदुरधर्माणश्चैव।

२२७. पुद्गल दो प्रकार के हैं—
भिदुर धर्मवाले,
नोभिदुर धर्मवाले।

२२८. दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—
परमाणुपोग्गला चेव,
णोपरमाणुपोग्गला चेव।

द्विविधा. पुद्गलाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
परमाणुपुद्गलाश्चैव.
नोपरमाणुपुद्गलाश्चैव।

२२८. पुद्गल दो प्रकार के है—
परमाणु पुद्गल,
नोपरमाणु पुद्गल (स्कन्ध)।

२२९. दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—
सुहुमा चेव, बायरा चेव।

द्विविधाः पुद्गला. प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
सूक्ष्माश्चैव, बादराश्चैव।

२२९. पुद्गल दो प्रकार के है—
सूक्ष्म बादर।

२३०. दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—
बद्धपासपुट्ठा चेव,
णोबद्धपासपुट्ठा चेव।

द्विविधा. पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
बद्धपार्श्वस्पृष्टाश्चैव,
नोबद्धपार्श्वस्पृष्टाश्चैव।

२३० पुद्गल दो प्रकार के है—
बद्धपार्श्वस्पृष्ट,
नोबद्धपार्श्वस्पृष्ट।[१०]

२३१. दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—
परियादितच्चेव,
अपरियादितच्चेव।

द्विविधाः पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पर्यादत्ताश्चैव,
अपर्यादत्ताश्चैव।

२३१ पुद्गल दो प्रकार के हैं—
पर्यादत,
अपर्यादत।[११]

२३२. दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—
अत्ता चेव,
अणत्ता चेव।

द्विविधा. पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
आत्ताश्चैव,
अनात्ताश्चैव।

२३२. पुद्गल दो प्रकार के है—
आत्त—जीव के द्वारा गृहीत,
अनात्त—जीव के द्वारा अगृहीत।

२३३. दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—
इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव।
°कंता चेव, अकंता चेव।
पिया चेव, अपिया चेव।
मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव।
मणामा चेव, अमणामा चेव°।

द्विविधा. पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
इष्टाश्चैव, अनिष्टाश्चैव।
कान्ताश्चैव, अकान्ताश्चैव।
प्रियाश्चैव, अप्रियाश्चैव।
मनोज्ञाश्चैव, अमनोज्ञाश्चैव।
मन 'आमा' श्चैव, अमन 'आमा' श्चैव।

२३३ पुद्गल दो प्रकार के है—
इष्ट, अनिष्ट।
कान्त, अकान्त।
प्रिय, अप्रिय।
मनोज्ञ, अमनोज्ञ।
मन के लिए प्रिय, मन के लिए अप्रिय।

इंदिय-विसय-पदं	इन्द्रिय-विषय-पदम्	इन्द्रिय-विषय-पद
२३४. दुविहा सद्दा पण्णत्ता, तं जहा—	द्विविधाः शब्दाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	२३४. शब्द दो-दो प्रकार के हैं—
अत्ता चेव, अणत्ता चेव।	आत्ताश्चैव, अनात्ताश्चैव।	आत्त, अनात्त।
•इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव।	इष्टाश्चैव, अनिष्टाश्चैव।	इष्ट, अनिष्ट।
कंता चेव, अकंता चेव।	कान्ताश्चैव, अकाताश्चैव।	कान्त, अकान्त।
पिया चेव, अपिया चेव।	प्रियाश्चैव, अप्रियाश्चैव।	प्रिय, अप्रिय।
मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव।	मनोज्ञाश्चैव, अमनोज्ञाश्चैव।	मनोज्ञ, अमनोज्ञ।
मणामा चेव, अमणामा चेव°।	मन 'आमा' श्चैव, अमन 'आमा' श्चैव।	मन के लिए प्रिय, मन के लिए अप्रिय।
२३५. दुविहा रूवा पण्णत्ता, तं जहा—	द्विविधानि रूपाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	२३५. रूप दो-दो प्रकार के हैं—
अत्ता चेव, अणत्ता चेव।	आत्तानि चैव, अनात्तानि चैव।	आत्त, अनात्त।
•इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव।	इष्टानि चैव, अनिष्टानि चैव।	इष्ट, अनिष्ट।
कंता चेव, अकंता चेव।	कातानि चैव, अकातानि चैव।	कान्त, अकान्त।
पिया चेव, अपिया चेव।	प्रियानि चैव, अप्रियानि चैव।	प्रिय, अप्रिय।
मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव।	मनोज्ञानि चैव, अमनोज्ञानि चैव।	मनोज्ञ, अमनोज्ञ।
मणामा चेव, अमणामा चेव°।	मन 'आमानि' चैव, अमन 'आमानि' चैव।	मन के लिए प्रिय, मन के लिए अप्रिय।
२३६. •दुविहा गंधा पण्णत्ता, तं जहा—	द्विविधा. गधा. प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	२३६. गन्ध दो-दो प्रकार के है—
अत्ता चेव, अणत्ता चेव।	आत्ताश्चैव, अनात्ताश्चैव।	आत्त, अनात्त।
इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव।	इष्टाश्चैव, अनिष्टाश्चैव।	इष्ट, अनिष्ट।
कंता चेव, अकंता चेव।	कांताश्चैव, अकांताश्चैव।	कान्त, अकान्त।
पिया चेव, अपिया चेव।	प्रियाश्चैव, अप्रियाश्चैव।	प्रिय, अप्रिय।
मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव।	मनोज्ञाश्चैव, अमनोज्ञाश्चैव।	मनोज्ञ, अमनोज्ञ।
मणामा चेव, अमणामा चेव।	मन 'आमा' श्चैव, अमन 'आमा' श्चैव।	मन के लिए प्रिय, मन के लिए अप्रिय।
२३७. दुविहा रसा पण्णत्ता, तं जहा—	द्विविधाः रसाः प्रज्ञप्ता., तद्यथा—	२३७. रस दो-दो प्रकार के है—
अत्ता चेव, अणत्ता चेव।	आत्ताश्चैव, अनात्ताश्चैव।	आत्त, अनात्त।
इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव।	इष्टाश्चैव, अनिष्टाश्चैव।	इष्ट, अनिष्ट।
कंता चेव, अकंता चेव।	कांताश्चैव, अकाताश्चैव।	कान्त, अकान्त।
पिया चेव, अपिया चेव।	प्रियाश्चैव, अप्रियाश्चैव।	प्रिय, अप्रिय।
मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव।	मनोज्ञाश्चैव, अमनोज्ञाश्चैव।	मनोज्ञ, अमनोज्ञ।
मणामा चेव, अमणामा चेव।	मन 'आमा' श्चैव, अमन 'आमा' श्चैव।	मन के लिए प्रिय, मन के लिए अप्रिय।
२३८. दुविहा फासा पण्णत्ता, तं जहा—	द्विविधाः स्पर्शाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	२३८. स्पर्श दो-दो प्रकार के हैं—
अत्ता चेव, अणत्ता चेव।	आत्ताश्चैव, अनात्ताश्चैव।	आत्त, अनात्त।
इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव।	इष्टाश्चैव, अनिष्टाश्चैव।	इष्ट, अनिष्ट।
कंता चेव, अकंता चेव।	कांताश्चैव, अकांताश्चैव।	कान्त, अकान्त।

पिया चेव, अपिया चेव ।	प्रियाश्चैव, अप्रियाश्चैव ।	प्रिय, अप्रिय
मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव ।	मनोज्ञाश्चैव, अमनोज्ञाश्चैव ।	मनोज्ञ, अमनोज्ञ
मणामा चेव, अमणामा चेव ।	मन 'आमा' श्चैव, अमन 'आमा' श्चैव ।	मन के लिए प्रिय, मन के लिए अप्रिय ।
आयार-पदं	**आचार-पदम्**	**आचार-पद**
२३९. दुविहे आयारे पण्णत्ते, तं जहा—णाणायारे चेव, णोणाणायारे चेव ।	द्विविधः आचारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ज्ञानाचारश्चैव, नोज्ञानाचारश्चैव ।	२३९. आचार दो प्रकार का है—ज्ञानाचार, नोज्ञानाचार[९२] ।
२४०. णोणाणायारे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—दंसणायारे चेव, णोदंसणायारे चेव ।	नोज्ञानाचारः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—दर्शनाचारश्चैव, नोदर्शनाचारश्चैव ।	२४०. नोज्ञानाचार दो प्रकार का है—दर्शनाचार नोदर्शनाचार[९३] ।
२४१. णोदंसणायारे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—चरित्तायारे चेव, णोचरित्तायारे चेव ।	नोदर्शनाचारः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—चरित्राचारश्चैव, नोचरित्राचारश्चैव ।	२४१. नोदर्शनाचार दो प्रकार का है—चरित्राचार नोचरित्राचार[९४] ।
२४२. णोचरित्तायारे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—तवायारे चेव, वीरियायारे चेव ।	नोचरित्राचारः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—तपआचारश्चैव, वीर्याचारश्चैव ।	२४२. नोचरित्राचार दो प्रकार का है—तप.आचार वीर्याचार ।[९५]
पडिमा-पदं	**प्रतिमा-पदम्**	**प्रतिमा-पद**
२४३. दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—समाहिपडिमा चेव, उवहाणपडिमा चेव ।	द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते, तद्यथा—समाधिप्रतिमा चैव, उपधानप्रतिमा चैव ।	२४३. प्रतिमा[९६] दो प्रकार की है—समाधिप्रतिमा[९७] उपधानप्रतिमा ।[९८]
२४४. दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—विवेगपडिमा चेव, विउसग्गपडिमा चेव ।	द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते, तद्यथा—विवेकप्रतिमा चैव, व्युत्सर्गप्रतिमा चैव ।	२४४. प्रतिमा दो प्रकार की है—विवेकप्रतिमा[९९] व्युत्सर्गप्रतिमा ।[१००]
२४५. दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—भद्दा चेव, सुभद्दा चेव ।	द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते, तद्यथा—भद्रा चैव, सुभद्रा चैव ।	२४५. प्रतिमा दो प्रकार की है—भद्रा[१०१], सुभद्रा ।[१०२]
२४६. दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—महाभद्दा चेव, सव्वतोभद्दा चेव ।	द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते, तद्यथा—महाभद्रा चैव, सर्वतोभद्रा चैव ।	२४६. प्रतिमा दो प्रकार की है—महाभद्रा[१०३] सर्वतोभद्रा ।[१०४]
२४७. दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—खुड्डिया चेव मोयपडिमा, महल्लिया चेव मोयपडिमा ।	द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते, तद्यथा—क्षुद्रिका चैव 'मोय' प्रतिमा, महती चैव 'मोय' प्रतिमा ।	२४७. प्रतिमा दो प्रकार की है—क्षुद्रकप्रस्रवणप्रतिमा[१०५] महत्प्रस्रवणप्रतिमा ।[१०६]

२४८. दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—जवमज्झा चेव चंदपडिमा, वइरमज्झा चेव चंदपडिमा।

द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते, तद्यथा—यवमध्या चैव चंद्रप्रतिमा, वज्रमध्या चैव चंद्रप्रतिमा।

२४८. प्रतिमा दो प्रकार की है—
यवमध्याचन्द्रप्रतिमा[107]
वज्रमध्याचन्द्रप्रतिमा।[108]

सामाइय-पदं

सामायिक-पदम्

सामायिक-पद

२४९. दुविहे सामाइए पण्णत्ते, तं जहा—अगारसामाइए चेव, अणगारसामाइए चेव।

द्विविधः सामायिकः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अगारसामायिकश्चैव, अनगारसामायिकश्चैव।

२४९. सामायिक दो प्रकार का है—
अगारसामायिक
अनगारसामायिक।

जन्म-मरण-पदं

जन्म-मरण-पदम्

जन्म-मरण-पद

२५०. दोण्हं उववाए पण्णत्ते, तं जहा—देवाणं चेव, णेरइयाणं चेव।

द्वयोरुपपातः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—देवानाञ्चैव, नारकाणाञ्चैव।

२५०. दो का उपपात[109] होता है—
देवताओ का, नैरयिको का।

२५१. दोण्हं उव्वट्टणा पण्णत्ता, तं जहा—णेरइयाणं चेव, भवणवासीणं चेव।

द्वयोरुद्वर्तना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—नैरयिकाणाञ्चैव, भवनवासिनाञ्चैव।

२५१. दो का उद्वर्तन[110] होता है—
नैरयिको का
भवनवासी देवताओ का।

२५२. दोण्हं चयणे पण्णत्ते, तं जहा—जोइसियाणं चेव, वेमाणियाणं चेव।

द्वयोश्च्यवनं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—ज्योतिष्काणाञ्चैव, वैमानिकानाञ्चैव।

२५२. दो का च्यवन[111] होता है—
ज्योतिष्कदेवो का
वैमानिकदेवो का।

२५३. दोण्हं गब्भवक्कंती पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

द्वयोर्गर्भविक्रान्तिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—मनुष्याणाञ्चैव, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव।

२५३. दो की गर्भ-अवक्रान्ति[112] होती है—
मनुष्यो की
पंचेन्द्रियतिर्यञ्चो की।

गब्भत्थ-पदं

गर्भस्थ-पदं

गर्भस्थ-पद

२५४. दोण्हं गब्भत्थाणं आहारे पण्णत्ते, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

द्वयोर्गर्भस्थयोराहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—मनुष्याणञ्चैव, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव।

२५४ दो गर्भ मे रहते हुए आहार लेते है—
मनुष्य
पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च।

२५५. दोण्हं गब्भत्थाणं वुड्ढी पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

द्वयोर्गर्भस्थयोर्वृद्धिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—मनुष्याणाञ्चैव, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव।

२५५. दो की गर्भ मे रहते हुए वृद्धि होती है—
मनुष्यो की
पचेन्द्रियतिर्यञ्चो की।

२५६. °दोण्हं गब्भत्थाणं°—णिवुड्ढी विगुव्वणा गतिपरियाए समुग्घाते कालसंजोगे आयाती मरणे° पण्णत्ते, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव°।

द्वयोर्गर्भस्थयोः—निवृद्धिः विकरणम् गतिपर्यायः समुद्घातः कालसयोगः आयाति मरण प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मनुष्याणाञ्चैव, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव।

२५६ दो की गर्भ मे रहते हुए हानि, विक्रिया, गतिपर्याय, समुद्घात, कालसंयोग, गर्भ से निर्गमन और मृत्यु होती है—
मनुष्यो की
पचेन्द्रियतिर्यञ्चों की[113]।

२५७. दोण्हं छविपव्वा पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्साणं चेव,
पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

द्वयोश्छविपर्वाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मनुष्याणाञ्चैव,
पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव।

२५७. दो के चर्मयुक्त पर्व (सन्धि-बन्धन) होते हैं—मनुष्यों के
पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों के।

२५८. दो सुक्कसोणितसंभवा पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्सा चेव,
पंचिदियतिरिक्खजोणिया चेव।

द्वौ शुक्रशोणितसभवौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—मनुष्याश्चैव,
पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्चैव।

२५८. दो शुक्र और रक्त से उत्पन्न होते है—
मनुष्य
पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च।

ठिति-पदं
स्थिति-पदम्
स्थिति-पद

२५९. दुविहा ठिती पण्णत्ता, तं जहा—
कायट्ठिती चेव,
भवट्ठिती चेव।

द्विविधा स्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कायस्थितिश्चैव,
भवस्थितिश्चैव।

२५९. स्थिति दो प्रकार की है—
कायस्थिति—एक ही काय (जाति) मे निरन्तर जन्म लेना।
भवस्थिति—एक ही जन्म की स्थिति।[११४]

२६०. दोण्हं कायट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्साणं चेव,
पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

द्वयो. कायस्थिति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मनुष्याणाञ्चैव,
पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव।

२६०. दो के कायस्थिति होती है—
मनुष्यों के
पंचेन्द्रियतिर्यञ्चो के।

२६१. दोण्हं भवट्ठिती पण्णता, तं जहा—देवाणं चेव, णेरइयाणं चेव।

द्वयोर्भवस्थिति· प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
देवानाञ्चैव, नैरयिकाणाञ्चैव।

२६१. दो के भवस्थिति होती है—
देवताओ के, नैरयिको के।

आउय-पदं
आयुः-पदम्
आयु-पद

२६२. दुविहे आउए पण्णत्ते, तं जहा—
अद्धाउए चेव, भवाउए चेव।

द्विविध आयु प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
अद्ध्वायुश्चैव, भवायुश्चैव।

२६२. आयुष्य दो प्रकार का है—
अद्धवायुष्य, भवायुष्य।[११५]

२६३. दोण्हं अद्धाउए पण्णत्ते, तं जहा—
मणुस्साणं चेव,
पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

द्वयोरद्ध्वायु· प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
मनुष्याणाञ्चैव,
पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव।

२६३. दो के अद्धवायुष्य होता है—
मनुष्यों के
पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चों के।

२६४. दोण्हं भवाउए पण्णत्ते, तं जहा—
देवाणं चेव, णेरइयाणं चेव।

द्वयोर्भवायु· प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
देवानाञ्चैव, नैरयिकाणाञ्चैव।

२६४. दो के भवायुष्य होता है—
देवताओं के, नैरयिकों के।

कम्म-पदं
कर्म-पदम्
कर्म-पद

२६५. दुविहे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा—
पदेसकम्मे चेव,
अणुभावकम्मे चेव।

द्विविधं कर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
प्रदेशकर्म चैव, अनुभावकर्म चैव।

२६५. कर्म दो प्रकार का है—
प्रदेशकर्म, अनुभावकर्म।[११६]

२६६. दो अहाउयं पालेंति, तं जहा—
देवच्चेव, णेरइयच्चेव।

द्वौ यथायुः पालयतः, तद्यथा—
देवश्चैव, नैरयिकश्चैव।

२६६. दो यथायु (पूर्णायु)[११७] का पालन करते हैं—देव, नैरयिक।

२६७. दोण्हं आउय-संवट्टए पण्णत्ते, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

द्वयोरायुः—संवर्त्तकः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—मनुष्याणाञ्चैव, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्चैव।

२६७. दो के आयुष्य का संवर्त्तन[१८] (अकाल मरण) होता है—मनुष्यो के पचेन्द्रियतिर्यंचो के।

खेत्त-पदं

क्षेत्र-पदम्

क्षेत्र-पद

२६८. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेस-मणाणत्ता अण्णमण्णं णातिवट्टंति आयाम-विक्खंभ-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—भरहे चेव, एरवए चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे द्वे वर्षे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये अविशेषे अनानात्वे-अन्योन्य नातिवर्तेते आयाम-विष्कम्भ-सस्थान-परिणाहेन, तद्यथा—भरत चैव, ऐरवतं चैव।

२६८. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण मे दो क्षेत्र है—भरत—दक्षिण मे, ऐरवत—उत्तर मे। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है। नगर-नदी आदि की दृष्टि से उनमे कोई विशेष (भेद) नही है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमे नानात्व नही है। वे लम्बाई, चौडाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२६९. एवमेएणमभिलावेणं—हेमवते चेव, हेरण्णवते चेव। हरिवासे चेव, रम्मयवासे चेव।

एवमेतेनअभिलापेन—हैमवतं चैव, हैरण्यवत चैव। हरिवर्ष चैव, रम्यकवर्ष चैव।

२६९. इसी प्रकार हैमवत, हैरण्यवत, हरि और रम्यकक्षेत्र की स्थिति भी भरत और ऐरवत के समान है—

हैमवत, हरि } दक्षिण मे।

हैरण्यवत, रम्यक } उत्तर मे।

२७०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं दो खेत्ता पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेस॰ मणाणत्ता अण्णमण्णं णातिवट्टंति आयाम-विक्खंभ-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा°—पुव्वविदेहे चेव, अवरविदेहे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्य-पाश्चात्ये द्वे क्षेत्रे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये अविशेषे अनानात्वे अन्योन्य नातिवर्तेते आयाम-विष्कम्भ-सस्थान-परिणाहेन, तद्यथा—पूर्वविदेहश्चैव, अपरविदेहश्चैव।

२७०. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के पूर्व-पश्चिम मे दो क्षेत्र है—पूर्वविदेह—पूर्व मे। अपरविदेह—पश्चिम मे। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है। नगर-नदी आदि की दृष्टि से उनमें कोई विशेष (भेद) नही है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमे नानात्व नहीं है। वे लम्बाई, चौड़ाई, संस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।

२७१. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो कुराओ पण्णत्ताओ—बहुसमतुल्लाओ जाव, देवकुरा चेव, उत्तरकुरा चेव।

तत्थ णं दो महतिमहालया महादुमा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णाइवट्टंति आयाम-विक्खंभुच्चत्तोव्वेह-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—कूडसामली चेव, जंबू चेव सुदंसणा।

तत्थ णं दो देवा महड्डिया •महज्जुइया महाणुभागा महायसा महाबला° महासोक्खा पलिओवमट्ठितीया परिवसंति तं, जहा—गरुले चेव वेणुदेवे, अणाढिते चेव जंबुद्दीवाहिवती।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे द्वौ कुरू प्रज्ञप्तौ—
बहुसमतुल्यौ यावत्,
देवकुरुश्चैव,
उत्तरकुरुश्चैव।

तत्र द्वौ महातिमहान्तौ माहद्रुमौ प्रज्ञप्तौ—
बहुसमतुल्यौ अविशेषौ अनानात्वौ अन्योन्य नातिवर्तेते आयाम-विष्कम्भोच्चत्वोद्वेध-सस्थान-परिणाहेन, तद्यथा—
कूटशाल्मली चैव, जम्बू चेव सुदर्शना।
तत्र द्वौ देवौ महर्धिकौ महाद्युतिकौ महानुभागौ महायशसौ महाबलौ महासौख्यौ पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, तद्यथा—
गरुडश्चैव वेणुदेवः,
अनादृतश्चैव, जम्बूद्वीपाधिपतिः।

२७१. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण में दो कुरु हैं—देवकुरु—दक्षिण मे। उत्तरकुरु—उत्तर मे। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं। नगर-नदी आदि की दृष्टि से उनमे कोई विशेष (भेद) नही है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमे नानात्व नही है। वे लम्बाई, चौड़ाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।
वहा (देवकुरु मे) कूटशाल्मली और सुदर्शना जम्बू नाम के दो अतिविशाल महाद्रुम है। वे दोनो प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है। उनमे कोई विशेष (भेद) नही है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमें नानात्व नहीं है। वे लम्बाई, चौडाई, ऊंचाई, गहराई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते। उन पर महान् ऋद्धि वाले, महान् द्युति वाले, महान् शक्ति वाले, महान् यश वाले, महान् बल वाले, महान् सुख को भोगने वाले और एक पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते है—कूट शाल्मली पर सुपर्णकुमार जाति का वेणुदेव और सुदर्शना पर जम्बूद्वीप का अधिकारी 'अनादृत देव'।

पव्वय-पदं

२७२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासहर-पव्वया पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णातिवट्टंति आयाम-विक्खंभुच्चत्तोव्वेह-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—चुल्लहिमवंते चेव, सिहरिच्चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे द्वौ वर्षधरपर्वतौ प्रज्ञप्तौ—
बहुसमतुल्यौ अविशेषौ अनानात्वौ अन्योन्य नातिवर्तेते आयाम-विष्कम्भोच्चत्वोद्वेध-सस्थान-परिणाहेन तद्यथा—
क्षुल्लहिमवाँश्चैव, शिखरी चैव,

२७२ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण मे दो वर्षधर पर्वत हैं—क्षुल्लहिमवान्—दक्षिण मे। शिखरी—उत्तर मे। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है। उनमे कोई विशेष (भेद) नही है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमे नानात्व नही हैं। वे लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई, गहराई, संस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२७३. एवं—महाहिमवंते चेव, रुप्पिच्चेव।
एवं—णिसढे चेव, णीलवंते चेव।

एवम्—महाहिमवांश्चैव, रुक्मी चैव।
एवम्—निषधश्चैव, नीलवांश्चैव।

२७३. इसी प्रकार महाहिमवान्, रुक्मी, निषध और नीलवान् पर्वत की स्थिति क्षुल्लहिमवान् और शिखरी के समान है—
महाहिमवान्, निषध—दक्षिण में।
रुक्मी, नीलवान्—उत्तर में।

२७४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं हेमवत-हेरण्णवतेसु वासेसु दो वट्टवेयड्ड-पव्वता पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता *अण्णमण्णं णातिवट्टंति आयाम-विक्खंभुच्चत्तोव्वेह-संठाण-परिणाहेणं तं जहा—
सद्दावाती चेव, वियडावाती चेव।
तत्थ णं दो देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—साती चेव, पभासे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे हैमवत-हैरण्यवतयोः वर्षयोः द्वौ वृत्तवैताढ्यपर्वतौ प्रज्ञप्तौ—
बहुसमतुल्यौ अविशेषौ अनानात्वौ अन्योन्यं नातिवर्तेते आयाम-विष्कम्भोच्चत्वोद्वेध-संस्थान-परिणाहेन, तद्यथा—
शब्दापाती चैव, विकटापाती चैव।
तत्र द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत् पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, तद्यथा—
स्वातिश्चैव, प्रभासश्चैव।

२७४. जम्बूद्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे हैमवत क्षेत्र मे शब्दापाती नाम का वृत्त वैताढ्य पर्वत है और उत्तर मे ऐरण्यवत क्षेत्र मे विकटापाती नाम का वृत्त वैताढ्य पर्वत है।
वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है। उनमे कोई विशेष (भेद) नही है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमे नानात्व नही है। वे लम्बाई, चौडाई, ऊंचाई, गहराई, संस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।
उन पर महान् ऋद्धि वाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते है—शब्दापाती पर स्वातीदेव और विकटापाती पर प्रभासदेव।

२७५. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं हरिवास-रम्मएसु वासेसु दो वट्टवेयड्डपव्वया पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा—गंधावाती चेव, मालवंतपरियाए चेव।
तत्थ णं दो देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—अरुणे चेव, पउमे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे हरिवर्ष-रम्यकयोः वर्षयोः द्वौ वृत्तवैताढ्यपर्वतौ प्रज्ञप्तौ—
बहुसमतुल्यौ यावत्, तद्यथा—
गंधापाती, चैव, माल्यवत्पर्यायश्चैव।
तत्र द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत् पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, तद्यथा—
अरुणश्चैव, पद्मश्चैव।

२७५. जम्बूद्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे हरि क्षेत्र मे गन्धापाती नाम का वृत्त वैताढ्य पर्वत है और उत्तर मे रम्यक् क्षेत्र मे माल्यवत्पर्याय नाम का वृत्त वैताढ्य पर्वत है।
वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, ऊंचाई, गहराई, संस्थान और परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।
उन पर महान् ऋद्धिवाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं—गंधापाती पर अरुणदेव।
माल्यवत्पर्याय पर पद्मदेव।

२७६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं देवकुराए कुराए पुव्वावरे पासे, एत्थ णं आसक्खंधगसरिसा अद्धचंद-संठाण-संठिया दो वक्खारपव्वया पण्णत्ता— बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा— सोमणसे चेव विज्जुप्पभे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे देवकुरौ कुरौ पूर्वापरस्मिन् पार्श्वे, अत्र अश्व-स्कन्धक-सदृशौ अर्धचन्द्र-सस्थान-संस्थितौ द्वौ वक्षस्कारपर्वतौ प्रज्ञप्तौ— बहुसमतुल्यौ यावत्, तद्यथा— सौमनसश्चैव, विद्युत्प्रभश्चैव।

२७६. जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण मे देवकुरु के पूर्व पार्श्व में सौमनस और पश्चिम पार्श्व में विद्युत्प्रभ नाम के दो वक्षार पर्वत हैं। वे अश्वस्कन्ध के सदृश (आदि में निम्न तथा अन्त में उन्नत) और अर्द्धचन्द्र के आकार वाले हैं।
वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई, गहराई, संस्थान और परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।

२७७. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं उत्तरकुराए कुराए पुव्वावरे पासे, एत्थ णं आसक्खंधगसरिसा अद्धचंद-संठाण-संठिया दो वक्खारपव्वया पण्णत्ता— बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा— गंधमायणे चेव, मालवंते चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे उत्तरकुरौ कुरौ पूर्वापरस्मिन् पार्श्वे, अत्र अश्व-स्कन्धक-सदृशौ अर्धचन्द्र-सस्थान-सस्थितौ द्वौ वक्षस्कारपर्वतौ प्रज्ञप्तौ—बहुसमतुल्यौ यावत्, तद्यथा— गन्धमादनश्चैव, माल्यवाश्चैव।

२७७. जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में उत्तरकुरु के पूर्व पार्श्व मे गन्धमादन और पश्चिम पार्श्व मे माल्यवत् नाम के दो वक्षार पर्वत हैं। वे अश्वस्कध के सदृश (आदि में निम्न तथा अन्त मे उन्नत) और अर्द्धचन्द्र के आकार वाले है।
वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है। यावत् वे लम्बाई, चौड़ाई, ऊचाई, गहराई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२७८. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो दीहवेयड्ढ-पव्वया पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा— भारहे चेव दीहवेयड्ढे, एरवते चेव दीहवेयड्ढे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे द्वौ दीर्घवैताढ्यपर्वतौ प्रज्ञप्तौ— बहुसमतुल्यौ यावत् तद्यथा— भारतश्चैव दीर्घवैताढ्यः, ऐरवतश्चैव दीर्घवैताढ्य.।

२७८ जम्बूद्वीप द्वीप मे दो दीर्घ वैताढ्य पर्वत हैं— मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग—भरत मे। मन्दर पर्वत के उत्तर भाग—ऐरवत् में। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है, यावत् वे लम्बाई, चौड़ाई, ऊचाई, गहराई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

गुहा-पदं

गुहा-पदम्

गुहा-पद

२७९. भारहए णं दीहवेयड्ढे दो गुहाओ पण्णत्ताओ— बहुसमतुल्लाओ अविसेस-मणाणत्ताओ अण्णमण्णं णाति-

भारतके दीर्घवैताढ्ये द्वे गुहे प्रज्ञप्ते— बहुसमतुल्ये अविशेषे अनानात्वे अन्योऽन्य नातिवर्तेते आयाम-विष्कम्भोच्चत्व-सस्थान-परिणाहेन,

२७९. भरत के दीर्घ वैताढ्य पर्वत में तमिस्रा और खण्ड प्रपात नाम की दो गुफाएं है। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है। उनमें कोई विशेष (भेद) नही

वट्टंति आयाम-विक्खंभुच्चत्त-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—
तिमिसगुहा चेव,
खंडगप्पवायगुहा चेव।
तत्थ णं दो देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—
कयमालए चेव, णट्टमालए चेव।

तद्यथा—तमिस्रगुहा चैव,
खण्डक-प्रपातगुहा चैव।
तत्र द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत् पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, तद्यथा—
कृतमालकश्चैव, नृत्तमालकश्चैव।

है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमें नानात्व नही है। वे लम्बाई, चौडाई, ऊंचाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करती।
वहा महान् ऋद्धि वाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते है—तमिस्रा मे—कृतमालक देव और खण्ड प्रपात मे—नृत्तमालक देव।

२८०. एरवए णं दीहवेयड्डे दो गुहाओ पण्णत्ताओ—जाव, तं जहा—
कयमालए चेव, णट्टमालए चेव।

ऐरवते दीर्घवैताढ्ये द्वे गुहे प्रज्ञप्ते—यावत्, तद्यथा—
कृतमालकश्चैव, नृत्तमालकश्चैव।

२८०. ऐरवत के दीर्घ वैताढ्य पर्वत मे तमिस्रा और खण्ड प्रपात नाम की दो गुफाए है। वहां दो देव रहते हैं—
तमिस्रा मे—कृतमालक देव
खण्ड प्रपात मे—नृत्तमालक देव।

कूड-पदं

२८१. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंते वासहर-पव्वए दो कूडा पण्णत्ता—
बहुसमतुल्ला जाव विक्खंभुच्चत्त-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—
चुल्लहिमवंतकूडे चेव,
वेसमणकूडे चेव।

२८२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं महाहिमवंते वासहर-पव्वए दो कूडा पण्णत्ता—बहुसम-तुल्ला जाव, तं जहा—
महाहिमवंतकूडे चेव,
वेरुलियकूडे चेव।

२८३. एवं—णिसढे वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा—णिसढकूडे चेव,
रुयगप्पभे चेव।

कूट-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे क्षुल्लहिमवति वर्षधरपर्वते द्वे कूटे प्रज्ञप्ते—
बहुसमतुल्ये यावत् विषकम्भोच्चत्व-सस्थान- परिणाहेन, तदयथा—
क्षुल्लहिमवत्कूटञ्चैव,
वैश्रमणकूटञ्चैव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्स पर्वतस्य दक्षिणे महाहिमवति वर्षधरपर्वते द्वे कूटे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तदयथा—
महाहिमवत्कूटञ्चैव, वैडूर्यकूटञ्चैव।

एवम्—निषधे वर्षधरपर्वते द्वे कूटे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तदयथा—
निषधकूटञ्चैव, रुचकप्रभकूटञ्चैव।

कूट-पद

२८१. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे क्षुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत के दो कूट [शिखर] है—क्षुल्लहिमवान् कूट और वैश्रमण कूट।
वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, ऊंचाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२८२ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के दो कूट हैं—महाहिमवान् कूट, वैडूर्य कूट।
वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, ऊंचाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२८३. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे निषध-वर्षधर पर्वत के दो कूट है—
निषध कूट, रुचकप्रभ कूट।
वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा

सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, ऊंचाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२८४. **जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं णीलवंते वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा—णीलवंतकूडे चेव, उवदंसणकूडे चेव।**

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे नीलवति वर्षधरपर्वते द्वे कूटे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा—नीलवत्कूटञ्चैव, उपदर्शनकूटञ्चैव।

२८४. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर में नीलवान् वर्षधर पर्वत के दो कूट है—नीलवान् कूट, उपदर्शन कूट। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है, यावत् वे लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२८५. एवं—रुप्पिम्मि वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा—रुप्पिकूडे चेव, मणिकंचणकूडे चेव।

एवम्—रुक्मिणि वर्षधरपर्वते द्वे कूटे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा—रुक्मिकूटञ्चैव, मणिकाञ्चनकूटञ्चैव।

२८५ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर मे रुक्मी वर्षधर पर्वत के दो कूट है—रुक्मी कूट, मणिकाञ्चन कूट। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, ऊंचाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२८६. एवं—सिहरिम्मि वासहरपव्वते दो कूडा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा—सिहरिकूडे चेव, तिगिंछिकूडे चेव।

एवम्—शिखरिणि वर्षधरपर्वते द्वे कूटे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा—शिखरिकूटञ्चैव, तिगिञ्छिकूटञ्चैव।

२८६. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर मे शिखरी वर्षधर पर्वत के दो कूट हैं—शिखरी कूट, तिगिंछि कूट। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, ऊंचाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

महादह-पदं

२८७. **जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं चुल्लहिमवंत-सिहरीसु वासहरपव्वएसु दो महद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णातिवट्टंति आयाम विक्खंभ-उव्वेह-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—पउमद्दहे चेव, पोंडरीयद्दहे चेव।**

महाद्रह-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे क्षुल्लहिमवच्छिखरिणोः वर्षधर-पर्वतयोः द्वौ महाद्रहौ प्रज्ञप्तौ—बहुसमतुल्यौ अविशेषौ अनानात्वौ अन्योन्यं नातिवर्तेते आयाम-विष्कम्भोद्वेध-संस्थान-परिणाहेन, तद्यथा—पद्मद्रहश्चैव, पुण्डरीकद्रहश्चैव।

महाद्रह-पद

२८७. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण में क्षुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत पर पद्मद्रह और उत्तर मे शिखरी वर्षधर पर्वत पर पौंडरीक द्रह नाम के दो महान् द्रह है—वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं। उनमे कोई विशेष (भेद) नही है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमे कोई नानात्व नही है। वे लम्बाई,

तत्थ णं दो देवयाओ महिड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति तं जहा—
सिरी चेव, लच्छी चेव।

तत्र द्वे देवते महर्द्धिके यावत् पल्योपमस्थितिके परिवसतः तद्यथा—
श्रीश्चैव, लक्ष्मीश्चैव।

चौड़ाई, गहराई संस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते। वहां महान् ऋद्धि वाली यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाली दो देविया रहती है—
पद्मद्रह में श्री, पौंडरीकद्रह मे लक्ष्मी।

२८८. एवं—महाहिमवंत-रुप्पीसु वासहरपव्वएसु दो महद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा—महापउमद्दहे चेव, महापोंडरीयद्दहे चेव।
तत्थ णं दो देवताओ हिरिच्चेव बुद्धिच्चेव।

एवम्—महाहिमवत् रुक्मिणोः वर्षधर-पर्वतयोः द्वौ महाद्रहौ प्रज्ञप्तौ—बहुसमतुल्यौ यावत्, तद्यथा—
महापद्मद्रहश्चैव,
महापुण्डरीकद्रहश्चैव।
तत्र द्वे देवते ह्रीश्चैव, बुद्धिश्चैव।

२८८. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे महाहिमवान् वर्षधर पर्वत पर महापद्मद्रह और उत्तर मे रुक्मी वर्षधर पर्वत पर महापौंडरीकद्रह नाम के दो महान् द्रह हैं। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है, यावत् वे लम्बाई, चौड़ाई, गहराई, संस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते। वहां दो देविया रहती है—महापद्मद्रह मे ह्री और महापौंडरीक द्रह मे बुद्धि।

२८९. एवं—णिसढ-णीलवंतेसु तिगिंछिद्दहे चेव, केसरिद्दहे चेव।
तत्थ णं दो देवताओ धिती चेव, कित्ती चेव।

एवम्—निषध-नीलवतोः तिगिञ्छिद्रहश्चैव केसरीद्रहश्चैव।
तत्र द्वे देवते धृतिश्चैव, कीर्तिश्चैव।

२८९. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे निषध वर्षधर पर्वत पर तिगिछिद्रह और उत्तर मे नीलवान् वर्षधर पर्वत पर केसरीद्रह नाम के दो महान् द्रह है यावत् वहा एक पल्योपम की स्थिति वाली दो देविया रहती हैं—
तिगिछि द्रह मे धृति, केसरी द्रह मे कीर्ति।

महाणदी-पदं

२९०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं महाहिमवंताओ वासहरपव्वयाओ महापउमद्दहाओ दहाओ दो महाणईओ पवहंति, तं जहा—
रोहियच्चेव, हरिकंतच्चेव।

२९१. एवं—णिसढाओ वासहरपव्वताओ तिगिंछिद्दहाओ दहाओ दो महाणईओ पवहंति, तं जहा—
हरिच्चेव, सीतोदच्चेव।

महानदी-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे महाहिमवतः वर्षधरपर्वतात् महापद्मद्रहात् द्रहात् द्वे महानद्यौ प्रवहतः, तद्यथा—
रोहिता चैव, हरिकान्ता चैव।

एवम्—निषधात् वर्षधरपर्वतात् तिगिञ्छिद्रहात् द्रहात् द्वे महानद्यौ प्रवहतः, तद्यथा—
हरिच्चैव, शीतोदा चैव।

महानदी-पद

२९० जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के महापद्मद्रह से रोहिता और हरिकान्ता नाम की दो महानदियां प्रवाहित होती हैं।

२९१. जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण मे निषध वर्षधर पर्वत के तिगिछि द्रह से हरित् और सीतोदा नाम की दो महानदियां प्रवाहित होती हैं।

२९२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं णीलवंताओ वासहर-पव्वताओ केसरिद्दहाओ दहाओ दो महाणईओ पवहंति, तं जहा— सीता चेव, णारिकंता चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे नीलवतः वर्षधरपर्वतात् केशरीद्रहात् द्रहात् द्वे महानद्यौ प्रवहतः तद्यथा— शीता चैव, नारीकान्ता चैव।

२९२. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर मे नीलवान् वर्षधर पर्वत के केसरीद्रह से सीता और नारीकान्ता नाम की दो महा-नदियां प्रवाहित होती है।

२९३. एवं—रुप्पीओ वासहरपव्वताओ महापोंडरीयद्दहाओ दहाओ दो महाणईओ पवहंति, तं जहा— णरकंता चेव, रुप्पकूला चेव।

एवम्—रुक्मिणः वर्षधरपर्वतात् महापुण्डरीकद्रहात् द्रहात् द्वे महानद्यौ प्रवहतः, तद्यथा— नरकान्ता चैव, रूप्यकूला चैव।

२९३. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर में रुक्मी वर्षधर पर्वत के महापोंडरीक द्रह से नरकान्ता और रूप्यकूला नाम की दो महानदियां प्रवाहित होती है।

पवाय-दह-पदं

प्रपात-द्रह-पदम्

प्रपात-द्रह-पद

२९४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं भरहे वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला, तं जहा— गंगप्पवायद्दहे चेव, सिंधुप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे भरते वर्षे द्वौ प्रपातद्रहौ प्रज्ञप्तौ— बहुसमतुल्यौ, तद्यथा— गङ्गाप्रपातद्रहश्चैव, सिन्धुप्रपातद्रहश्चैव।

२९४. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण में भरत क्षेत्र मे दो प्रपात द्रह है— गंगाप्रपातद्रह, सिन्धुप्रपातद्रह। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, गहराई, संस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२९५. एवं—हेमवए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला, तं जहा—रोहियप्पवायद्दहे चेव, रोहियंसप्पवायद्दहे चेव।

एवम्—हैमवते वर्षे द्वौ प्रपातद्रहौ प्रज्ञप्तौ—बहुसमतुल्यौ, तद्यथा— रोहितप्रपातद्रहश्चैव, रोहितांशप्रपातद्रहश्चैव।

२९५. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे हैमवत क्षेत्र मे दो प्रपात द्रह हैं— रोहितप्रपातद्रह, रोहितांशप्रपातद्रह। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है, यावत् वे लम्बाई, चौड़ाई, संस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।

२९६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं हरिवासे वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला, तं जहा—हरिपवायद्दहे चेव, हरिकंतप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे हरिवर्षे वर्षे द्वौ प्रपातद्रहौ प्रज्ञप्तौ— बहुसमतुल्यौ, तद्यथा— हरित्प्रपातद्रहश्चैव, हरिकान्तप्रपातद्रहश्चैव।

२९६. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे 'हरि' क्षेत्र मे दो प्रपातद्रह हैं— हरित्प्रपातद्रह, हरिकान्तप्रपातद्रह। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौड़ाई, संस्थान और परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२९७. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं महाविदेहे

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे महाविदेहे वर्षे द्वौ प्रपातद्रहौ

२९७. जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण मे महाविदेह क्षेत्र में दो प्रपात

वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता— बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा— सीतप्पवायद्दहे चेव, सीतोदप्पवायद्दहे चेव।

प्रज्ञप्तौ—बहुसमतुल्यौ यावत् तद्यथा— शीताप्रपातद्रहश्चैव, शीतोदाप्रपातद्रहश्चैव।

द्रह हैं—सीताप्रपातद्रह, सीतोदाप्रपातद्रह। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२९८. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रम्मए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा—णरकंतप्पवायद्दहे चेव, णारिकंतप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे रम्यके वर्षे द्वौ प्रपातद्रहौ प्रज्ञप्तौ— बहुसमतुल्यौ यावत्, तद्यथा— नरकान्तप्रपातद्रहश्चैव, नारीकान्तप्रपातद्रहश्चैव।

२९८. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर मे रम्यक क्षेत्र मे दो प्रपातद्रह है— नरकान्ताप्रपातद्रह, नारीकान्ताप्रपातद्रह। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

२९९. एवं—हेरण्णवते वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा—सुवण्णकूलप्पवायद्दहे चेव, रुप्पकूलप्पवायद्दहे चेव।

एवम्—हैरण्यवते वर्षे द्वौ प्रपातद्रहौ प्रज्ञप्तौ—बहुसमतुल्यौ यावत्, तद्यथा—स्वर्णकूलप्रपातद्रहश्चैव, रूप्यकूलप्रपातद्रहश्चैव।

२९९. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर मे हैरण्यवत क्षेत्र मे दो प्रपात द्रह है— सुवर्णकूलप्रपातद्रह, रूप्यकूलप्रपातद्रह। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, सस्थान और परिधि म एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

३००. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं एरवए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा—रत्तप्पवायद्दहे चेव, रत्तावईपवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे ऐरवते वर्षे द्वौ प्रपातद्रहौ प्रज्ञप्तौ— बहुसमतुल्यौ यावत्, तद्यथा— रक्ताप्रपातद्रहश्चैव, रक्तवतीप्रपातद्रहश्चैव।

३००. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर मे ऐरवत क्षेत्र मे दो प्रपात द्रह है— रक्ताप्रपातद्रह, रक्तवतीप्रपातद्रह। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है, यावत् वे लम्बाई, चौड़ाई, गहराई, सस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

महाणदी-पदं

महानदी-पदम्

महानदी-पद

३०१. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं भरहे वासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ—बहुसमतुल्लाओ जाव, तं जहा— गंगा चेव, सिंधू चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे भरते वर्षे द्वे महानद्यौ प्रज्ञप्ते— बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा— गङ्गा चैव, सिन्धुश्चैव।

३०१. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे भरत-क्षेत्र मे दो महानदियां है—गगा, सिन्धू। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है, यावत् वे लम्बाई, चौडाई, गहराई, सस्थान और परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करतीं।

३०२. एवं—जहा पवातद्दहा, एवं णईओ भाणियव्वाओ जाव एरवए वासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ—बहुसमतुल्लाओ जाव, तं जहा—रत्ता चेव, रत्तावती चेव।

एवम्—यथा प्रपातद्रहाः, एवं नद्यः भणितव्याः यावत् ऐरवते वर्षे द्वे महानद्यौ प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा—रक्ता चैव, रक्तवती चैव।

३०२. प्रपातद्रह की भांति नदियां वक्तव्य हैं।

कालचक्क-पदं

कालचक्र-पदम्

कालचक्र-पद

३०३. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसम-दूसमाए समाए दो सागरोवम-कोडाकोडीओ काले होत्था।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयोः वर्षयोः अतीतायां उत्सर्पिण्यां सुषमदुःषमायां द्वे सागरोपमकोटिकोटी: कालः अभवत्।

३०३. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे अतीत उत्सर्पिणी के सुषम-दुषमा आरे का काल दो कोटी-कोटी सागरोपम था।

३०४. °जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसमदूसमाए समाए दो सागरोवमकोडाकोडीओ काले पण्णत्ते।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो. वर्षयो· अस्या अवसर्पिण्या सुषमदुःषमाया समाया द्वे सागरोपमकोटिकोटी कालः प्रज्ञप्त।

३०४. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे वर्तमान अवसर्पिणी के सुषम-दुषमा आरे का काल दो कोटी-कोटी सागरोपम कहा गया है।

३०५. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सुसम-दूसमाए समाए दो सागरोवम-कोडाकोडीओ काले° भविस्सति।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो· वर्षयो· आगमिष्यन्त्या उत्सर्पिण्या सुषम-दुःषमाया समाया द्वे सागरोपमकोटि-कोटी काल· भविष्यति।

३०५. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी के सुषम-दुषमा आरे का काल दो कोटी-कोटी सागरोपम होगा।

३०६. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए मणुया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। दोण्णि य पलिओवमाइं परमाउं पालइत्था।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो. अतीताया उत्सर्पिण्या सुषमाया समाया मनुजा द्वे गव्यूती ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवन्। द्वे च पल्योपमे परमायु· अपालयन्।

३०६ जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे अतीत उत्सर्पिणी सुषमा नामक आरे मे मनुष्यो की ऊंचाई दो गाऊ की और उत्कृष्ट आयु दो पल्योपम की थी।

३०७. एवमिमीसे ओसप्पिणीए जाव पालयित्था।

एवम् अस्यां अवसर्पिण्या यावत् अपालयन्।

३०७. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे वर्तमान अवसर्पिणी के सुषमा नामक आरे मे मनुष्यो की ऊंचाई दो गाऊ की और उत्कृष्ट आयु दो पल्योपम की थी।

३०८. एवमागमेस्साए उस्सप्पिणीए जाव पालयिस्संति।

एवम् आगमिष्यन्त्यां उत्सर्पिण्या यावत् पालयिष्यन्ति।

३०८. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी के सुषमा नामक आरे में मनुष्यों की ऊंचाई दो गाऊ की और उत्कृष्ट आयु दो पल्योपम की होगी।

सलागा-पुरिस-वंस-पदं

३०९. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो अरहंतवंसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।

३१०. °जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो चक्कवट्टि-वंसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।

३११. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो दसारवंसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।°

शलाका-पुरुष-वंश-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयोः वर्षयोः एकसमये एकयुगे द्वौ अर्हद्वशौ उदपदिषाता वा उत्पद्येते वा उत्पत्स्येते वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो: वर्षयो: एकसमये एकयुगे द्वौ चक्रवर्त्तिवंशौ उदपदिषातां वा उत्पद्येते वा उत्पत्स्येते वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो: एकसमये एकयुगे द्वौ दसारवशौ उदपदिषाता वा उत्पद्येते व उत्पत्स्येते वा।

शलाका-पुरुष-वंश-पद

३०९. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे एक समय मे एक युग मे अरहतों के दो वश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते है और उत्पन्न होगे।

३१०. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे एक समय मे एक युग मे चक्रवर्तियो के दो वश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते है और उत्पन्न होगे।

३११. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे एक समय मे एक युग मे दसारो के दो वश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होगे।

सलागा-पुरिस-पदं

३१२. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो अरहंता उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।

३१३. °जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो चक्कवट्टी उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।

३१४. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो बलदेवा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।

३१५. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो वासुदेवा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा° उप्पज्जिस्संति वा।

शलाका-पुरुष-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो: वर्षयो एकसमये एकयुगे द्वौ अर्हन्तौ उदपदिषाता वा उत्पद्येते वा उत्पत्स्येते वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो: वर्षयो: एकसमये एकयुगे द्वौ चक्रवर्त्तिनौ उदपदिषातां वा उत्पद्येते वा उत्पत्स्येते वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो. वर्षयो. एकसमये एकयुगे द्वौ बलदेवौ उदपदिषातां वा उत्पद्येते वा उत्पत्स्येते वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो: वर्षयो: एकसमये एकयुगे द्वौ वासुदेवौ उदपदिषातां वा उत्पद्येते वा उत्पत्स्येते वा।

शलाका-पुरुष-पद

३१२. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे एक समय मे एक युग मे दो अरहन्त उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते है और उत्पन्न होगे।

३१३. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे एक समय मे एक युग मे दो चक्रवर्ती उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते है और उत्पन्न होगे।

३१४. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे एक समय मे एक युग मे दो बलदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होगे।

३१५. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे एक समय मे एक युग मे दो वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न हाते हैं और उत्पन्न होगे।

कालाणुभव-पदं

कालानुभव-पदम्

कालानुभव-पद

३१६. जंबुद्दीवे दीवे दोसु कुरासु मणुया सया सुसमसुसममुत्तमं इड्ढिं पत्ता पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—देवकुराए चेव, उत्तरकुराए चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयोः कुर्वोः मनुजाः सदा सुषमसुषमोत्तमां ऋद्धिं प्राप्ताः प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा—देवकुरौ चैव, उत्तरकुरौ चैव।

३१६. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण और उत्तर के देवकुरु और उत्तरकुरु में रहने वाले मनुष्य सदा सुषम-सुषमा नाम के प्रथम आरे की उत्तम ऋद्धि का अनुभव करते है।

३१७. जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया सया सुसममुत्तमं इड्ढिं पत्ता पच्चणुभवमाणा विहंरति, तं जहा—हरिवासे चेव, रम्मगवासे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयो. वर्षयो. मनुजाः सदा सुषमोत्तमा ऋद्धि प्राप्ताः प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, नद्यथा—हरिवर्षे चैव, रम्यकवर्षे चैव।

३१७. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे हरि क्षेत्र तथा उत्तर में रम्यक् क्षेत्र में रहने वाले मनुष्य सदा सुषमा नाम के दूसरे आरे की उत्तम ऋद्धि का अनुभव करते हैं।

३१८. जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया सया सुसमदूसममुत्तमर्मिड्ढिं पत्ता पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—हेमवए चेव, हेरण्णवए च।

जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयो वर्षयोः मनुजाः सदा सुषमदु.षमोत्तमा ऋद्धि प्राप्ताः प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा—हैमवते चैव, हैरण्यवते चैव।

३१८. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे हैमवत क्षेत्र मे तथा उत्तर मे हैरण्यवत क्षेत्र मे रहने वाले मनुष्य सदा 'सुषम-दु.षमा' नाम के तीसरे आरे की उत्तम ऋद्धि का अनुभव करते है।

३१९. जंबुद्दीवे दीवे दोसु खेत्तेसु मणुया सया दूसमसुसममुत्तमर्मिड्ढिं पत्ता पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—पुव्वविदेहे चेव, अवरविदेहे चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयोः क्षेत्रयोः मनुजा. सदा दु षमसुषमोत्तमां ऋद्धि प्राप्ता· प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा—पूर्वविदेहे चैव, अपरविदेहे चैव।

३१९. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के पूर्व मे पूर्व-विदेह तथा पश्चिम मे अपर-विदेह क्षेत्र मे रहने वाले मनुष्य सदा 'दुःषम-सुषमा' नाम के चौथे आरे की उत्तम ऋद्धि का अनुभव करते हैं।

३२०. जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया छव्विहंपि कालं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तद्यथा—भरहे चेव, एरवते चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयोः वर्षयोः मनुजाः षड्विधमपि कालं प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा भरते चैव, ऐरवते चैव।

३२०. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण-भरत मे और उत्तर-ऐरवत क्षेत्र मे रहने वाले मनुष्य छह प्रकार के काल[111] का अनुभव करते हैं।

चंद-सूर-पदं

चन्द्र-सूर-पदम्

चन्द्र-सूर-पद

३२१. जंबुद्दीवे दीवे—दो चंदा पभासिसु वा पभासंति वा पभासिस्संति वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे—द्वौ चन्द्रौ प्राभासिषाता वा प्रभासेते वा प्रभासिष्येते वा।

३२१. जम्बूद्वीप द्वीप मे दो चन्द्रमाओं ने प्रकाश किया था, करते हैं और करेंगे।

३२२ दो सूरिआ तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा।

द्वौ सूर्यौ अताप्ता वा तपतो वा तपिष्यतो वा।

३२२. जम्बूद्वीप द्वीप मे दो सूर्य तपे थे, तपते हैं और तपेंगे।

णक्खत्त-पदं

३२३. दो कित्तियाओ, दो रोहिणीओ, दो मग्गसिराओ, दो अद्दाओ,° दो पुणव्वसू, दो पूसा, दो अस्सलेसाओ, दो महाओ, दो पुव्वाफग्गुणीओ, दो उत्तराफग्गुणीओ, दो हत्था, दो चित्ताओ, दो साईओ, दो विसाहाओ, दो अणुराहाओ, दो जेट्ठाओ, दो मूला, दो पुव्वासाढाओ, दो उत्तरासाढाओ, दो अभिईओ, दो सवणा, दो धणिट्ठाओ, दो सयभिसया, दो पुव्वाभद्दवयाओ, दो उत्तराभद्दवयाओ, दो रेवतीओ, दो अस्सिणीओ°, दो भरणीओ [जोयं जोएंसु वा जोएंति वा जोइस्संति वा ?]।

नक्षत्र-पदम्

द्वे कृत्तिके, द्वे रोहिण्यौ, द्वौ मृगशिरसौ, द्वे आर्द्रे, द्वौ पुनर्वसू, द्वौ पुष्यौ, द्वे अश्लेषे, द्वे मघे, द्वे पूर्वफाल्गुन्यौ, द्वे उत्तरफाल्गुन्यौ, द्वौ हस्तौ, द्वे चित्रे, द्वे स्वाती, द्वे विशाखे, द्वे अनुराधे, द्वे जेष्ठे, द्वौ मूलौ, द्वे पूर्वासाढे, द्वे उत्तराषाढे, द्वे अभिजितौ, द्वौ श्रवणौ, द्वे धनिष्ठे, द्वौ शतभिषजौ, द्वे पूर्वभद्रपदे, द्वे उत्तरभद्रपदे, द्वे रेवत्यौ, द्वे अश्विन्यौ, द्वे भरण्यौ (योग अजुयन् वा युञ्जन्ति वा योक्ष्यन्ति वा ?)।

नक्षत्र-पद

३२३. जम्बूद्वीप द्वीप में दो कृत्तिका, दो रोहिणी, दो मृगशिरा, दो आर्द्रा, दो पुनर्वसु, दो पुष्य, दो अश्लेषा, दो मघा, दो पूर्वफल्गुनी, दो उत्तरफल्गुनी, दो हस्त, दो चित्रा, दो स्वाति, दो विशाखा, दो अनुराधा, दो ज्येष्ठा, दो मूल, दो पूर्वाषाढा, दो उत्तराषाढा, दो अभिजित, दो श्रवण, दो धनिष्ठा, दो शत्भिषक् (शतभिषा), दो पूर्वाभाद्रपद, दो उत्तराभाद्रपद, दो रेवति, दो अश्विनी, दो भरणी—इन नक्षत्रों ने चन्द्रमा के साथ योग किया था, करते हैं और करेंगे।

णक्खत्तदेव-पदं

३२४. दो अग्गी, दो पयावती, दो सोमा, दो रुद्दा, दो अदिती, दो बहस्सती, दो सप्पा, दो पिती, दो भगा, दो अज्जमा, दो सविता, दो तट्ठा, दो वाऊ, दो इंदग्गी दो मित्ता, दो इंदा, दो णिरती, दो आऊ, दो विस्सा, दो बह्मा, दो विण्हू, दो वसू, दो वरुणा, दो अया, दो विविद्धी, दो पुस्सा, दो अस्सा, दो यमा।

नक्षत्रदेव-पदम्

द्वौ अग्नी, द्वौ प्रजापती, द्वौ सोमौ, द्वौ रुद्रौ, द्वौ अदिती, द्वौ बृहस्पती, द्वौ सर्पौ, द्वौ पितरौ, द्वौ भगौ, द्वौ अर्यमणौ, द्वौ सवितारौ, द्वौ त्वष्टारौ, द्वौ वायू, द्वौ इन्द्राग्नी, द्वौ मित्रौ, द्वौ इन्द्रौ, द्वौ निरृती, द्वे आपः, द्वौ विश्वौ, द्वौ ब्रह्माणौ, द्वौ विष्णू, द्वौ वसू, द्वौ वरुणौ, द्वौ अजौ, द्वे विवृद्धी, द्वौ पूषणौ, द्वौ अश्वौ, द्वौ यमौ।

नक्षत्रदेव-पद

३२४. नक्षत्रों[१३०] के दो-दो देव है। उनके नाम इस प्रकार हैं—दो अग्नि, दो प्रजापति, दो सोम, दो रुद्र, दो अदिति, दो बृहस्पति, दो सर्प, दो पितृदेवता, दो भग, दो अर्यमा, दो सविता, दो त्वष्टा, दो वायु, दो इन्द्राग्नि, दो मित्र, दो इन्द्र, दो निऋति, दो अप्, दो विश्व, दो ब्रह्मा, दो विष्णु, दो वसु, दो वरुण, दो अज, दो विवृद्धि, (अहिर्बुध्नीय), दो पूषन्, दो अश्व, दो यम।

महग्गह-पदं

३२५. दो इंगालगा, दो वियालगा, दो लोहितक्खा, दो सणिच्चरा,

महाग्रह-पदम्

द्वौ अङ्गारकौ, द्वौ विकालकौ, द्वौ लोहिताक्षौ, द्वौ शनिश्चरौ, द्वौ आहुतौ,

महाग्रह-पद

३२५. जम्बूद्वीप द्वीप मे—

दो अंगारक, दो विकालक, दो लोहिताक्ष,

दो आहुणिया, दो पाहुणिया दो कणा, दो कणगा, दो कणकणगा, दो कणगवियाणगा, दो कणगसंताणगा, दो सोमा, दो सहिया, दो आसासणा, दो कज्जोवगा, दो कब्बडगा दो अयकरगा, दो दुंदुभगा, दो संखा, दो संखवण्णा, दो संखवण्णाभा, दो कंसा, दो कंसवण्णा, दो कंसवण्णाभा, दो रुप्पी, दो रुप्पाभासा, दो णीला, दो, णीलोभासा, दो भासा, दो भासरासी दो तिला, दो तिलपुप्फवण्णा, दो दगा, दो दगपंचवण्णा, दो काका, दो कक्कंधा, दो इंदग्गी, दो धूमकेऊ, दो हरी, दो पिंगला, दो बुद्धा, दो सुक्का, दो बहस्सती, दो राहू, दो अगत्थी, दो माणवगा, दो कासा, दो फासा, दो धुरा, दो पमुहा, दो वियडा, दो विसंधी, दो णियल्ला, दो पइल्ला, दो जडियाइलगा, दो अरुणा, दो अग्गिल्ला, दो काला, दो महाकालगा, दो सोत्थिया, दो सोवत्थिया, दो वद्धमाणगा, दो पलंबा, दो णिच्चालोगा, दो णिच्चुज्जोता, दो सयंपभा, दो ओभासा, दो सेयंकरा दो खेमंकरा, दो आभंकरा, दो पभंकरा, दो अपराजिता, दो अरया, दो असोगा, दो विगतसोगा, दो विमला, दो वितता, दो वितत्था, दो विसाला, दो साला, दो सुव्वता, दो अणियट्टी, दो एगजडी, दो दुजडी, दो करकरिगा, दो रायग्गला,

द्वौ प्राहुतौ, द्वौ कनौ, द्वौ कनकौ, द्वौ कनकनकौ, द्वौ कनकवितानकौ, द्वौ कनकसतानकौ, द्वौ सोमौ, द्वौ सहितौ, द्वौ आश्वासनौ, द्वौ कार्योपगौ, द्वौ कर्बटकौ, द्वौ अजकरकौ, द्वौ दुन्दुभकौ, द्वौ शङ्खौ द्वौ शङ्खवर्णौ, द्वौ शङ्खवर्णाभौ, द्वौ कसौ, द्वौ कंसवर्णौ, द्वौ कसवर्णाभौ, द्वौ रुक्मिणौ, द्वौ रुक्माभासौ, द्वौ नीलौ, द्वौ नीलाभासौ, द्वौ भस्मानौ, द्वौ भस्माराशी, द्वौ तिलौ, द्वौ निलपुष्पवर्णौ, द्वौ दकौ, द्वौ दकपञ्चवर्णौ, द्वौ काकौ, द्वौ कर्कन्धौ, द्वौ इन्द्राग्नी, द्वौ धूमकेतू, द्वौ हरी, द्वौ पिङ्गलौ, द्वौ बुद्धौ, द्वौ शुक्रौ, द्वौ बृहस्पती, द्वौ राहू, द्वौ अगस्ती, द्वौ मानवकौ, द्वौ काशौ, द्वौ स्पर्शौ,द्वौ धुरौ, द्वौ प्रमुखौ, द्वौ विकटौ, द्वौ विसन्धी, द्वौ णियल्लौ, द्वौ 'पइल्लौ', द्वौ 'जडियाइलगौ', द्वौ अरुणौ, द्वौ अग्निलौ, द्वौ कालौ, द्वौ महाकालकौ, द्वौ स्वस्तिकौ, द्वौ सौवस्तिकौ, द्वौ वर्द्धमानकौ, द्वौ प्रलम्बौ, द्वौ नित्यालोकौ, द्वौ नित्योद्योतौ, द्वौ स्वयप्रभौ, द्वौ अवभासौ, द्वौ श्रेयस्करौ, द्वौ क्षेमंकरौ, द्वौ आभकरौ, द्वौ प्रभकरौ, द्वौ अपराजितौ द्वौ अरजसौ, द्वौ अशोकौ, द्वौ विगतशोकौ, द्वौ विमलौ, द्वौ विततौ, द्वौ वित्रस्तौ, द्वौ विशालौ, द्वौ शालौ, द्वौ सुव्रतौ, द्वौ अनिवृत्ती, द्वौ एकजटिनौ, द्वौ द्विजटिनौ, द्वौ करकरिकौ, द्वौ राजार्गलौ, द्वौ पुष्पकेतू, द्वौ भावकेतू (चारं अचरन् वा चरन्ति वा चरिष्यन्ति वा ?)।

दो शनिश्चर, दो आहुत, दो प्राहुत, दो कन, दो कनक, दो कनकनक, दो कनकवितानक, दो कनकसंतानक, दो सोम, दो सहित, दो आश्वासन, दो कार्योपग, दो कर्बटक, दो अजकरक, दो दुन्दुभक, दो शख, दो शखवर्ण, दो शंखवर्णाभ, दो कंस, दो कंसवर्ण, दो कसवर्णाभ, दो रुक्मी, दो रुक्माभास, दो नील, दो नीलाभास, दो भस्म, दो भस्मराशि, दो तिल, दो तिलपुष्पवर्ण, दो दक, दो दकपञ्चवर्ण, दो काक, दो कर्कन्ध, दो इन्द्राग्नि, दो धूमकेतु, दो हरि, दो पिंगल, दो बुद्ध, दो शुक्र, दो बृहस्पति, दो राहु, दो अगस्ति, दो मानवक, दो काश, दो स्पर्श, दो धुर, दो प्रमुख, दो विकट, दो विसन्धि, दो णियल्ल, दो पइल्ल, दो जडियाइलग, दो अरुण, दो अग्निल, दो काल, दो महाकालक, दो स्वस्तिक, दो सौवस्तिक, दो वर्द्धमानक, दो प्रलब, दो नित्यालोक, दो नित्योद्योत, दो स्वयप्रभ, दो अवभास, दो श्रेयस्कर, दो क्षेमंकर, दो आभंकर, दो प्रभकर दो अपराजित, दो अरजस्, दो अशोक, दो विगतशोक, दो विमल, दो वितत, दो वित्रस्त, दो विशाल, दो शाल, दो सुव्रत, दो अनिवृत्ति, दो एकजटिन्, दो अटिन्, दो करकरिक, दो दोराजार्गल, दो पुष्पकेतु, दो भावकेतु।

इन ८८ महाग्रहों[१११] ने चार किया था, करते हैं और करेंगे।

दो पुप्फकेतू, दो भावकेऊ [चारं चरिंसु वा चरंति वा चरिस्संति वा ?]।

जंबुद्दीव-वेइआ-पदं

३२६. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स वेइआ दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप-वेदिका-पदम्

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य वेदिका द्वे गव्यूती ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्ता।

जम्बूद्वीप-वेदिका-पद

३२६. जम्बूद्वीप द्वीप की वेदिका दो कोस ऊंची है।

लवण-समुद्द-पदं

३२७. लवणे णं समुद्दे दो जोयणसय-सहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते।

३२८. लवणस्स णं समुद्दस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

लवण-समुद्र-पदम्

लवणः समुद्रः द्वे योजनशतसहस्रे चक्रवालविष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

लवणस्य समुद्रस्य वेदिका द्वे गव्यूती ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्ता।

लवण-समुद्र-पद

३२७. लवण समुद्र का चक्रवाल-विष्कंभ (वलयाकार चौडाई) दो लाख योजन का है।

३२८. लवण समुद्र की वेदिका दो कोस ऊंची है।

धायइसंड-पदं

३२९. धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा—भरहे चेव, एरवए चेव।

धातकीषण्ड-पदम्

धातकीषण्डे द्वीपे पौरस्त्यार्धे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे द्वे वर्षे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा—भरतं चैव, ऐरवतं चैव।

धातकीषण्ड-पद

३२९. धातकीषंड द्वीप के पूर्वार्द्ध में मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण में दो क्षेत्र हैं—भरत—दक्षिण में, ऐरवत—उत्तर में। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं यावत् वे लम्बाई, चौड़ाई, संस्थान और परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते।

३३०. एवं—जहा जंबुद्दीवे तहा एत्थवि भाणियव्वं जाव दोसु वासेसु मणुया छव्विहंपि कालं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—भरहे चेव, एरवए चेव। णवरं—कूडसामली चेव, धायईरुक्खे चेव। देवा—गरुले चेव वेणुदेवे, सुदंसणे चेव।

एवम्—यथा जम्बूद्वीपे तथा अत्रापि भणितव्यं यावत् द्वयोः वर्षयोः मनुजाः षड्विधमपि कालं प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा—भरते चैव, ऐरवते चैव। नवरं—कूटशाल्मली चैव, धातकीरुक्षश्चैव। देवौ गरुडश्चैव वेणुदेवः, सुदर्शनश्चैव।

३३० इसी प्रकार जम्बूद्वीप द्वीप के प्रकरण में आये हुए सूत्र २।२६९-३२० तक का वर्णन यहां वक्तव्य है। विशेष इतना ही है कि यहां वृक्ष दो हैं—कूट शाल्मली और धातकी। देव दो हैं—कूट शाल्मली पर गरुडकुमार जाति का वेणुदेव और धातकी पर सुदर्शन देव।

३३१. धायइसंडे दीवे पच्चत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पण्णत्ता—बहुसम-तुल्ला जाव, तं जहा—
भरहे चेव, एरवए चेव।

धातकीषण्डे द्वीपे पाश्चात्यार्धे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे द्वे वर्षे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा—
भरतं चैव, ऐरवतं चैव।

३३१. धातकीषंडद्वीप के पश्चिमार्द्ध मे मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण में दो क्षेत्र हैं—
भरत—दक्षिण मे, ऐरवत—उत्तर मे। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं यावत् वे लम्बाई, चौड़ाई, सस्थान और परिधि में एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

३३२. एवं—जहा जंबुद्दीवे तहा एत्थवि भाणियव्वं जाव छव्विहंपि कालं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—भरहे चेव, एरवए चेव। णवरं—कूडसामली चेव महा-धायईरुक्खे चेव। देवा—गरुले चेव वेणुदेवे पियदंसणे चेव।

एवम्—यथा जम्बूद्वीपे तथा अत्रापि भणितव्यं यावत् षड्विधमपि कालं प्रत्युनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा—
भरते चैव, ऐरवते चैव।
नवरं—कूटशाल्मली चैव महाधातकी-रुक्षश्चैव। देवौ गरुडश्चैव वेणुदेवः प्रियदर्शनश्चैव।

३३२. इसी प्रकार जम्बूद्वीप द्वीप के प्रकरण में आये हुए सूत्र २।२६९-३२० तक का वर्णन यहां वक्तव्य है। विशेष इतना ही है कि यहां वृक्ष दो हैं—कूटशाल्मली, और महाधातकी। देव दो हैं—कूटशाल्मली पर गरुडकुमार जाति का वेणुदेव, महाधातकी पर प्रियदर्शन देव।

३३३ धायइसंडे णं दीवे—
दो भरहाइं, दो एरवयाइं, दो हेमवयाइं, दो हेरण्णवयाइं, दो हरिवासाइं, दो रम्मगवासाइं, दो पुव्वविदेहाइं, दो अवर-विदेहाइं, दो देवकुराओ, दो देवकुरुमहद्दुमा, दो देवकुरुम-हद्दुमवासी देवा, दो उत्तरकुराओ, दो उत्तरकुरुमहद्दुमा, दो उत्तर-कुरुमहद्दुमवासी देवा।

धातकीषण्डे द्वीपे—
द्वे भरते, द्वे ऐरवते, द्वे हैमवते, द्वे हैरण्यवते, द्वे हरिवर्षे, द्वे रम्यकवर्षे, द्वौ पूर्वविदेहौ, द्वौ अपर-विदेहौ, द्वौ देवकुरू, द्वौ देवकुरुमहाद्रुमौ द्वौ देवकुरुमहाद्रुमवासिनौ देवौ, द्वौ उत्तरकुरू, द्वौ उत्तरकुरुमहाद्रुमौ, द्वौ उत्तरकुरुमहाद्रुमवासिनौ देवौ।

३३३. धातकीषड द्वीप मे—
भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, पूर्वविदेह, अपरविदेह, देवकुरु, देवकुरुमहाद्रुम, देवकुरुमहाद्रुमवासी देव, उत्तरकुरु, उत्तरकुरुमहाद्रुम, उत्तरकुरु-महाद्रुमवासी देव—दो-दो हैं।

३३४. दो चुल्लहिमवंता, दो महाहिम-वंता, दो णिसढा, दो णीलवंता, दो रुप्पी, दो सिहरी।

द्वौ क्षुल्लहिमवन्तौ, द्वौ महाहिमवन्तौ, द्वौ निषधौ, द्वौ नीलवन्तौ, द्वौ रुक्मिणौ, द्वौ शिखरिणौ।

३३४. क्षुल्लहिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नीलवान्, रुक्मी और शिखरी—ये वर्षधर पर्वत दो-दो हैं।

३३५. दो सद्दावाती, दो सद्दावातिवासी साती देवा, दो वियडावाती, दो वियडावातिवासी पभासा देवा, दो गंधावाती, दो गंधा-वातिवासी अरुणा देवा, दो माल-वंतपरियागा, दो मालवंत-परियागवासी पउमा देवा।

द्वौ शब्दापातिनौ, द्वौ शब्दापाति-वासिनौ स्वातिदेवौ, द्वौ विकटापातिनौ, द्वौ विकटापातिवासिनौ प्रभासौ देवौ, द्वौ गन्धापातिनौ, द्वौ गन्धापाति-वासिनौ अरुणौ देवौ, द्वौ माल्यवत्-पर्यायौ, द्वौ माल्यावत्पर्यायवासिनौ पद्मौ देवौ।

३३५. शब्दापाती, शब्दापातिवासी स्वाति देव, विकटापाती, विकटापातिवासी प्रभास देव, गंधापाती, गंधापातिवासी अरुण देव, माल्यवत्पर्याय, माल्यवत्पर्यायवासी पद्म देव—ये वृत्तवैताढ्य पर्वत तथा उन पर रहने वाले देव दो-दो हैं।

३३६. दो मालवंता, दो चित्तकूडा, दो पम्हकूडा, दो णलिणकूडा, दो एगसेला, दो तिकूडा, दो वेसमणकूडा, दो अंजणा, दो मातंजणा, दो सोमणसा, दो विज्जुप्पभा, दो अंकावती, दो पम्हावती, दो आसीविसा, दो सुहावहा, दो चंदपव्वता, दो सूरपव्वता, दो णागपव्वता, दो देवपव्वता, दो गंधमायणा, दो उसुगारपव्वया, दो चुल्लहिमवंतकूडा, दो वेसमणकूडा, दो महाहिमवंतकूडा, दो वेरुलियकूडा, दो णिसढकूडा, दो रुयगकूला, दो णीलवंतकूडा, दो उववंसणकूडा, दो रुप्पिकूडा, दो मणिकंचणकूडा, दो सिहरिकूडा, दो तिगिंछिकूडा।

द्वौ माल्यवन्तौ, द्वे चित्रकूटे, द्वे पक्ष्मकूटे, द्वे नलिनकूटे, द्वौ एकशैलौ, द्वे त्रिकूटे, द्वे वैश्रमणकूटे, द्वौ अञ्जनौ, द्वौ माताञ्जनौ, द्वौ सोमनसौ, द्वौ विद्युत्प्रभौ, द्वे अकावत्यौ, द्वे पक्ष्मावत्यौ, द्वौ आसीविषौ, द्वौ सुखावहौ, द्वौ चन्द्रपर्वतौ, द्वौ सूर्यपर्वतौ, द्वौ नागपर्वतौ, द्वौ देवपर्वतौ, द्वौ गन्धमादनौ, द्वौ इषुकारपर्वतौ, द्वे क्षुल्लहिमवत्कूटे, द्वे वैश्रमणकूटे, द्वे महाहिमवत्कूटे, द्वे वैडूर्यकूटे, द्वे निषधकूटे, द्वे रुचककूटे, द्वे नीलवत्कूटे, द्वे उपदर्शनकूटे, द्वे रुक्मिकूटे, द्वे मणिकाञ्चनकूटे, द्वे शिखरिकूटे, द्वे तिगिंछिकूटे।

३३६. माल्यवान्, चित्रकूट, पक्ष्मकूट, नलिनकूट, एकशैल, त्रिकूट, वैश्रमणकूट, अजन, मातांजन, सोमनस, विद्युत्प्रभ, अकावती, पक्ष्मावती, आसीविष, सुखावह, चन्द्र पर्वत, सूर्य पर्वत, नाग पर्वत, देव पर्वत, गंधमादन, इषुकार पर्वत, क्षुल्लहिमवत्कूट, वैश्रमणकूट, महाहिमवत्कूट, वैडूर्यकूट, निषधकूट, रुचककूट, नीलवत्कूट, उपदर्शनकूट, रुक्मीकूट, मणिकांचनकूट, शिखरीकूट, तिगिंछिकूट—ये सभी कूट दो-दो है।

३३७. दो पउमद्दहा, दो पउमद्दहवासिणीओ सिरीओ देवीओ, दो महापउमद्दहा, दो महापउमद्दहवासिणीओ हिरीओ देवीओ, एवं जाव दो पुंडरीयद्दहा, दो पोंडरीयद्दहवासिणीओ लच्छीओ देवीओ।

द्वौ पद्मद्रहौ, द्वे पद्मद्रहवासिन्यौ श्रियौ देव्यौ,
द्वौ महापद्मद्रहौ, द्वे महापद्मद्रहवासिन्यौ ह्रियौ देव्यौ,
एव यावत् द्वौ पौण्डरीकद्रहौ, द्वे पौण्डरीकद्रहवासिन्यौ लक्ष्म्यौ देव्यौ।

३३७. पद्मद्रह, पद्मद्रहवासिनी श्री देवी, महापद्मद्रह, महापद्मद्रहवासिनी ह्री देवी, तिगिंछिद्रह, तिगिंछिद्रहवासिनी धृति देवी, केशरीद्रह, केशरीद्रहवासिनी कीर्ति देवी, महापौंडरीकद्रह, महापौंडरीकद्रहवासिनी बुद्धि देवी, पौंडरीकद्रह, पौंडरीकद्रहवासिनी लक्ष्मी देवी—ये सभी द्रह और द्रहवासिनी देवियां दो-दो हैं।

३३८. दो गंगप्पवायद्दहा जाव दो रत्तावती पवातद्दहा।

द्वौ गंगाप्रपातद्रहौ यावत् द्वौ रक्तवतीप्रपातद्रहौ।

३३८. गंगा, सिन्धु, रोहित, रोहितांश, हरित्, हरिकान्त, सीता, सीतोदा, नरकान्त, नारीकान्त, सुवर्णकूल, रुप्यकूल, रक्त और रक्तवती—ये सभी प्रपातद्रह दो-दो हैं।

३३९. दो रोहियाओ जाव दो रुप्पकूलाओ, दो गाहवतीओ, दो दहवतीओ, दो पंकवतीओ,

द्वे रोहिते यावत् द्वे रूप्यकूले, द्वे ग्राहवत्यौ, द्वे द्रहवत्यौ, द्वे पङ्कवत्यौ, द्वे तप्तजले, द्वे मत्तजले, द्वे उन्मत्तजले,

३३९. रोहिता, हरिकान्ता, हरित्, सीतोदा, सीता, नारीकान्ता, नरकान्ता, रुप्यकूला, ग्राहवती, द्रहवती, पंकवती,

दो तत्तजलाओ, दो मत्तजलाओ, दो उम्मत्तजलाओ, दो खीरोयाओ, दो सीहसोताओ, दो अंतोवाहिणीओ, दो उम्मिमालिणीओ, दो फेणमालिणीओ, दो गंभीरमालिणीओ ।

द्वे क्षीरोदे, द्वे सिंहस्रोतस्यौ, द्वे अन्तर्वाहिन्यौ, द्वे उर्मिमालिन्यौ, द्वे फेनमालिन्यौ, द्वे गम्भीरमालिन्यौ ।

तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला, क्षीरोदा, सिंहस्रोता, अन्तोमालिनी, उर्मिमालिनी, फेनमालिनी, गम्भीरमालिनी—ये सभी नदियां दो-दो है।

३४०. **दो कच्छा, दो सुकच्छा, दो महाकच्छा, दो कच्छावती, दो आवत्ता, दो मंगलावत्ता, दो पुक्खला, दो पुक्खलावई, दो वच्छा, दो सुवच्छा, दो महावच्छा, दो वच्छगावती, दो रम्मा, दो रम्मगा, दो रमणिज्जा, दो मंगलावती, दो पम्हा, दो सुपम्हा, दो महपम्हा, दो पम्हगावती, दो संखा, दो णलिणा, दो कुमुया, दो सलिलावती, दो वप्पा, दो सुवप्पा, दो महावप्पा, दो वप्पगावती, दो वग्गू, दो सुवग्गू, दो गंधिला, दो गंधिलावती ।**

द्वौ कच्छौ, द्वौ सुकच्छौ, द्वौ महाकच्छौ, द्वे कच्छकावत्यौ, द्वौ आवर्त्तौ, द्वौ मंगलावर्त्तौ, द्वौ पुष्कलौ, द्वे पुष्कलावत्यौ, द्वौ वत्सौ, द्वौ सुवत्सौ, द्वौ महावत्सौ, द्वे वत्सकावत्यौ, द्वौ रम्यौ, द्वौ रम्यकौ, द्वौ रमणीयौ, द्वे मंगलावत्यौ, द्वे पक्ष्मणी, द्वे सुपक्ष्मणी, द्वे महापक्ष्मणी, द्वे पक्ष्मकावत्यौ, द्वौ शखौ, द्वौ नलिनौ, द्वौ कुमुदौ, द्वे सलिलावत्यौ, द्वौ वप्रौ, द्वौ सुवप्रौ, द्वौ महावप्रौ, द्वे वप्रकावत्यौ, द्वौ वल्गू, द्वौ सुवल्गू, द्वौ गान्धिलौ, द्वे गान्धिलावत्यौ ।

३४०. कच्छ, सुकच्छ, महाकच्छ, कच्छकावती, आवर्त्त, मंगलावर्त्त, पुष्कल, पुष्कलावती, वत्स, सुवत्स, महावत्स, वत्सकावती, रम्य, रम्यक, रमणीय, मंगलावती, पक्ष्म, सुपक्ष्म, महापक्ष्म, पक्ष्मकावती, शंख, नलिन, कुमुद, सलिलावती, वप्र, सुवप्र, महावप्र, वप्रकावती, वल्गु, सुवल्गु, गंधिल, गंधिलावती—ये बत्तीस विजय-क्षेत्र दो-दो हैं।

३४१. **दो खेमाओ, दो खेमपुरीओ, दो रिट्ठाओ, दो रिट्ठपुरीओ, दो खग्गीओ, दो मंजूसाओ, दो ओसधीओ, दो पोंडरिगिणीओ, दो सुसीमाओ, दो कुंडलाओ, दो अपराजियाओ, दो पभंकराओ, दो अंकावईओ, दो पम्हावईओ, दो सुभाओ, दो रयणसंचयाओ, दो आसपुराओ, दो सीहपुराओ, दो महापुराओ, दो विजयपुराओ, दो अवराजिताओ, दो अवराओ,**

द्वे क्षेमे, द्वे क्षेमपुर्यौ, द्वे रिष्टे, द्वे रिष्टपुर्यौ, द्वे खड्ग्यौ, द्वे मञ्जूषे, द्वे औषध्यौ, द्वे पौण्डरीकिण्यौ, द्वे सुसीमे, द्वे कुण्डले, द्वे अपराजिते, द्वे प्रभाकरे, द्वे अङ्कावत्यौ, द्वे पक्ष्मावत्यौ, द्वे शुभे, द्वे रत्नसचये, द्वे अश्वपुर्यौ, द्वे सिंहपुर्यौ, द्वे महापुर्यौ, द्वे विजयपुर्यौ, द्वे अपराजिते, द्वे अपरे, द्वे अशोके, द्वे विगतशोके, द्वे विजये, द्वे वैजयन्त्यौ, द्वे जयन्त्यौ, द्वे अपराजिते, द्वे चक्रपुर्यौ, द्वे खड्गपुर्यौ, द्वे अवध्ये, द्वे अयोध्ये ।

३४१. क्षेमा, क्षेमपुरी, रिष्टा, रिष्टपुरी, खड्गी, मजूषा, औषधी, पौंडरीकिणी, सुसीमा, कुडला, अपराजिता, प्रभाकरा, अकावती, पक्ष्मावती, शुभा, रत्नसचया, अश्वपुरी, सिंहपुरी, महापुरी, विजयपुरी, अपराजिता, अपरा, अशोका, विगतशोका, विजया, वैजयती, जयन्ती, अपराजिता, चक्रपुरी, खड्गपुरी, अवध्या और अयोध्या—ये विजय-क्षेत्र की बत्तीस नगरियां दो-दो है।

दो असोयाओ, दो विगयसोगाओ,
दो विजयाओ, दो वेजयंतीओ,
दो जयंतीओ, दो अपराजियाओ,
दो चक्कपुराओ, दो खग्गपुराओ,
दो अवज्झाओ, दो अउज्झाओ।

३४२. दो भद्दसालवणा, दो णंदणवणा, दो सोमणसवणा, दो पंडगवणाइं।

द्वे भद्रशालवने, द्वे नंदनवने, द्वे सौमनसवने, द्वे पण्डकवने।

३४२. भद्रशालवन, नदनवन, सौमनसवन और पंडकवन—ये वन दो-दो हैं।

३४३. दो पंडुकंबलसिलाओ, दो अतिपंडुकंबलसिलाओ, दो रत्तकंबलसिलाओ, दो अइरत्तकंबलसिलाओ।

द्वे पाण्डुकम्बलशिले, द्वे अतिपाण्डुकम्बलशिले, द्वे रक्तकम्बलशिले, द्वे अतिरक्तकम्बलशिले।

३४३. पांडुकंबलशिला, अतिपांडुकंबलशिला, रक्तकंबलशिला, अतिरक्तकंबलशिला—ये पंडकवन की शिलाए दो-दो हैं।

३४४. दो मंदरा, दो मंदरचूलिआओ।

द्वौ मन्दरौ, द्वे मन्दरचूलिके।

३४४. मन्दर और मन्दरचूलिका दो-दो हैं।

३४५. धायइसंडस्स णं दीवस्स वेदिया दो गाउयाइं उड्ढमुच्चत्तेणं पण्णत्ता।

धातकीषण्डस्य द्वीपस्य वेदिका द्वे गव्यूती ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता।

३४५. धातकीषंड द्वीप की वेदिका दो कोस ऊंची है।

३४६. कालोदस्स णं समुद्दस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

कालोदस्य समुद्रस्य वेदिका द्वे गव्यूती ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्ता।

३४६. कालोद समुद्र की वेदिका दो कोस ऊंची है।

पुक्खरवर-पदं

पुष्करवर-पदम्

पुष्करवर-पद

३४७. पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव, तं जहा—
भरहे चेव, एरवए चेव।

पुष्करवरद्वीपार्धपौरस्त्यार्धे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे द्वे वर्षे प्रज्ञप्ते—बहुसमतुल्ये यावत्, तद्यथा—
भरतं चैव, ऐरवतं चैव।

३४७. अर्द्ध पुष्करवर द्वीप के पूर्वार्द्ध में मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण मे दो क्षेत्र हैं—भरत—दक्षिण मे, ऐरवत—उत्तर मे। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं यावत् वे लम्बाई, चौडाई, संस्थान और परिधि मे एक-दूसरे का अतिक्रमण नही करते।

३४८. तहेव जाव दो कुराओ पण्णत्ताओ—
देवकुरा चेव, उत्तरकुरा चेव।
तत्थ णं दो महतिमहालया महद्दुमा पण्णत्ता, तं जहा—
कूडसामली चेव, पउमरुक्खे चेव।
देवा—गरुले चेव वेणुदेवे, पउमे चेव जाव छव्विहंपि कालं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

तथैव यावत् द्वौ कुरू प्रज्ञप्तौ—
देवकुरुश्चैव, उत्तरकुरुश्चैव।
तत्र द्वौ महातिमहान्तौ महाद्रुमौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—
कूटशाल्मली चैव पद्मरुक्षश्चैव।
देवौ—गरुडश्चैव वेणुदेवः, पद्मश्चैव यावत् षड्विधमपि कालं प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति।

३४८. इसी प्रकार जम्बूद्वीप द्वीप के प्रकरण में आए हुए सूत्र २।२६६-२७१ तक का वर्णन यहा वक्तव्य है यावत् दो कुरु हैं—वहां दो विशाल महाद्रुम हैं—
कूटशाल्मली और पद्म।
देव दो हैं—
कूटशाल्मली पर गरुड जाति का वेणुदेव,
पद्म पर पद्म देव।
छः प्रकार के काल का अनुभव करते हैं।

३४९. पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पण्णत्ता—तहेव णाणत्तं—कूडसामली चेव, महापउमरुक्खे चेव। देवा—गरुले चेव वेणुदेवे, पुंडरीए चेव।

पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्धे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे द्वे वर्षे प्रज्ञप्ते—तथैव नानात्वम्—कूटशाल्मली चैव, महापद्मरुक्षश्चैव। देवो गरुडश्चैव वेणुदेवः, पुण्डरीकश्चैव।

३४९. अर्द्ध पुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्द्ध में मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण में दो क्षेत्र हैं—भरत—दक्षिण मे, ऐरवत—उत्तर मे। इसी प्रकार जम्बूद्वीप के प्रकरण मे आए हुए सूत्र २।२६८-३२० तक का वर्णन यहां वक्तव्य है।
विशेष इतना ही है कि यहां दो विशाल महाद्रुम हैं—कूटशाल्मली, महापद्म।
देव दो हैं—कूटशाल्मली पर गरुड जाति का वेणुदेव, महापद्म पर पुण्डरीक देव।

३५०. पुक्खरवरदीवड्ढे णं दीवे दो भरहाइं, दो एरवयाइं जाव दो मंदरा, दो मंदरचूलियाओ।

पुष्करवरद्वीपार्धे द्वीपे द्वे भरते, द्वे ऐरवते यावत् द्वौ मन्दरौ, द्वे मन्दर-चूलिके।

३५०. अर्द्ध पुष्करवर द्वीप में भरत, ऐरवत से मन्दर और मन्दरचूलिका तक के सभी दो-दो हैं।

वेदिका-पदं

वेदिका-पदम्

वेदिका-पद

३५१. पुक्खरवरस्स णं दीवस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढमुच्चत्तेणं पण्णत्ता।

पुष्करवरस्य द्वीपस्य वेदिका द्वे गव्यूती ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता।

३५१. पुष्करवर द्वीप की वेदिका दो कोस ऊंची है।

३५२. सव्वेसिपि णं दीवसमुद्दाणं वेदियाओ दो गाउयाइं उड्ढमुच्चत्तेणं पण्णत्ताओ।

सर्वेषामपि द्वीपसमुद्राणां वेदिका द्वे गव्यूती ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता।

३५२. सभी द्वीपो और समुद्रों की वेदिका दो-दो कोस ऊंची है।

इंद-पदं

इन्द्र-पदम्

इन्द्र-पद

३५३. दो असुरकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—चमरे चेव, बली चेव।

द्वौ असुरकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—चमरश्चैव, बलिश्चैव।

३५३. असुरकुमारो के इन्द्र दो हैं—चमर, बली।

३५४. दो णागकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—धरणे चेव, भूयाणंदे चेव।

द्वौ नागकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—धरणश्चैव, भूतानन्दश्चैव।

३५४. नागकुमारो के इन्द्र दो हैं—धरण, भूतानन्द।

३५५. दो सुवण्णकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—वेणुदेवे चेव, वेणुदाली चेव।

द्वौ सुपर्णकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—वेणुदेवश्चैव, वेणुदालिश्चैव।

३५५. सुपर्णकुमारो के इन्द्र दो है—वेणुदेव, वेणुदाली।

३५६. दो विज्जुकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—हरिच्चेव, हरिस्सहे चेव।

द्वौ विद्युत्कुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—हरिश्चैव, हरिसहश्चैव।

३५६. विद्युत्कुमारो के इन्द्र दो हैं—हरि, हरिसह।

३५७. दो अग्गिकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—अग्गिसिहे चेव, अग्गिमाणवे चेव।

द्वौ अग्निकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—अग्निशिखश्चैव, अग्निमाणवश्चैव।

३५७. अग्निकुमारों के इन्द्र दो हैं—अग्निशिख, अग्निमानव।

३५८. दो दीवकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णे चेव, विसिट्ठे चेव।

द्वौ द्वीपकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—पूर्णश्चैव, विशिष्टश्चैव।

३५८. द्वीपकुमारों के इन्द्र दो हैं—पूर्ण, विशिष्ट।

३५९. दो उदहिकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—जलकंते चेव, जलप्पभे चेव।

द्वौ उदधिकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—जलकान्तश्चैव, जलप्रभश्चैव।

३५९. उदधिकुमारों के इन्द्र दो हैं—जलकान्त, जलप्रभ।

३६०. दो दिसाकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—अमियगती चेव, अमितवाहणे चेव।

द्वौ दिशाकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—अमितगतिश्चैव, अमितवाहनश्चैव।

३६०. दिशाकुमारों के इन्द्र दो हैं—अमितगति, अमितवाहन।

३६१. दो वायुकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—वेलंबे चेव, पभंजणे चेव।

द्वौ वायुकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—बेलम्बश्चैव, प्रभञ्जनश्चैव।

३६१. वायुकुमारों के इन्द्र दो हैं—वेलम्ब, प्रभंजन।

३६२. दो थणियकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—घोसे चेव, महाघोसे चेव।

द्वौ स्तनितकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—घोषश्चैव, महाघोषश्चैव।

३६२. स्तनितकुमारों के इन्द्र दो हैं—घोष, महाघोष।

३६३. दो पिसाइंदा पण्णत्ता, तं जहा—काले चेव, महाकाले चेव।

द्वौ पिशाचेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—कालश्चैव, महाकालश्चैव।

३६३. पिशाचों के इन्द्र दो हैं—काल, महाकाल।

३६४. दो भूइंदा पण्णत्ता, तं जहा—सुरूवे चेव, पडिरूवे चेव।

द्वौ भूतेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—सुरूपश्चैव, प्रतिरूपश्चैव।

३६४. भूतों के इन्द्र दो हैं—सुरूप, प्रतिरूप।

३६५. दो जक्खिंदा पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णभद्दे चेव, माणिभद्दे चेव।

द्वौ यक्षेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—पूर्णभद्रश्चैव, माणिभद्रश्चैव।

३६५. यक्षों के इन्द्र दो हैं—पूर्णभद्र, माणिभद्र।

३६६. दो रक्खसिंदा पण्णत्ता, तं जहा—भीमे चेव, महाभीमे चेव।

द्वौ राक्षसेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—भीमश्चैव, महाभीमश्चैव।

३६६. राक्षसों के इन्द्र दो हैं—भीम, महाभीम।

३६७. दो किण्णरिंदा पण्णत्ता, तं जहा—किण्णरे चेव, किंपुरिसे चेव।

द्वौ किन्नरेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—किन्नरश्चैव, किंपुरुषश्चैव।

३६७. किन्नरों के इन्द्र दो हैं—किन्नर, किंपुरुष।

३६८. दो किंपुरिसिंदा पण्णत्ता, तं जहा—सप्पुरिसे चेव, महापुरिसे चेव।

द्वौ किंपुरुषेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—सत्पुरुषश्चैव, महापुरुषश्चैव।

३६८. किंपुरुषों के इन्द्र दो हैं—सत्पुरुष, महापुरुष।

३६९. दो महोरगिंदा पण्णत्ता, तं जहा—अतिकाए चेव, महाकाए चेव।

द्वौ महोरगेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—अतिकायश्चैव, महाकायश्चैव।

३६९. महोरगों के इन्द्र दो हैं—अतिकाय, महाकाय।

३७०. दो गंधव्विंदा पण्णत्ता, तं जहा—गीतरती चेव, गीयजसे चेव।

द्वौ गन्धर्वेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—गीतरतिश्चैव, गीतयशाश्चैव।

३७०. गन्धर्वों के इन्द्र दो हैं—गीतरति, गीतयशा।

३७१. दो अणपण्णिंदा पण्णत्ता, तं जहा—सण्णिहिए चेव, सामण्णे चेव।

द्वौ अणपन्नेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—सन्निहितश्चैव, सामान्यश्चैव।

३७१. अणपन्नों के इन्द्र दो हैं—सन्निहित, सामान्य।

३७२. दो पणपण्णिंदा पण्णत्ता, तं जहा—धाए चेव, विहाए चेव।

द्वौ पणपन्नेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—धाता चैव, विधाता चैव।

३७२. पणपन्नों के इन्द्र दो हैं—धाता, विधाता।

३७३. दो इसिवाइंदा पण्णत्ता, तं जहा— इसिच्चेव, इसिवालए चेव।	द्वौ ऋषिवादीन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— ऋषिश्चैव, ऋषिपालकश्चैव ।	३७३. ऋषिवादियों के इन्द्र दो हैं— ऋषि, ऋषिपालक।
३७४. दो भूतवाइंदा पण्णत्ता, तं जहा— इस्सरे चेव, महिस्सरे चेव।	द्वौ भूतवादीन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— ईश्वरश्चैव, महेश्वरश्चैव ।	३७४. भूतवादियों के इन्द्र दो हैं— ईश्वर, महीश्वर।
३७५. दो कंदिंदा पण्णत्ता, तं जहा— सुवच्छे चेव, विसाले चेव।	द्वौ स्कन्देन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— सुवत्सश्चैव, विशालश्चैव ।	३७५. स्कन्दकों के इन्द्र दो हैं— सुवत्स, विशाल।
३७६. दो महाकंदिदा पण्णत्ता, तं जहा— हस्से चेव, हस्सरती चेव।	द्वौ महास्कन्देन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— हास्यश्चैव, हास्यरतिश्चैव ।	३७६. महास्कन्दकों के इन्द्र दो हैं— हास्य, हास्यरति।
३७७. दो कुंभंडिंदा पण्णत्ता, तं जहा— सेए चेव, महासेए चेव।	द्वौ कुष्भाण्डेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— श्वेतश्चैव, महाश्वेतश्चैव ।	३७७. कूष्माण्डकों के इन्द्र दो है— श्वेत, महाश्वेत।
३७८. दो पतइंदा पण्णत्ता, तं जहा— पतए चेव, पतयवई चेव।	द्वौ पतगेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— पतगश्चैव, पतगपतिश्चैव ।	३७८. पतगों के इन्द्र दो हैं— पतग, पतगपति।
३७९. जोइसियाणं देवाणं दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा— चंदे चेव, सूरे चेव।	ज्योतिष्काणा देवानां द्वौ इन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— चन्द्रश्चैव, सूरश्चैव ।	३७९. ज्योतिषों के इन्द्र दो हैं— चन्द्र, सूर्य।
३८० सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा— सक्के चेव, ईसाणे चेव।	सौधर्मेशानयोः कल्पयोः द्वौ इन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— शक्रश्चैव, ईशानश्चैव ।	३८०. सौधर्म और ईशान कल्प के इन्द्र दो है— शक्र, ईशान।
३८१ सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा— सणंकुमारे चेव, माहिंदे चेव।	सनत्कुमार-माहेन्द्रयोः कल्पयोः द्वौ इन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— सनत्कुमारश्चैव, माहेन्द्रश्चैव ।	३८१. सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के इन्द्र दो हैं—सनत्कुमार, माहेन्द्र।
३८२. बंभलोग-लंतएसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा— बंभे चेव, लंतए चेव।	ब्रह्मलोक-लान्तकयोः कल्पयोः द्वौ इन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— ब्रह्मा चैव, लान्तकश्चैव ।	३८२. ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प के इन्द्र दो हैं—ब्रह्म, लान्तक।
३८३. महासुक्क-सहस्सारेसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा— महासुक्के चेव, सहस्सारे चेव।	महाशुक्र-सहस्रारयो. कल्पयोः द्वौ इन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा— महाशुक्रश्चैव सहस्रारश्चैव ।	३८३. महाशुक्र और सहस्रार कल्प के इन्द्र दो हैं—महाशुक्र, सहस्रार।
३८४. आणत-पाणत-आरण-अच्चुतेसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—पाणते चेव, अच्चुते चेव।	आनत-प्राणत-आरण-अच्युतेषु कल्पेषु द्वौ इन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा प्राणतश्चैव, अच्युतश्चैव ।	३८४. आनत और प्राणत तथा आरण और अच्युत कल्प के इन्द्र दो हैं— प्राणत, अच्युत।
विमाण-पदं	**विमान-पदम्**	**विमान-पद**
३८५. महासुक्क-सहस्सारेसु णं कप्पेसु विमाणा दुवण्णा पण्णत्ता, तं	महाशुक्र-सहस्रारयोः कल्पयोः विमानानि द्विवर्णानि प्रज्ञप्तानि,	३८५. महाशुक्र और सहस्रार कल्प मे विमान दो प्रकार के हैं—पीले, सफेद।

जहा—हालिद्दा चेव, सुकिल्ला चेव।	तद्यथा— हारिद्राणि चैव, शुक्लानि चैव।	
देव-पदं	**देव-पदम्**	**देव-पद**
३८६. गेविज्जगा णं देवा दो रयणीओ उड्ढमुच्चत्तेणं पण्णत्ता।	ग्रैवेयका देवा द्वे रत्नी ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता.।	३८६. ग्रैवेयक देवों की ऊंचाई दो रत्नि की है।

चउत्थो उद्देसो

जीवाजीव-पदं	**जीवाजीव-पदम्**	**जीवाजीव-पद**
३८७. समयाति वा आवलियाति वा जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति।	समयइति वा आवलिकाइति वा जीवइति च अजीवइति च प्रोच्यते।	३८७. समय और आवलिका— ये जीव-अजीव दोनों है।[122]
३८८ आणापाणूति वा थोवेति वा जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति।	आनप्राणइति वा स्तोकइति वा जीवइति च अजीवइति च प्रोच्यते।	३८८. आनप्राण और स्तोक— ये जीव-अजीव दोनों है।[123]
३८९ खणाति वा लवाति वा जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति।	क्षणइति वा लवइति वा जीवइति च अजीवइति च प्रोच्यते।	३८९. क्षण और लव
एवं—मुहुत्ताति वा अहोरत्ताति	एवम्—मुहूर्त्तइति वा अहोरात्रइति	मुहूर्त्त और अहोरात्र
वा पक्खाति वा मासाति वा	वा पक्षइति वा मासइति वा	पक्ष और मास
उडूति वा अयणाति वा	ऋतुइति वा अयनमिति वा	ऋतु और अयन
संवच्छराति वा जुगाति वा	सवत्सरइति वा युगमिति वा	सवत्सर और युग
वाससयाति वा वाससहस्साइ वा	वर्षशतमिति वा वर्षसहस्रमिति वा	सौ वर्ष और हजार वर्ष
वाससतसहस्साइ वा वासकोडीइ	वर्षशतसहस्रमिति वा वर्षकोटिरिति वा	लाख वर्ष और करोड़ वर्ष
वा पुव्वंगाति वा पुव्वाति वा	पूर्वाङ्गमिति वा पूर्वमिति वा	पूर्वाङ्ग और पूर्व
तुडियंगाति वा तुडियाति वा	त्रुटिताङ्गमिति वा त्रुटितमिति वा	त्रुटिताङ्ग और त्रुटित
अडडंगाति वा अडडाति वा	अटटाङ्गमिति वा अटटमिति वा	अटटाग और अटट
अववंगाति वा अववाति वा	अववाङ्गमिति वा अववमिति वा	अववाग और अवव
हूहूअंगाति वा हूहूयाति वा	हूहूकाङ्गमिति वा हूहूकमिति वा	हूहूकाग और हूहूक
उप्पलंगाति वा उप्पलाति वा	उत्पलाङ्गमिति वा उत्पलमिति वा	उत्पलाग और उत्पल
पउमंगाति वा पउमाति वा	पद्माङ्गमिति वा पद्ममिति वा	पद्माग और पद्म
णलिणंगाति वा णलिणाति वा	नलिनाङ्गमिति वा नलिनमिति वा	नलिनाग और नलिन

अत्थणिकुरंगाति वा अत्थणिकुराति वा अउअंगाति वा अउआति वा णउअंगाति वा णउआति वा पउतंगाति वा पउताति वा चूलियंगाति वा चूलियाति वा सीसपहेलियंगाति वा सीसपहेलियाति वा पलिओवमाति वा सागरोवमाति वा ओसप्पिणीति वा उस्सप्पिणीति वा—जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति।

अर्थनिकुराङ्गमिति वा अर्थनिकुरमिति वा अयुताङ्गमिति वा अयुतमिति वा नयुताङ्गमिति वा नयुतमिति वा प्रत्युताङ्गमिति वा प्रयुतमिति वा चूलिकाङ्गमिति वा चूलिकाइति वा शीर्षप्रहेलिकाङ्गमिति वा शीर्षप्रहेलिकाइति वा पल्योपममिति वा सागरोपममिति वा अवसर्पिणीति वा उत्सर्पिणीति वा—जीवइति च अजीवइति च प्रोच्यते।

अर्थनिकुराग और अर्थनिकुर
अयुतांग और अयुत
नयुताग और नयुत
प्रयुताग और प्रयुत
चूलिकाग और चूलिका
शीर्षप्रहेलिकाग और शीर्षप्रहेलिका
पल्योपम और सागरोपम
अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी—
ये सभी जीव-अजीव दोनो है।[११४]

३९०. **गामाति वा णगराति वा णिगमाति वा रायहाणीति वा खेडाति वा कब्बडाति वा मडंबाति वा दोणमुहाति वा पट्टणाति वा आगराति वा आसमाति वा संबाहाति वा सण्णिवेसाइ वा घोसाइ वा आरामाइ वा उज्जाणाति वा वणाति वा वणसंडाति वा वावीति वा पुक्खरणीति वा सराति वा सरपंतीति वा अगडाति वा तलागाति वा दहाति वा णदीति वा पुढवीति वा उदहीति वा वातखंधाति वा उवासंतराति वा वलयाति वा विग्गहाति वा दीवाति वा समुद्दाति वा वेलाति वा वेइयाति वा दाराति वा तोरणाति वा णेरइयाति वा णेरइयावासाति वा जाव वेमाणियाइ वा वेमाणियावासाइ वा कप्पाति वा कप्पविमाणावासाति वा वासाति वा**

ग्रामाइति वा नगराणीति वा निगमाइति वा राजधान्यइति वा खेटानीति वा करबटानीति वा मडम्बानीति वा द्रोणमुखानीति वा पत्तनानीति वा आकराइति वा आश्रमाइति वा सबाधाइति वा सन्निवेशाइति वा घोषाइति वा आरामाइति वा उद्यानानीति वा वनानीति वा वनषण्डाइति वा वाप्यइति वा पुष्करिण्यइति वा सरासीति वा सरःपङ्क्तयइति वा अवटाइति वा तडागा इति वा द्रहाइति वा नद्यइति वा पृथिव्यइति वा उदधयइति वा वातस्कन्धाइति वा अवकाशान्तराणीति वा वलयाइति वा विग्रहाइति वा द्वीपाइति वा समुद्राइति वा वेलाइति वा वेदिकाइति वा द्वाराणीति वा तोरणानीति वा नैरयिकाइति वा नैरयिकावासाइति वा यावत् वैमानिकाइति वा वैमानिकावासाइति वा कल्पाइति वा कल्पविमानावासाइति वा वर्षाणीति वा वर्षधरपर्वताइति वा कूटानीति वा कूटागाराणीति वा

३९०. ग्राम और नगर
निगम और राजधानी
खेट और कर्बट
मडंब और द्रोणमुख
पत्तन और आकर
आश्रम और सबाह
सन्निवेश और घोष
आराम और उद्यान
वन और वनषंड
वापी और पुष्करिणी
सर और सरपंक्ति
कूप और तालाब
द्रह और नदी
पृथ्वी और उदधि
वातस्कन्ध और अवकाशान्तर
वलय और विग्रह
द्वीप और समुद्र
वेला और वेदिका
द्वार और तोरण
नैरयिक और नैरयिकावास तथा वैमानिक तक के सभी दण्डक और उनके आवास
कल्प और कल्पविमानावास
वर्ष और वर्षधर-पर्वत

वासधरपव्वताति वा कूडाति वा कूडागाराति वा विजयाति वा रायहाणीति वा—जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति ।

विजयाइति वा राजधान्यइति वा—
जीवइति च अजीवइति च प्रोच्यते ।

कूट और कूटागार
विजय और राजधानी—
ये सभी जीव-अजीव दोनो है ।[१२५]

३६१. छायाति वा आतवाति वा दोसिणाति वा अंधकाराति वा ओमाणाति वा उम्माणाति वा अतियाणगिहाति वा उज्जाणगिहाति वा अवलिंबाति वा सणिप्पवाताति वा—जीवाति या अजीवाति या पवुच्चइ ।

छायेति वा आतपइति वा ज्योत्स्नेति वा अन्धकारमिति वा अवमानमिति वा उन्मानमिति वा अतियानगृहाणीति वा उद्यानगृहाणीति वा अवलिम्बाइति वा सनिष्प्रवाता इति वा—
जीवइति च अजीवइति च प्रोच्यते ।

३६१. छाया और आतप
ज्योत्सना और अन्धकार
अवमान और उन्मान
अतियानगृह[१२६] और उद्यानगृह
अवलिम्ब[१२७] और सनिष्प्रवात[१२८]—
ये सभी जीव-अजीव दोनो हैं ।

३६२. दो रासी पण्णत्ता, तं जहा—
जीवरासी चेव, अजीवरासी चेव ।

द्वौ राशी प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—
जीवराशिश्चैव, अजीवराशिश्चैव ।

३६२. राशि दो है—
जीवराशि, अजीवराशि ।

कम्म-पदं

कर्म-पदम्

कर्म-पद

३६३. दुविहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा—
पेज्जबंधे चेव, दोसबंधे चेव ।

द्विविधो बन्धः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
प्रेयोबन्धश्चैव दोषबन्धश्चैव ।

३६३. बन्ध दो प्रकार का है—
प्रेयो बन्ध, द्वेष बन्ध ।

३६४. जीवा णं दोहिं ठाणेहिं पावं कम्मं बंधंति, तं जहा—
रागेण चेव, दोसेण चेव ।

जीवा द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पापं कर्म बन्धन्ति, तद्यथा—
रागेण चैव, दोषेण चैव ।

३६४. जीव दो स्थानो से पाप-कर्म का बन्ध करते है—
राग से, द्वेष से ।

३६५. जीवा णं दोहिं ठाणेहिं पावं कम्मं उदीरेंति, तं जहा—
अब्भोवगमियाए चेव वेयणाए,
उवक्कमियाए चेव वेयणाए ।

जीवा द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पापं कर्म उदीरयन्ति, तद्यथा—
आभ्युपगमिक्या चैव वेदनया,
औपक्रमिक्या चैव वेदनया ।

३६५. जीव दो स्थानो से पाप-कर्म की उदीरणा करते है—आभ्युपगमिकी (स्वीकृत तपस्या आदि) वेदना से, औपक्रमिकी (रोग आदि) वेदना से ।

३६६. °जीवा णं दोहिं ठाणेहिं पावं कम्मं वेदेंति, तं जहा—
अब्भोवगमियाए चेव वेयणाए,
उवक्कमियाए चेव वेयणाए ।

जीवा द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पापं कर्म वेदयन्ति, तद्यथा—
आभ्युपगमिक्या चैव वेदनया,
औपक्रमिक्या चैव वेदनया ।

३६६. जीव दो स्थानो से पाप-कर्म का वेदन करते हैं—
आभ्युपगमिकी वेदना से,
औपक्रमिकी वेदना से ।[१२९]

३६७. जीवा णं दोहिं ठाणेहिं पावं कम्मं णिज्जरेंति, तं जहा°—
अब्भोवगमियाए चेव वेयणाए,
उवक्कमियाए चेव वेयणाए ।

जीवा द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पापं कर्म निर्जरयन्ति तद्यथा—
आभ्युपगमिक्या चैव वेदनया,
औपक्रमिक्या चैव वेदनया ।

३६७. जीव दो स्थानो से पाप-कर्म का निर्जरण करते है—
आभ्युपगमिकी वेदना से,
औपक्रमिकी वेदना से ।

अत्त-णिज्जाण-पदं

३९८. दोहिं ठाणेहिं आता सरीरं फुसित्ता णं णिज्जाति, तं जहा—
देसेणवि आता सरीरं फुसित्ता णं णिज्जाति,
सव्वेणवि आता सरीरगं फुसित्ता णं णिज्जाति।

३९९. *दोहिं ठाणेहिं आता सरीरं फुरित्ता णं णिज्जाति, तं जहा—
देसेणवि आता सरीरं फुरित्ता णं णिज्जाति,
सव्वेणवि आता सरीरगं फुरित्ता णं णिज्जाति।

४००. दोहिं ठाणेहिं आता सरीरं फुडित्ता णं णिज्जाति, तं जहा—
देसेणवि आता सरीरं फुडित्ता णं णिज्जाति,
सव्वेणवि आता सरीरगं फुडित्ता णं णिज्जाति।

४०१. दोहिं ठाणेहिं आता सरीरं संवट्ट-इत्ता णं णिज्जाति, तं जहा—
देसेणवि आता सरीरं संवट्टइत्ता णं णिज्जाति,
सव्वेणवि आता सरीरगं संवट्ट-इत्ता णं णिज्जाति।

४०२. दोहिं ठाणेहिं आता सरीरं णिवट्टइत्ता णं णिज्जाति, तं जहा—
देसेणवि आता सरीरं णिवट्टइत्ता णं णिज्जाति,
सव्वेणवि आता सरीरगं णिवट्ट-इत्ता णं णिज्जाति।°

आत्म-निर्याण-पदम्

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा शरीरं स्पृष्ट्वा निर्याति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा शरीरं स्पृष्ट्वा निर्याति,
सर्वेणापि आत्मा शरीरकं स्पृष्ट्वा निर्याति।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा शरीरं स्फोरयित्वा निर्याति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा शरीरकं स्फोरयित्वा निर्याति,
सर्वेणापि आत्मा शरीरकं स्फोरयित्वा निर्याति।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा शरीरं स्फोटयित्वा निर्याति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा शरीरं स्फोटयित्वा निर्याति,
सर्वेणापि आत्मा शरीरकं स्फोटयित्वा निर्याति।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा शरीरं संवर्त्य निर्याति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा शरीरं संवर्त्य निर्याति,
सर्वेणापि आत्मा शरीरकं संवर्त्य निर्याति।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा शरीरं निवर्त्य निर्याति, तद्यथा—
देशेनापि आत्मा शरीरं निवर्त्य निर्याति
सर्वेणापि आत्मा शरीरकं निवर्त्य निर्याति।

आत्म-निर्याण-पद

३९८. दो प्रकार से आत्मा शरीर का स्पर्श कर बाहर निकलती है—
कुछेक प्रदेशों से आत्मा शरीर का स्पर्श कर बाहर निकलती है,
सब प्रदेशों से आत्मा शरीर का स्पर्श कर बाहर निकलती है।

३९९. दो प्रकार से आत्मा शरीर को स्फुरित (स्पन्दित) कर बाहर निकलती है—
कुछेक प्रदेशों से आत्मा शरीर को स्फुरित कर बाहर निकलती है,
सब प्रदेशों से आत्मा शरीर को स्फुरित कर बाहर निकलती है।

४००. दो प्रकार से आत्मा शरीर को स्फुटित (स्फोट-युक्त) कर बाहर निकलती है—
कुछेक प्रदेशों से आत्मा शरीर को स्फुटित कर बाहर निकलती है,
सब प्रदेशों से आत्मा शरीर को स्फुटित कर बाहर निकलती है।

४०१. दो प्रकार से आत्मा शरीर को संवर्तित (संकुचित) कर बाहर निकलती है—
कुछेक प्रदेशों से आत्मा शरीर को संवर्तित कर बाहर निकलती है,
सब प्रदेशों से आत्मा शरीर को संवर्तित कर बाहर निकलती है।

४०२. दो प्रकार से आत्मा शरीर को निर्वर्तित (जीव प्रदेशों से अलग) कर बाहर निकलती है—
कुछेक प्रदेशों से आत्मा शरीर को निर्वर्तित कर बाहर निकलती है,
सब प्रदेशों से आत्मा शरीर को निर्वर्तित कर बाहर निकलती है।

खय-उवसम-पदं

४०३. दोहिं ठाणेहिं आता केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए, तं जहा—
खएण चेव, उवसमेण चेव।

४०४. *दोहिं ठाणेहिं आता—
केवलं बोधिं बुज्झेज्जा,
केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा,
केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा,
केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा,
केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा,
केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
खएण चेव, उवसमेण चेव।

क्षयोपशम-पदम्

द्वाभ्यां स्थानाभ्या आत्मा केवलिप्रज्ञप्त धर्म लभेत श्रवणतया, तद्यथा—
क्षयेण चैव, उपशमेन चैव।

द्वाभ्या स्थानाभ्यां आत्मा—
केवलां बोधि बुध्येत,
केवल मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजेत्,
केवल ब्रह्मचर्यवासमावसेत्,
केवलेन सयमेन सयच्छेत्,
केवलेन संवरेण सवृणुयात्,
केवलमाभिनिवोधिकज्ञान उत्पादयेत्,
केवल श्रुतज्ञान उत्पादयेत्,
केवलं अवधिज्ञान उत्पादयेत्,
केवलं मनःपर्यवज्ञान उत्पादयेत्,
तद्यथा—
क्षयेण चैव, उपशमेन चैव

क्षयोपशम-पद

४०३. दो स्थानों से आत्मा केवलीप्रज्ञप्त धर्म को सुन पाती है—
कर्मपुद्गलो के क्षय से, कर्मपुद्गलों के उपशम से — क्षयोपशम से[11]

४०४. दो स्थानो से आत्मा विशुद्ध बोधि का अनुभव करती है—
मुड होकर, घर छोडकर सम्पूर्ण अनगारिता—साधुपन को पाती है।
सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त करती है।
सम्पूर्ण सयम के द्वारा सयत होती है।
सम्पूर्ण सवर के द्वारा सवृत होती है।
विशुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान को प्राप्त करती है।
विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त करती है।
विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त करती है।
विशुद्ध मन पर्यवज्ञान को प्राप्त करती है—
क्षय से और उपशम मे — क्षयोपशम से।

ओवमिय-काल-पदं

४०५ दुविहे अद्धोवमिए पण्णत्ते, तं जहा—पलिओवमे चेव,
सागरोवमे चेव।
से किं तं पलिओवमे ? पलिओवमे—
संगहणी-गाहा—
१ जं जोयणविच्छिण्णं,
पल्लं एगाहियप्परूढाणं।
होज्ज णिरंतरणिचितं,
भरितं वालग्गकोडीणं॥
२ वाससए वाससए,
एक्केक्के अवहडंमि जो कालो।

औपमिक-काल-पदम्

द्विविध अद्ध्वौपमिक प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पल्योपमञ्चैव,
सागरोपमञ्चैव।
तत् किं पल्योपमम् ? पल्योपमम्—
सग्रहणी-गाथा—
१. यत् योजनविस्तीर्ण,
पल्य एकाहिक प्ररूढानाम्।
भवेत् निरन्तरनिचित,
भरितं बालाग्रकोटीनाम्॥
२. वर्षशते वर्षशते,
एकैकस्मिन् अपहृते य. काल।

औपमिक-काल-पद

४०५. औपमिक[11] अद्धा-काल दो प्रकार का है—पल्योपम, सागरोपम।

भते ! पल्योपम किसे कहा जाता है ?

सग्रहणी-गाथा—
एक अनाज भरने का गड्ढा है। वह एक योजन लम्बा-चौड़ा है। उसमे एक से सात दिन के उगे हुए बालाग्रो के खण्ड ठूस-ठूसकर भरे हुए हैं।
सौ-सौ वर्षो से उनमे से एक-एक बालाग्र-खण्ड निकाला जाता है। इस प्रकार उस

सो कालो बोद्धव्वो,
उवमा एगस्स पल्लस्स ।।
३ एएसिं पल्लाणं,
कोडाकोडी हवेज्ज दस गुणिता ।
तं सागरोवमस्स उ,
एगस्स भवे परीमाणं ।।

स कालः बोद्धव्यः,
उपमा एकस्य पल्यस्य ।।
३. एतेषां पल्यानां,
कोटाकोटी भवेत् दश गुणिता ।
तत् सागरोपमस्य तु,
एकस्य भवेत् परिमाणम् ।।

गड्ढे को खाली होने मे जितना समय लगे उसे पल्योपमकाल कहा जाता है। दस कोटी-कोटी पल्योपम जितने काल को सागरोपमकाल कहा जाता है।

पाव-पदं

४०६ **दुविहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा— आयपइट्ठिए चेव, परपइट्ठिए चेव ।**

४०७. ***दुविहे माणे, दुविहा माया, दुविहे लोभे, दुविहे पेज्जे, दुविहे दोसे, दुविहे कलहे, दुविहे अब्भक्खाणे, दुविहे पेसुण्णे, दुविहे परपरिवाए, दुविहा अरतिरती, दुविहे मायामोसे,**

दुविहे मिच्छादंसणसल्ले पण्णत्ते, तं जहा—आयपइट्ठिए चेव, परपइट्ठिए चेव । एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं° ।

पाप-पदम्

द्विविधः क्रोधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— आत्मप्रतिष्ठितश्चैव, परप्रतिष्ठितश्चैव ।

द्विविधः मानः, द्विविधा माया, द्विविधः लोभः, द्विविधः प्रेयान्, द्विविधः दोषः, द्विविधः कलहः, द्विविधम् अभ्याख्यानम्, द्विविधं पैशुन्यम्, द्विविधः परपरिवादः, द्विविधा अरतिरतिः, द्विविधा मायामृषा,

द्विविधं मिथ्यादर्शनशल्यं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आत्मप्रतिष्ठितं चैव, परप्रतिष्ठितं चैव । एवं नैरयिकाणां यावत् वैमानिकानाम् ।

पाप-पद

४०६. क्रोध दो प्रकार का होता है— आत्मप्रतिष्ठित, परप्रतिष्ठित।[111]

४०७. मान दो प्रकार का, माया दो प्रकार की, लोभ दो प्रकार का, प्रेम दो प्रकार का, द्वेष दो प्रकार का, कलह दो प्रकार का, अभ्याख्यान दो प्रकार का, पैशुन्य दो प्रकार का, परपरिवाद दो प्रकार का, अरति-रति दो प्रकार की, मायामृषा दो प्रकार की। मिथ्यादर्शनशल्य दो प्रकार का होता है— आत्मप्रतिष्ठित, परप्रतिष्ठित।

इसी प्रकार नैरयिको तथा वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको के जीवो के क्रोध आदि दो-दो प्रकार के होते है।

जीव-पदं

४०८ **दुविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा— तसा चेव, थावरा चेव ।**

४०९. **दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—सिद्धा चेव, असिद्धा चेव ।**

जीव-पदम्

द्विविधाः संसारसमापन्नका जीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— त्रसाश्चैव, स्थावराश्चैव ।

द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— सिद्धाश्चैव, असिद्धाश्चैव ।

जीव-पद

४०८. संसारी जीव दो प्रकार के होते है— त्रस, थावर।

४०९. सब जीव दो प्रकार के होते हैं— सिद्ध, असिद्ध।

४१०. दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—
सइंदिया चेव, अणिंदिया चेव।
°सकायच्चेव, अकायच्चेव।
सजोगी चेव, अजोगी चेव।
सवेया चेव, अवेया चेव।
सकसाया चेव, अकसाया चेव।
सलेसा चेव, अलेसा चेव।
णाणी चेव, अणाणी चेव।
सागारोवउत्ता चेव,
अणागारोवउत्ता चेव।
आहारगा चेव, अणाहारगा चेव।
भासगा चेव, अभासगा चेव।
चरिमा चेव, अचरिमा चेव।
ससरीरी चेव, असरीरी चेव°।

द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
सेन्द्रियाश्चैव, अनिन्द्रियाश्चैव।
सकायाश्चैव, अकायाश्चैव।
सयोगिनश्चैव, अयोगिनश्चैव।
सवेदाश्चैव, अवेदाश्चैव।
सकषायाश्चैव, अकषायाश्चैव।
सलेश्याश्चैव, अलेश्याश्चैव।
ज्ञानिनश्चैव, अज्ञानिनश्चैव।
साकारोपयुक्ताश्चैव,
अनाकारोपयुक्ताश्चैव।
आहारकाश्चैव, अनाहारकाश्चैव।
भाषकाश्चैव, अभाषकाश्चैव।
चरमाश्चैव, अचरमाश्चैव।
सशरीरिणश्चैव, अशरीरिणश्चैव।

४१०. सब जीव दो-दो प्रकार के होते हैं[111]—
सइन्द्रिय और अनिन्द्रिय।
सकाय और अकाय।
सयोगी और अयोगी।
सवेद और अवेद।
सकषाय और अकषाय।
सलेश्य और अलेश्य।
ज्ञानी और अज्ञानी।
साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त।
आहारक और अनाहारक।
भाषक और अभाषक।
चरम और अचरम।
सशरीरी और अशरीरी।

मरण-पदं

४११. दो मरणाइं समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णो णिच्चं वण्णियाइं णो णिच्चं कित्तियाइं णो णिच्चं बुइयाइं णो णिच्चं पसत्थाइं णो णिच्चं अब्भणुण्णायाइं भवंति, तं जहा—
वलयमरणे चेव,
वसट्टमरणे चेव।

४१२ एवं—णियाणमरणे चेव,
तब्भवमरणे चेव।
गिरिपडणे चेव,
तरुपडणे चेव।
जलपवेसे चेव,
जलणपवेसे चेव।
विसभक्खणे चेव,
सत्थोवाडणे चेव।

मरण-पदम्

द्वे मरणे श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थानां नो नित्य वर्णिते नो नित्य कीर्त्तिते नो नित्य उक्ते नो नित्य प्रशस्ते नो नित्य अभ्यनुज्ञाते भवतः, तद्यथा—
वलन्मरणञ्चैव,
वशार्त्तमरणञ्चैव।

एवम्—निदानमरणञ्चैव,
तद्भवमरण चैव।
गिरिपतन चैव,
तरुपतन चैव।
जलप्रवेशश्चैव,
ज्वलनप्रवेशश्चैव।
विषभक्षण चैव,
शस्त्रावपाटन चैव।

मरण-पद

४११. श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए दो प्रकार के मरण[112] श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा कभी भी वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशंसित और अनुमत नही हैं—
वलन्—परिषहों से बाधित होने पर जो व्यक्ति संयम से निवर्तमान होते हैं, उनका मरण। वशार्त—इन्द्रियो के अधीन बने हुए पुरुष का मरण।

४१२. इसी प्रकार—निदानमरण,
तद्भवमरण
गिरिपतन—पहाड से गिरकर मरना
तरुपतन—वृक्ष से गिरकर मरना
जलप्रवेश कर मरना
अग्निप्रवेश कर मरना
विषभक्षण कर मरना
शस्त्र से घात कर मरना।

४१३. दो मरणाइं °समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णो णिच्चं वण्णियाइं णो णिच्चं कित्तियाइं णो णिच्चं बुइयाइं णो णिच्चं पसत्थाइं° णो णिच्चं अब्भणुण्णायाइं भवंति। कारणे पुण अप्पडिकुट्ठाइं, तं जहा—
वेहाणसे चेव, गिद्धपट्ठे चेव।

द्वे मरणे श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणानां निर्ग्रन्थानां नो नित्यं वर्णिते नो नित्यं कीर्त्तिते नो नित्यं उक्ते नो नित्य प्रशस्ते नो नित्य अभ्यनुज्ञाते भवत.। कारणे पुन: अप्रतिक्रुष्टे, तद्यथा—वैहायसञ्चैव,
गृद्धस्पृष्टञ्चैव।

४१३. ये दो-दो प्रकार के मरण श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा कभी भी वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशंसित और अनुमत नही है। किन्तु शील-रक्षा आदि प्रयोजन होने पर वे अनुमत भी हैं—
वैहायस—फांसी लेकर मरना।
गृद्धस्पृष्ट—कोई व्यक्ति हाथी आदि बृहत्काय वाले जानवरों के शव में प्रवेश कर शरीर का व्युत्सर्ग करता है, वहां गीध आदि पक्षी शव के साथ-साथ उस शरीर को भी नोच डालते हैं। इस प्रकार उसका मरण होता है।

४१४ दो मरणाइं समणेणं भगवया महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णियाइं °णिच्चं कित्तियाइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं° अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—
पाओवगमणे चेव,
भत्तपच्चक्खाणे चेव।

द्वे मरणे श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नित्य वर्णिते नित्यं कीर्त्तिते नित्यं उक्ते नित्य प्रशस्ते नित्यं अभ्यनुज्ञाते भवत, तद्यथा—
प्रायोपगमनञ्चैव,
भक्तप्रत्याख्यानञ्चैव।

४१४. श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के मरण श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा सदा वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशंसित और अनुमत हैं—
प्रायोपगमन, भक्तप्रत्याख्यान।

४१५. पाओवगमणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—णीहारिमे चेव,
अणीहारिमे चेव।
णियमं अपडिकम्मे।

प्रायोपगमन द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
निर्हारि चैव, अनिर्हारि चैव।
नियमं अप्रतिकर्म।

४१५. प्रायोपगमन दो प्रकार का होता है—
निर्हारि, अनिर्हारि।
प्रायोपगमन नियमतः अप्रतिकर्म होता है।

४१६. भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—णीहारिमे चेव,
अणीहारिमे चेव।
णियमं सपडिकम्मे।

भक्तप्रत्याख्यानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
निर्हारि चैव, अनिर्हारि चैव।
नियमं सप्रतिकर्म।

४१६. भक्तप्रत्याख्यान दो प्रकार का होता है—
निर्हारि, अनिर्हारि।
भक्तप्रत्याख्यान नियमतः सप्रतिकर्म होता है।

लोग-पदं

४१७. के अयं लोगे?
जीवच्चेव, अजीवच्चेव।

४१८ के अणंता लोगे?
जीवच्चेव, अजीवच्चेव।

लोक-पदम्

को यं लोक:?
जीवाश्चैव, अजीवाश्चैव।
के अनन्ता लोके?
जीवाश्चैव, अजीवाश्चैव।

लोक-पद

४१७. भंते! यह लोक क्या है?
जीव और अजीव ही लोक है।

४१८ भंते! लोक में अनन्त क्या है?
जीव और अजीव।

४१९. के सासया लोगे ?
जीवच्चेव, अजीवच्चेव ।

के शाश्वता लोके ?
जीवाश्चैव, अजीवाश्चैव ।

४१९ भंते ! लोक मे शाश्वत क्या है ?
जीव और अजीव ।

बोधि-पदं

४२०. दुविहा बोधी पण्णत्ता, तं जहा—
णाणबोधी चेव, दंसणबोधी चेव ।

४२१. दुविहा बुद्धा पण्णत्ता, तं जहा—
णाणबुद्धा चेव, दंसणबुद्धा चेव ।

बोधि-पदम्

द्विविधा बोधिः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ज्ञानबोधिश्चैव, दर्शनबोधिश्चैव ।

द्विविधा बुद्धाः प्रज्ञप्ता , तद्यथा—
ज्ञानबुद्धाश्चैव, दर्शनबुद्धाश्चैव ।

बोधि-पद

४२०. बोधि दो प्रकार की है—
ज्ञान-बोधि, दर्शन-बोधि ।

४२१. बुद्ध दो प्रकार के है—
ज्ञानबुद्ध, दर्शनबुद्ध ।

मोह-पदं

४२२. •दुविहे मोहे पण्णत्ते, तं जहा—
णाणमोहे चेव, दंसणमोहे चेव ।

४२३. दुविहा मूढा पण्णत्ता, तं जहा—
णाणमूढा चेव, दंसणमूढा चेव ।°

मोह-पदम्

द्विविधो मोह प्रज्ञप्त , तद्यथा—
ज्ञानमोहश्चैव, दर्शनमोहश्चैव ।

द्विविधाः मूढाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—
ज्ञानमूढाश्चैव, दर्शनमूढाश्चैव ।

मोह-पद

४२२. मोह दो प्रकार का है—
ज्ञानमोह, दशनमाह ।[११०]

४२३. मूढ दो प्रकार के है—
ज्ञानमूढ, दर्शनमूढ ।

कम्म-पदं

४२४ णाणावरणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
देसणाणावरणिज्जे चेव,
सव्वणाणावरणिज्जे चेव ।

४२५ दरिसणावरणिज्जे कम्मे• दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
देसदरिसणावरणिज्जे चेव,
सव्वदरिसणावरणिज्जे चेव ।°

४२६. वेयणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सातावेयणिज्जे चेव,
असातावेयणिज्जे चेव ।

४२७. मोहणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—दंसणमोहणिज्जे चेव,
चरित्तमोहणिज्जे चेव ।

४२८. आउए कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अद्धाउए चेव,
भवाउए चेव ।

कर्म-पदम्

ज्ञानावरणीय कर्म द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
देशज्ञानावरणीयञ्चैव,
सर्वज्ञानावरणीयञ्चैव ।

दर्शनावरणीय कर्म द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
देशदर्शनावरणीयञ्चैव,
सर्वदर्शनावरणीयञ्चैव ।

वेदनीय कर्म द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सातवेदनीयञ्चैव,
असातवेदनीयञ्चैव ।

मोहनीय कर्म द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—दर्शनमोहनीयञ्चैव,
चरित्रमोहनीयञ्चैव ।

आयुः कर्म द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
अद्ध्वायुश्चैव, भवायुश्चैव ।

कर्म-पद

४२४. ज्ञानावरणीय कर्म दो प्रकार का है—
देशज्ञानावरणीय, सर्वज्ञानावरणीय ।

४२५. दर्शनावरणीय कम दो प्रकार का है—
देशदर्शनावरणीय, सर्वदर्शनावरणीय ।

४२६. वेदनीयकर्म दो प्रकार का है—
सातवेदनीय, असातवेदनीय ।

४२७. मोहनीयकर्म दो प्रकार का है—
दर्शनमोहनीय, चरित्रमोहनीय ।

४२८ आयुष्यकर्म दो प्रकार का है—
अद्ध्वायुष्य—कायस्थिति की आयु
भवायुष्य—उसी जन्म की आयु ।[१११]

४२९. णामे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा— सुभणामे चेव, असुभणामे चेव।

नाम कर्म द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— शुभनाम चैव, अशुभनाम चैव।

४२९. नामकर्म दो प्रकार का है— शुभनाम, अशुभनाम।

४३०. गोत्ते कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—उच्चागोते चेव, णीयागोते चेव।

गोत्र कर्म द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— उच्चगोत्रञ्चैव, नीचगोत्रञ्चैव।

४३०. गोत्र कर्म दो प्रकार का है— उच्चगोत्र, नीचगोत्र।

४३१. अंतराइए कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पडुप्पण्णविणासिए चेव, पिहृति य आगामिपहं चेव।

अन्तरायिक कर्म द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—प्रत्युत्पन्नविनाशित चैव, पिधत्ते च आगामिपथं चैव।

४३१. अन्तराय कर्म दो प्रकार का है— प्रत्युत्पन्न-विनाशित—वर्तमान में प्राप्त वस्तु का विनाश करने वाला, भविष्य मे होने वाले लाभ के मार्ग को रोकने वाला[११७]।

मुच्छा-पदं

मूर्च्छा-पदम्

मूर्च्छा-पद

४३२ दुविहा मुच्छा पण्णत्ता, तं जहा— पेज्जवत्तिया चेव, दोसवत्तिया चेव।

द्विविधा मूर्च्छा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— प्रेयोवृत्तिका चैव, दोषवृत्तिका चैव।

४३२. मूर्च्छा दो प्रकार की है—प्रेयस्प्रत्यया—प्रेम के कारण होने वाली मूर्च्छा, द्वेषप्रत्यया—द्वेष के कारण होने वाली मूर्च्छा।

४३३. पेज्जवत्तिया मुच्छा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—माया चेव, लोभे चेव।

प्रेयोवृत्तिका मूर्च्छा द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—माया चैव, लोभश्चैव।

४३३. प्रेयस्प्रत्यया मूर्च्छा दो प्रकार की है— माया, लोभ।

४३४ दोसवत्तिया मुच्छा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—कोहे चेव, माणे चेव।

दोषवृत्तिका मूर्च्छा द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—क्रोधश्चैव, मानश्चैव।

४३४. द्वेषप्रत्यया मूर्च्छा दो प्रकार की है— क्रोध, मान।

आराहणा-पदं

आराधना-पदम्

आराधना-पद

४३५. दुविहा आराहणा पण्णत्ता, तं जहा—धम्मियाराहणा चेव, केवलिआराहणा चेव।

द्विविधा आराधना प्रज्ञप्ता, तद्यथा— धार्मिक्याराधना चैव, कैवलिक्याराधना चैव।

४३५. आराधना दो प्रकार की है— धार्मिकी आराधना—धार्मिकों के द्वारा की जाने वाली आराधना, कैवलिकी आराधना[११८]—केवलियों के द्वारा की जाने वाली आराधना।

४३६. धम्मियाराहणा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सुयधम्माराहणा चेव, चरित्रधम्माराहणा चेव।

धार्मिक्याराधना द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—श्रुतधर्माराधना चैव, चरित्रधर्माराधना चैव।

४३६. धार्मिकी आराधना दो प्रकार की है— श्रुतधर्म की आराधना, चरित्रधर्म की आराधना।

४३७. केवलिआराहणा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—अंतकिरिया चेव, कप्पविमाणोववत्तिआ चेव।

कैवलिक्याराधना द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अन्तक्रिया चैव, कल्पविमानोपपत्तिका चैव।

४३७. कैवलिकी आराधना दो प्रकार की है— अन्तक्रिया, कल्पविमानोपपत्तिका।[११९]

तित्थगर-वण्ण-पदं

४३८. दो तित्थगरा णीलुप्पलसमा वण्णेणं पण्णत्ता, तं जहा—
मुणिसुव्वए चेव, अरिट्ठणेमी चेव।

४३९. दो तित्थगरा पियंगुसामा वण्णेणं, पण्णत्ता, तं जहा—मल्ली चेव, पासे चेव।

४४०. दो तित्थगरा पउमगोरा वण्णेणं पण्णत्ता, तं जहा—पउमप्पहे चेव, वासुपुज्जे चेव।

४४१. दो तित्थगरा चंदगोरा वण्णेणं पण्णत्ता, तं जहा—चंदप्पभे चेव, पुप्फदंते चेव।

तीर्थंकर-वर्ण-पदम्

द्वौ तीर्थकरौ नीलोत्पलसमौ वर्णेन प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—
मुनिसुव्रतश्चैव, अरिष्टनेमिश्चैव।

द्वौ तीर्थकरौ प्रियङ्गुश्यामौ वर्णेन प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—मल्ली चैव, पार्श्वश्चैव।

द्वौ तीर्थकरौ पद्मगौरौ वर्णेन प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—पद्मप्रभश्चैव, वासुपूज्यश्चैव।

द्वौ तीर्थकरौ चन्द्रगौरौ वर्णेन प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—चन्द्रप्रभश्चैव, पुष्पदन्तश्चैव।

तीर्थंकर-वर्ण-पद

४३८. दो तीर्थंकर नीलोत्पल के समान नीलवर्ण वाले थे—
मुनिसुव्रत, अरिष्टनेमी।

४३९. दो तीर्थंकर प्रियङ्गु—कागनी के समान श्यामवर्ण वाले थे—
मल्लीनाथ, पार्श्वनाथ।

४४०. दो तीर्थंकर पद्म के समान गौरवर्ण वाले थे—पद्मप्रभु, वासुपूज्य।

४४१. दो तीर्थंकर चन्द्र के समान गौरवर्ण वाले थे—चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त।

पुव्ववत्थु-पदं

४४२. सच्चप्पवायपुव्वस्स णं दुवे वत्थू पण्णत्ता।

पूर्ववस्तु-पदम्

सत्यप्रवादपूर्वस्य द्वे वस्तुनी प्रज्ञप्ते।

पूर्ववस्तु-पद

४४२. सत्यप्रवाद पूर्व के दो वस्तु—विभाग है।

णक्खत्त-पदं

४४३. पुव्वाभद्दवयाणक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते।

४४४. उत्तराभद्दवयाणक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते।

४४५. °पुव्वफग्गुणीणक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते।

४४६. उत्तराफग्गुणीणक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते।°

नक्षत्र-पदम्

पूर्वभाद्रपदानक्षत्रं द्वितारं प्रज्ञप्तम्।

उत्तरभाद्रपदानक्षत्रं द्वितारं प्रज्ञप्तम्

पूर्वफल्गुनीनक्षत्रं द्वितारं प्रज्ञप्तम्।

उत्तरफल्गुनीनक्षत्रं द्वितारं प्रज्ञप्तम्।

नक्षत्र-पद

४४३. पूर्वभाद्रपद नक्षत्र के दो तारे है।

४४४. उत्तरभाद्रपद नक्षत्र के दो तारे है।

४४५. पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र के दो तारे हैं।

४४६. उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र के दो तारे है।

समुद्द-पदं

४४७. अंतो णं मणुस्सखेत्तस्स दो समुद्दा पण्णत्ता, तं जहा—लवणे चेव, कालोदे चेव।

समुद्र-पदम्

अन्तर्मनुष्यक्षेत्रस्य द्वौ समुद्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—लवणश्चैव, कालोदश्चैव।

समुद्र-पद

४४७. मनुष्यक्षेत्र के मध्य मे दो समुद्र है—
लवण, कालोद।

चक्कवट्टि-पदं

४४८. दो चक्कवट्टी अपरिचत्तकामभोगा कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए अपइट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववण्णा, तं जहा—
सुभूमे चेव, बंभदत्ते चेव।

चक्रवर्त्ति-पदम्

द्वौ चक्रवर्त्तिनौ अपरित्यक्तकामभोगौ कालमासे काल कृत्वा अधःसप्तमायां पृथिव्या अप्रतिष्ठाने नरके नैरयिकत्वाय उपपन्नौ, तद्यथा—
सुभूमश्चैव, ब्रह्मदत्तश्चैव।

चक्रवर्त्ति-पद

४४८. दो चक्रवर्ती काम-भोगो को छोड़े बिना, मरणकाल मे मरकर नीचे की ओर सातवी पृथ्वी के अप्रतिष्ठान नरक में नैरयिक के रूप मे उत्पन्न हुए—
सुभूम[140], ब्रह्मदत्त[141]।

देव-पदं

४४९. असुरिंदवज्जियाणं भवणवासीणं देवाणं उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

४५०. सोहम्मे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

४५१. ईसाणे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

४५२. सणंकुमारे कप्पे देवाणं जहण्णेणं दो सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

४५३. माहिंदे कप्पे देवाणं जहण्णेणं साइरेगाइं दो सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

४५४. दोसु कप्पेसु कप्पित्थियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
सोहम्मे चेव, ईसाणे चेव।

४५५. दोसु कप्पेसु देवा तेउलेस्सा पण्णत्ता, तं जहा—
सोहम्मे चेव, ईसाणे चेव।

४५६. दोसु कप्पेसु देवा कायपरियारगा पण्णत्ता, तं जहा—
सोहम्मे चेव, ईसाणे चेव।

४५७. दोसु कप्पेसु देवा फासपरियारगा पण्णत्ता, तं जहा—
सणंकुमारे चेव, माहिंदे चेव।

देव-पदम्

असुरेन्द्रवर्जितानां भवनवासिना देवाना उत्कर्षेण देशोने द्वे पल्योपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

सौधर्मे कल्पे देवाना उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

ईशाने कल्पे देवानां उत्कर्षेण सातिरेके द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

सनत्कुमारे कल्पे देवानां जघन्येन द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

माहेन्द्रे कल्पे देवाना जघन्येन सातिरेके द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

द्वयोः कल्पयोः कल्पस्त्रियः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सौधर्मे चैव, ईशाने चैव।

द्वयोः कल्पयोः देवाः तेजोलेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सौधर्मे चैव, ईशाने चैव।

द्वयोः कल्पयोः देवाः कायपरिचारकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सौधर्मे चैव, ईशाने चैव।

द्वयोः कल्पयोः देवाः स्पर्शपरिचारकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सनत्कुमारे चैव, माहेन्द्रे चैव।

देव-पद

४४९. असुरेन्द्र वर्जित[142] भवनवासी देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो पल्योपम से कुछ कम है।

४५०. सौधर्म कल्प में देवो की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम की है।

४५१. ईशान कल्प में देवो की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक है।

४५२. सनत्कुमार कल्प मे देवो की जघन्य स्थिति दो सागरोपम की है।

४५३. माहेन्द्र कल्प मे देवो की जघन्य स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक है।

४५४. दो कल्पों मे कल्प-स्त्रियां [देवियां] होती है—सौधर्म मे, ईशान में।

४५५. दो कल्पो मे देव तेजोलेश्या से युक्त होते हैं—सौधर्म मे, ईशान में।

४५६. दो कल्पो मे देव काय-परिचारक [संभोग करने वाले] होते है—
सौधर्म मे, ईशान में।

४५७. दो कल्पो में देव स्पर्श-परिचारक [देवी के स्पर्श मात्र से वासना-पूर्ति करने वाले] होते है—सनत्कुमार में, माहेन्द्र मे।

४५८. दोसु कप्पेसु देवा रूवपरियारगा पण्णत्ता, तं जहा—
बंभलोगे चेव, लंतगे चेव।

द्वयोः कल्पयोः देवाः रूपपरिचारकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ब्रह्मलोके चैव, लान्तके चैव।

४५८. दो कल्पो में देव रूप-परिचारक [देवी का रूप देखकर वासना-पूर्ति करने वाले] होते हैं—
ब्रह्मलोक मे, लांतक में।

४५९. दोसु कप्पेसु देवा सद्दपरियारगा पण्णत्ता, तं जहा—
महासुक्के चेव, सहस्सारे चेव।

द्वयोः कल्पयोः देवाः शब्दपरिचारकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
महाशुक्रे चैव, सहस्रारे चैव।

४५९. दो कल्पो मे देव शब्द-परिचारक [देवी के शब्द सुनकर वासना-पूर्ति करने वाले] होते हैं—
महाशुक्र मे, सहस्रार मे।

४६०. दो इंदा मणपरियारगा पण्णत्ता, तं जहा—पाणए चेव, अच्चुए चेव।

द्वौ इन्द्रौ मनःपरिचारकौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—प्राणते चैव, अच्युते चैव।

४६०. दो इन्द्र[143] मन-परिचारक [संकल्प मात्र से वासना-पूर्ति करने वाले] होते हैं—
प्राणत, अच्युत।

पावकम्म-पदं

पापकर्म-पदम्

पापकर्म-पद

४६१. जीवा णं दुट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—तसकायणिव्वत्तिए चेव, थावरकायणिव्वत्तिए चेव।

जीवाः द्विस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषुः वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा—
त्रसकायनिर्वर्त्तितांश्च,
स्थावरकायनिर्वर्त्तितांश्च।

४६१. जीवों ने द्वि-स्थान निर्वर्तित पुद्गलो का पाप-कर्म के रूप में चय किया है, करते है और करेंगे—
त्रसकाय निर्वर्तित—त्रसकाय के रूप मे उपार्जित पुद्गलों का,
स्थावरकाय निर्वर्तित—स्थावरकाय के रूप मे उपार्जित पुद्गलो का।

४६२. °जीवा णं दुट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए°—
उवचिणिंसु वा उवचिणंति वा उवचिणिस्संति वा, बंधिसु वा बंधेंति वा बंधिस्संति वा, उदीरिंसु वा उदीरेंति वा उदीरिस्संति वा, वेदेंसु वा वेदेंति वा वेदिस्संति वा, णिज्जरिंसु वा णिज्जरेंति वा णिज्जरिस्संति वा, °तं जहा—
तसकायणिव्वत्तिए चेव,
थावरकायणिव्वत्तिए चेव।°

जीवाः द्विस्थाननिर्वर्त्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया—
उपाचैषुः वा उपचिन्वन्ति वा उपचेष्यन्ति वा, अभान्त्सुः वा बध्नन्ति वा बन्त्स्यन्ति वा, उदैरिषुः वा उदीरयन्ति वा उदीरयिष्यन्ति वा, अवेदिषुः वा वेदयन्ति वा वेदयिष्यन्ति वा, निरजरिषुः वा निर्जरयन्ति वा निर्जरयिष्यन्ति वा, तद्यथा—त्रसकायनिर्वर्त्तितांश्च,
स्थावरकायनिर्वर्त्तितांश्च।

४६२. जीवो ने द्वि-स्थान निर्वर्तित पुद्गलो का पाप-कर्म के रूप मे—
उपचय किया है, करते हैं और करेंगे।
बन्धन किया है, करते है और करेंगे।
उदीरण किया है, करते हैं और करेंगे।
वेदन किया है, करते है और करेंगे।
निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे—
त्रसकाय निर्वर्तित
स्थावरकाय निर्वर्तित।

पोग्गल-पदं	पुद्गल-पदम्	पुद्गल-पद
४६३. दुपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता ।	द्विप्रादेशिका: स्कन्धाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः ।	४६३. द्वि-प्रदेशी स्कन्ध अनन्त हैं ।
४६४. दुपदेसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ।	द्विप्रदेशावगाढाः पुद्गलाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः ।	४६४. द्वि-प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त हैं ।
४६५. एवं जाव दुगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ।	एवं यावत् द्विगुणरूक्षाः पुद्गलाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः ।	४६५. इसी प्रकार दो समय की स्थिति वाले और दो गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं, तथा शेष सभी वर्ण तथा गन्ध, रस और स्पर्शो के दो गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं ।

टिप्पणियाँ

स्थान-२

१—वेद सहित (सू० १)

वेद का शाब्दिक अर्थ है अनुभूति। प्रस्तुत प्रकरण मे वेद का अर्थ है—काम-वासना की अनुभूति। वेद के तीन प्रकार हैं—पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुसकवेद।

पुरुषवेद—स्त्री के प्रति होने वाली भोगानुभूति।

स्त्रीवेद—पुरुष के प्रति होने वाली भोगानुभूति।

नपुंसकवेद—स्त्री और पुरुष दोनों के प्रति होने वाली भोगानुभूति।

पुरुष मे पुरुष के प्रति, स्त्री के प्रति और नपुसक के प्रति विकार भावना हो सकती है, इसलिए पुरुष मे तीनो ही वेद होते हैं। स्त्री और नपुसक के लिए भी यही बात है।

२—रूप सहित (सू० १)

हजारो-हजारो वर्ष पहले [सुदूर अतीत मे] यह प्रश्न चर्चा का विषय रहा है कि जगत् जो दृश्यमान है, वही है या उसके अतिरिक्त भी है। जैन, बौद्ध, वैदिक आदि सभी दर्शनो मे इस प्रश्न पर चिन्तन हुआ है। प्रस्तुत सूत्र मे जैनदर्शन का चिन्तन है कि दृश्यमान जगत् रूपी और अरूपी दोनो है। सस्थान, वर्ण, गध, रस और स्पर्श सहित वस्तु को रूपी कहा जाता है। जिसमे सस्थान आदि न हो वह अरूपी होता है। वैदिक दर्शन ने भी जगत् को मूर्त और अमूर्त माना है।[1]

३—नो आकाश (सू० १)

'नो' शब्द के दो अर्थ होते हैं—

१. निषेध।

२. भिन्नार्थ।

निषेधार्थक 'नो' शब्द के द्वारा वस्तु का सर्वथा निषेध द्योतित होता है। भिन्नार्थक 'नो' शब्द के द्वारा उस वस्तु से भिन्न वस्तुओ का अस्तित्व द्योतित होता है।

प्रस्तुत प्रकरण में 'नो' शब्द का दूसरा अर्थ इष्ट है। अत 'नो आकाश' के द्वारा आकाश के अतिरिक्त पांच द्रव्यो—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय का प्रतिपादन किया गया है।

---

१. (क) शतपथब्राह्मण, १४।५।३।१

द्वे एव ब्रह्मणो रूपे मूर्तञ्चैवाऽमूर्तञ्च।

(ख) बृहदारण्यक, २।३।१

द्वे वा व ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तञ्चैवाऽमूर्त्तञ्च ।

(ग) विष्णुपुराण, १।२२।५३

द्वे रूपे ब्रह्मणा रूपे, मूर्तञ्चामूर्त्तमेव च।

४-५—धर्म-अधर्म (सू० १)

धर्मास्तिकाय—जीव और पुद्गल की गति का उदासीन किन्तु अनिवार्य माध्यम।

अधर्मास्तिकाय—जीव और पुद्गल की स्थिति का उदासीन किन्तु अनिवार्य माध्यम।

६-४१—क्रिया (सू० २-३७)

प्रस्तुत आलापक मे प्राणी की मुख्य-मुख्य सभी प्रवृत्तिया संकलित हैं। प्राणी-जगत् में सर्वाधिक प्रवृत्तिशील मनुष्य है। उसकी मुख्य प्रवृत्तियां तीन हैं—कायिक, वाचिक और मानसिक। प्रयोजन के आधार पर इनके अनेक रूप बन जाते हैं। जीवन का अनिवार्य प्रश्न है जीविका। उसके लिए मनुष्य आरम्भ और परिग्रह की प्रवृत्ति करता है। आरम्भ और परिग्रह की प्रवृत्ति के साथ सुरक्षा का प्रश्न उपस्थित होता है। उसके लिए शस्त्र-निर्माण की प्रवृत्ति विकसित होती है।

मनुष्य मे मानसिक आवेग होते है। सामाजिक जीवन मे उन्हे प्रस्फुट होने का अवसर मिलता है। एक मनुष्य का किसी के साथ प्रेयस् का सम्बन्ध होता है और किसी के साथ द्वेष-पूर्ण। इस प्रवृत्ति-चक्र मे वह किसी के प्रति अनुरक्त होता है और किसी को परितप्त करता है। किसी को शरण देता है और किसी का हनन करता है।

मनुष्य कुछ प्रवृत्तियां ज्ञानवश करता है और कुछ अज्ञानवश। कुछ आकांक्षा से प्रेरित होकर करता है और कुछ आकस्मिक ढग से कर लेता है।

मनुष्य अज्ञान या मोह की अवस्था मे असमीचीन प्रवृत्ति करता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर वह उनसे निवृत्त होता है। निवृत्ति-काल मे प्रमाद और आलस्य द्वारा बाधा उपस्थित किए जाने पर वह फिर असमीचीन प्रवृत्ति करता है। इस प्रकार आत्यन्तिक निवृत्ति के पूर्व प्रवृत्ति का चक्र चलता रहता है। प्रस्तुत प्रकरण मे प्रवृत्ति की प्रेरणा, प्रकार और परिणाम—तीनो उपलब्ध होते है। अप्रत्याख्यान, आकाक्षा और प्रेयस्—ये प्रवृत्ति की प्रेरणाए हैं। ईर्यापथिक और सापरायिक—ये कर्म-बध उसके परिणाम है। इनके मध्य मे उसके प्रकार संगृहीत हैं। प्रवृत्तियो का इतना बडा सकलन कर सूत्रकार ने वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की अवस्थाओं का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है।

प्रथम स्थान के चौथे सूत्र के टिप्पण मे क्रिया के विषय मे सक्षिप्तसा लिखा गया है। प्रस्तुत प्रकरण में उसके वर्गीकरणों पर विस्तार से विचार-विमर्श करना है।

क्रिया के तीन वर्गीकरण मिलते हैं। प्रथम वर्गीकरण सूत्रकृतांग का है। उसमें तेरह क्रियाए निर्दिष्ट हैं[1]—

१. अर्थदण्ड
२. अनर्थदण्ड
३. हिंसादण्ड
४. अकस्मात्दण्ड
५. दृष्टिदोषदण्ड
६. मृषाप्रत्ययिक
७. अदत्तादानप्रत्ययिक
८. अध्यात्म (मन) प्रत्ययिक
९. मानप्रत्ययिक
१०. मित्रद्वेषप्रत्ययिक
११. मायाप्रत्ययिक
१२. लोभप्रत्ययिक
१३. ऐर्यापथिक

दूसरा वर्गीकरण प्रस्तुत सूत्र (स्थानाग) का है। इसमे क्रियाओं के मुख्य और गौण भेद बहत्तर हैं।

तीसरा वर्गीकरण तत्त्वार्थसूत्र का है। उसमें पचीस क्रियाओं का निर्देश है[2]। वे इस प्रकार है[3]—

(१) सम्यक्त्व (२) मिथ्यात्व (३) प्रयोग (४) समादान (५) ईर्यापथ (६) काय (७) अधिकरण

---

१ सूत्रकृतांग, २।२।२।

२. तत्त्वार्थसूत्र, ६।६ :
अव्रत कषायेन्द्रियक्रियाः पञ्च चतु पञ्च पञ्चविंशति संख्याः पूर्वस्य भेदा।

३. तत्त्वार्थसूत्रभाष्य, ६।६।

(८) प्रदोष (६) परितापन (१०) प्राणातिपात (११) दर्शन (१२) स्पर्शन (१३) प्रत्यय (१४) समन्तानुपात (१५) अनाभोग (१६) स्वहस्त (१७) निसर्ग (१८) विदारण (१६) आनयन (२०) अनवकांक्षा (२१) आरम्भ (२२) परिग्रह (२३) माया (२४) मिथ्यादर्शन (२५) अप्रत्याख्यान।

प्रज्ञापना का बाईसवां पद क्रिया-पद है। उसमे कुछ क्रियाओं पर विस्तार से विचार किया गया है। भगवती सूत्र के अनेक स्थलो में क्रिया का विवरण मिलता है, जैसे—भगवती शतक १, उद्देशक २, शतक ८, उद्देशक ४; शतक ३, उद्देशक ३।

प्रस्तुत वर्गीकरण पर समीक्षात्मक अर्थ-मीमांसा

जीवक्रिया और अजीवक्रिया—ये दोनो क्रिया के सामान्य प्रकार है। इनके द्वारा सूत्रकार यह बताना चाहते है कि क्रियाकारित्व जीव और अजीव दोनो का समान धर्म है। प्रस्तुत प्रकरण मे वही अजीवक्रिया विवक्षित है, जो जीव के निमित्त से अजीव (पुद्गल) का कर्मबध के रूप मे परिणमन होता है।

पचीस क्रिया के वर्गीकरण मे इन दोनो क्रियाओ का उल्लेख नही है। जीव क्रिया के दो भेद—सम्यक्त्वक्रिया और मिथ्यात्वक्रिया वहा उल्लिखित है। अभयदेव सूरि ने सम्यक्त्वक्रिया का अर्थ तत्त्व मे श्रद्धा करना और मिथ्यात्वक्रिया का अर्थ अतत्त्व मे श्रद्धा करना किया है।[1] आचार्य अकलक ने सम्यक्त्वक्रिया का अर्थ सम्यक्त्ववर्धिनीप्रवृत्ति और मिथ्यात्व क्रिया का अर्थ मिथ्यात्वहेतुकप्रवृत्ति किया है।[2]

ऐर्यापथिकी—ईर्यापथ शब्द का प्रयोग जैन और बौद्ध दोनो के साहित्य मे मिलता है। बौद्धपिटको मे कायानुपश्यानु का दूसरा प्रकार ईर्यापथ है। उसकी व्याख्या इस प्रकार[3] है—

फिर भिक्षुओ! भिक्षु जाते हुए 'जाता हू'—जानता है। बैठे हुए 'बैठा हू'—जानता है। सोये हुए 'सोया हूं'—जानता है। जैसे-जैसे उसकी काया अवस्थित होती है, वैसे ही उसे जानता है। इसी प्रकार काया के भीतरी भाग मे कायानुपश्यी हो विहरता है; काया के बाहरी भाग मे कायानुपश्यी विहरता है। काया के भीतरी और बाहरी भागो में कायानुपश्यी विहरता है। काया मे समुदय-(=उत्पत्ति) धर्म देखता विहरता है, काया मे व्यय-(=विनाश) धर्म देखता विहरता है, काया मे समुदय-व्ययधर्म देखता विहरता है।

भगवती सूत्र मे उल्लिखित एक चर्चा से ज्ञात होता है कि भगवान् महावीर के युग मे ईर्यापथिकी और सापरायिकी क्रिया का प्रश्न अनेक धर्म-सम्प्रदायो मे चर्चित था। भगवान् से पूछा गया—भंते! अन्यतीर्थिक यह मानते हैं कि एक ही समय मे एक जीव ऐर्यापथिकी और सापरायिकी दोनो क्रियाए करता है, क्या यह सही है?

भगवान् ने कहा—यह सही नही है। मै इसे इस प्रकार कहता हू कि जिस समय एक जीव ऐर्यापथिकी क्रिया करता है उस समय वह सापरायिकी क्रिया नही करता है और जिस समय वह सापरायिकी क्रिया करता है उस समय वह ऐर्यापथिकी क्रिया नही करता। एक जीव एक समय मे एक ही क्रिया करता है।[4]

जीवाभिगम सूत्र मे सम्यक्त्व क्रिया और मिथ्यात्वक्रिया के विषय मे भी इसी प्रकार की चर्चा मिलती है। वहा भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है कि एक समय मे दो क्रियाए नही की जा सकती।[5]

सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनो विरोधी क्रियाए है। इसलिए वे दोना एक समय मे नही की जा सकती। ऐर्यापथिकी क्रिया उस जीव के होती है जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ विच्छिन्न हो जाते है। सापरायिकी क्रिया उस जीव के होती है, जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ विच्छिन्न नही होते।[6]

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३७
सम्यक्त्व—तत्त्वश्रद्धान तदेव जीवव्यापारत्वात् क्रिया सम्यक्त्वक्रिया, एव मिथ्यात्वक्रियाऽपि, नवर मिथ्यात्वम्—अतत्त्वश्रद्धान तदपि जीवव्यापारएव।

२. तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५.
चैत्यगुरुप्रवचनपूजादिलक्षणा सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया सम्यक्त्वक्रिया। अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिथ्यात्वहेतुका प्रवृत्तिमिथ्यात्वक्रिया।

३. दीर्घनिकाय, पृ० १६१।

४. भगवती, १।४४४, ४४५।

५. जीवाभिगम, प्रतिपत्ति ३, उद्देशक २।

६. भगवती, ७।२०, २१, ७।१२५, १२६।

ऐर्यापथिकी क्रिया केवल शुभयोग के कारण होती है[1]। बौद्धों के कायानुपश्यनागत ईर्यापथ का स्वरूप भी लगभग ऐसा ही है। सांपरायिकी क्रिया—यह कषाय और योग के कारण होती है।[2]

इन दोनों क्रियाओं में जीव का व्यापार निश्चित रूप से रहता है, किन्तु कर्म-बंध की दो अवस्थाओं पर प्रकाश डालने के लिए जीव के व्यापार को गौण मानकर इन्हें अजीव क्रिया कहा गया है[3]।

कर्म-बंध की दृष्टि से क्रिया के सभी प्रकारों का ऐर्यापथिकी और सांपरायिकी—इन दो प्रकारों में समावेश हो जाता है।

ऐर्यापथिकीक्रिया—वीतराग के होने वाला कर्म-बंध।

सापरायिकीक्रिया—कषाय-युक्त जीव के होने वाला कर्म-बंध।

कायिकीक्रिया—शरीर की प्रवृत्ति से होने वाली क्रिया कायिकीक्रिया है। यह इसका सामान्य शब्दार्थ है। इसकी परिभाषा इसके दो प्रकारों से निश्चित होती है। इसके दो प्रकार ये हैं—

अनुपरतकायक्रिया और दुष्प्रयुक्तकायक्रिया।

अविरत व्यक्ति (भले फिर वह मिथ्यादृष्टि हो या सम्यक्दृष्टि) कर्म-बंध की हेतुभूत कायिक प्रवृत्ति करता है वह अनुपरतकायिकीक्रिया है। स्थानांग, भगवती और प्रज्ञापना की वृत्तियों का यह अभिमत है[4]। हरिभद्र सूरि का मत इससे भिन्न है। उनके अनुसार अनुपरतकायिकीक्रिया मिथ्यादृष्टि के शरीर से होने वाली क्रिया है और दुष्प्रयुक्तकायिकीक्रिया प्रमत्तसंयति के शरीर से होने वाली क्रिया है[5]। यदि अनुपरतकायिकीक्रिया मिथ्यादृष्टि के ही मानी जाए तो अविरतसम्यक्-दृष्टि देशविरति के लिए कोई निर्देश प्राप्त नहीं होता, इसलिए यही अर्थ संगत लगता है कि मिथ्यादृष्टि अविरतसम्यक्-दृष्टि और देशविरति की कायिकीक्रिया अनुपरतकायिकीक्रिया और प्रमत्तसंयति की कायिकीक्रिया दुष्प्रयुक्त-कायिकीक्रिया है।

आचार्य अकलंक ने कायिकीक्रिया का अर्थ प्रद्वेष-युक्त व्यक्ति के द्वारा किया जाने वाला शारीरिक उद्यम किया है[6]।

आधिकरणीकीक्रिया—इस प्रवृत्ति का सम्बन्ध शस्त्र आदि हिंसक उपकरणों के संयोजन और निर्माण से है[7]। इसके दो प्रकार हैं—

संयोजनाधिकरणिकी—पूर्वनिर्मित शस्त्र आदि के पुर्जों का संयोजन करना।

निर्वर्तनाधिकरणिकी—शस्त्र आदि का नए सिरे से निर्माण करना। तत्त्वार्थवृत्ति के अनुसार इसका अर्थ है—हिंसक उपकरणों का ग्रहण करना[8]। इस अर्थ में प्रस्तुत क्रिया के दोनों प्रकार सूचित नहीं है।

प्रादोषिकीक्रिया—स्थानांगवृत्तिकार ने प्रदोष का अर्थ मत्सर किया है। उससे होने वाली क्रिया प्रादोषिकी कहलाती है[9]। आचार्य अकलंक के अनुसार प्रदोष का अर्थ क्रोधावेश है[10]। क्रोध अनिमित्तक होता है और प्रदोष निमित्त-

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३७.
यत्केवलयोगप्रत्ययमुपशान्तमोहादित्रयस्य सातवेदनीयकर्म्मतया अजीवस्य पुद्गलराशेर्भवन सा ऐर्यापथिकी क्रिया।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३७ :
संपराया —कषाया स्तेषु भवा सांपरायिकी।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३७ :
(क) इह जीवव्यापारेऽप्यजीवप्रधानत्वविवक्षयाऽजीवक्रियेय-मुक्ता, कर्म्मविशेषो वैर्यापथिकीक्रियोच्यते।
(ख) सा (सांपरायिकी) ह्यजीवस्य पुद्गलराशेः कर्म्म-तापरिणतिरूपा जीवव्यापारस्याविवक्षणादजीव-क्रियेति।

४. (क) स्थानांगवृत्ति, पत्र ३८।
(ख) भगवती, ३।१३५; वृत्ति, पत्र १८१।
(ग) प्रज्ञापना, पद २२, वृत्ति।

५. तत्त्वार्थसूत्रवृत्ति, ६।६ :
कायक्रिया द्विविधा—अनुपरतकायक्रिया दुष्प्रयुक्तकाय-क्रिया, आद्या मिथ्यादृष्टेः द्वितीया प्रमत्तसंयतस्य।

६. तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
प्रदुष्टस्य सतोऽभ्युद्यम. कायिकीक्रिया।

७. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३८।

८. तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५ :
हिंसोपकरणादानादाधिकरणिकीक्रिया।

९. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३८ :
प्रद्वेषो—मत्सरा स्तेन निर्वृत्ता प्राद्वेषिकी।

१०. तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५ :
क्रोधावेशात् प्रादोषिकीक्रिया।

वान् होता है। यह क्रोध और प्रदोष मे भेद बतलाया गया है।[1] इसके दो प्रकार हैं—

जीवप्रादोषिकी—जीव सम्बन्धी प्रदोष से होने वाली क्रिया।

अजीवप्रादोषिकी—अजीव सम्बन्धी प्रदोष से होने वाली क्रिया।

स्थानाग वृत्तिकार ने अजीव प्रादोषिकी क्रिया का जो अर्थ किया है उसमे प्रदोष का अर्थ क्रोधावेश ही फलित होता है। अजीव के प्रति मात्सर्य होना स्वाभाविक नही है। इसीलिए वृत्तिकार ने लिखा है कि पत्थर मे ठोकर खाने वाला व्यक्ति उसके प्रति प्रदुष्ट हो जाता है, यह अजीवप्रादोषिकीक्रिया है[2]।

पारितापनिकीक्रिया—दूसरे को परितापन (ताडन आदि दुःख) देने वाली क्रिया पारितापनिकी कहलाती है। इसके दो प्रकार हैं—

स्वहस्तपारितापनिकी—अपने हाथों अपने या पराए शरीर को परिताप देना।

परहस्तपारितापनिकी—दूसरे के हाथो अपने या पराए शरीर को परितापन देना।

प्राणातिपातक्रिया के दो प्रकार हैं—

स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया—अपने हाथों अपने प्राणो या दूसरे के प्राणो का अतिपात करना।

परहस्तप्राणातिपात क्रिया—दूसरे के हाथो अपने या पराए प्राणो का अतिपात करना।

अप्रत्याख्यानक्रिया का वृत्तिकार ने अर्थ नही किया है। इसके दो प्रकारो का अर्थ किया है। उससे अप्रत्याख्यान-क्रिया का यह अर्थ फलित होता है—जीव और अजीव सम्बन्धी अप्रत्याख्यान से होने वाली प्रवृत्ति। तत्त्वार्थवार्तिक में इसकी कर्मशास्त्रीय व्याख्या मिलती है—सयमघाती कर्मोदय के कारण विषयो से निवृत्त न होना अप्रत्याख्यानक्रिया है।[3]

आरम्भिकीक्रिया—यह हिंसा-सम्बन्धी क्रिया है। जीव और अजीव दोनो इसके निमित्त बनते है। वृत्तिकार ने अजीव आरंभिकीक्रिया का आशय स्पष्ट किया है। उनके अनुसार जीव के मृत शरीरो, पिष्ट आदि से निर्मित जीवाकृतियो या वस्त्र आदि मे हिंसक प्रवृत्ति हो जाती है।[4]

पारिग्रहिकीक्रिया—वृत्तिकार के अनुसार यह क्रिया जीव और अजीव के परिग्रह से उत्पन्न होती है।[5] तत्त्वार्थवार्तिक मे इसकी व्याख्या कुछ भिन्न प्रकार से की गई है। उसके अनुसार पारिग्रहिकीक्रिया का अर्थ है—परिग्रह की सुरक्षा के लिए होने वाली प्रवृत्ति।[6]

स्थानागवृत्ति मे मायाप्रत्ययाक्रिया के दो अर्थ किए गए हैं—

१. माया के निमित्त से होने वाली कर्म-बंध की क्रिया।

२. माया के निमित्त से होने वाला व्यापार।[7]

तत्त्वार्थवार्तिककार ने ज्ञान दर्शन और चारित्र सम्बन्धी प्रवचना को मायाक्रिया माना है[8], किन्तु व्यापक अर्थ मे प्रत्येक प्रकार की प्रवचना माया होती है। ज्ञान, दर्शन आदि को उदाहरण के रूप मे ही समझा जाना चाहिए।

मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया का अर्थ स्थानागवृत्ति और तत्त्वार्थवार्तिक मे बहुत भिन्न है। स्थानागवृत्ति के अनुसार मिथ्यादर्शन (मिथ्वात्व) के निमित्त से होने वाली प्रवृत्ति मिथ्यादर्शन क्रिया है।[9] तत्त्वार्थवार्तिक के अनुसार मिथ्यादर्शन

---

१ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ३८ :
अजीवे—पाषाणादौ स्खलितस्य प्रद्वेषादजीवप्राद्वेषिकीति।

३ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५ :
सयमघातिकर्मोदयवशाद निवृत्तिरप्रत्याख्यानक्रिया।

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ३८ :
यच्चाजीवान् जीवकडेवराणि पिष्टादिमयजीवाकृतीश्च वस्त्रादीन् वा आरभमाणस्य सा अजीवारम्भिकी।

५ स्थानागवृत्ति, पत्र ३८ :
जीवाजीवपरिग्रहप्रभवत्वात् तस्याः।

६ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
परिग्रहाविनाशार्था पारिग्राहिकी।

७ स्थानागवृत्ति, पत्र ३८
माया—शाठ्य प्रत्ययो—निमित्त यस्या. कर्मबन्धक्रियाया व्यापारस्य वा सा तथा।

८ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५ :
ज्ञानदर्शनादिषु निकृतिर्वञ्चन मायाक्रिया।

९ स्थानागवृत्ति, पत्र ३८ :
मिथ्यादर्शन—मिथ्यात्व प्रत्ययो यस्या. सा तथा।

की क्रिया करने वाले व्यक्ति को प्रशंसा आदि के द्वारा समर्थन देना, जैसे—तू अच्छा कार्य कर रहा है—मिथ्यादर्शन क्रिया है।[1]

इन दोनों अर्थों मे तत्त्वार्थवार्तिक का अर्थ अधिक स्पष्ट होता है। दृष्टिजा और स्पृष्टिजा इन दोनो क्रियाओ के स्थान मे तत्त्वार्थवार्तिक में दर्शनक्रिया और स्पर्शनक्रिया—ये दो क्रियाए प्राप्त है। स्थानागवृत्ति के अध्ययन से ऐसा लगता है कि इनकी अर्थपरम्परा वृत्तिकार के सामने स्पष्ट नही रही है। उन्होने इन दोनो के अनेक अर्थ किए हैं, जैसे—दृष्टिजा दृष्टि से होने वाली क्रिया। वृत्तिकार ने इसका दूसरा अर्थ दृष्टिका किया है। इसका अर्थ है दृष्टि के निमित्त से होने वाली क्रिया। दर्शन के लिए जो गतिक्रिया होती है अथवा दर्शन से जो कर्म का उदय होता है वह दृष्टिजा या दृष्टिका कहलाता है। इसी प्रकार पुट्ठिया के भी उन्होने पृष्टिजा, पृष्टिका, स्पृष्टिजा और स्पृष्टिका—ये चार अर्थ किए हैं।[2]

तत्त्वार्थवार्तिक मे दर्शनक्रिया और स्पर्शनक्रिया के अर्थ बहुत स्पष्ट मिलते है। दर्शनक्रिया—राग के वशीभूत होकर प्रमादी व्यक्ति का रमणीय रूप देखने का अभिप्राय। स्पर्शनक्रिया—प्रमादवश छूने की प्रवृत्ति।[3]

तत्त्वार्थवार्तिक मे प्रातीत्यिकीक्रिया का उल्लेख नही है। उसमे प्रात्यायिकीक्रिया उल्लिखित है। लगता है कि पडुच्च का ही संस्कृतीकरण प्रत्यय किया गया है। प्रात्यायिकीक्रिया का अर्थ है, नए-नए कलहो को उत्पन्न करना।[4]

सामन्तोपनिपातिकीक्रिया का अर्थ स्थानागवृत्ति और तत्त्वार्थवार्तिक मे आपातत. बहुत ही भिन्न लगता है। स्थानागवृत्ति के अनुसार सामन्तोपनिपात—जनमिलन मे होने वाली क्रिया सामन्तोपनिपातिकी है।[5]

तत्त्वार्थवार्तिककार ने इसका अर्थ किया है—स्त्री-पुरुष, पशु आदि मे व्याप्त स्थान मे मलोत्सर्ग करना समन्तानुपात-क्रिया है।[6] तत्त्वार्थवार्तिक मे मलोत्सर्ग करने की बात कही है वह प्रस्तुत क्रिया की व्याख्या का एक उदाहरण हो सकता है। स्थानागवृत्ति मे जीवसामन्तोपनिपातिकी और अजीवसामान्तोपनिपातिकी का अर्थ किया है—अपने आश्रित बैल आदि जीव तथा रथ आदि अजीव पदार्थों की जनसमूह मे प्रशंसा सुन खुश होना।[7] यह भी एक उदाहरण प्रतीत होता है। वस्तुत प्रस्तुत क्रिया का आशय यह होना चाहिए कि जीव, अजीव आदि द्रव्यसमूह के सपर्क से होने वाली मानसिक उतार-चढ़ाव की प्रवृत्ति अथवा उनके प्रतिकूल आचरण।

हरिभद्र सूरि ने समन्तानुपातक्रिया का अर्थ किया है—स्थण्डिल आदि मे भक्त आदि विसर्जित करने की क्रिया।[8] यह भी एक उदाहरण के द्वारा उसकी व्याख्या की गई है।

स्वाहस्तिकी और नैसृष्टिकीक्रिया की व्याख्या दोनो (तत्त्वार्थवार्तिक और स्थानागवृत्ति) मे समान नही है। स्थानागवृत्ति के अनुसार स्वहस्तक्रिया का अर्थ है—अपने हाथ से निष्पन्न क्रिया।[9] वृत्तिकार ने नैसृष्टिकीक्रिया के दो अर्थ किए हैं—फेंकना और देना।

---

१ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
अन्य मिथ्यादर्शनक्रियाकरणकारणाविष्ट प्रशसादिभिर्द्रढयति यथा साधु करोषीति सा मिथ्यादर्शनक्रिया।

२, स्थानागवृत्ति, पत्र ३९ :
दृष्टेर्जाता दृष्टिजा अथवा दृष्ट—दर्शन वस्तु वा निमित्ततया यस्यामस्ति सा दृष्टिका—दर्शनार्थ या गतिक्रिया, दर्शनाद् वा यत्कर्मोदेति सा दृष्टिजा दृष्टिका वा, तथा 'पुट्ठिया चेव' त्ति पृष्टि—पृच्छा ततो जाता पृष्टिजा प्रश्नजनितो व्यापार:, अथवा पृष्ट—प्रश्न वस्तु वा तदस्ति कारणत्वेन यस्यां सा पृष्टिकेति, अथवा स्पृष्टि: स्पर्शन ततो जाता स्पृष्टिजा, तथैव स्पृष्टिकाऽपीति।

३. तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५ .
रागार्द्रीकृतत्वात् प्रमादिन· रमणीयरूपालोकनाभिप्रायो दर्शनक्रिया। प्रमादवशात् स्पृष्टव्यसञ्चेतनानुबन्ध. स्पर्शन क्रिया।

४ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
अपूर्वाधिकरणोत्पादनात् प्रात्ययिकी क्रिया।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९ ·
समन्तात्—सर्वत उपनिपातो—जनमीलकस्तस्मिन् भवा सामन्तोपनिपातिकी।

६. तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
स्त्रीपुरुषपशुसपातिदेशे अन्तर्मलोत्सर्गकरण समन्तानुपात-क्रिया।

७ स्थानागवृत्ति, पत्र ३९ .
कस्यापि षण्डो रूपवानस्ति तं च जनो यथा यथा प्रलोकयति प्रशसयति च तथा तथा तत्स्वामी हृष्यतीति जीवसामन्तोपनिपातिकीति।

८ तत्त्वार्थसूत्रवृत्ति, ६।६ .
समन्तानुपातक्रिया स्थण्डिलादौ भक्तादित्याग क्रिया।

९ स्थानागवृत्ति, पत्र ३९ :
स्वहस्तेन निर्वृत्ता स्वाहस्तिकी।

तत्त्वार्थवार्तिक और सर्वार्थसिद्धि मे नैसृष्टिकीक्रिया के स्थान मे निसर्गक्रिया का उल्लेख है। वृत्तिकार ने भी नैसृष्टिकी का वैकल्पिक अर्थ निसर्ग किया है। इस आधार पर नेसग्गिया (नैसर्गिकी) पाठ का भी अनुमान किया जा सकता है।[१] तत्त्वार्थवार्तिक मे स्वहस्तक्रिया का अर्थ है—दूसरे के द्वारा करने योग्य क्रिया को स्वय करना[२]। निसर्गक्रिया का अर्थ है—पापादान आदि प्रवृत्ति के लिए अपनी सम्मति देना[३]। अथवा आलस्यवश प्रशस्त क्रियाओ को न करना। श्लोकवार्तिक मे भी इसके ये दोनों अर्थ मिलते हैं[४]।

उक्त क्रियाओ के अग्रिम वर्ग मे दो क्रियाएं निर्दिष्ट हैं—आज्ञापनिका और वैदारिणी। वैदारिणीक्रिया का दोनो ग्रन्थों में अर्थभेद है, किन्तु आज्ञापनिकाक्रिया मे शब्द और अर्थ दोनो का महान् भेद है। वृत्तिकार ने 'आणवणिया' पाठ के दो अर्थ किए हैं—आज्ञा देना और मंगवाना[५]।

तत्त्वार्थवार्तिक में इसके स्थान पर आज्ञाव्यापादिकाक्रिया उल्लिखित है। इसका अर्थ है—चारित्र मोह के उदय से आवश्यक आदि क्रिया करने मे असमर्थ होने पर शास्त्रीय आज्ञा का अन्यथा निरूपण करना।

वैदारिणीक्रिया की व्याख्या देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि वृत्तिकार के सामने उसकी निश्चित अर्थ-परपरा नही रही है। इसीलिए उन्होने विदारण, विचारण और वितारण—इन तीन शब्दो के द्वारा उसकी व्याख्या की है[६]। और 'वेयारणिया' इस पाठ के आधार पर उक्त तीनो शब्दो के द्वारा उसकी व्याख्या की जा सकती है। तत्त्वार्थभाष्य तथा उसकी सभी व्याख्याओं मे विदारणक्रिया का उल्लेख मिलता है। और उसका अर्थ किया गया है—दूसरो के द्वारा आचरित निंदनीय-कर्म का प्रकाशन[७]। यहां विदारण का अर्थ स्फोट है। इसका तात्पर्य है—गुप्त बात का विस्फोट करना। यह अर्थ विचारण शब्द के द्वारा ही किया जा सकता है।

स्थानागवृत्ति मे अनाभोगप्रत्ययाक्रिया का केवल शाब्दिक अर्थ मिलता है। अनाभोगप्रत्ययाक्रिया—अज्ञान के निमित्त से होने वाली क्रिया।[८] इसका आशय तत्त्वार्थसूत्र की व्याख्याओं में मिलता है। अप्रमार्जित और अदृष्टभूमि में शरीर, उपकरण आदि रखना अनाभोगप्रत्ययाक्रिया है[९]।

वृत्तिकार ने शाब्दिक व्याख्या से सतोष इसलिए माना है कि उसका आशय मूलसूत्र से ही स्पष्ट हो जाता है। सूत्र पाठ मे प्रस्तुत क्रिया के दो भेद निर्दिष्ट है। उनमे प्रथम भेद का अर्थ है—असावधानीपूर्वक उपकरण आदि उठाना और द्वितीय भेद का अर्थ है—असावधानीपूर्वक प्रमार्जन करना। इनमे निक्षेप—उपकरण आदि रखने का अर्थ समाहित नही है। उसे आदान के द्वारा गृहीत करना सूत्रकार को विवक्षित है—ऐसी सभावना की जा सकती है।

अनवकाक्षाप्रत्ययाक्रिया की व्याख्या वृत्तिकार ने सूत्रपाठ के आधार पर की है। उसका आशय है—स्व या पर शरीर से निरपेक्ष होकर किया जाने वाला क्षतिकारीकर्म[१०]। तत्त्वार्थसूत्र की व्याख्याओ मे इसका अर्थ भिन्न मिलता है। उनके

---

१. स्थानागवृत्ति, पत्र ३९ .
निसर्जन निसृष्ट, क्षेपणमित्यर्थ , तत्र भवा तदेव वा नैसृष्टिकी, निसृजतो य कर्म्मबन्ध इत्यर्थ , निसर्ग एव।

२. तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५ ·
यां परेण निर्वर्त्यां क्रियां स्वय करोति सा स्वहस्तक्रिया।

३. तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५ ·
पापादानादिप्रवृत्तिविशेषाभ्यनुज्ञान निसर्गक्रिया। आलस्याद्वा प्रशस्तक्रियाणामकरणम्।

४. तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५ .
पापप्रवृत्ता वन्येषामभ्यनुज्ञानमात्मना।
स्यान्निसर्गक्रियालस्यादकृति र्वा सुकर्मणाम्॥

५. स्थानागवृत्ति, पत्र ३९
आज्ञापनस्य—आदेशनस्येयमाज्ञापनमेव वेत्याज्ञापनी सैवाज्ञापनिका तज्ज कर्मबन्ध, आदेशनमेव वेति, आनायन वा आनायनी।

६ स्थानागवृत्ति, पत्र ३९ :
विदारण विचारण वितारण वा स्वार्थिकप्रत्ययोपादानाद् वैदारिणीत्यादि वाच्यमिति।

७ तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
पराचरित सावद्यादिप्रकाशन विदारणक्रिया।

८ स्थानागवृत्ति, पत्र ४०
अनाभोग.—अज्ञान प्रत्ययो—निमित्त यस्या. सा तथा।

९. (क) तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५
अप्रमृष्टादृष्टभूमौ कायादि निक्षेपोऽनाभोग क्रिया।
(ख) तत्त्वार्थसूत्र, ६।६ भाष्यानुसारिणी टीका :
अनाभोगक्रिया अप्रत्यवेक्षिता प्रमार्जिते देशे शरीरोपकरणनिक्षेप।

१० स्थानागवृत्ति, पत्र ३९ ·
अनवकाक्षा—स्वशरीराद्यनपेक्षत्व सैव प्रत्ययो यस्या: साऽनवकाक्षाप्रत्यया।

अनुसार इसका अर्थ है—शठता और आलस्य के कारण शास्त्रोपदिष्ट विधि-विधानों का अनादर करना[1]।

क्रियाओं के तुलनात्मक अध्ययन से दो निष्कर्ष हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं—

१. क्रियाओं के व्याख्यान की दो परम्परा रही हैं। एक परम्परा आगमिक व्याख्या के परिपार्श्व की है, जिसका अनुसरण स्थानांग के वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने किया है और दूसरी परम्परा तत्त्वार्थभाष्य के आधार पर विकसित हुई है। इस परम्परा में दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं के आचार्य लगभग एक रेखा पर चले हैं। सर्वार्थसिद्धि के कर्ता पूज्यपाद देवनन्दी, तत्त्वार्थवार्तिक के कर्ता आचार्य अकलङ्क, श्लोकवार्तिक के कर्ता आचार्य विद्यानंद—ये तीनों दिगम्बर आचार्य हैं। इनका एक रेखा पर चलना आश्चर्य की बात नहीं, किन्तु तत्त्वार्थटीका के कर्ता हरिभद्र सूरि और भाष्यानुसारिणी-टीका के कर्ता सिद्धसेन गणी—ये दोनों श्वेताम्बर आचार्य हैं, फिर भी इन्होंने व्याख्या की एकरूपता का निर्वाह किया है। सिद्धसेन गणी ने तत्त्वार्थ की व्याख्याओं का अनुसरण करते हुए भी स्थानांगवृत्तिगत व्याख्या के प्रति जागरूक रहे हैं।

२. तत्त्वार्थवार्तिक में पचीस क्रियाओं के नाम निर्देश हैं, वे स्थानांग निर्दिष्ट नामों से कहीं-कहीं भिन्न भी हैं, जैसे—

स्थानांग	तत्त्वार्थसूत्र
जीवक्रिया	सम्यक्त्व, मिथ्यात्व
अजीवक्रिया	ईर्यापथ
कायिकीक्रिया	कायिकीक्रिया
आधिकरणिकीक्रिया	आधिकरिणिकीक्रिया
प्रादोषिकीक्रिया	प्रादोपिकीक्रिया
पारितापनिकीक्रिया	पारितापिकीक्रिया
प्राणातिपातक्रिया	प्राणातिपातिकीक्रिया
अप्रत्याख्यानक्रिया	अप्रत्याख्यानक्रिया
आरम्भिकीक्रिया	आरम्भक्रिया
पारिग्रहिकीक्रिया	पारिग्रहिकीक्रिया
मायाप्रत्ययाक्रिया	मायाक्रिया
मिथ्यादर्शनप्रत्ययाक्रिया	मिथ्यादर्शनक्रिया
दृष्टिजाक्रिया	दर्शनक्रिया
स्पृष्टिजाक्रिया	स्पर्शनक्रिया
प्रातीत्यिकीक्रिया	प्रात्यायिकीक्रिया
सामन्तोपनिपातिकीक्रिया	सामन्तानुपातक्रिया
स्वाहस्तिकीक्रिया	स्वाहस्तक्रिया
नैसृष्टिकीक्रिया	निसर्गक्रिया
आज्ञापनिकाक्रिया	आज्ञाव्यापादिकाक्रिया
वैदारिणीक्रिया	विदारणक्रिया
अनवकांक्षाप्रत्ययाक्रिया	अनाकांक्षाक्रिया
अनाभोगप्रत्ययाक्रिया	अनाभोगक्रिया
प्रेयस्प्रत्ययाक्रिया	×
दोषप्रत्ययाक्रिया	×
×	समादान
×	प्रयोग

१. (क) तत्त्वार्थवार्तिक, ६।५ :
शाठ्यालस्याभ्यां प्रवचनोपदिष्टविधिकर्तव्यतानादरः अनाकांक्षक्रिया।
(ख) तत्त्वार्थसूत्र, ६।६, भाष्यानुसारिणी टीका।

४२—गर्हा (सू० ३८)

गर्हा का अर्थ है—दुश्चरित के प्रति कुत्सा का भाव। यह प्रायश्चित्त का एक प्रकार है। साधन की अपेक्षा से गर्हा के दो भेद हैं—

१. मानसिक गर्हा।

२. वाचिक गर्हा।

किसी के मन मे गर्हा के भाव जागते हैं और कोई वाणी के द्वारा गर्हा करते हैं।

काल की अपेक्षा से भी उसके दो प्रकार होते हैं—

१. दीर्घकालीन गर्हा।

२. अल्पकालीन गर्हा।

सूत्रकार ने तीसरे स्थान मे गर्हा का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रकार निर्दशित किया है। वह है काय का प्रतिसंहरण। इसका अर्थ है—दुबारा अकरणीय कार्य मे प्रवृत्त न होना। कोई आदमी अकरणीय की गर्हा भी करता जाए और उसका आचरण भी करता जाए, यह वस्तुत. गर्हा नही है। वास्तविक गर्हा है—अकरणीय का अनाचरण[1]।

४३ विद्या और चरण (सू० ४०)

मोक्ष की उपलब्धि के साधनों के विषय मे सब दार्शनिक एकमत नही रहे हैं। ज्ञानवादी दार्शनिको ने ज्ञान को मोक्ष का साधन माना है, और क्रियावादी दार्शनिको ने क्रिया को और भक्तिमार्ग के अनुयायियो ने भक्ति को। जैनदर्शन अनेकान्त-वादी है, इसलिए वह ऐकान्तिक-दृष्टि से न ज्ञानवादी है, न क्रियावादी है और न भक्तिवादी ही। उसके मतानुसार ज्ञान, क्रिया और भक्ति का समन्वय ही मोक्ष का साधन है। प्रस्तुत सूत्र मे विद्या और चरण इन दो शब्दों के द्वारा उसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है।

उत्तराध्ययन (२८।२) मे मोक्ष के चार मार्ग बतलाए गए हैं—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। इन्हें क्रमशः ज्ञानयोग, भक्तियोग, आचारयोग और तपोयोग कहा जा सकता है। प्रस्तुत सूत्र मे मार्ग-चतुष्टयी का सक्षेप है। विद्या मे ज्ञान और दर्शन तथा चरण मे चारित्र और तप समाविष्ट होते हैं। उमास्वाति का प्रसिद्ध सूत्र—'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्ष-मार्ग.'—इन्ही दोनो के आधार पर सचरित है।

४४-५० (सू० ७९-८५)

दर्शन का सामान्य अर्थ होता है—दृष्टि, देखना। उसके पारिभाषिक अर्थ दो होते हैं, सामान्यग्राहीबोध और तत्त्वरुचि।

बोध दो प्रकार का होता है—

१. विशेषग्राही, २. सामान्यग्राही।

विशेषग्राही को ज्ञान और सामान्यग्राही को दर्शन कहा जाता है।[2]

प्रस्तुत प्रकरण मे दर्शन का अर्थ तत्त्वरुचि के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। दर्शन दो प्रकार का होता है—

१. सम्यग्दर्शन—वस्तु-सत्य के प्रति यथार्थश्रद्धा।

२. मिथ्यादर्शन—वस्तु-सत्य के प्रति अयथार्थश्रद्धा।

उत्पत्ति की दृष्टि से सम्यक्दर्शन दो प्रकार का होता है—

१. निसर्गसम्यक्दर्शन—आत्मा की सहज निर्मलता से उत्पन्न होने वाला।

---

१ स्थानांग, ३।२६।

२. सम्मतिप्रकरण, २।१ : ज सामण्णग्गहण, दसणमेय विसेसियं णाण।

२. अभिगमसम्यक्‌दर्शन—शास्त्र-अध्ययन अथवा उपदेश से उत्पन्न होने वाला।

ये दोनों प्रतिपाती और अप्रतिपाती दोनों प्रकार के होते हैं। मिथ्यादर्शन भी दो प्रकार का होता है—

१. आभिग्रहिक—आग्रहयुक्त।

२. अनाभिग्रहिक—सहज।

कुछ व्यक्ति आग्रही होते हैं। वे जिस बात को पकड लेते है उसे छोडना नही चाहते। कुछ व्यक्ति आग्रही नही होते किन्तु अज्ञान के कारण किसी भी बात पर विश्वास कर लेते हैं। प्रथम प्रकार के व्यक्ति न केवल मिथ्यादर्शन वाले होते हैं किन्तु उनमे अयथार्थ के प्रति आग्रह भी उत्पन्न हो जाता है। उनकी सत्यशोध की दृष्टि विलुप्त हो जाती है। वे जो मानते है उससे भिन्न सत्य हो सकता है, इस सम्भावना को वे स्वीकार नही करते।

दूसरे प्रकार के व्यक्तियों मे स्व-सिद्धान्त के प्रति आग्रह नहीं होता, इसलिए उनमें सत्य-शोध की दृष्टि शीघ्र विकसित हो सकती है।

आग्रह और अज्ञान—ये दोनो काल-परिपाक और समुचित निमित्तो के मिलने पर दूर हो सकते हैं और उनके न मिलने पर वे दूर नही होते, इसीलिए उन्हे सपर्यवसित और अपर्यवसित दोनों कहा गया है।

निसर्गसम्यग्दर्शन जैसे सहज होता है, वैसे अनाभिग्रहिकमिथ्यादर्शन भी सहज ही होता है। अभिगमसम्यग्दर्शन उपदेश या अध्ययन से प्राप्त होता है, वैसे ही आभिग्रहिकमिथ्यादर्शन भी उपदेश या अध्ययन से प्राप्त होता है। इन दोनो मे स्वरूप-भेद है, किन्तु उत्पन्न होने की प्रक्रिया दोनों की एक है।

५१–प्रत्यक्ष-परोक्ष (सू० ८६)

इन्द्रिय आदि साधनों की सहायता के बिना जो ज्ञान केवल आत्ममात्रापेक्ष होता है, वह 'प्रत्यक्ष ज्ञान' कहलाता है। अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञान—ये तीन प्रत्यक्ष ज्ञान हैं।

इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला ज्ञान परोक्ष होता है। मति, श्रुत—ये दो ज्ञान परोक्ष हैं।

स्वरूप की अपेक्षा सब ज्ञान स्पष्ट होता है। प्रमाण के स्पष्ट और अस्पष्ट ये लक्षण बाहरी पदार्थों की अपेक्षा से किए जाते है। बाह्य पदार्थों का निश्चय करने के लिए जिसे दूसरे ज्ञान की अपेक्षा नही होती, वह ज्ञान स्पष्ट कहलाता है और जिसे ज्ञानान्तर की अपेक्षा रहती है, वह अस्पष्ट। परोक्ष प्रमाण मे दूसरे ज्ञान की आवश्यकता रहती है, जैसे—स्मृति-ज्ञान धारणा की अपेक्षा रखता है, प्रत्यभिज्ञान अनुभव और स्मृति की, तर्क व्याप्ति की, अनुमान हेतु की तथा आगम शब्द और सकेत आदि की अपेक्षा रखता है, इसलिए वह अस्पष्ट है। दूसरे शब्दों मे जिसका ज्ञेय पदार्थ निर्णय काल में छिपा हुआ रहता है, उस ज्ञान को अस्पष्ट या परोक्ष कहते हैं। जैसे—स्मृति का विषय स्मृतिकर्ता के सामने नही रहता। प्रत्यभिज्ञान का भी 'वह' इतना विषय अस्पष्ट रहता है। तर्क मे त्रिकालकलित साध्य-साधन अर्थात् त्रिकालीन सर्व धूम और अग्नि प्रत्यक्ष नही रहते। अनुमान का विषय अग्निमान प्रदेश सामने नही रहता। आगम के विषय मेरु आदि अस्पष्ट रहते हैं।

अवग्रह आदि को आत्ममात्रापेक्ष न होने के कारण जहा परोक्ष माना जाता है, वहा उसके मति और श्रुत—ये दो भेद किए जाते हैं और जहा लोक-व्यवहार से अवग्रह आदि को साव्यवहारिकप्रत्यक्ष की कोटि मे रखा जाता है, वहा परोक्ष के स्मृति आदि पांच भेद किए जाते है।

आगम-साहित्य में ज्ञान का वर्गीकरण दो प्रकार का मिलता है। एक वर्गीकरण नन्दीसूत्र का और दूसरा वर्गीकरण

स्थानांग का है । स्थानांग मे ज्ञान का वर्गीकरण इस प्रकार है—
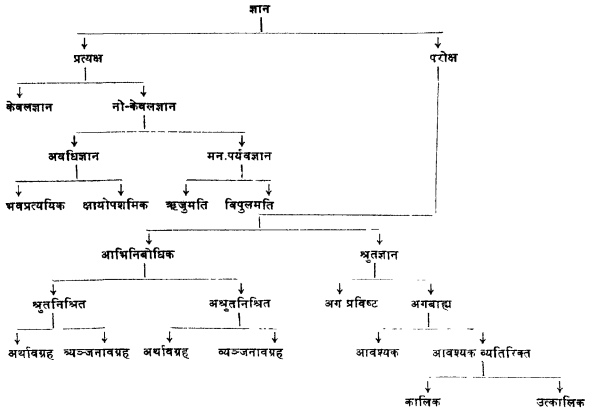
नंदी सूत्र मे ज्ञान का वर्गीकरण इस प्रकार है—
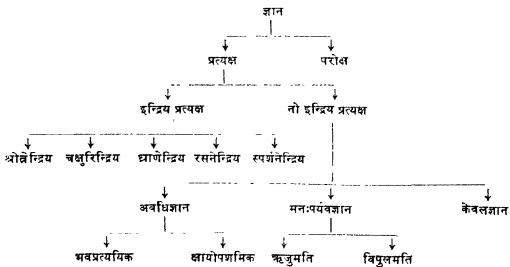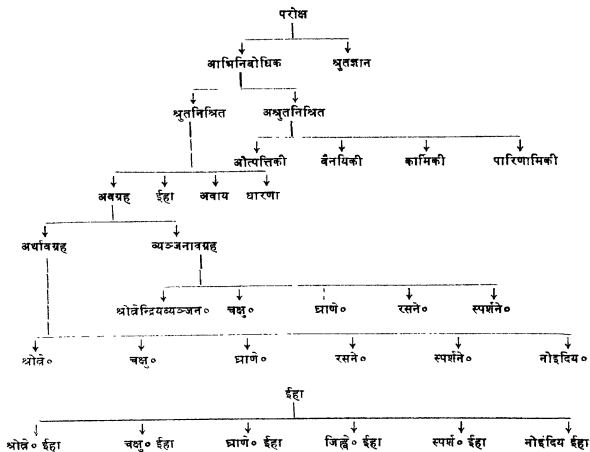
इसी प्रकार अवाय और धारणा के प्रकार है।

५२ (सू० १०१)

श्रुत-निश्रित—जो विषय पहले श्रुत शास्त्र के द्वारा ज्ञात हो, किन्तु वर्तमान मे श्रुत का आलम्बन लिये बिना ही उसे जानना श्रुत-निश्रित अभिनिबोधिकज्ञान है, जैसे—किसी व्यक्ति ने आयुर्वेदशास्त्र का अध्ययन कर यह जाना कि त्रिफला से कोष्ठ बद्धता दूर होती है। जब कभी वह कोष्ठ बद्धता से ग्रस्त होता है तब उसे त्रिफला-सेवन की बात सूझ जाती है। उसका यह ज्ञान श्रुत-निश्रित आभिनिबोधिकज्ञान है।

अश्रुत-निश्रित—जो विषय श्रुत के द्वारा नही किन्तु अपनी सहज विलक्षण-बुद्धि के द्वारा जाना जाए वह अश्रुत-निश्रित आभिमनिबोधिकज्ञान है।

नदी मे जो ज्ञान का वर्गीकरण है, उसके अनुसार श्रुत-निश्रित आभिनिबोधिकज्ञान के २८ प्रकार है।[1] तथा अश्रुत-निश्रित आभिनिबोधिकज्ञान के ४ प्रकार हैं—

औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी।[2]

---

१. नदीसूत्र, ४०-४६।
२. नदीसूत्र, ३८।

५३-५४ (सू० १०२-१०३)

अवग्रह इन्द्रिय से होने वाले ज्ञान-क्रम मे पहला अग है। अनिर्देश्य (जिसका निर्देश न किया जा सके) सामान्य धर्मात्मक अर्थ के प्रथम ग्रहण को अर्थावग्रह कहा जाता है[1]। अर्थ शब्द के दो अर्थ हैं—द्रव्य और पर्याय अथवा सामान्य और विशेष। अर्थावग्रह का विषय किसी भी शब्द के द्वारा कहा नही जा सकता। इसमे केवल 'वस्तु है' का ज्ञान होता है। इससे वस्तु के स्वरूप, नाम, जाति, क्रिया आदि की शाब्दिक प्रतीति नही होती।

उपकरण इन्द्रिय के द्वारा इन्द्रिय के विषयभूत द्रव्यों के ग्रहण को व्यञ्जनावग्रह कहा जाता है[2]। क्रम की दृष्टि से पहले व्यञ्जनावग्रह, फिर अर्थावग्रह होता है। अर्थावग्रह सभी इन्द्रियो का होता है जबकि व्यञ्जनावग्रह चार इन्द्रियों का होता है। चक्षु और मन का व्यञ्जनावग्रह नही होता। उत्तरवर्ती न्याय-ग्रन्थो मे व्यञ्जनावग्रह के पश्चात् अर्थावग्रह का उल्लेख किया गया है। नदी तथा प्रस्तुत सूत्र से उसका व्युत्क्रम मिलता है[3]। यह किस दृष्टि से किया गया, इस विषय मे वृत्तिकार ने चर्चा नही की है, फिर भी वृत्ति से यह फलित होता है कि अर्थावग्रह प्रत्यक्ष को मुख्य मानकर सूत्रकार ने उसे प्रथम स्थान दिया है। नंदी के अनुसार अवग्रह आदि केवल श्रुत-निश्रित मति के ही प्रकार है। स्थानाग के अनुसार अवग्रह दोनों (श्रुत-निश्रित और अश्रुत-निश्रित) का होता है। वृत्तिकार ने अश्रुत-निश्रित मति के दो प्रकार बतलाए हैं—

१. श्रोत्र आदि इन्द्रियो से उत्पन्न।

२. औत्पत्तिकी आदि बुद्धि-चतुष्टय।

प्रथम प्रकार में अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह दोनो होते है। दूसरे प्रकार मे केवल अर्थावग्रह होता है, क्योंकि व्यञ्जनावग्रह इन्द्रिय-आश्रित होता है। बुद्धि-चतुष्टय मानस ज्ञान है, इसलिए वहा व्यञ्जनावग्रह नही होता[4]। व्यञ्जनावग्रह की इस अव्यापकता और गौणता को ध्यान मे रखकर सूत्रकार ने प्राथमिकता अर्थावग्रह को दी, ऐसी सम्भावना की जा सकती है।

अर्थावग्रह निर्णयोन्मुख होता है, तब यह प्रमाण माना जाता है और जब निर्णयोन्मुख नही होता तब वह अनध्यवसाय—अनिर्णायक ज्ञान कहलाता है।

अर्थावग्रह के दो भेद और है—नैश्चयिक और व्यावहारिक। नैश्चयिक-अर्थावग्रह का कालमान एक समय और व्यावहारिक-अर्थावग्रह का कालमान अन्तर्मुहूर्त्त माना गया है[5]। अर्थावग्रह के छ: प्रकार प्रस्तुत आगम (६।६८) मे बतलाए गए है।

५५—सूक्ष्म-बादर (सू० १२३)

सूक्ष्म का अर्थ है छोटा और बादर का अर्थ है स्थूल।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४७ :

अर्यते—अधिगम्यतेऽर्यते वा अन्विष्यत इत्यर्थ, तस्य सामान्यरूपस्य अशेषविशेषनिरपेक्षानिर्देश्यस्य रूपादेरवग्रहण—प्रथमपरिच्छेदनमर्थावग्रह इति।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ४७

व्यज्यतेऽनेनार्थः प्रदीपेनेव घट इति व्यञ्जन—तच्चोपकरणेन्द्रिय शब्दादित्वपरिणतद्रव्यसंघातो वा ततश्च व्यञ्जनेन उपकरणेन्द्रियेण शब्दादित्वपरिणतद्रव्याणा व्यञ्जनानामवग्रहो, व्यञ्जनावग्रह इति।

३ नदी सूत्र ४०

से किं त उग्गहे ?

उग्गहे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—

अत्थुग्गहे य

वजणुग्गहे य।

४. स्थानागवृत्ति, पत्र ४७

अर्थावग्रहव्यञ्जनावग्रहभेदेनाश्रुतनिश्रितमपि द्विधैवेति, इद च श्रोत्रादिप्रभवमेव, यत्तु औत्पत्तिक्याद्यश्रुतनिश्रित तत्रार्थावग्रह सम्भवति, यदाह—

किह पडिकुक्कुडहीणो, जुज्झे बिबेण उग्गहो ईहा।

किं सुसिलिट्ठमवाओ, दप्पणसकतबिबति॥

न तु व्यञ्जनावग्रह, तस्येन्द्रियाश्रितत्वात, बुद्धीनां तु मानसत्वात्, ततो बुद्धिभ्योऽन्यत्र व्यञ्जनावग्रहो मन्तव्य इति।

५ स्थानागवृत्ति, पत्र ३५१।

यहां सूक्ष्म और बादर आपेक्षिक नहीं है, जैसे चने की तुलना मे गेहूं सूक्ष्म और राई की तुलना में वह स्थूल होता है। यहा सूक्ष्मता और स्थूलता कर्मशास्त्रीय परिभाषा द्वारा निश्चित है। जिन जीवो के सूक्ष्मनामकर्म का उदय होता है वे सूक्ष्म और जिन जीवो के बादरनामकर्म का उदय होता है वे बादर कहलाते है। सूक्ष्म जीव समूचे लोक मे व्याप्त होते हैं और बादर जीव लोक के एक भाग मे रहते हैं[1]। सूक्ष्म जीव इन्द्रियो द्वारा ग्राह्य नही होते। बादर जीव इन्द्रियो तथा बाह्य उपकरण-सामग्री द्वारा गृहीत होते हैं।

५६ पर्याप्तक-अपर्याप्तक (सू० १२८)

जन्म के आरम्भ मे प्राप्त होने वाली पौद्गलिक शक्ति को पर्याप्ति कहते हैं। वे छ: है। जो जीव स्वयोग्य पर्याप्तियो से युक्त होते हैं वे पर्याप्तक कहे जाते हैं।

जो स्वयोग्य पर्याप्तियो को पूर्ण न कर पाए हो, वे अपर्याप्तक कहे जाते है।

५७ परिणत, अपरिणत (सू० १३३)

प्रस्तुत छ सूत्रो मे परिणत और अपरिणत का तत्त्व समझाया गया है। परिणत का अर्थ है—वर्तमान परिणति (पर्याय) से भिन्न परिणति मे चले जाना और अपरिणत का अर्थ है—वर्तमान परिणति मे रहना। इनमे पूर्ववर्ती पाच सूत्रो का सम्बन्ध पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय से है और छठे सूत्र का सम्बन्ध द्रव्य मात्र से है। पृथ्वीकाय आदि परिणत और अपरिणत दोनो प्रकार के होते है—इसका अर्थ है कि वे सजीव और निर्जीव दोनो प्रकार के होते हैं।

५८-६३ (सू० १५५-१६०)

शारीरिक दृष्टि से जीव छ: प्रकार के होते हैं—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक। विकासक्रम के आधार पर वे पाच प्रकार के होते हैं—

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय।

इन्द्रिय और मन से होने वाला ज्ञान शरीर-रचना से सम्बन्ध रखता है। जिस जीव मे इन्द्रिय और मानसज्ञान की जितनी क्षमता होती है, उसी के आधार पर उनकी शरीर-रचना होती है और शरीर-रचना के आधार पर ही उस ज्ञान की प्रवृत्ति होती है। प्रस्तुत आलापक मे शरीर-रचना और इन्द्रिय तथा मानसज्ञान के विकास का सम्बन्ध प्रदर्शित है—

जीव	बाह्य शरीर (स्थूल शरीर)	इन्द्रिय ज्ञान
१ एकेन्द्रिय—(पृथिवी, अप्, तेजस्, वायु, वनस्पति)	(औदारिक)	स्पर्शनज्ञान
२. द्वीन्द्रिय	औदारिक (अस्थिमास शोणितयुक्त)	रसन, स्पर्शनज्ञान
३. त्रीन्द्रिय	औदारिक (अस्थिमांस शोणितयुक्त)	घ्राण, रसन, स्पर्शनज्ञान
४. चतुरिन्द्रिय	औदारिक (अस्थिमास शोणितयुक्त)	चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शनज्ञान
५ पचेन्द्रिय (तिर्यंच)	औदारिक (अस्थिमांस शोणित स्नायु शिरायुक्त)	श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शनज्ञान
६. पचेन्द्रिय (मनुष्य)	औदारिक (अस्थिमास शोणित स्नायु शिरायुक्त)	श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शनज्ञान

१ उत्तराध्ययन, ३६।७८

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।

६४— विग्रहगति (सू० १६१)

जीव की एक जन्म से दूसरे जन्म मे जाते समय बीच मे होने वाली गति दो प्रकार की होती है—ऋजु और विग्रह (वक्र)।

ऋजु गति एक समय की होती है। मृत जीव का उत्पत्ति-स्थान विश्रेणि मे होता है तब उसकी गति विग्रह (वक्र) होती है[1]। इसीलिए वह दो से लेकर चार समय तक की होती है। जिस विग्रहगति मे एक घुमाव होता है उसका कालमान दो समय का, जिसमे दो घुमाव हो उसका कालमान तीन समय का और जिसमे तीन घुमाव हो उसका कालमान चार समय का होता है।

६५ (सू० १६८)

प्रस्तुत सूत्र मे कुछ शब्द विवेचनीय है। वे ये है—

१. शिक्षा—इसके दो प्रकार है—

ग्रहणशिक्षा और आसेवनशिक्षा।

ग्रहणशिक्षा—सूत्र और अर्थ का ग्रहण करना।

आसेवनशिक्षा—प्रतिलेखन आदि का प्रशिक्षण लेना[2]।

२. भोजनमडली—प्राचीनकाल मे साधुओ के लिए सात मडलिया होती थी[3]—

१. सूत्रमडली।
२. अर्थमडली।
३ भोजनमडली।
४. कालप्रतिलेखनमडली।
५. आवश्यक (प्रतिक्रमण) मडली।
६. स्वाध्यायमडली।
७. सस्तारकमडली।

३. उद्देश—यह अध्ययन तुम्हे पढना चाहिए—गुरु के इस निर्देश को उद्देश कहा जाता है[4]।

४. समुद्देश—शिष्य भली-भाँति पाठ पढकर गुरु को निवेदित करता है। गुरु उस समय उसे स्थिर, परिचित करने का निर्देश देते हैं। यह निर्देश समुद्देश कहलाता है[5]।

५. अनुज्ञा—पढे हुए पाठ के स्थिर परिचित हो जाने पर शिष्य फिर उसे गुरु को निवेदित करता है। इस परीक्षा मे उत्तीर्ण होने पर गुरु उसे सम्यक् प्रकार से धारण करने और दूसरो को पढाने का निर्देश देते हैं। इस निर्देश को अनुज्ञा कहा जाता है[6]।

६. आलोचना—गुरु को अपनी भूलो का निवेदन करना।

७. व्यतिवर्तन—अतिचारो के क्रम का विच्छेदन करना।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ५२

विग्रहगति —वक्रगतिर्यदा विश्रेणिव्यवस्थितमुत्पत्तिस्थान गन्तव्यं भवति तदा या स्यात्।

२. स्थानागवृत्ति, पत्र ५३।

३. प्रवचनसारोद्धार, पत्र १६६।

४. अनुयोगद्वारवृत्ति, पत्र ३

इदमध्ययनादि त्वया पठितव्यमिति गुरुवचनविशेष उद्देश.।

५ अनुयोगद्वारवृत्ति, पत्र ३

तस्मिन्नेव शिष्येण अहीनादिलक्षणोपेतेऽधीते गुरो निवेदिते स्थिरपरिचित कुर्विदमिति गुरुवचनविशेष एव समुद्देश।

६ अनुयोगद्वारवृत्ति, पत्र ३

तथा कृत्वा गुरोर्निवेदिते सम्यगिदं धारयान्यांश्चाध्यापयेति तद्वचनविशेष एवानुज्ञा।

६६ प्रायोपगत अनशन (सू० १६६)

प्रायोपगत अनशन—देखें, उत्तराध्ययन, ३०/१२-१३ का टिप्पण।

६७ कल्प में उपपन्न (सू० १७०)

सौधर्म से लेकर अच्युत तक के बारहदेवलोक कल्प कहलाते है। इनमे स्वामी, सेवक आदि का कल्प (व्यवस्था) होता है, इसलिए इनमे उपपन्न होने वाले देवो को कल्पोपपन्न कहा जाता है।

६८ विमान में उपपन्न (सू० १७०)

नवग्रैवेयक और पाच अनुत्तरविमान मे उपपन्न होने वाले देव कल्पातीत होते है। इनमें स्वामी, सेवक आदि का कल्प नही होता, अतएव वे कल्पातीत कहलाते है। ये सब ऊर्ध्वलोक मे होते हैं।

६९ चार में उपपन्न (सू० १७०)

चार का अर्थ है—ज्योतिश्चक्र। इसमे उत्पन्न होने वाले देवो को चारोपपन्न कहा जाता है।

७० चार में स्थित (सू० १७०)

समयक्षेत्र के बाहर रहने वाले ज्योतिष्क देव।

७१ गतिशील (सू० १७०)

समयक्षेत्र के भीतर रहने वाले ज्योतिष्क देव।

७२ मनुष्यों के (सू० १७२)

सूत्रकार स्वयं मनुष्य है, अत. उन्होंने मनुष्य के सूत्र मे 'तत्थ' के स्थान मे 'इह' का प्रयोग किया है।

७३ तिर्यंच (सू० १७४)

यहा पचेन्द्रिय का ग्रहण इसलिए नही किया गया है कि देव अपने स्थान से च्युत होकर पृथ्वी, अप् और वनस्पति—इन एकेन्द्रिय योनियो मे भी जा सकते है।

७४-७५ गतिसमापन्नक-अगतिसमापन्नक (सू० १७६)

गति का अर्थ होता है—जाना। यहा गति शब्द का अर्थ है, जीव का एक भव से दूसरे भव मे जाना।

गतिसमापन्नक—अपने-अपने उत्पत्ति-स्थान की ओर जाते हुए।

अगतिसमापन्नक—अपने-अपने भव मे स्थित।

७६ (सू० १८१)

आहार तीन प्रकार के होते हैं—

१. ओजआहार।

२. लोमआहार।

३. प्रक्षेपआहार (कवलआहार)।

जीव उत्पत्ति के समय सर्वप्रथम जो आहार ग्रहण करता है उसे ओज आहार कहते हैं। यह आहार सब अपर्याप्तक जीव लेते हैं।

शरीर के रोमकूपो के द्वारा बाह्य पुद्गलो को ग्रहण किया जाता है, उसे लोम आहार कहते हैं। यह सभी जीवो के द्वारा लिया जाता है।

कवल के द्वारा जो आहार ग्रहण किया जाता है, उसे प्रक्षेप या कवल आहार कहते हैं। एकेन्द्रिय, देव और नरक के जीव कवल आहार नही करते। शेष सभी (मनुष्य और तिर्यंच) जीव कवल आहार करते हैं।

जो जीव तीन आहारो मे से किसी भी आहार को लेता है वह आहारक और जो किसी भी आहार को नही लेता वह अनाहारक होता है।

सिद्ध अनाहारक होते हैं। ससारी जीवों मे अयोगी केवली अनाहारक होते हैं। सयोगी केवली समुद्घात के समय तीसरे, चौथे और पाचवें समय मे अनाहारक होते हैं।

मोक्ष मे जाने वाले जीव अन्तरालगति के समय सूक्ष्म तथा स्थूल सब शरीरो से मुक्त होते हैं, अत: उन्हे आहार लेने की आवश्यकता नही होती। ससारी जीव सूक्ष्म शरीर सहित होते है, अत उन्हे आहार की आवश्यकता होती है।

ऋजुगति करने वाले जीव जिस समय मे पहला शरीर छोडते है, उसी समय मे दूसरे जन्म मे उत्पन्न होकर आहार लेते हैं। किन्तु वक्रगति करने वाले जीवो की दो समय की एक घुमाव वाली, तीन समय की दो घुमाव वाली और चार समय की तीन घुमाव वाली वक्रगति मे अनाहारक स्थिति पाई जाती है। दो समय वाली वक्रगति मे पहला समय अनाहारक और दूसरा समय आहारक होता है। तीन समय वाली वक्रगति मे पहला और दूसरा समय अनाहारक और तीसरा समय आहारक होता है। चार समय वाली वक्रगति में दूसरा और तीसरा समय अनाहारक तथा पहला और चौथा समय आहारक होता है।

७७—(सू० १८५)

विकलेन्द्रिय

सामान्यतः विकलेन्द्रिय से द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय का ही ग्रहण होता है, किन्तु यहां एकेन्द्रिय का भी ग्रहण किया गया है। यहां 'विकल' शब्द 'अपूर्ण' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। इस सूत्र मे सज्ञी और असज्ञी का कथन पूर्वजन्म की अवस्था की प्रधानता से हुआ है। जो असज्ञी जीव नारक आदि के रूप मे उत्पन्न होते है वे अपनी पूर्वावस्था के कारण असज्ञी कहे जाते हैं। असज्ञी जीव नारक से व्यन्तर तक के दडकों मे ही उत्पन्न होते हैं, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे नही होते।

संज्ञी

दसवें स्थान मे सज्ञा के दस प्रकार बतलाए गए हैं। उन सज्ञाओ के कारण सभी जीव संज्ञी होते हैं, किन्तु यहा सज्ञी उन सज्ञाओ के सम्बन्ध से विवक्षित नहीं है। यहा सज्ञी का अर्थ समनस्क है। इस सज्ञा का सम्बन्ध कालिकोपदेशिकी सज्ञा से है। नदीसूत्र मे तीन प्रकार के सज्ञी निर्दिष्ट है—

कालिकोपदेशेन संज्ञी, हेतुवादोपदेशेन सज्ञी, दृष्टिवादोपदेशेन सज्ञी[1]। प्रस्तुत प्रकरण मे कालिकोपदेशेन सज्ञी विवक्षित है। जिस व्यक्ति मे ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता और विमर्श प्राप्त होता है, वह कालिकोपदेशेन सज्ञी होता है[2]। कालिकोपदेशिकी सज्ञा के द्वारा भूत, भविष्य और वर्तमान—त्रैकालिक ज्ञान होता है, इसलिए इसकी मूल सज्ञा दीर्घकालिकी है[3]। हेतुवादोपदेशिकी सज्ञा वाले जीव इष्ट विषय मे प्रवृत्त और अनिष्ट विषय मे निवृत्त होते हैं, अतः उनका ज्ञान वर्तमाना-

१. नदी, सूत्र ६१
से किं त सण्णिसुयं ?
सण्णिसुय तिविह पण्णत्त त जहा—
कालिओवएसेण हेऊवएसेण दिट्ठिवाओवएसेण ।

२ नदी, सूत्र ६२ .
से किं त कालिओवएसेण ?
कालिओवएसेण—जस्स ण अत्थि ईहा, अपोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिन्ता, वीमसा—से णं सण्णीति लब्भइ ।

३ नदीवृत्ति, पत्र १८९
इह दीर्घकालिकी सज्ञा कालिकीति व्यपदिश्यते आदिपदलोपादुपदेशेनमुपदेश —कथमित्यर्थ दीर्घकालिकया उपदेश: दीर्घकालिक्युपदेश ।

बलम्बी होता है। ज्ञान की विशिष्टता के आधार पर दीर्घकालिकी संज्ञा का नाम मनोविज्ञान है[1]।

७८ (सू० १८६)

ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की स्थिति असख्येय काल की होती है अतः इस आलापक मे उन्हे छोड़ा गया है।

७९ अधोवधि (सू० १९३)

अवधि ज्ञान के ११ द्वार हैं—भेद, विषय, सस्थान, आभ्यन्तर, बाह्य, देश, सर्व, वृद्धि, हानि, प्रतिपाति और अप्रतिपाति।

इन ग्यारह द्वारो मे देश और सर्व दो द्वार है। देशावधि का अर्थ है—अवधि ज्ञान द्वारा प्रकाशित वस्तुओं के एक देश (अंश) को जानना।

सर्वावधि का अर्थ है—अवधिज्ञान द्वारा प्रकाशित वस्तुओ के सर्व देश (सभी अंशों) को जानना[2]।

प्रज्ञापना (पद ३३) मे अवधिज्ञान के ये दो प्रकार मिलते हैं—देशावधि और सर्वावधि। जयधवला मे अवधिज्ञान के तीन भेद किए गए हैं—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि[3]। देशावधि से परमावधि और परमावधि से सर्वावधि का विषय व्यापक होता है। आचार्य अकलक के अनुमार परमावधि का सर्वावधि मे अन्तर्भाव होता है, अतः वह सर्वावधि की तुलना में देशावधि ही है। इस प्रकार अवधि के मुख्य भेद दो ही हैं—देशावधि और सर्वावधि[4]।

अधोवधि देशावधि का ही एक नाम है। देशावधि परमावधि व सर्वावधि से अधोवर्ती कोटि का होता है, इसलिए यहा देशावधि के लिए अधोवधि का प्रयोग किया गया है। अधोवधिज्ञान जिसे प्राप्त होता है उसे भी अधोवधि कहा गया है। अधोवधि का फलितार्थ होता है, नियत-क्षेत्र को जानने वाला अवधिज्ञानी[5]।

८० (सू० १९६)

वृत्तिकार ने केवलकल्प के तीन अर्थ किए हैं।

केवलकल्प—१. अपना कार्य करने की सामर्थ्य के कारण परिपूर्ण।

२ केवलज्ञान की भाति परिपूर्ण।

३. सामयिकभाषा (आगमिक-संकेत) के अनुसार केवलकल्प अर्थात् परिपूर्ण[6]।

प्रस्तुत प्रसंग मे यह बताया गया है कि अधोवधि पुरुष सम्पूर्ण लोक को जानता-देखता है।

तत्त्वार्थवार्तिक मे भी देशावधि का क्षेत्र जघन्यतः उत्सेधागुल का असख्यातवां भाग और उत्कृष्टतः सम्पूर्ण लोक बतलाया गया है[7]।

---

१ नदीचूर्णि, पृ० ३४
सा य सज्ञा मनोविज्ञान।

२ समवायागवृत्ति, पत्र १७४।

३. कषायपाहुड, भाग १, पृ० १७।

४ तत्त्वार्थवार्तिक, १।२३.
सर्वशब्दस्य साकल्यवाचित्वात् द्रव्यक्षेत्रकाल भावै सर्वावधेरन्त पाती परमावधि, अत परमावधि रपि देशावधिरेवेति द्विविध एवावधि—सर्वावधि देशावधिश्च।

५. स्थानागवृत्ति, पत्र ५७ ·
यत्प्रकारोऽवधिरस्येति यथावधिः, प्रादिदीर्घत्वं प्राकृतत्वात् परमावधेर्वाऽधोवत्यर्वधियस्य सोऽधोऽवधिरात्मानियतक्षेत्रविषयावधिज्ञानी।

६. स्थानागवृत्ति, पत्र ५७ ·
केवल—परिपूर्ण स चासौ स्वकार्यसामर्थ्यात् कल्पश्च केवलज्ञानमिव वा परिपूर्णतयेति केवलकल्प., अथवा केवलकल्प. समयभाषया परिपूर्ण।

७. तत्त्वार्थवार्तिक, १।२२ :
उत्सेधाङ्गुलासख्येयभागक्षेत्रो देशावधि जघन्यः। उत्कृष्ट. कृत्स्नलोक:।

८१-८६ (सू० २०१-२०६)

वृत्तिकार ने 'देशेन शृणोति' और सर्वेण शृणोति' की साधना और विषय के आधार पर अर्थ-योजना की है। जिसका एक कान उपहत होता है वह देशेन सुनता है और जिसके दोनो कान स्वस्थ होते हैं वह सर्वेण सुनता है। शेष इन्द्रियों के लिए निम्न यंत्र द्रष्टव्य हैं—

	देशेन	सर्वेण
स्पर्शन	एक भाग से स्पर्श करना	सम्पूर्ण शरीर से स्पर्श करना
रसन	जीभ के एक भाग से चखना	सम्पूर्ण जीभ से चखना
घ्राण	एक नथुने से सूघना	दोनो नथुनो से सूघना
चक्षु	एक आंख से देखना	दोनो आखों से देखना

देशेन और सर्वेण का अर्थ इन्द्रियों की नियतार्थग्रहणशक्ति और सभिन्नश्रोतोलब्धि के आधार पर भी किया जा सकता है।

सामान्यतः इन्द्रियो का कार्य निश्चित होता है। सुनना श्रोत्रेन्द्रिय का कार्य है। देखना चक्षु इन्द्रिय का कार्य है। सूघना घ्राण इन्द्रिय का कार्य है। स्वाद लेना रसनेन्द्रिय का कार्य है और स्पर्श ज्ञान करना स्पर्शनेन्द्रिय का कार्य है। जिसे संभिन्न श्रोतोलब्धि प्राप्त होती है उसके लिए इन्द्रियो की अर्थग्रहण की प्रतिनियतता नही रहती। वह एक इन्द्रिय से सब इन्द्रियों का कार्य कर सकता है—आंखो से सुन सकता है, कान से देख सकता है, स्पर्श मे सुन सकता है, देख सकता है, सूघ सकता है, एक इन्द्रिय से पांचो इन्द्रियों का कार्य कर सकता है।[१] आवश्यकचूर्णिकार ने लिखा है कि सभिन्न श्रोतोलब्धि-सपन्न व्यक्ति शरीर के एक देश से पाचो इन्द्रियो के विषयो को ग्रहण कर लेता है।[२]

उन्होने दूसरे स्थान पर यह लिखा है कि सभिन्न श्रोतोलब्धिसपन्न व्यक्ति शरीर के किसी भी अगोपाग से सब विषयो को ग्रहण कर सकता है[३]।

विषय की दृष्टि से देशेन सुनने का अर्थ है, श्रव्य शब्दो मे से अपूर्णशब्दो को सुनना और सर्वेण सुनने का अर्थ है श्रव्यशब्दो मे से सब शब्दो को सुनना।[४] यहां दोनो अर्थ घटित हो सकते है, फिर भी सूत्र का प्रतिपाद्य सभिन्न श्रोतोलब्धि की जानकारी देना प्रतीत होता है।

८७ (सू० २०९)

मरुत्देव लोकान्तिक देव है।[५] ये एक शरीरी और दो शरीरी दोनो प्रकार के होते हैं।

भवधारणीय शरीर की अपेक्षा अथवा अन्तरालगति मे सूक्ष्म शरीर की अपेक्षा उनको एक शरीरी कहा गया है।

भवधारणीय और उत्तरवैक्रियशरीर की अपेक्षा दो शरीरी कहा गया है।

८८ (सू० २१०)

किन्नर, किंपुरुष और गन्धर्व—ये तीन वानमतर जाति के देव हैं।

नागकुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार—ये भवनपति देव हैं। वृत्तिकार के अनुमार ये भेद व्यवच्छेद

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ५७ :
देशेन च शृणोत्येकेन श्रोत्रेणैकश्रोत्रोपघाते सति, सर्वेण वाऽनुपहतश्रोत्रेन्द्रियो, यो वा सम्भिन्नश्रोतोऽभिधानलब्धियुक्त स सर्वैरिन्द्रियैः शृणोतीति सर्वेणेति व्यपदिश्यते।

२. आवश्यकचूर्णि, पृ० ६८ :
सभिन्न सोयरिद्धी नाम जो एगतरेण वि सरीर देसेण पंच वि इंदियविसए उवलभति सो सभिन्नसोय त्ति भन्नति।

३ आवश्यकचूर्णि, पृ० ७०
एगेण वा इंदिएण पच वि इंदियत्थे उवलभति, अहवा सव्वेहि अगोवगेंहि।

४. स्थानागवृत्ति, पत्र ५८ .
देशतोऽपि शृणोति विवक्षितशब्दाना मध्ये कांश्चिच्छृणोतीति, 'सर्वेणापी' ति सर्वतश्च सामस्त्येन, सर्वानेवेत्यर्थ।

५ तत्त्वार्थराजवार्तिक, ४।२६ :

के लिए नही, किन्तु समानजातीय भेदों के उपलक्षण हैं। इसीलिए अनन्तर सूत्र में सामान्यत: देवों के दो प्रकार बतलाए हैं।

८९ (सू० २१२-२१९)
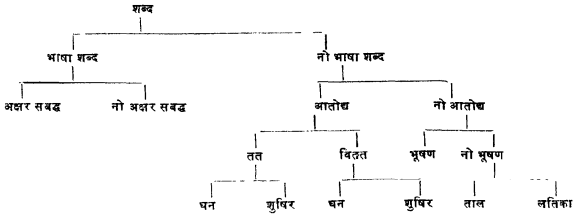
भाषा शब्द—जीव के वाक्-प्रयत्न से होने वाला शब्द।
नो भाषा शब्द—वाक्-प्रयत्न से भिन्न शब्द।
अक्षर सबद्ध शब्द—वर्णों के द्वारा व्यक्त होने वाला शब्द।
नो अक्षर सबद्ध शब्द—अवर्णों के द्वारा होने वाला शब्द।
अतोद्य शब्द—बाजे आदि का शब्द।
नो आतोद्य शब्द—बास आदि के फटने से होने वाला शब्द।
तत शब्द—तार वाले बाजे—वीणा, सारगी आदि से होने वाला शब्द।
वितत शब्द—तार-रहित बाजे से होने वाला शब्द।
तत घन शब्द—झाझ जैसे बाजे से होने वाला शब्द।
तत शुषिर शब्द—वीणा से होने वाला शब्द।
वितत घन शब्द—भाणक का शब्द।
वितत शुषिर शब्द—नगाड़े, ढोल आदि का शब्द।
भूषण शब्द—नूपुर आदि से होने वाला शब्द।
नो भूषण शब्द—भूषण से भिन्न शब्द
ताल शब्द—ताली बजाने से होने वाला शब्द।
लतिका शब्द—(१) कासी का शब्द।
(२) लात मारने से होने वाला शब्द।[1]

९० (सू० २३०)

बद्धपार्श्वस्पृष्ट—जो पुद्गल शरीर के साथ गाढ सम्बन्ध किए हुए हों, वे बद्ध कहलाते हैं और जो शरीर से चिपके रहते है, वे पुद्गल पार्श्वस्पृष्ट कहलाते हैं।

घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय—इन तीनो इन्द्रियो द्वारा ग्राह्य पुद्गल 'बद्धपार्श्वस्पृष्ट' होते हैं।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ५८, ५९।

नो बद्ध-पार्श्वस्पृष्ट—श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य पुद्गल 'नोबद्धपार्श्वस्पृष्ट' होते है।

६१ (सू० २३१)

पर्यादत्त—जो पुद्गल विवक्षित अवस्था को पार कर चुके है।

अपर्यादत्त—जो पुद्गल विवक्षित अवस्था मे हैं।

६२-६५ (सू० २३९-२४२)

पांचवें स्थान (सूत्र १४७) मे आचार के पांच प्रकार बतलाए गए है—ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चरित्राचार, तपआचार और वीर्याचार। प्रस्तुत चार सूत्रो (२३९-२४२) मे द्विस्थानक पद्धति से उन्ही का उल्लेख है।

देखे—(५।१४७ का टिप्पण)।

९६-१०८ प्रतिमा (सू० २४३-२४८)

प्रस्तुत ६ सूत्रों मे बारह प्रतिमाओ का निर्देश है। चतुर्थ स्थान (४।९६-९८) मे तीन वर्गों मे इसका निर्देश प्राप्त है। पांचवें स्थान (५।१८) मे केवल पाच प्रतिमाए निर्दिष्ट है—भद्रा, सुभद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा और भद्रोत्तरा।

समवायागसूत्र मे उपासक के लिए ग्यारह और भिक्षु के लिए बारह प्रतिमाए निर्दिष्ट है।[1] वहा पर वैयावृत्त्य कर्म की ९१ प्रतिमाएं[2] तथा ९२ प्रतिमाए[3] नाम-निर्देश के बिना निर्दिष्ट है। इस सूचि के अवलोकन से पता चलता है कि जैन साधना-पद्धति मे प्रतिमाओ का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। वृत्तिकार ने प्रतिमा का अर्थ प्रतिपत्ति, प्रतिज्ञा या अभिग्रह किया है।[4] शाब्दिक मीमासा करने पर इसका अर्थ साधना का मानदण्ड प्रतीत होता है। साधना की भिन्न-भिन्न पद्धतिया और उनके भिन्न-भिन्न मानदण्ड होते है। उन सबका प्रतिमा के रूप मे वर्गीकरण किया गया है। इनमे से कुछ प्रतिमाओं का अर्थ प्राप्त होता है और कुछ की अर्थ-परम्परा विस्मृत हो चुकी है। वृत्तिकार ने सुभद्राप्रतिमा के विषय मे लिखा है कि उसका अर्थ उपलब्ध नही है।[5] उपलब्ध अर्थ भी मूलग्राही है, यह कहना कठिन है। वृत्तिकार ने समाधिप्रतिमा के दो प्रकार किए हैं—श्रुतसमाधिप्रतिमा और चरित्रसमाधिप्रतिमा।[6]

उपधानप्रतिमा—उपधान का अर्थ है तपस्या। भिक्षु की १२ प्रतिमाओ और श्रावक की ११ प्रतिमाओ को उपधान प्रतिमा कहा जाता है।

विवेकप्रतिमा—प्रस्तुत प्रतिमा भेदज्ञान की प्रक्रिया है। इस प्रतिमा के अभ्यासकाल मे आत्मा और अनात्मा का विवेचन किया जाता है। इसका अभ्यास करने वाला क्रोध, मान, माया और लोभ की भिन्नता का अनुचिंतन (ध्यान) करता है। ये आत्मा के सर्वाधिक निकटवर्ती अनात्म तत्त्व हैं। इनका भेदज्ञान पुष्ट होने पर वह बाह्यवर्ती सयोगो की भिन्नता का अनुचिंतन करता है। बाह्य सयोग के मुख्य प्रकार तीन है—१. गण (सगठन), २ शरीर, ३ भक्तपान।[7] इनका भेदज्ञान पुष्ट होने पर वह व्युत्सर्ग की भूमिका मे चला जाता है।

---

१ समवाओ, ११।१, १२।१।

२. समवाओ, ९१।१।

३. समवाओ, ९२।१ तथा देखें समवाओ, पृ० २७३-२७४ का टिप्पण।

४. (क) स्थानागवृत्ति, पत्र ६१ :

प्रतिमा प्रतिपत्ति. प्रतिज्ञेनियावत्।

(ख) स्थानागवृत्ति, पत्र १८४ :

प्रतिमा—प्रतिज्ञा अभिग्रह।

५ स्थानागवृत्ति, पत्र ६१

सुभद्राऽप्येवप्रकारैव सम्भाव्यते, अदृष्टत्वेन तु नोक्तेति।

६ स्थानागवृत्ति, पत्र ६१ :

समाधान समाधि—प्रशस्तभावलक्षण: तस्य प्रतिमा समाधिप्रतिमा दशाश्रुतस्कन्धोक्ता द्विभेदा—श्रुतसमाधिप्रतिमा सामायिकादिचारित्रसमाधिप्रतिमा च।

७ स्थानांगवृत्ति, पत्र ६१ :

विवेक—त्याग, स चान्तराणा कषायादीनां बाह्यानां गणशरीरभक्तपानादीनामनुचितानां तत्प्रतिपत्तिर्विवेकप्रतिमा।

विवेकप्रतिमा की तुलना योगसूत्र की विवेकख्याति से होती है। महर्षि पतञ्जलि ने इसे हानोपाय बतलाया है।[1]

व्युत्सर्गप्रतिमा—यह प्रतिमा विसर्जन की प्रक्रिया है। विवेकप्रतिमा के द्वारा हेय वस्तुओं का भेदज्ञान पुष्ट होने पर उनका विसर्जन करना ही व्युत्सर्गप्रतिमा है।

औपपातिक सूत्र मे व्युत्सर्ग के सात प्रकार बतलाए गए है—

१. शरीरव्युत्सर्ग—कायोत्सर्ग, शिथिलीकरण।

२. गणव्युत्सर्ग—विशिष्ट साधना के लिए एकल विहार का स्वीकार।

३. उपाधिव्युत्सर्ग—वस्त्र आदि उपकरणो का विसर्जन।

४. भक्तपानव्युत्सर्ग—भक्तपान का विसर्जन।

५. कषायव्युत्सर्ग—क्रोध, मान, माया और लोभ का विसर्जन।

६. ससारव्युत्सर्ग—ससार-भ्रमण के हेतुओ का विसर्जन।

७ कर्मव्युत्सर्ग—कर्म-बन्ध के हेतुओ का विसर्जन।

भद्राप्रतिमा—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर—इन चारो दिशाओ मे चार-चार प्रहर तक कायोत्सर्ग करना।

भगवान् महावीर ने सानुलष्ठि ग्राम के बाहर जाकर भद्राप्रतिमा स्वीकार की। उसकी विधि के अनुसार भगवान् ने प्रथम दिन पूर्व दिशा की ओर अभिमुख होकर कायोत्सर्ग किया। रात भर दक्षिण दिशा की ओर अभिमुख होकर कायोत्सर्ग किया। दूसरे दिन पश्चिम दिशा की ओर अभिमुख होकर कायोत्सर्ग किया। दूसरी रात्रि को उत्तर दिशा की ओर अभिमुख होकर कायोत्सर्ग किया।[2] इस प्रकार षष्ठ भक्त (दो उपवास) के तप तथा दो दिन-रात के निरन्तर कायोत्सर्ग द्वारा भगवान् ने भद्राप्रतिमा सम्पन्न की।

सुभद्राप्रतिमा—इस प्रतिमा की साधना-पद्धति वृत्तिकार के समय से पहले ही विच्छिन्न हो गई थी।[3]

महाभद्रप्रतिमा—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर मे एक-एक अहोरात्र तक कायोत्सर्ग करना। इसका कालमान चार दिन-रात का होता है। दशमभक्त (चार दिन के उपवास) से यह प्रतिमा पूर्ण होती है।[4] भद्राप्रतिमा के अनन्तर ही भगवान् ने महाभद्रा प्रतिमा की आराधना की थी।[5]

सर्वतोभद्राप्रतिमा—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर—इन चारो दिशाओ, चारो विदिशाओ तथा ऊर्ध्व और अध.—इन दशो दिशाओ मे एक-एक अहोरात्र तक कायोत्सर्ग करना। ऊर्ध्व दिशा के कायोत्सर्ग काल मे ऊर्ध्वलोक मे अवस्थित द्रव्यो का ध्यान किया जाता है। इसी प्रकार अधो दिशा के कायोत्सर्ग काल मे अधोलोक मे अवस्थित द्रव्य ध्यान के विषय बनते हैं। इस प्रतिमा का कालमान १० दिन-रात का है। यह २२ भक्त (दस दिन का उपवास) से पूर्ण होती है।[6] भगवान् महावीर ने इस प्रतिमा की भी आराधना की थी।[7]

यह प्रतिमा दूसरी पद्धति से भी की जाती है। इसके दो भेद है—क्षुद्रिकासर्वतोभद्रा और महतीसर्वतोभद्रा। इसमे एक उपवास से लेकर पाच उपवास किए जाते है। इसकी पूर्ण प्रक्रिया ७५ दिवसीय तपस्या से पूर्ण होती है। और पारणा के दिन २५ होते हैं। कुल मिलाकर १०० दिन लगते है।[8] इसकी स्थापना-विधि इस प्रकार है—

---

१ योगदर्शन २।२६

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपाय।

२ आवश्यकनिर्युक्ति, ४९५, ४९६.

सावत्थी वास चित्ततवो साणुलट्ठि बहिं।
पडिमाभद्द महाभद्द सव्वओभद्द पढमिआ चउरो।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र ६१:

सुभद्राप्येव प्रकारैव सभाव्यते अदृष्टत्वेन तु नोक्ता।

४. आवश्यकनिर्युक्तिअवचूर्णि, पृ० २८६:

महाभद्रायां पूर्वदिश्येकमहोरात्र, एवं शेषदिश्वपि, एषा दशमेन पूर्यते।

५ आवश्यकनिर्युक्ति, ४९६।

६ आवश्यकनिर्युक्तिअवचूर्णि, पृ० २८६

सर्वतोभद्रायां दशस्वपि दिक्ष्वेकैकमहोरात्र, तत्रोर्द्ध्व-दिशमधिकृत्य यदा कायोत्सर्गं कुरुते तदोर्द्ध्वलोकव्यवस्थितान्येव कानिचिद्द्रव्याणि ध्यायति, अधोदिशि त्वधोव्यवस्थितानि, एवमेषा द्वाविंशतिभक्तेन समाप्यते।

७ आवश्यकनिर्युक्ति, ४९६।

८. स्थानागवृत्ति, पत्र २७८:

सर्वतोभद्रा तु प्रकारान्तरेणाप्युच्यते, द्विधेय—क्षुद्रिका महती च, तत्राद्या चतुर्थादिना द्वादशावसानेन पञ्चसप्ततिदिन-प्रमाणेन तपसा भवति।

आदि मे १ की और अन्त मे ५ की स्थापना कीजिए। शेष सख्या को भर दीजिए। दूसरी पक्ति मे प्रथम पक्ति के मध्य को आदि मानकर क्रमश. भर दीजिए। तीसरी पक्ति मे दूसरी पंक्ति के मध्य को आदि मानकर क्रमशः भर दीजिए। इस पद्धति से पांचो पंक्तियो को भर दीजिए।[1] इसका यन्त्र इस प्रकार है—

१	२	३	४	५
३	४	५	१	२
५	१	२	३	४
२	३	४	५	१
४	५	१	२	३

कोष्ठक मे जो अंक सख्या है उसका अर्थ है उतने दिन का उपवास। प्रत्येक तप के बाद पारणा आता है, जैसे—

पहले उपवास, फिर पारणा, फिर दो दिन का उपवास, फिर पारणा। इस पद्धति से ७५ दिन का तप और २५ दिन का पारणा होता है।

महतीसर्वतोभद्रा—इसमे यह चतुर्थभक्त (उपवास) से लेकर ७ दिन के तप किए जाते हैं। इसकी पूर्ण प्रक्रिया १९६ दिवसीय तप से पूर्ण होती है और पारणा के दिन ४९ लगते है। कुल मिलाकर २४५ दिन लगते है।[2] इसकी स्थापना-पद्धति इस प्रकार है—

आदि मे एक और अन्त मे ७ के अक की स्थापना कीजिए। बीच की सख्या क्रमश भर दीजिए। उमसे आगे की पंक्ति मे पहले की पक्ति का मध्य अक लेकर अगली पक्ति के आदि मे स्थापित कर दीजिए। फिर क्रमश सख्या भर दीजिए। इस प्रकार सात पक्तिया भर दीजिए।[3] यन्त्र इस प्रकार है—

१	२	३	४	५	६	७
४	५	६	७	१	२	३
७	१	२	३	४	५	६
३	४	५	६	७	१	२
६	७	१	२	३	४	५
२	३	४	५	६	७	१
५	६	७	१	२	३	४

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र २७८ ·

एगाई पंचते ठविउ, मज्झं तु आइमणुपंति।
उचियकमेण य सेसे, जाण लहु सव्वओभद्द ॥

२. स्थानागवृत्ति, पत्र २७९ ·

महती तु चतुर्थादिना षोडशावसानेन षण्णवत्यधिकदिन-शतमानेन भवति।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र २७९ ·

एगाई सत्तते, ठविउं मज्झं च आदिमणुपंति।
उचियकमेण य, सेसे जाण मह सव्वओभद्द ॥

अंक संख्या का अर्थ है उतने दिन का तप। इसकी विधि पूर्ववत् है।

क्षुद्रिकाप्रस्रवणप्रतिमा, महतीप्रस्रवणप्रतिमा—प्रस्तुत सूत्र में इनका केवल नामोल्लेख है। व्यवहारसूत्र के नवें उद्देशक में इनकी पद्धति निर्दिष्ट है। व्यवहार-भाष्य में इनका विस्तृत विवेचन है। उसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से विचार किया गया है।

द्रव्यतः—प्रस्रवण पीना।

क्षेत्रतः—गांव से बाहर रहना।

कालतः—दिन में, अथवा रात्रि में, प्रथम निदाघ-काल में अथवा अन्तिम निदाघकाल में।

स्थानांग के वृत्तिकार ने कालतः शरद् और निदाघ दोनों समयों का उल्लेख किया है।[1]

व्यवहारभाष्य में प्रथमशरद् का उल्लेख मिलता है।[2]

भावतः—स्वाभाविक और इतर प्रस्रवण। प्रतिमाप्रतिपन्न मुनि स्वाभाविक को पीता है और इतर को छोड़ता है। कृमि तथा शुक्रयुक्त प्रस्रवण इतर प्रस्रवण होता है।

स्थानांग वृत्तिकार ने भावतः की व्याख्या में देव आदि का उपसर्ग सहना ग्रहण किया है।[3] यदि यह प्रतिमा खा कर की जाती है तो ६ दिन के उपवास से समाप्त हो जाती है और न खाकर की जाती है तो ७ दिन के उपवास से पूर्ण होती है।

इस प्रतिमा की सिद्धि के तीन लाभ बतलाए गए हैं—

१. सिद्ध होना।

२. महर्द्धिक देव होना।

३. रोगमुक्त होकर शरीर का कनक वर्ण हो जाना।

प्रतिमा पालन करने के बाद आहार-ग्रहण की प्रक्रिया इस प्रकार निर्दिष्ट है—

प्रथम सप्ताह में गर्म पानी के साथ चावल।

दूसरे सप्ताह में यूष-मांड।

तीसरे सप्ताह में त्रिभाग उष्णोदक और थोड़े से मधुर दही के साथ चावल।

चतुर्थ सप्ताह में दो भाग उष्णोदक और तीन भाग मधुर दही के साथ चावल।

पांचवें सप्ताह में अर्द्ध उष्णोदक और अर्द्ध मधुर दही के साथ चावल।

छठे सप्ताह में त्रिभाग उष्णोदक और दो भाग मधुर दही के साथ चावल।

सातवें सप्ताह में मधुर दही में थोड़ा सा उष्णोदक मिलाकर उसके साथ चावल।

आठवें सप्ताह में मधुर दही अथवा अन्य जूषों के साथ चावल।

सात सप्ताह तक रोग के प्रतिकूल न हो वैसा भोजन दही के साथ किया जा सकता है। तत्पश्चात् भोजन का प्रतिबंध समाप्त हो जाता है। महतीप्रस्रवणप्रतिमा की विधि भी क्षुद्रिकाप्रस्रवणप्रतिमा के समान ही है। केवल इतना अन्तर है कि जब वह खा-पीकर स्वीकार की जाती है तब वह ७ दिन के उपवास से पूरी होती है अन्यथा वह आठ दिन के उपवास में।[4]

यवमध्यचन्द्रप्रतिमा, वज्रमध्यचन्द्रप्रतिमा—प्रस्तुत सूत्र में इनका केवल नामोल्लेख है। व्यवहार के दसवें उद्देशक में इनकी पद्धति निर्दिष्ट है। व्यवहार भाष्य में इनका विस्तृत विवेचन है।

यवमध्यचन्द्रप्रतिमा—इस चन्द्रप्रतिमा में मध्यभाग यव की तरह स्थूल होता है इसलिए इसको यवमध्यचन्द्रप्रतिमा कहते हैं। इसका भावार्थ है जिसका आदि-अन्त कृश और मध्य स्थूल हो वह प्रतिमा।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ६१ :
कालतः शरदि निदाघे वा प्रतिपद्यते।

२. व्यवहारभाष्य, ६।१०७।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ६१ :
भावतस्तु दिव्याद्युपसर्गसहनमिति।

४. व्यवहार सूत्र, उद्देशक ६, भाष्यगाथा ८८-१०७।

इस प्रतिमा में स्थित मुनि शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को एक कवल आहार लेता है और क्रमशः एक-एक कवल बढाता हुआ शुक्ल पक्ष की पूर्णिका को १५ कवल आहार लेता है। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को १४ कवल आहार लेकर क्रमशः एक-एक कवल घटाता हुआ अमावस्या को उपवास करता है।

वज्रमध्यचन्द्रप्रतिमा—

इस चन्द्रप्रतिमा मे मध्यभाग वज्र की तरह कृश होता है इसलिए इसको वज्रमध्यचन्द्रप्रतिमा कहते हैं। इसका भावार्थ है—जिसका आदि-अन्त स्थूल और मध्य कृश हो वह प्रतिमा।

इस प्रतिमा मे स्थित मुनि कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को १४ कवल आहार लेकर क्रमशः एक-एक कवल घटाता हुआ अमावस्या को उपवास करता है। इसी प्रकार शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को एक कवल आहार लेकर क्रमशः एक-एक कवल बढाता हुआ पूर्णिमा को १५ कवल आहार लेता है।[1]

इन प्रतिमाओं को स्वीकार करने वाला मुनि व्युत्सृष्टकाय और त्यक्तदेह होता है।

व्युत्सृष्टकाय का अर्थ है—वह रोगातक उत्पन्न होने पर शरीर का प्रतिकर्म नहीं करता।[2]

त्यक्तदेह का अर्थ है—वह बन्धन, रोधन, हनन और मारण का निवारण नही करता।[3]

इस प्रकार उक्त प्रतिमाओ को स्वीकार करने वाला मुनि जो भी परिषह और उपसर्ग उत्पन्न होते हैं उन्हे समभाव से सहन करता है।

भद्रोत्तरप्रतिमा—यह प्रतिमा दो प्रकार की है—क्षुद्रिकाभद्रोत्तरप्रतिमा और महतीभद्रोत्तरप्रतिमा।

क्षुद्रिकाभद्रोत्तरप्रतिमा—यह द्वादशभक्त (पाच दिन के उपवास) से प्रारम्भ होती है और इसमे अधिकतम तप विशतिभक्त (नौ दिन के उपवास) का होता है। इसमे तप के कुल १७५ दिन होते है और २५ दिन पारणा के लगते हैं। कुल मिलाकर २०० दिन लगते हैं।[4] इसकी स्थापना-विधि इस प्रकार है—प्रथम पक्ति के आदि मे ५ का अक स्थापित कीजिए और अन्त मे ९ का अक स्थापित कीजिए। बीच की सख्या क्रमशः भर दीजिए। पूर्व की पक्ति के मध्य अक को अगली पक्ति के आदि मे स्थापित कीजिए, फिर क्रमशः भर दीजिए। इस क्रम से पाचो पक्तिया भर दीजिए।[5] इसका यन्त्र इस प्रकार है—

५	६	७	८	९
७	८	९	५	६
९	५	६	७	८
६	७	८	९	५
८	९	५	६	७

कोष्ठक मे जो अक सख्या है उसका अर्थ है उतने दिन का उपवास।

महतीभद्रोत्तरप्रतिमा—

यह प्रतिमा द्वादशभक्त (५ दिन के उपवास) से प्रारम्भ होती है और इस मे अधिकतम तप चतुर्विशतिभक्त

---

१ व्यवहार सूत्र, उद्देशक १०, भाष्यगाथा ३, वृत्ति पत्र २।

२. व्यवहारसूत्र, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ९ '
वातिय पित्तिय सिभियरोगायके हि तत्थ पुट्ठोवि।
न कुणइ परिकम्मसो, किंचिवि वोसट्ठदेहो उ॥

३ व्यवहार सूत्र, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ९ '
बंधेज्ज व रुभेज्ज व, कोई व हणेज्ज अहव मारेज्ज।
वारेइ न सो भयवं, चियत्तदेहो अपडिबुद्धो॥

४ स्थानागवृत्ति, पत्र २७९ '
भद्रोत्तरप्रतिमा द्विधा—क्षुल्लिका महती च, तत्र आद्या द्वादशादिना विंशान्तेन पञ्चसप्तत्यधिकदिनशतप्रमाणेन तपसा भवति पारणकदिनानि पञ्चविंशतिरिति।

५. स्थानागवृत्ति, पत्र २७९.
पचाई य नवंते, ठविउ मज्झं तु आदिमणुपति।
उचियकमेण य, सेसे जाणह भद्दोत्तरं खुड्डं॥

(११ दिन के उपवास) होता है। इस प्रतिमा मे ३९२ दिन का तप होता है और ४९ दिन पारणा के लगते हैं। कुल मिलाकर ४४१ दिन लगते हैं।[1] इसकी स्थापना-विधि इस प्रकार है—

प्रथम पंक्ति के आदि मे ५ का अक स्थापित कीजिए और अन्त में ११ का अक स्थापित कीजिए। बीच की सख्या क्रमश भर दीजिए। अगली पक्ति के आदि मे पूर्व पंक्ति का मध्य अंक स्थापित कर उसे क्रमश. भर दीजिए। इसी क्रम से सातों पक्तियां भर दीजिए।[2]

इसका यन्त्र इस प्रकार है—

५	६	७	८	९	१०	११
८	९	१०	११	५	६	७
११	५	६	७	८	९	१०
७	८	९	१०	११	५	६
१०	११	५	६	७	८	९
६	७	८	९	१०	११	५
९	१०	११	५	६	७	८

कोष्ठक मे जो अक है उनका अर्थ है—उतने दिन का उपवास।

१०९-११२ उपपात, उद्वर्तन, च्यवन, गर्भ अवक्रान्ति (सू० २५०-२५३)

प्रस्तुत चार सूत्रों मे जन्म और मृत्यु के लिए परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न शब्दो का प्रयोग किया गया है। जैसे—देव और नारक जीवो का जन्म गर्भ से नही होता। वे अन्तर्मुहूर्त्त मे ही अपने पूर्ण शरीर का निर्माण कर लेते है। इसलिए उनके जन्म को उपपात कहा जाता है।

नैरयिक और भवनवासी देव अधोलोक मे रहते है। वे मरकर ऊपर आते है, इसलिए उनके मरण को उद्वर्तन कहा जाता है।

ज्योतिष्क और वैमानिक देव ऊर्ध्वस्थान में रहते हैं। वे आयुष्य पूर्ण कर नीचे आते है, इसलिए उनके मरण को च्यवन कहा जाता है।

---

१. स्थानागवृत्ति, पत्र २७९ :

महती तु द्वादशादिना चतुर्विंशतितमान्तेन द्विनवत्यधिकदिनशतत्रयमानेन तपसा भवति। पारणकदिनान्येकोनपञ्चाशदिति।

२. स्थानागवृत्ति, पत्र २७९ :

पचादिगारसंते, ठविउं मज्झ तु आइमणुपंति।
उचियकमेण य, सेसे महई भद्दोत्तर जाण॥

मनुष्य और तिर्यञ्च गर्भ से पैदा होते हैं, इसलिए उनके गर्भाशय में उत्पन्न होने को गर्भ—अवक्रान्ति कहा जाता है।

११३ (सू० २५६)

प्रस्तुत सूत्र मे मनुष्य और पचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवों के गर्भ की अवस्था उनके गर्भ मे रहते हुए उसकी गतिविधियो, गर्भ से निष्क्रमण और मृत्यु की अवस्था का वर्णन है।

निवृद्धि—वात, पित आदि दोषो के द्वारा होने वाली शरीर की हानि।

विक्रिया—जिन्हें वैक्रिय लब्धि प्राप्त हो जाती है, वे गर्भ मे रहते हुए भी उस लब्धि के द्वारा विभिन्न शरीरो की रचना कर लेते है।

गतिपर्याय—वृत्तिकार ने इसके तीन अर्थ किए है—

१. गति का सामान्य अर्थ है जाना।

२. इसका दूसरा अर्थ है—वर्तमानभव से मरकर दूसरे भव मे जाना।

३. गर्भस्थ मनुष्य और तिर्यंच का वैक्रिय शरीर के द्वारा युद्ध के लिए जाना। यहा गति के उत्तरवर्ती दो अर्थ विशेष सन्दर्भों मे किए गए है।

कालसयोग—देव और नैरयिक अन्तर्मुहूर्त्त मे पूर्णांग हो जाते हैं, किन्तु मनुष्य और तिर्यच काल-क्रम के अनुसार अपने अंगों का विकास करते हैं—विभिन्न अवस्थाओं मे से गुजरते हैं।

आयाति—गर्भ से बाहर आना।

११४ (सू० २५९-२६१)

जीव एक जन्म मे जितने काल तक जीते हैं उसे 'भव-स्थिति' और मृत्यु के पश्चात् उसी जीव-निकाय के शरीर मे उत्पन्न होने को 'काय-स्थिति' कहा जाता है।

मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लगातार सात-आठ जन्मो तक मनुष्य और तिर्यञ्च हो सकते है। इसलिए उनके कायस्थिति और भवस्थिति—दोनो होती है। देव और नैरयिक मृत्यु के अनन्तर देव और नैरयिक नही बनते, इसलिए उनके केवल भवस्थिति होती है, कायस्थिति नही होती।

११५ (सू० २६२)

जो लगातार कई जन्मो तक एक ही जाति मे उत्पन्न होता रहता है, उसकी पारम्परिक आयु को अद्धा-आयुष्य या कायस्थिति का आयुष्य कहा जाता है। पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु के जीव उत्कृष्टत असख्यकाल तक अपनी-अपनी योनि मे रह सकते हैं। वनस्पतिकाय अनन्तकाल तक तीन विकलेन्द्रिय सख्यात वर्षों तक और पचेन्द्रिय सात या आठ जन्मो तक अपनी-अपनी योनि मे रह सकते हैं।[1]

जिस जाति मे जीव उत्पन्न होता है उसके आयुष्य को भव-आयुष्य कहा जाता है।

११६ (सू० २६५)

कर्म-बध की चार अवस्थाए होती हैं—प्रकृति, स्थिति, अनुभाव (भाग) और प्रदेश[2]। प्रस्तुत सूत्र मे इनमे से दो अवस्थाए प्रतिपादित है। प्रदेश-कर्म का अर्थ है—कर्म परमाणुओ की सख्या का परिमाण। अनुभावकर्म का अर्थ है, कर्म की फल देने की शक्ति।

कर्म का उदय दो प्रकार का होता है—प्रदेशोदय और विपाकोदय। जिस कर्म के प्रदेशों (पुद्गलो) का ही वेदन

१. देखें उत्तराध्ययन १०।५ से १३

२. उत्तराध्ययन, अध्ययन ३३।

होता है, रस का नहीं होता उसे प्रदेशकर्म कहते हैं।

जिस कर्म के बंधे हुए रस के अनुसार वेदन होता है उसे अनुभावकर्म कहते हैं। वृत्तिकार ने यहां प्रदेशकर्म और अनुभावकर्म का यही (उदय सापेक्ष) अर्थ किया है[1]। किन्तु यहा कर्म की दो मूल अवस्थाओं का अर्थ संगत होता है, तब फिर उसकी उदय अवस्था का अर्थ करने की अपेक्षा ज्ञात नही होती।

११७ (सू० २६६)

समुच्चयदृष्टि से विचार करने पर आयुष्य के दो रूप फलित होते हैं—पूर्णआयु और अपूर्णआयु। देव और नैरयिक ये दोनो पूर्णआयु वाले होते है। मनुष्य और पचेन्द्रिय तिर्यंच अपूर्णआयु वाले भी होते हैं। इनमें असख्येय वर्ष की आयुष्य वाले तिर्यंच और मनुष्य तथा उत्तम पुरुष और चरम शरीरी मनुष्य पूर्णआयु वाले ही होते है। इनका यहा निर्देश नही है।

११८ आयुष्य का संवर्तन (सू० २६७)

सातवे स्थान (७।७२) मे आयु सवर्तन के सात कारण निर्दिष्ट हैं।

११९ काल (सू० ३२०)

छठे स्थान (६।२३) मे ६ प्रकार के काल का निर्देश मिलता है—सुषम-सुषमा, सुषमा, सुषम-दु:षमा, दु:षमसुषमा, दुषमा, दु षम-दु:षमा।

१२० नक्षत्र (सू० ३२४)

यजुर्वेद के एक मत्र मे २७ नक्षत्रो को गन्धर्व कहा है। इससे यह प्रतीत होता है कि उस समय २७ नक्षत्रो की मान्यता थी। अथर्ववेद (अध्याय सख्या १६।७) मे कृत्तिकादि २८ नक्षत्रो का वर्णन है। इसी प्रकार तैत्तिरीयश्रुति मे २७ नक्षत्रो के नाम, देवता, वन्दन और लिङ्ग भी बताए गए हैं। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का नाम छोड़ा गया है। नक्षत्रो का क्रम इस सूत्र के अनुसार ही है और देवताओ के नाम भी बहुलाश मे मिलते-जुलते हैं[2]।

१२१ (सू० ३२५)

तिलोयपण्णत्ती मे ८८ नक्षत्रो के निम्नोक्त नाम है—

बुध, शुक्र, बृहस्पति, मगल, शनि, काल, लोहित, कनक, नील, विकाल, केश, कवयव, कनकसंस्थान, दुन्दुभक रक्तनिभ, नीलाभास, अशोकसस्थान, कस, रूपनिभ, कसकवर्ण, शखपरिणाम, तिलपुच्छ, शखवर्ण, उदकवर्ण, पचवर्ण, उत्पात, धूमकेतु, तिल, नभ, क्षारराशि, विजिष्णु, सदृश, सन्धि, कलेवर, अभिन्न, ग्रन्थि, मानवक, कालक, कालकेतु, निलय, अनय, विद्युज्जिह, सिंह, अलख, निर्दु:ख, काल, महाकाल, रुद्र, महारुद्र, सतान, विपुल, सम्भव, सर्वार्थी, क्षेम, चन्द्र, निर्मन्त्र, ज्योतिषमान्, दिशसस्थित, विरत, वीतशोक, निश्छल, प्रलम्ब, भासुर, स्वयप्रभ, विजय, वैजयन्त, सीमकर, अपराजित, जयत, विमल, अभयकर, विकस, काष्ठी, विकट, कज्जली, अग्निज्वाल, अशोक, केतु, क्षीरस, अघ, श्रवण, जलकेतु, केतु, अन्तरद, एक सस्थान, अश्व, भावग्रह, महाग्रह।

सूर्यप्रज्ञप्ति मे नील और नीलाभास ग्रह रुक्मी और रुक्माभास से पहले है।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ६३

प्रदेशा एव पुद्गला एव यस्य वेद्यन्ते न यथा बद्धो रसस्तत्प्रदेशमात्रतया वेद्य कर्म प्रदेशकर्म, यस्य त्वनुभावो यथाबद्धरसो वेद्यते तदनुभावतो वेद्यं कर्मानुभावकर्मेति।

२. भारतीय ज्योतिष, नेमिचन्द्रकृत, पत्र ६६।

१२२-१२४ (सू० ३८७-३८६)

काल वास्तविक द्रव्य नहीं है। वह औपचारिक द्रव्य है। वस्तुतः वह जीव और अजीव दोनो का पर्याय है। इसीलिए उसे जीव और अजीव दोनो कहा गया है।

ऋग्वेद १।१५५।६ मे काल के ६४ अश बतलाए गए है—सवत्सर, दो अयन, पाच ऋतु (हेमंत और शिशिर को एक मानकर), १२ मास, २४ पक्ष, ३० अहोरात्र, आठ प्रहर और १२ राशिया।

जैन आगमों के अनुसार काल का सूक्ष्मतम भाग समय है। समय से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक का काल गण्यमान है, उसकी राशि अंकों मे निश्चित है।

समय—काल का सर्वसूक्ष्म भाग, जो विभक्त न हो सके, को समय कहा जाता है। इसे कमल-पत्र-भेद के उदाहरण द्वारा समझाया गया है।

एक-दूसरे से सटे हुए कमल के सौ पत्तो को कोई बलवान व्यक्ति सुई से छेदता है, तब ऐसा ही लगता है कि सब पत्ते साथ ही छिद गए, किन्तु ऐसा होता नहीं है। जिस समय पहला पत्ता छिदा उस समय दूसरा नहीं। इस प्रकार सबका छेदन क्रमश. होता है।

दूसरा उदाहरण जीर्ण वस्त्र के फाड़ने का है—

एक कलाकुशल युवा और बलिष्ठ जुलाहा जीर्ण-शीर्ण वस्त्र या साडी को इतनी शीघ्रता से फाड डालता है कि दर्शक को ऐसा लगता है मानो सारा वस्त्र एक साथ फाड डाला। किन्तु ऐसा होता नहीं। वस्त्र अनेक ततुओ से बनता है। जब तक ऊपर के ततु नहो फटते तब तक नीचे के ततु नही फट सकते। अत यह निश्चित है कि वस्त्र के फटने में काल-भेद होता है।

वस्त्र अनेक ततुओ से बनता है। प्रत्येक ततु मे अनेक रोए होते हैं। उनमे भी ऊपर का रोआ पहले छिदता है। तब कही उसके नीचे का रोआ छिदता है। अनन्त परमाणुओ के मिलन का नाम सघात है। अनन्त सघातो का एक समुदाय और अनन्त समुदायों की एक समिति होती है। ऐसी अनन्त समितियो के सगठन से ततु के ऊपर का एक रोआ बनता है। इन सबका छेदन क्रमशः होता है। ततु के पहले रोएं के छेदन मे जितना समय लगता है, उसका अत्यन्त सूक्ष्म अश यानी असख्यातवा भाग 'समय' कहलाता है। वर्तमान विज्ञान के जगत् मे काल की सूक्ष्म-मर्यादा के अनेक उदाहरण मिलते है। उनमे से एक उदाहरण यहा प्रस्तुत है। वर्कशायर (इग्लैंड) के ऐल्डरमेस्टन अस्त्र-अनुसधान केन्द्र मे एक ऐसा कैमरा बनाया गया है, जो एक सेकंड में ५ करोड चित्र खीच लेता है।

असख्येय समय—आवलिका।

सख्यात आवलिका (एक उच्छ्वास-नि:श्वास)—आन प्राण।

रोग-रहित स्वस्थ व्यक्ति को एक उच्छ्वास और एक नि श्वास मे जो समय लगता है उसको 'आन प्राण' कहते है।

सात प्राण (सात उच्छ्वास-नि:श्वास)—स्तोक।

सात स्तोक—लव।

सतहत्तर लव (३७७३ उच्छ्वास-नि.श्वास)—मुहूर्त्त।

३० मुहूर्त्त—अहोरात्र।

१५ अहोरात्र—पक्ष।

२ पक्ष—मास।

२ मास—ऋतु।

३ ऋतु—अयन।

२ अयन—सवत्सर।

५ संवत्सर—युग।

२० युग—शतवर्ष।

१० शतवर्ष—सहस्रवर्ष।

१०० सहस्रवर्ष—शत सहस्रवर्ष।
८४ लाख वर्ष—पूर्वाङ्ग।
८४ लाख पूर्वाङ्ग—पूर्व।
८४ लाख पूर्व—त्रुटितांग।
८४ लाख त्रुटितांग—त्रुटित।
८४ लाख त्रुटित—अटटांग।
८४ लाख अटटांग—अटट।
८४ लाख अटट—अववांग।
८४ लाख अववांग—अवव।
८४ लाख अवव—हूहूकांग।
८४ लाख हूहूकांग—हूहूक।
८४ लाख हूहूक—उत्पलांग।
८४ लाख उत्पलांग—उत्पल।
८४ लाख उत्पल—पद्मांग।
८४ लाख पद्मांग—पद्म।
८४ लाख पद्म—नलिनांग।
८४ लाख नलिनांग—नलिन।
८४ लाख नलिन—अच्छनिकुरांग[1]।
८४ लाख अच्छनिकुरांग—अच्छनिकुर।
८४ लाख अच्छनिकुर—अयुतांग।
८४ लाख अयुतांग—अयुत।
८४ लाख अयुत—नयुतांग।
८४ लाख नयुतांग—नयुत।
८४ लाख नयुत—प्रयुतांग।
८४ लाख प्रयुतांग—प्रयुत।
८४ लाख प्रयुत—चूलिकांग।
८४ लाख चूलिकांग—चूलिका।
८४ लाख चूलिका—शीर्षप्रहेलिकांग।
८४ लाख शीर्षप्रहेलिकांग—शीर्षप्रहेलिका।

जैनों में लिखी जाने वाली सबसे बड़ी संख्या शीर्षप्रहेलिका है, जिसमें ५४ अंक और १४० शून्य होते हैं। १९४ अंकात्मक संख्या सबसे बड़ी संख्या है।

शीर्षप्रहेलिका अंकों में इस प्रकार है---

७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६ इसके आगे १४० शून्य होते हैं।[2]

वीर निर्वाण के ८२७-८४० वर्ष बाद मथुरा और वल्लभी में एक साथ दो संगीतियां हुई थी। माथुरी वाचना के

1 अनुयोगद्वारसूत्र की टीका तथा लोकप्रकाश (सर्ग २९, श्लोक २९) में अर्थनिपुरांग और अर्थनिपुर संख्या स्वीकार की है।

2. काललोकप्रकाश, २८।१२ :
शीर्षप्रहेलिकाङ्का स्युश्चतुर्णवतियुक्शतं।
अङ्कस्थानाभिधाश्चेमा, श्रित्वा माथुरवाचनाम्॥

अध्यक्ष नागार्जुन थे और वलभी वाचना के अध्यक्ष स्कंदिलाचार्य थे।

वलभी वाचना में २५० अकों की सख्या मिलती है। इसका उल्लेख ज्योतिष्करड में हुआ है। उसके कर्ता वलभी वाचना की परम्परा के आचार्य है, ऐसा आचार्य मलयगिरि ने कहा है। उसमे काल के नाम इस प्रकार हैं—

लतांग, लता, महालताग, महालता, नलिनाग, नलिन, महानलिनाग, महानलिन, पद्माग, पद्म, महापद्माग, महापद्म, कमलाग, कमल, महाकमलाग, महाकमल, कुमुदाग, कुमुद, महाकुमुदाग, महाकुमुद, त्रुटिताग, त्रुटित, महात्रुटिताग, महात्रुटित, अडडाग, अडड, महाअडडाग, महाअडड, ऊहाग, ऊह, महाऊहाग, महाऊह, शीर्षप्रहेलिकाग, शीर्षप्रहेलिका।

प्रत्येक सख्या पूर्व सख्या को ८४ लाख से गुणा करने से प्राप्त होती है। शीर्षप्रहेलिका मे ७० अक (१८७६५५१७९५५०११२५९५४१९००९६९९८१३४३०७७०७९७४६५४९४२६१९७७७४७६५७२५७३४५७१८६८१६) और १८० शून्य अर्थात् २५० अक होते है।

शीर्षप्रहेलिका की यह सख्या अनुयोगद्वार मे दी गई संख्या से नही मिलती[1]।

जीव और अजीव पदार्थों के पर्यायकाल के निमित्त से होते है। इसलिए इसे जीव और अजीव दोनों कहा गया है।

सख्यातकाल शीर्षप्रहेलिका से आगे भी है, किन्तु सामान्यज्ञानी के लिए व्यवहार्य शीर्षप्रहेलिका तक ही है इसलिए आगे के काल को उपमा के माध्यम से निरूपित किया गया है। पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी—ये औपम्य-काल के भेद हैं।

शीर्षप्रहेलिका तक के काल का व्यवहार प्रथम पृथ्वी के नारक, भवनपति, व्यन्तर तथा भरत-ऐरवत मे सुषमदु षमा आरे के पश्चिम भागवर्ती मनुष्यो और तिर्यंचो के आयुष्य को मापने के लिए किया जाता है।[2]

यजुर्वेद १७।२ मे १ पर १२ शून्य रखकर दस खर्व तक की सख्या का उल्लेख है। वहा शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, समुद्र, अन्त, परार्द्ध तक का उल्लेख है।
उस गणितशास्त्र मे महासख तक की सख्या का व्यवहार होता है। वे २० अक इस प्रकार हैं—इकाई, दस, शत, सहस्र, दस-सहस्र, लक्ष, दस लक्ष, करोड, दस करोड़, अरब, दस अरब, खरब, दस खरब, नील, दस नील, पद्म, दस पद्म, सख, दस सख, महा सख।

१२५ (सू० ३६०)

ग्राम, नगर, निगम, राजधानी, खेट, कर्बट, मडब, द्रोणमुख, पत्तन, आकर, आश्रम, सवाह, सन्निवेश और घोष—ये शब्द बस्ती के प्रकार है।

ग्राम—ग्राम शब्द के अनेक अर्थ है—

१. जो बुद्धि आदि गुणो को ग्रसित करे अथवा जहा १८ प्रकार के कर लगते हो।[3]

२. जहा कर लगते हो।[4]

---

१ लोकप्रकाश सर्ग २६, श्लोक २१ के बाद पृ० १४४ :

ज्योतिष्करडवृत्तौ श्रीमलयगिरिपूज्या इति स्माहु—"इह स्कदिलाचार्यप्रवृत्तौ (प्रतिपत्तौ) दु पमानुभावतो दुर्भिक्ष-प्रवृत्त्या साधूना पठनगुणनादिक सर्वमप्यनेशत्, ततो दुर्भिक्षाति-क्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयो स्थानयो सघमेलकोऽभवत् तद्यथा—एको वलभ्यामेको मथुरायां। तत्र च सूत्रार्थ—सघटने परस्पर वाचनाभेदो जातो, विस्मृतयो हि सूत्रार्थयो स्मृत्वा संघटने भवत्यवश्य वाचनाभेद इति न काचिद् अनुपपत्ति, तत्रानुयोग-द्वारादिकमिदानी वर्तमान माथुर—वाचनानुगत, ज्योतिष्करड सूत्रकर्ता चाचार्यो वालभ्यस्तत इद सख्यानप्रतिपादन वालभ्य-वाचनानुगतमिति नास्यानुयोगद्वारादिप्रतिपादितसख्यास्थानै सह विसदृशत्वमुपलभ्य विचिकित्सितव्यमिति।

२ स्थानागवृत्ति पत्र ८२।

३ (क) उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५ :
ग्रसति गुणान् गम्यो वाऽष्टादशानां कराणामितिग्राम।

(ख) दशवैकालिकहारिभद्री टीका, पत्र १४७ :
ग्रसति बुद्ध्यादीन् गुणानिति ग्राम।

४ (क) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६
करादियाण गम्मो गामो।

(ख) स्थानांगवृत्ति, पत्र ८२ :
करादिगम्या ग्रामा.।

३. जिसके चारो ओर कांटों की बाड़ हो अथवा मिट्टी का परकोटा हो।[1]

४. कृषक आदि लोगो का निवासस्थान।[2]

नगर—१. जिसमे कर नही लगता हो।[3]

२. जो राजधानी हो।[4]

अर्थ-शास्त्र मे राजधानी के लिए नगर या दुर्ग और साधारण कस्बो के लिए ग्राम शब्द प्रयुक्त हुआ है। प्रस्तुत प्रकरण मे नगर और राजधानी दोनो का उल्लेख है। इससे जान पड़ता है कि नगर बड़ी बस्तियो का नाम है, भले फिर वे राजधानी हो या न हो। राजधानी वह होती है जहा से राज्य का सचालन होता है।

निगम—व्यापारियो का गाव।[5]

राजधानी—१. वह बस्ती जहा राजा रहता हो।[6]

२ जहा राजा का अभिषेक हुआ हो।[7]

३. जनपद का मुख्य नगर।[8]

खेट—जिसके चारो ओर धूलि का प्राकार हो।[9]

कर्बट—१. पर्वत का ढलान।[10]

२. कुनगर।[11]

चूर्णिकार ने कुनगर का अर्थ किया—जहा क्रय-विक्रय न होता हो।[12]

३. बहुत छोटा सन्निवेश।[13]

४ जिले का प्रमुख नगर।[14]

५. वह नगर जहा बाजार हो।[15]

दशवैकालिक की चूर्णियो मे कर्बट का मूल अर्थ माया, कूटसाक्षी आदि अप्रामाणिक या अनैतिक व्यवसाय होता हो—किया है।[16]

---

१ दशवैकालिक एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ २२०।

२ उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

३. (क) स्थानागवृत्ति, पत्र ८२
नैतेषु करोऽस्तीति नकराणि।
(ख) दशवैकालिकहारिभद्री टीका, पत्र १४७
नास्मिन् करो विद्यते इति नकरम्।
(ग) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४७
ण केरा जत्थ त णगर।
(घ) उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

४ लोकप्रकाश, सर्ग ३१, श्लोक ६
नगरे राजधानी स्यात्।

५. (क) स्थानागवृत्ति, पत्र ८२
निगमा—वणिग्निवासा।
(ख) उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५.
निगमयन्ति तस्मिन्ननेकविधभाण्डानीति निगम।
(ग) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६
वणिय वग्गो जत्थ वसति त णेगम।

६. निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६.
जत्थ राया वसति सा रायहाणी।

७. स्थानागवृत्ति, पत्र ८२-८३
राजधान्यो—यासु राजानोऽभिषिच्यन्ते।

८. उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

९. (क) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६
खेड णाम धूलीपागार परिक्खित्त।
(ख) स्थानागवृत्ति, पत्र ८३
खेटानि—धूलिप्राकारोपेतानि।
(ग) उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

१० A Sanskrit English Dictionary, p. 259, by Sir Monier Williams.

११. (क) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६
कुणगरो कव्वड।
(ख) स्थानागवृत्ति, पत्र ८३
कर्वटानि—कुनगराणि।

१२. दशवैकालिकजिनदासचूर्णि, पृष्ठ ३६०।

१३. (क) उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।
(ख) दशवैकालिकहारिभद्रीटीका, पत्र २७५।

१४. A Sanskrit English Dictionary, p. 259, by Sir Monier Williams.

१५. दशवैकालिक एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ २२०।

१६. जिनदासचूर्णि, पृष्ठ ३६०।

मडंब—मडंब के तीन अर्थ किए गए हैं—

१. जिसके एक योजन तक कोई दूसरा गाव न हो।[1]

२. जिसके ढाई योजन तक कोई दूसरा गाव न हो।[2]

३. जिसके चारो ओर आधे योजन तक गाव न हो।[3]

द्रोणमुख—१. जहां जल और स्थल दोनों निर्गम और प्रवेश के मार्ग हो।[4]

उत्तराध्ययन के वृत्तिकार ने इसके लिए भृगुकच्छ और ताम्रलिप्ति का उदाहरण दिया है।[5]

२. समुद्र के किनारे बसा हुआ गांव, ऐसा गांव जिसमे जल और स्थल से पहुचने के मार्ग हो।

३. ४०० गावो की राजधानी।[6]

पत्तन—(क)—जलपत्तन—जलमध्यवर्ती द्वीप।

(ख)—स्थलपत्तन—निर्जलभूभाग में होने वाला।[7]

उत्तराध्ययन के वृत्तिकार ने जलपत्तन के प्रसंग मे काननद्वीप और स्थलपत्तन के प्रसग मे मथुरा का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

आकर—१. सोना, लोहे आदि की खान।[8]

२. खान का समीपवर्ती गाव, मजदूर-बस्ती।[9]

आश्रम—१. तापसो का निवासस्थान।[10]

२. तीर्थ-स्थान।[11]

सवाह—१. जहा चारो वर्णों के लोगो का अति मात्रा मे निवास हो।[12]

२. पहाड़ पर बसा हुआ गाव, जहा किसान समभूमि से खेती करके धान्य को रक्षा के लिए ऊपर की भूमि मे ले जाते है।[13]

सन्निवेश—१. यात्रा मे आए हुए मनुष्यो के रहने का स्थान।[14]

२. सार्थ और कटक का निवास-स्थान।[15]

घोष—आभीर-बस्ती।[16]

---

१. निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६ :
जोयणब्भतरे जस्स गामादी णत्थि तं मडब।

२. उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति पत्र ६०५।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र ८३
मडम्बानि सर्वतोऽर्द्धयोजनात् परतोऽवस्थितग्रामाणि।

४. (क) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६ :
दोण्णि मुहा जस्स त दोण्णमुह जलेण वि थलेण वि भडमागच्छति।
(ख) स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३।

५. उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

६. कौटिलीय अर्थशास्त्र २२
चतु शतग्राम्यो द्रोणमुखम्।

७ (क) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६।
(ख) उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।
(ग) स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३।

८ (क) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६ ·
सुवण्णादि आगारो।
(ख) स्थानागवृत्ति, पत्र ८३
लोहाद्युत्पत्तिभूमय।

९ उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

१० (क) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६।
(ख) उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

११ स्थानागवृत्ति, पत्र ८३।

१२ उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।

१३. (क) स्थानागवृत्ति, पत्र ८३
समभूमौ कृषिं कृत्वा येषु दुर्गभूमिभूतेषु धान्यानि कृषिबला सवहन्ति रक्षार्थमिति।
(ख) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६ ·
अण्णत्थ किसिं करेत्ता अन्नत्थ वोढु वसंति त सबाह भण्णति।

१४. (क) उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।
(ख) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृ० ३४६-३४७।

१५ स्थानागवृत्ति, पत्र ८३ .
सार्थकटकादे.।

१६ (क) उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, पत्र ६०५।
(ख) स्थानागवृत्ति, पत्र ८३
घोषा—गोष्ठानि।

आराम—जहां विविध प्रकार के वृक्ष और लताएं होती है और जहां कदली आदि के प्रच्छन्नगृह निर्मित होते हैं और जहा दम्पतियो की क्रीड़ा के लिए प्रच्छन्नगृह निर्मित होते है, उसे आराम कहा जाता है।[1]

उद्यान—वह स्थान जहा लोग गोठ (Picnic) आदि के लिए जाते हो और जो ऊंचाई पर बना हुआ हो।[2]

वन—जहा एक जाति के वृक्ष हो।[3]

वनखण्ड—जहा अनेक जाति के वृक्ष हो।[4]

वापी, पुष्करिणी, सर, सरपंक्ति, कूप, तालाब, द्रह और नदी—प्रस्तुत प्रकरण मे जलाशयो के इतने शब्द व्यवहृत हुए हैं। वापी, पुष्करिणी—ये दोनों एक ही कोटि के जलाशय हैं, इनमे वापी चतुष्कोण और पुष्करिणी वृत्त होती है।

वृत्तिकार ने पुष्करिणी का एक अर्थ पुष्करवती—कमल-प्रधान जलाशय किया है।[5]

सर—सहज बना हुआ।[6]

तडाग—जो ऊचा और लम्बा खोदा हुआ हो।[7]

अभिधानचिन्तामणि मे सर और तडाग दोनो को पर्यायवाची माना है। यहा एक ही प्रसग मे दोनो नाम आए हैं, इससे लगता है इनमे कोई सूक्ष्मभेद अवश्य है। 'सर' सहज बना हुआ होता है और तडाग—ऊचा तथा लम्बा खोदा हुआ होता है।

सरपंक्ति—सरों की श्रेणी।[8]

द्रह—नदियो का निम्नतर प्रदेश।[9]

वातस्कध—घनवात, तनुवात आदि वातों के स्कध।

अवकाशान्तर—घनवात आदि वात स्कधो के नीचे वाला आकाश।

वलय—पृथ्वी के चारों ओर घनोदधि, घनवात, तनुवात आदि का वेष्टन।

विग्रह—लोक नाड़ी के घुमाव।

वेला—समुद्र के जल की वृद्धि।

कूटागार—शिखरो पर रहे हुए देवायतन।

विजय—महाविदेह के क्षेत्र, कच्छादि क्षेत्र, जो चक्रवर्ती के लिए विजेतव्य।

इनमे जीव-अजीव दोनो व्याप्त है, इसलिए ये जीव-अजीव दोनो है।

१२६-१२८ अतियानगृह, अवलिंब, सनिष्प्रवात (सू० ३६१)

अतियानगृह—

अतियान का अर्थ है नगर-प्रवेश। वृत्तिकार ने ३।५०३ की वृत्ति मे यही अर्थ किया है।[10] नगर-प्रवेश करते समय

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३
आरामा—विविधवृक्षलतोपशोभिता कदल्यादिप्रच्छन्नगृहेषु स्त्रीसहितानां पुंसां रमणस्थानभूता इति।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३
उद्यानानि पत्रपुष्पफलच्छायोपगादिवृक्षोपशोभितानि बहुजनस्य विविधवेषस्योन्नतमानस्य भोजनार्थं यान-गमनं येष्विति।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३
वनानीत्येकजातीयवृक्षाणि।

४. स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३
वनखण्डा—अनेकजातीयोत्तमवृक्षा।

५. स्थानांगवृत्ति, पत्र ८३
वापी चतुरस्रा पुष्करिणी वृत्ता पुष्करवती वेति।

६. उपासकदशावृत्ति, हस्तलिखित, पत्र ८
सर स्वभावनिष्पन्न।

७. उपासकदशावृत्ति, हस्तलिखित, पत्र ८
खननसपन्नमुत्तान विस्तीर्णजलस्थान।

८. (क) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ ३४६
सरपती वा एगं महाप्रमाण सर, ताणि चेव बहूणि पतीठियाणि पत्तेयबाहुजुत्ताणि सरपती।

९. उपासकदशावृत्ति, हस्तलिखित, पत्र ८
नद्यादीना निम्नतर प्रदेश।

१०. स्थानांगवृत्ति, पत्र १६२
अतियान नगरप्रवेश।

जो घर सबसे पहले आते हैं, वे अतियानगृह कहलाते हैं। प्राचीनकाल मे प्रवेश और निर्गम के द्वार भिन्न-भिन्न होते थे। ये घर प्रवेश-द्वार के समीपवर्ती होते थे।

अवलिब और सनिष्प्रवात—

वृत्तिकार ने इनका कोई अर्थ नही किया है। उन्होने यह सूचना दी है कि इनका अर्थ रूढि से जान लेना चाहिए।[1]

अवलिब का दूसरा प्राकृतरूप 'ओलिब' हो सकता है। दीमक का एक नाम ओलिभा है।[2] यदि वर्णपरिवर्तन माना जाए तो अवलिब का अर्थ दीमक का ढूह हो सकता है और यदि पाठ-परिवर्तन की सम्भावना मानी जाए तो ओलिंद पाठ की कल्पना की जा सकती है। इसका अर्थ होगा बाहर के दरवाजे का प्रकोष्ठ। अतियानगृह और उद्यानगृह के अनन्तर प्रकोष्ठ का उल्लेख प्रकरण-सगत भी है।

सनिष्प्रवात—

सणिप्पवाय के सस्कृत रूप दो किए जा सकते है—

१. शनै.प्रपात।

२. सनिष्प्रवात।

शनै प्रपात का अर्थ धीमी गति से पडने वाला झरना और सनिष्प्रवात का अर्थ भीतर का प्रकोष्ठ (अपवरक) होता है। प्रकरणसगति की दृष्टि से यहा सनिष्प्रवात अर्थ ही होना चाहिए। अभिधानराजेन्द्र मे 'सण्णिप्पवाय' पाठ मिलता है। इसका अर्थ किया गया है—सज्ञी जीवो के अवपतन का स्थान। यदि 'सणि' शब्द को देशी भाषा का शब्द मानकर उसका अर्थ गीला किया जाए तो प्रस्तुत पाठ का अर्थ गीलाप्रपात भी किया जा सकता है।

१२६ (सू० ३९६)

वेदना दो प्रकार की होती है—आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी। अभ्युपगम का अर्थ है—अगीकार। हम सिद्धान्तत कुछ बातो का अगीकार करते है। तपस्या किसी कर्म के उदय से नही होती, किन्तु अभ्युपगम के कारण की जाती है। तपस्या काल मे जो वेदना होती है वह आभ्युपगमिकी वेदना है, स्वीकृत वेदना है।

उपक्रम का अर्थ है—कर्म की उदीरणा का हेतु। शरीर मे रोग होता है, उसमे कर्म की उदीरणा होती है, इसलिए वह उपक्रम है—कर्म की उदीरणा का हेतु है। उपक्रम के निमित्त मे होने वाली वेदना को औपक्रमिकी वेदना कहा जाता है।[3]

१३० (सू० ४०३)

आत्मा का स्वरूप कर्म परमाणुओ से आवृत्त रहता है। उनके उपशम, क्षय-उपशम और क्षय से वह (आत्म-स्वरूप) प्रकट होता है।

क्षय और उपशम—ये दोनो स्वतन्त्र अवस्थाए है। क्षय-उपशम मे दोनो का मिश्रण है। इसमे उदयप्राप्त कर्म के क्षय और उदयप्राप्त का उपशम—ये दोनो होते है, इसलिए क्षय-उपशम कहलाता है। इस अवस्था मे कर्म के विपाक की अनुभूति नही होती।[4]

१३१ (सू० ४०५)

जो काल उपमा के द्वारा जाना जाता है, उसे औपमिक काल कहते है। वह दो प्रकार का होता है—पल्योपम और

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ८३
अवलिबा सणिप्पवाया य रूढितोऽवसेया इति।

२. पाइयसद्दमहण्णवो।

३. स्थानागवृत्ति, पत्र ८४
अभ्युपगमन—अङ्गीकरणेन निर्वृत्ता तत्र वा भवा आभ्युपगमिकी तया—शिरोलोचतपश्चरणादिकया वेदनया—पीडया उपक्रमेण—कर्मोदीरणकारणेन निर्वृत्ता तत्र वा भवा औपक्रमिकी तया—ज्वरातीसारादिजन्यया।

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ८५।

सागरोपम। जिसको पल्य (धान्य मापने की गोलाकार प्याली) की उपमा से उपमित किया जाता है उसे पल्योपम कहते है। जिसको सागर की उपमा से उपमित किया जाता है उसे सागरोपम कहते है।

पल्योपम के तीन भेद है—उद्धारपल्योपम, अद्धापल्योपम और क्षेत्रपल्योपम। इनमें से प्रत्येक के बादर (सव्यवहार) और सूक्ष्म—ये दो-दो भेद होते है।

बादरउद्धारपल्योपम—

कल्पना कीजिए एक पल्य है। वह एक योजन लम्बा, एक योजन चौडा और एक योजन गहरा है। इस योजन का परिमाण उत्सेध आगुल मे है। उस पल्य की परिधि तीन योजन से कुछ अधिक है। शिर-मुडन के बाद एक दिन से लेकर सात दिन तक के उगे हुए बालो के अग्रभाग मे उस पल्य को पूर्ण भरा जाए। पल्य को बालो से इतना ठूम कर भरा जाए, जिसमे न अग्नि प्रवेश कर सके और न वायु उन बालो को उड़ा सके। अधिक निचित होने के कारण उसमे अग्नि और वायु प्रवेश नही पा सकती। प्रति समय एक-एक बालाग्र को निकालें। जितने समय मे वह पल्य पूर्णतया खाली हो जाए, उस समय को बादर (व्यावहारिक) उद्धारपल्योपम कहा जाता है। वे बालाग्र चर्म चक्षुओं के द्वारा ग्राह्य और प्ररूपणा करने मे व्यवहारत उपयोगी होते है इसलिए इसे व्यावहारिक भी कहा जाता है। व्यवहार के माध्यम से सूक्ष्म का निरूपण सरलता से हो जाता है।

सूक्ष्मउद्धारपल्योपम—

बादरउद्धारपल्योपम मे पल्य को बालो के अग्रभाग से भरा जाता है। यहा वैसे पल्य को बालो के असख्य टुकडे कर भरा जाए। प्रति समय एक-एक बालखण्ड को निकाला जाए। जितने समय मे वह पल्य खाली हो उसको सूक्ष्म उद्धार-पल्योपम कहा जाता है।

पल्य मे बालाग्र सख्यात होते है। उनका उद्धार सख्यय काल मे किया जा सकता है। इसलिए इसे उद्धारपल्योपम कहा जाता है।

बादरअद्धापल्योपम—

इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया बादरउद्धारपल्योपम के समान है। अन्तर केवल इतना ही है कि वहा प्रति समय एक-एक बालाग्र को निकाला जाता है, यहा प्रति सौ वर्ष मे एक-एक बालाग्र को निकाला जाता है।

सूक्ष्मअद्धापल्योपम—

सूक्ष्मउद्धारपल्योपम की प्रक्रिया यहा होती है। अन्तर केवल इतना ही कि वहा प्रति समय एक-एक बालखड को निकाला जाता है यहा प्रति सौ वर्ष मे एक-एक बालखड को निकाला जाता है।

बादर क्षेत्रपल्योपम—

बादरउद्धारपल्योपम मे वर्णित पल्य के समान एक पल्य है। उसे शिर-मुडन के बाद एक दिन से लेकर सात दिन तक के उगे हुए बालाग्रो के असख्यातवे भाग से भरा जाए।

बालाग्र का असख्यातवा भाग पनक (फफूदी) जीव के शरीर से असख्यात गुने स्थान का अवगाहन करता है। प्रति समय बाल-खण्डो से स्पृष्ट एक-एक आकाश प्रदेश का उद्धार किया जाए। जितने समय मे पल्य के सारे स्पृष्ट-प्रदेशो का उद्धार होता है, उस समय को बादरक्षेत्रपल्योपम कहा जाता है। बालाग्र-खण्ड सख्येय होते है इसलिए उनके उद्धार मे सख्येय वर्ष ही लगते है।

सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपम—

इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया बादरक्षेत्रपल्योपम के समान है। अन्तर केवल इतना ही कि वहा बालाग्र-खण्ड से स्पृष्ट आकाश के प्रदेशो का उद्धार किया जाता है, लेकिन यहा बालाग्र-खण्ड से स्पृष्ट और अस्पृष्ट दोनों आकाश-प्रदेशो का उद्धार किया जाता है। इस प्रक्रिया मे व्यावहारिक उद्धारपल्योपम काल से असख्यगुण काल लगता है।

प्रश्न आता है—पल्य को बालाग्र के खडो से ठूस कर भरा जाता है, फिर उसमे उनसे अस्पृष्ट आकाश-प्रदेश कैसे रह सकते है?

उत्तर—आकाश-प्रदेश अति सूक्ष्म होते है इसलिए वे बाल-खंडो से भी अस्पृष्ट रह जाते है। स्थूल उदाहरण से इस

तथ्य को समझा जा सकता है।

एक कोष्ठ कूष्माड से पूर्ण भरा हुआ है। स्थूल-दृष्टि मे वह भरा हुआ प्रतीत होता है परन्तु उसमें बहुत छिद्र रहते हैं। उन छिद्रों में बिजोरे समा सकते हैं। बिजोरो के छिद्रो मे बेल समा जाती है। बेल के छिद्रो मे सरसो के दाने समा जाते हैं। सरसों के दानों मे गंगा की मिट्टी समा सकती है। इस प्रकार भरे हुए कोष्ठक मे भी स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम छिद्र रह जाते है।

प्रश्न होता है—सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपम मे बालखण्डो से स्पृष्ट और अस्पृष्ट दोनो आकाश-प्रदेशो का ग्रहण किया गया है। बादरक्षेत्रपल्योपम में बालखण्डो से स्पृष्ट आकाश-प्रदेश का ही ग्रहण किया गया है। जब स्पृष्ट और अस्पृष्ट दोनो आकाश-प्रदेशों का ग्रहण किया गया है, तब केवल स्पृष्ट आकाश-प्रदेशों के ग्रहण का क्या प्रयोजन है ?

दृष्टिवाद मे द्रव्यो के मान का उल्लेख है। उसमे से कई द्रव्य बालाग्र से स्पृष्ट आकाश-प्रदेशो से मापे जाते हैं और कई द्रव्य बालाग्र से अस्पृष्ट आकाश-प्रदेशो से मापे जाते है। इसलिए इनकी भिन्न-भिन्न उपयोगिता है।

सागरोपम—

सागरोपम के तीन भेद हैं—उद्धारसागरोपम, अद्धासागरोपम और क्षेत्रसागरोपम। प्रत्येक के दो-दो भेद है—बादर (व्यावहारिक) और सूक्ष्म।

करोड × करोड × १० = १०००००००००००००००

१ पद्म (१०००००००००००००००) पल्योपम का एक सागरोपम होता है। सागरोपम के सारे भेदो की व्याख्या-पद्धति पल्योपम की भांति ही है।

१३२ (सू० ४०६)

इस सूत्र मे सूत्रकार ने एक मनोवैज्ञानिक रहस्य का उद्घाटन किया है। एक समस्या दीर्घकाल से उपस्थित होती रही है कि क्रोध का सम्बन्ध मनुष्य के अपने मस्तिष्क से ही है या बाह्य परिस्थितियो मे भी है। वर्तमान के वैज्ञानिक भी इस शोध मे लगे हुए हैं। उन्होंने मस्तिष्क के वे बिन्दु खोज निकाले है, जहा क्रोध का जन्म होता है। डॉक्टर जोम० एम० आर० डेलगाडो ने अपने परीक्षणो द्वारा दूर शान्त बैठे बन्दरो के विद्युत्-धारा से उन विशेष बिन्दुओं को छूकर लड़वा दिया। यह विद्युत्-धारा के द्वारा मस्तिष्क के विशेष बिन्दु की उत्तेजना मे उत्पन्न क्रोध है। इसी प्रकार अन्य बाह्य निमित्तो से भी मस्तिष्क का क्रोध बिन्दु उत्तेजित होता है और क्रोध उत्पन्न हो जाता है। यह पर-प्रतिष्ठित क्रोध है। आत्म-प्रतिष्ठित क्रोध अपने ही आन्तरिक निमित्तो से उत्पन्न होता है।

१३३ (सू० ४१०)

देखें २।१८१ का टिप्पण।

१३४ मरण (सू० ४११)

मरण के प्रकारो की जानकारी के लिए देखें—उत्तरज्झयणाणि, अध्ययन ५ का आमुख।

१३५ (सू० ४२२)

प्रस्तुत सूत्र मे मोह के दो प्रकार बतलाए गए है। तीसरे स्थान (३।१७८) मे इसके तीन प्रकार निर्दिष्ट है—

ज्ञानमोह, दर्शनमोह और चारित्रमोह। वृत्तिकार ने ज्ञानमोह का अर्थ ज्ञानावरण का उदय और दर्शनमोह का अर्थ सम्यग्दर्शन का मोहोदय किया है।[1] दोनो स्थलो में बोधि और बुद्ध के निरूपण के पश्चात् मोह और मूढ का निरूपण

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ६१

ज्ञान मोहयति—आच्छादयतीति ज्ञानमोहो—ज्ञानावरणोदय:, एव 'दसणमोहे चेव' सम्यग्दर्शनमोहोदय इति।

है। इससे प्रतीत होता है कि मोह बोधि का प्रतिपक्ष है। यहां मोह का अर्थ आवरण नही किन्तु दोष है। ज्ञानमोह होने पर मनुष्य का ज्ञान अयथार्थ हो जाता है। दृष्टिमोह होने पर उसका दर्शन भ्रान्त हो जाता है। चरित्रमोह होने पर आचार-मूढता उत्पन्न हो जाती है। चेतना मे मोह या मूढता उत्पन्न करने का कार्य ज्ञानावरण नही, किन्तु मोह कर्म करता है।

१३६ (सू० ४२८)

देखे २।२५६-२६१ का टिप्पण।

१३७ (सू० ४३१)

उत्तराध्ययन सूत्र[1] (३३।१५) मे अन्तराय कर्म के पाच प्रकार बतलाए गए हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय। प्रस्तुत सूत्र मे उसके दो प्रकार निर्दिष्ट है—

१. प्रत्युत्पन्न विनाशित—इसका कार्य है, वर्तमान लब्ध वस्तु को विनष्ट करना, उपहत करना।

२. पिधत्ते आगामि पथ—इसका कार्य है, भविष्य मे प्राप्त होने वाली वस्तु की प्राप्ति के मार्ग मे अवरोध उत्पन्न करना।

ये दोनो प्रकार अनन्तराय कर्म के व्यापक स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं, दानान्तराय आदि इसके उदाहरण मात्र हैं।

१३८ कैवलिकी आराधना (सू० ४३५)

कैवलिकी आराधना का अर्थ है—केवली द्वारा की जाने वाली आराधना। यहा केवली शब्द के द्वारा श्रुतकेवली, अवधिज्ञानी, मन पर्यवज्ञानी और केवलज्ञानी—इन चारों का ग्रहण किया गया है।[2]

श्रुतकेवली और केवली ये दो शब्द आगम-साहित्य में अनेक स्थानो मे प्रयुक्त है, परन्तु अवधिकेवली और मन पर्यव-केवली इनका प्रयोग विशेष नही मिलता। केवल स्थानाग मे एक जगह मिलता है।[3] स्थानाग के तीसरे स्थानक में तीन प्रकार के जिन बतलाए गए हैं—अवधिजिन, मन.पर्यवजिन और केवलीजिन। जिस प्रकार अवधिज्ञानी और मन.पर्यवज्ञानी को प्रत्यक्षज्ञानी होने के कारण जिन कहा गया है उसी प्रकार उन्हे प्रत्यक्षज्ञानी होने के कारण केवली कहा गया है।

१३९ (सू० ४३७)

कैवलिकी आराधना दो प्रकार की होती है—

१. अन्तक्रिया—(देखे टिप्पण ४।१)

२. कल्पविमानोपपत्तिका—ग्रैवेयक अनुत्तरविमान मे उत्पन्न होने योग्य ज्ञान आदि की आराधना। यह श्रुतकेवली आदि के ही होती है।[4]

१४०—सुभूम (सू० ४४८)

परशुराम के पिता को कार्त्तवीर्य ने मार डाला। इससे परशुराम का क्रोध तीव्र हो गया और उसने युद्ध मे कार्त्तवीर्य को मारकर उसका राज्य ले लिया। उस समय महारानी तारा गर्भवती थी। उसने वहा से पलायन कर एक आश्रम मे शरण ली। एक दिन उसने पुत्र का प्रसव किया। उस बालक ने अपने दांतों से भूमि को काटा। इससे उसका नाम सुभूम रखा।

अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए परशुराम ने सात बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय बना डाला। जिन राजाओ

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र, ३३।१५

दाणे लाभे य भोगे य, उवभोगे वीरिए तहा।
पचविहमन्तराय, समासेण वियाहियं॥

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ६३

केवलिनां—श्रुतावधिमन पर्यायकेवलज्ञानिनामिय कैव-लिकी सा चासावाराधना चेति कैवलिक्याराधनेति।

३. स्थानाग सूत्र ३।५१३।

४. स्थानागवृत्ति, पत्र ६३

कल्पाश्च—सौधर्मादयो विमानानि च—तदुपरिवर्त्ति-ग्रैवेयकादीनि कल्पविमानानि तेषूपपत्ति—उपपातो जन्म यस्याः सकाशात् सा कल्पविमानोपपत्तिका ज्ञानाद्याराधना, एषा च श्रुतकेवल्यादीना भवति।

को वह मार डालता, उनकी दाढाओ को एकत्रित कर रखता था। इस प्रकार दाढाओ के ढेर लग गए।

सुभूम उसी आश्रम में बढने लगा। मेघनाद विद्याधर ने उससे मित्रता कर ली। जब विद्याधर ने यह जाना कि सुभूम भविष्य मे चक्रवर्ती होगा, तब उसने अपनी पुत्री पद्मश्री का विवाह उससे करना चाहा। इस निमित्त से वह वही रहने लगा।

एक बार परशुराम ने नैमित्तिक से पूछा—मेरा विनाश किससे होगा ? नैमित्तिक ने कहा—'जो व्यक्ति इस सिंहासन पर बैठेगा और थाल मे रखी हुई इन दाढाओ को खा लेगा वही तुमको मारने वाला होगा।'

परशुराम ने उस व्यक्ति की खोज के लिए एक उपाय ढूढ निकाला। उसने एक दानशाला खोल दी। वहा प्रत्येक आगतुक को भोजन दिया जाने लगा। उसके द्वार पर एक सिंहासन रखा और उस पर दाढाओ से भरा थाल रख दिया।

इस प्रकार कुछ काल बीता। एक बार सुभूम ने अपनी माता से पूछा—मा ! क्या ससार इतना ही है (इस आश्रम जितना ही है) ? या दूसरा भी है ? मा ने अपने पति की मृत्यु से लेकर घटित सारी घटनाए उसे एक-एक कर बता दी। सुभूम का अहभाव जाग उठा। वह उसी क्षण आश्रम से चला और हस्तिनागपुर मे आ पहुचा। उसने एक परिव्राजक का रूप बनाया और परशुराम की दानशाला मे दान लेने गया। वहा द्वार पर रखे हुए सिहासन पर जा बैठा। उसका स्पर्श पाते ही वे दाढाए पकवान के रूप मे परिणत हो गई। यह देख वहा के ब्राह्मणो ने उस पर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। विद्याधर मेघनाद के विद्या के बल से वे प्रहार उन्ही पर होने लगे।

सुभूम विश्वस्त होकर भोजन करने लगा। वहा के ब्राह्मणो ने परशुराम से जाकर सारी बात कही। परशुराम का क्रोध जाग उठा। वह सन्नद्ध होकर वहा आया। उसने विद्याबल से अपने पर्शु को सुभूम पर फेंका।

सुभूम ने भोजन का थाल अपने हाथ मे लिया। वह चक्र के रूप मे परिणत हो गया। उसने उस चक्र को परशुराम पर फेंका। परशुराम का सिर कटकर धड से अलग हो गया।

सुभूम का अभिमान और अधिक उत्तेजित हुआ और उसने इक्कीस बार भूमि को निःब्राह्मण बना डाला। मरकर वह नरक मे गया।

१४१—ब्रह्मदत्त (सू० ४४८)

कापिल्यपुर मे ब्रह्म नाम का राजा राज्य करता था। उसकी भार्या का नाम चुलनी और पुत्र का नाम ब्रह्मदत्त था। जब राजा की मृत्यु हुई तब ब्रह्मदत्त की अवस्था छोटी थी। अत राजा के मित्र कोशलदेश के नरेश दीर्घ ने राज्यभार सभाला और व्यवस्था मे सलग्न हो गया। रानी चुलनी के साथ उसका अवैध सम्बन्ध हो गया। यह बात कुमार ब्रह्मदत्त ने अपने मत्री धनु से जान ली। उसने प्रकारान्तर से यह बात अपनी मा चुलनी से कही। दीर्घ और चुलनी को इससे आघात पहुचा। उन्होने ब्रह्मदत्त को मारने का षड्यन्त्र रचा। किन्तु मन्त्री के पुत्र वरधनु की बुद्धि-कौशल से वह बच गया।

वाराणसी के राजा कटक से मिलकर ब्रह्मदत्त ने अनेक राजाओ को अपने पक्ष मे कर लिया। जब सारी शक्ति जुट गई तब एक दिन कापिल्यपुर पर चढाई कर दी। राजा दीर्घ के साथ घमासान युद्ध हुआ। दीर्घ युद्ध मे मारा गया। ब्रह्मदत्त वहाँ का राजा हो गया।

एक बार मधुकरी गीत नामक नाट्य-विधि को देखते-देखते उसे जातिस्मृतिज्ञान उत्पन्न हुआ। उसने पूर्वभव देखा और अपने महामात्य वरधनु से कहा—'आस्व दासौ मृगौ हसौ, मातगावमरौ तथा'—इस श्लोकार्द्ध का सर्वत्र प्रसार करो और यह घोषणा करो कि जो कोई इसकी पूर्ति करेगा उसे आधा राज्य दिया जाएगा।

कापिल्यपुर के बाहर मनोरम नामक कानन मे एक मुनि ध्यानस्थ खडे थे। वहा एक रहट चलाने वाला व्यक्ति घोषित श्लोकार्द्ध को बार-बार दुहराने लगा। मुनि ने कायोत्सर्ग सम्पन्न किया और ध्यानपूर्वक श्लोकार्द्ध को सुना। उन्हे सारी घटनाए स्मृत हो गई। उन्होने उस श्लोक की पूर्ति करते हुए कहा—

'एषा नो षष्ठिका जाति , अन्योन्याभ्या वियुक्तयोः।

रहट चलाने वाले ने ये दोनों चरण एक पत्ते पर लिख दिए और दौडा-दौडा वह राज्यसभा मे पहुचा। श्लोक का अवशिष्ट भाग सुनाया। सुनते ही राजा मूर्च्छित हो गया। सचेत होने पर वह कानन मे आया और अपने भाई को मुनि वेश मे देख गद्गद् हो गया।

मुनि ने राजा को ससार की अनित्यता और भोगो की क्षणभंगुरता का उपदेश दिया और उसे प्रव्रजित हो जाने के लिए कहा। राजा ब्रह्मदत्त ने कहा—'मुने ! आपका कथन यथार्थ है। भोग आसक्ति पैदा करते हैं, यह मैं जानता हू। किन्तु आर्य ! हमारे जैसे व्यक्तियो के लिए वे दुर्जेय हैं। मेरा कर्म बधन निकाचित है। पिछले भव मे मैं चक्रवर्ती सनत्कुमार की अपार ऋद्धि को देखकर भोगों मे आसक्त हो गया था। उस समय मैंने अशुभ निदान (भोग-सकल्प) कर डाला कि यदि मेरी तपस्या और संयम का फल है तो मैं अगले जन्म में चक्रवर्ती बनू। इसका मैंने प्रायश्चित्त नही किया। उसी का यह फल है कि मैं धर्म को जानता हुआ भी काम-भोगों मे मूर्च्छित हो रहा हू। जैसे दलदल मे फसा हुआ हाथी स्थल को देखता हुआ भी किनारे पर नही पहुच पाता, वैसे ही काम-गुणो मे फसे हुए हम श्रमण-धर्म को जानते हुए भी उसका अनुसरण नही कर सकते।' मुनि राजा के गाढ मोहावरण को जान मौन हो गए।

राजा ब्रह्मदत्त बारहवा चक्रवर्ती हुआ। उसने अनुत्तर काम-भोगो का सेवन किया और अन्त मे मरकर नरक में उत्पन्न हुआ।[1]

१४२ असुरेन्द्र वर्जित (सू० ४४६)

असुरेन्द्र चमर और बली के सामानिक देवो की आयु भी उन्ही के समान होती है, इसलिए चमर और बलि के साथ उनको भी वर्जित समझना चाहिए।

१४३ दो इन्द्र (सू० ४६०)

आनत और आरण तथा प्राणत और अच्युत—इन चारो देवलोको के दो इन्द्र हैं। इसलिए चारो कल्पो के देवो का दो इन्द्रों मे सग्रह किया है।

---

१ विस्तृत कथानक के लिए देखें—
उत्तरज्झयणाणि तेरहवे अध्ययन का आमुख।

तइयं ठाणं

तृतीय स्थान

आमुख

प्रस्तुत स्थान मे तीन की सख्या से संबद्ध विषय सकलित है। यह चार उद्देशकों मे विभक्त है। इसमे तात्त्विक विषयों के साथ-साथ साहित्यिक और मनोवैज्ञानिक विषयों की अनेक भिभगिया मिलती हैं। उनमे मनुष्य की शाश्वत मनोभूमिकाओं तथा वस्तु-सत्यो का बहुत मार्मिक ढग से उद्घाटन हुआ है। मनुष्य तीन प्रकार के होते है—सुमनस्क, दुर्मनस्क और तटस्थ। प्रत्येक मनुष्य बोलता है पर बोलने की प्रतिक्रिया सबमे समान नही होती। कुछ मनुष्य बोलने के पश्चात् मन मे सुख का अनुभव करते है, कुछ लोग दु ख का अनुभव करते है और कुछ लोग उक्त दोनों अनुभवो से मुक्त रहते है—तटस्थ रहते है।[1] इस प्रकार की मनोभूमिका प्रत्येक प्रवृत्ति के परिणामकाल मे पाई जाती है। इसी प्रकार कुछ लोग देकर मन मे सुख का अनुभव करते है, कुछ लोग दु ख का अनुभव करते है और कुछ लोग उक्त दोनों अनुभवो से मुक्त रहते है।[2]

कजूस व्यक्ति नही देकर सुख का अनुभव करते है। सस्कृत कवि माघ जैसे व्यक्ति नही देकर दु ख का अनुभव करते है। कुछ व्यक्ति उपेक्षाप्रधान स्वभाव के होते है, वे न देकर सुख-दु ख किसी का भी अनुभव नहीं करते।[3]

जो लोग सात्त्विक और हित-मित भोजन करते है, वे खाने के बाद सुख का अनुभव करते है। जो लोग अहितकर या मात्रा में अधिक खा लेते है, वे खाने के बाद दु ख का अनुभव करते हैं। साधक व्यक्ति खाने के बाद सुख-दुःख का अनुभव किए बिना तटस्थ रहते हैं।[4]

जिनके मन मे करुणा का स्रोत सूखा होता है, वे लोग युद्ध करने के बाद मन मे सुख का अनुभव करते है। इस मनोवृत्ति के सेनापतियों और राजाओं के उदाहरणों से इतिहास भरा पडा है।

जिनके मन मे करुणा का स्रोत प्रवाहित होता है, वे लोग युद्ध करने के बाद दु.ख का अनुभव करते है। सम्राट् अशोक का अन्त करण युद्ध के बीभत्स दृश्य से द्रवित हो गया था। कलिंग-विजय के बाद उनका करुणार्द्र मन कभी युद्ध-रत नहीं हुआ।

जो लोग युद्ध मे वेतन पाने के लिए सलग्न होते है, वे युद्ध के पश्चात् सुख या दु.ख का अनुभव नहीं करते।[5]

प्रस्तुत आलापक मे इस प्रकार की विभिन्न मनोवृत्तियो का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत स्थान मे कहीं-कहीं सवाद भी सकलित है।[6] कुछ सूत्र छेदसूत्र विषयक भी है। मुनि तीन पात्र रख सकता है।[7] वह तीन कारणों से वस्त्र धारण कर सकता है। दशवैकालिक में वस्त्र-धारणा के दो कारण निर्दिष्ट है—संयम और लज्जानिवारण।[8] उत्तराध्ययन मे वस्त्र-धारणा के तीन कारण निर्दिष्ट है—लोक-प्रतीति, सयम-यात्रा का निर्वाह और ग्रहण-स्वय मुनित्व की अनुभूति।[9] यहा तीन कारण ये निर्दिष्ट है—लज्जानिवारण, जुगुप्सानिवारण और परिषहनिवारण।[10]

---

१ ३।२२५

२ ३।२३७

३. ३।२४०

४. ३।२४३

५ ३।२६७

६. ३।३३६, ३३७

७. ३।३४६

८ दसवेआलिय ६।१९

ज पि वत्थ व पाय वा कबल पायपुछण।
त पि संजमलज्जट्ठा धारति परिहरति य ॥

९. उत्तरज्झयणाणि २३।३२

पच्चयत्थं च लोगस्स नाणाविहविगप्पणं।
जत्तत्थं गहणत्थं च लोगे लिंगप्पओयणं ॥

१०. ३।३४७

इनमे 'जुगुप्सा का निवारण' यह नया हेतु है। लज्जा स्वय की अनुभूति है। जुगुप्सा लोकानुभूति है। लोक नग्नता से घृणा करते थे। यह इससे ज्ञात है। भगवान् महावीर को नग्नता के कारण कई कठिनाइया झेलनी पडी। आचारांगचूर्णिकार ने यह स्पष्ट किया है।

प्रस्तुत स्थान मे कुछ प्राकृतिक विषयो का सकलन भी मिलता है, जो उस समय की धारणाओं का सूचक है, जैसे—अल्पवृष्टि और महावृष्टि के तीन-तीन कारणो का निर्देश।[1]

व्यवसाय के आलापक मे लौकिक, वैदिक और सामयिक तीनों व्यवसाय निरूपित है।[2] उसमे त्रिवर्ग [अर्थ, धर्म और काम] और अर्थयोनि [साम, दड और भेद] जैसे विषय उल्लिखित है। वैदिक व्यवसाय के लिए ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद—ये तीन ही उल्लिखित है। अथर्ववेद इन तीनों से उद्धृत है। मूलत वेद तीन ही हैं। इस प्रकार अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाए प्रस्तुत स्थान मे मिलती है। विषयों की विविधता के कारण इसे पढने मे रुचि और ज्ञान, दोनों परिपुष्ट होते है।

---

१ ३।३५६, ३६०

२ ३।३९५-४००

तइयं ठाणं : पढमो उद्देसो

मूल

इंद-पदं

१. तओ इंदा पण्णत्ता, तं जहा—
णामिंदे, ठवणिंदे, दव्विंदे।

२. तओ इंदा पण्णत्ता, तं जहा—
णाणिंदे, दंसणिंदे, चरित्तिंदे।

३. तओ इंदा पण्णत्ता, तं जहा—
देविंदे, असुरिंदे, मणुस्सिंदे।

विकुव्वणा-पदं

४. तिविहा विकुव्वणा पण्णत्ता, तं जहा—बाहिरए पोग्गलए परियादित्ता—एगा विकुव्वणा, बाहिरए पोग्गले अपरियादित्ता—एगा विकुव्वणा, बाहिरए पोग्गले परियादित्तावि अपरियादित्तावि—एगा विकुव्वणा।

५. तिविहा विकुव्वणा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भंतरए पोग्गले परियादित्ता—एगा विकुव्वणा, अब्भंतरए पोग्गले अपरियादित्ता—एगा विकुव्वणा, अब्भंतरए पोग्गले परियादित्तावि अपरियादित्तावि—एगा विकुव्वणा।

संस्कृत छाया

इन्द्र-पदम्

त्रय इन्द्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नामेन्द्रः, स्थापनेन्द्रः, द्रव्येन्द्रः।

त्रय इन्द्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ज्ञानेन्द्रः, दर्शनेन्द्रः, चरित्रेन्द्रः।

त्रय इन्द्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—देवेन्द्रः, असुरेन्द्रः, मनुष्येन्द्रः।

विकरण-पदम्

त्रिविधं विकरणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—बाह्यान् पुद्गलकान् पर्यादाय—एकं विकरणम्, बाह्यान् पुद्गलान् अपर्यादाय—एकं विकरणम्, बाह्यान् पुद्गलान् पर्यादायापि अपर्यादायापि—एकं विकरणम्।

त्रिविधं विकरणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आभ्यन्तरिकान् पुद्गलान् पर्यादाय—एकं विकरणम्, आभ्यन्तरिकान् पुद्गलान् अपर्यादाय—एकं विकरणम्, आभ्यन्तरिकान् पुद्गलान् पर्यादायापि अपर्यादायापि—एकं विकरणम्।

हिन्दी अनुवाद

इन्द्र-पद

१. इन्द्र तीन प्रकार के है—१. नामइन्द्र—केवल नाम से इन्द्र, २. स्थापनाइन्द्र—किसी वस्तु मे इन्द्र का आरोपण, ३. द्रव्यइन्द्र—भूत या भावी इन्द्र।

२. इन्द्र तीन प्रकार के है—
१. ज्ञानइन्द्र २. दर्शनइन्द्र ३. चरित्रइन्द्र।

३. इन्द्र तीन प्रकार के हैं—
१ देवइन्द्र २. असुरइन्द्र ३. मनुष्यइन्द्र।

विकरण-पद

४. विक्रिया[1] तीन प्रकार की होती है—
१. बाह्य पुद्गलो को ग्रहण कर की जाने वाली,
२ बाह्य पुद्गलो को ग्रहण किए बिना की जाने वाली,
३. बाह्य पुद्गलो के ग्रहण और अग्रहण दोनो के द्वारा की जाने वाली।

५. विक्रिया तीन प्रकार की होती है—
१. आन्तरिक पुद्गलों को ग्रहण कर की जाने वाली,
२. आन्तरिक पुद्गलो को ग्रहण किए बिना की जाने वाली,
३. आन्तरिक पुद्गलो के ग्रहण और अग्रहण दोनो के द्वारा की जाने वाली।

६. तिविहा विकुव्वणा पण्णत्ता, तं जहा—
बाहिरब्भंतरए पोग्गले परियादित्ता—एगा विकुव्वणा,
बाहिरब्भंतरए पोग्गले अपरियादित्ता—एगा विकुव्वणा,
बाहिरब्भंतरए पोग्गले परियादित्तावि अपरियादित्तावि—एगा विकुव्वणा।

त्रिविध विकरण प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
बाह्याभ्यन्तरिकान् पुद्गलान् पर्यादाय—एक विकरणम्, बाह्याभ्यन्तरिकान् पुद्गलान् अपर्यादाय—एक विकरणम्, बाह्याभ्यन्तरिकान् पुद्गलान् पर्यादायापि अपर्यादायापि—एक विकरणम्।

६. विक्रिया तीन प्रकार की होती है—
१. बाह्य और आन्तरिक दोनो प्रकार के पुद्गलो को ग्रहण कर की जाने वाली,
२. बाह्य और आन्तरिक दोनो प्रकार के पुद्गलो को ग्रहण किए बिना की जाने वाली,
३. बाह्य और आन्तरिक दोनो प्रकार के पुद्गलो के ग्रहण और अग्रहण के द्वारा की जाने वाली।

संचित-पदं

संचित-पदम्

संचित-पद

७. तिविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—
कतिसंचिता, अकतिसंचिता, अवत्तव्वगसंचिता।

८. एवमेगिंदियवज्जा जाव वेमाणिया।

त्रिविधा नैरयिका. प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कतिसंचिता, अकतिसंचिता, अवक्तव्यकसंचिता।

एवमेकेन्द्रियवर्जाः यावत् वैमानिका।

७. नैरयिक तीन प्रकार के हैं—
१. कतिसंचित—संख्यात,
२. अकतिसंचित—असंख्यात,
३. अवक्तव्यसंचित—एक।[1]

८. इसी प्रकार एकेन्द्रिय को छोड़कर[2] वैमानिक देवो तक के सभी दण्डकों के तीन-तीन प्रकार है।

परियारणा-पदं

परिचारणा-पदम्

परिचारणा-पद

९. तिविहा परियारणा पण्णत्ता, तं जहा—
१. एगे देवे अण्णे देवे, अण्णेसि देवाणं देवीओ अ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेति, अप्पणिज्जिआओ देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेति, अप्पाणमेव अप्पणा विउव्विय-विउव्विय परियारेति।

त्रिविधा परिचारणा पण्णत्ता, तद्यथा—
१. एको देव अन्यान् देवान्, अन्येषा देवाना देवीश्च अभियुज्य-अभियुज्य परिचारयति, आत्मीया देवीः अभियुज्य-अभियुज्य परिचारयति आत्मानमेव आत्मना विकृत्य-विकृत्य परिचारयति।

९. परिचारणा[3] तीन प्रकार की है—
१. कुछ देव अन्य देवो तथा अन्य देवो की देवियो का आश्लेष कर-कर परिचारणा करते हैं, कुछ देव अपनी देवियो का आश्लेष कर-कर परिचारणा करते है, कुछ देव अपने बनाये हुए विभिन्न रूपो से परिचारणा करते हैं।

२ एगे देवे णो अण्णे देवे, णो अण्णेसि देवाणं देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेति, अप्पणिज्जिआओ देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेइ,

२. एको देव नो अन्यान् देवान्, नो अन्येषा देवाना देवीः अभियुज्य-अभियुज्य परिचारयति, आत्मीया देवीः अभियुज्य-अभियुज्य परिचारयति, आत्मानमेव आत्मना विकृत्य-विकृत्य

२. कुछ देव अन्य देवो तथा अन्य देवो की देवियो का आश्लेष कर-कर परिचारणा नही करते, अपनी देवियो का आश्लेष कर-कर परिचारणा करते हैं, अपने बनाये हुए विभिन्न रूपों से परिचारणा

अप्पाणमेव अप्पणा विउव्विय-विउव्विय परियारेति।

परिचारयति।

करते हैं।

३. एगे देवे णो अण्णे देवे, णो अण्णेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेति, णो अप्पणिज्जिताओ देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेति, अप्पाणमेव अप्पाणं विउव्विय-विउव्विय परियारेति।

३. एको देवः नो अन्यान् देवान्, नो अन्येषां देवानां देवीः अभियुज्य-अभियुज्य परिचारयति, नो आत्मीया देवीः अभियुज्य-अभियुज्य परिचारयति, आत्मानमेव आत्मना विकृत्य-विकृत्य परिचारयति।

३. कुछ देव अन्य देवों तथा अन्य देवों की देवियों से आश्लेष कर-कर परिचारणा नही करते, अपनी देवियों का भी आश्लेष कर-कर परिचारणा नही करते, केवल अपने बनाये हुए विभिन्न रूपों से परिचारणा करते है।

मेहुण-पदं

१० **तिविहे मेहुणे पण्णत्ते, तं जहा— दिव्वे, माणुस्सए, तिरिक्खजोणिए।**

११. **तओ मेहुणं गच्छंति, तं जहा— देवा, मणुस्सा, तिरिक्खजोणिया।**

१२. **तओ मेहुणं सेवंति, तं जहा— इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।**

मैथुन-पदम्

त्रिविधं मैथुनं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— दिव्यं, मानुष्यकं, तिर्यग्योनिकम्।

त्रयो मैथुनं गच्छन्ति, तद्यथा— देवाः, मनुष्याः, तिर्यग्योनिकाः।

त्रयो मैथुनं सेवन्ते, तद्यथा— स्त्रियः, पुरुषाः, नपुंसकाः।

मैथुन-पद

१०. मैथुन तीन प्रकार का है— १. दिव्य, २. मानुष्य, ३. तिर्यक्योनिक।

११. तीन मैथुन को प्राप्त करते हैं— १. देव, २. मनुष्य, ३. तिर्यञ्च।

१२. तीन मैथुन को सेवन करते हैं— १. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।[५]

जोग-पदं

१३ **तिविहे जोगे पण्णत्ते, तं जहा— मणजोगे, वइजोगे, कायजोगे। एवं—णेरइयाणं विगलिंदियवज्जाणं जाव वेमाणियाणं।**

१४. **तिविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा— मणपओगे, वइपओगे, कायपओगे। जहा जोगो विगलिंदियवज्जाणं जाव तहा पओगोवि।**

योग-पदम्

त्रिविधो योगः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— मनोयोगः, वाग्योगः, काययोगः। एवम्—नैरयिकाणां विकलेन्द्रियवर्जानां यावत् वैमानिकानाम्।

त्रिविधः प्रयोगः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— मनःप्रयोगः, वाक्प्रयोगः, कायप्रयोगः। यथा योगो विकलेन्द्रियवर्जानां यावत् तथा प्रयोगोऽपि।

योग-पद

१३. योग[६] तीन प्रकार का है— १. मनोयोग, २. वचनयोग, ३. काययोग। विकलेन्द्रियों (एक, दो, तीन, चार इन्द्रियों वाले जीवों) को छोड़कर शेष सभी दण्डकों मे तीनों ही योग होते है।

१४. प्रयोग[७] तीन प्रकार का है— १. मन प्रयोग, २. वचनप्रयोग, ३. कायप्रयोग। विकलेन्द्रियों (एक, दो, तीन, चार इन्द्रियों वाले जीवों) को छोड़कर शेष सभी दण्डकों मे तीनों ही प्रयोग होते है।

करण-पदं

१५. **तिविहे करणे पण्णत्ते, तं जहा— मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे।**

करण-पदम्

त्रिविधं करणं प्रज्ञप्तम् तद्यथा— मनःकरणं, वाक्करणं, कायकरणम्।

करण-पद

१५. करण[८] तीन प्रकार का है— १. मन करण, २. वचनकरण, ३. कायकरण।

एवं—विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं ।

एवम्—विकलेन्द्रियवर्ज यावत् वैमानिकानाम् ।

विकलेन्द्रियों (एक, दो, तीन, चार इन्द्रियों वाले जीवों) को छोड़कर शेष सभी दण्डकों में तीनों ही करण होते हैं।

१६. तिविहे करणे पण्णत्ते, तं जहा—आरंभकरणे, संरंभकरणे, समारंभकरणे । णिरंतरं जाव वेमाणियाणं ।

त्रिविधं करणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आरम्भकरणं, संरम्भकरणं, समारम्भकरणम् । निरन्तरं यावत् वैमानिकानाम् ।

१६. करण तीन प्रकार का है—
१. आरंभ (वध) करण,
२. संरंभ (वध का संकल्प) करण,
३. समारंभ (परिताप) करण।
—ये सभी दण्डकों में होते हैं।[1]

आउय-पगरण-पदं

आयुष्क-प्रकरण-पदम्

आयुष्क-प्रकरण-पद

१७. तिहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
पाणे अतिवातित्ता भवति,
मुसं वइत्ता भवति,
तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असण-पाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता भवति—इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पगरेंति।

त्रिभिः स्थानैः जीवा अल्पायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
प्राणान् अतिपातयिता भवति,
मृषा वदिता भवति,
तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा अस्पर्शुकेन अनेषणीयेन अशनपानखादिमस्वादिमेन प्रतिलाभयिता भवति—इति एतैः त्रिभिः स्थानैः जीवा अल्पायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति ।

१७. तीन प्रकार से जीव अल्पआयुष्यकर्म का बन्धन करते हैं—
१. जीवहिंसा से,
२. मृषावाद से,
३. तथारूप श्रमण माहन को अस्पर्शुक तथा अनेषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य का प्रतिलाभ (दान) करने से।[10]
इन तीन प्रकारों से जीव अल्पआयुष्यकर्म का बन्धन करते हैं।

१८. तिहिं ठाणेहिं जीवा दीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
णो पाणे अतिवातित्ता भवइ,
णो मुसं वइत्ता भवइ,
तहारूवं समणं वा माहणं वा फासुएणं एसणिज्जेणं असण-पाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता भवइ—इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा दीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति।

त्रिभिः स्थानैः जीवा दीर्घायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
नो प्राणान् अतिपातयिता भवति,
नो मृषा वदिता भवति,
तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा स्पर्शुकेन एषणीयेन अशनपानखादिमस्वादिमेन प्रतिलाभयिता भवति—इति एतैः त्रिभिः स्थानैः जीवा दीर्घायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति ।

१८. तीन प्रकार से जीव दीर्घआयुष्यकर्म का बन्धन करते हैं—
१. जीव-हिंसा न करने से,
२. मृषावाद न बोलने से,
३. तथारूप श्रमण माहन को प्रासुक तथा एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य का प्रतिलाभ (दान) करने से।
इन तीन प्रकारों से जीव दीर्घआयुष्यकर्म का बन्धन करते हैं।

१९. तिहिं ठाणेहिं जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
पाणे अतिवातित्ता भवइ,
मुसं वइत्ता भवइ,
तहारूवं समणं वा माहणं वा

त्रिभिः स्थानैः जीवाः अशुभदीर्घायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
प्राणान् अतिपातयिता भवति,
मृषा वदिता भवति,
तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा हीलित्वा निन्दित्वा खिसयित्वा

१९. तीन प्रकार से जीव अशुभदीर्घआयुष्यकर्म का बंधन करते हैं—
१. जीव-हिंसा से,
२. मृषावाद से,
३. तथारूप श्रमण माहन की अवहेलना

हीलित्ता णिंदित्ता खिंसित्ता गरहित्ता अवमाणित्ता अण्णयरेणं अमणुण्णेणं अपीतिकारतेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता भवइ—इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति।

गर्हित्वा अवमान्य अन्यतरेण अमनोज्ञेन अप्रीतिकारकेण अशनपानखादिमस्वादिमेन प्रतिलाभयिता भवति—इतिएतैः त्रिभिः स्थानैः जीवा अशुभदीर्घायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति।

निन्दा, अवज्ञा, गर्हा और अपमान कर किसी अमनोज्ञ तथा अप्रीतिकर, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य का प्रतिलाभ (दान) करने से।
इन तीन प्रकारों से जीव अशुभदीर्घ-आयुष्यकर्म का बन्धन करते हैं।

२०. तिहिं ठाणेहिं जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
णो पाणे अतिवातित्ता भवइ,
णो मुसं वदित्ता भवइ,
तहारूवं समणं वा माहणं वा वंदित्ता णमंसित्ता सक्कारित्ता सम्माणित्ता कल्लाणं मंगलं देवतं चेतितं पज्जुवासेत्ता मणुण्णेणं पीतिकारएणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता भवइ—
इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा सुहदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति।

त्रिभिः स्थानैः जीवाः शुभदीर्घायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
नो प्राणान् अतिपातयिता भवति,
नो मृषा वदिता भवति,
तथारूप श्रमण वा माहन वा वन्दित्वा नमस्कृत्य सत्कृत्य सम्मान्य कल्याण मगल दैवत चैत्य पर्युपास्य मनोज्ञेन प्रीतिकारकेण अशनपानखादिमस्वादिमेन प्रतिलाभयिता भवति—इतिएतैः त्रिभि. स्थानै. जीवाः शुभदीर्घायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति।

२०. तीन प्रकार से जीव शुभदीर्घआयुष्यकर्म का बधन करते हैं—
१. जीव-हिंसा न करने से,
२. मृषावाद न बोलने से,
३. तथा रूप श्रमण माहन को वंदना, नमस्कार कर, उनका सत्कार, सम्मान कर, कल्याण कर, मंगल—देवरूप तथा चैत्यरूप की पर्युपासना कर, उन्हे मनोज्ञ तथा प्रीतिकर अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य का प्रतिलाभ (दान) करने से।
इन तीन प्रकारो से जीव शुभदीर्घआयुष्य-कर्म का बन्धन करते हैं।

गुत्ति-अगुत्ति-पदं

२१ तओ गुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—मणगुत्ती, वइगुत्ती, कायगुत्ती।

२२. संजयमणुस्साणं तओ गुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
मणगुत्ती, वइगुत्ती, कायगुत्ती।

२३ तओ अगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—मणअगुत्ती, वइअगुत्ती, कायअगुत्ती।
एवं—णेरइयाणं जाव थणियकुमाराण पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं असंजतमणुस्साणं वाणमंतराणं जोइसियाणं वेमाणियाणं।

गुप्ति-अगुप्ति-पदम्

तिस्रः गुप्तय प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मनोगुप्ति, वाग्गुप्तिः, कायगुप्ति.।

सयतमनुष्याणा तिस्रः गुप्तयः प्रज्ञप्ता., तद्यथा—मनोगुप्तिः, वाग्गुप्तिः, कायगुप्तिः।

तिस्रः अगुप्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मनोऽगुप्तिः, वागऽगुप्तिः, कायाऽगुप्तिः।
एवम्—नैरयिकाणां यावत् स्तनितकुमाराणां पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां असयतमनुष्याणा वानमन्तराणां ज्योतिष्काणा वैमानिकानाम्।

गुप्ति-अगुप्ति-पद

२१. गुप्ति'' तीन प्रकार की है—१. मनोगुप्ति, २. वचनगुप्ति, ३. कायगुप्ति।

२२. सयत मनुष्य के तीनो ही गुप्तिया होती हैं—१. मनोगुप्ति, २. वचनगुप्ति, ३. कायगुप्ति।

२३. अगुप्ति तीन प्रकार की है—
१. मनअगुप्ति, २. वचनअगुप्ति, ३. कायअगुप्ति।
नैरयिक, दस भवनपति, पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चयौनिक, असयत मनुष्य, वानमतर, ज्योतिषी तथा वैमानिक देवो मे तीनों ही अगुप्तियां होती हैं।

दंड-पदं

२४. तओ दंडा पण्णत्ता, तं जहा—
मणदंडे, वइदंडे, कायदंडे।

२५. णेरइयाणं तओ दंडा पण्णत्ता, तं जहा—मणदंडे, वइदंडे, कायदंडे। विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

दण्ड-पदम्

त्रयो दण्डाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मनोदण्डः, वाग्दण्डः, कायदण्डः।

नैरयिकाणां त्रयो दण्डाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मनोदण्डः, वाग्दण्डः, कायदण्डः।
विकलेन्द्रियवर्जं यावत् वैमानिकानाम्।

दण्ड-पद

२४. दण्ड तीन प्रकार का है—
१. मनोदंड, २. वचनदंड, ३. कायदंड।[१२]

२५. नैरयिकों में तीन दण्ड होते हैं—
१. मनोदण्ड, २. वचनदण्ड, ३. कायदण्ड।
विकलेन्द्रिय (एक, दो, तीन, चार इन्द्रिय वाले) जीवों को छोड़कर वैमानिक देवों तक के सभी दण्डकों में तीनों ही दण्ड होते हैं।

गरहा-पदं

२६. तिविहा गरहा पण्णत्ता, तं जहा—
मणसा वेगे गरहति,
वयसा वेगे गरहति,
कायसा वेगे गरहति—पावाणं कम्माणं अकरणयाए।
अहवा—गरहा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
दीहंपेगे अद्धं गरहति,
रहस्संपेगे अद्धं गरहति,
कायंपेगे पडिसाहरति—पावाणं कम्माणं अकरणयाए।

गर्हा-पदम्

त्रिविधा गर्हा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मनसा वा एकः गर्हते,
वचसा वा एकः गर्हते,
कायेन वा एकः गर्हते—पापानां कर्मणां अकरणतया।
अथवा—गर्हा त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
दीर्घमप्येकः अद्ध्वानं गर्हते,
ह्रस्वमप्येकः अद्ध्वानं गर्हते,
कायमप्येकः प्रतिसंहरति—पापानां कर्मणां अकरणतया।

गर्हा-पद

२६. गर्हा तीन प्रकार की है—
१. कुछ लोग मन से गर्हा करते हैं,
२. कुछ लोग वचन से गर्हा करते है,
३. कुछ लोग काया से गर्हा करते है, दुबारा पाप-कर्मों मे प्रवृत्ति नहीं करते।
अथवा गर्हा तीन प्रकार की है—
१. कुछ लोग दीर्घकाल तक पाप-कर्मों से गर्हा करते हैं, २. कुछ लोग अल्पकाल तक पाप-कर्मों से गर्हा करते हैं, ३. कुछ लोग काया को प्रति संहृत (संवृत) करते हैं, दुबारा पाप-कर्मों में प्रवृत्ति नही करते।[१३]

पच्चक्खाण-पदं

२७. तिविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणसा वेगे पच्चक्खाति,
वयसा वेगे पच्चक्खाति,
कायसा वेगे पच्चक्खाति—
°पावाणं कम्माणं अकरणयाए।
अहवा—पच्चक्खाणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
दीहंपेगे अद्धं पच्चक्खाति,
रहस्संपेगे अद्धं पच्चक्खाति,
कायंपेगे पडिसाहरति—पावाणं

प्रत्याख्यान-पदम्

त्रिविधं प्रत्याख्यानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
मनसा वैकः प्रत्याख्याति,
वचसा वैकः प्रत्याख्याति,
कायेन वैकः प्रत्याख्याति—
पापानां कर्मणां अकरणतया।
अथवा—प्रत्याख्यानं त्रिविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—दीर्घमप्येकः अद्ध्वानं प्रत्याख्याति,
ह्रस्वमप्येकः अद्ध्वानं प्रत्याख्याति,
कायमप्येकः प्रतिसंहरति—पापानां

प्रत्याख्यान-पद

२७. प्रत्याख्यान[१४] (त्याग) तीन प्रकार का है—
१. कुछ जीव मन से प्रत्याख्यान करते हैं,
२. कुछ जीव वचन से प्रत्याख्यान करते है,
३. कुछ जीव काया से प्रत्याख्यान करते है, दुबारा पाप-कर्मों में प्रवृत्ति नहीं करते।
अथवा प्रत्याख्यान तीन प्रकार का है—
१. कुछ जीव दीर्घकाल तक पाप-कर्मों का प्रत्याख्यान करते हैं, २. कुछ जीव अल्पकाल तक पाप-कर्मों का प्रत्याख्यान करते हैं, ३. कुछ जीव काया को प्रतिसंहृत

कम्माणं अकरणयाए।[10]

कर्मणां अकरणतया।

करते हैं, दुबारा पाप-कर्मों में प्रवृत्ति नहीं करते।

उपकार-पदं

२८. तओ रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—पत्तोवगे, पुप्फोवगे, फलोवगे। एवामेव तओ पुरिसजाता पण्णत्ता, तं जहा—पत्तोवारुक्खसमाणे, पुप्फोवारुक्खसमाणे, फलोवारुक्खसमाणे।

उपकार-पदम्

त्रयो रुक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पत्रोपगः, पुष्पोपगः, फलोपगः। एवमेव त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—पत्रोपगरुक्षसमानः, पुष्पोपगरुक्षसमानः, फलोपगरुक्षसमानः।

उपकार-पद

२८. वृक्ष तीन प्रकार के होते हैं—१. पत्रों वाले, २. पुष्पों वाले, ३. फलो वाले। इसी प्रकार पुरुष भी तीन प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष पत्रों वाले वृक्षों के समान होते है—अल्प उपकारी, २. कुछ पुरुष पुष्पो वाले वृक्षो के समान होते हैं—विशिष्ट उपकारी, ३. कुछ पुरुष फलो वाले वृक्षों के समान होते हैं—विशिष्टतर उपकारी।[15]

पुरिसजात-पदं

२९. तओ पुरिसज्जाया पण्णत्ता, तं जहा—णामपुरिसे, ठवणपुरिसे, दव्वपुरिसे।

३०. तओ पुरिसज्जाया पण्णत्ता, तं जहा—णाणपुरिसे, दंसणपुरिसे, चरित्तपुरिसे।

३१. तओ पुरिसज्जाया पण्णत्ता, तं जहा—वेदपुरिसे, चिंधपुरिसे, अभिलावपुरिसे।

३२. तिविहा पुरिसा पण्णत्ता, तं जहा—उत्तमपुरिसा, मज्झिमपुरिसा, जहण्णपुरिसा।

३३. उत्तमपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—धम्मपुरिसा, भोगपुरिसा, कम्मपुरिसा। धम्मपुरिसा अरहंता, भोगपुरिसा चक्कवट्टी, कम्मपुरिसा वासुदेवा।

३४. मज्झिमपुरिसा तिविहा पण्णत्ता,

पुरुषजात-पदम्

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—नामपुरुषः, स्थापनापुरुषः, द्रव्यपुरुषः।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—ज्ञानपुरुषः, दर्शनपुरुषः, चरित्रपुरुषः।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—वेदपुरुषः, चिन्हपुरुषः, अभिलापपुरुषः।

त्रिविधाः पुरुषाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—उत्तमपुरुषाः मध्यमपुरुषाः, जघन्यपुरुषाः।

उत्तमपुरुषाः त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—धर्मपुरुषाः, भोगपुरुषाः, कर्मपुरुषाः। धर्मपुरुषाः अर्हन्तः, भोगपुरुषाः चक्रवर्तिनः, कर्मपुरुषाः वासुदेवाः।

मध्यमपुरुषाः त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः,

पुरुषजात-पद

२९. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—१. नामपुरुष, २. स्थापनापुरुष, ३. द्रव्यपुरुष।[16]

३०. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—१. ज्ञानपुरुष, २. दर्शनपुरुष, ३. चरित्रपुरुष।[17]

३१. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—१. वेदपुरुष, २. चिह्नपुरुष, ३. अभिलापपुरुष।[18]

३२. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—१. उत्तमपुरुष, २. मध्यमपुरुष, ३. जघन्यपुरुष।[19]

३३. उत्तम-पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—१. धर्मपुरुष—अर्हंत, २. भोगपुरुष—चक्रवर्ती, ३. कर्मपुरुष—वासुदेव।[20]

३४. मध्यम-पुरुष तीन प्रकार के हैं—

तं जहा—उग्गा, भोगा, राइण्णा।

तद्यथा—उग्राः, भोजाः, राजन्याः।

१. उग्र—आरक्षक,
२. भोज—गुरुस्थानीय,
३. राजन्य—वयस्य।[१]

३५. जहण्णपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
दासा, भयगा, भाइल्लगा।

जघन्यपुरुषाः त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—दासाः, भृतकाः, भागिनः।

३५. जघन्य-पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. दास, २. भृतक—नौकर
३. भागीदार।[११]

मच्छ-पदं

३६. तिविहा मच्छा पण्णत्ता, तं जहा—अंडया, पोयया, संमुच्छिमा।

मत्स्य-पदम्

त्रिविधाः मत्स्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अण्डजाः, पोतजाः, सम्मूर्च्छिमाः।

मत्स्य-पद

३६. मत्स्य तीन प्रकार के होते हैं—
१. अंडज—अंडे से पैदा होने वाले,
२. पोतज—बिना आवरण के पैदा होने वाले—ह्वेल मछली आदि।
३. सम्मूर्च्छिम[११]—सहज संयोगों से पैदा होने वाले।

३७. अंडया मच्छा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।
३८. पोतया मच्छा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।

अण्डजाः मत्स्याः त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः, पुरुषाः, नपुंसकाः।
पोतजाः मत्स्याः त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः, पुरुषाः, नपुंसकाः।

३७. अंडज मत्स्य तीन प्रकार के होते हैं—
१ स्त्री, २, पुरुष, ३. नपुंसक।
३८. पोतज मत्स्य तीन प्रकार के होते है—
१ स्त्री, २ पुरुष, ३. नपुंसक।

पक्खि-पदं

३९. तिविहा पक्खी पण्णत्ता, तं जहा—अंडया, पोयया, संमुच्छिमा।
४०. अंडया पक्खी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।
४१. पोयया पक्खी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।

पक्षि-पदम्

त्रिविधाः पक्षिणः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अण्डजाः, पोतजाः, सम्मूर्छिमाः।
अण्डजाः पक्षिणः त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः, पुरुषाः, नपुंसकाः।
पोतजाः पक्षिणः त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः, पुरुषाः, नपुंसकाः।

पक्षि-पद

३९ पक्षी तीन प्रकार के होते है—
१. अंडज, २. पोतज, ३. सम्मूर्च्छिम।
४० अंडज पक्षी तीन प्रकार के होते हैं—
१. स्त्री, २ पुरुष, ३. नपुंसक।
४१ पोतज पक्षी तीन प्रकार के होते है—
१. स्त्री, २ पुरुष, ३. नपुंसक।

परिसप्प-पदं

४२. *तिविहा उरपरिसप्पा पण्णत्ता, तं जहा—
अंडया, पोयया, संमुच्छिमा।
४३. अंडया उरपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।

परिसर्प-पदम्

त्रिविधाः उरःपरिसर्पाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अण्डजाः, पोतजाः, सम्मूर्च्छिमाः।
अण्डजाः उरःपरिसर्पाः त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
स्त्रियः, पुरुषाः, नपुंसकाः।

परिसर्प-पद

४२. उरपरिसर्प[१४] तीन प्रकार के होते हैं—
१. अंडज, २. पोतज, ३. सम्मूर्च्छिम।
४३. अंडज उरपरिसर्प तीन प्रकार के होते हैं—
१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।

४४. पोयया उरपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।

पोतजा. उर:परिसर्पा: त्रिविधा: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
स्त्रिय:, पुरुषा:, नपुसका:।

४४. पोतज उरपरिसर्प तीन प्रकार के होते हैं—
१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुसक।

४५. तिविहा भुजपरिसप्पा पण्णत्ता, तं जहा—अंडया, पोयया, संमुच्छिमा।

त्रिविधा भुजपरिसर्पा. प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
अण्डजा:, पोतजा:, सम्मूर्च्छिमा:।

४५. भुजपरिसर्प[25] तीन प्रकार के होते हैं—
१. अडज, २. पोतज, ३. सम्मूच्छिम।

४६ अंडया भुजपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।

अण्डजा भुजपरिसर्पा: त्रिविधा: प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
स्त्रिय:, पुरुषा., नपुसका:।

४६. अंडज भुजपरिसर्प तीन प्रकार के होते हैं—
१. स्त्री, २. पुरुष, ६. नपुसक।

४७. पोयया भुजपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।°

पोतजा भुजपरिसर्पा. त्रिविधा प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
स्त्रिय, पुरुषा:, नपुसका.।

४७. पोतज भुजपरिसर्प तीन प्रकार के होते है—
१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुसक।

इत्थी-पदं

स्त्री-पदम्

स्त्री-पद

४८ तिविहाओ इत्थीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तिरिक्खजोणित्थीओ, मणुस्सित्थीओ, देवित्थीओ।

त्रिविधा: स्त्रिय प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
तिर्यग्योनिस्त्रिय:, मनुष्यस्त्रिय., देवस्त्रिय।

४८ स्त्रिया तीन प्रकार की होती है—
१ तिर्यक्योनिकस्त्री २. मनुष्यस्त्री, ३. देवस्त्री।

४९ तिरिक्खजोणीओ इत्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
जलचरीओ, थलचरीओ, खहचरीओ।

तिर्यग्योनिका: स्त्रिय: त्रिविधा: प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
जलचर्य, स्थलचर्य, खेचर्य:।

४९. तिर्यक्योनिकस्त्रिया तीन प्रकार की होती है—
१ जलचरी, २ स्थलचरी, ३. खेचरी।

५०. मणुस्सित्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
कम्मभूमियाओ, अकम्मभूमियाओ, अंतरदीविगाओ।

मनुष्यस्त्रिय: त्रिविधा: प्रज्ञप्ता., तद्यथा—कर्मभूमिजा:, अकर्मभूमिजा:, आन्तरद्वीपिका:।

५०. मनुष्यस्त्रिया तीन प्रकार की होती है—
१. कर्मभूमिजा, २. अकर्मभूमिजा, ३. अन्तर्द्वीपजा।[26]

पुरिस-पदं

पुरुष-पदम्

पुरुष-पद

५१. तिविहा पुरिसा पण्णत्ता, तं जहा—
तिरिक्खजोणियपुरिसा, मणुस्सपुरिसा, देवपुरिसा।

त्रिविधा: पुरुषा: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
तिर्यग्योनिकपुरुषा:, मनुष्यपुरुषा:, देवपुरुषा:।

५१ पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१ तिर्यक्योनिकपुरुष, २. मनुष्यपुरुष, ३. देवपुरुष।

५२. तिरिक्खजोणियपुरिसा तिविहा पण्णत्ता तं जहा—जलचरा, थलचरा, खहचरा।

तिर्यग्योनिकपुरुषा: त्रिविधा: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—जलचरा:, स्थलचरा:, खेचरा:।

५२. तिर्यक्योनिकपुरुष तीन प्रकार के होते है—१ जलचर, २. स्थलचर, ३. खेचर।

५३. मणुस्सपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—कम्मभूमिया, अकम्मभूमिया, अंतरदीवगा।

मनुष्यपुरुषाः त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कर्मभूमिजाः, अकर्मभूमिजाः, आन्तरद्वीपकाः।

५३. मनुष्यपुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कर्मभूमिज, २. अकर्मभूमिज,
३. अन्तर्द्वीपज।

णपुंसग-पदं

नपुंसक-पदम्

नपुंसक-पद

५४. तिविहा णपुंसगा पण्णत्ता, तं जहा—णेरइयणपुंसगा, तिरिक्खजोणियणपुंसगा, मणुस्सणपुंसगा।

त्रिविधाः नपुंसकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नैरयिकनपुंसकाः, तिर्यग्योनिकनपुंसकाः, मनुष्यनपुंसकाः।

५४. नपुंसक तीन प्रकार के होते हैं—
१. नैरयिकनपुंसक, २. तिर्यक्योनिक-नपुंसक, ३. मनुष्यनपुंसक।

५५. तिरिक्खजोणियणपुंसगा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
जलयरा, थलयरा, खहयरा।

तिर्यग्योनिकनपुंसकाः त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
जलचराः, स्थलचराः, खेचराः।

५५. तिर्यक्योनिक नपुंसक तीन प्रकार के होते हैं—
१. जलचर, २. स्थलचर, ३. खेचर।

५६. मणुस्सणपुंसगा तिविधा पण्णत्ता, तं जहा—कम्मभूमिगा, अकम्मभूमिगा, अंतरदीवगा।

मनुष्यनपुंसकाः त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कर्मभूमिजाः, अकर्मभूमिजाः, आन्तरद्वीपकाः।

५६. मनुष्यनपुंसक तीन प्रकार के होते हैं—
१. कर्मभूमिज, २. अकर्मभूमिज,
३. अन्तर्द्वीपज।

तिरिक्खजोणिय-पदं

तिर्यग्योनिक-पदम्

तिर्यग्योनिक-पद

५७. तिविहा तिरिक्खजोणिया पण्णत्ता, तं जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।

त्रिविधाः तिर्यग्योनिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः, पुरुषाः, नपुंसकाः।

५७. तिर्यक्योनिक जीव तीन प्रकार के होते हैं—१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।

लेसा-पदं

लेश्या-पदम्

लेश्या-पद

५८. णेरइयाणं तओ लेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा।

नैरयिकाणां तिस्रः लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या।

५८. नैरयिकों मे तीन लेश्याएं होती हैं—
१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या,
३. कापोतलेश्या।

५९. असुरकुमाराणं तओ लेसाओ संकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा।

असुरकुमाराणां तिस्रः लेश्याः संक्लिष्टाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या।

५९. असुरकुमार[१४] के तीन लेश्याएं संक्लिष्ट होती है—१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या।

६०. एवं—जाव थणियकुमाराणं।

एवम्—यावत् स्तनितकुमाराणाम्।

६०. इसी प्रकार स्तनितकुमार तक के सभी भवनपति देवों के तीन लेश्याएं संक्लिष्ट होती हैं।

६१. एवं—पुढविकाइयाणं आउ-वणस्सतिकाइयाणवि।

एवम्—पृथिवीकायिकानां अब्-वनस्पति-कायिकानामपि।

६१. इसी प्रकार पृथ्वीकायिक[१६], अप्कायिक, वनस्पतिकायिक जीवों के भी तीन लेश्याएं संक्लिष्ट होती हैं—
१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या,
३. कापोतलेश्या।

६२. तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं बेंदियाणं तेंदियाणं चउरिंदिआणवि तओ लेस्सा, जहा णेरइयाणं।

तेजस्कायिकानां वायुकायिकानां द्वीन्द्रियाणां त्रीन्द्रियाणां चतुरिन्द्रियाणामपि तिस्रः लेश्याः, यथा नैरयिकाणाम्।

६२. तेजस्कायिक[11], वायुकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में तीन लेश्याएं होती हैं—१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या।

६३. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तओ लेसाओ संकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा।

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां तिस्रः लेश्याः सक्लिष्टाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या।

६३. पंचेन्द्रियतिर्यक्योनिक जीवों के तीन लेश्याएं सक्लिष्ट होती हैं—
१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या,
३. कापोतलेश्या।

६४. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तओ लेसाओ असंकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा।

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां तिस्रः लेश्याः असक्लिष्टाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

६४. पचेन्द्रियतिर्यक्योनिक जीवों के तीन लेश्याएं असंक्लिष्ट होती हैं—
१. तेजोलेश्या, २. पद्मलेश्या,
३. शुक्ललेश्या।

६५. °मणुस्साणं तओ लेसाओ संकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा।

मनुष्याणां तिस्रः लेश्याः सक्लिष्टाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कृष्णलश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या।

६५. मनुष्यों के तीन लेश्याए संक्लिष्ट होती हैं—१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या,
३. कापोतलेश्या।

६६. मणुस्साणं तओ लेसाओ असंकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा।°

मनुष्याणां तिस्रः लेश्याः असक्लिष्टाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

६६. मनुष्यों के तीन लेश्याए असंक्लिष्ट होती हैं—१. तेजोलेश्या, २. पद्मलेश्या,
३ शुक्ललेश्या।

६७. वाणमंतराणं जहा असुरकुमाराणं।

वानमन्तराणा यथा असुरकुमाराणाम्।

६७. वानमतरो के तीन लेश्याएं सक्लिष्ट होती हैं—१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, कापोतलेश्या।

६८. वेमाणियाणं तओ लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा।

वैमानिकाना तिस्रः लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

६८. वैमानिक देवों के तीन लेश्याएं होती हैं—
१. तेजोलेश्या, २. पद्मलेश्या,
३. शुक्ललेश्या।

ताराख्व-चलण-पदं

तारारूप-चलन-पदम्

तारारूप-चलन-पद

६९. तिहिं ठाणेहिं ताराख्वे चलेज्जा, तं जहा—विकुव्वमाणे वा,
परियारेमाणे वा,
ठाणाओ वा ठाणं संकममाणे—
ताराख्वे चलेज्जा।

त्रिभिः स्थानैः तारारूप चलेत, तद्यथा—विकुर्वाणं वा, परिचारयमाण वा, स्थानाद् वा स्थानं संक्रमत्—तारारूपं चलेत्।

६९. तीन कारणो से तारा चलित होते हैं—
१. वैक्रिय रूप करते हुए, २. परिचारणा करते हुए, ३. एक स्थान से दूसरे स्थान मे संक्रमण करते हुए।

देवविकिरिया-पदं

७०. तिहिं ठाणेहिं देवे विज्जुयारं करेज्जा, तं जहा—विकुव्वमाणे वा, परियारेमाणे वा, तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा इड्ढि जुतिं जसं बलं वीरियं पुरिसक्कारपरक्कमं उवदंसेमाणे—देवे विज्जुयारं करेज्जा।

७१. तिहिं ठाणेहिं देवे थणियसद्दं करेज्जा, तं जहा—विकुव्वमाणे वा, °परियारेमाणे वा, तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा इड्ढि जुतिं जसं बलं वीरियं पुरिसक्कारपरक्कमं उवदंसेमाणे—देवे थणियसद्दं करेज्जा।°

देवविक्रिया-पदम्

त्रिभिः स्थानैः देवः विद्युत्कार कुर्यात्, तद्यथा—विकुर्वाणे वा, परिचारयमाणे वा, तथारूपस्य श्रमणस्य वा महानस्य वा ऋद्धिं द्युति यशः बलं वीर्यं पुरुषकारपराक्रमं उपदर्शयमानः—देवः विद्युत्कारं कुर्यात्।

त्रिभिः स्थानैः देवः स्तनितशब्द कुर्यात्, तद्यथा—विकुर्वाणे वा, परिचारयमाणे वा, तथारूपस्य श्रमणस्य वा महानस्य वा ऋद्धिं द्युति यशः बल वीर्यं पुरुषकार-पराक्रम उपदर्शयमानः—देवः स्तनितशब्द कुर्यात्।

देवविक्रिया-पद

७०. तीन कारणों से देव विद्युत्कार (विद्युत्-प्रकाश) करते हैं—
१. वैक्रिय रूप करते हुए, २. परिचारणा करते हुए, ३. तथारूप श्रमण माहन के सामने अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम का उपदर्शन करते हुए।

७१. तीन कारणो से देव गर्जारव करते हैं—
१. वैक्रिय रूप करते हुए, २. परिचारणा करते हुए, ३. तथारूप श्रमण माहन के सामने अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम का उपदर्शन करते हुए।

अंधयार-उज्जोयाइ-पदं

७२. तिहिं ठाणेहिं लोगंधयारे सिया, तं जहा—
अरहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं,
अरहंतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे,
पुव्वगते वोच्छिज्जमाणे।

७३. तिहिं ठाणेहिं लोगुज्जोते सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

७४. तिहिं ठाणेहिं देवंधकारे सिया, तं जहा—अरहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं, अरहंतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगते वोच्छिज्जमाणे।

अन्धकार-उद्योतादि-पदम्

त्रिभिः स्थानैः लोकान्धकारं स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु व्यवच्छिद्यमानेषु, अर्हत्प्रज्ञप्ते धर्मे व्यवच्छिद्यमाने, पूर्वगते व्यवच्छिद्यमाने।

त्रिभिः स्थानैः लोकोद्योतः स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पाद-महिमसु।

त्रिभिः स्थानैः देवान्धकार स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु व्यच्छिद्यमानेषु, अर्हत्प्रज्ञप्ते धर्मे व्यवच्छिद्यमाने, पूर्वगते व्यवच्छिद्यमाने।

अन्धकार-उद्योतआदि-पद

७२. तीन कारणो से मनुष्यलोक मे अधकार होता है—
१. अर्हन्तो के व्युच्छिन्न (मुक्त) होने पर,
२. अर्हत्प्रज्ञप्त धर्म के व्युच्छिन्न होने पर,
३. पूर्वगत (चतुर्दश पूर्वों) के व्युच्छिन्न होने पर।

७३. तीन कारणो से मनुष्यलोक में उद्योत होता है—१. अर्हन्तो का जन्म होने पर, २. अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर।

७४. तीन कारणों से देवलोक मे अधकार होता है—१. अर्हन्तो के व्युच्छिन्न होने पर, २. अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म के व्युच्छिन्न होने पर, ३. पूर्वगत का विच्छेद होने पर।

७५. तिहिं ठाणेहिं देवुज्जोते सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

त्रिभिः स्थानैः देवोद्योतः स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

७५. तीन कारणों से देवलोक मे उद्योत होता है—१. अर्हन्तो का जन्म होने पर, २. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तो को केवल-ज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में किए जाने वाले महोत्सव पर।

७६. तिहिं ठाणेहिं देवसण्णिवाए सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

त्रिभिः स्थानैः देवसन्निपातः स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

७६. तीन कारणो से देव-सन्निपात [मनुष्य-लोक मे आगमन] होता है—
१. अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में किए जाने वाले महोत्सव पर।

७७. °तिहिं ठाणेहिं देवुक्कलिया सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

त्रिभिः स्थानैः देवोत्कलिका स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

७७. तीन कारणो से देवोत्कलिका [देवताओ का समवाय] होता है—
१. अर्हन्तो का जन्म होने पर, २. अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य मे किए जाने वाले महोत्सव पर।

७८. तिहिं ठाणेहिं देवकहकहए सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।°

त्रिभिः स्थानैः देव 'कहकहक': स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

७८. तीन कारणो से देवकहकहा [कलकल ध्वनि] होता है—१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य मे किए जाने वाले महोत्सव पर।

७९. तिहिं ठाणेहिं देविंदा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

त्रिभिः स्थानैः देवेन्द्राः मानुषं लोकं अर्वाक् आगच्छन्ति, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

७९. तीन कारणो से देवेन्द्र तत्क्षण मनुष्य-लोक मे आते हैं—१. अर्हन्तो का जन्म होने पर, २. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य मे किए जाने वाले महोत्सव पर।

८०. एवं—सामाणिया, तायत्तीसगा, लोगपाला देवा, अग्गमहिसीओ देवीओ, परिसोववण्णगा देवा, अणियाहिवई देवा, आयरक्खा देवा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति,

एवम्—सामानिकाः, तावत्त्रिंशकाः, लोकपाला देवाः, अग्रमहिष्यो देव्यः, परिषदुपपन्नका देवाः, अनिकाधिपतयो देवाः, आत्मरक्षका देवा मानुषं लोकं अर्वाक् आगच्छन्ति, तद्यथा—

८०. इसी प्रकार सामानिक[10], तावत्त्रिंशक[11], लोकपाल देव, अग्रमहिषी देवियां, सभासद, सेनापति तथा आत्मरक्षक देव तीन कारणों से तत्क्षण मनुष्य-लोक मे आते हैं—१. अर्हन्तों का जन्म होने पर,

°तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।°

अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में किए जाने वाले महोत्सव पर।

८१. तिहिं ठाणेहिं देवा अब्भुट्ठिज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, °अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।°

त्रिभिः स्थानैः देवा अभ्युत्तिष्ठेयुः, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

८१. तीन कारणों से देव अपने सिंहासन से अभ्युत्थित होते हैं—१. अर्हन्तों का जन्म होने पर, २. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में किए जाने वाले महोत्सव पर।

८२ °तिहिं ठाणेहिं देवाणं आसणाइं चलेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

त्रिभिः स्थानैः देवानां आसनानि चलेयुः, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

८२. तीन कारणों से देवों के आसन चलित होते हैं—१. अर्हन्तों का जन्म होने पर, २ अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में किए जाने वाले महोत्सव पर।

८३ तिहिं ठाणेहिं देवा सीहणायं करेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

त्रिभिः स्थानैः देवाः सिंहनादं कुर्युः, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

८३. तीन कारणों से देव सिंहनाद करते हैं—१. अर्हन्तों का जन्म होने पर, २. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में किए जाने वाले महोत्सव पर।

८४ तिहिं ठाणेहिं देवा चेलुक्खेवं करेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।°

त्रिभिः स्थानैः देवाः चेलोत्क्षेपं कुर्युः, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

८४. तीन कारणों से देव चेलोत्क्षेप करते हैं—१ अर्हन्तों का जन्म होने पर, २. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में किए जाने वाले महोत्सव पर।

८५. तिहिं ठाणेहिं देवाणं चेइयरुक्खा चलेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं °जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।°

त्रिभिः स्थानैः देवानां चैत्यरुक्षाः चलेयुः तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

८५ तीन कारणों से देवताओं के चैत्यवृक्ष चलित होते हैं—१. अर्हन्तों का जन्म होने पर, २. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में किए जाने वाले महोत्सव पर।

८६. तिहिं ठाणेहिं लोगंतिया देवा माणुसं लोगं हव्वमागच्छेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

त्रिभि: स्थानै लोकान्तिका देवा: मानुष लोकं अर्वाक् आगच्छेयु:, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु।

८६. तीन कारणो से लोकान्तिक[११] देव तत्क्षण मनुष्यलोक में आते हैं—१. अर्हन्तो का जन्म होने पर, २. अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष्य मे किए जाने वाले महोत्सव पर।

दुप्पडियार-पदं

८७. तिण्हं दुप्पडियारं समणाउसो! तं जहा—अम्मापिउणो, भट्टिस्स, धम्मायरियस्स।

१. संपातोवि य णं केइ पुरिसे अम्मापियरं सयपागसहस्सपागेहिं तेल्लेहिं अब्भंगेत्ता, सुरभिणा गंधट्टएणं उव्वट्टित्ता, तिहिं उदगेहिं मज्जावेत्ता, सव्वालंकारविभूसियं करेत्ता, मणुण्णं थालीपागसुद्धं अट्ठारसवंजणाउलं भोयणं भोयावेत्ता जावज्जीवं पिट्ठिवडेंसियाए परिवहेज्जा, तेणावि तस्स अम्मापिउस्स दुप्पडियारं भवइ।

अहे णं से तं अम्मापियरं केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता पण्णवइत्ता परूवइत्ता ठावइत्ता भवति, तेणामेव तस्स अम्मापिउस्स सुप्पडियारं भवति समणाउसो!

२. केइ महच्चे दरिद्दं समुक्कसेज्जा। तए णं से दरिद्दे समुक्किट्ठे समाणे पच्छा पुरं च णं विउलभोगसमितिसमण्णागते यावि विहरेज्जा।

तए णं से महच्चे अण्णया कयाइ दरिद्दीहूए समाणे तस्स दरिद्दस्स

दुष्प्रतिकार-पदम्

त्रिविध दुष्प्रतिकार आयुष्मन्! श्रमण[१], तद्यथा—अम्बापितु:, भर्त्तु:, धर्माचार्यस्य।

(१) सप्रातरपि च कश्चित् पुरुष: अम्बापितरं शतपाकसहस्रपाकाभ्या तैलाभ्या अभ्यज्य, सुरभिना गन्धाट्टकेन उद्वर्त्त्य, त्रिभि: उदकै: मज्जयित्वा, सर्वालङ्कारविभूषितं कृत्वा, मनोज्ञ स्थालीपाकशुद्ध अष्टादशव्यञ्जनाकुल भोजन भोजयित्वा यावज्जीव पृष्ठ्यवतंसिकया परिवहेत्, तेनाऽपि तस्य अम्बापितु दुष्प्रतिकार भवति।

अथ स तं अम्बापितर केवलिप्रज्ञप्ते धर्मे आख्याय प्रज्ञाप्य प्ररूप्य स्थापयिता भवति, तेनैव तस्य अम्बापितु. सुप्रतिकार भवति आयुष्मन्! श्रमण!

(२) कश्चित् महार्चो दरिद्र समुत्कर्षयेत्। तत: स दरिद्र: समुत्कृष्ट. सन् पश्चात् पुरश्च विपुलभोगसमितिसमन्वागतश्चापि विहरेत्।

तत: स महार्च: अन्यदा कदापि दरिद्रीभूत: सन् तस्य दरिद्रस्य अन्तिके अर्वाक्

दुष्प्रतिकार-पद

८७. भगवान् ने कहा—आयुष्मान श्रमणो[१] तीन पद दुष्प्रतिकार हैं—उनसे ऊर्ऋण होना दु:शक्य है—१. मातापिता, २. भर्ता—पालन-पोषण करने वाला, ३. धर्माचार्य।

१ कोई पुत्र अपने माता-पिता का प्रात:-काल मे शतपाक[१२], सहस्रपाक[१३] तेलो से मर्दन कर, सुगन्धित चूर्ण से उबटन कर, गंधोदक, शीतोदक तथा उष्णोदक से स्नान करवा कर, सर्वालकारो से उन्हे विभूषित कर, अठारह प्रकार के स्थालीपाक[१४]-शुद्ध व्यञ्जनो से युक्त भोजन करवा कर, जीवन-पर्यन्त कावर [बहगी] मे उनका परिवहन करे तो भी वह उनके उपकारो से ऊर्ऋण नही हो सकता।

वह उनसे तभी ऊर्ऋण हो सकता है जबकि उन्हे समझा-बुझाकर, प्रबुद्ध कर, विस्तार से बताकर केवलीप्रज्ञप्त धर्म मे स्थापित करता है।

२. कोई अर्थपति किसी दरिद्र का धन आदि से समुत्कर्ष करता है। सयोगवश कुछ समय बाद या शीघ्र ही वह दरिद्र विपुल भोगसामग्री से युक्त हो जाता है और वह अर्थपति किसी समय दरिद्र होकर सहयोग की कामना से उसके पास आता है। उस समय वह भूतपूर्व दरिद्र

अंतिए हव्वमागच्छेज्जा।
तए णं से दरिद्दे तस्स भट्टिस्स सव्वस्समवि दलयमाणे तेणावि तस्स दुप्पडियारं भवति।
अहे णं से तं भट्टिं केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता पण्णवइत्ता परूवइत्ता ठावइत्ता भवति, तेणामेव तस्स भट्टिस्स सुप्पडियारं भवति [समणाउसो !?]।
३ केति तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा णिसम्म कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववण्णे।
तए णं से देवे तं धम्मायरियं दुब्भिक्खाओ वा देसाओ सुभिक्खं देसं साहरेज्जा, कंताराओ वा णिक्कंतारं करेज्जा, दीहकालिएणं वा रोगातंकेणं अभिभूतं समाणं विमोएज्जा, तेणावि तस्स धम्मायरियस्स दुप्पडियारं भवति।
अहे णं से तं धम्मायरियं केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भट्ठं समाणं भुज्जोवि केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता °पण्णवइत्ता परूवइत्ता° ठावइत्ता भवति, तेणामेव तस्स धम्मायरियस्स सुप्पडियारं भवति [समणाउसो !?]।

आगच्छेत्।
तत सः दरिद्रः तस्मै भर्त्रे सर्वस्वमपि ददत् तेनापि तस्य दुष्प्रतिकारं भवति।
अथ स तं भर्तारं केवलिप्रज्ञप्ते धर्मे आख्याय प्रज्ञाप्य प्ररूप्य स्थापयिता भवति, तेनैव तस्य भर्तुः सुप्रतिकारं भवति [आयुष्मान् ! श्रमण !?]।
३ कश्चित् तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा अन्तिके एकमपि आर्यं धार्मिकं सुवचनं श्रुत्वा निशम्य कालमासे कालं कृत्वा अन्यतरेषु देवलोकेषु देवतया उपपन्नः।
ततः स देवः तं धर्माचार्यं दुर्भिक्षात् वा देशात् सुभिक्षं देशं संहरेत्, कान्तारात् वा निष्कान्तारं कुर्यात्, दीर्घकालिकेन वा रोगातङ्केन अभिभूतं सन्तं विमोचयेत् तेनापि तस्य धर्माचार्यस्य दुष्प्रतिकारं भवति।
अथ स तं धर्माचार्यं केवलिप्रज्ञप्तात् धर्मात् भ्रष्टं सन्तं भूयोपि केवलिप्रज्ञप्ते धर्मे आख्याय प्रज्ञाप्य प्ररूप्य स्थापयिता भवति, तेनैव तस्य धर्माचार्यस्य सुप्रतिकारं भवति [आयुष्मन् ! श्रमण !?]।

अपने स्वामी को सब कुछ अर्पण करके भी उसके उपकारों से ऊऋण नहीं हो सकता।
वह उससे तभी ऊऋण हो सकता है जबकि उसे समझा-बुझाकर, प्रबुद्ध कर, विस्तार से बताकर केवलीप्रज्ञप्त धर्म में स्थापित करता है।
३ कोई व्यक्ति तथारूप श्रमण-माहन के पास एक भी आर्य तथा धार्मिक वचन सुनकर, अवधारण कर, मृत्युकाल में मरकर, किसी देवलोक में देवरूप में उत्पन्न होता है। किसी समय वह धर्माचार्य को अकाल-ग्रस्त देश से सुभिक्ष देश में संहृत कर देता है, जंगल से बस्ती में ले आता है या लम्बी बीमारी तथा आतंक [सद्योघाती रोग] से अभिभूत बने हुए को विमुक्त कर देता है, तो भी वह धर्माचार्य के उपकार से ऊऋण नहीं हो सकता।
वह उससे तभी ऊऋण हो सकता है जबकि कदाचित् उसके केवलीप्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट हो जाने पर उसे समझा-बुझाकर, प्रबुद्ध कर, विस्तार से बताकर पुनः केवलीप्रज्ञप्त धर्म में स्थापित कर देता है।

संसार-वीईवयण-पदं

८८ तिहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं

संसार-व्यतिव्रजन-पदम्

त्रिभिः स्थानैः सम्पन्नः अनगारः अनादिकं अनवदग्रं दीर्घाद्ध्वानं

संसार-व्यतिव्रजन-पद

८८. तीन स्थानों से सम्पन्न अनगार अनादि अनंत अतिविस्तीर्ण चातुर्गतिक संसार-

चाउरंतं संसारकंतारं वीईवएज्जा, तं जहा—अणिदाणयाए, दिट्ठिसंपण्णयाए, जोगवाहियाए।

चातुरन्त संसारकान्तार व्यतिव्रजेत् तद्यथा—अनिदानतया, दृष्टिसम्पन्नतया, योगवाहितया।

कांतार से पार हो जाता है—
१. अनिदानता—भोग-प्राप्ति के लिए सकल्प नही करने से, २. दृष्टिसम्पन्नता—सम्यग्दृष्टि से, ३. योगवाहिता[११]—योग का वहन करने या समाधिस्थ रहने से।

कालचक्क-पदं

कालचक्र-पदम्

कालचक्र-पद

८९ तिविहा ओसप्पिणी पण्णत्ता, तं जहा—
उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा।

त्रिविधा अवसर्पिणी प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उत्कर्षा, मध्यमा, जघन्या।

८९. अवसर्पिणी तीन प्रकार की होती है—
१. उत्कृष्ट, २. मध्यम, ३. जघन्य।

९० °तिविहा सुसम-सुसमा—
तिविहा सुसमा—
तिविहा सुसम-दूसमा—
तिविहा दूसम-सुसमा—
तिविहा दूसमा—
तिविहा दूसम-दूसमा पण्णत्ता, तं जहा—
उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा।°

त्रिविधा सुषम-सुषमा—
त्रिविधा सुषमा—
त्रिविधा सुषम-दुष्षमा—
त्रिविधा दुष्षम-सुषमा—
त्रिविधा दुष्षमा—
त्रिविधा दुष्षम-दुष्षमा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उत्कर्षा, मध्यमा, जघन्या।

९० सुषमसुषमा तीन प्रकार की होती है—
सुषमा तीन प्रकार की होती है—
सुषमदुष्षमा तीन प्रकार की होती है—
दुष्षमसुषमा तीन प्रकार की होती है—
दुष्षमा तीन प्रकार की होती है—
दुष्षमदुष्षमा तीन प्रकार की होती है—
१ उत्कृष्ट, २ मध्यम, ३. जघन्य।

९१ तिविहा उस्सप्पिणी पण्णत्ता, तं जहा—
उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा।

त्रिविधा उत्सर्पिणी प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उत्कर्षा, मध्यमा, जघन्या।

९१. उत्सर्पिणी तीन प्रकार की होती है—
१ उत्कृष्ट, २. मध्यम, ३. जघन्य।

९२ °तिविहा दुस्सम-दुस्समा—
तिविहा दुस्समा—
तिविहा दुस्सम-सुसमा—
तिविहा सुसम-दुस्समा—
तिविहा सुसमा—
तिविहा सुसम-सुसमा पण्णत्ता, तं जहा—
उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा।°

त्रिविधा दुष्षम-दुष्षमा—
त्रिविधा दुष्षमा—
त्रिविधा दुष्षम-सुषमा—
त्रिविधा सुषम-दुष्षमा—
त्रिविधा सुषमा—
त्रिविधा सुषम-सुषमा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उत्कर्षा, मध्यमा, जघन्या।

९२ दुष्षमदुष्षमा तीन प्रकार की होती है—
दुष्षमा तीन प्रकार की होती है—
दुष्षमसुषमा तीन प्रकार की होती है—
सुषमदुष्षमा तीन प्रकार की होती है—
सुषमा तीन प्रकार की होती है—
सुषमसुषमा तीन प्रकार की होती है—
१. उत्कृष्ट, २. मध्यम, ३ जघन्य।

अच्छिण्ण-पोग्गल-चलण-पदं

अच्छिन्न-पुद्गल-चलन-पदम्

अच्छिन्न-पुद्गल-चलन-पद

९३. तिहिं ठाणेहिं अच्छिण्णे पोग्गले चलेज्जा, तं जहा—
आहारिज्जमाणे वा पोग्गले

त्रिभि स्थानैः अच्छिन्नः पुद्गलः चलेत्, तद्यथा—आह्रियमाणो वा पुद्गलः चलेत्, विक्रियमाणो वा पुद्गलः चलेत्,

९३. अच्छिन्न पुद्गल [स्कंध संलग्न पुद्गल] तीन कारणों से चलित होता है—
१. जीवों द्वारा आकृष्ट होने पर चलित

चलेज्जा, विकुव्वमाणे वा पोग्गले चलेज्जा, ठाणाओ वा ठाणं संकामिज्जमाणे पोग्गले चलेज्जा।

स्थानात् वा स्थानं सङ्क्रम्यमाण: पुद्गल: चलेत्।

होता है, २. विक्रियमाण होने पर चलित होता है, ३. एक स्थान से दूसरे स्थान पर संक्रमित किए जाने पर चलित होता है।

उवधि-पदं

९४. **तिविहे उवधी पण्णत्ते, तं जहा— कम्मोवही, सरीरोवही, बाहिरभंडमत्तोवही। एवं—असुरकुमाराणं भाणियव्वं। एवं—एगिंदियणेरइयवज्जं जाव वेमाणियाणं। अहवा—तिविहे उवधी पण्णत्ते, तं जहा—सचित्ते, अचित्ते, मीसए। एवं—णेरइयाणं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।**

उपधि-पदम्

त्रिविध उपधि: प्रज्ञप्त:, तद्यथा— कर्मोपधि:, शरीरोपधि:, बाह्यभाण्डामत्रोपधि:। एवम्—असुरकुमाराणां भणितव्यम्। एवम्—एकेन्द्रियनैरयिकवर्जं यावत् वैमानिकानाम्। अथवा—त्रिविध उपधि: प्रज्ञप्त:, तद्यथा—सचित्त:, अचित्त:, मिश्रक:। एवम्—नैरयिकाणां निरन्तरं यावत् वैमानिकानाम्।

उपधि-पद

९४. उपधि तीन प्रकार की होती है— १. कर्मउपधि, २. शरीरउपधि, ३. वस्त्र-पात्र आदि बाह्य उपधि। एकेन्द्रिय तथा नैरयिकों को छोड़कर सभी दण्डकों के तीन प्रकार की उपधि होती है। अथवा—उपधि तीन प्रकार की होती है—१. सचित्त, २. अचित्त, ३. मिश्र। सभी दण्डकों के तीन प्रकार की उपधि होती है।

परिग्गह-पदं

९५. **तिविहे परिग्गहे पण्णत्ते, तं जहा— कम्मपरिग्गहे, सरीरपरिग्गहे। बाहिरभंडमत्तपरिग्गहे। एवं—असुरकुमाराणं। एवं—एगिंदियणेरइयवज्जं जाव वेमाणियाणं। अहवा—तिविहे परिग्गहे पण्णत्ते, तं जहा—सचित्ते, अचित्ते, मीसए। एवं—णेरइयाणं निरंतरं जाव वेमाणियाणं।**

परिग्रह-पदम्

त्रिविध: परिग्रह: प्रज्ञप्त:, तद्यथा— कर्मपरिग्रह:, शरीरपरिग्रह:, बाह्यभाण्डामत्रपरिग्रह:। एवम्— असुरकुमाराणाम्। एवम्—एकेन्द्रियनैरयिकवर्जं यावत् वैमानिकानाम्। अथवा—त्रिविध: परिग्रह: प्रज्ञप्त:, तद्यथा—सचित्त:, अचित्त:, मिश्रक:। एवम्—नैरयिकाणां निरन्तरं यावत् वैमानिकानाम्।

परिग्रह-पद

९५. परिग्रह तीन प्रकार का होता है— १. कर्मपरिग्रह, २. शरीरपरिग्रह, ३. वस्त्र-पात्र आदि बाह्य परिग्रह। एकेन्द्रिय तथा नैरयिकों को छोड़कर सभी दण्डकों के तीन प्रकार का परिग्रह होता है। अथवा—परिग्रह तीन प्रकार का होता है—१. सचित्त, २. अचित्त, ३. मिश्र। सभी दण्डकों के तीन प्रकार का परिग्रह होता है।

पणिहाण-पदं

९६. **तिविहे पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा— मणपणिहाणे, वयपणिहाणे, कायपणिहाणे। एवं—पंचिंदियाणं जाव वेमाणियाणं।**

प्रणिधान-पदम्

त्रिविधं प्रणिधानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— मन:प्रणिधानं, वच:प्रणिधानं। कायप्रणिधानम्। एवम्—पञ्चेन्द्रियाणां यावत् वैमानिकानाम्।

प्रणिधान-पद

९६. प्रणिधान[10] तीन प्रकार का होता है— १. मनप्रणिधान, २. वचनप्रणिधान, ३. कायप्रणिधान। सभी पञ्चेन्द्रिय दण्डकों में तीनों प्रणिधान होते हैं।

९७. तिविहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणसुप्पणिहाणे, वयसुप्पणिहाणे, कायसुप्पणिहाणे।

त्रिविध सुप्रणिधानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मनःसुप्रणिधान, वचःसुप्रणिधान, कायसुप्रणिधानम्।

९७. सुप्रणिधान तीन प्रकार का होता है—१. मनसुप्रणिधान, २. वचनसुप्रणिधान, ३. कायसुप्रणिधान।

९८ संजयमणुस्साणं तिविहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणसुप्पणिहाणे, वयसुप्पणिहाणे, कायसुप्पणिहाणे।

सयतमनुष्याणां त्रिविध सुप्रणिधानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मनःसुप्रणिधानं, वचःसुप्रणिधान, कायसुप्रणिधानम्।

९८. सयत मनुष्यो के तीन सुप्रणिधान होते हैं—१. मनसुप्रणिधान, २. वचनसुप्रणिधान, ३. कायसुप्रणिधान।

९९ तिविहे दुप्पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे। एवं—पंचिंदियाणं जाव वेमाणियाणं।

त्रिविध दुष्प्रणिधान प्रज्ञप्तम् तद्यथा—मनोदुष्प्रणिधान, वचोदुष्प्रणिधान, कायदुष्प्रणिधानम्। एवम्—पञ्चेन्द्रियाणा यावत् वैमानिकानाम्।

९९. दुष्प्रणिधान तीन प्रकार का होता है—१. मनदुष्प्रणिधान, २. वचनदुष्प्रणिधान, ३. कायदुष्प्रणिधान। सभी पञ्चेन्द्रिय दण्डकों मे तीनो दुष्प्रणिधान होते है।

जोणि-पदं

योनि-पदम्

योनि-पद

१००. तिविहा जोणी पण्णत्ता, त जहा—सीता, उसिणा, सीओसिणा। एव—एगिंदियाण विगलिंदियाणं तेउकाइयवज्जाण समुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं समुच्छिममणुस्साण य।

त्रिविधा योनिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—शीता, उष्णा, शीतोष्णा। एवम्—एकेन्द्रियाणा विकलेन्द्रियाणा तेजस्कायिकवर्जाना सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां सम्मूर्च्छिममनुष्याणा च।

१०० योनि [उत्पत्ति स्थान] तीन प्रकार की होती है—१ शीत, २. उष्ण, ३. शीतोष्ण। तेजस्कायवर्जित एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, समूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च तथा समूर्च्छिममनुष्य के तीनों ही प्रकार की योनिया होती है।

१०१. तिविहा जोणी पण्णत्ता, तंजहा—सचित्ता, अचित्ता, मीसिया। एव—एगिंदियाण विगलिंदियाणं समुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं समुच्छिममणुस्साण य।

त्रिविधा योनिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सचित्ता, अचित्ता, मिश्रिता। एवम्—एकेन्द्रियाणा विकलेन्द्रियाणां सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाना सम्मूर्च्छिममनुष्याणा च।

१०१ योनि तीन प्रकार की होती है—१. सचित्त, २. अचित्त, ३. मिश्र। एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, समूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च तथा समूर्च्छिममनुष्यो मे तीनो ही प्रकार की योनियां होती हैं।

१०२. तिविहा जोणी पण्णत्ता, तं जहा—संवुडा, वियडा, संवुडवियडा।

त्रिविधा योनिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सवृता, विवृता, सवृतविवृता।

१०२. योनि तीन प्रकार की होती है—१. सवृत—सकडी, २. विवृत—चौडी, ३. सवृतविवृत—कुछ सकडी तथा कुछ चौड़ी।

१०३. तिविहा जोणी पण्णत्ता, तं जहा—कुम्मुण्णया, संखावत्ता, वंसीवत्तिया। १. कुम्मुण्णया णं जोणी उत्तमपुरिसमाऊणं कुम्मुण्णयाते णं

त्रिविधा योनिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—कूर्मोन्नता, शंखावर्त्ता, वंशीपत्रिकाः। १. कूर्मोन्नता योनिः उत्तमपुरुषमातृणाम्। कूर्मोन्नतायां योनौ त्रिविधा

१०३. योनि तीन प्रकार की होती है—१. कूर्मोन्नत—कछुए के समान उन्नत, २. संखावर्त—शख के समान आवर्त [घुमाव] वाली; ३. वंशीपत्रिका—

जोणिए तिविहा उत्तमपुरिसा गब्भं वक्कमंति, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेववासुदेवा ।

उत्तमपुरुषाः गर्भं अवक्रामन्ति, तद्यथा—अर्हन्तः, चक्रवर्तिनः, बलदेववासुदेवाः ।

बास की जाली के पत्तो के आकार वाली।
१. कूर्मोन्नत योनि उत्तम पुरुषों की माता के होती है। कूर्मोन्नत योनि से तीन प्रकार के उत्तम पुरुष पैदा होते है—
१. अर्हन्त, २. चक्रवर्ती, ३. बलदेव-वासुदेव ।

२. संखावत्ता णं जोणी इत्थीरयणस्स । संखावत्ताए णं जोणीए बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति, विउक्कमंति, चयंति, उववज्जंति, णो चेव णं णिप्फज्जंति ।

२. शंखावर्त्ता योनिः स्त्रीरत्नस्य । शंखावर्त्तायां योनौ बहवो जीवाश्च पुद्गलाश्च अवक्रामन्ति, व्युत्क्रामन्ति, च्यवन्ते, उत्पद्यन्ते, नो चैव निष्पद्यन्ते ।

२. शखावर्त योनि स्त्री-रत्न की होती है। शखावर्त योनि मे अनेक जीव तथा पुद्गल उत्पन्न और नष्ट होते है तथा नष्ट और उत्पन्न होते है, किन्तु निष्पन्न नही होते।

३. वंसीवत्तिया णं जोणी पिहुज्जणस्स । वंसीवत्तिताए णं जोणीए बहवे पिहुज्जणा गब्भं वक्कमंति ।

३ वंशीपत्रिका योनिः पृथग्जनस्य । वंशीपत्रिकायां योनौ बहवः पृथग्जनाः गर्भं अवक्रामन्ति ।

३. वंशीपत्रिका योनि सामान्य-जनो की माता के होती है। वंशीपत्रिका योनि में अनेक सामान्य-जन पैदा होते है।

तणवणस्सइ-पदं

१०४. तिविहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—संखेज्जजीविका, असंखेज्जजीविका, अणंतजीविका।

तृणवनस्पति-पदम्

त्रिविधाः तृणवनस्पतिकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सख्येयजीविकाः, असख्येयजीविकाः, अनन्तजीविकाः ।

तृणवनस्पति-पद

१०४. तृणवनस्पतिकायिक जीव तीन प्रकार के होते है—१. सख्यात जीव वाले—नाल से बधे हुए फूल, २. असंख्यात जीव वाले—वृक्ष के मूल, कंद, स्कंध, त्वक् शाखा और प्रवाल। ३. अनंत जीव वाले—फफूंदी आदि।

तित्थ-पदं

१०५. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तओ तित्था पण्णत्ता, तं जहा—मागहे, वरदामे, पभासे ।

१०६. एवं—एरवएवि ।

तीर्थ-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे त्रयः तीर्थाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
मागधः, वरदाम, प्रभास ।

एवम्—ऐरवतेऽपि ।

तीर्थ-पद

१०५. जम्बूद्वीप द्वीप के भारत क्षेत्र मे तीन तीर्थ है—
१. मागध, २. वरदाम, ३. प्रभास ।

१०६. इसी प्रकार ऐरवत क्षेत्र मे भी तीन तीर्थ हैं—
१. मागध, २. वरदाम, ३. प्रभास ।

१०७. जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे एगमेगे चक्कवट्टिविजये तओ तित्था पण्णत्ता, तं जहा—मागहे, वरदामे, पभासे ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहे वर्षे एकैकस्मिन् चक्रवर्तिविजये त्रयः तीर्थाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मागधः, वरदामः, प्रभासः ।

१०७. जम्बूद्वीप द्वीप के महाविदेह क्षेत्र मे एक-एक चक्रवर्ती-विजय में तीन-तीन तीर्थ हैं—
१. मागध, २. वरदाम, ३. प्रभास ।

१०८. एवं—धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धेवि, पच्चत्थिमद्धेवि। पुक्खरवरदीवद्धे पुरत्थिमद्धेवि, पच्चत्थिमद्धेवि।

एवम्—धातकीषण्डे द्वीपे पौरस्त्यार्धेऽपि, पाश्चात्यार्धेऽपि। पुष्करवरद्वीपार्धे पौरस्त्यार्धेऽपि, पाश्चात्यार्धेऽपि।

१०८. इसी प्रकार धातकीषंड नामक द्वीप के पूर्वार्ध तथा पश्चिमार्ध मे, अर्ध पुष्करवर द्वीप के पूर्वार्ध तथा पश्चिमार्ध मे भी तीन-तीन तीर्थ हैं—
१. मागध, २. वरदाम, ३. प्रभास।

कालचक्क-पदं

कालचक्र-पदम्

कालचक्र-पद

१०९. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीओ काले होत्था।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो अतीतायां उत्सर्पिण्यां सुषमाया समाया तिस्रः सागरोपमकोटिकोटी काल अभवत्।

१०९. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी के सुषमा नाम के आरे का काल तीन कोटी कोटी सागरोपम था।

११०. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसमाए समाए तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीओ काले पण्णत्ते।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो. अस्या अवसर्पिण्या सुषमायां समाया तिस्रः सागरोपमकोटिकोटी काल प्रज्ञप्त।

११० जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे वर्तमान अवसर्पिणी के सुषमा नाम के आरे का काल तीन कोटी-कोटी सागरोपम कहा गया है।

१११. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीओ काले भविस्सति।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो आगमिष्यन्त्या उत्सर्पिण्या सुषमाया समाया तिस्रः सागरोपमकोटिकोटी काल भविष्यति।

१११. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे आगामी उत्सर्पिणी के सुषमा नाम के आरे का काल तीन कोटी-कोटी सागरोपम होगा।

११२. एवं—धायइसंडे पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धेवि। एवं—पुक्खरवरदीवद्धे पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धेवि—कालो भाणियव्वो।

एवम्—धातकीषण्डे पौरस्त्यार्धे पाश्चात्यार्धेऽपि। एवम्—पुष्करवरद्वीपार्धे पौरस्त्यार्धे पाश्चात्यार्धेऽपि—काल. भणितव्यः।

११२. इसी प्रकार धातकीषंड तथा अर्धपुष्करवर द्वीप के पूर्वार्ध तथा पश्चिमार्ध मे भी उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी के सुषमा आरे का काल तीन कोटी-कोटी सागरोपम होता है।

११३. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए मणुया तिण्णि गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। तिण्णि पलिओवमाइं परमाउं पालइत्था।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो. अतीताया उत्सर्पिण्या सुषमसुषमायां समाया मनुजा तिस्रः गव्यूतीः ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवन्। त्रीणि पल्योपमानि परमायु अपालयन्।

११३. जम्बूद्वीप द्वीप मे भरत और ऐरवत क्षेत्र मे अतीत उत्सर्पिणी के सुषमसुषमा नाम के आरे मे मनुष्यों की ऊंचाई तीन गाऊ की और उनकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की थी।

११४. एवं—इमीसे ओसप्पिणीए, आगमिस्साए उस्सप्पिणीए।

एवम्—अस्या अवसर्पिण्याम्, आगमिष्यन्त्या उत्सर्पिण्याम्।

११४. इसी प्रकार वर्तमान अवसर्पिणी तथा आगामी उत्सर्पिणी मे भी ऐसा जानना चाहिए।

११५. जंबुद्दीवे दीवे देवकुरुउत्तरकुरासु मणुया तिण्णि गाउआइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। तिण्णि पलिओवमाइं परमाउं पालयंति।

जम्बूद्वीपे द्वीपे देवकुरूत्तरकुर्वोः मनुजा तिस्रः गव्यूतीः ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्ता। त्रीणि पल्योपमानि परमायुः पालयन्ति।

११५. जम्बूद्वीप द्वीप में देवकुरु और उत्तरकुरु में मनुष्यों की ऊंचाई तीन गाऊ की और उनकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की होती है।

११६. एवं—जाव पुक्खरवरदीवड्ढ-पच्चत्थिमद्धे।

एवम्—यावत् पुष्करवरद्वीपार्ध-पाश्चात्यार्धे।

११६. इसी प्रकार धातकीषण्ड तथा अर्धपुष्कर-वर द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में जानना चाहिए।

सलागा-पुरिस-वंस-पदं

शलाका-पुरुष-वंश-पदम्

शलाका-पुरुष-वंश-पद

११७. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीए तओ वंसाओ उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा—अरहंतवंसे, चक्कवट्टिवंसे, दसारवंसे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो एकैकस्या अवसर्पिण्युत्सर्पिण्या त्रय वंशा उदपादिषत वा उत्पद्यन्ते वा उत्पत्स्यन्ते वा, तद्यथा—अर्हद्वंश, चक्रवर्त्तिवंश, दशारवंश।

११७. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र तथा ऐरवत क्षेत्र में प्रत्येक अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी में तीन वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं तथा उत्पन्न होंगे—
१ अर्हन्त-वंश, २. चक्रवर्ती वंश,
३ दशार-वंश।

११८. एवं—जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्च-त्थिमद्धे।

एवम्—यावत् पुष्करवरद्वीपार्ध-पाश्चात्यार्धे।

११८ इसी प्रकार धातकीषण्ड तथा पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में तीन वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं तथा उत्पन्न होंगे।

सलागा-पुरिस-पदं

शलाका-पुरुष-पदम्

शलाका-पुरुष-पद

११९. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीए तओ उत्तमपुरिसा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेववासुदेवा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो वर्षयो एकैकस्या अवसर्पिण्युत्सर्पिण्या त्रय उत्तमपुरुषा उदपादिषत वा उत्पद्यन्ते वा उत्पत्स्यन्ते वा, तद्यथा—अर्हन्त, चक्रवर्तिन, बलदेववासुदेवा।

११९ जम्बूद्वीप द्वीप में भरत क्षेत्र तथा ऐरवत क्षेत्र में प्रत्येक अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी में तीन उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते है तथा उत्पन्न होंगे—
१. अर्हन्त, २. चक्रवर्ती, ३. बलदेव-वासुदेव।

१२०. एवं—जाव पुक्खरवरद्दीवड्ढपच्च-त्थिमद्धे।

एवम्—यावत् पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चा-त्यार्धे।

१२०. इसी प्रकार धातकीषण्ड तथा अर्धपुष्कर-वर द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में जानना चाहिए।

आउय-पदं

आयुः-पदम्

आयुः-पद

१२१. तओ अहाउयं पालयंति, तं जहा—

त्रयः यथायुः पालयन्ति, तद्यथा—

१२१. तीन अपनी पूर्ण आयु का पालन करते हैं—

अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेव-वासुदेवा ।

अर्हन्त:, चक्रवर्तिनः, बलदेववासुदेवा: ।

१. अर्हन्त, २. चक्रवर्ती, ३. बलदेव-वासुदेव ।

१२२. तओ मज्झिममाउयं पालयंति, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेववासुदेवा ।

त्रय: मध्यममायु: पालयन्ति, तद्यथा— अर्हन्त:, चक्रवर्तिनः, बलदेववासुदेवा: ।

१२२. तीन मध्यम (अपने समय की आयु से मध्यम) आयु का पालन करते है— १. अर्हन्त, २. चक्रवर्ती, ३. बलदेव-वासुदेव ।

१२३. बायरतेउकाइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं ठिती पण्णत्ता ।

बादरतेजस्कायिकानां उत्कर्षेण त्रीणि रात्रिदिवानि स्थिति: प्रज्ञप्ता ।

१२३. बादर तेजस्कायिक जीवो की उत्कृष्ट स्थिति तीन रात-दिन की है ।

१२४. बायरवाउकाइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता ।

बादरवायुकायिकाना उत्कर्षेण त्रीणि वर्षसहस्राणि स्थिति: प्रज्ञप्ता ।

१२४. बादर वायुकायिक जीवो की उत्कृष्ट स्थिति तीन हजार वर्ष की है ।

जोणि-ठिइ-पदं

योनि-स्थिति-पदम्

योनि-स्थिति-पद

१२५. अह भंते ! सालीणं वीहीणं गोधूमाणं जवाणं जवजवाणं—एतेसि णं धण्णाणं कोट्ठाउत्ताणं पल्लाउत्ताणं मंचाउत्ताणं मालाउत्ताणं ओलित्ताणं लित्ताणं लंछियाणं मुद्दियाणं पिहिताणं केवइयं कालं जोणी संचिट्ठति ?
जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि संवच्छराइं । तेण परं जोणी पमिलायति । तेण परं जोणी पविद्धंसति । तेण परं जोणी विद्धंसति । तेण परं बीए अबीए भवति । तेण परं जोणीवोच्छेदे पण्णत्ते ।

अथ भगवन्! शालीनां व्रीहीणां गोधूमानां यवानां यवयवानां—एतेषां धान्यानां कोष्ठागुप्तानां पल्यागुप्तानां मञ्चागुप्तानां मालागुप्तानां अवलिप्तानां लिप्तानां लाञ्छितानां मुद्रितानां पिहितानां कियन्तं कालं योनि: संतिष्ठते ?
जघन्येन अन्तर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण त्रीणि संवत्सराणि । तेन परं योनि: प्रम्लायति । तेन परं योनि: प्रविध्वंसते । तेन परं योनि: विध्वंसते । तेन परं बीजं अबीजं भवति । तेन परं योनिव्यवच्छेद: प्रज्ञप्त: ।

१२५. भगवन् ! शाली, व्रीहि, गेहू, जौ तथा यवयव अन्नो को कोठे, पल्य[१६], मचान और माल्य[१७] मे डालकर उनके द्वारदेश को ढक देने, लीप देने, चारो ओर से लीप देने, रेखाओ से लाछित कर देने तथा मिट्टी से मुद्रित कर देने पर उनकी योनि (उत्पादक शक्ति) कितने काल तक रहती है ?
जघन्य अन्तर्मुहूर्त[१८] तथा उत्कृष्ट तीन वर्ष । उसके बाद योनि म्लान हो जाती है, विध्वस्त हो जाती है, क्षीण हो जाती है, बीज अबीज हो जाता है, योनि का विच्छेद हो जाता है ।

णरय-पदं

नरक-पदम्

नरक-पद

१२६. दोच्चाए णं सक्करप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

द्वितीयाया शर्कराप्रभाया पृथिव्यां नैरयिकाणां उत्कर्षेण त्रीणि सागरोपमाणि स्थिति: प्रज्ञप्ता ।

१२६. दूसरी नरकपृथ्वी—शर्करा प्रभा के नैरयिको की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम की है ।

१२७. तच्चाए णं वालुयप्पभाए पुढवीए जहण्णेणं णेरइयाणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

तृतीयाया बालुकाप्रभाया पृथिव्यां जघन्येन नैरयिकाणां त्रीणि सागरोपमाणि स्थिति: प्रज्ञप्ता ।

१२७. तीसरी नरकपृथ्वी—बालुका प्रभा के नैरयिको की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम की है ।

१२८. पचमाए णं धूमप्पभाए पुढवीए तिण्णि णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

पञ्चम्या धूमप्रभाया पृथिव्या त्रीणि निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

१२८. पांचवी नरकपृथ्वी—धूम प्रभा मे तीन लाख नरकावास हैं।

१२९. तिसु णं पुढवीसु णेरइयाणं उसिण-वेयणा पण्णत्ता, तं जहा—पढमाए, दोच्चाए, तच्चाए।

तिसृषु पृथिवीषु नैरयिकाणां उष्णवेदना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—प्रथमाया, द्वितीयाया, तृतीयायाम्।

१२९. प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय नरक भूमियो मे नैरयिको के उष्ण-वेदना होती है।

१३०. तिसु णं पुढवीसु णेरइया उसिण-वेयणं पच्चणुभवमाणा विहरति, तं जहा—पढमाए, दोच्चाए, तच्चाए।

तिसृषु पृथिवीषु नैरयिका उष्णवेदनां प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा—प्रथमाया, द्वितीयाया, तृतीयायाम्।

१३० प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय नरक भूमियो मे नैरयिक उष्ण-वेदना का अनुभव करते है।

सम-पदं

सम-पदम्

सम-पद

१३१. तओ लोगे समा सपक्खि सपडि-दिसिं पण्णत्ता, त जहा—अप्पइट्ठाणे णरए, जबुद्दीवे दीवे, सव्वट्ठसिद्धे विमाणे।

त्रीणि लोके समानि सपक्ष सप्रतिदिक् प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अप्रतिष्ठानो नरकः, जम्बूद्वीपं द्वीप, सर्वार्थसिद्ध विमानम्।

१३१. लोक मे तीन समान, सपक्ष तथा सप्रति-दिश है[1]— १. अप्रतिष्ठा ननरकावास, २ जम्बूद्वीप द्वीप, ३ सर्वार्थसिद्ध विमान।

१३२. तओ लोगे समा सपक्खि सपडि-दिसिं पण्णत्ता, तं जहा—सीमंतए ण णरए, समयक्खेत्ते, ईसीपब्भारा पुढवी।

त्रीणि लोके समानि सपक्ष सप्रतिदिक् प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सीमन्तक नरकः, समयक्षेत्र, ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी।

१३२ लोक मे तीन समान, सपक्ष तथा सप्रतिदिश है—१ सीमतकनरकावास, २. समयक्षेत्र, ३. ईषत्प्राग्भारापृथ्वी।[2]

समुद्द-पदं

समुद्र-पदम्

समुद्र-पद

१३३. तओ समुद्दा पगईए उदगरसेणं पण्णत्ता, तं जहा—कालोदे, पुक्खरोदे, सयंभुरमणे।

त्रयः समुद्रा प्रकृत्या उदकरसेन प्रज्ञप्ता, तद्यथा—कालोद, पुष्करोद, स्वयंभूरमण।

१३३. तीन समुद्र प्रकृति से ही उदकरस से परि-पूर्ण है—१. कालोदधि, २. पुष्करोदधि, ३. स्वयभूरमण।

१३४ तओ समुद्दा बहुमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता, तं जहा—लवणे, कालोदे, सयंभुरमणे।

त्रय. समुद्राः बहुमत्स्यकच्छपाकीर्णा. प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—लवणः, कालोदः, स्वयभूरमण।

१३४. तीन समुद्र बहुत मत्स्यो व कछुओ से आकीर्ण हैं—१. लवण, २. कालोदधि, ३. स्वयभूरमण।

उववाय-पदं

उपपात-पदम्

उपपात-पद

१३५. तओ लोगे णिस्सीला णिव्वता णिग्गुणा णिम्मेरा णिप्पच्चक्खाण-पोसहोववासा कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए

त्रयः लोके निःशीला निर्व्रता. निर्गुणाः निर्मर्यादा. निष्प्रत्याख्यानपोषधोपवासाः कालमासे काल कृत्वा अधःसप्तमायां पृथिव्यां अप्रतिष्ठाने नरके नैरयिकतया

१३५. लोक मे ये तीन—जो दुःशील, अविरत, निर्गुण, अमर्यादित, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से रहित हैं—मृत्यु-काल मे मरकर सातवी अप्रतिष्ठान नरकभूमि मे

अप्पतिट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववज्जंति, तं जहा—
रायाणो, मंडलीया,
जे य महारंभा कोडुंबी।

उपपद्यन्ते, तद्यथा—
राजानः, माण्डलिकाः,
ये च महारम्भाः कौटुम्बिनः।

नैरयिक के रूप मे उत्पन्न होते हैं—
१. राजा—चक्रवर्ती आदि, २. माण्डलिक राजा, ३. महारम्भ करने वाला कौटुम्बिक।

१३६. तओ लोए सुसीला सुव्वया सग्गुणा समेरा सपच्चक्खाणपोसहोववासा कालमासे कालं किच्चा सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवत्ताए उववत्तारो भवंति, तं जहा—
रायाणो परिचत्तकामभोगा,
सेणावती, पसत्थारो।

त्रयः लोके सुशीलाः सुव्रताः सगुणाः समर्यादाः सप्रत्याख्यानपोषधोपवासाः कालमासे कालं कृत्वा सर्वार्थसिद्धे विमाने देवतया उपपत्तारो भवन्ति, तद्यथा—राजानः परित्यक्तकामभोगाः, सेनापतयः प्रशास्तारः।

१३६. लोक मे ये तीन—जो सुशील, सुव्रत, सगुण, मर्यादित, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास सहित हैं—मृत्यु-काल मे मरकर सर्वार्थसिद्ध विमान मे देवता के रूप मे उत्पन्न होते हैं—
१. कामभोगों को त्यागने वाला राजा,
२. सेनापति, ३. प्रशास्ता—मंत्री।

विमाण-पदं

१३७. बंभलोग-लंतएसु णं कप्पेसु विमाणा तिवण्णा पण्णत्ता, तं जहा—किण्हा, णीला, लोहिया।

विमान-पदम्

ब्रह्मलोक-लान्तकयोः कल्पयोः विमानानि त्रिवर्णानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कृष्णानि, नीलानि, लोहितानि।

विमान-पद

१३७. ब्रह्मलोक तथा लांतक देवलोक मे विमान तीन वर्णों के होते हैं—
१. कृष्ण, २. नील, ३. रक्त।

देव-पदं

१३८. आणयपाणयारणच्चुतेसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जसरीरगा उक्कोसेणं तिण्णि रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

देव-पदम्

आनतप्राणतारणाच्युतेषु कल्पेषु देवानां भवधारणीयशरीरकाणि उत्कर्षेण तिस्रः रत्नीः ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

देव-पद

१३८. आनत, प्राणत, आरण तथा अच्युत देवलोकों के देवों के भवधारणीय शरीर की ऊंचाई उत्कृष्टतः तीन रत्नि की है।

पण्णत्ति-पदं

१३९. तओ पण्णत्तीओ कालेणं अहिज्जंति, तं जहा—चंदपण्णत्ती, सूरपण्णत्ती, दीवसागरपण्णत्ती।

प्रज्ञप्ति-पदम्

तिस्रः प्रज्ञप्तयः कालेन अधीयन्ते, तद्यथा—चन्द्रप्रज्ञप्तिः, सूरप्रज्ञप्तिः, द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः।

प्रज्ञप्ति-पद

१३९. तीन प्रज्ञप्तियां यथाकाल पढ़ी जाती हैं—
१. चन्द्रप्रज्ञप्ति, २. सूर्यप्रज्ञप्ति,
३. द्वीपसागरप्रज्ञप्ति।[11]

बीओ उद्देसो

लोग-पदं

१४०. तिविहे लोगे पण्णत्ते, तं जहा—
णामलोगे, ठवणलोगे, दव्वलोगे।

१४१. तिविहे लोगे पण्णत्ते, तं जहा—
णाणलोगे, दंसणलोगे, चरित्तलोगे।

१४२. तिविहे लोगे पण्णत्ते, तं जहा—
उड्ढलोगे, अहोलोगे, तिरियलोगे।

लोक-पदम्

त्रिविधः लोकः प्रज्ञप्त, तद्यथा—
नामलोकः, स्थापनालोकः, द्रव्यलोकः।

त्रिविधः लोकः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
ज्ञानलोकः, दर्शनलोकः, चरित्रलोकः।

त्रिविधः लोकः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ऊर्ध्वलोकः, अधोलोकः, तिर्यग्लोकः।

लोक-पद

१४०. लोक तीन प्रकार का है—१. नामलोक, २. स्थापनालोक ३. द्रव्यलोक।

१४१. लोक तीन प्रकार का है—
१. ज्ञानलोक, २. दर्शनलोक, चरित्रलोक।

१४२. लोक तीन प्रकार का है—१. ऊर्ध्वलोक, २. अधोलोक, ३. तिर्यक्लोक।

परिसा-पदं

१४३. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
समिता, चंडा, जाया।
अब्भितरिता समिता,
मज्झिमिता चंडा, बाहिरिता जाया।

१४४. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सामाणिताणं देवाणं तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—समिता जहेव चमरस्स।

१४५. एवं—तावत्तीसगाणवि।

१४६. लोगपालाणं—तुंबा, तुडिया, पव्वा।

१४७ एवं—अग्गमहिसीणवि।

१४८. बलिस्सवि एवं चेव जाव अग्गमहिसीणं।

परिषद्-पदम्

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य तिस्रः परिषदः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
समिता, चण्डा, जाता।
आभ्यन्तरिकी समिता,
माध्यमिकी चण्डा, बाहिरिकी जाता।

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य सामानिकाना देवाना तिस्रः परिषदः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
समिता यथैव चमरस्य।

एवम्—तावत्त्रिंशकानामपि।

लोकपालानाम्—तुम्बा, त्रुटिता, पर्वा।

एवम्—अग्रमहिषीणामपि।

बलिनोपि एव चैव यावत् अग्रमहिषीणाम्।

परिषद्-पद

१४३. असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर के तीन परिषदें[33] है—
१. समिता, २ चण्डा, ३. जाता।
आन्तरिक परिषद् का नाम समिता है,
मध्यम परिषद् का नाम चण्डा है,
बाह्य परिषद् का नाम जाता है।

१४४. असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर के सामानिक देवों के तीन परिषदें है—
१. समिता, २ चण्डा, ३. जाता।

१४५. इसी प्रकार असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर के तावत्त्रिंशकों के तीन परिषदें है—१. समिता, २. चण्डा, ३. जाता।

१४६. असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर के लोकपालों के तीन परिषदें है—
१. तुम्बा, २ त्रुटिता, ३. पर्वा।

१४७ असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर की अग्रमहिषियों के तीन परिषदें हैं—
१. तुम्बा, २ त्रुटिता, ३. पर्वा।

१४८ वैरोचनेन्द्र, वैरोचनराज बली तथा उसके सामानिकों और तावत्त्रिंशकों के तीन-तीन परिषदें हैं—

१. समिता, २. चण्डा, ३. जाता।
उसके लोकपालो तथा अग्रमहिषियो के भी तीन-तीन परिषदें है—
१ तुम्बा, २. त्रुटिता, ३. पर्वा।

१४९. धरणस्स य सामाणिय-तावत्तीसगाणं च—समिता, चंडा, जाता।
धरणस्य च सामानिक-तावत्त्रिंशकाना च—समिता, चण्डा, जाता।
१४९. नागेन्द्र, नागकुमारराज धरण तथा उसके सामानिकों और तावत्त्रिंशको के तीन-तीन परिषदे है—
१. समिता, २. चण्डा, ३. जाता।

१५०. लोगपालाणं अग्गमहिसीणं—ईसा, तुडिया, दढरहा।
लोकपालाना अग्रमहिषीणाम्—ईषा, त्रुटिता, दृढरथा।
१५०. नागेन्द्र, नागकुमारराज धरण के लोकपालो तथा अग्रमहिषियो के भी तीन-तीन परिषदे है—
१. ईषा, २. त्रुटिता, ३. दृढरथा।

१५१. जहा धरणस्स तहा सेसाणं भवणवासीणं।
यथा धरणस्य तथा शेषाणा भवनवासिनाम्।
१५१. शेष भवनवासी देवों का क्रम धरण की तरह ही है।

१५२. कालस्स णं पिसाइंदस्स पिसायरण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—ईसा, तुडिया, दढरहा।
कालस्य पिशाचेन्द्रस्य पिशाचराजस्य तिस्र परिषद प्रज्ञप्ता, तद्यथा—ईषा, त्रुटिता, दृढरथा।
१५२. पिशाचेन्द्र, पिशाचराज काल के तीन परिषदे है—
१. ईषा, २. त्रुटिता, ३. दृढरथा।

१५३. एवं—सामाणिय-अग्गमहिसीण।
एवम्—सामानिकाऽग्रमहिषीणाम्।
१५३. इसी प्रकार उनके सामानिको और अग्रमहिषियो के भी तीन-तीन परिषदे है—
१. ईषा, २ त्रुटिता, ३. दृढरथा।

१५४. एवं—जाव गीयरतिगीयजसाणं।
एवम्—यावत् गीतरतिगीतयशसोः।
१५४. इसी प्रकार गधर्वेन्द्र गीतरति और गीतयशा तक के सभी वानमन्तर देवेन्द्रो के तीन-तीन परिषदे है—
१ ईषा, २. त्रुटिता, ३ दृढरथा।

१५५. चंदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तुंबा, तुडिया, पव्वा।
चन्द्रस्य ज्योतिरिन्द्रस्य ज्योतीराजस्य तिस्र परिषद. प्रज्ञप्ता, तद्यथा—तुम्बा, त्रुटिता, पर्वा।
१५५. ज्योतिषेन्द्र, ज्योतिषराज चन्द्र के तीन परिषदे है—
१. तुम्बा, २. त्रुटिता, ३. पर्वा।

१५६. एवं—सामाणिय-अग्गमहिसीणं।
एवम्—सामानिकाऽग्रमहिषीणाम्।
१५६. इसी प्रकार उसके सामानिको तथा अग्रमहिषियो के तीन-तीन परिषदे हैं—
१. तुम्बा, २. त्रुटिता, ३. पर्वा।

१५७. एवं—सूरस्सवि।
एवम्—सूरस्यापि।
१५७. ज्योतिषेन्द्र, ज्योतिषराज सूर्य के तीन परिषदें है—
१. तुम्बा, २. त्रुटिता, ३. पर्वा।
इसी प्रकार उसके सामानिको तथा अग्र-

महिषियों के तीन-तीन परिषदें हैं—
१. तुम्बा, २ त्रुटिता, ३. पर्वा।

१५८. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—समिता, चंडा, जाया।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य तिस्रः परिषदः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
समिता, चण्डा, जाता।

१५८. देवेन्द्र, देवराज शक्र के तीन परिषदें हैं—
१ समिता, २. चण्डा, ३. जाता।

१५९. एवं—जहा चमरस्स जाव अग्गमहिसीणं।

एवम्—यथा चमरस्य यावत् अग्रमहिषीणाम्।

१५९. इसी प्रकार देवेन्द्र, देवराज शक्र के सामानिकों तथा तावत्त्रिंशकों के तीन-तीन परिषदें हैं—
१. समिता, २. चण्डा, ३. जाता।
उनके लोकपालों तथा अग्रमहिषियों के तीन-तीन परिषदें हैं—
१ तुम्बा, २ त्रुटिता, ३ पर्वा।

१६०. एवं—जाव अच्चुतस्स लोगपालाणं।

एवम्—यावत् अच्युतस्य लोकपालानाम्।

१६० इसी प्रकार देवेन्द्र, देवराज ईशान के तीन परिषदें हैं—
१. समिता, २. चण्डा, ३. जाता।
उसके सामानिकों तथा तावत्त्रिंशकों के तीन-तीन परिषदें हैं—
१. समिता, २. चण्डा, ३ जाता।
उसके लोकपालों तथा अग्रमहिषियों के तीन-तीन परिषदें हैं—
१. तुम्बा, २. त्रुटिता, ३. पर्वा।
इसी प्रकार सनत्कुमार से लेकर अच्युत तक के देवेन्द्रों, सामानिकों तथा तावत्त्रिंशकों के तीन-तीन परिषदें हैं—
१. समिता, २. चण्डा, ३. जाता।
उनके लोकपालों के तीन-तीन परिषदें हैं—१. तुम्बा, २. त्रुटिता, ३. पर्वा।

जाम-पदं

याम-पदम्

याम-पद

१६१. तओ जामा पण्णत्ता, तं जहा— पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।

त्रयः यामाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
प्रथमः यामः, मध्यमः यामः,
पश्चिमः यामः।

१६१. याम[१५] तीन हैं—१. प्रथम याम, २. मध्यम याम, ३. पश्चिम याम।

१६२. तिहिं जामेहिं आता केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा—

त्रिभिः यामैः आत्मा केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं लभेत श्रवणतया, तद्यथा—

१७२ तीनों ही यामों में आत्मा केवलीप्रज्ञप्त धर्म का श्रवण लाभ करता है—

पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।	प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे।	१. प्रथम याम मे, २. मध्यम याम में, ३. पश्चिम याम में।
१६३. तिहिं जामेहिं आया केवलं बोधि बुज्झेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।	त्रिभि: यामैः आत्मा केवलां बोधि बुध्येत, तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे।	१६३. तीनों ही यामो मे आत्मा विशुद्ध बोधि-लाभ करता है—१. प्रथम याम मे, २. मध्यम याम मे, ३. पश्चिम याम में।
१६४. तिहिं जामेहिं आया केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।	त्रिभि: यामैः आत्मा केवलं मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजेत् तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे।	१६४ तीनो ही यामों में आत्मा मुण्ड होकर अगार से विशुद्ध अनगारत्व मे प्रव्रजित होता है—१. प्रथम याम में, २. मध्यम याम मे, ३. पश्चिम याम मे।
१६५. तिहिं जामेहिं आया केवलं बंभचेर-वासमावसेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।	त्रिभि. यामै आत्मा केवलं ब्रह्मचर्य-वासमावसेत्, तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे।	१६५ तीनो ही यामो मे आत्मा विशुद्ध ब्रह्मचर्य-वास करता है—१. प्रथम याम मे, २. मध्यम याम में, ३. पश्चिम याम मे।
१६६. तिहिं जामेहिं आया केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।	त्रिभि: यामै आत्मा केवलेन सयमेन सयच्छेत्, तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे।	१६६. तीनों ही यामों मे आत्मा विशुद्ध सयम से सयत होता है—१. प्रथम याम मे, २. मध्यम याम मे, ३. पश्चिम याम मे।
१६७. तिहिं जामेहिं आया केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।	त्रिभि: यामैः आत्मा केवलेन सवरेण सवृणुयात्, तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे।	१६७. तीनो ही यामो मे आत्मा विशुद्ध सवर से सवृत होता है—१. प्रथम याम मे, २. मध्यम याम मे, ३. पश्चिम याम मे।
१६८. तिहिं जामेहिं आया केवलमाभिणि-बोहियणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।	त्रिभि यामै आत्मा केवलमाभिनि-बोधिकज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे।	१६८. तीनो ही यामो मे आत्मा विशुद्ध आभि-निबोधिकज्ञान को प्राप्त करता है—१. प्रथम याम मे, २. मध्यम याम मे, ३. पश्चिम याम मे।
१६९. तिहिं जामेहिं आया केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।	त्रिभि यामै आत्मा केवल श्रुतज्ञानं उत्पादयेत्, तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे।	१६९. तीनो ही यामों मे आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त करता है—१. प्रथम याम में, २. मध्यम याम में, ३. पश्चिम याम मे।
१७०. तिहिं जामेहिं आया केवलं ओहि-णाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।	त्रिभि: यामैः आत्मा केवल अवधिज्ञानं उत्पादयेत्, तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे।	१७०. तीनो ही यामो मे आत्मा विशुद्ध अवधि-ज्ञान को प्राप्त करता है—१. प्रथम याम मे, २. मध्यम याम मे, ३. पश्चिम याम में।

१७१. तिहिं जामेहिं आया केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा— पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे ।

त्रिभिः यामैः आत्मा केवल मनःपर्यवज्ञानं उत्पादयेत्, तद्यथा—प्रथमे यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे ।

१७१. तीनो ही यामों मे आत्मा विशुद्ध मनःपर्यवज्ञान को प्राप्त करता है— १ प्रथम याम मे, २. मध्यम याम मे, ३. पश्चिम याम मे ।

१७२. तिहिं जामेहिं आया केवलं केवलणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा— पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे ।

त्रिभि यामै· आत्मा केवल केवलज्ञान उत्पादयेत्, तद्यथा—प्रथम यामे, मध्यमे यामे, पश्चिमे यामे ।

१७२. तीनों ही यामों मे आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को प्राप्त करता है— १. प्रथम याम मे, २. मध्यम याम मे, ३. पश्चिम याम मे ।

वय-पदं

वयः-पदम्

वय-पद

१७३. तओ वया पण्णत्ता, तं जहा— पढमे वए, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए ।

त्रीणि वयासि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— प्रथमं वय., मध्यमं वय., पश्चिम वय. ।

१७३. वय तीन है—१. प्रथम वय, २. मध्यम वय, ३. पश्चिम वय ।

१७४. तिहिं वएहिं आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा— पढमे वए, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए ।

त्रिभि वयोभि. आत्मा केवलिप्रज्ञप्त धर्म लभेत श्रवणतया, तद्यथा— प्रथमे वयसि, मध्यमे वयसि, पश्चिमे वयसि ।

१७४. तीनों ही वयो मे आत्मा केवली-प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण-लाभ करता है— १ प्रथम वय मे, २. मध्यम वय मे, ३ पश्चिम वय मे ।

१७५ °तिहिं वएहिं आया—
केवलं बोधिं बुज्झेज्जा,
केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा,
केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा,
केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा,
केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा,
केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा,
केवल सुयणाण उप्पाडेज्जा,
केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा,
केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा,
केवलं केवलणाणं उप्पाडेज्जा,
तं जहा—पढमे वए,
मज्झिमे वए, पच्छिमे वए° ।

त्रिभिः वयोभिः आत्मा—
केवला बोधि बुध्येत,
केवल मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजेत्,
केवलं ब्रह्मचर्यवासमावसेत्,
केवलेन सयमेन सयच्छेत्,
केवलेन सवरेण सवृणुयात्,
केवलमाभिनिबोधिकज्ञान उत्पादयेत्,
केवल श्रुतज्ञानं उत्पादयेत्,
केवल अवधिज्ञान उत्पादयेत्,
केवल मन पर्यवज्ञान उत्पादयेत्,
केवल केवलज्ञान उत्पादयेत्,
तद्यथा—प्रथमे वयसि, मध्यमे वयसि, पश्चिमे वयसि ।

१७५. तीनो ही वयो मे आत्मा विशुद्ध-बोधि का अनुभव करता है—
मुण्ड होकर घर छोडकर सम्पूर्ण अनगारिता—साधुपन को पाता है ।
सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त करता है
सम्पूर्ण सयम के द्वारा संयत होता है
सम्पूर्ण संवर के द्वारा सवृत होता है
विशुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान को प्राप्त करता है
विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त करता है
विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त करता है
विशुद्ध मन पर्यवज्ञान को प्राप्त करता है
विशुद्ध केवलज्ञान को प्राप्त करता है—
१. प्रथम वय मे, २. मध्यम वय मे, ३. पश्चिम वय मे ।

बोधि-पदं

१७६. तिविधा बोधी पण्णत्ता, तं जहा— णाणबोधी, दंसणबोधी, चरित्तबोधी।

१७७. तिविहा बुद्धा पण्णत्ता, तं जहा— णाणबुद्धा, दंसणबुद्धा, चरित्तबुद्धा।

बोधि-पदम्

त्रिविधा बोधिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा— ज्ञानबोधिः, दर्शनबोधिः, चरित्रबोधिः।

त्रिविधा बुद्धाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— ज्ञानबुद्धाः, दर्शनबुद्धाः, चरित्रबुद्धाः।

बोधि-पद

१७६. बोधि[११] तीन प्रकार की है— १. ज्ञान बोधि, २. दर्शन बोधि, ३. चरित्र बोधि।

१७७. बुद्ध तीन प्रकार के होते हैं— १. ज्ञान बुद्ध, २. दर्शन बुद्ध, ३. चरित्र बुद्ध।

मोह-पदं

१७८. *तिविहे मोहे पण्णत्ते, तं जहा— णाणमोहे, दंसणमोहे, चरित्तमोहे।

१७९. तिविहा मूढा पण्णत्ता, तं जहा— णाणमूढा, दंसणमूढा, चरित्तमूढा।°

मोह-पदम्

त्रिविधः मोहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— ज्ञानमोहः, दर्शनमोहः, चरित्रमोहः।

त्रिविधाः मूढाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— ज्ञानमूढाः, दर्शनमूढाः, चरित्रमूढाः।

मोह-पद

१७८. मोह तीन प्रकार का है— १. ज्ञान मोह, २. दर्शन मोह, ३. चरित्र मोह।[१२]

१७९. मूढ तीन प्रकार के होते हैं— १. ज्ञान मूढ, २. दर्शन मूढ, ३. चरित्र मूढ।

पव्वज्जा-पदं

१८०. तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—इहलोगपडिबद्धा, परलोगपडिबद्धा, दुहतो [लोग?] पडिबद्धा।

१८१. तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा— पुरतोपडिबद्धा, मग्गतोपडिबद्धा, दुहओपडिबद्धा।

१८२. तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—तुयावइत्ता, पुयावइत्ता, बुआवइत्ता।

१८३. तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—ओवातपव्वज्जा,

प्रव्रज्या-पदम्

त्रिविधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा— इहलोकप्रतिबद्धा, परलोकप्रतिबद्धा, द्वय [लोक?] प्रतिबद्धा।

त्रिविधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा— पुरतःप्रतिबद्धा, 'मग्गतो' [पृष्ठतः] प्रतिबद्धा, द्वयप्रतिबद्धा।

त्रिविधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा— तोदयित्वा, प्लावयित्वा, वाचयित्वा।

त्रिविधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा— अवपातप्रव्रज्या,

प्रव्रज्या-पद

१८०. प्रव्रज्या तीन प्रकार की होती है— १. इहलोक प्रतिबद्धा—ऐहलौकिक सुखों की प्राप्ति के लिए की जाने वाली, २. परलोक प्रतिबद्धा—पारलौकिक सुखो की प्राप्ति के लिए की जाने वाली, ३. उभयत. प्रतिबद्धा—दोनो के सुखो की प्राप्ति के लिए की जाने वाली।

१८१. प्रव्रज्या तीन प्रकार की होती है— १. पुरत प्रतिबद्धा, २ पृष्ठत प्रतिबद्धा, ३. उभयत. प्रतिबद्धा।

१८२. प्रव्रज्या तीन प्रकार की होती है— १. तोदयित्वा—कष्ट देकर दी जाने वाली २. प्लावयित्वा[१८]—दूसरे स्थान मे ले जाकर दी जाने वाली, ३. वाचयित्वा— बातचीत करके दी जाने वाली।

१८३. प्रव्रज्या तीन प्रकार की होती है— १ अवपात प्रव्रज्या—गुरु सेवा से प्राप्त,

अक्खातपव्वज्जा, संगारपव्वज्जा। आख्यातप्रव्रज्या, सङ्गरप्रव्रज्या। २. आख्यात प्रव्रज्या[१]—उपदेश से प्राप्त, ३. संगर प्रव्रज्या—परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध होकर ली जाने वाली।[१]

णियंठ-पदं

१८४. तओ णियंठा णोसण्णोवउत्ता पण्णत्ता, तं जहा—पुलाए, णियंठे, सिणाए।

निर्ग्रन्थ-पदम्

त्रयः निर्ग्रन्थाः नोसञ्ज्ञोपयुक्ताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पुलाकः, निर्ग्रन्थः, स्नातकः।

निर्ग्रन्थ-पद

१८४. तीन प्रकार के निर्ग्रन्थ नोसंज्ञा से उपयुक्त होते हैं—आहार आदि की चिन्ता से मुक्त होते हैं[१]—

१. पुलाक—पुलाक लब्धि उपजीवी,
२ निर्ग्रन्थ—मोहनीय कर्म से मुक्त,
३. स्नातक—घात्य कर्मों से मुक्त।

१८५. तओ णियंठा सण्ण-णोसण्णोवउत्ता पण्णत्ता, तं जहा—बउसे, पडिसेवणाकुसीले, कसायकुसीले।

त्रयः निर्ग्रन्थाः सञ्ज्ञा-नोसंज्ञोपयुक्ताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—वकुशः, प्रतिषेवणाकुशीलः, कषायकुशीलः।

१८५. तीन प्रकार के निर्ग्रन्थ संज्ञा और नोसंज्ञा दोनों से उपयुक्त होते हैं—आहार आदि की चिन्ता से युक्त भी होते हैं और मुक्त भी होते हैं—१. बकुश—चरित्र में धब्बे लगाने वाला, २. प्रतिषेवणाकुशील—उत्तर गुणों में दोष लगाने वाला, ३ कषाय-कुशील—कषाय से दूषित चरित्र वाला।

सेहभूमी-पदं

१८६. तओ सेहभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा। उक्कोसा छम्मासा, मज्झिमा चउमासा, जहण्णा सत्तराइंदिया।

शैक्षभूमी-पदम्

तिस्रः शैक्षभूमयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—उत्कर्षा, मध्यमा, जघन्या। उत्कर्षा षड्मासा, मध्यमा चतुर्मासा, जघन्या सप्तरात्रिदिवम्।

शैक्षभूमी-पद

१८६. तीन शैक्ष-भूमियां[१] हैं—

१ उत्कृष्ट, २. मध्यम, ३. जघन्य। उत्कृष्ट छह महीनों की, मध्यम चार महीनों की, जघन्य सात दिन-रात की।

थेरभूमी-पदं

१८७ तओ थेरभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—जातिथेरे, सुयथेरे, परियायथेरे।

सट्ठिवासजाए समणे णिग्गंथे जातिथेरे, ठाणसमवायधरे णं समणे णिग्गंथे सुयथेरे, वीसवासपरियाए णं समणे णिग्गंथे परियायथेरे।

स्थविरभूमी-पदम्

तिस्रः स्थविरभूमयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जातिस्थविरः, श्रुतस्थविरः, पर्यायस्थविरः।

षष्ठिवर्षजातः श्रमणः निर्ग्रन्थः जातिस्थविरः, स्थानसमवायधरः श्रमणः निर्ग्रन्थः श्रुतस्थविरः, विंशतिवर्षपर्यायः श्रमणः निर्ग्रन्थः पर्यायस्थविरः।

स्थविरभूमी-पद

१८७ तीन स्थविर-भूमियां[१] हैं—

१. जाति-स्थविर, २. श्रुत-स्थविर, ३ पर्याय-स्थविर।

साठ वर्षों का होने पर श्रमण-निर्ग्रन्थ जाति-स्थविर होता है।
स्थान और समवायांग का धारक श्रमण-निर्ग्रन्थ श्रुत-स्थविर होता है।
बीस वर्ष से साधुत्व पालने वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ पर्याय-स्थविर होता है।

गंता-अगंता-पदं

१८८. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुमणे, दुम्मणे, णोसुमणे-णोदुम्मणे।

१८९. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—गंता णामेगे सुमणे भवति, गंता णामेगे दुम्मणे भवति, गंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

१९०. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जामीतेगे सुमणे भवति, जामीतेगे दुम्मणे भवति, जामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

१९१ °तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— जाइस्सामीतेगे सुमणे भवति, जाइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, जाइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति°।

१९२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अगंता णामेगे सुमणे भवति, अगंता णामेगे दुम्मणे भवति, अगंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

१९३. तओ पुरिसजाता पण्णत्ता तं जहा—ण जामि एगे सुमणे भवति, ण जामि एगे दुम्मणे भवति, ण जामि एगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

गत्वा-अगत्वा-पदम्

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सुमनाः, दुर्मनाः, नोसुमनाः-नोदुर्मनाः।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—गत्वा नामैकः सुमनाः भवति, गत्वा नामैकः दुर्मना भवति, गत्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—यामीत्येकः सुमनाः भवति, यामीत्येकः दुर्मना भवति यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— यास्यामीत्येकः सुमना भवति, यास्यामीत्येकः दुर्मना भवति, यास्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अगत्वा नामैकः सुमनाः भवति, अगत्वा नामैकः दुर्मना भवति, अगत्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— न याम्येकः सुमनाः भवति, न याम्येकः दुर्मनाः भवति, न याम्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मना भवति।

गत्वा-अगत्वा-पद

१८८. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. सुमनस्क, २. दुर्मनस्क, ३. नोसुमनस्क-नोदुर्मनस्क।[९]

१८९. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाने के बाद सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष जाने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष जाने के बाद न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

१९०. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाता हू इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष जाता हू इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष जाता हू इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

१९१ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाऊगा इसलिए सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष जाऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष जाऊगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

१९२. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष न जाने पर सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष न जाने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष न जाने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

१९३. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष न जाता हू इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष न जाता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष न जाता हूं इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

१६४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण जाइस्सामि एगे सुमणे भवति,
ण जाइस्सामि एगे दुम्मणे भवति,
ण जाइस्सामि एगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि,— तद्यथा—
न यास्याम्येकः सुमनाः भवति,
न यास्याम्येकः दुर्मनाः भवति,
न यास्याम्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

१६४. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष नहीं आऊंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष नही आऊंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष नही जाऊंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

आगंता-अणागंता-पदं

आगत्य-अनागत्य-पदम्

आगत्य-अनागत्य-पद

१६५. °तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—आगंता णामेगे सुमणे भवति,
आगंता णामेगे दुम्मणे भवति,
आगंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—आगत्य नामैकः सुमनाः भवति,
आगत्य नामैकः दुर्मनाः भवति,
आगत्य नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

१६५. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष आने के बाद सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष आने के बाद दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष आने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

१६६. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—एमीतेगे सुमणे भवति,
एमीतेगे दुम्मणे भवति,
एमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—एमीत्येकः सुमनाः भवति,
एमीत्येकः दुर्मनाः भवति,
एमीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

१६६. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष आता हूं इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष आता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष आता हूं इसलिए न सुमनस्क होते है, और न दुर्मनस्क होते हैं।

१६७. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—एस्सामीतेगे सुमणे भवति,
एस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
एस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति°।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—एष्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
एष्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
एष्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

१६७. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष आऊंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष आऊंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष आऊंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

१६८. °तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अणागंता णामेगे सुमणे भवति,
अणागंता णामेगे दुम्मणे भवति,
अणागंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अनागत्य नामैकः सुमनाः भवति,
अनागत्य नामैकः दुर्मनाः भवति,
अनागत्य नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

१६८. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष न आने पर सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष न आने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष न आने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

१६६. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण एमीतेगे सुमणे भवति,
ण एमीतेगे दुम्मणे भवति,

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—नैमीत्येकः सुमनाः भवति,
नैमीत्येकः दुर्मनाः भवति,

१६६. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष न आता हूं इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष न आता हूं

ण एमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

नैमीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष न आता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२००. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण एस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण एस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण एस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
नैष्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
नैष्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
नैष्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२००. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष न आऊंगा इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष न आऊंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष न आऊंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

चिट्ठित्ता-अचिट्ठित्ता-पदं

स्थित्वा-अस्थित्वा-पदम्

स्थित्वा-अस्थित्वा-पद

२०१. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
चिट्ठित्ता णामेगे सुमणे भवति,
चिट्ठित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
चिट्ठित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्थित्वा नामैकः सुमनाः भवति,
स्थित्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
स्थित्वा नामैकः नो सुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२०१. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष ठहरने के बाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष ठहरने के बाद दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष ठहरने के बाद न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

२०२ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—चिट्ठामीतेगे सुमणे भवति,
चिट्ठामीतेगे दुम्मणे भवति,
चिट्ठामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
तिष्ठामीत्येकः सुमनाः भवति,
तिष्ठामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
तिष्ठामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२०२ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष ठहरता हूं इसलिए सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष ठहरता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष ठहरता हू, इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२०३ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
चिट्ठिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
चिट्ठिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
चिट्ठिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्थास्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
स्थास्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
स्थास्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२०३. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष ठहरूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष ठहरूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष ठहरूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२०४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अचिट्ठित्ता णामेगे सुमणे भवति,
अचिट्ठित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अचिट्ठित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अस्थित्वा नामैकः सुमनाः भवति,
अस्थित्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
अस्थित्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२०४. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष न ठहरने पर सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष न ठहरने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष न ठहरने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२०५. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण चिट्ठामीतेगे सुमणे भवति,
ण चिट्ठामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण चिट्ठामीतेगे णो सुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न तिष्ठामीत्येकः सुमना भवति,
न तिष्ठामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
न तिष्ठामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२०५. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष न ठहरता हूं इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष न ठहरता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष न ठहरता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२०६. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण चिट्ठिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण चिट्ठिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण चिट्ठिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न स्थास्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
न स्थास्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
न स्थास्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२०६. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष न ठहरूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष न ठहरूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष न ठहरूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

णिसिइत्ता-अणिसिइत्ता-पदं

निषद्य-अनिषद्य-पदम्

निषद्य-अनिषद्य-पद

२०७. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
णिसिइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
णिसिइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
णिसिइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
निषद्य नामैकः सुमनाः भवति,
निषद्य नामैकः दुर्मनाः भवति,
निषद्य नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२०७. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष बैठने के बाद सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष बैठने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष बैठने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

२०८. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—णिसीदामीतेगे सुमणे भवति,
णिसीदामीतेगे दुम्मणे भवति,
णिसीदामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति,

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—निषीदामीत्येकः सुमनाः भवति,
निषीदामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
निषीदामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२०८. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष बैठता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष बैठता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष बैठता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२०९. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
णिसीदिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
णिसीदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
णिसीदिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
निषत्स्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
निषत्स्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
निषत्स्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२०९. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष बैठूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष बैठूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष बैठूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२१०. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अणिसिइत्ता णामेगे सुमणे भवति,

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अनिषद्य नामैकः सुमनाः भवति,

२१०. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष न बैठने पर सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष न बैठने पर दुर्मनस्क

अणिसिइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अणिसिइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

अनिषद्य नामैकः दुर्मना भवति,
अनिषद्य नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

होते हैं, ३. कुछ पुरुष न बैठने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२११. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण णिसीदामीतेगे सुमणे भवति,
ण णिसीदामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण णिसीदामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न निषीदामीत्येकः सुमनाः भवति,
न निषीदामीत्येकः दुर्मना भवति,
न निषीदामीत्येक नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२११. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष न बैठता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष न बैठता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष न बैठता हूं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२१२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण णिसीदिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण णिसीदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण णिसीदिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न निषत्स्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
न निषत्स्यामीत्येक. दुर्मनाः भवति,
न निषत्स्यामीत्येक नोसुमनाः-नोदुर्मना. भवति।

२१२. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष नही बैठूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष नहीं बैठूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष नही बैठूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

हंता-अहंता-पदम्

हत्वा-अहत्वा-पदम्

हत्वा-अहत्वा-पद

२१३ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—हंता णामेगे सुमणे भवति,
हंता णामेगे दुम्मणे भवति,
हंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—हत्वा नामैक सुमनाः भवति,
हत्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
हत्वा नामैक. नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२१३. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष मारने के बाद सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष मारने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष मारने के बाद न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

२१४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
हणामीतेगे सुमणे भवति,
हणामीतेगे दुम्मणे भवति,
हणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
हन्मीत्येकः सुमना भवति,
हन्मीत्येक दुर्मनाः भवति,
हन्मीत्येक नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२१४ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष मारता हूं इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष मारता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष मारता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२१५. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
हणिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
हणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
हणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
हनिष्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
हनिष्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
हनिष्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२१५. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष मारूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष मारूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष मारूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२१६. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अहंता णामेगे सुमणे भवति, अहंता णामेगे दुम्मणे भवति, अहंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अहत्वा नामैकः सुमनाः भवति, अहत्वा नामैकः दुर्मनाः भवति, अहत्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२१६. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष न मारने पर सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष न मारने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष न मारने पर न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

२१७. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण हणामीतेगे सुमणे भवति, ण हणामीतेगे दुम्मणे भवति, ण हणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि,तद्यथा—न हन्मीत्येकः सुमनाः भवति, न हन्मीत्येकः दुर्मनाः भवति, न हन्मीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२१७. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष न मारता हूं इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष न मारता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष न मारता हूं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२१८. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण हणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण हणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण हणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—न हनिष्यामीत्येकः सुमनाः भवति, न हनिष्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति, न हनिष्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२१८. पुरुष तीन प्रकार के होते है—१. कुछ पुरुष न मारूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष न मारूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष न मारूंगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

छिंदित्ता-अछिंदित्ता-पदं

छित्त्वा-अछित्त्वा-पदम्

छित्त्वा-अछित्त्वा-पद

२१९. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—छिंदित्ता णामेगे सुमणे भवति, छिंदित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, छिंदित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—छित्त्वा नामैकः सुमनाः भवति, छित्त्वा नामैकः दुर्मनाः भवति, छित्त्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२१९. पुरुष तीन प्रकार के होते है—१. कुछ पुरुष छेदन करने के बाद सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष छेदन करने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष छेदन करने के बाद न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२०. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—छिंदामीतेगे सुमणे भवति, छिंदामीतेगे दुम्मणे भवति, छिंदामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—छिनद्मीत्येकः सुमनाः भवति, छिनद्मीत्येकः दुर्मनाः भवति, छिनद्मीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२२०. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष छेदन करता हूं इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष छेदन करता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष छेदन करता हूं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२१. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—छिंदिस्सामीतेगे सुमणे भवति,

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—छेत्स्यामीत्येकः सुमनाः भवति,

२२१. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष छेदन करूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष छेदन करूंगा

छिंदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
छिंदिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

छेत्स्यामीत्येक: दुर्मना: भवति,
छेत्स्यामीत्येक: नोसुमना:-नोदुर्मना: भवति।

इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष छेदन करूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अछिंदित्ता णामेगे सुमणे भवति,
अछिंदित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अछिंदित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अछित्त्वा नामैक: सुमना: भवति,
अछित्त्वा नामैक दुर्मना: भवति,
अछित्त्वा नामैक: नोसुमना-नोदुर्मना: भवति।

२२२. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष छेदन न करने पर सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष छेदन न करने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष छेदन न करने पर न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

२२३. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण छिंदामीतेगे सुमणे भवति,
ण छिंदामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण छिंदामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न छिनद्मीत्येक: सुमना: भवति,
न छिनद्मीत्येक. दुर्मना भवति,
न छिनद्मीत्येक. नोसुमना-नोदुर्मना: भवनि।

२२३. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष छेदन नही करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष छेदन नही करता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष छेदन नही करता हूं इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
ण छिंदिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण छिंदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण छिंदिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुपजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न छेत्स्यामीत्येक. सुमना: भवति,
न छेत्स्यामीत्येक: दुर्मना: भवति,
न छेत्स्यामीत्येक: नोसुमना:-नोदुर्मना: भवति।

२२४. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष छेदन नही करूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष छेदन नही करूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष छेदन नही करूगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

बूइत्ता-अबूइत्ता-पदं

उक्त्वा-अनुक्त्वा-पदम्

उक्त्वा-अनुक्त्वा-पद

२२५. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
बूइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
बूइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
बूइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उक्त्वा नामैक: सुमना: भवति,
उक्त्वा नामैक: दुर्मना: भवति,
उक्त्वा नामैक: नोसुमना:-नोदुर्मना: भवति।

२२५. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष बोलने के बाद सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष बोलने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष बोलने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२६. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
बेमीतेगे सुमणे भवति,
बेमीतेगे दुम्मणे भवति,

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ब्रवीमीत्येक: सुमना: भवति,
ब्रवीमीत्येक: दुर्मना: भवति,

२२६. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष बोलता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष बोलता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष बोलता हूं

बेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति,

ब्रवीमीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२७. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
बोच्छामीतेगे सुमणे भवति,
बोच्छामीतेगे दुम्मणे भवति,
बोच्छामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वक्ष्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
वक्ष्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
वक्ष्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२२७. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष बोलूगा इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष बोलूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष बोलूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२२८. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अबूइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
अबूइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अबूइत्ता णामेगे णोसुमणे-णो दुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अनुक्त्वा नामैकः सुमनाः भवति,
अनुक्त्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
अनुक्त्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२२८. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष न बोलने पर सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष न बोलने पर दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष न बोलने पर न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

२२९. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण बेमीतेगे सुमणे भवति,
ण बेमीतेगे दुम्मणे भवति,
ण बेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न ब्रवीमीत्येकः सुमनाः भवति,
न ब्रवीमीत्येकः दुर्मनाः भवति,
न ब्रवीमीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२२९. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष बोलता नही हू इसलिए सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष बोलता नही हू इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३ कुछ पुरुष बोलता नही हू इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

२३०. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण बोच्छामीतेगे सुमणे भवति,
ण बोच्छामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण बोच्छामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न वक्ष्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
न वक्ष्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
न वक्ष्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२३०. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष नही बोलूगा इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष नही बोलूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष नही बोलूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

भासित्ता-अभासित्ता-पदम्

भाषित्वा-अभाषित्वा-पदम्

भाषित्वा-अभाषित्वा-पद

२३१. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
भासित्ता णामेगे सुमणे भवति,
भासित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
भासित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भाषित्वा नामैकः सुमनाः भवति,
भाषित्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
भाषित्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२३१. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष सभाषण करने के बाद सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष संभाषण करने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष सभाषण करने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२३२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
भासामीतेगे सुमणे भवति,
भासामीतेगे दुम्मणे भवति,
भासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भाषे इत्येकः सुमनाः भवति,
भाषे इत्येकः दुर्मनाः भवति,
भाषे इत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२३२. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष संभाषण करता हूं इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष संभाषण करता हू, इसलिए दुर्मनस्क होते हैं ३. कुछ पुरुष संभाषण करता हूं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२३२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
भासिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
भासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
भासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भाषिष्ये इत्येक सुमनाः भवति,
भाषिष्ये इत्येकः दुर्मनाः भवति,
भाषिष्ये इत्येक. नोसुमनाः-नोदुर्मना भवति।

२३३. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष संभाषण करूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष संभाषण करूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष संभाषण करूंगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

२३४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अभासित्ता णामेगे सुमणे भवति,
अभासित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अभासित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अभाषित्वा नामैक. सुमना. भवति,
अभाषित्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
अभाषित्वा नामैक. नोसुमना-नोदुर्मनाः भवति।

२३४. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष संभाषण न करने पर सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष संभाषण न करने पर दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष संभाषण न करने पर न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

२३५ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
ण भासामीतेगे सुमणे भवति,
ण भासामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण भासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न भाषे इत्येक. सुमना भवति,
न भाषे इत्येकः दुर्मनाः भवति,
न भाषे इत्येकः नोसुमना-नोदुर्मनाः भवति।

२३५. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष संभाषण नही करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष संभाषण नही करता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष संभाषण नही करता हूं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२३६. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण भासिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण भासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण भासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न भाषिष्ये इत्येकः सुमनाः भवति,
न भाषिष्ये इत्येक दुर्मनाः भवति,
न भाषिष्ये इत्येकः नोसुमनाः-नो दुर्मनाः भवति।

२३६. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष संभाषण नही करूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष संभाषण नही करूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष संभाषण नही करूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

दच्चा-अदच्चा-पदं

२३७. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दच्चा णामेगे सुमणे भवति, दच्चा णामेगे दुम्मणे भवति, दच्चा णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२३८. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— देमीतेगे सुमणे भवति, देमीतेगे दुम्मणे भवति, देमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२३९. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— दासामीतेगे सुमणे भवति, दासामीतेगे दुम्मणे भवति, दासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२४०. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— अदच्चा णामेगे सुमणे भवति, अदच्चा णामेगे दुम्मणे भवति, अदच्चा णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२४१. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— ण देमीतेगे सुमणे भवति, ण देमीतेगे दुम्मणे भवति, ण देमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२४२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— ण दासामीतेगे सुमणे भवति,

दत्त्वा-अदत्त्वा-पदम्

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—दत्त्वा नामैकः सुमनाः भवति, दत्त्वा नामैकः दुर्मनाः भवति, दत्त्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मना. भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— ददामीत्येकः सुमनाः भवति, ददामीत्येकः दुर्मना. भवति, ददामीत्येकः नोमुमना.-नोदुर्मनाः भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— दास्यामीत्येकः सुमनाः भवति, दास्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति, दास्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— अदत्त्वा नामैकः सुमनाः भवति, अदत्त्वा नामैकः दुर्मनाः भवति, अदत्त्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानिः तद्यथा— न ददामीत्येकः सुमनाः भवति, न ददामीत्येकः दुर्मनाः भवति, न ददामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— न दास्यामीत्येकः सुमनाः भवति,

दत्त्वा-अदत्त्वा-पद

२३७. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १. कुछ पुरुष देने के बाद सुमनस्क होते हैं २. कुछ पुरुष देने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष देने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२३८. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १. कुछ पुरुष देता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष देता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं ३. कुछ पुरुष देता हू इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

२३९. पुरुष तीन प्रकार के होते है— १. कुछ पुरुष देऊगा इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष देऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष देऊगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२४०. पुरुष तीन प्रकार के होते है— १. कुछ पुरुष न देने पर सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष न देने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष न देने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२४१. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १. कुछ पुरुष देता नही हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष देता नही हूं इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष देता नही हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२४२. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १. कुछ पुरुष नही देऊंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष नहीं

ण दासामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण दासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

न दास्यामीत्येकः दुर्मना. भवति,
न दास्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

देऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष नही देऊगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

भुंजित्ता-अभुंजित्ता-पदम्

भुक्त्वा-अभुक्त्वा-पदम्

भुक्त्वा-अभुक्त्वा-पद

२४३. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
भुंजित्ता णामेगे सुमणे भवति,
भुंजित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
भुंजित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भुक्त्वा नामैकः सुमना. भवति,
भुक्त्वा नामैकः दुर्मना. भवति,
भुक्त्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मना भवति।

२४३. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष भोजन करने के बाद सुमनस्क होते हैं, कुछ पुरुष भोजन करने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष भोजन करने के बाद न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

२४४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा।
भुंजामीतेगे सुमणे भवति,
भुंजामीतेगे दुम्मणे भवति,
भुंजामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भुनज्मीत्येक सुमनाः भवति,
भुनज्मीत्येक दुर्मना भवति,
भुनज्मीत्येक नोसुमना-नोदुर्मनाः भवति।

२४४. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष भोजन करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष भोजन करता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष भोजन करता हू इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

२४५. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
भुंजिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
भुंजिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
भुंजिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भोक्ष्यामीत्येक. सुमनाः भवति,
भोक्ष्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
भोक्ष्यामीत्येकः नोसुमना.-नोदुर्मनाः भवति।

२४५. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष भोजन करूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष भोजन करूगा इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष भोजन करूगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

२४६. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अभुंजित्ता णामेगे सुमणे भवति,
अभुंजित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अभुंजित्ता णामेगे, णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अभुक्त्वा नामैकः सुमनाः भवति,
अभुक्त्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
अभुक्त्वा नामैक नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२४६. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष भोजन न करने पर सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष भोजन न करने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष भोजन न करने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२४७. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण भुंजामीतेगे सुमणे भवति,
ण भुंजामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण भुंजामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे

त्रीणि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न भुनज्मीत्येकः सुमनाः भवति,
न भुनज्मीत्येकः दुर्मनाः भवति,
न भुनज्मीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः

२४७. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष भोजन नही करता हूं इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष भोजन नही करता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष भोजन नही करता

भवति। | भवति। | हैं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२४८. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण भुंजिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण भुंजिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण भुंजिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न भोक्ष्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
न भोक्ष्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
न भोक्ष्यामीत्येकः नोसुमना:-नोदुर्मनाः भवति।

२४८. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष भोजन नहीं करूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष भोजन नहीं करूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष भोजन नहीं करूंगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

लभित्ता-अलभित्ता-पदं

लब्ध्वा-अलब्ध्वा-पदम्

लब्ध्वा-अलब्ध्वा-पद

२४९. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
लभित्ता णामेगे सुमणे भवति,
लभित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
लभित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
लब्ध्वा नामैकः सुमना भवति,
लब्ध्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
लब्ध्वा नामैकः नोसुमना:-नोदुर्मनाः भवति।

२४९. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष प्राप्त करने के बाद सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष प्राप्त करने के बाद दुर्मनस्क होते है, ३ कुछ पुरुष प्राप्त करने के बाद न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

२५०. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
लभामीतेगे सुमणे भवति,
लभामीतेगे दुम्मणे भवति,
लभामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
लभे इत्येकः सुमनाः भवति,
लभे इत्येकः दुर्मनाः भवति,
लभे इत्येकः नोसुमना:-नोदुर्मनाः भवति।

२५०. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष प्राप्त करता हूं इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष प्राप्त करता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष प्राप्त करता हूं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

२५१. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
लभिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
लभिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
लभिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
लप्स्ये इत्येकः सुमनाः भवति,
लप्स्ये इत्येकः दुर्मनाः भवति,
लप्स्ये इत्येकः नोसुमना:-नोदुर्मनाः भवति।

२५१. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष प्राप्त करूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष प्राप्त करूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष प्राप्त करूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२५२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अलभित्ता णामेगे सुमणे भवति,
अलभित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अलभित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अलब्ध्वा नामैकः सुमनाः भवति,
अलब्ध्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
अलब्ध्वा नामैकः नोसुमना:-नोदुर्मनाः भवति।

२५२. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष प्राप्त न करने पर सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष प्राप्त न करने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष प्राप्त न करने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२५३. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण लभामीतेगे सुमणे भवति,
ण लभामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण लभामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न लभे इत्येकः सुमनाः भवति,
न लभे इत्येकः दुर्मनाः भवति,
न लभे इत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति,

२५३. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष प्राप्त नही करता हूं इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष प्राप्त नही करता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष प्राप्त नही करता हूं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

२५४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण लभिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण लभिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण लभिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न लप्स्ये इत्येकः सुमनाः भवति,
न लप्स्ये इत्येकः दुर्मना भवति,
न लप्स्ये इत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२५४. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष प्राप्त नही करूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष प्राप्त नही करूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष प्राप्त नही करूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

पिबित्ता-अपिबित्ता-पदं

पीत्वा-अपीत्वा-पदम्

पीत्वा-अपीत्वा-पद

२५५. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पिबित्ता णामेगे सुमणे भवति,
पिबित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
पिबित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पीत्वा नामैकः सुमनाः भवति,
पीत्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
पीत्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२५५. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष पीने के बाद सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष पीने के बाद दुर्मनस्क होते है ३. कुछ पुरुष पीने के बाद न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

२५६. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पिबामीतेगे सुमणे भवति,
पिबामीतेगे दुम्मणे भवति,
पिबामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पिबामीत्येकः सुमनाः भवति,
पिबामीत्येकः दुर्मना भवति,
पिबामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२५६. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष पीता हूं इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष पीता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष पीता हूं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२५७. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पिबिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
पिबिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
पिबिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पास्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
पास्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
पास्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२५७. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष पीऊंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष पीऊंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष पीऊंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२५८. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

२५८. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष न पीने पर सुमनस्क होते हैं,

अपिबित्ता णामेगे सुमणे भवति,
अपिबित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अपिबित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

अपीत्वा नामैकः सुमना भवति,
अपीत्वा नामैकः दुर्मना भवति,
अपीत्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति ।

२. कुछ पुरुष न पीने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष न पीने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२५९. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण पिबामीतेगे सुमणे भवति,
ण पिबामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण पिबामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न पिबामीत्येकः सुमनाः भवति,
न पिबामीत्येकः दुर्मना भवति,
न पिबामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति ।

२५९. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष नही पीता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष नही पीता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष नही पीता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

२६०. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण पिबिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण पिबिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण पिबिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न पास्यामीत्येकः सुमना भवति,
न पास्यामीत्येकः दुर्मना भवति,
न पास्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मना भवति ।

२६०. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष नही पीऊगा इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष नही पीऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष नही पीऊगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

सुइत्ता-असुइत्ता-पदं

सुप्त्वा-असुप्त्वा-पदम्

सुप्त्वा-असुप्त्वा-पद

२६१. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
सुइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
सुइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सुप्त्वा नामैकः सुमना भवति,
सुप्त्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
सुप्त्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति ।

२६१. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष सोने के बाद सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष सोने के बाद दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष सोने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

२६२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुआमीतेगे सुमणे भवति,
सुआमीतेगे दुम्मणे भवति,
सुआमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्वपिमीत्येकः सुमना भवति,
स्वपिमीत्येकः दुर्मनाः भवति,
स्वपिमीत्येकः नोसुमना-नोदुर्मनाः भवति ।

२६२. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष सोता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष सोता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष सोता हूं इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

२६३. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुइस्सामीतेगे सुमणे भवति,
सुइस्सामीतेगे, दुम्मणे भवति,

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्वप्स्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
स्वप्स्यामीत्येकः दुर्मना भवति,

२६३. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष सोऊगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष सोऊगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष सोऊंगा

सुइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।
स्वप्स्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति ।
इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।

२६४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
असुइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
असुइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
असुइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
असुप्त्वा नामैकः सुमनाः भवति,
असुप्त्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
असुप्त्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति ।

२६४. पुरुष तीन प्रकार के होते है —
१. कुछ पुरुष न सोने पर सुमनस्क होते हैं,
२. कुछ पुरुष न सोने पर दुर्मनस्क होते हैं,
३ कुछ पुरुष न सोने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है ।

२६५. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण सुआमीतेगे सुमणे भवति,
ण सुआमीतेगे दुम्मणे भवति,
ण सुआमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न स्वपिमीत्येकः सुमनाः भवति,
न स्वपिमीत्येकः दुर्मना भवति,
न स्वपिमीत्येक नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति ।

२६५. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष सोता नहीं हूं इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष सोता नही हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष सोता नही हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है ।

२६६. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
ण सुइस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण सुइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण सुइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न स्वप्स्यामीत्येकः सुमना भवति,
न स्वप्स्यामीत्येक दुर्मना भवति,
न स्वप्स्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति ।

२६६. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष नही सोऊंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष नहीं सोऊंगा इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष नही सोऊंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।

जुज्झित्ता-अजुज्झित्ता-पदं

युद्ध्वा-अयुद्ध्वा-पदम्

युद्ध्वा-अयुद्ध्वा-पद

२६७. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुज्झित्ता णामेगे सुमणे भवति,
जुज्झित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
जुज्झित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युद्ध्वा नामैकः सुमनाः भवति,
युद्ध्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
युद्ध्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति ।

२६७. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष युद्ध करने के बाद सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष युद्ध करने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष युद्ध करने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।

२६८. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
जुज्झामीतेगे सुमणे भवति,
जुज्झामीतेगे दुम्मणे भवति,
जुज्झामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानिः, तद्यथा—
युद्ध्ये इत्येक. सुमना. भवति,
युद्ध्ये इत्येकः दुर्मनाः भवति,
युद्ध्ये इत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति ।

२६८. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष युद्ध करता हूं इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष युद्ध करता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष युद्ध करता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।

२६९. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुज्झिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
जुज्झिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
जुज्झिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि तद्यथा—
योत्स्ये इत्येकः सुमनाः भवति,
योत्स्ये इत्येकः दुर्मनाः भवति,
योत्स्ये इत्येकः नोसुमना-नोदुर्मनाः भवति।

२६९. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष युद्ध करूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष युद्ध करूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष युद्ध करूंगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

२७०. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अजुज्झित्ता णामेगे सुमणे भवति,
अजुज्झित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अजुज्झित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अयुद्ध्वा नामैकः सुमनाः भवति,
अयुद्ध्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
अयुद्ध्वा नामैकः नोसुमना-नोदुर्मनाः भवति।

२७०. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष युद्ध न करने पर सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष युद्ध न करने पर दुर्मनस्क होते है, ३ कुछ पुरुष युद्ध न करने पर न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

२७१. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण जुज्झामीतेगे सुमणे भवति,
ण जुज्झामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण जुज्झामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न युद्ध्ये इत्येकः सुमनाः भवति,
न युद्ध्ये इत्येकः दुर्मनाः भवति,
न युद्ध्ये इत्येकः नोसुमना-नोदुर्मनाः भवति।

२७१. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष युद्ध नही करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष युद्ध नही करता हू इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३ कुछ पुरुष युद्ध नही करता हू इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

२७२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण जुज्झिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण जुज्झिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण जुज्झिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न योत्स्ये इत्येकः सुमनाः भवति,
न योत्स्ये इत्येकः दुर्मनाः भवति,
न योत्स्ये इत्येकः नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२७२. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष युद्ध नही करूंगा इसलिए सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष युद्ध नही करूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष युद्ध नही करूंगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

जइत्ता-अजइत्ता-पदं

जित्वा-अजित्वा-पदम्

जित्वा-अजित्वा-पद

२७३. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—जइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
जइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
जइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जित्वा नामैकः सुमनाः भवति,
जित्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
जित्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मना भवति।

२७३. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष जीतने के बाद सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष जीतने के बाद दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष जीतने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२७४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जिणामीतेगे सुमणे भवति,

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जयामीत्येकः सुमनाः भवति,

२७४. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जीतता हूं इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष जीतता हूं इसलिए

जिणामीतेगे दुम्मणे भवति,
जिणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे
भवति ।

जयामीत्येक दुर्मनाः भवति,
जयामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मना
भवति ।

दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष जीतता हूं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२७५. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जिणिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
जिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
जिणिस्सामीतेगे णोसुमणे-
णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जेष्यामीत्येकः सुमना. भवति,
जेष्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
जेष्यामीत्येक नोसुमनाः-नोदुर्मनाः
भवति ।

२७५. पुरुष तीन प्रकार के होते है। १. कुछ पुरुष जीतूंगा इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष जीतूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष जीतूंगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

२७६ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अजइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
अजइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अजइत्ता णामेगे णोसुमणे-
णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अजित्वा नामैकः सुमनाः भवति,
अजित्वा नामैक दुर्मना भवति,
अजित्वा नामैक नोसुमनाः-नोदुर्मना.
भवति ।

२७६. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १. कुछ पुरुष न जीतने पर सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष न जीतने पर दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष न जीतने पर न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

२७७. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण जिणामीतेगे सुमणे भवति,
ण जिणामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण जिणामीतेगे णोसुमणे-
णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न जयामीत्येकः सुमनाः भवति,
न जयामीत्येकः दुर्मना भवति,
न जयामीत्येकः नोसुमना.-नोदुर्मना
भवति ।

२७७. पुरुष तीन प्रकार के होते है— १. कुछ पुरुष जीतता नही हू इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष जीतता नही हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष जीतता नही हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२७८. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण जिणिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण जिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण जिणिस्सामीतेगे णोसुमणे-
णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न जेष्यामीत्येक. सुमनाः भवति,
न जेष्यामीत्येकः दुर्मना. भवति,
न जेष्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः
भवति ।

२७८. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १. कुछ पुरुष नही जीतूंगा इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष नही जीतूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष नही जीतूंगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

पराजिणित्ता-अपराजिणित्ता-पदं / पराजित्य-अपराजित्य-पदम् / पराजित्य-अपराजित्य-पद

२७९ तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पराजिणित्ता णामेगे सुमणे भवति,
पराजिणित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
पराजिणित्ता णामेगे णोसुमणे-

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पराजित्य नामैकः सुमनाः भवति,
पराजित्य नामैकः दुर्मनाः भवति,
पराजित्य नामैक. नोसुमना.-

२७९. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं— १. कुछ पुरुष पराजित करने के बाद सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष पराजित करने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष पराजित करने के बाद न सुमनस्क

णोदुम्मणे भवति ।

नोदुर्मनाः भवति ।

हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।

२८०. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पराजिणामीतेगे सुमणे भवति,
पराजिणामीतेगे दुम्मणे भवति,
पराजिणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पराजये इत्येकः सुमनाः भवति,
पराजये इत्येकः दुर्मनाः भवति,
पराजये इत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति ।

२८०. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष पराजित करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष पराजित करता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष पराजित करता हूं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है ।

२८१. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पराजिणिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
पराजिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
पराजिणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पराजेष्ये इत्येकः सुमनाः भवति,
पराजेष्ये इत्येकः दुर्मनाः भवति,
पराजेष्ये इत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति ।

२८१. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष पराजित करूंगा इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष पराजित करूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष पराजित करूंगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है ।

२८२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अपराजिणित्ता णामेगे सुमणे भवति,
अपराजिणित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
अपराजिणित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अपराजित्य नामैकः सुमनाः भवति,
अपराजित्य नामैकः दुर्मनाः भवति,
अपराजित्य नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति ।

२८२. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष पराजित नही करने पर सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष पराजित नही करने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष पराजित नही करने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।

२८३. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण पराजिणामीतेगे सुमणे भवति,
ण पराजिणामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण पराजिणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न पराजये इत्येकः सुमनाः भवति,
न पराजये इत्येकः दुर्मनाः भवति,
न पराजये इत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति ।

२८३. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष पराजित नहीं करता हू इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष पराजित नही करता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष पराजित नही करता हू इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं ।

२८४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
ण पराजिणिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
ण पराजिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
ण पराजिणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति ।°

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
न पराजेष्ये इत्येकः सुमनाः भवति,
न पराजेष्ये इत्येकः दुर्मनाः भवति,
न पराजेष्ये इत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति ।

२८४. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष पराजित नही करूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष पराजित नही करूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष पराजित नही करूंगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं ।

सुणेत्ता-असुणेत्ता-पदं

२८५. *तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सद्दं सुणेत्ता णामेगे सुमणे भवति,
सद्दं सुणेत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
सद्दं सुणेत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२८६. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सद्दं सुणामीतेगे सुमणे भवति,
सद्दं सुणामीतेगे दुम्मणे भवति,
सद्दं सुणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२८७. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सद्दं सुणिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
सद्दं सुणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
सद्दं सुणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२८८. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
सद्दं असुणेत्ता णामेगे सुमणे भवति,
सद्दं असुणेत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
सद्दं असुणेत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

२८९. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सद्दं ण सुणामीतेगे सुमणे भवति,
सद्दं ण सुणामीतेगे दुम्मणे भवति,
सद्दं ण सुणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

श्रुत्वा-अश्रुत्वा-पदम्

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शब्द श्रुत्वा नामैकः सुमनाः भवति,
शब्द श्रुत्वा नामैक. दुर्मनाः भवति,
शब्द श्रुत्वा नामैक. नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शब्द शृणोमीत्येक सुमना. भवति,
शब्द शृणोमीत्येक दुर्मना भवति,
शब्द शृणोमीत्येक नोसुमना.-नोदुर्मना भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शब्द श्रोष्यामीत्येकः सुमना भवति,
शब्द श्रोष्यामीत्येक. दुर्मनाः भवति,
शब्द श्रोष्यामीत्येक नोसुमना-नोदुर्मनाः भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शब्द अश्रुत्वा नामैकः सुमना. भवति,
शब्द अश्रुत्वा नामैक. दुर्मना भवति,
शब्दं अश्रुत्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शब्दं न शृणोमीत्येक. सुमनाः भवति,
शब्दं न शृणोमीत्येकः दुर्मनाः भवति,
शब्दं न शृणोमीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

श्रुत्वा-अश्रुत्वा-पद

२८५. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष शब्द सुनने के बाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष शब्द सुनने के बाद दुर्मनस्क होते है, ३ कुछ पुरुष शब्द सुनने के बाद न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

२८६ पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष शब्द सुनता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष शब्द सुनता हू इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३ कुछ पुरुष शब्द सुनता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

२८७ पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष शब्द सुनूगा इसलिए सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष शब्द सुनूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष शब्द सुनूगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

२८८ पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष शब्द नही सुनने पर सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष शब्द नही सुनने पर दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष शब्द नही सुनने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२८९. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनता हूं इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष शब्द नही सुनता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२६०. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सद्दं ण सुणिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
सद्दं ण सुणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
सद्दं ण सुणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।°

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शब्द न श्रोष्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
शब्द न श्रोष्यामीत्येकः दुर्मना भवति,
शब्द न श्रोष्यामीत्येक नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२६०. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शब्द नही सुनूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष शब्द नहीं सुनूगा इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३ कुछ पुरुष शब्द नही सुनूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

पासित्ता-अपासित्ता-पदं

दृष्ट्वा-अदृष्ट्वा-पदम्

दृष्ट्वा-अदृष्ट्वा-पद

२६१. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवं पासित्ता णामेगे सुमणे भवति,
रूवं पासित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
रूवं पासित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपं दृष्ट्वा नामैकः सुमनाः भवति,
रूपं दृष्ट्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
रूपं दृष्ट्वा नामैक. नोसुमना -नोदुर्मना भवति।

२६१ पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष रूप देखने के बाद सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष रूप देखने के बाद दुर्मनस्क होते है, ३ कुछ पुरुष रूप देखने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२६२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवं पासामीतेगे सुमणे भवति,
रूवं पासामीतेगे दुम्मणे भवति,
रूवं पासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूप पश्यामीत्येक सुमना. भवति,
रूपं पश्यामीत्येक. दुर्मनाः भवति,
रूपं पश्यामीत्येक. नोसुमनाः-नोदुर्मना भवति।

२६२ पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष रूप देखता हू इसलिए सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष रूप देखता हू इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३ कुछ पुरुष रूप देखता हू इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

२६३. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवं पासिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
रूवं पासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
रूवं पासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपं द्रक्ष्यामीत्येकः सुमना भवति,
रूप द्रक्ष्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
रूप द्रक्ष्यामीत्येक. नोसुमना-नोदुर्मना भवति।

२६३ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष रूप देखूगा इसलिए सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष रूप देखूगा इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३ कुछ पुरुष रूप देखूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२६४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—
रूवं अपासित्ता णामेगे सुमणे भवति,
रूवं अपासित्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
रूवं अपासित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपं अदृष्ट्वा नामैकः सुमनाः भवति,
रूप अदृष्ट्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
रूपं अदृष्ट्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२६४ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रूप न देखने पर सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष रूप न देखने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष रूप न देखने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२९५. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवं ण पासामीतेगे सुमणे भवति,
रूवं ण पासामीतेगे दुम्मणे भवति,
रूवं ण पासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपं न पश्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
रूपं न पश्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
रूपं न पश्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२९५. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष रूप नहीं देखता हूं इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष रूप नहीं देखता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष रूप नहीं देखता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२९६. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवं ण पासिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
रूवं ण पासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
रूवं ण पासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपं न द्रक्ष्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
रूपं न द्रक्ष्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
रूपं न द्रक्ष्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२९६. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष रूप नहीं देखूंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष रूप नहीं देखूंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष रूप नहीं देखूंगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

अग्घाइत्ता-अणग्घाइत्ता-पदं

घ्रात्वा-अघ्रात्वा-पदम्

घ्रात्वा-अघ्रात्वा-पद

२९७. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
गंधं अग्घाइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
गंधं अग्घाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
गंधं अग्घाइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गन्धं घ्रात्वा नामैकः सुमनाः भवति,
गन्धं घ्रात्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
गन्धं घ्रात्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२९७. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष गंध लेने के बाद सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष गंध लेने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष गंध लेने के बाद न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

२९८. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
गंधं अग्घामीतेगे सुमणे भवति,
गंधं अग्घामीतेगे दुम्मणे भवति,
गंधं अग्घामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गन्धं जिघ्रामीत्येकः सुमनाः भवति,
गन्धं जिघ्रामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
गन्धं जिघ्रामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

२९८. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष गंध लेता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष गंध लेता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष गंध लेता हूं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

२९९. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
गंधं अग्घाइस्सामीतेगे सुमणे भवति,

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गन्धं घ्रास्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
गन्धं घ्रास्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,

२९९. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष गंध लेऊंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष गंध लेऊंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष गंध लेऊंगा

गंधं अग्घाइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
गंधं अग्घाइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

गन्धं घ्रास्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

३००. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
गंधं अणग्घाइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
गंधं अणग्घाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
गंधं अणग्घाइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गन्धं अघ्रात्वा नामैकः सुमनाः भवति,
गन्धं अघ्रात्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
गन्धं अघ्रात्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

३०० पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष गंध नहीं लेने पर सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष गंध नही लेने पर दुर्मनस्क होते है, ३ कुछ पुरुष गंध नही लेने पर न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

३०१. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
गंधं ण अग्घामीतेगे सुमणे भवति,
गंधं ण अग्घामीतेगे दुम्मणे भवति,
गंधं ण अग्घामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गन्धं न जिघ्रामीत्येकः सुमनाः भवति,
गन्धं न जिघ्रामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
गन्धं न जिघ्रामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

३०१ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष गंध नही लेता हूं इसलिए सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष गंध नही लेता हू इसलिए दुर्मनस्क होते है, ३ कुछ पुरुष गंध नही लेता हूं इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

३०२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
गंधं ण अग्घाइस्सामीतेगे सुमणे भवति,
गंधं ण अग्घाइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
गंधं ण अग्घाइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गन्धं न घ्रास्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
गन्धं न घ्रास्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
गन्धं न घ्रास्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

३०२ पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष गंध नही लेऊंगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष गंध नही लेऊंगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष गंध नही लेऊंगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

आसाइत्ता-अणासाइत्ता-पदं

आस्वाद्य-अनास्वाद्य-पदम्

आस्वाद्य-अनास्वाद्य-पद

३०३. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रसं आसाइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
रसं आसाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
रसं आसाइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रसं आस्वाद्य नामैकः सुमनाः भवति,
रसं आस्वाद्य नामैकः दुर्मनाः भवति,
रसं आस्वाद्य नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

३०३ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रस चखने के बाद सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष रस चखने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष रस चखने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३०४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रसं आसादेमीतेगे सुमणे भवति,
रसं आसादेमीतेगे दुम्मणे भवति,
रसं आसादेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रस आस्वादयामीत्येकः सुमनाः भवति,
रस आस्वादयामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
रस आस्वादयामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

३०४. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष रस चखता हूं इसलिए सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष रस चखता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष रस चखता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

३०५. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रसं आसादिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
रसं आसादिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
रसं आसादिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रस आस्वादयिष्यामीत्येकः सुमना. भवति,
रसं आस्वादयिष्यामीत्येकः दुर्मना भवति,
रस आस्वादयिष्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मना भवति।

३०५ पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष रस चखूगा इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष रस चखूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष रस चखूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३०६. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रसं अणासाइत्ता णामेगे सुमणे भवति,
रसं अणासाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
रसं अणासाइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रस अनास्वाद्य नामैकः सुमनाः भवति,
रस अनास्वाद्य नामैकः दुर्मना. भवति,
रस अनास्वाद्य नामैक. नोसुमनाः-नोदुर्मना. भवति।

३०६. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रस न चखने पर सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष रस न चखने पर दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष रस न चखने पर न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३०७. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रसं ण आसादेमीतेगे सुमणे भवति,
रसं ण आसादेमीतेगे दुम्मणे भवति,
रसं ण आसादेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रस नास्वादयामीत्येकः सुमनाः भवति,
रस नास्वादयामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
रस नास्वादयामीत्येकः नोसुमना.-नोदुर्मनाः भवति।

३०७. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रस नही चखता हूं इसलिए सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष रस नही चखता हूं इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष रस नहीं चखता हूं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

३०८. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रसं ण आसादिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
रसं ण आसादिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति.
रसं ण आसादिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रस नास्वादयिष्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
रस नास्वादयिष्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
रस नास्वादयिष्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

३०८ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष रस नही चखूगा इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष रस नहीं चखूगा इसलिए दुर्मनस्क होते है ३ कुछ पुरुष रस नही चखूगा इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

फासेत्ता-अफासेत्ता-पदं

३०९. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
फासं फासेत्ता णामेगे सुमणे भवति,
फासं फासेत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
फासं फासेत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

३१०. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
फासं फासेमीतेगे सुमणे भवति,
फासं फासेमीतेगे दुम्मणे भवति,
फासं फासेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

३११. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
फासं फासिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
फास फासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
फासं फासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

३१२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
फासं अफासेत्ता णामेगे सुमणे भवति,
फासं अफासेत्ता णामेगे दुम्मणे भवति,
फासं अफासेत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

३१३. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
फासं ण फासेमीतेगे सुमणे भवति,
फासं ण फासेमीतेगे दुम्मणे भवति,
फासं ण फासेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

स्पृष्ट्वा-अस्पृष्ट्वा-पदम्

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्पर्शं स्पृष्ट्वा नामैकः सुमनाः भवति,
स्पर्शं स्पृष्ट्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
स्पर्शं स्पृष्ट्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्पर्शं स्पृशामीत्येकः सुमनाः भवति,
स्पर्शं स्पृशामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
स्पर्शं स्पृशामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्पर्शं स्प्रक्ष्यामीत्येकः सुमनाः भवति,
स्पर्शं स्प्रक्ष्यामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
स्पर्शं स्प्रक्ष्यामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्पर्शं अस्पृष्ट्वा नामैकः सुमनाः भवति,
स्पर्शं अस्पृष्ट्वा नामैकः दुर्मनाः भवति,
स्पर्शं अस्पृष्ट्वा नामैकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्पर्शं न स्पृशामीत्येकः सुमनाः भवति,
स्पर्शं न स्पृशामीत्येकः दुर्मनाः भवति,
स्पर्शं न स्पृशामीत्येकः नोसुमनाः-नोदुर्मनाः भवति।

स्पृष्ट्वा-अस्पृष्ट्वा-पद

३०९ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष स्पर्श करने के बाद सुमनस्क होते हैं, २ कुछ पुरुष स्पर्श करने के बाद दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष स्पर्श करने के बाद न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते है।

३१०. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष स्पर्श करता हू इसलिए सुमनस्क होते है, २ कुछ पुरुष स्पर्श करता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष स्पर्श करता हू इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३११. पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष स्पर्श करूगा इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष स्पर्श करूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३ कुछ पुरुष स्पर्श करूगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते है।

३१२ पुरुष तीन प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष स्पर्श न करने पर सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष स्पर्श न करने पर दुर्मनस्क होते है, ३. कुछ पुरुष स्पर्श न करने पर न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

३१३ पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष स्पर्श नही करता हू इसलिए सुमनस्क होते हैं, २. कुछ पुरुष स्पर्श नही करता हू इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष स्पर्श नही करता हूं इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

३१४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
फासं ण फासिस्सामीतेगे सुमणे भवति,
फासं ण फासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति,
फासं ण फासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति°।

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्पर्शं न स्प्रक्ष्यामीत्येक: सुमना: भवति,
स्पर्शं न स्प्रक्ष्यामीत्येक: दुर्मना: भवति,
स्पर्शं न स्प्रक्ष्यामीत्येक: नोसुमना:-नोदुर्मना: भवति।

३१४. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष स्पर्श नहीं करूंगा इसलिए सुमनस्क होते है, २. कुछ पुरुष स्पर्श नहीं करूगा इसलिए दुर्मनस्क होते हैं, ३. कुछ पुरुष स्पर्श नही करूगा इसलिए न सुमनस्क होते है और न दुर्मनस्क होते हैं।

गरहिअ-पदं

३१५. तओ ठाणा णिसीलस्स णिव्वयस्स णिग्गुणस्स णिम्मेरस्स णिप्पच्चक्खाणपोसहोववासस्स गरहिता भवंति, तं जहा—
अस्सिं लोगे गरहिते भवइ,
उववाते गरहिते भवइ,
आयाती गरहिता भवइ।

गर्हित-पदम्

त्रीणि स्थानानि नि:शीलस्य निर्व्रतस्य निर्गुणस्य निर्मर्यादस्य निष्प्रत्याख्यान-पोषधोपवासस्य गर्हितानि भवन्ति, तद्यथा—
अयं लोको गर्हितो भवति,
उपपातो गर्हितो भवति,
आजाति: गर्हिता भवति।

गर्हित-पद

३१५. शील, व्रत, गुण, मर्यादा, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से रहित पुरुष के तीन स्थान गर्हित होते हैं—
१. इहलोक [वर्तमान] गर्हित होता है, २. उपपात [देवलोक तथा नर्क का जन्म] गर्हित होता है, ३. आगामी जन्म [देवलोक या नरक के बाद होने वाला मनुष्य या तिर्यञ्च का जन्म] गर्हित होता है।

पसत्थ-पदं

३१६. तओ ठाणा सुसीलस्स सुव्वयस्स सगुणस्स समेरस्स सपच्चक्खाण-पोसहोववासस्स पसत्था भवंति, तं जहा—
अस्सिं लोगे पसत्थे भवति,
उववाए पसत्थे भवति,
आजाती पसत्था भवति।

प्रशस्त-पदम्

त्रीणि स्थानानि सुशीलस्य सुव्रतस्य सगुणस्य समर्यादस्य सप्रत्याख्यान-पोषधोपवासस्य प्रशस्तानि भवन्ति, तद्यथा—
अयं लोक: प्रशस्तो भवति,
उपपात: प्रशस्तो भवति,
आजाति: प्रशस्ता भवति।

प्रशस्त-पद

३१६. शील, व्रत, गुण, मर्यादा, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से युक्त पुरुष के तीन स्थान प्रशस्त होते हैं—
१. इहलोक प्रशस्त होता है, २. उपपात प्रशस्त होता है, ३. आगामी जन्म [देवलोक या नरक के बाद होने वाला मनुष्य जन्म] प्रशस्त होता है।

जीव-पदं

३१७. तिविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—
इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।

३१८. तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मद्दिट्ठी, मिच्छादिट्ठी,

जीव-पदम्

त्रिविधा: संसारसमापन्नका: जीवा: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
स्त्रिय:, पुरुषा:, नपुंसका:।

त्रिविधा: सर्वजीवा: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
सम्यग्दृष्टय:, मिथ्यादृष्टय:,

जीव-पद

३१७. संसारी जीव तीन प्रकार के होते हैं—
१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।

३१८. सब जीव तीन प्रकार के होते हैं—
१. सम्यग्-दृष्टि, २ मिथ्या-दृष्टि,

सम्मामिच्छद्दिट्ठी। अहवा—तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा, अपज्जत्तगा, णोपज्जत्तगा-णोऽपज्जत्तगा। °परित्ता, अपरित्ता, णोपरित्ता-णोऽपरित्ता। सुहुमा, बायरा, णोसुहुमा-णोबायरा। सण्णी, असण्णी, णोसण्णी-णोऽसण्णी। भवी, अभवी, णोभवी-णोऽभवी°।

सम्यग्मिथ्यादृष्टयः। अथवा—त्रिविधा सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पर्याप्तकाः, अपर्याप्तकाः, नोपर्याप्तका-नोअपर्याप्तकाः। परीताः, अपरीताः, नोपरीताः-नोअपरीताः। सूक्ष्माः, बादराः, नोसूक्ष्माः-नोबादराः। संज्ञिनः, असंज्ञिनः, नोसंज्ञिनः-नोअसंज्ञिनः। भविनः, अभविनः, नोभविनः-नोअभविनः।

३. सम्यग्-मिथ्या-दृष्टि। अथवा—सब जीव तीन प्रकार के होते हैं—१. पर्याप्त, २ अपर्याप्त, ३ न पर्याप्त न अपर्याप्त—सिद्ध। १ प्रत्येक शरीरी [एक शरीर मे एक जीव वाला], २. साधारण शरीरी [एक शरीर मे अनन्त जीव वाला], ३. न प्रत्येक शरीर न साधारण शरीर—सिद्ध। १ सूक्ष्म, २ बादर, ३ न सूक्ष्म न बादर—सिद्ध। १. संज्ञी—समनस्क, २ असंज्ञी—अमनस्क, ३. न संज्ञी न असंज्ञी—सिद्ध। १ भव्य, २ अभव्य, ३ न भव्य न अभव्य—सिद्ध।

लोगठिति-पदं

३१९. तिविधा लोगठिती पण्णत्ता, तं जहा—आगासपइट्ठिए वाते, वातपतिट्ठिए उदही, उदहिपतिट्ठिया पुढवी।

लोकस्थिति-पदम्

त्रिविधा लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आकाशप्रतिष्ठितो वातः, वातप्रतिष्ठितः उदधिः, उदधिप्रतिष्ठिता पृथिवी।

लोकस्थिति-पद

३१९. लोक स्थिति तीन प्रकार की है—
१. आकाश पर वायु प्रतिष्ठित है,
२. वायु पर समुद्र प्रतिष्ठित है,
३. समुद्र पर पृथ्वी प्रतिष्ठित है।

दिसा-पदं

३२०. तओ दिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—उड्ढा, अहा, तिरिया।

३२१. तिहिं दिसाहिं जीवाणं गती पवत्तति—उड्ढाए, अहाए, तिरियाए।

३२२. °तिहिं दिसाहिं जीवाणं°—आगती वक्कंती आहारे वुड्ढी णिवुड्ढी गतिपरियाए समुग्घाते कालसंजोगे दंसणाभिगमे णाणाभिगमे जीवाभिगमे °पण्णत्ते, तं जहा—उड्ढाए, अहाए, तिरियाए।°

दिशा-पदम्

तिस्रः दिशः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ऊर्ध्वा, अधः, तिर्यक्।

तिसृषु दिक्षु जीवानां गतिः प्रवर्तते—ऊर्ध्वं, अधः, तिरश्चि।

तिसृषु दिक्षु जीवानां—आगतिः अवक्रान्तिः आहारः वृद्धिः निर्वृद्धिः गतिपर्यायः समुद्घातः कालसंयोगः दर्शनाभिगमः ज्ञानाभिगमः जीवाभिगमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ऊर्ध्वं, अधः, तिरश्चि।

दिशा-पद

३२०. दिशाएं तीन हैं—
१ ऊर्ध्व, २ अध, ३ तिर्यक्।

३२१ तीन दिशाओ मे जीवो की गति होती है—
१. ऊर्ध्व दिशि मे, २ अधो दिशि मे,
३ तिर्यक् दिशि मे।

३२२ तीन दिशाओ मे जीवो की आगति, अवक्रान्ति, आहार, वृद्धि, हानि, गति-पर्याय, समुद्घात, काल-संयोग, दर्शनाभिगम, ज्ञानाभिगम, जीवाभिगम होता है—
१ ऊर्ध्व दिशि मे, २. अधो दिशि मे,
३. तिर्यक् दिशि मे।[55]

३२३. तिहिं दिसाहिं जीवाणं अजीवाभिगमे पण्णत्ते, त जहा— उड्ढाए, अहाए, तिरियाए।

तिसृषु दिक्षु जीवानां अजीवाभिगमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— ऊर्ध्वं, अधः, तिरश्चि।

३२३. तीन दिशाओ में जीवो का अजीवाभिगम होता है—१. ऊर्ध्व दिशि मे, २ अधो दिशि मे, ३ तिर्यक् दिशि में।

३२४. एवं—पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं।

एवम्—पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाम्।

३२४. इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की गति, आगति आदि तीनों ही दिशाओं मे होती है।

३२५. एवं—मणुस्साणवि।

एवम्—मनुष्याणामपि।

३२५. इसी प्रकार मनुष्यो की गति, आगति आदि तीनो ही दिशाओ मे होती है।

तस-थावर-पदं

त्रस-स्थावर-पदम्

त्रस-स्थावर-पद

३२६. तिविहा तसा पण्णत्ता, तं जहा— तेउकाइया, वाउकाइया, उराला तसा पाणा।

त्रिविधाः त्रसाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— तेजस्कायिकाः, वायुकायिकाः, उदाराः त्रसाः प्राणाः।

३२६ त्रस[५६] जीव तीन प्रकार के होते हैं— १ तेजस्कायिक, २ वायुकायिक, ३. उदार त्रस प्राणी—द्वीन्द्रिय आदि।

३२७ तिविहा थावरा पण्णत्ता, त जहा— पुढविकाइया, आउकाइया, वणस्सइकाइया।

त्रिविधाः स्थावराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— पृथिवीकायिकाः, अप्कायिकाः, वनस्पतिकायिकाः।

३२७ स्थावर[५७] जीव तीन प्रकार के होते है— १. पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३ वनस्पतिकायिक।

अच्छेज्जादि-पदं

अच्छेद्यादि-पदम्

अच्छेद्यआदि-पद

३२८. तओ अच्छेज्जा पण्णत्ता, त जहा— समए, पदेसे, परमाणू।

त्रयः अच्छेद्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— समयः, प्रदेशः, परमाणुः।

३२८. तीन अच्छेद्य होते है— १ समय—काल का सबसे छोटा भाग, २ प्रदेश—निरंश देश; वस्तु का सबसे छोटा भाग, ३ परमाणु—पुद्गल का सबसे छोटा भाग।

३२९ °तओ अभेज्जा पण्णत्ता तं जहा— समए, पदेसे, परमाणू।

त्रयः अभेद्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— समयः, प्रदेशः, परमाणुः।

३२९ तीन अभेद्य होते है— १ समय, २. प्रदेश, ३ परमाणु।

३३०. तओ अडज्झा पण्णत्ता, तं जहा— समए, पदेसे, परमाणू।

त्रयः अदाह्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— समयः, प्रदेशः, परमाणुः।

३३० तीन अदाह्य होते हैं— १ समय, २ प्रदेश, ३ परमाणु।

३३१ तओ अगिज्झा पण्णत्ता, त जहा— समए, पदेसे, परमाणू।

त्रयः अग्राह्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— समयः, प्रदेशः, परमाणुः।

३३१ तीन अग्राह्य होते है— १ समय, २ प्रदेश, ३ परमाणु।

३३२. तओ अणड्ढा पण्णत्ता, तं जहा— समए, पदेसे, परमाणू।

त्रयः अनर्धाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— समयः, प्रदेशः, परमाणुः।

३३२ तीन अनर्ध होते हैं— १ समय, २ प्रदेश, ३. परमाणु।

३३३. तओ अमज्झा पण्णत्ता, तं जहा— समए, पदेसे, परमाणू।

त्रयः अमध्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— समयः, प्रदेशः, परमाणुः।

३३३ तीन अमध्य होते हैं— १. समय, २. प्रदेश, ३. परमाणु।

**३३४. तओ अपएसा पण्णत्ता तं जहा—
समए, पदेसे, परमाणू।**

त्रयः अप्रदेशाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
समयः, प्रदेशः, परमाणुः।

३३४. तीन अप्रदेश होते हैं—
१ समय, २ प्रदेश, ३. परमाणु।

३३५. तओ अविभाइमा, पण्णत्ता तं जहा—समए, पदेसे, परमाणु।

त्रयः अविभाज्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
समयः, प्रदेशः परमाणुः।

३३५. तीन अविभाज्य होते हैं—
१. समय, २. प्रदेश, ३ परमाणु।

दुक्ख-पदं

दुःख-पदम्

दुःख-पद

**३३६. अज्जोति ! समणे भगवं महावीरे गोतमादी समणे णिग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी—
किंभया पाणा ? समणाउसो !
गोतमादी समणा णिग्गंथा समणं भगवं महावीरं उवसंकमंति, उवसंकमित्ता वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—
णो खलु वयं देवाणुप्पिया ! एयमट्ठं जाणामो वा पासामो वा।
तं जदि णं देवाणुप्पिया ! एयमट्ठं णो गिलायंति परिकहित्तए, तमिच्छामो णं देवाणुप्पियाणं अंतिए एयमट्ठं जाणित्तए।
अज्जोति ! समणे भगवं महावीरे गोतमादी समणे निग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी—
दुक्खभया पाणा समणाउसो !
से णं भंते ! दुक्खे केण कडे ?
जीवेणं कडे पमादेणं।
से णं भंते ! दुक्खे कहं वेइज्जति ?
अप्पमाएणं।**

आर्याः अयि ! श्रमणः भगवान् महावीरः गौतमादीन् श्रमणान् निर्ग्रन्थान् आमन्त्र्य एवं अवादीत्—
किंभयाः प्राणाः ? आयुष्मन्त ! श्रमणाः !
गौतमादयः श्रमणाः निर्ग्रन्थाः श्रमणं भगवन्तं महावीरं उपसंक्रामन्ति, उपसक्रम्य वन्दन्ते नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवं अवादिषुः—
न खलु वयं देवानुप्रियाः ! एतमर्थं जानीमो वा पश्यामो वा।
तद् यदि देवानुप्रियाः ! एतमर्थं न ग्लायन्ति परिकथितुम्, तद् इच्छामो देवानुप्रियाणां अन्तिके एतमर्थं ज्ञातुम्।
आर्याः अयि ! श्रमणः भगवान् महावीरः गौतमादीन् श्रमणान् निर्ग्रन्थान् आमन्त्र्य एव अवादीत्—
दुःखभयाः प्राणाः आयुष्मन्तः ! श्रमणाः !
तद् भन्ते ! दुःखं केन कृतम् ?
जीवेन कृतं प्रमादेन।
तद् भन्ते ! दुःखं कथं वेद्यते ?
अप्रमादेन।

३३६ आर्यो ! श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थो को आमन्त्रित कर कहा—
आयुष्मान् ! श्रमणो ! जीव किससे भय खाते हैं ?
गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् महावीर के निकट आए, निकट आकर वन्दन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर बोले—
देवानुप्रिय ! हम इस अर्थ को नही जान रहे हैं, नही देख रहे हैं। यदि देवानुप्रिय को इस अर्थ का परिकथन करने में खेद न हो तो हम देवानुप्रिय के पास इसे जानना चाहेंगे।
आर्यो ! श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थो को आमन्त्रित कर कहा—
आयुष्मान् ! श्रमणो ! जीव दुःख से भय खाते है।
तो भगवान् ! दुःख किसके द्वारा किया गया है ?
जीवो के द्वारा, अपने प्रमाद से।
तो भगवान् ! दुःखों का वेदन [क्षय] कैसे होता है ?
जीवों के द्वारा, अपने ही अप्रमाद से।

३३७. अण्णउत्थिया णं भंते ! एवं आइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति कहण्णं

अन्ययूथिकाः भदन्त ! एवं आख्यान्ति एवं भाषन्ते एवं प्रज्ञापयन्ति एवं प्ररूपयन्ति कथं श्रमणानां निर्ग्रन्थानां

३३७. भन्ते ! कुछ अन्य यूथक सम्प्रदाय [दूसरे सम्प्रदाय वाले] ऐसा आख्यान करते हैं, भाषण करते हैं, प्रज्ञापन करते हैं,

समणाणं णिग्गंथाण किरिया कज्जति ?
तत्थ जा सा कडा कज्जइ, णो तं पुच्छंति ।
तत्थ जा सा कडा णो कज्जति, णो तं पुच्छंति ।
तत्थ जा सा अकडा णो कज्जति, णो तं पुच्छंति ।
तत्थ जा सा अकडा कज्जति, तं पुच्छंति ।
से एवं वत्तव्वं सिया ?
अकिच्चं दुक्खं, अफुसं दुक्खं, अकज्जमाणकडं दुक्खं,
अकट्टु-अकट्टु पाणा भूया जीवा सत्ता वेयणं वेदेंतित्ति वत्तव्वं ।
जे ते एवमाहंसु, मिच्छा ते एवमाहंसु ।
अहं पुण एवमाइक्खामि एवं भासामि एवं पण्णवेमि एवं परूवेमि—किच्चं दुक्खं, फुसं दुक्खं, कज्जमाणकडं दुक्खं,
कट्टु-कट्टु पाणा भूया जीवा सत्ता वेयणं वेयंतित्ति वत्तव्वयं सिया ।

क्रिया क्रियते ?
तत्र या सा कृता क्रियते, नो तत् पृच्छन्ति ।
तत्र या सा कृता नो क्रियते, नो तत् पृच्छन्ति ।
तत्र या सा अकृता नो क्रियते, नो तत् पृच्छन्ति ।
तत्र या सा अकृता क्रियते, तत् पृच्छन्ति ।
तस्यैव वक्तव्यं स्यात् ?
अकृत्यं दुःखं, अस्पृष्ट दुःखं, अक्रियमाणकृत दुःखं,
अकृत्वा-अकृत्वा प्राणाः भूताः जीवाः सत्त्वा वेदना वेदयन्ति इति वक्तव्यम् ।
ये ते एवं अवोचन्, मिथ्या ते एवं अवोचन् ।
अहं पुनः एवं आख्यामि एवं भाषे एवं प्रज्ञापयामि एवं प्ररूपयामि—
कृत्य दुःख, स्पृष्ट दुःख, क्रियमाणकृत दुःख,
कृत्वा-कृत्वा प्राणः भूताः जीवाः सत्त्वाः वेदना वेदयन्ति इति वक्तव्यक स्यात् ।

प्ररूपण करते हैं कि क्रिया करने के विषय में श्रमण-निर्ग्रन्थों का क्या अभिमत है ?
जो की हुई होती है, उसका यहां प्रश्न नहीं है।[५८]
जो की हुई नहीं होती, उसका भी यहां प्रश्न नहीं है।
जो नहीं की हुई नहीं होती, उसका भी यहां प्रश्न नहीं है ।
किन्तु जो नहीं की हुई है, उसका यहां प्रश्न है। उनकी वक्तव्यता ऐसी है—
१ दुःख अकृत्य है—आत्मा के द्वारा नहीं किया जाता, २. दुःख अस्पृश्य है—आत्मा से उसका स्पर्श नहीं होता,
३. दुःख अक्रियमाण-कृत है—वह आत्मा के द्वारा नहीं किए जाने पर होता है।
उसे बिना किए ही प्राण-भूत-जीव-सत्त्व उसका वेदन करते हैं।
आयुष्मान ! श्रमणो ! जिन्होंने ऐसा कहा है उन्होंने मिथ्या कहा है।
मैं ऐसा आख्यान करता हूं, भाषण करता हूं, प्रज्ञापन करता हूं, प्ररूपण करता हूं कि—
दुःख कृत्य है—आत्मा के द्वारा किया जाता है।
दुःख स्पृश्य है—आत्मा से उसका स्पर्श होता है।
दुःख क्रियमाण-कृत है—वह आत्मा के द्वारा किए जाने पर होता है।
उसे कर-कर के ही प्राण-भूत-जीव-सत्त्व उसका वेदन करते हैं।

तइओ उद्देसो

आलोयणा-पदं

३३८. तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु—
णो आलोएज्जा णो पडिक्कमेज्जा
णो णिंदेज्जा णो गरिहेज्जा
णो विउट्टेज्जा णो विसोहेज्जा
णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा
णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—
अकरिंसु वाहं, करेमि वाहं,
करिस्सामि वाहं।

३३९. तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु—
णो आलोएज्जा णो पडिक्कमेज्जा
°णो णिंदेज्जा णो गरिहेज्जा
णो विउट्टेज्जा णो विसोहेज्जा
णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा
णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं°
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—
अकित्ती वा मे सिया,
अवण्णे वा मे सिया,
अविणए वा मे सिया.

३४०. तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु—
णो आलोएज्जा° णो पडिक्कमेज्जा
णो णिंदेज्जा णो गरिहेज्जा
णो विउट्टेज्जा णो विसोहेज्जा
णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा
णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं°
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—
कित्ती वा मे परिहाइस्सति,
जसे वा मे परिहाइस्सति,
पूयासक्कारे वा मे परिहाइस्सति।

आलोचना-पदम्

त्रिभि. स्थानै. मायी मायां कृत्वा—
नो आलोचयेत् नो प्रतिक्रामेत् नो निन्देत्
नो गर्हेत नो व्यावर्तेत नो विशोधयेत्
नो अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत
नो यथार्ह प्रायश्चित्तं तपःकर्म प्रतिपद्येत,
तद्यथा—
अकार्षं वाहं, करोमि वाहं,
करिष्यामि वाहं।

त्रिभिः स्थानैः मायी मायां कृत्वा—
नो आलोचयेत् नो प्रतिक्रामेत् नो निन्देत्
नो गर्हेत नो व्यावर्तेत नो विशोधयेत्
नो अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत नो यथार्ह
प्रायश्चित्तं तपःकर्म प्रतिपद्येत, तद्यथा—
अकीर्तिः वा मम स्यात्,
अवर्णो वा मम स्यात्,
अविनयो वा मम स्यात्।

त्रिभिः स्थानैः मायी मायां कृत्वा—
नो आलोचयेत् नो प्रतिक्रामेत्
नो निन्देत् नो गर्हेत नो व्यावर्तेत नो
विशोधयेत् नो अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत
नो यथार्ह प्रायश्चित्तं तपःकर्म प्रतिपद्येत,
तद्यथा—
कीर्तिः वा मम परिहास्यति,
यशो वा मम परिहास्यति,
पूजासत्कारो वा मम परिहास्यति।

आलोचना-पद

३३८. तीन कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्ध नहीं करता, फिर ऐसा नहीं करूंगा—ऐसा संकल्प नहीं करता और यथोचित प्रायश्चित्त तथा तपःकर्म स्वीकार नहीं करता—मैंने अकरणीय किया है, मैं अकरणीय कर रहा हूं, मैं अकरणीय करूंगा।

३३९. तीन कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि नहीं करता, फिर ऐसा नहीं करूंगा—ऐसा संकल्प नहीं करता और यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप कर्म स्वीकार नहीं करता—
मेरी अकीर्ति होगी, मेरा अवर्ण होगा, दूसरों के द्वारा मेरा अविनय होगा।

३४०. तीन कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि नहीं करता, फिर ऐसा नहीं करूंगा—ऐसा संकल्प नहीं करता और यथोचित प्रायश्चित्त तथा तपःकर्म स्वीकार नहीं करता—
मेरी कीर्ति कम होगी, मेरा यशः कम होगा, मेरा पूजा-सत्कार कम होगा।

३४१. तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु—
आलोएज्जा पडिक्कमेज्जा
°णिंदेज्जा गरिहेज्जा
विउट्टेज्जा विसोहेज्जा
अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा
अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं°
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—
माइस्स णं अंसि लोगे गरहिए भवति,
उववाए गरहिए भवति,
आयाती गरहिया भवति।

त्रिभिः स्थानैः मायी मायां कृत्वा—
आलोचयेत् प्रतिक्रामेत् निन्देत् गर्हेत
व्यावर्तेत विशोधयेत् अकरणतया
अभ्युत्तिष्ठेत यथार्हं प्रायश्चित्तं तपःकर्म
प्रतिपद्येत, तद्यथा—
मायिनः अयं लोकः गर्हितो भवति,
उपपातः गर्हितो भवति,
आजातिः गर्हिता भवति।

३४१. तीन कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि करता है, फिर ऐसा नहीं करूंगा—ऐसा संकल्प करता है और यथोचित प्रायश्चित्त तथा तपःकर्म स्वीकार करता है—
मायावी का वर्तमान जीवन गर्हित हो जाता है, उपपात गर्हित हो जाता है,
आगामी जन्म [देवलोक या नरक के बाद होने वाला मनुष्य या तिर्यञ्च का जन्म] गर्हित हो जाता है।

३४२. तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु—
आलोएज्जा °पडिक्कमेज्जा
णिंदेज्जा गरिहेज्जा
विउट्टेज्जा विसोहेज्जा
अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा
अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं°
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—अमाइस्स णं अंसि लोगे पसत्थे भवति,
उववाते पसत्थे भवति,
आयाती पसत्था भवति।

त्रिभिः स्थानैः मायी मायां कृत्वा—
आलोचयेत् प्रतिक्रामेत् निन्देत् गर्हेत
व्यावर्तेत विशोधयेत् अकरणतया
अभ्युत्तिष्ठेत यथार्हं प्रायश्चित्तं तपःकर्म
प्रतिपद्येत, तद्यथा—
अमायिनः अयं लोकः प्रशस्तो भवति,
उपपातः प्रशस्तो भवति,
आजातिः प्रशस्ता भवति।

३४२. तीन कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि करता है, फिर ऐसा नहीं करूंगा—ऐसा संकल्प करता है और यथोचित प्रायश्चित्त तथा तपःकर्म स्वीकार करता है—
ऋजु मनुष्य का वर्तमान जीवन प्रशस्त होता है, उपपात प्रशस्त होता है,
आगामी जन्म [देवलोक या नरक के बाद होने वाला मनुष्य जन्म] प्रशस्त होता है।

३४३. तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु—
आलोएज्जा °पडिक्कमेज्जा
णिंदेज्जा गरिहेज्जा
विउट्टेज्जा विसोहेज्जा
अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा
अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं°
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—णाणट्ठयाए, दंसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए।

त्रिभिः स्थानैः मायी मायां कृत्वा—
आलोचयेत् प्रतिक्रामेत् निन्देत् गर्हेत
व्यावर्तेत विशोधयेत् अकरणतया
अभ्युत्तिष्ठेत यथार्हं प्रायश्चित्तं तपःकर्म
प्रतिपद्येत, तद्यथा—
ज्ञानार्थाय, दर्शनार्थाय, चरित्रार्थाय।

३४३. तीन कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि करता है, फिर ऐसा नहीं करूंगा—ऐसा संकल्प करता है और यथोचित प्रायश्चित्त तथा तपःकर्म स्वीकार करता है—
ज्ञान के लिए, दर्शन के लिए, चरित्र के लिए।

सुयधर-पदं

३४४. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुत्तधरे, अत्थधरे, तदुभयधरे।

श्रुतधर-पदम्

त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सूत्रधरः, अर्थधरः, तदुभयधरः।

श्रुतधर-पद

३४४. पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—
१. सूत्रधर, २ अर्थधर,
३. तदुभय—सूत्रार्थधर।

उपधि-पदं

३४५. कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा तओ वत्थाइं धारित्तए वा परिहरित्तए वा, तं जहा—
जंगिए, भंगिए, खोमिए।

३४६. कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा तओ पायाइं धारित्तए वा परिहरित्तए वा, तं जहा—
लाउयपादे वा, दारुपादे वा, मट्टियापादे वा।

३४७. तिहिं ठाणेहिं वत्थं धरेज्जा, तं जहा— हिरिपत्तियं, दुगुंछापत्तियं, परीसहवत्तियं।

उपधि-पदम्

कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा त्रीणि वस्त्राणि धर्तु वा परिधातु वा, तद्यथा—
जाङ्गिकं, भाङ्गिकं, क्षौमिकम्।

कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा त्रीणि पात्राणि धर्त्तुं वा परिधातुं वा, तद्यथा—
अलाबुपात्र वा, दारुपात्र वा, मृत्तिका-पात्र वा।

त्रिभि स्थानैः वस्त्र धरेत्, तद्यथा— ह्रीप्रत्यय, जुगुप्साप्रत्यय, परीषहप्रत्ययम्।

उपधि-पद

३४५. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियां तीन प्रकार के वस्त्र धारण कर सकते हैं और काम मे ले सकते हैं—१. ऊन के, २. अलसी के, ३. रुई के।

३४६. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियां तीन प्रकार के पात्र धारण कर सकते हैं—१. तुम्बा, २. काष्ठ पात्र, ३. मृत् पात्र।

३४७. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियां तीन कारणो से वस्त्र धारण कर सकते है—
१. लज्जा निवारण के लिए, २. जुगुप्सा [घृणा] निवारण के लिए,
३. परीषह निवारण के लिए।

आयरक्ख-पदं

३४८ तओ आयरक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएत्ता भवति,
तुसिणीए वा सिया,
उट्ठित्ता वा आताए एगंतमंतमवक्कमेज्जा।

आत्मरक्ष-पदम्

त्रय. आत्मरक्षा. प्रज्ञप्ता, तद्यथा— धार्मिकया प्रतिचोदनया प्रतिचोदिता भवति, तुष्णीको वा स्यात्, उत्थाय वा आत्मना एकान्तमन्त अवक्रामेत्।

आत्मरक्ष-पद

३४८. तीन आत्म-रक्षक होते है—
१. अकरणीय कार्य मे प्रवृत्त व्यक्ति को धार्मिक प्रेरणा से प्रेरित करने वाला,
२. प्रेरणा न देने की स्थिति में मौन रहने वाला,
३. मौन और उपेक्षा न करने की स्थिति मे वहा से उठकर एकान्त मे चले जाने वाला।

वियड-दत्ति-पदं

३४९. णिग्गंथस्स णं गिलायमाणस्स कप्पंति तओ वियडदत्तीओ पडिग्गाहित्तते, तं जहा—
उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा।

विकट-दत्ति-पदम्

निर्ग्रन्थस्य ग्लायत: कल्प्यन्ते तिस्र· [दे० विकट] दत्तय प्रतिग्रहीतुम्, तद्यथा—उत्कर्षा, मध्यमा, जघन्या।

विकट-दत्ति-पद

३४९ ग्लान निर्ग्रन्थ तीन प्रकार की विकट-दत्तिया[५] ले सकता है—
१ उत्कृष्ट—पर्याप्त जल या कलमी चावल की कांजी, २. मध्यम—कई बार किन्तु अपर्याप्त जल या साठी चावल की कांजी,

३. जघन्य—एक बार पीए उतना जल, तृण धान्य की कांजी या गर्म पानी।

विसंभोग-पदं

३५०. तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे साहम्मियं संभोगियं विसंभोगियं करेमाणे णातिक्कमति, तं जहा—सयं वा दट्ठुं, सड्ढयस्स वा णिसम्म तच्चं मोसं आउट्टति, चउत्थं णो आउट्टति।

विसम्भोग-पदम्

त्रिभिः स्थानैः श्रमण. निर्ग्रन्थ. साधर्मिक साम्भोगिक वैसम्भोगिक कुर्वन् नातिक्रामति, तद्यथा—स्वयं वा दृष्ट्वा, श्राद्धकस्य वा निशम्य, तृतीय मृषा आवर्तते, चतुर्थं नो आवर्तते।

विसम्भोग-पद

३५०. तीन कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ अपने सार्धमिक, साभोगिक[१०] को विसभोगिक करता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता—१ स्वय किसी को सामाचारी के प्रतिकूल आचरण करते हुए देखकर, २ श्राद्ध [विश्वास पात्र] से सुनकर, ३ तीन बार मृषा—[अनाचार] का प्रायश्चित्त देने के बाद चौथी बार प्रायश्चित्त विहित नही होने के कारण।

अणुण्णादि-पदं

३५१. तिविधा अणुण्णा पण्णत्ता, तं जहा—आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणित्ताए।

३५२. तिविधा समणुण्णा पण्णत्ता, तं जहा—आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणित्ताए।

३५३. °तिविधा उवसपया पण्णत्ता, तं जहा—आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणित्ताए।

३५४. तिविधा विजहणा पण्णत्ता, तं जहा—आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणित्ताए।°

अनुज्ञादि-पदम्

त्रिविधा अनुज्ञा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आचार्यतया, उपाध्यायतया, गणितया।

त्रिविधा समनुज्ञा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आचार्यतया, उपाध्यायतया, गणितया।

त्रिविधा उपसपदा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आचार्यतया, उपाध्यायतया, गणितया।

त्रिविधं विहानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आचार्यतया, उपाध्यायतया, गणितया।

अनुज्ञआदि-पद

३५१ अनुज्ञा[११] तीन प्रकार की होती है—१ आचार्यत्व की, २ उपाध्यायत्व की, ३ गणित्व की।

३५२ समनुज्ञा[१२] तीन प्रकार की होती है—१ आचार्यत्व की, २ उपाध्यायत्व की, ३ गणित्व की।

३५३ उपसम्पदा[१३] तीन प्रकार की होती है—१. आचार्यत्व की, २ उपाध्यायत्व की, ३ गणित्व की।

३५४ विहान[१४] तीन प्रकार का होता है—१ आचार्यत्व का, २. उपाध्यायत्व का, ३. गणित्व का।

वयण-पदं

३५५. तिविहे वयणे पण्णत्ते, तं जहा—तव्वयणे, तदण्णवयणे, णोअवयणे।

वचन-पदम्

त्रिविध वचन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—तद्वचनं तदन्यवचनं नोअवचनम्।

वचन-पद

३५५ वचन तीन प्रकार का होता है—१ तद्वचन—विवक्षित वस्तु का कथन, २. तदन्यवचन—विवक्षित वस्तु से भिन्न वस्तु का कथन, ३. नोअवचन—शब्द का अर्थहीन व्यापार।

३५६. तिविहे अवयणे पण्णत्ते, तं जहा— णोतव्वयणे, णोतदण्णवयणे, अवयणे।

त्रिविधं अवचनं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— नोतद्वचनं, नोतदन्यवचनं, अवचनम्।

३५६ अवचन तीन प्रकार का होता है— १ नोतद्वचन—विवक्षित वस्तु का अकथन, २ नोतदन्यवचन—विवक्षित वस्तु से भिन्न वस्तु का कथन, ३ अवचन—वचन-निवृत्ति।

मण-पदं

मनः-पदम्

मनः-पद

३५७. तिविहे मणे पण्णत्ते, तं जहा— तम्मणे, तयण्णमणे, णोअमणे।

त्रिविधं मनः प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— तन्मनः, तदन्यमनः, नोअमनः।

३५७ मन तीन प्रकार का होता है— १. तन्मन—लक्ष्य में लगा हुआ मन, २ तदन्यमन—अलक्ष्य में लगा हुआ मन, ३ नोअमन—मन का लक्ष्य हीन व्यापार।

३५८. तिविहे अमणे पण्णत्ते, तं जहा— णोतम्मणे, णोतयण्णमणे, अमणे।

त्रिविधं अमनः प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— नोतन्मनः, नोतदन्यमनः, अमनः।

३५८. अमन तीन प्रकार का होता है— १ नोतन्मन—लक्ष्य में नहीं लगा हुआ मन, २. नोतदन्यमन—लक्ष्य में लगा हुआ मन, ३ अमन—मन की अप्रवृत्ति।

वुट्ठि-पदं

वृष्टि-पदम्

वृष्टि-पद

३५९. तिहिं ठाणेहिं अप्पवुट्ठीकाए सिया, तं जहा—

१. तंसि च णं देसंसि वा पदेसंसि वा णो बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताते वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति,

२. देवा णागा जक्खा भूता णो सम्ममाराहिता भवंति, तत्थ समुट्ठियं उदगपोग्गलं परिणतं वासितुकामं अण्णं देसं साहरंति,

३. अब्भवद्दलगं च णं समुट्ठितं परिणतं वासितुकामं वाउकाए विधुणति—

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं अप्पवुट्ठिगाए सिया।

त्रिभिः स्थानैः अल्पवृष्टिकायः स्यात्, तद्यथा—

१. तस्मिश्च देशे वा प्रदेशे वा नो बहवः उदकयोनिका जीवाश्च पुद्गलाश्च उदकतया अवक्रामन्ति व्युत्क्रामन्ति च्यवन्ते उपपद्यन्ते,

२. देवाः नागाः यक्षाः भूताः नो सम्यगाराधिता भवन्ति, तत्र समुत्थितं उदकपुद्गलं परिणतं वर्षितुकामं अन्यं देशं संहरन्ति,

३. अभ्रवार्दलकं च समुत्थितं परिणतं वर्षितुकामं वायुकायः विधुनाति—

इत्येतैः त्रिभिः स्थानैः अल्पवृष्टिकायः स्यात्।

३५९ तीन कारणों से अल्प वृष्टि होती है—

१ किसी देश या प्रदेश में [क्षेत्र या स्वभाव से] पर्याप्त मात्रा में उदकयोनिक जीव और पुद्गलों के उदक रूप में उत्पन्न और नष्ट तथा नष्ट और उत्पन्न होने से।

२ देव, नाग, यक्ष या भूत सम्यक् प्रकार से आराधित न होने पर उस देश में समुत्थित वर्षा में परिणत तथा बरसने ही वाले उदक-पुद्गलों [मेघों] का उनके द्वारा अन्य देश में संहरण होने से।

३ समुत्थित वर्षा में परिणत तथा बरसने ही वाले अभ्रवार्दलों के वायु द्वारा नष्ट होने से—

इन तीन कारणों से अल्प-वृष्टि होती है।

३६० तिहिं ठाणेहिं महावुट्ठीकाए सिया, तं जहा—
१. तस्सि च णं देसंसि वा पदेसंसि वा बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति,
२. देवा णागा जक्खा भूता सम्ममाराहिता भवंति, अण्णत्थ समुट्ठितं उदगपोग्गलं परिणयं वासिउकामं तं देसं साहरंति,
३ अब्भवद्दलगं च णं समुट्ठितं परिणयं वासितुकामं णो वाउआए विधुणति—
इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं महावुट्ठिकाए सिआ।

त्रिभिः स्थानैः महावृष्टिकायः स्यात्, तद्यथा—
१ तस्मिश्च देशे वा प्रदेशे वा बहवः उदकयोनिकाः जीवाश्च पुद्गलाश्च उदकत्वाय अवक्रामन्ति व्युत्क्रामन्ति च्यवन्ते उपपद्यन्ते,
२. देवा नागा. यक्षा. भूताः सम्यगाराधिता भवति, अन्यत्र समुत्थितं उदकपुद्गलं परिणतं वर्षितुकाम तं देश सहरन्ति
३. अभ्रवार्दलक च समुत्थितं परिणत वर्षितुकाम नो वायुकाय विधुनाति—
इति एतै त्रिभिः स्थानै महावृष्टिकायः स्यात्।

३६०. तीन कारणों से महावृष्टि होती है—
१ किसी देश या प्रदेश मे [क्षेत्र स्वभाव से] पर्याप्त मात्रा मे उदकयोनिक जीव और पुद्गलो के उदक रूप में उत्पन्न और नष्ट होने तथा नष्ट और उत्पन्न होने से,
२. देव, नाग, यक्ष या भूत सम्यक् प्रकार से आराधित होने पर अन्यत्र समुत्थित, वर्षा मे परिणत तथा बरसने ही वाले उदक-पुद्गलों का उनके द्वारा उस देश मे संहरण होने से,
३ समुत्थित वर्षा मे परिणत तथा बरसने ही वाले अभ्रवार्दलों के वायु द्वारा नष्ट न होने से—
इन तीन कारणो से महावृष्टि होती है।

अहुणोववण्ण-देव-पदं

अधुनोपपन्न-देव-पदम्

अधुनोपपन्न-देव-पद

३६१. तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए, तं जहा—
१ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, से णं माणुस्सए कामभोगे णो आढाति, णो परियाणाति, णो अट्ठं बंधति, णो णियाणं पगरेति, णो ठिइपकप्पं पगरेति,
२. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, तस्स णं माणुस्सए पेम्मे वोच्छिण्णे दिव्वे संकंते भवति,

त्रिभि स्थानैः अधुनोपपन्नः देव देवलोकेषु इच्छेत् मानुष लोक अर्वाग् आगन्तुम्, नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्, तद्यथा—
१. अधुनोपपन्न. देव देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितः गृद्ध ग्रथितः अध्युपपन्न., स मानुष्यकान् कामभोगान् नो आद्रियते, नो परिजानाति, नो अर्थ बध्नाति, नो निदान प्रकरोति, नो स्थितिप्रकल्पं प्रकरोति,
२ अधुनोपपन्नः देव. देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितः गृद्धः ग्रथितः अध्युपपन्न., तस्य मानुष्यकं प्रेम व्युच्छिन्नं दिव्यं संक्रान्तं भवति,

३६१ तीन कारणो से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है, किन्तु आ नही सकता—
१ देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव दिव्य कामभोगो मे मूर्च्छित गृद्ध बद्ध तथा आसक्त होकर मानवीय कामभोगों को न आदर देता है, न अच्छा जानता है, न प्रयोजन रखता, न निदान [उन्हें पाने का संकल्प] करता है और न स्थिति प्रकल्प [उनके बीच रहने की इच्छा] करता है,
२ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित गृद्ध बद्ध तथा आसक्त देव का मानुष्य-प्रेम व्युच्छिन्न हो जाता है तथा उसमे दिव्य-प्रेम संक्रात हो जाता है।

३. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते॰ गिद्धे गढिते॰ अज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवति—इण्हिं गच्छं मुहुत्तं गच्छं, तेणं कालेणमप्पाउया मणुस्सा कालधम्मुणा संजुत्ता भवंति—

३. अधुनोपपन्नः देवः देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितः गृद्धः ग्रथितः अध्युपपन्नः, तस्य एवं भवति—इदानीं गच्छामि मुहूर्त्तेन गच्छामि, तस्मिन् काले अल्पायुषो मनुष्याः कालधर्मेण संयुक्ता भवन्ति—

३. देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य कामभोगो मे मूर्च्छित, गृद्ध, बद्ध तथा आसक्त देव सोचता है—मैं अभी मनुष्य लोक में जाऊ, मुहूर्त्त भर में जाऊ। इतने मे अल्पायुष्क[६५] मनुस्य कालधर्म को प्राप्त हो जाता है—

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

इत्येतैः त्रिभिः स्थानैः अधुनोपपन्नः देव. देवलोकात् इच्छेत् मानुषं लोक अर्वाग् आगन्तुम्, न चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्।

इन तीन कारणों से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है, किन्तु आ नही सकता।

३६२. तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, संचाएइ हव्वमागच्छित्तए—

त्रिभिः स्थानैः अधुनोपपन्न. देवः देवलोकेषु इच्छेत् मानुष लोक अर्वाग् आगन्तुम्, शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्—

३६२. तीन कारणो से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्य लोक में आना चाहता है और आ भी सकता है—

१. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते अणज्झोववण्णे, तस्स णमेवं भवति—अत्थि णं मम माणुस्सए भवे आयरिएति वा उवज्झाएति वा पवत्तीति वा थेरेति वा गणीति वा गणधरेति वा गणावच्छेदेति वा, जेसिं पभावेणं मए इमा एतारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुती दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागते, तं गच्छामि णं ते भगवंते वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि।

१. अधुनोपपन्न देवः देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु अमूर्च्छितः अगृद्धः अग्रथितः अनध्युपपन्नः, तस्य एव भवति—अस्ति मम मानुष्यके भवे आचार्य इति वा उपाध्याय इति वा प्रवर्त्ती इति वा स्थविर इति वा गणीति वा गणधर इति वा गणावच्छेदक इति वा, येषां प्रभावेण मया इय एतद्रूपा दिव्या देवर्द्धिः दिव्या देवद्युतिः दिव्यः देवानुभावः लब्धः प्राप्तः अभिसमन्वागतः, तद् गच्छामि तान् भगवतः वन्दे नमस्यामि सत्करोमि सम्मानयामि कल्याणं मगल दैवतं चैत्यं पर्युपासे,

१. देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य कामभोगों मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध तथा अनासक्त देव सोचता है—मनुष्य लोक मे मेरे मनुष्य भव के आचार्य[६६], उपाध्याय[६७], प्रवर्तक[६८], स्थविर[६९], गणी[७०], गणधर[७१], गणावच्छेदक[७२] हैं, जिनके प्रभाव से मुझे यह इस प्रकार की दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव मिला है, प्राप्त हुआ है, अभिसमन्वागत [भोग्य अवस्था को प्राप्त] हुआ है, अतः मैं जाऊं और उन भगवान् को वदन करू, नमस्कार करूं, सत्कार करू, सम्मान करू तथा उन कल्याणकर, मगल, ज्ञानस्वरूप देव की पर्युपासना करू।

२. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिए॰ अगिद्धे अगढिते॰ अणज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवति—

२. अधुनोपपन्नः देवः देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु अमूर्च्छित. अगृद्धः अग्रथितः अनध्युपपन्नः, तस्य एव भवति—

२. देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य कामभोगों मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध तथा अनासक्त देव सोचता है कि मनुष्य भव मे अनेक ज्ञानी, तपस्वी तथा अति-

एस णं माणुस्सए भवे णाणीति वा तवस्सीति वा अतिदुक्कर-दुक्करकारगे, तं गच्छामि णं ते भगवंते वंदामि णमंसामि॰ सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं॰ पज्जुवासामि।

एतस्मिन् मानुष्यके भवे ज्ञानीति वा तपस्वीति वा अतिदुष्कर-दुष्करकारकः, तद् गच्छामि तान् भगवतः वन्दे नमस्यामि सत्करोमि सम्मानयामि कल्याण मगल दैवत चैत्य पर्युपासे

दुष्कर तपस्या करने वाले हैं, अतः मैं जाऊं और उन भगवान् को वंदन करूं, नमस्कार करूं, सत्कार करूं, सम्मान करूं तथा उन कल्याणकर, मंगल, ज्ञान-स्वरूप देव की पर्युपासना करूं।

३. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु॰ दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिए अगिद्धे अगढिते॰ अणज्झोववण्णे, तस्स णमेवं भवति—अत्थि णं मम माणुस्सए भवे माताति वा ॰पियाति वा भायाति वा भगिणीति वा भज्जाति वा पुत्ताति वा धूयाति वा॰ सुण्हाति वा, तं गच्छामि णं तेसिमंतियं पाउब्भवामि, पासंतु ता मे इमं एतारूवं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुतिं दिव्वं देवाणुभावं लद्धं पत्तं अभिसमण्णागयं—

३. अधुनोपपन्नः देवः देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु अमूर्च्छितः अगृद्धः अग्रथित अनध्युपपन्नः, तस्य एवं भवति—अस्ति मम मानुष्यके भवे मातेति वा पितेति वा भ्रातेति वा भगिनीति वा भार्येति वा पुत्र इति वा दुहितेति वा स्नुषेति वा, तद् गच्छामि तेषां अन्तिकं प्रादुर्भवामि, पश्यन्तु तावत् मम इमां एतद्रूपां दिव्यां देवर्द्धिं दिव्यां देवद्युतिं दिव्यं देवानुभावं लब्धं प्राप्तं अभिसमन्वागतम्—

३. देवलोक में तत्काल उत्पन्न दिव्य कामभोगों में अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध तथा अनासक्त देव सोचता है—मेरे मनुष्य भव के माता, पिता, भ्राता, भगिनी, भार्या, पुत्र, पुत्री और पुत्र-वधू है, अतः मैं उनके पास जाऊं और उनके सामने प्रकट होऊं, जिससे मेरी इस प्रकार की दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव को—जो मुझे मिली है, प्राप्त हुई है, अभिसमन्वागत हुई है—देखें

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

इत्येतैः त्रिभिः स्थानैः अधुनोपपन्नः देवः देवलोकेषु इच्छेत् मानुषं लोकं अर्वाग् आगन्तुम्, शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्।

इन तीन कारणों से देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्य लोक में आना चाहता है और आ भी सकता है।

देवस्स मणट्ठिइ-पदं

देवस्य मनःस्थिति-पदम्

देव-मनःस्थिति-पद

३६३. तओ ठाणाइं देवे पीहेज्जा, तं जहा—
माणुस्सगं भवं, आरिए खेत्ते जम्मं, सुकुलपच्चायातिं।

त्रीणि स्थानानि देवः स्पृहयेत्, तद्यथा—
मानुष्यकं भवम्, आर्ये क्षेत्रे जन्म, सुकुलप्रत्याजातिम्।

३६३. देव तीन स्थानों की स्पृहा करता है—
१. मनुष्य भव की, २. आर्य क्षेत्र में जन्म की, ३. सुकुल में प्रत्याजाति—उत्पन्न होने की।

३६४. तिहिं ठाणेहिं देवे परितप्पेज्जा, तं जहा—
१. अहो ! णं मए संते बले संते वीरिए संते पुरिसक्कारपरक्कमे खेमंसि सुभिक्खंसि आयरिय-

त्रिभिः स्थानैः देवः परितप्येत्, तद्यथा—
१. अहो ! मया सति बले सति वीर्ये सति पुरुषकारपराक्रमे क्षेमे सुभिक्षे आचार्योपाध्याययोः विद्यमानयोः कल्यशरीरेण नो बहुकं श्रुतं अधीतम्

३६४. तीन कारणों से देव परितप्त होता है—
१. अहो ! मैंने बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम, क्षेम, सुभिक्ष तथा आचार्य और उपाध्याय की उपस्थिति तथा नीरोग शरीर के होते हुए भी श्रुत का पर्याप्त

उवज्झाएहिं विज्जमाणेहिं कल्ल-सरीरेणं णो बहुए सुते अहीते,

२. अहो ! णं मए इहलोगपडिबद्धेणं परलोगपरंमुहेणं विसय-तिसितेणं णो दीहे सामण्णपरियाए अणुपालिते,

३. अहो ! णं मए इड्ढि-रस-साय-गरुएणं भोगासंसगिद्धेणं णो विसुद्धे चरित्ते फासिते—

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं देवे परितप्पेज्जा ।

अध्ययन नहीं किया।

२ अहो ! मया इहलोकप्रतिबद्धेन परलोकपराङ्मुखेन विषयतृषितेन नो दीर्घः श्रामण्यपर्यायः अनुपालितः

३. अहो! मया ऋद्धि-रस-सात-गुरुकेण भोगाशंसागृद्धेन नो विशुद्धं चरित्रं स्पृष्टम्—

इत्येतैः त्रिभिः स्थानैः देवः परितप्येत्

२. अहो ! मैंने विषय—तृषित, इहलोक मे प्रतिबद्ध और परलोक से विमुख होकर, श्रामण्य के दीर्घ पर्याय का पालन नही किया।

३. अहो ! मैंने ऋद्धि, रस, सात को बड़ा मानकर, अप्राप्त भोगो की अभिलाषा और प्राप्त भोगो मे गृद्ध होकर विशुद्ध चरित्र का स्पर्श नही किया—

इन तीन कारणो से देव परितप्त होता है।

३६५. तिहिं ठाणेहिं देवे चइस्सामित्ति जाणइ, तं जहा—

विमाणाभरणाइं णिप्पभाइं पासित्ता, कप्परुक्खगं मिलायमाणं पासित्ता, अप्पणो तेयलेस्सं परिहायमाणिं जाणित्ता—

इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे चइस्सामित्ति जाणइ ।

त्रिभिः स्थानैः देवः च्यविष्ये इति जानाति, तद्यथा—

विमानाभरणानि निष्प्रभाणि दृष्ट्वा, कल्पवृक्षकं म्लायन्तं दृष्ट्वा, आत्मनः तेजोलेश्यां परिहीयमानां ज्ञात्वा—

इति एतैः त्रिभिः स्थानैः देवः च्यविष्ये इति जानाति ।

३६५. तीन हेतुओ से देव यह जान लेता है कि मैं च्युत होऊगा—

१. विमान के आभरण को निष्प्रभ देखकर।

२ कल्प वृक्ष को मुर्झाया हुआ देखकर।

३ अपनी तेजोलेश्या [कान्ति] को क्षीण होती हुई जानकर—

इन तीन हेतुओं से देव यह जान लेता है— मैं च्युत होऊगा।

३६६. तिहिं ठाणेहिं देवे उव्वेगमागच्छेज्जा, तं जहा—

१. अहो ! णं मए इमाओ एतारूवाओ दिव्वाओ देविड्ढीओ दिव्वाओ देवजुतीओ दिव्वाओ देवाणुभावाओ लद्धाओ पत्ताओ अभिसमण्णागताओ चइयव्वं भविस्सति,

२. अहो ! णं मए माउओयं पिउ-सुक्कं तं तदुभयसंसट्ठं तप्पढमयाए आहारो आहारेयव्वो भविस्सति,

३. अहो ! णं मए कलमल-जंबालाए असुईए उव्वेयणियाए भीमाए गब्भवसहीए वसियव्वं

त्रिभिः स्थानैः देवः उद्वेगमागच्छेत्, तद्यथा—

१. अहो ! मया अस्याः एतद्रूपायाः दिव्यायाः देवर्द्ध्याः दिव्यायाः देवद्युत्याः दिव्यात् देवानुभावात् लब्धायाः प्राप्तायाः अभिसमन्वागतायाः च्यवितव्यं भविष्यति,

२. अहो ! मया मातुः ओजः पितुः शुक्रं तत् तदुभयसमृष्टं तत्प्रथमतया आहारः आहर्त्तव्यः भविष्यति,

३. अहो ! मया कलमल-जम्बालायां अशुचौ उद्वेजनीयायां भीमायां गर्भ-वसत्यां वस्तव्यं भविष्यति—

३६६. तीन कारणो से देव उद्वेग को प्राप्त होता है—

१. अहो ! मुझे इस प्रकार की उपार्जित, प्राप्त तथा अभिसमन्वागत दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति दिव्य देवानुभाव को छोड़ना पड़ेगा।

२. अहो ! मुझे सर्वप्रथम माता के ओज तथा पिता के शुक्र के घोल का आहार लेना होगा।

३. अहो ! मुझे असुरभि-पंकवाले, अपवित्र, उद्वेजनीय और भयानक गर्भाशय मे रहना होगा—

भविस्सइ—
इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे उव्वेग-मागच्छेज्जा ।

इति एतैः त्रिभिः स्थानैः देवः उद्वेगं आगच्छेत् ।

इन तीन कारणों से देव उद्वेग को प्राप्त होता है।

विमाण-पदं

विमान-पदम्

विमान-पद

३६७. तिसंठिया विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—
वट्टा, तंसा, चउरंसा ।
१. तत्थ णं जे ते वट्टा विमाणा, ते णं पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिया सव्वओ समंता पागार-परिक्खित्ता एगदुवारा पण्णत्ता,
२. तत्थ णं जे ते तंसा विमाणा, ते णं सिंघाडगसंठाणसंठिता दुहतोपागार-परिक्खित्ता एगतो वेइया-परिक्खित्ता तिदुवारा पण्णत्ता,
३. तत्थ णं जे ते चउरंसा विमाणा, ते णं अक्खाडगसंठाण-संठिता सव्वतो समंता वेइया-परिक्खत्ता चउदुवारा पण्णत्ता ।

त्रिसंस्थितानि विमानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वृत्तानि, त्र्यस्राणि, चतुरस्राणि ।
१. तत्र यानि वृत्तानि विमानानि, तानि पुष्करकर्णिकासस्थानस्थितानि सर्वतः समन्तात् प्राकार-परिक्षिप्तानि एक-द्वाराणि प्रज्ञप्तानि,
२. तत्र यानि त्र्यस्राणि विमानानि, तानि शृंगाटकसस्थानसस्थितानि द्वय-प्राकार-परिक्षिप्तानि एकतः वेदिका-परिक्षिप्तानि त्रिद्वाराणि प्रज्ञप्तानि,
३. तत्र यानि चतुरस्राणि विमानानि, तानि अक्षाटकसस्थानसंस्थितानि सर्वतः समन्तात् वेदिका-परिक्षिप्तानि चतुर्द्वा-राणि प्रज्ञप्तानि ।

३६७. विमान तीन प्रकार के संस्थान वाले होते हैं—
१. वृत्त, २. त्रिकोण, ३. चतुष्कोण ।
१. जो विमान वृत्त होते हैं वे पुष्कर-कर्णिका [पद्म-मध्य-भाग] सस्थान से संस्थित होते है, सब दिशाओ और हुए विदिशाओ मे चाहारदिवारी से घिरे होते है तथा उनके एक ही द्वार होता है।
२ जो विमान त्रिकोण होते है, वे सिंघाड़े के सस्थान से संस्थित होते है, दो ओर से चाहारदिवारी से घिरे हुए तथा एक ओर से वेदिका से घिरे हुए होते है तथा उनके तीन द्वार होते है।
३ जो विमान चतुष्कोण होते है, वे अखाड़े के सस्थान से सस्थित होते है, सब दिशाओ और विदिशाओ मे वेदिकाओं से घिरे हुए होते है तथा उनके चार द्वार होते हैं।

३६८. तिपतिट्ठिया विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—
घणोदधिपतिट्ठिता,
घणवातपइट्ठिता ।
ओवासंतरपइट्ठिता ।

त्रिप्रतिष्ठितानि विमानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
घनोदधिप्रतिष्ठितानि,
घनवातप्रतिष्ठितानि,
अवकाशान्तरप्रतिष्ठितानि ।

३६८. विमान त्रिप्रतिष्ठित होते हैं—
१. घनोदधि-प्रतिष्ठित,
२ घनवात-प्रतिष्ठित,
३. अवकाशातर-[आकाश] प्रतिष्ठित ।

३६९. तिविधा विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—
अवट्ठिता वेउव्विता,
पारिजाणिया ।

त्रिविधानि विमानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अवस्थितानि, विकृतानि, पारियानिकानि ।

३६९. विमान तीन प्रकार के होते हैं—
१. अवस्थित—स्थायी बास के लिए,
२. विकृत—अस्थायी बास के लिए निर्मित
३. पारियानिक—यात्रार्थ निर्मित ।

दिट्ठि-पदं

३७०. तिविधा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—सम्मादिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी।

३७१. एवं—विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

दुग्गति-सुगति-पदं

३७२. तओ दुग्गतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णेरइयदुग्गती, तिरिक्खजोणियदुग्गती, मणुयदुग्गती।

३७३. तओ सुगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सिद्धसोगती, देवसोगती, मणुस्ससोगती।

३७४. तओ दुग्गता पण्णत्ता, तं जहा—णेरइयदुग्गता, तिरिक्खजोणियदुग्गया, मणुस्सदुग्गता।

३७५. तओ सुगता पण्णत्ता, तं जहा—सिद्धसोगता, देवसुग्गता, मणुस्ससुग्गता।

तव-पाणग-पदं

३७६. चउत्थभत्तियस्स णं भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तं जहा—उस्सेइमे संसेइमे चाउलधोवणे।

३७७ छट्ठभत्तियस्स णं भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तं जहा—तिलोदए, तुसोदए, जवोदए।

३७८. अट्ठमभत्तियस्स णं भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए,

दृष्टि-पदम्

त्रिविधाः नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सम्यग्दृष्टयः, मिथ्यादृष्टयः, सम्यग्मिथ्यादृष्टयः।

एवम्—विकलेन्द्रियवर्ज यावत् वैमानिकानाम्।

दुर्गति-सुगति-पदम्

तिस्रः दुर्गतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नैरयिकदुर्गतिः, तिर्यग्योनिकदुर्गतिः, मनुजदुर्गतिः।

तिस्रः सुगतयः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—सिद्धसुगतिः, देवसुगतिः, मनुष्यसुगतिः।

त्रयः दुर्गताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नैरयिकदुर्गताः, तिर्यग्योनिकदुर्गताः, मनुष्यदुर्गताः।

त्रयः सुगताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सिद्धसुगताः, देवसुगताः, मनुष्यसुगताः।

तपः-पानक-पदम्

चतुर्थभक्तिकस्य भिक्षोः कल्पन्ते त्रीणि पानकानि प्रतिग्रहीतुम्, तद्यथा—उत्स्वेदिमं संसेकिमं तन्दुलधावनम्।

षष्ठभक्तिकस्य भिक्षोः कल्पन्ते त्रीणि पानकानि प्रतिग्रहीतुम्, तद्यथा—तिलोदकं, तुषोदकं, यवोदकम्।

अष्टमभक्तिकस्य भिक्षोः कल्पन्ते त्रीणि पानकानि प्रतिग्रहीतुम्, तद्यथा—

दृष्टि-पद

३७०. नैरयिक तीन प्रकार के होते हैं—
१. सम्यग्-दृष्टि, २. मिथ्या-दृष्टि,
३. सम्यग्-मिथ्या-दृष्टि।

३७१. इसी प्रकार विकलेन्द्रियों को छोड़कर सभी दण्डकों के तीन-तीन प्रकार हैं।

दुर्गति-सुगति-पद

३७२. दुर्गति तीन प्रकार की है—
१. नरक दुर्गति, २. तिर्यक योनिक दुर्गति,
३. मनुज दुर्गति।

३७३. सुगति तीन प्रकार की है—
१. सिद्ध सुगति, २. देव सुगति,
३. मनुष्य सुगति।

३७४. दुर्गत तीन प्रकार के है—
१. नैरयिक दुर्गत, २. तिर्यक-योनिक दुर्गत,
३. मनुष्य दुर्गत।

३७५. सुगत तीन प्रकार के है—१. सिद्ध-सुगत, २. देव-सुगत, ३. मनुष्य-सुगत।

तपः-पानक-पद

३७६. चतुर्थभक्त [उपवास] वाला भिक्षु तीन प्रकार के पानक[७१] ग्रहण कर सकता है—
१. उत्स्वेदिम—आटे का धोवन,
२. संसेकिम—सिझाए हुए केर आदि का धोवन, ३. चावल का धोवन।

३७७. छट्ठभक्त [बेले की तपस्या] वाला भिक्षु तीन प्रकार के पानक ले सकता है—
१. तिलोदक, २. तुषोदक, ३. यवोदक।

३७८. अट्ठभक्त [तेले की तपस्या] वाला भिक्षु तीन प्रकार के पानक ले सकता है—

तं जहा—आयामए, सोवीरए, सुद्धवियडे।

आचामकं, सौवीरकं, शुद्धविकटम्।

१. आयामक—अवस्रावण—ओसामन।
२. सौवीरक—कांजी,
३. शुद्धविकट—उष्णोदक।

पिंडेसणा-पदं

३७९. तिविहे उवहडे पण्णत्ते, तं जहा—फलिओवहडे, सुद्धोवहडे संसट्ठोवहडे।

पिण्डैषणा-पदम्

त्रिविध उपहृत प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—फलिकोपहृत शुद्धोपहृतं मसृष्टोपहृतम्।

पिण्डैषणा-पद

३७९. उपहृत भोजन तीन प्रकार का होता है—
१ फलिकोपहृत[४४]—खाने के लिए थाली आदि मे परोसा हुआ भोजन—अवगृहीत नाम की पांचवी पिण्डैषणा।
२. शुद्धोपहृत[४५]—खाने के लिए साथ में लाया हुआ लेप रहित भोजन—अल्पलेपा नाम की चौथी पिण्डैषणा।
३. ममृष्टोपहृत—खाने के लिए हाथ मे उठाया हुआ भोजन।

३८०. तिविहे ओग्गहिते पण्णत्ते, तं जहा—जं च ओगिण्हति, जं च साहरति, जं च आसगंसि पक्खिवति।

त्रिविध अवगृहीत प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—यच्च अवगृण्हाति, यच्च सहरति, यच्च आस्यके प्रक्षिपति।

३८० अवगृहीत भोजन तीन प्रकार का होता है—
१. परोसने के लिए उठाया हुआ,
२. परोसा हुआ, ३. पुन पाक-पात्र के मुह मे डाला हुआ।

ओमोयरिया-पदं

३८१. तिविधा ओमोयरिया पण्णत्ता, तं जहा—
उवगरणोमोयरिया, भत्तपाणोमोदरिया, भावोमोदरिया।

अवमोदरिका-पदम्

त्रिविधा अवमोदरिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उपकरणावमोदरिका,
भक्तपानावमोदरिका,
भावावमोदरिका।

अवमोदरिका-पद

३८१. अवमोदरिका—कम करने की वृत्ति तीन प्रकार की होती है—
१ उपकरण अवमोदरिका,
२. भक्तपान अवमोदरिका,
३ भाव अवमोदरिका—क्रोध आदि का परित्याग।

३८२. उवगरणोमोदरिया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
एगे वत्थे, एगे पाते, चियत्तोवहि-साइज्जणया।

उपकरणावमोदरिका त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—एक वस्त्र, एक पात्र, 'चियत्त' [सम्मत] उपधि-स्वादनम्।

३८२. उपकरण अवमोदरिका तीन प्रकार की होती है—१. एक वस्त्र रखना,
२. एक पात्र रखना,
३ सम्मत उपकरण रखना।

णिग्गंथ-चरिया-पदं

३८३. तओ ठाणा णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अहियाए असुभाए

निर्ग्रन्थ-चर्या-पदम्

त्रीणि स्थानानि निर्ग्रन्थाना वा निर्गन्थीनां वा अहिताय अशुभाय

निर्ग्रन्थ-चर्या-पद

३८३. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो के लिए तीन स्थान अहित, अशुभ, अक्षम [अनुपयुक्तता],

अक्खमाए अणिस्सेसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—
कूअणता, कक्करणता,
अवज्झाणता।

अक्षमाय अनिःश्रेयसाय अनानुगामिकत्वाय भवन्ति, तं जहा—
कूजनता, 'कर्करणता', अपध्यानता।

अनिःश्रेयस् तथा अनानुगामिता [अशुभ बन्धन] के हेतु होते हैं—
१. कूजनता—आर्त्त स्वर करना,
२. कक्कणरता—परदोषोद्भावन के लिए प्रलाप करना,
३. अपध्यानता—अशुभ चिन्तन करना।

३८४. तओ ठाणा णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा हिताए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामिअत्ताए भवंति, तं जहा—अकूअणता, अकक्करणता, अणवज्झाणता।

त्रीणि स्थानानि निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीनां वा हिताय शुभाय क्षमाय निःश्रेयसाय आनुगामिकत्वाय भवन्ति, तद्यथा—
अकूजनता, 'अकर्करणता', अनपध्यानता।

३८४. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों के लिए तीन स्थान हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस तथा आनुगामिता के हेतु होते है—१. अकूजनता, २. अकक्करणता, ३. अनपध्यानता।

सल्ल-पदं

३८५. तओ सल्ला पण्णत्ता, तं जहा—मायासल्ले, णियाणसल्ले, मिच्छादंसणसल्ले।

शल्य-पदम्

त्रीणि शल्यानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मायाशल्यं, निदानशल्य
मिथ्यादर्शनशल्यम्।

शल्य-पद

३८५. शल्य तीन प्रकार का है—१. माया शल्य, २. निदान शल्य, ३. मिथ्यादर्शन शल्य।

तेउलेस्सा-पदं

३८६. तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे संखित्तविउलतेउलेस्से भवति, तं जहा—आयावणताए, खंतिखमाए, अपाणगेणं तवोकम्मेणं।

तेजोलेश्या-पदम्

त्रिभिः स्थानैः श्रमणः निर्ग्रन्थः संक्षिप्त-विपुलतेजोलेश्यो भवति, तद्यथा—
आतापनया, क्षान्तिक्षमया,
अपानकेन तपःकर्मणा।

तेजोलेश्या-पद

३८६. तीन स्थानो से श्रमण निर्ग्रन्थ संक्षिप्त की हुई विपुल तेजोलेश्या वाले होते हैं—
१. आतापना लेने से,
२. क्रोधविजयी होने के कारण समर्थ होते हुए भी क्षमा करने से,
३. जल रहित तपस्या करने से।

भिक्खुपडिमा-पदं

३८७ तिमासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवण्णस्स अणगारस्स कप्पंति तओ दत्तीओ भोअणस्स पडिगाहेत्तए, तओ पाणगस्स।

३८८. एगरातियं भिक्खुपडिमं सम्मं अणणुपालेमाणस्स अणगारस्स इमे तओ ठाणा अहिताए असुभाए

भिक्षुप्रतिमा-पदम्

त्रिमासिकी भिक्षुप्रतिमा प्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पते तिस्रः दत्तीः भोजनस्य प्रतिग्रहीतु, तिस्रः पानकस्य।

एकरात्रिकी भिक्षुप्रतिमां सम्यग् अननुपालयतः अनगारस्य इमानि त्रीणि स्थानानि अहिताय अशुभाय अक्षमाय

भिक्षुप्रतिमा-पद

३८७. त्रैमासिक भिक्षु प्रतिमा से प्रतिपन्न अनगार भोजन और पानी की तीन दत्तियां ले सकता है।

३८८. एक रात्रि की बारहवी भिक्षु-प्रतिमा का सम्यग् अनुपालन नही करने वाले भिक्षु के लिए तीन स्थान अहित, अशुभ, अक्षम,

अखमाए अणिस्सेयसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—
उम्मायं वा लभिज्जा,
दीहकालियं वा रोगातंकं पाउणेज्जा,
केवलीपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा।

अनिःश्रेयसाय अनानुगामिकत्वाय भवन्ति तद्यथा—उन्मादं वा लभेत, दीर्घकालिक वा रोगातक प्राप्नुयात्, केवलिप्रज्ञप्तात् वा धर्मात् भ्रश्येत्।

अनिःश्रेयस तथा अनानुगामिता के हेतु होते हैं—
१. या तो वह उन्माद को प्राप्त हो जाता है,
२. या लम्बी बीमारी या आतंक से ग्रसित हो जाता है।
३. या केवलीप्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

३८९. एगरातियं भिक्खुपडिमं सम्मं अणुपालेमाणस्स अणगारस्स तओ ठाणा हिताए सुभाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—
ओहिणाणे वा से समुप्पज्जेज्जा,
मणपज्जवणाणे वा से समुप्पज्जेज्जा,
केवलणाणे वा से समुप्पज्जेज्जा।

एकरात्रिकी भिक्षुप्रतिमां सम्यग् अनुपालयतः अनगारस्य त्रीणि स्थानानि हिताय शुभाय क्षमाय निःश्रेयसाय आनुगामिकत्वाय भवन्ति, तद्यथा—
अवधिज्ञान वा तस्य समुत्पद्येत, मनःपर्यवज्ञानं वा तस्य समुत्पद्येत, केवलज्ञान वा तस्य समुत्पद्येत।

३८९. एक रात्रि की भिक्षुप्रतिमा का सम्यग् अनुपालन करने वाले भिक्षु के लिए तीन स्थान हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस् तथा आनुगामिता के हेतु होते हैं—
१ या तो उसे अवधि ज्ञान प्राप्त हो जाता है,
२ या मनःपर्यव ज्ञान प्राप्त हो जाता है,
३ या केवल ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

कम्मभूमी-पदं

३९०. जंबुद्दीवे दीवे तओ कम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
भरहे, एरवए, महाविदेहे।

३९१. एवं—धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे।

कर्मभूमि-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे तिस्रः कर्मभूमयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—भरतं, ऐरवत, महाविदेहः।

एवम्—धातकीषण्डे द्वीपे पौरस्त्यार्धे यावत् पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्धे।

कर्मभूमि-पद

३९०. जम्बूद्वीप नाम के द्वीप में तीन कर्म-भूमियाँ हैं—
१ भरत, २. ऐरवत, ३ महाविदेह।

३९१ इसी प्रकार धातकीषड के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध तथा अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में तीन-तीन कर्म भूमियाँ हैं।

दंसण-पदं

३९२. तिविहे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—
सम्मद्दंसणे, मिच्छद्दंसणे,
सम्मामिच्छद्दंसणे।

३९३. तिविहा रुई पण्णत्ता, तं जहा—
सम्मरुई, मिच्छरुई,
सम्मामिच्छरुई।

दर्शन-पदम्

त्रिविध दर्शनं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन,
सम्यग्मिथ्यादर्शनम्।

त्रिविधा रुचिः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
सम्यग्रुचिः, मिथ्यारुचिः,
सम्यग्मिथ्यारुचिः।

दर्शन-पद

३९२ दर्शन[५६] तीन प्रकार का होता है—
१. सम्यग्दर्शन, २. मिथ्यादर्शन,
३ सम्यग्-मिथ्यादर्शन।

३९३ रुचि[५७] तीन प्रकार की होती हैं—
१. सम्यग्रुचि, २ मिथ्यारुचि,
३. सम्यग्-मिथ्यारुचि।

पओग-पदं

३९४. तिविधे पओगे पण्णत्ते, तं जहा— सम्मपओगे, मिच्छपओगे, सम्मामिच्छपओगे।

प्रयोग-पदम्

त्रिविध. प्रयोगः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— सम्यक् प्रयोगः, मिथ्याप्रयोग., सम्यग्मिथ्याप्रयोग ।

प्रयोग-पद

३९४. प्रयोग[९८] तीन प्रकार का होता है— १ सम्यग्प्रयोग, २. मिथ्याप्रयोग, ३. सम्यग्मिथ्याप्रयोग।

ववसाय-पदं

३९५. तिविहे ववसाए पण्णत्ते, तं जहा— धम्मिए ववसाए, अधम्मिए ववसाए, धम्मियाधम्मिए ववसाए।

अहवा—तिविधे ववसाए पण्णत्ते, तं जहा— पच्चक्खे, पच्चइए, आणुगामिए।

अहवा—तिविधे ववसाए पण्णत्ते, तं जहा—इहलोइए, परलोइए, इहलोइअ-परलोइए।

३९६. इहलोइए ववसाए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—लोइए, वेइए, सामइए।

३९७. लोइए ववसाए तिविधे पण्णत्ते, तं जहा—अत्थे, धम्मे, कामे।

३९८. वेइए ववसाए तिविधे पण्णत्ते, तं जहा—रिव्वेदे, जउव्वेदे, सामवेदे।

३९९. सामइए ववसाए तिविधे पण्णत्ते तं जहा— णाणे, दंसणे, चरित्ते।

व्यवसाय-पदम्

त्रिविधः व्यवसाय. प्रज्ञप्तः, तद्यथा— धार्मिकः व्यवसाय., अधार्मिक व्यवसायः, धार्मिकाधार्मिकः व्यवसायः ।

अथवा—त्रिविध व्यवसाय प्रज्ञप्त., तद्यथा—प्रत्यक्ष, प्रात्ययिक, आनुगामिक ।

अथवा—त्रिविध व्यवसाय प्रज्ञप्त, तद्यथा—ऐहलौकिक., पारलौकिकः, ऐहलौकिक-पारलौकिक ।

ऐहलौकिको व्यवसायः त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—लौकिक., वैदिक, सामयिक ।

लौकिको व्यवसाय त्रिविध प्रज्ञप्त., तद्यथा—अर्थ, धर्म, कामः ।

वैदिक. व्यवसाय. त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ।

सामयिक. व्यवसाय त्रिविधः प्रज्ञप्त, तद्यथा—ज्ञान, दर्शन, चरित्रम् ।

व्यवसाय-पद

३९५. व्यवसाय[९९] तीन प्रकार का होता है— १. धार्मिक व्यवसाय, २ अधार्मिक व्यवसाय, ३. धार्मिकाधार्मिक व्यवसाय।

अथवा—व्यवसाय तीन प्रकार का होता है—१ प्रत्यक्ष, २. प्रात्ययिक—व्यवहार प्रत्यक्ष, ३. आनुगामिक—आनुमानिक।

अथवा—व्यवसाय तीन प्रकार का होता है—१. इहलौकिक, २ पारलौकिक, ३. इहलौकिक-पारलौकिक।

३९६. इहलौकिक व्यवसाय तीन प्रकार का होता है—१ लौकिक, २ वैदिक, ३. सामयिक—श्रमणों का व्यवसाय।

३९७. लौकिक व्यवसाय तीन प्रकार का होता है—१ अर्थ, २ धर्म, ३ काम।

३९८. वैदिक व्यवसाय तीन प्रकार का होता है— १ ऋग्वेद, २. यजुर्वेद, ३ सामवेद।

३९९. सामयिक व्यवसाय तीन प्रकार का होता है—१. ज्ञान, २. दर्शन, ३. चरित्र।

अत्थजोणी-पदं

४००. तिविधा अत्थजोणी पण्णत्ता, तं जहा—सामे, दंडे, भेदे।

अर्थयोनि-पदम्

त्रिविधा अर्थयोनिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा— साम, दण्ड., भेद ।

अर्थयोनि-पद

४०० अर्थयोनि[१००] [अर्थ प्राप्ति के उपाय] तीन प्रकार की होती है— १. साम, २. दण्ड, ३. भेद।

पोग्गल-पदं

४०१. तिविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—
पओगपरिणता, मीसापरिणता, वीससापरिणता।

पुद्गल-पदम्

त्रिविधा: पुद्गला: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
प्रयोगपरिणता:, मिश्रपरिणता:, विस्रसापरिणता:।

पुद्गल-पद

४०१. पुद्गल तीन प्रकार के होते हैं—
१. प्रयोग-परिणत—जीव के द्वारा गृहीत पुद्गल,
२. मिश्र-परिणत—जीव के प्रयोग तथा स्वाभाविक रूप से परिणत पुद्गल,
३. विस्रसा—स्वभाव से परिणत पुद्गल।

णरग-पदं

४०२. तिपतिट्ठिया णरगा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविपतिट्ठिता, आगासपतिट्ठिता, आयपइट्ठिया।
णेगम-संगह-ववहाराणं पुढविपइट्ठिया, उज्जुसुतस्स आगासपतिट्ठिया, तिण्हं सद्दणयाणं आयपतिट्ठिया।

नरक-पदम्

त्रिप्रतिष्ठिता: नरका: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
पृथिवीप्रतिष्ठिता:, आकाशप्रतिष्ठिता:, आत्मप्रतिष्ठिता:।
नैगम-संग्रह-व्यवहाराणां पृथिवीप्रतिष्ठिता:, ऋजुसूत्रस्य आकाशप्रतिष्ठिता:, त्रयाणां शब्दनयानां आत्मप्रतिष्ठिता:।

नरक-पद

४०२. नरक त्रिप्रतिष्ठित है[८१]—
१. पृथ्वी प्रतिष्ठित, २. आकाश प्रतिष्ठित, ३. आत्म प्रतिष्ठित।
नैगम, संग्रह तथा व्यवहार-नय की अपेक्षा से वे पृथ्वी प्रतिष्ठित हैं
ऋजु-सूत्रनय की अपेक्षा से वे आकाश प्रतिष्ठित हैं
तीन शब्द—नयों की अपेक्षा से वे आत्म-प्रतिष्ठित हैं।

मिच्छत्त-पदं

४०३. तिविधे मिच्छत्ते पण्णत्ते, तं जहा—
अकिरिया, अविणए, अण्णाणे।

मिथ्यात्व-पदम्

त्रिविधं मिथ्यात्वं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
अक्रिया, अविनय:, अज्ञानम्।

मिथ्यात्व-पद

४०३. मिथ्यात्व[८२]—असमीचीनता—तीन प्रकार का होता है—
१. अक्रिया—असमीचीनक्रिया,
२. अविनय—असमीचीनसंबंधविच्छेद,
३. अज्ञान—असमीचीन ज्ञान।

४०४. अकिरिया तिविधा पण्णत्ता, तं जहा—पओगकिरिया, समुदाणकिरिया, अण्णाणकिरिया।

अक्रिया त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्रयोगक्रिया, समुदानक्रिया, अज्ञानक्रिया।

४०४. अक्रिया[८३] तीन प्रकार की होती है—
१. प्रयोगक्रिया—मन, वचन और काया की प्रवृत्ति,
२. समुदानक्रिया—कर्म पुद्गलों का आदान
३. अज्ञानक्रिया—असम्यग्ज्ञान की, प्रवृत्ति।

४०५. पओगकिरिया तिविधा पण्णत्ता, तं जहा—मणपओगकिरिया,

प्रयोगक्रिया त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मन:प्रयोगक्रिया, वाक्प्रयोगक्रिया,

४०५. प्रयोग क्रिया तीन प्रकार की होती है—
१. मनप्रयोग क्रिया,

वइपओगकिरिया, कायपओग-किरिया।

कायप्रयोगक्रिया।

२. वचनप्रयोग क्रिया,
३. कायप्रयोग क्रिया।

४०६. समुदाणकिरिया तिविधा पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरसमुदाणकिरिया, परंपरसमुदाणकिरिया, तदुभयसमुदाणकिरिया।

समुदानक्रिया त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अनन्तरसमुदानक्रिया, परम्परसमुदानक्रिया, तदुभयसमुदानक्रिया।

४०६. समुदान क्रिया तीन प्रकार की होती है—
१. अनन्तरसमुदान क्रिया,
२. परम्परसमुदान क्रिया,
३. तदुभयसमुदान क्रिया।

४०७. अण्णाणकिरिया तिविधा पण्णत्ता, तं जहा—मतिअण्णाणकिरिया, सुतअण्णाणकिरिया, विभंगअण्णाणकिरिया।

अज्ञानक्रिया त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—मत्यज्ञानक्रिया, श्रुताज्ञानक्रिया, विभङ्गाज्ञानक्रिया।

४०७. अज्ञान क्रिया तीन प्रकार की होती है—
१. मतिअज्ञान क्रिया,
२. श्रुतअज्ञान क्रिया,
३. विभगअज्ञान क्रिया।

४०८. अविणए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—देसच्चाई, णिरालंबणता, णाणापेज्जदोसे।

अविनय: त्रिविध: प्रज्ञप्त:, तद्यथा—देशत्यागी, निरालम्बनता, नानाप्रेयोदोष:।

४०८. अविनय तीन प्रकार का होता है—
१. देश-त्याग—देश को छोड़कर चले जाना,
२. निरालम्बन—समाज से अलग हो जाना,
३. नानाप्रेयोद्वेषी—प्रेम और द्वेष का नाना रूप से प्रयोग करना, प्रिय के साथ प्रेम और अप्रिय के साथ द्वेष—इस सामान्य नियम का अतिक्रमण करना।

४०९. अण्णाणे तिविधे पण्णत्ते, तं जहा—देसण्णाणे, सव्वण्णाणे, भावण्णाणे।

अज्ञान त्रिविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—देशाज्ञान, सर्वाज्ञान, भावाज्ञान।

४०९. अज्ञान तीन प्रकार का होता है—
१ देश अज्ञान—ज्ञातव्य वस्तु के किसी एक अंश को न जानना,
२. सर्व अज्ञान—ज्ञातव्य वस्तु को सर्वत: न जानना,
३ भाव अज्ञान—वस्तु के ज्ञातव्य पर्यायों को न जानना।

धम्म-पदं

धर्म-पदम्

धर्म-पद

४१०. तिविहे धम्मे पण्णत्ते, तं जहा—सुयधम्मे, चरित्तधम्मे, अत्थिकायधम्मे।

त्रिविध: धर्म: प्रज्ञप्त:, तद्यथा—श्रुतधर्म:, चरित्रधर्म:, अस्तिकायधर्म:।

४१०. धर्म तीन प्रकार का होता है—
१. श्रुत-धर्म, २. चरित्र-धर्म,
३. अस्तिकाय-धर्म।

उवक्कम-पदं

उपक्रम-पदम्

उपक्रम-पद

४११ तिविधे उवक्कमे पण्णत्ते, तं जहा—

त्रिविध: उपक्रम: प्रज्ञप्त: तद्यथा—

४११. उपक्रम [उपायपूर्वक आरम्भ] तीन

धम्मिए उवक्कमे, अधम्मिए उवक्कमे, धम्मियाधम्मिए उवक्कमे

धार्मिकः उपक्रमः, अधार्मिकः उपक्रमः, धार्मिकाधार्मिकः उपक्रमः ।

प्रकार का होता है—
१. धार्मिक—संयम का उपक्रम,
२. अधार्मिक—असयम का उपक्रम,
३. धार्मिकाधार्मिक—सयम और असंयम का उपक्रम।

अहवा—तिविधे उवक्कमे पण्णत्ते, तं जहा—आओवक्कमे, परोवक्कमे, तदुभयोवक्कमे ।

अथवा—त्रिविध. उपक्रमः प्रज्ञप्तः तद्यथा—आत्मोपक्रमः, परोपक्रमः, तदुभयोपक्रम ।

अथवा—उपक्रम तीन प्रकार का होता है—१. आत्मोपक्रम—अपने लिए, २. परोपक्रम—दूसरो के लिए, ३. तदुभयोपक्रम—दोनो के लिए।

४१२. *तिविधे वेयावच्चे पण्णत्ते, तं जहा—आयवेयावच्चे, परवेयावच्चे, तदुभयवेयावच्चे ।

त्रिविध वैयावृत्त्यं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आत्मवैयावृत्त्य, परवैयावृत्त्य, तदुभयवैयावृत्त्यम् ।

४१२. वैयावृत्त्य तीन प्रकार का होता है—
१. आत्म-वैयावृत्त्य, २. पर-वैयावृत्त्य, ३. तदुभय वैयावृत्त्य।

४१३ तिविधे अणुग्गहे पण्णत्ते तं जहा—आयअणुग्गहे, परअणुग्गहे, तदुभयअणुग्गहे ।

त्रिविधः अनुग्रहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आत्मानुग्रहः, परानुग्रह, तदुभयानुग्रहः ।

४१३. अनुग्रह तीन प्रकार का होता है—
१. आत्मानुग्रह, २. परानुग्रह, ३. तदुभयानुग्रह ।

४१४. तिविधा अणुसट्ठी पण्णत्ता, तं जहा—आयअणुसट्ठी, परअणुसट्ठी, तदुभयअणुसट्ठी ।

त्रिविधा अनुशिष्टि प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आत्मानुशिष्टि, परानुशिष्टिः, तदुभयानुशिष्टि ।

४१४. अनुशिष्टि तीन प्रकार की होती है—
१. आत्मानुशिष्टि, २. परानुशिष्टि, ३. तदुभयानुशिष्टि।

४१५. तिविधे उवालंभे पण्णत्ते तं जहा—आओवालंभे, परोवालंभे, तदुभयोवालंभे° ।

त्रिविध उपालम्भः प्रज्ञप्त, तद्यथा—आत्मोपालम्भ, परोपालम्भः, तदुभयोपालम्भः ।

४१५. उपालम्भ तीन प्रकार का होता है—
१. आत्मोपालम्भ, २. परोपालम्भ, ३. तदुभयोपालम्भ।

तिवग्ग-पदं

त्रिवर्ग-पदम्

त्रिवर्ग-पद

४१६. तिविहा कहा पण्णत्ता, तं जहा—अत्थकहा, धम्मकहा, कामकहा ।

त्रिविधा कथा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अर्थकथा, धर्मकथा, कामकथा ।

४१६. कथा तीन प्रकार की होती है—
१. अर्थ कथा, २. धर्म कथा, ३. कामकथा।

४१७. तिविहे विणिच्छए पण्णत्ते, तं जहा—अत्थविणिच्छए, धम्मविणिच्छए, कामविणिच्छए ।

त्रिविधः विनिश्चय. प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अर्थविनिश्चयः, धर्मविनिश्चयः, कामविनिश्चयः ।

४१७ विनिश्चय तीन प्रकार का होता है—
१. अर्थ विनिश्चय, २. धर्म विनिश्चय, ३. काम विनिश्चय।

४१८. तहारूवं णं भंते ! समणं वा माहणं वा पज्जुवासमाणस्स किंफला पज्जुवासणया ?
सवणफला ।
से णं भंते ! सवणे किंफले ?
णाणफले ।

तथारूप भदन्त ! श्रमण वा माहन वा पर्युपासमानस्य किंफला पर्युपासना ?
श्रवणफला ।
तद् भदन्त ! श्रवणं किंफलम् ?
ज्ञानफलम्।

४१८. भन्ते ! तथारूप श्रमण-माहन की पर्युपासना करने का क्या फल है ?
आयुष्मन् ! उसका फल है धर्म का श्रवण।
भते ! श्रवण का क्या फल है ?
आयुष्मन् ! श्रवण का फल है ज्ञान।

से णं भंते ! णाणे किंफले ?	तद् भदन्त ! ज्ञान किंफलम् ?	भंते ! ज्ञान का क्या फल है ?
विण्णाणफले ।	विज्ञानफलम् ।	आयुष्मन् ! ज्ञान का फल है विज्ञान ।
***से णं भंते ! विण्णाणे किंफले ?**	तद् भदन्त ! विज्ञान किंफलम् ?	भंते ! विज्ञान का क्या फल है ?
पच्चक्खाणफले ।	प्रत्याख्यानफलम् ।	आयुष्मन् ! विज्ञान का फल है प्रत्याख्यान ।
से णं भंते ! पच्चक्खाणे किंफले ?	तद् भदन्त ! प्रत्याख्यान किंफलम् ?	भंते ! प्रत्याख्यान का क्या फल है ?
संजमफले ।	संयमफलम् ।	आयुष्मन् ! प्रत्याख्यान का फल है । संयम
से णं भंते ! संजमे किंफले ?	स भदन्त ! संयमः ! किंफल ?	भंते ! संयम का क्या फल है ?
अणण्हयफले ।	अनाश्रवफलः ।	आयुष्मन् ! संयम का फल है अनाश्रव—कर्मनिरोध ।
से णं भंते ! अणण्हए किंफले ?	स भदन्त ! अनाश्रवः किंफलः ?	भंते ! अनाश्रव का क्या फल है ! आयुष्मन् ! अनाश्रव का फल है तप ।
तवफले ।	तपःफलः ।	भंते ! तप का क्या फल है ?
से णं भंते ! तवे किंफले ?	तद् भदन्त ! तपः किंफलम् ?	आयुष्मन् ! तप का फल है व्यवदान—निर्जरा ।
वोदाणफले ।	व्यवदानफलम् ।	भंते ! व्यवदान का क्या फल है ?
से णं भंते ! वोदाणे किंफले ?	तद् भदन्त ! व्यवदान किंफलम् ?	आयुष्मन् ! व्यवदान का फल है अक्रिया—मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति का पूर्ण निरोध ।
अकिरियफले ।°	अक्रियाफलम् ।	
सा णं भंते ! अकिरिया किंफला ?	सा भदन्त ! अक्रिया किंफला ?	भंते ! अक्रिया का क्या फल है ?
णिव्वाणफला ।	निर्वाणफला ।	आयुष्मन् ! अक्रिया का फल है निर्वाण ।
से णं भंते ! णिव्वाणे किंफले ?	तद् भदन्त ! निर्वाण किंफलम् ?	भंते ! निर्वाण का क्या फल है ?
सिद्धिगइ-गमण-पज्जवसाण-फले समणाउसो !	सिद्धिगति-गमन-पर्यवसान-फल आयुष्मन् ! श्रमण !	आयुष्मन् ! श्रमणो ! निर्वाण का फल है सिद्धिगति-गमन ।

चउत्थो उद्देसो

पडिमा-पदं	प्रतिमा-पदम्	प्रतिमा-पद
४१९. पडिमापडिवण्णस्स णं अणगारस्स कप्पंति तओ उवस्सया पडिलेहित्तए, तं जहा—	प्रतिमाप्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते त्रयः उपाश्रयाः प्रतिलेखितुम्, तद्यथा—	४१९. प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार तीन प्रकार के आवासों का प्रतिलेखन [गवेषणा] कर सकता है—
अहे आगमणगिहंसि वा,	अधः आगमनगृहे वा,	१. आगमन गृह—सभा, पौ आदि मे,
अहे वियडगिहंसि वा,	अधः विकटगृहे वा,	२. विवृत गृह—खुले घर में,
अहे रुक्खमूलगिहंसि वा ।	अधः रुक्षमूलगृहे वा ।	३. वृक्ष के नीचे ।

४२०. °पडिमापडिवण्णस्स णं अणगारस्स कप्पंति तओ उवस्सया अणुण्णवेत्तए, तं जहा—
अहे आगमणगिहंसि वा,
अहे वियडगिहंसि वा,
अहे रुक्खमूलगिहंसि वा।

प्रतिमाप्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते त्रय. उपाश्रयाः अनुज्ञातुम्, तद्यथा—
अध: आगमनगृहे वा,
अध: विकटगृहे वा,
अध: रुक्षमूलगृहे वा।

४२०. प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार तीन प्रकार के स्थानो की अनुज्ञा [आज्ञा] ले सकता है—
१. आगमन गृह मे, २. विवृत गृह मे,
३. वृक्ष के नीचे।

४२१. पडिमापडिवण्णस्स णं अणगारस्स कप्पंति तओ उवस्सया उवाइणित्तए, तं जहा—अहे आगमणगिहंसि वा,
अहे वियडगिहंसि वा,
अहे रुक्खमूलगिहंसि वा।°

प्रतिमाप्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते त्रय उपाश्रयाः उपादातुम्, तद्यथा—
अधः आगमनगृहे वा,
अधः विकटगृहे वा,
अधः रुक्षमूलगृहे वा।

४२१. प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार तीन प्रकार के स्थानो मे रह सकता है—
१. आगमन गृह मे, २. विवृत गृह मे,
३ वृक्ष के नीचे।

४२२. पडिमापडिवण्णस्स णं अणगारस्स कप्पंति तओ संथारगा पडिलेहित्तए, तं जहा—
पुढविसिला, कट्ठसिला,
अहासंथडमेव।

प्रतिमाप्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते त्रीणि सस्तारकाणि प्रतिलेखितुम्, तद्यथा—पृथिवीशिला, काष्ठशिला, यथासस्तृतमेव।

४२२. प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार तीन प्रकार के संस्तारको का प्रतिलेपन कर सकता है—
१ पृथ्वी शिला,
२ काष्ठ शिला—तख्ता आदि।
३ यथा-सस्तृत—घास आदि।

४२३. °पडिमापडिवण्णस्स णं अणगारस्स कप्पंति तओ संथारगा अणुण्णवेत्तए तं जहा— पुढविसिला, कट्ठसिला,
अहासंथडमेव।

प्रतिमाप्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते त्रीणि सस्तारकाणि अनुज्ञातुम्, तद्यथा—
पृथिवीशिला, काष्ठशिला,
यथासस्तृतमेव।

४२३ प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार तीन प्रकार के सस्तारकों की अनुज्ञा ले सकता है—
१ पृथ्वी शिला, २ काष्ठ शिला,
३. यथा-सस्तृत।

४२४ पडिमापडिवण्णस्स णं अणगारस्स कप्पंति तओ संथारगा उवाइणित्तए, तं जहा—पुढविसिला, कट्ठसिला,
अहासंथडमेव।°

प्रतिमाप्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते त्रीणि सस्तारकाणि उपादातुम्, तद्यथा—
पृथिवीशिला, काष्ठशिला,
यथासस्तृतमेव।

४२४ प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार तीन प्रकार के सस्तारकों का उपयोग कर सकता है—
१ पृथ्वी शिला, २ काष्ठ शिला,
३ यथा-सस्तृत।

काल-पदं

काल-पदम्

काल-पद

४२५. तिविहे काले पण्णत्ते, तं जहा—
तीए, पडुप्पण्णे, अणागए।

त्रिविध: कालः प्रज्ञप्त, तद्यथा—
अतीत, प्रत्युत्पन्न, अनागतः।

४२५ काल तीन प्रकार का होता है—
१ अतीत—भूतकाल,
२ प्रत्युत्पन्न—वर्तमान।
३ अनागत—भविष्य।

४२६. तिविहे समए पण्णत्ते, तं जहा—
तीते, पडुप्पण्णे, अणागए।

त्रिविध समयः प्रज्ञप्त, तद्यथा—
अतीत, प्रत्युत्पन्नः, अनागतः।

४२६ समय तीन प्रकार का है—
१ अतीत, २ प्रत्युत्पन्न, ३ अनागत।

४२७. एवं—आवलिया आणापाणू थोवे लवे मुहुत्ते अहोरत्ते जाव वाससत-

एवम्—आवलिका आनप्राण स्तोकः लवः मुहूर्त्त. अहोरात्र. यावत् वर्षशत-

४२७. इसी प्रकार आवलिका आन-प्राण स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्र यावत् लाखवर्ष,

सहस्से पुव्वंगे पुव्वे जाव ओसप्पिणी।

सहस्रं पूर्वाङ्गं पूर्वः यावत् अवसर्पिणी।

पूर्वांग, पूर्व यावत् अवसर्पिणी तीन-तीन प्रकार की होती हैं।[८४]

४२८. तिविधे पोग्गलपरियट्टे पण्णत्ते, तं जहा—तीते, पडुप्पण्णे, अणागते।

त्रिविधः पुद्गलपरिवर्त्तः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अतीतः, प्रत्युत्पन्नः, अनागतः।

४२८ पुद्गल परिवर्त तीन प्रकार का है—
१ अतीत, २ प्रत्युत्पन्न, ३ अनागत।

वयण-पदं

वचन-पदम्

वचन-पद

४२९. तिविहे वयणे पण्णत्ते, तं जहा—
एगवयणे, दुवयणे, बहुवयणे।
अहवा—तिविहे वयणे पण्णत्ते, तं जहा—
इत्थिवयणे, पुंवयणे, णपुंसगवयणे।
अहवा—तिविहे वयणे पण्णत्ते, तं जहा—
तीतवयणे, पडुप्पण्णवयणे, अणागयवयणे।

त्रिविधं वचनं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
एकवचनं, द्विवचनं, बहुवचनम्।
अथवा—त्रिविधं वचनं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
स्त्रीवचनं, पुंवचनं, नपुंसकवचनम्।
अथवा—त्रिविधं वचनं प्रज्ञप्तम् तद्यथा—
अतीतवचनं, प्रत्युत्पन्नवचनं, अनागतवचनम्।

४२९ वचन तीन प्रकार का होता है—
१. एकवचन, २ द्विवचन, ३. बहुवचन।
अथवा—वचन तीन प्रकार का होता है—
१ स्त्रीवचन, २. पुरुषवचन, ३. नपुंसकवचन।
अथवा—वचन तीन प्रकार का होता है—
१. अतीतवचन, २ प्रत्युत्पन्नवचन, ३ अनागतवचन।

णाणादीणं पण्णवणा-सम्म-पदं

ज्ञानादीनां प्रज्ञापना-सम्यक्-पदम्

ज्ञान आदि की प्रज्ञापना-सम्यक्-पद

४३०. तिविहा पण्णवणा पण्णत्ता, तं जहा—णाणपण्णवणा, दंसणपण्णवणा, चरित्तपण्णवणा।

त्रिविधा प्रज्ञापना प्रज्ञप्ता तद्यथा—ज्ञानप्रज्ञापना, दर्शनप्रज्ञापना, चरित्रप्रज्ञापना।

४३०. प्रज्ञापना तीन प्रकार की होती है—
१ ज्ञान प्रज्ञापना, २ दर्शन प्रज्ञापना, ३ चरित्र प्रज्ञापना।

४३१. तिविधे सम्मे पण्णत्ते, तं जहा—णाणसम्मे, दंसणसम्मे, चरित्तसम्मे।

त्रिविधं सम्यक् प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—ज्ञानसम्यक्, दर्शनसम्यक्, चरित्रसम्यक्।

४३१ सम्यक् तीन प्रकार का होता है—
१. ज्ञान-सम्यक्, २. दर्शन सम्यक्, ३ चरित्र सम्यक्।

उवघात-विसोहि-पदं

उपघात-विशोधि-पदम्

उपघात-विशोधि-पद

४३२. तिविधे उवघाते पण्णत्ते, तं जहा—उग्गमोवघाते, उप्पायणोवघाते, एसणोवघाते।

त्रिविधः उपघातः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—उद्गमोपघातः, उत्पादनोपघातः, एषणोपघातः।

४३२ उपघात [चरित्र की विराधना] तीन प्रकार की होती है—
१. उद्गम उपघात,
२ उत्पादन उपघात,
३. एषणा उपघात।[८५]

४३३. °तिविधा विसोही पण्णत्ता, तं जहा—उग्गमविसोही, उप्पायणविसोही, एसणाविसोही।°

त्रिविधा विशोधिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उद्गमविशोधिः, उत्पादनविशोधिः, एषणाविशोधिः।

४३३. विशोधि तीन प्रकार की होती है—
१. उद्गम की विशोधि,
२. उत्पादन की विशोधि,
३. एषणा की विशोधि।

आराहणा-पदं

४३४. तिविहा आराहणा पण्णत्ता, तं जहा—णाणाराहणा, दंसणाराहणा, चरित्ताराहणा।

४३५. णाणाराहणा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा।

४३६. •दंसणाराहणा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा।

४३७. चरित्ताराहणा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा।

आराधना-पदम्

त्रिविधा आराधना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना, चरित्राराधना।

ज्ञानाराधना त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उत्कर्षा, मध्यमा, जघन्या।

दर्शनाराधना त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उत्कर्षा, मध्यमा, जघन्या।

चरित्राराधना त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उत्कर्षा, मध्यमा, जघन्या।

आराधना-पद

४३४ आराधना तीन प्रकार की होती है—१. ज्ञान आराधना, २. दर्शन आराधना, ३ चरित्र आराधना।

४३५ ज्ञान आराधना तीन प्रकार की होती है—१ उत्कृष्ट, २ मध्यम, ३. जघन्य।

४३६. दर्शन आराधना तीन प्रकार की होती है—१ उत्कृष्ट, २ मध्यम, ३. जघन्य।

४३७ चरित्र आराधना तीन प्रकार की होती है—१. उत्कृष्ट, २. मध्यम, ३. जघन्य।

संकिलेस-असंकिलेस-पदं

४३८. तिविधे संकिलेसे पण्णत्ते तं जहा—णाणसंकिलेसे, दंसणसंकिलेसे, चरित्तसंकिलेसे।

४३९. •तिविधे असंकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा—णाणअसंकिलेसे, दंसणअसंकिलेसे, चरित्तअसंकिलेसे।

संक्लेश-असंक्लेश-पदम्

त्रिविधः संक्लेशः प्रज्ञप्तः तद्यथा—ज्ञानसंक्लेशः, दर्शनसंक्लेशः, चरित्रसंक्लेशः।

त्रिविधः असंक्लेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ज्ञानासंक्लेशः, दर्शनासंक्लेशः, चरित्रासंक्लेशः।

संक्लेश-असंक्लेश-पद

४३८ संक्लेश[६१] तीन प्रकार का होता है—१ ज्ञान संक्लेश, २ दर्शन संक्लेश, ३. चरित्र संक्लेश।

४३९ असंक्लेश तीन प्रकार का होता है—१. ज्ञान असंक्लेश, २. दर्शन असंक्लेश, ३. चरित्र असंक्लेश।

अइक्कम-आदि-पदं

४४०. तिविधे अतिक्कमे पण्णत्ते, तं जहा—णाणअतिक्कमे, दंसणअतिक्कमे, चरित्तअतिक्कमे।

४४१. तिविधे वइक्कमे पण्णत्ते, तं जहा—णाणवइक्कमे, दंसणवइक्कमे, चरित्तवइक्कमे।

४४२. तिविधे अइयारे पण्णत्ते, तं जहा—णाणअइयारे, दंसणअइयारे, चरित्तअइयारे।

अतिक्रम-आदि-पदम्

त्रिविधः अतिक्रमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ज्ञानातिक्रमः, दर्शनातिक्रमः, चरित्रातिक्रमः।

त्रिविधः व्यतिक्रमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ज्ञानव्यतिक्रमः, दर्शनव्यतिक्रमः, चरित्रव्यतिक्रमः।

त्रिविधः अतिचारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ज्ञानातिचारः, दर्शनातिचारः, चरित्रातिचारः।

अतिक्रम-आदि-पद

४४०. अतिक्रम[६७] तीन प्रकार का होता है—१. ज्ञान अतिक्रम, २. दर्शन अतिक्रम, ३. चरित्र अतिक्रम।

४४१. व्यतिक्रम[६८] तीन प्रकार का होता हैं—१ ज्ञान व्यतिक्रम, २. दर्शन व्यतिक्रम, ३. चरित्र व्यतिक्रम।

४४२ अतिचार[६९] तीन प्रकार का होता है—१. ज्ञान अतिचार, २. दर्शन अतिचार, ३. चरित्र अतिचार।

४४३. तिविधे अणायारे पण्णत्ते, तं जहा— णाणअणायारे, दंसणअणायारे, चरित्तअणायारे ।°	त्रिविधः अनाचारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— ज्ञानानाचारः, दर्शनानाचारः, चरित्रानाचारः ।	४४३. अनाचार[१०] तीन प्रकार का होता है— १. ज्ञान अनाचार, २. दर्शन अनाचार, ३. चरित्र अनाचार।
४४४. तिण्हमतिक्कमाणं—आलोएज्जा पडिक्कमेज्जा णिंदेज्जा गरहेज्जा °विउट्टेज्जा विसोहेज्जा अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं° पडिवज्जेज्जा, तं जहा— णाणातिक्कमस्स, दंसणातिक्कमस्स, चरित्तातिक्कमस्स ।	त्रीन् अतिक्रमान्—आलोचयेत् प्रति- क्रामेत् निन्देत् गर्हेत व्यावर्तेत विशो- धयेत् अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत यथार्हं प्रायश्चित्तं तपःकर्म प्रतिपद्येत, तद्यथा— ज्ञानातिक्रम, दर्शनातिक्रम, चरित्रातिक्रमम् ।	४४४ तीन प्रकार के अतिक्रमों की— आलोचना करनी चाहिए प्रतिक्रमण करना चाहिए निन्दा करनी चाहिए गर्हा करनी चाहिए व्यावर्तन करना चाहिए विशोधि करनी चाहिए फिर वैसा नहीं करने का संकल्प करना चाहिए यथोचित प्रायश्चित्त तथा तपःकर्म स्वीकार करना चाहिए— १ ज्ञानातिक्रम की, २. दर्शनातिक्रम की, ३. चरित्रातिक्रम की ।
४४५. °तिण्हं वइक्कमाणं—आलोएज्जा पडिक्कमेज्जा णिंदेज्जा गरहेज्जा विउट्टेज्जा विसोहेज्जा अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेज्जा, तं जहा— णाणवइक्कमस्स, दंसणवइक्कमस्स, चरित्तवइक्कमस्स ।	त्रीन् व्यतिक्रमान्—आलोचयेत् प्रति- क्रामेत् निन्देत् गर्हेत व्यावर्तेत विशोधयेत् अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत यथार्हं प्रायश्चित्तं तपःकर्म प्रतिपद्येत, तद्यथा— ज्ञानव्यतिक्रम, दर्शनव्यतिक्रम, चरित्रव्यतिक्रमम् ।	४४५. तीन प्रकार के व्यतिक्रमों की— आलोचना करनी चाहिए प्रतिक्रमण करना चाहिए निन्दा करनी चाहिए गर्हा करनी चाहिए व्यावर्तन करना चाहिए विशोधि करनी चाहिए फिर वैसा न करने का संकल्प करना चाहिए यथोचित प्रायश्चित्त तथा तपःकर्म स्वीकार करना चाहिए— १. ज्ञान व्यतिक्रम की, २. दर्शन व्यतिक्रम की, ३. चरित्र व्यतिक्रम की ।
४४६. तिण्हमतिचाराणं— आलोएज्जा पडिक्कमेज्जा णिंदेज्जा गरहेज्जा विउट्टेज्जा विसोहेज्जा अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा	त्रीन् अतिचारान्—आलोचयेत् प्रति- क्रामेत् निन्देत् गर्हेत व्यावर्तेत विशोधयेत् अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत यथार्हं प्राय- श्चित्तं तपःकर्म प्रतिपद्येत, तद्यथा— ज्ञानातिचार, दर्शनातिचार,	४४६. तीन प्रकार के अतिचारों की— आलोचना करनी चाहिए प्रतिक्रमण करना चाहिए निन्दा करनी चाहिए गर्हा करनी चाहिए

अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेज्जा, तं जहा—
णाणातिचारस्स, दंसणातिचारस्स चरित्तातिचारस्स।

चरित्रातिचारम्।

व्यावर्तन करना चाहिए
विशोधि करनी चाहिए
फिर वैसा नही करने का संकल्प करना चाहिए
यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप:कर्म स्वीकार करना चाहिए—
१. ज्ञानातिचार की, २. दर्शनातिचार की, ३. चरित्रातिचार की।

४४७. तिण्हमणायाराणं—
आलोएज्जा पडिक्कमेज्जा
णिंदेज्जा गरहेज्जा
विउट्टेज्जा विसोहेज्जा
अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा
अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेज्जा, तं जहा—
णाण-अणायारस्स,
दंसण-अणायारस्स,
चरित्त-अणायारस्स।[८]

त्रीन् अनाचारान्—आलोचयेत् प्रतिक्रामेत् निन्देत् गर्हेत व्यावर्तेत विशोधयेत् अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत यथार्ह प्रायश्चित्तं तपःकर्म प्रतिपद्येत, तद्यथा—
ज्ञान-अनाचारं, दर्शन-अनाचारं, चरित्र-अनाचारम्।

४४७. तीन प्रकार के अनाचारो की—
आलोचना करनी चाहिए
प्रतिक्रमण करना चाहिए
निन्दा करनी चाहिए
गर्हा करनी चाहिए
व्यावर्तन करना चाहिए
विशोधि करनी चाहिए
फिर वैसा नही करने का संकल्प करना चाहिए
यथोचित प्रायश्चित्त तथा तप:कर्म स्वीकार करना चाहिए—
१. ज्ञान अनाचार की,
२. दर्शन अनाचार की,
३. चरित्र अनाचार की।

पायच्छित्त-पदं

४४८. तिविधे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—आलोयणारिहे, पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे।

प्रायश्चित्त-पदम्

त्रिविधं प्रायश्चित्त प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— आलोचनार्हं, प्रतिक्रमणार्हं, तदुभयार्हम्।

प्रायश्चित्त-पद

४४८. प्रायश्चित्त तीन प्रकार का होता है—
१. आलोचना के योग्य,
२. प्रतिक्रमण के योग्य, ३. तदुभय योग्य।

अकम्मभूमी-पदं

४४९. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं तओ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हेमवते, हरिवासे, देवकुरा।

अकर्मभूमि-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे तिस्रः अकर्मभूमयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— हैमवत, हरिवर्ष, देवकुरुः।

अकर्मभूमि-पद

४४९. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के दक्षिण-भाग में तीन अकर्मभूमिया है—
१. हैमवत, २. हरिवर्ष, ३. देवकुरु।

४५०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं तओ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
उत्तरकुरा, रम्मगवासे, हेरण्णवए।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे तिस्रः अकर्मभूमयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— उत्तरकुरुः, रम्यकवर्ष, हैरण्यवतम्।

४५०. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के उत्तर-भाग में तीन अकर्मभूमिया है—
१. उत्तरकुरु, २. रम्यक्वर्ष, ३. ऐरण्यवत।

वास-पद

वर्ष-पदम्

वर्ष-पद

४५१. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं तओ वासा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे, हेमवए, हरिवासे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे त्रीणि वर्षाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— भरतं, हैमवत, हरिवर्षम्।

४५१. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के दक्षिण-भाग मे तीन वर्ष है—
१. भरत, २. हैमवत, ३. हरिवर्ष।

४५२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं तओ वासा पण्णत्ता, तं जहा—रम्मगवासे, हेरण्णवासे, एरवए।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे त्रीणि वर्षाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— रम्यकवर्ष, हैरण्यवत, ऐरवतम्।

४५२. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के उत्तर-भाग मे तीन वर्ष है—१. रम्यक् वर्ष, २ हैरण्यवत. ३. ऐरवत।

वासहरपव्वय-पदं

वर्षधरपर्वत-पदम्

वर्षधरपर्वत-पद

४५३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं तओ वासहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—
चुल्लहिमवंते, महाहिमवंते, णिसढे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे त्रयः वर्षधरपर्वता प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— क्षुल्लहिमवान्, महाहिमवान्, निषधः।

४५३. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के दक्षिण-भाग में तीन वर्षधर पर्वत है—
१ क्षुल्लहिमवान्,
२. महाहिमवान्, ३. निषध।

४५४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं तओ वासहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—णीलवंते, रुप्पी, सिहरी।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे त्रयः वर्षधरपर्वता प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— नीलवान्, रुक्मी, शिखरी।

४५४ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के उत्तर-भाग मे तीन वर्षधर पर्वत है—
१. नीलवान्, २. रुक्मी, ३ शिखरी।

महादह-पदं

महाद्रह-पदम्

महाद्रह-पद

४५५. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं तओ महादहा पण्णत्ता, तं जहा—पउमदहे, महापउमदहे, तिगिंछदहे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे त्रयः महाद्रहा प्रज्ञप्ता तद्यथा— पद्मद्रह, महापद्मद्र, तिगिञ्छद्रहः।

४५५. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के दक्षिण-भाग मे तीन महाद्रह हैं—१. पद्मद्रह, २. महापद्मद्रह, ३. तिगिंछद्रह।

तत्थ णं तओ देवताओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—सिरी, हिरी, धिती।

तत्र तिस्रः देवताः महर्धिकाः यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा—श्रीः, ह्रीः, धृतिः।

वहां पर महर्धिक [यावत्] पल्योपम की स्थितिवाली तीन देवियां परिवास करती है—१. श्री, २. ह्री, ३. धृति।

४५६. एवं—उत्तरे णवि, णवरं—
केसरिद्दहे, महापोंडरीयद्दहे,
पोंडरीयद्दहे ।
देवताओ—कित्ती, बुद्धी, लच्छी ।

एवम्—उत्तरे अपि, नवरं—केशरीद्रहः, महापुण्डरीकद्रहः, पुण्डरीकद्रहः ।
देवता—कीर्त्तिः, बुद्धिः, लक्ष्मीः ।

४५६. इसी प्रकार—जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के उत्तर मे तीन द्रह हैं—
१. केशरी द्रह, २. महापुण्डरीक द्रह, ३. पुण्डरीक द्रह ।
यहा तीन देविया हैं—
१. कीर्ति, २. बुद्धि, ३. लक्ष्मी ।

महाणदी-पदं

महानदी-पदम्

महानदी-पद

४५७. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं चुल्लहिमवताओ वासधरपव्वताओ पउमद्दहाओ महाद्दहाओ तओ महाणदीओ पवहंति, त जहा—
गंगा, सिंधू, रोहितंसा ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे क्षुल्लहिमवतःवर्षधरपर्वतात् पद्मद्रहात् महाद्रहात् तिस्रः महानद्यः प्रवहन्ति, तद्यथा—गङ्गा, सिन्धुः, रोहितांशा ।

४५७. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के दक्षिण में क्षुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत से पद्मद्रह नाम के महाद्रह से तीन महानदिया प्रवाहित होती हैं—
१. गगा, २. सिंधू ३. रोहिताशा ।

४५८. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं सिहरीओ वासहरपव्वताओ पोंडरीयद्दहाओ महाद्दहाओ तओ महाणदीओ पवहंति, त जहा—
सुवण्णकूला, रत्ता, रत्तवत्ती ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे शिखरिण वर्षधरपर्वतान् पुण्डरीकद्रहात् महाद्रहात् तिस्रः महानद्यः प्रवहन्ति, तद्यथा—सुवर्णकूला, रक्ता, रक्तवती ।

४५८. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के उत्तर में शिखरी वर्षधर पर्वत के पुण्डरीक महाद्रह से तीन महानदिया प्रवाहित होती हैं—
१. सुवर्णकूला, २. रक्ता, ३. रक्तवती ।

४५९. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उत्तरे णं तओ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
गाहावती, दहवती, पंकवती ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीतायाः महानद्याः उत्तरे तिस्रः अन्तरनद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ग्राहवती, द्रहवती, पङ्कवती ।

४५९. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के पश्चिम मे सीता महानदी के उत्तर भाग मे तीन अन्तर्नदिया प्रवाहित होती हैं—
१. ग्राहावती, २. द्रहवती, ३. पंकवती ।

४६०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए दाहिणे णं तओ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
तत्तजला, मत्तजला, उम्मत्तजला ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीतायाः महानद्याः दक्षिणे तिस्रः अन्तरनद्यः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—
तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला ।

४६०. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के पूर्व में सीता महानदी के दक्षिण भाग में तीन अन्तर्नदियां प्रवाहित होती हैं—
१. तप्तजला, २. मत्तजला, ३. उन्मत्तजला ।

४६१. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोदाए महाणईए दाहिणे णं तओ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
खीरोदा, सीहसोता, अंतोवाहिणी ।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदायाः महानद्याः दक्षिणे तिस्रः अन्तरनद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
क्षीरोदा, सिंहस्रोताः, अन्तर्वाहिनी ।

४६१. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के पश्चिम मे सीतोदा महानदी के उत्तर भाग मे तीन अन्तर्नदिया प्रवाहित होती हैं—
१ क्षीरोदा, २. सिंहस्रोता, ३. अन्तर्वाहिनी ।

४६२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोदाए महाणदीए उत्तरे णं तओ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
उम्मिमालिणी, फेणमालिणी, गंभीरमालिणी।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदायाः महानद्याः उत्तरे तिस्रः अन्तर्नद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
उर्मिमालिनी, फेनमालिनी, गम्भीरमालिनी।

४६२. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर-पर्वत के पश्चिम मे सीतोदा महानदी के दक्षिण भाग मे तीन अन्तर्नदियां प्रवाहित होती हैं—
१. ऊर्मिमालिनी, २. फेनमालिनी, ३. गम्भीरमालिनी।

धायइसंड-पुक्खरवर-पदं

४६३ एवं—धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धेवि अकम्मभूमीओ आढवेत्ता जाव अंतरणदीओत्ति णिरवसेसं भाणियव्वं जाव पुक्खरवरदीवड्ढ-पच्चत्थिमद्धे तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं।

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पदम्

एवम्—धातकीषण्डे द्वीपे पौरस्त्यार्धेऽपि अकर्मभूमीः आदृत्य यावत् अन्तर्नद्यः इति निरवशेषं भणितव्यम् यावत् पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्धे तथैव निरवशेषं भणितव्यम्।

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पद

४६३. इसी प्रकार—धातकीषण्ड तथा अर्ध-पुष्करवर द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध मे तीन अकर्मभूमि आदि [३।४४६-४६२ सूत्र तक] शेष सभी विषय वक्तव्य है।

भूकंप-पदं

४६४. तिहिं ठाणेहिं देसे पुढवीए चलेज्जा, तं जहा—
१. अहे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उराला पोग्गला णिवतेज्जा। तते णं उराला पोग्गला णिवतमाणा देसं पुढवीए चालेज्जा,
२. महोरगे वा महिड्ढीए जाव महेसक्खे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे उम्मज्ज-णिमज्जियं करेमाणे देसं पुढवीए चालेज्जा,
३. णागसुवण्णाण वा संगामंसि वट्टमाणंसि देसं [देसे ?] पुढवीए चलेज्जा—
इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं देसे पुढवीए चलेज्जा।

भूकम्प-पदम्

त्रिभिः स्थानैः देशः पृथिव्याः चलेत्, तद्यथा—
१. अधः अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः उदाराः पुद्गलाः निपतेयुः। ततः उदाराः पुद्गलाः निपतन्तः देशं पृथिव्याः चालयेयुः,
२. महोरगो वा महर्धिको यावत् महेशाख्यः अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः अधः उन्मग्न-निमग्निकां कुर्वत् देशं पृथिव्याः चालयेत्,
३. नागसुपर्णानां वा सग्रामे वर्त्तमाने देशः पृथिव्याः चलेत्—
इति एतैः त्रिभिः स्थानैः देशः पृथिव्याः चलेत्।

भूकम्प-पद

४६४. तीन कारणो से पृथ्वी का देश [एक भाग] चलित [कम्पित] होता है—
१. इस रत्नप्रभा नाम की पृथ्वी के निचले भाग मे स्वभाव-परिणत स्थूल पुद्गल आकर टकराते है। उनके टकराने से पृथ्वी का देश चलित हो जाता है।
२. महर्धिक, महाद्युति, महाबल तथा महानुभाग महेश नाम के महोरग—व्यंतर देव रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे उन्मज्जन निमज्जन करता हुआ पृथ्वी के देश को चलित कर देता है।
३. नाग और सुपर्ण [भवनवासी] देवों के बीच संग्राम हो जाने से पृथ्वी का देश चलित हो जाता है—
इन तीन कारणो से पृथ्वी का देश चलित होता है।

४६५. तिहिं ठाणेहिं केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा, तं जहा—
१. अधे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए घणवाते गुप्पेज्जा। तए णं से घणवाते गुविते समाणे घणोदहिमेएज्जा। तए णं से घणोवही एइए समाणे केवलकप्पं पुढविं चालेज्जा,
२. देवे वा महिड्ढिए जाव महेसक्खे तहारूवस्स समणस्स माहणस्स वा इड्ढि जुतिं जसं बलं वीरियं पुरिसक्कार-परक्कमं उवदंसेमाणे केवलकप्पं पुढविं चालेज्जा,
३. देवासुरसंगामंसि वा वट्टमाणंसि केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा—
इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा।

त्रिभिः स्थानैः केवलकल्पा पृथिवी चलेत्, तद्यथा—
१. अधः अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः घनवातः 'क्षुभ्येत्'। ततः स घनवातः 'क्षुब्ध' सन् घनोदधिं एजयेत्। ततः स घनोदधिः एजितः सन् केवलकल्पां पृथिवीं चालयेत्,
२. देवो वा महर्धिको यावत् महेशाख्य तथारूपस्य श्रमणस्य माहनस्य वा ऋद्धिं द्युतिं यशः बलं वीर्यं पुरुषकार-पराक्रमं उपदर्शयन् केवलकल्पां पृथिवीं चालयेत्,
३. देवासुरसंग्रामे वा वर्त्तमाने केवलकल्पा पृथिवी चलेत्—
इति एतैः त्रिभिः स्थानैः केवलकल्पा पृथिवी चलेत्।

४६५. तीन कारणों से केवल-कल्पा—प्रायः-प्रायः सारी ही पृथ्वी चलित होती है—
१. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के निचले भाग में घनवात उद्वेलित हो जाता है। घनवात के उद्वेलित होने से घनोदधि कम्पित हो जाता है। घनोदधि के कम्पित होने पर केवल-कल्पा पृथ्वी चलित हो जाती है।
२. कोई महर्द्धिक, महाद्युति, महाबल तथा महानुभाग महेश नामक देव तथा-रूप श्रमण-माहन को अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार तथा पराक्रम का उपदर्शन करने के लिए केवल-कल्पा पृथ्वी को चलित कर देता है।
३. देवों तथा असुरों के परस्पर संग्राम छिड़ जाने से केवल-कल्पा पृथ्वी चलित हो जाती है—
इन तीन कारणों से केवलकल्पा पृथ्वी चलित होती है।

देवकिब्बिसिय-पदं

देवकिल्बिषिक-पदम्

देवकिल्बिषिक-पद

४६६. तिविधा देवकिब्बिसिया पण्णत्ता, तं जहा—तिपलिओवमट्ठितीया, तिसागरोवमट्ठितीया, तेरससागरोवमट्ठितीया।
१. कहि णं भंते! तिपलिओवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति?
उप्पिं जोइसियाणं, हिट्ठिं सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु; एत्थ णं तिपलिओवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति।
२. कहि णं भंते! तिसागरोवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया

त्रिविधाः देवकिल्बिषिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—त्रिपल्योपमस्थितिकाः, त्रिसागरोपमस्थितिकाः, त्रयोदशसागरोपमस्थितिकाः।
१. कुत्र भदन्त! त्रिपल्योपमस्थितिकाः देवकिल्बिषिकाः परिवसन्ति?
उपरिज्योतिष्काणां, अधः सौधर्मेशानानां कल्पानां, अत्र त्रिपल्योपमस्थितिकाः देवकिल्बिषिकाः परिवसन्ति।
२. कुत्र भदन्त! त्रिसागरोपमस्थितिकाः देवकिल्बिषिकाः

४६६. किल्बिषिक देव तीन प्रकार के होते हैं—
१. तीन पल्योपम की स्थिति वाले,
२. तीन सागरोपम की स्थिति वाले,
३. तेरह सागरोपम की स्थिति वाले।
१. भन्ते! तीन पल्योपम की स्थिति वाले किल्बिषिक देव कहां परिवास करते हैं?
आयुष्मन्! ज्योतिषी देवों से ऊपर तथा सौधर्म और ईशान देवलोक से नीचे, यहां तीन पल्योपम की स्थिति वाले किल्बिषिक देव परिवास करते हैं।
२. भन्ते! तीन सागरोपम की स्थिति वाले किल्बिषिक देव कहां परिवास

परिवसंति ?
उप्पि सोहम्मीसाणाणं कप्पाणं, हेट्ठिं सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु; एत्थ णं तिसागरोवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति।

परिवसन्ति ?
उपरि सौधर्मेशानानां कल्पाना, अधः सनत्कुमारमाहेन्द्राणा कल्पाना, अत्र त्रिसागरोपमस्थितिकाः देवकिल्बिषिका, परिवसन्ति।

करते हैं ?
आयुष्मन् ! सौधर्म और ईशान देवलोक से ऊपर तथा सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक से नीचे, यहा तीन सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव परिवास करते है।

३. कहिं णं भंते ! तेरससागरोवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति ?
उप्पि बंभलोगस्स कप्पस्स, हेट्ठिं लंतगे कप्पे; एत्थ णं तेरससागरोवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति ?

३. कुत्र भदन्त ! त्रयोदशसागरोपमस्थितिकाः देवकिल्बिषिकाः परिवसन्ति?
उपरि ब्रह्मलोकस्य कल्पस्य, अध. लान्तकस्य कल्पस्य; अत्र त्रयोदशसागरोपमस्थितिकाः देवकिल्विषिकाः परिवसन्ति।

३. भन्ते ! तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहा परिवास करते हैं ?
आयुष्मन् ! ब्रह्मलोक देवलोक से ऊपर तथा लातक देवलोक से नीचे, यहा तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव परिवास करते हैं।

देवठिति-पदं

४६७. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो बाहिरपरिसाए देवाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

४६८. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अब्भितरपरिसाए देवीणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

४६९. ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो बाहिरपरिसाए देवीणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देवस्थिति-पदम्

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य बाह्यपरिषदः देवाना त्रीणि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य आभ्यतरपरिषद देवीना त्रीणि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य बाह्यपरिषद देवीनां त्रीणि पल्योपमानि स्थिति. प्रज्ञप्ता।

देवस्थिति-पद

४६७. देवेन्द्र देवराज शक्र के बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति तीन पल्योपम की है।

४६८. देवेन्द्र देवराज शक्र के आभ्यन्तर परिषद की देवियों की स्थिति तीन पल्योपम की है।

४६९. देवेन्द्र देवराज ईशान के बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति तीन पल्योपम की है।

पायच्छित्त-पदं

४७०. तिविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—णाणपायच्छित्ते, दंसणपायच्छित्ते, चरित्तपायच्छित्ते।

४७१. तओ अणुग्घातिमा पण्णत्ता, तं जहा—हत्थकम्मं करेमाणे, मेहुणं सेवेमाणे, राईभोयणं भुंजमाणे।

प्रायश्चित्त-पदम्

त्रिविध प्रायश्चित्त प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—ज्ञानप्रायश्चित्त, दर्शनप्रायश्चित्त, चरित्रप्रायश्चित्तम्।

त्रयः अनुद्घात्याः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—हस्तकर्म कुर्वन्, मैथुन सेवमानः, रात्रिभोजनं भुञ्जानः।

प्रायश्चित्त-पद

४७०. प्रायश्चित्त तीन प्रकार का होता है—
१. ज्ञानप्रायश्चित्त, २. दर्शनप्रायश्चित्त, ३. चरित्रप्रायश्चित्त।

४७१. तीन अनुद्घात्य [गुरु प्रायश्चित्त] के भागी होते हैं—१. हस्त कर्म करने वाला, २. मैथुन का सेवन करने वाला, ३. रात्रि भोजन करने वाला।

४७२. तओ पारंचिता पण्णत्ता, तं जहा— दुट्ठे पारंचिते, पमत्ते पारंचिते, अण्णमण्णं करेमाणे पारंचिते।

त्रय. पाराञ्चिताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— दुष्टः पाराञ्चितः, प्रमत्तः पाराञ्चितः, अन्योन्यं कुर्वन् पाराञ्चितः।

४७२. तीन पाराञ्चित [दसवें प्रायश्चित्त के भागी] होते हैं—१. दुष्टपाराञ्चित, २. प्रमत्तपाराञ्चित—स्त्यानर्धि निद्रा वाला, ३. अन्योन्यमैथुन सेवन करने वाला।

४७३. तओ अणवट्ठप्पा पण्णत्ता, तं जहा— साहम्मियाणं तेणियं करेमाणे, अण्णधम्मियाणं तेणियं करेमाणे, हत्थातालं दलयमाणे।

त्रय. अनवस्थाप्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— सार्धर्मिकाणां स्तैन्यं कुर्वन्, अन्य-धार्मिकाणां स्तैन्यं कुर्वन्, हस्ततालं ददत्।

४७३. तीन अनवस्थाप्य [नवें प्रायश्चित्त के भागी] होते हैं—
१. सार्धर्मिकों की चोरी करने वाला,
२. अन्यधार्मिकों की चोरी करने वाला,
३. हस्तताल देने वाला—मारक प्रहार करने वाला।

पव्वज्जादि-अजोग्ग-पदं

प्रव्रज्यादि-अयोग्य-पदम्

प्रव्रज्या आदि-अयोग्य-पद

४७४. तओ णो कप्पंति पव्वावेत्तए, तं जहा—पंडए, वातिए, कीवे।

त्रय नो कल्पन्ते प्रव्रजयितुम्, तद्यथा—पण्डकः, वातिकः, क्लीबः।

४७४. तीन प्रव्रज्या के अयोग्य होते हैं—
१. नपुंसक,
२. वातिक—तीव्र वात रोगों से पीड़ित,
३. क्लीव—वीर्य-धारण में असक्त।

४७५. °तओ णो कप्पंति°—मुंडावित्तए सिक्खावित्तए उवट्ठावेत्तए संभुंजित्तए संवासित्तए, °तं जहा— पंडए, वातिए, कीवे।°

त्रय नो कल्पन्ते—मुण्डयितुं शिक्षयितुं उपस्थापयितुं संभोजयितुं संवासयितुम्, तद्यथा—पण्डकः, वातिकः, क्लीबः।

४७५. तीन—मुंडन, शिक्षण, उपस्थापन, संभोग और सहवास के अयोग्य होते हैं— १. नपुंसक, २. वातिक, ३. क्लीव।

अवायणिज्ज-वायणिज्ज-पदं

अवाचनीय-वाचनीय-पदम्

अवाचनीय-वाचनीय-पद

४७६. तओ अवायणिज्जा पण्णत्ता, तं जहा—अविणीए, विगतीपडिबद्धे, अविओसवितपाहुडे।

त्रय अवाचनीयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— अविनीतः, विकृतिप्रतिबद्धः, अव्यव-शमितप्राभृतः।

४७६. तीन वाचना देने [अध्यापन] के अयोग्य होते हैं—१. अविनीत,
२. विकृति में प्रतिबद्ध—रसलोलुप,
३. अव्यवशमितप्राभृत—कलह को उपशान्त न करने वाला।

४७७. तओ कप्पंति वाइत्तए, तं जहा— विणीए, अविगतीपडिबद्धे, विओसवियपाहुडे।

त्रय कल्पन्ते वाचयितुम्, तद्यथा— विनीतः, अविकृतिप्रतिबद्धः, व्यवशमितप्राभृतः।

४७७. तीन वाचना के योग्य होते हैं—
१. विनीत, २. विकृति में अप्रतिबद्ध,
३. व्यवशमितप्राभृत।

दुसण्णप्प-सुसण्णप्प-पदं

दुःसंज्ञाप्य-सुसंज्ञाप्य-पदम्

दुःसंज्ञाप्य-सुसंज्ञाप्य-पद

४७८. तओ दुसण्णप्पा पण्णत्ता, तं जहा—

त्रयः दुःसंज्ञाप्याः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—

४७८. तीन दुःसंज्ञाप्य—दुर्बोध्य होते हैं—

दुट्ठे, मूढे, वुग्गाहिते।

दुष्टः, मूढः, व्युद्ग्राहितः।

१. दुष्ट, २. मूढ—गुण-दोष विवेकशून्य, ३. व्युद्ग्राहित—कदाग्रही के द्वारा भड़काया हुआ।

४७९. तओ सुसण्णप्पा पण्णत्ता, तं जहा—
अदुट्ठे, अमूढे, अवुग्गाहिते।

त्रयः सुसंज्ञाप्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अदुष्टः, अमूढः, अव्युद्ग्राहितः।

४७९. तीन सुसंज्ञाप्य—सुबोध्य होते हैं—
१. अदुष्ट, २. अमूढ, ३. अव्युद्ग्राहित।

मंडलिय-पव्वय-पदं

माण्डलिक-पर्वत-पदम्

माण्डलिक-पर्वत-पद

४८०. तओ मंडलिया पव्वता पण्णत्ता, तं जहा—माणुसुत्तरे, कुंडलवरे, रुयगवरे।

त्रय माण्डलिकाः पर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मानुषोत्तर, कुण्डलवरः, रुचकवरः।

४८०. मांडलिक पर्वत तीन हैं—
१. मानुषोत्तर, २. कुण्डलवर, ३. रुचकवर।

महतिमहालय-पदं

महामहत्-पदम्

महामहत्-पद

४८१. तओ महतिमहालया पण्णत्ता, तं जहा—जंबुद्दीवए मंदरे मंदरेसु, सयंभूरमणे समुद्दे समुद्देसु, बंभलोए कप्पे कप्पेसु।

त्रयः महामहान्तः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जम्बूद्वीपगो मन्दरः मन्दरेषु, स्वयभूरमणः समुद्रः समुद्रेषु, ब्रह्मलोकः कल्पः कल्पेषु।

४८१. तीन [अपनी-अपनी कोटि में] सबसे बड़े हैं—
१. मंदर पर्वतों में जम्बूद्वीप का मंदर-मेरु;
२. समुद्रों में स्वयंभूरमण,
३. देवलोकों में ब्रह्मलोक।

कप्पठिति-पदं

कल्पस्थिति-पदम्

कल्पस्थिति-पद

४८२. तिविधा कप्पठिती पण्णत्ता तं जहा—सामाइयकप्पठिती, छेदोवट्ठावणियकप्पठिती, णिव्विसमाणकप्पठिती।
अहवा—तिविहा कप्पट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—
णिव्विट्ठकप्पट्ठिती, जिणकप्पट्ठिती, थेरकप्पट्ठिती।

त्रिविधा कल्पस्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सामायिककल्पस्थितिः, छेदोपस्थापनिककल्पस्थितिः, निर्विशमानकल्पस्थितिः।
अथवा—त्रिविधा कल्पस्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—निर्विष्टकल्पस्थितिः, जिनकल्पस्थितिः, स्थविरकल्पस्थितिः।

४८२. कल्पस्थिति [आचार-मर्यादा] तीन प्रकार की होती है—१. सामायिक कल्पस्थिति, २. छेदोपस्थापनीय कल्पस्थिति, ३. निर्विशमान कल्पस्थिति।
अथवा—कल्पस्थिति तीन प्रकार की होती है—१. निर्विष्ट कल्पस्थिति, २. जिन कल्पस्थिति, ३. स्थविर कल्पस्थिति।

सरीर-पदं

शरीर-पदम्

शरीर-पद

४८३. णेरइयाणं तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—
वेउव्विए, तेयए, कम्मए।

नैरयिकाणा त्रीणि शरीरकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—वैक्रिय, तैजस, कर्मकम्।

४८३. नैरयिकों के तीन शरीर होते हैं—
१. वैक्रिय—विविध क्रिया करने में समर्थ-पुद्गलों से निष्पन्न शरीर,
२. तैजस—तैजस-पुद्गलों से निष्पन्न सूक्ष्म शरीर,
३. कार्मण—कर्म-पुद्गलों से निष्पन्न सूक्ष्म शरीर।

४८४. असुरकुमाराणं तओ सरीरगा पण्णत्ता, °तं जहा—वेउव्विए, तेयए, कम्मए।

असुरकुमाराणां त्रीणि शरीरकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—वैक्रियं, तैजसं, कर्मकम्।

४८४. असुरकुमारों के तीन शरीर होते है—१. वैक्रिय, २. तैजस, ३. कार्मण।

४८५. एवं—सव्वेसिं देवाणं°।

एवम्—सर्वेषां देवानाम्।

४८५. इसी प्रकार सभी देवो के ये तीन शरीर होते हैं।

४८६. पुढविकाइयाणं तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—ओरालिए, तेयए, कम्मए।

पृथिवीकायिकाना त्रीणि शरीरकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—औदारिकं, तैजसं, कर्मकम्।

४८६. पृथ्वीकायिक जीवो के तीन शरीर होते हैं—१. औदारिक—स्थूल-पुद्गलो से निष्पन्न अस्थिचर्ममय शरीर, २. तैजस, ३. कार्मण।

४८७. एवं—वाउकाइयवज्जाणं जाव चउरिंदियाणं।

एवम्—वायुकायिकवर्जाना यावत् चतुरिन्द्रियाणाम्।

४८७. इसी प्रकार वायुकाय को छोडकर चतुरिन्द्रिय तक के सभी जीवों के तीन शरीर होते हैं।

पडिणीय-पदं

प्रत्यनीक-पदम्

प्रत्यनीक-पद

४८८. गुरुं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—आयरियपडिणीए, उवज्झायपडिणीए, थेरपडिणीए।

गुरु प्रतीत्य त्रय प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आचार्यप्रत्यनीकः, उपाध्यायप्रत्यनीकः, स्थविरप्रत्यनीकः।

४८८. गुरु की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक[१२] [प्रतिकूल व्यवहार करने वाले] होते है—१. आचार्य प्रत्यनीक, २ उपाध्याय प्रत्यनीक, ३. स्थविर प्रत्यनीक।

४८९. गतिं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—इहलोगपडिणीए, परलोगपडिणीए, दुहओलोगपडिणीए।

गति प्रतीत्य त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—इहलोकप्रत्यनीकः, परलोकप्रत्यनीकः, द्वयलोकप्रत्यनीकः।

४८९. गति की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक होते हैं—१. इहलोक प्रत्यनीक, २. परलोक प्रत्यनीक, ३. उभय प्रत्यनीक [इहलोक और परलोक दोनों का प्रत्यनीक]।

४९०. समूहं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—कुलपडिणीए, गणपडिणीए, संघपडिणीए।

समूह प्रतीत्य त्रय प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कुलप्रत्यनीकः, गणप्रत्यनीकः, सघप्रत्यनीक.।

४९०. समूह की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक होते है—१. कुल प्रत्यनीक २ गण प्रत्यनीक, ३. संघ प्रत्यनीक।

४९१. अणुकंपं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—तवस्सिपडिणीए, गिलाणपडिणीए, सेहपडिणीए।

अनुकम्पा प्रतीत्य त्रय. प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—तपस्विप्रत्यनीकः, ग्लानप्रत्यनीकः, शैक्षप्रत्यनीक.।

४९१. अनुकम्पा की दृष्टि से तीन प्रत्यनीक होते हैं—१. तपस्वी प्रत्यनीक, २. ग्लान प्रत्यनीक, ३. शैक्ष प्रत्यनीक।

४९२. भावं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—णाणपडिणीए, दंसणपडिणीए, चरित्तपडिणीए।

भावं प्रतीत्य त्रयः प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-ज्ञानप्रत्यनीक., दर्शनप्रत्यनीकः, चरित्रप्रत्यनीकः।

४९२. भाव की दृष्टि से तीन प्रत्यनीक होते हैं—१. ज्ञान प्रत्यनीक, २. दर्शन प्रत्यनीक, ३. चरित्र प्रत्यनीक।

४९३. सुयं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—सुत्तपडिणीए, अत्थपडिणीए, तदुभयपडिणीए।

श्रुतं प्रतीत्य त्रय प्रत्यनीकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूत्रप्रत्यनीकः, अर्थप्रत्यनीकः, तदुभयप्रत्यनीकः।

४९३. श्रुत की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक होते हैं—१. सूत्र प्रत्यनीक, २. अर्थ प्रत्यनीक, ३. तदुभय प्रत्यनीक।

अंग-पदं

४६४. तओ पितियंगा, पण्णत्ता, तं जहा— अट्ठी, अट्ठिमिंजा, केसमंसुरोमणहे।

४६५. तओ माउयंगा पण्णत्ता, तं जहा— मंसे, सोणिते, मत्थुलिंगे।

अङ्ग-पदम्

त्रीणि पित्रङ्गानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— अस्थि, अस्थिमज्जा, केशश्मश्रुरोमनखा।

त्रीणि मात्रङ्गानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— मासं, शोणितं, मस्तुलिङ्गम्।

अङ्ग-पद

४६४. तीन अंग पिता से प्राप्त [वीर्य-परिणत] होते हैं—१. अस्थि, २. मज्जा, ३. केश, दाढ़ी, रोम और नख।

४६५. तीन अंग माता से प्राप्त [रज: परिणत] होते हैं— १. मांस, २. शोणित, ३. मस्तिष्क।

मणोरह-पदं

४६६. तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, तं जहा—

१. कया णं अहं अप्पं वा बहुयं वा सुयं अहिज्जिस्सामि?

२. कया णं अहं एकल्लविहार-पडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरिस्सामि?

३. कया णं अहं अपच्छिम-मारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसिते भत्तपाणपडियाइक्खिते पाओवगते कालं अणवकंखमाणे विहरिस्सामि?

एवं समणसा सवयसा सकायसा पागडेमाणे समणे णिग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति।

४६७. तिहिं ठाणेहिं समणोवासए महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, तं जहा—

१. कया णं अहं अप्पं वा बहुयं वा परिग्गहं परिचइस्सामि?

२. कया णं अहं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइस्सामि?

मनोरथ-पदम्

त्रिभि: स्थानै: श्रमण: निर्ग्रन्थ: महानिर्जर: महापर्यवसानो भवति, तद्यथा—

१. कदा अहं अल्पं वा बहुकं वा श्रुतं अध्येष्ये?

२. कदा अहं एकलविहारप्रतिमां उपसंपद्य विहरिष्यामि?

३. कदा अहं अपश्चिममारणान्तिक-संलेखना-जोषणा-जुष्ट: भक्तपानप्रत्या-ख्यात: प्रायोपगत: कालं अनवकाङ्क्षन् विहरिष्यामि?

एवं समनसा सवचसा सकायेन प्रकटयन् श्रमण: निर्ग्रन्थ: महानिर्जर: महापर्यवसानो भवति।

त्रिभि: स्थानै: श्रमणोपासक: महानिर्जर: महापर्यवसानो भवति, तद्यथा—

१. कदा अहं अल्पं वा बहुकं वा परिग्रहं परित्यक्षामि?

२. कदा अहं मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजिष्यामि?

मनोरथ-पद

४६६. तीन स्थानों से श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा तथा महापर्यवसान[11] वाला होता है—

१. कब मैं अल्प या बहुत श्रुत का अध्ययन करूंगा?

२. कब मैं एकल विहार प्रतिमा का उपसंपादन कर विहार करूंगा?

३. कब मैं अपश्चिम मारणांतिक संलेखना की आराधना से युक्त होकर, भक्त-पान का परित्याग कर, प्रायोपगमन अनशन स्वीकार कर मृत्यु की आकांक्षा नहीं करता हुआ विहरण करूंगा?

इस प्रकार शोभन मन, वचन और काया से उक्तभावना व्यक्त करता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ महानिर्जरा तथा महापर्यवसान वाला होता है।

४६७. तीन स्थानों से श्रमणोपासक महानिर्जरा तथा महापर्यवसान वाला होता है—

१. कब मैं अल्प या बहुत परिग्रह का परित्याग करूंगा?

२. कब मैं मुण्डित होकर अगार से अनगारत्व में प्रव्रजित होऊंगा।

३. कया णं अहं अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसिते भत्तपाणपडियाइक्खिते पाओवगते कालं अणवकंखमाणे विहरिस्सामि ?
एवं समणसा सवयसा सकायसा पागडेमाणे समणोवासए महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति।

३. कदा अहं अपश्चिममारणांतिकसंलेखना-जोषणा-जुष्टः भक्तपानप्रत्याख्यातः प्रायोपगतः कालं अनवकाङ्क्षन् विहरिष्यामि ?
एवं समनसा सवचसा सकायेन प्रकटयन् श्रमणोपासकः महानिर्जरः महापर्यवसानो भवति।

३. कब मैं अपश्चिम मारणांतिक सलेखना की आराधना से युक्त होकर, भक्तपान का परित्याग कर, प्रायोपगमन अनशन कर मृत्यु की आकाक्षा नहीं करता हुआ विहरण करूंगा ?
इस प्रकार शोभन मन, वचन और काया से उक्त भावना करता हुआ श्रमणोपासक महानिर्जरा तथा महापर्यवसान वाला होता है।

पोग्गलपडिघात-पदं

४६८. तिविहे पोग्गलपडिघाते पण्णत्ते, तं जहा—परमाणुपोग्गले परमाणुपोग्गलं पप्प पडिहण्णिज्जा, लुक्खत्ताए वा पडिहण्णिज्जा, लोगंते वा पडिहण्णिज्जा।

पुद्गलप्रतिघात-पदम्

त्रिविधः पुद्गलप्रतिघातः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—परमाणुपुद्गलः परमाणुपुद्गलं प्राप्य प्रतिहन्येत, रूक्षतया वा प्रतिहन्येत, लोकान्ते वा प्रतिहन्येत।

पुद्गलप्रतिघात-पद

४६८. तीन कारणों से पुद्गल का प्रतिघात गति-स्खलन होता है—
१. एक परमाणु पुद्गल दूसरे परमाणु पुद्गल से टकरा कर प्रतिहत हो जाता है,
२. रूक्ष होकर प्रतिहत हो जाता है,
३. लोकांत तक जाकर प्रतिहत हो जाता है।

चक्खु-पदं

४६६. तिविहे चक्खू पण्णत्ते, तं जहा—एगचक्खू, बिचक्खू, तिचक्खू।
छउमत्थे णं मणुस्से एगचक्खू, देवे बिचक्खू,
तहारूवे समणे वा माहणे वा उप्पण्णणाणदंसणधरे तिचक्खुत्ति वत्तव्वं सिया।

चक्षुः-पदम्

त्रिविधः चक्षुः प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—एकचक्षुः, द्विचक्षुः, त्रिचक्षुः।
छद्मस्थः मनुष्यः एकचक्षुः,
देवः द्विचक्षुः,
तथारूपः श्रमणो वा माहनो वा उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः त्रिचक्षुः इति वक्तव्यं स्यात्।

चक्षुः-पद

४६६. चक्षुष्मान तीन प्रकार के होते हैं—
१. एक चक्षु, २. द्वि चक्षु, ३. त्रि चक्षु।
छद्मस्थ मनुष्य एक चक्षु होता है।
देवता द्वि चक्षु होते हैं।
अतिशायी ज्ञान-दर्शन को धारण करने वाला तथारूप श्रमण-माहन त्रि चक्षु होता है।

अभिसमागम-पदं

५००. तिविधे अभिसमागमे पण्णत्ते, तं जहा—उड्ढं, अहं, तिरियं।
जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जति, से णं तप्पढमताए

अभिसमागम-पदम्

त्रिविधः अभिसमागमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ऊर्ध्वं, अधः, तिर्यक्।
यदा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पद्यते, तत् तत्प्रथमतया ऊर्ध्वमभिसमेति, ततः

अभिसमागम-पद

५००. अभिसमागम तीन प्रकार का होता है—
१. ऊर्ध्व, २. तिर्यक, ३. अधः।
तथारूप श्रमण-माहन को जब अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त होता है तब वह पहले ऊर्ध्व लोक को जानता है, फिर तिर्यक

उड्ढमभिसमेति, ततो तिरियं, ततो पच्छा अहे। अहोलोगे णं दुरभिगमे पण्णत्ते समणाउसो।

तिर्यक्, ततः पश्चात् अधः। अधोलोकः दुरभिगमः प्रज्ञप्तः आयुष्मन्! श्रमण!

लोक को जानता है और उसके बाद अधोलोक को जानता है। आयुष्मन् श्रमणो! अधोलोक सबसे अधिक दुरभिगम है।

इड्ढि-पदं

ऋद्धि-पदम्

ऋद्धि-पद

५०१. तिविधा इड्ढी पण्णत्ता, तं जहा— देविड्ढी, राइड्ढी, गणिड्ढी।

त्रिविधा ऋद्धिः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— देवर्द्धिः, राज्यर्द्धिः, गणिऋद्धिः।

५०१. ऋद्धि तीन प्रकार की होती है— १. देवताओं की ऋद्धि, २. राजाओं की ऋद्धि, ३. आचार्यों की ऋद्धि।

५०२. देविड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा— विमाणिड्ढी, विगुव्वणिड्ढी, परियारणिड्ढी।
अहवा—देविड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सचित्ता, अचित्ता, मीसिता।

देवर्द्धिः त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— विमानर्द्धिः, विकरणर्द्धिः, परिचारणर्द्धिः।
अथवा—देवर्द्धिः त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सचित्ता अचित्ता मिश्रिता।

५०२. देवताओं की ऋद्धि तीन प्रकार की होती है—१. विमान ऋद्धि, २. वैक्रिय ऋद्धि, ३. परिचारण ऋद्धि।
अथवा—देवताओं की ऋद्धि तीन प्रकार की होती है— १. सचित्त, २. अचित्त, ३. मिश्र।

५०३. राइड्ढी तिविधा पण्णत्ता, तं जहा— रण्णो अतियाणिड्ढी, रण्णो णिज्जाणिड्ढी, रण्णो बल-वाहण-कोस-कोट्ठागारिड्ढी।
अहवा—राइड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सचित्ता, अचित्ता, मीसिता।

राज्यर्द्धिः त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— राज्ञः अतियानर्द्धिः, राज्ञः निर्याणर्द्धिः, राज्ञः बल-वाहन-कोष-कोष्ठागारर्द्धिः।
अथवा—राज्यर्द्धिः त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सचित्ता, अचित्ता, मिश्रिता।

५०३. राजाओं की ऋद्धि तीन प्रकार की होती है—१. अतियान ऋद्धि,[१४] २. निर्याण ऋद्धि[१५], ३ सेना, वाहन, कोष और कोष्ठागार की ऋद्धि।
अथवा—राजाओं की ऋद्धि तीन प्रकार की होती है— १. सचित्त, २. अचित्त, ३. मिश्र।

५०४. गणिड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—णाणिड्ढी, दंसणिड्ढी, चरित्तिड्ढी।
अहवा—गणिड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सचित्ता, अचित्ता, मीसिता।

गणिऋद्धिः त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— ज्ञानर्द्धिः, दर्शनर्द्धिः, चरित्रर्द्धिः।
अथवा—गणिऋद्धिः त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सचित्ता, अचित्ता, मिश्रिता।

५०४ गणी की ऋद्धि तीन प्रकार की होती है—१. ज्ञान की ऋद्धि, २. दर्शन की ऋद्धि, ३. चरित्र की ऋद्धि।
अथवा—गणी की ऋद्धि तीन प्रकार की होती है— १. सचित्त, २. अचित्त, ३. मिश्र।

गारव-पदं

गौरव-पदम्

गौरव-पद

५०५ तओ गारवा पण्णत्ता, तं जहा— इड्ढीगारवे, रसगारवे, सातागारवे।

त्रीणि गौरवानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— ऋद्धिगौरवं, रसगौरवं, सातगौरवम्।

५०५. गौरव तीन प्रकार का होता है— १. ऋद्धि गौरव, २. रस गौरव, ३. सात गौरव।

करण-पदं

५०६. तिविहे करणे पण्णत्ते, तं जहा—
धम्मिए करणे, अधम्मिए करणे,
धम्मियाधम्मिए करणे।

करण-पदम्

त्रिविध करणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
धार्मिकं करणं, अधार्मिकं करणं,
धार्मिकाधार्मिक करणम्।

करण-पद

५०६. करण [अनुष्ठान] तीन प्रकार का होता है—धार्मिक करण, २. अधार्मिक करण, ३. धार्मिकाधार्मिक करण।

सुयक्खायधम्मपदं

५०७. तिविहे भगवता धम्मे पण्णत्ते, तं जहा—सुअधिज्झिते, सुज्झाइते, सुतवस्सिते।
जया सुअधिज्झितं भवति तदा सुज्झाइतं भवति,
जया सुज्झाइतं भवति तदा सुतवस्सितं भवति,
से सुअधिज्झिते सुज्झाइते सुतवस्सिते सुयक्खाते णं भगवता धम्मे पण्णत्ते।

स्वाख्यातधर्म-पदम्

त्रिविधः भगवता धर्मः प्रज्ञप्तः तद्यथा—स्वधीत, सुध्यात, सुतपस्यितम्।
यदा स्वधीतं भवति तदा सुध्यातं भवति,
यदा सुध्यात भवति तदा सुतपस्यित भवति,
स स्वधीत. सुध्यात. सुतपस्यित. स्वाख्यात भगवता धर्मः प्रज्ञप्तः।

स्वाख्यातधर्म-पद

५०७. भगवान् ने तीन प्रकार का धर्म प्ररूपित किया है—१. सु-अधीत, २. सु-ध्यात, ३. सु-तपस्यित—सु-आचरित।
जब धर्म सु-अधीत होता है तब वह सु-ध्यात होता है।
जब सु-ध्यात होता है तब सु-तपस्यित होता है।
सु-अधीत, सु-ध्यात और सु-तपस्यित धर्म की भगवान् ने प्रज्ञापना की है यही स्वाख्यात धर्म है।[११]

जाणु-अजाणु-पदं

५०८. तिविधा वावत्ती पण्णत्ता, तं जहा—जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा।
५०९. *तिविधा अज्झोववज्जणा पण्णत्ता, तं जहा—जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा।
५१०. तिविधा परियावज्जणा पण्णत्ता, तं जहा—जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा।°

ज्ञ-अज्ञ-पदम्

त्रिविधा व्यावृत्तिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—ज्ञा, अज्ञा, विचिकित्सा।
त्रिविधा अध्युपपादना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—ज्ञा, अज्ञा, विचिकित्सा।
त्रिविधा पर्यापादना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—ज्ञा, अज्ञा, विचिकित्सा।

ज्ञ-अज्ञ-पद

५०८. व्यावृत्ति [निवृत्ति] तीन प्रकार की होती है—१ ज्ञानपूर्वक, २. अज्ञानपूर्वक, ३ विचिकित्सापूर्वक।
५०९ अध्युपपादन [विषयासक्ति] तीन प्रकार का होता है—१ ज्ञानपूर्वक, २. अज्ञानपूर्वक, ३. विचिकित्सापूर्वक।
५१० पर्यापादन [विषय सेवन] तीन प्रकार का होता है—१. ज्ञानपूर्वक, २. अज्ञानपूर्वक, ३ विचिकित्सापूर्वक।

अंत-पदं

५११. तिविधे अंते पण्णत्ते, तं जहा—
लोगंते, वेयंते, समयंते।

अन्त-पदम्

त्रिविधः अन्तः, प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
लोकान्तः, वेदान्तः, समयान्तः।

अन्त-पद

५११. अन्त [निर्णय] तीन प्रकार का होता है—
१ लोकान्त—लौकिक शास्त्रों का निर्णय,
२. वेदान्त—वैदिक शास्त्रों का निर्णय,
३. समयान्त—श्रमण शास्त्रों का निर्णय।

जिण-पदं

५१२. तओ जिणा पण्णत्ता, तं जहा—
ओहिणाणजिणे, मणपज्जवणाण-जिणे, केवलणाणजिणे।

५१३. तओ केवली पण्णत्ता, तं जहा—
ओहिणाणकेवली,
मणपज्जवणाणकेवली,
केवलणाणकेवली।

५१४. तओ अरहा पण्णत्ता, तं जहा—
ओहिणाणअरहा,
मणपज्जवणाणअरहा,
केवलणाणअरहा।

जिन-पदम्

त्रयः जिनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अवधिज्ञानजिनः, मनःपर्यवज्ञानजिनः, केवलज्ञानजिनः।

त्रयः केवलिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अवधिज्ञानकेवली, मनःपर्यवज्ञानकेवली, केवलज्ञानकेवली।

त्रयः अर्हन्तः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अवधिज्ञानार्हं, मनःपर्यवज्ञानार्हं, केवलज्ञानार्हम्।

जिन-पद

५१२. जिन[७७] तीन प्रकार के होते हैं—
१. अवधिज्ञानी जिन,
२. मन पर्यवज्ञानी जिन,
३. केवलज्ञानी जिन।

५१३. केवली[७८] तीन प्रकार के होते हैं—
१. अवधिज्ञानी केवली,
२. मन पर्यवज्ञानी केवली,
३. केवलज्ञानी केवली।

५१४. अर्हन्त[७९] तीन प्रकार के होते हैं—
१. अवधिज्ञानी अर्हन्त,
२. मन.पर्यवज्ञानी अर्हन्त,
४. केवलज्ञानी अर्हन्त।

लेसा-पदं

५१५. तओ लेसाओ दुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा।

५१६. तओ लेसाओ सुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा।

५१७. *तओ लेसाओ—
दोग्गतिगामिणीओ, संकिलिट्ठाओ, अमणुण्णाओ, अविसुद्धाओ, अप्पसत्थाओ, सीत-लुक्खाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा।

५१८. तओ लेसाओ—
सोगतिगामिणीओ, असंकिलिट्ठाओ, मणुण्णाओ, विसुद्धाओ, पसत्थाओ, णिद्धुण्हाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तेउलेसा पम्हलेसा, सुक्कलेसा।[८०]

लेश्या-पदम्

तिस्रः लेश्याः दुरभिगन्धाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या।

तिस्रः लेश्याः सुरभिगन्धाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ल-लेश्या।

तिस्रः लेश्याः—
दुर्गतिगामिन्यः, संक्लिष्टाः, अमनोज्ञाः, अविशुद्धाः, अप्रशस्ताः, शीत-रूक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या।

तिस्रः लेश्याः—
सुगतिगामिन्यः, असंक्लिष्टाः, मनोज्ञाः विशुद्धाः, प्रशस्ताः
स्निग्धोष्णाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

लेश्या-पद

५१५. तीन लेश्याएं दुरभि गंध वाली हैं—
१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या,
३. कापोतलेश्या।

५१६. तीन लेश्याएं सुरभि गंध वाली हैं—
१. तेजोलेश्या, २. पद्मलेश्या,
३. शुक्ललेश्या।

५१७. तीन लेश्याएं—
दुर्गतिगामिनी, संक्लिष्ट, अमनोज्ञ, अविशुद्ध, अप्रशस्त, शीत-रूक्ष हैं—
१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या,
३. कापोतलेश्या।

५१८. तीन लेश्याएं—
सुगतिगामिनी, असंक्लिष्ट, मनोज्ञ, विशुद्ध, प्रशस्त, स्निग्ध-उष्ण हैं—
१. तेजोलेश्या, २. पद्मलेश्या,
३. शुक्ललेश्या।

मरण-पदं

५१९. तिविहे मरणे पण्णत्ते, तं जहा— बालमरणे, पंडियमरणे, बालपंडियमरणे।

मरण-पदम्

त्रिविध मरण प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— बालमरण, पण्डितमरण, बालपण्डितमरणं।

मरण-पद

५१९. मरण तीन प्रकार का होता है—
१. बाल-मरण—असंयमी का मरण,
२. पंडित-मरण—संयमी का मरण,
३. बाल-पंडित-मरण—संयमासंयमी का मरण।

५२०. बालमरणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—ठितलेस्से, संकिलिट्ठलेस्से, पज्जवजातलेस्से।

बालमरण त्रिविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— स्थितलेश्यं, सक्लिष्टलेश्य, पर्यवजातलेश्यम्।

५२०. बाल-मरण तीन प्रकार का होता है—
१ स्थितलेश्य, २. संक्लिष्टलेश्य,
३ पर्यवजातलेश्य।[100]

५२१. पंडियमरणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—ठितलेस्से, असंकिलिट्ठलेस्से, पज्जवजातलेस्से।

पण्डितमरण त्रिविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— स्थितलेश्यं, असंक्लिष्टलेश्य, पर्यवजातलेश्यम्।

५२१. पंडित-मरण तीन प्रकार का होता है—
१ स्थितलेश्य—स्थिर विशुद्ध लेश्या वाला। २. असक्लिष्टलेश्य,
३ पर्यवजातलेश्य—प्रवर्धमान विशुद्ध-लेश्या वाला।

५२२. बालपंडियमरणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—ठितलेस्से, असंकिलिट्ठलेस्से, अपज्जवजातलेस्से।

बालपण्डितमरण त्रिविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—स्थितलेश्य, असक्लिष्टलेश्यं, अपर्यवजातलेश्यम्।

५२२. बाल-पंडित-मरण तीन प्रकार का होता है—१. स्थितलेश्य—स्थिर लेश्या वाला,
२. असक्लिष्टलेश्य,
३. अपर्यवजातलेश्य।[101]

असद्दहंतस्स पराभव-पदं

५२३. तओ ठाणा अव्ववसितस्स अहिताए असुभाए अखमाए अणिस्सेसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति तं जहा—

१. से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे संकिते कंखिते वितिगिच्छिते भेदसमावण्णे कलुससमावण्णे णिग्गंथं पावयणं णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोएति, तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवंति, णो से परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवइ।

अश्रद्दधानस्य पराभव-पदम्

त्रीणि स्थानानि अव्यवसितस्य अहिताय अशुभाय अक्षमाय अनिःश्रेयसाय अनानुगामिकत्वाय भवंति, तद्यथा—

१. स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजितः नैर्ग्रन्थे प्रवचने शङ्कितः काङ्क्षितः विचिकित्सितः भेदसमापन्नः कलुषसमापन्नः नैर्ग्रन्थ प्रवचन नो श्रद्धत्ते नो प्रत्येति नो रोचयति, तं परीषहाः अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवन्ति, नो स परीषहान् अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवति।

अश्रद्धावान् का पराभव

५२३. अव्यवसित (अश्रद्धावान) निर्ग्रन्थ के लिए तीन स्थान अहित, अशुभ, अक्षम, अनिःश्रेयस और अनानुगामिता[102] के हेतु होते हैं—

१. वह मुण्डित तथा अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर निर्ग्रन्थ-प्रवचन मे शंकित[103], कांक्षित[104], विचिकित्सिक[105], भेदसमापन्न[106] और कलुषसमापन्न[107] होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा नही करता, प्रतीति नही करता, रुचि नही करता। उसे परीषह जूझ-जूझ कर अभिभूत कर देते हैं, वह परीषहों से जूझ-जूझ कर उन्हे अभिभूत नही कर पाता।

२. से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइए पंचहिं महव्वएहिं संकिते °कंखिते वितिगिच्छिते भेदसमावण्णे° कलुससमावण्णे पंच महव्वताइं णो सद्दहति °णो पत्तियति णो रोएति, तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवंति°, णो से परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवति।

२. स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजितः पञ्चसु महाव्रतेषु शङ्कितः काङ्क्षितः विचिकित्सितः भेदसमापन्नः कलुषसमापन्न पञ्चमहाव्रतानि नो श्रद्धत्ते नो प्रत्येति नो रोचयति, त परीषहाः अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवन्ति, नो स परीषहान् अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवति।

२. वह मुण्डित तथा अगार से अनगार धर्म मे प्रव्रजित होकर पांच महाव्रतों मे शकित, कांक्षित, विचिकित्सिक, भेद समापन्न और कलुष समापन्न होकर पांच महाव्रतो पर श्रद्धा नही करता, प्रतीति नही करता, रुचि नही करता। उसे परीषह जूझ-जूझकर अभिभूत कर देने है, वह परीषहो से जूझ-जूझकर उन्हे अभिभूत नही कर पाता।

३. से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए छहिं जीवणिकाएहिं °संकिते कंखिते वितिगिच्छिते भेदसमावण्णे कलुससमावण्णे छ जीवणिकाए णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोएति, तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवति, णो से परिस्सहे अभिजुंजिय - अभिजुंजिय° अभिभवइ।

३. स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजितः षट्सु जीवनिकायेषु शङ्कितः काङ्क्षितः विचिकित्सितः भेदसमापन्नः कलुषसमापन्नः षड्जीवनिकायान् नो श्रद्धत्ते नो प्रत्येति नो रोचयति, त परीषहाः अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवन्ति, नो स परीषहान् अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवति।

३. वह मुण्डित तथा अगार से अनगार धर्म मे प्रव्रजित होकर छः जीव निकाय मे शकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेद-समापन्न और कलुषसमापन्न होकर छ जीव निकाय पर श्रद्धा नही करता, प्रतीति नही करता, रुचि नही करता। उसे परीषह जूझ-जूझ कर अभिभूत कर देते है, वह परीषहों से जूझ-जूझ कर उन्हे अभिभूत नही कर पाता।

सद्दहंतस्स-विजय-पदं

५२४. तओ ठाणा ववसियस्स हिताए °सुभाए खमाए णिस्सेसाए° आणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—

१. से ण मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे णिस्संकिते °णिक्कंखिते णिव्वितिगिच्छिते णो भेदसमावण्णे° णो कलुससमावण्णे णिग्गंथं पावयणं सद्दहति पत्तियति रोएति, से परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवति, णो तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवंति।

श्रद्दधानस्य विजय-पदम्

त्रीणि स्थानानि व्यवसितस्य हिताय शुभाय क्षमाय निःश्रेयसाय आनुगामिकत्वाय भवन्ति, तद्यथा—

१. स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजितः नैर्ग्रन्थे प्रवचने निःशङ्कित निष्काङ्क्षित निर्विचिकित्सितः नो भेदसमापन्न नो कलुषसमापन्न नैर्ग्रन्थ प्रवचन श्रद्धत्ते प्रत्येति रोचयति, स परीषहान् अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवति, नो त परीषहाः अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवन्ति।

श्रद्धावान् की विजय

५२४. व्यवस्थित निर्ग्रन्थ के लिए तीन स्थान हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस और अनुगामिता के हेतु होते हैं—

१. वह मुण्डित तथा अगार से अनगार धर्म मे प्रव्रजित होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन मे निःशकित, निष्कांक्षित, निर्विचिकित्सित, अभेदसमापन्न और अकलुषसमापन्न होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है, रुचि करता है। वह परीषहो से जूझ-जूझकर उन्हें अभिभूत कर देता है, उसे परीषह जूझ-जूझकर अभिभूत नहीं कर पाते।

२. से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पंचहिं महव्वएहिं णिस्संकिए णिक्कंखिए •णिव्वितिगिच्छिते णो भेदसमावण्णे णो कलुससमावण्णे पंच महव्वताइं सद्दहति पत्तियति रोएति, से° परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवइ, णो तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवंति।

३. से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए छहिं जीवणिकाएहिं णिस्संकिते •णिक्कंखिते णिव्वितिगिच्छिते णो भेदसमावण्णे णो कलुससमावण्णे छ जीवणिकाए सद्दहति पत्तियति रोएति, से° परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवंति। णो तं परिस्सहा अभिजुंजिय- अभिजुंजिय अभिभवंति।

२. स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजितः सन् पञ्चसु महाव्रतेषु निःशङ्कितः निष्काङ्क्षितः निर्विचिकित्सितः नो भेदसमापन्नः नो कलुषसमापन्नः पञ्च महाव्रतानि श्रद्धत्ते प्रत्येति रोचयति, स परीषहान् अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवति, नो तं परीषहाः अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवन्ति।

३. स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजितः षट्सु जीवनिकायेषु निःशङ्कितः निष्काङ्क्षितः निर्विचिकित्सितः नो भेदसमापन्नः नो कलुषसमापन्नः षड् जीवनिकायान् श्रद्धत्ते प्रत्येति रोचयति, स परीषहान् अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवति, नो त परीषहाः अभियुज्य-अभियुज्य अभिभवन्ति।

२. वह मुण्डित तथा अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर पांच महाव्रतों में निःशंकित, निष्कांक्षित, निर्विचिकित्सित, अभेदसमापन्न और अकलुषसमापन्न होकर पांच महाव्रतों में श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है, रुचि करता है। वह परीषहों से जूझ-जूझकर उन्हें अभिभूत कर देता है, उसे परीषह जूझ-जूझकर अभिभूत नहीं कर पाते।

३. वह मुण्डित तथा अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर छः जीव निकायों में निःशंकित, निष्कांक्षित, निर्विचिकित्सित अभेदसमापन्न और अकलुष समापन्न हो कर छः जीव निकायों में श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है, रुचि करता है, वह परीषहों से जूझ-जूझकर उन्हें अभिभूत कर देता है, उसे परीषह जूझ-जूझकर अभिभूत नहीं कर पाते।

पुढवी-वलय-पदं

५२५. एगमेगा णं पुढवी तिहिं वलएहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता, तं जहा—घणोदधिवलएणं, घणवातवलएणं, तणुवायवलएणं।

पृथिवी-वलय-पदम्

एकैका पृथिवी त्रिभिः वलयैः सर्वतः समन्तात् सपरिक्षिप्ता, तद्यथा—धनोदधिवलयेन, घनवातवलयेन, तनुवातवलयेन।

पृथ्वी-वलय-पद

५२५. सभी पृथ्वियां तीन वलयों से सर्वतः परिक्षिप्त (घिरी हुई) है—
१ घनोदधि वलय से,
२. घनवात वलय से,
३ तनुवात वलय से।

विग्गह-गइ-पदं

५२६. णेरइया णं उक्कोसेणं तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जंति।
एगिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

विग्रह-गति-पदम्

नैरयिकाः उत्कर्षेण त्रिसामयिकेन विग्रहेण उत्पद्यन्ते।
एकेन्द्रियवर्जं यावत् वैमानिकानाम्।

विग्रह-गति-पद

५२६. एकेन्द्रिय को छोड़कर नैरयिको से वैमानिक देवों तक के सभी दण्डको के जीव उत्कृष्ट रूप मे तीन समय की विग्रह-गति[९६] से उत्पन्न होते हैं।

खीणमोह-पदं

५२७ खीणमोहस्स णं अरहओ तओ कम्मंसा जुगवं खिज्जंति, तं जहा—णाणावरणिज्जं, दंसणावरणिज्जं, अंतराइयं।

क्षीणमोह-पदम्

क्षीणमोहस्य अर्हतः त्रीणि सत्कर्माणि युगपत् क्षीयन्ते, तद्यथा—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, आन्तरायिकम्।

क्षीणमोह-पद

५२७ क्षीणमोह अर्हन्त के तीन कर्मांश [कर्म-प्रकृतियां] एक साथ क्षीण होते हैं—
१. ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय,
३ अन्तराय।

णक्खत्त-पदं

५२८. अभिईणक्खत्ते तितारे पण्णत्ते।
४२९. एवं—सवणे, अस्सिणी, भरणी, मगसिरे, पूसे, जेट्ठा।

नक्षत्र-पदम्

अभिजिद् नक्षत्र त्रितारक प्रज्ञप्तम्।
एवम्—श्रवण., अश्विनी, भरणी, मृगशिरः, पुष्य., ज्येष्ठा।

नक्षत्र-पद

५२८ अभिजित् नक्षत्र के तीन तारे है।
५२९ इसी प्रकार श्रवण, अश्विनी, भरणी, मृगसर, पुष्य तथा ज्येष्ठा नक्षत्र के भी तीन-तीन तारे है।

तित्थकर-पदं

५३०. धम्माओ णं अरहाओ संती अरहा तिहिं सागरोवमेहिं तिचउब्भाग-पलिओवमऊणएहिं वीतिक्कंतेहिं समुप्पण्णे।

५३१ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स जाव तच्चाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकरभूमी।

५३२. मल्ली णं अरहा तिहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता °अगाराओ अणगारियं° पव्वइए।

५३३ °पासे णं अरहा तिहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।°

५३४. समणस्स णं भगवतो महावीरस्स तिण्णि सया चउद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर-सण्णिवातीणं जिणा [जिणाणं?] इव अवितहं वागरमाणाणं उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसंपया हुत्था।

तीर्थंकर-पदम्

धर्माद् अर्हतः शान्तिः अर्हन् त्रिषु सागरोपमेषु त्रिचतुर्भागपल्योपमोनकेषु व्यतिक्रान्तेषु समुत्पन्नः।

श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य यावत् तृतीयं पुरुषयुगं युगान्तकरभूमिः।

मल्ली अर्हन् त्रिभिः पुरुषशतैः सार्धं मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजितः।

पार्श्वः अर्हन् त्रिभिः पुरुषशतैः सार्धं मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजितः।

श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य त्रीणि शतानि चतुर्दशपूर्विणां अजिनानां जिन-सकाशानां सर्वाक्षरसन्निपातिनां जिना [जिनानां?] इव अवितथं व्याकुर्वाणानां उत्कर्षिका चतुर्दशपूर्विसंपदा अभवत्।

तीर्थंकर-पद

५३० अर्हत् शान्ति अर्हत् धर्म के पश्चात् तीन सागरोपम मे से चौथाई भाग कम पल्योपम के बीत जाने पर समुत्पन्न हुए।

५३१ श्रमण भगवान् महावीर के बाद तीसरे पुरुष युग जम्बू स्वामी तक युगान्तकर-भूमि—निर्वाण गमन का क्रम रहा है।

५३२ अर्हत् मल्ली[10] तीन सौ पुरुषो के साथ मुण्डित होकर अगार धर्म से अनगार धर्म मे प्रव्रजित हुए।

५३३ इसी प्रकार अर्हत् पार्श्व तीन सौ पुरुषो के साथ मुण्डित होकर अगार धर्म से अनगार धर्म मे प्रव्रजित हुए।

५३४ श्रमण भगवान् महावीर के तीन सौ शिष्य चौदह पूर्वधर थे, जिन नही होते हुए भी जिन के समान थे, सर्वाक्षर-सन्निपाती[11] तथा जिन भगवान् की तरह अवितथ व्याकरण करने वाले थे। यह भगवान् महावीर के उत्कृष्ट चतुर्दश पूर्वी शिष्यों की सम्पदा थी।

५३५. तओ तित्थयरा चक्कवट्टी होत्था, तं जहा—संती, कुंथू, अरो।

त्रयः तीर्थकरा चक्रवर्तिनः अभवन्, तद्यथा—शान्तिः, कुन्थुः, अरः।

५३५ तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती हुए—
१ शांति, २. कुंथु, ३ अर।

गेविज्ज-विमाण-पदं

ग्रैवेयक-विमान-पदम्

ग्रैवेयक-विमान-पद

५३६. तओ गेविज्ज-विमाण-पत्थडा पण्णत्ता, तं जहा—
हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे।

त्रयः ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अधस्तन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः, मध्यम-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः, उपरितन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः।

५३६ ग्रैवेयक विमान के तीन प्रस्तट हैं—
१. अधोग्रैवेयक विमान प्रस्तट,
२. मध्यमग्रैवेयक विमान प्रस्तट,
३. ऊर्ध्वग्रैवेयक विमान प्रस्तट।

५३७. हिट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
हेट्ठिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
हेट्ठिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
हेट्ठिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे।

अधस्तन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट. त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अधस्तन-अधस्तन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः, अधस्तन-मध्यम-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट., अधस्तन-उपरितन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः।

५३७ अधोग्रैवेयक विमान प्रस्तट तीन प्रकार के हैं—
१. अधः-अधःग्रैवेयक विमान प्रस्तट,
२ अधो-मध्यमग्रैवेयक विमान प्रस्तट,
३ अधः-ऊर्ध्वग्रैवेयक विमान प्रस्तट।

५३८. मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
मज्झिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
मज्झिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
मज्झिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे।

मध्यम-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट त्रिविध. प्रज्ञप्त, तद्यथा—
मध्यम-अधस्तन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः
मध्यम-मध्यम-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः,
मध्यम-उपरितन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः।

५३८ मध्यमग्रैवेयक विमान प्रस्तट तीन प्रकार के हैं—
१. मध्यम-अधःग्रैवेयक विमान प्रस्तट,
२ मध्यम-मध्यमग्रैवेयक विमान प्रस्तट,
३ मध्यम-ऊर्ध्वग्रैवेयक विमान प्रस्तट।

५३९. उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
उवरिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
उवरिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
उवरिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे।

उपरितन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
उपरितन-अधस्तन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट, उपरितन-मध्यम-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तट., उपरितन-उपरितन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः।

५३९ ऊर्ध्वग्रैवेयक विमान प्रस्तट तीन प्रकार के हैं—
१. ऊर्ध्व-अधःग्रैवेयक विमान प्रस्तट,
२ ऊर्ध्व-मध्यमग्रैवेयक विमान प्रस्तट,
३. ऊर्ध्व-ऊर्ध्वग्रैवेयक विमान प्रस्तट।

पावकम्म-पदं

५४०. जीवा णं तिट्ठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—इत्थिणिव्वत्तिते, पुरिसणिव्वत्तिते, णपुंसगणिव्वत्तिते।
एवं—चिण-उवचिण-बंध
उदीर-वेद तह णिज्जरा चेव।

पापकर्म-पदम्

जीवा: त्रिस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषु: वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा—स्त्रीनिर्वर्तितान्, पुरुषनिर्वर्तितान्, नपुंसकनिर्वर्तितान्
एवम्—चय-उपचय-बन्ध
उदीर-वेदा: तथा निर्जरा चैव।

पापकर्म-पद

५४० जीवों ने त्रिस्थान-निर्वर्तित पुद्गलों का कर्मरूप में चय किया है, करते हैं तथा करेंगे—१. स्त्री-निर्वर्तित पुद्गलों का, २ पुरुष-निर्वर्तित पुद्गलों का, ३ नपुंसक-निर्वर्तित पुद्गलों का।
इसी प्रकार जीवों ने त्रिस्थान-निर्वर्तित पुद्गलों का कर्मरूप में उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन तथा निर्जरण किया है, करते हैं तथा करेंगे।

पोग्गल-पदं

५४१. तिपदेसिया खंधा अणंता पण्णत्ता।

५४२. एवं जाव तिगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

पुद्गल-पदम्

त्रिप्रदेशिका: स्कन्धा अनन्ता: प्रज्ञप्ता:।

एवं यावत् त्रिगुणरूक्षा: पुद्गला: अनन्ता: प्रज्ञप्ता:।

पुद्गल-पद

५४१ त्रिप्रदेशी—[तीन प्रदेश वाले] स्कन्ध अनन्त हैं।

५४२ इसी प्रकार तीन प्रदेशावगाढ तीन समय की स्थिति वाले और तीन गुण वाले पुद्गल अनन्त है तथा शेष सभी वर्ण, गंध, रस और स्पर्शों के तीन गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं।

टिप्पणियाँ
स्थान-३

१—विक्रिया (सूत्र ४) :

विक्रिया का अर्थ है—विविध रूपों का निर्माण या विविध प्रकार की क्रियाओं का सम्पादन। वह दो प्रकार की होती है—भवधारणीय [जन्म के समय होने वाली] और उत्तरकालीन। प्रस्तुत सूत्र मे विक्रिया के तीन प्रकार निर्दिष्ट हैं—

१ पर्यादाय, २ अपर्यादाय, ३ पर्यादाय-अपर्यादाय।

भवधारणीय शरीर से अतिरिक्त रूपो का निर्माण [उत्तरकालीन विक्रिया] बाह्यपुद्गलो का ग्रहण कर की जाती है, इसलिए उसकी सज्ञा पर्यादाय विक्रिया है।

भवधारणीयविक्रिया बाह्यपुद्गलो को ग्रहण किए बिना होती है, इसलिए उसकी सज्ञा अपर्यादाय विक्रिया है।

भवधारणीय शरीर का कुछ विशेष सस्कार करने के लिए जो विक्रिया की जाती है उसमे बाह्यपुद्गलो का ग्रहण और अग्रहण—दोनो होते है, इसलिए उसकी सज्ञा पर्यादाय-अपर्यादाय विक्रिया है।

वृत्तिकार ने विक्रिया का दूसरा अर्थ किया है—भूषित करना। बाह्यपुद्गलआभरण आदि लेकर शरीर को विभूषित करना पर्यादायविक्रिया होती है और बाह्यपुद्गलो का ग्रहण न करके केश, नख आदि को सवारना अपर्यादाय विक्रिया कहलाती है।

बाह्यपुद्गलो के लिए बिना गिरगिट अपने शरीर को नाना रंगमय बना लेता है तथा सर्प फणावस्था मे अपनी अवस्था को विशिष्ट रूप दे देता है।

२—कतिसंचित (सूत्र ७) :

कति शब्द का अर्थ है कितना। यहा वह सख्येय के अर्थ मे प्रयुक्त है। यहां कति, अकति और अवक्तव्य ये तीन शब्द हैं। कति का अर्थ संख्या से है अर्थात् दो से लेकर सख्यात तक। अकति का अर्थ असंख्यात और अनन्त से है। अवक्तव्य का अर्थ एक से है, एक को सख्या नही माना जाता।

भगवतीसूत्र, शतक २०, उद्देशक १० के नौवें प्रश्न मे बताया गया है कि नरकगति मे नैरयिक एक साथ सख्यात उत्पन्न होते हैं। उत्पत्ति की समानता से बुद्धि द्वारा उनका सग्रह करके उन्हे कतिसचित कहा है। नरकगति में नैरयिक असख्यात भी एक साथ उत्पन्न होते है, इसलिए उन्हे अकतिसचित भी कहा है। नरकगति मे नैरयिक जघन्यत एक ही उत्पन्न होता है, इसलिए उसे अवक्तव्यसचित कहा है।

दिगम्बर सम्प्रदाय मे कति शब्द के स्थान पर कदी शब्द आया है। उसका अर्थ कृति किया गया है। इनकी व्याख्या भी भिन्न है। कृति शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है—जो राशि वर्गित होकर वृद्धि को प्राप्त होती है और अपने वर्ग मे से अपने वर्ग के मूल को कम कर वर्ग करने पर वृद्धि को प्राप्त होती है उसे कृति कहते हैं।

एक संख्या वर्ग करने पर वृद्धि नहीं होती तथा उसमें से वर्गमूल के कम करने पर वह निर्मूल नष्ट हो जाती है, इस कारण एक संख्या नोकृति है। दो संख्या का वर्ग करने पर चूकि वृद्धि देखी जाती है अत दो को नोकृति नही कहा जा सकता और चूंकि उसके वर्ग में से मूल को कम करके वर्गित करने पर वह वृद्धि को प्राप्त नही होती, किन्तु पूर्वोक्त राशि ही रहती है अतः दो कृति भी नहीं हो सकती, इसलिए दो संख्या अवक्तव्य है।

तीन को आदि लेकर आगे की सख्या वर्गित करने पर चूकि बढती है और उसमे से वर्गमूल को कम करके पुनः वर्ग करने पर भी वृद्धि को प्राप्त होती है इस कारण उसे कृति कहा है।[1]

इस व्याख्या से—

नो कृति—१, २, ३, ४, ५

अवक्तव्य कृति—२, ४, ६, ८, १०

कृति—३, ४, ५,······

एक को आदि लेकर एक अधिक क्रम से वृद्धि को प्राप्त राशि नो कृतिसकलना है।

दो को आदि लेकर दो अधिक क्रम से वृद्धि को प्राप्त राशि अवक्तव्यसकलना है।

तीन, चार, पाच आदि मे अन्यतर को आदि करके उनमे ही अन्यतर के अधिक क्रम से वृद्धिगत राशि कृतिसकलना है। इसकी स्थापना इस प्रकार है—

नो कृतिसकलना—१, २, ३, ४, ५, ६···आदि सख्यात असख्यात।

अवक्तव्यसकलना—२, ४, ६, ८, १०, १२···आदि सख्यात असख्यात।

कृतिसकलना—३, ६, ६, १२, ४, ८, १२, १६, ५, १०, १५, २० आदि संख्यात असख्यात।

श्वेताम्बर और दिगम्बर-परम्परा का यह अर्थ-भेद सचमुच आश्चर्यजनक है। कति और कृति दोनो का प्राकृत रूप कति या कदि बन सकता है।

३—एकेन्द्रिय (सूत्र ८) :

एकेन्द्रिय मे प्रतिसमय असख्यात या [वनस्पति विशेष मे] अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं। अत वे अकतिसचित ही होते हैं। इसलिए उनके तीन विकल्प नही होते।

४—परिचारणा (सूत्र ६) :

परिचारणा का अर्थ है—मैथुन का सेवन[2]। तत्त्वार्थसूत्र मे परिचारणा के अर्थ मे प्रवीचार शब्द का प्रयोग किया गया है[3]। प्रवीचार पाच प्रकार का होता है[4]—

१ कायप्रवीचार—कायिक मैथुन।

२ स्पर्शप्रवीचार—स्पर्श मात्र से होने वाली भोगतृप्ति।

३. रूपप्रवीचार—रूप देखने मात्र से होने वाली भोगतृप्ति।

४. शब्दप्रवीचार—शब्द सुनने मात्र से होने वाली भोगतृप्ति।

५. मन.प्रवीचार—सकल्प मात्र से होने वाली भोगतृप्ति।

देखें ५।५४ का टिप्पण।

५—मैथुन (सूत्र १२) :

वृत्तिकार ने स्त्री, पुरुष और नपुसक के लक्षणो का सकलन किया है। उनके अनुसार स्त्री के सात लक्षण हैं[5]—

१. योनि, २ मृदुता, ३ अस्थिरता, ४. मुग्धता, ५ क्लीवता, ६ स्तन, ७ पुरुष के प्रति अभिलाषा।

---

१. षट्खडागम वेदनाखण्ड-कृति अनुयोग द्वार।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र १००. परिचारणा देवमैथुनसेवा।

३. तत्त्वार्थसूत्र, ४।८ कायप्रवीचारा आ ऐशानात्।

४ तत्त्वार्थसूत्र, ४।६ :

शेषाः स्पर्श-रूप-शब्द-मन -प्रवीचारा द्वयो द्वयो।

५. स्थानांगवृत्ति, पत्र १००

योनि मृदुत्वमस्थैर्यं, मुग्धत्व क्लीबता स्तनौ।
पुस्कामितेति लिङ्गानि, सप्त स्त्रीत्वे प्रचक्षते ॥

पुरुष के सात लक्षण ये हैं[1]—

१ लिङ्ग, २ कठोरता, ३ दृढ़ता, ४. पराक्रम, ५ दाढ़ी और मूछ, ६ धृष्टता, ७ स्त्री के प्रति अभिलाषा।

नपुसक के लक्षण[2]—

१ स्तन और दाढ़ी-मूछ ये कुछ अशो मे होते हैं, परन्तु पूर्ण विकसित नही होते।

२ प्रज्वलित कामाग्नि।

६-८ योग, प्रयोग, करण (सू० १३-१५) :

योग शब्द के दो अर्थ है—प्रवृत्ति और समाधि। इनकी निष्पत्ति दो भिन्न-भिन्न धातुओ से होती है। सम्बन्धार्थक 'युज्' धातु से निष्पन्न होने वाले योग का अर्थ है—प्रवृत्ति। समाध्यर्थक युज् धातु से निष्पन्न होने वाले योग का अर्थ है—समाधि। प्रस्तुत सूत्र मे योग का अर्थ प्रवृत्ति है। उमास्वाति के अनुसार काय, वाङ् और मन के कर्म का नाम योग है।[3] जीव के तीन मुख्य प्रवृत्तियो—कायिकप्रवृत्ति, वाचिकप्रवृत्ति और मानसिकप्रवृत्ति—का सूत्रकार ने योग शब्द के द्वारा निर्देश किया है।

कर्मशास्त्रीय परिभाषा के अनुसार वीर्यान्तरायकर्म के क्षय या क्षयोपशम तथा शरीरनामकर्म के उदय से होने वाला वीर्ययोग कहलाता है। भगवतीसूत्र मे एक प्रसग आता है।[4] वहा गौतम स्वामी ने पूछा—भते! योग किससे उत्पन्न होता है?

भगवान—वीर्य से।

गौतम—भते! वीर्य किससे उत्पन्न होता है?

भगवान्—शरीर से।

गौतम—भंते! शरीर किससे उत्पन्न होता है?

भगवान्—जीव से।

इस कर्मशास्त्रीय परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि योग जीव और शरीर के साहचर्य से उत्पन्न होने वाली शक्ति है।

वृत्ति मे उद्धृत एक गाथा मे योग के पर्यायवाची नाम इस प्रकार है—

१ योग २. वीर्य ३ स्थाम ४. उत्साह ५ पराक्रम ६ चेष्टा ७ शक्ति ८ सामर्थ्य।[5]

योग के अनन्तर प्रयोग का निर्देश है। प्रज्ञापना (पद १६) के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि योग और प्रयोग दोनो एकार्थक है।

प्रयोग के अनन्तर सूत्रकार ने करण का निर्देश किया है। वृत्तिकार ने करण का अर्थ—मनन, वचन और स्पदन की क्रियाओ मे प्रवर्तमान आत्मा का सहायक पुद्गल-समूह किया है।[6]

वृत्तिकार ने योग, प्रयोग और करण की व्याख्या करने के पश्चात् यह बतलाया है कि ये तीनो एकार्थक हैं। भगवती

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र १००

मेहन खरता दाढ्यं शौण्डीर्यं श्मश्रुधृष्टता।
स्त्रीकामितेति लिङ्गानि, सप्त पुस्त्वे प्रचक्षते॥

२. वही.

स्तनादिश्मश्रुकेशादिभावाभावसमन्वितम्।
नपुसक बुधा प्राहुर्मोहानलसुदीपितम्॥

३. तत्त्वार्थसूत्र, ६।१ कायवाङ्मन कर्म योग।

४ भगवतीसूत्र १।१४३-१४५ :

से ण भते! जोए कि पवहे?
गोयमा! वीरियप्पवहे।
से ण भते! वीरिए कि पवहे?
गोयमा! सरीरप्पवहे।
से ण भते! सरीरे कि पवहे?
गोयमा! जीवप्पवहे।

५. स्थानागवृत्ति, पत्र १०१

जोगो वीरिय थामो, उच्छाह परक्कमो तहा चेट्ठा।
सत्ती सामत्यन्ति य, जोगस्स हवति पज्जाया॥

६. स्थानागवृत्ति, पत्र १०१ : क्रियते येन तत्करणं—मननादिक्रियासु प्रवर्त्तमानस्यात्मन उपकरणभूतस्तथा तथापरिणामवत्पुद्गलसङ्घात इति भाव.।

में योग के पन्द्रह प्रकार बतलाए हैं। वे ही पन्द्रह प्रकार प्रज्ञापना मे प्रयोग के नाम से तथा आवश्यक मे करण के नाम से निर्दिष्ट हैं। अत: इन तीनों मे अर्थ भेद का अन्वेषण आवश्यक नही है।[1]

६—(सू० १६) :

देखें ७/८४-८६ का टिप्पण।

१०—(सू० १७) :

प्रस्तुत सूत्र के आलोच्य शब्द ये हैं—

१. तथारूप—जीवनचर्या के अनुरूप वेश वाला।

२ माहन—अहिंसा का उपदेश देने वाला अहिंसक।[2]

३ अस्पर्शुक—यह अफासुय शब्द का अनुवाद है। प्राचीन व्याख्या-ग्रन्थो मे फासुय का अर्थ प्रासुक (निर्जीव) और अफासुय का अर्थ अप्रासुक (सजीव) किया गया है। प्रस्तुत प्रकरण मे वृत्तिकार ने भी यही अर्थ किया है।[3]

पण्डित बेचरदासजी ने फासुय का अर्थ स्पर्शुक अर्थात् अभिलषणीय किया है। उन्होने इसके समर्थन मे जो तर्क दिए हैं, वे बुद्धिगम्य हैं।[4]

४. अनेषणीय—गवेषणा के अयोग्य, अकल्पनीय, अग्राह्य।

५. अशन—पेट भर कर खाया जाने वाला आहार।

६ पान—कांजी तथा जल।

७. खाद्य—फल, मेवा आदि।

८. स्वाद्य—लौंग, इलायची आदि।

११—गुप्ति (सू० २१) :

गुप्ति का शाब्दिक अर्थ हैं—रक्षा। मन, वचन और काय के साथ योग होने पर इसका अर्थ होता है—मन, वचन और काय की अकुशल प्रवृत्तियों से रक्षा और कुशल प्रवृत्तियो मे नियोजन। यह अर्थ सम्यक्प्रवृत्ति को ध्यान मे रखकर किया गया प्रतीत होता है। असम्यक् की निवृत्ति हुए बिना कोई भी प्रवृत्ति सम्यक् नही बनती, इस दृष्टि से सम्यक्प्रवृत्ति में गुप्ति का होना अनिवार्य माना गया है।[5]

सम्यक्प्रवृत्ति से निरपेक्ष होकर यदि गुप्ति का अर्थ किया जाए तो इसका अर्थ होगा— निरोध। महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है—'चित्तवृत्ति निरोधो योग·' (योगदर्शन १।१) जैन-दृष्टि से इसका समानान्तर सूत्र लिखा जाए तो वह होगा 'चित्तवृत्ति निरोधो गुप्ति.'।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र १०१, १०२ अथवा योगप्रयोगकरण-शब्दाना मन प्रभृतिकर्माभिधेयतया योगप्रयोगकरणसूत्रेष्वभि-हितमिति नार्थभेदोऽन्वेषणीय, त्रयाणामप्येषामेकार्थतया आगमे बहुश प्रवृत्तिदर्शनात्, तथाहि-योग पञ्चदशविध शतकादिषु व्याख्यात, प्रज्ञापनायां त्वेवमेवाय प्रयोगशब्देनोक्त., तथाहि—कतिविहे ण भत ! पओगे पण्णत्ते, गोतमा ! पण्णरसविहे इत्यादि, तथा आवश्यकेऽयमेव करणतयोक्त, तथाहि—

जुंजणकरण तिविह, मणवतिकाए य मणसि सच्चाइ।
सट्ठाणे तेसि भेओ, चउ चउहा सत्तहा चेव॥

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र १०३ : मा हन इत्याचष्टे य पर स्वय हननिवृत्त. सन्निति स माहनो मूलगुणधर.।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र १०३ प्रगता असव—असुमन्त प्राणिनो यस्मात् तत्प्रासुक तन्निषेधादप्रासुकं सचेतनमित्यर्थं।

४. रत्नमुनिस्मृतिग्रथ, अध्याय २, पृष्ठ १००।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र १०५, १०६ : गोपन गुप्ति—मन प्रभृतीनां कुशलाना प्रवर्त्तनमकुशलाना च निवर्त्तनमिति आह च—

मणगुत्तिमाइयाओ, गुत्तीओ तिन्नि समयकेऊहिं।
परियारेयररूवा, णिद्दिट्ठाओ जओ भणियं॥
समिओ णियमा गुत्तो, गुत्तो समियत्तणमि भइयव्वो।
कुसलवइमुईरंतो, ज वइगुत्तोऽवि समिओऽवि॥

१२—दण्ड (सू० २४) :

देखें १।३ का टिप्पण।

१३—गर्हा (सू० २६) :

देखें २।३८ का टिप्पण।

१४—प्रत्याख्यान (सू० २७) :

छव्वीसवें सूत्र मे गर्हा का उल्लेख है और प्रस्तुत सूत्र मे प्रत्याख्यान का। गर्हा अतीत के अनाचरण का अनुताप है और प्रत्याख्यान भविष्य मे अनाचरण का प्रतिषेध।

१५—(सू० २८) :

प्रस्तुत सूत्र मे पुरुष की वृक्ष से तुलना की गई है। इस तुलना का निमित्त उपकार की तरतमता है—यह वृत्तिकार ने निर्दिष्ट किया है। इस निर्देश को एक निदर्शन मात्र समझना चाहिए। तुलना के निमित्तो की संघटना अनेक दृष्टिकोणो से की जा सकती है।

पत्रयुक्त वृक्ष की अपेक्षा पुष्पयुक्त वृक्ष की सुषमा अधिक होती है और फलयुक्त वृक्ष उससे भी अधिक महत्त्व रखता है। पत्र छाया (शोभा) का, पुष्प सुगंध का और फल सरसता का प्रतीक है। छायासम्पन्न पुरुष की अपेक्षा वह पुरुष अधिक महत्त्व रखता है जिनके जीवन मे गुणो की सुगन्ध होती है और उस पुरुष का और अधिक महत्त्व होता है, जिसके जीवन से गुणो का रस-निर्झर प्रवाहित होता रहता है।

किसी वृक्ष मे पत्र, पुष्प और फल तीनो होते हैं। इस दुनिया मे ऐसे पुरुष भी होते हैं, जिनके जीवन मे गुणो की चमक, महक और सरसता—तीनो एक साथ मिलते हैं।

संत तुलसीदास जी ने रामायण[1] मे तीन प्रकार के पुरुषो का वर्णन किया है। कुछ पुरुष पाटल वृक्ष के समान होते हैं। पाटल के केवल फूल होते है फल नही। पाटल के समान पुरुष केवल कहते है, पर करते कुछ नही।

कुछ पुरुष आम्रवृक्ष के समान होते हे। आम्र के फल और फूल दोनो होते हैं। आम्र के समान पुरुष कहते भी है और करते भी है।

कुछ पुरुष फनस वृक्ष के समान होते हैं। फनस के केवल फल होते है। फनस के समान पुरुष कहते नही किन्तु करते हैं।

१६-१८—(सू० २९-३१) :

निर्दिष्ट तीन सूत्रो मे पुरुष का विभिन्न दृष्टिकोणो से निरूपण किया गया है—

नामपुरुष—जिस सजीव या निर्जीव वस्तु का पुरुष नाम होता है, उसे नामपुरुष कहा जाता है।

स्थापनापुरुष—पुरुष की प्रतिमा अथवा किसी वस्तु मे पुरुष का आरोपण।

द्रव्यपुरुष—पुरुषरूप मे उत्पन्न होने वाला जीव या पुरुष का मृत शरीर।

ज्ञानपुरुष—ज्ञानप्रधान पुरुष।

दर्शनपुरुष—दर्शनप्रधान पुरुष।

---

१. तुलसीरामायण लंकाकाण्ड पृ० ६७३ :
अनिजल्पना करि सुजसु नासहि नीतिसुनहि करहि छमा।
संसारमहं पुरुष त्रिविध पाटल, रसाल, पनस समा।।
एक सुमनप्रद एक सुमनफल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहि कहहिं करहि अपर एक करहिं कहत न बागहीं।।

चरित्रपुरुष—चरित्रप्रधान पुरुष।

वेदपुरुष—पुरुष संबंधी मनोविकार का अनुभव करने वाला। यह स्त्री, पुरुष और नपुंसक—इन तीनों लिङ्गों मे हो सकता है।

चिन्हपुरुष—दाढ़ी आदि पुरुष-चिन्हों से पहचाने जाने वाला अथवा पुरुषवेषधारी स्त्री आदि।

अभिलापपुरुष—लिंगानुशासन के अनुसार पुरुषलिंग मे अभिहित होने वाला शब्द।

१९-२२—(सू० ३२-३५) :

इन चार सूत्रो मे पुरुषो की तीन श्रेणिया निरूपित है। प्रथम श्रेणी मे धर्म, भोग और कर्म—इन तीनो के उत्तम पुरुषो का निरूपण है। द्वितीय और तृतीय श्रेणी मे ऐसा निरूपण प्राप्त नहीं होता। द्वितीय श्रेणी के तीन पुरुषो का सम्बन्ध आवश्यकनिर्युक्ति के आधार पर ऋषभकालीन व्यवस्था के साथ जोडा जाता है। ऋषभ की राज्य-व्यवस्था मे आरक्षक, उग्र, पुरोहित, भोज और वयस्य राजन्य कहलाते थे।[1]

भगवान् महावीर के समय मे भी उग्र, भोग और राजन्यो का उल्लेख मिलता है।[2] इससे यह अनुमान किया जाता है कि ये प्राचीन समय के प्रसिद्ध वश है।

इस वर्गीकरण से यह पता चलता है कि आगम-रचनाकाल मे दास, भृतक (कर्मकर) और भागिक—कुछ भाग लेकर खेती आदि का काम करने वाले लोग तीसरी श्रेणी मे गिने जाते थे। इन प्राचीन मूल्यो मे आज क्रातिकारी परिवर्तन हुआ है। वर्तमान मूल्यो के अनुसार भोगपुरुष चक्रवर्ती को उत्तमपुरुष और खेतीहर मजदूर को जघन्यपुरुष का स्थान नही दिया जा सकता।

२३—संमूर्च्छिम (सू० ३६) :

वृत्तिकार ने सम्मूर्च्छिम का अर्थ अगर्भज किया है।[3] सम्मूर्च्छिम जीव गर्भ से उत्पन्न नहीं होते। वे लोक के किसी भी भाग मे उत्पन्न हो जाते हैं। वे जहाँ उत्पन्न होते है वही पुद्गलसमूह को आकृष्ट कर अपने देह की समन्ततः (चारो ओर से) मूर्च्छना (शारीरिक अवयवो की रचना) कर लेते है।[4]

२४-२५—उरः परिसर्प, भुजपरिसर्प (सू० ४२-४५) :

परिसर्प का अर्थ होता है—चलने वाला प्राणी। वह दो प्रकार का होता है—

१ उरः परिसर्प—पेट के बल रेंगने वाला, जैसे—सर्प आदि।

२. भुजपरिसर्प—भुजा के बल चलने वाला, जैसे—नेवला आदि।[5]

२६—(सू० ५०) :

१. कर्मभूमि—कृषि आदि कर्म द्वारा जीविका चलाई जाए, उस प्रकार की भूमि कर्मभूमि कहलाती है।

२. अकर्मभूमि—प्राकृतिक साधनो से जीविका चलाई जाए, उस प्रकार की भूमि अकर्मभूमि कहलाती है।

३. अन्तर्द्वीप—ये लवण समुद्र के अन्तर्गत है।

इनमे उत्पन्न होने वाले क्रमश कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज कहलाते हैं।

---

१ आवश्यकनिर्युक्ति, १९८ :

उग्गा भोगा राइण्ण-खत्तिया सगहा भवे चउहा।
आरक्ख गुरुवयसा, सेसा जे खत्तिया ते उ॥

२. उवासगदसाओ, ७।३७।

३. स्थानागवृत्ति, पत्र १०८ : सम्मूर्च्छिमा अगर्भजा।

४. तत्त्वार्थवार्तिक, २।३१ : त्रिषु लोकेषूर्ध्वमधस्तिर्यक् च देहस्य समन्ततो मूर्च्छन सम्मूर्च्छनम्—अवयवप्रकल्पनम्।

५ स्थानागवृत्ति, पत्र १०८ : उरसा—वक्षसा परिसर्पन्तीति उरःपरिसर्प्पाः—सर्पादयस्तेऽपि भणितव्याः, तथा भुजाभ्यां—बाहुभ्यां परिसर्प्पन्ति ये ते तथा नकुलादयः।

२७—असुरकुमार के (सू० ५९) :

असुरकुमार आदि भवनपति देवो मे चार लेश्याएँ होती हैं, पर संक्लिष्ट लेश्याएँ तीन ही होती हैं। चौथी लेश्या—तेजोलेश्या संक्लिष्ट नही है, इस दृष्टि से यहां तीन लेश्याए बतलाई गई है।[1]

२८—पृथ्वीकाय… (सू० ६१) :

पृथ्वीकाय, अप्काय तथा वनस्पतिकाय मे जीव देवगति से आकर उत्पन्न हो सकते हैं, उन जीवो मे तेजोलेश्या भी प्राप्त होती है, किन्तु यह संक्लिष्टलेश्या का निरूपण है, इसलिए उनमे तीन ही लेश्याए निरूपित की गई है।

२९—तेजस्कायिक… (सू० ६२) :

प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित तेजस्कायिक आदि जीवो में तीन लेश्याए ही प्राप्त होती हैं, अतः ५८वें सूत्र की भांति यहां भी संक्लिष्ट शब्द का प्रयोग अपेक्षित नही है।

३०-३२—सामानिक, तावत्त्रिशंक, लोकान्तिक (सू० ८०-८६) :

सामानिक—समृद्धि मे इन्द्र के समकक्षदेव। तत्त्वार्थवार्तिक के अनुसार आज्ञा और ऐश्वर्य के सिवाय, स्थान, आयु, शक्ति, परिवार और भोगोपभोग आदि मे यह इन्द्र के समान होते हैं। ये पिता, गुरु, उपाध्याय आदि के समान आदरणीय होते है।

तावत्त्रिशक—इन्द्र के मंत्री और पुरोहित स्थानीयदेव।

लोकान्तिक—पांचवें देवलोक मे 'रहने वाले देवो' की एक जाति।

३३-३४—शतपाक, सहस्रपाक (सू० ८७) :

शतपाक—वृत्तिकार ने इसके चार अर्थ किए है—

१. सौ औषधिक्वाथ के द्वारा पकाया हुआ।
२. सौ औषधियो के साथ पकाया गया।
३. सौ बार पकाया गया।
४. सौ रुपयो के मूल्य से पकाया गया।

सहस्रपाक—वृत्तिकार ने इसके भी चार अर्थ किए हैं—

१. सहस्र औषधिक्वाथ के द्वारा पकाया हुआ।
२. सहस्र औषधियो के साथ पकाया गया।
३. सहस्र बार पकाया गया।
४. सहस्र रुपयों के मूल्य से पकाया गया।

३५—स्थालीपाक (सू० ८७) :

अट्ठारह प्रकार के स्थालीपाक शुद्ध व्यञ्जन—स्थाली का अर्थ है पकाने की हंडिया। शब्दकोष[2] में इसके पर्यायवाची शब्द हैं—उरवा, पिठर, कुड, चरु, कुम्भी।

अट्ठारह प्रकार के व्यञ्जन ये है[3]—

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र १०६ : असुरकुमाराणां तु चतसृणां भावात् संक्लिष्टा इति विशेषितं, चतुर्थी हि तेषां तेजोलेश्याऽस्ति, किन्तु सा न संक्लिष्टेति।

२. अभिधानचिन्तामणि, १०१९।

३. प्रवचनसारोद्धार, द्वार २५९, गाथा ११-१७।

१. सूप
२. ओदन
३. यवान्न-यव से बना हुआ परमान्न।
४. जलज-मांस
५. स्थलज-मांस
६. खेचर-मांस
७. गोरस
८. जूष—जीरा आदि डाला हुआ मूग का रस।
९. भक्ष्य—खाजा आदि।
१०. गुडपर्पटिका—गुड की बनी हुई पपडी।
११. मूलफल—मूल अर्थात् अश्वगंधा आदि की जडे। फल—आम आदि।
१२. हरित—आचारांग वृत्ति के अनुसार तन्दुलीयम [चौलाई], धूयारुह, वस्तुल [बथुआ], बदरक [बैर], मार्जार, पादिका, चिल्ली [लाल पत्तो वाला बथुआ], पालक आदि हरित कहलाते है।[1]

चरक के अनुसार हरितवर्ग मे अदरक, जम्बीर (पुदीना या तुलसी भेद), सुरस (तुलसी), अजवाइन, अजक (श्वेत तुलसी), सहिजन, शालेय (चाणक्य मूल), राई, गण्डीर (गण्डीर दो प्रकार का होता है—लाल और सफेद। लाल हरित-वर्ग मे है और सफेद शाकवर्ग में), जलपिप्पली, तुम्बुरु (नेपाली धनिया) शृंगवेटी (अदरक सदृश आकृति वाली), भूतृण (गन्धतृण), खराश्वा (पारसी कयमानी), धनिया, अजमोदा, सुमुख (तुलसी भेद), गृञ्जनक (गाजर), पलाण्डु (प्याज) और लशुन (लहसन) है।[2]

१३. डाक—हींग, जीरा आदि मसाले डाली हुई बथुए जैसी पत्तियो की भाजी।
१४. रसाला—दोपल घी, एकपल शहद, आधा आढक दही, २० काली मिर्च और १० पल खाड या गुड़—इनको मिलाने से रसाला बनती है। इसे मार्जिता भी कहा जाता है।
१५. पानमदिरा
१६. पानीयजल
१७. पानक—अंगूर आदि का पना।
१८. शाक—तरोई आदि का शाक, जो छाछ के साथ पकाया जाता है।

३६—योगवाहिता (सू० ८८) :

योगवहन करने वाले मुनि की चर्या को योगवाहिता कहा जाता है। योगवहन का शब्दानुपाती अर्थ है—चित्त-समाधि की विशिष्ट साधना, जैन-परम्परा मे योगवहन की एक दूसरी पद्धति भी रही है। आगम-श्रुत के अध्ययनकाल में योगवहन किया जाता था। प्रत्येक आगम तपस्यापूर्वक पढा जाता था। आगम के अध्येता मुनि के लिए विशेष प्रकार की चर्या निर्दिष्ट होती थी, जैसे—

१ अल्पनिद्रा लेना।
२. प्रथम दो प्रहरों मे श्रुत और अर्थ का बार-बार अभ्यास करना।
३. अध्येतव्य ग्रंथ को छोडकर नया ग्रंथ नहीं पढना।
४. पहले जो कुछ सीखा हो उसे नहीं भुलाना।
५. हास्य, विकथा, कलह आदि न करना।

---

१. आचारांगनिर्युक्ति, १२६ : हरितानी—तन्दुलीय का धूयारुह वत्थुल बदरक मार्जार पादिका चिल्ली पालक्यादीनि।

२. चरकसूत्र, अ० २७, हरितवर्ग श्लोक १६३-१७३।

६. धीमे-धीमे शब्दों मे बोलना, जोर-जोर से नही बोलना।

७. काम, क्रोध आदि का निग्रह करना।

तपस्या की विधि प्रत्येक शास्त्र-ग्रथ के लिए निश्चित थी। इसकी जानकारी के लिए विधिप्रपा आदि ग्रन्थ द्रष्टव्य है।

यह योगवहन की पद्धति भगवान् महावीर के समय मे प्रचलित नही थी। उस समय के उल्लेखो मे अगों के अध्ययन का उल्लेख प्राप्त होता है, किन्तु योगवहन पूर्वक अध्ययन का उल्लेख नही मिलता। अध्ययन के साथ योगवहन की परम्परा भगवान् महावीर के निर्वाण के उत्तरकाल मे स्थापित हुई प्रतीत होती है। यदि योगवाहिताका अर्थ श्रुत के अध्ययन के साथ की जाने वाली तपस्या या विशिष्ट चर्या हो तो यह उत्तरकालीन सक्रमण है। और, यदि इसका अर्थ चित्त-समाधि की विशिष्ट साधना हो तो इसे महावीरकालीन माना जा सकता है। प्रसग की दृष्टि से दोनो अर्थसगत हो सकते हैं।

३७—प्रणिधान (सू० ९६) :

प्रणिधान का अर्थ है—एकाग्रता। वह केवल मानसिक ही नही होती वाचिक और कायिक भी होती है। एकाग्रता का उपयोग सत् और असत् दोनो प्रकार का होता है। इसी आधार पर प्रणिधान के सुप्रणिधान और दुष्प्रणिधान—ये दो भेद किए गए है।

३८-४०—पल्य, माल्य, अन्तर्मुहूर्त (सू० १२५)

प्रस्तुत सूत्र के कुछ विशिष्ट शब्दो का अर्थ इस प्रकार हैं—

पल्य—बांस आदि से बनाई हुई टोकरी।

माल्य—दूसरी मजिल का मकान।

अन्तर्मुहूर्त—दो समय से लेकर अडतालीस मिनट मे से एक समय कम तक का कालमान।

४१—(सू० १२१) :

प्रस्तुत सूत्र के कुछ विशिष्ट शब्दो के आशय इस प्रकार हैं—

समान—प्रमाण की दृष्टि से एक लाख योजन।

सपक्ष—समश्रेणी की दृष्टि से सपक्ष—दाए बाएं पार्श्व समान।

सप्रतिदिश—विदिशाओं में सम।

४२—(सू० १३२) :

प्रस्तुत सूत्र के कुछ विशिष्ट शब्दों के अर्थ इस प्रकार है—

सीमातक नरकावास—पहली नरकभूमि के पहले प्रस्तर का नरकावास।

ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी—सिद्धशिला। इसका क्षेत्रफल पैंतालीस लाख योजन है।

४३—(सू० १३९) :

प्रस्तुत सूत्र मे तीन कालिक-प्रज्ञप्ति सूत्रों का निरूपण है। नदीसूत्र में द्वीपसागरप्रज्ञप्ति और चन्द्रप्रज्ञप्ति—इन दोनों को कालिक[1] तथा सूर्यप्रज्ञप्ति को उत्कालिक[2] के वर्ग मे समाविष्ट किया गया है। जयधवला मे परिकर्म (दृष्टिवाद के प्रथम अग) के पांच अर्थाधिकार निरूपित है—चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति और व्याख्या-

---

१. नंदीसूत्र, ७८। २ नदीसूत्र, ७७।

प्रज्ञप्ति[1]। दृष्टिवाद कालिक सूत्र है, अत. इन प्रज्ञप्तियो का कालिक होना स्वतः प्राप्त है। श्वेताम्बर आगमों मे प्रज्ञप्तिसूत्र दृष्टिवाद के अंग के रूप मे निरूपित नही है, फिर भी पाच प्रज्ञप्ति सूत्रो की मान्यता रही है, यह वृत्ति से ज्ञात होता है। वृत्तिकार ने लिखा है कि यह तीसरा स्थान है, इसलिए इसमे तीन ही प्रज्ञप्तियो का उल्लेख है, व्याख्याप्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति का उल्लेख नही है।[2]

स्थानांग और नंदीसूत्र के इस परम्परा-भेद का आधार अभी अन्वेषणीय है।

४४—परिषद् (सू० १४३) :

इन्द्र की परिषद् निकटता की दृष्टि से तीन प्रकार की है—

समिता—आन्तरिक परिषद्। इसके सदस्य प्रयोजनवशात् इन्द्र के द्वारा बुलाने पर ही आते है।

चडा—मध्यमा परिषद्। इसके सदस्य इन्द्र के द्वारा बुलाने और न बुलाने पर भी आते है।

जाता—बाह्यपरिषद्। इसके सदस्य इन्द्र के द्वारा बिना बुलाये ही आ जाते है।

प्रकारान्तर से इसका यह भी अर्थ है—

१ जिनके सम्मुख प्रयोजन की पर्यालोचना की जाए वह आभ्यन्तर या समितापरिषद् है।

२. जिनके सम्मुख पर्यालोचित विषय को विस्तार से बताया जाए वह मध्यमा या चडापरिषद् है।

३. जिनके सम्मुख पर्यालोचित विषय का वर्णन किया जाए वह बाह्य या जातापरिषद् है।

४५—याम (सू० १६१) :

यहां वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने 'याम' का अर्थ दिन और रात्रि का तृतीय भाग किया है।[3]

इससे आगे एक पाठ और है—तिहि वतेहिं आया केवलिपन्नत्त धम्म लभेज्ज सवणयाए त जहा—

पढमे वते, मज्झिमे वते, पच्छिमे वते (३।१६२)।

प्रथम, मध्यम और पश्चिम—तीनो वय मे धर्म की प्राप्ति होती है।

आचारांग मे भी धर्म प्रतिपत्ति के प्रसग मे ऐसा ही पाठ है[4]—

जामा तिण्णि उदाहिया, जेसु इमे आयरिया सबुज्झमाणा समुट्ठिया—

अर्थात् याम तीन हैं, जिनमें आर्य सबुद्ध होते हैं। आचारागचूर्णि मे 'जाम' और 'वय' को एकार्थक स्वीकार किया है।[5] किन्तु स्थानागसूत्र मे 'जाम' और 'वय' के भिन्न पाठ हैं। फिर भी इससे आचारागचूर्णि का मत खण्डित नहीं होता। क्योंकि स्थानाग एक सग्राहक सूत्र है, इसीलिए इसमें सदृश पाठो का भी सकलन कर लिया गया है।

जाम का वयवाची अर्थ भी एक परम्परा का संकेत देता है।

उस समय सन्यास-विषयक यह प्रश्न प्रबल था कि किस अवस्था मे सन्यास लेना चाहिए। वर्णाश्रम व्यवस्था मे चतुर्थ आश्रम मे सन्यास-ग्रहण का विधान था परन्तु भगवान् महावीर की मान्यता इससे भिन्न थी। वे दीक्षा के साथ वय का योग नही मानते थे। उन्होने कहा—प्रथम, मध्यम और पश्चिम—तीनो ही वय धर्म-प्रतिपत्ति के लिए योग्य हैं। तीनो वयो का काल-मान इस प्रकार हैं—

प्रथम वय—८ वर्ष से ३० वर्ष तक।

मध्यम वय—३० वर्ष से ६० वर्ष तक।

पश्चिम वय—६० वर्ष से आगे।

---

१ कषायपाहुड, भाग १, पृ० १५०।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र १२०. व्याख्याप्रज्ञप्तिर्जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिश्च न विवक्षिता, त्रिस्थानकानुरोधात्।

३. स्थानागवृत्ति, पत्र १२२. यामो रात्रेर्दिनस्य च चतुर्थभागो यद्यपि प्रसिद्ध तथाऽपीह त्रिभाग एव विवक्षित।

४ आचाराग, १।८।१।१५।

५ आचारांगचूर्णि, पत्र २४४ : जामोत्ति वा वयोत्ति वा एगट्ठा।

इसलिए इस भूमिका से भी स्पष्ट होता है कि धर्म-प्रतिपत्ति के प्रसंग मे जो 'जाम' शब्द आया है वह वय का ही द्योतक है, व्रत या काल-विशेष का नही।

४६—बोधि (सूत्र १७६) :

वृत्तिकार ने बोधि का अर्थ सम्यक्बोध किया है।[1] इस अर्थ मे चारित्रबोधि नही हो सकता। वृत्तिकार ने इसका समाधान इस भाषा मे दिया है—चारित्र बोधि का फल है, इसलिए अभेदोपचार से उसे बोधि कहा गया है। उन्होने दूसरा तर्क यह प्रस्तुत किया है—ज्ञान और चारित्र—ये दोनो ही जीव के उपयोग हैं, इसलिए उन्हें बोधि शब्द के द्वारा अभिहित किया गया है।[2]

आचार्य कुदकुद ने बोधि शब्द की सुन्दर परिभाषा दी है। जिस उपाय से सद्ज्ञान उत्पन्न होता है उस उपाय-चिंता का नाम बोधि है।[3] इस परिभाषा के अनुसार ज्ञानबोधि का अर्थ ज्ञानप्राप्ति की उपायचिंता, दर्शनबोधि का अर्थ दर्शनप्राप्ति की उपायचिंता और चारित्रबोधि का अर्थ चरित्रप्राप्ति की उपायचिंता फलित होता है।

बोधि शब्द बुध् धातु से निष्पन्न हुआ है। इसका शाब्दिक अर्थ है—ज्ञान या विवेक। धर्म के सन्दर्भ में इसका अर्थ होता है—आत्मबोध या मोक्षमार्ग का बोध। आत्मा को जानना सम्यक्ज्ञान, आत्मा को देखना सम्यक्दर्शन और आत्मा मे रमण करना सम्यक् चारित्र है। एक शब्द मे तीनो की सज्ञा आत्मबोध है। और, यह आत्मबोध ही मोक्ष का मार्ग है। यहाँ बोधि शब्द का इसी अर्थ मे प्रयोग किया गया है।

४७—मोह (सूत्र १७८) :

देखें २।४२२ का टिप्पण।

४८—दूसरे स्थान पर ले जाकर दी जाने वाली दीक्षा (सूत्र १८२) :

दशनपुर नगर के राजपुरोहित का नाम सोमदेव था। उसके पुत्र का नाम आर्यरक्षित और पत्नी का नाम रुद्रसोमा था। आर्यरक्षित पाटलीपुत्र मे जा चारो वेदो का सागोपाग अध्ययन कर घर लौटे। माता के कहने पर वे दृष्टिवाद का अध्ययन करने के लिए तोसलिपुत्र आचार्य के पास गए। उन दिनो आचार्य दशपुर नगर के इक्षुगृह मे ठहरे हुए थे। आचार्य ने कहा—जो प्रव्रजित होता है उसी को दृष्टिवाद का अध्ययन कराया जाता है। क्या तुम दीक्षा लोगे? आर्यरक्षित ने स्वीकारात्मक उत्तर दिया। आचार्य ने कहा—उसका अध्ययन क्रमपूर्वक कराया जायेगा। आर्यरक्षित ने कहा—हा, मैं उसका क्रमपूर्वक अध्ययन करूगा। किन्तु मैं यहा प्रव्रजित होने मे असमर्थ हू। क्योकि राजा का तथा दूसरे लोगों का मेरे पर बहुत बडा अनुराग है। प्रव्रजित हो जाने पर भी वे मुझे बलात् घर ले जा सकते हैं। अत. अन्यत्र कही जाकर दीक्षा प्रदान करें।

आचार्य तोसलिपुत्र आर्यरक्षित को लेकर अन्यत्र गए और उसको प्रव्रजित किया।[4]

४९—उपदेश से ली जाने वाली दीक्षा (सूत्र १८३) :

आर्यरक्षित को प्रव्रजित हुए अनेक वर्ष हो चुके थे। एक बार उनके माता-पिता ने एक सदेश मे कहा—क्या तुम हम सबको भूल गए? हम तो समझते थे कि तुम हमारे लिए प्रकाश करने वाले हो। तुम्हारे अभाव मे यहाँ अन्धकार ही अन्धकार है। तुम शीघ्र घर आकर हमे सम्हाल लो। आर्यरक्षित अपने अध्ययन मे तन्मय थे, अत. इस सदेश पर कोई ध्यान नही दिया। तब माता-पिता ने अपने छोटे पुत्र फल्गुरक्षित को सदेश देकर भेजा। फल्गुरक्षित शीघ्र ही वहाँ गया और

---

१. स्थानागवृत्ति, पत्र १२३ : बोधि —सम्यक्बोध ।

२. स्थानागवृत्ति, पत्र १२३ : इह च चारित्र बोधिफलत्वात् बोधिरुच्यते, जीवोपयोगरूपत्वाद्वा ।

३. षट्प्राभृतादिसंग्रहः, पृष्ठ ४४०, द्वादशानुप्रेक्षा ८३ : उप्पज्जदि सण्णाण, जेण उवाएण तस्सुवायस्स चिता हवेइ बोही, अच्चंत दुल्लह होदि।

४. पूरे कथानक के लिए देखें—
आवश्यकमलयगिरिवृत्ति, पत्र ३९४-३९६ ।

करुण शब्दों में दशपुर आने के लिए आर्यरक्षित से कहा। आर्यरक्षित ने अपने गुरु वज्रस्वामी से पूछा। आचार्य ने कहा—अभी नहीं, अध्ययन में बाधा मत डालो। आर्यरक्षित अध्ययन मे पुन संलग्न हो गए। फल्गुरक्षित ने कहा—भ्रात ! तुम घर चलो और अपने कुटुम्बियो को दीक्षित कर अपना कर्त्तव्य निभाओ। आर्यरक्षित ने कहा—यदि सभी दीक्षित होना चाहते हैं तो पहले तुम प्रव्रज्या ग्रहण करो।'

फल्गुरक्षित ने तत्काल कहा—भगवान् ! मैं तैयार हूं। आप मुझे व्रत की दीक्षा दे। आर्यरक्षित ने उसे प्रव्रजित कर दिया।[1]

५०—परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध हो ली जाने वाली दीक्षा (सूत्र १८३)

देखें—१०।१५ के टिप्पण के अन्तर्गत मेतार्य का कथानक।

५१—(सूत्र १८४)

प्रस्तुत सूत्र के कुछ विशिष्ट शब्दों के अर्थ इस प्रकार है—

पुलाक—यह एक प्रकार की तप-जनित शक्ति है। इसे प्राप्त करने वाला बहुत शक्ति-सम्पन्न हो जाता है। इस शक्ति का प्रयोग करना मुनि के लिए निषिद्ध होता है। किन्तु कभी क्रुद्ध होने पर वह उसका प्रयोग करता है और उस शक्ति के द्वारा दडो का निर्माण कर बडी-से-बडी सेना को हत-प्रहत कर देता है।[2]

घात्यकर्म—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार घात्यकर्म कहलाते है।

५२—शैक्ष भूमियां (सूत्र १८६)

शैक्ष का अर्थ है—शिक्षा प्राप्त करने वाला।[3] तत्त्वार्थवार्त्तिक के अनुसार जो मुनि श्रुतज्ञान की शिक्षा में तत्पर और सतत व्रतभावना मे निपुण होता है, वह शैक्ष कहलाता है।[4] प्रस्तुत सूत्र से उसका अर्थ सामायिक चारित्र वाला मुनि, नव-दीक्षित मुनि फलित होता है।

शैक्षभूमि का अर्थ है—सामायिक चारित्र का अवस्था-काल। दीक्षा के समय सामायिक चारित्र स्वीकार किया जाता है। उसमे सर्व सावद्य प्रवृत्ति का प्रत्याख्यान होता है। उसके पश्चात् छेदोपस्थापनीय चारित्र अंगीकार किया जाता है। उसमे पांच महाव्रत और रात्रिभोजन-विरमणव्रत को विभागश. स्वीकार किया जाता है।

सामायिक चारित्र की तीन भूमिया (कालमर्यादाए) प्रस्तुत सूत्र मे प्रतिपादित हैं। छह महीनो के पश्चात् निश्चित रूप से छेदोपस्थानीय चारित्र स्वीकार करना होता है।

व्यवहारभाष्य मे शैक्षभूमियो की प्राचीन परम्परा का उल्लेख मिलता है। उसके अनुसार—कोई मुनि प्रव्रज्या से पृथक् होकर पुन प्रव्रजित होता है, वह पूर्व विस्मृत सामाचारी आदि की एक सप्ताह मे पुन स्मृति या अभ्यास कर लेता है, इसलिए उसे सातवे दिन में उपस्थापित कर देना चाहिए। यह शैक्ष की जघन्य भूमिका है।

कोई व्यक्ति प्रथम बार प्रव्रजित होता है, उसकी बुद्धि मंद है और श्रद्धा-शक्ति भी मद है, उसे सामाचारी व इद्रियविजय का अभ्यास छह मास तक करना चाहिए। यह शैक्ष की उत्कृष्ट भूमिका है।

मध्यस्तरीय बुद्धि और श्रद्धा वाले को सामाचारी व इद्रियविजय का अभ्यास चार मास तक कराना चाहिए। यदि कोई भावनाशील श्रद्धा-संपन्न और मेधावी व्यक्ति प्रव्रजित हो तो उसे भी सामाचारी व इद्रियविजय का अभ्यास चार मास तक कराना चाहिए। यह शैक्ष की मध्यम भूमिका है।[5]

---

१. परिशिष्टपर्व, सर्ग १३, पृष्ठ १०७, १०८।

२. देखें—विशेषावश्यकभाष्य ८०६।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र १२४ : शिक्षां अधीत इति शैक्ष।

४. तत्त्वार्थवार्तिक, ९।२४ : श्रुतज्ञानशिक्षणपर अनुपरतव्रत-भावनानिपुणः शैक्षक इति लक्ष्यते।

५. व्यवहारभाष्य, १०।५३, ५४ :

पुव्वोवट्ठपुराणे, करणजयट्ठा जहण्णियाभूमी।
उक्कोसा दुम्मेहं, पडुच्च असद्दहाण च॥
एमेव य मज्झिमिया, अणहिज्जंते य सद्दहंते य।
भावियमेहाविस्सवि, करण जयट्ठा य मज्झिमिया॥

५३—स्थविर (सूत्र १८७) :

देखें स्थान, १०।१३६ का टिप्पण।

५४—(सूत्र १८८) :

सूत्र १८८ से ३१४ तक मे मनुष्य की विभिन्न मानसिक दशाओं का चित्रण किया गया है। यहां मन की तीन अवस्थाएं प्रतिपादित हैं—

१. सुमनस्कता—मानसिक हर्ष।

२. दुर्मनस्कता—मानसिक विषाद।

३ मानसिक तटस्थता।

इन सूत्रों से यह फलित होता है कि परिस्थिति का प्रभाव सब मनुष्यो पर समान नही होता। एक ही परिस्थिति मानसिक स्तर पर विभिन्न प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करती है। उदाहरण के लिए युद्ध की परिस्थिति को प्रस्तुत किया जा सकता है—

कुछ पुरुष युद्ध करता हूँ इसलिए सुमनस्क होते हैं।

कुछ पुरुष युद्ध करता हूँ इसलिए दुर्मनस्क होते हैं।

कुछ पुरुष युद्ध करता हूँ इसलिए न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं।

५५—(सूत्र ३२२)

प्रस्तुत सूत्र मे कुछ शब्द ज्ञातव्य हैं—

१ अवक्रान्ति—उत्पन्न होना, जन्म लेना।

२. हानि—यह निवुड्ढि (निवृद्धि) शब्द का अनुवाद है।

गतिपर्याय और कालसयोग :—देखें २।२५६ का टिप्पण

समुद्घात : देखें ८।११४ का टिप्पण

दर्शनाभिगम— प्रत्यक्ष दर्शन के द्वारा होने वाला बोध।

ज्ञानाभिगम—प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा होने वाला बोध।

जीवाभिगम—जीवबोध।

५६-५७—त्रस, स्थावर (सूत्र ३२६, ३२७)

पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति—ये पाच प्रकार के जीव स्थावर नामकर्म के उदय से स्थावर कहलाते है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय—ये चार प्रकार के जीव त्रस नामकर्म के उदय से त्रस कहलाते हैं। यह स्थावर और त्रस की कर्मशास्त्रीय परिभाषा है। प्रस्तुत सूत्र [३२६, ३२७] तथा उत्तराध्ययन के ३६ वें अध्ययन मे स्थावर और त्रस का वर्गीकरण भिन्न प्रकार से प्राप्त होता है। इस वर्गीकरण के अनुसार पृथ्वी, पानी और वनस्पति—ये तीन स्थावर हैं।[1] अग्नि, वायु और उदार त्रसप्राणी—ये तीन त्रस हैं।[2]

दिगम्बर परम्परा-सम्मत तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति—ये पांचों स्थावर हैं।[3] श्वेताम्बर परम्परा-सम्मत तत्त्वार्थसूत्र में स्थावर और त्रस का विभाग प्रस्तुत सूत्र जैसा ही है।[4]

इन दोनों परम्पराओं में कोई विरोध नहीं है। त्रस दो प्रकार के होते हैं—गतित्रस और लब्धित्रस। जिनमें चलने

१. उत्तराध्ययन, ३६।६९।

२. उत्तराध्ययन, ३६।१०७।

३. तत्त्वार्थसूत्र, २।१३ : पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतय. स्थावरा.।

४. तत्त्वार्थसूत्र, २।१३, १४ : पृथिव्यम्बुवनस्पतयः स्थावरा। तेजोवायू द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः।

की क्रिया होती है, वे गतित्रस कहलाते हैं । जो जीव इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट निवारण के लिए इच्छापूर्वक गति करते वे लब्धित्रस कहलाते हैं ।[1] प्रथम परिभाषा के अनुसार अग्नि और वायु त्रस हैं, किन्तु दूसरी परिभाषा के अनुसार वे त्रस नहीं हैं । प्रस्तुत सूत्र (३२६) में उनकी गति को लक्ष्य कर उन्हे त्रस कहा गया है ।

५८ (सू० ३३७) :

प्रस्तुत सूत्र का पूर्वपक्ष अकृततावाद है । आगम-रचनाशैली के अनुसार इसमे अन्ययूथिक शब्द का उल्लेख है, किन्तु इस वाद के प्रवर्त्तक का उल्लेख नही है । आगम साहित्य मे प्राय सभी वादो का अन्ययूथिक या अन्यतीर्थिक ऐसा मानते हैं— इस रूप मे प्रतिपादन किया गया है । बौद्ध पिटकों मे विभिन्न वादो के प्रवर्त्तको का प्रत्यक्ष उल्लेख मिलता है । दीघनिकाय के सामञ्जफल-सुत्त से पता चलता है कि प्रक्रुधकात्यायन अकृततावाद का प्रतिपादन करते थे । उसके अनुसार सुख और दु ख अकृत, अनिर्मित, अकूटस्थ और स्तभवत् अचल है ।[2]

भगवान् महावीर का कोई मुनि या श्रावक प्रक्रुधकात्यायन के इस मत को सुनकर आया और उसने भगवान् से इस विषय मे पूछा तब भगवान् ने उसे मिथ्या बतलाया और दु ख कृत होता है, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया ।

इसके पूर्ववर्ती सूत्र मे भी दु ख कृत होता है, यह प्रतिपादित है ।

ये दोनों सवादसूत्र किसी अन्य आगम के मध्यवर्ती अश है । तीन की सख्या के अनुरोध से ये यहा सकलित किए गए, ऐसा प्रतीत होता है ।

भगवान् बुद्ध ने इस अहेतुवाद की आलोचना की थी । अगुत्तर-निकाय मे इसका उल्लेख मिलता है[3]—

भिक्षुओ ! जिन श्रमण-ब्राह्मणो का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दु ख या अदुख-असुख अनुभव करता है, वह सब बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के, उनके पास जाकर मैं उनसे प्रश्न करता हू— आयुष्मानो ! क्या सचमुच तुम्हारा यह मत है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दु ख या अदुख-असुख अनुभव करता है, वह सब बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के ?

मेरे ऐसा पूछने पर वे "हां" उत्तर देते है ।

तब मैं उनसे कहता हू—तो आयुष्मानो ! तुम्हारे मत के अनुसार बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी प्राणी-हिंसा करने वाले होते हैं, बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी चोरी करने वाले होते है, बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी अब्राह्मचारी होते है, बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी झूठ बोलने वाले होते हैं, बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी चुगलखोर होते है, बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी कठोर बोलने वाले होते है, बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी व्यर्थ बकवास करने वाले होते हैं, बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी लोभी होते हैं, बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी क्रोधी होते हैं तथा बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी मिथ्यादृष्टि वाले होते हैं । भिक्षुओ ! इस अहेतुवाद, इस अकारणवाद को ही साररूप ग्रहण कर लेने से यह करना योग्य है, और यह करना अयोग्य है, इस विषय मे संकल्प नही होता, प्रयत्न नही होता । जब यह करना योग्य है और यह करना अयोग्य है, इस विषय मे ही यथार्थ-ज्ञान नही होता तो इस प्रकार के मूढ़-स्मृति असयत लोगो का अपने-आप को धार्मिक-श्रमण कहना सहेतुक नही होता ।

५९—(सू० ३४९) :

प्रस्तुत सूत्र अपवादसूत्र है । साधारणतया (उत्सर्ग मार्ग मे) मुनि के लिए मादक द्रव्यों का निषेध है । ग्लान अवस्था मे आपवादिक मार्ग के अनुसार मुनि आसव आदि ले सकता है । प्रस्तुत सूत्र मे उसकी मर्यादा का विधान है । दत्ति का अर्थ

---

१. तत्त्वार्थसूत्रभाष्यानुसारिणी टीका, २।१४ . त्रसत्व च द्विविध क्रियातो लब्धितश्च ।

२. दीघनिकाय, १।२, पृ० २१ ।

३ अंगुत्तरनिकाय, भाग १, पृ० १७६-१८० ।

है—अञ्जलि।[1] ग्लान अवस्था मे भी मुनि तीन अञ्जलि से अधिक मादक द्रव्य नहीं ले सकता। निशीथसूत्र में ग्लान के लिए तीन अञ्जलि से अधिक मादक द्रव्य लेने पर प्रायश्चित्त का विधान किया गया है—

जे भिक्खू गिलाणस्सऽट्ठाए पर तिण्हं वियडदत्तीणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंत वा सातिज्जति।[2]

यह अपवाद सूत्र छेद सूत्रो की रचना के पश्चात् स्थानागसूत्र मे सक्रान्त हुआ, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। वृत्तिकार अभयदेवसूरि ने प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या भिन्न प्रकार से की है।[3] उन्होंने विकट का अर्थ पानक और दत्ति का अर्थ एक धार मे लिया जा सके उतना द्रव्य किया है। उन्होंने उत्कृष्ट, मध्य और जघन्य के अर्थ मात्रा और द्रव्य इन दोनों दृष्टियो से किए हैं—

उत्कृष्ट—(१) पर्याप्त जल, जिससे दिन-भर प्यास बुझाई जा सके।
(२) कलमी चावल की काजी।

मध्यम—(१) अपर्याप्त जल, जिससे कई बार प्यास बुझाई जा सके।
(२) साठी चावल की काजी।

जघन्य—(१) एक बार पिए उतना जल।
(२) तृणधान्य की काजी या गर्म पानी।

वृत्तिकार ने अपने सामयिक वातावरण के अनुसार प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या की है, किन्तु 'गिलायमाणस्स' इस पाठ के सन्दर्भ मे यह व्याख्या सगत नही लगती। पानक का विधान अग्लान के लिए भी है फिर ग्लान के लिए सूत्र रचना का कोई प्रयोजन सिद्ध नही होता। दूसरी बात निशीथ सूत्र के उन्नीसवे उद्देशक के सन्दर्भ मे इस व्याख्या की संगति नही बिठाई जा सकती।

६०—सांभोगिक (सू० ३५०) :

देखो समवाओ १२।२ का टिप्पण।

६१-६४—अनुज्ञा, समनुज्ञा, उपसंपदा, विहान (सू० ३५१-३५४) :

इन चार सूत्रो मे अनुज्ञा, समनुज्ञा, उपसपदा और विहान—ये चार शब्द विमर्शनीय हैं।

आचार्य, उपाध्याय और गणी—ये तीनों साधुसघ के महत्त्वपूर्ण पद है। प्राचीन परम्परा के अनुसार ये आचार्य या स्थविरो के अनुमोदन से प्राप्त होते थे। वह अनुमोदन सामान्य और विशिष्ट दोनो प्रकार का होता था। सामान्य अनुमोदन को अनुज्ञा और विशिष्ट अनुमोदन को समनुज्ञा कहा जाता था। अनुमोदनीय व्यक्ति असमग्र गुणयुक्त और समग्र गुणयुक्त दोनो प्रकार के होते थे। असमग्र गुणयुक्त व्यक्ति को दिए जाने वाले अधिकार को अनुज्ञा तथा समग्रगुणयुक्त व्यक्ति को दिये जाने वाले अधिकार को समनुज्ञा कहा जाता था।

प्राचीनकाल मे ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विशेष उपलब्धि के लिए अपने गण के आचार्य, उपाध्याय और गणी को छोडकर दूसरे गण के आचार्य, उपाध्याय और गणी के शिष्यत्व स्वीकार करने की परम्परा प्रचलित थी। इसे उपसपदा कहा जाता था।

---

१ निशीथचूर्णि, १९।५, भाग ४, पृ० २२१,
दत्तीए पमाण पसती।

२. निसीहज्झयण १९।५।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र १३१ तओ त्ति तिस्र 'वियड' त्ति पानकाहार, तस्य दत्तय.—एकप्रक्षेपप्रदानरूपा· प्रतिग्रहीतुम्—आश्रयितु वेदनोपशमायेति, उत्कर्ष.—प्रकर्ष तद्योगादुत्कर्षा उत्कर्षतीति वोत्कर्षा उत्कृष्टेत्यर्थ, प्रचुरपानकलक्षणा, यथा दिनमपि यापयति, मध्यमा ततो हीना, जघन्या यथा सकृदेव वितृष्णो भवति यापनामात्र वा लभते, अथवा पानकविशेषादुत्कृष्टाद्याख्या, तथाहि—कलमकाञ्जिकावश्रावणादे, द्राक्षापानकादेर्वा प्रथमा १ षष्ठिका [दि] काञ्जिकादेर्मध्यमा २ तृणधान्यकाञ्जिकादेरुष्णोदकस्य वा जघन्येति, देशकालस्वरविशेषाद्वोत्कर्षादि नेयमिति।

आचार्य, उपाध्याय और गणी भी विशिष्ट प्रजयोन उपस्थित होने पर अपने पद का त्याग कर देते थे। इसे विहान कहा जाता था।

६५—अल्पायुष्क (सू० ३६१) :

डा० वोरीक्लोसोव्सकी ने सोवियत अर्थ-पत्रिका मे लिखा है—अन्तरिक्ष मे पृथ्वी की अपेक्षा समय बहुत धीमी गति से बढ़ता है। यह तथ्य इसी तथ्य की ओर संकेत करता है कि देवता का मुहूर्त बीतता है और मनुष्य का जीवन ही बीत जाता है।

६६-७२—(सू० ३६२) :

आचार्य—अर्थ की वाचना देने वाला—अनुयोगाचार्य।

उपाध्याय—सूत्र पाठ की वाचना देने वाला।

प्रवर्तक—वैयावृत्त्य तपस्या आदि मे साधुओ को नियुक्त करने वाला।

स्थविर—संयम मे अस्थिर होने वालो को पुन. स्थिर करने वाला।

गणी—गणनायक।

गणधर—साध्वियों के विहार आदि की व्यवस्था करने वाला।[1]

गणावच्छेदक—प्रचार, उपाधि-लाभ आदि कारणो से गण से अन्यत्र विहार करने वाला।

७३—पानक (सू० ३७६) :

पानक को हिन्दी मे पना कहा जाता है। प्राचीनकाल मे आयुर्वेदिक-पद्धति के अनुसार द्राक्षा आदि अनेक द्रव्यो का पानक तैयार किया जाता था[2]। यहा पानक शब्द धोवन तथा गर्म पानी के लिए भी प्रयुक्त किया गया है।

मूलाराधना[3] मे पानक के छह प्रकार मिलते है—

१. स्वच्छ—उष्णोदक, सौवीर आदि।

२. बहल—कांजी, द्राक्षारस तथा इमली का सार।

३. लेवड—लेपसहित (दही आदि)।

४. अलेवड—लेपरहित, माड आदि।

५ ससिक्थ—पेया आदि।

६. असिक्थ—मग का सूप आदि।

७४-७५—फलिकोपहृत, शुद्धोपहृत (सू० ३७९) :

फलिकोपहृत—कोई अभिग्रहधारी साधु उठाया हुआ लेता है, कोई परोसा हुआ लेता है और कोई पुन. पाकपात्र मे डाला हुआ लेता है—

देखे—आयारचूला १।१४५।

शुद्धोपहृत—देखे आयारचूला १।१४४

७६-७८—(सू० ३९२-३९४) :

इन तीन सूत्रों मे मनुष्यो के व्यवहार की क्रमिक भूमिकाओं का निर्देश है। मनुष्य मे सर्वप्रथम दृष्टिकोण का निर्माण होता है। उसके पश्चात् उसमे रुचि या श्रद्धा उत्पन्न होती है। फिर वह कार्य करता है। इसका अर्थ होता है—दर्शनानुसारी-

---

१. विशेष जानकारी के लिए देखें बृहत्कल्पभाष्य।

२. देखें—दसवेआलियं, ५।१।४७ का टिप्पण।

३. मूलाराधना, आश्वास ५।७००।

श्रद्धा और श्रद्धानुसारीप्रयोग। दृष्टिकोण यदि सम्यक् होता है तो श्रद्धा और प्रयोग दोनों सम्यक् होते हैं। उसके मिथ्या और मिश्रित होने पर श्रद्धा और प्रयोग भी मिश्रित होते हैं।

१ सम्यक्दर्शन	मिथ्यादर्शन	सम्यक्मिथ्यादर्शन
२ सम्यक्रुचि	मिथ्यारुचि	सम्यक्मिथ्यारुचि
३ सम्यक्प्रयोग	मिथ्याप्रयोग	सम्यक्मिथ्याप्रयोग

७९—व्यवसाय (सू० ३९५) :

इन पांच सूत्रों का (३९५-३९९) विभिन्न व्यवसायो का उल्लेख है। व्यवसाय का अर्थ होता है—निश्चय, निर्णय और अनुष्ठान। निश्चय करने के साधनभूत ग्रन्थो को भी व्यवसाय कहा जाता है। प्रस्तुत पांच सूत्रो मे विभिन्न दृष्टिकोणो से व्यवसाय का वर्गीकरण किया गया है।

प्रथम वर्गीकरण धर्म के आधार पर किया गया है। दूसरा वर्गीकरण ज्ञान के आधार पर किया गया है। इसे देखते ही वैशेषिकदर्शन-सम्मत तीन प्रमाणो की स्मृति हो आती है।

वैशेषिक सम्मत प्रमाण :	प्रस्तुत वर्गीकरण
१. प्रत्यक्ष	प्रत्यक्ष
२ अनुमान	प्रात्ययिक—आगम
३ आगम	आनुगामिक—अनुमान

वृत्तिकार ने प्रत्यक्ष और प्रात्ययिक के दो-दो अर्थ किए है। प्रत्यक्ष के दो अर्थ—यौगिक प्रत्यक्ष और स्वसंवेदन प्रत्यक्ष। यहा ये दोनो अर्थ घटित होते है।

प्रात्ययिक के दो अर्थ—

१ इन्द्रिय और मन के योग से होने वाला ज्ञान (व्यावहारिक प्रत्यक्ष)।

२ आप्तपुरुष के वचन से होने वाला ज्ञान।

तीसरा वर्गीकरण वर्तमान और भावी जीवन के आधार पर किया गया है। मनुष्य के कुछ निर्णय वर्तमान जीवन की दृष्टि मे होते है, कुछ भावी जीवन की दृष्टि से और कुछ दोनो की दृष्टि से। ये क्रमश: इहलौकिक, पारलौकिक और इहलौकिक-पारलौकिक कहलाते हैं।

चौथा वर्गीकरण विचार-धारा या शास्त्र-ग्रन्थो के आधार पर किया गया है। इस प्रकरण मे मुख्यतः तीन विचार-धाराएं प्रतिपादित हुई है—लौकिक, वैदिक और सामयिक।

लौकिक विचारधारा के प्रतिपादक होते हैं—अर्थशास्त्री, धर्मशास्त्री (समाजशास्त्री) और कामशास्त्री। ये लोग अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र (समाजशास्त्र) और कामशास्त्र के माध्यम से अर्थ, धर्म (सामाजिक कर्त्तव्य) और काम के औचित्य तथा अनौचित्य का निर्णय करते हैं। सूत्रकार ने इसे लौकिक व्यवसाय माना है। इस विचारधारा का किसी धर्म-दर्शन से सम्बन्ध नही होता। इसका सम्बन्ध लोकमत से होता है।

वैदिक विचारधारा के आधारभूत ग्रन्थ तीन वेद है—ऋक्, यजु और साम। यहा व्यवसाय के निमित्तभूत ग्रन्थो को ही व्यवसाय कहा गया है।

वृत्तिकार ने सामयिक व्यवसाय का अर्थ सांख्य आदि दर्शनों के समय (सिद्धान्त) से होने वाला व्यवसाय किया है। प्राचीनकाल में सांख्यदर्शन श्रमण-परम्परा का ही एक अंग रहा है। उसी दृष्टि के आधार पर वृत्तिकार ने यहां मुख्यता से सांख्य का उल्लेख किया है। सामयिक व्यवसाय के तीन प्रकारो का दो नयों से अर्थ किया जा सकता है।

ज्ञानव्यवसाय—ज्ञान का निश्चय या ज्ञान के द्वारा होने वाला निश्चय।

दर्शनव्यवसाय—दर्शन का निश्चय।

चरित्रव्यवसाय—चरित्र का निश्चय।

दूसरे नय के अनुसार ज्ञान, दर्शन और चारित्र—ये श्रमणपरम्परा (या जैनशासन) के तीन मुख्य ग्रंथ माने जा सकते

है। सूत्रकार ने किन ग्रन्थों की ओर संकेत किया है, यह उनकी उपलब्धि के अभाव में निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता; पर इस कोटि के ग्रंथों की परम्परा रही है, इसकी पुष्टि आचार्य कुंदकुंद के बोधप्राभृत, दर्शनप्राभृत और चरित्रप्राभृत से होती है। ३।५११ में तीन प्रकार के अन्त (निर्णय) बतलाए गए हैं, वे प्रस्तुत विषय से ही सम्बन्धित हैं।

८०—(सू० ४००) :

प्रस्तुत सूत्र में साम, दण्ड और भेद—ये तीन अर्थयोनि के रूप मे निर्दिष्ट हैं। चाणक्य ने शासनाधीन संधि और विग्रह के अनुष्ठानोपयोगी उपायों का निर्देश किया है। वे चार है—साम, उपप्रदातन, भेद और दण्ड।[1] वृत्तिकार ने बताया है—किसी पाठ-परपरा मे दण्ड के स्थान पर प्रदान पाठ माना जाता है। इस पाठान्तर के आधार पर चाणक्य-निर्दिष्ट उपप्रदान भी इसमे आ जाता है।

चाणक्य ने साम के पाच, भेद के दो और दण्ड के तीन प्रकार बतलाए हैं।

साम के पांच प्रकार—

१ गुणसकीर्तन—स्तुति।

२ सम्बन्धोपाख्यानं—सम्बन्ध का कथन करना।

३. परस्परोपकारसन्दर्शन—परस्पर किए हुए उपकारो का वर्णन करना।

४ आयतिप्रदर्शन—भविष्य के सुनहले स्वप्न का प्रदर्शन करना।

५. आत्मोपनिधान—सामने वाले व्यक्ति के साथ अपनी एकता प्रदर्शित करना।

भेद के दो प्रकार—

१ शकाजननं—सदेह उत्पन्न कर देना।

२. निर्भर्त्सनं—भर्त्सना करना।

दण्ड के तीन प्रकार—

१. वध। २. परिक्लेश। ३. अर्थहरण।

वृत्तिकार ने कुछ श्लोक उद्धृत किए है।[2] उनके आधार पर साम के पाच, दण्ड और भेद के तीन-तीन तथा पाठान्तर के रूप मे प्राप्त प्रदान के पाच प्रकार बतलाए हैं।

साम के पाच प्रकार—

१. परस्परोपकारदर्शन। २. गुणकीर्तन। ३. सम्बन्धसमाख्यान। ४. आयतिसंप्रकाशन। ५ अर्पण।

दण्ड के तीन प्रकार—

१. वध। २. परिक्लेश। ३. धनहरण।

भेद के तीन प्रकार—

१. स्नेहरागापनयन—स्नेह, राग का अपनयन करना।

२. सहर्षोत्पादन—स्पर्धा उत्पन्न करना।

३. सतर्जन—तर्जना देना।

---

१ कौटलीयाऽर्थशास्त्रम्, अध्याय ३१, प्रकरण २८, पृ० ८३ ·
उपाया सामोपप्रदानभेददण्डा:।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र १४१, १४२ :

१ परस्परोपकाराणा, दर्शन गुणकीर्त्तनम्।
सम्बन्धस्य समाख्यान, मायत्या. संप्रकाशनम्॥

२. वाचा पेशलया साधु, तवाहमिति चार्पणम्।
इति सामप्रयोगज्ञै, साम पञ्चविधं स्मृतम्॥

३ वधश्चैव परिक्लेशो, धनस्य हरणं तथा।
इति दण्डविधानज्ञैर्दण्डोऽपि त्रिविध· स्मृत॥

४ स्नेहरागापनयनं, सहर्षोत्पादन तदा।
सन्तर्जन च भेदज्ञैर्भेदस्तु त्रिविध. स्मृत.॥

५ य सम्प्राप्तो धनोत्सर्गं, उत्तमाधममध्यम।
प्रतिदान तथा तस्य, गृहीतस्यानुमोदनम्॥

६. द्रव्यदानमपूर्वं च, स्वयग्राहप्रवर्त्तनम्।
देयस्य प्रतिमोक्षश्च, दानं पञ्चविध स्मृतम्॥

प्रदान के पांच प्रकार—

१. धनोत्सर्ग—धन का विसर्जन।

२. प्रतिदान—गृहीतधन का अनुमोदन।

३. अपूर्वद्रव्यदान—अपूर्वद्रव्य का दान करना।

४. स्वयग्राहप्रवर्तन—दूसरे के धन के प्रति स्वय ग्रहणपूर्वक प्रवर्तन करना।

५. देयप्रतिमोक्ष—ऋण चुकाना।

८१—(सू० ४०२) :

प्रस्तुत सूत्र के कुछ विशिष्ट शब्दो के आशय इस प्रकार हैं—

शुद्धतरदृष्टि से सभी वस्तुएं आत्म-प्रतिष्ठित होती हैं।

शुद्धदृष्टि से सभी वस्तुए आकाश-प्रतिष्ठित होती है।

अशुद्धदृष्टि—लोक व्यवहार से सब वस्तुएं पृथ्वी प्रतिष्ठित होती है।

८२—मिथ्यात्व (सू० ४०३) :

प्रस्तुत सूत्र मे मिथ्यात्व का प्रयोग मिथ्यादर्शन या विपरीततत्त्वश्रद्धान के अर्थ मे नही है। यहा इसका अर्थ असमीचीनता है।

८३—(सू० ४०४) :

प्रस्तुत सूत्र मे अक्रिया के तीन प्रकार बतलाए गए हैं और उनके प्रकारों मे क्रिया शब्द का व्यवहार हुआ है। वृत्तिकार ने उसी का समर्थन किया है।[1] ऐसा लगता है यहा अकार लुप्त है। प्रयोग क्रिया का अर्थ प्रयोग अक्रिया अर्थात् असमीचीन प्रयोगक्रिया होना चाहिए। वृत्तिकार ने देसणाण आदि तीनो पदो की देश अज्ञान और देशज्ञान—इन दोनो रूपो मे व्याख्या की है।[2] उनमे जैसे अकार का प्रश्लेष माना है, वैसे पओगकिरिया आदि पदो मे क्यो नही माना जा सकता ?

८४—(सू० ४२७) :

देखें २।३८७-३८९ का टिप्पण।

८५—(सू० ४३२) :

प्रस्तुत सूत्र के कुछ विशिष्ट शब्दो के अर्थ इस प्रकार हैं—

उद्गमउपघात—आहार की निष्पत्ति से सम्बन्धित भिक्षा-दोष, जो गृहस्थ द्वारा किया जाता है।

उत्पादनउपघात—आहार के ग्रहण से सम्बन्धित भिक्षा-दोष, जो साधु द्वारा किया जाता है।

एषणाउपघात—आहार लेते समय होने वाला भिक्षा-दोष, जो साधु और गृहस्थ दोनों द्वारा किया जाता है।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र १४३ : अक्रिया हि प्रशोभना क्रियैवा-तोऽक्रिया त्रिविधेत्यभिधायापि प्रयोगेत्यादिना क्रियैवोक्ता।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र १४४ : ज्ञानं हि द्रव्यपर्यायविषयो बोधस्त-न्निषेधोऽज्ञानं तत्र विवक्षितद्रव्यं देशतो यदा न जानाति तदा देशाज्ञानमकारप्रश्लेषात्, यदा च सर्वतस्तदा सर्वाज्ञान, यदा विवक्षितपर्यायतो न जानाति तदा भावाज्ञानमिति, अथवा देशादिज्ञानमपि मिथ्यात्वविशिष्टमज्ञानमेवेति अकारप्रश्लेष विनापि न दोष इति।

८६—(सू० ४३८) :

संक्लेश शब्द के कई अर्थ होते हैं, जैसे—असमाधि, चित्त की मलिनता, अविशुद्धि, अरति और रागद्वेष की तीव्र परिणति।

आत्मा की असमाधिपूर्ण या अविशुद्ध परिणामधारा से ज्ञान, दर्शन और चारित्र का पतन होता है, उनकी विशुद्धि नष्ट होती है, इसलिए उसे क्रमशः ज्ञानसंक्लेश, दर्शनसंक्लेश और चारित्रसंक्लेश कहा जाता है।

८७-९०—(सू० ४४०-४४३) :

ज्ञान, दर्शन और चारित्र के आठ-आठ आचार होते हैं।[1] उनके प्रतिकूल आचरण करने को अनाचार कहा जाता है। उसके चार चरण हैं। चतुर्थ चरण मे वह अनाचार कहलाता है। उसका प्रथम चरण है प्रतिकूल आचरण का संकल्प, यह अतिक्रम कहलाता है। उसका दूसरा चरण है प्रतिकूल आचरण का प्रयत्न, यह व्यतिक्रम कहलाता है। उसका तीसरा चरण है प्रतिकूल आचरण का आंशिक सेवन, यह अतिचार कहलाता है। प्रतिकूल आचरण का पूर्णतः सेवन अनाचार की कोटि मे चला जाता है।

९१—(सू० ४८२) :

सामायिक कल्पस्थिति—

यह कल्पस्थिति प्रथम तथा अंतिम तीर्थंकर के समय मे अल्पकाल की होती है तथा शेष बाईस तीर्थंकरो के समय मे और महाविदेह मे यावत्कथिक जीवन पर्यन्त तक होती है।

इस कल्प के अनुसार शय्यातरपिंडपरिहार, चातुर्यामधर्म का पालन, पुरुषज्येष्ठत्व तथा कृतिकर्म—ये चार आवश्यक होते हैं तथा श्वेतवस्त्र का परिधान, औद्देशिक (एक साधु के उद्देश्य से बनाए हुए) आहार का दूसरे सांभोगिक द्वारा अग्रहण, राजपिंड का अग्रहण, नियत प्रतिक्रमण, मास-कल्पविहार तथा पर्युषणाकल्प—ये वैकल्पिक होते है।

छेदोपस्थापनीय कल्पस्थिति—

यह कल्पस्थिति प्रथम तथा अन्तिम तीर्थंकर के समय मे ही होती है। इस कल्प के अनुसार उपरोक्त दस कल्पो का पालन करना अनिवार्य है।

निर्विशमान कल्पस्थिति, निर्विष्ट कल्पस्थिति—

परिहारविशुद्धचरित्र मे नव साधु एक साथ अवस्थित होते हैं। उनमे चार साधु पहले तपस्या करते हैं। उन्हे निर्विशमान कल्पस्थिति साधु कहा जाता है। चार साधु उनकी परिचर्या करते हैं तथा एक साधु आचार्य होते है। पूर्व चार साधुओ की तपस्या के पूर्ण हो जाने पर शेष चार साधु तपस्या करते है तथा पूर्व तपोभितप्त साधु उनकी परिचर्या करते हैं। उन्हें निर्विष्टकल्प कहा जाता है। दोनो दलो की तपस्या हो जाने के बाद आचार्य तपोवस्थित होते है और शेष आठो ही साधु उनकी परिचर्या करते है। नवो ही साधु जघन्यतः नवें पूर्व की तीसरी आचार नामक वस्तु तथा उत्कृष्टतः कुछ न्यून दस पूर्वों के ज्ञाता होते हैं।

निर्विशमान साधुओ की कल्पस्थिति का क्रम निम्ननिर्दिष्ट रहता है—वे ग्रीष्म, शीत तथा वर्षाऋतु मे जघन्य में क्रमशः चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त और अष्टमभक्त; मध्यम मे क्रमशः षष्ठभक्त, अष्टभक्त और दशमभक्त; उत्कृष्ट मे क्रमशः अष्टमभक्त, दशमभक्त और द्वादशभक्त की तपस्या करते हैं। पारणा मे भी साभिग्रह आयम्बिल की तपस्या करते है। शेष साधु भी इस चरित्रावस्था मे आयम्बिल करते हैं।

जिनकल्पस्थिति—

विशेष साधना के लिए जो संघ से अलग होकर रहते हैं, उनकी आचार-मर्यादा को जिनकल्पस्थिति कहा जाता है।

---

[1] देखें २।१४७ का टिप्पण।

वे प्रतिदिन आयंबिल करते हैं, एकाकी रहते हैं, दस गुणोपेत स्थंडिल मे ही उच्चार तथा जीर्ण वस्त्रों का परित्याग करते हैं, विशेष धृति वाले होते है, भिक्षा तीसरे प्रहर मे ग्रहण करते हैं, मासकल्पविहार करते हैं, एक गली मे छह दिनो से पहले भिक्षा के लिए नही जाते तथा इनके ठहरने का स्थान एकान्त होता है।

स्थविरकल्पस्थिति—

जो सघ मे रहकर साधना करते हैं, उनकी आचारविधि को स्थविरकल्पस्थिति कहा जाता है। वे पठन-पाठन करते हैं, शिष्यों को दीक्षा देते हैं, उनका वास अनियत रहता है तथा वे दस सामाचारी का सम्यक् अनुपालन करते है।

देखें ६।१०३ का टिप्पण

९२—प्रत्यनीक (सू० ४८८-४९३) :

प्रत्यनीक का अर्थ है प्रतिकूल। प्रस्तुत आलापक मे प्रतिकूल व्यक्तियों के विभिन्न दृष्टियों से वर्गीकरण किए गए हैं।

प्रथम वर्गीकरण तत्त्व-उपदेष्ट या ज्येष्ठा की अपेक्षा से है। आचार्य और उपाध्याय तत्त्व के उपदेष्टा होते है। स्थविर तत्त्व के उपदेष्टा भी हो सकते हैं या जन्मपर्याय आदि से बडे भी हो सकते हैं। जो व्यक्ति अवर्णवाद, छिद्रान्वेषण आदि के रूप में उनके प्रतिकूल व्यवहार करता है, वह गुरु की अपेक्षा से प्रत्यनीक होता है।

दूसरा वर्गीकरण जीवन-पर्याय की अपेक्षा से है। इहलोक और परलोक के दो-दो अर्थ किए जा सकते हैं—वर्तमान जीवनपर्याय और आगामी जीवनपर्याय तथा मनुष्य जीवन और तिर्यंचजीवन।

जो मनुष्य वर्तमान जीवन के प्रतिकूल व्यवहार करता है—पचाग्नि साधक तपस्वी की भांति इंद्रियों को अज्ञानपूर्ण तप से पीड़ित करता है या इहलोकोपकारी भोग-साधनों के प्रति अविवेक पूर्ण व्यवहार करता है या मनुष्य जाति के प्रति निर्दय व्यवहार करता है, वह इहलोक प्रत्यनीक कहलाता है।

जो मनुष्य इद्रियों के विषयों मे आसक्त होता है या ज्ञान आदि लोकोत्तर गुणों के प्रति उपद्रवपूर्ण व्यवहार करता है या पशु-पक्षी जगत् के प्रति निर्दय व्यवहार करता है, वह परलोक प्रत्यनीक कहलाता है।

जो मनुष्य चोरी आदि के द्वारा इद्रिय विषयो का साधन करता है या मनुष्य और तिर्यंच दोनों जातियों के प्रति निर्दय व्यवहार करता है, वह उभयप्रत्यनीक कहलाता है।

उक्त निरूपण से स्पष्ट होता है कि जैनधर्म इद्रिय-सताप और इन्द्रिय-आसक्ति दोनों के पक्ष में नही है।

तीसरा वर्गीकरण समूह की अपेक्षा से है। कुल से गण और गण से सघ बृहत् होता है। ये लौकिक और लोकोत्तर दोनो पक्षो मे होते हैं। जो मनुष्य इनका अवर्णवाद बोलता है, इन्हें विघटित करने का प्रयत्न करता है, वह कुल आदि का प्रत्यनीक होता है।

चौथा वर्गीकरण अनुकम्पनीय व्यक्तियों की अपेक्षा से है। तपस्वी (मासोपवास आदि तप करने वाला), ग्लान (रोग, वृद्धता आदि से असमर्थ) और शैक्ष (नव दीक्षित)—ये अनुकम्पनीय माने जाते हैं। जो मुनि इनको उपष्टम्भ नही देता, इनकी सेवा नही करता, वह तपस्वी आदि का प्रत्यनीक होता है।

पाचवां वर्गीकरण कर्मविलय-जनित पर्याय की अपेक्षा से है। जो व्यक्ति ज्ञान को समस्याओ की जड़ और अज्ञान को सुख का हेतु मानता है, वह ज्ञान-प्रत्यनीक होता है। इसी प्रकार दर्शन और चारित्र की व्यर्थता का प्रतिपादन करने वाला दर्शन और चरित्र का प्रत्यनीक होता है। इनकी वितथ व्याख्या करने वाला भी इनका प्रत्यनीक होता है।

छठा वर्गीकरण शास्त्र-ग्रन्थो की अपेक्षा से है। संक्षिप्त मूलपाठ को सूत्र, उसकी व्याख्या को अर्थ, पाठ और अर्थ मिश्रित रचना को तदुभय (सूत्रार्थात्मक) कहा जाता है। सूत्रपाठ का यथार्थ उच्चारण न करने वाला सूत्र-प्रत्यनीक और उसकी तोड-मरोड़ कर व्याख्या करने वाला अर्थ-प्रत्यनीक कहलाता है।

इस प्रतिकूलता का प्रतिपादन सूत्र और अर्थ की प्रामाणिकता नष्ट न हो, इस दृष्टि से किया गया प्रतीत होता। इस प्रकार के प्रयत्न का उल्लेख बौद्ध साहित्य मे भी मिलता है—

भगवान् बुद्ध ने कहा—भिक्षुओ ! दो बातें सद्धर्म के नाश का, उसके अन्तर्धान का कारण होती है। कौन सी दो बातें ?

पाली के शब्दों का व्यतिक्रम तथा उनके अर्थ का अनर्थ करना।

भिक्षुओ ! पाली के शब्दों का व्यतिक्रम होने से उनके अर्थ का भी अनर्थ होता है। भिक्षुओ ! ये दो बातें सद्धर्म के नाश का, उसके अन्तर्धान का कारण होती है।

भिक्षुओ ! दो बातें सद्धर्म की स्थिति का, उसके नाश न होने का, उसके अन्तर्धान न होने का कारण होती है। कौन सी दो बातें ?

पाली के शब्दों का ठीक-ठीक क्रम तथा उनका सही-सही अर्थ।

भिक्षुओ ! पाली के शब्दो का क्रम ठीक-ठीक रहने से उनका अर्थ भी सही-सही रहता है।

भिक्षुओ ! ये दो बातें सद्धर्म की स्थिति का, उसके नाश न होने का, उसके अन्तर्धान न होने का कारण होती है।[1]

९३—(सू. ४९६) :

महानिर्जरा—निर्जरा नवसद्भाव पदार्थों मे एक पदार्थ है। इसका अर्थ है बंधे हुए कर्मों का क्षीण होना। कर्मों का विपुल मात्रा मे क्षीण होना महानिर्जरा कहलाता है।

महापर्यवसान—इसके दो अर्थ होते है—समाधिमरण और अपुनर्मरण। जिस व्यक्ति के महानिर्जरा होती है वह समाधिपूर्ण मरण को प्राप्त होता है। यदि सम्पूर्ण कर्मों की निर्जरा हो जाती है तो वह अपुनर्मरण को प्राप्त होता है—जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है।

एकलविहारप्रतिमा—

देखें—८।१ का टिप्पण।

९४—अतियानऋद्धि (सू. ५०३) :

अतियान ऋद्धि—अतियान का अर्थ है नगर-प्रवेश। ऋद्धि का अर्थ है शोभा या सजावट। जब राजा या राजा के अतिथि आदि विशिष्ट व्यक्ति नगर मे आते थे उस समय नगर के तोरण-द्वार सज्जित किए जाते थे, दुकाने सजाई जाती थी और राजपथ पर हजारों आदमी एकत्रित होते थे, इसे अतियानऋद्धि कहा जाता था।[2]

९५—निर्याणऋद्धि (सू. ५०३) :

निर्याणऋद्धि—इसका अर्थ है नगर से निर्गमन के समय साथ चलने वाला वैभव। जब राजा आदि विशिष्ट व्यक्ति नगर से निर्गमन करते थे उस समय हाथी, सामन्त, परिवार आदि के लोग उनके साथ चलते थे।[3]

९६—(सू. ५०७)

प्रस्तुत सूत्र मे धर्म के तीन अंगो—अध्ययन, ध्यान और तपस्या का निर्देश है। इनमे पौर्वापर्य का सबंध है। अध्ययन के बिना ध्यान और ध्यान के बिना तपस्या नही हो सकती। पहले हम किसी बात को अध्ययन के द्वारा जानते है, फिर उसके आशय का ध्यान करते हैं। चिंतन, मनन और अनुप्रेक्षा करते हैं। फिर उसका आचरण करते हैं। स्वाख्यात धर्म का यही क्रम है। भगवान् महावीर ने इसी क्रम का प्रतिपादन किया था। दूसरे स्थान म धर्म के दो प्रकार बतलाए गए है[4]—श्रुतधर्म और चारित्रधर्म। यहा निर्दिष्ट तीन प्रकारो मे से सु-अधीत और सु-ध्यात श्रुतधर्म के प्रकार हैं और सु-तपस्यित चरित्रधर्म का प्रकार है।

---

१. अंगुत्तरनिकाय, भाग १, पृ० ६१।

२ स्थानांगवृत्ति पत्र १६२ : अतियान—नगरप्रवेश, तत्र ऋद्धि:—तोरणहट्टशोभाजनसम्मर्दादिलक्षणा।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र १६२ : निर्यान—नगरान्निर्गम:, तत्र ऋद्धि: हस्तिकल्पनसामन्तपरिवारादिका।

४. स्थानांग २।१०७।

९७-९९—जिन, केवली, अर्हत् (सू० ५१२-५१४)

इन तीन सूत्रों मे जिन, केवली और अर्हत के तीन-तीन विकल्प निर्दिष्ट हैं। अर्हत् और जिन ये दोनो शब्द जैन और बौद्ध दोनो के साहित्य मे प्रयुक्त है। केवली शब्द का प्रयोग मुख्यत: जैन साहित्य में मिलता है।

ज्ञान की दृष्टि से दो प्रकार के मनुष्य होते हैं—

१. परोक्षज्ञानी २. प्रत्यक्षज्ञानी।

जो मनुष्य इद्रियो के माध्यम से ज्ञेय वस्तु को जानते है, वे परोक्षज्ञानी होते हैं। प्रत्यक्षज्ञानी इंद्रियो का आलम्बन लिए बिना ही ज्ञेय वस्तु को जान लेते हैं। वे अतीन्द्रियज्ञानी भी कहलाते है। यहा प्रत्यक्षज्ञानी या अतीन्द्रियज्ञानी को ही जिन, केवली और अर्हत् कहा गया है।

१००—(सू० ५२०) :

जिस समय कृष्ण आदि अशुद्ध लेश्याए न शुद्ध होती है और न अधिक सक्लिष्टता की ओर बढती है, उस समय स्थितलेश्य मरण होता है। कृष्णलेश्या वाला जीव मरकर कृष्णलेश्या वाले नरक मे उत्पन्न होता हैं, तब यह स्थिति होती है।

सक्लिष्टलेश्य—

जब अशुद्ध लेश्या अधिक सक्लिष्ट होती जाती है, तब सक्लिष्टलेश्यमरण होता है। नील आदि लेश्या वाला जीव मरकर जब कृष्णलेश्या वाले नरक मे उत्पन्न होता है तब यह स्थिति होती है।

पर्यवजातलेश्य—

अशुद्धलेश्या जब शुद्ध बनती जाती है, तब पर्यवजातमरण होता है। कृष्ण या नीललेश्या वाला जीव जब मरकर कापोतलेश्या वाले नरक मे उत्पन्न होता है, तब यह स्थिति होती है।

१०१—(सू० ५२२) :

प्रस्तुत सूत्र मे दूसरा [असक्लिष्टलेश्य] और तीसरा [अपर्यवजातलेश्य]—ये दोनों भेद केवल विकल्प रचना की दृष्टि से ही है।

१०२—(सू० ५२३) :

प्रस्तुत सूत्र के कुछ विशिष्ट शब्दो के अर्थ इस प्रकार हैं—

अक्षम—असगतता।

अनानुगामिकता—अशुभअनुबध, अशुभ की शृखला।

शकित—ध्येय या कर्त्तव्य के प्रति सशयशील।

काक्षित—ध्येय या कर्त्तव्य के प्रतिकूल सिद्धान्तो की आकाक्षा करने वाला।

विचिकित्सित—ध्येय या कर्त्तव्य से प्राप्त होने वाले फल के प्रति सदेह करने वाला।

भेदसमापन्न—सदेहशीलता के कारण ध्येय या कर्त्तव्य के प्रति जिसकी निष्ठा खडित हो जाती है, वह भेदसमापन्न कहलाता है।

कलुषसमापन्न—सदेहशीलता के कारण ध्येय या कर्त्तव्य को अस्वीकार कर देता है, वह कलुषसमापन्न कहलाता है।

१०३—विग्रहगति (सू० ५२६) :

देखें—२।१६१ का टिप्पण।

१०४—मल्ली (सू० ५३२) :

देखें—७।७५ का टिप्पण।

१०५—सर्वाक्षरसन्निपाती (सू० ५३४) :

अक्षरो के सन्निपात [सयोग] अनन्त होते हैं। जिसका श्रुतज्ञान प्रकृष्ट हो जाता है, वह अक्षरो के सब सन्निपातो को जानने लग जाता है। इस प्रकार का ज्ञानी व्यक्ति सर्वाक्षरसन्निपाती कहलाता है। इसका तात्पर्य होता है सम्पूर्ण-वाङ्मय का ज्ञाता या सम्पूर्ण प्रतिपाद्य विषयो का परिज्ञाता।

चउत्थं ठाणं

चतुर्थ स्थान

आमुख

प्रस्तुत स्थान मे चार की संख्या से संबद्ध विषय सकलित हैं। यह स्थान चार उद्देशको मे विभक्त है। इस वर्गीकरण मे तात्त्विक, भौगोलिक, मनोवैज्ञानिक और प्राकृतिक आदि अनेक विषयों की अनेक चतुर्भगियां मिलती है। इसमे वृक्ष, फल, वस्त्र आदि व्यावहारिक वस्तुओं के माध्यम से मनुष्य की मनोदशा का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है, जैसे—

कुछ वृक्ष मूल मे सीधे रहते है परन्तु ऊपर जाकर टेढे बन जाते हैं और कुछ सीधे ही ऊपर बढ जाते है। कुछ वृक्ष मूल मे भी सीधे नहीं होते और ऊपर जाकर भी सीधे नहीं रहते, और कुछ मूल मे सीधे न रहने वाले ऊपर जाकर सीधे बन जाते है।

व्यक्तियो का स्वभाव भी इसी प्रकार का होता है। कुछ व्यक्ति मन से सरल होते है और व्यवहार मे भी सरल होते है। कुछेक व्यक्ति सरल हृदय के होने पर भी व्यवहार मे कुटिलता करते है। मन मे सरल न रहने वाले भी बाह्य परिस्थिति-वश सरलता का दिखावा करते है। कुछ व्यक्ति अन्तर मे कुटिल होते है और व्यवहार मे भी कुटिलता दिखाते है।[1]

विचारों की तरतमता व पारस्परिक व्यवहार के कारण मन की स्थिति सबकी, सब समय समान नहीं रहती। जो व्यक्ति प्रथम मिलन मे सरस दिखाई देते है, वे आगे चलकर अपनी नीरसता का परिचय दे देते है। कुछ लोग प्रथम मिलन मे इतने सरस नही दीखते परन्तु सहवास के साथ-साथ उनकी सरसता भी बढती जाती है। कुछ लोग प्रारम्भ से लेकर अंत तक सरस ही रहते है। कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जिनमे प्रारम्भ मिलन से लेकर सहवास तक कभी सरसता के दर्शन नही होते।[2]

व्यक्ति की योग्यता अपनी होती है। कुछ व्यक्ति अवस्था मे छोटे होकर भी शांत होते है तो कुछ बडे होकर भी शांत नहीं होते। छोटी अवस्था मे शांत नही होने वाले मिलते है तो कुछ अवस्था के परिपाक मे भी शात रहते है।[3]

इस स्थान मे सूत्रकार ने प्रसगवश कुछ कथा-निर्देश भी किए है। अन्तक्रिया के सूत्र (४।१) मे चार कथाओं के निर्देश मिलते है, जैसे—

(१) भरत चक्रवर्ती   (३) सम्राट् सनत्कुमार
(२) गजसुकुमाल   (४) मरुदेवा

वृत्तिकार ने भी अनेक स्थलों पर कथाओं और घटनाओं की योजना की है। सूत्र मे बताया गया है कि पुत्र चार प्रकार के होते है—

(१) पिता से अधिक   (३) पिता से हीन
(२) पिता के समान   (४) कुल के लिए अगारे जैसा

वृत्तिकार ने इस सूत्र को लौकिक और लोकोत्तर उदाहरणों द्वारा इसकी स्पष्टता की है—ऋषभ जैसा पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति को बढाता है तो कण्डरीक जैसा पुत्र कुल की सम्पदा को ही नष्ट कर देता है। महायश जैसा पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति को बनाए रखता है तो आदित्ययश जैसा पुत्र अपने पिता की तुलना मे अल्प वैभववाला होता है।

आचार्य सिंहगिरि की अपेक्षा वज्रस्वामी ने अपनी गण-सम्पदा को बढाया तो कुलबालक ने उदायी राजा को मारकर गण की प्रतिष्ठा को गवा दिया। यशोभद्र ने शय्यभव की सम्पदा को यथावस्थित रखा तो भद्रबाहु स्वामी की तुलना मे स्थूलभद्र की ज्ञान-गरिमा कम हो गई।[4]

---

१. ४।१२
२. ४।१०७
३. ४।१०१
४. ४।३४

भगवान् महावीर सत्य के साधक थे। उन्होंने जनता को सत्य की साधना दी, किन्तु बाहरी उपकरणों का अभिनिवेश नहीं दिया। प्रस्तुत स्थान में उनकी सत्य-संधित्सा के स्फुलिंग आज भी सुरक्षित है—

(१) कुछ पुरुष वेश का त्याग कर देते है पर धर्म का त्याग नहीं करते।
(२) कुछ पुरुष धर्म का त्याग कर देते है पर वेश का त्याग नहीं करते।
(३) कुछ पुरुष धर्म का भी त्याग कर देते है और वेश का भी त्याग कर देते है।
(४) कुछ पुरुष न धर्म का त्याग करते है और न वेश का ही त्याग करते हैं।
(१) कुछ पुरुष धर्म का त्याग कर देते है पर गणसस्थिति का त्याग नही करते।
(२) कुछ पुरुष गणसंस्थिति का त्याग कर देते है पर धर्म का त्याग नहीं करते।
(३) कुछ पुरुष धर्म का भी त्याग कर देते है और गणसस्थिति का भी त्याग कर देते हैं।
(४) कुछ पुरुष न धर्म का त्याग करते है और न गणसस्थिति का ही त्याग करते है।[1]

साधारणतया सत्य का सबंध वाणी से माना जाता है, किन्तु व्यापक धारणा मे उसका सबध मन, वाणी और काय तीनों से होता है। प्रस्तुत स्थल मे सत्य का ऐसा ही व्यापक स्वरूप मिलता है, जैसे—

काया की ऋजुता
भाषा की ऋजुता
भावों की ऋजुता
अविसवादिता—कथनी और करनी की समानता।[2]

प्रस्तुत स्थान मे व्यावहारिक विषयों का भी यथार्थ चित्रण मिलता है। इस जगत् मे विभिन्न मनोवृत्ति वाले लोग होते है। यह विभिन्नता किसी युग-विशेष मे ही नहीं होती, किन्तु प्रत्येक युग मे मिलती है। सूत्रकार के शब्दों मे पढिए—

कुछ पुरुष आम्रप्रलम्बकोरक के समान होते हैं जो सेवा करने वाले का उचित समय मे उचित उपकार करते हैं।

कुछ पुरुष तालप्रलम्बकोरक के समान होते है जो दीर्घकाल से सेवा करने वाले का उचित उपकार करते है परन्तु बड़ी कठिनाई से।

कुछ पुरुष वल्लीप्रलम्बकोरक के समान होते हैं जो सेवा करने वाले का सरलता से शीघ्र ही उपकार कर देते हैं।

कुछ पुरुष मेषविषाणकोरक के समान होते है जो सेवा करने वाले को केवल मधुर वचनों के द्वारा प्रसन्न रखना चाहते है, लेकिन उपकार कुछ नही करते।[3]

इस प्रकार विविध विषयों से परिपूर्ण यह स्थान वास्तव मे ही ज्ञान-सम्पदा का अक्षय कोश है।

---

१. ४।४१६, ४२०
२. ४।१०२
३ ४।५५

चउत्थं ठाणं : पढमो उद्देसो

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
अंतकिरिया-पदं	**अन्तक्रिया-पदम्**	**अन्तक्रिया-पद**
१ चत्तारि अंतकिरियाओ, पण्णत्ताओ, तं जहा—	चतस्रः अन्तक्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	१ अन्त क्रिया[1] चार प्रकार की होती है—
१. तत्थ खलु इमा पढमा अंतकिरिया— **अप्पकम्मपच्चायाते यावि भवति। से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी।** **तस्स णं णो तहप्पगारे तवे भवति, णो तहप्पगारा वेयणा भवति।** **तहप्पगारे पुरिसज्जाते दीहेणं परियाएणं सिज्झति बुज्झति मुच्चति परिणिव्वाति सव्वदुक्खाणमंतं करेइ, जहा—से भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी— पढमा अंतकिरिया।**	१. तत्र खलु इयं प्रथमा अन्तक्रिया— अल्पकर्मप्रत्यायातश्चापि भवति। स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजितः संयमबहुलः संवरबहुलः समाधिबहुलः रूक्षः तीरार्थी उपधानवान् दुःखक्षपः तपस्वी। तस्य नो तथाप्रकारं तपो भवति, नो तथाप्रकारा वेदना भवति। तथाप्रकारः पुरुषजातः दीर्घेण पर्यायेण सिध्यति बुध्यते मुच्यते परिनिर्वाति सर्वदुःखानां अन्तं करोति, यथा—स भरतः राजा चातुरन्तचक्रवर्ती— प्रथमा अन्तक्रिया।	१ प्रथम अन्तक्रिया— कोई पुरुष अल्प कर्मों के साथ मनुष्य जन्म को प्राप्त होता है। वह मुण्ड होकर घर छोड अनगार रूप मे प्रव्रजित होता है। वह सयम-बहुल, सवर-बहुल और समाधि-बहुल होता है। वह रूखा, तीर का अर्थी, उपधान करने वाला, दुःख को खपाने वाला और तपस्वी होता है। उसके न तो तथाप्रकार का घोर तप होता है और न तथाप्रकार की घोर वेदना होती है। इस श्रेणि का पुरुष दीर्घ-कालीन मुनि-पर्याय के द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वात होता है तथा सब दुःखो का अन्त करता है। इसका उदाहरण चातुरन्त चक्रवर्ती सम्राट् भरत[2] है। यह पहली अल्पकर्म के साथ आए हुए तथा दीर्घकालीन मुनि-पर्याय वाले पुरुष की अन्तक्रिया है।
२. अहावरा दोच्चा अंतकिरिया— महाकम्मपच्चायाते यावि भवति। से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए संजमबहुले संवरबहुले °समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी° उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी।	२. अथापरा द्वितीया अन्तक्रिया— महाकर्मप्रत्यायातश्चापि भवति। स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजितः संयमबहुलः संवरबहुलः समाधिबहुलः रूक्षः तीरार्थी उपधानवान् दुःखक्षपः तपस्वी।	२. दूसरी अन्तक्रिया— कोई पुरुष बहुत कर्मों के साथ मनुष्य जन्म को प्राप्त होता है। वह मुण्ड होकर घर छोड़ अनगार रूप में प्रव्रजित होता है। वह संयम-बहुल, संवर-बहुल और समाधि-बहुल होता है। वह रूखा, तीर का अर्थी, उपधान करने वाला, दुःख को खपाने

तस्स णं तहप्पगारे तवे भवति,
तहप्पगारा वेयणा भवति।
तहप्पगारे पुरिसजाते णिरुद्धेणं परियाएणं सिज्झति °बुज्झति मुच्चति परिणिव्वाति सव्व-दुक्खाणमंतं° करेति, जहा—
से गयसूमाले अणगारे—
दोच्चा अंतकिरिया।

तस्य तथाप्रकार तपो भवति,
तथाप्रकारा वेदना भवति।
तथाप्रकार. पुरुषजात. निरुद्धेन पर्यायेण सिध्यति बुद्ध्यते मुच्यते परिनिर्वाति सर्वदु:खाना अन्तं करोति, यथा—स गजसुकुमाल: अनगार:—
द्वितीया अन्तक्रिया।

वाला और तपस्वी होता है।
उसके तथाप्रकार का घोर तप और तथा-प्रकार की घोर वेदना होती है।
इस श्रेणि का पुरुष अल्पकालीन मुनि-पर्याय के द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वात होता है तथा सब दु खो का अन्त करता है। इसका उदाहरण गज-सुकुमाल[1] है।
यह दूसरी महाकर्म के साथ आए हुए तथा अल्पकालीन मुनिपर्याय वाले पुरुष की अन्तक्रिया है।

३. अहावरा तच्चा अंतकिरिया—
महाकम्मपच्चायाते यावि भवति। से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए °संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी।

३. अथापरा तृतीया अन्तक्रिया—
महाकर्मप्रत्यायातश्चापि भवति। स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजित: सयमबहुल: सवरबहुल: समाधिबहुल: रूक्ष. तीरार्थी उपधानवान् दु:खक्षप: तपस्वी।

३. तीसरी अन्तक्रिया—
कोई पुरुष बहुत कर्मों के साथ मनुष्य-जन्म को प्राप्त होता है। वह मुण्ड होकर घर छोड़ अनगार रूप मे प्रव्रजित होता है। वह सयम-बहुल, सवर-बहुल और समाधि-बहुल होता है। वह रूखा, तीर का अर्थी, उपाधान करने वाला, दु.ख को खपाने वाला और तपस्वी होता है।

तस्स णं तहप्पगारे तवे भवति,
तहप्पगारा वेयणा भवति,
तहप्पगारे पुरिसजाते° दीहेणं परियाएणं सिज्झति° बुज्झति मुच्चति परिणिव्वाति° सव्व-दुक्खाणमंतं करेति, जहा—से सणंकुमारे राया चाउरंतचक्कवट्टी—
तच्चा अंतकिरिया।

तस्य तथाप्रकार तपो भवति,
तथाप्रकारा वेदना भवति।
तथाप्रकारं: पुरुषजात. दीर्घेण पर्यायेण सिध्यति बुद्ध्यते मुच्यते परिनिर्वाति सर्वदु:खाना अन्त करोति, यथा—स सनत्कुमार. राजा चातुरन्तचक्रवर्ती—
तृतीया अन्तक्रिया—

उसके तथाप्रकार का घोर तप और
तथा प्रकार की घोर वेदना होती है।
इस श्रेणि का पुरुष दीर्घकालीन मुनिपर्याय के द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वात होता है तथा सब दु.खों का अन्त करता है। इसका उदाहरण चातुरन्त चक्रवर्ती सम्राट सनत्कुमार[2] है।
यह तीसरी महाकर्म के साथ आए हुए तथा दीर्घकालीन मुनिपर्याय वाले पुरुष की अन्तक्रिया है।

४. अहावरा चउत्था अंतकिरिया—
अप्पकम्मपच्चायाते यावि भवति। से णं मुंडे भवित्ता °अगाराओ अणगारियं° पव्वइए संजमबहुले °संवरबहुले समाहिबहुले लूहे

४. अथापरा चतुर्थी अन्तक्रिया—
अल्पकर्मप्रत्यायातश्चापि भवति। स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित: सयमबहुल. सवरबहुल. समाधिबहुल: रूक्ष तीरार्थी उपधानवान्

४. चौथी अन्तक्रिया—
कोई पुरुष अल्प कर्मों के साथ मनुष्य-जन्म को प्राप्त होता है। वह मुण्ड होकर घर छोड़ अनगार रूप मे प्रव्रजित होता है। वह सयम-बहुल, सवर-बहुल और समाधि-

तीरट्ठी उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी° ।
तस्स णं णो तहप्पगारे तवे भवति,
णो तहप्पगारा वेयणा भवति ।
तहप्पगारे पुरिसजाए णिरुद्धेणं परियाएणं सिज्झति •बुज्झति मुच्चति परिणिव्वाति° सव्वदुक्खाणमंतं करेति, जहा—सा मरुदेवा भगवती—
चउत्था अंतकिरिया ।

दुःखक्षपः तपस्वी ।
तस्य नो तथाप्रकारं तपो भवति,
नो तथाप्रकारा वेदना भवति ।
तथाप्रकारः पुरुषजातः निरुद्धेन पर्यायेण सिध्यति बुद्ध्यते मुच्यते परिनिर्वाति सर्वदुःखानां अन्तं करोति, यथा—सा मरुदेवा भगवती—
चतुर्थी अन्तक्रिया ।

बहुल होता है। वह रूखा, तीर का अर्थी, उपधान करने वाला, दुख को खपाने वाला और तपस्वी होता है।
उसके न तथाप्रकार का घोर तप होना है और न तथाप्रकार की घोर वेदना होती है। इस श्रेणि का पुरुष अल्पकालीन मुनि-पर्याय के द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वात होता है तथा सब दुःखो का अन्त करता है। इसका उदाहरण भगवती मरुदेवा[4] है।
यह चौथी अल्प कर्म के साथ आए हुए तथा अल्पकालीन मुनिपर्याय वाले पुरुष की अन्तक्रिया है।

उण्णत-पणत-पदं

२. चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णते,
उण्णते णाममेगे पणते,
पणते णाममेगे उण्णते,
पणते णाममेगे पणते ।

उन्नत-प्रणत-पदम्

चत्वारः रुक्षाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—
उन्नतो नामैकः उन्नतः,
उन्नतो नामैकः प्रणतः,
प्रणतो नामैकः उन्नतः,
प्रणतो नामैकः प्रणतः ।

उन्नत-प्रणत-पद

२. वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ वृक्ष शरीर से भी उन्नत होते हैं और जाति से भी उन्नत होते है, जैसे—शाल,
२. कुछ वृक्ष शरीर से उन्नत, किन्तु जाति से प्रणत होते है, जैसे—नीम,
३. कुछ वृक्ष शरीर से प्रणत, किन्तु जाति से उन्नत होते हैं, जैसे—अशोक,
४. कुछ वृक्ष शरीर से भी प्रणत होते हैं और जाति से भी प्रणत होते है, जैसे—खैर।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाता पण्णत्ता, तं जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णते,
•उण्णते णाममेगे पणते,
पणते णाममेगे उण्णते,°
पणते णाममेगे पणते ।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उन्नतो नामैकः उन्नतः,
उन्नतो नामैकः प्रणतः,
प्रणतो नामैकः उन्नतः,
प्रणतो नामैकः प्रणतः ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष शरीर से भी उन्नत होते हैं और गुणों से भी उन्नत होते है,
२ कुछ पुरुष शरीर से उन्नत, किन्तु गुणों से प्रणत होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से प्रणत, किन्तु गुणों से उन्नत होते हैं,
४. कुछ पुरुष शरीर से भी प्रणत होते हैं और गुणों से भी प्रणत होते हैं[1]।

३. चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतपरिणते,
उण्णते णाममेगे पणतपरिणते,
पणते णाममेगे उण्णतपरिणते,
पणते णाममेगे पणतपरिणते

चत्वारः रुक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
उन्नतो नामैकः उन्नतपरिणतः,
उन्नतो नामैकः प्रणतपरिणतः,
प्रणतो नामैकः उन्नतपरिणतः,
प्रणतो नामैकः प्रणतपरिणतः।

३. वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वृक्ष शरीर से उन्नत और उन्नत-परिणत होते है, अनुन्नतभाव को (अशुभ रस आदि) को छोड, उन्नतभाव (शुभ-रस आदि) मे परिणत होते हैं,
२ कुछ वृक्ष शरीर से उन्नत, किन्तु प्रणत-परिणत होते है—उन्नतभाव को छोड अनुन्नतभाव में परिणत होते है,
३ कुछ वृक्ष शरीर से प्रणत और उन्नत-भाव मे परिणत होते है,
४ कुछ वृक्ष शरीर से प्रणत और प्रणत-भाव मे परिणत होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतपरिणते,
॰उण्णते णाममेगे पणतपरिणते,
पणते णाममेगे उण्णतपरिणते,
पणते णाममेगे पणतपरिणते।॰

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उन्नतो नामैकः उन्नतपरिणतः,
उन्नतो नामैकः प्रणतपरिणतः,
प्रणतो नामैकः उन्नतपरिणतः,
प्रणतो नामैकः प्रणतपरिणतः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष शरीर से उन्नत और उन्नत-रूप मे परिणत होते हैं—अनुन्नतभाव (अवगुण) को छोड, उन्नतभाव (गुण) मे परिणत होते है,
२. कुछ पुरुष शरीर से उन्नत, किन्तु प्रणत-रूप मे परिणत होते है—उन्नतभाव को छोड, अनुन्नतभाव मे परिणत होते हैं,
३. कुछ पुरुष शरीर से प्रणत, किन्तु उन्नत-रूप मे परिणत होते है,
४. कुछ पुरुष शरीर से प्रणत और प्रणत-रूप मे परिणत होते है॰।

४. चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतरूवे,
॰उण्णते णाममेगे पणतरूवे,
पणते णाममेगे उण्णतरूवे,
पणते णाममेगे पणतरूवे।॰

चत्वारः रुक्षा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उन्नतो नामैकः उन्नतरूप,
उन्नतो नामैकः प्रणतरूप,
प्रणतो नामैकः उन्नतरूप,
प्रणतो नामैकः प्रणतरूप।

४. वृक्ष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ वृक्ष शरीर से उन्नत और उन्नत-रूप वाले होते है,
२ कुछ वृक्ष शरीर से उन्नत, किन्तु प्रणत-रूप वाले होते हैं,
३ कुछ वृक्ष शरीर से प्रणत, किन्तु उन्नत-रूप वाले होते है,
४. कुछ वृक्ष शरीर से प्रणत और प्रणत-रूप वाले होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतरूवे,
°उण्णते णाममेगे पणतरूवे,
पणते णाममेगे उण्णतरूवे,
पणते णाममेगे पणतरूवे।°

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उन्नतो नामैकः उन्नतरूपः,
उन्नतो नामैकः प्रणतरूपः,
प्रणतो नामैकः उन्नतरूपः,
प्रणतो नामैकः प्रणनरूपः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१. कुछ पुरुष शरीर से उन्नत और उन्नतरूप वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष शरीर से उन्नत, किन्तु प्रणतरूप वाले होते है, ३. कुछ पुरुष शरीर से प्रणत, किन्तु उन्नतरूप वाले होते है, ४. कुछ पुरुष शरीर से प्रणत और प्रणतरूप वाले होते हैं[८]।

५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतमणे,
उण्णते णाममेगे पणतमणे,
पणते णाममेगे उण्णतमणे,
पणते णाममेगे पणतमणे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उन्नतो नामैकः उन्नतमनाः,
उन्नतो नामैकः प्रणतमनाः,
प्रणतो नामैकः उन्नतमनाः,
प्रणतो नामैकः प्रणतमनाः।

५. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नतमन वाले होते हैं—उदार होते हैं।
२. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणतमन वाले होते है—अनुदार होते हैं।
३. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नतमन वाले होते हैं—उदार होते हैं।
४. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणतमन वाले होते हैं—अनुदार होते हैं[९]।

६. °चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतसंकप्पे,
उण्णते णाममेगे पणतसंकप्पे,
पणते णाममेगे उण्णतसंकप्पे,
पणते णाममेगे पणतसंकप्पे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उन्नतो नामैकः उन्नतसंकल्पः,
उन्नतो नामैकः प्रणतसंकल्पः,
प्रणतो नामैकः उन्नतसंकल्पः,
प्रणतो नामैकः प्रणतसंकल्पः।

६. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नतसंकल्प वाले होते है, २. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणतसंकल्प वाले होते है,
३. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नतसंकल्प वाले होते है,
४. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणतसंकल्प वाले होते हैं।[१०]

७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतपण्णे,
उण्णते णाममेगे पणतपण्णे,
पणते णाममेगे उण्णतपण्णे,
पणते णाममेगे पणतपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उन्नतो नामैकः उन्नतप्रज्ञः,
उन्नतो नामैकः प्रणतप्रज्ञः,
प्रणतो नामैकः उन्नतप्रज्ञः,
प्रणतो नामैकः प्रणतप्रज्ञः।

७. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नतप्रज्ञा वाले होते है,
२. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणतप्रज्ञा वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नतप्रज्ञा वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणतप्रज्ञा वाले होते हैं।[११]

८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतदिट्ठी,
उण्णते णाममेगे पणतदिट्ठी,
पणते णाममेगे उण्णतदिट्ठी,
पणते णाममेगे पणतदिट्ठी।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उन्नतो नामैकः उन्नतदृष्टिः,
उन्नतो नामैकः प्रणतदृष्टिः,
प्रणतो नामैकः उन्नतदृष्टिः,
प्रणतो नामैकः प्रणतदृष्टिः।

८. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नतदृष्टि वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणतदृष्टि वाले होते है, ३. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नतदृष्टि वाले होते है, ४. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणतदृष्टि वाले होते हैं।[१२]

९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतसीलाचारे,
उण्णते णाममेगे पणतसीलाचारे,
पणते णाममेगे उण्णतसीलाचारे,
पणते णाममेगे पणतसीलाचारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उन्नतो नामैकः उन्नतशीलाचारः,
उन्नतो नामैकः प्रणतशीलाचारः,
प्रणतो नामैकः उन्नतशीलाचारः,
प्रणतो नामैकः प्रणतशीलाचारः।

९. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नतशीलाचार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणतशीलाचार वाले होते हैं,
३. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नतशीलाचार वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणतशीलाचार वाले होते है।[१३]

१०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतववहारे,
उण्णते णाममेगे पणतववहारे,
पणते णाममेगे उण्णतववहारे,
पणते णाममेगे पणतववहारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उन्नतो नामैकः उन्नतव्यवहारः,
उन्नतो नामैकः प्रणतव्यवहारः,
प्रणतो नामैकः उन्नतव्यवहारः,
प्रणतो नामैकः प्रणतव्यवहारः।

१०. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नतव्यवहार वाले होते हैं,
२. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणतव्यवहार वाले होते है,
३ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नतव्यवहार वाले होते हैं,
४. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणतव्यवहार वाले होते हैं।[१४]

११. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उण्णते णाममेगे उण्णतपरक्कमे,
उण्णते णाममेगे पणतपरक्कमे,
पणते णाममेगे उण्णतपरक्कमे,
पणते णाममेगे पणतपरक्कमे°।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उन्नतो नामैकः उन्नतपराक्रमः,
उन्नतो नामैकः प्रणतपराक्रमः,
प्रणतो नामैकः उन्नतपराक्रमः,
प्रणतो नामैकः प्रणतपराक्रमः।

११. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नतपराक्रम वाले होते हैं,
२ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणतपराक्रम वाले होते हैं।
३. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नतपराक्रम वाले होते हैं।
४. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणतपराक्रम वाले होते हैं।[१५]

उज्जु-वंक-पदं

१२. चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जू,
उज्जू णाममेगे वंके,
°वंके णाममेगे उज्जू,
वंके णाममेगे वंके।°

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जू,
°उज्जू णाममेगे वंके,
वंके णाममेगे उज्जू,
वंके णाममेगे वंके।

१३. चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुपरिणते,
उज्जू णाममेगे वंकपरिणते,
वंके णाममेगे उज्जुपरिणते,
वंके णाममेगे वंकपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुपरिणते,
उज्जू णाममेगे वंकपरिणते,
वंके णाममेगे उज्जुपरिणते,
वंके णाममेगे वंकपरिणते।

ऋजु-वक्र-पदम्

चत्वारः रुक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ऋजुः नामैकः ऋजुः,
ऋजुः नामैकः वक्रः,
वक्रो नामैकः ऋजुः,
वक्रो नामैकः वक्रः।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजुः नामैकः ऋजुः,
ऋजुः नामैकः वक्रः,
वक्रो नामैकः ऋजुः,
वक्रो नामैकः वक्रः।

चत्वारः रुक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ऋजुः नामैकः ऋजुपरिणतः,
ऋजु नामैकः वक्रपरिणतः,
वक्रो नामैकः ऋजुपरिणतः,
वक्रो नामैकः वक्रपरिणतः।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजुः नामैकः ऋजुपरिणतः,
ऋजुः नामैकः वक्रोपरिणतः,
वक्रो नामैकः ऋजुपरिणतः,
वक्रो नामैकः वक्रपरिणतः।

ऋजु-वक्र-पद

१२. वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ वृक्ष शरीर से भी ऋजु होते हैं और कार्य से भी ऋजु होते हैं—ठीक समय पर फल देने वाले होते है, २. कुछ वृक्ष शरीर से ऋजु किन्तु कार्य से वक्र होते है—ठीक समय पर फल देने वाले नही होते, ३. कुछ वृक्ष शरीर से वक्र, किन्तु कार्य से ऋजु होते है, ४. कुछ वृक्ष शरीर से भी वक्र होते है और कार्य से भी वक्र होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१. कुछ पुरुष शरीर की चेष्टा से भी ऋजु होते हैं और प्रकृति से भी ऋजु होते हैं, २. कुछ पुरुष शरीर की चेष्टा से ऋजु होते है, किन्तु प्रकृति से वक्र होते हैं, ३. कुछ पुरुष शरीर की चेष्टा से वक्र होते है, किन्तु प्रकृति से ऋजु होते हैं, ४. कुछ पुरुष शरीर की चेष्टा से भी वक्र होते हैं और प्रकृति से भी वक्र होते है।[१]

१३. वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ वृक्ष शरीर से ऋजु और ऋजु-परिणत होते हैं, २. कुछ वृक्ष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-परिणत होते हैं, ३. कुछ वृक्ष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-परिणत होते है, ४. कुछ वृक्ष शरीर से वक्र और वक्र-परिणत होते है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु-परिणत होते है, २. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-परिणत होते है, ३. कुछ पुरुष शरीर से वक्र किन्तु ऋजु-परिणत होते है, ४. कुछ पुरुष शरीर से वक्र और वक्र-परिणत होते हैं।

१४. चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुरूवे,
उज्जू णाममेगे वंकरूवे,
वंके णाममेगे उज्जुरूवे,
वंके णाममेगे वंकरूवे।

चत्वारः रुक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ऋजुः नामैकः ऋजुरूपः,
ऋजुः नामैकः वक्ररूपः,
वक्रो नामैकः ऋजुरूपः,
वक्रो नामैकः वक्ररूपः।

१४. वृक्ष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ वृक्ष शरीर से ऋजु और ऋजु-रूप वाले होते हैं, २. कुछ वृक्ष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-रूप वाले होते हैं, ३. कुछ वृक्ष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-रूप वाले होते हैं, ४. कुछ वृक्ष शरीर से वक्र और वक्र-रूप वाले होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुरूवे,
उज्जू णाममेगे वंकरूवे,
वंके णाममेगे उज्जुरूवे,
वंके णाममेगे वंकरूवे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजुः नामैकः ऋजुरूपः,
ऋजुः नामैकः वक्ररूपः,
वक्रो नामैकः ऋजुरूपः,
वक्रो नामैकः वक्ररूपः।

इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु-रूप वाले होते है, २ कुछ पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-रूप वाले होते है, ३. कुछ पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-रूप वाले होते है, ४ कुछ पुरुष शरीर से वक्र और वक्र-रूप वाले होते है।

१५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुमणे,
उज्जू णाममेगे वंकमणे,
वंके णाममेगे उज्जुमणे,
वंके णाममेगे वंकमणे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजुः नामैकः ऋजुमनाः,
ऋजुः नामैकः वक्रमनाः,
वक्रो नामैकः ऋजुमनाः,
वक्रो नामैकः वक्रमनाः।

१५ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु-मन वाले होते है, २. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-मन वाले होते है, ३ कुछ पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-मन वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष शरीर से वक्र और वक्र-मन वाले होते हैं।

१६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुसंकप्पे,
उज्जू णाममेगे वंकसंकप्पे,
वंके णाममेगे उज्जुसंकप्पे,
वंके णाममेगे वंकसंकप्पे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजुः नामैकः ऋजुसंकल्पः,
ऋजुः नामैकः वक्रसंकल्पः,
वक्रो नामैकः ऋजुसंकल्पः,
वक्रो नामैकः वक्रसंकल्पः।

१६. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु-संकल्प वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-संकल्प वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-संकल्प वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष शरीर से वक्र और वक्र-संकल्प वाले होते हैं।

१७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जुपण्णे,
उज्जू णाममेगे वंकपण्णे,
वंके णाममेगे उज्जुपण्णे,
वंके णाममेगे वंकपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजुः नामैकः ऋजुप्रज्ञः,
ऋजुः नामैकः वक्रप्रज्ञः,
वक्रो नामैकः ऋजुप्रज्ञः,
वक्रो नामैकः वक्रप्रज्ञः।

१७. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु-प्रज्ञा वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-प्रज्ञा वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-प्रज्ञा वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष शरीर से वक्र और वक्र-प्रज्ञा वाले होते हैं।

१८ **चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—**
उज्जू णाममेगे उज्जुदिट्ठी,
उज्जू णाममेगे वंकदिट्ठी,
वंके णाममेगे उज्जुदिट्ठी,
वंके णाममेगे वंकदिट्ठी।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजुः नामैकः ऋजुदृष्टिः,
ऋजुः नामैकः वक्रदृष्टिः,
वक्रो नामैकः ऋजुदृष्टिः,
वक्रो नामैकः वक्रदृष्टिः।

१८. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु-दृष्टि वाले होते है, २. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-दृष्टि वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-दृष्टि वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष शरीर से वक्र और वक्र-दृष्टि वाले होते है।

१९. **चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—**
उज्जू णाममेगे उज्जुसीलाचारे,
उज्जू णाममेगे वंकसीलाचारे,
वंके णाममेगे उज्जुसीलाचारे,
वंके णाममेगे वंकसीलाचारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजुः नामैकः ऋजुशीलाचारः,
ऋजुः नामैकः वक्रशीलाचारः,
वक्रो नामैकः ऋजुशीलाचारः,
वक्रो नामैकः वक्रशीलाचारः।

१९ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु-शीलाचार वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-शीलाचार वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-शीलाचार वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष शरीर से वक्र और वक्र-शीलाचार वाले होते हैं।

२०. **चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—**
उज्जू णाममेगे उज्जुववहारे,
उज्जू णाममेगे वंकववहारे,
वंके णाममेगे उज्जुववहारे,
वंके णाममेगे वंकववहारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजुः नामैकः ऋजुव्यवहारः,
ऋजुः नामैकः वक्रव्यवहारः,
वक्रो नामैकः ऋजुव्यवहारः,
वक्रो नामैकः वक्रव्यवहारः।

२०. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु-व्यवहार वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-व्यवहार वाले होते है, ३. कुछ पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-व्यवहार वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष शरीर से वक्र और वक्र-व्यवहार वाले होते है।

२१. **चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—**
उज्जू णाममेगे उज्जुपरक्कमे,
उज्जू णाममेगे वंकपरक्कमे,
वंके णाममेगे उज्जुपरक्कमे,
वंके णाममेगे वंकपरक्कमे°।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजुः नामैकः ऋजुपराक्रमः,
ऋजुः नामैकः वक्रपराक्रमः,
वक्रो नामैकः ऋजुपराक्रमः,
वक्रो नामैकः वक्रपराक्रमः।

२१. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु-पराक्रम वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-पराक्रम वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-पराक्रम वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष शरीर से वक्र और वक्र-पराक्रम वाले होते हैं।

भासा-पदं

भाषा-पदम्

भाषा-पद

२२. **पडिमापडिवण्णस्स णं अणगारस्स कप्पंति चत्तारि भासाओ भासित्तए, तं जहा—जायणी, पुच्छणी,**

प्रतिमाप्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते चतस्रः भाषाः भाषितु, तद्यथा— याचनी, प्रच्छनी, अनुज्ञापनी,

२२. भिक्षुप्रतिमाओं को अगीकार करने वाला मुनि चार विषयों से सम्बन्धित भाषा बोल सकता है—१. याचनी—याचना से

अणुण्णवणी, पुट्ठस्स वागरणी। पृष्टस्य व्याकरणी।

सम्बन्ध रखने वाली भाषा, २. प्रच्छनी— मार्ग आदि तथा सूत्रार्थ के प्रश्न से सम्बन्धित भाषा, ३. अनुज्ञापनी—स्थान आदि की आज्ञा लेने से सम्बन्धित भाषा, ४. पृष्ट व्याकरणी—पूछे हुए प्रश्नों का प्रतिपादन करने वाली भाषा।

२३. चत्तारि भासाजाता पण्णत्ता, तं जहा—सच्चमेगं भासज्जायं, बीयं मोसं, तइयं सच्चमोसं, चउत्थं असच्चमोसं।

चत्वारि भाषाजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सत्यमेकं भाषाजातं, द्वितीयं मृषा, तृतीयं सत्यमृषा, चतुर्थं असत्याऽमृषा।

२३. भाषा के चार प्रकार हैं—
१. सत्य (यथार्थ), २. मृषा (अयथार्थ), ३. सत्य-मृषा (सत्य-असत्य का मिश्रण), ४. असत्य-अमृषा (व्यवहार भाषा)।[17]

सुद्ध-असुद्ध-पदं

शुद्ध-अशुद्ध-पदम्

शुद्ध-अशुद्ध-पद

२४. चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा—
सुद्धे णामं एगे सुद्धे,
सुद्धे णामं एगे असुद्धे,
असुद्धे णामं एगे सुद्धे,
असुद्धे णामं एगे असुद्धे।

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धं नामैकं शुद्धं,
शुद्धं नामैकं अशुद्धं,
अशुद्धं नामैकं शुद्धं,
अशुद्धं नामैकं अशुद्धं।

२४. वस्त्र चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ वस्त्र प्रकृति से भी शुद्ध होते हैं और स्थिति से भी शुद्ध होते हैं, २. कुछ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध, किन्तु स्थिति से अशुद्ध होते हैं, ३. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध, किन्तु स्थिति से शुद्ध होते हैं, ४. कुछ वस्त्र प्रकृति से भी अशुद्ध होते हैं और स्थिति से भी अशुद्ध होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुद्धे णामं एगे सुद्धे,
सुद्धे णामं एगे असुद्धे,
असुद्धे णामं एगे सुद्धे,
असुद्धे णामं एगे असुद्धे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैकः शुद्धः,
शुद्धो नामैकः अशुद्धः,
अशुद्धो नामैकः शुद्धः,
अशुद्धो नामैकः अशुद्धः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष जाति से भी शुद्ध होते हैं और गुण से भी शुद्ध होते हैं, २. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु गुण से अशुद्ध होते हैं, ३. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु गुण से शुद्ध होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति से भी अशुद्ध होते हैं और गुण से भी अशुद्ध होते हैं।[18]

२५. चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा—
सुद्धे णामं एगे सुद्धपरिणए,
सुद्धे णामं एगे असुद्धपरिणए,
असुद्धे णामं एगे सुद्धपरिणए,
असुद्धे णामं एगे असुद्धपरिणए।

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धं नामैकं शुद्धपरिणतं,
शुद्धं नामैकं अशुद्धपरिणतं,
अशुद्धं नामैकं शुद्धपरिणतं,
अशुद्धं नामैकं अशुद्धपरिणतं।

२५. वस्त्र चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध और शुद्ध-परिणत होते हैं, २. कुछ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-परिणत होते हैं, ३. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-परिणत होते हैं, ४. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध और अशुद्ध-परिणत होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुद्धे णामं एगे सुद्धपरिणए,
सुद्धे णामं एगे असुद्धपरिणए,
असुद्धे णामं एगे सुद्धपरिणए,
असुद्धे णामं एगे असुद्धपरिणए।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैकः शुद्धपरिणतः,
शुद्धो नामैकः अशुद्धपरिणतः,
अशुद्धो नामैकः शुद्धपरिणतः,
अशुद्धो नामैकः अशुद्धपरिणतः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-परिणत होते हैं, २. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-परिणत होते हैं, ३. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-परिणत होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध-परिणत होते हैं।

२६. चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा—
सुद्धे णामं एगे सुद्धरूवे,
सुद्धे णामं एगे असुद्धरूवे,
असुद्धे णामं एगे सुद्धरूवे,
असुद्धे णामं एगे असुद्धरूवे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया, पण्णत्ता, तं जहा—
सुद्धे णामं एगे सुद्धरूवे,
सुद्धे णामं एगे असुद्धरूवे,
असुद्धे णामं एगे सुद्धरूवे,
असुद्धे णामं एगे असुद्धरूवे°।

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धं नामैक शुद्धरूपं,
शुद्धं नामैक अशुद्धरूपं,
अशुद्ध नामैकं शुद्धरूपं,
अशुद्ध नामैकं अशुद्धरूप।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैकः शुद्धरूपः,
शुद्धो नामैकः अशुद्धरूपः,
अशुद्धो नामैकः शुद्धरूपः,
अशुद्धो नामैकः अशुद्धरूपः।

२६ वस्त्र चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध और शुद्ध-रूप वाले होते हैं, २. कुछ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-रूप वाले होते हैं, ३. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-रूप वाले होते हैं, ४. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध और अशुद्ध-रूप वाले होते है।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष प्रकृति से शुद्ध और शुद्ध-रूप वाले होते है, २ कुछ पुरुष प्रकृति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-रूप वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष प्रकृति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-रूप वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष प्रकृति से अशुद्ध और अशुद्ध-रूप वाले होते है।

२७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुद्धे णामं एगे सुद्धमणे,
*सुद्धे णामं एगे असुद्धमणे,
असुद्धे णामं एगे सुद्धमणे,
असुद्धे णामं एगे असुद्धमणे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैकः शुद्धमनाः,
शुद्धो नामैकः अशुद्धमनाः,
अशुद्धो नामैकः शुद्धमनाः,
अशुद्धो नामैकः अशुद्धमनाः।

२७. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-मन वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-मन वाले होते है, ३. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-मन वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जति से अशुद्ध और अशुद्ध-मन वाले होते हैं।

२८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुद्धे णामं एगे सुद्धसंकप्पे,
सुद्धे णामं एगे असुद्धसंकप्पे,
असुद्धे णामं एगे सुद्धसंकप्पे,
असुद्धे णामं एगे असुद्धसंकप्पे,

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैकः शुद्धसंकल्पः,
शुद्धो नामैकः अशुद्धसंकल्पः,
अशुद्धो नामैकः शुद्धसंकल्पः,
अशुद्धो नामैकः अशुद्धसंकल्पः।

२८. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-सकल्प वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-सकल्प वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-संकल्प वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध-संकल्प वाले होते हैं।

२९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुद्धे णामं एगे सुद्धपण्णे,
सुद्धे णामं एगे असुद्धपण्णे,
असुद्धे णामं एगे सुद्धपण्णे,
असुद्धे णामं एगे असुद्धपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैकः शुद्धप्रज्ञः,
शुद्धो नामैकः अशुद्धप्रज्ञः,
अशुद्धो नामैकः शुद्धप्रज्ञः,
अशुद्धो नामैकः अशुद्धप्रज्ञः।

२९. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-प्रज्ञा वाले होते है, २ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-प्रज्ञा वाले होते है, ३ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-प्रज्ञा वाले होते है, ४. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध-प्रज्ञा वाले होते है।

३०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुद्धे णामं एगे सुद्धदिट्ठी,
सुद्धे णामं एगे असुद्धदिट्ठी,
असुद्धे णामं एगे सुद्धदिट्ठी,
असुद्धे णामं एगे असुद्धदिट्ठी।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैकः शुद्धदृष्टिः,
शुद्धो नामैकः अशुद्धदृष्टिः,
अशुद्धो नामैकः शुद्धदृष्टिः,
अशुद्धो नामैकः अशुद्धदृष्टिः।

३०. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-दृष्टि वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-दृष्टि वाले होते है, ३. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-दृष्टि वाले होते है, ४ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध-दृष्टि वाले होते हैं।

३१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुद्धे णामं एगे सुद्धसीलाचारे,
सुद्धे णामं एगे असुद्धसीलाचारे,
असुद्धे णामं एगे सुद्धसीलाचारे,
असुद्धे णामं एगे असुद्धसीलाचारे।

चत्वारि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैकः शुद्धशीलाचारः,
शुद्धो नामैकः अशुद्धशीलाचारः,
अशुद्धो नामैकः शुद्धशीलाचारः,
अशुद्धो नामैकः अशुद्धशीलाचारः।

३१. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-शीलाचार वाले होते है, २ कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-शीलाचार वाले होते है, ३ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-शीलाचार वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध-शीलाचार वाले होते है।

३२. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुद्धे णामं एगे सुद्धववहारे,
सुद्धे णामं एगे असुद्धववहारे,
असुद्धे णामं एगे सुद्धववहारे,
असुद्धे णामं एगे असुद्धववहारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैकः शुद्धव्यवहारः,
शुद्धो नामैकः अशुद्धव्यवहारः,
अशुद्धो नामैकः शुद्धव्यवहारः,
अशुद्धो नामैकः अशुद्धव्यवहारः।

३२. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-व्यवहार वाले होते है, २. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-व्यवहार वाले होते है, ३ कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-व्यवहार वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध-व्यवहार वाले होते है।

३३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुद्धे णामं एगे सुद्धपरक्कमे,
सुद्धे णामं एगे असुद्धपरक्कमे,

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुद्धो नामैकः शुद्धपराक्रमः,
शुद्धो नामैकः अशुद्धपराक्रमः,

३३. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-पराक्रम वाले होते है, २. कुछ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-पराक्रम वाले होते है,

असुद्धे णामं एगे सुद्धपरक्कमे,
असुद्धे णामं एगे असुद्धपरक्कमे ।°

अशुद्धो नामैकः शुद्धपराक्रमः,
अशुद्धो नामैकः अशुद्धपराक्रमः ।

३. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-पराक्रम वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध-पराक्रम वाले होते हैं।

सुत-पदं

३४. **चत्तारि सुता पण्णत्ता, तं जहा— अतिजाते, अणुजाते, अवजाते, कुलिंगाले ।**

सुत-पदम्

चत्वारः सुताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— अतिजातः, अनुजातः, अवजातः, कुलाङ्गारः ।

सुत-पद

३४. पुत्र चार प्रकार के होते हैं—
१. अतिजात—पिता से अधिक,
२. अनुजात—पिता के समान,
३. उपजात—पिता से हीन,
४. कुलांगार—कुल के लिए अंगारे जैसा, कुल दूषक ।

सच्च-असच्च-पदं

३५. **चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—**
सच्चे णामं एगे सच्चे,
सच्चे णामं एगे असच्चे,
असच्चे णामं एगे सच्चे,
असच्चे णामं एगे असच्चे ।

सत्य-असत्य-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैकः सत्यः,
सत्यो नामैकः असत्यः,
असत्यो नामैकः सत्यः,
असत्यो नामैकः असत्यः ।

सत्य-असत्य-पद

३५. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष पहले भी सत्य होते हैं और बाद में भी सत्य होते हैं, २. कुछ पुरुष पहले सत्य, किन्तु बाद मे असत्य होते हैं, ३. कुछ पुरुष पहले असत्य, किन्तु बाद में सत्य होते हैं, ४. कुछ पुरुष पहले भी असत्य होते हैं और बाद में भी असत्य होते हैं।

३६. **°चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—**
सच्चे णामं एगे सच्चपरिणते,
सच्चे णामं एगे असच्चपरिणते,
असच्चे णामं एगे सच्चपरिणते,
असच्चे णामं एगे असच्चपरिणते ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैकः सत्यपरिणतः,
सत्यो नामैकः असत्यपरिणतः,
असत्यो नामैकः सत्यपरिणतः,
असत्यो नामैकः असत्यपरिणतः ।

३६. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सत्य और सत्य-परिणत होते है, २. कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-परिणत होते हैं, ३. कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-परिणत होते हैं, ४. कुछ पुरुष असत्य और असत्य-परिणत होते हैं।

३७ **चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—**
सच्चे णामं एगे सच्चरूवे,
सच्चे णामं एगे असच्चरूवे,
असच्चे णामं एगे सच्चरूवे,
असच्चे णामं एगे असच्चरूवे ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैकः सत्यरूपः,
सत्यो नामैकः असत्यरूपः,
असत्यो नामैकः सत्यरूपः,
असत्यो नामैकः असत्यरूपः ।

३७ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष सत्य और सत्य-रूप वाले होते है, २ कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-रूप वाले होते है, ३. कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-रूप वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष असत्य और असत्य-रूप वाले होते हैं।

३८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सच्चे णामं एगे सच्चमणे,
सच्चे णामं एगे असच्चमणे,
असच्चे णामं एगे सच्चमणे,
असच्चे णामं एगे असच्चमणे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैकः सत्यमना,
सत्यो नामैकः असत्यमना,
असत्यो नामैकः सत्यमना,
असत्यो नामैकः असत्यमना ।

३८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष सत्य और सत्य-मन वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-मन वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-मन वाले होते है, ४. कुछ पुरुष असत्य और असत्य-मन वाले होते है।

३९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सच्चे णामं एगे सच्चसंकप्पे,
सच्चे णामं एगे असच्चसंकप्पे,
असच्चे णामं एगे सच्चसंकप्पे,
असच्चे णामं एगे असच्चसंकप्पे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैकः सत्यसकल्पः,
सत्यो नामैकः असत्यसकल्पः,
असत्यो नामैकः सत्यसकल्पः,
असत्यो नामैकः असत्यसकल्पः।

३९. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष सत्य और सत्य-सकल्प वाले होते है, २. कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-सकल्प वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-सकल्प वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष असत्य और असत्य-सकल्प वाले होते हैं।

४०. चत्तारि पुरिसजाया, पण्णत्ता, तं जहा—
सच्चे णामं एगे सच्चपण्णे,
सच्चे णामं एगे असच्चपण्णे,
असच्चे णामं एगे सच्चपण्णे,
असच्चे णामं एगे असच्चपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैकः सत्यप्रज्ञः,
सत्यो नामैकः असत्यप्रज्ञः,
असत्यो नामैकः सत्यप्रज्ञः
असत्यो नामैकः असत्यप्रज्ञः ।

४० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष सत्य और सत्य-प्रज्ञा वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-प्रज्ञा वाले होते है, ३. कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-प्रज्ञा वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष असत्य और असत्य-प्रज्ञा वाले होते हैं।

४१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सच्चे णामं एगे सच्चदिट्ठी,
सच्चे णामं एगे असच्चदिट्ठी,
असच्चे णामं एगे सच्चदिट्ठी,
असच्चे णामं एगे असच्चदिट्ठी।

चत्वारि पुरुषजातनि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैकः सत्यदृष्टिः,
सत्यो नामैकः असत्यदृष्टिः,
असत्यो नामैकः सत्यदृष्टिः,
असत्यो नामैकः असत्यदृष्टिः।

४१ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष सत्य और सत्य-दृष्टि वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-दृष्टि वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-दृष्टि वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष असत्य और असत्य-दृष्टि वाले होते हैं।

४२. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सच्चे णामं एगे सच्चसीलाचारे,
सच्चे णामं एगे असच्चसीलाचारे,
असच्चे णामं एगे सच्चसीलाचारे,
असच्चे णामं एगे असच्चसीलाचारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैकः सत्यशीलाचारः,
सत्यो नामैकः असत्यशीलाचारः,
असत्यो नामैकः सत्यशीलाचारः,
असत्यो नामैकः असत्यशीलाचारः ।

४२. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सत्य और सत्य-शीलाचार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-शीलाचार वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-शीलाचार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष असत्य और असत्य-शीलाचार वाले होते हैं।

४३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सच्चे णामं एगे सच्चववहारे,
सच्चे णामं एगे असच्चववहारे,
असच्चे णामं एगे सच्चववहारे,
असच्चे णामं एगे असच्चववहारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैकः सत्यव्यवहारः,
सत्यो नामैकः असत्यव्यवहारः,
असत्यो नामैकः सत्यव्यवहारः,
असत्यो नामैकः असत्यव्यवहारः।

४३. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष सत्य और सत्य-व्यवहार वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-व्यवहार वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-व्यवहार वाले होते है, ४. कुछ पुरुष असत्य और असत्य-व्यवहार वाले होते हैं।

४४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सच्चे णामं एगे सच्चपरक्कमे,
सच्चे णामं एगे असच्चपरक्कमे,
असच्चे णामं एगे सच्चपरक्कमे,
असच्चे णामं एगे असच्चपरक्कमे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्यो नामैकः सत्यपराक्रमः,
सत्यो नामैकः असत्यपराक्रमः,
असत्यो नामैकः सत्यपराक्रमः,
असत्यो नामैकः असत्यपराक्रमः।

४४. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष सत्य और सत्य-पराक्रम वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-पराक्रम वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य-पराक्रम वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष असत्य और असत्य-पराक्रम वाले होते हैं।

सुचि-असुचि-पदं

शुचि-अशुचि-पदम्

शुचि-अशुचि-पद

४५. चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णामं एगे सुई,
सुई णामं एगे असुई,
°असुई णामं एगे सुई,
असुई णामं एगे असुई।°

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचि नामैकं शुचि,
शुचि नामैकं अशुचि,
अशुचि नामैकं शुचि,
अशुचि नामैकं अशुचि।

४५. वस्त्र चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ वस्त्र प्रकृति से भी शुचि होते है और परिष्कृत होने के कारण भी शुचि होते हैं, २. कुछ वस्त्र प्रकृति से शुचि, किन्तु अपरिष्कृत होने के कारण अशुचि होते हैं, ३ कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुचि, किन्तु परिष्कृत होने के कारण शुचि होते हैं, ४. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुचि होते है और अपरिष्कृत होने के कारण भी अशुचि होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णामं एगे सुई,
°सुई णामं एगे असुई,
असुई णामं एगे सुई,
असुई णामं एगे असुई।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैकः शुचिः,
शुचिर्नामैकः अशुचिः,
अशुचिर्नामैकः, शुचिः
अशुचिर्नामैकः अशुचिः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१ कुछ पुरुष शरीर से भी शुचि होते है और स्वभाव से भी शुचि होते है, २. कुछ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु स्वभाव से अशुचि होते हैं, ३. कुछ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु स्वभाव से शुचि होते हैं, ४. कुछ पुरुष शरीर से भी अशुचि होते है और स्वभाव से भी अशुचि होते हैं।

४६. चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णामं एगे सुइपरिणते,
सुई णामं एगे असुइपरिणते,
असुई णामं एगे सुइपरिणते,
असुई णामं एगे असुइपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णामं एगे सुइपरिणते,
सुई णामं एगे असुइपरिणते,
असुई णामं एगे सुइपरिणते,
असुई णामं एगे असुइपरिणते।

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचि नामैकं शुचिपरिणतं,
शुचि नामैकं अशुचिपरिणतं,
अशुचि नामैकं शुचिपरिणतं,
अशुचि नामैकं अशुचिपरिणतम्।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—
शुचिर्नामैकः शुचिपरिणतः,
शुचिर्नामैकः अशुचिपरिणतः,
अशुचिर्नामैकः शुचिपरिणतः,
अशुचिर्नामैकः अशुचिपरिणतः।

४६. वस्त्र चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ वस्त्र प्रकृति से शुचि और शुचि-परिणत होते है, २ कुछ वस्त्र प्रकृति से शुचि, किन्तु अशुचि-परिणत होते है, ३. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुचि, किन्तु शुचि-परिणत होते है, ४. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुचि और अशुचि-परिणत होते है।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष शरीर से शुचि और शुचि-परिणत होते है, २. कुछ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-परिणत होते है, ३. कुछ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि-परिणत होते हैं, ४. कुछ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि-परिणत होते है।

४७. चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णामं एगे सुइरूवे,
सुई णामं एगे असुइरूवे,
असुई णामं एगे सुइरूवे,
असुई णामं एगे असुइरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णामं एगे सुइरूवे,
सुई णामं एगे असुइरूवे,
असुई णामं एगे सुइरूवे,
असुई णामं एगे असुइरूवे।

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचि नामैकं शुचिरूपं,
शुचि नामैकं अशुचिरूपं,
अशुचि नामैकं शुचिरूपं,
अशुचि नामैकं अशुचिरूपम्।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैकः शुचिरूपः,
शुचिर्नामैकः अशुचिरूपः,
अशुचिर्नामैकः शुचिरूपः,
अशुचिर्नामैकः अशुचिरूपः।

४७. वस्त्र चार प्रकार के होते है—
१ कुछ वस्त्र प्रकृति से शुचि और शुचि-रूप वाले होते हैं, २ कुछ वस्त्र प्रकृति से शुचि, किन्तु अशुचि-रूप वाले होते है, ३. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुचि, किन्तु शुचिरूप वाले होते है, ४. कुछ वस्त्र प्रकृति से अशुचि और अशुचि-रूप वाले होते है।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष शरीर से शुचि और शुचि-रूप वाले होते है, २. कुछ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-रूप वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि-रूप वाले होते है, ४ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि-रूप वाले होते हैं।

४८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णामं एगे सुइमणे,
सुई णामं एगे असुइमणे,
असुई णामं एगे सुइमणे,
असुई णामं एगे असुइमणे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैकः शुचिमनाः,
शुचिर्नामैकः अशुचिमनाः,
अशुचिर्नामैकः शुचिमनाः,
अशुचिर्नामैकः अशुचिमनाः।

४८. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष शरीर से शुचि और शुचि-मन वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-मन वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि मन वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि मन वाले होते हैं।

४९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णामं एगे सुइसंकप्पे,
सुई णामं एगे असुइसंकप्पे,
असुई णामं एगे सुइसंकप्पे,
असुई णामं एगे असुइसंकप्पे ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैकः शुचिसकल्पः,
शुचिर्नामैकः अशुचिसकल्पः,
अशुचिर्नामैकः शुचिसकल्पः,
अशुचिर्नामैकः अशुचिसकल्पः ।

४९. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष शरीर से शुचि और शुचि-संकल्प वाले होते है, २. कुछ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-सकल्प वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि-सकल्प वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि-सकल्प वाले होते है ।

५०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णामं एगे सुइपण्णे,
सुई णामं एगे असुइपण्णे,
असुई णामं एगे सुइपण्णे,
असुई णामं एगे असुइपण्णे ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैकः शुचिप्रज्ञः,
शुचिर्नामैकः अशुचिप्रज्ञः,
अशुचिर्नामैकः शुचिप्रज्ञः,
अशुचिर्नामैकः अशुचिप्रज्ञः ।

५०. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष शरीर से शुचि और शुचि-प्रज्ञा वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-प्रज्ञा वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि-प्रज्ञा वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि-प्रज्ञा वाले होते हैं ।

५१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णामं एगे सुइदिट्ठी,
सुई णामं एगे असुइदिट्ठी,
असुई णामं एगे सुइदिट्ठी,
असुई णामं एगे असुइदिट्ठी ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैकः शुचिदृष्टिः,
शुचिर्नामैकः अशुचिदृष्टिः,
अशुचिर्नामैकः शुचिदृष्टिः,
अशुचिर्नामैकः अशुचिदृष्टिः ।

५१. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष शरीर से शुचि और शुचि-दृष्टि वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-दृष्टि वाले होते हैं, ६. कुछ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि-दृष्टि वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि-दृष्टि वाले होते है ।

५२. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णामं एगे सुइसीलाचारे,
सुई णामं एगे असुइसीलाचारे,
असुई णामं एगे सुइसीलाचारे,
असुई णामं एगे असुइसीलाचारे ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैकः शुचिशीलाचारः,
शुचिर्नामैकः अशुचिशीलाचारः,
अशुचिर्नामैकः शुचिशीलाचारः,
अशुचिर्नामैकः अशुचिशीलाचारः ।

५२. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष शरीर से शुचि और शुचि-शीलाचार वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-शीलाचार वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि-शीलाचार वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि-शीलचार वाले होते हैं ।

५३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णामं एगे सुइववहारे,
सुई णामं एगे असुइववहारे,
असुई णामं एगे सुइववहारे,
असुई णामं एगे असुइववहारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैकः शुचिव्यवहारः,
शुचिर्नामैकः अशुचिव्यवहारः,
अशुचिर्नामैकः शुचिव्यवहारः,
अशुचिर्नामैकः अशुचिव्यवहारः।

५३. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष शरीर से शुचि और शुचि-व्यवहार वाले होते है, २ कुछ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-व्यवहार वाले होते है, ३ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि-व्यवहार वाले होते है, ४. कुछ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि-व्यवहार वाले होते है।

५४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुई णामं एगे सुइपरक्कमे,
सुई णामं एगे असुइपरक्कमे,
असुई णामं एगे सुइपरक्कमे,
असुई णामं एगे असुइपरक्कमे।°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शुचिर्नामैकः शुचिपराक्रमः,
शुचिर्नामैकः अशुचिपराक्रमः,
अशुचिर्नामैकः शुचिपराक्रमः,
अशुचिर्नामैकः अशुचिपराक्रमः।

५४. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष शरीर से शुचि और शुचि-पराक्रम वाले होते है, २. कुछ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि-पराक्रम वाले होते है, ३ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि-पराक्रम वाले होते है, ४ कुछ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि-पराक्रम वाले होते हैं।

कोरव-पदं

कोरक-पदम्

कोरक-पद

५५. चत्तारि कोरवा पण्णत्ता, तं जहा—
अंबपलंबकोरवे, तालपलंबकोरवे,
वल्लिपलंबकोरवे,
मेंढविसाणकोरवे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अंबपलंबकोरवसमाणे,
तालपलंबकोरवसमाणे,
वल्लिपलंबकोरवसमाणे,
मेंढविसाणकोरवसमाणे।

चत्वारि कोरकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आम्रप्रलम्बकोरकं, तालप्रलम्बकोरकं,
वल्लीप्रलम्बकोरकं, मेढ्विषाणाकोरकम्।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आम्रप्रलम्बकोरकसमानः,
तालप्रलम्बकोरकसमानः,
वल्लीप्रलम्बकोरकसमानः,
मेढ्विषाणाकोरकसमानः।

५५ कली चार प्रकार की होती है—
१. आम्र-फल की कली, २. ताड-फल की कली, ३. बल्लि-फल की कली, ४. मेष-शृंग के फल की कली।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष आम्र-फल की कली के समान होते है, २. कुछ पुरुष ताड-फल की कली के समान होते है, ३ कुछ पुरुष वल्लि-फल की कली के समान होते हैं, ४ कुछ पुरुष मेष-शृंग के फल की कली के समान होते हैं।[10]

भिक्खाग-पदं

भिक्षाक-पदम्

भिक्षाक-पद

५६. चत्तारि घुणा पण्णत्ता, तं जहा—
तयक्खाए, छल्लिक्खाए,
कट्ठक्खाए, सारक्खाए।

चत्वारः घुणाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
त्वक्खादः, छल्लीखादः, काष्ठखादः,
सारखादः।

५६. घुण चार प्रकार के होते हैं—
१ त्वचा—बाहरी छाल को खाने वाले,
२. छाल—त्वचा के भीतरी भाग को

खाने वाले, ३. काठ को खाने वाले, ४. सार—[काठ के मध्य भाग] को खाने वाले।

एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता, तं जहा—
तयक्खायसमाणे,
°छल्लिक्खायसमाणे,
कट्ठक्खायसमाणे°,
सारक्खायसमाणे।
१ तयक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स सारक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।
२ सारक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स तयक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।
३ छल्लिक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स कट्ठक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।
४ कट्ठक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स छल्लिक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।

एवमेव चत्वारः भिक्षाकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
त्वक्खादसमानः, छल्लीखादसमानः, काष्ठखादसमानः, सारखादसमानः।
१. त्वक्खादसमानस्य भिक्षाकस्य सारखादसमानं तपः प्रज्ञप्तम्।
२. सारखादसमानस्य भिक्षाकस्य त्वक्खादसमानं तपः प्रज्ञप्तम्।
३. छल्लीखादसमानस्य भिक्षाकस्य काष्ठखादसमानं तपः प्रज्ञप्तम्।
४. काष्ठखादसमानस्य भिक्षाकस्य छल्लीखादसमानं तपः प्रज्ञप्तम्।

इसी प्रकार भिक्षु भी चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ भिक्षु त्वचा को खाने वाले घुण के समान—प्राप्त आहार करने वाले होते है, २. कुछ भिक्षु छाल को खाने वाले घुण के समान—रूक्ष आहार करने वाले होते है, ३. कुछ भिक्षु काठ को खाने वाले घुण के समान—दूध, दही आदि विगयो को आहार न करने वाले होते है, ४. कुछ भिक्षु सार को खाने वाले घुण के समान—विगयो से परिपूर्ण आहार करने वाले होते है।
१. जो भिक्षु त्वचा को खाने वाले घुण के समान होते हैं, उनके सार को खाने वाले घुण के समान तप होता है, २. जो भिक्षु सार को खाने वाले घुण के समान होते है, उनके त्वचा को खाने वाले घुण के समान तप होता है, ३. जो भिक्षु छाल को खाने वाले घुण के समान होते हैं, उनके काठ को खाने वाले घुण के समान तप होता है, ४. जो भिक्षु काठ को खाने वाले घुण के समान होते हैं, उनके छाल को खाने वाले घुण के समान तप होता है।[११]

तणवणस्सइ-पदं

५७ चउव्विहा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, तं जहा—
अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खंधबीया।

तृणवनस्पति-पदम्

चतुर्विधाः तृणवनस्पतिकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अग्रबीजाः, मूलबीजाः, पर्वबीजाः, स्कन्धबीजाः।

तृणवनस्पति-पद

५७. तृण वनस्पति-कायिक चार प्रकार के होते है—१. अग्रबीज—कोरण्ट आदि। इनके अग्रभाग ही बीज होते है अथवा व्रीहि आदि इनके अग्रभाग में बीज होते हैं, २. मूल बीज—उत्पल, कद आदि। इनके मूल ही बीज होते है, ३. पर्वबीज—इक्षु आदि। इनके पर्व ही बीज होते है,

४. स्कन्ध-बीज—सल्लकी आदि । इनके स्कन्ध ही बीज होते हैं।[11]

अहुणोववण्ण-णेरइय-पदं

५८. चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे णेरइए णिरयलोगंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए—

१. अहुणोववण्णे णेरइए णिरयलोगंसि समुब्भूयं वेयणं वेयमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव ण संचाएति हव्वमागच्छित्तए ।

२. अहुणोववण्णे णेरइए णिरयलोगंसि णिरयपालेहिं भुज्जो-भुज्जो अहिट्ठिज्जमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए

३. अहुणोववण्णे णेरइए णिरयवेयणिज्जंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि अणिज्जिण्णंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए

४. °अहुणोववण्णे णेरइए णिरयाउअंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि अणिज्जिण्णंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए,° णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए—

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे णेरइए° णिरयलोगंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए°, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए ।

अधुनोपपन्न-नैरयिक-पदम्

चतुर्भि: स्थानैः अधुनोपपन्नः नैरयिकः निरयलोके इच्छेत् मानुषं लोकं अर्वाग् आगन्तुम्, नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्—

१. अधुनोपपन्नः नैरयिकः निरयलोके समुद्भूता वेदना वेदयन् इच्छेत् मानुषं लोकं अर्वाग् आगन्तुम्, नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्

२. अधुनोपपन्नः नैरयिकः निरयलोके नरकपालैः भूयः-भूयः अधिष्ठीयमानः इच्छेत् मानुषं लोकं अर्वाग् आगन्तुम् नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्

३ अधुनोपपन्नः नैरयिकः निरयवेदनीये कर्मणि अक्षीणे अवेदिते अनिर्जीर्णे इच्छेत् मानुषं लोकं अर्वाग् आगन्तुम्, नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्

४. अधुनोपपन्नः नैरयिकः निरयायुषे कर्मणि अक्षीणे अवेदिते अनिर्जीर्णे इच्छेत् मानुषं लोकं अर्वाग् आगन्तुम्, नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्—

इति एतैः चतुर्भिः स्थानैः अधुनोपपन्नः नैरयिकः निरयलोके इच्छेत् मानुषं लोकं अर्वाग् आगन्तुम्, नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम् ।

अधुनोपपन्न-नैरयिक-पद

५८ नरक लोक मे तत्काल उत्पन्न नैरयिक चार कारणो से शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है, किन्तु आ नही सकता—

१. तत्काल उत्पन्न नैरयिक नरक लोक मे होने वाली पीडा अनुभव करता है तब वह शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है, किन्तु आ नही सकता,

२ तत्काल उत्पन्न नैरयिक नरक लोक मे नरकपालो द्वारा बार-बार आक्रान्त होने पर शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है, किन्तु आ नही सकता,

३. तत्काल उत्पन्न नैरयिक शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है, किन्तु नरक मे भोगने योग्य कर्मों के क्षीण हुए बिना, उन्हे भोगे बिना, उनका निर्जरण हुए बिना आ नही सकता,

४. तत्काल उत्पन्न नैरयिक शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है, किन्तु नरक सम्बन्धी आयुष्यकर्म के क्षीण हुए बिना, उसे भोगे बिना, उसका निर्जरण हुए बिना आ नही सकता—

इन चार कारणो से नरकलोक में तत्काल उत्पन्न नैरयिक शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है, किन्तु आ नही सकता ।

संघाडी-पदं

५९. कप्पंति णिग्गंथीणं चत्तारि संघाडीओ धारित्तए वा परिहरित्तए वा, तं जहा—
एगं दुहत्थवित्थारं,
दो तिहत्थवित्थारं,
एगं चउहत्थवित्थारं।

सङ्घाटी-पदम्

कल्पन्ते निर्ग्रन्थीनां चतस्रः सङ्घाट्यः धर्तुं वा परिधातुं वा, तद्यथा—
एका द्विहस्तविस्तारा, द्वे त्रिहस्तविस्तारे, एका चतुर्हस्तविस्तारा।

सङ्घाटी-पद

५९. निर्ग्रन्थियां चार संघाटियां रख व ओढ़ सकती हैं—१. दो हाथ वाली संघाटी—उपाश्रय मे ओढने के काम आती है, २. तीन हाथ विस्तार वाली एक सघाटी—भिक्षा लाए तब ओढने के काम आती है, ३. तीन हाथ विस्तार वाली दूसरी सघाटी—शौचार्थ जाए तब ओढने के काम आती है, ४ चार हाथ विस्तार वाली सघाटी—व्याख्यानपरिषदमे ओढनेके काम आती है

झाण-पदं

६०. चत्तारि झाणा पण्णत्ता, तं जहा—
अट्टे झाणे, रोद्दे झाणे,
धम्मे झाणे, सुक्के झाणे।

६१. अट्टे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. अमणुण्ण-संपओग-संपउत्ते, तस्स विप्पओग-सति-समण्णागते यावि भवति
२. मणुण्ण-संपओग-संपउत्ते, तस्स अविप्पओगसति-समण्णा-गते यावि भवति
३. आतंक-संपओग-संपउत्ते, तस्स विप्पओग-सति-समण्णागते यावि भवति
४. परिजुसित-काम-भोग-संपओग संपउत्ते, तस्स अविप्पओग-सति-समण्णागते यावि भवति।

६२. अट्टस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—
कंदणता, सोयणता,
तिप्पणता, परिदेवणता।

ध्यान-पदम्

चत्वारि ध्यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्त्त ध्यानं, रौद्रं ध्यानं, धर्म्यं ध्यानं, शुक्लं ध्यानम्।

आर्त्त ध्यानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
१ अमनोज्ञ-सम्प्रयोग-सम्प्रयुक्तः, तस्य विप्रयोग-स्मृति-समन्वागतश्चापि भवति
२. मनोज्ञ-सम्प्रयोग-सम्प्रयुक्तः, तस्य अविप्रयोग-स्मृति-समन्वागतश्चापि भवति
३. आतङ्क-सम्प्रयोग-सम्प्रयुक्तः, तस्य विप्रयोग-स्मृति-समन्वागतश्चापि भवति
४. परिजुष्ट-काम-भोग-संप्रयोग-सम्प्रयुक्तः, तस्य अविप्रयोग-स्मृति-समन्वागतश्चापि भवति।

आर्त्तस्य ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
क्रन्दनता, शोचनता,
तेपनता, परिदेवनता।

ध्यान-पद

६०. ध्यान चार प्रकार का होता है—
१. आर्त्त, २. रौद्र, ३. धर्म्य, ४. शुक्ल।[२३]

६१. आर्त्त ध्यान चार प्रकार का होता है—
१. अमनोज्ञ सयोग से सयुक्त होने पर उस [अमनोज्ञ विषय] के वियोग की चिन्ता मे लीन हो जाना,
२. मनोज्ञ सयोग से सयुक्त होने पर उस [मनोज्ञ विषय] के वियोग न होने की चिन्ता मे लीन हो जाना,
३. आतक [सद्योघाती रोग] के सयोग से सयुक्त होने पर उसके वियोग की चिन्ता मे लीन हो जाना,
४ प्रीति-कर काम-भोग के संयोग से सयुक्त होने पर उसके वियोग न होने की चिन्ता मे लीन हो जाना।[२४]

६२. आर्त्त ध्यान के चार लक्षण हैं—
१. आक्रन्द करना, २. शोक करना,
३. आसू बहाना, ४. विलाप करना।[२५]

६३. रोद्दे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—
हिंसाणुबंधि, मोसाणुबंधि, तेणाणुबंधि, सारक्खणाणुबंधि ।

रौद्र ध्यान चतुर्विध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
हिंसानुबन्धि, मृषानुबन्धि, स्तैन्यानुबन्धि, सरक्षणानुबन्धि ।

६३. रौद्र ध्यान चार प्रकार का होता है—
१. हिंसानुबन्धी—जिसमे हिंसा का अनुबन्ध [सतत प्रवर्तन] हो, २. मृषानुबन्धी—जिसमे मृपा का अनुबंध हो, ३ स्तैन्यानुबन्धी—जिसमे चोरी का अनुबन्ध हो, ४ सरक्षणानुबन्धी—जिसमे विपय के साधनों के सरक्षण का अनुबन्ध हो ।[२५]

६४. रुद्दस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—
ओसण्णदोसे, बहुदोसे, अण्णाणदोसे, आमरणंतदोसे ।

रौद्रस्य ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—उत्सन्नदोष, बहुदोप, अज्ञानदोष, आमरणान्तदोष ।

६४ रौद्र ध्यान के चार लक्षण है—
१ उत्सन्नदोष—प्राय हिंसा आदि मे प्रवृत्त रहना, २. बहुदोप—हिंसादि की विविध-प्रवृत्तियो मे सलग्न रहना, ३ अज्ञान-दोष—अज्ञानवश हिंसा आदि मे प्रवृत्त होना, ४ आमरणान्तदोष—मरणान्तक हिंसा आदि करने का अनुताप न होना ।[२७]

६५. धम्मे झाणे चउव्विहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते, तं जहा—
आणाविजए, अवायविजए, विवागविजए, संठाणविजए ।

धर्म्य ध्यान चतुर्विध चतुष्प्रत्यवतार प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आज्ञाविचय, अपायविचयं, विपाकविचय, सस्थानविचयम् ।

६५. धर्म्य ध्यान चार प्रकार का है, वह चार पदो [स्वरूप, लक्षण, आलम्बन और अनुप्रेक्षा] मे अवतरित होता है । उसके चार प्रकार ये हैं—१ आज्ञा-विचय—प्रवचन के निर्णय मे सलग्न चित्त,
२ उपाय-विचय—दोषो के निर्णय मे सलग्न चित्त, ३. विपाक-विचय—कर्म-फलो के निर्णय मे सलग्न चित्त,
४. संस्थान-विचय—विविध पदार्थों के आकृति-निर्णय मे सलग्न चित्त ।[२८]

६६. धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—
आणारुई, णिसग्गरुई, सुत्तरुई, ओगाढरुई ।

धर्म्यस्य ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आज्ञारुचिः, निसर्गरुचि, सूत्ररुचिः, अवगाढरुचि. ।

६६ धर्म्य ध्यान के चार लक्षण हैं—
१. आज्ञा-रुचि—प्रवचन मे श्रद्धा होना, २. निसर्ग-रुचि—सहज ही सत्य मे श्रद्धा होना, ३. सूत्र-रुचि—सूत्र पढ़ने के द्वारा सत्य मे श्रद्धा उत्पन्न होना, ४. अवगाढ-रुचि—विस्तृत पद्धति से सत्य मे श्रद्धा होना ।[२९]

६७. धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णत्ता, तं जहा—
वायणा, पडिपुच्छणा,

धर्म्यस्य ध्यानस्य चत्वारि आलम्बनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—वाचना, प्रतिप्रच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा ।

६७ धर्म्य ध्यान के चार आलम्बन हैं—
१. वाचना—पढ़ाना, २. प्रतिप्रच्छना—शंका निवारण के लिए प्रश्न करना,

परियट्टणा, अणुप्पेहा।

३ परिवर्तना—पुनरावर्तन करना, ४. अनुप्रेक्षा—अर्थ का चिन्तन करना।[10]

६८. धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—एगाणुप्पेहा, अणिच्चाणुप्पेहा, असरणाणुप्पेहा, संसाराणुप्पेहा।

धर्म्यस्य ध्यानस्य चतस्रः अनुप्रेक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—एकानुप्रेक्षा, अनित्यानुप्रेक्षा, अशरणानुप्रेक्षा, ससारानुप्रेक्षा।

६८ धर्म्य ध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं हैं—१. एकत्वअनुप्रेक्षा—अकेलेपन का चिन्तन करना, २. अनित्यअनुप्रेक्षा—पदार्थों की अनित्यता का चिन्तन करना, ३ अशरण-अनुप्रेक्षा—अशरण दशा का चिन्तन करना, ४ संसारअनुप्रेक्षा—संसार-परिभ्रमण का चिन्तन करना।[11]

६९. सुक्के झाणे चउव्विहे चउप्पडोआरे पण्णत्ते, तं जहा—पुहत्तवितक्के सवियारी, एगत्तवितक्के अवियारी, सुहुमकिरिए अणियट्टी, समुच्छिण्णकिरिए अप्पडिवाती।

शुक्ल ध्यान चतुर्विधं चतुष्प्रत्यवतार प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथक्त्ववितर्क . सविचारि, एकत्ववितर्क अविचारि, सूक्ष्मक्रिय अनिवृत्ति, समुच्छिन्नक्रिय अप्रतिपाति।

६९. शुक्ल ध्यान के चार प्रकार हैं और वह चार पदो (स्वरूप, लक्षण, आलम्बन, अनुप्रेक्षा) में अवतरित होता है। उसके चार प्रकार ये हैं—१. पृथकत्ववितर्क-सविचारी, २ एकत्ववितर्कअविचारी, ३ सूक्ष्मक्रियअनिवृत्ति, ४. समुच्छिन्नक्रियअप्रतिपाति।[12]

७० सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—अव्वहे, असम्मोहे, विवेगे, विउस्सगे।

शुक्लस्य ध्यानस्य चत्वारि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अव्यथ, असम्मोह., विवेक, व्युत्सर्गः।

७०. शुक्ल ध्यान के चार लक्षण हैं—१. अव्यथ—क्षोभ का अभाव, २. असम्मोह—सूक्ष्म पदार्थ विषयक मूढता का अभाव, ३. विवेक—शरीर और आत्मा के भेद का ज्ञान, ४. व्युत्सर्ग—शरीर और उपधि मे अनासक्त भाव।[13]

७१ सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णत्ता, तं जहा—खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे।

शुक्लस्य ध्यानस्य चत्वारि आलम्बनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—क्षान्ति., मुक्तिः, आर्जव, मार्दवम्।

७१. शुक्ल ध्यान के चार आलम्बन हैं—१ शान्ति—क्षमा, २ मुक्ति—निर्लोभत, ३. आर्जव—सरलता, ४. मार्दव—मृदुता।[14]

७२. सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ,तं जहा—अणंतवत्तियाणुप्पेहा, विप्परिणामाणुप्पेहा, असुभाणुप्पेहा, अवायाणुप्पेहा।

शुक्लस्य ध्यानस्य चतस्रः अनुप्रेक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा, विपरिणामानुप्रेक्षा, अशुभानुप्रेक्षा, अपायानुप्रेक्षा।

७२. शुक्ल ध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं हैं—१. अनन्तवृत्तिताअनुप्रेक्षा—संसार परम्परा का चिन्तन करना, २. विपरिणाम-अनुप्रेक्षा—वस्तुओ के विविध परिणामो का चिन्तन करना, ३. अशुभअनुप्रेक्षा—पदार्थों की अशुभता का चिन्तन करना, ४. अपायअनुप्रेक्षा—दोषो का चिन्तन करना।[15]

देव-ठिइ-पदं

७३. चउव्विहा देवाण ठिती पण्णत्ता, तं जहा—
देवे णाममेगे,
देवसिणाते णाममेगे,
देवपुरोहिते णाममेगे,
देवपज्जलणे णाममेगे।

देव-स्थिति-पदम्

चतुर्विधा देवाना स्थिति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
देवः नामैक,
देवस्नातक. नामैक,
देवपुरोहित नामैकः,
देवप्रज्वलन· नामैक।

देव-स्थिति-पद

७३. देवताओं की स्थिति—(पदमर्यादा) चार प्रकार की होती है—
१. देव—राजास्थानीय, २. देव-स्नातक—अमात्य, ३. देव-पुरोहित—शान्तिकर्म करने वाला, ४. देव-प्रज्वलन—मगल पाठक।

संवास-पदं

७४. चउव्विहे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—देवे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा, देवे णाममेगे छवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा, छवी णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा, छवी णाममेगे छवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा।

संवास-पदम्

चतुर्विध. सवास प्रज्ञप्तः, तद्यथा—देव. नामैक देव्या सार्ध संवास गच्छेत्, देव नामैक छव्या सार्ध सवास गच्छेत्, छवि नामैक. देव्या सार्ध सवास गच्छेत्, छवि. नामैक· छव्या सार्ध संवास गच्छेत्।

संवास-पद

७४. सवास (सभोग) चार प्रकार का होता है—१. कुछ देव देवी के साथ सभोग करते है, २. कुछ देव नारी या तिर्यञ्च-स्त्री के साथ सभोग करते है, ३. कुछ मनुष्य या तिर्यञ्च-देवी के साथ सभोग करते हैं, ४. कुछ मनुष्य या तिर्यञ्च मानुषी या तिर्यञ्च स्त्री के साथ सभोग करते है।

कसाय-पदं

७५. चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तं जहा—कोहकसाए, माणकसाए, मायाकसाए, लोभकसाए।
एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

७६. चउपतिट्ठिते कोहे पण्णत्ते, तं जहा—
आतपतिट्ठिते, परपतिट्ठिते, तदुभयपतिट्ठिते, अपतिट्ठिते।
एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

कषाय-पदम्

चत्वार· कषायाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—क्रोधकषाय·, मानकषाय, मायाकषाय., लोभकषाय·।
एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।

चतु· प्रतिष्ठित क्रोध· प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आत्मप्रतिष्ठितः, परप्रतिष्ठित., तदुभयप्रतिष्ठितः, अप्रतिष्ठित·।

एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।

कषाय-पद

७५. कषाय चार हैं—१. क्रोधकषाय, २. मानकषाय, ३ मायाकषाय, ४. लोभकषाय।
नारकों से लेकर वैमानिकों तक के सभी दण्डकों मे चारों कषाय होते हैं।

७६. क्रोध[११] चतुःप्रतिष्ठित होता है—
१. आत्मप्रतिष्ठित [स्व-विषयक]—जो अपने ही निमित्त से उत्पन्न होता है,
२. परप्रतिष्ठित [पर-विषयक]—जो दूसरे के निमित्त से उत्पन्न होता है,
३. तदुभयप्रतिष्ठित—जो स्व और पर दोनों के निमित्त से उत्पन्न होता है,
४. अप्रतिष्ठित—जो केवल क्रोध-वेदनीय के उदय से उत्पन्न होता है, आक्रोश आदि बाह्य कारणों से उत्पन्न नहीं होता।

७७. °चउपतिट्ठिते माणे पण्णत्ते, तं जहा—
आतपतिट्ठिते, परपतिट्ठिते,
तदुभयपतिट्ठिते, अपतिट्ठिते।
एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

चतुः प्रतिष्ठिता मानः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
आत्मप्रतिष्ठितः, परप्रतिष्ठितः,
तदुभयप्रतिष्ठितः, अप्रतिष्ठितः।
एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।

७७. मान चतुःप्रतिष्ठित होता है—
१. आत्मप्रतिष्ठित, २. परप्रतिष्ठित,
३. तदुभयप्रतिष्ठित, ४. अप्रतिष्ठित।
यह चारो प्रकार का मान नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी खण्डो मे प्राप्त होता है।

७८. चउपतिट्ठिता माया पण्णत्ता, तं जहा—
आतपतिट्ठिता, परपतिट्ठिता,
तदुभयपतिट्ठिता, अपतिट्ठिता।
एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

चतुः प्रतिष्ठिता माया. प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आत्मप्रतिष्ठिता, परप्रतिष्ठिता,
तदुभयप्रतिष्ठिता, अप्रतिष्ठिता।
एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।

७८. माया चतु प्रतिष्ठित होती है—
१. आत्मप्रतिष्ठित, २. परप्रतिष्ठित,
३. तदुभयप्रतिष्ठित, ४. अप्रतिष्ठित।
यह चारो प्रकार की माया नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको में प्राप्त होती है।

७९. चउपतिट्ठिते लोभे पण्णत्ते, तं जहा—
आतपतिट्ठिते, परपतिट्ठिते,
तदुभयपतिट्ठिते, अपतिट्ठिते।
एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।°

चतु प्रतिष्ठित लोभः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
आत्मप्रतिष्ठितः, परप्रतिष्ठितः,
तदुभयप्रतिष्ठितः, अप्रतिष्ठितः।
एवम्—नैरयिकाणां यावत् वैमानिकानाम्।

७९ लोभ चतुः प्रतिष्ठित होता है—
१. आत्मप्रतिष्ठित, २. परप्रतिष्ठित,
३. तदुभयप्रतिष्ठित, ४. अप्रतिष्ठित।
यह चारो प्रकार का लोभ नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे प्राप्त होता है।

८० चउहिं ठाणेहिं कोधुप्पत्ती सिता, तं जहा—
खेत्तं पडुच्चा, वत्थुं पडुच्चा,
सरीरं पडुच्चा, उवहिं पडुच्चा।
एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

चतुर्भि स्थानैः क्रोधोत्पत्तिः स्यात्, तद्यथा—
क्षेत्र प्रतीत्य, वास्तु प्रतीत्य,
शरीर प्रतीत्य, उपधि प्रतीत्य।
एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।

८०. क्रोध की उत्पत्ति चार कारणो से होती है—१. क्षेत्र—भूमि के कारण, २. वास्तु—घर के कारण, ३. शरीर—कुरूप आदि होने के कारण, ४. उपधि—उपकरणो के नष्ट हो जाने के कारण।
नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों मे इन चार कारणो से क्रोध की उत्पत्ति होती है।

८१. °चउहिं ठाणेहिं माणुप्पत्ती सिता, तं जहा—
खेत्तं पडुच्चा, वत्थुं पडुच्चा,
सरीरं पडुच्चा, उवहिं पडुच्चा।
एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

चतुर्भिः स्थानैः मानोत्पत्तिः स्यात्, तद्यथा—
क्षेत्र प्रतीत्य, वास्तु प्रतीत्य,
शरीर प्रतीत्य, उपधि प्रतीत्य।
एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।

८१. मान की उत्पत्ति चार कारणों से होती है—१. क्षेत्र के कारण, २. वस्तु के कारण, ३. शरीर के कारण, ४. उपधि के कारण।
नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में इन चार कारणो से मान की उत्पत्ति होती है।

८२. चउहिं ठाणेहिं मायुप्पत्ती सिता, तं जहा—

चतुर्भि स्थानैः मायोत्पत्तिः स्यात्, तद्यथा—

८२. माया की उत्पत्ति चार कारणो से होती है—

खेत्तं पडुच्चा, वत्थुं पडुच्चा, सरीरं पडुच्चा, उवहिं पडुच्चा। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।	क्षेत्र प्रतीत्य, वास्तु प्रतीत्य, शरीर प्रतीत्य, उपधि प्रतीत्य। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।	१ क्षेत्र के कारण, २. वस्तु के कारण, ३. शरीर के कारण, ४. उपधि के कारण। नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे इन चार कारणो से माया की उत्पत्ति होती है।
८३. **चउहिं ठाणेहिं लोभुप्पत्ती सिता, तं जहा— खेत्तं पडुच्चा, वत्थुं पडुच्चा, सरीरं पडुच्चा, उवहिं पडुच्चा। एवं—णेरयाणं जाव वेमाणियाणं।°**	चतुर्भि. स्थानै. लोभोत्पत्ति. स्यात्, तद्यथा— क्षेत्र प्रतीत्य, वास्तु प्रतीत्य, शरीर प्रतीत्य, उपधि प्रतीत्य। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।	८३. लोभ की उत्पत्ति चार कारणो से होती है—१. क्षेत्र के कारण, २. वस्तु के कारण, ३. शरीर के कारण, ४. उपधि के कारण। नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे इन चार कारणो से लोभ की उत्पत्ति होती है।
८४. **चउव्विधे कोहे पण्णत्ते, तं जहा— अणंताणुबंधी कोहे, अपच्चक्खाणकसाए कोहे, पच्चक्खाणावरणे कोहे, संजलणे कोहे। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।**	चतुर्विधः क्रोध. प्रज्ञप्त., तद्यथा— अनन्तानुबन्धी क्रोध, अप्रत्याख्यानकषाय: क्रोध:, प्रत्याख्यानावरण: क्रोध:, सज्वलन: क्रोध:। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।	८४. क्रोध चार प्रकार का होता है— १ अनन्तानुबन्धी—इसका अनुबन्ध (परिणाम) अनन्त होता है, २. अप्रत्याख्यानकषाय—विरति-मात्र का अवरोध करने वाला, ३. प्रत्याख्यानावरण—सर्व-विरति का अवरोध करने वाला, ४. सज्वलन—यथाख्यात चरित्र का अवरोध करने वाला। यह चतुर्विध क्रोध नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे प्राप्त होता है।
८५. **°चउव्विधे माणे पण्णत्ते, तं जहा—अणंताणुबंधी माणे, अपच्चक्खाणकसाए माणे, पच्चक्खाणावरणे माणे, संजलणे माणे। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।**	चतुर्विधः मान: प्रज्ञप्त:, तद्यथा— अनन्तानुबन्धी मान., अप्रत्याख्यानकषायो मान:, प्रत्याख्यानावरणो मान:, सज्वलनो मान:। एवम्—नैरयिकाणा यावत् वैमानिकानाम्।	८५. मान चार प्रकार का होता है— १ अनन्तानुबन्धी, २. अप्रत्याख्यानकषाय, ३. प्रत्याख्यानावरण, ४. सज्वलन। यह चतुर्विध मान नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे प्राप्त होता है।
८६. **चउव्विधा माया पण्णत्ता, तं जहा—अणंताणुबंधी माया, अपच्चक्खाणकसाया माया, पच्चक्खाणावरणा माया, संजलणा माया।**	चतुर्विधा माया प्रज्ञप्ता, तद्यथा— अनन्तानुबन्धिनी माया, अप्रत्याख्यानकषाया माया, प्रत्याख्यानावरणा माया, सज्वलना माया।	८६. माया चार प्रकार की होती है— १. अनन्तानुबन्धिनी, २. अप्रत्याख्यानकषाय, ३. प्रत्याख्यानावरणा, ४. सज्वलना।

एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं। | एवम्—नैरयिकाणां यावत् वैमानिकानाम्। | यह चतुर्विध माया नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे प्राप्त होती है।

८७. चउव्विधे लोभे पण्णत्ते, तं जहा—
अणंताणुबंधी लोभे,
अपच्चक्खाणकसाए लोभे,
पच्चक्खाणावरणे लोभे,
संजलणे लोभे।
एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।°

चतुर्विधः लोभः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
अनन्तानुबन्धी लोभः,
अप्रत्याख्यानकषायो लोभः,
प्रत्याख्यानावरणो लोभः,
सज्वलनो लोभः।
एवम्—नैरयिकाणां यावत् वैमानिकानाम्।

८७. लोभ चार प्रकार का होता है—
१. अनन्तानुबन्धी, २. अप्रत्याख्यानकषाय, ३. प्रत्याख्यानावरण, ४. सज्वलन।
यह चतुर्विध लोभ नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे प्राप्त होता है।

८८. चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा—
आभोगणिव्वत्तिते,
अणाभोगणिव्वत्तिते,
उवसंते, अणुवसंते।
एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

चतुर्विधः क्रोधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
आभोगनिर्वर्तितः, अनाभोगनिर्वर्तितः,
उपशान्तः, अनुपशान्तः।
एवम्—नैरयिकाणां यावत् वैमानिकानाम्।

८८. क्रोध चार प्रकार का होता है—
१. आभोगनिर्वर्तित[१७]—स्थिति को जानने पर जो क्रोध निष्पन्न होता है, २. अनाभोगनिर्वर्तित[१८]—स्थिति को न जानने पर जो क्रोध निष्पन्न होता है, ३. उपशान्त—क्रोध की अनुदयावस्था, ४ अनुपशान्त—क्रोध की उदयावस्था।
यह चतुर्विध क्रोध नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे प्राप्त होता है।

८९. *चउव्विहे माणे पण्णत्ते, तं जहा—आभोगणिव्वत्तिते,
अणाभोगणिव्वत्तिते,
उवसंते, अणुवसंते।
एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

चतुर्विधः मानः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
आभोगनिर्वर्तितः, अनाभोगनिर्वर्तितः,
उपशान्तः, अनुपशान्तः।
एवम्—नैरयिकाणां यावत् वैमानिकानाम्।

८९. मान चार प्रकार का होता है—
१. आभोगनिर्वर्तित, २. अनाभोगनिर्वर्तित, ३. उपशान्त, ४. अनुपशान्त।
यह चतुर्विध मान नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे प्राप्त होता है।

९०. चउव्विहा माया पण्णत्ता, तं जहा—
आभोगणिव्वत्तिता,
अणाभोगणिव्वत्तिता,
उवसंता, अणुवसंता।
एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

चतुर्विधा माया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आभोगनिर्वर्तिता, अनाभोगनिर्वर्तिता,
उपशान्ता, अनुपशान्ता।
एवम्—नैरयिकाणां यावत् वैमानिकानाम्।

९०. माया चार प्रकार की होती है—
१. आभोगनिर्वर्तिता, २. अनाभोगनिर्वर्तिता, ३. उपशान्ता, ४ अनुपशान्ता।
यह चतुर्विध माया नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको में प्राप्त होती है।

९१. चउव्विहे लोभे पण्णत्ते, तं जहा—

चतुर्विधः लोभः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—

९१. लोभ चार प्रकार का होता है—

आभोगणिव्वत्तिते, अणाभोगणिव्वत्तिते, उवसंते, अणुवसंते।
एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।°

आभोगनिर्वर्तितः, अनाभोगनिर्वर्तितः, उपशान्तः, अनुपशान्तः।
एवम्—नैरयिकाणां यावत् वैमानिकानाम्।

१. आभोगनिर्वर्तित, २ अनाभोगनिर्वर्तित, ३ उपशान्त, ४ अनुपशान्त।
यह चतुर्विध लोभ नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको में प्राप्त होता है।

कम्मपगडि-पदं

६२. जीवा णं चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिसु, तं जहा—
कोहेणं, माणेणं, मायाए, लोभेणं।
एवं—जाव वेमाणियाणं।

६३. °जीवा णं चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणंति, तं जहा—
कोहेणं, माणेणं, मायाए, लोभेणं।
एवं—जाव वेमाणियाणं।

६४. जीवा णं चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिस्संति, तं जहा—
कोहेणं, माणेणं, मायाए, लोभेणं।
एवं—जाव वेमाणियाणं।°

६५. एवं—उवचिणिसु उवचिणंति उवचिणिस्संति।
बंधिसु बंधंति बंधिस्संति
उदीरिंसु उदीरिंति उदीरिस्संति
वेदेंसु वेदेंति वेदिस्संति
णिज्जरेंसु णिज्जरेंति णिज्जरिस्संति
जाव वेमाणियाणं।

कर्मप्रकृति-पदम्

जीवाश्चतुर्भिः स्थानैः अष्टौ कर्मप्रकृतीः अचैषुः, तद्यथा—
क्रोधेन, मानेन, मायया, लोभेन।
एवम्—यावत् वैमानिकानाम्।

जीवाश्चतुर्भिः स्थानैः अष्टौ कर्मप्रकृतीः चिन्वन्ति, तद्यथा—
क्रोधेन, मानेन, मायया, लोभेन।
एवम्—यावत् वैमानिकानाम्।

जीवाश्चतुर्भिः स्थानैः अष्टौ कर्मप्रकृतीः चेष्यन्ति, तद्यथा—
क्रोधेन, मानेन, मायया, लोभेन।
एवम्—यावत् वैमानिकानाम्।

एवम्—उपाचैषुः उपचिन्वन्ति उपचेष्यन्ति
अभान्त्सुः बध्नन्ति, भन्त्स्यन्ति
उदैरिषुः उदीरयन्ति उदीरयिष्यन्ति
अवेदिषुः वेदयन्ति वेदयिष्यन्ति
निरजरिषुः निर्जरयन्ति निर्जरयिष्यन्ति
यावत् वैमानिकानाम्।

कर्मप्रकृति-पद

६२. जीवो ने चार कारणो—क्रोध, मान, माया और लोभ—से आठ कर्म-प्रकृतियो का चय किया है।
इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डको ने आठ कर्म-प्रकृतियो का चय किया है।

६३. जीव चार कारणो—क्रोध, मान, माया और लोभ—से आठ कर्म-प्रकृतियो का चय करते है।
इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डक आठ कर्म-प्रकृतियो का चय करते है।

६४ जीव चार कारणो—क्रोध, मान, माया और लोभ—से आठ कर्म-प्रकृतियो का चय करेंगे।
इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डक आठ कर्म-प्रकृतियो का चय करेंगे।

६५ इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डको ने आठ कर्म-प्रकृतियो का उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदना और निर्जरा की थी, करते है और करेंगे।

पडिमा-पदं

६६. चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
समाहिपडिमा, उवहाणपडिमा, विवेगपडिमा, विउस्सग्गपडिमा।

प्रतिमा-पदम्

चतस्रः प्रतिमाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
समाधिप्रतिमा, उपधानप्रतिमा, विवेकप्रतिमा, व्युत्सर्गप्रतिमा।

प्रतिमा-पद

६६. प्रतिमा[६१] चार प्रकार की होती है—
१ समाधिप्रतिमा, २ उपधानप्रतिमा, ३ विवेकप्रतिमा, ४. व्युत्सर्गप्रतिमा।

९७. चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—भद्दा, सुभद्दा, महाभद्दा, सव्वतोभद्दा।

चतस्रः प्रतिमाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—भद्रा, सुभद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा।

९७. प्रतिमा चार प्रकार की होती है—१. भद्रा, २. सुभद्रा, ३. महाभद्रा, ४. सर्वतोभद्रा।

९८. चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—खुड्डियामोयपडिमा, महल्लियामोयपडिमा, जवमज्झा, वइरमज्झा।

चतस्रः प्रतिमाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—क्षुद्रिका 'मोय' प्रतिमा, महती 'मोय' प्रतिमा, यवमध्या, वज्रमध्या।

९८. प्रतिमा चार प्रकार की होती है—१. क्षुल्लकप्रश्रवणप्रतिमा, २. महत्प्रश्रवणप्रतिमा, ३. यवमध्या, ४. वज्रमध्या।

अत्थिकाय-पदं

अस्तिकाय-पदम्

अस्तिकाय-पद

९९. चत्तारि अत्थिकाया अजीवकाया पण्णत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए।

चत्वारः अस्तिकायाः अजीवकायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः।

९९. चार अस्तिकाय अजीव होते हैं—१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. पुद्गलास्तिकाय।

१००. चत्तारि अत्थिकाया अरूविकाया पण्णत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए।

चत्वारः अस्तिकायाः अरूपिकायाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, जीवास्तिकायः।

१००. चार अस्तिकाय अरूपी होते हैं—१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. जीवास्तिकाय।

आम-पक्क-पदं

आम-पक्व-पदम्

आम-पक्व-पद

१०१. चत्तारि फला पण्णत्ता, तं जहा—आमे णाममेगे आममहुरे, आमे णाममेगे पक्कमहुरे, पक्के णाममेगे आममहुरे, पक्के णाममेगे पक्कमहुरे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—आमे णाममेगे आममहुरफलसमाणे, आमे णाममेगे पक्कमहुरफलसमाणे, पक्के णाममेगे आममहुरफलसमाणे, पक्के णाममेगे पक्कमहुरफलसमाणे।

चत्वारि फलानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—आमं नामैकं आममधुरं, आमं नामैकं पक्वमधुरं, पक्वं नामैकं आममधुरं, पक्वं नामैकं पक्वमधुरम्।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—आमः नामैकः आममधुरफलसमानः, आमः नामैकः पक्वमधुरफलसमानः, पक्वः नामैकः आममधुरफलसमानः, पक्वः नामैकः पक्वमधुरफलसमानः।

१०१. फल चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ फल अपक्व और अपक्व-मधुर होते हैं—थोड़े मीठे होते हैं, २. कुछ फल अपक्व और पक्व-मधुर होते हैं—अत्यन्त मीठे होते है, ३. कुछ फल पक्व और अपक्व-मधुर होते हैं—थोड़े मीठे होते है, ४. कुछ फल पक्व और पक्व-मधुर होते है—अत्यन्त मीठे होते है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१. कुछ पुरुष वय और श्रुत से अपक्व होते है और अपक्व-मधुर फल के समान होते हैं—अल्प उपशम वाले होते है, २. कुछ पुरुष वय और श्रुत से अपक्व होते हैं और पक्व-मधुर फल के समान होते है—प्रधान उपशम वाले होते है, ३. कुछ पुरुष वय और श्रुत से पक्व होते है और अपक्व-मधुर फल के समान होते है—अल्प उपशम वाले होते है, ४. कुछ पुरुष वय और श्रुत से पक्व होते हैं और पक्व-मधुर फल के समान होते है—प्रधान उपशम वाले होते हैं।

सच्च-मोस-पदं

१०२. चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते, तं जहा—
काउज्जुयया, भासुज्जुयया,
भावुज्जुयया, अविसंवायणाजोगे।

सत्य-मृषा-पदम्

चतुर्विध सत्य प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
कायर्जुकता, भाषर्जुकता, भावर्जुकता,
अविसंवादनायोगः।

सत्य-मृषा-पद

१०२. सत्य चार प्रकार का होता है—
१. काय-ऋजुता—यथार्थ अर्थ की प्रतीति कराने वाले काया के संकेत, २. भाषा-ऋजुता—यथार्थ अर्थ की प्रतीति कराने वाली वाणी का प्रयोग, ३. भाव-ऋजुता—यथार्थ अर्थ की प्रतीति कराने वाली मन की प्रवृत्ति, ४ अविसंवादनायोग—अविरोधी, धोखा न देने वाली या प्रतिज्ञात अर्थ को निभाने वाली प्रवृत्ति।

१०३. चउव्विहे मोसे पण्णत्ते, तं जहा—
कायअणुज्जुयया, भासअणुज्जुयया,
भावअणुज्जुयया,
विसंवादणाजोगे।

चतुर्विधा मृषा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कायानृजुकता, भाषानृजुकता,
भावानृजुकता, विसवादनायोग.।

१०३. असत्य चार प्रकार का होता है—
१ काया की कुटिलता—यथार्थ को ढाकने वाला काया का सकेत, २. भाषा की कुटिलता—यथार्थ को ढाकने वाला वाणी का प्रयोग, ३. भाव की कुटिलता—यथार्थ को छिपाने वाली मन की प्रवृत्ति, ४. विसवादनायोग—विरोधी, धोखा देने वाली या प्रतिज्ञात अर्थ को भग करने वाली प्रवृत्ति।

पणिधाण-पदं

१०४. चउव्विहे पणिधाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणपणिधाणे, वइपणिधाणे, कायपणिधाणे, उवकरणपणिधाणे, एवं—णेरइयाणं पंचिदियाणं जाव वेमाणियाणं।

१०५. चउव्विहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणसुप्पणिहाणे,
°वइसुप्पणिहाणे,कायसुप्पणिहाणे,°
उवगरणसुप्पणिहाणे।
एवं—संजयमणुस्साणवि।

१०६. चउव्विहे दुप्पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणदुप्पणिहाणे,

प्रणिधान-पदम्

चतुर्विधानि प्रणिधानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—मनःप्रणिधान, वाक्प्रणिधान, कायप्रणिधान, उपकरणप्रणिधानम्,
एवम्—नैरयिकाणां पञ्चेन्द्रियाणां यावत् वैमानिकानाम्।

चतुर्विधानि सुप्रणिधानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—मनःसुप्रणिधानं,
वाक्सुप्रणिधान, कायसुप्रणिधान,
उपकरणसुप्रणिधानम्।
एवम्—सयतमनुष्याणामपि।

चतुर्विधानि दुष्प्रणिधानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—मनःदुष्प्रणिधानं,

प्रणिधान-पद

१०४. प्रणिधान चार प्रकार का होता है—
१. मनप्रणिधान, २. वचनप्रणिधान,
३. कायप्रणिधान, ४. उपकरणप्रणिधान।
ये नारक आदि सभी पञ्चेन्द्रिय-दण्डको मे प्राप्त होते है।

१०५. सुप्रणिधान चार प्रकार का होता है—
१. मनसुप्रणिधान, २. वचनसुप्रणिधान,
३. कायसुप्रणिधान,
४. उपकरणसुप्रणिधान।
ये चारो सयत मनुष्य के होते हैं।

१०६. दुष्प्रणिधान चार प्रकार का होता है।
१. मनदुष्प्रणिधान, २. वचनदुष्प्रणिधान,

वइदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे,° उवकरणदुप्पणिहाणे ।
एवं—पंचिंदियाणं जाव वेमाणियाणं ।

वाक्दुष्प्रणिधानं, कायदुष्प्रणिधानं, उपकरणदुष्प्रणिधानम् ।
एवम्—पञ्चेन्द्रियाणां यावत् वैमानिकानाम् ।

३. कायदुष्प्रणिधान,
४. उपकरणदुष्प्रणिधान ।
ये नारक आदि सभी पञ्चेन्द्रिय दण्डकों में प्राप्त होते हैं ।

आवात-संवास-पदं

१०७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
आवातभद्दए णाममेगे, णो संवासभद्दए, संवासभद्दए णाममेगे, णो आवातभद्दए, एगे आवातभद्दएवि, संवासभद्दएवि, एगे णो आवातभद्दए, णो संवासभद्दए ।

आपात-संवास-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आपातभद्रकः नामैकः, नो संवासभद्रकः, संवासभद्रकः नामैकः, नो आपातभद्रकः, एकः आपातभद्रकोऽपि, संवासभद्रकोऽपि, एकः नो आपातभद्रको, नो संवासभद्रकः ।

आपात-संवास-पद

१०७. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष आपातभद्र होते हैं, संवासभद्र नहीं होते—प्रथम मिलन में भद्र होते हैं, चिर सहवास में भद्र नहीं होते, २. कुछ पुरुष संवासभद्र होते हैं, आपातभद्र नहीं होते, ३. कुछ पुरुष आपातभद्र भी होते हैं और संवासभद्र भी होते हैं, ४. कुछ पुरुष न आपातभद्र होते हैं और न संवासभद्र होते हैं ।

वज्ज-पदं

१०८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अप्पणो णाममेगे वज्जं पासति, णो परस्स, परस्स णाममेगे वज्जं पासति, णो अप्पणो, एगे अप्पणो वि वज्जं पासति, परस्सवि, एगे णो अप्पणो वज्जं पासति, णो परस्स ।

१०९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अप्पणो णाममेगे वज्जं उदीरेइ, णो परस्स, परस्स णाममेगे वज्जं उदीरेइ, णो अप्पणो, एगे अप्पणो वि वज्जं उदीरेइ, परस्स वि, एगे णो अप्पणो वज्जं उदीरेइ, णो परस्स ।

वर्ज्य-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—
आत्मनः नामैकः वर्ज्यं पश्यति, नो परस्य, परस्य नामैकः वर्ज्यं पश्यति, नो आत्मनः, एकः आत्मनोऽपि वर्ज्यं पश्यति, परस्यापि, एकः नो आत्मनः वर्ज्यं पश्यति, नो परस्य ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मनः नामैकः वर्ज्यं उदीरयति, नो परस्य, परस्य नामैकः वर्ज्यं उदीरयति, नो आत्मनः, एकः आत्मनोऽपि वर्ज्यं उदीरयति, परस्यापि, एकः नो आत्मनः वर्ज्यं उदीरयति, नो परस्य ।

वर्ज्य-पद

१०८. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष अपना वर्ज्य देखते हैं, दूसरे का नहीं, २. कुछ पुरुष दूसरे का वर्ज्य देखते हैं, अपना नहीं, ३. कुछ पुरुष अपना वर्ज्य देखते हैं और दूसरे का भी, ४. कुछ पुरुष न अपना वर्ज्य देखते हैं न दूसरे का ।

१०९. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष अपने अवद्य की उदीरणा करते हैं, दूसरे के वर्ज्य की उदीरणा नहीं करते, २. कुछ पुरुष दूसरे के वर्ज्य की उदीरणा करते हैं, किन्तु अपने वर्ज्य की उदीरणा नहीं करते, ३. कुछ पुरुष अपने वर्ज्य की भी उदीरणा करते हैं और दूसरे के वर्ज्य की भी उदीरणा करते हैं, ४. कुछ पुरुष न अपने वर्ज्य की उदीरणा करते हैं और न दूसरे के वर्ज्य की उदीरणा करते हैं ।

११०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अप्पणो णाममेगे वज्जं उवसामेति, णो परस्स, परस्स णाममेगे वज्जं उवसामेति, णो अप्पणो, एगे अप्पणो वि वज्जं उवसामेति, परस्स वि, एगे णो अप्पणो वज्जं उवसामेति णो परस्स।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मनः नामैकः वर्ज्यं उपशामयति, नो परस्य, परस्य नामैकः वर्ज्यं उपशामयति, नो आत्मनः, एकः आत्मनोऽपि वर्ज्यं उपशामयति, परस्यापि, एकः नो आत्मनः वर्ज्यं उपशामयति, नो परस्य।

११०. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष अपने वर्ज्य का उपशमन करते हैं, किन्तु दूसरे के वर्ज्य का उपशमन नहीं करते है, २ कुछ पुरुष दूसरे के वर्ज्य का उपशमन करते हैं, किन्तु अपने वर्ज्य का उपशमन नहीं करते, ३. कुछ पुरुष अपने वर्ज्य का भी उपशमन करते हैं और दूसरे के वर्ज्य का भी उपशमन करते हैं, ४ कुछ पुरुष न अपने वर्ज्य का उपशमन करते है और न दूसरे के वर्ज्य का उपशमन करते है।

लोगोपचार-विणय-पदं

लोकोपचार-विनय-पदम्

लोकोपचार-विनय-पद

१११. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अब्भुट्ठेति णाममेगे, णो अब्भुट्ठावेति, अब्भुट्ठावेति णाममेगे, णो अब्भुट्ठेति, एगे अब्भुट्ठेति वि, अब्भुट्ठावेति वि, एगे णो अब्भुट्ठेति, णो अब्भुट्ठावेति।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अभ्युत्तिष्ठते नामैकः, नो अभ्युत्थापयति, अभ्युत्थापयति, नामैकः, नो अभ्युत्तिष्ठते, एकः अभ्युत्तिष्ठतेऽपि, अभ्युत्थापयत्यपि, एकः नो अभ्युत्तिष्ठते, नो अभ्युत्थापयति।

१११ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष अभ्युत्थान करते है, किन्तु करवाते नही, २ कुछ पुरुष अभ्युत्थान करवाते है, किन्तु करते नही, ३ कुछ पुरुष अभ्युत्थान करते भी है और करवाते भी है, ४ कुछ पुरुष न अभ्युत्थान करते है और न करवाते है।

११२. °चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
वंदति णाममेगे, णो वंदावेति, वंदावेति णाममेगे, णो वंदति, एगे वंदति वि, वंदावेति वि, एगे णो वंदति, णो वंदावेति।°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वन्दते नामैकः, नो वन्दयते, वन्दयते नामैकः, नो वन्दते, एकः वन्दतेऽपि, वन्दयतेऽपि, एकः नो वन्दते, नो वन्दयते।

११२. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष वंदना करते हैं, किन्तु करवाते नही, २. कुछ पुरुष वंदना करवाते है, किन्तु करते नही, ३ कुछ पुरुष वंदना करते भी हैं और करवाते भी हैं, ४. कुछ पुरुष न वंदना करते है और न करवाते है।

११३. °चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सक्कारेइ णाममेगे, णो सक्कारावेइ, सक्कारावेइ णाममेगे, णो सक्कारेइ, एगे सक्कारेइ वि, सक्कारावेइ वि, एगे णो सक्कारेइ, णो सक्कारावेइ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सत्करोति नामैकः, नो सत्कारयति, सत्कारयति नामैकः, नो सत्करोति, एकः सत्करोत्यपि, सत्कारयत्यपि, एकः नो सत्करोति, नो सत्कारयति।

११३. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष सत्कार करते हैं, किन्तु करवाते नही, २ कुछ पुरुष सत्कार करते है, किन्तु करवाते नही, ३. कुछ पुरुष सत्कार करते भी है और करवाते भी हैं, ४. कुछ पुरुष न सत्कार करते हैं और न करवाते हैं।

११४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सम्माणेति णाममेगे, णो सम्माणावेति, सम्माणावेति णाममेगे, णो सम्माणेति, एगे सम्माणेति वि, सम्माणावेति वि, एगे णो सम्माणेति, णो सम्माणावेति।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सम्मन्यते नामैकः, नो सम्मानयति, सम्मानयति नामैकः, नो सम्मन्यते, एकः सम्मन्यतेऽपि, सम्मानयत्यपि, एकः नो सम्मन्यते, नो सम्मानयति।

११४. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष सम्मान करते हैं, किन्तु करवाते नही, २. कुछ पुरुष सम्मान करवाते है, किन्तु करते नही, ३ कुछ पुरुष सम्मान करते भी हैं और करवाते भी हैं, ४. कुछ पुरुष न सम्मान करते हैं और न करवाते हैं।

११५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पूएइ णाममेगे, णो पूयावेति, पूयावेति णाममेगे, णो पूएइ, एगे पूएइ वि, पूयावेति वि, एगे णो पूएइ, णो पूयावेति।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पूजयते नामैकः, नो पूजापयते, पूजापयते नामैकः, नो पूजयते, एकः पूजयतेऽपि, पूजापयतेऽपि, एकः नो पूजयते, नो पूजापयते।

११५. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष पूजा करते हैं, किन्तु करवाते नही, २. कुछ पुरुष पूजा करवाते है, किन्तु करते नही, ३. कुछ पुरुष पूजा करते भी हैं और करवाते भी हैं, ४. कुछ पुरुष न पूजा करते हैं और न करवाते है।

सज्झाय-पदं

स्वाध्याय-पदम्

स्वाध्याय-पद

११६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
वाएइ णाममेगे, णो वायावेइ, वायावेइ णाममेगे, णो वाएइ, एगे वाएइ वि, वायावेइ वि, एगे णो वाएइ, णो वायावेइ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वाचयति नामैकः, नो वाचयते, वाचयते नामैकः, नो वाचयति, एकः वाचयत्यपि, वाचयतेऽपि, एकः नो वाचयति, नो वाचयते।

११६ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष दूसरो को पढाते है, किन्तु दूसरो से पढते नही, २. कुछ पुरुष दूसरो से पढ़ते हैं, किन्तु दूसरो को पढ़ाते नहीं, ३. कुछ पुरुष दूसरो को पढाते भी है और दूसरों से पढते भी हैं, ४ कुछ पुरुष न दूसरों से पढ़ते हैं और न दूसरो को पढाते हैं।

११७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पडिच्छति णाममेगे, णो पडिच्छावेति, पडिच्छावेति णाममेगे, णो पडिच्छति, एगे पडिच्छति वि, पडिच्छावेति वि, एगे णो पडिच्छति, णो पडिच्छावेति।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
प्रतीच्छति नामैकः, नो प्रत्येषयति, प्रत्येषयति नामैकः, नो प्रतीच्छति, एकः प्रतीच्छत्यपि, प्रत्येषयत्यपि, एकः नो प्रतीच्छति, नो प्रत्येषयति।

११७. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष प्रतीच्छा (उप सम्पदा) करते हैं, किन्तु करवाते नही, २. कुछ पुरुष प्रतीच्छा करवाते हैं, किन्तु करते नही, ३. कुछ पुरुष प्रतीच्छा करते भी हैं और करवाते भी हैं, ४. कुछ पुरुष न प्रतीच्छा करते हैं और न करवाते है।

११८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पुच्छइ णाममेगे, णो पुच्छावेइ, पुच्छावेइ णाममेगे, णो पुच्छइ,

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पृच्छति नामैकः, नो प्रच्छयति, प्रच्छयति नामैकः, नो पृच्छति,

११८. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष प्रश्न करते हैं, किन्तु करवाते नही, २. कुछ पुरुष प्रश्न करवाते है, किन्तु करते नही, ३ कुछ पुरुष प्रश्न करते भी

एगे पुच्छइ वि, पुच्छावेइ वि,
एगे णो पुच्छइ, णो पुच्छावेइ।

एक: पृच्छत्यपि, प्रच्छयत्यपि,
एक नो पृच्छति, नो प्रच्छयति ।

है, और करवाते भी हैं, ४ कुछ पुरुष न प्रश्न करते है और न करवाते हैं।

११९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
वागरेति णाममेगे, णो वागरावेति,
वागरावेति णाममेगे, णो वागरेति,
एगे वागरेति वि, वागरावेति वि,
एगे णो वागरेति, णो वागरावेति।°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
व्याकरोति नामैक:, नो व्याकारयति,
व्याकारयति नामैक:, नो व्याकरोति,
एक: व्याकरोत्यपि, व्याकारयत्यपि,
एक: नो व्याकरोति, नो व्याकारयति ।

११९. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष व्याकरण [उत्तरदाता] करते हैं, किन्तु करवाते नही, २. कुछ पुरुष व्याकरण करवाते हैं, किन्तु करते नही, ३ कुछ पुरुष व्याकरण करते भी हैं और करवाते भी हैं, ४ कुछ पुरुष न व्याकरण करते है और न करवाते है।

१२०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुत्तधरे णाममेगे, णो अत्थधरे,
अत्थधरे णाममेगे, णो सुत्तधरे,
एगे सुत्तधरे वि, अत्थधरे वि,
एगे णो सुत्तधरे, णो अत्थधरे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सूत्रधर: नामैक:, नो अर्थधर:,
अर्थधर: नामैक:, नो सूत्रधर:,
एक: सूत्रधरोऽपि, अर्थधरोऽपि,
एक: नो सूत्रधर:, नो अर्थधर: ।

१२० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष सूत्रधर होते है, किन्तु अर्थधर नही होते, २. कुछ पुरुष अर्थधर होते है, किन्तु सूत्रधर नही होते, ३. कुछ पुरुष सूत्रधर भी होते है और अर्थधर भी होते है, ४ कुछ पुरुष न सूत्रधर होते है और न अर्थधर होते है।

लोगपाल-पदं

लोकपाल-पदम्

लोकपाल-पद

१२१. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता, तं जहा—
सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे।

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य चत्वार: लोकपाला प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
सोम:, यम:, वरुण:, वैश्रमण: ।

१२१. असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर के चार लोकपाल होते है—१. सोम, २ यम, ३. वरुण, ४ वैश्रवण।

१२२. एवं—बलिस्सवि—सोमे, जमे, वेसमणे, वरुणे।

एवम्—बलेरपि—सोम:, यम:, वैश्रमण:, वरुण: ।

१२२. इसी प्रकार बलि आदि के भी चार-चार लोकपाल होते है—
बलि के—सोम, यम, वैश्रवण, वरुण।

धरणस्स—कालपाले कोलपाले सेलपाले संखपाले।
धरणस्य—कालपाल:, कोलपाल:, शैलपाल:, शङ्खपाल: ।
धरण के—कालपाल, कोलपाल, सेलपाल, शखपाल।

भूयाणंदस्स—कालपाले, कोलपाले, संखपाले, सेलपाले।
भूतानन्दस्य—कालपाल:, कोलपाल:, शङ्खपाल:, शैलपाल: ।
भूतानन्द के—कालपाल, कोलपाल, शखपाल, सेलपाल।

वेणुदेवस्स—चित्ते, विचित्ते, चित्तपक्खे, विचित्तपक्खे।
वेणुदेवस्य—चित्र:, विचित्र:, चित्रपक्ष:, विचित्रपक्ष: ।
वेणुदेव के—चित्र, विचित्र, चित्रपक्ष, विचित्रपक्ष।

वेणुदालिस्स—चित्ते, विचित्ते, विचित्तपक्खे, चित्तपक्खे।
वेणुदाले:—चित्र:, विचित्र:, विचित्रपक्ष:, चित्रपक्ष: ।
वेणुदालि के—चित्र, विचित्र, विचित्रपक्ष, चित्रपक्ष।

हरिकंतस्स—पभे, सुप्पभे, पभकंते,
हरिकान्तस्य—प्रभ:, सुप्रभ:, प्रभकान्त:,
हरिकान्त के—प्रभ, सुप्रभ, प्रभकान्त,

सुप्पभकंते ।	सुप्रभकान्तः ।	सुप्रभकान्त ।
हरिस्सहस्स—पभे, सुप्पभे, सुप्पभकंते, पभकंते ।	हरिसहस्य—प्रभः, सुप्रभः, सुप्रभकान्तः, प्रभकान्तः ।	हरिस्सह के—प्रभ, सुप्रभ, सुप्रभकान्त, प्रभकान्त ।
अग्गिसिहस्स—तेऊ, तेउसिहे, तेउकंते, तेउप्पभे ।	अग्निशिखस्य—तेजः, तेजःशिखः, तेजस्कान्तः, तेजःप्रभः ।	अग्निशिख के—तेज, तेजशिख, तेजस्कात, तेजप्रभ ।
अग्गिमाणवस्स—तेऊ, तेउसिहे, तेउप्पभे, तेउकंते ।	अग्निमाणवस्य—तेजः, तेजःशिखः, तेजःप्रभः, तेजस्कान्तः ।	अग्निमाणव के—तेज, तेजशिख, तेजप्रभ, तेजस्कान्त ।
पुण्णस्स—रूवे, रूवंसे रूवकंते, रूवप्पभे ।	पूर्णस्य—रूपः, रूपांशः, रूपकान्तः, रूपप्रभः ।	पूर्ण के—रूप, रूपांश, रूपकान्त, रूपप्रभ
विसिट्ठस्स—रूवे, रूवंसे, रूवप्पभे, रूवकंते ।	विशिष्टस्य—रूपः, रूपांशः, रूपप्रभः, रूपकान्तः ।	विशिष्ट के—रूप, रूपांश, रूपप्रभ, रूपकान्त ।
जलकंतस्स—जले, जलरते, जलकंते, जलप्पभे ।	जलकान्तस्य—जलः, जलरतः, जलकान्तः, जलप्रभः ।	जलकान्त के—जल, जलरत, जलप्रभ, जलकान्त ।
जलप्पहस्स—जले, जलरते, जलप्पहे, जलकंते ।	जलप्रभस्य—जलः, जलरतः, जलप्रभः, जलकान्तः ।	जलप्रभ के—जल, जलरत, जलकान्त, जलप्रभ ।
अमितगतिस्स—तुरियगती, खिप्पगती, सीहगती, सीहविक्कमगती ।	अमितगतेः—त्वरितगतिः, क्षिप्रगतिः, सिंहगतिः, सिंहविक्रमगतिः ।	अमितगति के—त्वरितगति, क्षिप्रगति, सिंहगति, सिंहविक्रमगति ।
अमितवाहणस्स—तुरियगती, खिप्पगति, सीहविक्कमगती, सीहगती ।	अमितवाहनस्य—त्वरितगतिः, क्षिप्रगतिः, सिंहविक्रमगतिः, सिंहगतिः ।	अमितवाहन के—त्वरितगति, क्षिप्रगति, सिंहविक्रमगति, सिंहगति ।
वेलंबस्स—काले, महाकाले, अंजणे, रिट्ठे ।	वेलम्बस्य—कालः, महाकालः, अञ्जनः, रिष्टः ।	वेलम्ब के—काल, महाकाल, अंजन, रिष्ट ।
पभंजणस्स—काले, महाकाले, रिट्ठे, अंजणे ।	प्रभञ्जनस्य—कालः, महाकालः, रिष्टः, अञ्जनः ।	प्रभञ्जन के—काल, महाकाल, रिष्ट, अंजन ।
घोसस्स—आवत्ते, वियावत्ते, णंदियावत्ते, महाणंदियावत्ते ।	घोषस्य—आवर्त्तः, व्यावर्त्तः, नन्द्यावर्त्तः, महानन्द्यावर्त्तः ।	घोष के—आवर्त्त, व्यावर्त, नन्दिकावर्त, महानन्दिकावर्त ।
महाघोसस्स—आवत्ते, वियावत्ते, महाणंदियावत्ते, णंदियावत्ते ।	महाघोषस्य—आवर्त्तः, व्यावर्त्तः, महानन्द्यावर्त्तः, नन्द्यावर्त्तः ।	महाघोष के—आवर्त्त, व्यावर्त, महानन्दिकावर्त, नन्दिकावर्त ।
सक्कस्स—सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे ।	शक्रस्य—सोमः, यमः, वरुणः, वैश्रमणः ।	शक्र, सनत्कुमार, ब्रह्मलोक, शुक्र और आनत-प्रणत के इन्द्रों के—सोम, यम, वैश्रवण, वरुण ।
ईसाणस्स—सोमे, जमे, वेसमणे, वरुणे ।	ईशानस्य—सोमः, यमः, वैश्रमणः, वरुणः ।	ईशान, माहेन्द्र लान्तक, सहस्रार और आरण-अच्युत के इन्द्रों के—सोम, यम, वरुण, वैश्रवण ।
एवं—एगंतरिता जाव अच्चुतस्स ।	एवम्—एकान्तरिताः यावत् अच्युतस्य ।	

देव-पदं

१२३. चउव्विहा वाउकुमारा पण्णत्ता, तं जहा—
काले, महाकाले, वेलंबे, पभंजणे।

१२४. चउव्विहा देवा पण्णत्ता, तं जहा—
भवणवासी, वाणमंतरा, जोइसिया, विमाणवासी।

देव-पदम्

चतुर्विधाः वायुकुमाराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कालः, महाकालः, वेलम्ब, प्रभञ्जनः।

चतुर्विधाः देवा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
भवनवासिनः, वानमन्तराः, ज्योतिष्काः, विमानवासिनः।

देव-पद

१२३. वायुकुमार चार प्रकार के होते हैं—
१. काल, २. महाकाल, ३. वेलम्ब, ४. प्रभञ्जन।

१२४. देवता चार प्रकार के होते हैं—
१. भवनवासी, २. वानमन्तर, ३. ज्योतिष्क, ४. विमानवासी।

पमाण-पदं

१२५. चउव्विहे पमाणे पण्णत्ते, तं जहा—
दव्वप्पमाणे, खेत्तप्पमाणे, कालप्पमाणे, भावप्पमाणे।

प्रमाण-पदम्

चतुर्विधं प्रमाणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, कालप्रमाण, भावप्रमाण।

प्रमाण-पद

१२५. प्रमाण चार प्रकार का होता है—
१. द्रव्य-प्रमाण—द्रव्य की माप,
२. क्षेत्र-प्रमाण—क्षेत्र की माप,
३. काल-प्रमाण—काल की माप,
४. भाव-प्रमाण—प्रत्यक्ष आदि प्रमाण।

महत्तरिया-पदं

१२६. चत्तारि दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
रूया, रूयंसा, सुरूवा, रूयावती।

१२७. चत्तारि विज्जुकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
चित्ता, चित्तकणगा, सतेरा, सोतामणी।

महत्तरिका-पदम्

चतस्रः दिशाकुमारीमहत्तरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
रूपा, रूपांशा, सुरूपा, रूपवती।

चतस्रः विद्युत्कुमारीमहत्तरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
चित्रा, चित्रकनका, शतेरा, सौदामिनी।

महत्तरिका-पद

१२६. दिक्कुमारियों की महत्तरिकाएं चार हैं—
१. रूपा, २. रूपांशा, ३. सुरूपा, ४. रूपवती।

१२७. विद्युत्कुमारियों की महत्तरिकाएं चार हैं—१. चित्रा, २. चित्रकनका, ३. सतेरा, ४. सौदामिनी।

देव-ठिति-पदं

१२८. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो मज्झिमपरिसाए देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

१२९. ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो मज्झिमपरिसाए देवीणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देव-स्थिति-पदम्

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य मध्यम-परिषदः देवानां चत्वारि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य मध्यम-परिषदः देवीनां चत्वारि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

देव-स्थिति-पद

१२८. देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र के मध्यम-परिषद् के देवों की स्थिति चार पल्योपम की होती है।

१२९. देवेन्द्र देवराज ईशानेन्द्र के मध्यम-परिषद् की देवियों की स्थिति चार पल्योपम की होती है।

संसार-पद

१३०. चउव्विहे संसारे पण्णत्ते, तं जहा—
दव्वसंसारे, खेत्तसंसारे,
कालसंसारे, भावसंसारे।

संसार-पदम्

चतुर्विधः ससारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
द्रव्यससारः, क्षेत्रसंसारः, कालसंसारः,
भावसंसारः।

संसार-पद

१३०. ससार चार प्रकार का है—
१. द्रव्य संसार—जीव और पुद्गलों का परिभ्रमण, २. क्षेत्र संसार—जीव और पुद्गलो के परिभ्रमण का क्षेत्र, ३. काल ससार—काल का परिवर्तन अथवा काल मर्यादा के अनुसार होने वाला जीव-पुद्गलो का परिवर्तन, ४. भाव-संसार—परिभ्रमण की क्रिया।

दिट्ठिवाय-पदं

१३१. चउव्विहे दिट्ठिवाए पण्णत्ते, तं जहा—
परिकम्मं, सुत्ताइं,
पुव्वगए, अणुजोगे।

दृष्टिवाद-पदम्

चतुर्विधः दृष्टिवादः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
परिकर्म, सूत्राणि, पूर्वगतः, अनुयोगः।

दृष्टिवाद-पद

१३१. दृष्टिवाद [बारहवा अंग] चार प्रकार का है—१. परिकर्म—इसे पढ़ने से सूत्र आदि को समझने की योग्यता आ जाती है, २. सूत्र—इसमें सब द्रव्यो और पर्यायों की सूचना मिलती है, ३. पूर्वगत—चतुर्दश पूर्व, ४. अनुयोग—इसमे तीर्थंकर आदि के जीवन-चरित्र प्रतिपादित होते हैं।

पायच्छित्त-पदं

१३२. चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—
णाणपायच्छित्ते, दंसणपायच्छित्ते,
चरित्तपायच्छित्ते, वियत्तकिच्च-पायच्छित्ते।

प्रायश्चित्त-पदम्

चतुर्विध प्रायश्चित्तं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
ज्ञानप्रायश्चित्तं, दर्शनप्रायश्चित्तं,
चरित्रप्रायश्चित्तं, व्यक्तकृत्य-प्रायश्चित्तम्।

प्रायश्चित्त-पद

१३२. प्रायश्चित्त चार प्रकार का होता है—
१. ज्ञानप्रायश्चित्त—ज्ञान के द्वारा चित्त की शुद्धि और पाप का नाश होता है, इसलिए ज्ञान ही प्रायश्चित है, २. दर्शन प्रायश्चित्त—दर्शन के द्वारा चित्त की शुद्धि और पाप का नाश होता है, इसलिए दर्शन ही प्रायश्चित्त है, ३. चरित्र प्रायश्चित्त—चरित्र के द्वारा चित्त की शुद्धि और पाप का नाश होता है, इसलिए चरित्र ही प्रायश्चित्त है, ४. व्यक्त-कृत्य-प्रायश्चित्त—गीतार्थ मुनि जागरूकता पूर्वक जो कार्य करता है वह पाप-विशुद्धि कारक होता है, इसलिए वह प्रायश्चित्त है।

१३३. चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—
पडिसेवणापायच्छित्ते,
संजोयणापायच्छित्ते, आरोवणा-पायच्छित्ते, पलिउंचणापायच्छित्ते।

चतुर्विध प्रायश्चित्तं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
प्रतिसेवनाप्रायश्चित्त,
सयोजनाप्रायश्चित्त,
आरोपणाप्रायश्चित्तं,
परिकुञ्चनाप्रायश्चित्तम्।

१३३. प्रायश्चित्त चार प्रकार का होता है—
१. प्रतिषेवणा-प्रायश्चित्त—अकृत्य का सेवन करने पर प्राप्त होने वाला प्रायश्चित्त, २. संयोजना-प्रायश्चित्त—एक जातीय अनेक अतिचारो के लिए प्राप्त होने वाला प्रायश्चित्त, ३. आरोपणा-प्रायश्चित्त—एक दोष का प्रायश्चित्त चल रहा हो, उस बीच मे ही उस दोष को पुन-पुन सेवन करने पर जो प्रायश्चित्त की अवधि बढ़ती है, ४. परिकुञ्चना-प्रायश्चित्त—अपराध को छिपाने का प्रायश्चित्त।

काल-पदं

काल-पदम्

काल-पद

१३४. चउव्विहे काले पण्णत्ते, तं जहा—
पमाणकाले, अहाउयनिव्वत्तिकाले, मरणकाले, अद्धाकाले।

चतुर्विध: काल: प्रज्ञप्त:, तद्यथा—
प्रमाणकाल:, यथायुर्निवृत्तिकाल:,
मरणकाल:, अद्ध्वाकाल:।

१३४. काल चार प्रकार का होता है—
१. प्रमाणकाल—काल के दिवस, रात्रि आदि विभाग, २ यथायु निवृत्तिकाल—आयुष्य के अनुरूप नरक आदि गतियो मे रहने का काल, ३. मरणकाल—मृत्यु का समय, ४. अद्धाकाल—सूर्य की गति से पहचाना जाने वाला काल।

पोग्गल-परिणाम-पदं

पुद्गल-परिणाम-पदम्

पुद्गल-परिणाम-पद

१३५. चउव्विहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते तं जहा—
वण्णपरिणामे, गंधपरिणामे,
रसपरिणामे, फासपरिणामे।

चतुर्विध: पुद्गलपरिणाम: प्रज्ञप्त:, तद्यथा—
वर्णपरिणाम:, गन्धपरिणाम:,
रसपरिणाम:, स्पर्शपरिणाम:।

१३५. पुद्गल का परिणाम चार प्रकार का होता है—१. वर्णपरिणाम—वर्ण का परिवर्तन,
२. गंधपरिणाम—गंध का परिवर्तन,
३. रसपरिणाम—रस का परिवर्तन,
४. स्पर्शपरिणाम—स्पर्श का परिवर्तन।

चाउज्जाम-पदं

चातुर्याम-पदम्

चातुर्याम-पद

१३६. भरहेरवएसु णं वासेसु पुरिम-पच्छिमवज्जा मज्झिमगा बावीसं अरहंता भगवंतो चाउज्जामं धम्मं पण्णवयंति, तं जहा—

भरतैरावतयो: वर्षयो: पूर्व-पश्चिम-वर्जा: मध्यमका: द्वाविंशति: अर्हन्त: भगवन्त: चातुर्याम धर्म प्रज्ञापयन्ति, तद्यथा—

१३६. भरत और ऐरवत क्षेत्र मे प्रथम और अन्तिम को छोड़कर शेष बाईस अर्हन्त भगवान् चातुर्याम धर्म का उपदेश देते हैं, वह इस प्रकार है—

सव्वाओ पाणातिवायाओ वेरमणं,
सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं,
सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं,
सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं।

सर्वस्मात् प्राणातिपाताद् विरमणं,
सर्वस्माद् मृषावादाद् विरमण,
सर्वस्माद् अदत्तादानाद् विरमणं,
सर्वस्माद् बहिस्तादादानाद् विरमणम्।

१. सर्व प्राणातिपात से विरमण करना,
२. सर्व मृषावाद से विरमण करना,
३. सर्व अदत्तादान से विरमण करना,
४. सर्व बाह्य-आदान से विरमण करना।

१३७. सव्वेसु णं महाविदेहेसु अरहंता भगवंतो चाउज्जामं धम्मं पण्णवयंति, तं जहा—
सव्वाओ पाणातिवायाओ वेरमणं,
°सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं,
सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं,°
सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं।

सर्वेषु महाविदेहेषु अर्हन्तः भगवन्तः चातुर्याम धर्मं प्रज्ञापयन्ति, तद्यथा—
सर्वस्मात् प्राणातिपाताद् विरमणं,
सर्वस्माद् मृषावादाद् विरमणं,
सर्वस्माद् अदत्तादानाद् विरमण,
सर्वस्माद् बहिस्तादादानाद् विरमणम्।

१३७. सब महाविदेह क्षेत्रों में अर्हन्त भगवान् चातुर्याम धर्म का उपदेश देते हैं, वह इस प्रकार है—
१. सर्व प्राणातिपात से विरमण करना।
२. सर्व मृषावाद से विरमण करना,
३. सर्व अदत्तादान से विरमण करना,
४. सर्व बाह्य-आदान से विरमण करना।

दुग्गति-सुगति-पदं

१३८. चत्तारि दुग्गतिओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णेरइयदुग्गती, तिरिक्खजोणियदुग्गती, मणुस्सदुग्गती, देवदुग्गती।

१३९. चत्तारि सोग्गईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सिद्धसोग्गती, देवसोग्गती, मणुयसोग्गती, सुकुलपच्चायाती।

१४०. चत्तारि दुग्गता पण्णत्ता, तं जहा—णेरइयदुग्गता, तिरिक्खजोणियदुग्गता, मणुयदुग्गता, देवदुग्गता।

१४१. चत्तारि सुग्गता पण्णत्ता, तं जहा—
सिद्धसुग्गता, °देवसुग्गता, मणुयसुग्गता° सुकुलपच्चायाया।

दुर्गति-सुगति-पदम्

चतस्रः दुर्गतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नैरयिकदुर्गतिः, तिर्यग्योनिकदुर्गतिः, मनुष्यदुर्गतिः, देवदुर्गतिः।

चतस्रः सुगतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सिद्धसुगतिः, देवसुगतिः, मनुजसुगतिः, सुकुलप्रत्याजातिः।

चत्वारः दुर्गताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नैरयिकदुर्गताः, तिर्यग्योनिकदुर्गताः, मनुजदुर्गताः, देवदुर्गताः।

चत्वारः सुगताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सिद्धसुगताः, देवसुगताः, मनुजसुगताः, सुकुलप्रत्याजाताः।

दुर्गति-सुगति-पद

१३८. दुर्गति चार प्रकार की होती है—
१. नैरयिक दुर्गति, २. तिर्यक्योनिक दुर्गति, ३. मनुष्य दुर्गति, ४. देव दुर्गति।

१३९. सुगति चार प्रकार की होती है—
१. सिद्ध सुगति, २. देव सुगति, ३. मनुष्य सुगति, ४. सुकुल में जन्म।

१४०. दुर्गत—दुर्गति मे उत्पन्न होने वाले—चार प्रकार के होते हैं—१. नैरयिक दुर्गत, २. तिर्यक्योनिक दुर्गत, ३. मनुष्य दुर्गत, ४. देव दुर्गत।

१४१. सुगत—सुगति मे उत्पन्न होने वाले चार प्रकार के होते है—१ सिद्ध सुगत, २ देव सुगत, ३. मनुष्य सुगत, ४. सुकुल मे जन्म लेने वाला।

कम्मंस-पदं

१४२. पढमसमयजिणस्स णं चत्तारि कम्मंसा खीणा भवंति, तं जहा—णाणावरणिज्जं, दंसणावरणिज्जं, मोहणिज्जं, अंतराइयं।

सत्कर्म-पदम्

प्रथमसमयजिनस्य चत्वारि सत्कर्माणि क्षीणानि भवन्ति, तद्यथा—ज्ञानावरणीयं, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आन्तरायिकम्।

सत्कर्म-पद

१४२. प्रथम-समय के केवली के चार सत्कर्म क्षीण होते हैं—१. ज्ञानवरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. मोहनीय, ४. आन्तरायिक।

१४३. उप्पण्णणाणदंसणधरे णं अरहा जिणे केवली चत्तारि कम्मंसे वेदेति, तं जहा—
वेयणिज्जं, आउयं, णामं, गोतं।

उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अर्हन् जिन. केवली चत्वारि सत्कर्माणि वेदयति, तद्यथा—
वेदनीयं, आयु:, नाम, गोत्रम्।

१४३. उत्पन्न हुए केवल ज्ञान दर्शन को धारण करने वाले अर्हन्, जिन, केवली चार सत्कर्मों का वेदन करते हैं—१. वेदनीय, २ आयु, ३. नाम, ४. गोत्र।

१४४. पढमसमयसिद्धस्स णं चत्तारि कम्मंसा जुगवं खिज्जंति, तं जहा—
वेयणिज्जं, आउयं, णामं, गोतं।

प्रथमसमयसिद्धस्य चत्वारि सत्कर्माणि युगपत् क्षीयन्ते, तद्यथा—
वेदनीय, आयु:, नाम, गोत्रम्।

१४४. प्रथम समय के सिद्ध के चार सत्कर्म एक साथ क्षीण होते है—१. वेदनीय, २ आयु, ३ नाम, ४. गोत्र।

हासुप्पत्ति-पदं

१४५. चउहिं ठाणेहिं हासुप्पत्ती सिया, तं जहा—
पासेत्ता, भासेत्ता,
सुणेत्ता, संभरेत्ता।

हास्योत्पत्ति-पदम्

चतुर्भिः स्थानैः हास्योत्पत्तिः स्यात्, तद्यथा—
दृष्ट्वा, भाषित्वा, श्रुत्वा, स्मृत्वा।

हास्योत्पत्ति-पद

१४५. चार कारणो से हसी आती है—
१. देखकर—विदूषक आदि की चेष्टाओ को देखकर, २. बोलकर—किसी के बोलने की नकल कर, ३. सुनकर—उस प्रकार की चेष्टाओं और वाणी को सुन कर, ४. यादकर—दृष्ट और श्रुत बातो को यादकर।

अंतर-पदं

१४६. चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते, तं जहा—
कट्ठंतरे, पम्हंतरे, लोहंतरे, पत्थरंतरे।
एवामेव इत्थिए वा पुरिसस्स वा चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते, तं जहा—
कट्ठंतरसमाणे, पम्हंतरसमाणे, लोहंतरसमाणे, पत्थरंतरसमाणे।

अन्तर-पदम्

चतुर्विध अन्तर प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
काष्ठान्तर, पक्ष्मान्तर, लोहान्तर, प्रस्तरान्तरम्।
एवमेव स्त्रियः वा पुरुषस्य वा चतुर्विधं अन्तरं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
काष्ठान्तरसमान, पक्ष्मान्तरसमान, लोहान्तरसमान, प्रस्तरान्तरसमानम्।

अन्तर-पद

१४६. अन्तर चार प्रकार का होता है—
१. काष्ठान्तर—काष्ठ का अन्तर—रूप-निर्माण आदि की दृष्टि से,
२. पक्ष्मान्तर—धागे से धागे का अन्तर—सुकुमारता आदि की दृष्टि से,
३. लोहान्तर—लोहे से लोहे का अन्तर—छेदन शक्ति की दृष्टि से, ४. प्रस्तरातर—पत्थर से पत्थर का अन्तर—इच्छा पूर्ण करने की क्षमता [जैसे मणि] आदि की दृष्टि से।
इसी प्रकार स्त्री से स्त्री का, पुरुष से पुरुष का अन्तर भी चार-चार प्रकार का होता है—१. काष्ठान्तर के समान—विशिष्ट पदवी आदि की दृष्टि से, २. पक्ष्मांतर के समान—वचन, सुकुमारता आदि की दृष्टि से, ३. लोहान्तर के समान—स्नेह का छेदन करने आदि की दृष्टि से,
४. प्रस्तरातर के समान—मनोरथ पूर्ण करने की क्षमता आदि की दृष्टि से।

भयग-पदं

१४७. **चत्तारि भयगा पण्णत्ता, तं जहा—दिवसभयए, जत्ताभयए, उच्चत्तभयए, कब्बालभयए।**

भृतक-पदम्

चत्वारः भृतकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—दिवसभृतकः, यात्राभृतकः, उच्चत्वभृतकः, कब्वाडभृतकः।

भृतक-पद

१४७. भृतक चार प्रकार के होते हैं—

१. दिवस-भृतक—प्रतिदिन का नियत मूल्य लेकर काम करने वाला, २. यात्रा-भृतक—यात्रा में सहयोग करने वाला, ३. उच्चता-भृतक—घण्टों के अनुपात से मूल्य लेकर काम करने वाला, ४. कब्बाड-भृतक—हाथों के अनुपात से धन लेकर भूमि खोदने वाला।"

पडिसेवि-पदं

१४८. **चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—संपागडपडिसेवी णामेगे, णो पच्छण्णपडिसेवी, पच्छण्णपडिसेवी णामेगे, णो संपागडपडिसेवी, एगे संपागडपडिसेवी वि, पच्छण्णपडिसेवीवि, एगे णो संपागडपडिसेवी, णो पच्छण्णपडिसेवी ।**

प्रतिषेवि-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सम्प्रकटप्रतिषेवी नामैकः, नो प्रच्छन्नप्रतिषेवी, प्रच्छन्नप्रतिषेवी नामैकः, नो सम्प्रकटप्रतिषेवी, एकः सम्प्रकटप्रतिषेवी अपि, प्रच्छन्नप्रतिषेवी अपि, एकः नो सम्प्रकटप्रतिषेवी, नो प्रच्छन्नप्रतिषेवी ।

प्रतिषेवि-पद

१४८. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—

१. कुछ पुरुष प्रकट में दोष सेवन करते हैं, किन्तु छिपकर नहीं करते, २ कुछ पुरुष छिपकर दोष सेवन करते है, किन्तु प्रकट में नहीं करते, ३. कुछ पुरुष प्रकट में भी दोष सेवन करते है और छिपकर कर भी, ४. कुछ पुरुष न प्रकट में दोष सेवन करते है और न छिपकर ही।

अग्गमहिसी-पदं

१४९. **चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कणगा, कणगलता, चित्तगुत्ता, वसुंधरा ।**

१५०. **एवं—जमस्स वरुणस्स वेसमणस्स।**

१५१. **बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—मितगा, सुभद्दा, विज्जुता, असणी ।**

अग्रमहिषी-पदम्

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य सोमस्य महाराजस्य चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कनका, कनकलता, चित्रगुप्ता, वसुंधरा।

एवम्—यमस्य वरुणस्य वैश्रमणस्य ।

बलेः वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य सोमस्य महाराजस्य चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—मितका, सुभद्रा, विद्युत्, अशनिः।

अग्रमहिषी-पद

१४९. असुरेन्द्र, असुरराज चमर के लोकपाल महाराज सोम के चार अग्रमहिषियां होती हैं—१. कनका, २. कनकलता, ३. चित्रगुप्ता, ४. वसुन्धरा।

१५०. इसी प्रकार यम आदि के भी चार-चार अग्रमहिषियां होती हैं।

१५१. वैरोचनेन्द्र, वैरोचनराज बलि के लोकपाल महाराज सोम के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१. मितका २. सुभद्रा, ३. विद्युत, ४. अशनि।

१५२. एवं—जमस्स वेसमणस्स वरुणस्स।

एवम्—यमस्य वैश्रमणस्य वरुणस्य।

१५२ इसी प्रकार यम आदि के चार-चार अग्र-महिषिया होती है—

१५३. धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो कालवालस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—असोगा, बिमला, सुप्पभा, सुदंसणा।

धरणस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमार-राजस्य कालवालस्य महाराजस्य चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अशोका, विमला, सुप्रभा, सुदर्शना।

१५३. नागकुमारेन्द्र, नागकुमारराज धरणेन्द्र के लोकपाल महाराज कालपाल के चार अग्रमहिषिया होती है—१. अशोका, २. विमला, ३. सुप्रभा, ४. सुदर्शना।

१५४. एवं—जाव संखवालस्स।

एवम्—यावत् शङ्खपालस्य।

१५४. इसी प्रकार शखपाल तक के भी चार-चार अग्रमहिषिया होती है।

१५५. भूताणंदस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो कालवालस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सुणंदा, सुभद्दा, सुजाता, सुमणा।

भूतानन्दस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमार-राजस्य कालवालस्य महाराजस्य चतस्र अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता तद्यथा—सुनन्दा, सुभद्रा, सुजाता, सुमना।

१५५. नागकुमारेन्द्र, नागकुमारराज भूतानन्द के लोकपाल महाराज कालपाल के चार अग्रमहिषिया होती है—१. सुनन्दा, २. सुभद्रा, ३. सुजाता, ४. सुमना।

५१६. एवं—जाव सेलवालस्स।

एवम्—यावत् सेलपालस्य।

१५६. इसी प्रकार सेलपाल तक के भी चार-चार अग्रमहिषिया होती हैं।

१५७. जहा धरणस्स एवं सव्वेसिं दाहिणिंद लोगपालाणं जाव घोसस्स।

यथा धरणस्य एव सर्वेषां दक्षिणेन्द्र-लोकपालानां यावत् घोपस्य।

१५७. दक्षिण दिशा के आठ इन्द्र—वेणुदेव, हरिकान्त, अग्नि-शिख, पूर्ण, जलकान्त, अमितगति, वेलम्ब और घोष के लोकपालों के चार अग्रमहिषिया होती है—१. अशोका, २. विमला, ३. सुप्रभा, ४ सुदर्शना।

१५८. जहा भूताणंदस्स एवं जाव महाघोसस्स लोगपालाणं।

यथा भूतानन्दस्य एव यावत् महाघोषस्य लोकपालानाम्।

१५८. उत्तर-दिशा के आठ इन्द्र—वेणुदालि हरिस्सह, अग्नि मानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभञ्जन और महाघोष के लोकपालो के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१ सुनदा, २ सुभद्रा, ३ सुजाता, ४ सुमना।

१५९. कालस्स णं पिसाइंदस्स पिसायरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कमला, कमलप्पभा, उप्पला, सुदंसणा।

कालस्य पिशाचेन्द्रस्य पिशाचराजस्य चतस्रः अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—कमला, कमलप्रभा, उत्पला, सुदर्शना।

१५९. पिशाचेन्द्र, पिशाचराज, काल के चार अग्रमहिषियां होती है—१. कमला, २. कमलप्रभा, ३. उत्पला ४. सुदर्शना।

१६०. एवं—महाकालस्सवि।

एवम्—महाकालस्यापि।

१६०. इसी प्रकार महाकाल के भी चार अग्र-महिषिया होती हैं।

१६१. सुरूवस्स णं भूतिंदस्स भूतरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रूववती, बहुरूवा, सुरूवा, सुभगा।	सुरूपस्य भूतेन्द्रस्य भूतराजस्य चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— रूपवती, बहुरूपा, सुरूपा, सुभगा।	१६१. भूतेन्द्र भूतराज, सुरूप के चार अग्रमहिषियां होती हैं—१. रूपवती, २. बहुरूपा, ३. सुरूपा, ४. सुभगा।
१६२. एवं—पडिरूवस्सवि।	एवम्—प्रतिरूपस्यापि।	१६२. इसी प्रकार प्रतिरूप के भी चार अग्रमहिषियां होती हैं।
१६३. पुण्णभद्दस्स णं जक्खिंदस्स जक्खरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पुण्णा, बहुपुण्णिता, उत्तमा, तारगा।	पूर्णभद्रस्य यक्षेन्द्रस्य यक्षराजस्य चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— पूर्णा, बहुपूर्णिका, उत्तमा, तारका।	१६३. यक्षेन्द्र, यक्षराज, पूर्णभद्र के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१. पूर्णा, २. बहुपूर्णिका, ३. उत्तमा, ४. तारका।
१६४. एवं—माणिभद्दस्सवि।	एवम्—माणिभद्रस्यापि।	१६४. इसी प्रकार माणिभद्र के भी चार अग्रमहिषियां होती है।
१६५. भीमस्स णं रक्खसिंदस्स रक्खसरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पउमा, वसुमती, कणगा, रतणप्पभा।	भीमस्य राक्षसेन्द्रस्य राक्षसराजस्य चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— पद्मा, वसुमती, कनका, रत्नप्रभा।	१६५. राक्षसेन्द्र, राक्षसराज, भीम के चार अग्रमहिषियां होती है—१. पद्मा, २ वसुमती, ३. कनका, ४. रत्नप्रभा।
१६६. एवं—महाभीमस्सवि।	एवम्—महाभीमस्यापि।	१६६ इसी प्रकार महाभीम के भी चार अग्रमहिषियां होती हैं।
१६७ किण्णरस्य णं किण्णरिंदस्स [किण्णररण्णो ?] चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—वडेसा, केतुमती, रतिसेणा, रतिप्पभा।	किन्नरस्य किन्नरेन्द्रस्य [किन्नरराजस्य ?] चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— अवतसा, केतुमती, रतिसेना, रतिप्रभा।	१६७. किन्नरेन्द्र, किन्नराज, किन्नर के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१. अवतसा, २. केतुमती, ३. रतिसेना, ४. रतिप्रभा।
१६८. एवं—किंपुरिसस्सवि।	एवम्—किंपुरुषस्यापि।	१६८. इसी प्रकार किंपुरुष के भी चार अग्रमहिषिया होती है।
१६९. सप्पुरिसस्स णं किंपुरिसिंदस्स [किंपुरिसरण्णो ?] चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा— रोहिणी, णवमिता, हिरी, पुप्फवती।	सत्पुरुषस्य किंपुरुषेन्द्रस्य [किंपुरुषराजस्य ?] चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— रोहिणी, नवमिका, ह्री., पुष्पवती।	१६९. किंपुरुषेन्द्र, किंपुरुषराज, सत्पुरुष के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१. रोहिणी, २. नवमिता, ३. ह्री, ४. पुष्पवती।
१७०. एवं—महापुरिसस्सवि।	एवम्—महापुरुषस्यापि।	१७०. इसी प्रकार महापुरुष के भी चार अग्रमहिषियां होती हैं।
१७१. अतिकायस्स णं महोरगिंदस्स [महोरगरण्णो ?], चत्तारि	अतिकायस्य महोरगेन्द्रस्य [महोरगराजस्य ?] चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः,	१७१. महोरगेन्द्र, महोरगराज, अतिकाय के चार अग्रमहिषियां होती हैं—१. भुजगा,

अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—भुयगा, भुयगावती महाकच्छा, फुडा ।

तद्यथा—भुजगा, भुजगवती, महाकक्षा, स्फुटा ।

२. भुजगवती, ३. कक्षा, ४. स्फुटा ।

१७२. एवं—महाकायस्सवि ।

एवम्—महाकायस्यापि ।

१७२. इसी प्रकार महाकाय के भी चार अग्रमहिषिया होती हैं ।

१७३. गीतरतिस्स णं गंधव्विंदस्स [गंधव्वरण्णो ?] चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सुघोसा, विमला, सुस्सरा, सरस्सती ।

गीतरते. गन्धर्वेन्द्रस्य [गन्धर्वराजस्य ?] चतस्र अग्रमहिष्य: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—सुघोषा, विमला, सुस्वरा, सरस्वती ।

१७३. गन्धर्वेन्द्र, गन्धर्वराज, गीतरति के चार अग्रमहिषियाँ होती हैं—१. सुघोषा, २. विमला, ३. सुस्वरा, ४. सरस्वती ।

१७४. एवं—गीयजसस्सवि ।

एवम्—गीतयशसोऽपि ।

१७४ इसी प्रकार गीतयश के भी चार अग्रमहिषिया होती है ।

१७५. चंदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—चंदप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभंकरा ।

चन्द्रस्य ज्योतीरिन्द्रस्य ज्योतीराजस्य चतस्र:, अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता. तद्यथा—चन्द्रप्रभा, ज्योत्स्नाभा, अर्चिमालिनी, प्रभंकरा ।

१७५. ज्योतिषेन्द्र, ज्योतिषराज चन्द्र के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१. चन्द्रप्रभा, २ ज्योत्स्नाभा, ३. अर्चिमालिनी, ४ प्रभकरा ।

१७६. एवं—सूरस्सवि, णवरं—सूरप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभंकरा ।

एवम्—सूरस्यापि, नवर—सूरप्रभा, ज्योत्स्नाभा, अर्चिमालिनी, प्रभकरा ।

१७६ इसी प्रकार ज्योतिषेन्द्र ज्योतिषराज सूर्य के चार अग्रमहिषिया होती हैं—१. सूर्यप्रभा, २. ज्योत्स्नाभा, ३. अर्चिमालिनी, प्रभकरा ।

१७७. इंगालस्स णं महागहस्स चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—विजया, वेजयंती, जयंती, अपराजिया ।

अङ्गारस्य महाग्रहस्य चतस्र: अग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता', तद्यथा—विजया, वैजयन्ती, जयंती, अपराजिता ।

१७७ अंगार महाग्रह के चार अग्रमहिषियां होती है—१. विजया, २. वैजयंती, ३ जयती, ४. अपराजिता ।

१७८. एवं—सव्वेसिं महग्गहाणं जाव भावकेउस्स ।

एवम्—सर्वेषा महाग्रहाणा यावत् भावकेतो: ।

१७८ इसी प्रकार भावकेतु तक के सभी महाग्रहो के चार-चार अग्रमहिषिया होती हैं ।

१७९. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रोहिणी, मयणा, चित्ता, सामा ।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य चतस्र. अग्रमहिष्य' प्रज्ञप्ता, तद्यथा—रोहिणी, मदना, चित्रा, श्यामा ।

१७९. देवेन्द्र, देवराज, शक्र के लोकपाल महाराज सोम के चार अग्रमहिषियां होती हैं—१. रोहिणी, २. मदना, ३. चित्रा, ४ सोमा ।

१८०. एवं—जाव वेसमणस्स ।

एवम्—यावत् वैश्रमणस्य ।

१८०. इसी प्रकार वैश्रमण तक के भी चार-चार अग्रमहिषिया होती हैं ।

१८१. ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्ग-

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य चतस्र. अग्रमहिष्य: प्रज्ञप्ता:,

१८१. देवेन्द्र, देवराज ईशान के लोकपाल महाराज सोम के चार अग्रमहिषियां होती

महिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
पुढवी, राती, रयणी, विज्जू ।
१८२. एवं—जाव वरुणस्स ।

तद्यथा—पृथ्वी, रात्री, रजनी, विद्युत् ।
एवम्—यावत् वरुणस्य ।

हैं—१ पृथ्वी, २. रात्री, ३. रजनी, ४. विद्युत् ।
१८२. इसी प्रकार वरुण तक के भी चार-चार अग्रमहिषियां होती हैं ।

विगति-पदं

१८३. चत्तारि गोरसविगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
खीरं, दहिं, सप्पि, णवणीतं ।
१८४. चत्तारि सिणेहविगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
तेल्लं, घयं, वसा, णवणीतं ।
१८५. चत्तारि महाविगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
महुं, मंसं, मज्जं, णवणीतं ।

विकृति-पदम्

चतस्र. गोरसविकृतयः प्रज्ञप्ता., तद्यथा—
क्षीरं, दधि, सर्पिः, नवनीतम् ।
चतस्र स्नेहविकृतय. प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तैलं, घृतं, वसा, नवनीतम् ।
चतस्र. महाविकृतय प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मधु, मांसं, मद्यं, नवनीतम् ।

विकृति-पद

१८३. गोरसमय विकृतियां चार है—१. दूध, २. दही, ३. घृत, ४. नवनीत ।
१८४. स्नेह (चिकनाई) मय विकृतियां चार हैं—१. तैल, २. घृत, ३. वसा—चर्बी, ४. नवनीत ।
१८५. महाविकृतिया चार हैं—
१ मधु, २. मांस, ३ मद्य, ४. नवनीत ।

गुत्त-अगुत्त-पदं

१८६. चत्तारि कूडागारा पण्णत्ता, तं जहा—
गुत्ते णामं एगे गुत्ते,
गुत्ते णामं एगे अगुत्ते,
अगुत्ते णामं एगे गुत्ते,
अगुत्ते णामं एगे अगुत्ते ।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाता पण्णत्ता, तं जहा—
गुत्ते णामं एगे गुत्ते,
गुत्ते णामं एगे अगुत्ते,
अगुत्ते णामं एगे गुत्ते,
अगुत्ते णामं एगे अगुत्ते ।

गुप्त-अगुप्त-पदम्

चत्वारि कूटागाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गुप्तं नामैकं गुप्तं,
गुप्त नामैक अगुप्त,
अगुप्तं नामैकं गुप्त,
अगुप्तं नामैकं अगुप्तम् ।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गुप्त. नामैक गुप्त ,
गुप्तः नामैक. अगुप्तः,
अगुप्त नामैक गुप्तः,
अगुप्तः नामैकः अगुप्त. ।

गुप्त-अगुप्त-पद

१८६. कूटागार [शिखर सहित घर] चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ कूटागार गुप्त होकर गुप्त होते है—परकोटे से घिरे हुए होते है और उनके द्वार भी बन्द होते है, २ कुछ कूटागार गुप्त होकर अगुप्त होते है—परकोटे से घिरे हुए होते हैं, किन्तु उनके द्वार बन्द नही होते, ३. कुछ कूटागार अगुप्त होकर गुप्त होते—परकोटे से घिरे हुए नही होते, किन्तु उनके द्वार बन्द होते है, ४ कुछ कूटागार अगुप्त होकर अगुप्त होते है—न परकोटे से घिरे हुए होते हैं और न उनके द्वार ही बन्द होते हैं ।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष गुप्त होकर गुप्त होते हैं—वस्त्र पहने हुए होते हैं और उनकी इन्द्रियां भी गुप्त होती हैं, २. कुछ पुरुष गुप्त होकर अगुप्त होते हैं—वस्त्र पहने हुए होते हैं, किन्तु उनकी इन्द्रियां गुप्त नही होती, ३. कुछ पुरुष अगुप्त होकर गुप्त होते हैं—वस्त्र पहने हुए नहीं होते, किन्तु उनकी

इन्द्रियां गुप्त होती है, ४. कुछ पुरुष अगुप्त होकर अगुप्त होते हैं—न वस्त्र पहने हुए होते हैं और न उनकी इन्द्रियां ही गुप्त होती हैं।

१८७. चत्तारि कूडागारसालाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
गुत्ता णाममेगा गुत्तदुवारा,
गुत्ता णाममेगा अगुत्तदुवारा,
अगुत्ता णाममेगा गुत्तदुवारा,
अगुत्ता णाममेगा अगुत्तदुवारा।
एवामेव चत्तारित्थीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
गुत्ता णाममेगा गुत्तिंदिया,
गुत्ता णाममेगा अगुत्तिंदिया,
अगुत्ता णाममेगा गुत्तिंदिया,
अगुत्ता णाममेगा अगुत्तिंदिया।

चतस्र कूटागारशाला प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
गुप्ता नामैका गुप्तद्वारा,
गुप्ता नामैका अगुप्तद्वारा,
अगुप्ता नामैका गुप्तद्वारा,
अगुप्ता नामैका अगुप्तद्वारा।
एवमेव चतस्र स्त्रिय. प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
गुप्ता नामैका गुप्तेन्द्रिया,
गुप्ता नामैका अगुप्तेन्द्रिया,
अगुप्ता नामैका गुप्तेन्द्रिया,
अगुप्ता नामैका अगुप्तेन्द्रिया।

१८७ कूटागार-शालाए चार प्रकार की होती हैं—१ कुछ कूटागार-शालाए गुप्त और गुप्तद्वार वाली होती है, २ कुछ कूटागार-शालाए गुप्त, किन्तु अगुप्तद्वार वाली होती है, ३ कुछ कूटागार-शालाए अगुप्त, किन्तु गुप्तद्वार वाली होती हैं, ४ कुछ कूटागार-शालाए अगुप्त और अगुप्तद्वार वाली होती है।
इसी प्रकार स्त्रिया भी चार प्रकार की होती है—१ कुछ स्त्रिया गुप्त और गुप्त-इन्द्रिय वाली होती हैं, २ कुछ स्त्रिया गुप्त, किन्तु अगुप्तइन्द्रिय वाली होती है, ३ कुछ स्त्रिया अगुप्त, किन्तु गुप्तइन्द्रिय वाली होती हैं, कुछ स्त्रिया अगुप्त और अगुप्तइन्द्रिय वाली होती है।

ओगाहणा-पदं

१८८. चउव्विहा ओगाहणा पण्णत्ता, तं जहा—
दव्वोगाहणा, खेत्तोगाहणा,
कालोगाहणा, भावोगाहणा।

अवगाहना-पदम्

चतुर्विधा अवगाहना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
द्रव्यावगाहना, क्षेत्रावगाहना,
कालावगाहना, भावावगाहना।

अवगाहना-पद

१८८ अवगाहना चार प्रकार की होती है—
१. द्रव्यावगाहना—द्रव्यो की अवगाहना—द्रव्यो के फैलाव का परिमाण, २ क्षेत्राव-गाहना—क्षेत्र स्वय अवगाहना है,
३ कालावगाहना—काल की अवगाहना, वह मनुष्यलोक मे है, ४. भावावगाहना—आश्रय लेने की क्रिया।

पण्णत्ति-पदं

१८९. चत्तारि पण्णत्तीओ अंगबाहिरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
चंदपण्णत्ती, सूरपण्णत्ती,
जंबुद्दीवपण्णत्ती, दीवसागरपण्णत्ती।

प्रज्ञप्ति-पदम्

चतस्र प्रज्ञप्तय अङ्गबाह्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूरप्रज्ञप्ति:,
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति:।

प्रज्ञप्ति-पद

१८९. चार प्रज्ञप्तियां अग-बाह्य हैं—
१. चन्द्रप्रज्ञप्ति, २ सूरप्रज्ञप्ति,
३. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ४. द्वीपसागरप्रज्ञप्ति।

बीओ उद्देसो

पडिसंलीण-अपडिसंलीण-पदं

१६०. **चत्तारि पडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा—कोहपडिसंलीणे, माणपडिसंलीणे, मायापडिसंलीणे, लोभपडिसंलीणे।**

१६१. **चत्तारि अपडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा—कोहअपडिसंलीणे, •माणअपडिसंलीणे, मायाअपडिसंलीणे,° लोभअपडिसंलीणे।**

१६२. **चत्तारि पडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा—मणपडिसंलीणे, वतिपडिसंलीणे, कायपडिसंलीणे, इंदियपडिसंलीणे।**

१६३. **चत्तारि अपडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा—मणअपडिसंलीणे, •वतिअपडिसंलीणे, कायअपडिसंलीणे,° इंदियअपडिसंलीणे।**

प्रतिसंलीन-अप्रतिसंलीन-पदम्

चत्वारः प्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा— क्रोधप्रतिसंलीनः, मानप्रतिसंलीनः, मायाप्रतिसंलीनः, लोभप्रतिसंलीनः।

चत्वारः अप्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— क्रोधाप्रतिसंलीनः, मानाप्रतिसंलीनः, मायाऽप्रतिसंलीनः, लोभाप्रतिसंलीनः।

चत्वारः प्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— मनःप्रतिसंलीनः, वाक्प्रतिसंलीनः, कायप्रतिसंलीनः, इन्द्रियप्रतिसंलीनः।

चत्वारः अप्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— मनोऽप्रतिसंलीनः, वागप्रतिसंलीनः, कायाऽप्रतिसंलीनः, इन्द्रियाऽप्रतिसंलीनः।

प्रतिसंलीन-अप्रतिसंलीन-पद

१६० चार प्रतिसंलीन होते हैं— १. क्रोधप्रतिसंलीन, २. मानप्रतिसंलीन, ३. मायाप्रतिसंलीन, ४. लोभप्रतिसंलीन।[४१]

१६१ चार अप्रतिसंलीन होते हैं— १ क्रोधअप्रतिसंलीन, २ मानअप्रतिसंलीन, ३. मायाअप्रतिसंलीन, ४ लोभअप्रतिसंलीन।

१६२ चार प्रतिसंलीन होते हैं— १. मनप्रतिसंलीन, २ वचनप्रतिसंलीन, ३ कायप्रतिसंलीन, ४. इन्द्रियप्रतिसंलीन।[४२]

१६३. चार अप्रतिसंलीन होते हैं— १. मनअप्रतिसंलीन, २ वचनप्रतिसंलीन, ३ कायअप्रतिसंलीन, ४. इन्द्रियअप्रतिसंलीन।

दीण-अदीण-पदं

१६४. **चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— दीणे णाममेगे दीणे, दीणे णाममेगे अदीणे, अदीणे णाममेगे दीणे, अदीणे णाममेगे अदीणे।**

१६५. **चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— दीणे णाममेगे दीणपरिणते,**

दीन-अदीन-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— दीनः नामैकः दीनः, दीनः नामैकः अदीनः, अदीनः नामैकः दीनः, अदीनः नामैकः अदीनः।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— दीनः नामैकः दीनपरिणतः,

दीन-अदीन-पद

१६४ पुरुष चार प्रकार के होते हैं— १. कुछ पुरुष बाहर से भी दीन और अन्तर मे भी दीन होते हैं, २ कुछ पुरुष बाहर से दीन, किन्तु अन्तर मे अदीन होते है, ३. कुछ पुरुष बाहर से अदीन, किन्तु अतर में दीन होते हैं, ४ कुछ पुरुष बाहर से भी अदीन और अतर में भी अदीन होते है।

१६५. पुरुष चार प्रकार के होते हैं— १. कुछ पुरुष दीन और दीन रूप में परिणत होते हैं, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु

दीणे णाममेगे अदीणपरिणते,
अदीणे णाममेगे दीणपरिणते,
अदीणे णाममेगे अदीणपरिणते ।

दीन. नामैक. अदीनपरिणतः,
अदीनः नामैकः दीनपरिणतः,
अदीनः नामैक अदीनपरिणत ।

अदीन रूप में परिणत होते हैं, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन रूप मे परिणत होते हैं, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन रूप में परिणत होते हैं ।

१९६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे णाममेगे दीणरूवे,
दीणे णाममेगे अदीणरूवे,
अदीणे णाममेगे दीणरूवे,
अदीणे णाममेगे अदीणरूवे ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीनः नामैकः दीनरूपः,
दीनः नामैकः अदीनरूपः,
अदीनः नामैक. दीनरूप.,
अदीनः नामैक. अदीनरूप. ।

१९६ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष दीन और दीन रूप वाले होते है, २. कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन रूप वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन रूप वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष अदीन और अदीन रूप वाले होते है ।

१९७. *चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे णाममेगे दीणमणे,
दीणे णाममेगे अदीणमणे,
अदीणे णाममेगे दीणमणे,
अदीणे णाममेगे अदीणमणे ।

चत्वारि पुरुजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीनः नामैक. दीनमनाः,
दीनः नामैकः अदीनमना,
अदीनः नामैक दीनमना.,
अदीनः नामैकः अदीनमनाः ।

१९७. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष दीन और दीन मन वाले होते है, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन मन वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन मन वाले होते है, ४. कुछ पुरुष अदीन और अदीन मन वाले होते है ।

१९८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे णाममेगे दीणसंकप्पे,
दीणे णाममेगे अदीणसंकप्पे,
अदीणे णाममेगे दीणसंकप्पे,
अदीणे णाममेगे अदीणसंकप्पे ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीनः नामैक दीनसकल्प,
दीनः नामैक अदीनसकल्पः,
अदीन. नामैकः दीनसकल्प,
अदीन. नामैक. अदीनसकल्प ।

१९८. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष दीन और दीन सकल्प वाले होते है, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन सकल्प वाले होते है, ३. कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन सकल्प वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन सकल्प वाले होते हैं ।

१९९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे णाममेगे दीणपण्णे,
दीणे णाममेगे अदीणपण्णे,
अदीणे णाममेगे दीणपण्णे,
अदीणे णाममेगे अदीणपण्णे ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीनः नामैकः दीनप्रज्ञ,
दीन नामैकः अदीनप्रज्ञ,
अदीन. नामैक दीनप्रज्ञः,
अदीन नामैकः अदीनप्रज्ञः ।

१९९ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष दीन और दीन प्रज्ञा वाले होते है, २. कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन प्रज्ञा वाले होते है, ३. कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन प्रज्ञा वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन प्रज्ञा वाले होते है ।

२००. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे णाममेगे दीणदिट्ठी,
दीणे णाममेगे अदीणदिट्ठी,
अदीणे णाममेगे दीणदिट्ठी,
अदीणे णाममेगे अदीणदिट्ठी ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीन नामैक दीनदृष्टिः,
दीन नामैकः अदीनदृष्टि,
अदीनः नामैकः दीनदृष्टि,
अदीनः नामैकः अदीनदृष्टिः ।

२०० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष दीन और दीन दृष्टि वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन दृष्टि वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन दृष्टि वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन दृष्टि वाले होते हैं ।

२०१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे णाममेगे दीणसीलाचारे,
दीणे णाममेगे अदीणसीलाचारे,
अदीणे णाममेगे दीणसीलाचारे,
अदीणे णाममेगे अदीणसीलाचारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीनः नामैकः दीनशीलाचारः,
दीनः नामैकः अदीनशीलाचारः,
अदीनः नामैकः दीनशीलाचारः,
अदीनः नामैकः अदीनशीलाचारः।

२०१. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष दीन और दीन शीलाचार वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन शीलाचार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन शीलाचार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन शीलाचार वाले होते है।

२०२. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे णाममेगे दीणववहारे,
दीणे णाममेगे अदीणववहारे,
अदीणे णाममेगे दीणववहारे,
अदीणे णाममेगे अदीणववहारे°।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीनः नामैकः दीनव्यवहारः,
दीनः नामैकः अदीनव्यवहारः,
अदीनः नामैकः दीनव्यवहारः,
अदीनः नामैकः अदीनव्यवहारः।

२०२. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष दीन और दीन व्यवहार वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन व्यवहार वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन व्यवहार वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन व्यवहार वाले होते हैं।

२०३ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे णाममेगे दीणपरक्कमे,
दीणे णाममेगे अदीणपरक्कमे,
°अदीणे णाममेगे दीणपरक्कमे,
अदीणे णाममेगे अदीणपरक्कमे।°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीनः नामैकः दीनपराक्रमः,
दीनः नामैकः अदीनपराक्रमः,
अदीनः नामैकः दीनपराक्रमः,
अदीनः नामैकः अदीनपराक्रमः।

२०३. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष दीन और दीन पराक्रम वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन पराक्रम वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन पराक्रम वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष अदीन और अदीन पराक्रम वाले होते हैं।

२०४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे णाममेगे दीणवित्ती,
दीणे णाममेगे अदीणवित्ती,
अदीणे णाममेगे दीणवित्ती,
अदीणे णाममेगे अदीणवित्ती।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीनः नामैकः दीनवृत्तिः,
दीनः नामैकः अदीनवृत्तिः,
अदीनः नामैकः दीनवृत्तिः,
अदीनः नामैकः अदीनवृत्तिः।

२०४. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष दीन और दीन वृत्ति वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन वृत्ति वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन वृत्ति वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष अदीन और अदीन वृत्ति वाले होते हैं।

२०५. °चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे णाममेगे दीणजाती,
दीणे णाममेगे अदीणजाती,
अदीणे णाममेगे दीणजाती,
अदीणे णाममेगे अदीणजाती।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीनः नामैकः दीनजातिः,
दीनः नामैकः अदीनजातिः,
अदीनः नामैकः दीनजातिः,
अदीनः नामैकः अदीनजातिः।

२०५. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष दीन और दीन जाति वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन जाति वाले होते हैं, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन जाति वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष अदीन और अदीन जाति वाले होते हैं।

२०६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे णाममेगे दीणभासी,
दीणे णाममेगे अदीणभासी,
अदीणे णाममेगे दीणभासी,
अदीणे णाममेगे अदीणभासी।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीनः नामैकः दीनभाषी,
दीनः नामैकः अदीनभाषी,
अदीनः नामैकः दीनभाषी,
अदीनः नामैकः अदीनभाषी।

२०६ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष दीन और दीन भाषी होते है, २. कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन भाषी होते है, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन भाषी होते है, ४. कुछ पुरुष अदीन और अदीन भाषी होते है।

२०७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे णाममेगे दीणोभासी,
दीणे णाममेगे अदीणोभासी,
अदीणे णाममेगे दीणोभासी,
अदीणे णाममेगे अदीणोभासी।°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीनः नामैकः दीनावभासी,
दीनः नामैकः अदीनावभासी,
अदीनः नामैकः दीनावभासी,
अदीनः नामैकः अदीनावभासी।

२०७. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष दीन और दीन अवभासी [दीन की तरह लगने वाले] होते है, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन अवभासी होते है, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन अवभासी होते है, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन अवभासी होते है।

२०८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे णाममेगे दीणसेवी,
दीणे णाममेगे अदीणसेवी,
अदीणे णाममेगे दीणसेवी,
अदीणे णाममेगे अदीणसेवी।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीनः नामैकः दीनसेवी,
दीनः नामैकः अदीनसेवी,
अदीनः नामैकः दीनसेवी,
अदीनः नामैकः अदीनसेवी।

२०८ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष दीन और दीन सेवी होते है, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन सेवी होते है, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन सेवी होते है, ४ कुछ पुरुष अदीन और अदीन सेवी होते है।

२०९. °चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे णाममेगे दीणपरियाए,
दीणे णाममेगे अदीणपरियाए,
अदीणे णाममेगे दीणपरियाए,
अदीणे णाममेगे अदीणपरियाए।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीनः नामैकः दीनपर्यायः,
दीनः नामैकः अदीनपर्यायः,
अदीनः नामैकः दीनपर्यायः,
अदीनः नामैकः अदीनपर्यायः।

२०९ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष दीन और दीन पर्याय वाले होते है, २ कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन पर्याय वाले होते है, ३ कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन पर्याय वाले होते है, ४. कुछ पुरुष अदीन और अदीन पर्याय वाले होते हैं।

२१०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे णाममेगे दीणपरियाले,
दीणे णाममेगे अदीणपरियाले,
अदीणे णाममेगे दीणपरियाले,
अदीणे णाममेगे अदीणपरियाले।°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीनः नामैकः दीनपरिवारः,
दीनः नामैकः अदीनपरिवारः,
अदीनः नामैकः दीनपरिवारः,
अदीनः नामैकः अदीनपरिवारः।

२१० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष दीन और दीन परिवार वाले होते है, २. कुछ पुरुष दीन, किन्तु अदीन परिवार वाले होते है, ३. कुछ पुरुष अदीन, किन्तु दीन परिवार वाले होते है, ४. कुछ पुरुष अदीन और अदीन परिवार वाले होते हैं।

अज्ज-अणज्ज-पदं

२११. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जे,
अज्जे णाममेगे अणज्जे,
अणज्जे णाममेगे अज्जे,
अणज्जे णाममेगे अणज्जे।

२१२. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जपरिणए,
अज्जे णाममेगे अणज्जपरिणए,
अणज्जे णाममेगे अज्जपरिणए,
अणज्जे णाममेगे अणज्जपरिणए।

२१३. *चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जरूवे,
अज्जे णाममेगे अणज्जरूवे,
अणज्जे णाममेगे अज्जरूवे,
अणज्जे णाममेगे अणज्जरूवे।

२१४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जमणे,
अज्जे णाममेगे अणज्जमणे,
अणज्जे णाममेगे अज्जमणे,
अणज्जे णाममेगे अणज्जमणे।

२१५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जसंकप्पे,

आर्य-अनार्य-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्यः नामैकः आर्यः,
आर्यः नामैकः अनार्यः,
अनार्यः नामैकः आर्यः,
अनार्यः नामैकः अनार्यः।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्यः नामैकः आर्यपरिणतः,
आर्यः नामैकः अनार्यपरिणतः,
अनार्यः नामैकः आर्यपरिणतः,
अनार्यः नामैकः अनार्यपरिणतः।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्यः नामैकः आर्यरूपः,
आर्यः नामैकः अनार्यरूपः,
अनार्यः नामैकः आर्यरूपः,
अनार्यः नामैकः अनार्यरूपः।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्यः नामैकः आर्यमनाः,
आर्यः नामैकः अनार्यमनाः,
अनार्यः नामैकः आर्यमनाः,
अनार्यः नामैकः अनार्यमनाः।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्यः नामैकः आर्यसंकल्पः,

आर्य-अनार्य-पद

२११. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति से भी आर्य और गुण से भी आर्य होते है, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु गुण से अनार्य होते हैं, ३. कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु गुण से आर्य होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से भी अनार्य और गुण से भी अनार्य होते है।

२१२. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य रूप मे परिणत होते है, २. कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य रूप मे परिणत होते है, ३. कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य रूप मे परिणत होते है, ४ कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य रूप मे परिणत होते हैं।

२१३. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य रूप वाले होते है, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य रूप वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य रूप वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य रूप वाले होते हैं।

२१४. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य मन वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य मन वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य मन वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य मन वाले होते है।

२१५. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य सकल्प वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष जाति

अज्जे णाममेगे अणज्जसंकप्पे,
अणज्जे णाममेगे अज्जसंकप्पे,
अणज्जे णाममेगे अणज्जसंकप्पे।

आर्यः नामैकः अनार्यसंकल्पः,
अनार्यः नामैकः आर्यसंकल्पः,
अनार्यः नामैकः अनार्यसंकल्पः।

से आर्य, किन्तु अनार्य संकल्प वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य संकल्प वाले होते है, ४. कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य संकल्प वाले होते हैं।

२१६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जपण्णे,
अज्जे णाममेगे अणज्जपण्णे,
अणज्जे णाममेगे अज्जपण्णे,
अणज्जे णाममेगे अणज्जपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्यः नामैकः आर्यप्रज्ञः,
आर्यः नामैकः अनार्यप्रज्ञः,
अनार्यः नामैकः आर्यप्रज्ञः,
अनार्यः नामैकः अनार्यप्रज्ञः।

२१६. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य प्रज्ञा वाले होते है, २. कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य प्रज्ञा वाले होते है, ३. कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य प्रज्ञा वाले होते है, ४. कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य प्रज्ञा वाले होते हैं।

२१७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जदिट्ठी,
अज्जे णाममेगे अणज्जदिट्ठी,
अणज्जे णाममेगे अज्जदिट्ठी,
अणज्जे णाममेगे अणज्जदिट्ठी।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्यः नामैकः आर्यदृष्टिः,
आर्यः नामैकः अनार्यदृष्टिः,
अनार्यः नामैकः आर्यदृष्टिः,
अनार्यः नामैकः अनार्यदृष्टिः।

२१७. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य दृष्टि वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य दृष्टि वाले होते है, ३. कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य दृष्टि वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य दृष्टि वाले होते है।

२१८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जसीलाचारे,
अज्जे णाममेगे अणज्जसीलाचारे,
अणज्जे णाममेगे अज्जसीलाचारे,
अणज्जे णाममेगे अणज्जसीलाचारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्यः नामैकः आर्यशीलाचारः,
आर्यः नामैकः अनार्यशीलाचारः,
अनार्यः नामैकः आर्यशीलाचारः,
अनार्यः नामैकः अनार्यशीलाचारः।

२१८. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य शीलाचार वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य शीलाचार वाले होते है, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य शीलाचार वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य शीलाचार वाले होते हैं।

२१९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जववहारे,
अज्जे णाममेगे अणज्जववहारे,
अणज्जे णाममेगे अज्जववहारे,
अणज्जे णाममेगे अणज्जववहारे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्यः नामैकः आर्यव्यवहारः,
आर्यः नामैकः अनार्यव्यवहारः,
अनार्यः नामैकः आर्यव्यवहारः,
अनार्यः नामैकः अनार्यव्यवहारः।

२१९ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य व्यवहार वाले होते है, २. कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य व्यवहार वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य व्यवहार वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य व्यवहार वाले होते है।

२२०. **चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—**
अज्जे णाममेगे अज्जपरक्कम्मे,
अज्जे णाममेगे अणज्जपरक्कम्मे,
अणज्जे णाममेगे अज्जपरक्कम्मे,
अणज्जे णाममेगे अणज्जपरक्कम्मे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य: नामैक: आर्यपराक्रम:,
आर्य: नामैक: अनार्यपराक्रम:,
अनार्य: नामैक: आर्यपराक्रम:,
अनार्य: नामैक: अनार्यपराक्रम:।

२२०. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य पराक्रम वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य पराक्रम वाले होते है, ३. कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य पराक्रम वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य पराक्रम वाले होते हैं।

२२१. **चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—**
अज्जे णाममेगे अज्जवित्ती,
अज्जे णाममेगे अणज्जवित्ती,
अणज्जे णाममेगे अज्जवित्ती,
अणज्जे णाममेगे अणज्जवित्ती।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य: नामैक: आर्यवृत्ति:,
आर्य: नामैक: अनार्यवृत्ति:,
अनार्य: नामैक: आर्यवृत्ति:,
अनार्य: नामैक: अनार्यवृत्ति:।

२२१. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य वृत्ति वाले होते है, २. कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य वृत्ति वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य वृत्ति वाले होते है, ४. कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य वृत्ति वाले होते है।

२२२. **चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—**
अज्जे णाममेगे अज्जजाती,
अज्जे णाममेगे अणज्जजाती,
अणज्जे णाममेगे अज्जजाती,
अणज्जे णाममेगे अणज्जजाती।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य: नामैक: आर्यजाति:,
आर्य: नामैक: अनार्यजाति:,
अनार्य: नामैक: आर्यजाति:,
अनार्य: नामैक: अनार्यजाति:।

२२२. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य जाति वाले होते है, २. कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य जाति वाले होते है, ३ कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य जाति वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य जाति वाले होते हैं।

२२३. **चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—**
अज्जे णाममेगे अज्जभासी,
अज्जे णाममेगे अणज्जभासी,
अणज्जे णाममेगे अज्जभासी,
अणज्जे णाममेगे अणज्जभासी।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य: नामैक: आर्यभाषी,
आर्य: नामैक: अनार्यभाषी,
अनार्य: नामैक: आर्यभाषी,
अनार्य: नामैक: अनार्यभाषी।

२२३. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य भाषी होते है, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य भाषी होते है, ३. कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य भाषी होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य भासी होते है।

२२४. **चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—**
अज्जे णाममेगे अज्जओभासी,
अज्जे णाममेगे अणज्जओभासी,

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य: नामैक: आर्यावभाषी,
आर्य: नामैक: अनार्यावभाषी,

२२४. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष जाति में आर्य और आर्य-अवभाषी [आर्य की तरह लगने वाले] होते हैं, २. कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य अवभासी होते हैं, ३. कुछ पुरुष

अणज्जे णाममेगे अज्जओभासी,
अणज्जे णाममेगे अणज्जओभासी।

अनार्य: नामैक: आर्यविभाषी,
अनार्य: नामैक: अनार्यविभाषी।

जाति से अनार्य, किन्तु आर्य अवभासी होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य-अवभासी होते हैं।

२२५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जसेवी,
अज्जे णाममेगे अणज्जसेवी,
अणज्जे णाममेगे अज्जसेवी,
अणज्जे णाममेगे अणज्जसेवी।

चत्वारि पुरुजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य: नामैक: आर्यसेवी,
आर्य: नामैक: अनार्यसेवी,
अनार्य: नामैक: आर्यसेवी,
अनार्य: नामैक: अनार्यसेवी।

२२५. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य-सेवी होते है, २. कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य-सेवी होते हैं, ३. कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य-सेवी होते है, ४ कुछ तुरुष जाति से अनार्य और अनार्य-सेवी होते हैं।

२२६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जपरियाए,
अज्जे णाममेगे अणज्जपरियाए,
अणज्जे णाममेगे अज्जपरियाए,
अणज्जे णाममेगे अणज्जपरियाए।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य: नामैक: आर्यपर्याय,
आर्य: नामैक: अनार्यपर्याय,
अनार्य: नामैक: आर्यपर्याय,
अनार्य: नामैक: अनार्यपर्याय।

२२६. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य पर्याय वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य पर्याय वाले होते है, ३. कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य पर्याय वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य पर्याय वाले होते हैं।

२२७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जपरियाले,
अज्जे णाममेगे अणज्जपरियाले,
अणज्जे णाममेगे अज्जपरियाले,
अणज्जे णाममेगे अणज्जपरियाले।°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य नामैक: आर्यपरिवार,
आर्य नामैक अनार्यपरिवार,
अनार्य नामैक: आर्यपरिवार,
अनार्य. नामैक. अनार्यपरिवार।

२२७ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति से आर्य और आर्य परिवार वाले होते हैं, २ कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य परिवार वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य परिवार वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति मे अनार्य और अनार्य परिवार वाले होते हैं।

२२८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे णाममेगे अज्जभावे,
अज्जे णाममेगे अणज्जभावे,
अणज्जे णाममेगे अज्जभावे,
अणज्जे णाममेगे अणज्जभावे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आर्य: नामैक: आर्यभाव:,
आर्य: नामैक: अनार्यभाव,
अनार्य: नामैक: आर्यभाव:,
अनार्य: नामैक अनार्यभाव:।

२२८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति से आर्य और भाव से भी आर्य होते हैं, २. कुछ पुरुष जाति से आर्य, किन्तु भाव से अनार्य होते है, ३. कुछ पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु भाव से आर्य होते हैं, ४. कुछ पुरुष जाति से अनार्य और भाव से भी अनार्य होते हैं।

जाति-पदं

२२९. चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे, कुलसंपण्णे, बलसंपण्णे, रूवसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

जातिसंपण्णे, °कुलसंपण्णे, बलसंपण्णे,° रूवसंपण्णे।

२३०. चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा—

जातिसंपण्णे णामं एगे, णो कुलसंपण्णे, कुलसंपण्णे णामं एगे, णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि, कुलसंपण्णेवि, एगे णो जाति संपण्णे, णो कुलसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

जातिसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे, कुलसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि, कुलसंपण्णेवि। एगे णो जातिसंपण्णे, णो कुलसंपण्णे।

२३१. चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णामं एगे, णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णामं एगे, णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि, बलसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे, णो बलसंपण्णे।

जाति-पदम्

चत्वारः ऋषभाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जातिसम्पन्नः, कुलसम्पन्नः, बलसम्पन्नः, रूपसम्पन्नः।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

जातिसम्पन्नः, कुलसम्पन्नः, बलसम्पन्नः, रूपसम्पन्नः।

चत्वारः ऋषभाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—जातिसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः, कुलसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्नः, एकः जातिसम्पन्नोऽपि, कुलसम्पन्नोऽपि, एकः नो जातिसम्पन्नः, नो कुलसम्पन्नः।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

जातिसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः, कुलसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्नः, एकः जातिसम्पन्नोऽपि, कुलसम्पन्नोऽपि, एकः नो जातिसम्पन्नः, नो कुलसम्पन्नः।

चत्वारः ऋषभाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जातिसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः, बलसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्नः, एकः जातिसम्पन्नोऽपि, बलसम्पन्नोऽपि, एकः नो जातिसम्पन्नः, नो बलसम्पन्नः।

जाति-पद

२२९. वृषभ चार प्रकार के होते है—

१. जाति-सम्पन्न, २. कुल-सम्पन्न, ३. बल-सम्पन्न, ४. रूप-सम्पन्न।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१ जाति-सम्पन्न, २. कुल-सम्पन्न, ३. बल-सम्पन्न, ४ रूप-सम्पन्न।

२३०. वृषभ चार प्रकार के होते है—

१ कुछ वृषभ जाति-सम्पन्न होते है, किन्तु कुल-सम्पन्न नही होते, २. कुछ वृषभ कुल सम्पन्न होते हैं, किन्तु जाति-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ वृषभ जाति-सम्पन्न भी होते है और कुल-सम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ वृषभ न जाति-सम्पन्न होते है और न कुल-सम्पन्न ही होते है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—

१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, किन्तु कुल-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते है, किन्तु जाति-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते है और कुल-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते है और न कुल-सम्पन्न ही होते हैं।

२३१ वृषभ चार प्रकार के होते है—

१. कुछ वृषभ जाति-सम्पन्न होते है, किन्तु बल-सम्पन्न नही होते, २. कुछ वृषभ बल-सम्पन्न होते है, किन्तु जाति-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ वृषभ जाति-सम्पन्न भी होते है और बल-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ वृषभ न जाति-सम्पन्न होते है और न बल-सम्पन्न ही होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जातिसंपण्णे णामं एगे, णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णामं एगे, णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि, बलसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे, णो बलसंपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्न नामैकः, नो बलसम्पन्नः, बलसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्नः, एक जातिसम्पन्नोऽपि, बलसम्पन्नोऽपि, एकः नो जातिसम्पन्नः, नो बलसम्पन्नः।

इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, किन्तु बल-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु जाति-सम्पन्न नहीं होते हैं, ३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और बल-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न बल-सम्पन्न ही होते है।

२३२. चत्तारि उसभा, पण्णत्ता, तं जहा—
जातिसंपण्णे णामं एगे, णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णामं एगे, णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

चत्वार ऋषभा प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
जातिसम्पन्न. नामैकः, नो रूपसम्पन्न, रूपसम्पन्न. नामैक, नो जातिसम्पन्नः, एक जातिसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एक नो जातिसम्पन्नः, नो रूपसम्पन्नः।

२३२. वृषभ चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ वृषभ जाति-सम्पन्न होते हैं, किन्तु रूप-सम्पन्न नही होते, २. कुछ वृषभ रूप-सम्पन्न होते हैं, किन्तु जाति-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ वृषभ जाति-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ वृषभ न जाति-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया, पण्णत्ता, तं जहा—
जातिसंपण्णे णामं एगे, णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णामं एगे, णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्न नामैक, नो रूपसम्पन्न., रूपसम्पन्न नामैक, नो जातिसम्पन्न, एकः जातिसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एकः नो जातिसम्पन्नः, नो रूपसम्पन्न.।

इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते हैं, किन्तु रूप-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, किन्तु जाति-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।

कुल-पदं

कुल-पदम्

कुल-पद

२३३. चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसंपण्णे णामं एगे, णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णामं एगे, णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि, बलसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे, णो बलसंपण्णे।

चत्वारः ऋषभाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कुलसम्पन्न नामैकः, नो बलसम्पन्नः, बलसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः, एकः कुलसम्पन्नोऽपि, बलसम्पन्नोऽपि, एकः नो कुलसम्पन्नः, नो बलसम्पन्नः।

२३३. वृषभ चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ वृषभ कुल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु बल-सम्पन्न नहीं होते, २. कुछ वृषभ बल-सम्पन्न होते हैं किन्तु कुल-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ वृषभ कुल-सम्पन्न भी होते हैं और बल-सम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ वृषभ न कुल-सम्पन्न होते हैं और न बल-सम्पन्न ही होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसंपण्णे णामं एगे, णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णामं एगे, णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि, बलसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे, णो बलसंपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः, बलसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः, एकः कुलसम्पन्नोऽपि, बलसम्पन्नोऽपि, एकः नो कुलसम्पन्नः, नो बलसम्पन्नः।

इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु बल-सम्पन्न नहीं होते, २. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु कुल-सम्पन्न नहीं होते, ३. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और बल-सम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न बल-सम्पन्न ही होते है।

२३४. चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसंपण्णे णामं एगे, णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णामं एगे, णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

चत्वारः ऋषभाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कुलसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः, रूपसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः, एकः कुलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एकः नो कुलसम्पन्नः, नो रूपसम्पन्नः।

२३४. वृषभ चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ वृषभ कुल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु रूप-सम्पन्न नही होते, २. कुछ वृषभ रूप-सम्पन्न होते हैं, किन्तु कुल-सम्पन्न नहीं होते, ३. कुछ वृषभ कुल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ वृषभ न कुल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
कुलसंपण्णे णामं एगे, णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णामं एगे, णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णोवि, रूवसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः, रूपसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः, एकः कुलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एकः नो कुलसम्पन्नः, नो रूपसम्पन्नः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु रूप-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, किन्तु कुल-सम्पन्न नहीं होते, ३ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।

बल-पदं

बल-पदम्

बल-पद

२३५. चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा—
बलसंपण्णे णामं एगे, णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णामं एगे, णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि, एगे णो बलसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

चत्वारः ऋषभाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
बलसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः, रूपसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः, एकः बलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एकः नो बलसम्पन्नः, नो रूपसम्पन्नः।

२३५. वृषभ चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ वृषभ बल-सम्पन्न होते हैं, किन्तु रूप-सम्पन्न नही होते, २. कुछ वृषभ रूप-सम्पन्न होते हैं, किन्तु बल-सम्पन्न नहीं होते, ३. कुछ वृषभ बल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ वृषभ न बल-सम्पन्न होते है और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
बलसंपण्णे णामं एगे, णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णामं एगे, णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि, एगे णो बलसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
बलसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः, रूपसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः, एकः बलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एकः नो बलसम्पन्नः, नो रूपसम्पन्नः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते है, किन्तु रूप-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते है, किन्तु बल-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न भी होते है और रूप-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ पुरुष न बल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते है।

हत्थि-पदं

हस्ति-पदम्

हस्ति-पद

२३६. चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा—
भद्दे, मंदे, मिए, संकिण्णे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
भद्दे, मंदे, मिए, संकिण्णे।

चत्वारः हस्तिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
भद्रः, मन्दः, मृगः, सकीर्णः।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भद्रः, मन्दः, मृगः, सकीर्णः।

२३६. हाथी चार प्रकार के होते है—
१. भद्र—धैर्य आदि गुणयुक्त, २. मद—धैर्य आदि गुणो की मदता वाला, ३. मृग—भीरु, ४. सकीर्ण—जिसमे स्वभाव की विविधता हो।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१ भद्र, २. मद ३. मृग, ४ सकीर्ण।

२३७. चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा—
भद्दे णाममेगे भद्दमणे,
भद्दे णाममेगे मंदमणे,
भद्दे णाममेगे मियमणे,
भद्दे णाममेगे संकिण्णमणे।

चत्वारः हस्तिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
भद्रः नामैकः भद्रमनाः,
भद्रः नामैकः मन्दमनाः,
भद्रः नामैकः मृगमनाः,
भद्रः नामैकः सकीर्णमनाः।

२३७. हाथी चार प्रकार के होते है—
१ कुछ हाथी भद्र होते है और उनका मन भी भद्र होता है, २ कुछ हाथी भद्र होते है, किन्तु उनका मन मद होता है, ३. कुछ हाथी भद्र होते है, किन्तु उनका मन मृग होता है, ४ कुछ हाथी भद्र होते है, किन्तु उनका मन सकीर्ण होता है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
भद्दे णाममेगे भद्दमणे,
भद्दे णाममेगे मंदमणे,
भद्दे णाममेगे मियमणे,
भद्दे णाममेगे संकिण्णमणे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भद्रः नामैकः भद्रमनाः,
भद्रः नामैकः मन्दमनाः,
भद्रः नामैकः मृगमनाः,
भद्रः नामैकः सकीर्णमनाः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१ कुछ पुरुष भद्र होते है और उनका मन भी भद्र होता है, २. कुछ पुरुष भद्र होते हैं, किन्तु उनका मन मद होता है, ३. कुछ पुरुष भद्र होते है, किन्तु उनका मन मृग होता है, ४. कुछ पुरुष भद्र होते है, किन्तु उनका मन सकीर्ण होता है।

२३८. चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा—
मंदे णाममेगे भद्दमणे,

चत्वारः हस्तिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
मन्दः नामैकः भद्रमनाः,

२३८. हाथी चार प्रकार के होते है—
१ कुछ हाथी मद होते हैं, किन्तु उनका

मंदे णाममेगे मंदमणे,
मंदे णाममेगे मियमणे,
मंदे णाममेगे संकिण्णमणे ।

मन्दः नामैकः मन्दमनाः,
मन्दः नामैकः मृगमनाः,
मन्दः नामैकः सकीर्णमनाः ।

मन भद्र होता है, २. कुछ हाथी मद होते है और उनका मन भी मंद होता है, ३. कुछ हाथी मद होते है, किन्तु उनका मन मृग होता है, ४. कुछ हाथी मद होते है, किन्तु उनका मन सकीर्ण होता है ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
मंदे णाममेगे भद्दमणे,
°मंदे णाममेगे मंदमणे,
मंदे णाममेगे मियमणे,
मंदे णाममेगे संकिण्णमणे ।°

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मन्दः नामैकः भद्रमनाः,
मन्दः नामैकः मन्दमनाः,
मन्दः नामैकः मृगमनाः,
मन्दः नामैकः सकीर्णमनाः ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष मद होते हैं, किन्तु उनका मन भद्र होता है, २. कुछ पुरुष मद होते हैं और उनका मन भी मद होता है, ३ कुछ पुरुष मद होते हैं, किन्तु उनका मन मृग होता है, ४. कुछ पुरुष मद होते है, किन्तु उनका मन सकीर्ण होता है ।

२३९. चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा—
मिए णाममेगे भद्दमणे,
मिए णाममेगे मंदमणे,
मिए णाममेगे मियमणे,
मिए णाममेगे संकिण्णमणे ।

चत्वारः हस्तिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
मृगः नामैकः भद्रमनाः,
मृगः नामैकः मन्दमनाः,
मृगः नामैकः मृगमनाः,
मृगः नामैकः सकीर्णमनाः ।

२३९ हाथी चार प्रकार के होते है—
१. कुछ हाथी मृग होते हैं, किन्तु उनका मन भद्र होता है, २. कुछ हाथी मृग होते है, किन्तु उनका मन मद होता है, ३. कुछ हाथी मृग होते हैं और उनका मन भी मृग होता है, ४. कुछ हाथी मृग होते हैं, किन्तु उनका मन सकीर्ण होता है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
मिए णाममेगे भद्दमणे,
°मिए णाममेगे मंदमणे,
मिए णाममेगे मियमणे,
मिए णाममेगे संकिण्णमणे ।°

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मृगः नामैकः भद्रमनाः,
मृगः नामैकः मन्दमनाः,
मृगः नामैकः मृगमनाः,
मृगः नामैकः सकीर्णमनाः ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१ कुछ पुरुष मृग होते है, किन्तु उनका मन भद्र होता है, २ कुछ पुरुष मृग होते हैं, किन्तु उनका मन मंद होता है, ३ कुछ पुरुष मृग होते हैं और उनका मन भी मृग होता है, ४ कुछ पुरुष मृग होते है, किन्तु उनका मन सकीर्ण होता है।

२४०. चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा—
संकिण्णे णाममेगे भद्दमणे,
संकिण्णे णाममेगे मंदमणे,
संकिण्णे णाममेगे मियमणे,
संकिण्णे णाममेगे संकिण्णमणे ।

चत्वारः हस्तिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
संकीर्ण नामैकः भद्रमनाः,
सकीर्ण नामैकः मन्दमनाः,
सकीर्ण नामैकः मृगमनाः,
सकीर्णः नामैकः सकीर्णमनाः ।

२४० हाथी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ हाथी सकीर्ण होते है, किन्तु उनका मन भद्र होता है, २. कुछ हाथी सकीर्ण होते हैं, किन्तु उनका मन मद होता है, ३. कुछ हाथी सकीर्ण होते है, किन्तु उनका मन मृग होता है, ४. कुछ हाथी सकीर्ण होते हैं और उनका मन भी सकीर्ण होता है ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
संकिण्णे णाममेगे भद्दमणे,
°संकिण्णे णाममेगे मंदमणे,
संकिण्णे णाममेगे मियमणे,°
संकिण्णे णाममेगे संकिण्णमणे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सकीर्णः नामैकः भद्रमनाः,
सकीर्णः नामैकः मन्दमनाः,
संकीर्णः नामैकः मृगमनाः,
सकीर्णः नामैकः संकीर्णमनाः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१ कुछ पुरुष सकीर्ण होते हैं, किन्तु उनका मन भद्र होता है, २ कुछ पुरुष संकीर्ण होते है, किन्तु उनका मन मंद होता है, ३ कुछ पुरुष सकीर्ण होते हैं, किन्तु उनका मन मृग होता है, कुछ पुरुष सकीर्ण होते हैं और उनका मन भी सकीर्ण होता है।

संगहणी-गाहा

१. मधुगुलिय-पिंगलक्खो,
अणुपुव्व-सुजाय-दीहणंगूल्लो।
पुरओ उदग्गधीरो,
सव्वंगसमाधितो भद्दो॥
२. चल-बहल-विसम-चम्मो,
थूलसिरो थूलएण पेएण।
थूलणह-दंत-वालो,
हरिपिंगल-लोयणो मंदो॥
३. तणुओ तणुयग्गीवो,
तणुयतओ तणुयदंत-णह-वालो।
भीरू तत्थुव्विग्गो,
तासी य भवे मिए णामं॥
४. एतेसिं हत्थीणं थोवा थोवं,
तु जो अणुहरति हत्थी।
रूवेण व सीलेण व,
सो संकिण्णो त्ति णायव्वो॥
५. भद्दो मज्जइ सरए,
मंदो उण मज्जते वसंतंमि।
मिउ मज्जति हेमंते,
संकिण्णो सव्वकालंमि॥

संग्रहणी-गाथा

१ मधुगुटिक-पिङ्गलाक्ष,
अनुपूर्व-सुजात्-दीर्घलाङ्गलः।
पुरत उदग्रधीरः,
सर्वाङ्गसमाहितः भद्रः॥
२ चल-बहल-विषम-चर्मा,
स्थूलशिराः स्थूलकेन पेचेन।
स्थूलनख-दन्त-बालः,
हरिपिङ्गल-लोचनः मन्दः॥
३ तनुकः तनुकग्रीवः,
तनुकत्वक् तनुकदन्त-नख-बालः।
भीरुः त्रस्तोद्विग्नः,
त्रासी च भवेत् मृगः नाम॥
४. एतेषां हस्तिनां स्तोकं स्तोकं,
तु यः अनुहरति हस्ती।
रूपेण वा शीलेन वा,
स सकीर्णः इति ज्ञातव्यः॥
५. भद्रः माद्यति शरदि,
मन्दः पुनः माद्यति वसन्ते।
मृगः माद्यति हेमन्ते,
सकीर्णः सर्वकाले॥

संग्रहणी-गाथा

जिसकी आखे मधु-गुटिका के समान भूरापन लिए हुए लाल होती है, जो उचित काल-मर्यादा से उत्पन्न हुआ है, जिसकी पूछ लम्बी है, जिसका अगला भाग उन्नत है, जो धीर है, जिसके सब अग प्रमाण और लक्षण से उपेत होने के कारण समाहित [सुव्यवस्थित] हैं, उस हाथी को भद्र कहा जाता है।

जिसकी चमडी शिथिल, स्थूल और वलियो [रेखाओं] से युक्त होता है, जिसका सिर और पुच्छ-मूल स्थूल होता है, जिसके नख, दांत और केश स्थूल होते हैं तथा जिसकी आखे सिंह की तरह भूरापन लिए हुए पीली होती है, उस हाथी को मद कहा जाता है।

जिसका शरीर, गर्दन, चमडी, नख, दात और केश पतले होते है, जो भीरु और त्रस्त [घबराया हुआ] और उद्विग्न होता है तथा जो दूसरों को त्रास देता है उस हाथी को मृग कहा जाता है।

जिसमे उक्त हस्तियो के रूप और शील के लक्षण मिश्रित रूप मे मिलते है उस हाथी को सकीर्ण कहा जाता है।

भद्र के शरद् ऋतु मे, मद के बसत ऋतु मे, मृग के हेमन्त ऋतु मे और सकीर्ण के सब ऋतुओ मे मद झरता है।

विकहा-पदं

विकथा-पदम्

विकथा-पद

२४१. चत्तारि विकहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—इत्थिकहा, भत्तकहा, देसकहा, रायकहा।

चतस्रः विकथाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रीकथा:, भक्तकथा, देशकथा, राजकथा।

२४१. विकथा चार प्रकार की होती है—
१. स्त्रीकथा, २. देशकथा, ३. भक्तकथा, ४. राजकथा।[41]

२४२. इत्थिकहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थीणं जाइकहा, इत्थीणं कुलकहा, इत्थीणं रूवकहा, इत्थीणं णेवत्थकहा।

स्त्रीकथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—स्त्रीणां जातिकथा, स्त्रीणां कुलकथा, स्त्रीणां रूपकथा, स्त्रीणां नेपथ्यकथा।

२४२. स्त्रीकथा के चार प्रकार हैं—
१. स्त्रियों की जाति की कथा,
२. स्त्रियों के कुल की कथा,
३. स्त्रियों के रूप की कथा,
४. स्त्रियों के वेशभूषा की कथा।[42]

२४३ भत्तकहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—भत्तस्स आवावकहा, भत्तस्स णिव्वावकहा, भत्तस्स आरंभकहा, भत्तस्स णिट्ठाणकहा।

भक्तकथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—भक्तस्य आवापकथा, भक्तस्य निर्वापकथा, भक्तस्य आरंभकथा, भक्तस्य निष्ठानकथा।

२४३. भक्तकथा के चार प्रकार हैं—
१ आवापकथा—रसोई की सामग्री—घृत, साग आदि की चर्चा करना, २. निर्वापकथा—पक्व या अपक्व—अन्न व व्यञ्जन आदि की चर्चा करना, ३. आरंभकथा—इतनी सामग्री और इतना धन आवश्यक होगा—इस प्रकार की चर्चा करना, ४. निष्ठानकथा—इतनी सामग्री और इतना धन लगा—इस प्रकार की चर्चा करना।[43]

२४४. देसकहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—देसविहिकहा, देसविकप्पकहा, देसच्छंदकहा, देसणेवत्थकहा।

देशकथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—देशविधिकथा, देशविकल्पकथा, देशच्छन्दकथा, देशनेपथ्यकथा।

२४४. देशकथा के चार प्रकार है—
१. देशविधिकथा—विभिन्न देशों मे प्रचलित भोजन आदि बनाने के प्रकारों या कानूनो की कथा करना, २. देशविकल्पकथा—विभिन्न देशो मे अनाज की उपज, परकोटे, कुए आदि की कथा करना, ३. देशच्छदकथा—विभिन्न देशो के विवाह आदि से सबन्धित रीति-रिवाजो की कथा करना, ४. देशनेपथ्यकथा—विभिन्न देशो के पहनावे की कथा करना।[44]

२४५. रायकहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—रण्णो अतियाणकहा, रण्णो णिज्जाणकहा,

राजकथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—राज्ञः अतियानकथा, राज्ञः निर्याणकथा,

२४५. राजकथा के चार प्रकार है—
१. राजा के अतियान—नगर आदि के प्रवेश की कथा करना, २. राजा के

रण्णो बलवाहणकहा,
रण्णो कोसकोट्ठागारकहा।

राज्ञः बलवाहनकथा,
राज्ञः कोशकोष्ठागारकथा।

निर्याण—निष्क्रमण की कथा करना, ३. राजा की सेना और वाहनों की कथा करना, ४. राजा के कोश और कोष्ठागार—अनाज के कोठो की कथा करना।[७]

कहा-पदं

२४६. चउव्विहा कहा पण्णत्ता, तं जहा— अक्खेवणी, विक्खेवणी, संवेयणी, णिव्वेदणी।

कथा-पदम्

चतुर्विधा कथा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेजनी, निर्वेदनी।

कथा-पद

२४६. कथा चार प्रकार की होती है—
१. आक्षेपणी—ज्ञान और चारित्र के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने वाली कथा, २. विक्षेपणी—सन्मार्ग की स्थापना करने वाली कथा, ३. संवेजनी—जीवन की नश्वरता और दु:खबहुलता तथा शरीर की अशुचिता दिखाकर वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथा, ४. निर्वेदनी—कृत कर्मों के शुभाशुभ फल दिखला कर संसार के प्रति उदासीन बनाने वाली कथा।[८]

२४७. अक्खेवणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा— आयारअक्खेवणी, ववहारअक्खेवणी, पण्णत्तिअक्खेवणी, दिट्ठिवातअक्खेवणी।

आक्षेपणी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— आचाराक्षेपणी, व्यवहाराक्षेपणी, प्रज्ञप्त्याक्षेपणी, दृष्टिवादाक्षेपणी।

२४७. आक्षेपणी कथा के चार प्रकार है—
१. आचारआक्षेपणी—जिसमें आचार का निरूपण हो, २. व्यवहारआक्षेपणी—जिसमें व्यवहार-प्रायश्चित्त का निरूपण है, ३. प्रज्ञप्तिआक्षेपणी—जिसमें संशयग्रस्त श्रोता को समझाने के लिए निरूपण हो, ४. दृष्टिपातआक्षेपणी—जिसमें श्रोता की योग्यता के अनुसार विविध नयदृष्टियों से तत्त्व-निरूपण हो।[९]

२४८. विक्खेवणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—ससमयं कहेइ, ससमयं कहित्ता परसमयं कहेइ, परसमयं कहेत्ता ससमयं ठावइत्ता भवति, सम्मावयं कहेइ, सम्मावायं कहेत्ता मिच्छावायं कहेइ, मिच्छवायं कहेत्ता सम्मावायं ठावइता भवति।

विक्षेपणी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—स्वसमय कथयति, स्वसमयकथयित्वा परसमय कथयति, परसमय कथयित्वा स्वसमय स्थापयिता भवति, सम्यग्वाद कथयति, सम्यग्वादं कथयित्वा मिथ्यावाद कथयति, मिथ्यावाद कथयित्वा सम्यग्वाद स्थापयिता भवति।

२४८. विक्षेपणीकथा के चार प्रकार है—
१. एक सम्यक्दृष्टि व्यक्ति—अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन कर फिर दूसरो के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, २. दूसरों के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर फिर अपने सिद्धान्त की स्थापना करता है, ३. सम्यक्वाद का प्रतिपादन कर फिर मिथ्यावाद का प्रतिपादन करता है, ४. मिथ्यावाद का प्रतिपादन कर फिर सम्यग्वाद की स्थापना करता है।[१०]

२४९. संवेयणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—
इहलोगसंवेयणी, परलोगसंवेयणी, आतसरीरसंवेयणी, परसरीरसंवेयणी।

सवेजनी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
इहलोकसवेजनी, परलोकसवेजनी, आत्मशरीरसवेजनी, परशरीरसवेजनी।

२४९. सवेजनी कथा के चार प्रकार है—
१. इहलोकसवेजनी—मनुष्य-जीवन की असारता दिखाने वाली कथा, २. परलोकसवेजनी—देव, तिर्यञ्च आदि के जन्मो की मोहमयता व दुःखमयता बताने वाली कथा, ३. आत्मशरीरसंवेजनी—अपने शरीर की अशुचिता का प्रतिपादन करने वाली कथा, ४. परशरीरसंवेजनी—दूसरे के शरीर की अशुचिता का प्रतिपादन करने वाली कथा।[११]

२५०. णिव्वेदणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. इहलोगे दुच्चिण्णा कम्मा इहलोगे दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति,
२ इहलोगे दुच्चिण्णा कम्मा परलोगे दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति,
३. परलोगे दुच्चिण्णा कम्मा इहलोगे दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति,
४. परलोगे दुच्चिण्णा कम्मा परलोगे दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति।
१. इहलोगे सुचिण्णा कम्मा इहलोगे सुहफलविवागसंजुत्ता भवति,
२. इहलोगे सुचिण्णा कम्मा परलोगे सुहफलविवागसंजुत्ता भवति,
३. °परलोगे सुचिण्णा कम्मा इहलोगे सुहफलविवागसंजुत्ता भवंति,
४ परलोगे सुचिण्णा कम्मा परलोगे सुहफलविवागसंजुत्ता भवंति।°

निर्वेदनीकथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
१ इहलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि इहलोके दुःखफलविपाकसयुक्तानि भवन्ति,
२ इहलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि परलोके दुःखफलविपाकसयुक्तानि भवन्ति,
३. परलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि इहलोके दुःखफलविपाकसयुक्तानि भवन्ति,
४ परलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि परलोके दुःखफलविपाकसयुक्तानि भवन्ति।
१. इहलोके सुचीर्णानि कर्माणि इहलोके सुखफलविपाकसयुक्तानि भवन्ति,
२. इहलोके सुचीर्णानि कर्माणि परलोके सुखफलविपाकसयुक्तानि भवन्ति,
३. परलोके सुचीर्णानि कर्माणि इहलोके सुखफलविपाकसयुक्तानि भवन्ति,
४. परलोके सुचीर्णानि कर्माणि परलोके सुखफलविपाकसयुक्तानि भवन्ति।

२५०. निर्वेदनी कथा के चार प्रकार हैं—
१. इहलोक मे दुश्चीर्ण कर्म इसी लोक मे दुःखमय फल देने वाले होते है, २. इहलोक मे दुश्चीर्ण कर्म परलोक मे दुःखमय फल देने वाले होते है, ३. परलोक मे दुश्चीर्ण कर्म इहलोक मे दुःखमय फल देने वाले होते है, ४. परलोक मे दुश्चीर्ण कर्म परलोक मे ही दुःखमय फल देने वाले होते है।

१. इहलोक मे सुचीर्ण कर्म इसी लोक मे सुखमय फल देने वाले होते है, २. इहलोक मे सुचीर्ण कर्म परलोक मे सुखमय फल देने वाले होते हैं, ३. परलोक मे सुचीर्ण कर्म इहलोक मे सुखमय फल देने वाले होते है, ४. परलोक मे सुचीर्ण कर्म परलोक मे सुखमय फल देने वाले होते हैं।[१२]

किस-दढ-पदं

२५१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
किसे णाममेगे किसे,
किसे णाममेगे दढे,
दढे णाममेगे किसे,
दढे णाममेगे दढे।

कृश-दृढ-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कृशः नामैकः कृशः, कृशः नामैकः दृढः,
दृढः नामैकः कृशः, दृढः नामैकः दृढः।

कृश-दृढ-पद

२५१. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष शरीर से भी कृश होते हैं और मनोबल से भी कृश होते हैं, २. कुछ पुरुष शरीर से कृश होते है, किन्तु मनोबल से दृढ होते है, ३ कुछ पुरुष शरीर से दृढ होते हैं, किन्तु मनोबल से कृश होते हैं, ४ कुछ पुरुष शरीर से भी दृढ होते है और मनोबल से भी दृढ होते हैं।

२५२. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
किसे णाममेगे किससरीरे,
किसे णाममेगे दढसरीरे,
दढे णाममेगे किससरीरे,
दढे णाममेगे दढसरीरे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कृशः नामैकः कृशशरीरः,
कृशः नामैकः दृढशरीरः,
दृढः नामैकः कृशशरीरः,
दृढः नामैकः दृढशरीरः।

२५२ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष भावना से कृश होते हैं और शरीर से भी कृश होते हैं, २. कुछ पुरुष भावना से कृश होते हैं, किन्तु शरीर से दृढ होते हैं, ३. कुछ पुरुष भावना से दृढ होते है, किन्तु शरीर से कृश होते हैं, ४. कुछ पुरुष भावना से भी दृढ होते है और शरीर से भी दृढ होते है।

२५३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
किससरीरस्स णाममेगस्स णाणदंसणे समुप्पज्जति, णो दढसरीरस्स,
दढसरीरस्स णाममेगस्स णाणदंसणे समुप्पज्जति,
णो किससरीरस्स,
एगस्स किससरीरस्सवि णाणदंसणे समुप्पज्जति, दढसरीरस्सवि,
एगस्स णो किससरीरस्स णाणदंसणे समुप्पज्जति, णो दढसरीरस्स।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कृशशरीरस्य नामैकस्य ज्ञानदर्शनं समुत्पद्यते, नो दृढशरीरस्य,
दृढशरीरस्य नामैकस्य ज्ञानदर्शनं समुत्पद्यते, नो कृशशरीरस्य,
एकस्य कृशशरीरस्यापि ज्ञानदर्शनं समुत्पद्यते, दृढशरीरस्यापि,
एकस्य नो कृशशरीरस्य ज्ञानदर्शनं समुत्पद्यते, नो दृढशरीरस्य।

२५३. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कृश शरीर वाले व्यक्तियों के ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते हैं, किन्तु दृढ शरीर वालों के नही होते, २. दृढ शरीर वाले व्यक्तियो के ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते है, किन्तु कृश शरीर वालो के नही होते
३. कृश शरीर वाले व्यक्तियो के भी ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते हैं और दृढ शरीर वालो के भी होते हैं, ४ कृश शरीर वाले व्यक्तियों के भी ज्ञान-दर्शन उत्पन्न नहीं होते और दृढ शरीर वालों के भी नहीं होते।[१]

अतिसेस-णाण-दंसण-पदं

२५४. चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अस्सिं समयंसि

अतिशेष-ज्ञान-दर्शन-पदम्

चतुर्भिः स्थानकैः निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा अस्मिन् समये अतिशेषं

अतिशेष-ज्ञान-दर्शन-पद

२५४ चार कारणो से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों के अतिशायी ज्ञान और दर्शन तत्काल

अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउकामेवि ण समुप्पज्जेज्जा, तं जहा—

१. अभिक्खणं-अभिक्खणं इत्थिकहं भत्तकहं देसकहं रायकहं कहेत्ता भवति,

२. विवेगेण विउस्सग्गेणं णो सम्ममप्पाणं भावित्ता भवति,

३. पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि णो धम्मजागरियं जागरइत्ता भवति,

४. फासुयस्स एसणिज्जस्स उंछस्स सामुदाणियस्स णो सम्मं गवेसित्ता भवति—

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अस्सि समयंसि अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउकामेवि° णो समुप्पज्जेज्जा।

ज्ञानदर्शनं समुत्पत्तुकाममपि न समुत्पद्येत, तद्यथा—

१. अभीक्ष्णं-अभीक्ष्ण स्त्रीकथा भक्तकथां देशकथां राजकथां कथयिता भवति,

२. विवेकेन व्युत्सर्गेण नो सम्यक्-आत्मान भावयिता भवति,

३ पूर्वरात्रापरात्रकालसमये नो धर्मजागरिकां जागरिता भवति,

४ स्पर्शुकस्य एपणीयस्य उञ्छस्य सामुदानिकस्य नो सम्यग् गवेषयिता भवति—

इति एतैः चतुर्भिः स्थानैः निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीनां वा अस्मिन् समये अतिशेष ज्ञानदर्शन समुत्पत्तुकाममपि नो समुत्पद्येत।

उत्पन्न होते-होते रुक जाते हैं—

१. जो बार-बार स्त्री-कथा, देश-कथा, भक्त-कथा और राज-कथा करते है,

२ जो विवेक[1] और व्युत्सर्ग[1] के द्वारा आत्मा को सम्यक् प्रकार से भावित नहीं करते,

३ जो रात के पहले और पिछले भाग मे धर्म जागरण नही करते,

४ जो स्पर्शुक [वांछनीय] एषणीय और उञ्छ[1] सामुदानिक[1] भैक्ष की सम्यक् प्रकार से गवेषणा नही करते—

इन चार कारणो से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो के अतिशायी ज्ञान और दर्शन तत्काल उत्पन्न होते-होते रुक जाते हैं।

२५५ चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा [अस्सि समयंसि ?] अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउकामे समुप्पज्जेज्जा, तं जहा—

१. इत्थिकहं भत्तकहं देसकहं रायकहं णो कहेत्ता भवति,

२. विवेगेण विउस्सग्गेणं सम्ममप्पाणं भावेत्ता भवति,

३. पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरइत्ता भवति,

४. फासुयस्स एसणिज्जस्स उंछस्स सामुदाणियस्स सम्मं गवेसित्ता भवति—

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा* [अस्सि समयंसि ?] अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउकामे° समुप्पज्जेज्जा।

चतुर्भिः स्थानैः निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा (अस्मिन् समये ?) अतिशेष ज्ञानदर्शन समुत्पत्तुकाम समुत्पद्येत, तद्यथा—

१. स्त्रीकथा भक्तकथां देशकथां राजकथां नो कथयिता भवति,

२ विवेकेन व्युत्सर्गेण सम्यगआत्मान भावयिता भवति,

३. पूर्वरात्रापरात्रकालसमये धर्मजागरिका जागरिता भवति,

४. स्पर्शुकस्य एषणीयस्स उञ्छस्य सामुदानिकस्य सम्यग् गवेषयिता भवति—

इति एतैः चतुर्भि स्थानैः निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा (अस्मिन् समये ?) अतिशेषं ज्ञानदर्शन समुत्पत्तुकामं समुत्पद्येत।

२५५. चार कारणो से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो के तत्काल उत्पन्न होने वाले अतिशायी ज्ञान और दर्शन उत्पन्न हो जाते हैं—

१. जो स्त्रीकथा, देशकथा, भक्तकथा और राजकथा नहीं करते,

२. जो विवेक और व्युत्सर्ग के द्वारा आत्मा को सम्यक् प्रकार से भावित करते है,

३. जो रात के पहले और पिछले भाग मे धर्म जागरण करते हैं,

४. जो स्पर्शुक, एषणीय और उञ्छ सामुदानिक भैक्ष की सम्यक् प्रकार से गवेषणा करते हैं—

इन चार कारणो से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो के तत्काल उत्पन्न होने वाले अतिशायी ज्ञान और दर्शन उत्पन्न हो जाते हैं।

सज्झाय-पदं

२५६. **णो कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा— आसाढपाडिवए, इंदमहपाडिवए, कत्तियपाडिवए, सुगिम्हगपाडिवए।**

स्वाध्याय-पदम्

नो कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा चतसृषु महाप्रतिपत्सु स्वाध्याय कर्त्तुं, तद्यथा— आषाढप्रतिपदि, इन्द्रमहःप्रतिपदि, कार्त्तिकप्रतिपदि, सुग्रीष्मकप्रतिपदि।

स्वाध्याय-पद

२५६. चार महाप्रतिपदाओ—पक्ष की प्रथम तिथियो मे निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो को आगम का स्वाध्याय नही करना चाहिए—
१. आषाढप्रतिप्रदा—आषाढी पूर्णिमा के बाद की तिथि, सावन का प्रथम दिन,
२. इन्द्रमहप्रतिपदा—आश्विन पूर्णिमा के बाद की तिथि, कार्तिक का प्रथम दिन,
३. कार्तिक प्रतिपदा—कार्तिक पूर्णिमा के बाद की तिथि, मृगसर का प्रथम दिन,
४. सुग्रीष्म प्रतिपदा—चैत्री पूर्णिमा क बाद की तिथि, वैसाख का प्रथम दिन।[५८]

२५७. **णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा चउहिं संझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा— पढमाए पच्छिमाए मज्झण्हे अड्ढरत्ते।**

नो कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीनां वा चतसृषु संध्यासु स्वाध्याय कर्त्तुं, तद्यथा— प्रथमायां पश्चिमायां मध्याह्ने अर्धरात्रे।

२५७. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो को चार सध्याओ मे आगम का स्वाध्याय नही करना चाहिए—
१. प्रथम सन्ध्या—सूर्योदय से पूर्व,
२. पश्चिम सन्ध्या—सूर्यास्त के पश्चात्,
३. मध्यान्ह सन्ध्या, ४ अर्धरात्री सन्ध्या।

२५८. **कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा चउक्कालं सज्झायं करेत्तए, तं जहा— पुव्वण्हे अवरण्हे पओसे पच्चूसे।**

कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीनां वा चतुष्कालं स्वाध्याय कर्त्तुं, तद्यथा— पूर्वाह्णे, अपराह्णे, प्रदोषे, प्रत्यूषे।

२५८. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो को चार कालो मे आगम का स्वाध्याय करना चाहिए—
१. पूर्वाह्ण मे—दिन के प्रथम प्रहर म,
२. अपराह्ण मे—दिन के अन्तिम प्रहर म,
३. प्रदोष मे—रात्री के प्रथम प्रहर मे,
४ प्रत्यूष मे—रात्रि के अन्तिम प्रहर म।[५९]

लोगट्ठिति-पदं

२५९. **चउव्विहा लोगट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—आगासपतिट्ठिए वाते, वातपतिट्ठिए उदधी, उदधिपतिट्ठिया पुढवी, पुढविपतिट्ठिया तसा थावरा पाणा।**

लोकस्थिति-पदम्

चतुर्विधा लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आकाशप्रतिष्ठितो वातः, वातप्रतिष्ठितः उदधिः, उदधिप्रतिष्ठिता पृथिवी, पृथिवीप्रतिष्ठिता त्रसाः स्थावराः प्राणाः।

लोकस्थिति-पद

२५९. लोकस्थिति चार प्रकार की है—
१. वायु आकाश पर प्रतिष्ठित है,
२. उदधि वायु पर प्रतिष्ठित है,
३. पृथ्वी समुद्र पर प्रतिष्ठित है,
४. त्रस और स्थावर प्राणी पृथ्वी पर प्रतिष्ठित है।

पुरिस-भेद-पदं

२६०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
तहे णाममेगे, णोतहे णाममेगे, सोवत्थी णाममेगे, पधाणे णाममेगे।

पुरुष-भेद-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
तथा नामैकः, नोतथो नामैकः, सौवस्तिको नामैकः, प्रधानो नामैकः।

पुरुष-भेद-पद

२६०. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. तथा—आदेश को मानकर चलने वाला, २. नो तथ—अपनी स्वतन्त्र भावना से चलने वाला, ३. सौवस्तिक—मंगल पाठक, ४ प्रधान—स्वामी।

आय-पर-पदं

२६१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
आयंतकरे णाममेगे, णो परंतकरे, परंतकरे णाममेगे, णो आयंतकरे, एगे आयंतकरेवि, परंतकरेवि, एगे णो आयंतकरे, णो परंतकरे।

आत्म-पर-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मान्तकरः नामैकः, नो परान्तकरः, परान्तकरः नामैकः, नो आत्मान्तकरः, एकः आत्मान्तकरोऽपि, परान्तकरोऽपि, एकः नो आत्मान्तकरः, नो परान्तकरः।

आत्म-पर-पद

२६१. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष अपना अंत करते हैं, किन्तु दूसरे का अंत नही करते, २. कुछ पुरुष दूसरे का अंत करते हैं, किन्तु अपना अंत नही करते, ३. कुछ पुरुष अपना भी अंत करते हैं और दूसरे का भी अंत करते हैं, ४. कुछ पुरुष न अपना अंत करते हैं और न किसी दूसरे का अंत करते हैं।

२६२. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
आयंतमे णाममेगे, णो परंतमे, परंतमे णाममेगे, णो आयंतमे, एगे आयंतमेवि, परंतमेवि, एगे णो आयंतमे, णो परंतमे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मतमः नामैकः, नो परतमः, परतमः नामैकः, नो आत्मतमः, एकः आत्मतमोऽपि, परतमोऽपि, एकः नो आत्मतमः, नो परतमः।

२६२. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष अपने-आप को खिन्न करते हैं किन्तु दूसरे को खिन्न नही करते, २. कुछ पुरुष दूसरे को खिन्न करते है, किन्तु अपने-आप को खिन्न नही करते, ३ कुछ पुरुष अपने-आप को भी खिन्न करते है और दूसरे को भी खिन्न करते हैं, ४. कुछ पुरुष न अपने को खिन्न करते हैं और न किसी दूसरे को खिन्न करते है।

२६३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
आयंदमे णाममेगे, णो परंदमे, परंदमे णाममेगे, णो आयंदमे, एगे आयंदमेवि, परंदमेवि, एगे णो आयंदमे, णो परंदमे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मदमो नामैकः, नो परदमः, परदमो नामैकः, नो आत्मदमः, एकः आत्मदमोऽपि, परदमोऽपि, एकः नो आत्मदमः, नो परदमः।

२६३. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष अपना दमन करते हैं, किन्तु दूसरे का दमन नहीं करते, २. कुछ पुरुष दूसरे का दमन करते है, किन्तु अपना दमन नही करते, ३. कुछ पुरुष अपना भी दमन करते हैं और दूसरे का भी दमन करते है, ४. कुछ पुरुष न अपना दमन करते है और न किसी दूसरे का दमन करते हैं।

गरहा-पदं

२६४. चउव्विहा गरहा पण्णत्ता, तं जहा—
उवसंपज्जामित्तेगा गरहा,
वितिगिच्छामित्तेगा गरहा,
जंकिंचिमिच्छामित्तेगा गरहा,
एवंपि पण्णत्तेगा गरहा।

गर्हा-पदम्

चतुर्विधा गर्हा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उवसपद्ये इत्येका गर्हा,
विचिकित्सामीत्येका गर्हा,
यत्किञ्चिदिच्छामीत्येका गर्हा,
एवमपि प्रज्ञप्तैका गर्हा।

गर्हा-पद

२६४. गर्हा चार प्रकार की होती है—
१. अपने दोष का निवेदन करने के लिए गुरु के पास जाऊ, इस प्रकार का विचार करना, २ अपने दोषो का प्रतिकार करू उस प्रकार का विचार करना, ३. जो कुछ दोषाचरण किया वह मेरा कार्य मिथ्या हो—निष्फल हो, इस प्रकार कहना, ४ अपने दोष की गर्हा करने से भी उसकी शुद्धि होती है—ऐसा भगवान् ने कहा है इस प्रकार का चिन्तन करना।[10]

अलमंथु-पदं

२६५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अप्पणो णाममेगे अलमंथू भवति, णो परस्स,
परस्स णाममेगे अलमंथू भवति, णो अप्पणो,
एगे अप्पणोवि अलमंथू भवति, परस्सवि,
एगे णो अप्पणो अलमंथू भवति, णो परस्स।

अलमस्तु-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मन. नामैक अलमस्तु भवति, नो परस्य,
परस्य नामैक: अलमस्तु भवति, नो आत्मन.,
एक. आत्मनोऽपि अलमस्तु भवति, परस्यापि,
एक नो आत्मन अलमस्तु भवति, नो परस्य।

अलमस्तु-पद

२६५ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष अपना निग्रह करने मे समर्थ होते है, किन्तु दूसरे का निग्रह करने मे समर्थ नही होते, २ कुछ पुरुष दूसरे का निग्रह करने मे समर्थ होते है, किन्तु अपना निग्रह करने मे नही, ३ कुछ पुरुष अपना भी निग्रह करने मे समर्थ होते है और दूसरे का भी निग्रह करने म समर्थ होते है, ४ कुछ पुरुष न अपना निग्रह करने मे समर्थ होते हे और न दूसरे का निग्रह करने मे समर्थ होते हैं।

उज्जु-वंक-पदं

२६६. चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जू,
उज्जू णाममेगे वंके,
वंके णाममेगे उज्जू,
वंके णाममेगे वंके।

ऋजु-वक्र-पदम्

चत्वार मार्गा. प्रज्ञप्ता. तद्यथा—
ऋजु. नामैक. ऋजु,
ऋजु नामैक: वक्र.,
वक्र नामैक: ऋजु,
वक्र: नामैक: वक्र.।

ऋजु-वक्र-पद

२६६. मार्ग चार प्रकार के होते है—
१ कुछ मार्ग ऋजु लगते हैं और ऋजु ही होते है, २. कुछ मार्ग ऋजु लगते है, किन्तु वास्तव मे वक्र होते है, ३ कुछ मार्ग वक्र लगते है, किन्तु वास्तव मे ऋजु होते है, ४. कुछ मार्ग वक्र लगते है और वक्र ही होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू णाममेगे उज्जू,
उज्जू णाममेगे वंके,
वंके णाममेगे उज्जू,
वंके णाममेगे वंके।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ऋजुः नामैकः ऋजुः,
ऋजुः नामैकः वक्रः,
वक्रः नामैकः ऋजुः,
वक्रः नामैकः वक्रः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष ऋजु लगते है और ऋजु ही होते है, २. कुछ पुरुष ऋजु लगते हैं, किन्तु वास्तव मे वक्र होते है, ३ कुछ पुरुष वक्र लगते हैं, किन्तु वास्तव मे ऋजु होते हैं, ४. कुछ पुरुष वक्र लगते हैं और वक्र ही होते है।

खेम-अखेम-पदं

क्षेम-अक्षेम-पदम्

क्षेम-अक्षेम-पद

२६७. चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, तं जहा—
खेमे णाममेगे खेमे,
खेमे णाममेगे अखेमे,
अखेमे णाममेगे खेमे,
अखेमे णाममेगे अखेमे।

चत्वारः मार्गाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
क्षेमः नामैकः क्षेमः,
क्षेमः नामैकः अक्षेमः,
अक्षेमः नामैकः क्षेमः,
अक्षेमः नामैकः अक्षेमः।

२६७. मार्ग चार प्रकार का होता है—
१. कुछ मार्ग आदि मे भी क्षेम [निरुपद्रव] होते है और अन्त मे भी क्षेम होते है, २. कुछ मार्ग आदि मे क्षेम होते है, किन्तु अन्त में अक्षेम होते हैं, ३ कुछ मार्ग आदि मे अक्षेम होते है और अन्त मे क्षेम होते हैं, ४. कुछ मार्ग न आदि मे क्षेम होते हैं और न अन्त मे क्षेम होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
खेमे णाममेगे खेमे,
खेमे णाममेगे अखेमे,
अखेमे णाममेगे खेमे,
अखेमे णाममेगे अखेमे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
क्षेमः नामैकः क्षेमः,
क्षेमः नामैकः अक्षेमः,
अक्षेमः नामैकः क्षेमः,
अक्षेमः नामैकः अक्षेमः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१. कुछ पुरुष आदि मे भी क्षेम होते है और अन्त मे भी क्षेम होते है, २ कुछ पुरुष आदि मे क्षेम होते है, किन्तु अन्त मे अक्षेम होते है, ३ कुछ पुरुष आदि मे अक्षेम होते है, किन्तु अन्त क्षेम होते है, ४. कुछ पुरुष न आदि मे क्षेम होते है और न अन्त मे क्षेम होते है।

२६८. चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, तं जहा—
खेमे णाममेगे खेमरूवे,
खेमे णाममेगे अखेमरूवे,
अखेमे णाममेगे खेमरूवे,
अखेमे णाममेगे अखेमरूवे।

चत्वारः मार्गाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
क्षेमः नामैकः क्षेमरूपः,
क्षेमः नामैकः अक्षेमरूपः,
अक्षेमः नामैकः क्षेमरूपः,
अक्षेमः नामैकः अक्षेमरूपः।

२६८. मार्ग चार प्रकार का होता है—
१ कुछ मार्ग क्षेम और क्षेम रूप वाले होते है, २. कुछ मार्ग क्षेम और अक्षेम रूप वाले होते है, ३ कुछ मार्ग अक्षेम और क्षेम रूप वाले होते हैं। ४. कुछ मार्ग अक्षेम और अक्षेम रूप वाले होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
खेमे णाममेगे खेमरूवे,

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
क्षेमः नामैकः क्षेमरूपः,

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१. कुछ पुरुष क्षेम और क्षेम रूप वाले होते हैं, २. कुछ पुरुष क्षेम और

खेमे णाममेगे अखेमरूवे,
अखेमे णाममेगे खेमरूवे,
अखेमे णाममेगे अखेमरूवे।

क्षेमः नामैकः अक्षेमरूपः,
अक्षेमः नामैकः क्षेमरूपः,
अक्षेमः नामैकः अक्षेमरूपः।

अक्षेम रूप वाले होते हैं, ३. कुछ पुरुष अक्षेम और क्षेम रूप वाले होते हैं, ४ कुछ पुरुष अक्षेम और अक्षेम रूप वाले होते हैं।

वाम-दाहिण-पदं

२६९. चत्तारि संबुक्का पण्णत्ता, तं जहा—
वामे णाममेगे वामावत्ते,
वामे णाममेगे दाहिणावत्ते,
दाहिणे णाममेगे वामावत्ते,
दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
वामे णाममेगे वामावत्ते,
वामे णाममेगे दाहिणावत्ते,
दाहिणे णाममेगे वामावत्ते,
दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

वाम-दक्षिण-पदम्

चत्वारः शम्बूकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
वामः नामैकः वामावर्तः,
वामः नामैकः दक्षिणावर्तः,
दक्षिणः नामैकः वामावर्तः,
दक्षिणः नामैकः दक्षिणावर्तः।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वामः नामैकः वामावर्तः,
वामः नामैकः दक्षिणावर्तः,
दक्षिणः नामैकः वामावर्तः,
दक्षिणः नामैकः दक्षिणावर्तः।

वाम-दक्षिण-पद

२६९ शंख चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ शंख वाम [टेढे] और वामावर्त [बाईं ओर घुमाव वाले] होते हैं, २. कुछ शंख वाम और दक्षिणावर्त [दाईं ओर घुमाव वाले] होते है, ३. कुछ शंख दक्षिण [सीधे] और वामावर्त होते है, ४. कुछ शंख दक्षिण और दक्षिणावर्त होते है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष वाम और वामावर्त होते है—स्वभाव से भी वक्र होते हैं और प्रवृत्ति मे भी वक्र होते हैं, २. कुछ पुरुष वाम और दक्षिणावर्त होते है—स्वभाव से वक्र होते हैं, किन्तु कारणवश प्रवृत्ति मे सरल होते हैं, ३. कुछ पुरुष दक्षिण और दक्षिणावर्त होते है—स्वभाव से भी सरल होते हैं और प्रवृत्ति से भी सरल होते है, ४. कुछ पुरुष दक्षिण और वामावर्त होते हैं—स्वभाव से सरल होते हैं किन्तु कारणवश प्रवृत्ति मे वक्र होते है।

२७० चत्तारि धूमसिहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
वामा णाममेगा वामावत्ता,
वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।
एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
वामा णाममेगा वामावत्ता,

चतस्रः धूमशिखाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
वामा नामैका वामावर्ता,
वामा नामैका दक्षिणावर्ता,
दक्षिणा नामैका वामावर्ता,
दक्षिणा नामैका दक्षिणावर्ता।
एवमेव चतस्रः स्त्रियः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
वामा नामैका वामावर्ता,

२७०. धूम-शिखा चार प्रकार की होती हैं—
१. कुछ धूमशिखा वाम और वामावर्त होती हैं, २. कुछ धूमशिखा वाम और दक्षिणावर्त होती हैं, ३. कुछ धूमशिखा दक्षिण और दक्षिणावर्त होती है, ४. कुछ धूमशिखा दक्षिण और वामावर्त होती हैं।
इसी प्रकार स्त्रियां भी चार प्रकार की होती हैं—१. कुछ स्त्रियां वाम और वामावर्त होती हैं, २. कुछ स्त्रियां वाम

वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

वामा नामैका दक्षिणावर्ता,
दक्षिणा नामैका वामावर्ता,
दक्षिणा नामैका दक्षिणावर्ता।

और दक्षिणावर्त होती हैं, ३. कुछ स्त्रिया दक्षिण और दक्षिणावर्त होती हैं, ४. कुछ स्त्रियां दक्षिण और वामावर्त होती हैं।[६१]

२७१. चत्तारि अग्गिसिहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
वामा णाममेगा वामावत्ता,
वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।
एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
वामा णाममेगा वामावत्ता,
वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

चतस्रः अग्निशिखाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
वामा नामैका वामावर्ता,
वामा नामैका दक्षिणावर्ता,
दक्षिणा नामैका वामावर्ता,
दक्षिणा नामैका दक्षिणावर्ता।
एवमेव चतस्रः स्त्रियः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
वामा नामैका वामावर्ता,
वामा नामैका दक्षिणावर्ता,
दक्षिणा नामैका वामावर्ता,
दक्षिणा नामैका दक्षिणावर्ता।

२७१. अग्निशिखा चार प्रकार की होती है—१. कुछ अग्निशिखा वाम और वामावर्त होती है, २. कुछ अग्निशिखा वाम और दक्षिणावर्त होती हैं, ३. कुछ अग्निशिखा दक्षिण और दक्षिणावर्त होती हैं, ४. कुछ अग्निशिखा दक्षिण और वामावर्त होती है।
इसी प्रकार स्त्रियां भी चार प्रकार की होती है—१. कुछ स्त्रियां वाम और वामावर्त होती हैं, २. कुछ स्त्रिया वाम और दक्षिणावर्त होती है, ३. कुछ स्त्रियां दक्षिण और दक्षिणावर्त होती है, ४. कुछ स्त्रिया दक्षिण और वामावर्त होती हैं।[६२]

२७२. चत्तारि वायमंडलिया पण्णत्ता, तं जहा—
वामा णाममेगा वामावत्ता,
वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।
एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
वामा णाममेगा वामावत्ता,
वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,
दाहिणा णाममेगा वामावत्ता,
दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

चतस्रः वातमण्डलिकाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वामा नामैका वामावर्ता,
वामा नामैका दक्षिणावर्ता,
दक्षिणा नामैका वामावर्ता,
दक्षिणा नामैका दक्षिणावर्ता।
एवमेव चतस्रः स्त्रियः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
वामा नामैका वामावर्ता,
वामा नामैका दक्षिणावर्ता,
दक्षिणा नामैका वामावर्ता,
दक्षिणा नामैका दक्षिणावर्ता।

२७२. वातमडलिका चार प्रकार की होती है—१. कुछ वातमडलिका वाम और वामावर्त होती है, २ कुछ वातमडलिका वाम और दक्षिणावर्त होती है, ३. कुछ वातमडलिका दक्षिण और दक्षिणावर्त होती है ४. कुछ वातमडलिका दक्षिण और वामावर्त होती है।
इसी प्रकार स्त्रिया भी चार प्रकार की होती है—१ कुछ स्त्रिया वाम और वामावर्त होती हैं, २. कुछ स्त्रिया वाम और दक्षिणावर्त होती हैं, ३. कुछ स्त्रिया दक्षिण और दक्षिणावर्त होती हैं, ४. कुछ स्त्रिया दक्षिण और वामावर्त होती है।[६३]

२७३. चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा—
वामे णाममेगे वामावत्ते,
वामे णाममेगे दाहिणावत्ते,
दाहिणे णाममेगे वामावत्ते,
दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

चत्वारि वनषण्डानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वाम नामैक वामावर्त,
वामं नामैक दक्षिणावर्त,
दक्षिण नामैकं वामावर्त,
दक्षिण नामैकं दक्षिणावर्तम्।

२७३. वनषण्ड [उद्यान] चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ वनषण्ड वाम और वामावर्त होते हैं, २ कुछ वनषण्ड वाम और दक्षिणावर्त होते हैं, ३. कुछ वनषण्ड दक्षिण और दक्षिणावर्त होते हैं, ४. कुछ वनषण्ड दक्षिण और वामावर्त होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
वामे णाममेगे वामावत्ते,
वामे णाममेगे दाहिणावत्ते,
दाहिणे णाममेगे वामावत्ते,
दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वाम. नामैकः वामावर्तः
वाम. नामैकः दक्षिणावर्तः,
दक्षिणः नामैक वामावर्त,
दक्षिणः नामैकः दक्षिणावर्तः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—१. कुछ पुरुष वाम और वामावर्त होते हैं, २ कुछ पुरुष वाम और दक्षिणावर्त होते हैं, ३. कुछ पुरुष दक्षिण और दक्षिणावर्त होते हैं, ४. कुछ पुरुष दक्षिण और वामावर्त होते है।

णिग्गंथ-णिग्गंथी-पदं

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी-पदम्

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी-पद

२७४. **चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथे णिग्गंथिं आलवमाणे वा संलवमाणे वा णातिक्कमंति, तं जहा—**
१. पंथं पुच्छमाणे वा,
२. पंथं देसमाणे वा,
३. असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दलेमाणे वा,
४. असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दलावेमाणे वा।

चतुर्भिः स्थानैः निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थी आलपन् वा संलपन् वा नातिक्रामति, तद्यथा—
१. पन्थानं पृच्छन् वा,
२. पन्थान देशयन् वा,
३. अशन वा पान वा खाद्य वा स्वाद्य वा ददत् वा,
४ अशन वा पान वा खाद्य वा स्वाद्य वा दापयन् वा।

२७४. निर्ग्रन्थ चार कारणों से निर्ग्रन्थी के साथ आलाप-संलाप करता हुआ आचार का अतिक्रमण नही करता—
१ मार्ग पूछता हुआ, २. मार्ग बताता हुआ, ३ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य देता हुआ, ४ गृहस्थो के घर से अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य दिलाता हुआ।

तमुक्काय-पदं

तमस्काय-पदम्

तमस्काय-पद

२७५. **तमुक्कायस्स णं चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—**
तमेति वा, तमुक्कातेति वा,
अंधकारेति वा, महंधकारेति वा।

तमस्कायस्य चत्वारि नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
तमइति वा, तमस्कायइति वा,
अन्धकारमिति वा, महान्धकारमिति वा।

२७५ तमस्काय के चार नाम हैं—
१. तम, २. तमस्काय, ३. अंधकार, ४ महाअंधकार।[११]

२७६. **तमुक्कायस्स णं चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—**
लोगंधगारेति वा, लोगतमसेति वा,
देवंधगारेति वा, देवतमसेति वा।

तमस्कायस्य चत्वारि नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
लोकान्धकारमिति वा, लोकतमइति वा,
देवान्धकारमिति वा, देवतमइति वा।

२७६. तमस्काय के चार नाम हैं—
१ लोकांधकार, २ लोकतमस,
३ देवांधकार, ४. देवतमस।[११]

२७७. **तमुक्कायस्स णं चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—**
वातफलिहेति वा,
वातफलिहखोभेति वा,
देवरण्णेति वा, देववूहेति वा।

तमस्कायस्य चत्वारि नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वातपरिघइति वा,
वातपरिघक्षोभइति वा,
देवारण्यमिति वा, देवव्यूहइति वा।

२७७. तमस्काय के चार नाम हैं—
१. वातपरिघ, २. वातपरिघक्षोभ,
३. देवारण्य, ४ देवव्यूह।[११]

२७८. तमुक्काले णं चत्तारि कप्पे आवरित्ता चिट्ठति, तं जहा—
सोधम्मीसाणं सणंकुमार-माहिंदं।

तमस्कायः चतुरः कल्पान् आवृत्य तिष्ठति, तद्यथा—
सौधर्मेशानौ सनत्कुमार-माहेन्द्रौ।

२७८. तमस्काय चार कल्पों को आवृत किए हुए हैं—१. सौधर्म, २. ईशान, ३. सनत्कुमार, ४. माहेन्द्र।

दोस-पदं

२७९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
संपागडपडिसेवी णाममेगे,
पच्छण्णपडिसेवी णाममेगे,
पडुप्पण्णणंदी णाममेगे,
णिस्सरणणंदी णाममेगे।

दोष-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सम्प्रकटप्रतिषेवी नामैकः,
प्रच्छन्नप्रतिषेवी नामैकः,
प्रत्युत्पन्ननन्दी नामैकः,
निःसरणनन्दी नामैकः।

दोष-पद

२७९. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. प्रगट में दोष सेवन करने वाला, २ छिपकर दोष सेवन करने वाला, ३. इष्ट वस्तु की उपलब्धि होने पर आनन्द मनाने वाला, ४. दूसरों के चले जाने पर आनन्द मनाने वाला अथवा अकेले में आनन्द मनाने वाला।

जय-पराजय-पदं

२८० चत्तारि सेणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
जइत्ता णाममेगा, णो पराजिणित्ता,
पराजिणित्ता णाममेगा, णो जइत्ता,
एगा जइत्तावि, पराजिणित्तावि,
एगा णो जइत्ता, णो पराजिणित्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जइत्ता णाममेगे, णो पराजिणित्ता,
पराजिणित्ता णाममेगे, णो जइत्ता,
एगे जइत्तावि, पराजिणित्तावि,
एगे णो जइत्ता, णो पराजिणित्ता।

जय-पराजय-पदम्

चतस्रः सेनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
जेत्री नामैका, नो पराजेत्री,
पराजेत्री नामैका, नो जेत्री,
एका जेत्र्यपि, पराजेत्र्यपि,
एका नो जेत्री, नो पराजेत्री।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जेता नामैकः, नो पराजेता,
पराजेता नामैकः, नो जेता,
एकः जेतापि, पराजेतापि,
एकः नो जेता, नो पराजेता।

जय-पराजय-पद

२८०. सेना चार प्रकार की होती है—
१. कुछ सेनाएं विजय करती है, किन्तु पराजित नहीं होती, २. कुछ सेनाए पराजित होती हैं, किन्तु विजय नही पातीं, ३. कुछ सेनाए कभी विजय करती है और कभी पराजित हो जाती है, ४. कुछ सेनाएं न विजय ही करती है और न पराजित ही होती है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१. कुछ पुरुष [कष्टों पर] विजय पाते है पर [उनसे] पराजित नहीं होते—जैसे श्रमण भगवान् महावीर, २. कुछ पुरुष [कष्टों से] पराजित होते है पर [उनसे] विजय नहीं पाते—जैसे कुण्डरीक, ३. कुछ पुरुष [कष्टों पर] कभी विजय पाते है और कभी उनसे पराजित हो जाते हैं—जैसे शैलक राजर्षि, ४. कुछ पुरुष न [कष्टों पर] विजय ही पाते है और न [उनसे] पराजित ही होते है।

२८१. चत्तारि सेणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
जइत्ता णाममेगा जयइ,
जइत्ता णाममेगा पराजिणति,
पराजिणित्ता णाममेगा जयइ,
पराजिणित्ता णाममेगा पराजिणति।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जइत्ता णाममेगे जयति,
जइत्ता णाममेगे पराजिणति,
पराजिणित्ता णाममेगे जयति,
पराजिणित्ता णाममेगे पराजिणति।

चतस्रः सेनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
जित्वा नामैका जयति,
जित्वा नामैका पराजयते,
पराजित्य नामैका जयति,
पराजित्य नामैका पराजयते।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जित्वा नामैकः जयति,
जित्वा नामैकः पराजयते,
पराजित्य नामैकः जयति,
पराजित्य नामैकः पराजयते।

२८१. सेना चार की प्रकार होती हैं—
१. कुछ सेनाए जीतकर जीतती है,
२. कुछ सेनाएं जीतकर भी पराजित होती है, ३ कुछ सेनाए पराजित होकर भी जीतती हैं, ४. कुछ सेनाए पराजित होकर पराजित होती है।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१. कुछ पुरुष जीतकर जीतते हैं,
२. कुछ पुरुष जीतकर भी पराजित होते है, ३. कुछ पुरुष पराजित होकर भी जीतते है, ४. कुछ पुरुष पराजित होकर पराजित होते है।

माया-पदं

२८२. चत्तारि केतणा पण्णत्ता, तं जहा—
वंसीमूलकेतणए, मेंढविसाणकेतणए,
गोमुत्तिकेतणए,
अवलेहणियकेतणए।

एवामेव चउविधा माया पण्णत्ता, तं जहा—
वंसीमूलकेतणासमाणा,
°मेंढविसाणकेतणासमाणा,
गोमुत्तिकेतणासमाणा,°
अवलेहणियकेतणासमाणा।
१. वंसीमूलकेतणासमाणं मायमणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति,
२ मेंढविसाणकेतणासमाणं मायमणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति,
३. गोमुत्ति °केतणासमाणं मायमणुपविट्ठे जीवे° कालं करेति, मणुस्सेसु उववज्जति,

माया-पदम्

चत्वारि केतनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वशीमूलकेतनक, मेढ्विषाणकेतनक,
गोमूत्रिकाकेतनक,
अवलेखनिकाकेतनकम्।

एवमेव चतुर्विधा माया प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वशीमूलकेतनसमाना,
मेढ्विषाणकेतनसमाना,
गोमूत्रिकाकेतनसमाना,
अवलेखनिकाकेतनसमाना।
१ वशीमूलकेतनसमाना माया अनुप्रविष्ट जीव काल करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते,
२. मेढ्विषाणकेतनसमाना माया अनुप्रविष्टः जीव काल करोति, तिर्यग्योनिकेषु उपपद्यते,
३. गोमूत्रिकाकेतनसमाना माया अनुप्रविष्ट जीवः काल करोति, मनुष्येषु उपपद्यते,

माया-पद

२८२ केतन [वक्र] चार प्रकार का होता है—
१. वशीमूल—बास की जड, २. मेष-विषाण—मेढे का सीग, ३. गोमूत्रिका—चलते बैल के मूत्र की धार, ४ अवलेखनिका—छिलते हुए बास आदि की पतली छाल।
इसी प्रकार माया भी चार प्रकार की होती है—१. वशीमूल के समान—अनन्तानुबन्धी, २ मेषविषाण के समान—अप्रत्याख्यानावरण, ३ गो-मूत्रिका के समान—प्रत्याख्यानावरण, ४. अवलेखनिका के समान—सज्वलन।
१. वशीमूल के समान माया मे प्रवर्तमान जीव मरकर नरक मे उत्पन्न होता है,
२. मेष-विषाण के समान माया मे प्रवर्तमान जीव मरकर तिर्यक्योनि मे उत्पन्न होता है,
३. गो-मूत्रिका के समान माया मे प्रवर्तमान जीव मरकर मनुष्य गति मे उत्पन्न होता है,

४. अवलेहणिय॰केतणासमाणं मायमणुपविट्ठे जीवे कालं करेति°, देवेसु उववज्जति ।

४. अवलेखनिकाकेतनसमाना मायां अनुप्रविष्टः जीवः काल करोति, देवेषु उपपद्यते ।

४. अवलेखनिका के समान माया मे प्रवर्तमान जीव मरकर देवगति मे उत्पन्न होता है ।[१७]

माण-पदं

मान-पदम्

मान-पद

२८३. चत्तारि थंभा पण्णत्ता, तं जहा— सेलथंभे, अट्ठिथंभे, दारुथंभे । तिणिसलताथंभे ।

चत्वारः स्तम्भाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— शैलस्तम्भः, अस्थिस्तम्भः, दारुस्तम्भः, तिनिशलतास्तम्भः ।

२८३. स्तंभ चार प्रकार होता है—
१. शैल-स्तंभ—पत्थर का खम्भा,
२ अस्थि-स्तंभ—हाड का खम्भा,
३. दारु-स्तंभ—काठ का खम्भा,
४ तिनिशलता-स्तंभ—सीसम की जाति के वृक्ष की लता [लकडी] का खम्भा ।

एवामेव चउव्विधे माणे पण्णते, तं जहा—सेलथंभसमाणे, ॰अट्ठिथंभसमाणे, दारुथंभसमाणे,° तिणिसलताथंभसमाणे ।
१ सेलथंभसमाणं माणं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति,
२. ॰अट्ठिथंभसमाणं माणं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति,
३ दारुथंभसमाणं माणं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, मणुस्सेसु उववज्जति,°
४. तिणिसलताथंभसमाणं माणं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, देवेसु उववज्जति ।

एवमेव चतुर्विधः मानः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— शैलस्तम्भसमानः, अस्थिस्तम्भसमानः, दारुस्तम्भसमानः, तिनिशलतास्तम्भसमानः ।
१. शैलस्तम्भसमानं मानं अनुप्रविष्टः जीवः काल करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते,
२. अस्थिस्तम्भसमानं मानं अनुप्रविष्टः जीवः काल करोति, तिर्यग्योनिकेषु उपपद्यते,
३. दारुस्तम्भसमानं मानं अनुप्रविष्टः जीवः कालं करोति, मनुष्येषु उपपद्यते,
४. तिनिशलतास्तम्भसमानं मानं अनुप्रविष्टः जीवः काल करोति, देवेषु उपपद्यते ।

इसी प्रकार मान भी चार प्रकार का होता है—१. शैल-स्तम्भ के समान—अनन्तानुबन्धी, २. अस्थि-स्तम्भ के समान—अप्रत्याख्यानावरण, ३. दारु-स्तम्भ के समान—प्रत्याख्यानावरण, ४. तिनिशलता-स्तम्भ के समान—सज्वलन ।
१. शैल-स्तम्भ के समान मान मे प्रवर्तमान जीव मरकर नरक मे उत्पन्न होता है, २. अस्थि-स्तम्भ के समान मान मे प्रवर्तमान जीव मरकर तिर्यक्-योनि में उत्पन्न होता है, ३. दारु स्तम्भ के समान मान मे प्रवर्तमान जीव मरकर मनुष्य गति मे उत्पन्न होता है, ४. तिनिशलता-स्तम्भ के समान मान मे प्रवर्तमान जीव मरकर देवगति मे उत्पन्न होता है ।[१८]

लोभ-पदं

लोभ-पदम्

लोभ-पद

२८४. चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा— किमिरागरत्ते, कद्दमरागरत्ते, खंजणरागरत्ते, हलिद्दरागरत्ते ।

चत्वारि वस्त्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— कृमिरागरक्तं, कर्दमरागरक्तं, खञ्जनरागरक्तं, हरिद्रारागरक्तं ।

२८४. वस्त्र चार प्रकार का होता है—
१. कृमिरागरक्त—कृमियो के रञ्जक रस में रंगा हुआ वस्त्र, २. कर्दमरागरक्त—कीचड़ से रंगा हुआ वस्त्र,
३. खञ्जनरागरक्त—काजल के रंग से रगा हुआ वस्त्र, ४. हरिद्रारागरक्त—हल्दी के रंग से रगा हुआ वस्त्र ।

एवामेव चउव्विधे लोभे पण्णत्ते, तं जहा—
किमिरागरत्तवत्थसमाणे,
कद्दमरागरत्तवत्थसमाणे,
खंजणरागरत्तवत्थसमाणे,
हलिद्दरागरत्तवत्थसमाणे।
१. किमिरागरत्तवत्थसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, णेरइएसु उववज्जइ,
२. °कद्दमरागरत्तवत्थसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, तिरिक्खजोणितेसु उववज्जइ,
३. खंजणरागरत्तवत्थसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, मणुस्सेसु उववज्जइ°,
४. हलिद्दरागरत्तवत्थसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, देवेसु उववज्जइ।

एवमेव चतुर्विधः लोभः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
कृमिरागरक्तवस्त्रसमानः,
कर्दमरागरक्तवस्त्रसमानः,
खञ्जनरागरक्तवस्त्रसमानः,
हरिद्रारागरक्तवस्त्रसमानः।
१. कृमिरागरक्तवस्त्रसमान लोभं अनुप्रविष्टः जीव काल करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते,
२. कर्दमरागरक्तवस्त्रसमान लोभ अनुप्रविष्टः जीव. काल करोति, निर्यग्योनिकेषु उपपद्यते,
३. खञ्जनरागरक्तवस्त्रसमान लोभ अनुप्रविष्ट. जीव काल करोति, मनुष्येषु उपपद्यते,
४. हरिद्रारागरक्तवस्त्रसमान लोभं अनुप्रविष्टः जीव काल करोति, देवेषु उपपद्यते।

इसी प्रकार लोभ भी चार प्रकार का होता है—१. कृमिरागरक्त के समान—अनन्तानुबन्धी, २. कर्दमरागरक्त के समान—अप्रत्याख्यानावरण, ३ खञ्जनरागरक्त के समान—प्रत्याख्यानावरण, ४. हरिद्रारागरक्त के समान—सज्वलन। १. कृमिरागरक्त के समान लोभ मे प्रवर्तमान जीव मरकर नरक मे उत्पन्न होता है, २. कर्दमरागरक्त के समान लोभ मे प्रवर्तमान जीव मरकर तिर्यक्-योनि मे उत्पन्न होता है, ३ खञ्जनरागरक्त के समान लोभ मे प्रवर्तमान जीव मरकर मनुष्य गति मे उत्पन्न होता है, ४. हरिद्रारागरक्त के समान लोभ मे प्रवर्तमान जीव मरकर देव गति मे उत्पन्न होता है।[६]

संसार-पद

२८५. चउव्विहे संसारे पण्णत्ते, तं जहा—
णेरइयसंसारे,
°तिरिक्खजोणियसंसारे,
मणुस्ससंसारे,° देवसंसारे।

२८६ चउव्विहे आउए पण्णत्ते, तं जहा—
णेरइआउए, °तिरिक्खजोणिआउए,
मणुस्साउए,° देवाउए।

२८७. चउव्विहे भवे पण्णत्ते, तं जहा—
णेरइयभवे, °तिरिक्खजोणियभवे,
मणुस्सभवे°, देवभवे।

संसार-पदम्

चतुर्विधः संसारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
नैरयिकसंसारः, निर्यग्योनिकसंसारः,
मनुष्यसंसारः, देवसंसारः।

चतुर्विध आयुः प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
नैरयिकायुः, तिर्यग्योनिकायुः,
मनुष्यायुः, देवायुः।

चतुर्विधः भवः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
नैरयिकभवः, तिर्यग्योनिकभवः,
मनुष्यभवः, देवभवः।

संसार-पद

२८५ संसार [उत्पत्ति स्थान मे गमन] चार प्रकार का होता है—१ नैरयिकसंसार, २. तिर्यक्योनिकसंसार, ३ मनुष्यसंसार, ४ देवसंसार।

२८६ आयुष्य चार प्रकार का होता है—
१ नैरयिक-आयुष्य,
२ तिर्यक्योनिक-आयुष्य,
३ मनुष्य-आयुष्य, ४. देव-आयुष्य।

२८७. भव [उत्पत्ति] चार प्रकार का होता है—
१. नैरयिक भव, २. तिर्यक्-योनिक भव,
३. मनुष्य भव, ४ देव भव।

आहार-पदं

२८८. चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा— असणे, पाणे, खाइमे, साइमे।

आहार-पदम्

चतुर्विधः आहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— अशन, पान, खाद्य, स्वाद्यम्।

आहार-पद

२८८. आहार चार प्रकार का होता है—
१. अशन—अन्न आदि,
२ पान—काजी आदि,
३ खादिम—फल आदि,
४ स्वादिम—तम्बूल आदि।

२८९. चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा— उवक्खरसंपण्णे, उवक्खडसंपण्णे, सभावसंपण्णे, परिजुसियसंपण्णे।

चतुर्विधः आहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— उपस्कारसम्पन्नः, उपस्कृतसम्पन्नः, स्वभावसम्पन्नः, पर्युषितसम्पन्नः।

२८९ आहार चार प्रकार का होता है— १. उपस्कर-सम्पन्न—बघार से युक्त, मसाले डालकर छौका हुआ, २ उपस्कृत-सम्पन्न—पकाया हुआ, ओदन आदि, ३ स्वभाव-सम्पन्न—स्वभाव से पका हुआ, फल आदि, ४ पर्युषित-सम्पन्न—रात बासी रखने से जो तैयार हो।

कम्मावत्था-पदं

२९०. चउव्विहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा— पगतिबंधे, ठितिबंधे, अणुभावबंधे, पदेसबंधे।

कर्मावस्था-पदम्

चतुर्विधः बन्धः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— प्रकृतिबन्धः, स्थितिबन्धः, अनुभावबन्धः, प्रदेशबन्धः।

कर्मावस्था-पद

२९०. बंध चार प्रकार का होता है— १. प्रकृति-बंध—कर्म-पुद्गलों का स्वभाव बंध, २. स्थिति-बंध—कर्म-पुद्गलों की काल मर्यादा का बंध, ३ अनुभाव-बंध—कर्म-पुद्गलों के रस का बंध, ४ प्रदेश-बंध—कर्म-पुद्गलों के परमाणु-परिमाण का बंध।[७०]

२९१. चउव्विहे उवक्कमे पण्णत्ते, तं जहा— बंधणोवक्कमे, उदीरणोवक्कमे, उवसमणोवक्कमे, विप्परिणामणोवक्कमे।

चतुर्विधः उपक्रमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— बन्धनोपक्रमः, उदीरणोपक्रमः, उपशमनोपक्रमः, विपरिणामनोपक्रमः।

२९१ उपक्रम[७१] चार प्रकार का होता है— १. बंधन उपक्रम—बंधन का हेतुभूत जीव-वीर्य या बंधन का प्रारम्भ, २. उदीरणा उपक्रम—उदीरणा का हेतुभूत जीव-वीर्य या उदीरणा का प्रारम्भ, ३ उपशमन उपक्रम—उपशमन का हेतुभूत जीव-वीर्य या उपशमन का प्रारम्भ, ४. विपरिणामन उपक्रम—विपरिणामन का हेतुभूत जीव-वीर्य या विपरिणामन का प्रारम्भ।

२९२. बंधणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिबंधणोवक्कमे, ठितिबंधणोवक्कमे, अणुभावबंधणोवक्कमे, पदेसबंधणोवक्कमे ।

बन्धनोपक्रमः, चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—प्रकृतिबन्धनोपक्रमः, स्थितिबन्धनोपक्रमः, अनुभावबन्धनोपक्रमः, प्रदेशबन्धनोपक्रमः ।

२९२ बंधन[७२] उपक्रम चार प्रकार का होता है—
१ प्रकृतिबधन उपक्रम,
२ स्थितिबधन उपक्रम,
३ अनुभावबधन उपक्रम,
४. प्रदेशबधन उपक्रम ।

२९३. उदीरणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिउदीरणोवक्कमे, ठितिउदीरणोवक्कमे, अणुभावउदीरणोवक्कमे, पदेसउदीरणोवक्कमे ।

उदीरणोपक्रम चतुर्विध. प्रज्ञप्तः, तद्यथा— प्रकृत्युदीरणोपक्रम, स्थित्युदीरणोपक्रमः, अनुभावोदीरणोपक्रम., प्रदेशोदीरणोपक्रम ।

२९३. उदीरणा[७३] उपक्रम चार प्रकार का होता है—१. प्रकृतिउदीरणा उपक्रम,
२. स्थितिउदीरणा उपक्रम,
३. अनुभावउदीरणा उपक्रम,
४ प्रदेशउदीरणा उपक्रम ।

२९४. उवसामणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिउवसामणोवक्कमे, ठितिउवसामणोवक्कमे, अणुभावउवसामणोवक्कमे, पदेसउवसामणोवक्कमे ।

उपशामनोपक्रम, चतुर्विध प्रज्ञप्त, तद्यथा—प्रकृत्युपशामनोपक्रमः, स्थित्युपशामनोपक्रम, अनुभावोपशामनोपक्रम, प्रदेशोपशामनोपक्रमः ।

२९४ उपशमन[७४] उपक्रम चार प्रकार का होता है—१ प्रकृतिउपशमन उपक्रम,
२ स्थितिउपशमन उपक्रम,
३ अनुभावउपशमन उपक्रम,
४ प्रदेशउपशमन उपक्रम ।

२९५. विप्परिणामणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिविप्परिणामणोवक्कमे, ठितिविप्परिणामणोवक्कमे, अणुभावविप्परिणामणोवक्कमे, पएसविप्परिणामणोवक्कमे ।

विपरिणामनोपक्रमः चतुर्विध. प्रज्ञप्तः, तद्यथा—प्रकृतिविपरिणामनोपक्रम, स्थितिविपरिणामनोपक्रम, अनुभावविपरिणामनोपक्रम, प्रदेशविपरिणामनोपक्रमः ।

२९५. विपरिणामन[७५] उपक्रम चार प्रकार का होता है—१ प्रकृतिविपरिणामन उपक्रम,
२. स्थितिविपरिणामन उपक्रम,
३ अनुभावविपरिणामन उपक्रम,
४. प्रदेशविपरिणामन उपक्रम ।

२९६. चउव्विहे अप्पाबहुए पण्णत्ते, तं जहा—पगतिअप्पाबहुए, ठितिअप्पाबहुए, अणुभावअप्पाबहुए, पएसअप्पाबहुए ।

चतुर्विध अल्पबहुत्व प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—प्रकृत्यल्पबहुत्वं, स्थित्यल्पबहुत्व, अनुभावाल्पबहुत्वं, प्रदेशाल्पबहुत्वम् ।

२९६ अल्पबहुत्व[७६] चार प्रकार का होता है—
१ प्रकृतिअल्पबहुत्व,
२ स्थितिअल्पबहुत्व,
३. अनुभावअल्पबहुत्व,
४. प्रदेशअल्पबहुत्व ।

२९७. चउव्विहे संकमे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिसंकमे, ठितिसंकमे, अणुभावसंकमे, पएससंकमे ।

चतुर्विध सक्रमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—प्रकृतिसक्रमः, स्थितिसक्रमः, अनुभावसक्रमः, प्रदेशसंक्रमः ।

२९७ सक्रम[७७] चार प्रकार का होता है—
१. प्रकृतिसक्रम, २. स्थितिसक्रम,
३. अनुभावसक्रम, ४. प्रदेशसक्रम ।

२९८. चउव्विहे णिधत्ते पण्णत्ते, तं जहा—पगतिणिधत्ते, ठितिणिधत्ते, अणुभावणिधत्ते, पएसणिधत्ते ।

चतुर्विधं निधत्तं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—प्रकृतिनिधत्तं, स्थितिनिधत्त, अनुभावनिधत्त, प्रदेशनिधत्तम् ।

२९८ निधत्त[७८] चार प्रकार का होता है—
१ प्रकृतिनिधत्त, २. स्थितिनिधत्त,
३. अनुभावनिधत्त, ४. प्रदेशनिधत्त,

२९९. चउव्विहे णिगायिते पण्णत्ते, तं जहा—पगतिणिगायिते, ठितिणिगायिते, अणुभावणिगायिते, पएसणिगायिते ।

चतुर्विधं निकाचितं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—प्रकृतिनिकाचितं, स्थितिनिकाचितं, अनुभावनिकाचितं, प्रदेशनिकाचितम् ।

२९९. निकाचित[51] चार प्रकार का होता है—
१. प्रकृति निकाचित,
२. स्थिति निकाचित,
३. अनुभाव निकाचित,
४. प्रदेश निकाचित ।

संखा-पदं

संख्या-पदम्

संख्या-पद

३००. चत्तारि एक्का पण्णत्ता, तं जहा—दविएक्कए, माउएक्कए, पज्जवेक्कए, संगहेक्कए,

चत्वारि एकानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—द्रव्यैकक, मातृकैककं, पर्यायैकक, संग्रहैककम् ।

३००. एक चार प्रकार का होता है—
१. द्रव्य एक—द्रव्यत्व की दृष्टि से द्रव्य एक है, २. मातृका पद एक—सब नयों का बीजभूत मातृका पद [उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक त्रिपदी] एक है, ३. पर्याय एक—पर्यायत्व की दृष्टि से पर्याय एक है, ४ संग्रह एक—संग्रह की दृष्टि से बहु में भी एक वचन का प्रयोग होता है ।

३०१. चत्तारि कती पण्णत्ता, तं जहा—दवितकती, माउयकती, पज्जवकती, संगहकती ।

चत्वारि कति प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—द्रव्यकति, मातृकाकति, पर्यायकति, संग्रहकति ।

३०१. कति [अनेक] चार प्रकार का होता है—
१ द्रव्य कति—द्रव्य-व्यक्ति की दृष्टि से द्रव्य अनेक है, २. मातृका कति—विविध नयों की दृष्टि से मातृका अनेक है, ३. पर्याय कति—पर्याय व्यक्ति की दृष्टि से पर्याय अनेक है, ४. संग्रह कति—अवान्तर जातियों की दृष्टि से संग्रह अनेक है ।

३०२. चत्तारि सव्वा पण्णत्ता, तं जहा—णामसव्वए, ठवणसव्वए, आएससव्वए, णिरवसेससव्वए ।

चत्वारि सर्वाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—नामसर्वक, स्थापनासर्वक, आदेशसर्वक, निरवशेषसर्वकम् ।

३०२ सर्व चार प्रकार का होता है—
१. नाम सर्व—किसी का नाम सर्व रख दिया वह, केवल नाम से सर्व होता है, २. स्थापना सर्व—किसी वस्तु में सर्व का आरोप किया जाए वह, स्थापना सर्व है, ३. आदेश सर्व—अपेक्षा की दृष्टि से सर्व, जैसे कुछ कार्य शेष रहने पर भी कहा जाता है सारा काम कर डाला, ४. निरवशेष सर्व—वह सर्व जिसमें कोई शेष न रहे, वास्तविक सर्व ।

कूड-पदं

३०३. माणुसुत्तरस्स णं पव्वयस्स चउ-दिसिं चत्तारि कूडा पण्णत्ता, तं जहा—रयणे, रतणुच्चए, सव्वरयणे, रतणसंचए।

कूट-पदम्

मानुषोत्तरस्य पर्वतस्य चतुर्दिशि चत्वारि कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—रत्न, रत्नोच्चय, सर्वरत्न, रत्नसंचयम्।

कूट-पद

३०३. मानुषोत्तर पर्वत के चारों दिशा कोणों में चार कूट हैं—१. रत्नकूट—दक्षिण-पूर्व में, २. रत्नोच्चयकूट—दक्षिण-पश्चिम में, ३. सर्वरत्नकूट—पूर्वोत्तर में, ४. रत्नसंचयकूट—पश्चिमोत्तर में।

कालचक्क-पदं

३०४. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवतेसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो हुत्था।

३०५. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवतेसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो पण्णत्तो।

३०६. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमेस्साए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो भविस्सइ।

कालचक्र-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरावतयो: वर्षयो: अतीताया उत्सर्पिण्या सुषमसुषमाया समायां चतस्र: सागरोपमकोटिकोटी: काल: अभवत्।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरावतयो: वर्षयो: अस्या अवसर्पिण्या सुषमसुषमायां समायां चतस्र: सागरोपमकोटिकोटी: काल: प्रज्ञप्त:।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरावतयो: वर्षयो: आगमिष्यन्त्या उत्सर्पिण्या सुषमसुषमायां समायां चतस्र: सागरोपमकोटिकोटी: काल: भविष्यति।

कालचक्र-पद

३०४. जम्बूद्वीप द्वीप के भारत और ऐरवत क्षेत्रों में अतीत उत्सर्पिणी के 'सुषम-सुषमा' नामक आरे का कालमान चार कोडाकोडी सागरोपम था।

३०५. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों में इस अवसर्पिणी के 'सुषम-सुषमा' नामक आरे का कालमान चार कोडाकोडी सागरोपम था।

३०६. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों में आगामी उत्सर्पिणी के 'सुषम-सुषमा' नामक आरे का कालमान चार कोडाकोडी सागरोपम होगा।

अकम्मभूमी-पदं

३०७. जंबुद्दीवे दीवे देवकुरुउत्तरकुरुवज्जाओ चत्तारि अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हेमवते, हेरण्णवते, हरिवरिसे, रम्मगवरिसे।

चत्तारि वट्टवेयड्ढपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—सद्दावाती, वियडावाती, गंधावाती, मालवंतपरिताते।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—साती पभासे अरुणे पउमे।

अकर्मभूमि-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे देवकुरूत्तरकुरुवर्जा: चतस्र: अकर्मभूमय: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्षम्।

चत्वार: वृत्तवैताढ्यपर्वता: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—शब्दापाती, विकटापाती, गन्धापाती, माल्यवत्पर्याय:।

तत्र चत्वार: देवा: महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिका परिवसन्ति, तद्यथा—स्वाति:, प्रभास:, अरुण:, पद्म:।

अकर्मभूमि-पद

३०७. जम्बूद्वीप द्वीप में देवकुरु और उत्तरकुरु को छोडकर चार अकर्म-भूमियां हैं—१. हैमवत, २. हैरण्यवत, ३. हरिवर्ष, ४. रम्यग्वर्ष।

उनमें चार वैताढ्य पर्वत हैं—१. शब्दापाती, २. विकटापाती, ३. गंधापाती, ४. माल्यवत्पर्याय।

वहां पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते हैं—१. स्वाति, २. प्रभास, ३. अरुण, ४. पद्म।

महाविदेह-पदं

३०८. जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—
पुव्वविदेहे, अवरविदेहे, देवकुरा, उत्तरकुरा।

महाविदेह-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहः वर्षं चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पूर्वविदेहः, अपरविदेहः, देवकुरुः, उत्तरकुरुः।

महाविदेह-पद

३०८. महाविदेह क्षेत्र के चार प्रकार हैं—
१. पूर्वविदेह, २. अपरविदेह, ३ देवकुरु, ४. उत्तरकुरु।

पव्वय-पदं

३०९. सव्वेवि णं णिसढणीलवंतवासहरपव्वता चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाउसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

३१०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उत्तरकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
चित्तकूडे, पम्हकूडे, णलिणकूडे, एगसेले।

३११. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए दाहिणकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
तिकूडे, वेसमणकूडे, अंजणे, मातंजणे।

३१२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओदाए महाणदीए दाहिणकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
अंकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे।

३१३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओदाए महाणदीए उत्तरकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—

पर्वत-पदम्

सर्वेऽपि निषधनीलवद्वर्षधराः पर्वताः चत्वारि योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, चत्वारि गव्यूतिशतानि उद्वेधेन प्रज्ञप्ताः।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीतायाः महानद्याः उत्तरकूले चत्वारः वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
चित्रकूटः, पक्ष्मकूटः, नलिनकूटः, एकशैलः।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीतायाः महानद्याः दक्षिणकूले चत्वारः वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
त्रिकूटः, वैश्रमणकूटः, अञ्जनः, माताञ्जनः।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदायाः महानद्याः दक्षिणकूले चत्वारः वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अङ्कावती, पक्ष्मावती, आशीविषः, सुखावहः।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदायाः महानद्याः उत्तरकूले चत्वारः वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

पर्वत-पद

३०९. सब निषध और नीलवत् वर्षधर पर्वतों की ऊंचाई चार सौ योजन की है और चार सौ कोस तक वे भूमि में अवस्थित हैं।

३१०. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व भाग में और सीता महानदी के उत्तरकूल में चार वक्षस्कार पर्वत हैं—
१ चित्रकूट, २. पक्ष्मकूट, ३. नलिनकूट, ४. एकशैल।

३११. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व भाग में और सीता महानदी के दक्षिणकूल में चार वक्षस्कार पर्वत हैं—
१. त्रिकूट, २ वैश्रवणकूट, ३ अञ्जन, ४. माताञ्जन।

३१२. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम भाग में और सीतोदा महानदी के दक्षिणकूल में चार वक्षस्कार पर्वत हैं—
१. अंकावती, २. पक्ष्मावती, ३. आशीविष, ४ सुखावह।

३१३. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम भाग में और सीतोदा महानदी के उत्तरकूल में चार वक्षस्कार पर्वत हैं—

चंदपव्वते, सूरपव्वते, देवपव्वते, णागपव्वते।

चन्द्रपर्वत, सूरपर्वतः, देवपर्वत, नागपर्वत।

१. चन्द्रपर्वत २. सूरपर्वत, ३. देवपर्वत, ४. नागपर्वत।

३१४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स चउसु विदिसासु चत्तारि वक्खार-पव्वया पण्णत्ता, तं जहा— सोमणसे, विज्जुप्पभे, गंधमायणे, मालवंते।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य चतसृषु विदिशासु चत्वारः वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— सौमनस., विद्युत्प्रभ., गन्धमादनः, माल्यवान्।

३१४ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के चारो दिशा कोणों मे चार वक्षस्कार पर्वत है— १. सौमनस्क, २ विद्युत्प्रभ, ३ गन्धमादन, ४ माल्यवान्।

सलागा-पुरिस-पदं

शलाका-पुरुष-पदम्

शलाका-पुरुष-पद

३१५. जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे जहण्णपए चत्तारि अरहंता चत्तारि चक्कवट्टी चत्तारि बलदेवा चत्तारि वासुदेवा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहे वर्षे जघन्यपदे चत्वारः अर्हन्तः चत्वारः चक्रवर्तिनः चत्वार. बलदेवा चत्वार वासुदेवा. उदपदिषत वा उत्पद्यन्ते वा उत्पत्स्यन्ते वा।

३१५. जम्बूद्वीप द्वीप के महाविदेह क्षेत्र मे कम से कम चार अर्हन्त, चार चक्रवर्ती, चार बलदेव और चार वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होगे।

मंदर-पव्वय-पदं

मन्दर-पर्वत-पदम्

मन्दर-पर्वत-पद

३१६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरे पव्वते चत्तारि वणा पण्णत्ता, तं जहा— भद्दसालवणे, णंदणवणे, सोमणसवणे, पंडगवणे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरे पर्वते चत्वारि वनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— भद्रशालवन, नन्दनवन, सौमनसवनं, पण्डकवनम्।

३१६. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के चार वन है—१. भद्रशाल वन, २. नन्दन वन, ३ सौमनस वन, ४ पण्डक वन।

३१७. जंबुद्दीवे दीवे मंदरे पव्वते पंडगवणे चत्तारि अभिसेगसिलाओ पण्णत्ताओ, तं जहा— पंडुकंबलसिला, अइपंडुकंबलसिला, रत्तकंबलसिला, अतिरत्तकंबलसिला।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरे पर्वते पण्डगवने चतस्र अभिषेकशिला. प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— पाण्डुकम्बलशिला, अतिपाण्डुकम्बलशिला, रक्तकम्बलशिला, अतिरक्तकम्बलशिला।

३१७. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पण्डक वन मे चार अभिषेक शिलाए है— १ पाण्डुकबल शिला, २. अतिपाण्डुकबल शिला, ३ रक्तकबल शिला, ४. अतिरक्तकबल शिला।

३१८. मंदरचूलिया णं उवरिं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेण पण्णत्ता।

मन्दरचूलिका उपरि चत्वारि योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।

३१८ मन्दर पर्वत की चूलिका का ऊपरी विष्कम्भ [चौड़ाई] चार योजन का है।

धायइसंड-पुक्खरवर-पदं

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पदम्

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पद

३१९. एवं—धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धेवि कालं आदि करेत्ता जाव मंदर-चूलियत्ति।

एवम्—धातकीपण्डद्वीपपौरस्त्यार्धेऽपि- काल आदि कृत्वा यावत् मन्दरचूलिका इति।

३१९. इसी प्रकार धातकीषंड द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध के लिए भी 'सुषम-सुषमा' काल की स्थिति से लेकर मन्दर-चूलिका

एवं—जाव पुक्खरवरदीव-पच्चत्थिमद्धे जाव मंदरचूलियत्ति—

एवम्—यावत् पुष्करवरद्वीपपाश्चात्यार्धे यावत् मन्दरचूलिका इति—

के ऊपरी विष्कंभ (४/३०४-३१८) तक का पाठ समझ लेना चाहिए।
पुष्कर-वर-द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध के लिए भी 'सुषम-सुषमा' काल की स्थिति से लेकर मन्दर-चूलिका के ऊपरी विष्कंभ (४/३०४-३१८) तक का पाठ समझ लेना चाहिए।

संगहणी-गाहा

१. जंबुद्दीवगआवस्सगं तु
कालाओ चूलिया जाव।
धायइसंडे पुक्खरवरे य
पुव्वावरे पासे।

संग्रहणी-गाथा

१. जम्बूद्वीपकावश्यक तु
कालात् चूलिका यावत्।
धातकीषण्डे पुष्करवरे च
पूर्वापरे पार्श्वे।।

संग्रहणी-गाथा

जम्बूद्वीप मे काल [सुषम-सुषमा] से लेकर मन्दरचूलिका तक होने वाली आवश्यक वस्तुएं धातकीषण्ड और पुष्करवरद्वीप के पूर्वापर पार्श्वों मे सबकी सब होती है।

दारं-पदं

३२०. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—
विजये, वेजयंते, जयंते, अपराजिते।
ते णं दारा चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं, तावइयं चेव पवेसेणं पण्णत्ता।
तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढीया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, त जहा—
विजते, वेजयंते, जयंते, अपराजिते।

द्वार-पदम्

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
विजय, वैजयन्तः, जयन्त., अपराजितः।
तानि द्वाराणि चत्वारि योजनानि विष्कम्भेण, तावत्क चैव प्रवेशेन प्रज्ञप्तानि।
तत्र चत्वारः देवा महर्द्धिकाः यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा—
विजय., वैजयन्तः, जयन्तः, अपराजितः।

द्वार-पद

३२०. जम्बूद्वीप द्वीप के चार द्वार है—
१. विजय. २ वैजयन्त, ३. जयन्त, ४. अपराजित।[८०]
उनकी चौड़ाई चार योजन की है और उनका प्रवेश [मुख] भी चार योजन का है, वहा पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते हैं—१. विजय, २. वैजयन्त, ३. जयन्त, ४. अपराजित।

अंतरदीव-पदं

३२१. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं चुल्लहिमवंतस्स वास-

अन्तर्द्वीप-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे क्षुल्लहिमवतः वर्षधरपर्वतस्य चतसृषु

अन्तर्द्वीप-पद

३२१. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के दक्षिण मे क्षुल्लहिमवत् वर्षधर पर्वत के चारो दिक-

हयपुरुवयस्स चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं तिण्णि-तिण्णि जोयण-सयाइं ओगाहित्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा— एगूरुयदीवे, आभासियदीवे, वेसाणियदीवे, णंगोलियदीवे।	विदिशासु लवणसमुद्र त्रीणि-त्रीणि योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चत्वारः अंतर्द्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— एकोरुकद्वीप, आभाषिकद्वीप, वैषाणिकद्वीपः, लाङ्गुलिकद्वीप।	कोणों की ओर लवण समुद्र मे तीन-तीन सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप हैं— १. एकोरुकद्वीप, २ आभाषिकद्वीप, ३. वैषाणिकद्वीप, ४ लांगुलिकद्वीप।
तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसंति, तं जहा— एगूरुया, आभासिया, वेसाणिया, णंगोलिया।	तेषु द्वीपेषु चतुर्विधाः मनुष्याः परिवसन्ति, तद्यथा— एकोरुकाः, आभाषिकाः, वैषाणिकाः, लाङ्गुलिकाः।	उनमे चार प्रकार के मनुष्य रहते है— एकोरुक—एक साथल—घुटने की ऊपरी भाग वाले, आभाषिक—बोलने की अल्प क्षमता वाले या गूगे, वैषाणिक—सीग वाले, लांगुलिक—पूछ वाले।
३२२. तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं चत्तारि-चत्तारि जोयणसयाइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता तं जहा— हयकण्णदीवे, गयकण्णदीवे, गोकण्णदीवे, सक्कुलिकण्णदीवे।	तेषां द्वीपानां चतसृषु विदिशासु लवण-समुद्र चत्वारि-चत्वारि योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चत्वारः अन्तर्द्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— हयकर्णद्वीपः, गजकर्णद्वीप, गोकर्णद्वीपः, शष्कुलिकर्णद्वीप।	३२२. उन द्वीपों के चारो दिक्कोणो की ओर लवण समुद्र मे चार-चार सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप है—१. हयकर्णद्वीप, २ गजकर्णद्वीप, ३ गोकर्णद्वीप, ४. शष्कुलीकर्णद्वीप।
तेसु णं दीवेसु चउव्विधा मणुस्सा परिवसंति, तं जहा— हयकण्णा, गयकण्णा, गोकण्णा, सक्कुलिकण्णा।	तेषु द्वीपेषु चतुर्विधाः मनुष्याः परिवसन्ति, तद्यथा— हयकर्णाः, गजकर्णाः, गोकर्णाः, शष्कुलिकर्णाः।	उनमे चार प्रकार के मनुष्य रहते है— १. हयकर्ण—घोड़े के समान कान वाले, २. गजकर्ण—हाथी के समान कान वाले, ३ गोकर्ण—गाय के समान कान वाले, ४ शष्कुलीकर्ण—पूड़ी जैसे कान वाले।
३२३. तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं पंच-पंच जोयसणयाइं ओगाहित्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा— आयंसमुहदीवे, मेंढमुहदीवे, अओमुहदीवे, गोमुहदीवे,	तेषां द्वीपानां चतसृषु विदिशासु लवण-समुद्रं पञ्च-पञ्च योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चत्वारः अन्तर्द्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— आदर्शमुखद्वीप, मेढ्रमुखद्वीप, अयोमुखद्वीपः, गोमुखद्वीप।	३२३. उन द्वीपों के चारो दिक्कोणो की ओर लवण समुद्र म पाच-पाच सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप हैं—१ आदर्शमुखद्वीप, २ मेषमुखद्वीप, ३. अयोमुखद्वीप, ४ गोमुखद्वीप।
तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा •परिवसंति, तं जहा— आयंसमुहा, मेंढमुहा, अओमुहा, गोमुहा।°	तेषु द्वीपेषु चतुर्विधाः मनुष्याः परिवसन्ति, तद्यथा— आदर्शमुखाः, मेढ्रमुखाः, अयोमुखाः, गोमुखाः।	उनमे चार प्रकार के मनुष्य रहते है— १. आदर्शमुख—आदर्श के समान मुह वाले २ मेष-मुख—मेष के समान मुह वाले, ३ अयो-मुख। ४. गो-मुख—गौ के समान मुह वाले।
३२४. तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं छ-छ जोयणसयाइं	तेषां द्वीपानां चतसृषु विदिशासु लवण-समुद्र षट्-षट् योजनशतानि अवगाह्य,	३२४, उन द्वीपो के चारो दिक्कोणो मे लवण समुद्र मे छह-छह सौ योजन जाने पर चार

ओगाहेत्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा— आसमुहदीवे, हत्थिमुहदीवे, सीहमुहदीवे, वग्घमुहदीवे। तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा •परिवसंति, तं जहा— आसमुहा, हत्थिमुहा, सीहमुहा, वग्घमुहा।°

अत्र चत्वारः अन्तर्द्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— अश्वमुखद्वीपः, हस्तिमुखद्वीपः, सिहमुखद्वीपः, व्याघ्रमुखद्वीप। तेषु द्वीपेषु चतुर्विधा मनुष्याः परिवसन्ति, तद्यथा— अश्वमुखाः, हस्तिमुखाः, सिहमुखाः, व्याघ्रमुखाः।

अन्तर्द्वीप हैं—१. अश्वमुखद्वीप, २. हस्तिमुखद्वीप, ३. सिंहमुखद्वीप, ४. व्याघ्रमुखद्वीप। उनमे चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं— १. अश्वमुख—घोड़े के समान मुह वाले, २. हस्तिमुख—हाथी के समान मुह वाले, ३ सिहमुख—सिह के समान मुह वाले, ४. व्याघ्रमुख—बाघ के समान मुख वाले।

३२५. तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं सत्त-सत्त जोयणसयाइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा— आसकण्णदीवे, हत्थिकण्णदीवे, अकण्णदीवे, कण्णपाउरणदीवे। तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा •परिवसंति, त जहा— आसकण्णा, हत्थिकण्णा, अकण्णा, कण्णपाउरणा।°

तेषा द्वीपानां चतसृषु विदिशासु लवणसमुद्र सप्त-सप्त योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चत्वारः अन्तर्द्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— अश्वकर्णद्वीपः, हस्तिकर्णद्वीपः, अकर्णद्वीपः, कर्णप्रावरणद्वीप। तेषु द्वीपेषु चतुर्विधाः मनुष्या परिवसन्ति, तद्यथा— अश्वकर्णाः, हस्तिकर्णाः, अकर्णाः, कर्णप्रावरणाः।

३२५. उन द्वीपो के चारो दिक्कोणो की ओर लवणसमुद्र मे सात-सात सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप है— १. अश्वकर्णद्वीप, २. हस्तिकर्णद्वीप, ३ अकर्णद्वीप, ४. कर्णप्रावरणद्वीप। उनमे चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं— १. अश्वकर्ण—घोडे के समान कान वाले, २. हस्तिकर्ण—हाथी के समान कान वाले, ३. अकर्ण—बहुत छोटे कान वाले, ४. कर्णप्रावरण—विशाल कान वाले।

३२६ तेसिं णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं अट्ठट्ठ जोयणसयाइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा— उक्कामुहदीवे, मेहमुहदीवे, विज्जुमुहदीवे, विज्जुदंतदीवे, तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा •परिवसंति, तं जहा— उक्कामुहा, मेहमुहा, विज्जुमुहा, विज्जुदंता।°

तेषा द्वीपाना चतसृषु विदिशासु लवणसमुद्र अष्ट-अष्ट योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चत्वारः अन्तर्द्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— उल्कामुखद्वीपः, मेघमुखद्वीपः, विद्युन्मुखद्वीपः, विद्युद्दन्तद्वीप। तेषु द्वीपेषु चतुर्विधा मनुष्या परिवसन्ति, तद्यथा— उल्कामुखाः, मेघमुखाः, विद्युन्मुखाः, विद्युद्दन्ताः।

३२६. उन द्वीपो के चारो दिक्कोणो की ओर लवणसमुद्र मे आठ-आठ सौ योजन जाने पर वहा चार अन्तर्द्वीप है— १. उल्कामुखद्वीप, २. मेघमुखद्वीप, ३. विद्युन्मुखद्वीप, ४ विद्युद्दन्तद्वीप। उनमे चार प्रकार के मनुष्य रहते है— १ उल्कामुख—उल्का के समान दीप्त मुह वाले, २. मेघमुख—मेघ के समान मुह वाले, ३. विद्युत्मुख—बिजली के समान दीप्त मुंह वाले, ४ विद्युत्दन्त—बिजली के समान चमकीले दात वाले।

३२७. तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं णव-णव जोयणसयाइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा—

तेषां द्वीपानां चतसृषु विदिशासु लवणसमुद्र नव-नव योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चत्वारः अन्तर्द्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

३२७. उन द्वीपों के चारों दिक्कोणो की ओर लवण समुद्र मे नौ-नौ सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप हैं—१ घनदन्तद्वीप, २. लष्टदन्तद्वीप, ३. गूढदन्तद्वीप, ४. शुद्धदन्तद्वीप।

घणदंतदीवे, लट्ठदंतदीवे,
गूढदंतदीवे, सुद्धदंतदीवे।
तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसंति, तं जहा—
घणदंता, लट्ठदंता,
गूढदंता, सुद्धदंता।

घनदन्तद्वीप, लष्टदन्तद्वीपः,
गूढदन्तद्वीपः, शुद्धदन्तद्वीपः।
तेषु द्वीपेषु चतुर्विधाः मनुष्याः परिवसन्ति, तं जहा—
घनदन्ताः, लष्टदन्ताः, गूढदन्ताः,
शुद्धदन्ताः।

उनमे चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं—
१. घनदन्त—सघन दात वाले,
२ लष्टदन्त—कमनीय दात वाले,
३ गूढदन्त—गूढ दात वाले,
४. शुद्धदन्त—स्वच्छ दांत वाले।

३२८. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं सिहरिस्स वासहरपव्वयस्स चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं तिण्णि-तिण्णि जोयणसयाइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा—
एगूरुयदीवे, सेसं तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं जाव सुद्धदंता।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे शिखरिणः वर्षधरपर्वतस्य चतसृषु विदिशासु लवणसमुद्र त्रीणि-त्रीणि योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चत्वारः अन्तर्द्वीपाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
एकोरुकद्वीपः, शेषं तथैव निरवशेष भणितव्य यावत् शुद्धदन्ताः।

३२८. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर मे शिखरी वर्षधर पर्वत के चारो दिक्कोणो की ओर लवण-समुद्र मे तीन-तीन सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप हैं—
१. एकोरुकद्वीप, २. आभाषिकद्वीप,
३. वैषाणिकद्वीप, ४ लागुलिकद्वीप।
जितने अन्तर्द्वीप और जितने प्रकार के मनुष्य दक्षिण मे हैं, उतने ही अन्तर्द्वीप और उतने ही प्रकार के मनुष्य उत्तर मे हैं।

महापायाल-पदं

महापाताल-पदम्

महापाताल-पद

३२९. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ चउदिसिं लवणसमुद्दं पंचाणउइं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं महतिमहालता महालंजरसंठाणसंठिता चत्तारि महापायाला पण्णत्ता, तं जहा—
वलयामुहे, केउए,
जूवए, ईसरे।

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य बाह्यात् वेदिकान्तात् चतुर्दिशि लवणसमुद्र पञ्चनवति योजनसहस्राणि अवगाह्य, अत्र महान्तिमहान्त महालञ्जरसंस्थान-संस्थिताः चत्वारः महापातालाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
वडवामुखः, केतुकः, यूपकः, ईश्वरः।

३२९. जम्बूद्वीप द्वीप की बाहरी वेदिका के अंतिम भाग से चारो दिक्कोणो की ओर लवण समुद्र मे पिचानबे हजार योजन जाने पर चार महापाताल है। वे बहुत विशाल है और उनका आकार बड़े घड़े जैसा है। उनके नाम ये है—
१. वड़वामुख (पूर्व मे),
२ केतुक (दक्षिण मे),
३. यूपक (पश्चिम में),
४. ईश्वर (उत्तर में)।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—
काले, महाकाले,
वेलंबे, पभंजणे।

तत्र चत्वारः देवाः महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा—
कालः, महाकालः,
बेलम्बः, प्रभञ्जनः।

उनमे पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते है—
१. काल, २. महाकाल,
३. वेलम्ब, ४. प्रभञ्जन।

आवास-पव्वय-पदं

३३०. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ चउद्दिसिं लवणसमुद्दं बायालीसं-बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं चउण्हं वेलंधर णागराईणं चत्तारि आवासपव्वत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
गोथूभे, उदओभासे,
संखे, दगसीमे।
तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—
गोथूभे, सिवए,
संखे, मणोसिलाए।

३३१. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं बायालीसं-बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चउण्हं अणुवेलंधर णागराईणं चत्तारि आवासपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—
कक्कोडए, विज्जुप्पभे,
केलासे, अरुणप्पभे।
तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीता परिवसंति, तं जहा—
कक्कोडए, कद्दमए,
केलासे, अरुणप्पभे।

जोइस-पदं

३३२. लवणे णं समुद्दे चत्तारि चंदा पभासिंसु वा पभासंति वा पभासिस्संति वा।

आवास-पर्वत-पदम्

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य बाह्यात् वेदिकान्तात् चतुर्दिशि लवणसमुद्रं द्वाचत्वारिंशत्-द्वाचत्वारिंशत् योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चतुर्णां वेलंधरनागराजानां चत्वारः आवासपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
गोस्तूपः, उदावभासः, शङ्खः,
दकसीमः।
तत्र चत्वारः देवा महर्द्धिकाः यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा—
गोस्तूपः, शिवकः, शङ्खः,
मनःशिलाकः।

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य बाह्यात् वेदिकान्तात् चतसृषु विदिशासु लवणसमुद्रं द्वाचत्वारिंशत्-द्वाचत्वारिंशत् योजनशतानि अवगाह्य, अत्र चतुर्णां अनुवेलंधरनागराजानां चत्वारः आवासपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कर्कोटकः, विद्युत्प्रभः, कैलाशः,
अरुणप्रभः।
तत्र चत्वारः देवाः महर्द्धिकाः यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा—
कर्कोटकः, कर्दमकः, कैलाशः,
अरुणप्रभः।

ज्योतिष्पदम्

लवणे समुद्रे चत्वारः चन्द्राः प्राभासिषत वा प्रभासन्ते वा प्रभासिष्यन्ते वा।

आवास-पर्वत-पद

३३०. जम्बूद्वीप द्वीप की बाहरी वेदिका के अन्तिम भाग से चारों दिक्कोणों की ओर लवणसमुद्र में बयालीस-बयालीस हजार योजन जाने पर वेलंधर नागराजों के चार आवास पर्वत हैं—
१. गोस्तूप, २. उदावभास,
३. शंख, ४. दकसीम।
उनमें पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते हैं—१. गोस्तूप, २ शिव, ३ शंख, ४ मनःशिलाक।

३३१. जम्बूद्वीप द्वीप की बाहरी वेदिका के अन्तिम भाग से चारों दिक्कोणों की ओर लवण समुद्र में बयालीस-बयालीस हजार योजन जाने पर अनुवेलंधर नागराजों के चार आवास पर्वत हैं—
१ कर्कोटक, २. विद्युत्प्रभ,
३ कैलाश, ४. अरुणप्रभ।
उनमें पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते हैं—
१ कर्कोटक, २ कर्दमक, ३ कैलाश, ४. अरुणप्रभ।

ज्योतिष्पद

३३२. लवण समुद्र में चार चन्द्रमाओं ने प्रकाश किया था, करते हैं और करेंगे।

चत्तारि सूरिया तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा।
चत्तारि कित्तियाओ जाव चत्तारि भरणीओ।

चत्वारः सूर्याः अताप्सुः वा तपन्ते वा तपिष्यन्ति वा।
चतस्रः कृत्तिकाः यावत् चतस्रः भरण्यः।

चार सूर्य तपे थे, तपते हैं और तपेंगे।
चार कृत्तिका यावत् चार भरणी तक के सभी नक्षत्रों ने चन्द्रमा के साथ योग किया था, करते हैं और करेंगे।

३३३. चत्तारि अग्गी जाव चत्तारि जमा।

चत्वारः अग्नयः यावत् चत्वारः यमाः।

३३३ इन नक्षत्रों के अग्नि यावत् यम—ये चार-चार देव हैं।

३३४. चत्तारि अंगारा जाव चत्तारि भावकेऊ।

चत्वारः अङ्गाराः यावत् चत्वारः भावकेतवः।

३३४ चार अङ्गार यावत् चार भावकेतु तक के सभी ग्रहों ने चार किया था, करते हैं और करेंगे।

दार-पदं

द्वार-पदम्

द्वार-पद

३३५. लवणस्स णं समुद्दस्स चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—
विजए, वेजयंते,
जयंते, अपराजिते।
ते णं दारा चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं पण्णत्ता।
तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितिया, परिवसंति तं जहा—
विजए वेजयंते,
जयंते, अपराजिए।

लवणस्य समुद्रस्य चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
विजय, वैजयन्त, जयन्त,
अपराजित।
तानि द्वाराणि चत्वारि योजनानि विष्कम्भेण तावत्क चैव प्रवेशेन प्रज्ञप्तानि।
तत्र चत्वारः देवा महर्द्धिकाः यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा—
विजयः, वैजयन्त, जयन्तः, अपराजित।

३३५. लवण समुद्र के चार द्वार हैं—
१ विजय, २ वैजयन्त, ३ जयन्त,
४. अपराजित।
उनकी चौडाई चार योजन की है तथा उनका प्रवेश [मुख] भी चार योजन चौड़ा है। उनमे पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते है—१. विजय,
२ वैजयन्त, ३ जयन्त, ४ अपराजित।

धायइसंड-पुक्खरवर-पदं

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पदम्

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पद

३३६. धायइसंडे णं दीवे चत्तारि जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते।

धातकीषण्ड: द्वीपः चत्वारि योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

३३६ धातकीषण्ड द्वीप का चक्रवाल-विष्कंभ [वलय का विस्तार] चार लाख योजन का है।

३३७. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बहिया चत्तारि भरहाइं, चत्तारि एरवयाइं।
एवं जहा सद्दुद्देसए तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं जाव चत्तारि मंदरा चत्तारि मंदरचूलियाओ।

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य बहिस्तात् चत्वारि भरतानि, चत्वारि ऐरवतानि।
एवं यथा शब्दोद्देशके तथैव निरवशेषं भणितव्य यावत् चत्वारः मन्दराः चतस्रः मन्दरचूलिकाः।

३३७ जम्बू द्वीप के बाहर [धातकीषण्ड तथा अर्ध पुष्करवर द्वीप मे] चार भरत और चार ऐरवत है।
शब्दोद्देशक [दूसरे स्थान के तीसरे उद्देशक] मे जो बतलाया है, वह यहां जान लेना चाहिए। [वहां जो दो-दो बताए गए है वे यहा चार-चार जान लेने चाहिए]।

णंदीसरवरदीव-पदं

३३८. णंदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवालविक्खभस्स बहुमज्झदेसभागे चउद्दिसिं चत्तारि अंजणगपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—
पुरत्थिमिल्ले अंजणगपव्वते,
दाहिणिल्ले अंजणगपव्वते,
पच्चत्थिमिल्ले अंजणपव्वते,
उत्तरिल्ले अंजणगपव्वते।
ते णं अंजणगपव्वता चउरासीतिं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं, एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं, मूले दसजोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, तदणंतरं च णं मायाए-मायाए परिहायमाणा-परिहायमाणा उवरिमेगं जोयणसहस्सं विक्खंभेणं पण्णत्ता।
मूले इक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसते परिक्खेवेणं, उवरिं तिण्णि-तिण्णि जोयणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोयणसतं परिक्खेवेणं।
मूले विच्छिण्णा मज्झे संखेत्ता उप्पिं तणुया गोपुच्छसंठाणसंठिता सव्वअंजणमया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिक्कंकड-च्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणीया अभिरूवा पडिरूवा।

३३९. तेसि णं अंजणगपव्वयाणं उवरिं बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता।

नन्दीश्वरवरद्वीप-पदम्

नन्दीश्वरवरस्य द्वीपस्य चक्रवाल-विष्कम्भस्य बहुमध्यदेशभागे चतुर्दिशि चत्वारः अञ्जनकपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पौरस्त्यः अञ्जनकपर्वतः,
दाक्षिणात्यः अञ्जनकपर्वतः,
पाश्चात्यः अञ्जनकपर्वतः,
उदीच्यः अञ्जनकपर्वतः।
ते अञ्जनकपर्वताः चतुरशीतिं योजन-सहस्राणि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, एकं योजन-सहस्रं उद्वेधेन, मूले दशयोजन-सहस्राणि विष्कम्भेण, तदनन्तरं च मात्रया-मात्रया परिहीयमानाः-परिहीयमानाः उपरि एकं योजनसहस्रं विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः।
मूले एकत्रिंशत् योजनसहस्राणि षट् च त्रिविंशति योजनशतं परिक्षेपेण, उपरि त्रीणि-त्रीणि योजनसहस्राणि एकं च द्वाषष्टियोजनशतं परिक्षेपेण।
मूले विस्तृताः मध्ये संक्षिप्ताः उपरि तनुकाः गोपुच्छसंस्थानसंस्थिताः सर्वाञ्जनमयाः अच्छाः श्लक्ष्णाः श्लक्ष्णाः घृष्टाः मृष्टाः नीरजसः निर्मलाः निष्पङ्काः निष्कंकट-च्छायाः सप्रभाः समरीचिकाः सोद्योताः प्रासादीयाः दर्शनीयाः अभिरूपाः प्रतिरूपाः।
तेषां अञ्जनकपर्वतानां उपरि बहुसम-रमणीयाः भूमिभागाः प्रज्ञप्ताः।

नन्दीश्वरवरद्वीप-पद

३३८. नन्दीश्वरवर द्वीप के चक्रवाल-विष्कंभ के बहुमध्य देशभाग—ठीक बीच में चारों दिशाओं में चार अञ्जन पर्वत हैं—
१ पूर्वी अञ्जन पर्वत,
२ दक्षिणी अञ्जन पर्वत,
३ पश्चिमी अञ्जन पर्वत,
४ उत्तरी अञ्जन पर्वत।

उनकी ऊंचाई चौरासी हजार योजन की है। वे एक हजार योजन तक धरती में अवस्थित हैं। मूल में उनका विस्तार दस हजार योजन का है। वह क्रमशः घटते-घटते ऊपरी भाग में एक हजार योजन का रह जाता है।

मूल में उनकी परिधि इकतीस हजार छः सौ तेईस योजन और ऊपरी भाग में तीन हजार एक सौ बासठ योजन की है।
वे मूल में विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त और अन्त में पतले हैं। उनका आकार गाय की पूंछ जैसा है। वे नीचे से ऊपर तक अञ्जन रत्नमय हैं। वे स्फटिक की भांति अच्छ-पारदर्शी हैं। वे चिकने, चमकदार, शाण पर घिसे हुए से, प्रमार्जनी से साफ किए हुए से, रज रहित, पंक रहित, निरावरण शोभा वाले, प्रभायुक्त, रश्मियुक्त, उद्योतयुक्त, मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय हैं।

३३९. उन अञ्जन पर्वतों के ऊपर अत्यन्त सम-तल और रमणीय भूमि-भाग है। उनके मध्य में चार सिद्धायतन हैं। वे एक सौ

तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि सिद्धायतणा पण्णत्ता।	तेषा बहुसमरमणीयाना भूमिभागाना बहुमध्यदेशभागे चत्वारि सिद्धायतनानि प्रज्ञप्तानि।	योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े और बहत्तर योजन ऊपर की ओर ऊचे है।
ते णं सिद्धायतणा एगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णास जोयणाइं विक्खंभेणं, बावत्तरिंजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं।	तानि सिद्धायतनानि एक योजनशत आयामेन, पञ्चाशत् योजनानि विष्कम्भेण, द्वासप्ततियोजनानि ऊर्ध्व उच्चत्वेन।	
तेसि णं सिद्धायतणाणं चउदिसिं चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—	तेषा सिद्धायतनाना चतुर्दिशि चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	उन सिद्धायतनो की चारो दिशाओ मे चार द्वार है—
देवदारे, असुरदारे, णागदारे, सुवण्णदारे।	देवद्वार, असुरद्वार, नागद्वार, सुपर्णद्वारम्।	१ देव द्वार, २. असुर द्वार, ३ नाग द्वार, ४ सुपर्ण द्वार।
तेसु णं दारेसु चउव्विहा देवा परिवसंति, तं जहा—	तेषु द्वारेषु चतुर्विधा. देवाः परिवसन्ति, तद्यथा—	उनमे चार प्रकार के देव रहते है—
देवा, असुरा, णागा, सुवण्णा।	देवाः, असुराः, नागाः, सुपर्णाः।	१ देव, २ असुर ३ नाग, ४. सुपर्ण।
तेसि णं दाराणं पुरतो चत्तारि मुहमंडवा पण्णत्ता।	तेषा द्वाराणा पुरतः चत्वारः मुखमण्डपाः प्रज्ञप्ताः।	उन द्वारो के आगे चार मुख-मण्डप है।
तेसि णं मुहमंडवाणं पुरओ चत्तारि पेच्छाघरमंडवा पण्णत्ता।	तेषा मुखमण्डपानां पुरतः चत्वारः प्रेक्षागृहमण्डपाः प्रज्ञप्ताः।	उन मुख-मण्डपो के आगे चार प्रेक्षागृह रगशाला मण्डप है।
तेसि ण पेच्छाघरमडवाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अक्खाडगा पण्णत्ता।	तेषा प्रेक्षागृहमण्डपाना बहुमध्यदेशभागे चत्वारः वज्रमयाः अक्षवाटकाः प्रज्ञप्ताः।	उन प्रेक्षागृह-मण्डपो के मध्य-भाग मे चार वज्रमय अक्षवाटक-प्रेक्षको के लिए बैठने के आसन है।
तेसि णं वइरामयाणं अक्खाडगाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि मणिपेढियातो पण्णत्ताओ।	तेषां वज्रमयानां अक्षवाटकाना बहुमध्यदेशभागे चतस्र मणिपीठिका प्रज्ञप्ता.।	उन वज्रमय अक्षवाटको के बीच मे चार मणि-पीठिकाए है।
तासि णं मणिपेढिताणं उवरिं चत्तारि सीहासणा पण्णत्ता।	तासां मणिपीठिकाना उपरि चत्वारि सिहासनानि प्रज्ञप्तानि।	उन मणिपीठिकाओ के ऊपर चार सिहासन है।
तेसि णं सिहासणाणं उवरिं चत्तारि विजयदूसा पण्णत्ता।	तेषा सिहासनानां उपरि चत्वारि विजयदूष्याणि प्रज्ञप्तानि।	उन सिहासनो के ऊपर चार विजय-दूष्य—चदवा हैं।
तेसि णं विजयदूसगाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अंकुसा पण्णत्ता।	तेषां विजयदूष्यकाणां बहुमध्यदेशभागे चत्वारि वज्रमयाः अंकुशाः प्रज्ञप्ताः।	उन विजयदूष्यो के मध्य भाग मे चार वज्रमय अकुश है।
तेसु ण वइरामएसु अंकुसेसु चत्तारि कुंभिका मुत्तादामा पण्णत्ता।	तेषु वज्रमयेषु अकुशेषु चत्वारि कुम्भिकानि मुक्तादामानि प्रज्ञप्तानि।	उन वज्रमय अंकुशो पर कुभिक [४०-४० मन के] मोतियो की चार मालाए लटक रही हैं।

ते णं कुंभिका मुत्तादामा पत्तेयं-पत्तेयं अण्णेहिं तदद्धउच्चत्तपमाण-मित्तेहिं चउहिं अद्धकुंभिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता।	तानि कुम्भिकानि मुक्तादामानि प्रत्येक-प्रत्येकं अन्यैः तदर्धोच्चत्वप्रमाणमात्रैः चतुर्भिः अर्धकुम्भिकैः मुक्तादामभिः सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्तानि।	उन कुंभिक मुक्ता मालाओ मे से प्रत्येक माला पर उनकी ऊंचाई से आधी ऊंचाई वाली तथा २०-२० मन के मोतियों की चार मालाए चारो ओर लिपटी हुई हैं।
तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।	तेषां प्रेक्षागृहमण्डपानां पुरतः चतस्रः मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः।	उन प्रेक्षागृहमण्डपो के आगे चार मणि-पीठिकाएं है।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि-चत्तारि चेइयथूभा पण्णत्ता।	तासां मणिपीठिकाना उपरि चत्वारः-चत्वारः चैत्यस्तूपाः प्रज्ञप्ताः।	उन मणिपीठिकाओं पर चार चैत्य-स्तूप है।
तेसि णं चेइयथूभाणं पत्तेयं-पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।	तेषां चैत्यस्तूपाना प्रत्येकं-प्रत्येकं चतुर्दिशि चतस्रः मणिपीठिका प्रज्ञप्ताः।	उन चैत्य-स्तूपों मे से प्रत्येक पर चारों दिशाओ मे चार-चार मणिपीठिकाएं है।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि जिणपडिमाओ सव्वरयणामईओ संपलियंकणिसण्णाओ थूभाभिमुहाओ चिट्ठंति, तं जहा— रिसभा, वद्धमाणा, चंदाणणा, वारिसेणा।	तासां मणिपीठिकाना उपरि चतस्रः जिनप्रतिमाः सर्वरत्नमय्यः संपर्यंक-निषण्णाः स्तूपाभिमुखाः तिष्ठन्ति, तद्यथा— ऋषभा, वर्धमाना, चन्द्रानना, वारिषेणा।	उन मणि पीठिकाओ पर चार जिन प्रतिमाए है, वे सर्व रत्नमय, संपर्यंकासन—पद्मासन की मुद्रा मे अवस्थित है। उनका मुह स्तूपो के सामने है। उनके नाम ये है—१ ऋषभा, २ वर्द्धमाना, ३ चन्द्रानना, ४. वारिषेणा।
तेसि णं चेइयथूभाणं पुरतो चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।	तेषां चैत्यस्तूपाना पुरतः चतस्रः मणिपीठिका प्रज्ञप्ताः।	उन चैत्यस्तूपो के आगे चार मणि पीठिकाए है।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि चेइयरुक्खा पण्णत्ता।	तासां मणिपीठिकाना उपरि चत्वारः चैत्यरुक्षाः प्रज्ञप्ताः।	उन पर चार चैत्यवृक्ष है।
तेसि णं चेइयरुक्खाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।	तेषां चैत्यरुक्षाणां पुरतः चतस्रः मणि-पीठिका प्रज्ञप्ता।	उन चैत्य वृक्षो के आगे चार मणि पीठिकाए है।
तासि णं मणिवपेढियाणं उवरिं चत्तारि महिंदज्झया पण्णत्ता।	तासां मणिपीठिकानां उपरि चत्वारः महेन्द्रध्वजा प्रज्ञप्ताः।	उन पर चार महेन्द्र [महान्] ध्वज है।
तेसि णं महिंदज्झयाणं पुरओ चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ।	तेषां महेन्द्रध्वजानां पुरतः चतस्रः नन्दाः पुष्करिण्यः प्रज्ञप्ताः।	उन महेन्द्र-ध्वजो के आगे चार नन्दा-पुष्करिणिया है।
तासि णं पुक्खरिणीणं पत्तेयं-पत्तेयं चउदिसिं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा— पुरत्थिमे णं, दाहिणे णं, पच्चत्थिमे णं, उत्तरे णं।	तासां पुष्करिणीनां प्रत्येक-प्रत्येक चतुर्दिशि चत्वारि वनषण्डानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— पौरस्त्ये, दक्षिणे, पाश्चात्ये, उत्तरे।	उन पुष्करिणियो मे से प्रत्येक के आगे चारो दिशाओ मे चार वनषण्ड है— पूर्व मे, दक्षिण मे, पश्चिम मे, उत्तर मे।

संगहणी-गाहा

१. पुव्वे णं असोगवणं,
दाहिणओ होइ सत्तवण्णवणं ।
अवरे णं चंपगवणं,
चूतवणं उत्तरे पासे ॥

संग्रहणी-गाथा

१. पूर्वे अशोकवनं,
दक्षिणे भवति सप्तपर्णवनम् ।
अपरे चम्पकवन,
चूतवनमुत्तरे पार्श्वे ॥

संग्रहणी-गाथा

पूर्व मे अशोकवन,
दक्षिण मे सप्तपर्णवन,
पश्चिम मे चम्पकवन,
उत्तर मे आम्रवन ।

३४०. तत्थ णं जे से पुरत्थिमिल्ले अंजणगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
णंदुत्तरा, णंदा, आणंदा, णंदिवद्धणा ।

तत्र योसौ पौरस्त्य अञ्जनकपर्वतः, तस्य चतुर्दिशि चतस्र: नन्दा. पुष्करिण्यः प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
नन्दोत्तरा, नन्दा, आनन्दा, नन्दिवर्धना ।

३४० पूर्व के अञ्जन पर्वत की चारो दिशाओं मे चार नन्दा पुष्करिणिया है—
१ नन्दोत्तरा, २ नन्दा, ३. आनन्दा, ४ नन्दिवर्धना ।

ताओ णं णंदाओ पुक्खरिणीओ एगं जोयणसयसहस्सं आयामेणं, पण्णासं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, दसजोयणसताइं उव्वेहेणं ।

ता नन्दाः पुष्करिण्य एक योजनशतसहस्र आयामेन, पञ्चाशत् योजनसहस्राणि विष्कम्भेण, दशयोजनशतानि उद्वेधेन ।

वे नन्दा पुष्करिणिया एक लाख योजन लम्बी, पचास हजार योजन चौडी और हजार योजन गहरी है ।

तासि णं पुक्खरिणीणं पत्तेयं-पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता ।

तासा पुष्करिणीना प्रत्येक-प्रत्येक चतुर्दिशि चत्वारि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि प्रज्ञप्तानि ।

उन नदा पुष्करिणियो में से प्रत्येक के चार दिशाओ मे चार त्रि-सोपान पक्तियां है ।

तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाण पुरतो चत्तारि तोरणा पण्णत्ता, तं जहा—
पुरत्थिमे णं, दाहिणे णं, पच्चत्थिमे णं, उत्तरे णं ।

तेषा त्रिसोपानप्रतिरूपकाणा पुरतः चत्वारि तोरणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पौरस्त्ये, दक्षिणे, पाश्चात्ये, उत्तरे ।

उन त्रि-सोपान पक्तियो के आगे चार तोरण द्वार है—
१ पूर्व मे, २ दक्षिण मे, ३ पश्चिम मे, ४ उत्तर मे ।

तासि णं पुक्खरिणीणं पत्तेयं-पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा—
पुरतो, दाहिणे णं, पच्चत्थिमे णं, उत्तरे णं ।

तासा पुष्करिणीना प्रत्येक-प्रत्येक चतुर्दिशि चत्वारि वनषण्डानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पुरतः, दक्षिणे, पाश्चात्ये, उत्तरे ।

उन नन्दा पुष्करिणियों मे से प्रत्येक के चारो दिशाओ मे चार वनषण्ड है—
पूर्व मे, दक्षिण मे, पश्चिम मे, उत्तर मे ।

संगहणी-गाहा

१. पुव्वे णं असोगवणं,
***दाहिणओ होइ सत्तवण्णवणं।**
अवरे णं चंपगवणं°,
चूयवणं उत्तरे पासे ॥

तासि णं पुक्खरिणीण बहुमज्झ-देसभागे चत्तारि दधिमुहगपव्वया पण्णत्ता।

ते णं दधिमुहगपव्वया चउसट्ठि जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं, एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा पल्लगसंठाणसंठिता; दस-जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसते परिक्खेवेणं, सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

तेसि णं दधिमुहगपव्वताणं उवरिं बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता।

सेसं जहेव अंजणगपव्वताणं तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं जाव चूतवणं उत्तरे पासे।

३४१. तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले अंजणग-पव्वते, तस्स णं चउदिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ तं जहा—
भद्दा, विसाला,
कुमुदा, पोंडरीगिणी।

ताओ णं णंदाओ पुक्खरिणीओ एगं जोयणसयसहस्सं, सेसं तं चेव जाव दधिमुहगपव्वता जाव वणसंडा।

संग्रहणी-गाथा

१. पूर्वे अशोकवनं,
दक्षिणे भवति सप्तपर्णवनम्।
अपरे चम्पकवनं,
चूतवनमुत्तरे पार्श्वे ॥

तासां पुष्करिणीनां बहुमध्यदेशभागे चत्वारः दधिमुखकपर्वताः प्रज्ञप्ताः।

ते दधिमुखकपर्वताः चतुःषष्ठिं योजन-सहस्राणि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, एकं योजन-सहस्रं उद्वेधेन, सर्वत्र समाः पल्यक-संस्थानसंस्थिताः, दशयोजनसहस्राणि विष्कम्भेण, एकत्रिंशत् योजनसहस्राणि षट् च त्रिविंशति योजनशतं परिक्षेपेण; सर्वरत्नमयाः अच्छाः यावत् प्रतिरूपाः।

तेषां दधिमुखकपर्वतानां उपरि बहुसम-रमणीयाः भूमिभागाः प्रज्ञप्ताः।

शेषं यथैव अञ्जनकपर्वतानां तथैव निरवशेषं भणितव्यम् यावत् चूतवनं उत्तरे पार्श्वे।

तत्र योसौ दाक्षिणात्यः अञ्जनकपर्वतः, तस्य चतुर्दिशि चतस्रः नन्दाः पुष्करिण्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
भद्रा, विशाला, कुमुदा, पौण्डरीकिणी।

ताः नन्दाः पुष्करिण्यः एकं योजन-शतसहस्रं, शेषं तच्चैव यावत् दधिमुखक-पर्वताः यावत् वनषण्डानि।

संग्रहणी-गाथा

पूर्व में अशोक वन,
दक्षिण में सप्तपर्ण वन,
पश्चिम में चम्पक वन,
उत्तर में आम्रवन।

उन नन्दा पुष्करिणियों के ठीक बीच में चार दधिमुख पर्वत हैं—

वे दधिमुख पर्वत ६४ हजार योजन ऊंचे और हजार योजन गहरे हैं। वे नीचे, ऊपर और बीच में सब स्थानों में [चौड़ाई की अपेक्षा] समान हैं। उनकी आकृति अनाज भरने के बड़े कोठे के समान है। उनकी चौड़ाई दस हजार योजन की है। उनकी परिधि ३१६२३ योजन की है। वे सर्व रत्नमय यावत् रमणीय हैं।

उन दधिमुख पर्वतों के ऊपर अत्यन्त समतल और रमणीय भू-भाग है।

शेष वर्णन अजन पर्वत के समान है।

३४१. दक्षिण के अञ्जन पर्वत की चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करिणियां हैं—
१. भद्रा, २. विशाला, ३. कुमुदा, ४. पौंडरीकिणी।

शेष वर्णन पूर्व के अञ्जन पर्वत के समान है।

३४२. तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा— णंदिसेणा, अमोहा, गोथूभा, सुदंसणा। सेसं तं चेव, तहेव दधिमुहगपव्वता, तहेव सिद्धाययणा जाव वणसंडा।

तत्र योसौ पाश्चात्यः अञ्जनकपर्वतः, तस्य चतुर्दिशि चतस्रः नन्दाः पुष्करिण्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— नन्दिषेणा, अमोघा, गोस्तूपा, सुदर्शना। शेष तच्चेव, तथैव दधिमुखपर्वताः, तथैव सिद्धायतनानि यावत् वनषण्डानि।

३४२. पश्चिम के अञ्जन पर्वत की चारो दिशाओं मे चार नन्दा पुष्करिणिया हैं—
१ नदिषेणा, २. अमोघा,
३. गोस्तूपा, ४. सुदर्शना।
शेष वर्णन पूर्व के अञ्जन पर्वत के समान है।

३४३. तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले अंजणगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा— विजया, वेजयंती, जयंती, अपराजिता।

तत्र योसौ उदीच्यः अञ्जनकपर्वतः, तस्य चतुर्दिशि चतस्रः नन्दाः पुष्करिण्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता।

३४३ उत्तर के अञ्जन पर्वत की चारो दिशाओ मे चार नन्दा पुष्करिणिया है—
१ विजया, २. वैजयन्ती ३. जयन्ती,
४. अपराजिता।

ताओ णं णंदाओ पुक्खरिणीओ एगं जोयणसयसहस्सं, सेसं तं चेव पमाणं, तहेव दधिमुहगपव्वता, तहेव सिद्धाययणा जाव वणसंडा।

ताः नन्दाः पुष्करिण्य एक योजनशतसहस्रं, शेष तच्चैव प्रमाण, तथैव दधिमुखकपर्वताः, तथैव सिद्धायतनानि यावत् वनषण्डानि।

शेष वर्णन पूर्व के अञ्जन पर्वत के समान है।

३४४. णंदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवालविक्खंभस्स बहुमज्झदेसभागे चउसु विदिसासु चत्तारि रतिकरगपव्वता पण्णत्ता, तं जहा— उत्तरपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए, दाहिणपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए, दाहिणपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए, उत्तरपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए।

नन्दीश्वरवरस्य द्वीपस्य चक्रवालविष्कम्भस्य बहुमध्यदेशभागे चतसृषु विदिशासु चत्वारः रतिकरकपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
उत्तरपौरस्त्यः रतिकरकपर्वतः,
दक्षिणपौरस्त्यः रतिकरकपर्वतः,
दक्षिणपाश्चात्यः रतिकरकपर्वतः,
उत्तरपाश्चात्यः रतिकरकपर्वतः।

३४४. नदीश्वरवर द्वीप के चक्रवाल विष्कभ [वलय-विस्तार] के ठीक बीच मे चारो विदिशाओ मे चार रतिकर पर्वत है—
१. उत्तर पूर्व मे—ईशानकोण मे,
२ दक्षिण पूर्व मे—आग्नेयकोण मे,
३ दक्षिण पश्चिम मे—नैऋत्यकोण मे,
४ उत्तर पश्चिम मे—वायव्यकोण मे।

ते णं रतिकरगपव्वता दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउयसताइं उव्वेहेणं; सव्वत्थ समा झल्लरिसंठाणसंठिता, दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसते परिक्खेवेणं; सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

ते रतिकरकपर्वताः दशयोजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, दश गव्यूतिशतानि उद्वेधेन, सर्वत्र समाः झल्लरिसंस्थानसंस्थिताः, दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण, एकत्रिंशत् योजनसहस्राणि षट् च त्रिविंशति योजनशत परिक्षेपेण, सर्वरत्नमया: अच्छाः यावत् प्रतिरूपाः।

वे रतिकर पर्वत हजार योजन ऊचे और हजार कोस गहरे है। वे नीचे, ऊपर और बीच मे सब स्थानों में [चौडाई की अपेक्षा] समान है। उनकी आकृति झल्लरी—[झाझ-मजीरे के समान वर्तुलाकार दो टुकड़ो से बना हुआ बाजा, जो पूजा के समय बजाया जाता है] के समान है। उनकी चौडाई दस हजार योजन की है। उनकी परिधि ३१६२३ योजन है। वे सर्व रत्नमय यावत् रमणीय हैं।

३४५. तत्थ णं जे से उत्तरपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीव-पमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
णंदुत्तरा, णंदा,
उत्तरकुरा, देवकुरा।
कण्हाए, कण्हराईए,
रामाए, रामरक्खियाए।

तत्र योसौ उत्तरपौरस्त्यः रतिकरक-पर्वतः, तस्य चतुर्दिशि ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य चतसृणां अग्र-महिषीणा जम्बूद्वीपप्रमाणाः चतस्रः राजधान्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
नन्दोत्तरा, नन्दा, उत्तरकुरुः, देवकुरुः।
कृष्णायाः, कृष्णराजिकायाः, रामायाः, रामरक्षितायाः।

३४५ उत्तर-पूर्व के रतिकर पर्वत की चारो दिशाओ मे देवराज, देवेन्द्र ईशान की चारो पटरानियो—कृष्णा, कृष्णराजि, रामा और रामरक्षिता—के जम्बूद्वीप जितनी बडी चार राजधानिया हैं—
१ नंदोत्तरा, २ नंदा, ३. उत्तरकुरा, ४ देवकुरा।

३४६. तत्थ णं जे से दाहिणपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीव-पमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
समणा, सोमणसा,
अच्चिमाली, मणोरमा।
पउमाए, सिवाए,
सतीए, अंजूए।

तत्र योसौ दक्षिणपौरस्त्यः रतिकरक-पर्वतः, तस्य चतुर्दिशि शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य चतसृणां अग्रमहिषीणां जम्बूद्वीपप्रमाणाः चतस्रः राजधान्य. प्रज्ञप्ता., तद्यथा—
समनाः, सौमनसा, अर्चिमालिनी, मनोरमा।
पद्मायाः, शिवायाः, शच्याः, अञ्ज्वाः।

३४६ दक्षिण-पूर्व के रतिकर पर्वत की चारों दिशाओ मे देवराज, देवेन्द्र शक्र की चारो पटरानियों—पद्मा, शिवा, शची और अञ्जू—के जम्बूद्वीप जितनी बडी चार राजधानिया है—
१. समना, २. सोमनसा,
३ अर्चिमालिनी, ४. मनोरमा।

३४७. तत्थ णं जे से दाहिणपच्चत्थि-मिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसि सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवपमाणमेत्ताओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
भूता, भूतवडेंसा,
गोथूभा, सुदंसणा।
अमलाए, अच्छराए,
णवमियाए, रोहिणीए।

तत्र योसौ दक्षिणपाश्चात्यः रतिकरक-पर्वतः, तस्य चतुर्दिशि शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य चतसृणां अग्रमहिषीणा जम्बूद्वीपप्रमाणमात्राः चतस्रः राजधान्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
भूता, भूतावतंसा, गोस्तूपा, सुदर्शना।
अमलायाः, अप्सरसः, नवमिकायाः रोहिण्याः।

३४७. दक्षिण-पश्चिम के रतिकर पर्वत की चारो दिशाओ मे देवेन्द्र, देवराज शक्र की चारो पटरानियो—अमला, अप्सरा, नवमिता और रोहिणी—के जम्बूद्वीप जितनी बडी चार राजधानिया है—
१. भूता, २. भूतावतसा,
३ गोस्तूपा, ३ सुदर्शना।

३४८. तत्थ णं जे से उत्तरपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसि-मीसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवप्प-

तत्र योसौ उत्तरपाश्चात्यः, रतिकरक-पर्वतः, तस्य चतुर्दिशि ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य चतसृणा अग्र-महिषीणां जम्बूद्वीपप्रमाणमात्राः चतस्रः

३४८. उत्तर-पश्चिम मे रतिकर पर्वत की चारो दिशाओ मे देवराज, देवेन्द्र ईशान की चारों पटरानियो—वसु, वसुगुप्ता, वसु-मित्रा और वसुंधरा के जम्बूद्वीप जितनी

माणसेत्ताओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
रयणा, रतणुच्चया,
सव्वरतणा, रतणसंचया।
वसूए, वसुगुत्ताए,
वसुमित्ताए, वसुंधराए।

राजधान्यः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
रत्ना, रत्नोच्चया, सर्वरत्ना,
रत्नसचया।
वस्वाः, वसुगुप्तायाः, वसुमित्रायाः,
वसुन्धरायाः।

बड़ी चार राजधानियां है—
१. रत्ना, २. रत्नोच्चया,
३. सर्वरत्ना, ४. रत्नसचया।

सच्च-पदं

३४९. चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते, तं जहा—
णामसच्चे, ठवणसच्चे,
दव्वसच्चे, भावसच्चे।

सत्य-पदम्

चतुर्विधं सत्य प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
नामसत्य, स्थापनासत्य, द्रव्यसत्य,
भावसत्यम्।

सत्य-पद

३४९. सत्य के चार प्रकार है—
१ नामसत्य, २. स्थापनासत्य,
३. द्रव्यसत्य, ४. भावसत्य।

आजीविय-तव-पदं

३५०. आजीवियाणं चउव्विहे तवे पण्णत्ते, तं जहा—
उग्गतवे, घोरतवे, रसणिज्जूहणता,
जिब्भिंदियपडिसंलीणता।

आजीविक-तपः-पदम्

आजीविकाना चतुर्विध तपः प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
उग्रतपः, घोरतपः, रसनिर्यूहण,
जिह्वेन्द्रियप्रतिसलीनता।

आजीविक-तप-पद

३५०. आजीविकों के तप के चार प्रकार है—
१. उग्रतप—तीन दिन का उपवास,
२. घोरतप, ३. रस-निर्यूहण—घृत आदि रस का परित्याग, ४. जिह्वेन्द्रिय प्रतिसलीनता—मनोज्ञ और अमनोज्ञ आहार मे राग-द्वेष रहित प्रवृत्ति।"

३५१. चउव्विहे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—
मणसंजमे, वइसंजमे,
कायसंजमे, उवगरणसंजमे।

चतुर्विधः सयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
मनःसयमः, वाक्सयमः, कायसयमः,
उपकरणसयमः।

३५१. सयम के चार प्रकार है—
१. मन-सयम, २. वाक्-सयम,
३. काय-सयम, ४. उपकरण-सयम।

३५२. चउव्विधे चियाए पण्णत्ते, तं जहा—
मणचियाए, वइचियाए,
कायचियाए, उवगरणचियाए।

चतुर्विधः त्यागः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
मनस्त्यागः, वाक्त्यागः, कायत्यागः,
उपकरणत्यागः।

३५२. त्याग के चार प्रकार है—
१. मन-त्याग, २. वाक्-त्याग,
३ काय-त्याग, ४. उपकरण-त्याग।

३५३. चउव्विहा अकिंचणता पण्णत्ता, तं जहा—
मणअकिंचणता, वइअकिंचणता,
कायअकिंचणता,
उवगरणअकिंचणता।

चतुर्विधा अकिञ्चनता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मनोऽकिञ्चनता, वागकिञ्चनता,
कायाऽकिञ्चनता,
उपकरणाऽकिञ्चनता।

३५३. अकिञ्चनता के चार प्रकार है—
१. मन-अकिञ्चनता,
२. वाक्-अकिञ्चनता,
३. काय-अकिञ्चनता,
४. उपकरण-अकिञ्चनता।

तइओ उद्देसो

कोह-पदं

३५४. चत्तारि राईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
पव्वयराई, पुढविराई,
वालुयराई, उदगराई।
एवामेव चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा—
पव्वयराइसमाणे, पुढविराइसमाणे,
वालुयराइसमाणे, उदगराइसमाणे।

१ पव्वयराइसमाणं कोहमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, णेरइएसु उववज्जति,
२. पुढविराइसमाणं कोहमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति,
३. वालुयराइसमाणं कोहमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ, मणुस्सेसु उववज्जति,
४. उदगराइसमाणं कोहमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, देवेसु उववज्जति।

क्रोध-पदम्

चतस्रः राजयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पर्वतराजिः, पृथिवीराजिः,
बालुकाराजिः, उदकराजिः।
एवमेव चतुर्विधः क्रोधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पर्वतराजिसमानः, पृथिवीराजिसमानः,
बालुकाराजिसमानः, उदकराजिसमानः।

१. पर्वतराजिसमानं क्रोध अनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते,
२. पृथिवीराजिसमानं क्रोध अनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति, तिर्यग्योनिकेषु उपपद्यते,
३. बालुकाराजिसमान क्रोध अनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति, मनुष्येषु उपपद्यते,
४. उदकराजिसमान क्रोध अनुप्रविष्टो जीवः कालं करोति, देवेषु उपपद्यते।

क्रोध-पदम्

३५४ राजि [रेखा] चार प्रकार की होती है—
१. पर्वत-राजि, २. मृत्तिका-राजि,
३. बालुका-राजि, ४ उदक-राजि।

इसी प्रकार क्रोध भी चार प्रकार का होता है— १ पर्वत-राजि के समान— अनन्तानुबन्धी, २. मृत्तिका-राजि के समान— अप्रत्याख्यानावरण, ३ बालुका-राजि के समान— प्रत्याख्यानावरण, ४ उदक-राजि के समान— सज्वलन।

१. पर्वत-राजि के समान क्रोध में अनुप्रविष्ट [प्रवर्तमान] जीव मरकर नरक में उत्पन्न होता है,
२ मृत्तिका-राजि के समान क्रोध में अनुप्रविष्ट जीव मरकर तिर्यञ्च योनि में उत्पन्न होता है,
३. बालुका-राजि के समान क्रोध में अनुप्रविष्ट जीव मरकर मनुष्य योनि में उत्पन्न होता है,
४. उदक-राजि के समान क्रोध में अनुप्रविष्ट जीव मरकर देवताओं में उत्पन्न होता है।[1]

भाव-पदं

३५५. चत्तारि उदगा पण्णत्ता, तं जहा—
कद्दमोदए, खंजणोदए,
वालुओदए, सेलोदए।

एवामेव चउव्विहे भावे पण्णत्ते, तं जहा—

भाव-पदम्

चत्वारि उदकानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कर्दमोदक, खञ्जनोदक, बालुकोदक, शैलोदकम्।

एवमेव चतुर्विधः भावः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—

भाव-पद

३५५. उदक चार प्रकार का होता है—
१ कर्दम उदक, २ खञ्जन उदक— चिमटने वाला कीचड, ३. बालुका उदक, ४ शैल उदक।
इसी प्रकार भाव [रागद्वेषात्मक परिणाम] चार प्रकार का होता है—

कद्दमोदगसमाणे, खंजणोदगसमाणे, वालुओदगसमाणे, सेलोदगसमाणे।

कर्दमोदकसमान:, खञ्जनोदकसमान:, बालुकोदकसमान:, शैलोदकसमान:।

१ कर्दम उदक के समान,
२ खञ्जन उदक के समान,
३. बालुका उदक के समान,
४ शैल उदक के समान।

१. कद्दमोदगसमाणं भावमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, णेरइएसु उववज्जति,
२. °खंजणोदगसमाणं भावमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति,
३. वालुओदगसमाणं भावमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, मणुस्सेसु उववज्जति,°
४. सेलोदगसमाणं भावमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, देवेसु उववज्जति।

१. कर्दमोदकसमान भाव अनुप्रविष्टो जीव: काल करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते,
२. खञ्जनोदकसमान भाव अनुप्रविष्टो जीव: काल करोति, तिर्यग्योनिकेषु उपपद्यते,
३. बालुकोदकसमान भाव अनुप्रविष्टो जीव: काल करोति, मनुष्येषु उपपद्यते,
४. शैलोदकसमान भाव अनुप्रविष्टो जीव: काल करोति, देवेषु उपपद्यते।

१ कर्दम-उदक के समान भाव मे अनुप्रविष्ट जीव मरकर नरक मे उत्पन्न होता है,
२ खञ्जन-उदक के समान भाव मे अनुप्रविष्ट जीव मरकर तिर्यञ्चयोनि मे उत्पन्न होता है,
३. बालुका-उदक के समान भाव मे अनुप्रविष्ट जीव मरकर मनुष्ययोनि मे उत्पन्न होता है,
४ शैल-उदक के समान भाव मे अनुप्रविष्ट जीव मरकर देवताओ मे उत्पन्न होता है।[८१]

रुत-रूव-पदं

रुत-रूप-पदम्

रुत-रूप-पद

३५६. चत्तारि पक्खी पण्णत्ता, तं जहा—
रुतसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे, णो रुतसंपण्णे, एगे रुतसंपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि, एगे णो रुतसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

चत्वार: पक्षिण प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
रुतसम्पन्न: नामैक:, नो रूपसम्पन्न:, रूपसम्पन्न: नामैक:, नो रुतसम्पन्न:, एक: रुतसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एक: नो रुतसम्पन्न:, नो रूपसम्पन्न:।

३५६. पक्षी चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पक्षी स्वरसपन्न होते है, पर रूपसपन्न नही होते, २. कुछ पक्षी रूपसंपन्न होते है, पर स्वरसपन्न नही होते, ३ कुछ पक्षी रूपसपन्न भी होते है और स्वरसपन्न भी होते है, ४. कुछ पक्षी रूपसपन्न भी नही होते और स्वरसंपन्न भी नही होते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रुतसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे, णो रुतसंपण्णे, एगे रुतसपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि, एगे णो रुतसंपण्णे, णो रूवसपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रुतसम्पन्न: नामैक:, नो रूपसम्पन्न:, रूपसम्पन्न: नामैक:, नो रुतसम्पन्न:, एक: रुतसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एक: नो रुतसम्पन्न:, नो रूपसम्पन्न:।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१. कुछ पुरुष स्वरसपन्न होते है, पर रूपसपन्न नही होते, २. कुछ पुरुष रूपसपन्न होते है, पर स्वरसपन्न नही होते, ३. कुछ पुरुष रूपसपन्न भी होते हैं और स्वरसपन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष रूपसपन्न भी नही होते और स्वरसंपन्न भी नही होते।

पत्तिय-अपत्तिय-पदं

३५७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पत्तियं करेमीतेगे पत्तियं करेति,
पत्तियं करेमीतेगे अप्पत्तियं करेति,
अप्पत्तियं करेमीतेगे पत्तियं करेति,
अप्पत्तियं करेमीतेगे अप्पत्तियं करेति।

३५८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अप्पणो णाममेगे पत्तियं करेति, णो परस्स,
परस्स णाममेगे पत्तियं करेति, णो अप्पणो,
एगे अप्पणोवि पत्तियं करेति, परस्सवि,
एगे णो अप्पणो पत्तियं करेति, णो परस्स।

३५९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पत्तियं पवेसामीतेगे पत्तियं पवेसेति,
पत्तियं पवेसामीतेगे अप्पत्तियं पवेसेति,
अप्पत्तियं पवेसामीतेगे पत्तियं पवेसेति,
अप्पत्तियं पवेसामीतेगे, अप्पत्तियं पवेसेति।

३६०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

प्रीतिक-अप्रीतिक-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
प्रीतिकं करोमीत्येकः प्रीतिकं करोति,
प्रीतिकं करोमीत्येकः अप्रीतिकं करोति,
अप्रीतिकं करोमीत्येकः प्रीतिक करोति,
अप्रीतिक करोमीत्येकः अप्रीतिक करोति।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मनः नामैकः प्रीतिकं करोति, नो परस्य,
परस्य नामैकः प्रीतिक करोति, नो आत्मन,
एकः आत्मनोऽपि प्रीतिक करोति, परस्यापि,
एकः नो आत्मनः प्रीतिक करोति, नो परस्य।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
प्रीतिक प्रवेशयामीत्येकः प्रीतिक प्रवेशयति,
प्रीतिक प्रवेशयामीत्येकः अप्रीतिक प्रवेशयति,
अप्रीतिकं प्रवेशयामीत्येकः प्रीतिक प्रवेशयति,
अप्रीतिकं प्रवेशयामीत्येकः अप्रीतिक प्रवेशयति।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

प्रीतिक-अप्रीतिक-पद

३५७. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष प्रीति [या प्रतीति] करूं ऐसा सोचकर प्रीति ही करते है, २ कुछ पुरुष प्रीति करूं ऐसा सोचकर अप्रीति करते है, ३. कुछ पुरुष अप्रीति करूं ऐसा सोचकर प्रीति करते है, ४ कुछ पुरुष अप्रीति करूं ऐसा सोचकर अप्रीति ही करते है।

३५८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष [जो स्वार्थी होते है] अपने पर प्रीति [या प्रतीति] करते है दूसरो पर नही करते, २ कुछ पुरुष दूसरो पर प्रीति करते है अपने पर नही करते, ३ कुछ पुरुष अपने पर भी प्रीति करते है और दूसरो पर भी प्रीति करते है, ४ कुछ पुरुष अपने पर भी प्रीति नही करते तथा दूसरो पर भी प्रीति नही करते।

३५९. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष दूसरे के मन मे प्रीति [या विश्वास] उत्पन्न करना चाहते है और वैसा कर देते हैं, २ कुछ पुरुष दूसरे के मन मे प्रीति उत्पन्न करना चाहते है, किन्तु वैसा कर नही पाते, ३ कुछ पुरुष दूसरे के मन मे अप्रीति उत्पन्न करना चाहते है, किन्तु वैसा कर नही पाते, ४ कुछ पुरुष दूसरे के मन मे अप्रीति उत्पन्न करना चाहते है और वैसा कर देते है।[६४]

३६०. पुरुष चार प्रकार के होते है—

अप्पणो णाममेगे पत्तियं पवेसेति, णो परस्स,
परस्स णाममेगे पत्तियं पवेसेति, णो अप्पणो,
एगे अप्पणोवि पत्तियं पवेसेति, परस्सवि,
एगे णो अप्पणो पत्तियं पवेसेति, णो परस्स।

आत्मन नामैकः प्रीतिकं प्रवेशयति, नो परस्य,
परस्य नामैकः प्रीतिकं प्रवेशयति, नो आत्मनः,
एकः आत्मनोऽपि प्रीतिकं प्रवेशयति, परस्यापि,
एकः नो आत्मनः प्रीतिकं प्रवेशयति, नो परस्य।

१ कुछ पुरुष अपने मन में प्रीति [या विश्वास] का प्रवेश कर पाते हैं, पर दूसरों के मन में नहीं, २ कुछ पुरुष दूसरों के मन में प्रीति का प्रवेश कर पाते हैं, पर अपने मन में प्रीति का प्रवेश नहीं कर पाते, ३. कुछ पुरुष अपने मन में भी प्रीति का प्रवेश कर पाते हैं और दूसरों के मन में भी प्रीति का प्रवेश कर पाते हैं, ४ कुछ पुरुष न अपने मन में प्रीति का प्रवेश कर पाते हैं और न दूसरों के मन में भी प्रीति का प्रवेश कर पाते हैं।

उपकार-पदं

३६१. चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
पत्तोवए, पुप्फोवए, फलोवए, छायोवए।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पत्तोवारुक्खसमाणे, पुप्फोवारुक्खसमाणे, फलोवारुक्खसमाणे, छायोवारुक्खसमाणे।

उपकार-पदम्

चत्वारः रुक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पत्रोपगः, पुष्पोपगः, फलोपगः, छायोपगः।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पत्रोपगरुक्षसमानः, पुष्पोपगरुक्षसमानः, फलोपगरुक्षसमानः, छायोपगरुक्षसमानः।

उपकार-पद

३६१. वृक्ष चार प्रकार के होते हैं —
१ पत्तों वाले, २ फूलों वाले, ३ फलों वाले, ४. छाया वाले।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं १. पत्तों वाले वृक्षों के समान— सूत्र के दाता, २. फूलों वाले वृक्षों के समान—अर्थ के दाता, ३ फलों वाले वृक्षों के समान—सूत्रार्थ का अनुवर्तन और संरक्षण करने वाले, ४ छाया वाले वृक्षों के समान—सूत्रार्थ की सतत उपासना करने वाले।[८]

आसास-पदं

३६२. भारण्णं वहमाणस्स चत्तारि आसासा पण्णत्ता, तं जहा—
१. जत्थ णं अंसाओ अंसं साहरइ, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते,
२. जत्थवि य णं उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते,
३. जत्थवि य णं णागकुमारावासंसि वा सुवण्णकुमारावासंसि वा वासं उवेति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते,

आश्वास-पदम्

भार वहमानस्य चत्वार आश्वासाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
१. यत्र असाद् अंसं संहरति, तत्रापि च तस्य एकः आश्वासः प्रज्ञप्तः,
२. यत्रापि च उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, तत्रापि च तस्य एकः आश्वासः प्रज्ञप्तः,
३ यत्रापि च नागकुमारावासे वा सुपर्णकुमारावासे वा वासं उपैति, तत्रापि च तस्य एकः आश्वासः प्रज्ञप्तः,

आश्वास-पद

३६२. भारवाही के लिए चार आश्वास-स्थान [विश्राम] होते हैं—
१ पहला आश्वास तब होता है जब वह भार को एक कंधे से दूसरे कंधे पर रख लेता है,
२ दूसरा आश्वास तब होता है जब वह लघुशंका या बड़ी शंका करता है,
३. तीसरा आश्वास तब होता है जब वह नागकुमार, सुपर्णकुमार आदि के आवासों में [रात्रिकालीन] निवास करता है,

४. जत्थवि य णं आवकहाए चिट्ठति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते। एवामेव समणोवासगस्स चत्तारि आसासा पण्णत्ता, तं जहा—
१. जत्थवि य णं सीलव्वत-गुणव्वत-वेरमणं-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं पडिवज्जति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते,
२. जत्थवि य णं सामाइयं देसावगासियं सम्ममणुपालेइ, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते,
३. जत्थवि य णं चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठ-पुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्म अणुपालेइ, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते,
४. जत्थवि य णं अपच्छिम-मारणंतितसंलेहणा-झूसणा-झूसिते भत्तपाणपडियाइक्खिते पाओवगते कालमणवकंखमाणे विहरति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।

४. यत्रापि च यावत्कथायै तिष्ठति, तत्रापि च तस्य एक. आश्वास· प्रज्ञप्तः। एवमेव श्रमणोपासकस्य चत्वारः आश्वासाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
१. यत्रापि च शीलव्रत-गुणव्रत-विरमण-प्रत्याख्यान-पोषधोपवासान् प्रतिपद्यते, तत्रापि च तस्य एक. आश्वास प्रज्ञप्त.,
२. यत्रापि च सामायिक देशावकाशिक सम्यगनुपालयति, तत्रापि च तस्य एक. आश्वास. प्रज्ञप्तः,
३. यत्रापि च चतुर्दश्यष्टम्युद्दिष्टापौर्णमासीषु प्रतिपूर्ण पोषध सम्यगनुपालयति, तत्रापि च तस्य एक. आश्वास· प्रज्ञप्त,
४. यत्रापि च अपश्चिम-मारणान्तिक-सलेखना-जोषणा-जुष्टः भक्तपानप्रत्याख्यात. प्रायोपगत. कालमनवकाङ्क्षन् विहरति, तत्रापि च तस्य एकः आश्वास प्रज्ञप्त।

४ चौथा आश्वास तब होता है जब वह कार्य को सपन्न कर भारमुक्त हो जाता है। इसी प्रकार श्रमणोपासक [श्रावक] के लिए भी चार आश्वास होते हैं—
१ जब वह शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास को स्वीकार करता है, तब पहला आश्वास होता है,
२ जब वह सामायिक तथा देशावकाशिक व्रत का सम्यक् अनुपालन करता है तब दूसरा आश्वास होता है,
३. जब वह अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या तथा पूर्णिमा के दिन परिपूर्ण—दिन रात भर पोषध का सम्यक् अनुपालन करता है, तब तीसरा आश्वास होता है,
४ जब वह अन्तिम-मारणान्तिक-सलेखना की आराधना से युक्त होकर भक्त पान का त्याग कर प्रायोपगमन अनशन को स्वीकार कर मृत्यु के लिए अनुत्सुक होकर विहरण करता है, तब चौथा आश्वास होता है।

उदित-अत्थमित-पदं

३६३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उदितोदिते णाममेगे,
उदितत्थमिते णाममेगे,
अत्थमितोदिते णाममेगे,
अत्थमितत्थमिते णाममेगे।
भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी ण उदितोदिते, बंभदत्ते णं राया चाउरंतचक्कवट्टी उदितत्थमिते,

उदित-अस्तमित-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उदितोदित· नामैक,
उदीतास्तमित. नामैक.,
अस्तमितोदितः नामैक,
अस्तमितास्तमितः नामैक·।
भरतो राजा चातुरन्तचक्रवर्त्ती उदितोदितः, ब्रह्मदत्तः राजा चातुरन्त-चक्रवर्त्ती उदितास्तमितः, हरिकेशबलः

उदित-अस्तमित-पद

३६३ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष उदितोदित होते है, प्रारम्भ मे भी उन्नत तथा अन्त मे भी उन्नत, जैसे—चतुरन्त चक्रवर्ती भरत, २. कुछ पुरुष उदितास्तमित होते है—प्रारम्भ मे उदित तथा अन्त मे अनुदित, जैसे—चतुरत चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त, ३. कुछ पुरुष अस्तमितोदित होते है—प्रारम्भ मे अनुन्नत तथा अन्त मे उन्नत, जैसे—हरिकेशबल अनगार, ४. कुछ पुरुष अस्तमितास्तमित

हरिएसबले णं अणगारे अत्थमितोदिते, काले णं सोयरिये अत्थमितत्थमिते।

अनगारः अस्तमितोदितः, कालः शौकरिकः अस्तमितास्तमितः।

होते हैं—प्रारम्भ में भी अनुन्नत तथा अन्त में भी अनुन्नत, जैसे—काल शौकरिक।

जुम्म-पदं

३६४. चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, तं जहा—
कडजुम्मे, तेयोए,
दावरजुम्मे, कलिओए।

युग्म-पदम्

चत्वारः युग्माः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कृतयुग्मः, त्र्योजः, द्वापरयुग्मः, कल्योजः।

युग्म-पद

३६४. युग्म [राशि-विशेष] चार हैं—
१. कृत-युग्म—जिस राशि में से चार चार निकालने के बाद शेष चार रहे, २. त्र्योज—जिस राशि में से चार-चार निकालने के बाद शेष तीन रहे, ३. द्वापर-युग्म—जिस राशि में से चार-चार निकालने के बाद शेष दो रहे, ४. कल्योज—जिस राशि में से चार-चार निकालने के बाद शेष एक रहे[५]।

३६५. णेरइयाणं चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, तं जहा—
कडजुम्मे, तेओए,
दावरजुम्मे, कलिओए।

नैरयिकाणां चत्वारः युग्माः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कृतयुग्मः, त्र्योजः, द्वापरयुग्मः, कल्योजः।

३६५. नैरयिकों के चार युग्म होते हैं—
१. कृत-युग्म, २. त्र्योज, ३. द्वापर-युग्म, ४. कल्योज।

३६६. एवं—असुरकुमाराणं जाव थणियकुमाराणं।
एवं—पुढविकाइयाणं आउ-तेउ-वाउ-वणस्सतिकाइयाणं बेंदियाणं तेंदियाणं चउरिंदियाणं पंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं मणुस्साणं वाणमंतरजोइसियाणं वेमाणियाणं—सव्वेसिं जहा णेरइयाणं।

एवम्—असुरकुमाराणां यावत् स्तनितकुमाराणाम्।
एवम्—पृथिवीकायिकानां अप्-तेजस्-वायु-वनस्पतिकायिकानां द्वीन्द्रियाणां त्रीन्द्रियाणां चतुरिन्द्रियाणां पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकानां मनुष्याणां वानमन्तर-ज्योतिष्कानां वैमानिकानां—सर्वेषां यथा नैरयिकाणाम्।

३६६. इसी प्रकार असुरकुमार से स्तनितकुमार तक तथा पृथ्वी, अप्, तैजस, वायु, वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रियतिर्यक्योनिज, मनुष्य, वानमन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक—इन सबके नैरयिकों की भांति चार-चार युग्म होते हैं।

सूर-पदं

३६७. चत्तारि सूरा पण्णत्ता, तं जहा—
खंतिसूरे, तवसूरे,
दाणसूरे, जुद्धसूरे,
खंतिसूरा अरहंता,
तवसूरा अणगारा,
दाणसूरे वेसमणे,
जुद्धसूरे वासुदेवे।

शूर-पदम्

चत्वारः शूराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
क्षान्तिशूरः, तपःशूरः, दानशूरः, युद्धशूरः।
क्षान्तिशूराः अर्हन्तः, तपःशूराः अनगाराः,
दानशूरो वैश्रमणः, युद्धशूरो वासुदेवः।

शूर-पद

३६७. शूर चार प्रकार के होते हैं—
१. शान्ति शूर, २. तप शूर,
३. दान शूर, ४. युद्ध शूर।
अर्हन्त क्षान्ति शूर होते हैं,
अनगार तप शूर होते हैं,
वैश्रमण दान शूर होता है,
वासुदेव युद्ध शूर होता है।

उच्चणीय-पदं

३६८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उच्चे णाममेगे उच्चच्छंदे,
उच्चे णाममेगे णीयच्छंदे,
णीए णाममेगे उच्चच्छंदे,
णीए णाममेगे णीयच्छंदे।

उच्चनीच-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उच्चः नामैकः उच्चच्छन्दः,
उच्चः नामैकः नीचच्छन्दः,
नीचः नामैकः उच्चच्छन्दः,
नीचः नामैकः नीचच्छन्दः।

उच्चनीच-पद

३६८ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष शरीर-कुल आदि मे उच्च होते है और उनके विचार भी उच्च होते हैं, २ कुछ पुरुष शरीर-कुल आदि से उच्च होते है पर उनके विचार नीचे होते हैं, ३ कुछ पुरुष शरीर-कुल आदि से नीचे होते है पर उनके विचार उच्च होते हे, ४ कुछ पुरुष शरीर-कुल आदि से भी नीचे होते है और उनके विचार भी नीचे हाते हैं।

लेसा-पदं

३६९. असुरकुमाराणं चत्तारि लेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
कण्हलेसा, णीललेसा,
काउलेसा, तेउलेसा।

३७०. एवं—जाव थणियकुमाराणं।
एवं—पुढविकाइयाणं आउवणस्सइ-काइयाणं वाणमंतराणं—सव्वेसि जहा असुरकुमाराणं।

लेश्या-पदम्

असुरकुमाराणां चतस्रः लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या।

एवम्—यावत् स्तनितकुमाराणाम्।
एवम्—पृथिवीकायिकाना अप्वनस्पति-कायिकानां वानमन्तराणां—सर्वेषा यथा असुरकुमाराणाम्।

लेश्या-पद

३६९ असुरकुमार देवताओ के चार लेश्याए होती है—
१. कृष्ण लेश्या, २ नील लेश्या,
३ कापोत लेश्या, ४ तेजो लेश्या।

३७०. इसी प्रकार शेष भवनपति देवों, पृथ्वी-कायिक, अप्कायिक तथा वनस्पतिकायिक जीवो और वानमन्तर देवो इन सबके चार-चार लेश्याए होती है।

जुत्त-अजुत्त-पदं

३७१. चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,

युक्त-अयुक्त-पदम्

चत्वारि यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्त,
युक्तं नामैक अयुक्त,
अयुक्त नामैक युक्तं,
अयुक्त नामैकं अयुक्तम्।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तः,
युक्तः नामैकः अयुक्तः,

युक्त-अयुक्त-पद

३७१. यान चार प्रकार के होते है—
१ कुछ यान युक्त और युक्त-रूप वाले होते हे—बैल आदि से जुडे हुए होकर वस्त्राभरणो से सुशोभित होते है, २ कुछ यान युक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है, ३ कुछ यान अयुक्त होकर युक्त-रूप वाले होते है, ४. कुछ यान अयुक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१ कुछ पुरुष युक्त और युक्त-रूप

अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

अयुक्त नामैकः युक्तः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तः।

वाले होते है -गुणो से समृद्ध होकर वस्त्राभरणो से भी सुशोभित होते है, २ कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है, ३ कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त-रूप वाले होते है, ४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है।

३७२. चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

चत्वारि यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तपरिणत,
युक्त नामैक अयुक्तपरिणत,
अयुक्त नामैक युक्तपरिणत,
अयुक्त नामैक अयुक्तपरिणत।

३७२. यान चार प्रकार के होते है—
१. कुछ यान युक्त और युक्तपरिणत होते है बैल आदि से जुड़े हुए होकर सामग्री के अभाव से सामग्री के भाव मे परिणत हो जाते है २ कुछ यान युक्त होकर अयुक्त-परिणत होते है, ३ कुछ यान अयुक्त होकर युक्तपरिणत होते है, ४. कुछ यान अयुक्त होकर अयुक्तपरिणत होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तपरिणतः,
युक्तः नामैकः अयुक्तपरिणतः,
अयुक्तः नामैकः युक्तपरिणतः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तपरिणतः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष युक्त और युक्तपरिणत होते है—ध्यान आदि से समृद्ध होकर उचित अनुष्ठान के अभाव से भाव मे परिणत हो जाते है, २ कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्तपरिणत होते है, ३ कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्तपरिणत होते है, ४ कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्तपरिणत होते है।

३७३. चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

चत्वारि यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तरूप,
युक्त नामैक अयुक्तरूप,
अयुक्त नामैक युक्तरूप,
अयुक्त नामैक अयुक्तरूपम्।

३७३ यान चार प्रकार के होते है—
१ कुछ यान युक्त और युक्त-रूप वाले होते है—बैल आदि से जुड़े हुए होकर वस्त्राभरणो से सुशोभित होते है, २ कुछ यान युक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है, ३ कुछ यान अयुक्त होकर युक्त-रूप वाले होते है, ४ कुछ यान अयुक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तरूप,
युक्त नामैक अयुक्तरूप,
अयुक्त नामैक युक्तरूप,
अयुक्त नामैक अयुक्तरूप।

इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष युक्त और युक्त-रूप वाले होते है—गुणो से समृद्ध होकर वस्त्राभरणो से भी सुशोभित होते है, २ कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है, ३ कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त-रूप वाले होते है, ४ कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है।

३७४. चत्तारि जाणा पण्णत्ता तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

चत्वारि यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तशोभ,
युक्त नामैक अयुक्तशोभ,
अयुक्त नामैक युक्तशोभ,
अयुक्त नामैक अयुक्तशोभम्।

३७४ यान चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ यान युक्त और युक्त शोभा वाले होते है—बैल आदि से जुड़े हुए तथा दीखने मे सुन्दर होते है, २. कुछ यान युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते है, ३ कुछ यान अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते, ४ कुछ यान अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तशोभः,
युक्तः नामैकः अयुक्तशोभः,
अयुक्तः नामैकः युक्तशोभः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तशोभः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष युक्त और युक्त शोभा वाले होते हैं—धन आदि से समृद्ध होकर शोभा-सम्पन्न होते हैं, २. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते है, ३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते है, ४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते है।

३७५ चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

चत्वारि युग्यानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तं नामैक युक्त,
युक्त नामैक अयुक्त,
अयुक्तं नामैक युक्त,
अयुक्तं नामैक अयुक्तम्।

३७५. युग्य [बैल, अश्व आदि की जोडी] चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ युग्य युक्त होकर युक्त होते है—बाह्य उपकरणो से युक्त होकर वेग मे भी युक्त होते है, २. कुछ युग्य युक्त होकर अयुक्त होते है, ३. कुछ युग्य अयुक्त होकर युक्त होते है, ४ कुछ युग्य अयुक्त होकर अयुक्त होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तः,
युक्तः नामैकः अयुक्तः,
अयुक्तः नामैकः युक्तः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है १. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त होते है सम्पदा मे युक्त होकर वेग से भी युक्त होते है, २ कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त होते है, ३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त होते है, ४ कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त होते है।

३७६. *चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

चत्वारि युग्यानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्त नामैक युक्तपरिणत,
युक्तं नामैक अयुक्तपरिणत,
अयुक्त नामैक युक्तपरिणतं,
अयुक्त नामैक अयुक्तपरिणतम्।

३७६ युग्य चार प्रकार के होते है—
१ कुछ युग्य युक्त होकर युक्त-परिणत होते है, २ कुछ युग्य युक्त होकर अयुक्त-परिणत होते है, ३. कुछ युग्य अयुक्त होकर युक्त-परिणत होते है, ४. कुछ युग्य अयुक्त होकर अयुक्त-परिणत होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—

जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते ।

युक्तः नामैकः युक्तपरिणतः,
युक्तः नामैकः अयुक्तपरिणतः,
अयुक्तः नामैकः युक्तपरिणतः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तपरिणतः ।

१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त-परिणत होते है, २. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त-परिणत होते है, ३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त-परिणत होते है, ४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त-परिणत होते है ।

३७७. चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे ।

चत्वारि युग्यानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तं नामैकं युक्तरूपं,
युक्तं नामैकं अयुक्तरूपं,
अयुक्तं नामैकं युक्तरूपं,
अयुक्तं नामैकं अयुक्तरूपम् ।

३७७ युग्य चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ युग्य युक्त होकर युक्त-रूप वाले होते है, २ कुछ युग्य युक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है, ३ कुछ युग्य अयुक्त होकर युक्त-रूप वाले होते है, ४ कुछ युग्य अयुक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे ।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तरूपः,
युक्तः नामैकः अयुक्तरूपः,
अयुक्तः नामैकः युक्तरूपः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तरूपः ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त-रूप वाले होते है, २ कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है, ३ कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त-रूप वाले होते है, ४ कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है ।

३७८. चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे ।

चत्वारि युग्यानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तं नामैकं युक्तशोभं,
युक्तं नामैकं अयुक्तशोभं,
अयुक्तं नामैकं युक्तशोभं,
अयुक्तं नामैकं अयुक्तशोभम् ।

३७८ युग्य चार प्रकार के होते है—
१ कुछ युग्य युक्त होकर युक्त शोभा वाले होते है, २ कुछ युग्य युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते है, ३. कुछ युग्य अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते है, ४ कुछ युग्य अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते है ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे ।°

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तशोभः,
युक्तः नामैकः अयुक्तशोभः,
अयुक्तः नामैकः युक्तशोभः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तशोभः ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त शोभा वाले होते है, २ कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते है, ३ कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते हैं, ४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते है ।

सारहि-पदं

३७९. चत्तारि सारही पण्णत्ता, तं जहा—
जोयावइत्ता णामं एगे, णो विजोयावइत्ता,
विजोयावइत्ता णामं एगे, णो जोयावइत्ता,
एगे जोयावइत्तावि, विजोयावइत्तावि,
एगे णो जोयावइत्ता, णो विजोयावइत्ता।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जोयावइत्ता णामं एगे, णो विजोयावइत्ता,
विजोयावइत्ता णामं एगे, णो जोयावइत्ता,
एगे जोयावइत्तावि, विजोयावइत्तावि,
एगे णो जोयावइत्ता, णो विजोयावइत्ता।

सारथि-पदम्

चत्वारः सारथयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
योजयिता नामैकः, नो वियोजयिता,
वियोजयिता नामैकः, नो योजयिता,
एकः योजयितापि, वियोजयितापि,
एकः नो योजयिता, नो वियोजयिता।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
योजयिता नामैकः, नो वियोजयिता,
वियोजयिता नामैकः, नो योजयिता,
एकः योजयितापि, वियोजयितापि,
एकः नो योजयिता, नो वियोजयिता।

सारथि-पद

३७९. सारथि चार प्रकार के होते है—
१. कुछ सारथि योजक होते है, किन्तु वियोजक नही होते—बैल आदि को गाड़ी में जोड़ने वाले होते हैं पर मुक्त करने वाले नही होते, २. कुछ सारथि वियोजक होते है, किन्तु योजक नही होते, ३. कुछ सारथि योजक भी होते है और वियोजक भी होते है, ४. कुछ सारथि योजक भी नही होते और वियोजक भी नहीं होते।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष योजक होते है, किन्तु वियोजक नही होते, २. कुछ पुरुष वियोजक होते है, किन्तु योजक नही होते, ३. कुछ पुरुष योजक भी होते है और वियोजक भी होते है, ४ कुछ पुरुष योजक भी नही होते और वियोजक भी नही होते।

जुत्त-अजुत्त-पदं

३८०. चत्तारि हया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

युक्त-अयुक्त-पदम्

चत्वारः हयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तः,
युक्तः नामैकः अयुक्तः,
अयुक्तः नामैकः युक्तः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तः।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तः,
युक्तः नामैकः अयुक्तः,
अयुक्तः नामैकः युक्तः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तः।

युक्त-अयुक्त-पद

३८० घोड़े चार प्रकार के होते है—
१. कुछ घोड़े युक्त होकर युक्त ही होते है, २. कुछ घोड़े युक्त होकर भी अयुक्त होते है, ३ कुछ घोड़े अयुक्त होकर भी युक्त होते है, ४. कुछ घोड़े अयुक्त होकर अयुक्त ही होते है।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त ही होते है, २. कुछ पुरुष युक्त होकर भी अयुक्त होते है, ३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर भी युक्त होते है, ४ कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त ही होते है।

३८१. *चत्तारि हया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

चत्वारः हयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तपरिणतः,
युक्तः नामैकः अयुक्तपरिणतः,
अयुक्तः नामैकः युक्तपरिणतः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तपरिणतः।

३८१. घोड़े चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ घोडे युक्त होकर युक्त-परिणत होते है, २. कुछ घोड़े युक्त होकर अयुक्त-परिणत होते हैं, ३. कुछ घोड़े अयुक्त होकर युक्त-परिणत होते है, ४. कुछ घोडे अयुक्त होकर अयुक्त-परिणत होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तपरिणतः,
युक्तः नामैकः अयुक्तपरिणतः,
अयुक्तः नामैकः युक्तपरिणतः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तपरिणतः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त-परिणत होते है, २ कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त-परिणत होते है, ३ कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त-परिणत होते है, ४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त-परिणत होते है।

३८२. चत्तारि हया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

चत्वारः हयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तरूपः,
युक्तः नामैकः अयुक्तरूपः,
अयुक्तः नामैकः युक्तरूपः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तरूपः।

३८२. घोड़े चार प्रकार के होते है—
१ कुछ घोड़े युक्त होकर युक्त-रूप होते है, २. कुछ घोडे युक्त होकर अयुक्त-रूप होते है, ३ कुछ घोडे अयुक्त होकर युक्त-रूप होते है, ४. कुछ घोड़े अयुक्त होकर अयुक्त-रूप होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे,
अजुत्ते णाममेगेअ जुत्तरूवे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तरूपः,
युक्तः नामैकः अयुक्तरूपः,
अयुक्तः नामैकः युक्तरूपः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तरूपः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त-रूप होते है, २. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त-रूप होते है, ३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त-रूप होते है, ४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त-रूप होते हैं।

३८३. चत्तारि हया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

चत्वारः हयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तशोभः,
युक्तः नामैकः अयुक्तशोभः,
अयुक्तः नामैकः युक्तशोभः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तशोभः।

३८३. घोड़े चार प्रकार के होते है—
१. कुछ घोडे युक्त होकर युक्त शोभा वाले होते है, २. कुछ घोड़े युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हैं, ३. कुछ घोड़े अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते है, ४. कुछ घोड़े अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तशोभः,
युक्तः नामैकः अयुक्तशोभः,
अयुक्तः नामैकः युक्तशोभः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तशोभः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त-रूप वाले होते है, २. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है, ३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त-रूप वाले होते है, ४. कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है।

३८४. चत्तारि गया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

चत्वारः गजाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तः,
युक्तः नामैकः अयुक्तः,
अयुक्तः नामैकः युक्तः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तः।

३८४. हाथी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ हाथी युक्त होकर युक्त ही होते हैं, २. कुछ हाथी युक्त होकर भी अयुक्त होते हैं, ३ कुछ हाथी अयुक्त होकर भी युक्त होते हैं, ४ कुछ हाथी अयुक्त होकर अयुक्त होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्ते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तः,
युक्तः नामैकः अयुक्तः,
अयुक्तः नामैकः युक्तः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त ही होते हैं, २ कुछ पुरुष युक्त होकर भी अयुक्त होते है, ३ कुछ पुरुष अयुक्त होकर भी युक्त होते हैं, ४ कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त होते हैं।

३८५. *चत्तारि गया पण्णत्ता तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

चत्वारः गजाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तपरिणतः,
युक्तः नामैकः अयुक्तपरिणतः,
अयुक्तः नामैकः युक्तपरिणतः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तपरिणतः।

३८५. हाथी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ हाथी युक्त होकर युक्तपरिणत होते हैं, २ कुछ हाथी युक्त होकर अयुक्त-परिणत होते हैं, ३. कुछ हाथी अयुक्त होकर युक्तपरिणत होते हैं, ४. कुछ हाथी अयुक्त होकर अयुक्तपरिणत होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते,
अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
युक्तः नामैकः युक्तपरिणतः,
युक्तः नामैकः अयुक्तपरिणतः,
अयुक्तः नामैकः युक्तपरिणतः,
अयुक्तः नामैकः अयुक्तपरिणतः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष युक्त होकर युक्तपरिणत होते है, २. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त-परिणत होते हैं, ३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्तपरिणत होते हैं। ४ कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्तपरिणत होते हैं।

३८६. चत्तारि गया पण्णत्ता, तं जहा— जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।	चत्वारः गजाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— युक्तः नामैकः युक्तरूपः, युक्तः नामैकः अयुक्तरूपः, अयुक्तः नामैकः युक्तरूपः, अयुक्तः नामैकः अयुक्तरूपः।	३८६. हाथी चार प्रकार के होते है— १ कुछ हाथी युक्त होकर युक्त-रूप वाले होते है, २ कुछ हाथी युक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है, ३ कुछ हाथी अयुक्त होकर युक्त-रूप वाले होते है, ४. कुछ हाथी अयुक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।	एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— युक्तः नामैकः युक्तरूपः, युक्तः नामैकः अयुक्तरूपः, अयुक्तः नामैकः युक्तरूपः, अयुक्तः नामैकः अयुक्तरूपः।	इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के होते है— १ कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त-रूप वाले होते है, २. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है, ३. कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त-रूप वाले होते है, ४ कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त-रूप वाले होते है।
३८७. चत्तारि गया पण्णत्ता, तं जहा— जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।	चत्वारः गजाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— युक्तः नामैकः युक्तशोभः, युक्तः नामैकः अयुक्तशोभः, अयुक्तः नामैकः युक्तशोभः, अयुक्तः नामैकः अयुक्तशोभः।	३८७ हाथी चार प्रकार के होते है— १. कुछ हाथी युक्त होकर युक्त शोभा वाले होते है, २ कुछ हाथी युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते है, ३ कुछ हाथी अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते है, ४ कुछ हाथी अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते हे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।°	एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— युक्तः नामैकः युक्तशोभः, युक्तः नामैकः अयुक्तशोभः, अयुक्तः नामैकः युक्तशोभः, अयुक्तः नामैकः अयुक्तशोभः।	इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हे— १. कुछ पुरुष युक्त होकर युक्त शोभा वाले होते है, २. कुछ पुरुष युक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते है, ३ कुछ पुरुष अयुक्त होकर युक्त शोभा वाले होते है, ४ कुछ पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त शोभा वाले होते है।
पंथ-उप्पह-पदं	**पथ-उत्पथ-पदम्**	**पथ-उत्पथ-पद**
३८८. चत्तारि जुग्गारिता पण्णत्ता, तं जहा— पंथजाई णाममेगे, नो उप्पहजाई, उप्पहजाई णाममेगे, नो पंथजाई,	चत्वारि युग्यऋतानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— पथयायि नामैकः, नो उत्पथयायि, उत्पथयायि नामैकं, नो पथयायि,	३८८ युग्य [घोडे आदि का जोड़ा] का ऋत [गमन] चार प्रकार का होता है— १. कुछ युग्य मार्गगामी होते है, उन्मार्गगामी नही होते, २. कुछ युग्य उन्मार्ग-

एगे पंथजाईवि, उप्पहजाईवि,
एगे णो पंथजाई, णो उप्पहजाई।

एक पथयाय्यपि, उत्पथयाय्यपि,
एकं नो पथयायी, नो उत्पथयायी।

गामी होते है, मार्गगामी नही होते, ३. कुछ युग्य मार्गगामी भी होते हैं और उन्मार्गगामी भी होते है, ४. कुछ युग्य मार्गगामी भी नही होते और उन्मार्ग गामी भी नही होते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पंथजाई णाममेगे, णो उप्पहजाई,
उप्पहजाई णाममेगे, णो पंथजाई,
एगे पथजाईवि, उप्पहजाईवि,
एगे णो पंथजाई, णो उप्पहजाई।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पथयायी नामैकः, नो उत्पथयायी,
उत्पथयायी नामैकः, नो पथयायी,
एकः पथयाय्यपि, उत्पथयाय्यपि,
एकः नो पथयायी, नो उत्पथयायी।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष मार्गगामी होते है, उन्मार्ग-गामी नही होते, २. कुछ पुरुष उन्मार्ग-गामी होते है, मार्गगामी नही होते, ३. कुछ पुरुष मार्गगामी भी होते है और उन्मार्गगामी भी होते है, ४. कुछ पुरुष न मार्गगामी होते है और न उन्मार्गगामी होते है।

रूव-सील-पदं

रूप-शील-पदम्

रूप-शील-पद

३८६. चत्तारि पुप्फा पण्णत्ता, तं जहा—
रूवसंपण्णे णाममेगे, णो गंधसंपण्णे,
गंधसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
एगे रूवसंपण्णेवि, गंधसंपण्णेवि,
एगे णो रूवसंपण्णे, णो गधसंपण्णे।

चत्वारि पुष्पाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपसम्पन्नं नामैकं, नो गन्धसम्पन्नं,
गधसम्पन्नं नामैकं, नो रूपसम्पन्नं,
एकं रूपसम्पन्नमपि, गन्धसम्पन्नमपि
एकं नो रूपसम्पन्नं, नो गन्धसम्पन्नम्।

३८६ पुष्प चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुष्प रूप-सम्पन्न होते है, गन्ध-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुष्प गन्ध-सम्पन्न होते है, रूप-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुष्प रूप-सम्पन्न भी होते है और गन्ध-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुष्प न रूप-सम्पन्न होते है और न गन्ध-सम्पन्न होते है[८७]।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवसंपण्णे णाममेगे, णो सीलसंपण्णे,
सीलसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
एगे रूवसंपण्णेवि, सीलसंपण्णेवि,
एगे णो रूवसंपण्णे, णो सीलसंपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपसम्पन्नः नामैकः, नो शीलसम्पन्नः,
शीलसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः,
एकः रूपसम्पन्नोऽपि, शीलसम्पन्नोऽपि,
एकः नो रूपसम्पन्नः, नो शीलसम्पन्नः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते है, गन्ध-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष गन्ध-सम्पन्न होते है, रूप-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न भी होते और गन्ध-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न रूप-सम्पन्न होते है और न गन्ध-सम्पन्न होते है।

जाति-पदं

३६०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जातिसंपण्णे णाममेगे,
णो कुलसंपण्णे,
कुलसंपण्णे णाममेगे,
णो जातिसंपण्णे,
एगे जातिसंपण्णेवि,
कुलसंपण्णेवि,
एगे णो जातिसंपण्णे,
णो कुलसंपण्णे।

जाति-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः,
कुलसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्नः,
एकः जातिसम्पन्नोऽपि, कुलसम्पन्नोऽपि,
एकः नो जातिसम्पन्नः, नो कुलसम्पन्नः।

जाति-पद

३६०. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते है, कुल-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते है, जाति-सम्पन्न नहीं होते, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और कुल-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते है और न कुल-सम्पन्न होते है।

३६१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जातिसंपण्णे णाममेगे,
णो बलसंपण्णे,
बलसंपण्णे णाममेगे,
णो जातिसंपण्णे,
एगे जातिसंपण्णेवि, बलसंपण्णेवि,
एगे णो जातिसंपण्णे, णो बलसंपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः,
बलसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्नः,
एकः जातिसम्पन्नोऽपि, बलसम्पन्नोऽपि,
एकः नो जातिसम्पन्नः, नो बलसम्पन्नः।

३६१. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते है, बल-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते है, जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते है और बल-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते है और न बल-सम्पन्न होते है।

३६२. *चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
जातिसंपण्णे णाममेगे,
णो रूवसंपण्णे,
रूवसंपण्णे णाममेगे,
णो जातिसंपण्णे,
एगे जातिसंपण्णेवि,
रूवसंपण्णेवि,
एगे णो जातिसंपण्णे,
णो रूवसंपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः,
रूपसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्नः,
एकः जातिसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि,
एकः नो जातिसम्पन्नः, नो रूपसम्पन्नः।

३६२. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते है, रूप-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते है, जाति-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते है और रूप-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते है और न रूप-सम्पन्न होते है।

३६३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

३६३. पुरुष चार प्रकार के होते है—

जातिसंपण्णे णाममेगे, णो सुयसंपण्णे, सुयसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि, सुयसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे, णो सुयसंपण्णे।

जातिसम्पन्नः नामैकः, नो श्रुतसम्पन्नः, श्रुतसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्नः, एकः जातिसम्पन्नोऽपि, श्रुतसम्पन्नोऽपि, एकः नो जातिसम्पन्नः, नो श्रुतसम्पन्नः।

१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते है, श्रुत-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न होते है, जाति-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और श्रुत-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते है और न श्रुत-सम्पन्न होते है।

३६४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— जातिसंपण्णे णाममेगे णो सीलसंपण्णे, सीलसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि, सीलसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे, णो सीलसंपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— जातिसम्पन्न. नामैकः, नो शीलसम्पन्नः, शीलसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्नः, एक. जातिसम्पन्नोऽपि, शीलसम्पन्नोऽपि., एकः नो जातिसम्पन्नः, नो शीलसम्पन्नः।

३६४. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते है, शील-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष शील-सम्पन्न होते है, जाति-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते है और शील-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते है और न शील-सम्पन्न होते है।

३६५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— जातिसंपण्णे णाममेगे, णो चरित्तसंपण्णे, चरित्तसंपण्णे णाममेगे, णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि, चरित्तसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे, णो चरित्तसंपण्णे°।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— जातिसम्पन्न नामैकः, नो चरित्रसम्पन्न, चरित्रसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्न, एकः जातिसम्पन्नोऽपि, चरित्रसम्पन्नोऽपि, एकः नो जातिसम्पन्न., नो चरित्रसम्पन्न.।

३६५. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते है, चरित्र-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष चरित्र-सम्पन्न होते है, जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते है और चरित्र-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते है और न चरित्र-सम्पन्न होते है।

कुल-पदं

कुल-पदम्

कुल-पद

३६६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— कुलसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि, बलसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे, णो बलसंपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— कुलसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः, बलसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः, एक. कुलसम्पन्नोऽपि, बलसम्पन्नोऽपि, एकः नो कुलसम्पन्न., नो बलसम्पन्न.।

३६६ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते है, बल-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते है, कुल-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते है और बल-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न बल-सम्पन्न होते है।

३९७. °चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
रूवसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
एगे कुलसंपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि,
एगे णो कुलसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः,
रूपसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः,
एकः कुलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि,
एकः नो कुलसम्पन्नः, नो रूपसम्पन्नः।

३९७. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते, २. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते है, कुल-सम्पन्न नहीं होते, ३. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न होते हैं।

३९८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसंपण्णे णाममेगे, णो सुयसंपण्णे,
सुयसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
एगे कुलसंपण्णेवि, सुयसंपण्णेवि,
एगे णो कुलसंपण्णे, णो सुयसंपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्नः नामैकः, नो श्रुतसम्पन्नः,
श्रुतसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः,
एकः कुलसम्पन्नोऽपि, श्रुतसम्पन्नोऽपि,
एकः नो कुलसम्पन्नः, नो श्रुतसम्पन्नः।

३९८. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते हैं, श्रुत-सम्पन्न नहीं होते, २. कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न होते है, कुल-सम्पन्न नहीं होते, ३. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और श्रुत-सम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न श्रुत-सम्पन्न होते है।

३९९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसंपण्णे णाममेगे, णो सीलसंपण्णे,
सीलसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
एगे कुलसंपण्णेवि, सीलसंपण्णेवि,
एगे णो कुलसंपण्णे, णो सीलसंपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्नः नामैकः, नो शीलसम्पन्नः,
शीलसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः,
एकः कुलसम्पन्नोऽपि, शीलसम्पन्नोऽपि,
एकः नो कुलसम्पन्नः, नो शीलसम्पन्नः।

३९९. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते है, शील-सम्पन्न नहीं होते, २. कुछ पुरुष शील-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नहीं होते, ३. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और शील-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते है और न शील-सम्पन्न होते है।

४००. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसंपण्णे णाममेगे, णो चरित्तसंपण्णे,
चरित्तसंपण्णे णाममेगे, णो कुलसंपण्णे,
एगे कुलसंपण्णेवि, चरित्तसंपण्णेवि,
एगे णो कुलसंपण्णे णो चरित्तसंपण्णे°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्नः नामैकः, नो चरित्रसम्पन्नः,
चरित्रसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः,
एकः कुलसम्पन्नोऽपि, चरित्रसम्पन्नोऽपि,
एकः नो कुलसम्पन्नः, नो चरित्रसम्पन्नः।

४००. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते है, चरित्र-सम्पन्न नहीं होते, २. कुछ पुरुष चरित्र-सम्पन्न होते है, कुल-सम्पन्न नहीं होते, ३. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते है और चरित्र-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते हैं और न चरित्र-सम्पन्न होते हैं।

बल-पदं

४०१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
बलसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
रूवसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे,
एगे बलसंपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि,
एगे णो बलसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे।

बल-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
बलसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः,
रूपसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः,
एकः बलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि,
एकः नो बलसम्पन्नः, नो रूपसम्पन्नः।

बल-पद

४०१. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते है, रूप-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते है, बल-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ पुरुष न बल-सम्पन्न होते है और न रूप-सम्पन्न होते हैं।

४०२. *चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
बलसंपण्णे णाममेगे, णो सुयसंपण्णे,
सुयसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे,
एगे बलसंपण्णेवि, सुयसंपण्णेवि,
एगे णो बलसंपण्णे, णो सुयसंपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
बलसम्पन्नः नामैकः, नो श्रुतसम्पन्नः,
श्रुतसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः,
एकः बलसम्पन्नोऽपि, श्रुतसम्पन्नोऽपि,
एकः नो बलसम्पन्नः, नो श्रुतसम्पन्नः।

४०२. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते है, श्रुत-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न होते हैं, बल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष बल-सम्पन्न भी होते है और श्रुत-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ पुरुष न बल-सम्पन्न होते है और न श्रुत-सम्पन्न होते है।

४०३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
बलसंपण्णे णाममेगे, णो सीलसंपण्णे,
सीलसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे,
एगे बलसंपण्णेवि, सीलसंपण्णेवि,
एगे णो बलसंपण्णे, णो सीलसंपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
बलसम्पन्नः नामैकः, नो शीलसम्पन्नः,
शीलसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः,
एकः बलसम्पन्नोऽपि, शीलसम्पन्नोऽपि,
एकः नो बलसम्पन्नः, नो शीलसम्पन्नः।

४०३. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते है, शील-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष शील-सम्पन्न होते है, बल-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न भी होते है और शील-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ पुरुष न बल-सम्पन्न होते हैं और न शील-सम्पन्न होते है।

४०४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
बलसंपण्णे णाममेगे, णो चरित्तसंपण्णे,

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
बलसम्पन्नः नामैकः नो चरित्रसम्पन्नः,

४०४ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते हैं, चरित्र-सम्पन्न नहीं होते, २ कुछ पुरुष चरित्र-सम्पन्न होते है, बल-सम्पन्न नही होते,

चरित्तसंपण्णे णाममेगे,
णो बलसंपण्णे,
एगे बलसंपण्णेवि, चरित्तसपण्णेवि,
एगे णो बलसंपण्णे णो चरित्तसंपण्णे°

चरित्रसम्पन्नः नामैकः नो बलसम्पन्नः,
एकः बलसम्पन्नोऽपि,
चरित्रसम्पन्नोऽपि,
एकः नो बलसम्पन्नः,
नो चरित्रसम्पन्नः।

३ कुछ पुरुष बल-सम्पन्न भी होते है और चरित्र-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न बल-सम्पन्न होते है और न चरित्र-सम्पन्न होते है।

रूव–पदं

रूप-पदम्

रूप-पद

४०५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवसंपण्णे णाममेगे,
णो सुयसंपण्णे,
सुयसंपण्णे णाममेगे,
णो रूवसंपण्णे,
एगे रूवसंपण्णेवि, सुयसंपण्णेवि,
एगे णो रूवसंपण्णे णो सुयसंपण्णे

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपसम्पन्नः नामैकः, नो श्रुतसम्पन्नः,
श्रुतसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः,
एकः रूपसम्पन्नोऽपि, श्रुतसम्पन्नोऽपि,
एकः नो रूपसम्पन्नः, नो श्रुतसम्पन्नः।

४०५. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते है, श्रुत-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न होते है, रूप-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न भी होते है और श्रुत-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न रूप-सम्पन्न होते है और न श्रुत-सम्पन्न होते है।

४०६. °चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवसंपण्णे णाममेगे,
णो सीलसंपण्णे,
सीलसंपण्णे णाममेगे,
णो रूवसंपण्णे,
एगे रूवसंपण्णेवि, सीलसंपण्णेवि,
एगे णो रूवसंपण्णे, णोसीलसंपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपसम्पन्नः नामैकः, नो शीलसम्पन्नः,
शीलसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः,
एकः रूपसम्पन्नोऽपि, शीलसम्पन्नोऽपि,
एकः नो रूपसम्पन्नः, नो शीलसम्पन्नः।

४०६. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते है, शील-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष शील-सम्पन्न होते है, रूप-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न भी होते है और शील-सम्पन्न भी होते है, ४, कुछ पुरुष न रूप-सम्पन्न होते है और न शील-सम्पन्न होते है।

४०७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवसंपण्णे णाममेगे,
णो चरित्तसंपण्णे,
चरित्तसंपण्णे णाममेगे,
णो रूवसंपण्णे,
एगे रूवसंपण्णेवि, चरित्तसंपण्णेवि,
एगे णो रूवसंपण्णे णो चरित्तसंपण्णे°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपसम्पन्नः नामैकः, नो चरित्रसम्पन्नः,
चरित्रसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः,
एकः रूपसम्पन्नोऽपि, चरित्रसम्पन्नोऽपि,
एकः नो रूपसम्पन्नः, नो चरित्रसम्पन्नः।

४०७ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते है, चरित्र-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष चरित्र-सम्पन्न होते है, रूप-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न भी होते है और चरित्र-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न रूप-सम्पन्न होते है और न चरित्र-सम्पन्न होते है।

सुय-पदं

४०८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुयसंपण्णे णाममेगे, णो सीलसंपण्णे,
सीलसंपण्णे णाममेगे, णो सुयसंपण्णे,
एगे सुयसंपण्णेवि, सीलसंपण्णेवि,
एगे णो सुयसंपण्णे, णो सीलसंपण्णे।

४०९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुयसंपण्णे णाममेगे, णो चरित्तसंपण्णे,
चरित्तसंपण्णे णाममेगे, णो सुयसंपण्णे,
एगे सुयसंपण्णेवि चरित्तसंपण्णेवि,
एगे णो सुयसंपण्णे णो चरित्तसंपण्णे।

सील-पदं

४१०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सीलसंपण्णे णाममेगे, णो चरित्तसंपण्णे,
चरित्तसंपण्णे णाममेगे, णो सीलसंपण्णे,
एगे सीलसंपण्णेवि, चरित्तसंपण्णेवि,
एगे णो सीलसंपण्णे णो चरित्तसंपण्णे

आयरिय-पदं

४११. चत्तारि फला पण्णत्ता, तं जहा—
आमलगमहुरे, मुद्दियामहुरे,
खीरमहुरे, खंडमहुरे।

श्रुत-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
श्रुतसम्पन्नः नामैकः, नो शीलसम्पन्नः,
शीलसम्पन्नः नामैकः, नो श्रुतसम्पन्नः,
एकः श्रुतसम्पन्नोऽपि, शीलसम्पन्नोऽपि,
एकः नो श्रुतसम्पन्नः, नो शीलसम्पन्नः।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
श्रुतसम्पन्नः नामैकः, नो चरित्रसम्पन्नः,
चरित्रसम्पन्नः नामैकः, नो श्रुतसम्पन्नः,
एकः श्रुतसम्पन्नोऽपि, चरित्रसम्पन्नोऽपि,
एकः नो श्रुतसम्पन्नः, नो चरित्रसम्पन्नः।

शील-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शीलसम्पन्नः नामैकः, नो चरित्रसम्पन्नः,
चरित्रसम्पन्नः नामैकः, नो शीलसम्पन्नः,
एकः शीलसम्पन्नोऽपि, चरित्रसम्पन्नोऽपि,
एकः नो शीलसम्पन्नः, नो चरित्रसम्पन्नः।

आचार्य-पदम्

चत्वारि फलानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आमलकमधुरः, मृद्वीकामधुरः,
क्षीरमधुरः, खण्डमधुरः।

श्रुत-पद

४०८. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न होते हैं, शील-सम्पन्न नहीं होते, २. कुछ पुरुष शील-सम्पन्न होते हैं, श्रुत-सम्पन्न नहीं होते, ३. कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न भी होते है और शील-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न श्रुत-सम्पन्न होते है और न शील-सम्पन्न होते है।

४०९. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न होते हैं, चरित्र-सम्पन्न नहीं होते, २. कुछ पुरुष चरित्र-सम्पन्न होते हैं, श्रुत-सम्पन्न नहीं होते, ३. कुछ पुरुष श्रुत-सम्पन्न भी होते है और चरित्र-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न श्रुत-सम्पन्न होते है और न चरित्र-सम्पन्न होते है।

शील-पद

४१०. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष शील-सम्पन्न होते है, चरित्र-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष चरित्र-सम्पन्न होते है, शील-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ पुरुष शील-सम्पन्न भी होते है और चरित्र-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न शील-सम्पन्न होते है और न चरित्र-सम्पन्न होते है।

आचार्य-पद

४११. फल चार प्रकार के होते हैं—
१. आंवले की तरह मधुर,
२. द्राक्षा की तरह मधुर,
३. दूध की तरह मधुर,
४. शर्करा की तरह मधुर।

एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—
आमलगमहुरफलसमाणे,
*मुद्दियामहुरफलसमाणे,
खीरमहुरफलसमाणे°,
खंडमहुरफलसमाणे।

एवमेव चत्वारः आचार्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
आमलकमधुरफलसमानः,
मृद्वीकामधुरफलसमानः,
क्षीरमधुरफलसमानः,
खण्डमधुरफलसमानः।

इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार के होते हैं—
१. आमलक-मधुर फल के समान,
२. द्राक्षा-मधुर फल के समान,
३. दूध-मधुर फल के समान,
४. शर्करा-मधुर फल के समान[44]।

वेयावच्च-पदं

४१२. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
आतवेयावच्चकरे णाममेगे,
णो परवेयावच्चकरे,
परवेयावच्चकरे णाममेगे,
णो आतवेयावच्चकरे,
एगे आतवेयावच्चकरेवि,
परवेयावच्चकरेवि,
एगे णो आतवेयावच्चकरे,
णो परवेयावच्चकरे।

वैयावृत्त्य-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मवैयावृत्त्यकरः नामैकः,
नो परवैयावृत्त्यकरः,
परवैयावृत्त्यकरः नामैकः,
नो आत्मवैयावृत्त्यकरः,
एकः आत्मवैयावृत्त्यकरोऽपि,
परवैयावृत्त्यकरोऽपि,
एकः नो आत्मवैयावृत्त्यकरः,
नो परवैयावृत्त्यकरः।

वैयावृत्त्य-पद

४१२. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष अपनी सेवा करते है, दूसरों की नही करते, २ कुछ पुरुष दूसरों की सेवा करते है, अपनी नही करते, ३. कुछ पुरुष अपनी सेवा भी करते हैं और दूसरों की भी करते है, ४. कुछ पुरुष न अपनी सेवा करते है और न दूसरों की करते हैं[45]।

४१३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
करेति णाममेगे वेयावच्चं,
णो पडिच्छइ,
पडिच्छइ णाममेगे वेयावच्चं,
णो करेति,
एगे करेति वि वेयावच्चं, पडिच्छइ वि,
एगे णो करेति वेयावच्चं,
णो पडिच्छइ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
करोति नामैकः वैयावृत्त्य, नो प्रतीच्छति,
प्रतीच्छति नामैकः वैयावृत्त्यं,
नो करोति,
एकः करोत्यपि वैयावृत्त्य, प्रतीच्छत्यपि,
एकः नो करोत्यपि वैयावृत्त्य,
नो प्रतीच्छति।

४१३. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष दूसरो को सेवा देते है, लेते नहीं, २. कुछ पुरुष दूसरो को सेवा नही देते, लेते है, ३. कुछ पुरुष दूसरो को सेवा देते भी है और लेते भी है, ४ कुछ पुरुष न दूसरो को सेवा देते है, और न लेते हैं[46]।

अट्ठ-माण-पदं

४१४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अट्ठकरे णाममेगे, णो माणकरे,
माणकरे णाममेगे, णो अट्ठकरे,
एगे अट्ठकरेवि, माणकरेवि,
एगे णो अट्ठकरे, णो माणकरे।

अर्थ-मान-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अर्थकरः नामैकः, नो मानकरः,
मानकरः नामैकः, नो अर्थकरः,
एकः अर्थकरोऽपि, मानकरोऽपि,
एकः नो अर्थकरः, नो मानकरः।

अर्थ-मान-पद

४१४. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष अर्थकर [कार्यकर्ता] होते है, अभिमानी नही होते, २. कुछ पुरुष अभिमानी होते हैं, अर्थकर नही होते, ३. कुछ पुरुष अर्थकर भी होते हैं और अभिमानी भी होते है, ४. कुछ पुरुष न अर्थकर होते है और न अभिमानी होते है।

४१५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
गणट्ठकरे णाममेगे, णो माणकरे,
माणकरे णाममेगे, णो गणट्ठकरे,
एगे गणट्ठकरेवि, माणकरेवि,
एगे णो गणट्ठकरे, णो माणकरे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गणार्थकर: नामैक:, नो मानकर:,
मानकर: नामैक:, नो गणार्थकर:,
एक: गणार्थकरोऽपि, मानकरोऽपि,
एक: नो गणार्थकर:, नो मानकर:।

४१५. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष गण के लिए कार्य करते है, अभिमानी नहीं होते, २. कुछ पुरुष अभिमानी होते है, गण के लिए कार्य नही करते, ३. कुछ पुरुष गण के लिए कार्य भी करते है और अभिमानी भी होते हैं, ४. कुछ पुरुष न गण के लिए कार्य करते है और न अभिमानी होते है।

४१६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
गणसंगहकरे णाममेगे, णो माणकरे,
माणकरे णाममेगे, णो गणसंगहकरे,
एगे गणसंगहकरेवि, माणकरेवि,
एगे णो गणसंगहकरे, णो माणकरे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गणसग्रहकर: नामैक:, नो मानकर:,
मानकर: नामैक:, नो गणसग्रहकर:,
एक: गणसग्रहकरोऽपि, मानकरोऽपि,
एक: नो गणसग्रहकर:, नो मानकर:।

४१६. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष गण के लिए सग्रह करते हे, अभिमानी नही होते, २. कुछ पुरुष अभिमानी होते है, गण के लिए सग्रह नही करते, ३. कुछ पुरुष गण के लिए सग्रह भी करते हैं और अभिमानी भी होते है, ४ कुछ पुरुष न गण के लिए सग्रह करते है और न अभिमानी होते हैं।

४१७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
गणसोभकरे णाममेगे, णो माणकरे,
माणकरे णाममेगे, णो गणसोभकरे,
एगे गणसोभकरेवि, माणकरेवि,
एगे णो गणसोभकरे, णो माणकरे।

चत्वारि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गणशोभाकर: नामैक:, नो मानकर:,
मानकर:, नामैक:, नो गणशोभाकर:,
एक: गणशोभाकरोऽपि, मानकरोऽपि,
एक: नो गणशोभाकर:, नो मानकर:।

४१७. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष गण की शोभा बढाने वाले होते है, अभिमानी नही होते, २. कुछ पुरुष अभिमानी होते है, गण की शोभा बढ़ाने वाले नही होते, ३. कुछ पुरुष गण की शोभा भी बढाने वाले होते है और अभिमानी भी होते है, ४. कुछ पुरुष न गण की शोभा बढाने वाले होते है और न अभिमानी होते है।

४१८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
गणसोहिकरे णाममेगे, णो माणकरे,
माणकरे णाममेगे, णो गणसोहिकरे,
एगे गणसोहिकरेवि, माणकरेवि,
एगे णो गणसोहिकरे, णो माणकरे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गणशोधिकर: नामैक:, नो मानकर:,
मानकर: नामैक:, नो गणशोधिकर:,
एक: गणशोधिकरोऽपि, मानकरोऽपि,
एक: नो गणशोधिकर:, नो मानकर:।

४१८. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष गण की शुद्धि करने वाले होते हैं, अभिमानी नही होते, २. कुछ पुरुष अभिमानी होते है, गण की शुद्धि करने वाले नही होते, ३. कुछ पुरुष गण की शुद्धि करने वाले भी होते है और अभिमानी भी होते है, ४. कुछ पुरुष न गण की शुद्धि करने वाले होते है और न अभिमानी ही होते है।

धम्म-पदं

४१९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवं णाममेगे जहति, णो धम्मं,
धम्मं णाममेगे जहति, णो रूवं,
एगे रूवंपि जहति, धम्मंपि,
एगे णो रूवं जहति, णो धम्मं।

४२०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
धम्मं णाममेगे जहति, णो गणसंठितिं,
गणसंठितिं णाममेगे जहति, णो धम्मं,
एगे धम्मंवि जहति, गणसंठितिंवि,
एगे णो धम्मं जहति, णो गणसंठितिं।

४२१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पियधम्मे णाममेगे, णो दढधम्मे,
दढधम्मे णाममेगे, णो पियधम्मे,
एगे पियधम्मेवि, दढधम्मेवि,
एगे णो पियधम्मे, णो दढधम्मे।

आयरिय-पदं

४२२. चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—
पव्वावणायरिए णाममेगे, णो उवट्ठावणायरिए,

धर्म-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपं नामैकः जहाति, नो धर्मं,
धर्मं नामैकः जहाति, नो रूपं,
एकः रूपमपि जहाति, धर्ममपि,
एकः नो रूपं जहाति, नो धर्मम्।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
धर्मं नामैकः जहाति, नो गणसंस्थितिं,
गणसंस्थितिं नामैकः जहाति, नो धर्मं,
एकः धर्ममपि जहाति, गणसंस्थितिमपि,
एकः नो धर्मं जहाति, नो गणसंस्थितिम्।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
प्रियधर्मा नामैकः, नो दृढधर्मा,
दृढधर्मा नामैकः, नो प्रियधर्मा,
एकः प्रियधर्मापि, दृढधर्मापि,
एकः नो प्रियधर्मा, नो दृढधर्मा।

आचार्य-पदम्

चत्वारः आचार्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
प्रव्राजनाचार्यः नामैकः, नो उपस्थापनाचार्यः,

धर्म-पद

४१९. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष वेश का त्याग कर देते है, धर्म का त्याग नही करते, २ कुछ पुरुष धर्म का त्याग कर देते है, वेश का त्याग नही करते, ३ कुछ पुरुष वेश का भी त्याग कर देते है और धर्म का भी त्याग कर देते है, ४ कुछ पुरुष न वेश का त्याग करते है और न धर्म का त्याग करते है।

४२०. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष धर्म का त्याग कर देते है, गण-संस्थिति [गण-मर्यादा] का त्याग नही करते, २ कुछ पुरुष गण-संस्थिति का त्याग कर देते है, धर्म का त्याग नही करते, ३ कुछ पुरुष धर्म का भी त्याग कर देते है और गण-संस्थिति का भी त्याग करते है, ४ कुछ पुरुष न धर्म का त्याग करते है और न गण-संस्थिति का त्याग करते है।

४२१. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष प्रियधर्मा होते है, दृढधर्मा नहीं होते, २. कुछ पुरुष दृढधर्मा होते है, प्रियधर्मा नही होते, ३ कुछ पुरुष प्रियधर्मा भी होते है और दृढधर्मा भी होते है, ४. कुछ पुरुष न प्रियधर्मा होते है और न दृढधर्मा होते है''।

आचार्य-पद

४२२. आचार्य चार प्रकार के होते है—
१. कुछ आचार्य प्रव्रज्या देने वाले होते है, किन्तु उपस्थापना [महाव्रतो मे आरोपित] करने वाले नही होते,

उवट्ठावणायरिए णाममेगे,
णो पव्वावणायरिए,
एगे पव्वावणायरिएवि,
उवट्ठावणायरिएवि,
एगे णो पव्वावणायरिए,
णो उवट्ठावणायरिए—
धम्मायरिए।

उपस्थापनाचार्य. नामैकः,
नो प्रव्राजनाचार्यः,
एकः प्रव्राजनाचार्योऽपि,
उपस्थापनाचार्योऽपि,
एकः नो प्रव्राजनाचार्यः,
नो उपस्थापनाचार्यः —
धर्माचार्यः।

२. कुछ आचार्य उपस्थापना करने वाले होते है, किन्तु प्रव्रज्या देने वाले नही होते, ३. कुछ आचार्य प्रव्रज्या देने वाले भी होते है और उपस्थापना करने वाले भी होते हैं, ४. कुछ आचार्य न प्रव्रज्या देने वाले होते है और न उपस्थापना करने वाले होते हैं यहा आचार्य धर्माचार्य की कक्षा के है।[11]

४२३ चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—
उद्देसणायरिए णाममेगे,
णो वायणायरिए,
वायणायरिए णाममेगे,
णो उद्देसणायरिए,
एगे उद्देसणायरिएवि,
वायणायरिएवि,
एगे णो उद्देसणायरिए,
णो वायणायरिए—धम्मायरिए।

चत्वारः आचार्या. प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
उद्देशनाचार्यः नामैकः, नो वाचनाचार्यः,
वाचनाचार्य. नामैकः, नो उद्देशनाचार्यः,
एक उद्देशनाचार्योऽपि, वाचनाचार्योऽपि,
एकः नो उद्देशनाचार्यः, नो वाचनाचार्यः—
धर्माचार्य.।

४२३. आचार्य चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ आचार्य उद्देशनाचार्य [पढने का आदेश देने वाले] होते हैं, किन्तु वाचनाचार्य [पढाने वाले] नही होते, २. कुछ आचार्य वाचनाचार्य होते है, किन्तु उद्देशनाचार्य नही होते, ३ कुछ आचार्य उद्देशनाचार्य भी होते है और वाचनाचार्य भी होते है, ४ कुछ आचार्य न उद्देशनाचार्य होते है और न वाचनाचार्य होते है। यहां आचार्य धर्माचार्य की कक्षा के है।

अंतेवासि-पदं

अन्तेवासि-पदम्

अन्तेवासि-पद

४२४ चत्तारि अंतेवासी पण्णत्ता, तं जहा—
पव्वावणंतेवासी णाममेगे,
णो उवट्ठावणंतेवासी,
उवट्ठावणंतेवासी णाममेगे,
णो पव्वावणंतेवासी,
एगे पव्वावणंतेवासीवि,
उवट्ठावणंतेवासीवि,
एगे णो पव्वावणंतेवासी,
णो उवट्ठावणंतेवासी—
धम्मंतेवासी।

चत्वारः अन्तेवासिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
प्रव्राजनान्तेवासी नामैकः,
नो उपस्थापनान्तेवासी,
उपस्थापनान्तेवासी नामैकः,
नो प्रव्राजनान्तेवासी,
एक प्रव्राजनान्तेवास्यपि,
उपस्थापनान्तेवास्यपि,
एकः नो प्रव्राजनान्तेवासी,
नो उपस्थापनान्तेवासी—
धर्मान्तेवासी।

४२४. अन्तेवासी चार प्रकार के होते है—
१ कुछ मुनि एक आचार्य के प्रव्रज्या-अन्तेवासी होते है, किन्तु उपस्थापना-अन्तेवासी नही होते, २. कुछ मुनि एक आचार्य के उपस्थापना-अन्तेवासी होते है, किन्तु प्रव्रज्या-अन्तेवासी नही होते, ३ कुछ मुनि एक आचार्य के प्रव्रज्या-अन्तेवासी भी होते है और उपस्थापना-अन्तेवासी भी होते है, ४. कुछ मुनि एक आचार्य के न प्रव्रज्या-अन्तेवासी होते हैं और न उपस्थापना-अन्तेवासी होते हैं।
यहां अन्तेवासी धर्मान्तेवासी की कक्षा के हैं[11]।

४२५. चत्तारि अंतेवासी पण्णत्ता, तं जहा—
उद्देसणंतेवासी णाममेगे, णो वायणंतेवासी,
वायणंतेवासी णाममेगे, णो उद्देसणंतेवासी,
एगे उद्देसणंतेवासीवि, वायणंतेवासीवि,
एगे णो उद्देसणंतेवासी, णो वायणंतेवासी—धम्मंतेवासी।

चत्वारः अन्तेवासिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
उद्देशनान्तेवासी नामैकः, नो वाचनान्तेवासी,
वाचनान्तेवासी नामैकः, नो उद्देशनान्तेवासी,
एकः उद्देशनान्तेवास्यपि, वाचनान्तेवास्यपि,
एकः नो उद्देशनान्तेवासी, नो वाचनान्तेवासी—धर्मान्तेवासी।

४२५ अन्तेवासी चार प्रकार के होते है—
१ कुछ मुनि एक आचार्य के उद्देशना-अन्तेवासी होते है, किन्तु वाचना-अन्तेवासी नही होते, २. कुछ मुनि एक आचार्य के वाचना-अन्तेवासी होते हैं, किन्तु उद्देशना-अन्तेवासी नही होते, ३. कुछ मुनि एक आचार्य के उद्देशना-अन्तेवासी भी होते है और वाचना-अन्तेवासी भी होते है, ४ कुछ मुनि एक आचार्य के न उद्देशना-अन्तेवासी होते है और न वाचना-अन्तेवासी होते है।
यहा अन्तेवासी धर्मान्तेवासी की कक्षा के है[11]।

महाकम्म-अप्पकम्म-णिग्गंथ-पदं

४२६. चत्तारि णिग्गंथा पण्णत्ता, तं जहा—
१. रातिणिए समणे णिग्गंथे महाकम्मे, महाकिरिए अणायावी असमिते धम्मस्स अणाराधए भवति,
२. रातिणिए समणे णिग्गंथे अप्पकम्मे अप्पकिरिए आतावी समिए धम्मस्स आराहए भवति,
३. ओमरातिणिए समणे णिग्गंथे महाकम्मे महाकिरिए अणातावी असमिते धम्मस्स अणाराहए भवति,
४. ओमरातिणिए समणे णिग्गंथे अप्पकम्मे अप्पकिरिए आतावी समिते धम्मस्स आराहए भवति।

महाकर्म-अल्पकर्म-निर्ग्रन्थ-पदम्

चत्वारः निर्ग्रन्था प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
१. रात्निकः श्रमणः निर्ग्रन्थः महाकर्मा महाक्रियः अनातापी अशमितः धर्मस्य अनाराधको भवति,
२. रात्निकः श्रमणः निर्ग्रन्थः अल्पकर्मा अल्पक्रियः आतापी शमितः धर्मस्य आराधको भवति,
३. अवमरात्निकः श्रमणः निर्ग्रन्थः महाकर्मा महाक्रियः अनातापी अशमितः धर्मस्य अनाराधको भवति,
४. अवमरात्निकः श्रमणः निर्ग्रन्थः अल्पकर्मा अल्पक्रियः आतापी शमितः धर्मस्य आराधको भवति।

महाकर्म-अल्पकर्म-निर्ग्रन्थ-पद

४२६. निर्ग्रन्थ चार प्रकार के होते है—
१. कुछ रात्निक[15] [दीक्षा-पर्याय मे बडे] श्रमण निर्ग्रन्थ महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी [अतपस्वी] और अशमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाले नहीं होते,
२ कुछ रात्निक श्रमण निर्ग्रन्थ अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी [तपस्वी] और शमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाले होते हैं,
३. कुछ अवमरात्निक [दीक्षा पर्याय मे छोटे] श्रमण-निर्ग्रन्थ महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी और अशमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाले नही होते,
४. कुछ अवमरात्निक श्रमण निर्ग्रन्थ अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और शमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाले होते है।

महाकम्म-अप्पकम्म-णिग्गंथी-पदं

४२७. चत्तारि णिग्गंथीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. रातिणिया समणी णिग्गंथी° महाकम्मा महाकिरिया अणायावी असमिता धम्मस्स अणाराधिया भवति,

२. रातिणिया समणी णिग्गंथी अप्पकम्मा अप्पकिरिया आतावी समिता धम्मस्स आराहिया भवति,

३. ओमरातिणिया समणी णिग्गंथी महाकम्मा महाकिरिया अणायावी असमिता धम्मस्स अणाराधिया भवति,

४. ओमरातिणिया समणी णिग्गंथी अप्पकम्मा अप्पकिरिया आतावी समिता धम्मस्स आराहिया भवति ।°

महाकर्म-अल्पकर्म-निर्ग्रन्थी-पदम्

चतस्रः निर्ग्रन्थ्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

१. रात्निकी श्रमणी निर्ग्रन्थी महाकर्मा महाक्रिया अनातापिनी अशमिता धर्मस्य अनाराधिका भवति,

२. रात्निकी श्रमणी निर्ग्रन्थी अल्पकर्मा अल्पक्रिया आतापिनी शमिता धर्मस्य आराधिका भवति,

३. अवमरात्निका श्रमणी निर्ग्रन्थी महाकर्मा महाक्रिया अनातापिनी अशमिता धर्मस्य अनाराधिका भवति,

४ अवमरात्निका श्रमणी निर्ग्रन्थी अल्पकर्मा अल्पक्रिया आतापिनी शमिता धर्मस्य आराधिका भवति।

महाकर्म-अल्पकर्म-निर्ग्रन्थी-पद

४२७ निर्ग्रन्थिया चार प्रकार की होती है---

१ कुछ रात्निक श्रमणी निर्ग्रन्थिया महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी [अतपस्विनी] और अशमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाली नही होती,

२. कुछ रात्निक श्रमणी निर्ग्रन्थिया अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी [तपस्विनी] और शमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाली होती है,

३. कुछ अवमरात्निक श्रमणी निर्ग्रन्थिया महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी और अशमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाली नही होती,

४. कुछ अवमरात्निक श्रमणी निर्ग्रन्थिया अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और शमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाली होती हैं।

महाकम्म-अप्पकम्म-समणोवासग-पदं

४२८. चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता, तं जहा—

१. राइणिए समणोवासए महाकम्मे °महाकिरिए अणायावी असमिते धम्मस्स अणाराधए भवति,

२. राइणिए समणोवासए अप्पकम्मे अप्पकिरिए आतावी समिए धम्मस्स आराहए भवति,

महाकर्म-अल्पकर्म-श्रमणोपासक-पदम्

चत्वारः श्रमणोपासकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

१. रात्निकः श्रमणोपासकः महाकर्मा महाक्रियः अनातापी अशमितः धर्मस्य अनाराधको भवति,

२. रात्निकः श्रमणोपासकः अल्पकर्मा अल्पक्रियः आतापी शमितः धर्मस्य आराधको भवति,

महाकर्म-अल्पकर्म-श्रमणोपासक-पद

३२८. श्रमणोपासक चार प्रकार के होते है---

१. कुछ रात्निक श्रमणोपासक महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी [अतपस्वी] और अशमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाले नही होते,

२. कुछ रात्निक श्रमणोपासक अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और शमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाले होते हैं,

३. ओमराइणिए समणोवासए महाकम्मे महाकिरिए अणातावी असमिते धम्मस्स अणाराहए भवति,

४. ओमराइणिए समणोवासए अप्पकम्मे अप्पकिरिए आतावी समिते धम्मस्स आराहए भवति ।°

३. अवमरात्निकः श्रमणोपासकः महाकर्मा महाक्रियः अनातापी अशमितः धर्मस्य अनाराधको भवति,

४. अवमरात्निकः श्रमणोपासकः अल्पकर्मा अल्पक्रियः आतापी शमितः धर्मस्य आराधको भवति ।

३. कुछ अवमरात्निक श्रमणोपासक महाकर्मा, महाक्रिय, आनातापी और अशमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाले नहीं होते,

४. कुछ अवमरात्निक श्रमणोपासक अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और शमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाले होते हैं।

महाकम्म-अप्पकम्म-समणोवासिया-पदं

४२९. चत्तारि समणोवासियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. राइणिया समणोवासिता महाकम्मा °महाकिरिया अणायावी असमिता धम्मस्स अणाराधिया भवति,

२. राइणिया समणोवासिता अप्पकम्मा अप्पकिरिया आतावी समिता धम्मस्स आराहिया भवति,

३. ओमराइणिया समणोवासिता महाकम्मा महाकिरिया अणायावी असमिता धम्मस्स अणाराधिया भवति,

४. ओमराइणिया समणोवासिता अप्पकम्मा अप्पकिरिया आतावी समिता धम्मस्स आराहिया भवति ।°

महाकर्म-अल्पकर्म-श्रमणोपासिका-पदम्

चतस्रः श्रमणोपासिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

१. रात्निकी श्रमणोपासिका महाकर्मा महाक्रिया अनातापिनी अशमिता धर्मस्य अनाराधिका भवति,

२. रात्निकी श्रमणोपासिका अल्पकर्मा अल्पक्रिया आतापिनी शमिता धर्मस्य आराधिका भवति,

३. अवमरात्निकी श्रमणोपासिका महाकर्मा महाक्रिया अनातापिनी अशमिता धर्मस्य अनाराधिका भवति,

४. अवमरात्निकी श्रमणोपासिका अल्पकर्मा अल्पक्रिया आतापिनी शमिता धर्मस्य आराधिका भवति ।

महाकर्म-अल्पकर्म-श्रमणोपासिका-पद

४२९. श्रमणोपासिकाएं चार प्रकार की होती हैं—

१. कुछ रात्निक श्रमणोपासिकाएं महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी और अशमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाली नहीं होती,

२. कुछ रात्निक श्रमणोपासिकाए अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और शमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाली होती है,

३. कुछ अवमरात्निक श्रमणोपासिकाए महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी और अशमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाली नहीं होती,

४. कुछ अवमरात्निक श्रमणोपासिकाए अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और शमित होने के कारण धर्म की सम्यक् आराधना करने वाली होती है।

समणोवासग-पदं

४३०. चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता, तं जहा—

अम्मापितिसमाणे, भातिसमाणे, मित्तसमाणे, सवत्तिसमाणे ।

श्रमणोपासक-पदम्

चत्वारः श्रमणोपासकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

अम्बापितृसमानः, भ्रातृसमानः, मित्रसमानः, सपत्नीसमानः ।

श्रमणोपासक-पद

४३०. श्रमणोपासक चार प्रकार के होते हैं—

१. माता-पिता के समान,

२. भाई के समान, ३. मित्र के समान,

४. सौत के समान[५५] ।

**४३१. चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता, तं जहा—
अद्दागसमाणे, पडागसमाणे,
खाणुसमाणे, खरकंटयसमाणे।**

चत्वारः श्रमणोपासकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
आदर्शसमानः, पताकासमानः,
स्थाणुसमानः खरकण्टकसमानः।

४३१. श्रमणोपासक चार प्रकार के होते है—
१. दर्पण के समान, २ पताका के समान,
३. स्थाणु—सूखे ठूठ के समान,
४. तीखे काटो के समान।

४३२. समणस्स णं भगवतो महावीरस्स समणोवासगाणं सोधम्मे कप्पे अरुणाभे विमाणे चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य श्रमणोपासकाना सौधर्म्मे कल्पे अरुणाभे विमाने चत्वारि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

४३२. सौधर्म देवलोक मे अरुणाभ-विमान में उत्पन्न, श्रमण भगवान् महावीर के श्रमणोपासकों की स्थिति चार पल्योपम की है।

अहुणोववण्ण-देव-पदं

अधुनोपपन्न-देव-पदम्

अधुनोपपन्न-देव-पद

४३३. चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए, तं जहा—

१. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, से णं माणुस्सए कामभोगे णो आढाइ, णो परियाणाति, णो अट्ठं बंधइ, णो णियाणं पगरेति, णो ठितिपगप्पं पगरेति,

२. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, तस्स णं माणुस्सए पेमे वोच्छिण्णे दिव्वे संकंते भवति,

३. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवति—इण्हिं गच्छं मुहुत्तेणं गच्छं, तेणं कालेणमप्पाउया मणुस्सा कालधम्मुणा संजुत्ता भवंति,

चतुर्भिः स्थानैः अधुनोपपन्नः देवः देवलोकेषु इच्छेत् मानुषं लोकं अर्वाग् आगन्तुम्, नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम् तद्यथा—

१. अधुनोपपन्नः देवः देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितो गृद्धो ग्रथितः अध्युपपन्नः, स मानुष्यकान् कामभोगान् नो आद्रियते, नो परिजानाति, नो अर्थं बध्नाति, नो निदानं प्रकरोति, नो स्थितिप्रकल्पं प्रकरोति,

२. अधुनोपपन्नः देवः देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितः गृद्धः ग्रथितः अध्युपपन्नः, तस्य मानुष्यकं प्रेम व्युच्छिन्नं दिव्यं सक्रान्तं भवति,

३. अधुनोपपन्नः देवः देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितः गृद्धः ग्रथितः अध्युपपन्नः, तस्य एवं भवति—इदानीं गच्छामि मुहूर्तेन गच्छामि, तस्मिन् काले अल्पायुषः मनुष्याः कालधर्मेण सयुक्ताः भवन्ति,

४३३. चार कारणो से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्य लोक में आना चाहता है, किन्तु आ नही सकता —

१ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव दिव्य-काम-भोगो से मूर्च्छित, गृद्ध, बद्ध बद्ध तथा आसक्त होकर मानवीय काम-भोगो को न आदर देता है, न अच्छा जानता है, न उनसे प्रयोजन रखता है, न निदान [उन्हे पाने का संकल्प] करता है और न स्थिति-प्रकल्प [उनके बीच रहने की इच्छा] करता है,

२. देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य-काम-भोगो मे मूर्च्छित, गृद्ध तथा आसक्त देव का मानुष्य प्रेम व्युच्छिन्न हो जाता है तथा उसमे दिव्य प्रेम सक्रान्त हो जाता है,

३ देवलोक में तत्काल उत्पन्न, दिव्य-काम भोगो मे मूर्च्छित, गृद्ध, बद्ध तथा आसक्त देव सोचता है—मै अभी मनुष्य लोक मे जाऊ, मुहूर्त भर मे जाऊ। इतने मे अल्पायुष्क मनुष्य काल धर्म को प्राप्त हो जाता है,

४. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, तस्स णं माणुस्सए गंधे पडिकूले पडिलोमे यावि भवति, उड्ढं पि य णं माणुस्सए गंधे जाव चत्तारि पंच जोयणसताइं हव्वमागच्छति—

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

४. अधुनोपपन्न. देव देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छित. गृद्ध ग्रथितः अध्युपपन्नः, तस्य मानुष्यक गन्ध प्रतिकूल. प्रतिलोमः चापि भवति, ऊर्ध्वमपि च मानुष्यकः गन्धः यावत् चत्वारि पञ्च-योजनशतानि अर्वाग् आगच्छति—

इत्येतैः चतुर्भिः स्थानै अधुनोपपन्न देव देवलोकेषु इच्छेत् मानुष लोक अर्वाग् आगन्तुम्, नो चैव शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्।

४. देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य-काम-भोगो मे मूर्च्छित, गृद्ध, बद्ध तथा आसक्त देव को मनुष्य लोक की गन्ध प्रतिकूल और प्रतिलोम लगने लग जाती है। मनुष्य लोक की गन्ध पाच सौ योजन की ऊचाई तक आती रहती है।

इन चार कारणो से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्य लोक आना चाहता है, किन्तु आ नही सकता।

४३४. चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, संचाएति हव्वमागच्छित्तए, तं जहा—

१. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते °अगिद्धे अगढिते° अणज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवति—अत्थि खलु मम माणुस्सए भवे आयरिएति वा उवज्झाएति वा पवत्तीति वा थेरेति वा गणीति वा गणधरेति वा गणावच्छेदेति वा, जेसिं पभावेणं मए इमा एतारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुती [दिव्वे देवाणुभावे ?] लद्धे पत्ते अभिसमण्णागते, तं गच्छामि णं ते भगवंते वंदामि °णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं° पज्जुवासामि,

चतुर्भि स्थानै. अधुनोपपन्न देव देवलोकेषु इच्छेत् मानुष लोक अर्वाग् आगन्तुम्, शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्, तद्यथा—

१. अधुनोपपन्न देव देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु अमूर्च्छित अगृद्ध अग्रथित अनध्युपपन्न, तस्य एव भवति—अस्ति खलु मम मानुष्यके भवे आचार्य इति वा उपाध्याय इति वा प्रवर्त्ती इति वा स्थविर इति वा गण इति वा गणधर इति वा गणावच्छेदक इति वा, येषा प्रभावेण मया इमा एतद्रूपा दिव्या देवर्द्धि दिव्या देवद्युति [दिव्य. देवानुभाव: ?] लब्ध: प्राप्त अभिसमन्वागत, तत् गच्छामि तान् भगवत वन्दे नमस्यामि सत्करोमि सम्मानयामि कल्याणं मङ्गल दैवत चैत्यं पर्युपासे,

४३४ चार कारणो से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्यलोक मे आना चाहता है और आ भी सकता है—

१. देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य-काम-भोगो मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध तथा अनासक्त देव सोचता है—मनुष्य-लोक मे मेरे मनुष्य भव के आचार्य उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर तथा गणावच्छेदक है, जिनके प्रभाव से मुझे यह इस प्रकार की दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव मिला है, प्राप्त हुआ है, अभिसमन्वागत [भोग्य अवस्था को प्राप्त] हुआ है, अत: मै जाऊ और उन भगवान् को वदन करूं, नमस्कार करू, सत्कार करूं, सम्मान करू तथा कल्याण कर, मगल, ज्ञानस्वरूप देव की पर्युपासना करूं,

२. अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु •दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते° अणज्झोववण्णे, तस्स णमेवं भवति—एस णं माणुस्सए भवे णाणीति वा तवस्सीति वा अइदुक्कर-दुक्कर-कारगे, तं गच्छामि णं ते भगवंते वंदामि, •णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं° पज्जुवासामि,

२. अधुनोपपन्नः देवः देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु अमूर्च्छितः अगृद्धः अग्रथितः अनध्युपपन्नः, तस्य एवं भवति—असिमन् मानुष्यके भवे ज्ञानीति वा तपस्वीति वा अतिदुष्कर-दुष्करकारकः, तद् गच्छामि तान् भगवतः वन्दे, नमस्यामि सत्करोमि सम्मानयामि कल्याण मङ्गल दैवत चैत्य पर्युपासे,

२. देवलोक में तत्काल उत्पन्न, दिव्य-काम-भोगों मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध, तथा अनासक्त देव सोचता है—मनुष्य भव मे अनेक ज्ञानी, तपस्वी तथा अति-दुष्कर तपस्या करने वाले है, अतः मैं जाऊं और उन भगवान् को वंदन करूं, नमस्कार करूं, सत्कार करूं, सम्मान करूं तथा कल्याण कर, मंगल, ज्ञानस्वरूप देव की पर्युपासना करूं,

३. अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु •दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते° अणज्झोववण्णे, तस्स णमेवं भवति—अत्थि णं मम माणुस्सए भवे माताति वा •पियाति वा भायाति वा भगिणीति वा भज्जाति वा पुत्ताति वा धूयाति वा° सुण्हाति वा, तं गच्छामि णं तेसिमंतियं पाउब्भवामि, पासंतु ता मे इममेतारूवं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुतिं [दिव्वं देवाणुभावं ?] लद्धं पत्तं अभिसमण्णागतं,

३. अधुनोपपन्नः देवः देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु अमूर्च्छितः अगृद्धः अग्रथितः अनध्युपपन्नः, तस्य एवं भवति—अस्ति मम मानुष्यके भवे मातेति वा पितेति वा भ्रातेति वा भगिनीति वा भार्येति वा पुत्र इति वा दुहितेति वा स्नुषेति वा, तद् गच्छामि तेषां अन्तिकं प्रादुर्भवामि, पश्यन्तु तावत् मम इमां एतद्रूपां दिव्यां देवर्द्धिं दिव्यां देवद्युतिं [दिव्यं देवानुभाव ?] लब्धं प्राप्तं अभिसमन्वागतम्,

३. देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य-कामभोगो मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध तथा अनासक्त देव, सोचता है—मेरे मनुष्य भव के माता, पिता, भ्राता, भगिनी, भार्या, पुत्र, पुत्री और पुत्र-वधू है, अतः मैं उनके पास जाऊं और उनके सामने प्रकट होऊं जिससे वे मेरी इस प्रकार की दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव को, जो मुझे मिला है, प्राप्त हुआ है, अभिसमन्वागत हुआ है—देखे,

४. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु •दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते° अणज्झोववण्णे, तस्स णमेवं भवति—अत्थि णं मम माणुस्सए भवे मित्तेति वा सहाति वा सुहीति वा सहाएति वा संगइएति वा, तेसिं च णं अम्हे अण्णमण्णस्स संगारे पडिसुते भवति—जो मे पुव्विं चयति से संबोहेतव्वे—

४. अधुनोपपन्नः देवः देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु अमूर्च्छितः अगृद्धः अग्रथितः अनध्युपपन्नः, तस्य एवं भवति—अस्ति मम मानुष्यके भवे मित्रमिति वा सखेति वा सुहृदिति वा सहाय इति वा सङ्गतिकः इति वा, तेषां च अस्माभिः अन्योऽन्य संकेतः प्रतिश्रुतः भवति—यो मम पूर्वं च्यवते स सम्बोधयितव्यः—

४. देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य-काम-भोगो मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध तथा अनासक्त देव सोचता है—मनुष्य-लोक मे मेरे मनुष्य भव के मित्र, बाल-सखा, हितैषी, सहचर तथा परिचित है, जिनसे मैंने परस्पर संकेतात्मक प्रतिज्ञा की थी कि जो पहले च्युत हो जाए उसे दूसरे को संबोध देना है—

इच्चेतेहिं °चउहि ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए° संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

इत्येतैः चतुर्भिः स्थानैः अधुनोपपन्नः देवः देवलोकेषु इच्छेत् मानुष लोक अर्वाग् आगन्तु शक्नोति अर्वाग् आगन्तुम्।

इन चार कारणो से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहता है और आ भी सकता है।

अंधयार-उज्जोयाइ-पदं

अन्धकार-उद्योतादि-पदम्

अन्धकार-उद्योतादि-पद

४३५. चउहिं ठाणेहिं लोगंधगारे सिया, तं जहा—
अरहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं,
अरहंतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे,
पुव्वगते वोच्छिज्जमाणे,
जायतेजे वोच्छिज्जमाणे।

चतुर्भिः स्थानैः लोकान्धकार स्यात् तद्यथा—
अर्हत्सु व्यवच्छिद्यमानेषु,
अर्हत्प्रज्ञप्ते धर्मे व्यवच्छिद्यमाने,
पूर्वगते व्यवच्छिद्यमाने,
जाततेजसि व्यवच्छिद्यमाने।

४३५. चार कारणो से मनुष्य लोक मे अन्धकार होता है—
१. अर्हन्तो के व्युच्छिन्न होने पर, २ अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म के व्युच्छिन्न होने पर, ३. पूर्वगत [चौदह पूर्वो] के व्युच्छिन्न होने पर, ४. अग्नि के व्युच्छिन्न होने पर।

४३६. चउहिं ठाणेहिं लोउज्जोते सिया, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताणं परिनिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भिः स्थानैः लोकोद्योत स्यात्, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हता ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हता परिनिर्वाणमहिमसु।

४३६ चार कारणो से मनुष्य लोक मे उद्योत होता है—
१. अर्हन्तो का जन्म होने पर, २. अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर, ४. अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४३७ °चउहिं ठाणेहिं देवंधगारे सिया, तं जहा—
अरहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं,
अरहंतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे,
पुव्वगते वोच्छिज्जमाणे,
जायतेजे वोच्छिज्जमाणे।

चतुर्भिः स्थानैः देवान्धकार स्यात्, तद्यथा—
अर्हत्सु व्यवच्छिद्यमानेषु,
अर्हत्प्रज्ञप्ते धर्मे व्यवच्छिद्यमाने,
पूर्वगते व्यवच्छिद्यमाने,
जाततेजसि व्यवच्छिद्यमाने।

४३७. चार कारणो से देवलोक मे अन्धकार होता है—
१. अर्हन्तो के व्युच्छिन्न होने पर, २ अर्हत-प्रज्ञप्त धर्म के व्युच्छिन्न होने के अवसर पर, ३. पूर्वगत के व्युच्छिन्न होने पर, ४ अग्नि के व्युच्छिन्न होने पर।

४३८. चउहिं ठाणेहिं देवुज्जोते सिया, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताण परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भिः स्थानै देवोद्योत स्यात्, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हता परिनिर्वाणमहिमसु।

४३८ चार कारणो से देवलोक मे उद्योत होता है—
१. अर्हन्तो का जन्म होने पर, २. अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३ अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर, ४. अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४३९. चउहिं ठाणेहिं देवसण्णिवाते सिया, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भिः स्थानैः देवसन्निपातः स्यात्, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु।

४३९. चार कारणों से देव-सन्निपात [मनुष्य-लोक में आगमन] होता है—
१. अर्हन्तों का जन्म होने पर, २. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष में किए जाने वाले महोत्सव पर, ४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४० चउहिं ठाणेहिं देवुक्कलिया सिया, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भिः स्थानैः देवोत्कलिका स्यात्, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु,

४४०. चार कारणों से देवोत्कलिका [देवताओं का समवाय] होता है—
१. अर्हन्तों का जन्म होने पर, २. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर ३. अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष में किए जाने वाले महोत्सव पर, ४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४१ चउहिं ठाणेहिं देवकहकहए सिया, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।°

चतुर्भिः स्थानैः देव 'कहकहकः' स्यात्, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु।

४४१ चार कारणों से देव-कहकहा [कलकल-ध्वनि] होता है—
१. अर्हन्तों का जन्म होने पर, २. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष में किए जाने वाले महोत्सव पर, ४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४२ चउहिं ठाणेहिं देविंदा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भिः स्थानैः देवेन्द्राः मानुषं लोकं अर्वाग् आगच्छन्ति, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु।

४४२. चार कारणों से देवेन्द्र तत्क्षण मनुष्यलोक में आते हैं—
१. अर्हन्तों का जन्म होने पर, २. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर ३. अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष में किए जाने वाले महोत्सव पर, ४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४३. एवं—सामाणिया, तायत्तीसगा, लोगपाला देवा, अग्गमहिसीओ देवीओ, परिसोववण्णगा देवा, अणियाहिवई देवा, आयरक्खा देवा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति, तं जहा—

एवम्—सामानिकाः, तावत्त्रिंशकाः, लोकपाला देवाः, अग्रमहिष्यो देव्यः, परिषदुपपन्नका देवाः, अनीकाधिपतयो देवाः, आत्मरक्षका देवाः, मानुषं लोकं अर्वाग् आगच्छन्ति, तद्यथा—

४४३. इसी प्रकार सामानिक, तावत्त्रिंशक, लोकपाल देव, अग्रमहिषी देवियां, सभासद, सेनापति तथा आत्म-रक्षक देव चार कारणों से तत्क्षण मनुष्य लोक में आते हैं—

अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु।

१ अर्हन्तो का जन्म होने पर, २ अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष में किए जाने वाले महोत्सव पर, ४. अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४४. चउहिं ठाणेहिं देवा अब्भुट्ठिज्जा, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भिः स्थानैः देवाः अभ्युत्तिष्ठेयुः, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु।

४४४. चार कारणो से देव अपने सिंहासन से अभ्युत्थित होते हैं—
१ अर्हन्तो का जन्म होने पर,
२ अर्हन्तोके प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४५. चउहिं ठाणेहिं देवाणं आसणाइं चलेज्जा, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भिः स्थानैः देवानां आसनानि चलेयुः, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु।

४४५. चार कारणो से देवो के आसन चलित होते है—
१ अर्हन्तो का जन्म होने पर,
२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४६. चउहिं ठाणेहिं देवा सीहणायं करेज्जा, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भिः स्थानैः देवाः सिंहनादं कुर्युः, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु।

४४६. चार कारणो से देव सिंहनाद करते है—
१ अर्हन्तो का जन्म होने पर,
२. अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४७. चउहिं ठाणेहिं देवा चेलुक्खेवं करेज्जा, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चतुर्भिः स्थानैः देवाः चेलोत्क्षेपं कुर्युः, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु।

४४७. चार कारणो से देव चेलोत्क्षेप करते है—
१. अर्हन्तो का जन्म होने पर,
२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तो के केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर।

४४८. चउहिं ठाणेहिं देवाणं चेइयरुक्खा चलेज्जा, तं जहा—

चतुर्भिः स्थानैः देवानां चैत्यरुक्षाः चलेयुः, तद्यथा—

४४८. चार कारणो से देवताओ के चैत्यवृक्ष चलित होते है—

अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु ।

अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सुप्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु ।

१. अर्हन्तो का जन्म होने पर,
२. अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तो के केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष में किए जाने वाले महोत्सव पर,
४. अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर ।

४४९. चउहिं ठाणेहिं लोगंतिया देवा माणुसं लोगं हव्वमागच्छेज्जा, तं जहा—
अरहंतेहिं जायमाणेहिं,
अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं,
अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु,°
अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु ।

चतुर्भिः स्थानैः लोकान्तिकाः देवाः मानुष लोक अर्वाक् आगच्छन्ति, तद्यथा—
अर्हत्सु जायमानेषु,
अर्हत्सु प्रव्रजत्सु,
अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमसु,
अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु ।

४४९. चार कारणो से लोकान्तिक देव तत्क्षण मनुष्य-लोक मे आते है—
१. अर्हन्तो का जन्म होने पर,
२. अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो को केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष मे किए जाने वाले महोत्सव पर,
४. अर्हन्तो के परिनिर्वाण-महोत्सव पर ।

दुहसेज्जा-पदं

दुःखशय्या-पदम्

दुःखशय्या-पद

४५०. चत्तारि दुहसेज्जाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

चतस्र दुःखशय्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

४५०. चार दुःखशय्या है—

१. तत्थ खलु इमा पढमा दुहसेज्जा—
से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे संकिते कंखिते वितिगिच्छिते भेयसमावण्णे कलुससमावण्णे णिग्गंथं पावयणं णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोएइ, णिग्गंथं पावयणं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे मणं उच्चावयं णियच्छति, विणिघातमावज्जति—पढमा दुहसेज्जा ।

१. तत्र खलु इमा प्रथमा दुःखशय्या—
स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजितः नैर्ग्रन्थे प्रवचने शङ्कितः काङ्क्षितः विचिकित्सितः भेदसमापन्नः कलुषसमापन्नः निर्ग्रन्थं प्रवचनं नो श्रद्धत्ते नो प्रत्येति नो रोचते,
नैर्ग्रन्थं प्रवचनं अश्रद्दधानः अप्रतियन् अरोचमानः मनः उच्चावचं नियच्छति, विनिघातमापद्यते—प्रथमा दुःखशय्या ।

१ पहली दुःखशय्या यह है—
कोई व्यक्ति मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित होकर, निर्ग्रन्थ प्रवचन मे शंकित कांक्षित, विचिकित्सित, भेद-समापन्न, कलुष-समापन्न होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन मे श्रद्धा नही करता, प्रतीति नही करता, रुचि नही करता, वह निर्ग्रन्थ प्रवचन पर अश्रद्धा करता हुआ, अप्रतीति करता हुआ, अरुचि करता हुआ, मानसिक उतार-चढाव और विनिघात [धर्म-भ्रशता] को प्राप्त होता है,

२. अहावरा दोच्चा दुहसेज्जा—
से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ °अणगारियं° पव्वइए सएणं लाभेणं णो तुस्सति, परस्स लाभमासाएति पीहेति पत्थेति अभिलसति,

२. अथापरा द्वितीया दुःखशय्या—
स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजितः स्वेन लाभेन नो तुष्यति, परस्य लाभमास्वादयति स्पृहयति प्रार्थयति अभिलषति,

२. दूसरी दुःखशय्या यह है—कोई व्यक्ति मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व में प्रव्रजित होकर अपने लाभ [भिक्षा मे लब्ध आहार आदि] से सन्तुष्ट नही होकर दूसरे के लाभ का आस्वाद करता है, स्पृहा करता है, प्रार्थना करता है,

परस्स लाभमासाएमाणे •पीहेमाणे पत्थेमाणे° अभिलसमाणे मणं उच्चावयं णियच्छइ, विणिघातमावज्जति—दोच्चा दुहसेज्जा।

३. अहावरा तच्चा दुहसेज्जा—
से णं मुंडे भवित्ता •अगाराओ अणगारियं° पव्वइए दिव्वे माणुस्सए कामभोगे आसाएइ •पीहेति पत्थेति° अभिलसति, दिव्वे माणुस्सए कामभोगे आसाएमाणे •पीहेमाणे पत्थेमाणे° अभिलसमाणे मणं उच्चावयं णियच्छति, विणिघातमावज्जति—तच्चा दुहसेज्जा।

४. अहावरा चउत्था दुहसेज्जा—
से णं मुंडे •भवित्ता अगाराओ अणगारियं° पव्वइए, तस्स णं एवं भवति—जया णं अहमगारवासमावसामि तदा णमहं संवाहण-परिमद्दण-गातब्भंग-गातुच्छोलणाइं लभामि, जप्पभिइं च णं अहं मुंडे •भवित्ता अगाराओ अणगारियं° पव्वइए तप्पभिइं च णं अहं संवाहण-•परिमद्दण-गातब्भंग°-गातुच्छोलणाइं णो लभामि।
से णं संवाहणं-•परिमद्दण-गातब्भंग° गातुच्छोलणाइं आसाएति •पीहेति पत्थेति° अभिलसति,
से णं संवाहण-•परिमद्दण-गातब्भंग°-गातुच्छोलणाइं आसाएमाणे •पीहेमाणे पत्थेमाणे अभिलसमाणे° मणं उच्चावयं णियच्छति, विणिघातमावज्जति—चउत्था दुहसेज्जा।

परस्य लाभमास्वादयन् स्पृहयन् प्रार्थयन् अभिलषन् मनः उच्चावच नियच्छति, विनिघातमापद्यते—द्वितीया दुःखशय्या।

३. अथापरा तृतीया दुःखशय्या—
स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजितः दिव्यान् मानुष्यकान् कामभोगान् आस्वादयति स्पृहयति प्रार्थयति अभिलषति,
दिव्यान् मानुष्यकान् कामभोगान् आस्वादयन् स्पृहयन् प्रार्थयन् अभिलषन् मनः उच्चावच नियच्छति, विनिघातमापद्यते—तृतीया दुःखशय्या।

४. अथापरा चतुर्थी दुःखशय्या—
स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजितः, तस्य एव भवति—यदा अह अगारवासमावसामि तदा अह सबाधन-परिमर्द्दन-गात्राभ्यङ्ग-गात्रोत्क्षालनानि लभे, यत्प्रभृति च अह मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः तत्प्रभृति च अह सबाधन-परिमर्द्दन-गात्राभ्यङ्ग-गात्रोत्क्षालनानि नो लभे।
स संबाधन-परिमर्द्दन-गात्राभ्यङ्ग-गात्रोत्क्षालनानि आस्वादयति स्पृहयति प्रार्थयति अभिलषति,
स सबाधन-परिमर्द्दन-गात्राभ्यङ्ग-गात्रोत्क्षालनानि आस्वादयन् स्पृहयन् प्रार्थयन् अभिलषन् मनः उच्चावच नियच्छति, विनिघातमापद्यते—चतुर्थी दुःखशय्या।

अभिलाषा करता है, वह दूसरे के लाभ का आस्वाद करता हुआ, स्पृहा करता हुआ, प्रार्थना करता हुआ, अभिलाषा करता हुआ, मानसिक उतार-चढ़ाव और विनिघात को प्राप्त होता है,

३. तीसरी दुःखशय्या यह है—कोई व्यक्ति मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित होकर देवताओ तथा मनुष्यो के काम-भोगो का आस्वादन करता है, स्पृहा करता है, प्रार्थना करता है, अभिलाषा करता है. वह उनका आस्वाद करता हुआ, स्पृहा करता हुआ, प्रार्थना करता हुआ, अभिलाषा करता हुआ मानसिक उतार-चढ़ाव और विनिघात को प्राप्त होता है।

४. चौथी दुःखशय्या यह है—कोई व्यक्ति मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित होने के बाद ऐसा सोचता है—जब मै गृहवास मे था सबाधन—मर्दन, परिमर्दन—उबटन, गात्राभ्यङ्ग—तैल आदि की मालिश, गात्रोत्क्षालन—स्नान आदि करता था पर जब से मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित हुआ हू सबाधन, परिमर्दन, गात्राभ्यङ्ग तथा गात्रोत्क्षालन नही कर पा रहा हू, ऐसा सोचकर वह संबाधन, परिमर्दन, गात्राभ्यङ्ग तथा गात्रोत्क्षालन का आस्वाद करता है, स्पृहा करता है, प्रार्थना करता है, अभिलाषा करता है, वह सबाधन, परिमर्दन, गात्राभ्यङ्ग तथा गात्रोत्क्षालन का आस्वाद करता हुआ, स्पृहा करता हुआ, प्रार्थना करता हुआ, अभिलाषा करता हुआ मानसिक उतार-चढ़ाव और विनिघात को प्राप्त होता है।

सुहसेज्जा-पदं

४५१. चत्तारि सुहसेज्जाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. तत्थ खलु इमा पढमा सुहसेज्जा—

से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे णिस्संकिते णिक्कंखिते णिव्वितिगिच्छिए णो भेदसमावण्णे णो कलुससमावण्णे णिग्गंथं पावयणं सद्दहइ पत्तियइ रोएति,

णिग्गंथं पावयणं सद्दहमाणे पत्तियमाणे रोएमाणे णो मणं उच्चावयं णियच्छति, णो विणिघातमावज्जति—पढमा सुहसेज्जा।

२. अहावरा दोच्चा सुहसेज्जा—

से णं मुंडे °भवित्ता अगाराओ अणगारियं° पव्वइए सएणं लाभेणं तुस्सति परस्स लाभं णो आसाएति णो पीहेति णो पत्थेइ णो अभिलसति,

परस्स लाभमणासाएमाणे °अपीहेमाणे अपत्थेमाणे° अणभिलसमाणे णो मणं उच्चावयं णियच्छति, णो विणिघातमावज्जति—दोच्चा सुहसेज्जा।

३. अहावरा तच्चा सुहसेज्जा—

से णं मुंडे °भवित्ता अगाराओ अणगारियं° पव्वइए दिव्वमाणुस्सए कामभोगे णो आसाएति °णो पीहेति णो पत्थेति° णो अभिलसति,

सुखशय्या-पदम्

चतस्रः सुखशय्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

१. तत्र खलु इमा प्रथमा सुखशय्या—

स मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः नैर्ग्रन्थे प्रवचने निःशङ्कितः निष्काङ्क्षितः निर्विचिकित्सितः नो भेदसमापन्नः नो कलुषसमापन्नः नैर्ग्रन्थं प्रवचनं श्रद्धत्ते प्रत्येति रोचते,

नैर्ग्रन्थं प्रवचनं श्रद्दधानः प्रतियन् रोचमानः नो मनः उच्चावचं नियच्छति, नो विनिघातमापद्यते—प्रथमा सुखशय्या।

२. अथापरा द्वितीया सुखशय्या—

स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजितः स्वेन लाभेन तुष्यति परस्य लाभं नो आस्वादयति नो स्पृहयति नो प्रार्थयति नो अभिलषति,

परस्य लाभं अनास्वादयन् अस्पृहयन् अप्रार्थयन् अनभिलषन् नो मनः उच्चावचं नियच्छति, नो विनिघातमापद्यते—द्वितीया सुखशय्या।

३. अथापरा तृतीया सुखशय्या—

स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजितः दिव्यमानुष्यकान् कामभोगान् नो आस्वादयति नो स्पृहयति नो प्रार्थयति नो अभिलषति,

सुखशय्या-पद

४५१. सुखशय्या चार हैं—

१. पहली सुखशय्या यह है—कोई व्यक्ति मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व में प्रव्रजित होकर, निर्ग्रन्थ प्रवचन में, निःशंक, निष्कांक्ष, निर्विचिकित्सित, अभेदसमापन्न, अकलुषसमापन्न होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है, रुचि करता है, वह निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा करता हुआ, प्रतीति करता हुआ, रुचि करता हुआ मन में समता को धारण करता है और धर्म में स्थिर हो जाता है,

२. दूसरी सुखशय्या यह है—कोई व्यक्ति मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व में प्रव्रजित होकर अपने लाभ से सन्तुष्ट होता है, दूसरे के लाभ का आस्वाद नहीं करता, स्पृहा नहीं करता, प्रार्थना नहीं करता, अभिलाषा नहीं करता, वह दूसरे के लाभ का आस्वाद नहीं करता हुआ, स्पृहा नहीं करता हुआ, प्रार्थना नहीं करता हुआ, अभिलाषा नहीं करता हुआ मन में समता को धारण करता है और धर्म में स्थिर हो जाता है,

३. तीसरी सुखशय्या यह है—कोई व्यक्ति मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व में प्रव्रजित होकर देवों तथा मनुष्यों के काम-भोगों का आस्वाद नहीं करता, स्पृहा नहीं करता, प्रार्थना नहीं करता, अभिलाषा नहीं करता, वह उनका आस्वाद नहीं करता हुआ, स्पृहा नहीं

दिव्वमाणुस्सए कामभोगे अणासाए माणे *अपीहेमाणे अपत्थेमाणे* अणभिलसमाणे णो मणं उच्चावयं णियच्छति, णो विणिघातमावज्जति—तच्चा सुहसेज्जा।

दिव्यमानुष्यकान् कामभोगान् अनास्वादयन् अस्पृहयन् अप्रार्थयन् अनभिलषन् नो मनः उच्चावच नियच्छति, नो विनिघातमापद्यते—तृतीया सुखशय्या।

करता हुआ, प्रार्थना नही करता हुआ, अभिलाषा नही करता हुआ मन मे समता को धारण करता है और धर्म मे स्थिर हो जाता है,

४ अहावरा चउत्था सुहसेज्जा—से णं मुंडे *भवित्ता अगाराओ अणगारियं* पव्वइए, तस्स णं एवं भवति—जइ ताव अरहंता भगवंतो हट्ठा अरोगा बलिया कल्लसरीरा अण्णयराइं ओरालाइं कल्लाणाइं विउलाइं पयताइं पग्गहिताइं महाणुभागाइं कम्मक्खयकरणाइं तवोकम्माइं पडिवज्जंति, किमंग पुण अहं अब्भोवगमिओवक्कमियं वेयणं णो सम्मं सहामि खमामि तितिक्खेमि अहियासेमि ?

४. अथापरा चतुर्थी सुखशय्या—स मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजित., तस्य एव भवति—यदि तावत् अर्हन्तो भगवन्तो हृष्टा: अरोगा. बलिका कल्यशरीरा: अन्यतराणि उदाराणि कल्याणानि विपुलानि प्रयतानि प्रगृहीतानि महानुभागानि कर्मक्षयकरणानि तपःकर्माणि प्रतिपद्यन्ते, किमङ्ग पुनरहं आभ्युपगमिकौपक्रमिकी वेदना नो सम्यक् सहे क्षमे तितिक्षे अध्यासयामि ?

४ चौथी सुखशय्या यह है—कोई व्यक्ति मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित होने के बाद ऐसा सोचता है—जब अर्हन्त भगवान् हृष्ट, नीरोग, बलवान् तथा स्वस्थ होकर भी कर्मक्षय के लिए उदार, कल्याण, विपुल, प्रयत—सुमयत, प्रगृहीत, सादर स्वीकृत, महानुभाग—अमित शक्तिशाली और कर्मक्षयकारी विविध तपस्याए स्वीकृत करते है तब मै आभ्युपगमिकी तथा औपक्रमिकी वेदना को ठीक प्रकार से क्यो न सहन करता हू।

ममं च णं अब्भोवगमिओवक्कमियं (वेयणं ?) सम्ममसहमाणस्स अक्खममाणस्स अतितिक्खेमाणस्स अणहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जति ?

मम च आभ्युपगमिकौपक्रमिकी [वेदना ?] सम्यक्असहमानस्य अक्षममानस्य अनितिक्षमानस्य अनध्यासयत किं मन्ये क्रियते ?

यदि मै आभ्युपगमिकी तथा औपक्रमिकी की वेदना को ठीक प्रकार से सहन नही करूगा तो मुझे क्या होगा ?

एगंतसो मे पावे कम्मे कज्जति।

एकान्तश. मम पाप कर्म क्रियते।

मुझे एकान्तत पाप कर्म होगा।

ममं च णं अब्भोवगमिओ *वक्कमियं (वेयणं ?)* सम्मं सहमाणस्स *खममाणस्स तितिक्खेमाणस्स* अहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जति ?

मम च आभ्युपगमिकौपक्रमिकी [वेदना ?] सम्यक् सहमानस्य क्षममानस्य तितिक्षमानस्य अध्यासयत किं मन्ये क्रियते ?

यदि मै आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना को ठीक प्रकार से सहन करूगा तो मुझे क्या होगा ?

एगंतसो मे णिज्जरा कज्जति—चउत्था सुहसेज्जा।

एकान्तशः मे निर्जरा क्रियते—चतुर्थी सुखशय्या।

मुझे एकान्ततः निर्जरा होगी।

अवायणिज्ज-वायणिज्ज-पदं

अवाचनीय-वाचनीय-पदम्

अवाचनीय-वाचनीय-पद

४५२. चत्तारि अवायणिज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

चत्वार. अवाचनीया: प्रज्ञप्ता., तद्यथा—

४५२ चार अवाचनीय—वाचना देने के अयोग्य होते है—

अविणीए, विगइपडिबद्धे,
अविओसवितपाहुडे, माई।

अविनीतः, विकृतिप्रतिबद्धः,
अव्यवशमितप्राभृतः, मायी।

१. अविनीत, २. विकृति-प्रतिबद्ध,
३. अव्यवशमित-प्राभृत, ४. मायावी।

४५३. चत्तारि वायणिज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
विणीते, अविगतिपडिबद्धे,
विओसवितपाहुडे, अमाई।

चत्वारः वाचनीयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
विनीतः, अविकृतिप्रतिबद्धः,
व्यवशमितप्राभृतः, अमायी।

४५३. चार वाचनीय होते हैं—
१. विनीत, २. विकृति-अप्रतिबद्ध,
३. व्यवशमित-प्राभृत, ४. अमायावी।

आय-पर-पदं

४५४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
आतंभरे णाममेगे, णो परंभरे,
परंभरे णाममेगे, णो आतंभरे,
एगे आतंभरेवि, परंभरेवि,
एगे णो आतंभरे, णो परंभरे।

आत्म-पर-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मम्भरिः नामैकः, नो परम्भरिः,
परम्भरिः नामैकः, नो आत्मम्भरिः,
एकः आत्मम्भरिरपि, परम्भरिरपि,
एकः नो आत्मम्भरिः, नो परम्भरिः।

आत्म-पर-पद

४५४. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष आत्मभर [अपने-आप को भरने वाले] होते है, परभर [दूसरो को भरने वाले] नही होते, २. कुछ पुरुष परभर होते है, आत्मभर नही होते, ३ कुछ पुरुष आत्मभर भी होते है और परभर भी होते है, ४. कुछ पुरुष आत्मभर भी नही होते और परभर भी नही होते।

दुग्गत-सुग्गत-पदं

४५५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दुग्गए णाममेगे दुग्गए,
दुग्गए णाममेगे सुग्गए,
सुग्गए णाममेगे दुग्गए,
सुग्गए णाममेगे सुग्गए।

दुर्गत-सुगत-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दुर्गतः नामैकः दुर्गतः,
दुर्गतः नामैकः सुगतः,
सुगतः नामैकः दुर्गतः,
सुगतः नामैकः सुगतः।

दुर्गत-सुगत-पद

४५५. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष धन से भी दुर्गत—दरिद्र होते है और ज्ञान से भी दुर्गत होते है, २ कुछ पुरुष धन से दुर्गत होते हैं, पर ज्ञान से सुगत—समृद्ध होते है, ३ कुछ पुरुष धन से सुगत होते है, पर ज्ञान से दुर्गत होते हैं, ४. कुछ पुरुष धन से सुगत होते है और ज्ञान से भी सुगत होते है।

४५६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दुग्गए णाममेगे दुव्वए,
दुग्गए णाममेगे सुव्वए,
सुग्गए णाममेगे दुव्वए,
सुग्गए णाममेगे सुव्वए।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दुर्गतः नामैकः दुर्व्रतः,
दुर्गतः नामैकः सुव्रतः,
सुगतः नामैकः दुर्व्रतः,
सुगतः नामैकः सुव्रतः।

४५६. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष दुर्गत और दुर्व्रत होते है,
२. कुछ पुरुष दुर्गत और सुव्रत होते है,
३. कुछ पुरुष सुगत और दुर्व्रत होते है,
४. कुछ पुरुष सुगत और सुव्रत होते है।

४५७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

४५७. पुरुष चार प्रकार के होते है—

दुग्गए णाममेगे दुप्पडिताणंदे,
दुग्गए णाममेगे सुप्पडिताणंदे,
सुग्गए णाममेगे दुप्पडिताणंदे,
सुग्गए णाममेगे सुप्पडिताणंदे।

दुर्गतः नामैकः दुष्प्रत्यानन्दः,
दुर्गतः नामैकः सुप्रत्यानन्दः,
सुगतः नामैकः दुष्प्रत्यानन्दः,
सुगतः नामैकः सुप्रत्यानन्दः।

१ कुछ पुरुष दुर्गत और दुष्प्रत्यानद— कृतघ्न होते हैं, २. कुछ पुरुष दुर्गत और सुप्रत्यानद— कृतज्ञ होते हैं, ३. कुछ पुरुष सुगत और दुष्प्रत्यानद— कृतघ्न होते हैं, ४ कुछ पुरुष सुगत और सुप्रत्यानद— कृतज्ञ होते हैं।

४५८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दुग्गए णाममेगे दुग्गतिगामी,
दुग्गए णाममेगे सुग्गतिगामी,
सुग्गए णाममेगे दुग्गतिगामी,
सुग्गए णाममेगे सुग्गतिगामी।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दुर्गतः नामैकः दुर्गतिगामी,
दुर्गतः नामैकः सुगतिगामी,
सुगतः नामैकः दुर्गतिगामी,
सुगतः नामैकः सुगतिगामी।

४५८ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष दुर्गत और दुर्गतिगामी होते हैं, २ कुछ पुरुष दुर्गत और सुगतिगामी होते हैं, ३ कुछ पुरुष सुगत और दुर्गतिगामी होते हैं, ४. कुछ पुरुष सुगत और सुगतिगामी होते हैं।

४५९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दुग्गए णाममेगे दुग्गतिं गते,
दुग्गए णाममेगे सुग्गतिं गते,
सुग्गए णाममेगे दुग्गतिं गते,
सुग्गए णाममेगे सुग्गतिं गते।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दुर्गतः नामैकः दुर्गतिं गतः,
दुर्गतः नामैकः सुगतिं गतः,
सुगतः नामैकः दुर्गतिं गतः,
सुगतः नामैकः सुगतिं गतः।

४५९ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष दुर्गत होकर दुर्गति को प्राप्त हुए हैं, २ कुछ पुरुष दुर्गत होकर सुगति को प्राप्त हुए हैं, ३ कुछ पुरुष सुगत होकर दुर्गति को प्राप्त हुए हैं, ४. कुछ पुरुष सुगत होकर सुगति को प्राप्त हुए हैं।

तम-जोति-पदं

तमः-ज्योतिः-पदम्

तम-ज्योति-पद

४६०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
तमे णाममेगे तमे,
तमे णाममेगे जोती,
जोती णाममेगे तमे,
जोती णाममेगे जोती।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
तमो नामैकः तमः,
तमो नामैकः ज्योतिः,
ज्योतिर्नामैकः तमः,
ज्योतिर्नामैकः ज्योतिः।

४६० पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष पहले भी तम—अज्ञानी होते हैं और पीछे भी तम—अज्ञानी ही होते हैं, २ कुछ पुरुष पहले तम होते हैं, पर पीछे ज्योति—ज्ञानी हो जाते हैं, ३. कुछ पुरुष पहले ज्योति होते हैं, पर पीछे तम हो जाते हैं, ४. कुछ पुरुष पहले भी ज्योति होते हैं और पीछे भी ज्योति ही होते हैं।

४६१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
तमे णाममेगे तमबले,
तमे णाममेगे जोतिबले,
जोती णाममेगे तमबले,
जोती णाममेगे जोतीबले।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
तमो नामैकः तमोबलः,
तमो नामैकः ज्योतिर्बलः,
ज्योतिर्नामैकः तमोबलः,
ज्योतिर्नामैकः ज्योतिर्बलः।

४६१. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष तम और तमोबल—असदाचारी होते हैं, २. कुछ पुरुष तम और ज्योतिबल—सदाचारी होते हैं, ३. कुछ पुरुष ज्योति और तमोबल होते हैं, ४. कुछ पुरुष ज्योति और ज्योतिबल होते हैं।

४६२. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
तमे णाममेगे तमबलपलज्जणे,
तमे णाममेगे जोतिबलपलज्जणे,
जोती णाममेगे तमबलपलज्जणे,
जोती णाममेगे जोतिबलपलज्जणे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
तमो नामैकः तमोबलप्ररञ्जनः,
तमो नामैकः ज्योतिर्बलप्ररञ्जनः,
ज्योति र्नामैकः तमोबलप्ररञ्जनः,
ज्योति र्नामैकः ज्योतिर्बलप्ररञ्जनः।

४६२. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष तम और तमोबल में अनुरक्त होते हैं, २. कुछ पुरुष तम और ज्योतिबल में अनुरक्त होते हैं, ३. कुछ पुरुष ज्योति और तमोबल में अनुरक्त होते है, ४. कुछ पुरुष ज्योति और ज्योतिबल में अनुरक्त होते है।

परिण्णात-अपरिण्णात-पदं

परिज्ञात-अपरिज्ञात-पदम्

परिज्ञात-अपरिज्ञात-पद

४६३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
परिण्णातकम्मे णाममेगे,
णो परिण्णातसण्णे,
परिण्णातसण्णे णाममेगे,
णो परिण्णातकम्मे,
एगे परिण्णातकम्मेवि,
परिण्णातसण्णेवि,
एगे णो परिण्णातकम्मे,
णो परिण्णातसण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
परिज्ञातकर्मा नामैकः, नो परिज्ञातसंज्ञः,
परिज्ञातसंज्ञः नामैकः, नो परिज्ञातकर्मा,
एकः परिज्ञातकर्माऽपि, परिज्ञातसंज्ञोऽपि,
एकः नो परिज्ञातकर्मा, नो परिज्ञातसंज्ञः।

४६३. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष परिज्ञातकर्मा होते हैं, पर परिज्ञात संज्ञ नहीं होते—हिंसा आदि के परिहर्ता होते है, पर अनासक्त नहीं होते, २ कुछ पुरुष परिज्ञातसंज्ञ होते हैं, पर परिज्ञात कर्मा नहीं होते ३ कुछ पुरुष परिज्ञातकर्मा भी होते है और परिज्ञातसंज्ञ भी होते हैं, ४. कुछ पुरुष न परिज्ञातकर्मा होते है और न परिज्ञातसंज्ञ ही होते है।

४६४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
परिण्णातकम्मे णाममेगे,
णो परिण्णातगिहावासे,
परिण्णातगिहावासे णाममेगे,
णो परिण्णातकम्मे,
एगे परिण्णातकम्मेवि,
परिण्णातगिहावासेवि,
एगे णो परिण्णातकम्मे,
णो परिण्णातगिहावासे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
परिज्ञातकर्मा नामैकः,
नो परिज्ञातगृहावासः,
परिज्ञातगृहावासः नामैकः,
नो परिज्ञातकर्मा,
एकः परिज्ञातकर्माऽपि,
परिज्ञातगृहावासोऽपि,
एकः नो परिज्ञातकर्मा,
नो परिज्ञातगृहावासः।

४६४ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष परिज्ञातकर्मा होते है, पर परिज्ञातगृहवास नहीं होते, २ कुछ पुरुष परिज्ञातगृहवास होते है, पर परिज्ञातकर्मा नहीं होते, ३. कुछ पुरुष परिज्ञातकर्मा भी होते है और परिज्ञातगृहवास भी होते है ४. कुछ पुरुष न परिज्ञातकर्मा होते हैं और न परिज्ञातगृहवास ही होते है।

४६५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
परिण्णातसण्णे णाममेगे,
णो परिण्णातगिहावासे,
परिण्णातगिहावासे णाममेगे,
णो परिण्णातसण्णे,

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
परिज्ञातसंज्ञः नामैकः,
नो परिज्ञातगृहावासः,
परिज्ञातगृहावासः नामैकः,
नो परिज्ञातसंज्ञः,

४६५ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष परिज्ञातसंज्ञ होते है, पर परिज्ञातगृहवास नहीं होते, २. कुछ पुरुष परिज्ञातगृहवास होते है, पर परिज्ञातसंज्ञ नहीं होते, ३. कुछ पुरुष परिज्ञातसंज्ञ भी होते है और परिज्ञातगृहवास भी होते है,

एगे परिण्णातसण्णेवि,
परिण्णातगिहावासेवि,
एगे णो परिण्णातसण्णे,
णो परिण्णातगिहावासे।

एकः परिज्ञातसंज्ञोऽपि,
परिज्ञातगृहावासोऽपि,
एकः नो परिज्ञातसंज्ञः,
नो परिज्ञातगृहावासः।

४ कुछ पुरुष न परिज्ञातसंज्ञ होते हैं और न परिज्ञातगृहवास ही होते हैं।

इहत्थ-परत्थ-पदं

४६६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
इहत्थे णाममेगे, णो परत्थे,
परत्थे णाममेगे, णो इहत्थे,
एगे इहत्थेवि, परत्थेवि,
एगे णो इहत्थे, णो परत्थे।

इहार्थ-परार्थ-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
इहार्थः नामैकः, नो परार्थः,
परार्थः नामैकः, नो इहार्थः,
एकः इहार्थोऽपि, परार्थोऽपि,
एकः नो इहार्थः, नो परार्थः।

इहार्थ-परार्थ-पद

४६६ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष इहार्थ—लौकिक प्रयोजन वाले होते हैं, परार्थ—पारलौकिक प्रयोजन वाले नहीं होते, २ कुछ पुरुष परार्थ होते हैं, इहार्थ नहीं होते, ३. कुछ पुरुष इहार्थ भी होते हैं और परार्थ भी होते हैं, ४. कुछ पुरुष न इहार्थ होते हैं और न परार्थ ही होते हैं।

हाणि-वुड्डि-पदं

४६७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
एगेणं णाममेगे वड्डति,
एगेणं हायति,
एगेणं णाममेगे वड्डति,
दोहिं हायति,
दोहिं णाममेगे वड्डति,
एगेणं हायति,
दोहिं णाममेगे वड्डति,
दोहिं हायति।

हानि-वृद्धि-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
एकेन नामैकः वर्धते, एकेन हीयते,
एकेन नामैकः वर्धते, द्वाभ्यां हीयते,
द्वाभ्यां नामैकः वर्धते, एकेन हीयते,
द्वाभ्यां नामैकः वर्धते, द्वाभ्यां हीयते।

हानि-वृद्धि-पद

४६७ पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष एक से बढ़ते हैं, एक से हीन होते हैं—ज्ञान से बढते हैं, और मोह से हीन होते हैं, २ कुछ पुरुष एक से बढते हैं, दो से हीन होते हैं—ज्ञान से बढते हैं, राग और द्वेष से हीन होते हैं, ३ कुछ पुरुष दो से बढते हैं, एक से हीन होते हैं—ज्ञान और संयम से बढ़ते हैं, मोह से हीन होते हैं, ४. कुछ पुरुष दो से बढते हैं, दो से हीन होते हैं—ज्ञान और संयम से बढते हैं, राग और द्वेष से हीन होते हैं[१८]।

आइण्ण-खलुंक-पदं

४६८. चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—

आकीर्ण-खलुंक-पदम्

चत्वारः प्रकन्थकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

आकीर्ण-खलुंक-पद

४६८ घोड़े चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ घोड़े पहले भी आकीर्ण—वेगवान्

आइण्णे णाममेगे आइण्णे, आइण्णे णाममेगे खलुंके, खलुंके णाममेगे आइण्णे, खलुंके णाममेगे खलुंके।	आकीर्णः नामैकः आकीर्णः, आकीर्णः नामैकः खलुंकः, खलुंकः नामैकः आकीर्णः, खलुंकः नामैकः खलुंकः।	होते हैं और पीछे भी आकीर्ण ही होते हैं, २. कुछ घोड़े पहले आकीर्ण होते हैं, किन्तु पीछे खलुक—मंद हो जाते है, ३. कुछ घोड़े पहले खलुक होते है, किन्तु पीछे आकीर्ण हो जाते हैं, ४. कुछ घोड़े पहले भी खलुक होते हैं और पीछे भी खलुक ही होते हैं।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— आइण्णे णाममेगे आइण्णे, °आइण्णे णाममेगे खलुंके, खलुंके णाममेगे आइण्णे, खलुंके णाममेगे खलुंके।°	एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— आकीर्णः नामैकः आकीर्णः, आकीर्णः नामैकः खलुंकः, खलुंकः नामैकः आकीर्णः, खलुंकः नामैकः खलुंकः।	इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं— १. कुछ पुरुष पहले भी आकीर्ण होते है और पीछे भी आकीर्ण ही होते है, २ कुछ पुरुष पहले आकीर्ण होते हैं, किन्तु पीछे खलुक हो जाते है, ३. कुछ पुरुष पहले खलुक होते है, किन्तु पीछे आकीर्ण हो जाते है ४. कुछ पुरुष पहले भी खलुक होते है और पीछे भी खलुक ही होते है।
४६६. चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा— आइण्णे णाममेगे आइण्णताए वहति, आइण्णे णाममेगे खलुंकताए वहति, खलुंके णाममेगे आइण्णताए वहति, खलुंके णाममेगे खलुंकताए वहति।	चत्वार प्रकन्थका प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— आकीर्णः नामैकः आकीर्णतया वहति, आकीर्णः नामैकः खलुंकतया वहति, खलुंकः नामैकः आकीर्णतया वहति, खलुंकः नामैकः खलुंकतया वहति।	४६६. घोड़े चार प्रकार के होते है— १ कुछ घोड़े आकीर्ण होते है और आकीर्णरूप मे ही व्यवहार करते हैं, २. कुछ घोडे आकीर्ण होते है, पर खलुकरूप मे व्यवहार करते है, ३. कुछ घोडे खलुक होते है, पर आकीर्णरूप मे व्यवहार करते है, ४. कुछ घोड़े खलुक ही होते हैं और खलुकरूप में ही व्यवहार करते है।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— आइण्णे णाममेगे आइण्णताए वहति, आइण्णे णाममेगे खलुंकताए वहति, खलुंके णाममेगे आइण्णताए वहति, खलुंके णाममेगे खलुंकताए वहति।	एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— आकीर्णः नामैकः आकीर्णतया वहति, आकीर्णः नामैकः खलुंकतया वहति, खलुंकः नामैकः आकीर्णतया वहति, खलुंकः नामैकः खलुंकतया वहति।	इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं— १. कुछ पुरुष आकीर्ण होते है और आकीर्णरूप मे ही व्यवहार करते है २. कुछ पुरुष आकीर्ण होते है, पर खलुकरूप में व्यवहार करते हैं, ३. कुछ पुरुष खलुक होते है, पर आकीर्णरूप मे व्यवहार करते है ४. कुछ पुरुष खलुक ही होते हैं और खलुकरूप में ही व्यवहार करते है।

जाति-पदं

४७०. चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—
जातिसंपण्णे णाममेगे,
णो कुलसंपण्णे,
कुलसंपण्णे णाममेगे,
णो जातिसंपण्णे,
एगे जातिसंपण्णेवि,
कुलसंपण्णेवि,
एगे णो जातिसंपण्णे,
णो कुलसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जातिसंपण्णे णाममेगे,
णो कुलसंपण्णे,
कुलसंपण्णे णाममेगे,
णो जातिसंपण्णे,
एगे जातिसंपण्णेवि,
कुलसंपण्णेवि,
एगे णो जातिसंपण्णे,
णो कुलसंपण्णे।

४७१. चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—
जातिसंपण्णे णाममेगे
णो बलसंपण्णे,
बलसंपण्णे णाममेगे,
णो जातिसंपण्णे,
एगे जातिसंपण्णेवि,
बलसंपण्णेवि,
एगे णो जातिसंपण्णे,
णो बलसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

जाति-पदम्

चत्वारः प्रकन्थकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
जातिसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः,
कुलसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्नः,
एकः जातिसम्पन्नोऽपि, कुलसम्पन्नोऽपि,
एकः नो जातिसम्पन्नः, नो कुलसम्पन्नः।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः,
कुलसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्नः,
एकः जातिसम्पन्नोऽपि, कुलसम्पन्नोऽपि,
एकः नो जातिसम्पन्नः, नो कुलसम्पन्नः।

चत्वारः प्रकन्थकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
जातिसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः,
बलसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्नः,
एकः जातिसम्पन्नोऽपि, बलसम्पन्नोऽपि,
एकः नो जातिसम्पन्नः, नो बलसम्पन्नः।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

जाति-पद

४७०. घोडे चार प्रकार के होते है—
१. कुछ घोड़े जाति-सम्पन्न होते है, कुल सम्पन्न नही होते, २. कुछ घोडे कुल-सम्पन्न होते है, जाति-सम्पन्न नही होते, कुछ घोडे जाति-सम्पन्न भी होते है और कुल-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ घोडे न जाति-सम्पन्न होते है और न कुल-सम्पन्न ही होते है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते है, कुल-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते है, जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते है और कुल-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते है और न कुल-सम्पन्न ही होते है।

४७१. घोडे चार प्रकार के होते है—
१ कुछ घोड़े जाति-सम्पन्न होते है, बल-सम्पन्न नही होते, २. कुछ घोडे बल-सम्पन्न होते है, जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ घोडे जाति-सम्पन्न भी होते हैं और बल-सम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ घोडे न जाति-सम्पन्न होते हैं और न बल-सम्पन्न ही होते है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—

जातिसंपण्णे णाममेगे,
णो बलसंपण्णे,
बलसंपण्णे णाममेगे,
णो जातिसंपण्णे,
एगे जातिसंपण्णेवि, बलसंपण्णेवि,
एगे णो जातिसंपण्णे,
णो बलसंपण्णे।

जातिसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः,
बलसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्नः,
एकः जातिसम्पन्नोऽपि, बलसम्पन्नोऽपि,
एकः नो जातिसम्पन्नः, नो बलसम्पन्नः।

१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते है, बल-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते है, जाति-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते है और बल-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते है और न बल-सम्पन्न ही होते है।

४७२. चत्तारि [प?]कंथगा पण्णत्ता,
तं जहा—
जातिसंपण्णे णाममेगे,
णो रूवसंपण्णे,
रूवसंपण्णे णाममेगे,
णो जातिसंपण्णे,
एगे जातिसंपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि,
एगे णो जातिसपण्णे,
णो रूवसंपण्णे।

चत्वारः (प्र?)कन्थकाः प्रज्ञप्ताः,
तद्यथा—
जातिसम्पन्नः नामैकः नो रूपसम्पन्नः,
रूपसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्नः,
एकः जातिसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि,
एकः नो जातिसम्पन्नः, नो रूपसम्पन्नः।

४७२. घोड़े चार प्रकार के होते है—
१. कुछ घोड़े जाति-सम्पन्न होते है, रूप-सम्पन्न नही होते, २. कुछ घोड़े रूप-सम्पन्न होते है, जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ घोड़े जाति-सम्पन्न भी होते है और रूप-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ घोड़े न जाति-सम्पन्न होते है और न रूप सम्पन्न ही होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया
पण्णत्ता, तं जहा—
जातिसंपण्णे णाममेगे,
णो रूवसंपण्णे,
रूवसंपण्णे णाममेगे,
णो जातिसंपण्णे,
एगे जातिसंपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि,
एगे णो जातिसंपण्णे,
णो रूवसंपण्णे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि,
तद्यथा—
जातिसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः,
रूपसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्नः,
एकः जातिसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि,
एकः नो जातिसम्पन्नः, नो रूपसम्पन्नः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते है, रूप-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते है, जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते है और रूप-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते है और न रूप-सम्पन्न ही होते है।

४७३. चत्तारि [प?] कंथगा पण्णत्ता,
तं जहा—
जातिसंपण्णे णाममेगे,
णो जयसंपण्णे,
जयसंपण्णे णाममेगे,
णो जातिसंपण्णे,
एगे जातिसंपण्णेवि, जयसंपण्णेवि,
एगे णो जातिसंपण्णे,
णो जयसंपण्णे।

चत्वारः (प्र?)कन्थकाः प्रज्ञप्ताः,
तद्यथा—
जातिसम्पन्नः नामैकः, नो जयसम्पन्नः,
जयसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्नः,
एकः जातिसम्पन्नोऽपि, जयसम्पन्नोऽपि,
एकः नो जातिसम्पन्नः, नो जयसम्पन्नः।

४७३. घोड़े चार प्रकार के होते है—
१ कुछ घोड़े जाति-सम्पन्न होते है, जय-सम्पन्न नही होते, २. कुछ घोड़े जय-सम्पन्न होते है, जाति-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ घोड़े जाति-सम्पन्न भी होते है और जय-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ घोड़े न जाति-सम्पन्न होते है और न जय-सम्पन्न ही होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जातिसंपण्णे नामेगे,
णो जयसंपण्णे,
जयसंपण्णे नामेगे,
णो जातिसंपण्णे,
एगे जातिसंपण्णेवि, जयसंपण्णेवि,
एगे णो जातिसंपण्णे,
णो जयसंपण्णे ।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिसम्पन्नः नामैकः, नो जयसम्पन्नः,
जयसम्पन्नः नामैकः, नो जातिसम्पन्नः,
एकः जातिसम्पन्नोऽपि, जयसम्पन्नोऽपि,
एकः नो जातिसम्पन्नः, नो जयसम्पन्नः ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न होते है, जय-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष जय-सम्पन्न होते है, जाति-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष जाति-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ पुरुष न जाति-सम्पन्न होते है और न जय-सम्पन्न ही होते है ।

कुल-पदं

४७४. *चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसंपण्णे णाममेगे,
णो बलसंपण्णे,
बलसंपण्णे णाममेगे,
णो कुलसंपण्णे,
एगे कुलसंपण्णेवि, बलसंपण्णेवि,
एगे णो कुलसंपण्णे,
णो बलसंपण्णे ।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसंपण्णे णाममेगे,
णो बलसंपण्णे,
बलसंपण्णे णाममेगे,
णो कुलसंपण्णे,
एगे कुलसंपण्णेवि, बलसंपण्णेवि,
एगे णो कुलसंपण्णे,
णो बलसंपण्णे ।

कुल-पदम्

चत्वारः प्रकन्थकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कुलसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः,
बलसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः,
एकः कुलसम्पन्नोऽपि, बलसम्पन्नोऽपि,
एकः नो कुलसम्पन्नः, नो बलसम्पन्नः ।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः,
बलसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः,
एकः कुलसम्पन्नोऽपि, बलसम्पन्नोऽपि,
एकः नो कुलसम्पन्नः, नो बलसम्पन्नः ।

कुल-पद

४७४ घोडे चार प्रकार के होते है—
१ कुछ घोडे कुल-सम्पन्न होते है, बल-सम्पन्न नही होते, २. कुछ घोडे बल-सम्पन्न होते है, कुल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ घोडे कुल-सम्पन्न भी होते है और बल-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ घोडे न कुल-सम्पन्न होते है और न बल-सम्पन्न ही होते है ।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते है, बल-सम्पन्न नही होते, २ कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते है, कुल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते है और बल-सम्पन्न भी होते है, ४ कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते है और न बल-सम्पन्न ही होते है ।

४७५. चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसंपण्णे णाममेगे,
णो रूवसंपण्णे,
रूवसंपण्णे णाममेगे,
णो कुलसंपण्णे,

चत्वारः प्रकन्थकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कुलसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः,
रूपसम्पन्नः नामैकः, नो कुलसम्पन्नः,

४७५ घोडे चार प्रकार के होते है—
१. कुछ घोडे कुल-सम्पन्न होते है, रूप-सम्पन्न नही होते, २. कुछ घोडे रूप-सम्पन्न होते है, कुल-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ घोड़े कुल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी

एगे कुलसंपण्णेवि, रूवसपण्णेवि,
एगे णो कुल सपण्णे,
णो रूवसंपण्णे ।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसंपण्णे णाममेगे,
णो रूवसंपण्णे,
रूवसंपण्णे णाममेगे,
णो कुलसंपण्णे,
एगे कुलसंपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि,
एगे णो कुलसंपण्णे,
णो रूवसंपण्णे ।

एक: कुलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि,
एक: नो कुलसम्पन्न:, नो रूपसम्पन्न: ।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्न: नामैक:, नो रूपसम्पन्न:,
रूपसम्पन्न: नामैक:, नो कुलसम्पन्न:,
एक: कुलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि,
एक नो कुलसम्पन्न:, नो रूपसम्पन्न: ।

होते है, ४. कुछ घोड़े न कुल-सम्पन्न होते है और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते है, रूप-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते है, कुल-सम्पन्न नही होते, ३ कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते है और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते है और न रूप-सम्पन्न ही होते है।

४७६. चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसंपण्णे णाममेगे,
णो जयसंपण्णे,
जयसंपण्णे णाममेगे,
णो कुलसंपण्णे,
एगे कुलसंपण्णेवि, जयसंपण्णेवि,
एगे णो कुलसंपण्णे,
णो जयसंपण्णे ।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसंपण्णे णाममेगे,
णो जयसंपण्णे,
जयसंपण्णे णाममेगे,
णो कुलसंपण्णे,
एगे कुलसंपण्णेवि, जयसंपण्णेवि,
एगे णो कुलसंपण्णे,
णो जयसंपण्णे ।°

चत्वार: प्रकन्थका:, प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
कुलसम्पन्न: नामैक:, नो जयसम्पन्न:,
जयसम्पन्न: नामैक:, नो कुलसम्पन्न:,
एक: कुलसम्पन्नोऽपि, जयसम्पन्नोऽपि,
एक: नो कुलसम्पन्न:, नो जयसम्पन्न: ।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कुलसम्पन्न: नामैक:, नो जयसम्पन्न:,
जयसम्पन्न नामैक:, नो कुलसम्पन्न:,
एक: कुलसम्पन्नोऽपि, जयसम्पन्नोऽपि,
एक. नो कुलसम्पन्न:, नो जयसम्पन्न: ।

४७६. घोडे चार प्रकार के होते है—
१. कुछ घोडे कुल-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नही होते, २. कुछ घोड़े जय-सम्पन्न होते है, कुल-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ घोडे कुल-सम्पन्न भी होते है और जय-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ घोडे न कुल-सम्पन्न होते है और न जय-सम्पन्न ही होते है।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न होते है, जय-सम्पन्न नही होते, २. कुछ पुरुष जय-सम्पन्न होते हैं, कुल-सम्पन्न नही होते, ३. कुछ पुरुष कुल-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते है, ४. कुछ पुरुष न कुल-सम्पन्न होते है और न जय-सम्पन्न ही होते हैं।

बल-पदं

बल-पदम्

बल-पद

४७७. °चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—

चत्वार: प्रकन्थका: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—

४७७. घोड़े चार प्रकार होते है—

बलसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि, एगे णो बलसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे ।	बलसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः, रूपसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः, एकः बलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एकः नो बलसम्पन्नः, नो रूपसम्पन्नः ।	१. कुछ घोड़े बल-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते, २. कुछ घोड़े रूप-सम्पन्न होते हैं, बल-सम्पन्न नहीं होते, ३. कुछ घोड़े बल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ घोड़े न बल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—	एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
बलसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णेवि, रूवसंपण्णेवि, एगे णो बलसंपण्णे, णो रूवसंपण्णे ।	बलसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः, रूपसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः, एकः बलसम्पन्नोऽपि, रूपसम्पन्नोऽपि, एकः नो बलसम्पन्नः, नो रूपसम्पन्नः ।	१. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते, २. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, बल-सम्पन्न नहीं होते, ३. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न भी होते हैं और रूप-सम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ पुरुष न बल-सम्पन्न होते हैं और न रूप-सम्पन्न ही होते हैं।
४७८. चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, तं जहा—	चत्वारः प्रकन्थकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	४७८. घोड़े चार प्रकार के होते हैं—
बलसंपण्णे णाममेगे, णो जयसंपण्णे, जयसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णेवि, जयसंपण्णेवि, एगे णो बलसंपण्णे, णो जयसंपण्णे ।	बलसम्पन्नः नामैकः, नो जयसम्पन्नः, जयसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः, एकः बलसम्पन्नोऽपि, जयसम्पन्नोऽपि, एकः नो बलसम्पन्नः, नो जयसम्पन्नः ।	१. कुछ घोड़े बल-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नहीं होते, २. कुछ घोड़े जय-सम्पन्न होते हैं, बल-सम्पन्न नहीं होते, ३. कुछ घोड़े बल-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ घोड़े न बल-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न ही होते हैं।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—	एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
बलसंपण्णे णाममेगे, णो जयसंपण्णे, जयसंपण्णे णाममेगे, णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णेवि, जयसंपण्णेवि, एगे णो बलसंपण्णे, णो जयसंपण्णे ।°	बलसम्पन्नः नामैकः, नो जयसम्पन्नः, जयसम्पन्नः नामैकः, नो बलसम्पन्नः, एकः बलसम्पन्नोऽपि, जयसम्पन्नोऽपि, एकः नो बलसम्पन्नः, नो जयसम्पन्नः ।	१. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नहीं होते, २. कुछ पुरुष जय-सम्पन्न होते हैं, बल-सम्पन्न नहीं होते। ३. कुछ पुरुष बल-सम्पन्न भी होते हैं, और जय-सम्पन्न भी होते हैं। ४. कुछ पुरुष न बल-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न ही होते हैं।

रूव-पदं

४७९. चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—
रूवसपण्णे णाममेगे, णो जयसपण्णे,
जयसपण्णे णाममेगे, णो रूवसपण्णे,
एगे रूवसपण्णेवि, जयसंपण्णेवि,
एगे णो रूवसपण्ण, णो जयसपण्णे।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवसंपण्णे णाममेगे, णो जयसपण्ण,
जयसंपण्णे णाममेगे, णो रूवसंपण्णे,
एगे रूवसपण्णेवि, जयसपण्णेवि,
एगे णो रूवसपण्णे, णो जयसंपण्णे।

सीह-सियाल-पदं

४८०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सीहत्ताए णाममेगे णिक्खंते सीहत्ताए विहरइ,
सीहत्ताए णाममेगे णिक्खंते सीयालत्ताए विहरइ,
सीयालत्ताए णाममेगे णिक्खंते सीहत्ताए विहरइ,
सीयालत्ताए णाममेगे णिक्खंते सीयालत्ताए विहरइ।

रूप-पदम्

चत्वारः प्रकन्थकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
रूपसम्पन्नः नामैकः, नो जयसम्पन्नः,
जयसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः,
एकः रूपसम्पन्नोऽपि, जयसम्पन्नोऽपि,
एकः नो रूपसम्पन्नः, नो जयसम्पन्नः।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रूपसम्पन्नः नामैकः, नो जयसम्पन्नः,
जयसम्पन्नः नामैकः, नो रूपसम्पन्नः,
एकः रूपसम्पन्नोऽपि, जयसम्पन्नोऽपि,
एकः नो रूपसम्पन्नः, नो जयसम्पन्नः।

सिंह-शृगाल-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सिंहतया नामैकः निष्क्रान्तः सिंहतया विहरति,
सिंहतया नामैकः निष्क्रान्तः शृगालतया विहरति,
शृगालतया नामैकः निष्क्रान्तः सिंहतया विहरति,
शृगालतया नामैकः निष्क्रान्तः शृगालतया विहरति,

रूप-पद

४७९. घोड़े चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ घोड़े रूप-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नहीं होते, २. कुछ घोड़े जय-सम्पन्न होते हैं, रूप सम्पन्न नहीं होते, ३. कुछ घोड़े रूप-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ घोड़े न रूप-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न ही होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न होते हैं, जय-सम्पन्न नहीं होते, २. कुछ पुरुष जय-सम्पन्न होते हैं, रूप-सम्पन्न नहीं होते, ३. कुछ पुरुष रूप-सम्पन्न भी होते हैं और जय-सम्पन्न भी होते हैं, ४. कुछ पुरुष न रूप-सम्पन्न होते हैं और न जय-सम्पन्न ही होते हैं।

सिंह-शृगाल-पद

४८०. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष सिंहवृत्ति से निष्क्रांत—प्रव्रजित होते हैं और सिंहवृत्ति से ही उसका पालन करते हैं, २. कुछ पुरुष सिंहवृत्ति से निष्क्रान्त होते हैं और सियारवृत्ति से उसका पालन करते हैं, ३. कुछ पुरुष सियारवृत्ति से निष्क्रान्त होते हैं और सिंहवृत्ति से उसका पालन करते हैं, ४. कुछ पुरुष सियारवृत्ति से निष्क्रान्त होते हैं और सियारवृत्ति से ही उसका पालन करते हैं।

सम-पदं

४८१. चत्तारि लोगे समा पण्णत्ता, तं जहा—
अपइट्ठाणे णरए, जंबुद्दीवे दीवे, पालए जाणविमाणे, सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे।

४८२. चत्तारि लोगे समा सपक्खिं सपडिदिसिं पण्णत्ता, तं जहा—
सीमंतए णरए, समयक्खेत्ते, उडुविमाणे, इसीपब्भारा पुढवी।

सम-पदम्

चत्वार. लोके समा प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
अप्रतिष्ठानो नरक., जम्बूद्वीपं द्वीपं, पालक यानविमानं, सर्वार्थसिद्ध महाविमानम्।

चत्वार. लोके समा सपक्ष सप्रतिदिश प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
सीमान्तक नरक, समयक्षेत्र, उडुविमान, ईषत्प्राग्भारा पृथिवी।

सम-पद

४८१. लोक मे चार समान है (एक लाख योजन के है)
१. अप्रतिष्ठान नरक—सातवें नरक का एक नरकावास, २. जम्बूद्वीप नामक द्वीप, ३. पालक यान विमान—सौधर्मेन्द्र का यानविमान ४. स्वार्थसिद्ध महाविमान।

४८२. लोक मे चार समान (पैंतालीस लाख योजन) समक्ष तथा सप्रतिदिश हैं—
१ सीमन्तक नरक—पहले नरक का एक नरकावास, २. समयक्षेत्र, ३ उडुविमान—सौधर्म कल्प के प्रथम प्रस्तर का एक विमान, ४ ईषद्-प्राग्भारा पृथ्वी।

बिसरीर-पदं

४८३. उड्ढलोगे णं चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता, तं जहा—
पुढविकाइया, आउकाइया, वणस्सइकाइया, उराला तसा पाणा।

४८४. अहोलोगे णं चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता, तं जहा—
°पुढविकाइया आउकाइया, वणस्सइकाइया, उराला तसा पाणा।

४८५. तिरियलोगे णं चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता, तं जहा—
पुढविकाइया, आउकाइया, वणस्सइकाइया, उराला तसा पाणा।°

द्विशरीर-पदम्

ऊर्ध्वलोके चत्वार. द्विशरीरा. प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पृथ्वीकायिका, अप्कायिका, वनस्पतिकायिका, उदारा त्रसा प्राणा।

अधोलोके चत्वार: द्विशरीरा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पृथ्वीकायिका:, अप्कायिका, वनस्पतिकायिका, उदारा: त्रसा प्राणा।

तिर्यग्लोके चत्वार द्विशरीरा प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
पृथ्वीकायिका:, अप्कायिका, वनस्पतिकायिका, उदारा: त्रसा: प्राणा.।

द्विशरीर-पद

४८३. ऊर्ध्व लोक मे चार द्विशरीरी—दूसरे जन्म मे सिद्ध गतिगामी हो सकते है—
१ पृथ्वीकायिक जीव, २ अप्कायिक जीव, ३ वनस्पतिकायिक जीव, ४. उदार त्रस प्राण पञ्चेन्द्रिय जीव।

४८४. अधोलोक मे चार द्विशरीरी हो सकते है—
१ पृथ्वीकायिक जीव, २. अप्कायिक जीव, ३. वनस्पतिकायिक जीव, ४. उदार त्रस प्राण।

४८५. तिर्यक्लोक में चार द्विशरीरी हो सकते है—
१ पृथ्वीकायिक जीव २. अप्कायिक जीव ३. वनस्पतिकायिक जीव ४. उदार त्रस प्राण।

सत्त-पदं

४८६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
हिरिसत्ते, हिरिमणसत्ते,
चलसत्ते, थिरसत्ते।

सत्त्व-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ह्रीसत्त्वः, ह्रीमनःसत्त्वः, चलसत्त्वः, स्थिरसत्त्वः।

सत्त्व-पद

४८६. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. ह्रीसत्त्व—विकट परिस्थिति में भी लज्जावश कायर न होने वाला
२. ह्रीमनःसत्त्व—विकट परिस्थिति में भी मन में कायर न होने वाला
३. चलसत्त्व—अस्थिरसत्त्व वाला
४. स्थिरसत्त्व—सुस्थिरसत्त्व वाला[९९]।

पडिमा-पदं

४८७. चत्तारि सेज्जपडिमाओ पण्णत्ताओ।
४८८. चत्तारि वत्थपडिमाओ पण्णत्ताओ।
४८९. चत्तारि पायपडिमाओ पण्णत्ताओ।
४९०. चत्तारि ठाणपडिमाओ पण्णत्ताओ।

प्रतिमा-पदम्

चतस्रः शय्याप्रतिमाः प्रज्ञप्ताः।
चतस्रः वस्त्रप्रतिमाः प्रज्ञप्ताः।
चतस्रः पात्रप्रतिमाः प्रज्ञप्ताः।
चतस्रः स्थानप्रतिमाः प्रज्ञप्ताः।

प्रतिमा-पद

४८७. चार शय्या प्रतिमाएं[१००] हैं।
४८८. चार वस्त्र प्रतिमाएं[१०१] हैं।
४८९. चार पात्र प्रतिमाएं[१०२] हैं।
४९०. चार स्थान प्रतिमाएं हैं।

सरीर-पदं

४९१. चत्तारि सरीरगा जीवफुडा पण्णत्ता, तं जहा—
वेउव्विए, आहारए,
तेयए, कम्मए।
४९२. चत्तारि सरीरगा कम्मुम्मीसगा पण्णत्ता, तं जहा—
ओरालिए, वेउव्विए,
आहारए, तेयए।

शरीर-पदम्

चत्वारि शरीरकाणि जीवस्पृष्टानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वैक्रियं, आहारक, तैजस, कर्मकम्।
चत्वारि शरीरकाणि कर्मोन्मिश्रकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजसम्।

शरीर-पद

४९१. चार शरीर जीवस्पृष्ट—जीव के सहवर्ती होते हैं।
१. वैक्रिय २. आहारक ३. तैजस ४. कार्मण[१०३]।
४९२. चार शरीर कर्मउन्मिश्रक—कार्मण शरीर से संयुक्त ही होते हैं—
१. औदारिक २. वैक्रिय ३. आहारक ४. तैजस[१०४]।

फुड-पदं

४९३. चउहिं अत्थिकाएहिं लोगे फुडे पण्णत्ते, तं जहा—
धम्मत्थिकाएणं, अधम्मत्थिकाएणं,
जीवत्थिकाएणं, पुग्गलत्थिकाएणं।

स्पृष्ट-पदम्

चतुर्भिः अस्तिकायैः लोकः स्पृष्टः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
धर्मास्तिकायेन, अधर्मास्तिकायेन,
जीवास्तिकायेन, पुद्गलास्तिकायेन।

स्पृष्ट-पद

४९३. चार अस्तिकायों से समूचा लोक स्पृष्ट—व्याप्त है—१. धर्मास्तिकाय से २. अधर्मास्तिकाय से ३. जीवास्तिकाय से ४. पुद्गलास्तिकाय से।

४६४. चउहिं बादरकाएहिं उववज्जमाणेहिं लोगे फुडे पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविकाइएहिं, आउकाइएहिं, वाउकाइएहिं, वणस्सइकाइएहिं।

चतुर्भि: बादरकायै: उपपद्यमानैः लोकः स्पृष्टः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकैः, अप्कायिकैः, वायुकायिकैः, वनस्पतिकायिकैः।

४६४. चार उत्पन्न होते हुए अपर्याप्तक बादरकायिक जीवों से समूचा लोक स्पृष्ट है—
१. पृथ्वीकायिक जीवों से २. अप्कायिक जीवों से ३. वायुकायिक जीवों से ४. वनस्पतिकायिक जीवों से।

तुल्ल-पदं

४६५. चत्तारि पएसग्गेणं तुल्ला पण्णत्ता, तं जहा—
धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, लोगागासे, एगजीवे।

तुल्य-पदम्

चत्वारः प्रदेशाग्रेण तुल्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोकाकाशः, एकजीव।

तुल्य-पद

४६५. चार प्रदेशाग्र (प्रदेश-परिमाण) से तुल्य है असंख्य प्रदेशी है—
१ धर्मास्तिकाय २ अधर्मास्तिकाय ३. लोकाकाश ४ एक जीव।

णो सुपस्स-पदं

४६६. चउण्हमेगं सरीरं णो सुपस्सं भवइ, तं जहा—
पुढविकाइयाणं, आउकाइयाणं, तेउकाइयाणं, वणस्सइकाइयाणं।

नो सुपश्य-पदम्

चतुर्णां एकं शरीरं नो सुपश्यं भवति, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकानां, अप्कायिकानां, तेजस्कायिकानां, वनस्पतिकायिकानाम्।

नो सुपश्य-पद

४६६. चार काय के जीवों का एक शरीर सुपश्य—सहज दृश्य नहीं होता—
१. पृथ्वीकायिक जीवों का २. अप्कायिक जीवों का ३ तेजस्कायिक जीवों का ४. साधारण वनस्पतिकायिक जीवों का।

इंदियत्थ-पदं

४६७ चत्तारि इंदियत्था पुट्ठा वेदेंति, तं जहा—
सोइंदियत्थे, घाणिंदियत्थे, जिब्भिंदियत्थे, फासिंदियत्थे।

इन्द्रियार्थ-पदम्

चत्वार इन्द्रियार्थाः स्पृष्टाः वेद्यन्ते, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियार्थः, घ्राणेन्द्रियार्थः, जिह्वेन्द्रियार्थः, स्पर्शेन्द्रियार्थः।

इन्द्रियार्थ-पद

४६७ चार इन्द्रिय-विषय इन्द्रियों से स्पृष्ट होने पर ही संवेदित किए जाते हैं—
१. श्रोत्रेन्द्रियविषय—शब्द
२. घ्राणेन्द्रियविषय—गंध
३ रसनेन्द्रियविषय—रस।
४ स्पर्शनेन्द्रियविषय—स्पर्श।

अलोग-अगमण-पदं

४६८. चउहिं ठाणेहिं जीवा य पोग्गला य णो संचाएंति बहिया लोगंता गमणयाए, तं जहा—
गतिअभावेणं, णिरुवग्गहयाए, लुक्खताए, लोगाणुभावेणं।

अलोक-अगमन-पदम्

चतुर्भिः स्थानैः जीवाश्च पुद्गलाश्च नो शक्नुवन्ति बहिस्तात् लोकान्तात् गमनाय, तद्यथा—
गत्यभावेन, निरुपग्रहतया, रूक्षतया, लोकानुभावेन।

अलोक-अगमन-पद

४६८. चार कारणों से जीव तथा पुद्गल लोक से बाहर गमन नहीं कर सकते—
१. गति के अभाव से २. निरुपग्रहता—गति तत्त्व का आलम्बन न होने से ३. रूक्ष होने से ४. लोकानुभाव—लोक की सहज मर्यादा होने से[१०५]।

णात-पदं

४९९. चउव्विहे णाते पण्णत्ते, तं जहा—
आहरणे, आहरणतद्देसे,
आहरणतद्दोसे, उवण्णासोवणए।

ज्ञात-पदम्

चतुर्विधः ज्ञातः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
आहरणं, आहरणतद्देशः, आहरणतद्दोषः,
उपन्यासोपनयः।

ज्ञात-पद

४९९. ज्ञात चार प्रकार के होते है—
१. आहरण—सामान्य उदाहरण
२. आहरण तद्देश—एकदेशीय उदाहरण
३. आहरण तद्दोष—साध्यविकल आदि उदाहरण ४. उपन्यासोपनय—वादी के द्वारा कृत उपन्यास के विघटन के लिए प्रतिवादी द्वारा किया जाने वाला विरुद्धार्थक उपनय[१०६]।

५००. आहरणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—
अवाए, उवाए, ठवणाकम्मे,
पडुप्पण्णविणासी।

आहारण चतुर्विध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
अपाय, उपाय, स्थापनाकर्म,
प्रत्युत्पन्नविनाशी।

५००. आहरण चार प्रकार का होता है—
१. अपाय—हेयधर्म का ज्ञापक दृष्टान्त
२ उपाय—ग्राह्य वस्तु के उपाय बताने वाला दृष्टान्त ३. स्थापनाकर्म—स्वाभिमत की स्थापना के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला दृष्टान्त ४. प्रत्युत्पन्नविनाशी—उत्पन्न दूषण का परिहार करने के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला दृष्टान्त[१०७]।

५०१ आहरणतद्देसे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—
अणुसिट्ठी, उवालंभे,
पुच्छा, णिस्सावयणे।

आहरणतद्देश. चतुर्विध प्रज्ञप्त, तद्यथा—
अनुशिष्टि, उपालम्भ, पृच्छा,
निःश्रावचनम्।

५०१. आहरण तद्देश चार प्रकार का होता है—
१ अनुशिष्टि—प्रतिवादी के मतव्य के उचित अंश को स्वीकार कर अनुचित का निरसन करना
२. उपालभ—दूसरे के मत को उसकी ही मान्यता से दूषित करना
३ पृच्छा—प्रश्न-प्रतिप्रश्नो मे ही पर मत को असिद्ध कर देना
४. निःश्रावचन—अन्य के बहाने अन्य को शिक्षा देना[१०८]।

५०२. आहरणतद्दोसे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—
अधम्मजुत्ते, पडिलोमे,
अत्तोवणीते, दुरुवणीते।

आहरणतद्दोषः चतुर्विधः प्रज्ञप्त., तद्यथा—
अधर्मयुक्त, प्रतिलोमः, आत्मोपनीत,
दुरुपनीतः।

५०२. आहरणतद्दोष चार प्रकार का होता है—
१. अधर्मयुक्त—अधर्मबुद्धि उत्पन्न करने वाला दृष्टात
२. प्रतिलोम—अपसिद्धान्त का प्रतिपादक दृष्टान्त अथवा 'शठे शाठ्य समाचरेत्' ऐसी प्रतिकूलता की शिक्षा देने वाला दृष्टान्त
३. आत्मोपनीत—परमत मे दोष दिखाने के लिए दृष्टान्त प्रस्तुत किया जाए और उससे स्वमत दूषित हो जाए
४. दुरुपनीत—दोषपूर्णनिगमन वाला दृष्टान्त[१०९]।

५०३. उवण्णासोवणए चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा— तव्वत्थुते, तदण्णवत्थुते, पडिणिभे, हेतू।

उपन्यासोपनयः चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— तद्वस्तुकः, तदन्यवस्तुकः, प्रतिनिभः, हेतुः।

५०३. उपन्यासोपनय चार प्रकार का होता है—
१. तदवस्तुक—वादी के द्वारा उपन्यस्त हेतु से उसका ही निरसन करना
२. तदन्यवस्तुक—उपन्यस्तवस्तु से अन्य मे भी प्रतिवादी की बात को पकड़कर उसे हरा देना
३. प्रतिनिभ—वादी के सदृश हेतु बनाकर उसके हेतु को असिद्ध कर देना।
४. हेतु—हेतु बताकर अन्य के प्रश्न का समाधान कर देना[110]।

हेउ-पदं

हेतु-पदम्

हेतु-पद

५०४. हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा— जावए, थावए, वंसए, लूसए।

हेतुः चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— यापकः, स्थापकः, व्यंसकः, लूषकः।

५०४. हेतु चार प्रकार के होते है—
१. यापक—समययापक विशेषण बहुल हेतु—जिसे प्रतिवादी शीघ्र न समझ सके
२. स्थापक—प्रसिद्ध व्याप्ति वाला—साध्य को शीघ्र स्थापित करने वाला हेतु
३. व्यसक—प्रतिवादी को छल में डालने वाला हेतु
४. लूषक—व्यसक के द्वारा प्राप्त आपत्ति को दूर करने वाला हेतु[111]।

अहवा—हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पच्चक्खे अणुमाणे ओवम्मे आगमे।

अथवा—हेतुः चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—प्रत्यक्षं, अनुमानं, औपम्यं, आगमः।

अथवा—हेतु चार प्रकार के होते है—
१. प्रत्यक्ष, २. अनुमान, ३ उपमान, ४. आगम।

अहवा—हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा— अत्थित्तं अत्थि सो हेऊ, अत्थित्तं णत्थि सो हेऊ, णत्थित्तं अत्थि सो हेऊ, णत्थित्तं णत्थि सो हेऊ।

अथवा—हेतुः चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— अस्तित्वं अस्ति स हेतुः, अस्तित्वं नास्ति स हेतुः, नास्तित्वं अस्ति स हेतुः, नास्तित्वं नास्ति स हेतुः।

अथवा—हेतु चार प्रकार के होते है—
१. विधि-साधक विधि-हेतु,
२. विधि-साधक निषेध-हेतु,
३. निषेध-साधक विधि-हेतु,
४. निषेध-साधक निषेध-हेतु[112]।

संखाण-पदं

संख्यान-पदम्

संख्यान-पद

५०५. चउव्विहे संखाणे पण्णत्ते, तं जहा— परिकम्मं, ववहारे, रज्जू, रासी।

चतुर्विधं सख्यानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— परिकर्म, व्यवहारः, रज्जुः, राशिः।

५०५. सख्यान—गणित चार प्रकार का है—
१. परिकर्म, २. व्यवहार, ३. रज्जु, ४. राशि।

अंधगार-उज्जोय-पदं

५०६. अहोलोगे णं चत्तारि अंधगारं करेंति, तं जहा—णरगा, णेरइया, पावाइं कम्माइं, असुभा पोग्गला।

५०७. तिरियलोगे णं चत्तारि उज्जोतं करेंति, तं जहा—
चंदा, सूरा, मणी, जोती।

५०८. उड्ढलोगे णं चत्तारि उज्जोतं करेंति, तं जहा—
देवा, देवीओ, विमाणा, आभरणा।

अन्धकार-उद्योत-पदम्

अधोलोके चत्वारः अन्धकारं कुर्वन्ति, तद्यथा—नरकाः, नैरयिकाः, पापानि कर्माणि, अशुभाः पुद्गलाः।

तिर्यग्लोके चत्वारः उद्योतं कुर्वन्ति, तद्यथा—
चन्द्राः, सूराः, मणयः, ज्योतिषः।

ऊर्ध्वलोके चत्वारः उद्योत कुर्वन्ति, तद्यथा—
देवाः, देव्यः, विमानानि, आभरणानि।

अन्धकार-उद्योत-पद

५०६. अधोलोक में चार अंधकार करते हैं—
१. नरक, २. नैरयिक, ३. पाप-कर्म, ४. अशुभ पुद्गल।

५०७. तिर्यक् लोक मे चार उद्योत करते है—
१. चन्द्र, २ सूर्य, ३. मणि, ४. ज्योति—अग्नि।

५०८. ऊर्ध्व लोक मे चार उद्योत करते है—
१. देव, २. देविया, ३. विमान, ४. आभरण।

चउत्थो उद्देसो

पसप्पग-पदं

५०९. चत्तारि पसप्पगा पण्णत्ता, त जहा—अणुप्पण्णाणं भोगाणं उप्पाएत्ता एगे पसप्पए,
पुव्वुप्पण्णाणं भोगाणं अविप्पओगेणं एगे पसप्पए,
अणुप्पण्णाणं सोक्खाणं उप्पाइत्ता एगे पसप्पए,
पुव्वुप्पण्णाणं सोक्खाणं अविप्पओगेण एगे पसप्पए।

प्रसर्पक-पदम्

चत्वारः प्रसर्पका. प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अनुत्पन्नाना भोगाना उत्पादयिता एकः प्रसर्पकः,
पूर्वोत्पन्नानां भोगानां अविप्रयोगेण एकः प्रसर्पक.,
अनुत्पन्नाना सौख्यानां उत्पादयिता एकः प्रसर्पकः,
पूर्वोत्पन्नानां सौख्यानां अविप्रयोगेण एकः प्रसर्पकः।

प्रसर्पक-पद

५०९. प्रसर्पक चार प्रकार के होते है—
१ कुछ अप्राप्त भोगों की प्राप्ति के लिए प्रसर्पण करते है, २. कुछ पूर्व प्राप्त भोगों के सरक्षण के लिए प्रसर्पण करते है,
३. कुछ अप्राप्त सुखो की प्राप्ति के लिए प्रसर्पण करते है, ४. कुछ पूर्व प्राप्त सुखो के संरक्षण के लिए प्रसर्पण करते है।

आहार-पदं

५१०. णेरइयाणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—
इंगालोवमे, मुम्मुरोवमे, सीतले, हिमसीतले।

आहार-पदम्

नैरयिकाणां चतुर्विधः आहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
अङ्गारोपमः, मुर्मुरोपमः, शीतलः, हिमशीतलः।

आहार-पद

५१०. नैरयिको का आहार चार प्रकार का होता है—
१. अंगारोपम—अल्पकालीन दाहवाला, २. मुर्मुरोपम—दीर्घकालीन दाहवाला, ३. शीतल, ४. हिमशीतल।

५११. तिरिक्खजोणियाणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—
कंकोवमे, बिलोवमे,
पाणमंसोवमे, पुत्तमंसोवमे।

तिर्यग्योनिकाना चतुर्विध आहार प्रज्ञप्त , तद्यथा—
कङ्कोपमः, बिलोपम , पाणमांसोपमः,
पुत्रमांसोपमः।

५११ तिर्यचो का आहार चार प्रकार का होता है—१. कंकोपम—सुख भक्ष्य और सुजीर्ण, २. बिलोपम—जो चबाये बिना निगल लिया जाता है, ३. पाणमांसोपम—चण्डाल के मास की भान्ति घृणित, ४. पुत्रमासोपम—पुत्र मास की भांति दुःख भक्ष्य[११]।

५१२. मणुस्साणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—
असणे, पाणे, खाइमे, साइमे।

मनुष्याणा चतुर्विध आहार प्रज्ञप्त , तद्यथा—
अशन, पान, खाद्य, स्वाद्यम्।

५१२. मनुष्यो का आहार चार प्रकार का होता है—
१ अशन, २ पान, ३ खाद्य, ४. स्वाद्य।

५१३. देवाणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—
वण्णमंते, गंधमंते,
रसमंते, फासमंते।

देवाना चतुर्विध आहार प्रज्ञप्त , तद्यथा—
वर्णवान्, गन्धवान्, रसवान् स्पर्शवान्।

५१३ देवताओ का आहार चार प्रकार का होता है—
१ वर्णवान्, २ गधवान्, ३ रसवान्, ४ स्पर्शवान्।

आसीविस-पदं

आशीविष-पदम्

आशीविष-पद

५१४. चत्तारि जातिआसीविसा पण्णत्ता, तं जहा—
विच्छुयजातिआसीविसे,
मंडुक्कजातिआसीविसे,
उरगजातिआसीविसे,
मणुस्सजातिआसीविसे।
विच्छुयजातिआसीविसस्स णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते?
पभू णं विच्छुयजातिआसीविसे अद्धभरहप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिणयं विसट्टमाणिं करित्तए। विसए से विसट्ठताए, णो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा करेंति वा करिस्संति वा।

चत्वार जात्याशीविषा प्रज्ञप्ता , तद्यथा—
वृश्चिकजात्याशीविष ,
मण्डुकजात्याशीविष ,
उरगजात्याशीविष ,
मनुष्यजात्याशीविष.।
वृश्चिकजात्याशीविषस्य भगवन्! कियान् विषय प्रज्ञप्त ?
प्रभु वृश्चिकजात्याशीविष अर्धभरतप्रमाणमात्रा बोन्दि विषेण विषपरिणता विकसन्तो कर्त्तुम्। विषय तस्य विषार्थतया , नो चैव सम्प्राप्त्या अकार्षु वा कुर्वन्ति वा करिष्यन्ति वा।

५१४ जाति-आशीविष चार होते है—
१ जाती-आशीविष वृश्चिक, २ जाती-आशीविष मेढक, ३ जाती-आशीविष सर्प, ४ जाती-आशीविष मनुष्य।

भगवन्! जाती-आशीविष वृश्चिक के विष का प्रभाव कितने क्षेत्र मे होता है[११२]?
गौतम! जाती-आशीविष वृश्चिक अपने विष के प्रभाव से अर्धभरतप्रमाण शरीर को (लगभग दो सौ तिरेसठ योजन) विषपरिणत तथा विदलित कर सकता है। यह उसकी विषात्मक क्षमता है, पर इतने क्षेत्र मे उसने अपनी क्षमता का न तो कभी उपयोग किया है, न करता है और न कभी करेगा।

मंडुक्कजातिआसीविसस्स °णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते?°
पभू णं मंडुक्कजातिआसीविसे भरहप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं

मण्डुकजात्याशीविषस्य भगवन्! कियान् विषय. प्रज्ञप्त ?
प्रभुः मण्डुकजात्याशीविष. भरतप्रमाण-मात्रां बोन्दि विषेण विषपरिणता

भगवन्! जाती-आशीविष मडुक के विष का प्रभाव कितने क्षेत्र मे होता है?
गौतम! जाती-आशीविष मंडुक अपने विष के प्रभाव से भरतप्रमाण शरीर को

विसपरिणयं विसट्टमाणिं •करित्तए। विसए से विसट्टताए, णो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा करेंति वा° करिस्संति वा।

विकसन्तीं कर्त्तुम्। विषयः तस्य विषार्थतायाः, नो चैव सम्प्राप्त्या अकार्षुः वा कुर्वन्ति वा करिष्यन्ति वा।

विषपरिणत तथा विदलित कर सकता है। यह उसकी विषात्मक क्षमता है, पर इतने क्षेत्र मे उसने अपनी क्षमता का न तो कभी उपयोग किया है, न करता है और न कभी करेगा।

•उरगजातिआसीविसस्स णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते°? पभू णं उरगजातिआसीविसे जंबुद्दीवपमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं •विसपरिणयं विसट्टमाणिं करित्तए। विसए से विसट्टताए, णो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा करेंति वा° करिस्संति वा।

उरगजात्याशीविषस्य भगवन्! कियान् विषयः प्रज्ञप्तः? प्रभुः उरगजात्याशीविषः जम्बूद्वीपप्रमाणमात्रां बोन्दिं विषेण विषपरिणतां विकसन्तीं कर्त्तुम्। विषयः तस्य विषार्थतायाः, नो चैव सम्प्राप्त्या अकार्षुः वा कुर्वन्ति वा करिष्यन्ति वा।

भगवन्! उरगजातीय आशीविष के विष का प्रभाव कितने क्षेत्र मे होता है? गौतम! उरगजातीय आशीविष अपने विष के प्रभाव से जम्बूद्वीप प्रमाण (लाख योजन) शरीर को विषपरिणत तथा विदलित कर सकता है। यह उसकी विषात्मक क्षमता है, पर इतने क्षेत्र मे उसने अपनी क्षमता का न तो कभी उपयोग किया है, न करता है और न कभी करेगा।

•मणुस्सजातिआसीविसस्स णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते?° पभू णं मणुस्सजातिआसीविसे समयखेत्तपमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिणतं विसट्टमाणिं करेत्तए। विसए से विसट्टताए, णो चेव णं •संपत्तीए करेंसु वा करेंति वा° करिस्संति वा।

मनुष्यजात्याशीविषस्य भगवन्! कियान् विषयः प्रज्ञप्तः? प्रभुः मनुष्यजात्याशीविषः समयक्षेत्रप्रमाणमात्रां बोन्दिं विषेण विषपरिणतां विकसन्तीं कर्त्तुम्। विषयः तस्य विषार्थतायाः, नो चैव सम्प्राप्त्या अकार्षुः वा कुर्वन्ति वा करिष्यन्ति वा।

भगवन्! मनुष्यजातीय आशीविष के विष का प्रभाव कितने क्षेत्र मे होता है? गौतम! मनुष्यजातीय आशीविष के विष का प्रभाव समय क्षेत्रप्रमाण (पैंतालीस लाख योजन) शरीर को विषपरिणत तथा विदलित कर सकता है। यह उसकी विषात्मक क्षमता है, पर इतने क्षेत्र मे उसने अपनी क्षमता का न तो कभी उपयोग किया है, न करता है और न कभी करेगा।

वाहि-तिगिच्छा-पदं

५१५. चउव्विहे वाही पण्णत्ते, तं जहा— वातिए, पित्तिए, सिंभिए, सण्णिवातिए।

व्याधि-चिकित्सा-पदम्

चतुर्विधः व्याधिः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— वातिकः, पैत्तिकः, श्लैष्मिकः, सान्निपातिक।

व्याधि-चिकित्सा-पद

५१५. व्याधि चार प्रकार की होती है—

१. वातिक—वायुविकार से होने वाली
२. पैत्तिक—पित्तविकार से होने वाली
३. श्लैष्मिक—कफविकार से होने वाली
४. सान्निपातिक—तीनो के मिश्रण से होने वाली।

५१६ चउव्विहा तिगिच्छा पण्णत्ता, तं जहा—विज्जो, ओसधाइं, आउरे, परियारए।

चतुर्विधा चिकित्सा प्रज्ञप्ता, तद्यथा— वैद्यः, औषधानि, आतुर, परिचारकः।

५१६ चिकित्सा के चार अंग है—१ वैद्य २ औषध ३. रोगी ४. परिचारक।

५१७. चत्तारि तिगिच्छगा पण्णत्ता, तं जहा—आततिगिच्छए णाममेगे, णो परतिगिच्छए, परतिगिच्छए णाममेगे, णो आततिगिच्छए, एगे आततिगिच्छएवि, परतिगिच्छएवि, एगे णो आततिगिच्छए, णो परतिगिच्छए।

चत्वारः चिकित्सका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आत्मचिकित्सक नामैक, नो परचिकित्सकः, परचिकित्सक नामैकः, नोआत्मचिकित्सक, एक आत्मचिकित्सकोऽपि, परचिकित्सकोऽपि, एकः नो आत्मचिकित्सक, नो परचिकित्सक।

५१७. चिकित्सक चार प्रकार के होते है—१. कुछ चिकित्सक अपनी चिकित्सा करते है, दूसरो की नही करते २. कुछ चिकित्सक दूसरो की चिकित्सा करते है, अपनी नही करते ३ कुछ चिकित्सक अपनी भी चिकित्सा करते है और दूसरो की भी करते है ४ कुछ चिकित्सक न अपनी चिकित्सा करते है और न दूसरो की ही करते है।

वणकर-पदं

व्रणकर-पदम्

व्रणकर-पद

५१८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—वणकरे णाममेगे, णो वणपरिमासी, वणपरिमासी णाममेगे, णो वणकरे, एगे वणकरेवि, वणपरिमासीवि, एगे णो वणकरे, णो वणपरिमासी।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—व्रणकरः नामैक, नो व्रणपरामर्शी, व्रणपरामर्शी नामैकः, नो व्रणकर, एकः व्रणकरोऽपि, व्रणपरामर्श्यपि, एकः नो व्रणकरः, नो व्रणपरामर्शी।

५१८. पुरुष चार प्रकार के होते है—१ कुछ पुरुष रक्त निकालने के लिए व्रण—घाव करते है, किन्तु उसका परिमर्श नही करते—उसे सहलाते नही २ कुछ पुरुष व्रण का परिमर्श करते है, किन्तु व्रण नही करते ३ कुछ पुरुष व्रण भी करते है और उसका परिमर्श भी करते है ४ कुछ पुरुष न व्रण करते है और न उसका परिमर्श करते है।

५१९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—वणकरे णाममेगे, णो वणसारक्खी, वणसारक्खी णाममेगे, णो वणकरे, एगे वणकरेवि, वणसारक्खीवि, एगे णो वणकरे, णो वणसारक्खी।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—व्रणकरः नामैकः, नो व्रणसरक्षी, व्रणसरक्षी नामैक, नो व्रणकरः, एकः व्रणकरोऽपि, व्रणसंरक्ष्यपि, एकः नो व्रणकरः, नो व्रणसंरक्षी।

५१९ पुरुष चार प्रकार के होते है—१ कुछ पुरुष व्रण करते है, किन्तु उसका सरक्षण—देखभाल नही करते २ कुछ पुरुष व्रण का सरक्षण करते हैं, किन्तु व्रण नहीं करते ३. कुछ पुरुष व्रण भी करते है और उसका सरक्षण भी करते है ४. कुछ पुरुष न व्रण करते है और न उसका सरक्षण करते हैं।

५२०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

५२०. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—

वणकरे णाममेगे, णो वणसंरोही,
वणसंरोही णाममेगे, णो वणकरे,
एगे वणकरेवि, वणसंरोहीवि,
एगे णो वणकरे, णो वणसरोही।

व्रणकरः नामैकः, नो व्रणसंरोही,
व्रणसरोही नामैकः, नो व्रणकरः,
एकः व्रणकरोऽपि, व्रणसंरोह्यपि,
एकः नो व्रणकरः, नो व्रणसरोही ।

१. कुछ पुरुष व्रण करते हैं, किन्तु उसका सरोह नही करते—उसे भरते नही २ कुछ पुरुष व्रण का सरोह करते है, किन्तु व्रण नही करते ३ कुछ पुरुष व्रण भी करते है और उसका संरोह भी करते है ४. कुछ पुरुष न व्रण करते है और न उसका सरोह करते है।

अंतोबाहिं-पदं

अन्तर्बहिः-पदम्

अन्तर्बहिः-पद

५२१. चत्तारि वणा पण्णत्ता, तं जहा—
अंतोसल्ले णाममेगे, णो बाहिंसल्ले,
बाहिंसल्ले णाममेगे, णो अंतोसल्ले,
एगे अंतोसल्लेवि, बाहिंसल्लेवि,
एगे णो अंतोसल्ले, णो बाहिंसल्ले।

चत्वारः व्रणाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अन्तःशल्यं नामैकं, नो बहिःशल्य,
बहिःशल्य नामैकं, नो अन्तःशल्य,
एक अन्तःशल्यमपि, बहिःशल्यमपि,
एक नो अन्तःशल्यं, नो बहिःशल्यम् ।

५२१. व्रण चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ व्रण अन्त.शल्य (आन्तरिक घाव) वाले होते है किन्तु बाह्यशल्य वाले नही होते २. कुछ व्रण बाह्यशल्य वाले होते है, किन्तु अन्त.शल्य वाले नही होते
३. कुछ व्रण अन्त शल्य वाले भी होते है और बाह्यशल्य वाले भी होते हैं
४. कुछ व्रण न अन्त शल्य वाले होते हे और न बाह्यशल्य वाले होते हे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अंतोसल्ले णाममेगे, णो बाहिंसल्ले,
बाहिंसल्ले णाममेगे, णो अंतोसल्ले,
एगे अंतोसल्लेवि, बाहिंसल्लेवि,
एगे णो अंतोसल्ले, णो बाहिंसल्ले।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अन्तःशल्यः नामैकः, नो बहिःशल्यः,
बहिःशल्य. नामैकः, नो अन्त शल्य,
एकः अन्तःशल्योऽपि, बहिःशल्योऽपि,
एकः नो अन्तःशल्य., नो बहिःशल्यः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१ कुछ पुरुष अन्त शल्य वाले होते हे, किन्तु बाह्यशल्य वाले नही होते २ कुछ पुरुष बाह्यशल्य वाले होते है. किन्तु अन्त.शल्य वाले नही होते ३ कुछ पुरुष अन्त.शल्य वाले भी होते है और बाह्य शल्य वाले भी होते हे ४. कुछ पुरुष न अन्तःशल्य वाले होते हे और न बाह्यशल्य वाले होते हैं।

५२२. चत्तारि वणा पण्णत्ता, तं जहा—
अंतोदुट्ठे णाममेगे, णो बाहिंदुट्ठे,
बाहिंदुट्ठे णाममेगे, णो अंतोदुट्ठे,
एगे अंतोदुट्ठे वि, बाहिंदुट्ठे वि,
एगे णो अंतोदुट्ठे, णो बाहिंदुट्ठे ।

चत्वारि व्रणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अन्तर्दुष्टं नामैकः, नो बहिर्दुष्टं,
बहिर्दुष्टं नामैकः, नो अन्तर्दुष्ट,
एक अन्तर्दुष्टमपि, बहिर्दुष्टमपि,
एक नो अन्तर्दुष्टं, नो बहिर्दुष्टम् ।

५२२. व्रण चार प्रकार के होते है—
१. कुछ व्रण अन्तःदुष्ट (अन्दर से विकृत) होते हैं, किन्तु बाहर से दुष्ट नही होते २. कुछ व्रण बाहर से दुष्ट होते है, किन्तु अन्तःदुष्ट नही होते ३. कुछ व्रण अन्त.-दुष्ट भी होते है और बाह्य दुष्ट भी होते है ४. कुछ व्रण न अन्त दुष्ट होते है और न बाह्य दुष्ट होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अंतोदुट्ठे णाममेगे, णो बाहिंदुट्ठे
बाहिंदुट्ठे णाममेगे, णो अंतोदुट्ठे,
एगे अंतोदुट्ठे वि, बाहिंदुट्ठे वि,
एगे णो अंतोदुट्ठे, णो बाहिंदुट्ठे ।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अन्तर्दुष्टः नामैकः, नो बहिर्दुष्टः,
बहिर्दुष्टः नामैकः, नो अन्तर्दुष्टः,
एकः अन्तर्दुष्टोऽपि, बहिर्दुष्टोऽपि,
एकः नो अन्तर्दुष्ट, नो बहिर्दुष्टः ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष अन्तःदुष्ट—अन्दर से मैले होते है, किन्तु बाहर से नहीं होते २. कुछ पुरुष बाहर से दुष्ट होते है, किन्तु अन्त दुष्ट नही होते ३. कुछ पुरुष अन्त:दुष्ट भी होते है और बाह्य दुष्ट भी होते है ४. कुछ पुरुष न अन्त:दुष्ट होते हैं और न बाह्य दुष्ट होते है ।

सेयंस-पावंस-पदं

श्रेयस्पापीयस्पदम्

श्रेयस्पापीयस्पद

५२३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सेयंसे णाममेगे सेयंसे,
सेयंसे णाममेगे पावंसे,
पावंसे णाममेगे सेयंसे,
पावंसे णाममेगे पावंसे ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
श्रेयान् नामैक. श्रेयान्,
श्रेयान् नामैक पापीयान्,
पापीयान् नामैक. श्रेयान्,
पापीयान् नामैकः पापीयान् ।

५२३ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से भी श्रेयान्—प्रशस्य होते है और आचरण की दृष्टि से भी श्रेयान् होते है २ कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से श्रेयान् होते है, किन्तु आचरण की दृष्टि से पापीयान् होते है ३ कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से पापीयान् होते है, किन्तु आचरण की दृष्टि से श्रेयान् होते है ४. कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से भी पापीयान् होते है और आचरण की दृष्टि से भी पापीयान होते है ।

५२४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सेयंसे णाममेगे सेयंसेत्ति सालिसए,
सेयंसे णाममेगे पावंसेत्ति सालिसए,
पावंसे णाममेगे सेयंसेत्ति सालिसए,
पावंसे णाममेगे, पावंसेत्ति सालिसए ।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
श्रेयान् नामैक श्रेयानिति सदृशकः,
श्रेयान् नामैकः पापीयानिति सदृशकः,
पापीयान् नामैकः श्रेयानिति सदृशकः,
पापीयान् नामैक पापीयानिति सदृशकः ।

५२४ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से भी श्रेयान् होते है और आचरण की दृष्टि से भी श्रेयान् के सदृश होते है २. कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से श्रेयान् होते है, किन्तु आचरण की दृष्टि से पापीयान् के सदृश होते है ३ कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से पापीयान् होते है, किन्तु आचरण की दृष्टि से श्रेयान् के सदृश होते है ४ कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से भी पापीयान् होते है और आचरण की दृष्टि से भी पापीयान् के सदृश होते है ।

५२५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सेयंसे णाममेगे सेयंसेत्ति मण्णति, सेयंसे णाममेगे पावंसेत्ति मण्णति, पावंसे णाममेगे सेयंसेत्ति मण्णति, पावंसे णाममेगे पावंसेत्ति मण्णति।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
श्रेयान् नामैकः श्रेयानिति मन्यते, श्रेयान् नामैकः पापीयानिति मन्यते, पापीयान् नामैकः श्रेयानिति मन्यते, पापीयान् नामैकः पापीयानिति मन्यते।

५२५. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष श्रेयान् होते हैं और अपने आपको श्रेयान् ही मानते है २. कुछ पुरुष श्रेयान् होते है, किन्तु अपने आपको पापीयान् मानते है ३ कुछ पुरुष पापीयान् होते है, किन्तु अपने अपको श्रेयान् मानते है ४ कुछ पुरुष पापीयान् होते हैं और अपने आपको पापीयान् ही मानते है।

५२६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सेयंसे णाममेगे सेयंसेत्ति सालिसए मण्णति, सेयंसे णाममेगे पावंसेत्ति सालिसए मण्णति, पावंसे णाममेगे सेयंसेत्ति सालिसए मण्णति, पावंसे णाममेगे पावंसेत्ति सालिसए मण्णति।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
श्रेयान् नामैकः श्रेयानिति सदृशकः मन्यते, श्रेयान् नामैकः पापीयानिति सदृशकः मन्यते, पापीयान् नामैकः श्रेयानिति सदृशकः मन्यते, पापीयान् नामैकः पापीयानिति सदृशकः मन्यते।

५२६. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष श्रेयान् होते है और अपने आपको श्रेयान् के सदृश ही मानते है २. कुछ पुरुष श्रेयान् होते है किन्तु अपने आपको पापीयान् के सदृश मानते है ३. कुछ पुरुष पापीयान् होते है, किन्तु अपने आपको श्रेयान् के सदृश मानते हैं ४ कुछ पुरुष पापीयान् होते है और अपने आपको पापीयात् के सदृश मानते है।

आघवण-पदं

आख्यापन-पदम्

आख्यापन-पद

५२७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
आघवइत्ता णाममेगे, णो पविभावइत्ता, पविभावइत्ता णाममेगे, णो आघवइत्ता, एगे आघवइत्तावि, पविभावइत्तावि, एगे णो आघवइत्ता, णो पविभावइत्ता।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आख्यापयिता नामैकः, नो प्रविभावयिता, प्रविभावयिता नामैकः, नो आख्यापयिता, एकः आख्यापयिताऽपि, प्रविभावयिताऽपि, एकः नो आख्यापयिता, नो प्रविभावयिता।

५२७ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष आख्यायक (कथावाचक) होते है, किन्तु प्रविभावक[११५] (चिंतक) नही होते २. कुछ पुरुष प्रविभावक होते हैं, किन्तु आख्यायक नही होते ३ कुछ पुरुष आख्यायक भी होते है और प्रविभावक भी होते हे ४ कुछ पुरुष न आख्यायक होते है और न प्रविभावक होते है।

५२८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
आघवइत्ता णाममेगे, णो उंछजीविसंपण्णे, उंछजीविसंपण्णे णाममेगे, णो आघवइत्ता, एगे आघवइत्तावि उंछजीविसंपण्णेवि, एगे णो आघवइत्ता, णो उंछजीविसंपण्णे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आख्यापयिता नामैकः, नो उञ्छजीविकासम्पन्नः, उञ्छजीविकासम्पन्नः नामैकः, नो आख्यापयिता, एकः आख्यापयिताऽपि, उञ्छजीविकासम्पन्नोऽपि, एकः नो आख्यापयिता, नो उञ्छजीविकासम्पन्नः।

५२८ पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष आख्यायक होते है, उञ्छजीविका सम्पन्न नही होते २. कुछ पुरुष उञ्छजीविका सम्पन्न होते है, आख्यायक नहीं होते ३ कुछ पुरुष आख्यायक भी होते है और उञ्छजीविका सम्पन्न भी होते है ४. कुछ पुरुष न आख्यायक होते है और न उञ्छजीविका सम्पन्न होते है।

रुक्खविगुव्वणा-पदं

५२६. चउव्विहा रुक्खविगुव्वणा पण्णत्ता, तं जहा—पवालत्ताए, पत्तत्ताए, पुप्फत्ताए, फलत्ताए।

रुक्षविकरण-पदम्

चतुर्विधं रुक्षविकरणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
प्रवालतया, पत्रतया, पुष्पतया, फलतया।

रुक्षविकरण-पद

५२६ वृक्ष की विक्रिया चार प्रकार की होती है—१. प्रवाल के रूप मे २. पत्र के रूप मे ३. पुष्प के रूप मे ४ फल के रूप मे।

वादि-समोसरण-पदं

५३०. चत्तारि वादिसमोसरणा पण्णत्ता, तं जहा—
किरियावादी, अकिरियावादी, अण्णाणियावादी, वेणइयावादी।

५३१. णेरइयाणं चत्तारि वादिसमोसरणा पण्णत्ता, तं जहा—
किरियावादी, °अकिरियावादी, अण्णाणियावादी° वेणइयावादी।

५३२. एवमसुरकुमाराणवि जाव थणियकुमाराणं, एवं—विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

वादि-समवसरण-पदम्

चत्वारि वादिसमवसरणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानिकवादी, वैनयिकवादी।

नैरयिकाणां चत्वारि वादिसमवसरणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानिकवादी, वैनयिकवादी।

एवम्—असुरकुमाराणामपि यावत् स्तनितकुमाराणाम्, एवम्—विकलेन्द्रियवर्जं यावत् वैमानिकानाम्।

वादि-समवसरण-पद

५३०. चार वादि-समवसरण है—
१ क्रियावादी— आस्तिक २. अक्रियावादी—नास्तिक ३. अज्ञानवादी ४ विनयवादी[११]।

५३१ नैरयिको के चार वादी-समवसरण होते है—१ क्रियावादी २ अक्रियावादी ३ अज्ञानवादी ४ विनयवादी।

५३२ इसी प्रकार असुरकुमारो यावत् स्तनित कुमारों के चार-चार वादि-समवसरण होते है। इसी प्रकार विकलेन्द्रियो को छोड़कर वैमानिक पर्यंत दंडकों के चार-चार वादि-समवसरण होते है।

मेह-पदं

५३३. चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—
गज्जित्ता णाममेगे, णो वासित्ता,
वासित्ता णाममेगे, णो गज्जित्ता,
एगे गज्जित्तावि, वासित्तावि,
एगे णो गज्जित्ता, णो वासित्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया, पण्णत्ता, तं जहा—
गज्जित्ता णाममेगे, णो वासित्ता,
वासित्ता णाममेगे, णो गज्जित्ता,
एगे गज्जित्तावि, वासित्तावि,
एगे णो गज्जित्ता, णो वासित्ता।

मेघ-पदम्

चत्वारः मेघाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
गर्जिता नामैकः, नो वर्षिता,
वर्षिता नामैकः, नो गर्जिता,
एकः गर्जिताऽपि, वर्षिताऽपि,
एकः नो गर्जिता, नो वर्षिता।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गर्जिता नामैकः, नो वर्षिता,
वर्षिता नामैकः, नो गर्जिता,
एकः गर्जिताऽपि, वर्षिताऽपि,
एकः नो गर्जिता, नो वर्षिता।

मेघ-पद

५३३. मेघ चार प्रकार के होते है—
१ कुछ मेघ गरजने वाले होते है, बरसने वाले नहीं होते २ कुछ मेघ बरसने वाले होते है, गरजने वाले नही होते ३. कुछ मेघ गरजने वाले भी होते है और बरसने वाले भी होते है ४ कुछ मेघ न गरजने वाले होते है और न बरसने वाले ही होते है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—

१. कुछ पुरुष गरजने वाले होते हे, बरसने वाले नही होते, २ कुछ पुरुष बरसने वाले वाले होते है, गरजने वाले नही होते, ३. कुछ पुरुष गरजने वाले भी होते है और बरसने वाले भी होते है, ४. कुछ पुरुष न गरजने वाले होते है और न बरसने वाले होते है।

५३४. चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—
गज्जित्ता णाममेगे, णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे णो गज्जित्ता, एगे गज्जित्तावि, विज्जुयाइत्तावि, एगे णो गज्जित्ता, णो विज्जुयाइत्ता।

चत्वारः मेघाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
गर्जिता नामैकः, नो विद्योतयिता, विद्योतयिता नामैकः, नो गर्जिता, एकः गर्जिताऽपि, विद्योतयिताऽपि, एकः नो गर्जिता, नो विद्योतयिता।

५३४. मेघ चार प्रकार के होते है—
१. कुछ मेघ गरजने वाले होते हैं, चमकने वाले नही होते, २. कुछ मेघ चमकने वाले होते है, गरजने वाले नहीं होते, ३. कुछ मेघ गरजने वाले भी होते है और चमकने वाले भी होते, ४. कुछ मेघ न गरजने वाले होते हैं और न चमकने वाले ही होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—
गज्जित्ता णाममेगे, णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे, णो गज्जित्ता, एगे गज्जित्तावि, विज्जुयाइत्तावि, एगे णो गज्जित्ता, णो विज्जुयाइत्ता।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गर्जिता नामैकः, नो विद्योतयिता, विद्योतयिता नामैकः, नो गर्जिता, एकः गर्जिताऽपि, विद्योतयिताऽपि, एकः नो गर्जिता, नो विद्योतयिता।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१. कुछ पुरुष गरजने वाले होते है, चमकने वाले नही होते, २. कुछ पुरुष चमकने वाले होते है, गरजने वाले नही होते, ३ कुछ पुरुष गरजने वाले भी होते है और चमकने वाले भी होते है, ४ कुछ पुरुष न गरजने वाले होते है और न चमकने वाले ही होते ह।

५३५. चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—
वासित्ता णाममेगे, णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे, णो वासित्ता, एगे वासित्तावि, विज्जुयाइत्तावि, एगे णो वासित्ता, णो विज्जुयाइत्ता।

चत्वारः मेघाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वर्षिता नामैकः, नो विद्योतयिता, विद्योतयिता नामैकः, नो वर्षिता, एकः वर्षिताऽपि, विद्योतयिताऽपि, एकः नो वर्षिता, नो विद्योतयिता।

५३५. मेघ चार प्रकार के होते है—
१. कुछ मेघ बरसने वाले होते है, चमकने वाले नही होते, २ कुछ मेघ चमकने वाले होते है, बरसने वाले नही होते, ३ कुछ मेघ बरसने वाले भी होते है और चमकने वाले भी होते है, ४. कुछ मेघ न बरसने वाले होते है और न चमकने वाले ही होते है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
वासित्ता णाममेगे, णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे, णो वासित्ता, एगे वासित्ता वि, विज्जुयाइत्तावि, एगे णो वासित्ता, णो विज्जुयाइत्ता।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वर्षिता नामैकः, नो विद्योतयिता, विद्योतयिता नामैकः, नो वर्षिता, एकः वर्षिताऽपि, विद्योतयिताऽपि, एकः नो वर्षिता, नो विद्योतयिता।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होतेहै—
१. कुछ पुरुष बरसने वाले होते हैं, चमकने वाले नही होते, २. कुछ पुरुष चमकने वाले होते है, बरसने वाले नही होते, ३ कुछ पुरुष बरसने वाले भी होते है और चमकने वाले भी होते है, ४. कुछ पुरुष न बरसने वाले होते है और न चमकने वाले ही होते हैं।

५३६. चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—

चत्वारः मेघाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

५३६. मेघ चार प्रकार के होते हैं—

कालवासी णाममेगे, णो अकाल-वासी, अकालवासी णाममेगे, णो कालवासी, एगे कालवासीवि, अकालवासीवि, एगे णो कालवासी, णो अकालवासी।

कालवर्षी नामैकः, नो अकालवर्षी, अकालवर्षी नामैकः, नो कालवर्षी, एकः कालवर्ष्यपि, अकालवर्ष्यपि, एकः नो कालवर्षी, नो अकालवर्षी।

१. कुछ मेघ समय पर बरसने वाले होते हैं, असमय में बरसने वाले नहीं होते, २. कुछ मेघ असमय में बरसने वाले होते है, समय पर बरसने वाले नहीं होते, ३ कुछ मेघ समय पर भी बरसने वाले होते है और असमय में भी बरसने वाले होते है, ४ कुछ मेघ न समय पर बरसने वाले होते है और न असमय मे ही बरसने वाले होते है।

**एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
कालवासी णाममेगे, णो अकाल-वासी, अकालवासी णाममेगे, णो कालवासी, एगे कालवासीवि, अकालवासीवि, एगे णो कालवासी, णो अकालवासी।**

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कालवर्षी नामैकः, नो अकालवर्षी, अकालवर्षी नामैकः, नो कालवर्षी, एकः कालवर्ष्यपि, अकालवर्ष्यपि, एक नो कालवर्षी, नो अकालवर्षी।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१. कुछ पुरुष समय पर बरसने वाले होते है, असमय मे बरसने वाले नहीं होते, २. कुछ पुरुष असमय मे बरसने वाले होते है, समय पर बरसने वाले नहीं होते, ३. कुछ पुरुष समय पर भी बरसने वाले होते है और असमय मे भी बरसने वाले होते है, ४ कुछ पुरुष न समय पर बरसने वाले होते है और न असमय मे ही बरसने वाले होते है।

**५३७. चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—
खेत्तवासी णाममेगे, णो अखेत्त-वासी, अखेत्तवासी णाममेगे, णो खेत्तवासी, एगे खेत्तवासीवि, अखेत्तवासीवि, एगे णो खेत्तवासी, णो अखेत्तवासी।**

चत्वारः मेघाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
क्षेत्रवर्षी नामैकः, नो अक्षेत्रवर्षी, अक्षेत्रवर्षी नामैकः, नो क्षेत्रवर्षी, एकः क्षेत्रवर्ष्यपि, अक्षेत्रवर्ष्यपि, एकः नो क्षेत्रवर्षी, नो अक्षेत्रवर्षी।

५३७ मेघ चार प्रकार के होने है—
१ कुछ मेघ उपजाऊ भूमि पर बरसने वाले होते है, ऊसर मे बरसने वाले नही होते, २ कुछ मेघ ऊसर मे बरसने वाले होते है, उपजाऊ भूमि पर बरसने वाले नही होते, ३ कुछ मेघ उपजाऊ भूमि पर भी बरसने वाले होते है और ऊसर पर भी बरसने वाले होते है, ४. कुछ मेघ न उपजाऊ भूमि पर बरसने वाले होते है और न ऊसर पर ही बरसने वाले होते है।

**एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
खेत्तवासी णाममेगे, णो अखेत्त-वासी, अखेत्तवासी णाममेगे, णो खेत्तवासी, एगे खेत्तवासीवि, अखेत्तवासीवि, एगे णो खेत्तवासी, णो अखेत्तवासी।**

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
क्षेत्रवर्षी नामैकः, नो अक्षेत्रवर्षी, अक्षेत्रवर्षी नामैकः, नो क्षेत्रवर्षी, एकः क्षेत्रवर्ष्यपि, अक्षेत्रवर्ष्यपि, एकः नो क्षेत्रवर्षी, नो अक्षेत्रवर्षी।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—१ कुछ पुरुष उपजाऊ भूमि पर बरसने वाले होते है, ऊसर मे बरसने वाले नही होते, २. कुछ पुरुष ऊसर मे बरसने वाले होते हैं, उपजाऊ भूमि पर बरसने वाले नही होते, ३. कुछ पुरुष उपजाऊ भूमि पर भी बरसने वाले होते है और ऊसर पर भी बरसने वाले होते है, ४. कुछ पुरुष न उपजाऊ भूमि पर बरसने वाले होते है और न ऊसर पर बरसने वाले होते है।

अम्म-पियर-पदं

५३८. चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—
जणइत्ता णाममेगे, णो णिम्मवइत्ता, णिम्मवइत्ता णाममेगे, णो जणइत्ता, एगे जणइत्तावि, णिम्मवइत्तावि, एगे णो जणइत्ता, णो णिम्मवइत्ता।

एवामेव चत्तारि अम्मापियरो पण्णत्ता, तं जहा—
जणइत्ता णाममेगे, णो णिम्मवइत्ता, णिम्मवइत्ता णाममेगे, णो जणइत्ता, एगे जणइत्तावि, णिम्मवइत्तावि, एगे णो जणइत्ता, णो णिम्मवइत्ता।

अम्बा-पितृ-पदम्

चत्वारः मेघाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
जनयिता नामैकः, नो निर्मापयिता, निर्मापयिता नामैकः, नो जनयिता, एकः जनयिताऽपि, निर्मापयिताऽपि, एकः नो जनयिता, नो निर्मापयिता।

एवमेव चत्वारः अम्बापितरः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
जनयिता नामैकः, नो निर्मापयिता, निर्मापयिता नामैकः, नो जनयिता, एकः जनयिताऽपि, निर्मापयिताऽपि, एकः नो जनयिता, नो निर्मापयिता।

अम्बा-पितृ-पद

५३८. मेघ चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ मेघ धान्य को उत्पन्न करने वाले होते है, उसका निर्माण करने वाले नही होते, २. कुछ मेघ धान्य का निर्माण करने वाले होते है, उसको उत्पन्न करने वाले नही होते, ३ कुछ मेघ धान्य को उत्पन्न करने वाले भी होते है और उसका निर्माण करने वाले भी होते है, ४. कुछ मेघ न धान्य को उत्पन्न करने वाले होते है और न उसका निर्माण करने वाले ही होते हैं।

इसी प्रकार माता-पिता भी चार प्रकार के होते है—
१. कुछ माता-पिता सन्तान को उत्पन्न करने वाले होते है, उसका निर्माण करने वाले नही होते, २. कुछ माता-पिता सतान का निर्माण करने वाले होते है, उसको उत्पन्न करने वाले नही होते, ३. कुछ माता-पिता सतान को उत्पन्न करने वाले भी होते है और उसका निर्माण करने वाले भी होते है, ४ कुछ माता-पिता न सतान को उत्पन्न करने वाले होते है और न उसका निर्माण करने वाले ही होते है।

राय-पदं

५३९. चत्तारि मेहा पण्णत्ता, त जहा—
देसवासी णाममेगे, णो सव्ववासी, सव्ववासी णाममेगे, णो देसवासी, एगे देसवासीवि, सव्ववासीवि, एगे णो देसवासी, णो सव्ववासी।

एवामेव चत्तारि रायाणो पण्णत्ता, तं जहा—
देसाधिवती णाममेगे, णो सव्वाधिवती, सव्वाधिवती णाममेगे,

राज-पदम्

चत्वारः मेघाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
देशवर्षी नामैकः, नो सर्ववर्षी, सर्ववर्षी नामैकः, नो देशवर्षी, एकः देशवर्ष्यपि, सर्ववर्ष्यपि, एकः नो देशवर्षी, नो सर्ववर्षी।

एवमेव चत्वारः राजानः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
देशाधिपतिः नामैकः, नो सर्वाधिपतिः, सर्वाधिपतिः नामैकः, नो देशाधिपतिः,

राज-पद

५३९. मेघ चार प्रकार के होते है—
१ कुछ मेघ किसी एक देश मे ही बरसते है, सब देशो मे नही, २. कुछ मेघ सब देशों में बरसते है, किसी एक देश मे नही, ३ कुछ मेघ किसी एक देश मे भी बरसते है और सब देशो मे भी बरसते है, ४. कुछ मेघ न किसी एक देश मे बरसते है और न सब देशो मे ही बरसते है।

इसी प्रकार राजा भी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ राजा एक देश के ही अधिपति होते है, सब देशो के अधिपति नही होते,

णो देसाधिवती, एगे देसाधिवतीवि, सव्वाधिवतीवि, एगे णो देसाधिवती, णो सव्वाधिवती।

एक. देशाधिपतिरपि, सर्वाधिपतिरपि, एकः नो देशाधिपतिः, नो सर्वाधिपतिः।

२. कुछ राजा सब देशों के ही अधिपति होते हैं, एक देश के अधिपति नहीं होते, ३. कुछ राजा एक देश के भी अधिपति होते हैं और सब देशों के भी अधिपति होते हैं, ४. कुछ राजा न एक देश के अधिपति होते हैं और न सब देशों के ही अधिपति होते हैं।

मेह-पदं

५४०. चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—
पुक्खलसंवट्टते पज्जुण्णे, जीमूते जिम्मे।
पुक्खलसंवट्टए णं महामेहे एगेणं वासेणं दसवाससहस्साइं भावेति।
पज्जुण्णे णं महामेहे एगेणं वासेण दसवाससयाइं भावेति।
जीमूते णं महामेहे एगेणं वासेण दसवाससयाइं भावेति।
जिम्मे णं महामेहे बहूहिं वासेहिं एगं वासं भावेति वा ण वा भावेति।

मेघ-पदम्

चत्वारः मेघाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पुष्कलसंवर्त्तः, प्रद्युम्नः, जीमूतः, जिम्हः।
पुष्कलसंवर्त्तः महामेघः एकेन वर्षेण दशवर्षसहस्राणि भावयति।
प्रद्युम्नः महामेघः एकेन वर्षेण दशवर्षशतानि भावयति।
जीमूतः महामेघः एकेन वर्षेण दशवर्षाणि भावयति।
जिम्हः महामेघः बहुभिर्वर्षैः एकं वर्षं भावयति वा न वा भावयति।

मेघ-पद

५४०. मेघ चार प्रकार के होते हैं—
१. पुष्कलसंवर्त, २. प्रद्युम्न, ३. जीमूत, ४. जिम्ह।
पुष्कलसंवर्त महामेघ एक वर्षा से दस हजार वर्ष तक पृथ्वी को स्निग्ध कर देता है,
प्रद्युम्न महामेघ एक वर्षा से एक हजार वर्ष तक पृथ्वी को स्निग्ध कर देता है,
जीमूत महामेघ एक वर्षा से दस वर्ष तक पृथ्वी को स्निग्ध कर देता है,
जिम्ह महामेघ अनेक बार बरस कर एक वर्ष तक पृथ्वी को स्निग्ध करता है और नहीं भी करता।

आयरिय-पदं

५४१. चत्तारि करंडगा पण्णत्ता, तं जहा—
सोवागकरंडए, वेसियाकरंडए, गाहावतिकरंडए, रायकरंडए।
एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—
सोवागकरंडगसमाणे, वेसियाकरंडगसमाणे, गाहावतिकरंडगसमाणे, रायकरंडगसमाणे।

आचार्य-पदम्

चत्वारः करण्डकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
श्वपाककरण्डकः, वेश्याकरण्डकः, गृहपतिकरण्डकः, राजकरण्डकः।
एवमेव चत्वारः, आचार्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
श्वपाककरण्डकसमानः, वेश्याकरण्डकसमानः, गृहपतिकरण्डकसमानः, राजकरण्डकसमानः।

आचार्य-पद

५४१. करण्डक चार प्रकार के होते हैं—
१. श्वपाक-करण्डक—चाण्डाल का करण्डक, २. वेश्या-करण्डक,
३. गृहपति-करण्डक, ४. राज-करण्डक।
इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार के होते हैं—
१. श्वपाक-करण्डक के समान,
२. वेश्या-करण्डक के समान,
३. गृहपति-करण्डक के समान,
४. राज-करण्डक के समान[११७]।

५४२. चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
साले णाममेगे सालपरियाए,
साले णाममेगे एरंडपरियाए,
एरंडे णाममेगे सालपरियाए,
एरंडे णाममेगे एरंडपरियाए।

चत्वारः रुक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
शालः नामैकः शालपर्यायकः,
शालः नामैकः एरण्डपर्यायकः,
एरण्डः नामैकः शालपर्यायकः,
एरण्डः नामैकः एरण्डपर्यायकः।

५४२. वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ वृक्ष शाल जाति के होते हैं और वे शाल-पर्याय—विस्तृत छाया वाले होते हैं, २. कुछ वृक्ष शाल जाति के होते हैं और वे एरण्ड-पर्याय—अल्प छाया वाले होते हैं, ३. कुछ वृक्ष एरण्ड जाति के होते हैं और वे शाल-पर्याय वाले होते हैं, ४. कुछ वृक्ष एरण्ड जाति के होते हैं और वे एरण्ड-पर्याय वाले होते हैं।

एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—
साले णाममेगे सालपरियाए,
साले णाममेगे एरंडपरियाए,
एरंडे णाममेगे सालपरियाए,
एरंडे णाममेगे एरंडपरियाए।

एवमेव चत्वारः आचार्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
शालः नामैकः शालपर्यायकः,
शालः नामैकः एरण्डपर्यायकः,
एरण्डः नामैकः शालपर्यायकः,
एरण्डः नामैकः एरण्डपर्यायकः।

इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ आचार्य शाल [जातिमान्] होते हैं और वे शाल-पर्याय—ज्ञान, क्रिया, प्रभाव आदि से सम्पन्न होते हैं, २. कुछ आचार्य शाल [जातिमान्] होते हैं और वे एरण्ड-पर्याय—ज्ञान, क्रिया, प्रभाव आदि से शून्य होते हैं, ३. कुछ आचार्य एरण्ड होते हैं और वे शाल-पर्याय से सम्पन्न होते हैं, ४ कुछ आचार्य एरण्ड होते हैं और वे एरण्ड-पर्याय से सम्पन्न होते हैं।

५४३. चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
साले णाममेगे सालपरिवारे,
साले णाममेगे एरंडपरिवारे,
एरंडे णाममेगे सालपरिवारे,
एरंडे णाममेगे एरंडपरिवारे।

चत्वारः रुक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
शालः नामैकः शालपरिवारः,
शालः नामैकः एरण्डपरिवारः,
एरण्डः नामैकः शालपरिवारः,
एरण्डः नामैकः एरण्डपरिवारः।

५४३ वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ वृक्ष शाल होते हैं और वे शाल परिवार वाले होते हैं—शाल वृक्षों से घिरे हुए होते हैं, २ कुछ वृक्ष शाल होते हैं और वे एरण्ड परिवार वाले होते हैं, ३. कुछ वृक्ष एरण्ड होते हैं और वे शाल-परिवार वाले होते हैं, ४ कुछ वृक्ष एरण्ड होते हैं और वे एरण्ड परिवार वाले होते हैं।

एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—
साले णाममेगे सालपरिवारे,
साले णाममेगे एरंडपरिवारे,
एरंडे णाममेगे सालपरिवारे,
एरंडे णाममेगे एरंडपरिवारे।

एवमेव चत्वारः आचार्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
शालः नामैकः शालपरिवारः,
शालः नामैकः एरण्डपरिवारः,
एरण्डः नामैकः शालपरिवारः,
एरण्डः नामैकः एरण्डपरिवारः।

इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार के होते हैं —
१ कुछ आचार्य शाल होते हैं और वे शाल-परिवार—योग्य शिष्य-परिवार वाले होते हैं, २ कुछ आचार्य शाल होते हैं और वे एरण्ड-परिवार—अयोग्य-शिष्य परिवार वाले होते हैं, ३. कुछ आचार्य एरण्ड होते हैं और वे शाल-परिवार वाले होते हैं, ४. कुछ आचार्य एरण्ड होते हैं और वे एरण्ड-परिवार वाले होते हैं।

संगहणी-गाहा

१. सालदुममज्झयारे,
जह सालेणाम होइ दुमराया।
इय सुंदरआयरिए,
सुंदरसीसे मुणेयव्वे ॥

२. एरंडमज्झयारे,
जह साले णाम होइ दुमराया।
इय सुंदरआयरिए,
मंगुलसीसे मुणेयव्वे ॥

३. सालदुममज्झयारे,
एरंडे णाम होइ दुमराया।
इय मंगुलआयरिए,
सुंदरसीसे मुणेयव्वे ॥

४. एरंडमज्झयारे,
एरंडे णाम होइ दुमराया।
इय मंगुलआयरिए,
मंगुलसीसे मुणेयव्वे ॥

संग्रहणी-गाथा

१. शालद्रुममध्यकारे,
यथा शालो नाम भवति द्रुमराजः।
इति सुन्दर आचार्य,
सुन्दर शिष्य. ज्ञातव्य. ॥

२ एरण्डमध्यकारे,
यथा शालो नाम भवति द्रुमराजः।
एव सुन्दरः आचार्य,
मगुल (असुन्दरः) शिष्यः ज्ञातव्यः ॥

३. शालद्रुममध्यकारे,
एरण्डो नाम भवति द्रुमराज.।
एव मगुल आचार्यः,
सुन्दरः शिष्य ज्ञातव्यः ॥

४. एरण्डमध्यकारे,
एरण्डो नाम भवति द्रुमराजः।
एव मगुलः आचार्य,
मगुल. शिष्यः ज्ञातव्यः ॥

संग्रहणी-गाथा

१. जिस प्रकार शाल नाम का वृक्ष शाल-वृक्षों से घिरा हुआ होता है उसी प्रकार शाल-आचार्य स्वयं सुन्दर होते है और शाल परिवार--सुन्दर शिष्य परिवार से परिवृत होते है,

२ जिस प्रकार शाल नाम का वृक्ष एरण्ड-वृक्षो से घिरा हुआ होता है उसी प्रकार शाल आचार्य स्वय सुन्दर होते है और वे एरण्ड परिवार--असुन्दर शिष्यो से परिवृत होते है,

३ जिस प्रकार एरण्ड नाम का वृक्ष शाल-वृक्षों से घिरा हुआ होता है उसी प्रकार एरण्ड-आचार्य स्वय असुन्दर होते है और वे शाल परिवार---सुन्दर शिष्यों से परिवृत होते है,

४ जिस प्रकार एरण्ड नाम का वृक्ष एरण्ड-वृक्षो से घिरा हुआ होता है उसी प्रकार एरण्ड-आचार्य स्वय भी असुन्दर होते है और वे एरण्ड परिवार—असुन्दर शिष्यों से परिवृत होते है।

भिक्खाग-पदं

५४४. चत्तारि मच्छा पण्णत्ता, तं जहा—
अणुसोयचारी, पडिसोयचारी,
अंतचारी, मज्झचारी।

एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता, तं जहा—
अणुसोयचारी, पडिसोयचारी,
अंतचारी, मज्झचारी।

भिक्षाक-पदम्

चत्वार. मत्स्याः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अनुश्रोतश्चारी, प्रतिश्रोतश्चारी,
अन्तचारी, मध्यचारी।

एवमेव चत्वारः भिक्षाकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अनुश्रोतश्चारी, प्रतिश्रोतश्चारी,
अन्तचारी, मध्यचारी।

भिक्षाक-पद

५४४. मत्स्य चार प्रकार के होते हैं—
१ अनुस्रोतचारी--प्रवाह के अनुकूल चलने वाले, २. प्रतिस्रोतचारी—प्रवाह के प्रतिकूल चलने वाले, ३. अन्तचारी—किनारों पर चलने वाले, ४. मध्यचारी—बीच मे चलने वाले।

इसी प्रकार भिक्षुक भी चार प्रकार के होते है —
१ अनुश्रोतचारी, २. प्रतिश्रोतचारी,
३ अन्तचारी, ४. मध्यचारी।

गोल-पदं

५४५. चत्तारि गोला पण्णत्ता, तं जहा—
मधुसित्थगोले, जउगोले, दारुगोले, मट्टियागोले।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
मधुसित्थगोलसमाणे, जउगोलसमाणे, दारुगोलसमाणे, मट्टियागोलसमाणे।

५४६. चत्तारि गोला पण्णत्ता, तं जहा—
अयगोले, तउगोले, तंबगोले, सीसगोले।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अयगोलसमाणे, °तउगोलसमाणे, तंबगोलसमाणे°, सीसगोलसमाणे।

५४७. चत्तारि गोला पण्णत्ता, तं जहा—
हिरण्णगोले, सुवण्णगोले, रयणगोले, वयरगोले।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
हिरण्णगोलसमाणे, °सुवण्णगोलसमाणे, रयणगोलसमाणे°, वयरगोलसमाणे।

पत्त-पदं

५४८. चत्तारि पत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
असिपत्ते, करपत्ते, खुरपत्ते, कलंबचीरियापत्ते।

गोल-पदम्

चत्वारः गोलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
मधुसिक्थगोलः, जतुगोलः, दारुगोलः, मृत्तिकागोलः।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मधुसिक्थगोलसमानः, जतुगोलसमानः, दारुगोलसमानः, मृत्तिकागोलसमानः।

चत्वारः गोलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अयोगोलः, त्रपुगोलः, ताम्रगोलः, शीशगोलः।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अयगोलसमानः, त्रपुगोलसमानः, ताम्रगोलसमानः, शीशगोलसमानः।

चत्वारः गोलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
हिरण्यगोलः, सुवर्णगोलः, रत्नगोलः, वज्रगोलः।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
हिरण्यगोलसमानः, सुवर्णगोलसमानः, रत्नगोलसमानः, वज्रगोलसमानः।

पत्र-पदम्

चत्वारि पत्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
असिपत्रं, करपत्रं, क्षुरपत्रं, कदम्बचीरिकापत्रम्।

गोल-पद

५४५. गोले चार प्रकार के होते है—
१. मधुसिक्थ—मोम का गोला, २. जतु—लाख का गोला, ३. दारु—काष्ठ का गोला, ४. मृत्तिका—मिट्टी का गोला।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१. मधुसिक्थ के गोले के समान, २. जतु के गोले के समान, ३. दारु के गोले के समान, ४. मृत्तिका के गोले के समान[११८]।

५४६. गोले चार प्रकार के होते है—
१ लोहे का गोला, २. त्रपु—रांगे का गोला, ३ तांबे का गोला, ४. शीशे का गोला।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१ लोहे के गोले के समान, २ त्रपु के गोले के समान, ३. तांबे के गोले के समान, ४ शीशे के गोले के समान[११९]।

५४७. गोले चार प्रकार के होते है—
१ हिरण्य—चाँदी का गोला, २ सुवर्ण—सोने का गोला, ३ रत्न का गोला, ४ वज्ररत्न का गोला।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१ हिरण्य के गोले के समान, २ सुवर्ण के गोले के समान, ३ रत्न के गोले के समान, ४. वज्ररत्न के गोले के समान[१२०]।

पत्र-पद

५४८ पत्र—फलक चार प्रकार के होते है—
१ असिपत्र—तलवार का पत्र, २. करपत्र—करोत का पत्र, ३. क्षुरपत्र—छूरे का पत्र, ४. कदम्बचीरिकापत्र—तीखी नोक वाला घास या शस्त्र।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
असिपत्तसमाणे, °करपत्तसमाणे, खुरपत्तसमाणे°, कलंबचीरिया-पत्तसमाणे ।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
असिपत्रसमानः, करपत्रसमानः, क्षुरपत्रसमानः, कदम्बचीरिकापत्रसमानः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१. असिपत्र के समान—तुरन्त स्नेह-पाश को छेद देने वाला, २ करपत्र के समान—बार-बार के अभ्यास से स्नेह-पाश को छेद देने वाला, ३. क्षुरपत्र के समान—थोडे स्नेह-पाश को छेद देने वाला, ४. कदम्ब चीरिका पत्र के समान—स्नेह छेद की इच्छा रखने वाला[११] ।

कड-पदं

कट-पदम्

कट-पद

५४९. चत्तारि कडा पण्णत्ता, तं जहा—
सुंबकडे, विदलकडे, चम्मकडे, कंबलकडे ।

चत्वारः कटाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
सुम्बकटः विदलकटः, चर्मकटः, कम्बलकटः ।

५४९. कट [चटाई] चार प्रकार के होते है—
१. सुम्बकट—घास से बना हुआ,
२ विदलकट—बाँस के टुकड़ो से बना हुआ, ३ चर्मकट—चमडे से बना हुआ,
४. कम्बलकट ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुंबकडसमाणे, °विदलकडसमाणे, चम्मकडसमाणे, कंबलकडसमाणे ।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि, तद्यथा—
सुम्बकटसमानः, विदलकटसमानः, चर्मकटसमानः, कम्बलकटसमानः ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१ सुम्बकट के समान—अल्प प्रतिबन्ध वाला, २ विदलकट के समान, बहु प्रतिबन्ध वाला, ३ चर्मकट के समान, बहुतर प्रतिबन्ध वाला, ४ कम्बलकट के समान, बहुतम प्रतिबन्ध वाला ।

तिरिय-पदं

तिर्यग्-पदम्

तिर्यग्-पद

५५०. चउव्विहा चउप्पया पण्णत्ता, तं जहा—
एगखुरा, दुखुरा, गंडीपदा, सणप्फया ।

चतुर्विधाः चतुष्पदाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
एकखुराः द्विखुराः गण्डिपदाः सनखपदाः।

५५०. चतुष्पद—जानवर चार प्रकार के होते है
१ एक खुर वाले— घोडे, गधे आदि,
२ दो खुर वाले—गाय, भैंस आदि,
३ गण्डीपद— स्वर्णकार की अहरन की तरह गोल पैर वाले—हाथी, ऊट आदि,
४. सनखपद—नख सहित पैर वाले—सिंह, कुत्ते आदि ।

५५१. चउव्विहा पक्खी पण्णत्ता, तं जहा—
चम्मपक्खी, लोमपक्खी, समुग्गपक्खी, विततपक्खी ।

चतुर्विधाः पक्षिणः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
चर्मपक्षिणः, लोमपक्षिणः, समुद्गपक्षिणः, विततपक्षिणः ।

५५१ पक्षी चार प्रकार के होते है—
१ चर्मपक्षी— जिनके पंख चमडे के होते है, चमगादड़ आदि, २. रोमपक्षी—जिनके पंख रोएँदार होते हैं, हंस आदि, ३. समुद्गपक्षी—जिनके पंख पेटी की तरह खुलते हैं और बन्द होते हैं, ४. विततपक्षी—जिनके पंख सदा खुले ही रहते है[११२]।

५५२. चउव्विहा खुड्डपाणा पण्णत्ता, तं जहा—बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, संमुच्छिमपंचिदियतिरिक्खजोणिया।

चतुर्विधाः क्षुद्रप्राणाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः, सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः।

५५२. क्षुद्र-प्राणी चार प्रकार के होते है—
१. द्वीन्द्रिय, २. त्रीन्द्रिय, ३. चतुरीन्द्रिय, ४. सम्मूर्च्छिमपंचेन्द्रियतिर्यक्यौनिक।

भिक्खाग-पदं

भिक्षाक-पदम्

भिक्षाक-पद

५५३. चत्तारि पक्खी पण्णत्ता, तं जहा—
णिवतित्ता णाममेगे, णो परिवइत्ता, परिवइत्ता णाममेगे, णो णिवतित्ता, एगे णिवतित्तावि, परिवइत्तावि, एगे णो णिवतित्ता, णो परिवइत्ता।

चत्वारः पक्षिणः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
निपतिता नामैकः, नो परिव्रजिता, परिव्रजिता नामैकः, नो निपतिता, एकः निपतितापि, परिव्रजितापि, एकः नो निपतिता, नो परिव्रजिता।

५५३. पक्षी चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पक्षी नीड से नीचे उतर सकते है, पर उड नही सकते, २. कुछ पक्षी उड सकते है पर नीड़ से नीचे नही उतर सकते ३ कुछ पक्षी नीड से नीचे भी उतर सकते है और उड भी सकते है, ४ कुछ पक्षी न नीड़ से नीचे उतर सकते है और न उड़ ही सकते है।

एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता, त जहा—
णिवतित्ता णाममेगे, णो परिवइत्ता, परिवइत्ता णाममेगे, णो णिवतित्ता, एगे णिवतित्तावि, परिवइत्तावि, एगे णो णिवतित्ता, णो परिवइत्ता।

एवमेव चत्वार. भिक्षाका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
निपतिता नामैकः, नो परिव्रजिता, परिव्रजिता नामैकः, नो निपतिता, एकः निपतितापि, परिव्रजितापि, एकः नो निपतिता, नो परिव्रजिता।

इसी प्रकार भिक्षुक भी चार प्रकार के होते है—
१ कुछ भिक्षुक भिक्षा के लिए जाते है, पर अधिक घूम नही सकते, २. कुछ भिक्षुक भिक्षा के लिए घूम सकते है पर जाते नही ३ कुछ भिक्षुक भिक्षा के लिए जाते भी है और घूम भी सकते है, ४. कुछ भिक्षुक न भिक्षा के लिए जाते है और न घूम ही सकते है।[१३]

णिक्कट्ठ-अणिक्कट्ठ-पदं

निष्कृष्ट-अनिष्कृष्ट-पदम्

निष्कृष्ट-अनिष्कृष्ट-पद

५५४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
णिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठे, णिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठे, अणिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठे, अणिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
निष्कृष्टः नामैकः निष्कृष्टः, निष्कृष्टः नामैकः अनिष्कृष्टः, अनिष्कृष्टः नामैकः निष्कृष्टः, अनिष्कृष्टः नामैकः अनिष्कृष्टः।

५५४. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष शरीर से भी निष्कृष्ट—क्षीण होते है और कषाय से भी निष्कृष्ट होते है, २ कुछ पुरुष शरीर से निष्कृष्ट, किन्तु कषाय से अनिष्कृष्ट होते है, ३ कुछ पुरुष शरीर से अनिकृष्ट, किन्तु कषाय से निष्कृष्ट होते है ४. कुछ पुरुष शरीर से भी अनिष्कृष्ट होते है और कषाय से भी अनिष्कृष्ट होते है।

५५५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
णिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठप्पा,
णिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठप्पा,
अणिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठप्पा,
अणिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठप्पा।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
निष्कृष्टः नामैकः निष्कृष्टात्मा,
निष्कृष्टः नामैकः अनिष्कृष्टात्मा,
अनिष्कृष्टः नामैकः निष्कृष्टात्मा,
अनिष्कृष्टः नामैकः अनिष्कृष्टात्मा।

५५५. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष शरीर से भी निष्कृष्ट होते हैं और उनकी आत्मा भी निष्कृष्ट होती है, २. कुछ पुरुष शरीर से निष्कृष्ट होते है, पर उनकी आत्मा निष्कृष्ट नही होती, ३. कुछ पुरुष शरीर से अनिष्कृष्ट होते है, पर उनकी आत्मा निष्कृष्ट होती है, ४. कुछ पुरुष शरीर से भी अनिष्कृष्ट होते है और आत्मा से भी अनिष्कृष्ट होते है।

बुध-अबुध-पदं

बुध-अबुध-पदम्

बुध-अबुध-पद

५५६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
बुहे णाममेगे बुहे,
बुहे णाममेगे अबुहे,
अबुहे णाममेगे बुहे,
अबुहे णाममेगे अबुहे।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
बुधः नामैकः बुधः,
बुधः नामैकः अबुधः,
अबुधः नामैकः बुधः,
अबुधः नामैकः अबुधः।

५५६. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष ज्ञान से भी बुध होते है और आचरण से भी बुध होते है, २ कुछ पुरुष ज्ञान से बुध होते है, किन्तु आचरण से बुध नही होते, ३ कुछ पुरुष ज्ञान से अबुध होते है, किन्तु आचरण से बुध होते है, ४ कुछ पुरुष ज्ञान से भी अबुध होते है और आचरण से भी अबुध होते है।

५५७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
बुधे णाममेगे बुधहियए,
बुधे णाममेगे अबुधहियए,
अबुधे णाममेगे बुधहियए,
अबुधे णाममेगे अबुधहियए।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
बुधः नामैकः बुधहृदयः,
बुधः नामैकः अबुधहृदयः,
अबुधः नामैकः बुधहृदयः,
अबुधः नामैकः अबुधहृदयः।

५५७. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१ कुछ पुरुष आचरण से भी बुध होते है और उनका हृदय भी बुध — विवेचनाशील होता है, २. कुछ पुरुष आचरण से बुध होते है, पर उनका हृदय बुध नही होता, ३ कुछ पुरुष आचरण से बुध नही होते, पर उनका हृदय बुध होता है, ४ कुछ पुरुष आचरण से भी अबुध होते है और उनका हृदय भी अबुध होता है।

अणुकंपग-पदं

अनुकम्पक-पदम्

अनुकम्पक-पद

५५८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
आयाणुकंपए णाममेगे, णो पराणु-

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
आत्मानुकम्पकः नामैकः, नो परानु-

५५८. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष आत्मानुकंपक—आत्म-हित मे प्रवृत्त होते है, पर परानुकंपक—

कंपए, पराणुकंपए णाममेगे, णो आयाणुकंपए, एगे आयाणुकंपए वि, पराणुकंपए वि, एगे णो आयाणुकंपए, णो पराणुकंपए।

कम्पकः, परानुकम्पकः नामैकः, नो आत्मानुकम्पकः, एकः आत्मानुकम्पकोऽपि, परानुकम्पकोऽपि, एकः नो आत्मानुकम्पकः, नो परानुकम्पकः।

परहित मे प्रवृत्त नही होते, जैसे—जिनकल्पिक मुनि, २. कुछ पुरुष परानुकपक होते है, पर आत्मानुकपक नही होते, जैसे—कृतकार्य तीर्थंकर, ३. कुछ पुरुष आत्मानुकपक भी होते है और परानुकपक भी होते है, जैसे—स्थविर कल्पिक मुनि, ४ कुछ पुरुष न आत्मानुकंपक होते है और न परानुकंपक ही होते हैं, जैसे—क्रूरकर्मा पुरुष।[१३]

संवास-पदं

५५९. चउव्विहे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—दिव्वे आसुरे रक्खसे माणुसे।

५६०. चउव्विधे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—देवे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छति, देवे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति, असुरे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छति, असुरे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति।

५६१. चउव्विधे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—देवे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छति, देवे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति, रक्खसे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छति, रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति।

५६२. चउव्विधे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—देवे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छति, देवे णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति।

संवास-पदम्

चतुर्विधः संवासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—दिव्यः, आसुरः, राक्षसः, मानुषः।

चतुर्विध. संवासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—देवःनामैकः देव्या सार्धं सवासं गच्छति, देवःनामैक. असुर्या सार्धं संवासं गच्छति, असुरःनामैक. देव्या सार्धं संवास गच्छति, असुरः नामैकः असुर्या सार्धं सवासं गच्छति।

चतुर्विधः सवास प्रज्ञप्त., तद्यथा—देव· नामैक. देव्या सार्ध सवास गच्छति, देवः नामैकः राक्षस्या सार्धं सवासं गच्छति, राक्षसः नामैकः देव्या सार्ध संवासं गच्छति, राक्षस. नामैक. राक्षस्या सार्धं सवासं गच्छति।

चतुर्विधः सवासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—देवः नामैकः देव्या सार्धं सवास गच्छति, देवः नामैकः मानुष्या सार्धं संवासं गच्छति, मनुष्यः नामैकः देव्या सार्ध संवासं गच्छति, मनुष्यः नामैकः मानुष्या सार्धं संवासं गच्छति।

संवास-पद

५५९. सवास—मैथुन चार प्रकार का होता है—
१. देवताओ का, २. असुरो का,
३. राक्षसो का, ४ मनुष्यो का।

५६०. सवास चार प्रकार का होता है—
१. कुछ देव देवियो के साथ सवास करते है, २ कुछ देव असुरियो के साथ सवास करते है, ३. कुछ असुर देवियो के साथ सवास करते है, ४ कुछ असुर असुरियो के साथ सवास करते है।

५६१. सवास चार प्रकार का होता है—
१ कुछ देव देवियो के साथ सवास करते है, २ कुछ देव राक्षसियो के साथ सवास करते है, ३. कुछ राक्षस देवियो के साथ सवास करते है, ४. कुछ राक्षस राक्षसियो के साथ सवास करते है।

५६२ सवास चार प्रकार का होता है—
१ कुछ देव देवियों के साथ सवास करते हैं, २ कुछ देव मानुषियो के साथ सवास करते हैं, ३. कुछ मनुष्य देवियो के साथ सवास करते है, ४. कुछ मनुष्य मानुषियो के साथ संवास करते है।

५६३. चउव्विधे संवासे पण्णत्ते, तं जहा— असुरे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति, असुरे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति, रक्खसे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति, रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति।

चतुर्विधः संवासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— असुरः नामैकः असुर्या सार्धं सवासं गच्छति, असुरः नामैकः राक्षस्या सार्धं संवास गच्छति, राक्षसः नामैकः असुर्या सार्धं सवास गच्छति, राक्षसः नामैकः राक्षस्या सार्धं सवास गच्छति।

५६३. संवास चार प्रकार का होता है— १. कुछ असुर असुरियो के साथ संवास करते है, २. कुछ असुर राक्षसियो के साथ सवास करते है, ३. कुछ राक्षस असुरियों के साथ सवास करते है, ४ कुछ राक्षस राक्षसियो के साथ सवास करते हैं।

५६४. चउव्विधे संवासे पण्णत्ते, तं जहा— असुरे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति, असुरे णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति।

चतुर्विधः संवासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— असुरः नामैकः असुर्या सार्धं सवासं गच्छति, असुरः नामैकः मानुष्या सार्धं संवासं गच्छति, मनुष्यः नामैकः असुर्या सार्धं सवास गच्छति, मनुष्यः नामैकः मानुष्या सार्धं संवास गच्छति।

५६४ सवास चार प्रकार का होता है— १. कुछ असुर असुरियो के साथ संवास करते है, २ कुछ असुर मानुषियो के साथ सवास करते है, ३. कुछ मनुष्य असुरियों के साथ सवास करते है, ४. कुछ मनुष्य मानुषियो के साथ सवास करते है।

५६५. चउव्विधे संवासे पण्णत्ते, तं जहा— रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति, रक्खसे णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति।

चतुर्विधः सवासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— राक्षसः नामैकः राक्षस्या सार्धं संवास गच्छति, राक्षसः नामैकः मानुष्या सार्धं संवास गच्छति, मनुष्यः नामैकः राक्षस्या सार्धं सवास गच्छति, मनुष्यः नामैकः मानुष्या सार्धं सवास गच्छति।

५६५ सवास चार प्रकार का होता है— १ कुछ राक्षस राक्षसियो के साथ सवास करते है, २ कुछ राक्षस मानुषियो के साथ सवास करते है, ३. कुछ मनुष्य राक्षसियो के साथ सवास करते है, ४ कुछ मनुष्य मानुषियों के साथ सवास करते है।

अवद्धंस-पदं

अपध्वंस-पदम्

अपध्वंस-पद

५६६. चउव्विहे अवद्धंसे पण्णत्ते, तं जहा— आसुरे, आभिओगे, संमोहे, देवकिब्बिसे।

चतुर्विधः अपध्वसः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— आसुरः, आभियोगः, सम्मोहः, देवकिल्बिष।

५६६. अपध्वस —साधना का विनाश चार प्रकार का है— १ आसुर-अपध्वस, २. अभियोग-अपध्वस, ३. सम्मोह-अपध्वस, ४ देवकिल्विष-अपध्वस।[१२६]

५६७. चउहिं ठाणेहिं जीवा आसुरत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा— कोवसीलताए, पाहुडसीलताए, संसत्ततवोकम्मेण, णिमित्ताजीवयाए।

चतुर्भिः स्थानैः जीवा आसुरतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा— कोपशीलतया, प्राभृतशीलतया, ससक्ततपःकर्मणा, निमित्ताजीवतया।

५६७. चार स्थानो से जीव आसुरत्व-कर्म का अर्जन करता है— १ कोपशीलता से, २. प्राभृत शीलता— कलहस्वभाव से, ३ संसक्त तपः कर्म— आहार, उपधि की प्राप्ति के लिए तप करने से, ४. निमित्त जीविता—निमित्त आदि बताकर आहार आदि प्राप्त करने से।[१२७]

५६८. चउहिं ठाणेहिं जीवा आभिओगत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
अत्तुक्कोसेणं, परपरिवाएणं, भूतिकम्मेणं, कोउयकरणेणं।

चतुर्भिः स्थानैः जीवा आभियोगतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
आत्मोत्कर्षेण, परपरिवादेन, भूतिकर्मणा, कौतुककरणेन।

५६८. चार स्थानो से जीव आभियोगित्व-कर्म का अर्जन करता है—
१. आत्मोत्कर्ष—आत्म-गुणों का अभिमान करने से, २. पर-परिवाद—दूसरों का अवर्णवाद बोलने से, ३. भूतिकर्म—भस्म, लेप आदि के द्वारा चिकित्सा करने से, ४. कौतुककरण—मंत्रित जल से स्नान कराने से।[१२८]

५६९. चउहिं ठाणेहिं जीवा सम्मोहत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
उम्मग्गदेसणाए, मग्गंतराएणं, कामासंसपओगेणं, भिज्जाणियाणकरणेणं।

चतुर्भिः स्थानैः जीवाः सम्मोहतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
उन्मार्गदेशनया, मार्गान्तरायेण, कामाशसाप्रयोगेण, भिध्यानिदानकरणेन।

५६९. चार स्थानों से जीव सम्मोहत्व-कर्म का अर्जन करता है—
१. उन्मार्ग देशना—मिथ्या धर्म का प्ररूपण करने से, २. मार्गान्तराय—मोक्ष मार्ग मे प्रवृत्त व्यक्ति के लिए विघ्न उत्पन्न करने से, ३. कामाशसाप्रयोग—शब्दादि विषयों मे अभिलाषा करने से, ४. मिथ्यानिदानकरण—गृद्धि-पूर्वक निदान करने से।[१२९]

५७०. चउहिं ठाणेहिं जीवा देवकिब्बिसियत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
अरहंताणं अवण्णं वदमाणे, अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णं वदमाणे, आयरियउवज्झायाणमवण्णं वदमाणे, चाउवण्णस्स संघस्स अवण्णं वदमाणे।

चतुर्भिः स्थानैः जीवा देवकिल्बिषिकतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
अर्हतां अवर्णं वदन्,
अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य अवर्णं वदन्,
आचार्योपाध्याययोः अवर्णं वदन्,
चतुर्वर्णस्य सघस्य अवर्णं वदन्।

५७० चार स्थानो से जीव देव-किल्विषिकत्व कर्म का अर्जन करता है—
१ अर्हन्तो का अवर्णवाद बोलने से, २ अर्हन्त प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद बोलने से, ३. आचार्य तथा उपाध्याय का अवर्णवाद बोलने से, ४. चतुर्विध सघ का अवर्णवाद बोलने से।[१३०]

पव्वज्जा-पदं

प्रव्रज्या-पदम्

प्रव्रज्या-पद

५७१. चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
इहलोगपडिबद्धा, परलोगपडिबद्धा, दुहतोलोगपडिबद्धा, अप्पडिबद्धा।

चतुर्विधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
इहलोकप्रतिबद्धा, परलोकप्रतिबद्धा, द्वयलोकप्रतिबद्धा, अप्रतिबद्धा।

५७१. प्रव्रज्या चार प्रकार की होती है—
१ इहलोक प्रतिबद्धा—इस जन्म की सुख कामना से ली जाने वाली, २. परलोक प्रतिबद्धा—परलोक की सुख कामना से ली जाने वाली, ३. उभयलोक प्रतिबद्धा—दोनों लोको की सुख कामना से ली जाने वाली, ४. अप्रतिबद्धा—इहलोक आदि के प्रतिबंध से रहित।

५७२. चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
पुरओपडिबद्धा, मग्गओपडिबद्धा, दुहतोपडिबद्धा, अप्पडिबद्धा।

चतुर्विधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पुरतःप्रतिबद्धा, 'मग्गतो' [पृष्ठतः] प्रतिबद्धा, द्वयप्रतिबद्धा, अप्रतिबद्धा।

५७२. प्रव्रज्या चार प्रकार की होती है—
१ पुरतःप्रतिबद्धा—शिष्य, आहार आदि की कामना से ली जाने वाली,
२. पृष्ठतःप्रतिबद्धा—प्रव्रजित हो जाने पर स्वजन-सबंध छिन्न नही हुए हो,
३. उभयप्रतिबद्धा—उक्त दोनो से प्रतिबद्ध ४. अप्रतिबद्धा—उक्त दोनो से अप्रतिबद्ध।

५७३. चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
ओवायपव्वज्जा, अक्खातपव्वज्जा, संगारपव्वज्जा, विहगगइपव्वज्जा।

चतुर्विधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
अवपातप्रव्रज्या, आख्यातप्रव्रज्या, सगरप्रव्रज्या, विहगगतिप्रव्रज्या।

५७३. प्रव्रज्या चार प्रकार की होती है—
१ अवपात प्रव्रज्या—गुरु सेवा से प्राप्त की जाने वाली, ४ आख्यात प्रव्रज्या—दूसरो के कहने से ली जाने वाली,
३ सगरप्रव्रज्या—परस्पर प्रतिबोध देने की प्रतिज्ञा पूर्वक ली जाने वाली,
४ विहगगति प्रव्रज्या–परिवार से वियुक्त होकर देशान्तर मे जाकर ली जाने वाली।

५७४ चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
तुयावइत्ता, पुयावइत्ता, बुआवइत्ता, परिपुयावइत्ता।

चतुर्विधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
तोदयित्वा, प्लावयित्वा, वाचयित्वा, परिप्लुतयित्वा।

५७४. प्रव्रज्या चार प्रकार की होती है
१ कष्ट देकर दी जाने वाली, २ दूसरे स्थान मे ले जाकर दी जाने वाली,
३ बातचीत करके दी जाने वाली,
४ स्निग्ध सुमधुर भोजन करवा कर दी जाने वाली।

५७५. चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
णडखइया, भडखइया, सीहखइया, सियालखइया।

चतुर्विधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
नट खादिता, भट खादिता, सिह खादिता, शृगाल खादिता।

५७५ प्रव्रज्या चार प्रकार की होती है—
१ नटखादिता—जिसमे नट की भाँति वैराग्य शून्य धर्मकथा कहकर जीविका चलाई जाए, २. भटखादिता—जिसमें भट की भाँति बल का प्रदर्शन कर जीविका चलाई जाए, ३. सिंहखादिता—जिसमें सिंह की भाँति दूसरो को डराकर जीविका चलाई जाए, ४. शृगाल-खादिता—जिसमे शृगाल की भाँति दयापात्र होकर जीविका चलाई जाए।

५७६. चउव्विहा किसी पण्णत्ता, तं जहा—

चतुर्विधा कृषिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

५७६ कृषि चार प्रकार की होती है—

वाविया, परिवाविया, णिंदिता, परिणिंदिता।

वापिता, परिवापिता, निदाता, परिनिदाता।

१. उप्त—एक बार बोई हुई, २. पर्युप्त—एक बार बोए हुए धान्य को दो-तीन बार उखाड-उखाड कर लगाए जाए, जैसे—चावल आदि, ३. निदात—एक बार घास आदि की कटाई, ४ परिनिदात—बार-बार घास आदि की कटाई।

एवामेव चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
वाविता, परिवाविता, णिंदिता, परिणिंदिता।

एवमेव चतुर्विधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वापिता, परिवापिता, निदाता, परिनिदाता।

इसी प्रकार प्रव्रज्या भी चार प्रकार की होती है—
१. उप्त—सामायिक चारित्र मे आरोपित करना, २. पर्युप्त—महाव्रतो मे आरोपित करना, ३. निदात—एक बार आलोचना, ४ परिनिदात—बार-बार आलोचना।

५७७. चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
धण्णपुंजितसमाणा, धण्णविरल्लितसमाणा, धण्णविक्खित्तसमाणा, धण्णसंकट्टितसमाणा।

चतुर्विधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पुञ्जितधान्यसमाना, विसरितधान्यसमाना, विक्षिप्तधान्यसमाना, सङ्कर्षितधान्यसमाना।

५७७. प्रव्रज्या चार प्रकार की होती है—
१. साफ किए हुए धान्य-पुज के समान—आलोचना-रहित, २. साफ किए हुए, किन्तु बिखरे हुए धान्य के समान—अल्प अतिचार वाली, ३ बैलो आदि के पैरो से कुचले हुए धान्य के समान—बहु-अतिचार वाली, ४. खलिहान पर लाये हुए धान्य के समान—बहुतरअतिचार वाली।

सण्णा-पदं

संज्ञा-पदम्

संज्ञा-पद

५७८. चत्तारि सण्णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
आहारसण्णा, भयसण्णा, मेहुणसण्णा, परिग्गहसण्णा।

चतस्रः संज्ञाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा।

५७८. संज्ञाए[111] चार होती है—
१. आहार संज्ञा, २. भय संज्ञा
३. मैथुन संज्ञा, ४. परिग्रह संज्ञा।

५७९. चउहिं ठाणेहिं आहारसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा—
ओमकोट्ठताए, छुहावेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदट्ठोवओगेणं।

चतुर्भिः स्थानैः आहारसंज्ञा समुत्पद्यते, तद्यथा—
अवमकोष्ठतया, क्षुधावेदनीयस्य कर्मणः उदयेन, मत्या, तदर्थोपयोगेन।

५७९. चार स्थानो से आहार-संज्ञा उत्पन्न होती है—
१. पेट के खाली हो जाने से, २ क्षुधा-वेदनीय कर्म के उदय होने से, ३. आहार की बात सुनने से उत्पन्न मति से, ४. आहार के विषय में सतत चिंतन करते रहने से।

५८०. चउहिं ठाणेहिं भयसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा—

चतुर्भिः स्थानैः भयसंज्ञा समुत्पद्यते, तद्यथा—

५८०. चार स्थानो से भय-संज्ञा उत्पन्न होती है—

हीणसत्तताए, भयवेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदट्ठोवओगेणं।

हीनसत्त्वतया, भयवेदनीयस्य कर्मणः उदयेन, मत्या, तदर्थोपयोगेन।

१. सत्त्वहीनता से, २. भय-वेदनीय कर्म के उदय से, ३. भय की बात सुनने से उत्पन्न मति से, ४. भय का सतत चिंतन करते रहने से।

५८१. चउहिं ठाणेहिं मेहुणसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा—
चितमंससोणिययाए, मोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदट्ठोवओगेणं।

चतुर्भिः स्थानैः मैथुनसंज्ञा समुत्पद्यते, तद्यथा—
चितमांसशोणिततया, मोहनीयस्य कर्मणः उदयेन, मत्या, तदर्थोपयोगेन।

५८१. चार कारणों से मैथुन-संज्ञा उत्पन्न होती है—
१ अत्यधिक मांस-शोणित का उपचय हो जाने से, २ मोहनीय कर्म के उदय से— मोहाणुओं की सक्रियता से, ३ मैथुन की बात सुनने से उत्पन्न मति से,
४ मैथुन का सतत चिंतन करते रहने से।

५८२. चउहिं ठाणेहिं परिग्गहसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा—
अविमुत्तयाए, लोभवेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदट्ठोवओगेणं।

चतुर्भिः स्थानैः परिग्रहसंज्ञा समुत्पद्यते, तद्यथा—
अविमुक्ततया, लोभवेदनीयस्य कर्मणः उदयेन, मत्या, तदर्थोपयोगेन।

५८२. चार कारणों से परिग्रह संज्ञा उत्पन्न होती है—१ अविमुक्तता-परिग्रह पास में रहने से, २ लोभ-वेदनीय कर्म के उदय से, ३ परिग्रह को देखने से उत्पन्न मति से, ४ परिग्रह का सतत चिंतन करते रहने से।

काम-पदं

काम-पदम्

काम-पद

५८३. चउव्विहा कामा पण्णत्ता, तं जहा—
सिंगारा, कलुणा, बीभच्छा, रोद्दा। सिंगारा कामा देवाणं, कलुणा कामा मणुयाणं, बीभच्छा कामा तिरिक्खजोणियाणं, रोद्दा कामा णेरइयाणं।

चतुर्विधाः कामाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
शृङ्गाराः, करुणाः, बीभत्साः, रौद्राः। शृङ्गाराः कामाः देवानां, करुणाः कामाः मनुजानां, बीभत्साः कामाः तिर्यग्योनिकानां, रौद्राः कामाः नैरयिकाणाम्।

५८३. काम-भोग चार प्रकार के होते हैं—
१. शृंगार, २ करुण, ३ बीभत्स, ४ रौद्र। देवताओं का काम शृंगार-रस प्रधान होता है, मनुष्यों का काम करुण-रस प्रधान होता है, तिर्यंचों का काम बीभत्स-रस प्रधान होता है, नैरयिकों का काम रौद्र-रस प्रधान होता है।

उत्ताण-गंभीर-पदं

उत्तान-गम्भीर-पदम्

उत्तान-गम्भीर-पद

५८४. चत्तारि उदगा पण्णत्ता, तं जहा—
उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोदए,
उत्ताणे णाममेगे गंभीरोदए,
गंभीरे णाममेगे उत्ताणोदए,
गंभीरे णाममेगे गंभीरोदए।

चत्वारि उदकानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उत्तानं नामैकं उत्तानोदकं,
उत्तानं नामैकं गम्भीरोदकं,
गम्भीरं नामैकं उत्तानोदकं,
गम्भीरं नामैकं गम्भीरोदकम्।

५८४. उदक चार प्रकार के होते हैं—
१ एक उदक प्रतल—छिछला भी होता है और स्वच्छ होने के कारण उसका अन्तस्तल भी दीखता है, २. एक उदक प्रतल—छिछला होता है पर अस्वच्छ होने के कारण उसका अन्तस्तल नहीं दीखता, ३ एक उदक गंभीर होता है पर स्वच्छ होने के कारण उसका अन्तस्तल नहीं दीखता है, ४. एक उदक गंभीर होता है पर अस्वच्छ होने के कारण उसका अन्तस्तल नहीं दिखता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उत्ताणे णाममेगे उत्ताणहिदए,
उत्ताणे णाममेगे गंभीरहिदए,
गंभीरे णाममेगे उत्ताणहिदए,
गंभीरे णाममेगे गंभीरहिदए।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उत्तानः नामैकः उत्तानहृदयः,
उत्तानः नामैकः गम्भीरहृदयः,
गम्भीरः नामैकः उत्तानहृदयः,
गम्भीरः नामैकः गम्भीरहृदयः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष आकृति से भी अगंभीर होते है और हृदय से भी अगभीर होते है
२. कुछ पुरुष आकृति से अगभीर होते है, पर हृदय से गंभीर होते है ३. कुछ पुरुष आकृति से गभीर होते है, पर हृदय से अगंभीर होते है ४. कुछ पुरुष आकृति से भी गभीर होते है और हृदय से भी गभीर होते है।

५८५ चत्तारि उदगा पण्णत्ता, तं जहा—
उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी,
उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी,
गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी,
गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी।

चत्वारि उदकानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उत्तानं नामैकं उत्तानावभासि,
उत्तानं नामैकं गम्भीरावभासि,
गम्भीरं नामैकं उत्तानावभासि,
गम्भीरं नामैकं गम्भीरावभासि।

५८५. उदक चार प्रकार के होते है—
१. एक उदक प्रतल होता है और स्थान-विशेष के कारण प्रतल ही लगता है,
२. एक उदक प्रतल होता है, पर स्थान-विशेष के कारण गभीर लगता है, ३. एक उदक गंभीर होता है, पर स्थान-विशेष के कारण प्रतल लगता है, ४. एक उदक गभीर होता है और स्थान-विशेष के कारण गभीर ही लगता है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी,
उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी,
गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी,
गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उत्तानः नामैकः उत्तानावभासी,
उत्तानः नामैकः गम्भीरावभासी,
गम्भीरः नामैकः उत्तानावभासी,
गम्भीरः नामैकः गम्भीरावभासी।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष तुच्छ ही होते है और तुच्छता का प्रदर्शन करने से तुच्छ ही लगते हैं, २. कुछ पुरुष तुच्छ ही होते है, पर तुच्छता का प्रदर्शन न करने से गंभीर लगते है, ३. कुछ पुरुष गभीर होते है, पर तुच्छता का प्रदर्शन करने से तुच्छ लगते है, ४. कुछ पुरुष गंभीर होते है और तुच्छता का प्रदर्शन न करने से गभीर ही लगते हैं।

५८६. चत्तारि उवही पण्णत्ता, तं जहा—
उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोवही,
उत्ताणे णाममेगे गंभीरोवही,

चत्वारः उदधयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
उत्तानः नामैकः उत्तानोदधिः,
उत्तानः नामैकः गम्भीरोदधिः,

५८६. समुद्र चार प्रकार के होते है—
१. समुद्र के कुछ भाग पहले भी प्रतल होते है और बाद मे भी प्रतल ही होते है,
२. समुद्र के कुछ भाग पहले प्रतल होते हैं

गंभीरे णाममेगे उत्ताणोदही,
गंभीरे णाममेगे गंभीरोदही।

गम्भीरः नामैकः उत्तानोदधिः,
गम्भीरः नामैकः गम्भीरोदधिः।

पर बेला आने पर गभीर हो जाते है, ३. समुद्र के कुछ भाग बेला आने के समय गंभीर होते है पर उसके चले जाने पर प्रतल हो जाते है, ४. समुद्र के कुछ भाग पहले भी गभीर होते है और बाद मे भी गभीर ही होते हैं,

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया, पण्णत्ता, तं जहा—
उत्ताणे णाममेगे उत्ताणहियए,
उत्ताणे णाममेगे गंभीरहियए,
गंभीरे णाममेगे उत्ताणहियए,
गंभीरे णाममेगे गंभीरहियए।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उत्तानः नामैकः उत्तानहृदय
उत्तानः नामैकः गम्भीरहृदय,
गम्भीरः नामैकः उत्तानहृदयः,
गम्भीर नामैकः गम्भीरहृदय।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—

१. कुछ पुरुष विशेष भावना की अनुपलब्धि के कारण प्रतल होते है और उनका हृदय भी प्रतल ही होता है, २. कुछ पुरुष पहले प्रतल होते है, पर विशेष भावना की उपलब्धि के बाद उनका हृदय गभीर हो जाता है, ३. कुछ पुरुष पहले गभीर होते है, पर विशेष भावना के चले जाने पर वे प्रतल हो जाते है, ४. कुछ पुरुष विशेष भावना की स्थिरता के कारण गभीर होते है और उनका हृदय भी गभीर होता है।

५८७. चत्तारि उदही पण्णत्ता, तं जहा—
उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी,
उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी,
गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी,
गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी।

चत्वारः उदधयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
उत्तानः नामैकः उत्तानावभासी,
उत्तानः नामैकः गम्भीरावभासी,
गम्भीरः नामैकः उत्तानावभासी,
गम्भीरः नामैकः गम्भीरावभासी।

५८७. समुद्र चार प्रकार के होते है—

१. समुद्र के कुछ भाग प्रतल होते है और प्रतल ही लगते है, २. समुद्र के कुछ भाग प्रतल होते है, पर गभीर लगते है, ३. समुद्र के कुछ भाग गभीर होते है, पर प्रतल लगते हैं, ४. समुद्र के कुछ भाग गभीर होते हैं और गभीर ही लगते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी,
उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी,
गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी,
गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उत्तानः नामैकः उत्तानावभासी,
उत्तानः नामैकः गम्भीरावभासी,
गम्भीरः नामैकः उत्तानावभासी,
गम्भीरः नामैकः गम्भीरावभासी।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—

१. कुछ पुरुष प्रतल होते है और प्रतल ही लगते है, २. कुछ पुरुष प्रतल होते हैं, पर गभीर लगते है, ३. कुछ पुरुष गभीर होते है, पर प्रतल लगते हैं ४. कुछ पुरुष गभीर होते हैं और गभीर ही लगते हैं।

तरग-पदं

५८८. चत्तारि तरगा पण्णत्ता, तं जहा—
समुद्दं तरामीतेगे समुद्दं तरति,
समुद्दं तरामीतेगे गोप्पयं तरति,
गोप्पयं तरामीतेगे समुद्दं तरति,
गोप्पयं तरामीतेगे गोप्पयं तरति।

तरक-पदम्

चत्वारः तरकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
समुद्रं तरामीत्येकः समुद्रं तरति,
समुद्रं तरामीत्येकः गोष्पदं तरति,
गोष्पदं तरामीत्येकः समुद्रं तरति,
गोष्पदं तरामीत्येकः गोष्पदं तरति।

तरक-पद

५८८. तैराक चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ तैराक समुद्र को तैरने का संकल्प करते हैं और उसे तैर भी जाते हैं, २. कुछ तैराक समुद्र को तैरने का संकल्प करते हैं और गोष्पद को तैरते हैं, ३. कुछ तैराक गोष्पद को तैरने का संकल्प करते हैं और समुद्र को तैर जाते हैं, ४. कुछ तैराक गोष्पद को तैराने का संकल्प करते हैं और गोष्पद को ही तैरते हैं।

५८९. चत्तारि तरगा पण्णत्ता, तं जहा—
समुद्दं तरेत्ता णाममेगे समुद्दे विसीयति, समुद्दं तरेत्ता णाममेगे गोप्पए विसीयति, गोप्पयं तरेत्ता णाममेगे समुद्दे विसीयति, गोप्पयं तरेत्ता णाममेगे गोप्पए विसीयति।

चत्वारः तरकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
समुद्रं तरीत्वा नामैकः समुद्रे विषीदति,
समुद्रं तरीत्वा नामैकः गोष्पदे विषीदति,
गोष्पदं तरीत्वा नामैकः समुद्रे विषीदति,
गोष्पदं तरीत्वा नामैकः गोष्पदे विषीदति।

५८९. तैराक चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ तैराक सारे समुद्र को तैरकर किनारे पर आकर विषण्ण हो जाते हैं, २. कुछ तैराक समुद्र को तैरकर गोष्पद में विषण्ण हो जाते हैं, ३. कुछ तैराक गोष्पद को तैरकर समुद्र में विषण्ण हो जाते हैं, ४. कुछ तैराक गोष्पद को तैरकर गोष्पद में ही विषण्ण हो जाते हैं।

पुण्ण-तुच्छ-पदं

५९०. चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—
पुण्णे णाममेगे पुण्णे,
पुण्णे णाममेगे तुच्छे,
तुच्छे णाममेगे पुण्णे,
तुच्छे णाममेगे तुच्छे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पुण्णे णाममेगे पुण्णे,
पुण्णे णाममेगे तुच्छे,
तुच्छे णाममेगे पुण्णे,
तुच्छे णाममेगे तुच्छे।

पूर्ण-तुच्छ-पदम्

चत्वारः कुम्भाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पूर्णः नामैकः पूर्णः,
पूर्णः नामैकः तुच्छः,
तुच्छः नामैकः पूर्णः,
तुच्छः नामैकः तुच्छः।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पूर्णः नामैकः पूर्णः,
पूर्णः नामैकः तुच्छः,
तुच्छः नामैकः पूर्णः,
तुच्छः नामैकः तुच्छः।

पूर्ण-तुच्छ-पद

५९०. कुंभ चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ कुंभ आकार से भी पूर्ण होते हैं और मधु आदि द्रव्यों से भी पूर्ण होते हैं, २. कुछ कुंभ आकार से पूर्ण होते हैं, पर मधु आदि द्रव्यों से रिक्त होते हैं, ३. कुछ कुंभ मधु आदि द्रव्यों से अपूर्ण होते हैं, पर आकार से पूर्ण होते हैं, ४. कुछ कुंभ मधु आदि द्रव्यों से भी अपूर्ण होते हैं और आकार से भी अपूर्ण होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—

१. कुछ पुरुष आकार से पूर्ण होते हैं और गुणों से भी पूर्ण होते हैं, २. कुछ पुरुष आकार से पूर्ण होते हैं, पर गुणों से अपूर्ण होते हैं, ३. कुछ पुरुष आकार से अपूर्ण होते हैं, पर गुणों से पूर्ण होते हैं, ४. कुछ पुरुष आकार से भी अपूर्ण होते हैं और गुणों से भी अपूर्ण होते हैं।

५६१. चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—
पुण्णे णाममेगे पुण्णोभासी,
पुण्णे णाममेगे तुच्छोभासी,
तुच्छे णाममेगे पुण्णोभासी,
तुच्छे णाममेगे तुच्छोभासी।

चत्वारः कुम्भाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पूर्णः नामैकः पूर्णावभासी,
पूर्णः नामैकः तुच्छावभासी,
तुच्छः नामैकः पूर्णावभासी,
तुच्छः नामैकः तुच्छावभासी।

५६१. कुंभ चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ कुंभ आकार से पूर्ण होते हैं और पूर्ण ही लगते हैं, २. कुछ कुंभ आकार से पूर्ण होते हैं, पर अपूर्ण से लगते हैं, ३. कुछ कुंभ आकार से अपूर्ण होते हैं, पर पूर्ण से लगते हैं, ४. कुछ कुंभ आकार से अपूर्ण होते हैं और अपूर्ण ही लगते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पुण्णे णाममेगे पुण्णोभासी,
पुण्णे णाममेगे तुच्छोभासी,
तुच्छे णाममेगे पुण्णोभासी,
तुच्छे णाममेगे तुच्छोभासी।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पूर्णः नामैकः पूर्णावभासी,
पूर्णः नामैकः तुच्छावभासी,
तुच्छः नामैकः पूर्णावभासी,
तुच्छः नामैकः तुच्छावभासी।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष धन, श्रुत आदि से पूर्ण होते हैं और विनियोग करने के कारण पूर्ण ही लगते हैं, २. कुछ पुरुष धन, श्रुत आदि से पूर्ण होते हैं, पर उनका विनियोग नहीं करने के कारण अपूर्ण से लगते हैं, ३. कुछ पुरुष धन, श्रुत आदि से अपूर्ण होते हैं, पर उनका विनियोग करने के कारण पूर्ण से लगते हैं, ४. कुछ पुरुष धन, श्रुत आदि से अपूर्ण होते हैं और उनका विनियोग नहीं करने के कारण अपूर्ण ही लगते हैं।

५६२. चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—
पुण्णे णाममेगे पुण्णरूवे,
पुण्णे णाममेगे तुच्छरूवे,
तुच्छे णाममेगे पुण्णरूवे,
तुच्छे णाममेगे तुच्छरूवे।

चत्वारः कुम्भाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पूर्णः नामैकः पूर्णरूपः,
पूर्णः नामैकः तुच्छरूपः,
तुच्छः नामैकः पूर्णरूपः,
तुच्छः नामैकः तुच्छरूपः।

५६२. कुंभ चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ कुंभ जल आदि से पूर्ण होते हैं और उनका रूप—आकार भी पूर्ण होता है, २. कुछ कुंभ जल आदि से पूर्ण होते हैं, पर उनका रूप पूर्ण नहीं होता, ३. कुछ कुंभ जल आदि से अपूर्ण होते हैं, पर उनका रूप पूर्ण होता है, ४. कुछ कुंभ जल आदि से अपूर्ण होते हैं और उनका रूप भी अपूर्ण होता है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पुण्णे णाममेगे पुण्णरूवे,
पुण्णे णाममेगे तुच्छरूवे,
तुच्छे णाममेगे पुण्णरूवे,
तुच्छे णाममेगे तुच्छरूवे।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पूर्णः नामैकः पूर्णरूपः,
पूर्णः नामैकः तुच्छरूपः,
तुच्छः नामैकः पूर्णरूपः,
तुच्छः नामैकः तुच्छरूपः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी पूर्ण होते हैं और रूप—वेष से भी पूर्ण होते हैं, २. कुछ पुरुष श्रुत आदि से पूर्ण होते हैं, पर रूप से अपूर्ण होते हैं, ३. कुछ पुरुष श्रुत आदि से अपूर्ण होते हैं, पर रूप से पूर्ण होते हैं, ४. कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी अपूर्ण होते हैं और रूप से भी अपूर्ण होते हैं।

५६३. चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—
पुण्णेवि एगे पियट्ठे,
पुण्णेवि एगे अवदले,
तुच्छेवि एगे पियट्ठे,
तुच्छेवि एगे अवदले।

चत्वारः कुम्भाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पूर्णोऽपि एकः प्रियार्थः,
पूर्णोऽपि एकः अपदलः,
तुच्छोऽपि एकः प्रियार्थः,
तुच्छोऽपि एकः अपदलः।

५६३. कुंभ चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ कुम्भ जल आदि से भी पूर्ण होते है और देखने मे भी प्रिय लगते है, २. कुछ कुभ जल आदि से पूर्ण होते हैं, पर अपूर्ण पक्व होने के कारण अपदल—असार होते हैं, ३. कुछ कुभ जल आदि से अपूर्ण होते है, पर देखने में प्रिय लगते है, ४. कुछ कुभ जल आदि से भी अपूर्ण होते हैं और अपूर्ण पक्व होने के कारण अपदल भी होते हैं।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पुण्णेवि एगे पियट्ठे
°पुण्णेवि एगे अवदले,
तुच्छेवि एगे पियट्ठे,
तुच्छेवि एगे अवदले।°

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पूर्णोऽपि एकः प्रियार्थः,
पूर्णोऽपि एकः अपदलः,
तुच्छोऽपि एकः प्रियार्थः,
तुच्छोऽपि एकः अपदलः।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी पूर्ण होते है और प्रियार्थ—परोपकारी होने के कारण प्रिय भी होते है, २. कुछ पुरुष श्रुत आदि मे पूर्ण होते है, पर अपदल—परोपकार करने में अक्षम होते हैं, ३. कुछ पुरुष श्रुत आदि से अपूर्ण होते है, पर प्रियार्थ—परोपकार करने के कारण प्रिय होते हैं, ४. कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी अपूर्ण होते है और अपदल—परोपकार करने में भी अक्षम होते है।

५६४. चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—
पुण्णेवि एगे विस्संदति,
पुण्णेवि एगे णो विस्संदति,
तुच्छेवि एगे विस्संदति,
तुच्छेवि एगे णो विस्संदति।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
पुण्णेवि एगे विस्संदति,
°पुण्णेवि एगे णो विस्संदति,
तुच्छेवि एगे विस्संदति,
तुच्छेवि एगे णो विस्संदति।°

चत्वारः कुम्भाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पूर्णोऽपि एकः विष्यन्दते,
पूर्णोऽपि एकः नो विष्यन्दते,
तुच्छोऽपि एकः विष्यन्दते,
तुच्छोऽपि एकः नो विष्यन्दते।
एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पूर्णोऽपि एकः विष्यन्दते,
पूर्णोऽपि एकः नो विष्यन्दते,
तुच्छोऽपि एकः विष्यन्दते,
तुच्छोऽपि एकः नो विष्यन्दते।

५६४. कुभ चार प्रकार के होते है—
१ कुछ कुभ जल से पूर्ण होते है और झरते भी है, २. कुछ कुभ जल से भी पूर्ण होते है और झरते भी नही, ३. कुछ कुभ जल से भी अपूर्ण होते है और झरते भी है, ४. कुछ कुभ जल से अपूर्ण होते हैं, पर झरते नही।
इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—
१ कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी पूर्ण होते हैं और विष्यन्दी—उनका विनियोग करने वाले भी होते है, २. कुछ पुरुष श्रुत आदि से पूर्ण होते ह, पर विष्यन्दी नही होते, ३. कुछ पुरुष श्रुत आदि से अपूर्ण होते है और विष्यन्दी होते है, ४. कुछ पुरुष श्रुत आदि से भी अपूर्ण होते है और विष्यन्दी भी नही होते।

चरित्त-पदं

५९५. चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा— भिण्णे, जज्जरिए, परिस्साई, अपरिस्साई।

एवामेव चउव्विहे चरित्ते पण्णत्ते, तं जहा— भिण्णे, •जज्जरिए, परिस्साई , अपरिस्साई।

चरित्र-पदम्

चत्वारः कुम्भा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— भिन्नः, जर्जरितः, परिश्रावी, अपरिश्रावी।

एवमेव चतुर्विधं चरित्रं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— भिन्नं, जर्जरित, परिश्रावि, अपरिश्रावि।

चरित्र-पद

५९५. कुंभ चार प्रकार के होते हैं— १ भिन्न—फूटे हुए, २. जर्जरित—पुराने, ३ परिश्रावी—झरने वाले, ४. अपरिश्रावी—नहीं झरने वाले,

इसी प्रकार चरित्र भी चार प्रकार का होता है—१. भिन्न—मूल प्रायश्चित्त के योग्य, २ जर्जरित—छेद प्रायश्चित्त के योग्य, ३. परिश्रावी—सूक्ष्म दोष वाला, ४ अपरिश्रावी—निर्दोष।

महु-विस-पदं

५९६. चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा— महुकुंभे णाममेगे महुपिहाणे, महुकुंभे णाममेगे विसपिहाणे, विसकुंभे णाममेगे महुपिहाणे, विसकुंभे णाममेगे विसपिहाणे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा— महुकुंभे णाममेगे महुपिहाणे, महुकुंभे णाममेगे विसपिहाणे, विसकुंभे णाममेगे महुपिहाणे, विसकुंभे णाममेगे विसपिहाणे।

मधु-विष-पदम्

चत्वारः कुम्भा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— मधुकुम्भः नामैकः मधुपिधानः, मधुकुम्भः नामैकः विषपिधानः, विषकुम्भः नामैकः मधुपिधानः, विषकुम्भः नामैकः विषपिधानः।

एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— मधुकुम्भः नामैकः मधुपिधानः, मधुकुम्भः नामैकः विषपिधानः, विषकुम्भः नामैकः मधुपिधानः, विषकुम्भः नामैकः विषपिधानः।

मधु-विष-पद

५९६. कुंभ चार प्रकार के होते है — १. कुछ कुंभ मधु से भरे हुए होते है और उनके ढक्कन भी मधु का ही होता है, २ कुछ कुंभ मधु से भरे हुए होते है, पर उनके ढक्कन विष का होता है, ३ कुछ कुंभ विष से भरे हुए होते है, पर उनके ढक्कन मधु का होता है, ४ कुछ कुंभ विष से भरे हुए होते है और उनके ढक्कन भी विष का होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते है—

१. कुछ पुरुषो का हृदय भी मधु से भरा हुआ होता है और उनकी वाणी भी मधु से भरी हुई होती है, २ कुछ पुरुषो का हृदय मधु से भरा हुआ होता है, पर उनकी वाणी विष से भरी हुई होती है, ३. कुछ पुरुषो का हृदय विष से भरा हुआ होता है, पर उनकी वाणी मधु से भरी हुई होती है, ४ कुछ पुरुषो का हृदय विष से भरा हुआ होता है और उनकी वाणी भी विष से भरी हुई होती है।

संगहणी-गाहा

१. हिययमपावमकलुसं,
जीहाऽवि य महुरभासिणी णिच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति,
से मधुकुंभे मधुपिहाणे॥

संग्रहणी-गाथा

१. हृदयमपापमकलुष,
जिह्वापि च मधुरभाषिणी नित्य।
यस्मिन् पुरुषे विद्यते,
स मधुकुम्भः मधुपिधानः॥

संग्रहणी-गाथा

(१) जिस पुरुष का हृदय निष्पाप और अकलुष होता है तथा जिसकी जिह्वा भी मधुर भाषिणी होती है वह पुरुष मधु-भृत और मधु के ढक्कन वाले कुम्भ के समान होता है।

२. हिययमपावमकलुसं,
जीहाऽवि य कडुयभासिणी णिच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति,
से मधुकुंभे विसपिहाणे ॥

२. हृदयमपापमकलुषं,
जिह्वापि च कटुकभाषिणी नित्यं।
यस्मिन् पुरुषे विद्यते,
स मधुकुम्भः विषपिधानः ॥

(२) जिस पुरुष का हृदय निष्पाप और अकलुष होता है, पर जिसकी जिह्वा कटु-भाषिणी होती है वह पुरुष मधु-भृत और विष के ढक्कन वाले कुम्भ के समान होता है।

३. जं हिययं कलुसमयं,
जीहाऽवि य मधुरभासिणी णिच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति,
से विसकुंभे महुपिहाणे ॥

३. यत् हृदयं कलुषमयं,
जिह्वाऽपि च मधुरभाषिणी नित्यं।
यस्मिन् पुरुषे विद्यते,
स विषकुम्भ मधुपिधानः ॥

(३) जिस पुरुष का हृदय कलुषमय होता है, पर जिह्वा मधुर-भाषिणी होती है वह पुरुष विष-भृत और मधु के ढक्कन वाले कुम्भ के समान होता है।

४. जं हिययं कलुसमयं,
जीहाऽवि य कडुयभासिणी णिच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति,
से विसकुंभे विसपिहाणे ॥

४. यत् हृदय कलुषमयं,
जिह्वाऽपि च कटुकभाषिणी नित्य।
यस्मिन् पुरुषे विद्यते,
स विषकुम्भः विषपिधानः ॥

(४) जिस पुरुष का हृदय कलुषमय होता है और जिह्वा भी कटु-भाषिणी होती है वह पुरुष विष-भृत और विष के ढक्कन वाले कुम्भ के समान होता है।

उवसग्ग-पदं

उपसर्ग-पदम्

उपसर्ग-पद

५९७. चउव्विहा उवसग्गा पण्णत्ता, तं जहा—
दिव्वा, माणुसा, तिरिक्खजोणिया, आयसंचेयणिज्जा।

चतुर्विधाः उपसर्गाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
दिव्याः मानुषाः, तिर्यग्योनिकाः, आत्मसचेतनीयाः।

५९७. उपसर्ग चार प्रकार के होते है—
१. देवताओं से होने वाले,
२. मनुष्यों से होने वाले,
३. तिर्यञ्चों से होने वाले,
४. स्वय अपने द्वारा होने वाले[१३१]।

५९८. दिव्वा उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—
हासा, पाओसा, वीमंसा, पुढोवेमाता।

दिव्याः उपसर्गाः चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
हासात्, प्रद्वेषात्, विमर्शात्, पृथग्विमात्राः।

५९८. देवताओं से होने वाले उपसर्ग चार प्रकार के होते है—
१. हास्यजनित, २. प्रद्वेषजनित,
३. विमर्श—परीक्षा की दृष्टि से किया जाने वाला, ४ पृथक्विमात्रा—उक्त तीनों का मिश्रित रूप।

५९९. माणुसा उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—
हासा, पाओसा, वीमंसा, कुसील-पडिसेवणया।

मानुषाः उपसर्गाः चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
हासात्, प्रद्वेषात्, विमर्शात्, कुशील-प्रतिषेवणया।

५५९. मनुष्यों के द्वारा होने वाले उपसर्ग चार प्रकार के होते है-
१ हास्यजनित, २ प्रद्वेषजनित,
३. विमर्शजनित, ४. कुशील—प्रतिसेवन के लिए किया जाने वाला।

६००. तिरिक्खजोणिया उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—
भया, पदोसा, आहारहेउं, अवच्च-लेण-सारक्खणया।

तिर्यग्योनिकाः उपसर्गाः चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
भयात् प्रद्वेषात्, आहारहेतोः, अपत्य-लयन-संरक्षणाय।

६००. तिर्यञ्चों के द्वारा होने वाले उपसर्ग चार प्रकार के होते हैं—
१. भयजनित, २. प्रद्वेषजनित,
३. आहार के निमित्त से किया जाने वाला,
४. अपने बच्चों के आवास-स्थानों की सुरक्षा के लिए किया जाने वाला।

६०१. आयसंचेयणिज्जा उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा— घट्टणता, पवडणता, थंभणता, लेसणता।

आत्मसचेतनीयाः उपसर्गाः चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— घट्टनया, प्रपतनया, स्तम्भनया, श्लेषणया।

६०१. अपने द्वारा होने वाले उपसर्ग चार प्रकार के होते हैं— १. संघर्ष जनित—जैसे आंख में रज कण गिर जाने पर उसे मलने से होने वाला कष्ट, २. प्रपतनजनित—गिरने से होने वाला कष्ट, ३. स्तम्भनता—रुधिर-गति के रुक जाने पर होने वाला कष्ट, ४. श्लेषणता—पैर आदि संधि-स्थलों के जुड़ जाने से होने वाला कष्ट।

कम्म-पदं

कर्म-पदम्

कर्म-पद

६०२. चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा— सुभे णाममेगे सुभे, सुभे णाममेगे असुभे, असुभे णाममेगे सुभे, असुभे णाममेगे असुभे।

चतुर्विधं कर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— शुभं नामैकं शुभ, शुभं नामैक अशुभं, अशुभं नामैक शुभ, अशुभं नामैक अशुभम्।

६०२. कर्म चार प्रकार के होते हैं— १ कुछ कर्म शुभ—पुण्य प्रकृति वाले होते है और उनका अनुबन्ध भी शुभ होता है, २. कुछ कर्म शुभ होते हैं, पर उनका अनुबन्ध अशुभ होता है ३ कुछ कर्म अशुभ होते है, पर उनका अनुबन्ध शुभ होता है, ४ कुछ कर्म अशुभ होते हैं और उनका अनुबन्ध भी अशुभ होता है।

६०३. चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा— सुभे णाममेगे सुभविवागे, सुभे णाममेगे असुभविवागे, असुभे णाममेगे सुभविवागे, असुभे णाममेगे असुभविवागे।

चतुर्विधं कर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— शुभ नामैक शुभविपाक, शुभ नामैकं अशुभविपाकं, अशुभ नामैकं शुभविपाक, अशुभ नामैकं अशुभविपाकम्।

६०३. कर्म चार प्रकार के होते है— १. कुछ कर्म शुभ होते हैं और उनका विपाक भी शुभ होता है, २ कुछ कर्म शुभ होते है पर उनका विपाक अशुभ होता है, ३ कुछ कर्म अशुभ होते है, पर उनका विपाक शुभ होता है, ४ कुछ कर्म अशुभ होते है और उनका विपाक भी अशुभ होता है।

६०४. चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा— पगडीकम्मे, ठितीकम्मे, अणुभावकम्मे, पदेसकम्मे।

चतुर्विधं कर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— प्रकृतिकर्म, स्थितिकर्म, अनुभावकर्म, प्रदेशकर्म।

६०४ कर्म चार प्रकार के होते हैं— १. प्रकृति-कर्म—कर्म पुद्‌गलों का स्वभाव, २. स्थिति-कर्म—कर्म पुद्‌गलों की काल-मर्यादा, ३. अनुभावकर्म—कर्म पुद्‌गलों का सामर्थ्य, ४. प्रदेशकर्म—कर्म पुद्‌गलों का संचय।

संघ-पदं

६०५. चउव्विहे संघे पण्णत्ते, तं जहा— समणा, समणीओ, सावगा, सावियाओ।

संघ-पदम्

चतुर्विधः संघः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— श्रमणाः, श्रमण्यः, श्रावकाः, श्राविकाः।

संघ-पद

६०५. संघ चार प्रकार का होता है— १. श्रमण, २. श्रमणी, ३. श्रावक, ४. श्राविका।

बुद्धि-पदं

६०६. चउव्विहा बुद्धी पण्णत्ता, तं जहा— उप्पत्तिया, वेणइया, कम्मिया, परिणामिया।

बुद्धि-पदम्

चतुर्विधा बुद्धिः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी, पारिणामिकी।

बुद्धि-पद

६०६. बुद्धि चार प्रकार की होती है — १. औत्पत्तिकी—सहज बुद्धि, २. वैनयिकी—गुरुशुश्रूषा से उत्पन्न बुद्धि, ३. कार्मिकी—कार्य करते-करते बढ़ने वाली बुद्धि, ४. पारिणामिकी—आयु बढ़ने के साथ-साथ विकसित होने वाली बुद्धि[११५]।

मइ-पदं

६०७. चउव्विहा मई पण्णत्ता, तं जहा— उग्गहमती, ईहामती, अवायमती, धारणामती।

अहवा—

चउव्विहा मती पण्णत्ता, तं जहा— अरंजरोदगसमाणा, वियरोदगसमाणा, सरोदगसमाणा, सागरोदगसमाणा।

मति-पदम्

चतुर्विधा मतिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा— अवग्रहमतिः, ईहामतिः, अवायमतिः, धारणामतिः।

अथवा—

चतुर्विधा मतिः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— अरञ्जरोदकसमाना, विदरोदकसमाना, सरउदकसमाना, सागरोदकसमाना।

मति-पद

६०७. मति चार प्रकार की होती है— १. अवग्रहमति, २. ईहामति, ३. अवायमति, ४. धारणामति।

अथवा—

मति चार प्रकार की होती है— १. घड़े के पानी के समान—अत्यल्प, २. गढ़े के पानी के समान—अल्प, ३. तालाब के पानी के समान—बहुतर, ४ समुद्र के पानी के समान—अपरिमेय।

जीव-पदं

६०८. चउव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा— णेरइया, तिरिक्खजोणिया, मणुस्सा, देवा।

६०९. चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा— मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी, अजोगी।

जीव-पदम्

चतुर्विधाः ससारसमापन्नकाः जीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— नैरयिकाः, तिर्यग्योनिकाः, मनुष्याः, देवाः।

चतुर्विधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— मनोयोगिनः, वाग्योगिनः, काययोगिनः, अयोगिनः।

जीव-पद

६०८ संसारी जीव चार प्रकार के होते है— १ नैरयिक, २ तिर्यक्योनिक, ३. मनुष्य, ४. देव।

६०९. संसारी जीव चार प्रकार के होते है — १. मनोयोगी, २. वचोयोगी ३. काययोगी, ४. अयोगी।

अहवा—
चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—
इत्थिवेयगा, पुरिसवेयगा,
णपुंसकवेयगा, अवेयगा।

अथवा—
चतुर्विधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
स्त्रीवेदकाः, पुरुषवेदकाः, नपुंसकवेदकाः,
अवेदकाः।

अथवा—
सब जीव चार प्रकार के होते हैं—
१. स्त्रीवेदक, २. पुरुषवेदक,
३. नपुंसकवेदक, ४. अवेदक।

अहवा—
चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—
चक्खुदंसणी, अचक्खुदंसणी,
ओहिदंसणी, केवलदंसणी।

अथवा—
चतुर्विधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
चक्षुर्दर्शनिनः, अचक्षुर्दर्शनिनः,
अवधिदर्शनिनः, केवलदर्शनिनः।

अथवा—
सब जीव चार प्रकार के होते हैं—
१. चक्षुदर्शनी, २. अचक्षुदर्शनी,
३. अवधिदर्शनी, ४. केवलदर्शनी।

अहवा—
चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—
संजया, असंजया, संजयासंजया,
णोसंजया णोअसंजया।

अथवा—
चतुर्विधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
संयताः, असंयताः, संयतासंयताः,
नोसंयताः नोअसंयताः।

अथवा—
सब जीव चार प्रकार के होते हैं—
संयत, असंयत, संयतासंयत,
न संयत और न असंयत।

मित्त-अमित्त-पदं

मित्र-अमित्र-पदम्

मित्र-अमित्र-पद

६१०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
मित्ते णाममेगे मित्ते,
मित्ते णाममेगे अमित्ते,
अमित्ते णाममेगे मित्ते,
अमित्ते णाममेगे अमित्ते।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मित्रं नामैकं मित्रं,
मित्रं नामैकं अमित्रं,
अमित्रं नामैकं मित्रं,
अमित्रं नामैकं अमित्रम्।

६१०. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष व्यवहार से भी मित्र होते और हृदय से भी मित्र होते है, २. कुछ पुरुष व्यवहार से मित्र होते है, किन्तु हृदय से मित्र नही होते, ३. कुछ पुरुष व्यवहार से मित्र नहीं होते, पर हृदय से मित्र होते है, ४. कुछ पुरुष न व्यवहार से मित्र होते हैं और न हृदय से मित्र होते है।

६११. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
मित्ते णाममेगे मित्तरूवे,
°मित्ते णाममेगे अमित्तरूवे,
अमित्ते णाममेगे मित्तरूवे,
अमित्ते णाममेगे अमित्तरूवे।°

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मित्रं नामैकं मित्ररूपं,
मित्रं नामैकं अमित्ररूपं,
अमित्रं नामैकं मित्ररूपं,
अमित्रं नामैकं अमित्ररूपम्।

६११. पुरुष चार प्रकार के होते हैं—
१. कुछ पुरुष मित्र होते है और उनका उपचार भी मित्रवत् होता है, २. कुछ पुरुष मित्र होते है, पर उनका उपचार अमित्रवत् होता है, ३. कुछ पुरुष अमित्र होते है, पर उनका उपचार मित्रवत् होता है, ४. कुछ पुरुष अमित्र होते हैं और उनका उपचार भी अमित्रवत् होता है।

मुत्त-अमुत्त-पदं

६१२ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
मुत्ते णाममेगे मुत्ते,
मुत्ते णाममेगे अमुत्ते,
अमुत्ते णाममेगे मुत्ते,
अमुत्ते णाममेगे अमुत्ते।

६१३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
मुत्ते णाममेगे मुत्तरूवे,
मुत्ते णाममेगे अमुत्तरूवे,
अमुत्ते णाममेगे मुत्तरूवे,
अमुत्ते णाममेगे अमुत्तरूवे।

गति-आगति-पदं

६१४ पंचिदियतिरिक्खजोणिया चउगइया चउआगइया पण्णत्ता, तं जहा— पंचिदियतिरिक्खजोणिए पंचिदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जमाणे णेरइएहिंतो वा, तिरिक्खजोणिएहिंतो वा, मणुस्सेहिंतो वा, देवेहिंतो वा उववज्जेज्जा।
से चेव णं से पंचिदियतिरिक्खजोणिए पंचिदियतिरिक्खजोणियत्तं विप्पजहमाणे णेरइयत्ताए वा, °तिरिक्खजोणियत्ताए वा, मणुस्सत्ताए वा°, देवत्ताए वा गच्छेज्जा।

मुक्त-अमुक्त-पदम्

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मुक्तः नामैकः मुक्तः,
मुक्तः नामैकः अमुक्तः,
अमुक्तः नामैकः मुक्तः,
अमुक्तः नामैकः अमुक्तः।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
मुक्तः नामैकः मुक्तरूपः,
मुक्तः नामैकः अमुक्तरूपः,
अमुक्तः नामैकः मुक्तरूपः,
अमुक्तः नामैकः अमुक्तरूपः।

गति-आगति-पदम्

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः चतुर्गतिकाः चतुरागतिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकेषु उपपद्यमानो नैरयिकेभ्यो वा, तिर्यग्योनिकेभ्यो वा, मनुष्येभ्यो वा, देवेभ्यो वा उपपद्येत।

स चैव असौ पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकत्वं विप्रजहत् नैरयिकतया वा, तिर्यग्योनिकतया वा, मनुष्यतया वा, देवतया वा गच्छेत्।

मुक्त-अमुक्त-पद

६१२. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष द्रव्य [वस्तु] से भी मुक्त होते हैं और भाव [वृत्ति] से भी मुक्त होते है, २. कुछ पुरुष द्रव्य से मुक्त होते हैं, पर भाव से अमुक्त होते है, ३. कुछ पुरुष द्रव्य से अमुक्त होते है, पर भाव से मुक्त होते हैं, ४. कुछ पुरुष द्रव्य से भी अमुक्त होते है और भाव से भी अमुक्त होते हैं।

६१३. पुरुष चार प्रकार के होते है—
१. कुछ पुरुष मुक्त होते है और उनका व्यवहार भी मुक्तवत् होता है, २. कुछ पुरुष मुक्त होते हैं, पर उनका व्यवहार अमुक्तवत् होता है, ३ कुछ पुरुष अमुक्त होते है, पर उनका व्यवहार मुक्तवत् होता है, ४ कुछ पुरुष अमुक्त होते है और उनका व्यवहार भी अमुक्तवत् होता है।

गति-आगति-पद

६१४. पचेन्द्रियतिर्यक्योनिको की चार स्थानो मे गति तथा चार स्थानो मे आगति है— पचेन्द्रियतिर्यक्योनिक जीव पंचेन्द्रियतिर्यक्योनि मे उत्पन्न होता हुआ नैरयिको, तिर्यक्योनिको, मनुष्यो तथा देवो से आगति करता है,

पचेन्द्रियतिर्यक्योनिक जीव पचेन्द्रियतिर्यक्योनि को छोडता हुआ नैरयिको, तिर्यक्योनिको, मनुष्यो तथा देवो मे गति करता है।

६१५. मणुस्सा चउगइआ चउआगइआ° पण्णत्ता, तं जहा—
मणुस्से मणुस्सेसु उववज्जमाणे णेरइएहिंतो वा, तिरिक्खजोणिएहिंतो वा, मणुस्सेहिंतो वा, देवेहिंतो वा उववज्जेज्जा।
से चेव णं से मणुस्से मणुसत्तं विप्पजहमाणे णेरइयत्ताए वा, तिरिक्खजोणियत्ताए वा, मणुस्सत्ताए वा, देवत्ताए वा गच्छेज्जा।°

मनुष्या चतुर्गतिकाः चतुरागतिकाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मनुष्यः मनुष्येषु उपपद्यमानः नैरयिकेभ्यो वा, तिर्यग्योनिकेभ्यो वा, मनुष्येभ्यो वा, देवेभ्यो वा उपपद्येत।
स चैव असौ मनुष्यः मनुष्यत्वं विप्रजहत् नैरयिकतया वा, तिर्यग्योनिकतया वा, मनुष्यतया वा, देवतया वा गच्छेत्।

६१५. मनुष्य चार स्थानों से गति तथा चार स्थानों से आगति करता है—
मनुष्य मनुष्य मे उत्पन्न होता हुआ नैरयिकों, तिर्यञ्चयोनिकों, मनुष्यों तथा देवों से आगति करता है,
मनुष्य, मनुष्यत्व को छोडता हुआ नैरयिकों, तिर्यक्योनिकों, मनुष्यों तथा देवों मे गति करता है।

संजम-असंजम-पदं

संयम-असंयम-पदम्

संयम-असंयम-पद

६१६. बेइंदियाणं जीवा असमारभमाणस्स चउव्विहे संजमे कज्जति, तं जहा—
जिब्भामयातो सोक्खातो अववरोवित्ता भवति, जिब्भामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति, फासामयातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति, फासामएणं दुक्खेणं असंजोगित्ता भवति।

द्वीन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य चतुर्विधः सयमः क्रियते, तद्यथा—
जिह्वामयात् सौख्याद् अव्यपरोपयिता भवति, जिह्वामयेन दुःखेन असयोजयिता भवति, स्पर्शमयात् सौख्याद् अव्यपरोपयिता भवति, स्पर्शमयेन दुःखेन असयोजयिता भवति।

६१६. द्वीन्द्रिय जीवों का आरम्भ नही करने वाले के चार प्रकार का सयम होता है—
१. रसमय सुख का वियोग नही करने से,
२. रसमय दुःख का सयोग नही करने से,
३. स्पर्शमय सुख का वियोग नही करने से,
४. स्पर्शमय दुःख का सयोग नही करने से।

६१७. बेइंदिया णं जीवा समारभमाणस्स चिउविधे असंजमे कज्जति, तं जहा—
जिब्भामयातो सोक्खातो ववरोवित्ता भवति, जिब्भामएणं दुक्खेणं संजोगित्ता भवति, फासामयातो सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति, °फासामएणं दुक्खेणं संजोगित्ता भवति।°

द्वीन्द्रियान् जीवान् समारभमाणस्य चतुर्विधः असयम क्रियते, तद्यथा—
जिह्वामयात् सौख्याद् व्यपरोपयिता भवति, जिह्वामयेन दुःखेन संयोजयिता भवति, स्पर्शमयात् सौख्याद् व्यपरोपयिता भवति, स्पर्शमयेन दुःखेन संयोजयिता भवति।

६१७. द्वीन्द्रिय जीवों का आरम्भ करने वाले के चार प्रकार का असंयम होता है—
१. रसमय सुख का वियोग करने से,
२. रसमय दुःख का सयोग करने से,
३. स्पर्शमय सुख का वियोग करने से,
४. स्पर्शमय दुःख का संयोग करने से।

किरिया-पदं

६१८. सम्मद्दिट्ठियाणं णेरइयाणं चत्तारि किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
आरंभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया।

६१९. सम्मद्दिट्ठियाणमसुरकुमाराणं चत्तारि किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
*आरंभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया।

६२०. एवं—विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

क्रिया-पदम्

सम्यग्दृष्टिकानां नैरयिकाणा चतस्रः क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्ययिकी, अप्रत्याख्यानक्रिया।

सम्यग्दृष्टिकानां असुरकुमाराणा चतस्रः क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्ययिकी, अप्रत्याख्यानक्रिया।

एवम्—विकलेन्द्रियवर्जं यावत् वैमानिकानाम्।

क्रिया-पद

६१८. सम्यग्दृष्टि नैरयिकों के चार क्रियाए होती है—
१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी,
३. मायाप्रत्ययिकी,
४. अप्रत्याख्यानक्रिया।

६१९. सम्यग्दृष्टि असुरकुमारो के चार क्रियाएं होती है—
१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी,
३. मायाप्रत्ययिकी,
४. अप्रत्याख्यानक्रिया।

६२०. इसी प्रकार विकलेन्द्रियो को छोड़कर सभी दण्डको मे चार-चार क्रियाए होती हैं।

गुण-पदं

६२१. चउहिं ठाणेहिं संते गुणे णासेज्जा, तं जहा—
कोहेणं, पडिणिवेसेणं, अकयण्णुयाए, मिच्छत्ताभिणिवेसेणं।

६२२. चउहिं ठाणेहिं असंते गुणे दीवेज्जा, तं जहा—
अब्भासवत्तियं परच्छंदाणुवत्तियं, कज्जहेउं, कतपडिकतेति वा।

गुण-पदम्

चतुर्भिः स्थानैः संतो गुणान् नाशयेत्, तद्यथा—
क्रोधेन, प्रतिनिवेशेन, अकृतज्ञतया, मिथ्याभिनिवेशेन।

चतुर्भि. स्थानैः असंतो गुणान् दीपयेत्, तद्यथा—
अभ्यासवर्तित, परच्छन्दानुवर्तितं, कार्यहेतोः, कृतप्रतिकृतक इति वा।

गुण-पद

६२१. चार स्थानो से पुरुष विद्यमान गुणो का भी विनाश करता है—उन्हें अस्वीकार करता है।
१ क्रोध से, २. प्रतिनिवेश—दूसरो की पूजा-प्रतिष्ठा सहन न करने से,
३. अकृतज्ञता से, ४. मिथ्याभिनिवेश—दुराग्रह से।

६२२. चार स्थानो से पुरुष अविद्यमान गुणो का भी दीपन करता है—वरण या करता है—
१. गुण ग्रहण करने का स्वभाव होने से,
२. पराये विचारो का अनुगमन करने से,
३. प्रयोजन सिद्धि के लिए सामने वाले को अनुकूल बनाने की दृष्टि से,
४. कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित करने के लिए।

सरीर-पदं

६२३. **णेरइयाणं चउहिं ठाणेहिं सरीरुप्पत्ती सिया, तं जहा— कोहेणं, माणेणं, मायाए, लोभेणं।**

६२४. **एवं—जाव वेमाणियाणं।**

६२५. **णेरइयाणं चउट्ठाणणिव्वत्तिते सरीरे पण्णत्ते, तं जहा— कोहणिव्वत्तिए, °माणणिव्वत्तिए, मायाणिव्वत्तिए°, लोभणिव्वत्तिए।**

६२६. **एवं—जाव वेमाणियाणं।**

शरीर-पदम्

नैरयिकाणा चतुर्भिः स्थानैः शरीरोत्पत्तिः स्यात्, तद्यथा— क्रोधेन, मानेन, मायया, लोभेन।

एवम्—यावत् वैमानिकानाम्।

नैरयिकाणा चतुः स्थाननिर्वर्तित शरीर प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— क्रोधनिर्वर्तित, माननिर्वर्तित, मायानिर्वर्तित, लोभनिर्वर्तितम्।

एवम्—यावत् वैमानिकानाम्।

शरीर-पद

६२३. चार कारणों से नैरयिकों के शरीर की उत्पत्ति होती है—
१ क्रोध से, २. मान से,
३. माया से, ४. लोभ से।

६२४. इसी प्रकार सभी दण्डकों के चार कारणों से शरीर की उत्पत्ति होती है।

६२५. नैरयिकों के शरीर चार कारणों से निर्वर्तित—निष्पन्न होते है—
१ क्रोध निर्वर्तित, २. मान निर्वर्तित,
३. माया निर्वर्तित,
४. लोभ निर्वर्तित[११]।

६२६. इसी प्रकार सभी दण्डकों के शरीर चार कारणो से निर्वर्तित होते हैं।

धम्म-दार-पदं

६२७. **चत्तारि धम्मदारा पण्णत्ता, तं जहा— खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे।**

धर्म-द्वार-पदम्

चत्वारि धर्मद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— क्षान्ति, मुक्ति, आर्जव, मार्दवम्।

धर्म-द्वार-पद

६२७. धर्म के द्वार चार हैं—
१ क्षान्ति, २. मुक्ति,
३ आर्जव, ४. मार्दव।

आउ-बंध-पदं

६२८ **चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयाउयत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा— महारंभताए, महापरिग्गहयाए, पंचिदियवहेणं, कुणिमाहारेणं।**

६२९. **चउहिं ठाणेहिं जीवा तिरिक्खजोणिय[आउय?]त्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा— माइल्लताए, णियडिल्लताए, अलियवयणेणं, कूडतुलकूडमाणेणं।**

आयुर्बन्ध-पदम्

चतुर्भिः स्थानैः जीवा नैरयिकायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा— महारम्भतया, महापरिग्रहतया, पञ्चेन्द्रियवधेन, कुणिमाहारेण।

चतुर्भिः स्थानैः जीवा तिर्यग्योनिक (आयुष्क?) तया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा— मायितया, निकृतिमत्तया, अलीकवचनेन, कूटतुलाकूटमानेन।

आयुर्बन्ध-पद

६२८ चार स्थानों से जीव नरक योग्य कर्म का अर्जन करता है—
१. महारम्भ से—अमर्यादित हिंसा से,
२ महापरिग्रह से—अमर्यादित संग्रह से,
३ पंचेन्द्रिय वध से,
४ कुणापाहार—मांस भक्षण से।

६२९. चार स्थानों से जीव तिर्यक्योनि के योग्य कर्म का अर्जन करता है—
१ माया—मानसिक कुटिलता से,
२. निकृति—ठगाई से,
३. असत्यवचन से,
४. कूट तोल-माप से।

६३०. **चर्उहिं ठाणेहिं जीवा मणुस्सा-उयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
पगतिभद्दताए, पगतिविणीययाए, साणुक्कोसयाए, अमच्छरिताए।**

चतुर्भिः स्थानैः जीवाः मनुष्यायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
प्रकृतिभद्रतया, प्रकृतिविनीततया, सानुक्रोशतया, अमत्सरिकतया।

६३०. चार स्थानो से जीव मनुष्य योग्य कर्मों का अर्जन करता है—
१. प्रकृति भद्रता से, २. प्रकृति विनीतता से, ३. सदय-हृदयता से,
४. परगुणसहिष्णुता से।

६३१. **चर्उहिं ठाणेहिं जीवा देवाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
सरागसंजमेणं, संजमासंजमेणं, बालतवोकम्मेणं, अकामणिज्जराए।**

चतुर्भिः स्थानैः जीवा देवायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
सरागसयमेन, संयमासंयमेन, बालतपःकर्मणा, अकामनिर्जरया।

६३१. चार स्थानो से जीव देव योग्य कर्मों का अर्जन करता है—
१. सराग सयम से, २ संयमासयम से,
३. बाल तप कर्म से,
४. अकामनिर्जरा से[११७]।

वज्ज-णट्टआइ-पदं

वाद्य-नृत्यादि-पदम्

वाद्य-नृत्यादि-पद

६३२. **चउव्विहे वज्जे पण्णत्ते, तं जहा—
तते, वितते, घणे, झुसिरे।**

चतुर्विध वाद्य प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
ततं, विततं, घनं, शुषिरम्।

६३२. वाद्य चार प्रकार के होते हैं—
१. तत—वीणा आदि,
२ वितत—ढोल आदि,
३. घन—कास्य ताल आदि,
४. शुषिर—बासुरी आदि[११८]।

६३३. **चउव्विहे णट्टे पण्णत्ते, तं जहा—
अंचिए, रिभिए, आरभडे, भसोले।**

चतुर्विधं नाट्य प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
अंचित, रिभित, आरभट, भषोलम्।

६३३ नाट्य चार प्रकार के होते है—
१ अचित, २. रिभित,
३. आरभट, ४. भषोल[११९]।

६३४. **चउव्विहे गेए पण्णत्ते, तं जहा—
उक्खित्तए, पत्तए, मंदए, रोविंदए।**

चतुर्विध गेय प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
उत्क्षिप्तकं, पत्रक, मंद्रकं, रोविंदकम्।

६३४. गेय चार प्रकार के होते है—
१. उत्क्षिप्तक, २ पत्रक, ३. मद्रक,
४. रोविन्दक[१२०]।

६३५. **चउव्विहे मल्ले पण्णत्ते, तं जहा—
गंथिमे, वेढिमे, पूरिमे, संघातिमे।**

चतुर्विधं माल्य प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
ग्रन्थिमं, वेष्टिमं, पूरिमं, संघातिमम्।

६३५. माला चार प्रकार की होती है—
१. ग्रन्थिम—गुथी हुई, २. वेष्टिम—फूलो को लपेटने से मुकुटाकार बनी हुई,
३ पूरिम—भरने से बनी हुई,
४. सघातिम—एक पुष्प की नाल से दूसरे पुष्प को जोडकर बनाई हुई।

६३६. **चउव्विहे अलंकारे पण्णत्ते, तं जहा—
केसालंकारे, वत्थालंकारे, मल्लालंकारे, आभरणालंकारे।**

चतुर्विधः अलङ्कारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
केशालङ्कारः, वस्त्रालङ्कारः, माल्यालङ्कारः, आभरणालङ्कारः।

६३६ अलंकार चार प्रकार के होते है—
१. केशालकार, २. वस्त्रालंकार,
३. माल्यालंकार, ४. आभरणलंकार।

६३७. चउव्विहे अभिणए पण्णत्ते, तं जहा—
दिट्ठंतिए, पाडिसुते, सामण्णओ-विणिवाइयं, लोगमज्झावसिते।

चतुर्विधः अभिनयः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
दार्ष्टान्तिकः, प्रातिश्रुतः, सामान्यतो-विनिपातिकः, लोकमध्यावसितः।

६३७. अभिनय चार प्रकार का होता है—
१. दार्ष्टान्तिक, २. प्रातिश्रुत,
३. सामान्यतोविनिपातिक,
४. लोकमध्यावसित।

विमाण-पदं

विमान-पदम्

विमान-पद

६३८. सणंकुमार-माहिंदेसु णं कप्पेसु विमाणा चउवण्णा पण्णत्ता, तं जहा—
णीला, लोहिता, हालिद्दा, सुक्किल्ला।

सनत्कुमार-माहेन्द्रेषु कल्पेषु विमानानि चतुर्वर्णानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
नीलानि, लोहितानि, हारिद्राणि, शुक्लानि।

६३८. सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक मे विमान चार वर्णों के होते है—
१. नील वर्ण के, २. लोहित वर्ण के,
३. हारिद्र वर्ण के, ४. शुक्ल वर्ण के।

देव-पदं

देव-पदम्

देव-पद

६३९. महासुक्क-सहस्सारेसु णं कप्पेसु देवाण भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेणं चत्तारि रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

महाशुक्र-सहस्रारेषु कल्पेसु देवानां भव-धारणीयानि शरीरकाणि उत्कृष्टेन चतस्रः रत्नीः ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

६३९. महाशुक्र तथा सहस्रार देवलोक मे देव-ताओं का भवधारणीय शरीर ऊचाई मे उत्कृष्टत. चार रत्नि के होते है।

गब्भ-पदं

गर्भ-पदम्

गर्भ-पद

६४०. चत्तारि दगगब्भा पण्णत्ता, तं जहा—
उस्सा, महिया, सीता, उसिणा।

चत्वारः दकगर्भाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अवश्यायाः, महिकाः, शीता, उष्णाः।

६४० उदक के चार गर्भ होते है—
१. ओस, २. मिहिका—कुहासा,
३. अतिशीत, ४. अतिउष्ण।

६४१. चत्तारि दगगब्भा पण्णत्ता, तं जहा—
हेमगा, अब्भसंथडा, सीतोसिणा, पंचरूविया।

चत्वारः दकगर्भाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
हैमकाः, अभ्रसंस्तृता, शीतोष्णाः, पञ्चरूपिका.।

६४१. उदक के चार गर्भ होते है—
१. हिमपात, २. अभ्रसस्तृत—आकाश का बादलों मे ढंका रहना, ३. अतिशीतोष्ण, ४. पचरूपिका—गर्जन, विद्युत, जल, वात तथा बादलों के सयुक्त योग से।

संगहणी-गाहा

१. माहे उ हेमगा गब्भा,
फग्गुणे अब्भसंथडा।
सितोसिणा उ चित्ते,
वइसाहे पंचरूविया॥

संग्रहणी-गाथा

१. माघे तु हैमकाः गर्भाः,
फाल्गुने अभ्रसस्तृताः।
शीतोष्णास्तु चैत्रे,
वैशाखे पंचरूपिकाः॥

संग्रहणी-गाथा

माघ मे हिमपात से उदक गर्भ रहता है।
फाल्गुन मे आकाश के बादलों से आच्छन्न होने से उदक गर्भ रहता है।
चैत्र मे अतिशीत तथा अतिउष्ण से उदक गर्भ रहता है।
वैशाख मे पंचरूपिका होने से उदक गर्भ रहता है।

६४२. चत्तारि मणुस्सीगब्भा पण्णत्ता, तं जहा—
इत्थित्ताए, पुरिसत्ताए, णपुंसगत्ताते, बिंबत्ताए।

चत्वारः मानुषीगर्भाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
स्त्रीतया, पुरुषतया, नपुसकतया, बिम्बतया।

६४२. स्त्रियों के गर्भ चार प्रकार के होते है—
१. स्त्री के रूप मे, २ पुरुष के रूप मे, ३ नपुसक के रूप मे, ४. बिम्ब के रूप में—विभिन्न विचित्र आकृति के रूप मे।

संगहणी-गाहा

१. अप्पं सुक्कं बहुं ओयं,
इत्थी तत्थ पजायति।
अप्पं ओयं बहुं सुक्कं,
पुरिसो तत्थ जायति॥
२. दोण्हंपि रत्तसुक्काणं,
तुल्लभावे णपुंसओ।
इत्थी-ओय-समायोगे,
बिंबं तत्थ पजायति॥

संग्रहणी-गाथा

१. अल्प शुक्रं बहु ओजः,
स्त्री तत्र प्रजायते।
अल्पं ओजः बहु शुक्रं,
पुरुषस्तत्र जायते।
२. द्वयोरपि रक्तशुक्रयोः,
तुल्यभावे नपुसकः।
स्त्र्योजः समायोगे,
बिम्बं तत्र प्रजायते॥

संग्रहणी-गाथा

शुक्र अल्प होता है और ओज अधिक होता है तब स्त्री पैदा होती है।
ओज अल्प होता है और शुक्र अधिक होता है तब पुरुष पैदा होता है।
रक्त और शुक्र दोनो समान होते है तब नपुसक पैदा होता है।
वायु-विकार के कारण स्त्री के ओज के समायुक्त हो जाने से—जम जाने से बिब होता है।

पुव्ववत्थु-पदं

६४३. उप्पायपुव्वस्स णं चत्तारि चूलवत्थू पण्णत्ता।

पूर्ववस्तु-पदम्

उत्पादपूर्वस्य चत्वारि चूलावस्तूनि प्रज्ञप्तानि।

पूर्ववस्तु-पद

६४३. उत्पाद पूर्व [चौदह पूर्व मे पहले पूर्व] के चूला वस्तु चार है।

कव्व-पदं

६४४. चउव्विहे कव्वे पण्णत्ते, तं जहा—
गज्जे, पज्जे, कत्थे, गेए।

काव्य-पदम्

चतुर्विधानि काव्यानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
गद्य, पद्य, कथ्य, गेयम्।

काव्य-पद

६४४. काव्य चार प्रकार के होते है—
१. गद्य, २. पद्य, ३. कथ्य, ४. गेय[१]।

समुग्घात-पदं

६४५. णेरइयाणं चत्तारि समुग्घाता पण्णत्ता, तं जहा—
वेयणासमुग्घाते, कसायसमुग्घाते, मारणंतियसमुग्घाते, वेउव्वियसमुग्घाते।

समुद्घात-पदम्

नैरयिकाणां चत्वारः समुद्घाताः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
वेदनासमुद्घातः, कषायसमुद्घातः, मारणांतिकसमुद्घातः, वैक्रियसमुद्घातः।

समुद्घात-पद

६४५ नैरयिको के चार प्रकार का समुद्घात होता है—
१. वेदना-समुद्घात, २. कषाय-समुद्घात, ३. मारणातिक-समुद्घात—अन्त समय [मृत्युकाल] में प्रदेशों का बहिर्गमन, ४. वैक्रिय-समुद्घात।

६४६. एवं—वाउक्काइयाणवि।

एवम्—वायुकायिकानामपि।

६४६. इसी प्रकार वायु के भी चार प्रकार का समुद्घात होता है।

चोद्दसपुव्वि-पदं

६४७. अरहतो णं अरिट्ठणेमिस्स चत्तारि सया चोद्दसपुव्वीणमजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसण्णिवाईणं जिणो [जिणाणं?] इव अवितथं वागरमाणाणं उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसंपया हुत्था।

चतुर्दशपूर्वि-पदम्

अर्हतः अरिष्टनेमे चत्वारि शतानि चतुर्दशपूर्विणा अजिनानां जिनसंकाशाना सर्वाक्षरसन्निपातिना जिनः (जिनाना?) इव अवितथं व्याकुर्वाणानां उत्कर्षिता चतुर्दशपूर्विसपदा आसीत्।

चतुर्दशपूर्वि-पद

६४७. अर्हत् अरिष्टनेमि के चार सौ शिष्य चौदह पूर्वों के ज्ञाता थे। वे जिन नही होते हुए भी जिन के समान सर्वाक्षर सन्निपातिक तथा जिन की तरह अवितथ भाषी थे। यह उनके चौदह पूर्वी शिष्यों की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

वादि-पदं

६४८. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वादीणं सदेवमणुयासुराए परिसाए अपराजियाणं उक्कोसिता वादिसंपया हुत्था।

वादि-पदम्

श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य चत्वारि शतानि वादिना सदेवमनुजासुराया परिषदि अपराजिताना उत्कर्षिता वादिसपदा आसीत्।

वादि-पद

६४८ श्रमण भगवान् महावीर के चार सौ वादी शिष्य थे। वे देव-परिषद्, मनुज-परिषद् तथा असुर-परिषद् से अपराजेय थे। यह उनके वादी शिष्यों की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

कप्प-पदं

६४९ हेट्ठिल्ला चत्तारि कप्पा अद्धचंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता, तं जहा—
सोहम्मे, ईसाणे, सणंकुमारे, माहिंदे।

६५०. मज्झिल्ला चत्तारि कप्पा पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता, तं जहा—
बंभलोगे, लंतए, महासुक्के, सहस्सारे।

६५१. उवरिल्ला चत्तारि कप्पा अद्धचंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता, तं जहा—
आणते, पाणते, आरणे, अच्चुते।

कल्प-पदम्

अधस्तनाः चत्वारः कल्पाः अर्धचन्द्रसंस्थानसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
सौधर्म, ईशानः, सनत्कुमारः, माहेन्द्रः।

मध्यमाः चत्वारः कल्पाः परिपूर्णचन्द्रसंस्थानसंस्थिता प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ब्रह्मलोक, लांतकः, महाशुक्रः, सहस्रारः।

उपरितना चत्वारः कल्पा. अर्धचन्द्रसंस्थानसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
आनतः, प्राणतः, आरणः, अच्युत.।

कल्प-पद

६४९ निचले चार देवलोक अर्धचन्द्र-संस्थान से संस्थित होते हैं—
१ सौधर्म, २ ईशान,
३ सनत्कुमार, ४. माहेन्द्र।

६५० मध्य के चार देवलोक परिपूर्ण चन्द्र-संस्थान से संस्थित होते हैं—
१ ब्रह्मलोक, २. लांतक,
३ महाशुक्र, ४. सहस्रार।

६५१. ऊपर के चार देवलोक अर्धचन्द्र-संस्थान से संस्थित होते हैं—
१. आनत, २. प्राणत, ३. आरण,
४. अच्युत।

समुद्द-पदं

६५२. चत्तारि समुद्दा पत्तेयरसा पण्णत्ता, तं जहा—
लवणोदे, वरुणोदे, खीरोदे, घतोदे।

समुद्र-पदम्

चत्वारः समुद्राः प्रत्येकरसाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
लवणोदकः, वरुणोदः, क्षीरोदकः, घृतोदकः।

समुद्र-पद

६५२. चार समुद्र प्रत्येक-रस—एक दूसरे से भिन्न रस वाले होते हैं—
१ लवणोदक—नमक-रस के समान खारे पानी वाला, २ वरुणोदक—सुरा-रस के समान पानी वाला, ३. क्षीरोदक—दूध-रस के समान पानी वाला, ४ घृतोदक—घृत-रस के समान पानी वाला।

कसाय-पदं

६५३. चत्तारि आवत्ता पण्णत्ता, तं, जहा—
खरावत्ते, उण्णतावत्ते, गूढावत्ते, आमिसावत्ते।

एवामेव चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तं जहा—
खरावत्तसमाणे कोहे, उण्णतावत्तसमाणे माणे, गूढावत्तसमाणे माया, आमिसावत्तसमाणे लोभे।

खरावत्तसमाणं कोहं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति।

•उण्णतावत्तसमाणं माणं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति।

गूढावत्तसमाणं मायं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति।°

आमिसावत्तसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति।

कषाय-पदम्

चत्वारः आवर्त्ताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
खरावर्त्तः, उन्नतावर्त्तः, गूढावर्त्तः, आमिषावर्त्तः।

एवमेव चत्वारः कषायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
खरावर्त्तसमानः क्रोधः, उन्नतावर्त्तसमानः मानः, गूढावर्त्तसमाना माया, आमिषावर्त्तसमानः लोभः।

खरावर्त्तसमानं क्रोधं अनुप्रविष्टः जीवः कालं करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते।

उन्नतावर्त्तसमानं मानं अनुप्रविष्टः जीवः कालं करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते।

गूढावर्त्तसमानां मायां अनुप्रविष्टः जीवः कालं करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते।

आमिषावर्त्तसमानं लोभं अनुप्रविष्टः जीवः कालं करोति, नैरयिकेषु उपपद्यते।

कषाय-पद

६५३ आवर्त चार प्रकार के होते हैं—
१ खरावर्त—भवर, २ उन्नतावर्त—पर्वत शिखर पर चढ़ने का मार्ग या वातूल, ३ गूढावर्त—गेंद की गुथाई या वनस्पतियों के अन्दर होने वाली गांठ, ४. आमिषावर्त—मांस के लिए शकुनिका आदि का आकाश में चक्कर काटना।

इसी प्रकार कषाय भी चार प्रकार के होते हैं— १. क्रोध—खरावर्त के समान, २ मान—उन्नतावर्त के समान, ३ माया—गूढावर्त के समान, ४ लोभ—आमिषावर्त के समान।

खरावर्त के समान क्रोध में वर्तमान जीव मरकर नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

उन्नतावर्त के समान मान में वर्तमान जीव मरकर नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

गूढावर्त के समान माया में वर्तमान जीव मरकर नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

आमिषावर्त के समान लोभ में वर्तमान जीव मरकर नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

णक्खत्त-पदं

६५४. अणुराहाणक्खत्ते चउत्तारे पण्णत्ते।

६५५. पुव्वासाढाणक्खत्ते॰ चउत्तारे पण्णत्ते।॰

६५६. उत्तरासाढाणक्खत्ते॰ चउत्तारे पण्णत्ते।॰

पावकम्म-पदं

६५७. जीवाणं चउट्ठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा—
णेरइयणिव्वत्तिते, तिरिक्खजोणियणिव्वत्तिते, मणुस्सणिव्वत्तिते, देवणिव्वत्तिते।

६५८. एवं—उवचिणिंसु वा उवचिणंति वा उवचिणिस्संति वा।
एवं—चिण-उवचिण-बंध उदीर-वेय तह णिज्जरा चेव।

पोग्गल-पदं

६५९. चउपदेसिया खंधा अणंता पण्णत्ता।

६६०. चउपदेसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

६६१. चउसमयट्ठितीया पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

६६२. चउगुणकालगा पोग्गला अणंता जाव चउगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

नक्षत्र-पदम्

अनुराधानक्षत्रं चतुष्तारं प्रज्ञप्तम्।

पूर्वाषाढानक्षत्रं चतुष्तारं प्रज्ञप्तम्।

उत्तराषाढानक्षत्र चतुष्तार प्रज्ञप्तम्।

पापकर्म-पदम्

जीवा चतु स्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषु. वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा—
नैरयिकनिर्वर्तितान्, तिर्यग्योनिकनिर्वर्तितान्, मनुष्यनिर्वर्तितान्, देवनिर्वर्तितान्।

एवम्—उपाचैषुः वा उपचिन्वन्ति वा उपचेष्यन्ति वा।
एवम्—चय-उपचय-बन्ध उदीर-वेदाः तथा निर्जरा चैव।

पुद्गल-पदम्

चतु प्रदेशिका· स्कन्धा· अनन्ता·, प्रज्ञप्ता.।

चतु प्रदेशावगाढा· पुद्गला. अनन्ता: प्रज्ञप्ता।

चतु समयस्थितिका पुद्गला. अनन्ता· प्रज्ञप्ता.।

चतुर्गुणकालका. पुद्गला अनन्ताः यावत् चतुर्गुणरूक्षा· पुद्गलाः अनन्ता प्रज्ञप्ता·।

नक्षत्र-पद

६५४. अनुराधा नक्षत्र के चार तारे हैं।

६५५. पूर्वाषाढा नक्षत्र के चार तारे हैं।

६५६ उत्तराषाढा नक्षत्र के चार तारे हैं।

पापकर्म-पद

६५७ जीवो ने चार स्थानो मे निर्वर्तित पुद्गलो को पाप कर्म के रूप मे ग्रहण किया है, ग्रहण करते है तथा ग्रहण करेंगे—
१ नैरयिक निर्वर्तित,
२ तिर्यक्योनिक निर्वर्तित,
३ मनुष्य निर्वर्तित, ४ देव निर्वर्तित।

६५८. इसी प्रकार जीवो ने चतु स्थान निर्वर्तित पुद्गलो का उपचय, बध, उदीरण, वेदन तथा निर्जरण किया है, करते है और करेंगे।

पुद्गल-पद

६५९. चतुःप्रादेशिक स्कंध अनन्त है।

६६०. चतुःप्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त है।

६६१. चार समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त है।

६६२. चार गुण काले पुद्गल अनन्त है। इसी प्रकार सभी वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्शों के चार गुण वाले पुद्गल अनन्त है।

टिप्पणियाँ

स्थान-४

१ अन्तक्रिया (सू० १)

मृत्यु-काल मे मनुष्य का स्थूलशरीर छूट जाता है। सूक्ष्मशरीर---तैजस और कार्मण उसके साथ लगे रहते है। कार्मणशरीर के द्वारा फिर स्थूलशरीर निष्पन्न हो जाता है। अत. स्थूलशरीर के छूट जाने पर भी सूक्ष्मशरीर की सत्ता मे जन्म-मरण की परम्परा का अन्त नही होता। उसका अन्त सूक्ष्मशरीर का विसर्जन होने पर होता है। जो व्यक्ति कर्म-बन्धन को सर्वथा क्षीण कर देता है, उसके सूक्ष्मशरीर छूट जाते हैं। उनके छूट जाने का अर्थ है---अन्तक्रिया या जन्म-मरण की परम्परा का अन्त। इस अवस्था मे आत्मा शरीर आदि से उत्पन्न क्रियाओ का अन्त कर अक्रिय हो जाता है।

२-५ भरत, गजसुकुमाल, सनत्कुमार, माता मरुदेवा (सू० १)

भरत---भगवान् ऋषभ केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद धर्मोपदेश दे रहे थे। भरत भी वहा उपस्थित थे। भगवान् ऋषभ ने कहा---'इस अवसर्पिणीकाल मे मैं पहला तीर्थंकर हू, मेरा पुत्र भरत इसी भव मे मोक्ष जाएगा और मेरी मा मरुदेवा सिद्ध होने वालों मे प्रथम होगी।' इस कथन को सुन एक व्यक्ति के मन में विचिकित्सा पैदा हुई। उसने कहा---'आप पहले तीर्थंकर होगे तथा मरुदेवा प्रथम सिद्ध होंगी, यह तथ्य समझ मे आ सकता है, किन्तु भरत का मोक्षगमन बुद्धिगम्य नही होता।' भरत ने यह सुना। उसने दूसरे दिन उस व्यक्ति को बुला भेजा और कहा---'तेल से लबालब भरे इस कटोरे को लेकर तुम सारी अयोध्या मे घूम आओ। यदि एक भी बूद नीचे गिरेगी तो तुम्हे मार दिया जायेगा।'

इधर भरत ने सारे नगर मे स्थान-स्थान पर नाट्य आदि की व्यवस्था करवा दी। वह व्यक्ति तेल का कटोरा लिए चला। उसे पल-पल मृत्यु के दर्शन हो रहे थे। उसका मन कटोरे मे एकाग्र हो गया। सारे शहर मे वह घूम आया। तेल का एक बिन्दु भी नीचे नही गिरा। भरत ने पूछा---'भ्रात! शहर मे तुमने कुछ देखा?'

'राजन्! मुझे मौत के सिवाय कुछ नही दीख रहा था।'

'क्या तुमने नृत्य और नाटक नही देखे?'

'नही।'

'देखो, थोड़े समय के लिए एक मौत के डर ने तुम्हें कितना एकाग्र और जागरूक बना डाला। मैं मौत की लम्बी परम्परा से परिचित हू। चक्रवर्तित्व का पालन करता हुआ भी मैं सत्ता, समृद्धि और भोग मे आसक्त नही हू।'

अब भगवान् की बात उस व्यक्ति के गले उतर गई।

भरत की अनासक्ति अपूर्व थी। उनके कर्म बहुत कम हो चुके थे।

राज्य का पालन करते-करते कुछ कम छह लाख पूर्व बीत गए थे। एक बार वे अपने मज्जनगृह मे आए और शरीर का पूरा मण्डन किया। अपने शरीर की शोभा का निरीक्षण करने वे आदर्शगृह मे गए। एक सिंहासन पर बैठे और पूर्वाभिमुख होकर काच मे अपना सौन्दर्य देखने लगे। कांच में सारा अग प्रतिबिम्बित हो रहा था। भरत उसको एकाग्रमन से देख रहे थे और मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे।

इतने में ही एक अंगुली से अंगूठी भूमि पर गिर पडी। भरत को इसका भान नही रहा। वे अपने एक-एक अवयव की शोभा निहारते रहे। अचानक उनका ध्यान उस खाली अंगुली पर गया। उन्होने सोचा---'अरे! यह क्या? यह इतनी

अशोभित क्यो लग रही है ? दिन मे चन्द्रमा की ज्योत्स्ना जैसे फीकी पड जाती है, वैसे ही यह अगुली भी शोभाहीन क्यों है ?' उन्हे भूमि पर पड़ी अगूठी दीखी और जान लिया कि इसके बिना यह अगुली शोभाहीन हो गई है। उन्होने सोचा—'क्या शरीर के दूसरे-दूसरे अवयव भी आभूषणो के बिना शोभाहीन हो जाते है ?' अब वे एक-एक कर सारे आभूषण उतारने लगे। सारा शरीर शोभाहीन हो गया। शरीर और पौद्गलिक वस्तुओं की असारता का चिन्तन आगे बढ़ा। शुभ अध्यवसायों से घातिकर्मचतुष्टय नष्ट हुआ। उनके अन्त करण मे सयम का विकास हुआ और वे केवली हो गए। वे कठोर तपस्या किए बिना ही निर्वाण को प्राप्त हुए।

गजसुकुमाल—द्वारवती नगरी मे वासुदेव कृष्ण राज्य करते थे। उनकी माता का नाम देवकी था। देवकी एक बार अत्यन्त उदासीन होकर बैठी थी। कृष्ण चरण-वदन के लिए आए और माता को चिन्तातुर देख उसका कारण पूछा।

देवकी ने कहा —'वत्स ! मैं अधन्य हू। मैंने एक भी बालक को अपनी गोद में क्रीडारत नही देखा।'

कृष्ण ने कहा—'मा ! चिन्ता मत करो। मै ऐसा प्रयत्न करूगा कि मेरे एक भाई हो।' इस प्रकार मा को आश्वासन दे कृष्ण पौषधशाला मे गए और तीन दिन का उपवास कर हरिणैगमेषी देव की आराधना की। देव प्रत्यक्ष हुआ और बोला—'तुम्हे एक सहोदर की प्राप्ति होगी।' कृष्ण अपनी मा के पास आए और सारी बात उन्हे बताई। देवकी बहुत प्रसन्न हुई।

एक बार देवकी ने स्वप्न मे हाथी देखा। वह गर्भवती हुई और पूरे नौ मास और साढे आठ दिन बीतने पर उसने एक बालक का प्रसव किया। बारहवे दिन उसका नामकरण किया। स्वप्न मे गज के दर्शन होने के कारण उसका नाम 'गजसुकुमाल' रखा।

उसी नगर मे सोमिल ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम सोमश्री और पुत्री का नाम सोमा था।

एक बार भगवान् अरिष्टनेमि वहा समवसृत हुए। वासुदेव कृष्ण अपनी समस्त ऋद्धि से सज्जित होकर गजसुकुमाल को साथ ले भगवान् के दर्शन करने गए। मार्ग मे उन्होंने अत्यन्त सुन्दर कुमारी को देखा और उसके माता-पिता के विषय मे जानकारी प्राप्त कर अपने कौटम्बिक पुरुषों से कहा—'जाओ, सोमिल से कहकर इस सोमा कुमारी को अपने अन्त पुर मे ले आओ। यह गजसुकुमाल की पहली पत्नी होगी।'

कौटुम्बिक पुरुषो ने वैसा ही किया। सोमा कुमारी को राजा के अन्त पुर मे रख दिया।

वासुदेव कृष्ण सहस्राम्रवन मे समवसृत भगवान् अरिष्टनेमि की पर्युपासना कर घर लौटे। गजसुकुमाल धर्मप्रवचन सुनकर प्रतिबुद्ध हुए। उन्होने भगवान् से पूछा- 'भगवन् ! मैं माता-पिता की आज्ञा लेकर प्रव्रजित होना चाहता हू।'

भगवान् ने कहा— 'जैसी इच्छा हो।'

गजसुकुमाल भगवान् की पर्युपासना कर घर आए। माता-पिता को प्रणाम कर बोले—'मैने भगवान् के पास धर्म सुना है। वह मुझे रुचिकर लगा। मेरी इच्छा है कि मै प्रव्रजित हो जाऊ।' देवकी को यह सुनते ही मूर्च्छा आ गई और वह धडाम से धरती पर गिर पडी। आश्वस्त होने पर उसने कहा-- 'वत्स ! तुम मेरे एकमात्र आश्वासन हो। मै तुम्हारा वियोग क्षण-भर के लिए भी नही सह सकूगी। तुम विवाह कर, सुखपूर्वक रहो।' उसने अनेक प्रकार से गजसुकुमाल को समझाया परन्तु उन्होने अपने आग्रह को नही छोडा।

कृष्ण को जब यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ, तब वे तत्काल वहा आए। गजसुकुमाल का आलिगन कर, अपनी गोद मे बिठाकर बोले—भ्रात ! तुम मेरे छोटे भाई हो। प्रव्रज्या की बात छोड दो। मैं तुम्हे इस द्वारवती नगरी का राजा बनाऊंगा, तुम्हारा राज्याभिषेक सम्पन्न करूगा।' गजसुकुमाल ने कृष्ण की बात पर ध्यान नहीं दिया।

अभिनिष्क्रमण समारोह के पश्चात् कुमार गजसुकुमाल भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रजित हो गए। उसी दिन अपरान्ह मे वे भगवान् के पास आए और बोले—भते ! आज ही मैं श्मशान मे एक रात्रि की महाप्रतिमा स्वीकार करना चाहता हू। आप आज्ञा दे।

भगवान् ने कहा —'अहासुह देवाणुप्पिया ! — देवानुप्रिय ! जैसी इच्छा हो वैसा करो।'

भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर मुनि गजसुकुमाल श्मशान मे गए, स्थडिल का प्रतिलेखन किया और दोनो पैरो को सटाकर, ईषद् अवनत होकर एक रात्रि की महाप्रतिमा मे स्थित हो गए।

इधर ब्राह्मण सोमिल यज्ञ के लिए लकड़ी लाने के लिए नगर के बाहर गया हुआ था। घर लौटते-लौटते सध्या हो चुकी थी। लोगो का आवगमन अवरुद्ध हो गया था। उसने श्मशान में कायोत्सर्ग मे स्थित मुनि गजसुकुमाल को देखा। देखते ही वह क्रोध से लाल-पीला हो गया। उसने सोचा--'अरे! यही वह गजसुकुमाल है, जो मेरी प्यारी पुत्री को छोड़कर प्रव्रजित हो गया है। अच्छा है, मैं इसका बदला लू।' उसने चारो ओर देखा और गीली मिट्टी से गजसुकुमाल के मस्तक पर एक पाल बाध दी। उसने एक कवेलू मे दहकते अगारे लिए और उनको मुनि के मस्तक पर पाल के बीच रख दिए। उसका मन भय से आक्रान्त हो गया। वह वहा से तेजी से चलकर घर आ गया। मुनि गजसुकुमाल का कोमल मस्तक सीझने लगा। अपार वेदना हुई। वेदना को समभाव से सहन करते हुए मुनि शुभ अध्यवसायों मे लीन हो गए। घातिकर्मों का नाश हुआ। कैवल्य की प्राप्ति हुई और क्षण-भर मे वे सिद्ध हो गए।[1] इस प्रकार अत्यन्त स्वल्प पर्याय-काल मे ही वे मुक्त हो गए।

सनत्कुमार--हस्तिनागपुर के राजा अश्वसेन ने अपने पुत्र सनत्कुमार को राज्य-भार देकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। सनत्कुमार राज्य का परिपालन करने लगे। चौदह रत्न और नौ निधियां उत्पन्न हुई। वे चौथे चक्रवर्ती के रूप मे विख्यात हुए। वे कुरुवश के थे।

एक बार इन्द्र ने इनके रूप की प्रशसा की। दो देव ब्राह्मण वेष मे हस्तिनागपुर आए और चक्री को मनुष्य के शरीर की असारता का बोध कराया। चक्री सनत्कुमार ने अपने शरीर का वैवर्ण्य देखा और सोचा--'ससार अनित्य है, ससार असार है। रूप और लावण्य क्षणस्थायी है।' उन्होंने प्रव्रज्या स्वीकार करने का दृढ निश्चय किया। ब्राह्मण वेषधारी दोनो देवो ने कहा--'धीर! आपने बहुत ही सुन्दर निश्चय किया है। आप अपने पूर्वजो (भरत आदि) का अनुसरण करने के लिए उद्यत है। धन्य है आप।' वे दोनो देव वहा से चले गए।

चक्रवर्ती सनत्कुमार अपने पुत्र को राज्य-भार सौपकर स्वय आचार्य विरत के पास प्रव्रजित हो गए। सारे रत्न, सभी नरेन्द्र, सेना और नौ निधिया--छह मास तक चक्रवर्ती मुनि के पीछे-पीछे चलते रहे, किन्तु मुनि सनत्कुमार ने उन्हे नहीं देखा।

आज उनके दो दिन के उपवास का पारण था। वे भिक्षा लेने गए। एक गृहस्थ ने उन्हें बकरी की छाछ दी। उसे वे पी गए। पुन दूसरे दिन उन्होंने दो दिन का उपवास कर लिया। इस प्रकार तपस्या चलती रही और पारणे मे प्रान्त और नीरस आहार लेते रहे। उनके शरीर का सन्तुलन बिगड गया और वह सात रोगो से आक्रान्त हो गया - खुजली, ज्वर, खासी, श्वास, स्वरभग, अक्षिवेदना, उदरव्यथा। ये सातो रोग उन्हे अत्यन्त व्यथित करने लगे। किन्तु समतासेवी मुनि ने सात सौ वर्षों तक उन्हे सहा। तपस्या चलती रही। इस प्रकार उग्र तप के फलस्वरूप उन्हे पाच लब्धिया प्राप्त हुई - आमर्षौषधि, क्ष्वेलौषधि, विप्रुडौषधि, जल्लौषधि और सर्वौषधि। इतनी लब्धिया प्राप्त होने पर भी मुनि ने उनका उपयोग अपनी व्याधियो का शमन करने के लिए नही किया।

एक बार इन्द्र ने अपनी सभा मे सनत्कुमार की सहनशक्ति की प्रशसा की। दो देव उसकी परीक्षा करने आए और बोले --'भते! हम आपके शरीर की चिकित्सा करना चाहते है।' मुनि मौन रहे। तब उन्होंने पुन अपनी बात दोहराई। अब भी मुनि मौन ही रहे। उनके बार-बार कहने पर मुनि ने कहा --'क्या आप शरीर की व्याधि के चिकित्सक है अथवा कर्म की व्याधि के?' दोनो ने कहा --'हम शरीर की चिकित्सा करने वाले वैद्य है।' तब मुनि सनत्कुमार ने अपनी अगुली पर अपना थूक लगाया। अगुली सोने की तरह चमकने लगी। मुनि ने कहा-- 'मै शारीरिक रोगो की चिकित्सा करने मे समर्थ हू। यदि मेरे मे सहनशक्ति नही होती तो मैं वैसा कर लेता। यदि आप सचित कर्म की व्याधि को मिटाने मे समर्थ है तो वैसा प्रयत्न करे।' दोनो देव आश्चर्यचकित रह गए। वे अपने मूल स्वरूप मे आकर बोले--'भगवन्! कर्म की व्याधि को मिटाने मे आप ही समर्थ है। हम तो आपकी परीक्षा करने यहा आए थे।' वे वन्दन कर अपने स्थान की ओर लौट गए।

---

१. आवश्यकमलयगिरिवृत्ति, पत्र ३५७, ३५८

मुनि सनत्कुमार पचास हजार वर्ष तक कुमार और लाख वर्ष तक चक्रवर्ती के रूप मे रहकर प्रव्रजित हुए। वे एक लाख वर्ष तक श्रामण्य का पालन कर दुष्कर तप कर सम्मेदशिखर पर गए। वहा एक शिलातल पर मासिक अनशन किया। अनशन कर मुक्त हो गये।[1]

माता मरुदेवी—महाराज ऋषभ प्रव्रजित हो गए। उन्हे केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। उसी दिन चक्रवर्ती भरत की आयुधशाला में चक्र की उत्पत्ति हुई। उसके सेवकों ने आकर भरत को बधाई देते हुए केवलज्ञान और चक्र की उत्पत्ति के विषय में बताया। भरत ने सोचा—'पहले पिता की पूजा करू या चक्र की।' विचार करते-करते पिता की पूजा का महत्त्व उन्हे प्रतीत हुआ और उन्होंने उसके लिए सामग्री की तैयारी करने का आदेश दे दिया।

मरुदेवी ऋषभ की माता थी। उसने भरत की राज्यश्री देखकर सोचा— 'मेरे पुत्र ऋषभ के भी ऐसी ही राज्यश्री थी। आज वह भूख और प्यास से पीड़ित होकर नग्न घूम रहा है।' वह मन-ही-मन घुटने लगी। पुत्र का शोक घना हो गया। मन क्लेश से भर गया। वह रोने लगी। भरत उधर से निकला। दादी को रोते देखकर बोला—'मां! तुम मेरे साथ चलो! मैं तुम्हे भगवान् ऋषभ की विभूति दिखाऊं।' मरुदेवी हाथी पर बैठकर उनके साथ चली। वे भगवान् के समवसरण के निकट आए। भरत ने कहा—'मा! देख, ऋषभ की ऋद्धि कितनी विपुल है। इस ऋद्धि के समक्ष मेरा ऐश्वर्य एक कोडी के समान है।' मरुदेवी ने चारों ओर देखा। सारा वातावरण उसे अनूठा लगा। उसने मन-ही-मन सोचा—'ओह! मैंने मोह के वशीभूत होकर व्यर्थ ही शोक किया है। भगवान् स्वय ऐसी विपुल ऋद्धि के स्वामी है।' उसके विचार आगे बढे। शुभध्यान की श्रेणी मे वह आरूढ हुई। सारा शरीर रोमाचित हो उठा। उसकी आखे भगवान् ऋषभ की ओर टकटकी लगाए हुए थी। उसे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और क्षण-भर मे ही वह मुक्त हो गई।

मरुदेवी अत्यन्त क्षीणकर्मा थी। उसके कर्म बहुत अल्प थे। उसने न विधिवत् प्रव्रज्या ही ली और न तप ही तपा। वह अल्प समय मे ही मुक्त हो गई।[2]

६-८ (सू० २-४)

प्रस्तुत तीन सूत्रों में वृक्ष के उदाहरण से पुरुष की ऊचाई-निचाई, परिणति और रूप का निरूपण किया गया है। ऊंचाई और निचाई के मानदण्ड अनेक होते है। अनुवाद मे मनुष्य की ऊचाई और निचाई को शरीर और गुण के मानदण्ड से समझाया गया है, वह मात्र एक उदाहरण है। प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या सम्भावित सभी मानदण्डो के आधार पर की जा सकती है। उदाहरणस्वरूप—

१. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से भी उन्नत होते है और ज्ञान मे भी उन्नत होते है।
२. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत होते है, किन्तु ज्ञान से प्रणत होते है।
३. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत होते है, किन्तु ज्ञान से उन्नत होते है।
४. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से भी प्रणत होते है और ज्ञान से भी प्रणत होते है।

उन्नत और प्रणत

कापिल्यपुर नाम का नगर था। उसमे ब्रह्म नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम चूलनी था। चूलनी रानी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम था ब्रह्मदत्त। पिता की मृत्यु के समय बालक छोटा था। उसे अनेक परिस्थितियों मे से गुजरना पड़ा। बड़े होने पर वह चक्रवर्ती बना। वह सुख पूर्वक राज्य का परिपालन करता हुआ विचरण करने लगा।

---

१. उत्तराध्ययन की वृत्ति में बतलाया गया है कि सनत्कुमार तीसरे देवलोक मे उत्पन्न हुए।
उत्तराध्ययन, सुखबोधावृत्ति, पत्र २४२
तत्थ सिलायले आलोयणाविहाणेण मासिएण भत्तेण कालगतो सणकुमारे कप्पे उववन्नो। ततो चुतो महाविदेहे सिज्झिहि।

२ अभिधान राजेन्द्र, दूसरा भाग, पृष्ठ ११४१, पांचवां भाग, पृष्ट १३८९।

एक बार उस गाव मे नट आए। उन्होंने नाटक शुरू किया। नाटक देखकर राजा की पुरानी स्मृति जागृत हो गई। उसने अपने पूर्व-जन्म के भाई का पता लगाया। वह साधु के वेष मे था। राजा उनसे मिला। दोनों का आपस मे बहुत बड़ा विचार-विमर्श चला। साधु ने कहा—'भाई ! तुम पूर्व-जन्म में मुनि थे, आज भोगों मे आसक्त होकर भोगों की चर्चा करते हो। इन्हे छोड़ो और अनासक्त जीवन जीओ। यदि ऐसा नही कर सकते हो तो असद् कर्म मत करो। श्रेष्ठ कर्म करो: जिससे तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल हो।'

ब्रह्मदत्त ने कहा—'मैं जानता हूं, तुम्हारी हित-शिक्षा उचित है, किन्तु मैं निदान-वश हूं। आर्य कर्म नहीं कर सकता।' ब्रह्मदत्त नहीं माना। साधु चला गया। चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त मर कर सातवें नरक मे उत्पन्न हुआ।

देखे—उत्तराध्ययन, अध्ययन १३

प्रणत और उन्नत

गगा नदी के तट पर 'हरिकेश' का अधिपति बलकोे नामक चाण्डाल रहता था। उसकी पत्नी का नाम गौरी था। उसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम बल रखा। वही बल आगे चलकर 'हरिकेश बल' नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह काला और विरूप था। अपनी जाति मे और अपने साथियो मे नटखट होने के कारण उसे सर्वत्र तिरस्कार ही मिला करता था। वह जीवन से ऊब गया था।

मुनि का योग मिला। उसकी भावना बदल गई। वह साधु बन गया। विविध प्रकार की तपस्याए प्रारम्भ की। तप. प्रभाव से अनेक शक्तिया उत्पन्न हो गई। वे लब्धि-सम्पन्न हो गये। देवता भी उनकी सेवा मे रहने लगे। साधना के क्षेत्र मे जाति का महत्त्व नही होता। भगवान् महावीर ने कहा है—'यह तप का साक्षात् प्रभाव है, जाति का नहीं। चाण्डाल कुल मे उत्पन्न होकर भी हरिकेश मुनि अनेक गुणों से युक्त होकर जन-वन्द्य हुए।' उनके ऐहिक और पार-लौकिक—दोनो जीवन प्रशस्त हो गये।

देखे—उत्तराध्ययन, अध्ययन १२।

प्रणत और प्रणत

राजगृह नगर मे काल सौकरिक नामक कषायी रहता था। वह प्रतिदिन ५०० भैसे मारता था। प्रतिदिन के अभ्यास के कारण उसका यह दृढ़ सकल्प भी बन गया था।

एक बार राजा श्रेणिक ने उसे एक दिन के लिए हिंसा छोडने को कहा। जब उसने स्वीकार नही किया तो बलात् हिंसा छुड़ाने के लिए उसे कुए मे डाल दिया, क्योंकि भगवान् महावीर ने राजा श्रेणिक को पहली नरक मे नही जाने का कारण यह भी बताया था कि यदि सौकरिक एक दिन की हिंसा छोड दे तो तुम्हारा नर्क गमन रुक सकता है। सुबह निकाला गया तो उसके चेहरे पर वही प्रसन्नता थी जो प्रसन्नता हमेशा रहती थी। प्रसन्नता का कारण और कुछ नही था, संकल्प की क्रियान्विति ही थी।

राजा ने जिज्ञासा की—'आज तुमने भैसे कैसे मारे ?'

उत्तर मे वह बोला—'मैंने शरीर मैल के कृत्रिम भैसे बनाकर उनको मारा है।' राजा अवाक् रह गया। काल सौकारिक यातना से परिपूर्ण अपनी अन्तिम जीवन-लीला समाप्त कर सप्तम नरक मे नैरयिक बना।

उन्नत और प्रणत परिणत

राजगृह नगर था। महाशतक नाम का धनाढ्य व्यक्ति वहां रहता था। उसके रेवती आदि १३ पत्निया थी। रेवती के विवाहोपलक्ष मे उसके पिता से उसे करोड़ हिरण्य और दस हजार गायों का एक व्रज मिला था। महाशतक के साथ वह आनन्दपूर्वक जीवन बिता रही थी। प्रारम्भ में उसके विचार बहुत अच्छे थे। एक दिन उसके मन में विचार हुआ कि कितना अच्छा हो, इन सब १२ सपत्नियों को मार कर, इनकी सम्पत्ति लेकर पति के साथ एकाकी काम-क्रीडा का

उपभोग करूं। उसने वैसा ही किया। शस्त्र और विष प्रयोग से अपनी बारह सौतों को मार दिया। उसकी क्रूरता इतने से संतुष्ट नहीं हुई। अब वह मांस, मदिरा आदि का भी भक्षण कर उन्मत्त रहने लगी।

एक बार नगर में कुछ दिनों के लिए 'जीव-हिंसा निषेध' की घोषणा होने पर वह अपने पीहर से प्रति दिन दो बछड़ों का मांस मँगाकर खाने लगी।

महाशतक श्रमणोपासक एक दिन धर्म-जागरण में व्यस्त था। उस समय रेवती काम-विह्वल हो वहां पहुंची और विविध प्रकार के हाव-भाव प्रदर्शित कर भोगों की प्रार्थना करने लगी। उसकी इस प्रकार की अभद्र उन्मत्तता को देखकर महाशतक ने कहा—'आज से सातवें दिन तू 'विषूचिका' रोग से आक्रान्त होकर प्रथम नरक में उत्पन्न होगी।' यह सुनकर वह अत्यन्त भयभीत हुई। ठीक सातवें दिन उसकी मृत्यु हो गई।

देखें—उपासकदशा, अ० ८।

उन्नत और प्रणत रूप

रोम के एक चित्रकार ने सुंदर और भव्य व्यक्ति का चित्र बनाने का संकल्प किया। एक बार उसे एक छोटा लड़का मिल गया। वह अत्यन्त सुंदर था। उसका मन प्रसन्नता से भर गया। उसने चित्र तैयार किया। वह चित्र उसकी भावना के अनुरूप बना। सर्वत्र उसकी प्रशंसा होने लगी।

एक दिन उसके मन में पहले चित्र से विपरीत चित्र बनाने की भावना जगी। उसने वैसा ही व्यक्ति खोज निकाला, जिसके चेहरे से स्वार्थपरता, क्रूरता और कुरूपता झलकती थी। उसका चित्र भी उसने तैयार किया।

एक बार वह चित्रकार दोनों चित्रों को लेकर जा रहा था। एक व्यक्ति ने उन्हें देखा और वह जोर से रोने लगा। चित्रकार ने पूछा—'तुम क्यों रोते हो?' वह बोला—'ये दोनों मेरे चित्र हैं।' चित्रकार ने पूछा—'दोनों में इतना अन्तर क्यों?' वह बोला—पहला चित्र मेरी जवानी का और दूसरा चित्र बुढ़ापे का है। मैंने अपनी जवानी व्यसनों में पूरी कर दी। उन व्यसनों से क्रूरता और कुरूपता पैदा हुई।

वह प्रारम्भ में उन्नत और अन्त में प्रणत रूप वाला हो गया।

प्रणत और उन्नत रूप

यह उस समय की घटना है जब गुजरात में महाराजा सिद्धराज राज्य करते थे। एक बार मध्यप्रदेश की 'ओड' जाति अकाल से ग्रस्त होकर अपनी आजीविका के लिए गुजरात पहुंची। राजा सिद्धराज ने 'सहस्रलिंग' तालाब खुदाने का निर्णय इसलिए किया कि प्रजा को राहत-कार्य मिल जाये। ओड जाति में टीकम नाम का एक व्यक्ति अपनी पत्नी व बच्चों को लेकर वहां चला आया। उसकी पत्नी का नाम जसमा था। जसमा बड़ी विचक्षण और वीर नारी थी। विचक्षणता और वीरता के साथ वह अत्यन्त सुन्दर भी थी। रूप प्रायः अभिशाप सिद्ध होता है। जसमा के लिए भी यही हुआ। उसका पति और उसके साथी मिट्टी खोदते और स्त्रियां उस मिट्टी को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ढोती थीं। राजा सिद्धराज की दृष्टि जसमा पर पड़ी। उसने उसे अपने महलों में आने के लिए अनेक प्रलोभन दिए, किन्तु जसमा का हृदय विचलित नहीं हुआ। उसने इस कुचक्र की जानकारी अपने पति को दी और कहा कि अब हमें यहां नहीं रहना चाहिए। बहुत से लोग वहां से इनके साथ चल पड़े।

राजा को यह मालूम हुआ तो वह स्वयं घोड़े पर बैठ अपने सैनिकों को साथ ले चल पड़ा। निकट पहुंच कर राजा ने कहा—'जसमा को छोड़ दो, और सब चले जाओ।' टीकम ने कहा—'ऐसा नहीं हो सकता।' बहुत से लोग उसमें मारे गए, टीकम भी मारा गया। पति के मरने पर जसमा के जीवन का कोई मूल्य नहीं रहा। उसने हाथ में कटार लेकर अपने पेट में भोंकते हुए कहा—'यह मेरा हाड-मांस का शरीर है। दुष्ट! तू इसे ले और अपनी भूख शांत कर।'

जसमा छोटी जाति में उत्पन्न थी, प्रणत थी। किन्तु, उसने अपना बलिदान देकर नारीत्व के उन्नत रूप को प्रस्तुत किया। यह थी उसकी प्रणत और उन्नत अवस्था।

६-१५ (सू० ५-११)

इन सात सूत्रो मे मन, संकल्प, प्रज्ञा और दृष्टि—इन चार बोधात्मक दृष्टिबिन्दुओ तथा शील, व्यवहार और पराक्रम—इन तीन क्रियात्मक दृष्टिबिन्दुओं से पुरुष की विविध अवस्थाओ का प्रतिपादन किया गया है। इन सूत्रों में उपमा-उपमेय या उदाहरण-शैली का प्रतिपादन नही है।

वृत्तिकार ने एक सूचना दी है कि एक परंपरा के अनुसार शील और आचार ये भिन्न है। इनको भिन्न मान लेने पर बोधात्मक-पक्ष की भाति क्रियात्मक-पक्ष के भी चार प्रकार हो जाते हैं। शील और आचार के दो स्वतन्त्र आकार इस प्रकार होंगे—

१. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत शील वाले होते हैं।
२. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणत शील वाले होते है।
३ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नत शील वाले होते है।
४ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणत शील वाले होते है।
१ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत आचार वाले होते हैं।
२ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणत आचार वाले होते हैं।
३ कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नत आचार वाले होते है।
४. कुछ पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणत आचार वाले होते है।

ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत मन

उज्जयिनी का राजा भोज ऐश्वर्य, विद्वत्ता और उदारता में अद्वितीय था। उसकी उदारता की घटनाए इतिहास मे आज भी लिपिबद्ध है। एक बार अमात्य ने सोचा कि यदि राजा इसी प्रकार दान देते रहे तो 'कोश' शीघ्र खाली हो जाएगा। वह राजा को दान से निवृत्त करने के उपाय सोचने लगा। एक बार अमात्य ने राजा के शयनघर पर एक पट्ट लगा दिया। उस पर लिखा था— 'आपदर्थे धन रक्षेत्' (आपत्ति के लिए धन को सुरक्षित रखना चाहिए)। राजा भोज सोने के लिए आये। उन्होने पट्ट पर अंकित वाक्य को पढा और उसके नीचे लिख दिया—'श्रीमतामापद. कुत ?' (ऐश्वर्य-सम्पन्न व्यक्तियो के लिए आपत्ति कहा है ?) दूसरे दिन मत्री ने देखा तो उसका चेहरा विषाद से भर गया। उसने फिर एक वाक्य नीचे लिख डाला- —'कदाचिद् रुष्यति दैव'(कभी भाग्य भी रुष्ट हो जाता है)। राजा ने जब इसे पढा तो तत्काल समाधान की वाणी मे स्वर फूट पडा —'सचितमपि नश्यति' (संचित धन भी नही रहता)। मन्त्री इसे पढ समझ गया कि राजा की प्रवृत्ति मे अन्तर आने वाला नही है।

राजा भोज ऐश्वर्य से उन्नत थे तो उनके मन की उदारता भी कम नही थी।

ऐश्वर्य से प्रणत और उन्नत मन

संस्कृत का महान् कवि माघ अत्यन्त दरिद्र ब्राह्मण था। एक दिन की घटना है—एक ब्राह्मण अवन्ति से माघ के पास आया और अपनी लाचारी के स्वर मे बोला—मेरी कन्या की शादी है, मेरे पास कुछ नही है, कुछ सहायता दीजिए। माघ ने जब यह सुना तो वे बडे असमजस मे पड गए। देने को पास मे कुछ नही था। 'ना' भी कैसे कहा जाए। इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई। कवि ने देखा—पत्नी सोई है। उसके हाथ मे पहने हुए हैं कगण। मन ने कहा—क्यो न यह निकाल कर दे दिया जाए। वे चुपके से उठे और एक हाथ से कंगण निकाल कर जाने लगे तो पत्नी की नीद टूट गई। वह बोली—'एक से क्या होगा ? यह दूसरा भी ले जाइए, बेचारे का काम हो जायेगा।' माघ स्तब्ध रह गये। उन्होने कंगण देकर ब्राह्मण को बिदा किया।

पास में ऐश्वर्य न होते हुए भी माघ और उनकी पत्नी का मन कितना उन्नत था।

ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणत मन

एक गांव में एक भिक्षुक अपने बाल-बच्चो सहित रहता था। प्रति दिन वह गांव मे जाता और जो कुछ पैसा, अन्न आदि मिलता, उससे अपना भरण-पोषण करता था। उसका मन अत्यन्त कृपण था। दूसरों की सहायता की बात तो दूर रही, वह किसी दूसरे को दान देते हुए देखता तो भी उसके मन पर चोट-सी लगती थी।

एक दिन की घटना है। वह घर पर आया, तब पत्नी ने उसके उदास चेहरे को देखकर पूछा—

'क्या गाठ से गिर पडा, क्या कछु किसको दीन।
नारी पूछे सूमसू, क्यो है बदन मलीन।।

(क्या आज कुछ गिर पडा है या किसी को कुछ दिया है, जिससे कि आपका चेहरा उदासीन है)।

वह बोला—'तुम ठीक कहती हो। मेरा चेहरा उदास है, किन्तु इसलिए नही कि मैंने कुछ दिया है या मेरी गाठ से कुछ गिर पड़ा है, किन्तु इसलिए कि मैंने आज एक व्यक्ति को कुछ दान देते हुए देख लिया है—

'नही गाठ से गिर पडा, ना कछु किसको दीन।
देवत देख्या और को, ताते बदन मलीन।।

ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत संकल्प

भगवान् ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र का नाम भरत था। वे चक्रवर्ती बने। उनके पास अतुल ऐश्वर्य और साधन-सामग्री थी। इतना होने पर भी उनके विचार बहुत उन्नत थे। वे अपने ऐश्वर्य मे कभी मूढ नही बने। उन्होने अपने मंगलपाठकों को यह आदेश दे रखा था कि प्रात.काल मे जागरण के समय वे 'मा हन, मा हन' (किसी को पीडित मत करो, किसी को मत मारो) इन शब्दों की ध्वनि करते रहे। भरत के जागते ही वे मगलपाठक इस प्रकार की ध्वनि सतत करते रहते। इसके फलस्वरूप चक्रवर्ती भरत मे अप्रमत्तता का विकास हुआ और वे चक्रवर्तित्व का पालन करते हुए भी उसी भव मे मुक्त हो गये। वे ऐश्वर्य और सकल्प—दोनो से उन्नत थे।

ऐश्वर्य से उन्नत और प्रणत संकल्प

महापद्म नाम के राजा की रानी का नाम पद्मावती था। उनके पुण्डरीक और कुण्डरीक नाम के दो पुत्र थे महापद्म अपने पुत्र पुण्डरीक को राज्य-भार सौंप दीक्षित हो गये। एक बार नगर मे एक आचार्य का आगमन हुआ। दोनो भाई आचार्य-अभिवदना के लिए आये। उन्होने धर्मोपदेश सुना। दोनो की आत्मा स्वविकास की ओर उन्मुख हो गई। छोटा भाई साधु बन गया और बडा भाई श्रावक-धर्म स्वीकार कर पुन. राजधानी लौट आया।

कुण्डरीक कठोर साधनारत हो आत्म-विकास के क्षेत्र मे प्रगति करने लगे। कठोर तपश्चर्या से उनका शरीर कृश ही नही हुआ, अपितु रोगग्रस्त भी हो गया। वे विहार करते-करते अपने ही नगर 'पुण्डरीकिणी' मे आ गये। राजा पुण्डरीक मुनि वंदन के लिए आए। उन्होने कुण्डरीक मुनि की हालत देखी तो आचार्य से औषधोपचार के लिए प्रार्थना की। उपचार प्रारम्भ हुआ। शनै शनैः रोग शान्त होने लगा। मुनि स्वस्थ हो गये, किन्तु इसके साथ-साथ उनका मन अस्वस्थ हो गया। वे सुखैषी बन गये। वहा से विहार करने का उनका मन नही रहा। भाई ने अव्यक्त रूप से उन्हें समझाया। एक बार तो वे विहार कर चले गये। कुछ दिनो के बाद फिर उनका मन शिथिल हो गया। वे पुन. अपने नगर मे चले आये। राजा पुण्डरीक ने बहुत समझाया, किन्तु इस बार निशाना खाली गया। आखिर पुण्डरीक ने अपनी राजसिक पोशाक उतार कर भाई को दे दी और भाई की पोशाक स्वय पहन ली। एक भोगासक्त हो गया और एक योगासक्त हो गये। एक राजगद्दी पर सुशोभित हो गये और एक साधनारत हो आत्म-ऐश्वर्य से सुसम्पन्न हो गये। सातवें दिन दोनो ही आयुष्य पूर्ण कर परलोक के पथिक बन गये। साधुत्व को छोडकर राज्यासन्न होने वाला भाई सातवें नरक गया और योगरत होने वाला स्वर्ग मे गया।

इस कथानक मे दोनों तथ्यो का प्रतिपादन है—

१. पुण्डरीक राज्य करता रहा और अन्त में भाई कुण्डरीक के लिए राज्य का त्याग कर मुनि बन गया—वह ऐश्वर्य से उन्नत और संकल्प से भी उन्नत रहा।

२. कुण्डरीक राज्य के लिए मुनि वेष का त्याग कर राजा बना—वह ऐश्वर्य (श्रामण्य) से उन्नत होकर भी सकल्प से प्रणत था।

ऐश्वर्य से प्रणत और उन्नत संकल्प

अब्राहम लिंकन अमेरिका के राष्ट्रपति थे। उनके पिता का नाम था टामस लिंकन। घर की आर्थिक स्थिति अत्यन्त कमजोर थी। यह घटना बचपन की है। पढने का उन्हे बहुत शौक था। एक बार अपने अध्यापक एण्ड्रू क्राफर्ड के पास वाशिंगटन की जीवनी थी। वे उसे पढना चाहते थे। अपने अध्यापक के पास पहुचे और अनुनय-विनय करने के बाद पुस्तक प्राप्त करने मे सफल हुए। वे खुशी-खुशी अपने घर पहुचे और लैम्प के प्रकाश मे पुस्तक पढने लगे। पुस्तक पढने मे इतने लीन हो गये कि समय का कुछ पता नही लगा। पिता ने कई बार सोने के लिए कहा, किन्तु उन्होने उस पर ध्यान नही दिया। आखिर जब फिर पिता ने डाटा तो पुस्तक को झरोखे मे रख लैम्प बुझाकर लेट गये। नीद आ गई। सुबह उठकर पुस्तक को देखा तो वह बरसात के कारण पानी से कुछ खराब हो गई थी। बडे घबराये। अध्यापक के सामने एक अपराधी की तरह खडे हुए। अध्यापक ने कहा—'इसीलिए मै किसी को पुस्तक देना नही चाहता। उसके सुरक्षित पहुँचने मे मुझे सदेह रहता है। अब इसका दण्ड भरना होगा।' अब्राहम ने कहा—'मेरे पास फूटी कौडी भी नही है।' अध्यापक बोले—'तीन दिन मेरे खेत मे काम करो, फिर यह पुस्तक तुम्हारी हो जायेगी।' तीन दिन कडा परिश्रम किया। अध्यापक के सामने जब हाजिर हुए तो बहुत प्रसन्न थे। अब किताब उन्हे मिल गई। घर पर आए तो बहिन से कहा—'तीन दिन काम करना पड़ा तो क्या ? पुस्तक मेरी बन गई। अब इसे पढकर मैं भी ऐसा ही बनने का प्रयत्न करूँगा।' लिंकन ऐश्वर्य से प्रणत थे, किन्तु सकल्प मे उन्नत।

ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणत संकल्प

दो पड़ोसी थे। एक ईर्ष्यालु और दूसरा मत्सरी था। दोनो लोभी थे। एक बार धन प्राप्ति के लिए दोनो ने देवी के मदिर मे तपस्या प्रारम्भ की। दिन बीत गये। कुछ दिनो के बाद देवी प्रसन्न हुई और बोली—'बोलो! क्या चाहते हो ? जो पहले मागेगा, दूसरे को उससे दुगुना दूगी।' दोनो ने यह सुना तो लोभ का समुद्र दोनों के मन मे उद्वेलित हो उठा। दोनों सोचने लगे कि पहले कौन मागे ? वह सोचता है यह मागे और दूसरा सोचता है वह मागे, जिससे मुझे दुगुना मिले। दोनों एक दूसरे की ओर देखते रहे किन्तु पहल किसीने नही की।

दोनो का मन दूषित था। ईर्ष्यालु ने सोचा—धन आदि मांगने से तो इसे दुगुना मिलेगा। इससे अच्छा हो, मैं क्यो नही देवी से यह प्रार्थना करूँ कि मेरी एक आख फोड़ दे, इसकी दोनो फूट जाएगी। उसने वही कहा। देवी बोली—'तथास्तु!' एक की एक आख फूटी और दूसरे की दोनो।

इस प्रकार वे ऐश्वर्य और संकल्प दोनो से प्रणत थे।

ऐश्वर्य से उन्नत और प्रज्ञा से उन्नत

थावरचापुत्र महल की ऊपरी मजिल मे मा के पास बैठा था। वहां उसके कानो में मधुर ध्वनि आ रही थी। मा से पूछा—'ये गीत बडे मधुर है, मेरा मन पुन पुनः सुनने को करता है। ये कहा से आ रहे है और क्यो आ रहे है ?' मा ने जिज्ञासा को समाहित करते हुए कहा—'पुत्र! अपने पड़ोसी के घर पुत्र उत्पन्न हुआ है। ये गीत पुत्र-प्राप्ति की खुशी में गाये जा रहे हैं और वही से आ रहे हैं।' पुत्र का मन अन्य जिज्ञासा से भर गया। वह बोला—'मां क्या मैं जन्मा था तब भी गाये गये थे ?' मां ने स्वीकृति की भाषा में कहा—'हां, गाये गये थे।' इस प्रकार वार्तालाप चल ही रहा था कि इतने मे गीतो का स्वर बदल गया। जो स्वर कानों को प्रिय था वही अब कांटों की तरह चुभने लगा।

पुत्र ने पूछा—'मा ! ये गीत कैसे है ? मन नही चाहता इन्हे सुनने को।' मां बोली—'वत्स ! ये कर्ण-कटु है। हृदय को रुलाने वाले है। जो बच्चा पैदा हुआ था, अब वह नहीं रहा।' पुत्र बोला—'मां, मैं नही समझा।' 'वह मर गया, उसकी मृत्यु हो गई' मां ने कहा। लडके ने पूछा—'मृत्यु क्या होती है ?'

'जीवन की अवधि समाप्त होने का नाम मृत्यु है'—मा ने कहा। बालक ने पूछा—'क्या मैं भी मरूँगा ?' मा ने कहा—'हा, जो पैदा होता है वह निश्चित मरता है। इसमें कोई अपवाद नही है।'

पुत्र बोला—'क्या इसका कोई उपचार है ?' मा ने कहा—'हा, है। भगवान अरिष्टनेमि इसके अधिकृत उपचारक है।'

एक बार अरिष्टनेमि वहा आए। थावरचापुत्र प्रवचन सुनने गया। प्रवचन से प्रतिबद्ध होकर, वह उनके शासन मे प्रव्रजित हो गया। मुनि थावरचापुत्र ने कठोर साधना कर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

वे ऐश्वर्य और प्रज्ञा—दोनो से उन्नत थे।

ऐश्वर्य से उन्नत और प्रज्ञा से प्रणत

एक सिद्ध महात्मा अपने शिष्यो के साथ कही जा रहे थे। मार्ग मे एक तालाब आया। विश्राम करने और पानी पीने के लिए वे वहा रुके। महात्मा तालाब के तट पर गये और जीवित मछलिया खाने लगे। शिष्यो ने भी गुरु का अनुकरण किया। महात्मा कुछ नही बोले। वे वहा से आगे चले। शिष्य भी चल पडे। थोडी दूर चले कि एक तालाब आ गया। तालाब में मछलिया नही थी।

महात्मा उसी प्रकार किनारे पर खडे होकर निगली हुई मछलियो को पुन उगलने लगे। शिष्य देखने लगे। उन्हे आश्चर्य हुआ। जितनी मछलियां निगली थी वे सब जीवित थी। शिष्य कब चूकने वाले थे। वे भी गले मे अगुली डाल कर मछलिया उगलने लगे, लेकिन बडी कठिनाई से वे एक-दो मछलिया निकाल सके, वे भी मरी हुई। महात्मा ने कहा—'मूर्खो ! बिना जाने यों नकल करने से कोई बडा नही होता। प्रत्येक कार्य का रहस्य भी समझना चाहिए।'

शिष्य साधना की दृष्टि से ऐश्वर्ययुक्त थे किन्तु उनकी प्रज्ञा उन्नत नही थी।

ऐश्वर्य से प्रणत और प्रज्ञा से उन्नत

वह एक दास था। स्वामि-भक्ति के कारण वह स्वामी का विश्वासपात्र बन गया। स्वामी उसकी बात का भी सम्मान करता था। एक दिन वह मालिक के साथ बाजार गया। एक बूढा दास बिक रहा था। दास प्रथा के युग की घटना है। दास ने स्वामी से कहा—'इसे खरीद लीजिए।' स्वामी ने कहा—'इसका क्या करोगे ?' उसने कहा—'मै इससे काम लूगा।' मालिक ने उसके कहने से उसे खरीद लिया। उसे उसके पास रख दिया।

वह उसके साथ बडा दयालुतापूर्ण व्यवहार करता था। बीमार होने पर सेवा करता और भी अनेक प्रकार की सुविधाए देता। मालिक ने उसके प्रति अपनत्व भरा व्यवहार देखकर एक दिन उससे पूछा—'लगता है यह तुम्हारा कोई सम्बन्धी है ?' उसने कहा—'नही यह मेरा सम्बन्धी नही है।'

मालिक ने पूछा—'तो क्या मित्र है ?'

उसने कहा—'मित्र नही, यह मेरा शत्रु है। इसने मुझे चुराकर बेचा था। आज जब यह बिक रहा था तो मैने पहचान लिया।'

मालिक ने पूछा—'शत्रु के साथ दयापूर्ण व्यवहार क्यो ?

उसने कहा—'मैंने संतो से सुना है, शत्रु के प्रति प्रेम का व्यवहार करो। उसके प्रति दया रखो। बस ! मैं उसी शिक्षा को अमल मे ला रहा हूं।'

दास ऐश्वर्य से प्रणत अवश्य था, किन्तु उसकी प्रज्ञा उन्नत थी।

ऐश्वर्य से उन्नत और दृष्टि से उन्नत

आचार्य का प्रवचन सुनने के लिए अनेक बाल, युवक और वृद्ध व्यक्ति उपस्थित थे। प्रवचन का विषय था—ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य की उपादेयता पर विविध दृष्टियो से विमर्श हुआ। श्रोताओं के मन पर उसकी गहरी छाप पडी। अनेकों व्यक्ति यथाशक्य ब्रह्मचर्य की साधना में प्रविष्ट हुए, जिनमें एक युवक और एक युवती का साहस और भी प्रशस्य था। दोनों ने महीने मे पन्द्रह दिन ब्रह्मचारी रहने का सकल्प किया। युवक ने कृष्णपक्ष का और युवती ने शुक्लपक्ष का। दोनो तब तक अविवाहित थे। सयोग की बात समझिए कि दोनो प्रणय-सूत्र में आबद्ध हो गए।

परस्पर के वार्तालाप मे जब यह भेद प्रकट हुआ तो एक क्षण के लिए दोनो विस्मित रह गए। पति का नाम विजय था और पत्नी का नाम विजया। विजया ने कहा —'पतिदेव! आप सहर्ष दूसरा विवाह कीजिए।' मैं ब्रह्मचारिणी रहूगी। विजय की आत्मा भी पौरुष से उद्दीप्त हो उठी। वह बोला —'क्या मैं ब्रह्मचारी नही रह सकता? मैं रह सकता हू। अपनी दृष्टि और मन को पवित्र रखना कठोर है, किन्तु जब इन्हे सत्य-दर्शन मे नियोजित कर दिया जाता है तो कोई कठिन नही रहता।' दोनो सहज दशा मे रहने लगे।

दोनों पति-पत्नि ऐश्वर्य से उन्नत थे, साथ-साथ ब्रह्मचर्य विषयक उनकी दृष्टि भी उन्नत थी।

ऐश्वर्य से उन्नत और दृष्टि से प्रणत

विचारो की विशुद्धि के बिना मन निर्मल नही रहता। भर्तृहरि को कौन नही जानता। वे एक सम्राट थे और एक योगी भी थे। सम्राट की विरक्ति का निमित्त बनी उन्ही की महारानी पिगला। रानी पिंगला राजा से सन्तुष्ट नही थी। उसका मन महावत मे आसक्त हो गया था। महावत वेश्या से अनुरक्त था। राजा को इसकी सूचना मिली एक अमरफल से। घटना यो है—

एक योगी को अमरफल मिला। वह उसे राजा भर्तृहरि को देने के लिए लाया। भर्तृहरि ने उसे स्वय न खाकर अपनी रानी पिगला को दिया। पिगला के हाथो से वह महावत के हाथो मे चला आया और महावत ने उसे वेश्या के हाथो मे खाने के लिए थमा दिया। उस फल का गुण था कि जो उसे खाए वह सदा युवक बना रहे।

वेश्या अपने कार्य से लज्जित थी। उसे यौवन स्वीकार नही था। वह उस फल को राजा के सामने ले आई। राजा ने ज्यो ही उसे देखा, रानी के प्रति ग्लानि के भाव उभर आए।

उसने कहा—

> या चिन्तयामि सतत मयि सा विरक्ता,
> साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
> अस्मत् कृते च परितुष्यति काचिदन्या,
> धिक् ता च तं च मदन च इमा च मा च।

"जिसके विषय मे मैं सतत सोचता हूं, वह मुझ से विरक्त है। वह दूसरे मनुष्य को चाहती है और वह दूसरा व्यक्ति किसी दूसरी स्त्री मे आसक्त है। मेरे प्रति कोई दूसरी स्त्री आसक्त है। यह मोह-चक्र है। धिक्कार है उस स्त्री को, उस पुरुष को, कामदेव को, इसको और मुझको।" राजा भर्तृहरि राज्य को छोड सन्यासी बन गए।

महारानी पिंगला ऐश्वर्य से उन्नत होते हुए भी ब्रह्मचर्य की दृष्टि से प्रणत थी।

ऐश्वर्य से प्रणत दृष्टि से उन्नत

एक योगी हौज में स्नान कर रहे थे। उनकी दृष्टि हौजमे एक छटपटाते बिच्छू पर गिर पडी। सन्त का करुण हृदय दयार्द्र हो उठा। तत्काल वे उसके पास गए और हाथ मे ले बाहर रखने लगे। बिच्छू इसे क्या जाने? उसने अपने सहज स्वभाववश संत के हाथ पर डक लगा दिया। भलाई का यह पारितोषिक कैसा? पीडा से हाथ प्रकम्पित हो उठा। बिच्छू

पुनः पानी में गिर पड़ा। संत ने फिर उठाया और उसने फिर डंक मार दिया। वह पानी मे गिरता रहा और मत अपना काम करते रहे। बाहर खड़े लोग कुछ देर देखते रहे। उनमे से किसी एक से रहा नहीं गया। उसने कहा—'क्या आप इसके स्वभाव से अपरिचित हैं, जो इसके साथ भलाई कर रहे हैं ?'

संत ने अपना सहज स्मित हास्य बिखेरते हुए कहा—'मैं जानता हू इसे, इसके स्वभाव को और अपने स्वभाव को भी। जब यह अपना दुष्ट स्वभाव नही छोड सकता तो मैं कैसे अपने शिष्ट स्वभाव को छोड दूं। जिसे अपना सहज दर्शन नही है उसके लिए ही यह सब झंझट जैसा है।'

संन्यासी के पास ऐश्वर्य नही था, किन्तु उनकी दृष्टि उन्नत थी।

ऐश्वर्य से उन्नत और शीलाचार से उन्नत

मगध के सम्राट् श्रेणिक की रानी का नाम चेलना था। चेलना रूप-सम्पन्न और शील-सम्पन्न थी। सर्दी के दिनो की घटना थी। रानी सोई हुई थी। उसका हाथ बाहर रह जाने से ठिठुर गया था। जैसे ही उसकी नीद टूटी तो उसके मुह से निकल गया था कि 'उसका क्या होता होगा ?' श्रेणिक का मन उसके सतीत्व मे संदिग्ध बन गया।

वह भगवान् को अभिवंदन करने चला। मार्ग मे अभयकुमार मिला। आदेश दिया—'चेलना का महल जला दिया जाए।' अभयकुमार कुछ समझ नही सका। 'इतस्तटी इतो व्याघ्र' (इधर नदी और इधर बाघ)। वह सोचने लगा कि क्या करना चाहिए ? महल के पास की पुरानी राजशाला मे आग लगवा दी। उधर श्रेणिक भगवान् के सन्निकट पहुंचा। भगवान् के मुख से जब यह सुना कि 'रानी चेलना शीलवती है' तो श्रेणिक सन्न रह गया। वह महलो की ओर दौडा। अभयकुमार से सवाद पाकर प्रसन्न हुआ। उसने चेलना से पूछा—'तुमने कल रात मे सोते-सोते यह कहा था कि 'उसका क्या होता होगा ?' इसका क्या तात्पर्य है ?' उसने कहा—'राजन्, कल मैं उद्यानिका करने गई थी। वहा एक मुनि को ध्यान करते देखा। वे नग्न खडे थे। शीत लहर चल रही थी। मैं इतने सारे वस्त्रो मे शीत के कारण ठिठुरने लगी। मैंने सोचा कि आश्चर्य है ! वे मुनि इतनी कठोर शीत को कैसे सह लेते है ? ये विचार बार-बार मन मे सक्रान्त हुए। सारी रात उसी मुनि का ध्यान रहा। सभव है, स्वप्नावस्था मे मुनि की अवस्था को देखकर मैंने कह दिया हो कि उसका क्या होता होगा ?'

चेलना की बात सुनकर राजा अवाक् रह गया। महारानी चेलना ऐश्वर्य और शील दोनो से उन्नत थी।

ऐश्वर्य से सम्पन्न और शीलाचार से प्रणत

राजा जितशत्रु की रानी का नाम सुकुमाला था। वह सुकुमार और सुन्दर थी। राजा उसके सौन्दर्य पर इतना आसक्त था कि वह अपने राज्य-कार्य मे भी दिलचस्पी नही लेता था। मन्त्रियों ने निर्णय कर राजा और रानी दोनों को घोर जगल में छोड़ दिया। वे जैसे-तैसे एक नगर मे पहुचे और अपनी आजीविका चलाने लगे। राजा ने नौकरी प्रारम्भ की। रानी अकेली झोपडी मे रहने लगी। उसका मन ऊब गया। वह राजा से बोली—'अकेले मेरा मन नहीं लगता।' राजा ने एक दिन एक गवैये को देखा। वह बहुत सुन्दर गाता था। वह पंगु था। उसे रानी का मन बहलाने रख दिया।

रानी गायन सुनकर अपना समय व्यतीत करने लगी। उसके मधुर संगीत से धीरे-धीरे रानी का मन प्रेमासक्त हो गया। रानी का सम्बन्ध उसके साथ जुड गया। पगु ने कहा—'राजा विघ्न है। भेद खुल जाने पर हम दोनो को मार देगा, इसलिए इसका उपाय करना चाहिए।' रानी ने कहा—'मैं करूंगी।' एक दिन नदी-विहार के लिए दोनों गए। रानी ने गहरे पानी मे राजा को धक्का मारा कि वह प्रवाह मे बहते हुए दूर जा निकला। रानी वापिस लौट आई। दोनो आनन्द से रहने लगे।

रानी ऐश्वर्य से सम्पन्न थी, किन्तु उसका शील प्रणत था।

ऐश्वर्य से प्रणत और शीलाचार से सम्पन्न

घटना लदन के उपनगर की है। वह ग्वाला था। उसके घर पर एक विदेशी भारतीय ठहरा हुआ था। उसके यहा एक लड़की दूध की सप्लाई का काम करती थी। एक दिन उसका चेहरा उतरा हुआ सा था। विदेशी ने उससे इसका कारण

पूछा, उसने कहा—'मैं रोज ग्राहको को दूध देती हूं। आज दूध कुछ कम है। आज मैं अपने ग्राहकों को दूध कैसे दे पाऊंगी ? यही मेरी उदासी का कारण है।'

उसने कहा—'इसमे उदास होने जैसी कौन-सी बात है ? इसका उपाय मैं जानता हू।' उसने बिना पूछे ही अपना रहस्य खोल दिया। कहा—'जितना कम है, उतना पानी मिला दो।'

यह सुनकर लड़की का खून खौल उठा। उसने उस युवक को अपने घर से निकालते हुए कहा—'मैं ऐसे राष्ट्रद्रोही को अपने घर मे नही रखना चाहती।'

वह ग्वालिन ऐश्वर्य से प्रणत किन्तु शील से सम्पन्न थी।

ऐश्वर्य से प्रणत और शीलाचार से प्रणत

एक सन्त अपने शिष्य के साथ बैठे थे। वहा एक व्यक्ति आया और शिष्य को गालियां बकने लगा। शिष्य अपने शील-स्वभाव मे लीन था। वह सहता गया। काफी समय बीत गया। उसकी जबान बन्द नही हुई तो शिष्य की जबान खुल गई। उसने अपने स्वभाव को छोड असुरता को अपना लिया। संत ने जब यह देखा तो वे अपने बोरिये-बिस्तर समेट चलने लगे। शिष्य को गुरु का यह व्यवहार बड़ा अटपटा लगा। उसने पूछा—'आप मुझे इस हालत मे छोड़ कहां जा रहे हो ?'

सत ने कहा—'मैं तेरे पास था और तेरा साथी था जब तक तू अपने मे था। जब तू ने अपने को छोड दिया तब मैं तेरा साथ कैसे दे सकता हू ? तुम्हारे पास धन-दौलत नही है। तुम ऐश्वर्य से प्रणत हो किन्तु तुम अभी शील से भी प्रणत हो गए—नीचे गिर गये।'

ऐश्वर्य से उन्नत और व्यवहार से उन्नत

फ्रास के बादशाह हेनरी चतुर्थ अपने अंगरक्षकों एव मत्रियो के साथ जा रहे थे। मार्ग मे एक भिखारी मिला। उसने अपनी टोपी उतार कर अभिवादन किया। बादशाह ने स्वय भी वैसा ही किया। अंगरक्षक और मत्रियो को यह सुदर नही लगा। किसी ने बादशाह से पूछा—'आप फ्रांस के बादशाह है, वह भिखारी था। उसके अभिवादन का उत्तर आपने टोप उतारकर कैसे दिया ?'

बादशाह ने कहा—'वह एक सामान्य व्यक्ति है, किन्तु उसका व्यवहार कितना शिष्ट था। मैं बड़ा हू तो क्या मेरा व्यवहार उससे अशिष्ट होना चाहिए ? बड़ा वही है जिसका व्यवहार सभ्य हो।

हेनरी चतुर्थ ऐश्वर्य से सम्पन्न तो थे ही, साथ-साथ उनका व्यवहार भी उन्नत था।

ऐश्वर्य से उन्नत और व्यवहार से प्रणत

एक भिखारी मागता हुआ एक सम्पन्न व्यक्ति की दूकान पर आकर बोला—'कुछ दीजिए।' धनी ने उसकी कुछ आवाजे सुनी-अनसुनी कर दी। उसने अपना प्रण नही छोडा तो उसे हार कर उस ओर देखना पडा। देखा, और कहा—'आज नही, कल आना।' वह आश्वासन लेकर चला गया। दूसरे दिन बडी आशा लिए सेठ की दूकान पर खडे होकर आवाज लगाई। सेठ बोला—'अरे ! आज क्यों आया है ? मैंने तो तुझे कल आने के लिए कहा था।' वह विचारों मे खोया हुआ पुनः चल पड़ा। ऐसे सात दिन बीत गये। तब उसे लगा यह सेठ बडा धृष्ट है, व्यवहार शून्य है।

जिसे लोक-व्यवहार का बोध नही है, वह मूर्खों का शिरोमणि है। इसे अपना दण्ड मिलना चाहिए। मैं छोटा हू और ये बड़े हैं। कैसे प्रतिशोध लू। अन्तत: प्रतिशोध ने एक उपाय ढूंढ निकाला। उसने कहीं से रूप-परिवर्तन की विद्या प्राप्त की।

एक दिन वह सेठ का रूप बनाकर आया। सेठ कही बाहर गया हुआ था। दूकान की चाभी लड़कों से लेकर दूकान पर आ बैठा। सब कुछ देखा। धन को अपने सामने रखकर लोगों को दान देने लगा। कुछ ही क्षणों में सारा शहर

इस अप्रत्याशित दान के संवाद से मुखरित हो उठा। लोक देखने लगे, जिसने पैसे को भगवान् मान सेवा की, आज अपने ही हाथों से वितरित कर कैसा पुण्य अर्जन कर रहा है।

संयोग की बात घर का मूल-मालिक वह सेठ भी आ पहुचा। उसने जब यह चर्चा सुनी तो सहसा विश्वास नही हुआ। वह आया। भीड़ देखी तो हक्का-बक्का रह गया। पुलिस के आदमियो ने दोनो को हिरासत मे ले लिया।

राजा के सामने वह मामला आया तो राजा का सिर भी घूम गया। मत्री को इसके निर्णय का अधिकार दिया। मत्री ने सोचा—'दोनो समान है। इनका अन्तर ऊपर से निकालना असभव है। सभव है, एक विद्या-सम्पन्न है। वही झूठा है।' मत्री ने सूझ-बूझ से काम लिया। दोनो को सामने खडा कर कहा—'जो इस कमल की नाल मे से बाहर निकल जाएगा, वह असली।' जो रूप बदलना जानता था, उसने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। दूसरे ही क्षण देखते-देखते वह कमल से बाहर निकल आया। मंत्री ने कहा—'पकडो इसे, यह नकली सेठ है।'

उसने राजा को सही घटना सुनाते हुए कहा—'यदि यह सेठ मेरे साथ दुर्व्यवहार नही करता तो आज इसे इतने बड़े धन से हाथ नही धोना पड़ता। यह सेठ ऐश्वर्य से सम्पन्न है, किन्तु व्यवहार से प्रणत है।'

ऐश्वर्य से प्रणत और व्यवहार से उन्नत

घटना जैन रामायण की है। राम, लक्ष्मण और सीता तीनों वनवासी जीवन-यापन करते हुए एक साधारण से गाव मे पहुंचे। तीनो को प्यास सता रही थी। वे पानी की टोह मे थे। किसी ने अग्नि-होत्री ब्राह्मण का घर बताया। घर साधारण था। गरीबी बाहर झाक रही थी। राम वहा पहुचे। उस समय घर मे ब्राह्मण-पत्नी थी। जैसे ही देखा कि अतिथि आये है, वह बाहर आई और बडे मधुर शब्दो मे उनका स्वागत किया। सबके लिए अलग-अलग आसन लगा दिये। सब बैठ गये। ठडे पानी के लोटे सामने रख दिये। सबने पानी पिया। उसके मृदु और सौम्य व्यवहार से सब बडे प्रसन्न हुए।

ब्राह्मणी ऐश्वर्य से प्रणत थी, किन्तु उसका व्यवहार उन्नत था।

ऐश्वर्य से प्रणत और व्यवहार से भी प्रणत

ब्राह्मण-पत्नी का कमनीय व्यवहार जिस प्रकार राम, लक्ष्मण और सीता के हृदय को वेध सका, वैसे उसके पति का नही। वह उसके सर्वथा उल्टा था। शिक्षा-दीक्षा मे उससे बहुत बढा-चढा था, किन्तु व्यवहार से नही। जैसे ही वह घर मे आया और अतिथियो को देखा तो पत्नी पर बरस पडा। क्रोधोन्मत्त होकर बोला—'पापिनी! यह क्या किया तुमने? किनको घर मे बैठा रखा है? जानती नही तू, मैं अग्नि-होत्री ब्राह्मण हू। घर को अपवित्र कर दिया। देख, ये कितने मैले-कुचेले है। तू प्रतिदिन किसी-न-किसी का स्वागत करती रहती है। तू चली जा मेरे घर से।' वह बेचारी शर्म के मारे जमीन मे गढ गई। सीता के पीछे आकर बैठ गई।

ब्राह्मण इतने मे भी सन्तुष्ट नही हुआ। उसका क्रोध विकराल बना हुआ था। उसने कहा—'मैं अभी जलता हुआ लक्कड लाकर तेरे मुह मे डालता हू।' वह लक्कड लाने के लिए उठ खडा हुआ। क्रोध मे विवेक नही रहता।

ब्राह्मण ऐश्वर्य और व्यवहार दोनो से प्रणत था।

ऐश्वर्य से उन्नत और पराक्रम से उन्नत

भगवान् ऋषभनाथ के सौ पुत्रों मे से भरत और बाहुबली दो बहुत विश्रुत है। भरत चक्रवर्ती थे। इन्हीं के नाम से इस देश का नाम भारत पडा। बाहुबली चक्रवर्ती नही थे, किन्तु वे एक चक्रवर्ती से भी लोहा लेने वाले थे। भरत को अपने चक्रवर्तित्व का गर्व था। उन्होंने अपने छोटे अठानबे भाइयों का राज्य ले लिया। उनकी लिप्सा शान्त नही बनी। उन्होने बाहुबली के पास दूत भेजा। बाहुबली को अपने पौरुष पर भरोसा था और अपनी प्रजा पर। उन्होने भरत के आदेश को चुनौती दे दी। भरत तिलमिला उठे। उन्होने बाहुबली के प्रदेश बाल्हीक पर आक्रमण कर दिया।

बाल्हीक की प्रजा इस अन्याय के विरुद्ध तैयार होकर मैदान मे उतर आई। भरत के दात खट्टे हो गए। बहुत लम्बा युद्ध चला। उनका शारीरिक पराक्रम अद्वितीय था। उन्होने अपनी मुष्टि भरत पर उठाई। उस मुष्टि का प्रहार यदि वे

भरत पर कर देते तो भरत जमीन में गड़ जाते। किन्तु इतने में ही उनका चैतसिक पराक्रम जाग उठा। वे तत्काल मुनि बने और लम्बे कायोत्सर्ग मे खडे हो गए।

बाहुबली ऐश्वर्यशाली तो थे ही, साथ-साथ शारीरिक और चैतसिक—दोनो पराक्रमो से उन्नत भी थे।

ऐश्वर्य से उन्नत और पराक्रम से प्रणत

एक धनवान सेठ रुपये लेकर आ रहा था। रास्ते मे जंगल पड़ता था। वह अकेला था। भय उसे सता रहा था। थोडी दूर आगे गया, इतने में कुछ व्यक्तियो की आहट सुनाई दी। उसका शरीर काप उठा। वह इधर-उधर त्राण ढूढ़ने लगा। उसे दिखाई दिया पास में एक मन्दिर। वह उसमें घुसकर देवी से प्रार्थना करने लगा। देवी ने कहा—वत्स ! डर मत। इस दरवाजे को बन्द कर दे।' वह बोला—'मां ! मेरे हाथ कांप रहे हैं, मेरे से यह नही होगा।'

देवी बोली—'तू जोर से आवाज कर।'

उसने कहा—'मा ! मेरी जीभ सूख रही है। मेरे से आवाज कैसे हो ?'

देवी ने फिर कहा—'यदि तू ऐसा नही कर सकता तो एक काम कर, मेरी इस मूर्ति के पीछे आकर बैठ जा।'

वह बोला—'मा ! मेरे पैर स्तब्ध हो गये। मैं यहा से खिसक नही सकता।'

देवी ने कहा —'जो इतना क्लीव है, पराक्रमहीन है, मैं ऐसे कायर व्यक्ति की सहायता नही कर सकती।'

सेठ ऐश्वर्य से सम्पन्न था, किन्तु पराक्रम से प्रणत।

ऐश्वर्य से प्रणत और पराक्रम से उन्नत

महाराणा प्रताप का 'भाट' दिल्ली दरबार मे पहुचा। बादशाह अकबर सभा मे उपस्थित थे। बहुत से मन्त्रीगण सामने बैठे थे। उसने बादशाह को सलाम की। खुश होने के बनिस्वत बादशाह गुस्से मे आ गया। इसका कारण था उसकी अशिष्टता। सामान्यतया नियम था कि जो भी व्यक्ति बादशाह को सलाम करे, वह अपनी पगडी उतार कर करे। प्रताप का भाट इसका अपवाद था। उसने वैसे नही किया।

बादशाह ने कहा—'तुमने शिष्टता का अतिक्रमण कैसे किया ?' उसने कहा—'बादशाह साहब ! आपको ज्ञात होना चाहिए, यह पगडी महाराणा प्रताप की दी हुई है। जब वे आपके चरणों में नही झुकते तो उनकी दी हुई पगड़ी कैसे झुक सकती है ?' सारी सभा स्तब्ध रह गई। उसके स्वाभिमान और अभय की सर्वत्र चर्चा होने लगी।

भाट ऐश्वर्य से प्रणत था, किन्तु उसकी नस-नस मे पराक्रम बोल रहा था। वह पराक्रम मे उन्नत था।

१६ (सू० १२)

ऋजुता और वक्रता के अनेक मानदण्ड हो सकते है। उदाहरणस्वरूप---

१. कुछ पुरुष वाणी से भी ऋजु होते है और व्यवहार से भी ऋजु होते है।
२ कुछ पुरुष वाणी से ऋजु होते है, किन्तु व्यवहार से वक्र होते है।
३. कुछ पुरुष वाणी से वक्र होते हैं, किन्तु व्यवहार से ऋजु होते हैं।
४. कुछ पुरुष वाणी से भी वक्र होते है और व्यवहार से भी वक्र होते हैं।

वक्र और वक्र

एक थी वृद्धा ! बुढ़ापे के कारण उसकी कमर झुक गई थी। वह गर्दन सीधी कर चल नहीं पाती थी। बच्चे उसे देख हँसते थे। कुछ शिष्ट और सभ्य व्यक्ति करुणा भी दिखाते थे। बुढ़िया चुपचाप सब सहन कर लेती, लेकिन जब वह लोगों की हँसी देखती तो उसे तरस कम नहीं आती, किन्तु लाचार थी।

एक दिन नारदजी घूमते हुए उधर आ निकले। मार्ग मे बुढ़िया से उनकी भेट हो गई। नारदजी को बड़ी दया

आई। उन्होंने कहा—'बुढिया ! तुम कहो तो मैं तुम्हारी 'कुबड' (कुब्जापन) ठीक कर दूं, जिससे तुम अच्छी तरह चल सको ?'

बुढ़िया ने कहा—'भगवन् ! आपकी दया है। इसके लिए मैं आपकी कृतज्ञ हूं। किन्तु मुझे मेरे इस कुब्जेपन का इतना दुःख नही है, जितना दुःख है पडोसियो का मेरे साथ मखौल करने का। मैं चाहती हू कि मेरे इन पड़ोसियो को आप कुबडे बना दे जिससे मैं देख लू कि इन पर क्या बीतती है ?'

नारदजी ने देखा कि इसका शरीर ही टेढा नही है, किन्तु मन भी टेढा है।

१७ (सू० २३)

विशेष जानकारी के लिए देखें—दसवेआलिय ७।१ से ९ तक के टिप्पण।

१८ (सू० २४)

प्रकृति से शुद्ध—जिस वस्त्र का निर्माण निर्मल तन्तुओ मे होता है, वह प्रकृति मे शुद्ध होता है।

स्थिति से शुद्ध—जो वस्त्र मैल से मलिन नही हुआ है, वह स्थिति से शुद्ध है।

प्रकृति और स्थिति की दृष्टि से शुद्धता का प्रतिपादन उदाहरणस्वरूप है। शुद्धता की व्याख्या अन्य दृष्टिकोणो से भी की जा सकती है, जैसे –

१. कुछ वस्त्र पहले भी शुद्ध होते है और बाद मे भी शुद्ध होते है।
२. कुछ वस्त्र पहले शुद्ध होते है, किन्तु बाद मे अशुद्ध होते है।
३. कुछ वस्त्र पहले अशुद्ध होते है, किन्तु बाद मे शुद्ध होते है।
४. कुछ वस्त्र पहले भी अशुद्ध होते है और बाद मे भी अशुद्ध होते है।

उक्त दृष्टान्त की तरह दार्ष्टान्तिक की व्याख्या भी अनेक दृष्टिकोणो मे की जा सकती है।

१९ (सू० ३६)

प्रस्तुत सूत्र की चतुर्भङ्गी मे प्रथम और चतुर्थ भग—सत्य और सत्यपरिणत तथा असत्य और असत्यपरिणत—घटित हो जाते है, किन्तु द्वितीय और तृतीय भङ्ग घटित नही होते। उनका आकार यह है – –

कुछ पुरुष सत्य, किन्तु असत्यपरिणत होते है।

कुछ पुरुष असत्य, किन्तु सत्यपरिणत होते हैं।

सत्य असत्यपरिणत और असत्य सत्यपरिणत कैसे हो सकता है ? सत्य की व्याख्या एक नय से की जाए तो निश्चित ही यह समस्या हमारे सामने उपस्थित होती है। यहा उसकी व्याख्या दो नयो से की गई है, इसलिए यथार्थ मे कोई जटिलता नही है। वृत्तिकार ने सत्य के दो अर्थ किए हैं। पहले अर्थ का सम्बन्ध वचन से है और दूसरे अर्थ का सम्बन्ध क्रिया से है। एक आदमी वस्तु या घटना जैसी होती है, उसी रूप मे उसका प्रतिपादन करता है। वह वचन की दृष्टि से सत्य होता है। वही आदमी प्रतिज्ञा करता है कि मैं अप्रामाणिक व्यवहार नही करूगा, किन्तु कुछ समय बाद वह अप्रामाणिक व्यवहार करने लग जाता है। वह अपनी प्रतिज्ञा-भग के कारण असत्यपरिणत हो जाता है। इस प्रकार वचन की दृष्टि से जो सत्य होता है, वह प्रतिज्ञा का अतिक्रमण करने के कारण क्रिया-पक्ष मे असत्यपरिणत हो जाता है।

इसी प्रकार एक आदमी वस्तु या घटना के विषय मे यथार्थभाषी नही होता, किन्तु प्रतिज्ञा करने पर उसका निष्ठा के साथ निर्वाह करता है। वह वचन-पक्ष मे असत्य होकर भी क्रिया-पक्ष मे सत्यपरिणत होता है।

इनकी अन्य नयो से भी मीमासा की जा सकती है। मनुष्य की प्रकृति और चिन्तन-प्रवाह की असंख्य धाराएँ है। अतः उन्हे किसी एक ही दिशा मे बाधा नही जा सकता।

२० (सू० ५५)

जो पुरुष सेवा करने वाले को उचित काल मे उचित फल देता है, वह आम्रफल की कलि के समान होता है।

जो पुरुष सेवा करने वाले को बहुत लम्बे समय के बाद फल देता है, वह ताडफल की कलि के समान होता है।

जो पुरुष सेवा करने वाले को तत्काल फल देता है, वह वल्लीफल की कलि के समान होता है।

जो पुरुष सेवा करने वाले का कोई उपकार नही करता केवल सुन्दर शब्द कह देता है, वह मेषशृङ्ग की कलि के समान होता है। क्योंकि मेषशृङ्ग की कलि का वर्ण सोने जैसा होता है, किन्तु उससे उत्पन्न होने वाला फल अखाद्य होता है। यहा मेषशृङ्ग शब्द का अर्थ ज्ञातव्य है—

मेषशृङ्ग के फल मेढ़े के सीग के समान होते है, इसलिए इसे मेष-विषाण कहा जाता है। वृत्ति मे इसका नाम आउलि बताया गया है—

मेषशृङ्गसमानफला वनस्पतिजाति, आउलिविशेष इत्यर्थः—स्थानांगवृत्ति, पत्र १७४।

२१ (सू० ५६)

जिस घुण के मुह की भेदन-शक्ति जितनी अल्प या अधिक होती है उसी के अनुसार वह त्वचा, छाल, काष्ठ या सार को खाता है।

जो भिक्षु प्रान्त आहार करता है, उसमे कर्मों के भेदन की शक्ति—सार को खाने वाले घुण के मुह के समान अधिक-तर होती है।

जो भिक्षु विगयो से परिपूर्ण आहार करता है, उसमे कर्मों के भेदन की शक्ति—त्वचा को खाने वाले घुण के मुह के समान अत्यल्प होती है।

जो भिक्षु रूखा आहार करता है, उसमे कर्मों के भेदन की शक्ति—काष्ठ को खाने वाले घुण के मुह के समान अधिक होती है।

जो भिक्षु दूध-दही आदि विगयो का आहार नही करता, उसमे कर्मों के भेदन की शक्ति—छाल को खाने वाले घुण के मुह के समान अल्प होती है।

२२ (सू० ५७)

तृणवनस्पति-कायिक (तणवणस्सइकाइया)

वनस्पतिकाय के दो प्रकार है— सूक्ष्म और बादर। बादर वनस्पतिकाय के दो प्रकार हैं—

१. प्रत्येकशरीरी।

२. साधारणशरीरी।

प्रत्येकशरीरी बादर वनस्पतिकाय के बारह प्रकार है[1]—

१ वृक्ष, २ गुच्छ, ३ गुल्म, ४ लता, ५ वल्ली, ६. पर्वग, ७. तृण, ८. वलय, ९ हरित, १०. औषधि, ११ जलरुह, १२. कुहण। इनमें तृण सातवां प्रकार है। सभी प्रकार की घास का तृण वनस्पति मे समावेश हो जाता है।

२३ (सू० ६०)

ध्यान शब्द की विशद जानकारी के लिए ध्यान-शतक द्रष्टव्य है। उसके अनुसार चेतना के दो प्रकार हैं—चल और स्थिर। चल चेतना को चित् और स्थिर चेतना को ध्यान कहा जाता है।[2]

---

१. प्रज्ञापना- पद १।

२. ध्यानशतक, २ : जं थिरमज्झवसाणं, झाणं जं चलं तयं चित्तं।

ध्यान के वर्गीकरण में प्रथम दो ध्यान—आर्त और रौद्र उपादेय नही है। अन्तिम दो ध्यान—धर्म्य और शुक्ल उपादेय है। आर्त और रौद्र ध्यान शब्द की समानता के कारण ही यहा निर्दिष्ट है।

२४-२७ (सू० ६१-६४)

प्रस्तुत चार सूत्रों मे आर्त और रौद्र ध्यान के स्वरूप तथा उनके लक्षण निर्दिष्ट है। आर्त ध्यान मे कामाशंसा और भोगाशसा की प्रधानता होती है, और रौद्रध्यान मे क्रूरता की प्रधानता होती है।

ध्यानशतक मे रौद्र ध्यान के कुछ लक्षण भिन्न प्रकार से निर्दिष्ट है।

—स्थानांग —	—ध्यानशतक—
उत्सन्नदोष	उत्सन्नदोष
बहुदोष	बहुलदोष
अज्ञानदोष	नानाविधदोष
आमरणान्तदोष	आमरणदोष

इनमे दूसरे और चौथे प्रकार मे केवल शब्द भेद है। तीसरा प्रकार सर्वथा भिन्न है। नानाविधदोष का अर्थ है—चमड़ी उखेड़ने, आखें निकालने आदि हिंसात्मक कार्यों मे बार-बार प्रवृत्त होना। हिसाजनित नाना विध क्रूर कर्मों मे प्रवृत्त होना अज्ञानदोष से भी फलित होता है। अज्ञान शब्द इस तथ्य को प्रगट करता है कि कुछ लोग हिंसा प्रतिपादक शास्त्रो से प्रेरित होकर धर्म या अभ्युदय के लिए नाना विध क्रूर कर्मों मे प्रवृत्त होते है।

२८-३५ (सू० ६५-७२)

इन आठ सूत्रो मे धर्म्य और शुक्ल ध्यान के ध्येय, लक्षण, आलम्बन और अनुप्रेक्षाए निर्दिष्ट है।

धर्म्यध्यान—

धर्म्यध्यान के चार ध्येय बतलाए गए है। ये अन्य ध्येयो के सग्राहक या सूचक है। ध्येय अनत हो सकते है। द्रव्य और उनके पर्याय अनन्त है। जितने द्रव्य और पर्याय है, उतने ही ध्येय है। उन अनन्त ध्येयो का उक्त चार प्रकारो मे समासीकरण किया गया है।

आज्ञाविचय प्रथम ध्येय है। इसमे प्रत्यक्ष-ज्ञानी द्वारा प्रतिपादित सभी तत्त्व ध्याता के लिए ध्येय बन जाते है। ध्यान का अर्थ तत्त्व की विचारणा नही है। उसका अर्थ है तत्त्व का साक्षात्कार। धर्म्यध्यान करने वाला आगम मे निरूपित तत्त्वो का आलम्बन लेकर उनका साक्षात्कार करने का प्रयत्न करता है।

दूसरा ध्येय है अपायविचय। इसमे द्रव्यों के सयोग और उनसे उत्पन्न विकार या वैभाविक पर्याय ध्येय बनते है।

तीसरा ध्येय है विपाकविचय। इसमें द्रव्यो के काल, सयोग आदि सामग्रीजनित परिपाक, परिणाम या फल ध्येय बनते है।

चौथा ध्येय है सस्थानविचय। यह आकृति-विषयक आलम्बन है। इसमे एक परमाणु से लेकर विश्व के अशेष द्रव्यो के संस्थान ध्येय बनते है।

धर्म्यध्यान करने वाला उक्त ध्येयो का आलम्बन लेकर परोक्ष को प्रत्यक्ष की भूमिका मे अवतरित करने का अभ्यास करता है। यह अध्ययन का विषय नहीं है, किन्तु अपने अध्यवसाय की निर्मलता से परोक्ष विषयो के दर्शन की साधना है।

ध्यान से पूर्व ध्येय का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है। उस ज्ञान की प्रक्रिया मे चार लक्षणो और चार आलम्बनो का निर्देश किया गया है।[1]

---

1. क—लक्षणों की जानकारी के लिए देखे—स्थानाग १०।१०४ का टिप्पण।

वृत्तिकार ने अवगाढ़रुचि का अर्थ द्वादशांगी का अवगाहन किया है—स्थानांग वृत्ति, पत्र १७६ :

अवगाहनमवगाढम्—द्वादशाङ्गावगाहो विस्तराधिगम इति सम्भाव्यते तेन रुचिः।

तत्त्वार्थवार्तिक में भी इसका यही अर्थ मिलता है। देखे—उत्तराध्ययन २८।१६ का टिप्पण।

ख—आलम्बनो की जानकारी के लिए देखें—स्थानांग ५।२२०

ध्यान की योग्यता प्राप्त करने के लिए चित्त की निर्मलता आवश्यक होती है, अहंकार और ममकार का विसर्जन आवश्यक होता है। इस स्थिति की प्राप्ति के लिए चार अनुप्रेक्षाओं का निर्देश किया गया है। एकत्वभावना का अभ्यास करने वाला अहं के पाश से मुक्त हो जाता है। अनित्यभावना का अभ्यास करने वाला ममकार के पाश से मुक्त हो जाता है।

धर्म्यध्यान का शब्दार्थ—

जो धर्म से युक्त होता है, उसे धर्म्य कहा जाता है।[1] धर्म का एक अर्थ है आत्मा की निर्मल परिणति—मोह और क्षोभरहित परिणाम[2]। धर्म का दूसरा अर्थ है—सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र।[3] धर्म का तीसरा अर्थ है—वस्तु का स्वभाव[4]। इन अथवा इन जैसे अन्य अर्थों मे प्रयुक्त धर्म को ध्येय बनाने वाला ध्यान धर्म्यध्यान कहलाता है।

धर्म्यध्यान के अधिकारी—

अविरत, देशविरत, प्रमत्तसंयति और अप्रमत्तसंयति—इन सबको धर्म्यध्यान करने की योग्यता प्राप्त हो सकती है।

शुक्लध्यान के अधिकारी—

शुक्लध्यान के चार चरण है। उनमे प्रथम दो चरणों—पृथक्त्ववितर्क-सविचारी और एकत्ववितर्क-अविचारी—के अधिकारी श्रुतकेवली (चतुर्दशपूर्वी) होते है।[5] इस ध्यान मे सूक्ष्म द्रव्यों और पर्यायो का आलम्बन लिया जाता है, इसलिए सामान्य श्रुतधर इसे प्राप्त नही कर सकते।

१ पृथक्त्ववितर्क-सविचारी—

जब एक द्रव्य के अनेक पर्यायों का अनेक दृष्टियो—नयो से चिन्तन किया जाता है और पूर्व-श्रुत का आलम्बन लिया जाता है तथा शब्द से अर्थ मे और अर्थ से शब्द मे एव मन, वचन और काया मे से एक-दूसरे मे संक्रमण नही किया जाता, शुक्लध्यान की उस स्थिति को पृथक्त्ववितर्क-सविचारी कहा जाता है।

२. एकत्ववितर्क-अविचारी—

जब एक द्रव्य के किसी एक पर्याय का अभेद दृष्टि से चिन्तन किया जाता है और पूर्व-श्रुत का आलम्बन लिया जाता है तथा जहा शब्द, अर्थ एव मन, वचन, काया मे से एक-दूसरे मे संक्रमण नही किया जाता, शुक्लध्यान की उस स्थिति को एकत्ववितर्क-अविचारी कहा जाता है।

३. सूक्ष्मक्रिय-अनिवृत्ति—

जब मन और वाणी के योग का पूर्ण निरोध हो जाता है और काया के योग का पूर्ण निरोध नही होता—श्वासोच्छ्वास जैसी सूक्ष्म क्रिया शेष रहती है, उस अवस्था को सूक्ष्मक्रिय कहा जाता है। इसका निवर्तन-ह्रास नही होता, इसलिए यह अनिवृत्ति है।

४. समुच्छिन्नक्रिय-अप्रतिपाति—

जब सूक्ष्म क्रिया का भी निरोध हो जाता है, उस अवस्था को समुच्छिन्नक्रिय कहा जाता है। इसका पतन नही होता, इसलिए यह अप्रतिपाति है।

उपाध्याय यशोविजयजी ने हरिभद्रसूरिकृत योगबिन्दु के आधार पर शुक्लध्यान के प्रथम दो चरणो की तुलना

---

१. तत्त्वार्थभाष्य, ६।२८ : धर्मादनपेत धर्म्यम्।

२ तत्त्वानुशासन, ५२, ५५.

आत्मन. परिणामो यो, मोह-क्षोभ-विवर्जित.।
स च धर्मोऽनपेत यत्तस्माद्धर्म्यमित्यपि ॥
यद्वोत्तमक्षमादि स्याद्धर्मो दशतय. पर:।
ततोऽनपेत यद्ध्यानं. तद्वा धर्म्यमितीरितम् ॥

३ तत्त्वानुशासन, ५१ :

सद्दृष्टि-ज्ञान-वृत्तानि, धर्मं धर्मेश्वरा विदु:।
तस्माद्यदनपेत हि, धर्म्यं तद्ध्यानमभ्यधु: ॥

४. तत्त्वानुशासन, ५३, ५४ :

शून्यीभवदिद विश्व, स्वरूपेण धृतं यत.।
तस्माद्वस्तुस्वरूप हि, प्राहुर्धर्मं महर्षय: ॥
ततोऽनपेतं यज्ज्ञानं, तद्धर्म्यध्यानमिष्यते।
धर्मो हि वस्तुयाथात्म्यमित्यार्षेऽभ्यभिधानत. ॥

५. तत्त्वार्थसूत्र, ६।३७ : शुक्ले चाद्ये पूर्वविद.।

संप्रज्ञातसमाधि से की है।[1] सप्रज्ञातसमाधि के चार प्रकार हैं—वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत।[2] उन्होंने शुक्लध्यान के शेष दो चरणो की तुलना असप्रज्ञातसमाधि से की है।[3]

प्रथम दो चरणो मे आए हुए वितर्क और विचार शब्द जैन, योगदर्शन और बौद्ध तीनो की ध्यान-पद्धतियो मे समान रूप से मिलते हैं। जैन साहित्य के अनुसार वितर्क का अर्थ श्रुतज्ञान और विचार का अर्थ सक्रमण है।[4] वह तीन प्रकार का होता है—

१. अर्थविचार—

अभी द्रव्य ध्येय बना हुआ है, उसे छोड़ पर्याय को ध्येय बना लेना। पर्याय को छोड फिर द्रव्य को ध्येय बना लेना अर्थ का संक्रमण है।

२. व्यञ्जनविचार—

अभी एक श्रुतवचन ध्येय बना हुआ है, उसे छोड दूसरे श्रुतवचन को ध्येय बना लेना। कुछ समय बाद उसे छोड किसी अन्य श्रुतवचन को ध्येय बना लेना व्यञ्जन का सक्रमण है।

३. योगविचार—

काययोग को छोडकर मनोयोग का आलम्बन लेना, मनोयोग को छोडकर फिर काययोग का आलम्बन लेना योग-संक्रमण है।

यह सक्रमण श्रम को दूर करने तथा नए-नए ज्ञान-पर्यायो को प्राप्त करने के लिए किया जाता है, जैसे—हम लोग मानसिक ध्यान करते हुए थक जाते है, तब कायिकध्यान (कायोत्सर्ग, शरीर का शिथिलीकरण) प्रारम्भ कर देते है। उसे समाप्त कर फिर मानसिकध्यान प्रारम्भ कर देते हैं। पर्यायो के सूक्ष्मचिन्तन से थककर द्रव्य का आलम्बन ले लेते है। इसी प्रकार श्रुत के एक वचन से ध्यान उचट जाए तब दूसरे वचन को आलम्बन बना लेते है। नई उपलब्धि के लिए ऐसा करते है।

योगदर्शन के अनुसार वितर्क का अर्थ स्थूलभूतो का साक्षात्कार और विचार का अर्थ सूक्ष्मभूतो और तन्मात्राओं का साक्षात्कार है।[5]

बौद्धदर्शन के अनुसार वितर्क का अर्थ है आलम्बन मे स्थिर होना और विकल्प का अर्थ है उस (आलम्बन) मे एकरस हो जाना।[6]

इन तीनो परम्पराओ मे शब्द-साम्य होने पर भी उनके सदर्भ पृथक्-पृथक् है।

आचार्य अकलक ने ध्यान के परिकर्म (तैयारी) का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। उन्होने लिखा है[7]—

"उत्तमशरीरसहनन होकर भी परीषहो के सहने की क्षमता का आत्मविश्वास हुए बिना ध्यान-साधना नही हो सकती। परीषहो की बाधा सहकर ही ध्यान प्रारम्भ किया जा सकता है। पर्वत, गुफा, वृक्ष की खोह, नदी, तट, पुल, श्मशान, जीर्णउद्यान और शून्यागार आदि किसी स्थान मे व्याघ्र, सिह, मृग, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि के अगोचर, निर्जन्तु

---

१. जैनदृष्ट्यापरीक्षित पातञ्जलयोगदर्शनम्, १।१७, १८ :

तत्र पृथक्त्ववितर्कसविचारैकत्ववितर्काविचाराख्य शुक्लध्यान भेदद्वये सप्रज्ञात: समाधिर्वृत्त्यर्थानां सम्यग्ज्ञानात। तदुक्तम्—समाधिरेष एवान्यै सप्रज्ञातोऽभिधीयते। सम्यक् प्रकर्षरूपेण वृत्त्यर्थज्ञानतस्तथा। (योगबिन्दु ४१८)

२. पातञ्जलयोगदर्शन, १।१७ :

वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सप्रज्ञात।

३. जैनदृष्ट्यापरीक्षित पातञ्जलयोगदर्शनम्, १।१७,१८

क्षपकश्रेणिपरिसमाप्तौ केवलज्ञानलाभस्त्वसंप्रज्ञात: समाधि:, भावमनोवृत्तीना ग्राह्यग्रहणाकारशालिनीनामवग्रहादि क्रमेण तत्र सम्यक् परिज्ञानाभावात्। अतएव भावमनसा सज्ञाऽभवाद् द्रव्यमनसा च तत्सद्भावात् केवली नो सज्ञीत्यु-च्यते। तदिदमुक्त योगविन्दौ—

असप्रज्ञात एषोऽपि, समाधिर्गीयते परै।
निरुद्धाशेषवृत्त्यादि—तत्स्वरूपानुवेधत॥
धर्ममेघोऽमृतात्मा च, भवशत्रु. शिवोदय।
सत्त्वानन्द परश्चेति, योज्योऽत्रैवार्थयोगत॥
(योगबिन्दु ४२०,४२१)

४ तत्त्वार्थसूत्र, ९।४४ :

विचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसक्रान्ति।

५. पातञ्जलयोगदर्शन, १।४२-४४।

६ विशुद्धिमार्ग, भाग १, पृष्ठ १३४।

७. तत्त्वार्थवार्तिक, ९।४४।

समशीतोष्ण, अतिवायुरहित, वर्षा, आतप आदि से रहित, तात्पर्य यह कि सब तरफ से बाह्य-आभ्यन्तर बाधाओ से शून्य और पवित्र भूमि पर सुखपूर्वक पल्यङ्कासन मे बैठना चाहिए। उस समय शरीर को सम, ऋजु और निश्चल रखना चाहिए। बाएं हाथ पर दाहिना रखकर न खुले हुए और न बन्द, किन्तु कुछ खुले हुए दातो पर दातो को रखकर, कुछ ऊपर किये हुए सीधी कमर और गम्भीर गर्दन किये हुए प्रसन्न मुख और अनिमिष स्थिर सौम्यदृष्टि होकर निद्रा, आलस्य, कामराग, रति, अरति, शोक, हास्य, भय, द्वेष, विचिकित्सा आदि को छोड़कर मन्द-मन्द श्वासोच्छ्वास लेने वाला साधु ध्यान की तैयारी करता है। वह नाभि के ऊपर हृदय, मस्तक या और कही अभ्यासानुसार चित्तवृत्ति को स्थिर रखने का प्रयत्न करता है। इस तरह एकाग्रचित्त होकर राग, द्वेष, मोह का उपशम कर कुशलता से शरीर क्रियाओ का निग्रह कर मन्द श्वासोच्छ्वास लेता हुआ निश्चित लक्ष्य और क्षमाशील हो बाह्य-आभ्यन्तर द्रव्य पर्यायो का ध्यान करता हुआ वितर्क की सामर्थ्य से युक्त हो अर्थ और व्यञ्जन तथा मन, वचन, काय की पृथक्-पृथक् संक्रान्ति करता है। "फिर शक्ति की कमी से योग से योगान्तर और व्यञ्जन से व्यञ्जनान्तर मे सक्रमण करता है।" धर्म्यध्यान की विशेष जानकारी के लिए देखे— 'अतीत का अनावरण' (पृष्ठ ७६-८६) ध्यान का प्रथम सोपान —धर्म्यध्यान नामक लेख।

३६ क्रोध (सू० ७६)

क्रोध की उत्पत्ति के निमित्तो के विषय मे वर्तमान मनोविज्ञान की जानकारी जितनी आकर्षक है, उतनी ही ज्ञान-वर्धक है। कुछ प्रयोगो का विवरण इस प्रकार है- --

व्यक्ति जो कुछ भी करता है, वह चेतन अथवा अवचेतन मस्तिष्क के निर्देश पर ही होता है। साधारणतया हम जब भी मस्तिष्क की बात करते है, हमारा तात्पर्य चेतन मस्तिष्क से ही होता है, तार्किक बुद्धि से। पर क्रोध और हिंसा के बीज इस चेतन मस्तिष्क से नीचे कही और गहरे हुआ करते हैं। वैज्ञानिको का कहना है कि चेतन मस्तिष्क—सेरेबियन कोरटेक्स तो मस्तिष्क के सबसे ऊपर की परत है, जो मनुष्य के विकास की अभी हाल की घटना है। इसके बहुत नीचे 'आदिम मस्तिष्क' है -हिंसा और क्रोध की जन्मभूमि।

और वैज्ञानिकों का यह कथन जानवरो पर किये गये अनेकानेक परीक्षणो का परिणाम है। मस्तिष्क के वे विशेष बिन्दु खोजे जा चुके है, जहा क्रोध का जन्म होता है। इस दिशा मे प्रयोग करने वालो मे डाक्टर जोस एम० आर० डेलगाडो अग्रणी है। उन्होंने अपने परीक्षणो द्वारा दूर शात बैठे बन्दरों को विद्युत्धारा से उनके उन विशेष बिन्दुओं को छूकर लडवाकर दिखला दिया है। सचमुच, यह सब जादू का-सा लगता है। कल्पना कीजिए —सामने एक बडे से पिंजडे मे एक बदर बैठा केला खा रहा है और आप बिजली का बटन दबाते है—अरे यह क्या, बदर तो केला छोड़कर पिजड़े की सलाखो पर झपट पडा है। दात किटकिटा रहा है। हा, हिंसक हो गया है। और यह प्रयोग डाक्टर डेलगाडो ने मस्तिष्क के उस विशेष बिन्दु को विद्युत्धारा द्वारा उत्तेजित करके किया है। यही क्यो, उनके साड वाले प्रयोग ने तो कमाल ही कर दिखाया था। क्रोधित साड उनकी ओर झपटा, और उन तक पहुंचने से पहले ही शात होकर रुक गया। उन्होने विद्युत्धारा से साड का क्रोध शात कर दिया था।

पर आदमी जानवर से कुछ भिन्न होता है। 'हम तभी हिंसक होते है, जब हम हिंसक होना चाहते है'। क्योकि साधारण स्थितियो मे ही हम अपनी भावनाओ पर नियंत्रण रखते है। पर कुछ लोगो का यह नियत्रण काफी कमजोर होता है। प्रसिद्ध मनोविज्ञानशास्त्री डाक्टर इर्विन तथा डाक्टर मार्क के अनुसार, 'ऐसे व्यक्तियों के मस्तिष्क के आदिम हिस्से मे कुछ विशेष घटता रहता है।'[1]

३७-३८ आभोगनिर्वर्तित, अनाभोगनिर्वर्तित (सू० ८८)

आभोगनिर्वर्तित—जो मनुष्य क्रोध के विपाक आदि को जानता हुआ क्रोध करता है, उसका क्रोध आभोगनिर्वर्तित

---

१. नवभारत टाइम्स, बम्बई, ११ मई, १९७०।

कहलाता है। यह स्थानांग के वृत्तिकार अभयदेव सूरि की व्याख्या है।[1] आचार्य मलयगिरि ने इसकी व्याख्या भिन्न प्रकार से की है। उनके अनुसार—एक मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य के अपराध को भलीभांति जान लेता है। उसे अपराध मुक्त करने के लिए वह सोचता है कि सामने वाला व्यक्ति नम्रतापूर्वक कहने से मानने वाला नही है। उसे क्रोधपूर्ण मुद्रा ही पाठ पढा सकती है। इस विचार से वह जान-बूझकर क्रोध करता है। इस प्रकार का क्रोध आभोगनिर्वर्तित-कहलाता है।[2]

आचार्य मलयगिरि की व्याख्या अधिक स्पष्ट और हृदयग्राही है। इसकी व्याख्या अन्य नयो से भी की जा सकती है। कोई मनुष्य अपने विषय मे किसी दूसरे के द्वारा किए गए प्रतिकूल व्यवहार को नही जान लेता तब तक उसे क्रोध नही आता। उसकी यथार्थता जान लेने पर उसके मन में क्रोध उभर आता है। यह आभोगनिर्वर्तित क्रोध है—स्थिति का यथार्थ बोध होने पर निष्पन्न होने वाला क्रोध है।

अनाभोगनिर्वर्तित क्रोध—जो मनुष्य क्रोध के विपाक आदि को नही जानता हुआ क्रोध करता है, उसका क्रोध अनाभोगनिर्वर्तित क्रोध कहलाता है।[3]

मलयगिर के अनुसार—जो मनुष्य किसी विशेष प्रयोजन के बिना गुण-दोष के विचार से शून्य होकर प्रकृति की परवशता से क्रोध करता है, उसका क्रोध अनाभोगनिर्वर्तित क्रोध कहलाता है।[4]

कभी-कभी ऐसा भी घटित होता है कि कोई मनुष्य स्थिति की यथार्थता को नही जानने के कारण क्रुद्ध हो उठता है। कल्पना या सदेहजनित क्रोध इसी कोटि के होते है।

कुछ लोगो को अपने वैभव आदि की पूरी जानकारी नही होती। फलतः वे घमड भी नही करते। उसकी वास्तविक जानकारी प्राप्त होने पर उनमे अभिमान का भाव उभर आता है। कुछ लोगो के पास अभिमान करने जैसा कुछ नही होता, फिर भी वे अपनी तुच्छ सपदा को बहुत मानते हुए अभिमान करते रहते है। उन्हे विश्व की विपुल सपदा का ज्ञान ही नही होता। ये दोनो प्रकार के अभिमान क्रमशः आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित होते है।

माया और लोभ की व्याख्या भी अनेक नयो से कारणीय है।

३९. प्रतिमा (सू० ९६)

देखे २।२४३-२४८ का टिप्पण।

४०. (सू० १४७)

वृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र मे प्रतिपादित भृतक का अर्थ निशीथभाष्य के आधार पर किया है।[5] यात्राभृतक के विषय मे भाष्यकार ने एक सूचना दी है, जैसे—कुछ आचार्यों का मत है कि यात्राभृतको से यात्रा मे साथ चलना और कार्य करना—ये दोनों बातें निश्चित की जाती थी।

उच्चत्त और कब्बाल ये दोनो देशीय शब्द हैं। भाष्यकार ने कब्बाल का अर्थ ओड आदि किया है।[6] इस जाति के लोग वर्तमान मे भी भूमिखनन का कार्य करते है।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र १८२ : आभोगो—ज्ञान तेन निर्वर्तितो यज्जानन् कोपविपाकादि कुप्यति।

२. प्रज्ञापना, पद १४, मलयगिरिवृत्ति, पत्र २९१ : यदा परस्यापराध सम्यगवबुध्य कोपकारण च व्यवहारत पुष्टमवलम्ब्य नान्यथास्य शिक्षोपजायते इत्याभोग्य कोप च विधत्ते तदा स कोपो आभोगनिर्वर्तितः।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र १८३ : इतरस्तु यदजानन्निति।

४. प्रज्ञापना, पद १४, मलयगिरी वृत्ति, पत्र २९१ : यदा त्वेनमेव तथाविधमुहूर्तवशाद् गुणदोषविचारणाशून्यः परवशीभूय कोप कुरुते तदा स कोपोऽनाभोगनिर्वर्तित।

५ स्थानाग वृत्ति, पत्र १९२;

६ निशीथभाष्य, ३७१९, ३७२० :

दिवसभयओ उ घिप्पत्ति, छिण्णेण धणेण दिवसदेवसियं।
जत्ता उ होति गमण, उभयं वा एत्तियधणेण॥
कब्बाल उड्डमादी, हत्थमितं कम्ममेत्तिय धणेणं।
एच्चिरकालोच्चत्ते, कायव्व कम्म जं बेंति॥

४१. (सू० १९०)

प्रतिसंलीनता बारह प्रकार के तपों में एक तप है। औपपातिक सूत्र में उसके चार प्रकार बतलाए गए हैं—

१. इंद्रियप्रतिसंलीनता ३. योगप्रतिसंलीनता

२. कषायप्रतिसंलीनता ४. विविक्तशयनासनसेवन[1]।

प्रस्तुत सूत्र मे कषायप्रतिसंलीनता के साधक व्यक्ति का प्रतिपादन किया गया है, प्रतिसंलीनता का अर्थ है —निर्दिष्ट वस्तु के प्रतिपक्ष मे लीन होने वाला। औपपातिक के अनुसार कषायप्रतिसंलीनता का अर्थ इस प्रकार फलित है[2]—

१. क्रोधप्रतिसंलीन—क्रोध के उदय का निरोध और उदयप्राप्त क्रोध को विफल करने वाला।

२. मानप्रतिसंलीन—मान के उदय का निरोध और उदयप्राप्त मान को विफल करने वाला।

३. मायाप्रतिसंलीन—माया के उदय का निरोध और उदयप्राप्त माया को विफल करने वाला।

४. लोभप्रतिसंलीन—लोभ के उदय का निरोध और उदयप्राप्त लोभ को विफल करने वाला।

४२. (सू० १९२)

प्रस्तुत सूत्र मे योगप्रतिसंलीनता के साधक व्यक्ति के तीन प्रकारों तथा इंद्रियप्रतिसंलीनता के साधक का निर्देश किया गया है।

औपपातिक के अनुसार इनका अर्थ इस प्रकार है—

१. मनप्रतिसंलीन—अकुशल मन का निरोध और कुशल मन का प्रवर्तन करने वाला।

२. वचनप्रतिसंलीन—अकुशल वचन का निरोध और कुशल वचन का प्रवर्तन करने वाला।

३. कायप्रतिसंलीन—कूर्म की भांति शारीरिक अवयवों का संगोपन और कुशल काया की प्रवृत्ति करने वाला।

४. इंद्रियप्रतिसंलीन—पांचों इंद्रियों के विषयों के प्रचार का निरोध तथा प्राप्त विषयों पर राग-द्वेष का निग्रह करने वाला।[3]

४३-४७ (सू० २४१-२४५)

प्रस्तुत आलापक मे विकथा का सांगोपांग निरूपण किया गया है। कथा का अर्थ है—वचन-पद्धति। जिस कथा से संयम मे बाधा उत्पन्न होती है—ब्रह्मचर्य प्रतिहत होता है, स्वादवृत्ति बढ़ती है, हिंसा को प्रोत्साहन मिलता है और राजनीतिक दृष्टिकोण का निर्माण होता है, उसका नाम विकथा है।[4]

वृत्तिकार ने कुछ श्लोक उद्धृत कर विकथा के स्वरूप को स्पष्ट किया है। जातिकथा के प्रसंग मे निम्न श्लोक उद्धृत है—

धिग् ब्राह्मणीर्धवाभावे, या जीवन्ति मृता इव।
धन्या मन्ये जने शूद्री:, पतिलक्षेऽप्यनिन्दिता ॥

ब्राह्मणी को धिक्कार है, जो पति के मरने पर जीती हुई भी मृत के समान है। मैं शूद्री को धन्य मानता हूं जो लाख पतियों का वरण करने पर भी निन्दित नहीं होती।

---

१. ओवाइयं, सूत्र ३७।

२. ओवाइयं, सूत्र ३७।

३. ओवाइयं, सूत्र ३७।

४. स्थानांगवृत्ति, पत्र १९९ :
विरुद्धा संयमबाधकत्वेन कथा—वचनपद्धतिर्विकथा।

कुल कथा—

अहो चौलुक्यपुत्रीणा, साहस जगतोऽधिकम् ।
पत्युर्मृत्यौ विशन्त्यग्नौ, या. प्रेमरहिता अपि ।।

चौलुक्य पुत्रियो का साहस संसार मे सबसे अधिक और विस्मयकारी है, जो पति की मृत्यु होने पर प्रेम के बिना भी अग्नि मे प्रवेश कर जाती है।

रूपकथा—

चन्द्रवक्त्रा सरोजाक्षी, सद्गी. पीनघनस्तनी ।
कि लाटी नो मता साऽस्य, देवानामपि दुर्लभा ।।

चन्द्रमुखी, कमलनयना, मधुर स्वर वाली और पुष्ट स्तन वाली लाट देश की स्त्री क्या उसे सम्मत नहीं है ? जो देवो के लिए भी दुर्लभ है।

नेपथ्य कथा—

धिग् नारी रौदीच्या, बहुवसनाच्छादितागुललिकत्वात् ।
यद् यौवन न यूना चक्षुर्मोदाय भवति सदा ।।

उत्तराचल की नारी को धिक्कार है, जो अपने शरीर को बहुत सारे वस्त्रो से ढंक लेती है। उसका यौवन युवकों के चक्षुओ को आनंद नही देता।

भाष्यकार ने स्त्री-कथा से होने वाले निम्न दोषो का निर्देश किया है[1]—

१ स्वय के मोह की उदीरणा।

२. दूसरो के मोह की उदीरणा।

३. जनता मे अपवाद।

४ सूत्र और अर्थ के अध्ययन की हानि।

५. ब्रह्मचर्य की अगुप्ति।

६. स्त्री प्रसग की सभावना।

भक्तकथा करने से निम्न निर्दिष्ट दोष प्राप्त है[2]—

१. आहार सम्बन्धी आसक्ति।

२. अजितेन्द्रियता।

३ औदरिकवाद—लोगो द्वारा पेटु कहलाना।

देशकथा करने से निम्न निर्दिष्ट दोष प्राप्त होते है[3]—

१ राग द्वेष की उत्पत्ति।

२. स्वपक्ष और परपक्ष सम्बन्धी कलह।

३. उसके द्वारा कृत प्रशसा से आकृष्ट होकर दूसरो का उस देश मे जाना।

राजकथा करने से निम्न निर्दिष्ट दोष प्राप्त होते हैं[4]—

१. गुप्तचर, चोर आदि होने की आशका।

२ भुक्तभोगी अथवा अभुक्तभोगी का प्रव्रज्या मे पलायन।

३. आशंसाप्रयोग—राजा आदि बनने की आकाक्षा।

---

१. निशीथ भाष्य, गाथा १२१

आय-पर-मोहुदीरणा, उड्डाहो सुत्तमादिपरिहाणी।
बंभव्वते अगुत्ती, पसगदोसा य गमणादी ।।

२. निशीथभाष्य, गाथा १२४

आहारमंतरेणाति, गहितो जायई स इगाल।
अजितिंदिया ओयरिया, वातो व अणुण्णदोसा तु ।।

३. निशीथभाष्य, गाथा १२७

रागद्दोसुप्पत्ती, सपक्ख-परपक्खओ य अधिकरणं।
बहुगुण इमो त्ति देसो, सोतु गमणं च अण्णेसिं ।।

४. निशीथभाष्य, गाथा १३०

चारिय चोराहिमरा-हितमारित-संक-कातुकामा वा।
भुत्ताभुत्तोहावणं करेज्ज वा आसंसपयोगं ।।

इस कथा चतुष्टय मे आसक्त रहने वाला मुनि आत्मलीन नहीं हो पाता। फलतः वह प्रत्यक्ष ज्ञान की उपलब्धि से वंचित रहता है।[1]

४८-५२ (सू० २४६-२५०)

प्रस्तुत आलापक में कथा का विशद वर्णन किया गया है। आक्षेपिणी आदि कथा चतुष्टय की व्याख्या दशवैकालिक-निर्युक्ति, मूलाराधना, दशवैकालिक की व्याख्याओ, स्थानांगवृत्ति, धवला आदि अनेक ग्रन्थो मे मिलती है।[2]

दशवैकालिक निर्युक्ति और मूलाराधना में इस कथा-चतुष्टय की व्याख्या समान है। स्थानांग वृत्तिकार ने आक्षेपणी की व्याख्या दशवैकालिक निर्युक्ति के आधार पर की है। यह वृत्ति मे उद्धृत निर्युक्ति गाथा से स्पष्ट होता है। धवला मे इसकी व्याख्या कुछ भिन्न प्रकार से मिलती है। उसके अनुसार—नाना प्रकार की एकांत दृष्टियो और दूसरे समयो की निराकरणपूर्वक शुद्धि कर छह द्रव्यो और नव पदार्थों का प्ररूपण करने वाली कथा को आक्षेपणी कहा जाता है। इसमे केवल तत्त्ववाद की स्थापना प्रधान है।[3] धवलाकार ने एक श्लोक उद्धृत किया है उससे भी यही अर्थ पुष्ट होता है।[4]

प्रस्तुत आलापक में आक्षेपणी के चार प्रकार निर्दिष्ट हैं। उनसे दशवैकालिक निर्युक्ति और मूलाराधना की व्याख्या ही पुष्ट होती है।

हमने आचार, व्यवहार आदि का अनुवाद वृत्ति के आधार पर किया है। इन नामो के चार शास्त्र भी मिलते है। कुछ आचार्य इन्हे यहा शास्त्रवाचक मानते हैं। वृत्तिकार ने स्वयं इसका उल्लेख किया है।[5] विशेष विवरण के लिए देखे—दसवेआलियं, ८।४६ का टिप्पण।

विक्षेपणी की व्याख्या मे कोई भिन्नता नही है।

स्थानाग वृत्तिकार ने संवेजनी (संवेदनी) की जो व्याख्या की है, वह दशवैकालिक निर्युक्ति आदि ग्रन्थो की व्याख्या से भिन्न है। उनके अनुसार इसमे वैक्रिय-शुद्धि तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्र की शुद्धि का कथन होता है।[6]

धवला के अनुसार इसमे पुण्यफल का कथन होता है।[7] यह उक्त अर्थ से भिन्न नही है।

निर्वेदनी की व्याख्या मे कोई भिन्नता लक्षित नही होती। धवलाकार के अनुसार इसमे पाप फल का कथन होता है।[8]

प्रस्तुत आलापक मे निर्वेदनी कथा के आठ विकल्प किए गए हैं। उनसे यह फलित होता है कि पुण्य और पाप दोनो के फलो का कथन करना इस कथा का विषय है। इससे स्थानाग वृत्तिकार कृत संवेजनी की व्याख्या की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

---

१. स्थानांग, ४।२५४।

२. क—दशवैकालिकनिर्युक्ति, गाथा १९५-२०१।
ख—मूलाराधना, ६५६,६५७।
ग—षट्खण्डागम, खंड १, पृष्ठ १०४, १०५।

३. षट्खण्डागम, भाग १, पृष्ठ १०५ :
तत्थ अक्खेवणी णाम छद्दव्व-णव-पयत्थाण सरूवं दिगंतर-समयांतर-णिराकरणं सुद्धिं करेंती परूवेदि।

४. षट्खण्डागम, भाग १, पृ० १०६ :
आक्षेपणीं तत्त्वविधानभूतां विक्षेपणी तत्त्वदिगन्तशुद्धिम्।
संवेगिनीं धर्मफलप्रपञ्चां निर्वेगिनीं चाह कथां विरागाम्॥

५. स्थानांगवृत्ति, पत्र २००: अन्ये त्वभिदधति—आचारादयो ग्रन्था एव परिगृह्यन्ते, आचाराद्यभिधानादिति।

६. क—दशवैकालिकनिर्युक्ति, गाथा २०० :
वीरिय विउव्वणिड्ढी, नाण चरण दसणाण तह इड्ढी।
उवइस्सइ खलु जहियं, कहाइ संवेयणीइ रसो॥
ख—मूलाराधना, ६५७ : संवेयणी पुण कहा, णाणचरित्त-तववीरिय इड्ढिगदा।

७. षट्खंडागम, भाग १, पृष्ठ १०५ : संवेयणी णाम पुण्ण-फल-संकहा। काणि पुण्ण-फलानि? तित्थयर-गणहर-रिसि-चक्कवट्टि-बलदेव-वासुदेव-सुर-विज्जाहरिद्धीओ।

८. षट्खंडागम, भाग १, पृष्ठ १०५ : णिव्वेयणी णाम-पाव-फल-संकहा। काणि पाव-फलाणी? णिरय-तिरिय-कुमाणुस-जोणीसु जाइ-जरा-मरण वाहि-वेयणा-दालिद्दादीणि। संसार-सरीर-भोगेसु वेरग्गुप्पाइणी णिव्वेयणी णाम।

५३ (सू० २५३)

प्रस्तुत सूत्र मे अतिशायी ज्ञान-दर्शन की उपलब्धि की योग्यता का निरूपण किया गया है। उसकी उपलब्धि के सहायक तत्त्व दो हैं—शारीरिक दृढता और अनासक्ति। और उसके बाधक तत्त्व भी दो है—शारीरिक कृशता और आसक्ति। इन्ही के आधार पर प्रस्तुत चतुर्भङ्गी की रचना की गई है।

साधारण नियम के अनुसार अतिशायी ज्ञान-दर्शन की उपलब्धि उसी व्यक्ति को हो सकती है, जो दृढ-शरीर और देहासक्ति से मुक्त होता है, किन्तु सामग्री-भेद से इसमे परिवर्तन हो जाता है, जैसे —

एक मनुष्य अस्वस्थ या तपस्वी होने के कारण शरीर मे कृश है, किन्तु देहासक्त नही है, इसलिए वह अतिशायी ज्ञानदर्शन को प्राप्त हो जाता है।

एक मनुष्य स्वस्थ होने के कारण शरीर से दृढ है, किन्तु देहासक्त है, इसलिए वह अतिशायी ज्ञान-दर्शन को प्राप्त नही होता।

एक मनुष्य स्वस्थ होने के कारण शरीर मे दृढ है और देहासक्त भी नही है इसलिए वह अतिशायी ज्ञान-दर्शन को प्राप्त होता है।

एक मनुष्य अस्वस्थ होने के कारण शरीर से कृश है किन्तु देहासक्त है, इसलिए वह अतिशायी ज्ञान-दर्शन को प्राप्त नही होता।

जिसमें देहासक्ति नही होती, उसे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त हो जाता है, भले फिर उसका शरीर कृश हो या दृढ।

जिसमें देहासक्ति होती है, उसे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त नही होता, भले फिर उसका शरीर कृश हो या दृढ।

इसकी व्याख्या दूसरे नय मे भी की जा सकती है। प्रथम व्याख्या मे प्रत्येक भग का दो-दो व्यक्तियो से सम्बन्ध है। इस व्याख्या मे प्रत्येक भग का सबंध एक व्यक्ति की दो अवस्थाओ से होगा, जैसे—

कोई व्यक्ति कृश शरीर होता है तब उसमें मोह प्रबल नही होता, देहासक्ति सुदृढ नही होती, प्रमाद अल्प होता है, किन्तु जब वह दृढ शरीर होता है तब मास उपचित होने के कारण उसका मोह बढ जाता है, देहासक्ति प्रबल हो जाती है और प्रमाद बढ जाता है। इस कोटि के व्यक्ति के लिए प्रथम भग है।

कोई व्यक्ति दृढ शरीर होता है, तब वह अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियों का ध्यान आदि साधना पक्षो मे नियोजन करता है, मोह विलय के प्रति जागरूक रहता है, किन्तु जब वह कृश शरीर हो जाता है, तब अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियो का साधनापक्षो मे वैसा नियोजन नही कर पाता। इस कोटि के व्यक्ति के लिए दूसरे भग की रचना है।

प्रथम कोटि के व्यक्ति का शरीर के कृश होने पर मनोबल दृढ होता है और शरीर के दृढ होने पर वह कृश हो जाता है।

दूसरी कोटि के व्यक्ति का मनोबल शरीर के दृढ होने पर दृढ होता है और शरीर के कृश होने पर कृश हो जाता है।

तीसरी कोटि के व्यक्ति का मनोबल दृढ ही रहता है, भले फिर उसका शरीर कृश हो या दृढ।

चौथी कोटि के व्यक्ति का मनोबल कृश ही होता है, भले फिर उसका शरीर कृश हो या दृढ।

५४-५७ विवेक, व्युत्सर्ग, उञ्छ, सामुदानिक (सू० २५४)

प्रस्तुत सूत्र मे कुछ शब्द विवेचनीय हैं—

विवेक—शरीर और आत्मा का भेद-ज्ञान।

व्युत्सर्ग—शरीर का स्थिरीकरण, कायोत्सर्ग मुद्रा।

उञ्छ—अनेक घरो से थोड़ा-थोड़ा लिया जाने वाला भक्त-पान।

सामुदानिक—समुदान का अर्थ है—भिक्षा। उसमे प्राप्त होने वाले को सामुदानिक कहा जाता है।

५८, ५९ (सू० २५६-२५८)

महोत्सव के बाद जो प्रतिपदाएं आती हैं, उनको महा-प्रतिपदा कहा जाता है। निशीथ (१९।१२) में इंद्रमह, स्कंदमह, यक्षमह और भूतमह इन चार महोत्सवों में किए जाने वाले स्वाध्याय के लिए प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। निशीथ-भाष्य के अनुसार इंद्रमह आषाढ़ी पूर्णिमा को, स्कंदमह आश्विन पूर्णिमा को, यक्षमह कार्तिक पूर्णिमा और भूतमह चैत्री पूर्णिमा को मनाया जाता था।[1]

चूर्णिकार ने बतलाया है कि लाट देश में इंद्रमह श्रावण पूर्णिमा को मनाया जाता था।[2] स्थानांग वृत्तिकार के अनुसार इंद्रमह आश्विन पूर्णिमा को मनाया जाता था।[3] वाल्मीकि रामायण से स्थानांग वृत्तिकार के मत की पुष्टि होती है।[4]

आषाढ़ी पूर्णिमा, आश्विन पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा और चैत्री पूर्णिमा को महोत्सव मनाया जाता था। जिस दिन से महोत्सव का प्रारम्भ होता, उसी दिन से स्वाध्याय बंद कर दिया जाता था। महोत्सव की समाप्ति पूर्णिमा को हो जाती, फिर भी प्रतिपदा के दिन स्वाध्याय नहीं किया जाता। निशीथभाष्यकार के अनुसार प्रतिपदा के दिन महोत्सव अनुवृत्त (चालू) रहता है। महोत्सव के निमित्त एकत्र की हुई मदिरा का पान उस दिन भी चलता है। महोत्सव के दिनों में मद्य-पान से बावले बने हुए लोग प्रतिपदा को अपने मित्रों को बुलाते हैं, उन्हें मद्य-पान कराते हैं। इस प्रकार प्रतिपदा का दिन महोत्सव के परिशेष के रूप में उसी शृंखला में जुड़ जाता है।[5]

उन दिनों स्वाध्याय न करने के कई कारण बतलाए गए हैं, उनमें एक कारण है—लोकविरुद्ध। महोत्सव के समय आगम-स्वाध्याय को लोग पसंद क्यों नहीं करते? यह अन्वेषण का विषय है।

अस्वाध्यायी की परम्परा का मूल वैदिक-साहित्य में ढूंढा जा सकता है। जैन-साहित्य में उसे लोकविरुद्ध होने के कारण मान्यता दी गई। आयुर्वेद के ग्रंथों में भी अस्वाध्यायी की परम्परा का उल्लेख मिलता है[6]—

> कृष्णेऽष्टमी तन्निधनेऽहनी द्वे, शुक्ले तथाऽप्येवमहर्द्विसन्ध्यम्।
> अकालविद्युत्स्तनयित्नुघोषे, स्वतंत्रराष्ट्रक्षितिपव्यथासु॥
> श्मशानयानायतनाहवेषु, महोत्सवौत्पातिकदर्शनेषु।
> नाध्येयमन्येषु च येषु विप्रा, नाधीयते नाशुचिना च नित्यम्॥

कृष्णपक्ष की अष्टमी और कृष्णपक्ष की समाप्ति के दो दिन (अर्थात् चतुर्दशी और अमावस), इसी प्रकार शुक्लपक्ष की (अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा), सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय, अकाल (वर्षा ऋतु के बिना) बिजली चमकना तथा मेघगर्जन होना, अपने शरीर तथा अपने सम्बन्धी तथा राष्ट्र और राजा के आपत्काल में, श्मशान में, सवारी (यात्रा-काल) में, वध स्थान में तथा युद्ध के समय, महोत्सव तथा उत्पात (भूकम्पादि) के दिन, तथा जिन देशों में ब्राह्मण अनध्याय रखते हों उन दिनों में एवं अपवित्र अवस्था में अध्ययन नहीं करना चाहिए। देखें स्थानांग १०।२०,२१ का टिप्पण।

---

१. निशीथभाष्य, ६०६५ :

> आसाढी इंदमहो, कत्तिय-सुगिम्हओ य बोधव्वो।
> एते महामहा खलु, एतेसिं चेव पाडिवया॥

२. निशीथभाष्यचूर्णि, ६०६५ : इह लाडेसु सावण पोण्णिमाए भवति इंदमहो।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र २०१ : इन्द्रमहः—अश्वयुक् पौर्णमासी।

४. वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा काण्ड, सर्ग १६, श्लोक ३६ :

> इन्द्रध्वज इवोद्भूतः, पौर्णमास्यां महीतले।
> आश्वयुक्समये मासि, गतश्रीको विचेतनः॥

५ निशीथभाष्य, ६०६८ :

> छणिया ऽवसेसएणं, पाडिवएसु विछणाऽणुसज्जति।
> महवाउललसघेणं, असारिताणं च सम्माणो॥

६. सुश्रुतसंहिता, २।६,१०।

६०. (सू० २६४)

इस सूत्र में गर्हा के कारणो को भी कार्य-कारण की अभेद-दृष्टि से गर्हा माना गया है। यहा २।३८ का टिप्पण द्रष्टव्य है।

६१-६३ (सू० २७०-२७२)

इन सूत्रों मे धूमशिखा, अग्निशिखा और वातमण्डलिका (गोलाकार ऊपर उठी हुई हवा) के साथ स्त्री के तीन स्वभावों—मलिनता, ताप और चपलता की तुलना की गई है।

६४-६६ (सू० २७५-२७७)

अरुणवरद्वीप जम्बूद्वीप से असंख्यातवा द्वीप है। उसकी बाहरी वेदिका के अन्त से अरुणवरसमुद्र मे ४२ हजार योजन जाने पर एक प्रदेश (तुल्य अवगाहन) वाली श्रेणी उठती है और वह १७२१ योजन ऊची जाने के पश्चात् विस्तृत होती है। सौधर्म आदि चारों देवलोको को घेर कर पाचवे देवलोक (ब्रह्म-लोक) के रिष्ट नामक विमान-प्रस्तट तक चली गई है। वह जलीय पदार्थ है। उसके पुद्गल अन्धकारमय है। इसलिए उसे तमस्काय कहा जाता है। लोक मे इसके समान दूसरा कोई अधकार नही है, इसलिए इसे लोकाधकार कहा जाता है। देवो का प्रकाश भी उस क्षेत्र मे हत-प्रभ हो जाता है, इसलिए उसे देवान्धकार कहा जाता है। उसमे वायु भी प्रवेश नही पा सकता, इसलिए उसे वात-परिध और वात-परिधक्षोभ कहा जाता है। देवो के लिए भी वह दुर्गम है, इसलिए उसे देव-आरण्य और देवव्यूह कहा जाता है।

६७-६६ (सू० २८२-२८४)

कषाय के चार प्रकार है—क्रोध, मान, माया और लोभ। इन चारो के तरतमता की दृष्टि से अनत स्तर होते है, फिर भी आत्मविकास के घात की दृष्टि से उनमे से प्रत्येक के चार-चार स्तर निर्धारित किए गए है—

अनन्तानुबधी	अप्रत्याख्यानावरण	प्रत्याख्यानावरण	संज्वलन
१. क्रोध	५. क्रोध	९. क्रोध	१३ क्रोध
२ मान	६. मान	१० मान	१४. मान
३. माया	७. माया	११. माया	१५ माया
४ लोभ	८. लोभ	१२ लोभ	१६. लोभ

अनन्तानुबंधी कषाय के उदय-काल मे सम्यक्दर्शन प्राप्त नही होता। अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय-काल मे व्रत की योग्यता प्राप्त नही होती। प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय-काल मे महाव्रत की योग्यता प्राप्त नही होती। संज्वलन कषाय के उदय-काल मे वीतरागता उपलब्ध नही होती।

इन तीन सूत्रो तथा ३५४ वे सूत्र मे कषाय के इन सोलह प्रकारो की तरतमता सोलह दृष्टान्तो के द्वारा निरूपित की गई है।

अनन्तानुबंधी लोभ की कृमिराग रक्त वस्त्र से तुलना की गई है।

वृद्ध सम्प्रदाय के अनुसार कृमिराग का अर्थ इस प्रकार है। मनुष्य का रक्त लेकर उसमें कुछ दूसरी वस्तुए मिलाकर एक बर्तन मे रख दिया जाता है। कुछ समय बाद उसमे कृमि उत्पन्न हो जाते है। वे हवा की खोज में घूमते हुए, छेदो से बाहर आकर लार छोडते हैं। उन्ही (लारो) को कृमि-सूत्र कहा जाता है। वे स्वभाव से ही लाल होते है।

दूसरा अभिमत यह है—रुधिर में जो कृमि उत्पन्न होते है, उन्हे वही मसलकर कचरे को उतार दिया जाता है। उसमे कुछ दूसरी वस्तुए मिला उसे रञ्जक-रस (कृमिराग) बना लिया जाता है।

७०-७९ (सू० २९०-२९९)

बंध का अर्थ है—दो का योग। प्रस्तुत प्रकरण में उसका अर्थ है—जीव और कर्म-प्रायोग्य पुद्गलो का सबंध। जीव के द्वारा कर्म-प्रायोग्य पुद्गलों का ग्रहण उसके चार प्रकार हैं—

प्रकृतिबंध—स्थिति, रस और प्रदेश बंध के समुदाय को प्रकृतिबंध कहा जाता है।[1] इस परिभाषा के अनुसार शेष तीनों बधों के समुदाय का नाम ही प्रकृतिबध है।

प्रकृति का अर्थ है अश या भेद। ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकृतियों का जो बंध होता है, उसे प्रकृतिबध कहा जाता है। इसके अनुसार प्रकृति का अर्थ स्वभाव भी है। पृथक्-पृथक् कर्मों में जो ज्ञान आदि को आवृत करने का स्वभाव उत्पन्न होता है, वह प्रकृतिबध है।[2] दिगम्बर-साहित्य मे यह परिभाषा अधिक प्रचलित है।

स्थितिबध—जीवगृहीत कर्म-पुद्गलो की जीव के साथ रहने की काल-मर्यादा को स्थितिबंध कहा है।

अनुभावबध—कर्म-पुद्गलो की फल देने की शक्ति को अनुभावबध कहा जाता है। अनुभवबध, अनुभागबध और रसबध भी इसीके नाम हैं।

प्रदेशबंध—न्यूनाधिक-परमाणु वाले कर्म-पुद्गलो के स्कंधो का जो जीव के साथ सबंध होता है, उसे प्रदेशबध कहा जाता है।

प्राचीन आचार्यों ने इन बधो का स्वरूप मोदक के दृष्टान्त द्वारा समझाया है। विभिन्न वस्तुओं से निष्पन्न होने के कारण कोई मोदक वातहर होता है, कोई पित्तहर, कोई कफहर, कोई मारक और कोई व्यामोहकर होता है। इसी प्रकार कोई कर्मज्ञान को आवर्त करता है, कोई व्यामोह उत्पन्न करता है और कोई सुख-दु:ख उत्पन्न करता है।

कोई मोदक दो दिन तक विकृत नही होता, कोई चार दिन तक विकृत नही होता। इसी प्रकार कोई कर्म दस हजार वर्ष तक आत्मा के साथ रहता है, कोई पल्योपम और कोई सागरोपम तक आत्म के साथ रहता है।

कोई मोदक अधिक मधुर होता है, कोई कम मधुर होता है। इसी प्रकार कोई कर्म तीव्र रस वाला होता है, कोई मंद रस वाला।

कोई मोदक छटाक-भर का होता है, कोई पाव का। इसी प्रकार कोई कर्म अल्प परमाणु-समुदाय वाला होता है, कोई अधिक परमाणु-समुदाय वाला।

उपक्रम—कर्म-संकधों को विविध रूप मे परिणत करने मे जो हेतु बनता है, उस जीव-वीर्य का नाम उपक्रम है। उपक्रम का अर्थ आरभ भी है। कर्म-स्कधो की विभिन्न परिणतियों के आरम्भ को भी उपक्रम कहा जाता है।

बन्धन—कर्म की दस अवस्थाए है—

१. बधन २. उद्वर्तना ३. अपवर्तना ४. सत्ता ५. उदय ६ उदीरणा ७. संक्रमण ८. उपशमन ९. निधत्ति १०. निकाचना

जीव और कर्म-पुद्गलों के संबध को बंध कहा जाता है।

कर्मों की स्थिति एवं अनुभाव की जो वृद्धि होती है, उसे उद्वर्तना कहा जाता है। उनकी स्थिति एव अनुभाव की जो हानि होती है, उसे अपवर्तना कहा जाता है।

कर्म-पुद्गलो की अनुदित अवस्था को सत्ता कहा जाता है। कर्मों के विपाक काल को उदय कहा जाता है।

अपवर्तना के द्वारा निश्चित समय से पहले कर्मों को उदय में लाने को उदीरणा कहा जाता है।

सजातीय कर्म-प्रकृतियों के एक-दूसरे मे परिणमन करने को सक्रमण कहा जाता है।

---

१. पंचसंग्रह, ४।२।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र २०९ :

कर्म्मण. प्रकृतय:—अंशा भेदा ज्ञानावरणीयादयोऽष्टौ तासां प्रकृतेर्वा—अविशेषितस्य कर्म्मणो बन्ध: प्रकृतिबन्ध:।

शुभ प्रकृति का अशुभ विपाक के रूप मे और अशुभ प्रकृति का शुभ प्रकृति के रूप मे परिणमन इसी कारण से होता है।

मोहकर्म को उदय, उदीरणा, निधत्ति और निकाचना के अयोग्य करने को उपशमन कहा जाता है।

उद्वर्तना एव अपवर्तना के सिवाय शेष छह करणो के अयोग्य अवस्था को निधत्ति कहते हैं।

जिस कर्म का उद्वर्तना, अपवर्तना, उदीरणा, संक्रमण और निधत्ति न हो सके उसे निकाचित कहा जाता है।

विपरिणमन—कर्म-स्कधो के क्षय, क्षयोपशम, उद्वर्तना, अपवर्तना आदि के द्वारा नई-नई अवस्थाएं उत्पन्न करने को विपरिणामना कहा जाता है। षट्खंडागम के अनुसार विपरिणामना का अर्थ है निर्जरा—

'विपरिणाम मुवक्कमो पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाण देस-णिज्जर सयल-णिज्जर च परूवेदि।'

विपरिणामोपक्रम अधिकारप्रकृति, स्थिति अनुभाग और प्रदेशो की देश निर्जरा और सकल निर्जरा का कथन करता है।[1] देखें ४।६०३ का टिप्पण।

८०. (सू० ३२०)

ये अनुक्रम से ईशान, अग्नि, नैऋ त और वायव्य कोण मे है।

८१ (सू० ३५०)

आजीवक श्रमण-परम्परा का एक प्रभावशाली सम्प्रदाय था। उसके आचार्य थे गोशालक। आजीवक भिक्षु अचेलक रहते थे। वे पचाग्नि तपते थ। वे अन्य अनेक प्रकार के कठोर तप करते थे। अनेक कठोर आसनो की साधना भी करते थे।

प्रस्तुत सूत्र मे आए हुए उग्रतप और घोरतप से आजीवको के तपस्वी होने की सूचना मिलती है। आचार्य नरेन्द्रदेव ने लिखा है—बुद्ध आजीवको को सबसे बुरा समझते थे। तापस होने के कारण इनका समाज मे आदर था। लोग निमित्त, शकुन, स्वप्न आदि का फल इनसे पूछते थे।[2]

रस-निर्यूहण और जिह्वे न्द्रिय-प्रतिसलीनता—ये दोनो तप आजीविको के अस्वाद व्रत के सूचक है।

प्रस्तुत सूत्र मे आगे के तीन सूत्रो (३५१-३५३) मे क्रमश चार प्रकार के सयम, त्याग और अकिञ्चनता का निर्देश है। उनमे आजीवक का उल्लेख नही है और न ही इसका सवादी प्रमाण उपलब्ध है कि ये आजीवको द्वारा सम्मत हैं। पर प्रकरणवशात् सहज ही एक कल्पना उद्भूत होती है—क्या यहा आजीवक सम्मत सयम, त्याग और अकिचनता का निर्देश नही है ?

८२ (सू० ३५४)

बौद्ध साहित्य मे पत्थर, पृथ्वी और पानी की रेखा के समान मनुष्यो का वर्णन मिलता है।

भिक्षुओ ! ससार मे तीन तरह के आदमी है। कौन-सी तीन तरह के ?

पत्थर पर खिची रेखा के समान आदमी, पृथ्वी पर खिची रेखा के समान आदमी, पानी पर खिची रेखा के समान आदमी।

भिक्षुओ ! पत्थर पर खिची रेखा के समान आदमी कैसा होता है ? भिक्षुओ ! एक आदमी प्राय क्रोधित होता है। उसका वह क्रोध दीर्घकाल तक रहता है, जैसे —भिक्षुओ ! पत्थर पर खिची रेखा शीघ्र नही मिटती, न हवा से न पानी से, चिरस्थायी होती है, इसी प्रकार भिक्षुओ ! यहा एक आदमी प्राय. क्रोधित होता है। उसका वह क्रोध दीर्घकाल तक रहता है। भिक्षुओ ! ऐसा व्यक्ति 'पत्थर पर खिची रेखा के समान आदमी' कहलाता है।

---

१ षट्खडागम की प्रस्तावना, पृष्ठ ६३, खण्ड १, भाग १, पुस्तक २।

२- बौद्धधर्मदर्शन, पृष्ठ ४।

भिक्षुओ ! पृथ्वी पर खिंची रेखा के समान आदमी कैसा होता है ? भिक्षुओ ! एक आदमी प्राय: क्रोधित होता है। उसका वह क्रोध दीर्घकाल तक नही रहता, जैसे— भिक्षुओ ! पृथ्वी पर खिंची रेखा शीघ्र मिट जाती है। हवा से या पानी से चिरस्थायी नहीं होती। इसी प्रकार भिक्षुओ ! यहा एक आदमी प्राय. क्रोधित होता है। उसका क्रोध दीर्घकाल तक नहीं रहता। भिक्षुओ ! ऐसा व्यक्ति 'पृथ्वी पर खिंची रेखा के समान आदमी' कहलाता है।

भिक्षुओ ! पानी पर खिंची रेखा के समान आदमी कैसा होता है ? भिक्षुओ ! कोई-कोई आदमी ऐसा होता है कि यदि कड़ुवा भी बोला जाय, कठोर भी बोला जाय, अप्रिय भी बोला जाय तो भी वह जुड़ा ही रहता है, मिला ही रहता है, प्रसन्न ही रहता है। जिस प्रकार भिक्षुओ ! पानी पर खिंची रेखा शीघ्र विलीन हो जाती है, चिरस्थायी नही होती, इसी प्रकार भिक्षुओ ! कोई-कोई आदमी ऐसा होता है जिसे यदि कड़ुवा भी बोला जाय, कठोर भी बोला जाय, अप्रिय भी बोला जाय तो भी वह जुड़ा ही रहता, मिला ही रहताहै, प्रसन्न ही रहता है।

भिक्षुओ ! ससार मे ये तीन तरह के लोग है।[1] विशेष जानकारी के लिए देखें—६७-६९ का टिप्पण।

८३ (सू० ३५५)

प्रस्तुत सूत्र मे भावो की लिप्तता-अलिप्तता तथा मलिनता-निर्मलता का तारतम्य उदक के दृष्टान्त द्वारा समझाया गया है। कर्दम के चिमटने पर उसे उतारना कष्टसाध्य होता है। खजन को उतारना उससे अल्प कष्टसाध्य होता है। बालुका लगने पर जल के सूखने ही वह सरलता से उतर जाता है। शैल (प्रस्तरखड) का लेप लगता ही नही। इसी प्रकार मनुष्य के कुछ भाव कष्टसाध्य लेप उत्पन्न करते है, कुछ अल्प कष्टसाध्य, कुछ सुसाध्य और कुछलेप उत्पन्न नही करते।

कर्दमजल की अपेक्षा खंजनजल अल्प मलिन, खजनजल की अपेक्षा बालुकाजल निर्मल और बालुकाजल की अपेक्षा शैलजल अधिक निर्मल होता है। इसी प्रकार मनुष्य के भाव भी मलिनतर, मलिन, निर्मल और निर्मलतर होते है।

कौटलीय अर्थशास्त्र मे दुर्ग-निर्माण के प्रसङ्ग मे खजनोदक का उल्लेख हुआ है।[2] टिप्पणकार ने इसका अर्थ विच्छिन्न प्रवाह वाला उदक किया है। इसे पकिल होने के कारण गति वैक्लव्यकर बतलाया गया है।[3]

वृत्तिकार ने खंजन का अर्थ लेपकारी कर्दम किया है।[4]

८४ (सू० ३५६)

कुछ पुरुष दूसरे के मन में प्रीति (या विश्वास) उत्पन्न करना चाहते हैं और वैसा कर देते है—इस प्रवृत्ति के तीन हेतु वृत्तिकार द्वारा निर्दिष्ट हैं[5]—

१. स्थिरपरिणामता।

२. उचितप्रतिपत्तिनिपुणता।

३. सौभाग्यवत्ता।

जिस व्यक्ति के परिणाम स्थिर होते हैं, जो उचित प्रतिपत्ति करने मे निपुण होता है या सौभाग्यशाली होता है, वह ऐसा कर पाता है। जिसमे ये विशेषताए नही होती, वह ऐसा नही कर पाता।

"कुछ पुरुष दूसरे के मन में अप्रीति उत्पन्न करना चाहते हैं, किन्तु वैसा कर नही पाते"

---

१. अगुत्तरनिकाय, भाग १, पृष्ठ २९१, २९२।

२. कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधिकरण २, अध्याय २, प्रकरण २१।

३. क—कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधिकरण २, अध्याय २, प्रकरण २१ :

विच्छिन्नप्रवाहोदक क्वचित्-क्वचित् देवोदकविशिष्ट-मित्यर्थ:।

ख—खंजनोदकम्—खञ्जन पंकिलत्वाद् गतिवैक्लव्यकरमुदकं यस्मिस्तत् तथा भूतम्।

४. स्थानागवृत्ति, पत्र २२३ :

खञ्जन दीपादि खञ्जनतुल्य : पादादिलेपकारी कर्दम-विशेष एव।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र २२४।

वृत्तिकार ने इसकी व्याख्या दो नयो से की है —

(१) अप्रीति उत्पन्न करने का पूर्ववर्ती भाव निवृत्त होने पर वह दूसरे के मन मे अप्रीति उत्पन्न नही कर पाता।

(२) सामने वाला व्यक्ति अप्रीतिजनक हेतु से भी प्रीत होने के स्वभाव वाला है, इसलिए वह उसके मन मे अप्रीति उत्पन्न नही कर पाता। इसकी व्याख्या तीसरे नय से भी की जा सकती है—सामने वाला व्यक्ति यदि साधक या मूर्ख होता है तो अप्रीतिजनक हेतु होने पर भी उसके मन मे अप्रीति उत्पन्न नही होती।

भगवान् महावीर ने साधक को मान और अपमान मे सम बतलाया है—

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निंदा पसंसासु, तहा माणावमाणओ ॥[1]

साधक लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण, निंदा-प्रशसा, मान-अपमान मे सम रहता है।

एक संस्कृत कवि ने मूर्ख को भी मान और अपमान मे सम बतलाया है —

मूर्खत्वं हि सखे ! ममापि रुचितं यस्मिन् यदष्टौ गुणा ।
निश्चिन्तो बहुभोजनो ऽत्रपमना नक्तं दिवा शायकः ॥
कार्याकार्यविचारणान्धबधिरो मानापमाने समः ।
प्रायेणामयवर्जितो दृढवपुर्मूर्खः सुखं जीवति ॥

मित्र ! मूर्खता मुझे भी प्रिय है, क्योकि उसमे आठ गुण होते है। मूर्ख —

१. चिंता मुक्त होता है।
२. बहुभोजन करने वाला होता है।
३. लज्जारहित होता है।
४. रात और दिन सोने वाला होता है।
५. कर्तव्य और अकर्तव्य की विचारणा मे अधा और बहरा होता है।
६. मान और अपमान मे समान होता है।
७. रोगरहित होता है।
८. दृढ शरीर वाला होता है।

वृत्तिकार की सूचना के अनुसार प्रस्तुत सूत्र का अनुवाद इस प्रकार भी किया जा सकता है—

पुरुष चार प्रकार के होते है—

१. कुछ पुरुष दूसरो के मन मे—यह प्रीति करने वाला है—ऐसा बिठाना चाहते है और बिठा भी देते है।
२. कुछ पुरुष दूसरो के मन मे—यह प्रीति करने वाला है—ऐसा बिठाना चाहते है, पर बिठा नही पाते।
३. कुछ पुरुष दूसरो के मन मे—यह अप्रीति करने वाला है—ऐसा बिठाना चाहते हैं और बिठा भी देते है।
४. कुछ पुरुष दूसरो के मन मे—यह अप्रीति करने वाला है—ऐसा बिठाना चाहते है, पर बिठा नही पाते।

८५ (सू० ३६१)

प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या उपकार की तरतमता आदि अनेक नयो मे की जा सकती है। वृत्तिकार ने लोकोत्तर उपकार की दृष्टि से इसकी व्याख्या की है। जो गुरु पत्र वाले वृक्ष के समान होते हैं, वे अपनी श्रुत-सम्पदा को अपने तक ही सीमित रखते हैं। जो गुरु फूल वाले वृक्ष के समान होते हैं, वे शिष्यो को सूत्र-पाठ की वाचना देते है। जो गुरु फल वाले वृक्ष के समान होते है, वे शिष्यो को सूत्र के अर्थ की वाचना देते है। जो गुरु छाया वाले वृक्ष के समान होते हैं, वे शिष्यो को सूत्रार्थ के पुनरावर्तन और अपाय-संरक्षण का पथ-दर्शन देते है।[2] देखें—स्थानांग ३।१५वां टिप्पण।

---

१ उत्तराध्ययन, १९।९०।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र २२४

८६ (सू० ३६४)

राशि के दो भेद होते है—युग्म और ओज। समसंख्या (२,४,६,८) को युग्म और विषमसंख्या (१,३,५,७,९) को ओज कहा जाता है।[1] युग्म के दो भेद हैं—कृतयुग्म और द्वापरयुग्म। ओज के दो भेद है—त्र्योज और कल्योज। इनकी व्याख्या इस प्रकार है—

कृतयुग्म—राशि मे से चार-चार घटाने पर शेष चार रहे, जैसे—८,१२,१६,२०……।
द्वापरयुग्म—राशि मे से चार-चार घटाने पर शेष दो रहे, जैसे—६,१०,१४,१८……।
त्र्योज—राशि मे से चार-चार घटाने पर शेष तीन रहे, जैसे—७,११,१५,१९……।
कल्योज—राशि मे से चार-चार घटाने पर एक शेष रहे, जैसे—५,९,१३,१७,२१……।

८७ (सू० ३८९)

आकुलि का पुष्प सुन्दर होता है, किन्तु सुरभियुक्त नही होता।
बकुल का पुष्प सुरभियुक्त होता है, किन्तु सुन्दर नही होता।
जूही का पुष्प सुन्दर भी होता है और सुरभियुक्त भी होता है।
बदरी का पुष्प न सुन्दर ही होता है और न सुरभियुक्त ही होता है।[2]

८८ (सू० ४११)

प्रस्तुत सूत्र के दृष्टान्त मे माधुर्य की तरतमता बतलाई गई है। आवला ईषत्मधुर, द्राक्षा बहुमधुर, दुग्ध बहुतर-मधुर और शर्करा बहुतममधुर होती है।

आचार्यों के उपशम आदि प्रशान्त गुणो की माधुर्य के साथ तुलना की गई है। माधुर्य की भाति उपशम आदि मे भी तरतमता होती है। किसी का उपशम (शान्ति) ईषत्, किसी का बहु, किसी का बहुतर और किसी का बहुतम होता है।[3]

८९ (सू० ४१२)

१ स्वार्थी या आलसी मनुष्य अपनी सेवा करते है, दूसरो की नही करते।
२ स्वार्थ-निरपेक्ष मनुष्य दूसरो की सेवा करते हैं, अपनी नही करते।
३. सतुलित मनोवृत्ति वाले मनुष्य अपनी सेवा भी करते है और दूसरो की भी करते है।
४. आलसी, उदासीन, निरपेक्ष, निराश या अवधूत मनोवृत्ति वाले मनुष्य न अपनी सेवा करते हैं और न दूसरो की करते है।

९० (सू० ४१३)

१. निस्पृह मनुष्य दूसरो को सेवा देते है, किन्तु लेते नही।
२. रुग्ण, वृद्ध, अशक्त या विशिष्ट साधना, शोध अथवा प्रवृत्ति मे सलग्न मनुष्य दूसरो की सेवा लेते है किन्तु देते नही।

---

१. क—स्थानांगवृत्ति, पत्र २२९ : गणितपरिभाषायां समराशि-र्युग्ममुच्यते विषमस्तु ओज इति।
ख—कौटलीयार्थशास्त्र, २ अधिकरण, ३ अध्याय, २१ प्रकरण पृष्ठ ५८।
२. स्थानांगवृत्ति, पत्र २२९।
३. स्थानांगवृत्ति, पत्र २२९।

३. संतुलित मनोवृत्ति, विनिमय या समता मे विश्वास करने वाला मनुष्य दूसरो को सेवा देते भी है और लेते भी है।

४. निरपेक्ष या नितान्त व्यक्तिवादी मनोवृत्ति वाले मनुष्य न दूसरो को सेवा देते है और न लेते ही है।

६१ (सू० ४२१)

धर्म की प्रियता और दृढता—ये दोनो क्रमिक विकास की भूमिकाए है। व्यक्ति मे पहले प्रियता उत्पन्न होती है फिर दृढता आती है। इस दृष्टि से कुछ पुरुष प्रियधर्मा होते है, दृढधर्मा नही होते। यह भंग-रचना समुचित है। कुछ पुरुष दृढधर्मा होते है, प्रियधर्मा नही होते। यह दूसरे भग की रचना सगत नही लगती। प्रियधर्मा हुए बिना कोई दृढधर्मा कैसे हो सकता है ? इस असगति का उत्तर व्यवहारभाष्यकार तथा उसके आधार पर स्थानाग वृत्तिकार ने दिया है[1]—

कुछ पुरुषो की धृति और शक्ति दुर्बल होती है, किन्तु धर्म के प्रति उनकी प्रीति सहज हो जाती है। इस कोटि के पुरुष धर्म के प्रति सरलता से अनुरक्त हो जाते है, किन्तु उसका दृढता पूर्वक पालन नही कर पाते। वे आपदा के समय मे क्षुब्ध होकर स्वीकृत धर्माचरण से विचलित हो जाते है।[2]

कुछ पुरुषो की धृति और शक्ति प्रबल होती है, किन्तु उनमे धर्म के प्रति प्रीति उत्पन्न करना बहुत कठिन होता है। इस कोटि के पुरुष धर्म के प्रति सरलता मे अनुरक्त नही होते, किन्तु वे जिस धर्माचरण को स्वीकार कर लेते हैं, जो प्रतिज्ञा करते है, उसे अत तक पार पहुचाते है। बडी-से-बडी कठिनाई आने पर भी वे स्वीकृत धर्म से विचलित नही होते।[3] इस दृष्टि मे सूत्रकार ने दूसरे भग के अधिकारी पुरुष को दृढधर्मा कहा है। उसमे प्रियधर्मा का पक्ष गौण है, इसलिए सूत्रकार ने उसे अस्वीकृत किया है।

६२ (सू० ४२२)

धर्माचार्य-- जो धर्म का उपदेश देता है, प्रथम बार धर्म मे प्रेरित करता है, वह धर्माचार्य कहलाता है। वह गृहस्थ या श्रमण कोई भी हो सकता है।[4]

जो केवल प्रव्रज्या देता है, वह प्रव्राजनाचार्य होता है। जो केवल उपस्थापना करता है, वह उपस्थापनाचार्य होता है जो केवल धर्म मे प्रेरित करता है, वह धर्माचार्य होता है।

क्रम की दृष्टि से प्रथम धर्माचार्य, दूसरे प्रव्राजनाचार्य और तीसरे उपस्थापनाचार्य होते है—ये तीनो पृथक्-पृथक् ही हो—यह आवश्यक नही है। एक ही व्यक्ति धर्माचार्य, प्रव्राजनाचार्य और उपस्थापनाचार्य भी हो सकता है।[5]

जो केवल उद्देशन देता है, वह उद्देशनाचार्य होता है। जो केवल वाचना देता है, वह वाचनाचार्य होता है। पूर्व प्रकरण की भाति एक ही व्यक्ति धर्माचार्य, उद्देशनाचार्य और वाचनाचार्य हो सकता है।

६३-६४ (सू० ४२४,४२५) :

धर्मान्तेवासी—जो धर्म-श्रवण के लिए आचार्य के समीप रहता है, वह धर्मान्तेवासी होता है।

---

१. स्थानागवृत्ति, पत्र २३०।

२ व्यवहारभाष्य, १०।३५.

दसविहवेयावच्चे,अन्नयरे खिप्पमुज्जम कुणइ।
अच्चेतमणिव्वाही, धितिविरियकिसे पढमभगो॥

३. व्यवहारभाष्य, १०।३६

दुक्खेण उगाहिज्जइ, बिइओ गहिय तु नेइ जा तीर।

४ क—व्यवहारभाष्य, १०।४० :

जो पुण नो भयकारी, सो कम्हा भवति आयरिओ उ।
भण्णति धम्मायरितो, सो पुण गहितो व समणो वा॥

ख—स्थानागवृत्ति, पत्र २३० 'धम्मो जेणुवइट्ठो, सो धम्मगुरू गिही व समणो वा।

५. क—व्यवहारभाष्य, १०।४१ :

धम्मायरिए पव्वायण, तह य उठावणा गुरु तइओ।
कोइ तिहि सपन्नो, दोहि वि एक्केक्कएण वा॥

ख—स्थानागवृत्ति, पत्र २३० : कोवि तिहि सजुत्तो,
दोहि वि एक्केक्कएणेव।

जो केवल प्रव्रज्या ग्रहण की दृष्टि से आचार्य के पास रहता है वह प्रव्राजनान्तेवासी होता है।

जो केवल उपस्थापना की दृष्टि से आचार्य के पास रहता है, वह उपस्थापनान्तेवासी होता है।

एक ही व्यक्ति धर्मान्तेवासी, प्रव्राजनान्तेवासी और उपस्थापनान्तेवासी हो सकता है।

९५ रात्निक (सू० ४२९) :

जो दीक्षापर्याय में बड़ा होता है वह रात्निक कहलाता है।[1] विशेषविवरण के लिए दसवेआलियं ८/४० का टिप्पण द्रष्टव्य है।

९६ (सू० ४३०) :

श्रमणो की उपासना करने वाले गृहस्थ श्रमणोपासक कहलाते हैं। उनकी श्रद्धा और वृत्ति की तरतमता के आधार पर उन्हें चार वर्गों में विभक्त किया गया है। जिनमें श्रमणो के प्रति प्रगाढ़ वत्सलता होती है, उनकी तुलना माता-पिता से की गई है। माता-पिता के समान श्रमणोपासक तत्त्वचर्चा व जीवननिर्वाह—दोनो प्रसंगों मे वत्सलता का परिचय देते है।

जिनमें श्रमणो के प्रति वत्सलता और उग्रता दोनों होती है, उनकी तुलना भाई से की गई है। इस कोटि के श्रमणोपासक तत्त्वचर्चा मे निष्ठुर वचनों का प्रयोग कर देते है, किन्तु जीवननिर्वाह के प्रसंग मे उनका हृदय वत्सलता से परिपूर्ण होता है।

जिन श्रमणोपासकों में सापेक्षप्रीति होती है और कारणवश प्रीति का नाश होने पर वे आपत्काल मे भी उपेक्षा करते हैं, उनकी तुलना मित्र से की गई है। इस कोटि के श्रमणोपासक अनुकूलता मे वत्सलता रखते हैं और कुछ प्रतिकूलता होने पर श्रमणो की उपेक्षा करने लग जाते है।

कुछ श्रमणोपासक ईर्ष्यावश श्रमणों मे दोष ही दोष देखते हैं, किसी भी रूप में उपकारी नहीं होते, उनकी तुलना सपत्नी (सौत) से की गई है।

९७ (सू० ४३१) :

प्रस्तुत सूत्र में आन्तरिक योग्यता और अयोग्यता के आधार पर श्रमणोपासक के चार वर्ग किए गए हैं।

आदर्श (दर्पण) निर्मल होता है। वह सामने उपस्थित वस्तु का यथार्थ प्रतिबिम्ब ग्रहण कर लेता है। इसी प्रकार कुछ श्रमणोपासक श्रमण के तत्त्व-निरूपण को यथार्थ रूप मे ग्रहण कर लेते है।

ध्वजा अनवस्थित होती है। वह किसी एक दिशा मे नही टिकती। जिधर की हवा होती है, उधर ही मुड जाती है। इसी प्रकार कुछ श्रमणोपासको का तत्त्वबोध अनवस्थित होता है। उनके विचार किसी निश्चित बिन्दु पर स्थिर नही होते।

स्थाणु शुष्क होने के कारण प्राणहीन हो जाता है। उसका लचीलापन चला जाता है। फिर वह झुक नही पाता। इसी प्रकार कुछ श्रमणोपासकों मे अनाग्रह का रस सूख जाता है। उनका लचीलापन नष्ट हो जाता है। फिर वे किसी नये सत्य को स्वीकार नहीं कर पाते।

कपड़े मे काटा लग गया। कोई आदमी उसे निकालता है। काटे की पकड़ इतनी मजबूत है कि वह न केवल उस वस्त्र को ही फाड डालता है, अपितु निकालने वाले के हाथ को भी बीध डालता है। कुछ श्रमणोपासक कदाग्रह से ग्रस्त होते हैं। उनका कदाग्रह छुड़ाने के लिए श्रमण उन्हे तत्त्वबोध देते है। वे न केवल उस तत्त्वबोध को अस्वीकार करते है, किन्तु तत्त्वबोध देने वाले श्रमण को दुर्वचनों से बीध डालते है।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र २१० : रात्निकः पर्यायज्येष्ठः।

९८ (सू० ४६७) :

प्रस्तुत सूत्र एक पहेली है। इसकी एक व्याख्या अनुवाद के साथ की गई है। यह अन्य अनेक नयों से भी व्याख्येय है —

१. कुछ पुरुष एक से बढ़ते है, एक से हीन होते है—श्रुत से बढते है, सम्यक्दर्शक से हीन होते है।
२. कुछ पुरुष एक से बढ़ते है, दो से हीन होते है—श्रुत से बढते है, सम्यक्दर्शन और विनय से हीन होते है।
३. कुछ पुरुष दो से बढ़ते है, एक से हीन होते हैं—श्रुत और चारित्र से बढते है, सम्यक्दर्शन से हीन होते है।
४. कुछ पुरुष दो से बढते है, दो से हीन होते है—श्रुत और अनुष्टान से बढ़ते है, सम्यक्दर्शन और विनय से हीन होते है।

१. कुछ पुरुष एक से बढ़ते है, एक से हीन होते हैं—क्रोध से बढते है, माया से हीन होते है।
२. कुछ पुरुष एक से बढते है, दो से हीन होते है—क्रोध से बढते है, माया और लोभ से हीन होते है।
३. कुछ पुरुष दो से बढते है, एक से हीन होते है—क्रोध और मान से बढते है, माया से हीन होते है।
४. कुछ पुरुष दो से बढते है, दो से हीन होते है—क्रोध और मान से बढते है, माया और लोभ से हीन होते है।

१. कुछ पुरुष एक से बढते है, एक से हीन होते है—तृष्णा से बढते है, आयु से हीन होते है।
२. कुछ पुरुष एक से बढते है, दो से हीन होते है—तृष्णा से बढते है, मैत्री और करुणा से हीन होते है।
३. कुछ पुरुष दो से बढते है, एक से हीन होते है—ईर्ष्या और क्रूरता से बढते है, मैत्री से हीन होते है।
४. कुछ पुरुष दो से बढते है, दो से हीन होते है—मैत्री और करुणा से बढते है ईर्ष्या और क्रूरता से हीन होते है।

१. कुछ पुरुष एक से बढते है, एक से हीन होते है—बुद्धि से बढते है, हृदय से हीन होते है।
२. कुछ पुरुष एक से बढते है, दो से हीन होते है—बुद्धि से बढते है, हृदय और आचार से हीन होते है।
३. कुछ पुरुष दो से बढते है, एक से हीन होते है—बुद्धि और हृदय से बढते है, अनाचार से हीन होते है।
४. कुछ पुरुष दो से बढते है, दो से हीन होते हैं—बुद्धि और हृदय से बढते है अनाचार और अश्रद्धा से हीन होते है।

१. कुछ पुरुष एक से बढते है, एक से हीन होते है—सन्देह से बढते है, मैत्री से हीन होते है।
२. कुछ पुरुष एक से बढते हैं, दो से हीन होते है—सन्देह से बढते है, मैत्री और मानसिक सन्तुलन से हीन होते है।
३. कुछ पुरुष दो से बढते है, एक से हीन होते है—मैत्री और मानसिक सन्तुलन से बढते है सन्देह से हीन होते है।
४. कुछ पुरुष दो से बढते है, दो से हीन होते है—मैत्री और मानसिक सन्तुलन से बढते है, सन्देह और अधैर्य से हीन होते है।

९९ (सू० ४८६) :

ह्रीसत्त्व और ह्रीमन सत्त्व— इन दोनों मे सत्त्व का आधार लोक-लाज है। कुछ लोग आन्तरिक सत्त्व के विचलित होने पर भी लज्जावश सत्त्व को बनाए रखते है, भय को प्रदर्शित नही करते। जो ह्रीसत्त्व होता है, वह लज्जावश शरीर और मन दोनों मे भय के लक्षण प्रदर्शित नही करता। जो ह्रीमन सत्त्व होता है, वह मन मे सत्त्व को बनाए रखता है, किन्तु उसके शरीर मे भय के लक्षण—रोमाच, कपन आदि प्रकट हो जाते हैं।

१०० शय्या प्रतिमाएं (सू० ४८७) :

शय्या प्रतिमा का अर्थ है—सस्तार विषयक अभिग्रह। प्रथम प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं उद्दिष्ट [नामोल्लेखपूर्वक सकल्पित] सस्तार मिलेगा तो ग्रहण करूगा, दूसरा नही।

द्वितीय प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं उद्दिष्ट [नामोल्लेखपूर्वक सकल्पित] सस्तार मे दृष्ट को ही ग्रहण करूगा, अदृष्ट को नही।

तृतीय प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं उद्दिष्ट संस्तार यदि शय्यातर के घर मे होगा तो ग्रहण करूंगा, अन्यथा नहीं।

चतुर्थ प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं उद्दिष्ट संस्तार यदि यथासंसृत [सहज ही बिछा हुआ] मिलेगा, उसको ग्रहण करूगा, दूसरा नही।[1]

१०१ वस्त्र प्रतिमाएं (सू० ४८८)

वस्त्र प्रतिमा का अर्थ है — वस्त्र विषयक प्रतिज्ञा।

प्रथम प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं उद्दिष्ट [नामोल्लेखपूर्वक संकल्पित] वस्त्र की ही याचना करूगा।

द्वितीय प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं दृष्ट वस्त्रो की ही याचना करूंगा।

तृतीय प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं शय्यातर के द्वारा भुक्त वस्त्रो की ही याचना करूगा।

चतुर्थ प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं छोडने योग्य वस्त्रो की ही याचना करूगा।[2]

१०२ पात्र प्रतिमाएं (सूत्र ४८९) :

पात्र प्रतिमा का अर्थ है—पात्र विषयक प्रतिज्ञा।

प्रथम प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं उद्दिष्ट पात्र की याचना करूगा।

द्वितीय प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं दृष्ट पात्र की याचना करूंगा।

तृतीय प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं काम मे लिए हुए पात्र की याचना करूगा।

चतुर्थ प्रतिमा को पालन करने वाला मुनि निश्चय करता है कि मैं छोडने योग्य पात्र की याचना करूंगा।[1]

१०३-१०४ (सू० ४९१,४९२)

शरीर पाच है—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कर्मण। भिन्न-भिन्न अपेक्षाओ से इनके अनेक वर्गीकरण होते है।

स्थूलता और सूक्ष्मता की दृष्टि से —

स्थूल	सूक्ष्म
औदारिक	तैजस
वैक्रिय	कार्मण
आहारक	

कारण और कार्य की दृष्टि से—

कारण	कार्य
कार्मण	औदारिक
	वैक्रिय
	आहारक
	तैजस

१. क—स्थानांगवृत्ति, पत्र २३१।
ख—आयारचूला २।६२-६६।

२. क—स्थानांगवृत्ति, पत्र २३१।
ख—आयारचूला ५।१६-२०।

३. क—स्थानांगवृत्ति, पत्र २३१।
ख—आयारचूला—६।१५-१६।

भववर्ती और भवान्तरगामी की दृष्टि से- -

भववर्ती	भवान्तरगामी
औदारिक	तैजस
वैक्रिय	कार्मण
आहारक	

साहचर्य और असाहचर्य की दृष्टि से---

सहचारी	असहचारी
वैक्रिय	औदारिक
आहारक	
तैजस	
कार्मण	

औदारिक शरीर जीव के चले जाने पर भी टिका रहता है और विशिष्ट उपायो से दीर्घकाल तक टिका रह सकता है। शेष चार शरीर जीव से पृथक् होने पर अपना अस्तित्व नही रख पाते, तत्काल उनका पर्यायान्तर (रूपान्तर) हो जाता है।[1]

१०५ (सू० ४९८) :

आकाश के जिस भाग मे धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय व्याप्त होते है, उसे लोक कहा जाता है। धर्मास्तिकाय गतितत्त्व है। इसलिए जहा धर्मास्तिकाय नही होता वहा जीव और पुद्गल गति नही कर सकते। लोक से बाहर जीव और पुद्गलो की गति नही होने का मुख्य हेतु निरुपग्रहता—गतितत्त्व (धर्मास्तिकाय) के आलम्बन का अभाव है। शेष तीन हेतु उसी के पूरक हैं।

रूक्ष पुद्गल लोक से बाहर नही जाते, यह लोकस्थिति का दसवा प्रकार है[2]।

१०६-१११ (सू० ४९९-५०४)

ज्ञात के अनेक अर्थ होते है—दृष्टान्त, आख्यानक, उपमानमात्र और उपपत्तिमात्र।[3]

दृष्टान्त—

तर्कशास्त्र के अनुसार साधन का सद्भाव होने पर साध्य का नियमत होना और साध्य के अभाव मे साधन का नियमत न होना—इसका कथन करने वाले निदर्शन को दृष्टान्त कहा जाता है।[4]

आख्यानक—

दो प्रकार का होता है—चरित और कल्पित।

---

१. स्थानागवृत्ति, पत्र २४०

जीवेन स्पृष्टानि—व्याप्तानि जीवस्पृष्टानि, जीवेन हि स्पृष्टान्येव वैक्रियादीनि भवन्ति, न तु यथा औदारिक जीवमुक्तमपि भवति मृतावस्थायां तथैतानीति।

२. स्थानांग, १०।१

३. स्थानागवृत्ति, पत्र २४१, २४२ . ज्ञात—दृष्टान्त, ·· ··· अथवा आख्यानकरूप, ज्ञात, ··· ··अथवोपमानमात्र ज्ञात, · अथवा ज्ञात—उपपत्तिमात्र।

४ वही, पत्र २४१

ज्ञायते अस्मिन् सति दार्ष्टान्तिकोऽर्थ इति अधिकरणे क्तप्रत्ययोपादानात् ज्ञात—दृष्टान्त, साधनसद्भावे साध्यस्यावश्यभाव साध्याभावे वा साधनस्यावश्यमभाव इत्युपदर्शनलक्षणो, यदाह—साध्येनानुगमो हेतो, साध्याभावे च नास्तिता। ख्याप्यते यत्र दृष्टान्त, स साधर्म्येतरो द्विधा।

चरित—

जीवन-चरित से किसी बात को समझाना चरित ज्ञात है। जैसे—निदान दुःख के लिए होता है, यथा ब्रह्मदत्त का निदान।

कल्पित—

कल्पना के द्वारा किसी तथ्य को प्रकट करना। यौवन आदि अनित्य हैं। यहां पदार्थ की अनित्यता को कल्पितज्ञात के द्वारा समझाया गया है। पीपल का पका पत्र गिर रहा था, उसे देख नई कोपलें हंस पड़ी। पत्र बोला, तुम किस लिए हंस रही हो? एक दिन मैं भी तुम्हारे ही जैसा था और एक दिन आएगा, तुम भी मेरे जैसी हो जाओगी।[1]

ज्ञाताधर्मकथा सूत्र मे चरित और कल्पित—दोनों प्रकार के ज्ञात निरूपित है, इसीलिए उस अग का नाम ज्ञाता है।

उपमान मात्र—

हाथ किसलय की भाति सुकुमार हैं।[2] इसमें किसलय की सुकुमारता से हाथ की सुकुमारता की तुलना है।

उपपत्तिमात्र—

उपपत्ति ज्ञात का हेतु होती है। अभेदोपचार से उसे ज्ञात कहा जाता है। एक व्यक्ति जौ खरीद रहा था। किसी ने पूछा—'जौ किस लिए खरीद रहे हो?' उसने उत्तर दिया—'खरीदे बिना मिलता नही।'[3]

आहरण—

जिससे अप्रतीत अर्थ प्रतीत होता है, वह आहरण कहलाता है। पाप दुःख के लिए होता है, ब्रह्मदत्त की भांति। इसमे दार्ष्टान्तिक अर्थ सामान्य रूप मे उपनीत है।[4]

आहरणतद्देस—

दृष्टान्तार्थ के एक देश से दार्ष्टान्तिक अर्थ का उपनयन करना। आहरणतद्देस कहलाता है। इसका मुह चन्द्र जैसा है। यहा चन्द्र के सौम्यधर्म से मुख की तुलना है। चन्द्र के नेत्र, नासिका आदि नहीं है तथा वह कलकित प्रतीत होता है। मुह की तुलना मे ये सब इष्ट नही है। इसलिए यह एकदेशीय उदाहरण है।[5]

आहरणतद्दोष—

आहरण सम्बन्धी दोष अथवा प्रसग में साक्षात् दीखने वाला दोष अथवा साध्य विकलता आदि दोषो से युक्त आहरण को आहरणतद्दोष कहा जाता है। जैसे—शब्द नित्य है, क्योंकि वह अमूर्त है, जैसे घट। यह दृष्टान्त का साध्य-साधन-विकल नाम दोष है। घट मनुष्य के द्वारा कृत होता है इसलिए वह नित्य नही है। वह रूप आदि धर्म-युक्त है, इसलिए अमूर्त भी नही है।

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र २४२ .

आख्यानकरूप ज्ञातं, तच्च चरितकल्पितभेदात् द्विधा, तत्र चरित यथा निदान दुःखाय ब्रह्मदत्तस्येव, कल्पित यथा प्रमादवतामनित्य यौवनादीति देशनीय, यथा पाण्डुपत्रेण किसलयानां देशितं, तथा हि—

"जह तुब्भे तह अम्हे तुब्भेऽवि य होहिहा जहा अम्हे।
अप्पाहेइ पडंतं पंडुयपत्त किसलयाण।"

२. वही, पत्र २४२ ·

अथवोपमानमात्र ज्ञात सुकुमार' कर किसलयमिव।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र २४२ :

अथवा ज्ञातम्—उपपत्तिमात्रं ज्ञातहेतुत्वात्, कस्माद्यवा: क्रीयन्ते? यस्मान्मुधा न लभ्यन्ते इत्यादिवदिति।

४. वही, पत्र २४२ :

आ—अभिविधिना ह्रियते—प्रतीतौ नीयते अप्रतीतो-ऽर्थोऽनेनेत्याहरण, यत्र समुदित एव दार्ष्टान्तिकोऽर्थः उपनीयते यथा पाप दुःखाय ब्रह्मदत्तस्येवेति।

५. वही, पत्र २४२ .

तस्य—आहारणार्थस्य देशस्तद्देश: स चासावुपचारादाहरणं चेति प्राकृतत्वादाहरणशब्दस्य पूर्वनिपाते आहारणतद्देश इति, भावार्थश्चात्र—यत्र दृष्टान्तार्थदेशेनैव दार्ष्टान्तिकार्थस्योपनयनं क्रियते तत्तद्देशो,दाहरणमिति, यथा चन्द्र इव मुखमस्या इति, इह हि चन्द्रे सौम्यत्वलक्षणेनैव देशेन मुखस्योपनयन मानिष्टेन नयन-नासावर्जितत्वकलङ्कादिनेति।

असभ्य वचनात्मक उदाहरण को भी आहरणतद्दोष कहा जाता है। मैं असत्य का सर्वथा परिहार करता हू, जैसे—गुरु के मस्तक को काटना। यह असभ्य वचनात्मक दृष्टान्त है।

अपने साध्य की सिद्धि करते हुए दूसरे दोष को प्रस्तुत करना भी आहरणतद्दोष है। जैसे—किसी ने कहा कि लौकिक मुनि भी सत्य धर्म की वांछा करते है, जैसे—

वर कूपशताद्वापी, वरं वापीशताक्रतु।
वरं क्रतुशतात्पुत्र, सत्य पुत्रशताद्वरम्॥

सौ कुंओ मे एक वापी श्रेष्ठ है। सौ वापियों मे एक यज्ञ श्रेष्ठ है। सौ यज्ञो से एक पुत्र श्रेष्ठ है और सौ पुत्रो से सत्य श्रेष्ठ है।

इससे श्रोता के मन मे पुत्र, यज्ञ आदि ससार के कारणभूत तत्त्वो के प्रति धर्म की भावना पैदा होती है, यह भी दृष्टान्त का दोष है।[1]

उपन्यासोपनय—

वादी अपने अभिमत अर्थ की सिद्धि के लिए दृष्टान्त का उपन्यास करता है, जैसे—आत्मा अकर्ता है, क्योकि वह अमूर्त है, जैसे—आकाश।

ऐसा करने पर प्रतिवादी इसका खण्डन करने के लिए इसके विरुद्ध दृष्टान्त का उपन्यास करता है, जैसे—आत्मा आकाश की भांति अकर्ता है तो यह भी कहा जा सकता है कि आत्मा अभोक्ता है, क्योंकि वह अमूर्त है, जैसे—आकाश। यह विरुद्धार्थक उपन्यास है।[2]

अपाय—

इसका अर्थ है—हेय-धर्म का ज्ञापक दृष्टान्त। वह चार प्रकार का होता है। द्रव्य अपाय, क्षेत्र अपाय, काल अपाय, भाव अपाय।

द्रव्य अपाय—

इसका अर्थ है—द्रव्य या द्रव्य से होने वाली अनिष्ट की प्राप्ति।

एक गाव मे दो भाई रहते थे। वे धन कमाने सौराष्ट्र देश मे गए। धनार्जन कर वे पुन अपने देश लौट रहे थे। दोनो के मन मे पाप समा गया। एक-दूसरे को मारने की भावना मे कोई उपाय ढूढने लगे। यह भेद प्रगट होने पर उन्होंने धन से भरी नौली को एक नदी मे डाल दिया। एक मछली उसे निगल गई। वही मछली घर लाई गई। बहन ने उसका पेट चीरा। नौली देख उसका मन ललचा गया। मा ने देख लिया। दोनो मे कलह हुआ। लडकी ने मां के मर्म-स्थान पर प्रहार किया। वह मर गई। वह धन उसकी मृत्यु का कारण बना। यह द्रव्य-अपाय है।[3]

क्षेत्र अपाय—

क्षेत्र या क्षेत्र से होने वाला अपाय। दशार्ह हरिवश के राजा थे। कस ने मथुरा का विध्वस कर डाला। राजा जरासंध का भय बढा, तब उस क्षेत्र को अपाय-बहुल जानकर दशार्ह वहा से द्वारवती चले गए।[4] यह क्षेत्र अपाय है।

काल अपाय—

काल या काल से होने वाला अपाय। कृष्ण के पूछने पर अरिष्टनेमि ने कहा कि द्वारवती नगरी का नाश

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २४२।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र २४२ : तथा वादिना अभिमतार्थसाधनाय कृते वस्तूपन्यासे तद्विघटनाय यः प्रतिवादिना विरुद्धार्थोपनय. क्रियते पर्यनुयोगोपन्यासे वा य उत्तरोपनय. स उपन्यासोपनय।

३. देखें—दशवैकालिक हारिभद्रीयावृत्ति, पत्र ३५,३६।

४. स्थानागवृत्ति, पत्र २४३।

बारह वर्षों में द्वैपायन ऋषि द्वारा होगा। ऋषि ने जब यह सुना तब वे इसको टालने के लिए बारह वर्षों तक द्वारवती को छोड अन्यत्र चले गए।[1] यह काल का अपाय है।

भाव अपाय—

भाव से होने वाली अनिष्ट की प्राप्ति। देखें—दशवैकालिक हारिभद्रीयावृत्ति, पत्र ३७-३६।

उपाय—

इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रयत्न-विशेष का निर्देश करने वाला दृष्टान्त। यह चार प्रकार का होता है। द्रव्य उपाय, क्षेत्र उपाय, काल उपाय, भाव उपाय।

द्रव्य उपाय—

किसी उपाय-विशेष से ही स्वर्ण आदि धातु प्राप्त किया जा सकता है। इसकी विधि बताने वाला धातुवाद आदि।[2]

क्षेत्र उपाय—

क्षेत्र का परिकर्म करने का उपाय। हल आदि साधन क्षेत्र को तैयार करने के उपाय है।[3] नौका आदि समुद्र को पार करने का उपाय है।[4]

काल उपाय—

काल का ज्ञान करने का उपाय। घटिका, छाया आदि के द्वारा काल-ज्ञान करना।[5]

भाव-उपाय—

मानसिक भावो को जानने का उपाय।[6] देखें—दशवैकालिक हारिभद्रीयावृत्ति, पत्र ४०-४२।

स्थापना कर्म—

१. जिस दृष्टान्त से परमत के दूषणो का निर्देश कर स्वमत की स्थापना की जाती है, वह स्थापना कर्म कहलाता है। जैसे—सूत्रकृतांग के द्वितीय श्रुतस्कंध का पुडरीक नाम का पहला अध्ययन।

२ अथवा प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत दोषो का निराकरण कर अपने मत की स्थापना करना। जैसे— एक मालाकार अपने फूल बेचने के लिए बाजार मे चला जा रहा था। उसे टट्टी जाने की बाधा हुई। वह राजमार्ग पर ही बैठकर अपनी बाधा से निवृत्त हुआ। कही अपवाद न हो, इसलिए उसने उस मल पर फूल डाल दिए और लोगो के पूछने पर कहा कि यहा 'हिगुशीव' नाम का देव उत्पन्न हुआ है। लोगो ने भी वहा फूल चढाए। वहा एक मन्दिर बन गया। इस दृष्टान्त मे मालाकार ने प्राप्त दूषण का निराकरण कर अपने मत की स्थापना कर दी।

३. वाद काल मे सहसा व्यभिचारी हेतु को प्रस्तुत कर, उसके समर्थन मे जो दृष्टान्त दिया जाता है, उसे स्थापना कर्म कहते है।

प्रत्युत्पन्नविनाशी—

तत्काल उत्पन्न किसी दोष के निराकरण के लिए किया जाने वाला दृष्टान्त।

एक गाव मे एक वणिक् परिवार रहता था। उसके अनेक पुत्रिया और पुत्र-वधुए थी। एक बार नृत्यमंडली उस घर के पास ठहरी। घर की नारियां उन गधर्वों में आसक्त हो गई। बनिए ने यह जाना। उसने उपाय से उन गन्धर्वों के नृत्य मे विघ्न उपस्थित करना प्रारम्भ किया। उन्होने राजा से शिकायत की। राजा ने बनिए को बुलाया। बनिया बोला—मै तो अपना काम करता हू, प्रतिदिन इस समय पूजा करता हू। तब राजा ने उन गन्धर्वों

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र २४३।
२ वही, पत्र २४३।
३. वही, पत्र २४३।
४. दशवैकालिक, जिनदास चूर्णि, पृष्ठ ४४।
५. स्थानांगवृत्ति, पत्र २४३।
६ वही, पत्र २४३।

को अन्यत्र जाने का आदेश दे दिया। पूरे विवरण के लिए देखें---दशवैकालिक हारिभद्रीया वृत्ति, पत्र ४५।

आहरणतद्देश चार प्रकार का होता है --

१. अनुशिष्टि---

सद्गुणों के कथन से किसी वस्तु को पुष्ट करना। 'वह करो'---इस प्रकार जहां कहा जाता है, उसे अनुशिष्टि कहते हैं। जैसे---सुभद्रा ने अपने आरोप को निर्मूल करने के लिए चालनी से पानी खींचकर चम्पा नगरी के नगर द्वारों को खोला, तब वहां के महाजनों ने 'यह शीलवती है' ऐसा अनुशासन-कथन किया था।

२. उपलम्भ---

अपराध करने वाले शिष्यों को उपालम्भ देना। जैसे---विकाल वेला में स्थान पर आने से आर्या चन्दना ने साध्वी मृगावती को उपालम्भ दिया था।

३. पृच्छा ---

जिसमें क्या, कैसे, किसने आदि प्रश्नों का समावेश हो, वह दृष्टान्त। जिस प्रकार कोणिक ने भ० महावीर से प्रश्न किए थे।

कोणिक श्रेणिक का पुत्र था। एक बार उसने भगवान् महावीर से पूछा---भंते ! चक्रवर्ती मरकर कहां जाते है ? भगवान् ने कहा---सातवीं नरक में। उसने पूछा---मैं कहां जाऊंगा ? भगवान् ने कहा---छठी नरक में उसने फिर पूछा---भंते ! मैं सातवीं नरक में क्यों नहीं जाऊंगा ? भगवान् ने कहा---चक्रवर्ती सातवीं नरक में जाते हैं। उसने कहा---क्या मैं चक्रवर्ती नहीं हूं ? मेरे पास भी चक्रवर्ती की भांति हाथी-घोड़े आदि हैं। भगवान् बोले---तेरे पर रत्ननिधि नहीं है। यह सुनकर कोणिक कृत्रिम रत्न तैयार करवा कर भरत क्षेत्र को जीतने चला। वैताढ्य के गुफाद्वार पर कृतमालिक यक्ष ने उसे मार डाला। वह छठी नरक में गया।

यह 'पृच्छा ज्ञात' का उदाहरण है।

४. निश्रावचन---

किसी के माध्यम से दूसरे को प्रबोध देना। भगवान् महावीर ने गौतम के माध्यम से दूसरे अनेक शिष्यों को प्रबोध दिया है। उत्तराध्ययन का 'द्रुमपत्रक' अध्ययन इसका उदाहरण है --

आहरणतद्दोष के चार प्रकार है---

१. अधर्मयुक्त---

जो दृष्टान्त सुनने वाले के मन में अधर्म-बुद्धि पैदा करता है। किसी के पुत्र को मकोड़े ने काट खाया। उसके पिता ने सारे मकोड़ों के बिलों में गर्म जल डलवा कर उनका नाश कर दिया। चाणक्य ने यह सुना। उसके मन में अधर्म-बुद्धि उत्पन्न हुई और उसने भी उपाय से सभी चोरों को विष देकर मरवा डाला।

२. प्रतिलोम---

प्रतिकूलता का बोध देने वाला दृष्टान्त। इस प्रकार के दृष्टान्त का दूषण यह है कि वह श्रोता में दूसरों का अपकार करने की बुद्धि उत्पन्न करता है।

३. आत्मोपनीत---

जो दृष्टान्त परमत को दूषित करने के लिए दिया जाता है, किन्तु वह अपने इष्ट मत को ही दूषित कर देता है, जैसे---एक बार एक राजा ने पिंगल नाम के शिल्पी से तालाब के टूटने का कारण पूछा। उसने कहा---राजन् ! जहां तालाब टूटा है वहां यदि अमुक-अमुक गुण वाले पुरुष को जीवित गाड़ा जाए, तो फिर यह तालाब कभी नहीं टूटेगा। राजा ने अमात्य से ऐसे पुरुष को ढूंढने की आज्ञा दी। अमात्य ने कहा---राजन् ! यह पिंगल उक्त गुणों से युक्त है। राजा ने उसी पिंगल को वहां जीवित गड़वा दिया। पिंगल ने जो बात कही, वह उसी पर लागू हो गई।

४. दुरुपनीत—

जिस दृष्टान्त का उपसंहार (निगमन) दोष पूर्ण हो अथवा वैसा दृष्टान्त जो साध्य के लिए अनुपयोगी और स्वमत दूषित करने वाला हो, जैसे—

एक परिव्राजक जाल लेकर मछलियां पकड़ने जा रहा था। रास्ते में एक धूर्त मिला। उसने कुछ पूछा और परिव्राजक ने असंगत उत्तर देकर अपने-आप को दूषित व्यक्ति प्रमाणित कर दिया।

एक व्यक्ति ने परिव्राजक के कन्धे पर रखे हुए जाल को देखकर पूछा—महाराज! आपकी कथा छिद्र-वाली क्यों है?

परिव्राजक—यह मछली पकड़ने का जाल है।

व्यक्ति—तुम मछलियां खाते हो?

परि०—मैं मदिरा के साथ मछलियां खाता हूं।

व्यक्ति—तुम मदिरा पीते हो?

परि०—अकेला नहीं पीता, वेश्या के साथ पीता हूं।

व्यक्ति—तुम वेश्या के पास भी जाते हो? तुम धन कहां से लाते हो?

परि०—शत्रुओं के गलहत्था देकर।

व्यक्ति—तुम्हारे शत्रु कौन हैं?

परि०—जिनके घर में सेंध लगाता हूं।

व्यक्ति—तुम चोरी भी करते हो?

परि०—हां, जुआ खेलने के लिए धन चाहिए।

व्यक्ति—अरे, तुम जुआरी भी हो?

परि०—हां, क्यों नहीं। मैं दासी का पुत्र हूं, इसलिए जुआ खेलता हूं।

व्यक्ति ने सामान्य बात पूछी। किन्तु परिव्राजक उसको संक्षिप्त उत्तर न दे सका। अतः अन्त में उसकी पोपलीला खुल गई।

तद्‌वस्तुक—

किसी ने कहा—समुद्र तट पर एक बड़ा वृक्ष है। उसकी शाखाएं जल और स्थल दोनों पर है। उसके जो पत्ते जल में गिरते हैं वे जलचर जीव हो जाते हैं और जो स्थल में गिरते हैं वे स्थलचर जीव हो जाते हैं।

यह सुन दूसरे आदमी ने उसकी बात का विघटन करते हुए कहा—जो जल और स्थल के बीच में गिरते हैं, उनका क्या होता है?

प्रथम व्यक्ति के द्वारा उपन्यस्त वस्तु को पकड़कर उसका विघटन करना तद्‌वस्तुक नाम का उपन्यासोपनय होता है। इसे दृष्टान्त के आकार में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—जल और स्थल में पतित पत्र जलचर और स्थलचर जीव नहीं होते, जैसे—जल और स्थल के बीच में पतित पत्र। यदि जल और स्थल में पतित पत्र जलचर और स्थलचर जीव होते हों तो उनके बीच में पतित पत्र जलचर और स्थलचर का मिश्रित रूप होना चाहिए। ऐसा होता नहीं है, इसलिए यह बात मिथ्या है।

इसका दूसरा उदाहरण यह हो सकता है—जीव नित्य है, क्योंकि वह अमूर्त है, जैसे—आकाश। वादी द्वारा इस स्थापना के पश्चात् प्रतिवादी इसका निरसन करता है—जीव अनित्य है, क्योंकि वह अमूर्त है, जैसे—कर्म।

तदन्यवस्तुक—

इसमें वस्तु का परिवर्तन कर वादी के मत का विघटन किया जाता है। जल में पतित पत्र जलचर और स्थल में पतित पत्र स्थलचर हो जाते है। ऐसा कहने पर दूसरा व्यक्ति कहता है—गिरे हुए पत्र ही जलचर और स्थलचर

बनते है। कोई आदमी उन्हे गिराकर खाए तो या ले जाए उनका क्या होगा ? क्या वे मनुष्य शरीर के आश्रित जीव बनेंगे ? ऐसा नही होता, इसलिए वह भी नही होता।

प्रतिनिभ—

एक व्यक्ति ने यह घोषणा की कि जो व्यक्ति मुझे अपूर्व बात सुनाएगा, उसे मै लाख रुपए के मूल्य का कटोरा दूगा। इस घोषणा से प्रेरित हो बहुत लोग आए और उन्होने नई-नई बाते सुनाई। उसकी धारणा-शक्ति प्रबल थी। वह जो भी सुनता उसे धारण कर लेता। फिर सुनाने वालो मे कहता—यह अपूर्व नही है। इसे मैं पहले से ही जानता हू। इस प्रकार वह आने वालो को निराश लौटा देता। एक सिद्ध पुत्र आया। उसने कहा—

तुज्झ पिया मज्झ पिउणो, धारेइ अणूणय सयसहस्स।
जइ सुय पुव्व दिज्जउ, अह न सुय खोरय देहि ॥१॥

तेरा पिता मेरे पिता के लाख रुपये धारण कर रहा है। यदि यह श्रुत पूर्व है तो वे लाख रुपए लौटाओ और यदि यह श्रुत पूर्व नही है तो लक्ष मूल्य का कटोरा दो।

यह प्रतिछलात्मक आहरण है।

हेतु—

किसी ने पूछा—तुम किस लिए प्रव्रज्या का पालन कर रहे हो ? मुनि ने कहा—उसके बिना मोक्ष नही होता, इसलिए कर रहा हू।

मुनि ने पूछा—तुम अनाज किस लिए खरीद रहे हो ? वह बोला—खरीदे बिना वह मिलता नही।

मुनि बोले—खरीदे बिना अनाज नही मिलता इसलिए तुम खरीद रहे हो। इसी प्रकार प्रव्रज्या के बिना मोक्ष नही मिलता, इसलिए मै प्रव्रज्या का पालन कर रहा हू।[1]

यापक—

इसमे वादी समय का यापन करता है। वृत्तिकार ने यहा एक उदाहरण प्रस्तुत किया है—

एक स्त्री अपने पति से सन्तुष्ट नही थी। वह किसी जार पुरुष के साथ प्रेम करती थी। घर मे पति रहने से उसके कार्य मे वह बाधक-स्वरूप था। उसने एक उपाय सोचा। पति को उष्ट्र का लिंड (मल, मीगणा) देकर कहा—प्रत्येक मीगणा एक-एक रुपए मे बेचना। उससे कम किसी को मत बेचना। ऐसी शिक्षा दे उसको उज्जयिनी भेज दिया। पीछे से निर्भय होकर जार के साथ भोग करती रही। समय को बिताने के लिए पति को दूर स्थान पर भेज दिया। ऊट का लिंड एक रुपए मे कौन लेता, इसलिए पूरे लिंड बेचने मे उसे काफी समय लग गया। इस प्रकार उसने कालयापना की।

हेतु के पीछे बहुल विशेषण लगाने से प्रतिवादी वाच्य को जल्दी नही समझ पाता। यथा, वायु सचेतन होती है, दूसरे की प्रेरणा से तिर्यग और अनियत चलती है, गतिमान होने से, जैसे गाय का शरीर। यहा प्रतिवादी जल्दी से अनेकान्तिक आदि दोष बताने मे समर्थ नही होता। अथवा अप्रतीत व्याप्ति के द्वारा व्याप्ति-साधक अन्य प्रमाणो से शीघ्रता से साध्य की प्रतीति नहीं कर सकता। अपितु साध्य की प्रतीति मे कालक्षेप होता है, जैसे—बौद्धो की मान्यता के अनुसार वस्तु क्षणिक है, सत्त्व होने के कारण। सत्त्व हेतु सुनते ही प्रतिवादी को क्षणिकत्व का ज्ञान नही होता, क्योकि सत्त्व अर्थ-क्रियाकारी होता है। यदि सत्त्व अर्थ-क्रियाकारी न माना जाए तो वन्ध्या का पुत्र भी सत्त्व कहलाएगा। नित्य वस्तु एक रूप होती है, उसमे अर्थ-क्रिया न तो क्रम से होती है और न एक साथ होती है। इसलिए क्षण से भिन्न वस्तु मे अर्थ क्रिया कारित्व नही होता। इस प्रकार क्षणिक ही अर्थ-क्रियाकारी होता है। यह जो सत्त्व लक्षण वाला हेतु है, वह साध्य की सिद्धि मे काल का यापन करता है।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र २४७।

स्थापक--

साध्य को शीघ्र स्थापित करने वाला हेतु। वृत्तिकार ने इसके समर्थन मे एक लोक के मध्य का उदाहरण प्रस्तुत किया है--एक धूर्त परिव्राजक लोगो से कहता कि लोक के मध्य भाग मे देने से अधिक फल होता है, और लोक का मध्य मैं ही जानता हूं। गाव-गाव मे जाता और हर गाव मे लोक का मध्य स्थापित कर लोगो को ठगता। इस प्रकार माया से अपना काम बनाता। एक गाव मे एक श्रावक ने पूछा---लोक का मध्य एक ही होता है, गाव-गांव मे नही होता। इस प्रकार उसकी असत्यता को पकड लिया और कहा---तुम्हारे द्वारा बताया गया लोक का मध्य मध्य नही है। यहां अग्नि है, धुआं होने के कारण इस धूम हेतु मे साध्य अग्नि का ज्ञान शीघ्र हो जाता है। दूसरा पक्ष---वस्तु नित्यानित्य है, द्रव्य और पर्याय की अपेक्षा से। उसी प्रकार प्रतीत द्रव्य की अपेक्षा से नित्य और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है।

व्यंसक--

जो हेतु दूसरे को व्यामूढ बना देता है, उसे व्यसक कहा जाता है।

एक व्यक्ति अनाज से भरी गाडी लेकर नगर मे प्रवेश कर रहा था। रास्ते में उसे एक मरी हुई तित्तरी मिली। उसने उसे गाडी पर रख दिया। नगर मे एक धूर्त मिला। उसने गाडीवान से पूछा---'शकट-तित्तरी कितने मे दोगे? गाडीवान् ने सोचा कि यह गाडी पर रखी हुई तित्तरी का मोल पूछ रहा है। उसने कहा---तर्पणालोडित सत्तुओ के मोल पर इसे दूगा।' उस धूर्त ने दो-चार व्यक्तियों को साक्षी रखा और सत्तुओ के मोल पर तित्तरी सहित गाडी लेकर चलने लगा। गाडीवान ने प्रतिषेध किया। धूर्त ने कहा---इसने शकट-तित्तरी बेची है। अतः गाडी सहित तित्तरी मेरी होती है। गाडीवान विषण्ण हो गया।' यहा 'शकट-तित्तरी' यह व्यसक दूसरो को भ्रम मे डालने वाला हेतु है।

लूषक---

व्यसक हेतु के द्वारा आपादित दूषण का उसी प्रकार के हेतु से निराकरण करना।

शाकटिक ने धूर्त से कहा---मुझे तर्पणालोडित सत्तू दो। वह धूर्त उसे घर ले गया और अपनी भार्या से कहा---इसे सत्तू आलोडित कर दो। वह वैसा करने लगी। तब शाकटिक उस स्त्री का हाथ पकडकर उसे ले जाने लगा। धूर्त ने प्रतिरोध किया। शाकटिक ने कहा---मैंने शकट-तित्तरी तर्पणालोडित सत्तुओ के मोल बेची थी। मै उसे ही ले जा रहा हू। तू ने ही ऐसा कहा था। धूर्त अवाक् रह गया। शाकटिक द्वारा दिया गया हेतु लूषक था। इस हेतु ने उसे धूर्त के हेतु को नष्ट कर दिया।

११२ (सू० ५०४)

प्रस्तुत सूत्र में हेतु शब्द का दो अर्थों मे प्रयोग किया गया है---

१ प्रमाण

२. अनुमानाग---जिसके बिना साध्य की सिद्धि निश्चित रूप से न हो सके, वैसा साधन[1]। यह अनुमान-प्रमाण का एक अग है।

प्रस्तुत सूत्र के तीन अनुच्छेद है। तीसरे अनुच्छेद मे अनुमानाग हेतु प्रतिपादित है। प्रथम अनुच्छेद मे वाद-काल मे प्रयुक्त किए जाने वाले हेतु का वर्गीकरण है। द्वितीय अनुच्छेद में प्रमाण का निरूपण है। ज्ञेय के बोध मे ज्ञान ही साधकतम होता है। उसी का नाम प्रमाण है।[2] ज्ञान साधकतम होता है, इसीलिए उसे हेतु (साधन-वचन) कहा गया है।

आगम-साहित्य मे प्रमाण के दो वर्गीकरण प्राप्त होते है---एक नदी का और दूसरा अनुयोगद्वार का। नदी का

---

१. प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार, ३।११ :
निश्चितान्यथानुपपत्त्येकलक्षणो हेतु :।

२. प्रमाणनयतत्त्वालोकालकार, १।२-४।

वर्गीकरण दूसरे स्थान मे संगृहीत है।[1] अनुयोगद्वार का वर्गीकरण यहां संगृहीत है। प्रथम वर्गीकरण जैन परम्परानुसारी है और इस वर्गीकरण पर न्यायदर्शन का प्रभाव है।[2]

हेतु दो प्रकार के होते हैं—उपलब्धिहेतु (अस्तिहेतु) और अनुपलब्धिहेतु (नास्तिहेतु)। ये दोनो दो-दो प्रकार के होते हैं।

१. विधिसाधक उपलब्धिहेतु।

२. निषेधसाधक उपलब्धिहेतु।

१. निषेधसाधक अनुपलब्धिहेतु।

२. विधिसाधक अनुपलब्धिहेतु।

प्रमाणनयतत्त्वालोक के अनुसार इनका स्वरूप इस प्रकार है—

१. विधिसाधक उपलब्धिहेतु—विधिसाधक विधि हेतु—

साध्य से अविरुद्ध रूप मे उपलब्ध होने के कारण जो हेतु साध्य की सत्ता को सिद्ध करता है, वह अविरुद्धोपलब्धि कहलाता है।

अविरुद्ध उपलब्धि के छह प्रकार है—

१. अविरुद्ध-व्याप्य-उपलब्धि—

साध्य—शब्द परिणामी है।

हेतु—क्योकि वह प्रयत्न-जन्य है। यहां प्रयत्न-जन्यत्व व्याप्य है। वह परिणामित्व से अविरुद्ध है। इसलिए प्रयत्न-जन्यत्व से शब्द का परिणामित्व सिद्ध होता है।

२. अविरुद्ध-कार्य उपलब्धि—

साध्य—इस पर्वत पर अग्नि है।

हेतु क्योकि धुआ है।

धुआ अग्नि का कार्य है। वह अग्नि से अविरुद्ध है। इसलिए धूम-कार्य से पर्वत पर ही अग्नि की सिद्धि होती है।

३. अविरुद्ध-कारण-उपलब्धि—

साध्य—वर्षा होगी।

हेतु—क्योकि विशिष्ट प्रकार के बादल मंडरा रहे है।

बादलो की विशिष्ट-प्रकारता वर्षा का कारण है और उसका विरोधी नही है।

४. अविरुद्ध-पूर्वचर-उपलब्धि—

साध्य—एक मुहूर्त्त के बाद तिष्य नक्षत्र का उदय होगा।

हेतु—क्योकि पुनर्वसु का उदय हो चुका है।

'पुनर्वसु का उदय' यह हेतु 'तिष्योदय' साध्य का पूर्वचर है और उसका विरोधी नही है।

५. अविरुद्ध-उत्तरचर-उपलब्धि—

साध्य—एक मुहूर्त्त पहले पूर्वा-फाल्गुनी का उदय हुआ था।

हेतु—क्योकि उत्तर-फाल्गुनी का उदय हो चुका है।

उत्तर-फाल्गुनी का उदय पूर्वा-फाल्गुनी के उदय का निश्चित उत्तरवर्ती है।

६. अविरुद्ध-सहचर-उपलब्धि—

साध्य—इस आम मे रूप-विशेष है।

हेतु—क्योकि रस-विशेष आस्वाद्यमान है।

यहां रस (हेतु) रूप (साध्य) का नित्य सहचारी है।

२. निषेध-साधक उपलब्धि-हेतु—निषेधसाधक विधिहेतु—

१. देखें—२।८६ का टिप्पण।

२ न्यायदर्शन, १।१।३ : प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि

साध्य से विरुद्ध होने के कारण जो हेतु उसके अभाव को सिद्ध करता है, वह विरुद्धोपलब्धि कहलाता है।

विरुद्धोपलब्धि के सात प्रकार हैं—

१. स्वभाव-विरुद्ध-उपलब्धि—

साध्य—सर्वथा एकान्त नहीं है।

हेतु—क्योंकि अनेकान्त उपलब्ध हो रहा है।

अनेकान्त—एकान्त स्वभाव के विरुद्ध है।

२. विरुद्ध-व्याप्य-उपलब्धि—

साध्य—इस पुरुष का तत्त्व में निश्चय नहीं है।

हेतु—क्योंकि संदेह है।

'संदेह है' यह 'निश्चय नहीं है' इसका व्याप्य है, इसलिए सन्देह-दशा में निश्चय का अभाव होगा। ये दोनों विरोधी है।

३. विरुद्ध-कार्य-उपलब्धि—

साध्य—इस पुरुष का क्रोध शान्त नहीं हुआ है।

हेतु—क्योंकि मुख-विकार हो रहा है।

मुख-विकार क्रोध की विरोधी वस्तु का कार्य है।

४. विरुद्ध-कारण-उपलब्धि—

साध्य—यह महर्षि असत्य नहीं बोलता।

हेतु—क्योंकि इसका ज्ञान राग-द्वेष की कलुषता से रहित है।

यहां असत्य-वचन का विरोधी सत्य-वचन है और उसका कारण राग-द्वेष रहित ज्ञान-सम्पन्न होना है।

५. अविरुद्ध-पूर्वचर-उपलब्धि—

साध्य—एक मुहूर्त्त के पश्चात् पुष्य नक्षत्र का उदय नहीं होगा।

हेतु—क्योंकि अभी रोहिणी का उदय है।

यहां प्रतिषेध्य पुष्य नक्षत्र के उदय से विरुद्ध पूर्वचर रोहिणी नक्षत्र के उदय की उपलब्धि है। रोहिणी के पश्चात् मृगशीर्ष, आर्द्रा और पुनर्वसु का उदय होता है। फिर पुष्य का उदय होता है।

६. विरुद्ध-उत्तरचर-उपलब्धि—

साध्य—एक मुहूर्त्त के पहले मृगशिरा का उदय नहीं हुआ था।

हेतु—क्योंकि अभी पूर्वा-फाल्गुनी का उदय है।

यहां मृगशीर्ष का उदय प्रतिषेध्य है। पूर्वा-फाल्गुनी का उदय उसका विरोधी है। मृगशिरा के पश्चात् क्रमश: आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा और पूर्वा-फाल्गुनी का उदय होता है।

७. विरुद्ध-सहचर-उपलब्धि—

साध्य—इसे मिथ्या ज्ञान नहीं है।

हेतु—क्योंकि सम्यग्दर्शन है।

मिथ्या ज्ञान और सम्यग्दर्शन एक साथ नहीं रह सकते।

१. निषेध-साधक-अनुपलब्धि-हेतु—निषेध-साधक निषेधहेतु—

प्रतिषेध्य से अविरुद्ध होने के कारण जो हेतु उसका प्रतिषेध्य सिद्ध करता है, वह अविरुद्धानुपलब्धि कहलाता है। अविरुद्धानुपलब्धि के सात प्रकार हैं—

१. अविरुद्ध-स्वभाव-अनुपलब्धि—

साध्य—यहां घट नहीं है।

हेतु—क्योंकि उसका दृश्य स्वभाव उपलब्ध नहीं हो रहा है।

चक्षु का विषय होना घट का स्वभाव है। यहा इस अविरुद्ध स्वभाव से ही प्रतिषेध्य का प्रतिषेध है।

२. अविरुद्ध-व्यापक-अनुपलब्धि—

साध्य—यहा पनस नही है।

हेतु—क्योकि वृक्ष नही है।

वृक्ष व्यापक है, पनस व्याप्य। यह व्यापक की अनुपलब्धि मे व्याप्य का प्रतिषेध है।

३. अविरुद्ध-कार्य-अनुपलब्धि—

साध्य—यहां अप्रतिहत शक्ति वाले बीज नही है।

हेतु—क्योकि अकुर नही दीख रहे हैं।

यह अविरोधी कार्य की अनुपलब्धि के कारण का प्रतिषेध है।

४. अविरुद्ध-कारण-अनुपलब्धि—

साध्य—इस व्यक्ति मे प्रशमभाव नही है।

हेतु—क्योकि इसे सम्यग्दर्शन प्राप्त नही हुआ है।

प्रशमभाव—सम्यग्दर्शन का कार्य है। यह कारण के अभाव मे कार्य का प्रतिषेध है।

५. अविरुद्ध-पूर्वचर-अनुपलब्धि—

साध्य—एक मुहूर्त के पश्चात् स्वाति का उदय नही होगा।

हेतु—क्योकि अभी चित्रा का उदय नही है।

यह चित्रा के पूर्ववर्ती उदय के अभाव द्वारा स्वाति के उत्तरवर्ती उदय का प्रतिषेध है।

६ अविरुद्ध-उत्तरचर-अनुपलब्धि—

साध्य—एक मुहूर्त्त पहले पूर्वभाद्रपदा का उदय नही हुआ था।

हेतु—क्योकि उत्तरभाद्रपदा का उदय नही है।

यह उत्तरभाद्रपदा के उत्तरवर्ती उदय के अभाव के द्वारा पूर्वभाद्रपदा के पूर्ववर्ती उदय का प्रतिषेध है।

७ अविरुद्ध-सहचर-अनुपलब्धि—

साध्य—इसे सम्यग्ज्ञान प्राप्त नही है।

हेतु—क्योकि सम्यग्दर्शन नही है।

सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन दोनो नियत सहचारी है। इसलिए यह एक के अभाव मे दूसरे का प्रतिषेध है।

२ विधि-साधक अनुपलब्धि-हेतु—विधि-साधक निषेध हेतु—

साध्य के विरुद्ध रूप की उपलब्धि न होने के कारण जो हेतु उसकी सत्ता को सिद्ध करता है, वह विरुद्धानुपलब्धि कहलाता है। विरुद्धानुपलब्धि हेतु के पाच प्रकार है

१ विरुद्ध-कार्य-अनुपलब्धि—

साध्य—इसके शरीर मे रोग है।

हेतु—क्योकि स्वस्थ प्रवृत्तिया नही मिल रही है। स्वस्थ प्रवृत्तियो का भाव रोग-विरोधी कार्य है। उसकी यहां अनुपलब्धि है।

२. विरुद्ध-कारण-अनुपलब्धि—

साध्य—यह मनुष्य कष्ट मे फसा हुआ है।

हेतु—क्योकि इसे इष्ट का सयोग नही मिल रहा है। कष्ट के भाव का विरोधी कारण इष्ट सयोग है, वह यहा अनुपलब्ध है।

३. विरुद्ध-स्वभाव-अनुपलब्धि—

साध्य—वस्तु समूह अनेकान्तात्मक है।

हेतु—क्योंकि एकान्त स्वभाव ही अनुपलब्धि है।

४. विरुद्ध-व्यापक-अनुपलब्धि—

साध्य—यहां छाया है।

हेतु—क्योंकि उष्णता नहीं है।

५. विरुद्ध-सहचर-अनुपलब्धि—

साध्य—इसे मिथ्या ज्ञान प्राप्त है।

हेतु—क्योंकि इसे सम्यग्दर्शन प्राप्त नही है।

११३ (सू० ५११) :

प्रस्तुत सूत्र मे तिर्यञ्चजाति के आहार के प्रकार निर्दिष्ट है। उसका जो आहार सुखभक्ष्य सुखपरिणाम वाला होता है, उसे कंक के आहार की उपमा से समझाया गया है। कंक नाम का पक्षी दुर्जर आहार को भी सुख से खाता है और वह उसके सुख से पच जाता है।[1] उसका जो आहार तत्काल निगल जाने वाला होता है, उसे बिल मे प्रविष्ट होती हुई वस्तु की उपमा के द्वारा समझाया गया है।[2]

११४ (सू० ५१४) :

आशी का अर्थ दाढ (दंष्ट्रा) है। जिसकी दाढ मे विष होता है, वह आशीविष कहलाता है। वह दो प्रकार का होता है[3]—

१. कर्म-आशीविष (कर्म से आशीविष)

२. जाति-आशीविष (जाति से आशीविष)।

प्रस्तुत सूत्र मे जातीय आशीविष के प्रकार और उनकी क्षमता का निरूपण है।

११५ प्रविभावक (सू० ५२७) :

वृत्तिकार ने इसके दो सस्कृत रूप दिए हैं—प्रविभावयिता और प्रविभाजयिता। इसके अनुसार प्रस्तुत सूत्र के दो अर्थ फलित होते है—

१. कुछ पुरुष आख्यायक (प्रज्ञापक) होते है, किन्तु उदार क्रिया और प्रतिभा आदि गुणो से रहित होने के कारण धर्मशासन के प्रविभावयिता (प्रविभावक) नही होते।

२. कुछ पुरुष सूत्र-पाठ के आख्यायक होते है, किन्तु अर्थ के प्रविभाजयिता (विवेचक) नही होते।[4]

प्रविभावक का अर्थ हिंसा से विरमण या आचरण भी हो सकता है। इस अर्थ के आधार पर प्रस्तुत सूत्र का अर्थ इस प्रकार होगा—

१. कुछ पुरुष वक्ता होते है, किन्तु आचारवान् नही होते।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २५१ कङ्क—पक्षिविशेष . तस्याहारेणोपमा यत्र स मध्यपदलोपात् कङ्कोपम , अयमर्थो—यथा हि कङ्कस्य दुर्जरोऽपि स्वरूपेणाहार· सुखभक्ष्य सुखपरिणामश्च भवति एवं यस्तिरश्चां सुभक्ष. सुखपरिणामश्च स कङ्कोपम इति।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र २५१ . बिले प्रविशद्द्रव्य बिलमेव तेनोपमा यत्र स तथा, बिले हि अलब्धरसास्वाद झगिति यथा किल किञ्चित् प्रविशति एवं यस्तेषां गलबिले प्रविशति स तथोच्यते।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र २५१ आश्यो—दंष्ट्रास्तासु विष येषा ते आशीविषा , ते च कर्मतो जातितश्च, तत्र कर्मतस्तिर्यङ्मनुष्या कुतोऽपि गुणादाशीविषाः स्यु , देवाश्चासहस्रारात्शापादिना परव्यापादनादिति, उक्तञ्च—

आसी दाढा तग्गयमहाविसाऽऽसीविसा दुविह भेया।
ते कम्मजाइभेएण, णेगहा चउव्विहविगप्पा॥

४. स्थानांगवृत्ति, पत्र २५४।

२. कुछ पुरुष आचारवान् होते है, किन्तु वक्ता नही होते ।
३. कुछ पुरुष वक्ता भी होते है, और आचारवान् भी होते है ।
४. कुछ पुरुष न वक्ता होते है और न आचारवान् ही होते है ।

११६ (सू० ५३०)

इस वर्गीकरण मे भगवान् महावीर के समसामयिक सभी धार्मिक मतवादो का समावेश होता है। वृत्तिकार ने क्रियावादियो को आस्तिक और अक्रियावादियो को नास्तिक कहा है।[1] किन्तु यह ऐकान्तिक निरूपण नही है। अक्रियावादी भी आस्तिक होते है। विशेष जानकारी के लिए देखें —उत्तरज्झयणाणि १८।२३ का टिप्पण ।

प्रस्तुत आलापक मे नरक और स्वर्ग मे भी चार वादि-समवसरणो का अस्तित्व प्रतिपादित किया है, यह उल्लेखनीय बात है ।

११७ (सू० ५४१)

करण्डक—वस्त्र, आभरण आदि रखने का एक भाजन। यह वंश-शलाका को गूंथकर बनाया जाता है। इसके मुख की ऊंचाई कम और चौडाई अधिक होती है। प्रस्तुत सूत्र मे करण्डक की उपमा के द्वारा आचार्य के विभिन्न कोटियो का प्रतिपादन किया गया है।

श्वपाक-करण्डक मे चमडे का काम करने के उपकरण रहते है, इसलिए वह असार (सार-रहित) होता है।

वेश्या-करण्डक—लाक्षायुक्त स्वर्णाभरणो से भरा होता है, इसलिए वह श्वपाक-करण्डक की अपेक्षा सार होता है।

गृहपति-करण्डक—विशिष्ट मणि और स्वर्णाभरणो से भरा होने के कारण वेश्या-करण्डक की अपेक्षा सारतर होता है।

राज-करण्डक—अमूल्य रत्नो से भृत होने के कारण गृहपति-करण्डक की अपेक्षा सारतम होता है।

इसी प्रकार कुछ आचार्य श्रुत-विकल और आचार-विकल होते है, वे श्वपाक-करण्डक के समान असार (सार रहित) होते है।

कुछ आचार्य अल्पश्रुत होने पर भी वाणी के आडम्बर से मुग्धजनो को प्रभावित करने वाले होते है, उनकी तुलना वेश्या-करण्डक से की गई है।

कुछ आचार्य स्व-समय और पर-समय के ज्ञाता और आचार-सम्पन्न होते है, उनकी तुलना गृहपति-करण्डक से की गई है।

कुछ आचार्य सर्वगुण सम्पन्न होते है, वे राज-करण्डक के समान सारतम होते है।[2]

११८ (सू० ५४५)

मोम का गोला मृदु, लाख का गोला कठिन, काष्ठ का गोला कठिनतर और मिट्टी का गोला कठिनतम होता है। इसी प्रकार सत्त्व की तरतमता के कारण कष्ट सहने मे कुछ पुरुष मृदु, कुछ पुरुष दृढ, कुछ पुरुष दृढतर और कुछ पुरुष दृढतम होते है।[3]

आचार्य भिक्षु ने इस दृष्टांत को बडे रोचक ढग से विकसित किया है—

चार व्यक्ति साधु के पास गए। उनका उपदेश सुन वे धर्म से अनुरक्त हो गए और मन वैराग्य से भर गया। जब वे बाहर आए तो कुछ लोग उनकी आलोचना करने लगे कि तुम व्यर्थ ही भीतर जाकर बैठ गए, केवल समय ही गंवाया।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २५४ ।
२ स्थानांगवृत्ति, पत्र २५८ ।
३ स्थानांगवृत्ति, पत्र २५६ ।

जैसे—मोम का गोला सूर्य के ताप से पिघल जाता है, वैसे ही उन चारों में से एक व्यक्ति ऐसी आलोचना सुन धर्म से विरक्त हो गया।

शेष तीन व्यक्ति आलोचना करने वालों को उत्तर देकर अपने-अपने घर चले गए। घर में माता-पिता के सम्मुख धर्म की चर्चा की तो उन्होंने कठोर शब्दों में अपने पुत्रों को उपालंभ दिया और कहा—अपनी-अपनी स्त्री को लेकर हमारे घर से चले जाओ! तीनों में से एक घबरा गया। अपनी माता से कहा—तू मेरे जन्म की दाता है, तुझे छोड़ मैं साधुओं के पास नहीं जाऊंगा। सूर्य के ताप से न पिघलने वाला लाख का गोला अग्नि के ताप से पिघल गया।

शेष दो व्यक्ति अपने माता-पिता के पास दृढ़ रहे, घबराए नहीं। फिर दोनों अपनी-अपनी पत्नी के पास गए। पत्नी उनकी बात सुन बौखला उठी। डराते हुए पति को कहा—लो, संभालो अपने बच्चे और यह लो अपना घर। मैं तो कुए में गिरकर मर जाऊंगी। मुझ से ये बच्चे नहीं संभाले जाते। पत्नी के ये शब्द सुन दो में से एक घबरा गया और सोचा—अगर यह मर जाएगी तो सगे-संबंधियों में अच्छी नहीं लगेगी। इसलिए नारी से घबराकर धर्म से विरक्त हो गया। वह उठना-बैठना आदि सारा कार्य स्त्री के आदेश से करने लगा। सूर्य और अग्नि के ताप से न पिघलने वाला काष्ठ का गोला अग्नि में जलकर राख हो गया।

'मैं जहर खाकर मर जाऊंगी, फिर देखूंगी तुम आनंद से कैसे रहोगे'—स्त्री के द्वारा ऐसा डराने पर भी चौथा व्यक्ति डरा नहीं। वह अपने विचार में दृढ़ रहा और उसे करारा जवाब देता गया। मिट्टी का गोला अग्नि में ज्यों-ज्यों तपता है त्यों-त्यों लाल होता जाता है।

११९ (सू० ५४६)

लोह का गोला गुरु, त्रपु का गोला गुरुतर, ताम्र का गोला गुरुतम और सीसे का गोला अत्यन्त गुरु होता है। इसी प्रकार संवेदना, संस्कार या कर्म के भार की दृष्टि से कुछ पुरुष गुरु, कुछ पुरुष गुरुतर, कुछ पुरुष गुरुतम और कुछ पुरुष अत्यन्त गुरु होते हैं।

स्नेह भार की दृष्टि से भी इसकी व्याख्या की जा सकती है। पिता के प्रति स्नेहभार गुरु, माता के प्रति गुरुतर, पुत्र के प्रति गुरुतम और पत्नी के प्रति अत्यन्त गुरु होता है।[१]

१२० (५४७)

प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या गुण या मूल्य की दृष्टि से की जा सकती है। चांदी का गोला अल्प गुण या अल्प मूल्यवाला होता है। सोने का गोला अधिक गुण या अधिक मूल्यवाला होता है। रत्न का गोला अधिकतर गुण या अधिकतर मूल्यवाला होता है। वज्ररत्न (हीरे) का गोला अधिकतम गुण या अधिकतम मूल्यवाला होता है। इसी प्रकार समृद्धि, गुण या जीवन-मूल्यों की दृष्टि से पुरुषों में भी तरतमता होती है।

जिस मनुष्य की बुद्धि निर्मल होती है, वह चांदी के गोले के समान होता है। जिस मनुष्य में बुद्धि और आचार दोनों की चमक होती है, वह सोने के गोले के समान होता है। जिस मनुष्य में बुद्धि, आचार और पराक्रम तीनों होते हैं वह रत्न के गोले के समान होता है। जिस मनुष्य में बुद्धि, आचार, पराक्रम और सहानुभूति चारों होते हैं, वह वज्ररत्न के गोले के समान होता है।

१२१ (सू० ५४८)

असिपत्र की धार तेज होती है। वह छेद्य वस्तु को तुरंत छेद डालता है। जो पुरुष स्नेह-पाश को तुरंत छेद डालता है, उसकी तुलना असिपत्र से की गई है। जैसे धन्य ने अपनी पत्नी के एक वचन से प्रेरित हो तुरंत स्नेह-बंध छेद डाला।[२]

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र २५६।
२. देखें—स्थानांग, १०।१५।

करपत्र (करौत) छेद्य वस्तु को कालक्षेप (गमनागमन) से छिन्न करता है। जो पुरुष भावना के अभ्यास से स्नेह-पाश को छिन्न करता है, उसकी तुलना करपत्र से की गई है। जैसे—शालिभद्र ने क्रमश: स्नेहबंध को छिन्न किया था।[1]

क्षुरपत्र (उस्तरा) बालों को काट सकता है। इसी प्रकार जो पुरुष स्नेहबंध का थोड़ा छेद कर सकता है, वह क्षुर-पत्र के समान होता है।

कदम्बचीरिका (साधारण शस्त्र या घास की तीखी नोक) में छेदक शक्ति बहुत ही अल्प होती है। इसी प्रकार जो पुरुष स्नेहबंध के छेद का मनोरथ मात्र करता है, वह कदम्बचीरिका के समान होता है।[2]

१२२ (सू० ५५१)

वृत्तिकार ने बताया है कि समुद्गपक्षी और विततपक्षी—ये दोनों भरतक्षेत्र में नहीं होते, किन्तु सुदूरवर्ती द्वीप-समुद्रों में होते हैं।[3]

१२३ (सू० ५५३)

कुछ पक्षी धृष्ट या अज्ञ होने के कारण नीड से उतर सकते हैं, किंतु शिशु होने के कारण परिव्रजन नहीं कर सकते—इधर उधर घूम नहीं सकते।

कुछ पक्षी पुष्ट होने के कारण परिव्रजन कर सकते हैं, पर भीरु होने के कारण नीड से उतर नहीं सकते।

कुछ पक्षी अभय होने के कारण नीड से उतर सकते हैं और पुष्ट होने के कारण परिव्रजन भी कर सकते हैं।

कुछ पक्षी अति शिशु होने के कारण न नीड से उतर सकते हैं और न परिव्रजन ही कर सकते हैं।

कुछ भिक्षु भोजन आदि के अर्थी होने के कारण भिक्षाचर्या के लिए जाते हैं, पर ग्लान, आलसी या लज्जालु होने के कारण परिव्रजन नहीं कर सकते—घूम नहीं सकते।

कुछ भिक्षु भिक्षा के लिए परिव्रजन कर सकते हैं, पर सूत्र और अर्थ के अध्ययन में आसक्त होने के कारण भिक्षा के लिए जा नहीं सकते।[4]

१२४ (सू० ५५६)

प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त बुध शब्द के दो अर्थ किए जा सकते हैं—

विवेकवान् और आचारवान्।

कुछ पुरुष विवेक से भी बुध होते हैं और आचार से भी बुध होते हैं।

कुछ पुरुष विवेक से बुध होते हैं, किन्तु आचार से बुध नहीं होते हैं।

कुछ पुरुष विवेक से अबुध होते हैं, किन्तु आचार से बुध होते हैं।

कुछ पुरुष विवेक से भी अबुध होते हैं और आचार से भी अबुध होते हैं।

वृत्तिकार ने 'आचारवान् पंडित होता है' इसके समर्थन में एक श्लोक उद्धृत किया है—

पठकः पाठकश्चैव, ये चान्ये तत्त्वचिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो राजन्! यः क्रियावान् स पण्डितः॥

पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले और तत्त्व का चिन्तन करने वाले सब व्यसनी हैं। सही अर्थ में पंडित वही है जो आचारवान् है।[5]

---

१ देखें—स्थानांग, १०।१५।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र २५६।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र २५६ : समुद्गवत् पक्षौ येषां ते समुद्गक-पक्षिणः, समासान्त इन्, ते च बहिर्द्वीपसमुद्रेषु, एवं विततपक्षिणोऽपीति।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र २५६।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र २६०।

१२५ (सू० ५५८)

प्रथम भंग के लिए वृत्तिकार ने जिनकल्पिक का उदाहरण प्रस्तुत किया है। जिनकल्पी मुनि आत्मानुकंपी होते हैं। वे अपनी ही साधना में रत रहते है, दूसरो के हित का चिन्तन नही करते।

दूसरे भग के लिए वृत्तिकार ने तीर्थंकर का उदाहरण प्रस्तुत किया है। तीर्थंकर परानुकंपी होते है। वे कृतकार्य होने के कारण पर-हित की साधना मे ही रत रहते है।

तीसरे भग के लिए वृत्तिकार ने स्थविरकल्पिक का उदाहरण प्रस्तुत किया है। वे उभयानुकपी होते हैं। वे अपनी और दूसरो—दोनो की हित-चिन्ता करते है।

चतुर्थ भंग के लिए वृत्तिकार ने कालशौकारिक का उदाहरण प्रस्तुत किया है। वह अत्यन्त क्रूर था। उसे न अपने हित की चिन्ता थी और न दूसरो के हित की।

इसकी अन्य नयों से भी व्याख्या की जा सकती है, जैसे—

स्वार्थ साधक, परार्थ के लिए समर्पित, स्वार्थ और परार्थ की सतुलित साधना करने वाला, आलसी या अकर्मण्य—इन्हे क्रमश चारो भगो के उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है।

१२६-१३० (सू० ५६६-५७०)

देखे—उत्तरज्झयणाणि ३६।२५६ का टिप्पण।

आसुर आदि अपध्वंस गीता की आसुरी सपदा से तुलनीय है—

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च, क्रोध पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य, पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥[१]
काममाश्रित्य दुष्पूर, दम्भमानमदान्विता.।
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रता. ॥[२]
चिन्तामपरिमेया च, प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा, एतावदिति निश्चिता. ॥[३]
आशापाशशतैर्बद्धा, कामक्रोधपरायणा.।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥[४]

१३१ संज्ञाएं (सू० ५७८)

देखे—१०।१०५ का टिप्पण।

१३२ (सू० ५९७) :

प्रस्तुत सूत्र मे उपसर्गचतुष्टय का प्रतिपादन किया गया है। उपसर्ग का अर्थ बाधा या कष्ट है। कर्ता के भेद से यह चार प्रकार का होता है—

१. दिव्यउपसर्ग, २. मानुषउपसर्ग, ३. तिर्यग्योनिजउपसर्ग, ४. आत्मसंचेतनीयउपसर्ग।

---

१. श्रीमद्भगवद्गीता, १६।४।
२. वही, १६।१०।
३. वही, १६।११।
४. वही, १६।१२।

मूलाचार मे आत्मसंचेतनीय के स्थान पर चेतनिक का उल्लेख मिलता है।[1] इस उपसर्गचतुष्टय के साङ्ख्य-सम्मत दुःखत्रय से तुलना की जा सकती है। साङ्ख्यदर्शन के अनुसार दुःख तीन प्रकार का होता है—

१. आध्यात्मिक, २. आधिभौतिक, ३. आधिदैविक।

इनमें से आध्यात्मिक दुःख शारीर (शरीर मे जात) और मानस (मन मे जात) भेद से दो प्रकार का है। वात (वायु), पित्त और कफ की विषमता से उत्पन्न दुःख को शारीर तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या, विषाद से उत्पन्न एव अभीष्ट विषय की अप्राप्ति से उत्पन्न दुःख को मानस कहते है।

ये सभी दुःख आभ्यन्तर उपायो (शरीरान्तर्गत पदार्थ) से उत्पन्न होने के कारण 'आध्यात्मिक' कहलाते हैं।

बाह्य (शरीरादिबहिर्भूत) उपायों से साध्य दुःख दो प्रकार का होता है—

१ आधिभौतिक, २ आधिदैविक।

उनमे से मनुष्य, पशु, पक्षी, सरीसृप (सर्पादि विसर्पणशील) तथा स्थावर (स्थितिशील वृक्षादि) से उत्पन्न होने वाला दुःख आधिभौतिक है और यक्ष, राक्षस, विनायक (विघ्नकारी देवजातिविशेष) ग्रह आदि के आवेश (कुप्रभाव) से होने वाला दुःख आधिदैविक कहलाता है।[2]

दिव्यउपसर्ग—आधिदैविक
मानुष और तिर्यग्योनिज—आधिभौतिक
आत्मसंचेतनीय—आध्यात्मिक

१३३ (सू० ६०२) :

जिस व्यक्ति के मन मे आसक्ति अल्प होती है, उसके जो पुण्यकर्म का बध होता है वह उसे अशुभ के चक्र मे फसाने वाला नही होता, उसमे मूढता उत्पन्न करने वाला नही होता। इस प्रसग मे भरत चक्रवर्ती का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है।

जिस व्यक्ति के मन मे आसक्ति प्रबल होती है, उसके जो पुण्यकर्म का बध होता है वह उसे अशुभ की ओर ले जाने वाला, उसमे मूढता उत्पन्न करने वाला होता है। इस प्रसग मे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। इसी प्रसग को लक्ष्य मे रखकर योगीन्दु ने लिखा था—

पुण्णेण होइ विहवो, विहवेण मओ मएण मइमोहो।
मइमोहेण य पाव, ता पुण्ण अम्ह मा होउ॥

पुण्य से वैभव होता है, वैभव से मद, मद से मतिमोह, मतिमोह से पाप। पाप मुझे इष्ट नही है, इसलिए पुण्य भी मुझे इष्ट नहीं है।

जो अशुभकर्म तीव्र मोह से अर्जित नही होते, वे शुभ कर्म के निमित्त बन जाते है। इस प्रसंग मे उदाहरण के लिए वे सब व्यक्ति प्रस्तुत किए जा सकते है, जो दुःख से संतप्त होकर शुभ की ओर प्रवृत्त होते है। इसी आशय को लक्ष्य कर कपिल मुनि ने गाया था[3]—

अधुवे असासयमि, ससारमि दुक्खपउराए।
किं नाम होज्ज त कम्मय जेणाह दोग्गइ न गच्छेज्जा॥

अध्रुव, अशाश्वत और दुःखबहुल ससार मे ऐसा कौन-सा कर्म है, जिससे मैं दुर्गति मे न जाऊं। इसी भावना के आधार पर ईश्वरकृष्ण ने लिखा था[4]—

---

१ मूलाचार, ७।१५८.
जे केई उवसग्गा, देव माणुस तिरिक्ख चेदणिया।
२ सांख्यकारिका, तत्त्वकौमुदी, पृष्ठ ३-४.
३. उत्तराध्ययन, ८।१।
४. सांख्यकारिका, श्लोक १।

दु:खत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ॥

आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक रूप त्रिविध दु:ख के अभिघात से उसको विनष्ट करने वाले हेतु (उपाय) के विषय मे जिज्ञासा उत्पन्न होती है। यदि यह कहा जाए कि दु:ख विनाशकारी दृष्ट (लौकिक) उपाय के विद्यमान होने के कारण यह (शास्त्रीय उपाय सम्बन्धी जिज्ञासा) व्यर्थ है, तो उत्तर यह है कि ऐसी बात नही है, क्योकि लौकिक उपाय से दु:खत्रय का एकात (अवश्यभावी) और अत्यन्त (पुन: उत्पत्तिहीन) अभाव नही होता।

जिस व्यक्ति के तीन आसक्तिपूर्वक अशुभकर्म का बंध होता है, वह उसमे मूढता उत्पन्न करता रहता है।

१३४ (सू० ६०३):

कर्मवाद का सामान्य नियम है—सुचीर्ण कर्म का शुभ फल होता है और दुश्चीर्ण कर्म का अशुभ फल होता है।

इस सिद्धान्त के आधार पर प्रथम और चतुर्थ भग की सरचना हुई है। द्वितीय और तृतीय भग इस सामान्य नियम के अपवाद है। इन भगो के द्वारा कर्म के सक्रमण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। यहा जैसा कर्म किया जाता है, वैसा ही फल भुगतना पडता है—इस सिद्धात का संक्रमण-सिद्धान्त मे अतिक्रमण होता है।

सक्रमण का अर्थ है एक कर्म-प्रकृति का दूसरे कर्म मे परिवर्तन। यह मूल प्रकृतियो मे नही होता, केवल कर्म की उत्तर प्रकृतियो मे होता है। वेदनीय कर्म की दो उत्तर प्रकृतिया है—सात (शुभ) वेदनीय और असात (अशुभ) वेदनीय। किसी व्यक्ति ने सातवेदनीय कर्म का बध किया। वह किसी समय प्रबल अशुभ कर्म का बध करता है तब अशुभ कर्म पुद्गलो की प्रचुरता पूर्वार्जित शुभ कर्म—पुद्गलो को अशुभ के रूप मे परिवर्तित कर देती है। इस व्याख्या के अनुसार दूसरा भग घटित होता है—बधनकाल का शुभ कर्म सक्रमण के द्वारा विपाककाल मे अशुभ हो जाता है।

इसी प्रकार बधनकाल का अशुभकर्म शुभकर्म पुद्गलो की प्रचुरता से संक्रान्त होकर विपाककाल मे शुभ हो जाता है।

बौद्धसाहित्य मे निर्ग्रन्थो के मुह से सक्रमण-विरोधी तथा परिवर्तन-विरोधी बातें कहलाई गई है, जैसे—

और फिर भिक्षुओ! मैं उन निगठो को ऐसा कहता हू—तो क्या मानते हो आवुसो निगठो! जो यह इसी जन्म मे वेदनीय (भोगा जानेवाला) कर्म है, वह उपक्रम से=या प्रधान से सपराय (दूसरे जन्म मे) वेदनीय किया जा सकता है?

नही, आवुस!

और जो यह जन्मान्तर (सपराय) वेदनीय कर्म है, वह—उपक्रम से=या प्रधान से इस जन्म मे वेदनीय किया जा सकता है?

नही, आवुस!

तो क्या मानते हो आवुसो! निगठो! जो यह सुख-वेदनीय (सुख भोग करने वाला) कर्म है, क्या वह उपक्रम से=या प्रधान से दु:खवेदनीय किया जा सकता है?

नही, आवुस!

तो क्या मानते हो आवुसो! निगठो! जो यह दु:ख-वेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रम से=या प्रधान से सुख-वेदनीय किया जा सकता है?

नही, आवुस!

तो क्या मानते हो आवुसो! निगठो! जो यह परिपक्व अवस्था (=बुढापा) वेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रम से=या प्रधान से अपरिपक्व-वेदनीय किया जा सकता है?

नही, आवुस!

तो क्या मानते हो आवुसो! निगंठो! जो यह अपरिपक्व (=शैशव, जवानी) वेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रम से=या प्रधान से परिपक्व-वेदनीय किया जा सकता है?

नहीं, आवुस !

तो क्या मानते हो आवुसो ! निगंठो ! जो यह बहु-वेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रम से = या प्रधान से अल्प वेदनीय किया जा सकता है ?

नहीं, आवुस !

तो क्या मानते हो आवुसो ! निगंठो ! जो यह अल्प वेदनीय (= भोगानेवाला) कर्म है, क्या वह उपक्रम से = या प्रधान से बहुवेदनीय किया जा सकता है ?

नहीं, आवुस !

तो क्या मानते हो आवुसो ! निगंठो ! जो यह अवेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रम से = या प्रधान से वेदनीय किया जा सकता है ?

नहीं, आवुस !

इस प्रकार आवुसो ! निगंठो ! जो यह वेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रम से = या प्रधान से अवेदनीय किया जा सकता है ?

नहीं, आवुस !

इस प्रकार आवुसो ! निगंठो ! जो यह इसी जन्म मे वेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रम से = या प्रधान से पर जन्म मे वेदनीय किया जा सकता है ?

नहीं, आवुस !

तो क्या मानते हो आवुसो ! निगंठो ! जो यह पर जन्म मे वेदनीय कर्म है, वह उपक्रम से = या प्रधान से इस जन्म मे वेदनीय किया जा सकता है ? ऐसा होने पर आयुष्मान् निगंठों का उपक्रम निष्फल हो जाता है, प्रधान निष्फल हो जाता है।[1]

उक्त संवाद की काल्पनिकता प्रस्तुत सूत्र मे प्रतिपादित संक्रमण से स्पष्ट हो जाती है। यहां ४।२६०-२६६ का टिप्पण द्रष्टव्य है।

१३५ (सू० ६०६) :

इसकी विस्तृत जानकारी के लिए देखें —नंदी, सूत्र ३८।

१३६ (सू० ६२५) :

सूत्र ६२३ मे शरीर की उत्पत्ति के हेतु बतलाए गए हैं और प्रस्तुत सूत्र में उसकी निष्पत्ति (निर्वृत्ति) के हेतु निर्दिष्ट हैं। उत्पत्ति और निष्पत्ति एक ही क्रिया के दो विभाग है। उत्पत्ति का अर्थ है प्रारम्भ और निष्पत्ति का अर्थ है प्रारब्ध की पूर्णता।

१३७ (सू० ६३१) :

सरागसंयम—व्यक्ति-भेद से संयम दो प्रकार का होता है —

सरागसंयम—कषाययुक्त मुनि का संयम।

वीतरागसंयम—उपशान्त या क्षीण कषाय वाले मुनि का संयम।

वीतरागसंयमी के आयुष्य का बंध नहीं होता। इसीलिए यहां सरागसंयम (सकषायचारित्र) को देवायु के बंध का कारण बतलाया गया है।

---

१. मज्झिमनिकाय, देवदहसुत्त, ३।१।१।

संयमासंयम—आंशिक रूप से व्रत स्वीकार करने वाले गृहस्थ के जीवन में संयम और असंयम दोनों होते हैं, इसलिए उसका संयम संयमासंयम कहलाता है।

बालतपःकर्म—मिथ्यादृष्टि का तपश्चरण।

अकामनिर्जरा—निर्जरा की अभिलाषा के बिना कर्मनिर्जरण का हेतुभूत आचरण।

१३८ (सू० ६३२) :

१. तत—इसका अर्थ है—तंत्रीयुक्त वाद्य।

भरत ने ततवाद्यों में विपंची एवं चित्रा को प्रमुख तथा कच्छपी एवं घोषका को उनका अंगभूत माना है।[1]

चित्र वीणा सात तन्त्रियों से निबद्ध होती थी और उन तन्त्रियों का वादन अंगुलियों से किया जाता था। विपंची में नौ तन्त्रियां होती थीं, जिनका वादन 'कोण' (वीणावादन का दण्ड) के द्वारा किया जाता था।[2]

भरत ने कच्छपी तथा घोषका के स्वरूप के विषय में कुछ नहीं कहा है। संगीत रत्नाकर के अनुसार घोषका एकतन्त्री वाली वीणा है।[3] कच्छपी सात तन्त्रियों से कम वाली वीणा होनी चाहिए।

आचारचूला[4] तथा निशीथ[5] में वीणा, विपंची, बद्धीसग, तुणय, पवण, तुंबवीणिया, ढंकुण और झोडय—ये वाद्य तत के अन्तर्गत गिनाए हैं।

संगीत दामोदर में तत के २९ प्रकार गिनाए हैं—अलावणी, ब्रह्मवीणा, किन्नरी, लघुकिन्नरी, विपञ्ची, वल्लकी, ज्येष्ठा, चित्रा, घोषवती, जया, हस्तिका, कुब्जिका, कूर्मी, सारंगी, परिवादिनी, त्रिशवी, शतचन्द्री, नकुलौष्ठी, ढसवी, ऊदंबरी, पिनाकी, निःशंक, शुष्फल, गदावारणहस्त, रुद्र, स्वरमण्डल, कपिलास, मधुस्यंदी और घोषा।[6]

२. वितत—चर्म से आनद्ध वाद्यों को वितत कहा जाता है। गीत और वाद्य के साथ ताल एवं लय के प्रदर्शनार्थ इन चर्मावनद्ध वाद्यों का प्रयोग किया जाता था। इनमें मृदंग, पवण (तंत्रीयुक्त अवनद्ध वाद्य), दर्दुर (कलशाकार चर्म से मढ़ा वाद्य), भेरी, डिंडिम, मृदंग आदि मुख्य हैं। ये वाद्य कोमल भावनाओं का उद्दीपन करने के साथ-साथ वीरोचित उत्साह बढ़ाने में भी कार्यकर होते हैं। अतः इनका उपयोग धार्मिक समारम्भों तथा युद्धों में भी रहा है।

भरत के चर्मावनद्ध वाद्यों में मृदंग तथा दर्दुर प्रधान हैं तथा मल्लकी और पटह गौण।

आयारचूला[7] में मृदंग, नन्दीमृदंग और झल्लरी को तथा निशीथ[8] में मृदंग, नन्दी, झल्लरी, डमरुक, मड्डुय, सदुय, प्रदेश, गोलुकी आदि वाद्यों को इसके अन्तर्गत गिनाया है।

मुरज, पटह, ढक्का, विश्वक, दर्पवाद्य, घण, पणव, सरुहा, लाव, जाहव, त्रिवली, करट, कमठ, भेरी, कुडुक्का, हुडुक्का, झनसमुरली, झल्ली, ढुक्कली, दौडी, शान, डमरू, ढमुकी, मड्डु, कुंडली, स्तुग, दुदुभी, अंग, मर्दल, अणीकस्थ—ये वाद्य भी वितत के अन्तर्गत माने जाते हैं।[9]

३. घन—कांस्य आदि धातुओं से निर्मित वाद्य घन कहलाते हैं। करताल, कांस्यवन, नयघटा, शुक्तिका, कण्ठिका, पटवाद्य, पट्टाघोष, घर्घर, झंझताल, मंजीर, कर्त्तरी, उष्कूक आदि इसके कई प्रकार हैं।

---

१ भरतनाट्य ३३।१५ :
विपंची चैव चित्रा च दारवीष्वङ्गसंज्ञिते।
कच्छपीघोषकादीनि प्रत्यंगानि तथैव च ॥

२. वही, २९।११४ :
सप्ततंत्री भवेत् चित्रा विपंची नवतंत्रिका।
विपंची कोणवाद्या स्याच्चित्रा चांगुलिवादना ॥

३. संगीतरत्नाकर, वाद्याध्याय, पृष्ठ २४८ :
घोषकश्चैकतंत्रिका।

४. अंगसुत्ताणि, भाग १, पृष्ठ २०९, आयारचूला ११।२।

५ निसीहज्झयण १७।१३८।

६ प्राचीन भारत के वाद्ययंत्र—कल्याण (हिन्दु संस्कृति अंक) पृष्ठ ७२१-७२२ से उद्धृत।

७ अंगसुत्ताणि, भाग १, पृष्ठ २०९, आयारचूला ११।१।

८. निसीहज्झयण १७।१३७।

९. प्राचीन भारत के वाद्ययंत्र—कल्याण (हिन्दु संस्कृति अंक) पृष्ठ ७२१-७२२।

आयारचूला में ताल शब्दो के अन्तर्गत ताल, कंसताल, लत्तिय, गोहिय और किरिकिरिया को गिनाया है।[1]

निशीथ मे घन शब्द के अन्तर्गत ताल, कंसताल, लत्तिय, गोहिय, मकरिय, कच्छभी, महति, सणालिया और वालिया—ये वाद्य उल्लिखित हुए हैं।[2]

४. शुषिर —फूंक से बजाए जाने वाले वाद्य। भरत मुनि ने इसके अन्तर्गत वंश को अगभूत और शंख तथा डिक्किनी आदि वाद्यों को प्रत्यंग माना है।[3]

यह माना जाता था कि वंशवादक को गीत सम्बन्धी सभी गुणो से युक्त तथा बलसंपन्न और दृढानिल होना चाहिए।[4] जिसमे प्राणशक्ति की न्यूनता होती है वह शुषिर वाद्यो को बजाने मे सफल नहीं हो सकता। भरत के नाट्यशास्त्र के तीसवे अध्याय में इनके वादन का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

वंशी प्रमुख वाद्य था और वह वेणुदण्ड से बनायी जाती थी।

१३९ (सू० ६३३) :

१. अंचित—नाट्यशास्त्र मे १०८ करण माने जाते है। करण का अर्थ है—अंग तथा प्रत्यंग की क्रियाओं को एक साथ करना। अंचित तेवीसवा करण है। इस अभिनय-भंगीया में पादो को स्वस्तिक मे रखा जाता है तथा दक्षिण हस्त को कटिहस्त [नृत्तहस्त की एक मुद्रा] मे और वामहस्त को व्यावृत्त तथा परिवृत्त कर नासिका के पास अंचित करने से यह मुद्रा बनती है।[5]

सिर पर से सम्बन्धित तेरह अभियानों मे यह आठवा है। कोई चिन्तातुर मनुष्य हाथ पर ठोडी टिकाकर सिर को नीचा रखे, उस मुद्रा को 'अंचित' माना जाता है। राजप्रश्नीय मे इसे २५वा नाट्यभेद माना है।

२. रिभित—इसके विषय मे जानकारी प्राप्त नहीं है।

३. आरभट—माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उद्‌भ्रान्त आदि चेष्टाओ से युक्त तथा वध, बन्धन आदि से उद्धत नाटक को आरभटी कहा जाता था।[6] इसके चार प्रकार है।[7]

राजप्रश्नीय सूत्र मे आरभट को नाट्य-भेद का अठारहवा प्रकार माना है।[8]

४. भसोल—राजप्रश्नीय सूत्र मे 'भसोल' को नाट्यभेद का उनतीसवा प्रकार माना है।[9]

स्थानांगवृत्तिकार ने परम्परागत जानकारी के अभाव मे इनका कोई विवरण नही दिया है।[10]

१४० (सू० ६३४) :

भरत नाट्यशास्त्र [३१।२८८-४१४] मे सप्तरूप के नाम से प्रख्यात प्राचीन गीतों का विस्तृत वर्णन है। इन गीतों के नाम ये है—मद्रक, अपरान्तक, प्रकरी, ओवेणक, उल्लोप्यक, रोविन्दक और उत्तर।[11]

प्रस्तुत सूत्रगत चार प्रकार के गेयों मे से दो का—रोविन्दक और मद्रक—का भरत नाट्योक्त रोविन्दक और मद्रक—से नाम साम्य है।

---

१ अंगसुत्ताणि, भाग १, पृष्ठ २०६, आयारचूला ११।३।

२ निसीहज्झयण १७।१३९।

३. भरतनाट्य शास्त्र ३३।१७ :
अंगलक्षणसंयुक्तो, विज्ञेयो वंश एव हि।
शंखस्तु डिक्किनी चैव, प्रत्यंगे परिकीर्तिते॥

४ वही, ३३।४६४।

५ भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ ४२५।

६ आप्टे डिक्शनरी मे आरभट शब्द के अन्तर्गत उद्धृत—
मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधोद्‌भ्रान्तादिचेष्टितैः।
संयुक्ता वधबन्धाद्यैरुद्धतारभटी मता॥

७ साहित्यदर्पण ४२०।

८ राजप्रश्नीय।

९ राजप्रश्नीय सू० १०९।

१० स्थानांगवृत्ति, पत्र २७२
नाट्यगेयाभिनयसूत्राणि सम्प्रदायाभावान्न विवृतानि।

११ भरतनाट्यशास्त्र ३१।२८७।

१४१ (सू० ६४४) :

काव्य के मुख्य प्रकार दो ही होते है—गद्य और पद्य। गद्य-काव्य छन्द आदि के बंधन से मुक्त होता है। पद्य-काव्य छन्द से निबद्ध होता है। कथ्य और गेय—ये दोनो काव्य के स्वतन्त्र प्रकार नही है। कथ्य का समावेश गद्य मे और गेय का समावेश पद्य मे होता है, अत ये वस्तुत. गद्य और पद्य के ही अवान्तर प्रकार है। फिर भी स्वरूप की विशिष्टता के कारण इन्हे स्वतन्त्र स्थान दिया गया है। कथ्य-काव्य कथात्मक और गेय-काव्य संगीतात्मक होता है।[1]

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र २७४ : काव्यं—ग्रन्थ —गद्यम् अच्छन्दोनिबद्धं शस्त्रपरिज्ञाध्ययनवत् पद्य—छन्दोनिबद्ध विमुक्त्यध्ययनवत्, कथायां साधु कथ्यं ज्ञाताध्ययनवत्, गेय—गानयोग्यं, इह गद्यपद्यान्तर्भावेऽपीतरयो कथागानधर्म्मविशिष्टतया विशेषो विवक्षित इति।

पंचमं ठाणं

पंचम स्थान

आमुख

प्रस्तुत स्थान में पांच की सख्या से सबद्ध विषय सकलित है। यह स्थान तीन उद्देशकों मे विभक्त है। इस वर्गीकरण मे तात्त्विक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, ज्योतिष, योग आदि अनेक विषय है। इसमे कुछ विषय ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ सरस, आकर्षक और व्यावहारिक भी हैं। निदर्शन के लिए कुछेक प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

मलिनता या अशुद्धि आ जाने पर वस्तु की शुद्धि की जाती है। किन्तु, सबकी शुद्धि एक ही साधन से नहीं होती। उसके भिन्न-भिन्न साधन होते हैं। पांच की सख्या के सन्दर्भ मे यहा शुद्धि के पाच साधनों का उल्लेख है—

मिट्टी शुद्धि का साधन है। इससे बर्तन आदि साफ किए जाते है। पानी शुद्धि का साधन है। इससे वस्त्र, पात्र आदि अनेक वस्तुओं की सफाई की जाती है। अग्नि शुद्धि का साधन है। इससे सोना, चादी आदि की शुद्धि की जाती है। मन्त्र भी शुद्धि का साधन है। इससे वायुमण्डल शुद्ध किया जाता है और जाति से बहिष्कृत व्यक्ति को शुद्ध कर जाति में सम्मिलित किया जाता है। ब्रह्मचर्य शुद्धि का साधन है। इसके आचरण से आत्मा की शुद्धि होती है[1]।

मन की दो अवस्थाए होती हैं—सुषुप्ति और जागृति। जो जागता है, वह पाता है और जो सोता है, वह खोता है। जागृति हर व्यक्ति के लिए आवश्यक है। साधना का अर्थ ही है—निरन्तर जागरण। जब सयत साधक अपनी साधना मे सुप्त होता है तो उस समय उसके शब्द, रूप, गध, रस और स्पर्श जागते है। जब ये जागृत होते है तब साधक साधना से दूर हो जाता है। जब सयत साधक अपनी साधना में जागृत रहता है तब शब्द, रूप, गध और स्पर्श सुप्त रहते है, उस समय मन पर इनका प्रभाव नही रहता। वे अकिंचित्कर हो जाते हैं।

असयत मनुष्य साधक नहीं होता। वह चाहे जागृत (निद्रामुक्त) हो अथवा सुप्त हो—दोनों ही अवस्थाओं मे उसके शब्द, रूप, गध, रस और स्पर्श जागृत रहते हैं, व्यक्ति को प्रभावित किए रहते हैं[2]।

बहिर्मुख और अन्तर्मुख ये दो मन की अवस्थाएं हैं। जब व्यक्ति बहिर्मुख होता है तब मन को बाहर दौड़ने के लिए पांच इन्द्रियों का खुला क्षेत्र मिल जाता है। कभी वह मधुर और कटु शब्दो मे रम जाता है तो कभी नाना प्रकार के रूपों व दृश्यों मे मुग्ध हो जाता है। कभी मीठी सुगध को लेने मे तन्मय बन जाता है तो कभी दुर्गन्ध से दूर हटने का प्रयास करता है। कभी खट्टा, मीठा, कडुआ, कसैला और तिक्त रसों मे आसक्त होता है तो कभी मृदु और कठोर स्पर्श मे अपने को खो देता है। इन पाच इन्द्रियों के विषयो में मन घूमता रहता है। यह मन की चचल अवस्था है। जब मन अन्तर्मुखी बनना चाहता है तो उसे बाह्य भटकन को छोडकर भीतर आना होता है - अपने भीतर झांकना होता है। भीतरी जगत् बाह्य दुनिया से अधिक विचित्र और रहस्यमय है[3]।

प्रतिमा साधना की पद्धति है। इसमे तपस्या भी की जाती है और कायोत्सर्ग भी किया जाता है। पांचवा स्थानक होने के कारण यहा सख्या की दृष्टि से पांच प्रतिमाओं का उल्लेख है—भद्रा, सुभद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा और भद्रोत्तरा[4]। दूसरे स्थान में प्रतिमाओं के आलापक में भद्रोत्तरा को छोड शेष चार प्रतिमाओं का नामोल्लेख हुआ है।

मन की दो अवस्थाए होती हैं—स्थिर और चंचल। पानी स्थिर और शान्त रहता है तभी उसमे वस्तु का स्पष्ट प्रतिबिम्ब हो सकता है। वात, पित और कफ के सम (शान्त) रहने से शरीर स्वस्थ रहता है। मन की स्थिरता से ही कुछ

---

१ ५।१६४।
२ ५।१२५-१२७।
३. ५।१३५।
४. ५।१८।

उपलब्ध होना है। चचलता उपलब्धि मे बाधक होती है। अवधिज्ञान मन की शांतता से उपलब्ध होता है। अभूतपूर्व दृश्यों के देखने से यदि मन क्षुब्ध या कुतूहल मे भर जाता है तो वह उपलब्ध हुआ अवधिज्ञान भी वापस चला जाता है। यदि मन क्षुब्ध नहीं होता है तो अवधि ज्ञान टिका रहता है[1]।

साधना व्यक्तिगत होती है। जब उसे सामूहिकता का रूप दिया जाता है, तब कई अपेक्षाए और जुड जाती हैं। सामूहिकता मे व्यवस्था होती है और नियम होते है। जहा नियम होते है वहा उनके भग का भी प्रसग बनता है। उसकी शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त भी आवश्यक होता है। प्रायश्चित्त देने का अधिकारी कौन हो, किसकी बात को प्रामाणिक माना जाए—यह प्रश्न सघबद्धता मे सहज ही उठता है। प्रस्तुत स्थान मे इस विषय की परम्परा भी सकलित है[2]। यह विषय मुख्यत प्रायश्चित्त सूत्रो से सबद्ध है। व्यवहार सूत्र मे यह चर्चित भी है। किन्तु, प्रस्तुत सूत्र मे सख्या का सकलन है, इसलिए इसमे विषयों की विविधता होना स्वाभाविक है। इसीलिए इसमे आचार, दर्शन, गणित, इतिहास और परम्परा—इन सभी विषयों का सग्रह किया गया है।

---

१. ५।२१।

२. ५।१२४।

पंचमं ठाणं : पढमो उद्देसो

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
महव्वय-अणुव्वय-पदं	**महाव्रत-अणुव्रत-पदम्**	**महाव्रत-अणुव्रत-पद**
१. **पंच महव्वया पण्णत्ता, तं जहा— सव्वाओ पाणातिवायाओ॰ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं,॰ सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं।**	पञ्च महाव्रतानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— सर्वस्माद् प्राणातिपाताद् विरमणं, सर्वस्माद् मृषावादाद् विरमण, सर्वस्माद् अदत्तादानाद् विरमणं, सर्वस्माद् मैथुनाद् विरमण, सर्वस्माद् परिग्रहाद् विरमणम्।	१. महाव्रत पांच है— १. सर्व प्राणातिपात से विरमण, २. सर्व मृषावाद से विरमण, ३. सर्व अदत्तादान से विरमण, ४. सर्व मैथुन से विरमण, ५. सर्व परिग्रह से विरमण।
२. **पंचाणुव्वया पण्णत्ता, तं जहा— थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, थूलाओ मुसावयाओ वेरमणं, थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सदारसंतोसे, इच्छापरिमाणे।**	पञ्चाणुव्रतानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— स्थूलाद् प्राणातिपाताद् विरमण, स्थूलाद् मृषावादाद् विरमण, स्थूलाद् अदत्तादानाद् विरमण, स्वदारसंतोषः, इच्छापरिमाणम्।	२. अणुव्रत पांच हैं— १. स्थूल प्राणातिपात से विरमण, २. स्थूल मृषावाद से विरमण, ३. स्थूल अदत्तादान से विरमण, ४. स्वदारसन्तोष, ५. इच्छापरिमाण।
इंदिय-विसय-पदं	**इन्द्रिय-विषय-पदम्**	**इन्द्रिय-विषय-पद**
३. **पंच वण्णा पण्णत्ता, तं जहा— किण्हा, णीला, लोहिता, हालिद्दा, सुक्किल्ला।**	पञ्च वर्णाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— कृष्णाः, नीलाः, लोहिताः, हारिद्राः, शुक्लाः।	३. वर्ण पांच है— १. कृष्ण, २. नील, ३. रक्त, ४. पीत, ५. शुक्ल।
४. **पंच रसा पण्णत्ता, तं जहा— तित्ता,॰ कडुया, कसाया, अंबिला° मधुरा।**	पञ्च रसाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— तिक्ताः, कटुकाः, कषायाः, अम्लाः, मधुराः।	४. रस पांच हैं— १. तीता, २. कड़ुआ, ३. कसैला, ४. खट्टा, ५. मीठा।
५. **पंच कामगुणा पण्णत्ता, तं जहा— सद्दा, रूवा, गंधा, रसा, फासा।**	पञ्च कामगुणाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— शब्दाः, रूपाणि, गन्धाः, रसाः, स्पर्शाः।	५. कामगुण[1] पांच है— १. शब्द, २. रूप, ३. गंध, ४. रस, ५. स्पर्श।
६. **पंचहिं ठाणेहिं जीवा सज्जंति, तं जहा— सद्देहिं, ॰रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं,° फासेहिं।**	पञ्चसु स्थानेषु जीवाः सज्यन्ते, तद्यथा— शब्देषु, रूपेषु, गन्धेषु, रसेषु, स्पर्शेषु।	६. जीव पांच स्थानों से लिप्त होते हैं[2]— १. शब्द से, २. रूप से, ३. गंध से, ४. रस से, ५. स्पर्श से।

७. °पंचहिं ठाणेहिं जीवा रज्जंति, तं जहा—
सद्देहिं, रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं, फासेहिं।

पञ्चसु स्थानेषु जीवा: रज्यन्ते, तद्यथा—
शब्देषु, रूपेषु, गन्धेषु, रसेषु, स्पर्शेषु।

७. जीव पांच स्थानों से अनुरक्त होते हैं—
१. शब्द से, २. रूप से, ३. गंध से, ४. रस से, ५. स्पर्श से।

८. पंचहिं ठाणेहिं जीवा मुच्छंति, तं जहा—
सद्देहिं, रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं, फासेहिं।

पञ्चसु स्थानेषु जीवा: मूर्च्छन्ति, तद्यथा—
शब्देषु, रूपेसु, गन्धेषु, रसेषु, स्पर्शेषु।

८. जीव पांच स्थानों से मूर्च्छित होते हैं—
१. शब्द से, २. रूप से, ३. गंध से, ४. रस से, ५. स्पर्श से।

९. पंचहिं ठाणेहिं जीवा गिज्झंति, तं जहा—
सद्देहिं, रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं, फासेहिं।

पञ्चसु स्थानेषु जीवा गृध्यन्ति, तद्यथा—
शब्देषु, रूपेषु, गन्धेषु, रसेषु, स्पर्शेषु।

९. जीव पांच स्थानों से गृद्ध होते हैं—
१. शब्द से, २. रूप से, ३. गंध से, ४. रस से, ५. स्पर्श से।

१०. पंचहिं ठाणेहिं जीवा अज्झोववज्जंति, तं जहा—
सद्देहिं, रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं, फासेहिं।°

पञ्चसु स्थानेषु जीवा: अध्युपपद्यन्ते, तद्यथा—
शब्देषु, रूपेषु, गन्धेषु, रसेषु, स्पर्शेषु।

१०. जीव पांच स्थानों से अध्युपपन्न—आसक्त होते हैं—
१. शब्द से, २. रूप से, ३. गंध से, ४. रस से, ५. स्पर्श से।

११. पंचहिं ठाणेहिं जीवा विणिघायमावज्जंति, तं जहा—
सद्देहिं, °रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं°, फासेहिं।

पञ्चसु स्थानेषु जीवा: विनिघातमापद्यन्ते, तद्यथा—
शब्देषु, रूपेषु, गन्धेषु, रसेषु, स्पर्शेषु।

११. जीव पांच स्थानों से विनिघात-मरण या विनाश को प्राप्त होते हैं—
१. शब्द से, २. रूप से, ३. गंध से, ४. रस से, ५. स्पर्श से।

१२. पंच ठाणा अपरिण्णाता जीवाणं अहिताए असुभाए अखमाए अणिस्सेस्साए °अणाणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—
सद्दा, °रूवा, गंधा, रसा,° फासा।

पञ्च स्थानानि अपरिज्ञातानि जीवानां अहिताय अशुभाय अक्षमाय अनि:श्रेयसाय अनानुगामिकत्वाय भवन्ति, तद्यथा—
शब्दा:, रूपाणि, गन्धा:, रसा:, स्पर्शा:।

१२. ये पांच स्थान, जब परिज्ञात नहीं होते तब वे जीवों के अहित, अशुभ, अक्षम, अनि:श्रेयस तथा अननुगामिकता के हेतु होते हैं—
१. शब्द, २. रूप, ३. गंध, ४. रस, ५. स्पर्श।

१३. पंच ठाणा सुपरिण्णाता जीवाणं हिताए सुभाए °खमाए णिस्सेस्साए° आणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—
सद्दा, °रूवा, गंधा, रसा,° फासा।

पञ्च स्थानानि सुपरिज्ञातानि जीवानां हिताय शुभाय क्षमाय नि:श्रेयसाय आनुगामिकत्वाय भवन्ति, तद्यथा—
शब्दा:, रूपाणि, गन्धा:, रसा:, स्पर्शा:।

१३. ये पांच स्थान जब सुपरिज्ञात होते हैं तब वे जीवों के हित, शुभ, क्षम, नि:श्रेयस तथा अनुगामिकता के हेतु होते हैं—
१. शब्द, २. रूप, ३. गंध, ४. रस, ५. स्पर्श।

१४. पंच ठाणा अपरिण्णाता जीवाणं दुग्गतिगमणाए भवंति, तं जहा—
सद्दा, °रूवा, गंधा, रसा°, फासा।

पञ्च स्थानानि अपरिज्ञातानि जीवानां दुर्गतिगमनाय भवन्ति, तद्यथा—
शब्दा:, रूपाणि, गन्धा:, रसा:, स्पर्शा:।

१४. ये पांच स्थान जब परिज्ञात नहीं होते तब वे जीवों के दुर्गति-गमन के हेतु होते हैं—
१. शब्द, २. रूप, ३. गंध, ४. रस, ५. स्पर्श।

१५. पंच ठाणा सुपरिण्णाता जीवाणं सुग्गतिगमणाए भवंति, तं जहा— सद्दा, •रूवा, गंधा, रसा,° फासा।

पञ्च स्थानानि सुपरिज्ञातानि जीवानां सुगतिगमनाय भवन्ति, तद्यथा— शब्दाः, रूपाणि, गन्धाः, रसाः, स्पर्शाः।

१५. ये पांच स्थान जब सुपरिज्ञात होते हैं तब वे जीवों के सुगतिगमन के हेतु होते है— १. शब्द, २. रूप, ३. गंध, ४. रस, ५. स्पर्श।

आसव-संवर-पदं

आश्रव-संवर-पदम्

आश्रव-संवर-पद

१६. पंचहिं ठाणेहिं जीवा दोग्गतिं गच्छंति, तं जहा— पाणातिवातेणं, •मुसावाएणं, अदिण्णादाणेणं, मेहुणेणं,° परिग्गहेणं।

पञ्चभिः स्थानैः जीवाः दुर्गतिं गच्छन्ति, तद्यथा— प्राणातिपातेन, मृषावादेन, अदत्तादानेन, मैथुनेन, परिग्रहेण।

१६. पांच स्थानों से जीव दुर्गति को प्राप्त होते हैं— १. प्राणातिपात से, २. मृषावाद से, ३. अदत्तादान से, ४. मैथुन से, ५. परिग्रह से।

१७. पंचहिं ठाणेहिं जीवा सोगतिं गच्छंति, तं जहा— पाणातिवातवेरमणेणं, •मुसावायवेरमणेणं, अदिण्णादाणवेरमणेणं, मेहुणवेरमणेणं°, परिग्गहवेरमणेणं।

पञ्चभिः स्थानैः जीवाः सुगतिं गच्छन्ति, तद्यथा— प्राणातिपातविरमणेन, मृषावादविरमणेन, अदत्तादानविरमणेन, मैथुनविरमणेन, परिग्रहविरमणेन।

१७. पांच स्थानों से जीव सुगति को प्राप्त होते हैं—

१. प्राणातिपात के विरमण से,
२. मृषावाद के विरमण से,
३. अदत्तादान के विरमण से,
४. मैथुन के विरमण से,
५. परिग्रहण के विरमण से।

पडिमा-पदं

प्रतिमा-पदम्

प्रतिमा-पद

१८. पंच पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—भद्दा, सुभद्दा, महाभद्दा, सव्वतोभद्दा, भद्दुत्तरपडिमा।

पञ्च प्रतिमाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— भद्रा, सुभद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा, भद्रोत्तरप्रतिमा।

१८. प्रतिमाएँ पांच हैं— १. भद्रा, २. सुभद्रा, ३. महाभद्रा, ४. सर्वतोभद्रा, ५. भद्रोत्तरप्रतिमा।

थावरकाय-पदं

स्थावरकाय-पदम्

स्थावरकाय-पद

१९. पंच थावरकाया पण्णत्ता, तं जहा— इंदे थावरकाए, बंभे थावरकाए, सिप्पे थावरकाए, सम्मती थावरकाए, पायावच्चे थावरकाए।

पञ्च स्थावरकायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— इन्द्रः स्थावरकायः, ब्रह्मा स्थावरकायः, शिल्पः स्थावरकायः, सम्मतिः स्थावरकायः, प्राजापत्यः स्थावरकायः।

१९. स्थावरकाय पांच हैं—

१. इन्द्रस्थावरकाय—पृथ्वीकाय,
२. ब्रह्मस्थावरकाय—अप्काय,
३. शिल्पस्थावरकाय—तेजस्काय,
४. सम्मतिस्थावरकाय—वायुकाय,
५. प्राजापत्यस्थावरकाय—वनस्पतिकाय

२०. पंच थावरकायाधिपती पण्णत्ता, तं जहा— इंदे थावरकायाधिपती, •बंभे थावरकायाधिपती, सिप्पे थावरकायाधिपती, सम्मती थावरकायाधिपती,° पायावच्चे थावरकायाधिपती।

पञ्च स्थावरकायाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— इन्द्रः स्थावरकायाधिपतिः, ब्रह्मा स्थावरकायाधिपतिः, शिल्पः स्थावरकायाधिपतिः, सम्मतिः स्थावरकायधिपतिः, प्राजापत्यः स्थावरकायाधिपतिः।

२०. पांच स्थावरकाय के अधिपति पांच हैं—

१. इन्द्रस्थावरकायाधिपति,
२. ब्रह्मस्थावरकायाधिपति,
३. शिल्पस्थावरकायाधिपति,
४. सम्मतिस्थावरकायाधिपति,
५. प्राजापत्यस्थावरकायाधिपति।

अइसेस-णाण-दंसण-पदं

२१. पंचहिं ठाणेहिं ओहिदंसणे समुप्पज्जिउकामेवि तप्पढमयाए खंभाएज्जा, तं जहा—

१. अप्पभूतं वा पुढविं पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा।

२. कुंथुरासिभूतं वा पुढविं पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा।

३. महतिमहालयं वा महोरगसरीरं पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा।

४. देवं वा महिड्ढियं *महज्जुइयं महाणुभागं महायसं महाबलं° महासोक्खं पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा।

५. पुरेसु वा पोराणाइं उरालाइं महतिमहालयाइं महाणिहाणाइं पहीणसामियाइं पहीणसेउयाइं पहीणगुत्तागाराइं उच्छिण्णसामियाइं उच्छिण्णसेउयाइं उच्छिण्णगुत्तागाराइं जाइं इमाइं गामागर-णगरखेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासम-संबाह-सण्णिवेसेसु सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु णगर-णिद्धमणेसु सुसाण-सुण्णागार-गिरिकंदर-संति-सेलोवट्ठावण-भवणगिहेसु संणिक्खित्ताइं चिट्ठंति, ताइं वा पासित्ता तप्पढमताए खंभाएज्जा।

इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं ओहिदंसणे समुप्पज्जिउकामे तप्पढमयाए खंभाएज्जा।

अतिशेष-ज्ञान-दर्शन-पदम्

पञ्चभिः स्थानैः अवधिदर्शनं समुत्पत्तुकाममपि तत्प्रथमताया स्कभ्नीयात्, तद्यथा—

१. अल्पभूता वा पृथ्वी दृष्ट्वा तत्प्रथमतायां स्कभ्नीयात्।

२. कुन्थुराशिभृता वा पृथ्वी दृष्ट्वा तत्प्रथमताया स्कभ्नीयात्।

३. महातिमहत् वा महोरगशरीर दृष्ट्वा तत्प्रथमताया स्कभ्नीयात्।

४. देव वा महर्द्धिक महाद्युतिक महानुभाग महायशस महाबल महासौख्य दृष्ट्वा तत्प्रथमताया स्कभ्नीयात्।

५. पुरेषु वा पुराणानि उदाराणि महातिमहान्ति महानिधानानि प्रहीणस्वामिकानि प्रहीणसेतुकानि प्रहीणगोत्रागाराणि उच्छिन्नस्वामिकानि उच्छिन्नसेतुकानि उच्छिन्नगोत्रागाराणि यानि इमानि ग्रामाकर-नगरखेट-कर्बट-मडम्ब-द्रोणमुख-पत्तनाऽश्रम-सवाध-सन्निवेशेषु शृङ्गाटक—त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथपथेषु नगर-क्षालेषु श्मशान-शून्यागार-गिरिकन्दरा-शान्ति-शैलोपस्थापन-भवनगृहेषु सन्निक्षिप्तानि तिष्ठन्ति, तानि वा दृष्ट्वा तत्प्रथमतायां स्कभ्नीयात्—

इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः अवधिदर्शन समुत्पत्तुकाम तत्प्रथमताया स्कभ्नीयात्।

अतिशेष-ज्ञान-दर्शन-पद

२१. पांच स्थानों से तत्काल उत्पन्न होता-होता अवधि-दर्शन अपने प्रारम्भिक क्षणों में ही विचलित हो जाता है[१]—

१. पृथ्वी को छोटा-सा[२] देखकर वह अपने प्रारम्भिक क्षणों में ही विचलित हो जाता है।

२. कुंथु जैसे छोटे-छोटे जीवों से पृथ्वी को आकीर्ण देखकर वह अपने प्रारम्भिक क्षणों में ही विचलित हो जाता है।

३. बहुत बड़े महोरगों—सर्पों को देखकर वह अपने प्रारम्भिक क्षणों में ही विचलित हो जाता है।

४. महर्द्धिक, महाद्युतिक, महानुभाग, महान् यशस्वी, महाबल तथा महासौख्य-वाले देवों को देखकर वह अपने प्रारम्भिक क्षणों में ही विचलित हो जाता है।

५. नगरों में बड़े-बड़े खजानों को देखकर, जिनके स्वामी मर चुके हैं, जिनके मार्ग प्रायः नष्ट हो चुके हैं, जिनके नाम और संकेत विस्मृतप्राय हो चुके हैं, जिनके स्वामी उच्छिन्न हो चुके हैं, जिनके मार्ग उच्छिन्न हो चुके हैं, जिनके नाम और संकेत उच्छिन्न हो चुके हैं, जो ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, संबाह, सन्निवेश आदि में तथा शृङ्गाटकों[८], तिराहों[९], चौकों[१०], चौराहों[११], देवकुलों[१२], राजमार्गों[१३], गलियों[१४], नालियों[१५], श्मशानों, शून्यगृहों, गिरिकन्दराओं शान्तिगृहों[१६], शैलगृहों[१७], उपस्थानगृहों[१८] और भवन-गृहों[१९] में दबे हुए हैं, उन्हें देखकर वह अपने प्रारम्भिक क्षणों में ही विचलित हो जाता है।

इन पांच स्थानों से तत्काल उत्पन्न होता-होता अवधि-दर्शन अपने प्रारम्भिक क्षणों में ही विचलित हो जाता है।

२२. पंचहिं ठाणेहिं केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जिउकामे तप्पढमयाए णो खंभाएज्जा, तं जहा—

१. अप्पभूतं वा पुढविं पासित्ता तप्पढमयाए णो खंभाएज्जा।

२. °कुंथुरासिभूतं वा पुढविं पासित्ता तप्पढमयाए णो खंभएज्जा।

३. महतिमहालयं वा महोरगसरीरं पासित्ता तप्पढमयाए णो खंभाएज्जा।

४. देवं वा महिड्डियं महज्जुइयं महाणुभागं महायसं महाबलं महासोक्खं पासित्ता तप्पढमयाए णो खंभाएज्जा।

५. पुरेसु वा पोराणाइं उरालाइं महतिमहालयाइं महाणिहाणाइं पहीणसामियाइं पहीणसेउयाइं पहीणगुत्तागाराइं उच्छिण्णसामियाइं उच्छिण्णसेउयाइं उच्छिण्णगुत्तागाराइं जाइं इमाइं गामागर-णगरखेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासम-संबाह-सण्णिवेसेसु सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु णगर-णिद्धमणेसु सुसाण-सुण्णागार-गिरिकंदर-संति-सेलोवट्ठावण° भवणगिहेसु सण्णिक्खित्ताइं चिट्ठंति, ताइं वा पासित्ता तप्पढमयाए णो खंभाएज्जा।

इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं °केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जिउकामे तप्पढमयाए° णो खंभाएज्जा।

पञ्चभिः स्थानैः केवलवरज्ञानदर्शनं समुत्पत्तुकामं तत्प्रथमतायां नो स्कभ्नीयात्, तद्यथा—

१. अल्पभूतां वा पृथ्वी दृष्ट्वा तत्प्रथमतायां नो स्कभ्नीयात्।

२. कुन्थुराशिभूतां वा पृथ्वी दृष्ट्वा तत्प्रथमतायां नो स्कभ्नीयात्।

३. महातिमहत् वा महोरगशरीरं दृष्ट्वा तत्प्रथमतायां नो स्कभ्नीयात्।

४. देवं वा महर्द्धिकं महाद्युतिकं महानुभागं महायशसं महाबलं महासौख्यं दृष्ट्वा तत्प्रथमतायां नो स्कभ्नीयात्।

५. पुरेषु वा पुराणानि उदाराणि महातिमहान्ति महानिधानानि प्रहीणस्वामिकानि प्रहीणसेतुकानि प्रहीणगोत्रागाराणि उच्छिन्नस्वामिकानि उच्छिन्नसेतुकानि उच्छिन्नगोत्रागाराणि यानि इमानि ग्रामागर-नगर-खेट-कर्बट-मडम्ब-द्रोणमुख-पत्तनाश्रम-सबाध-सन्निवेषेषु-शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेसु नगर-क्षालेषु श्मशान-शून्यागार-गिरिकन्दरा-शान्ति-शैलोपस्थापन भवनगृहेषु सन्निक्षिप्तानि तिष्ठन्ति, तानि वा दृष्ट्वा तत्प्रथमतायां नो स्कभ्नीयात्।

इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः केवलवरज्ञानदर्शनं समुत्पत्तुकामं तत्प्रथमतायां नो स्कभ्नीयात्।

२२. पांच स्थानों से तत्काल उत्पन्न होता-होता केवलवरज्ञानदर्शन अपने प्रारम्भिक क्षणो मे विचलित नही होता[१]—

१. पृथ्वी को छोटा-सा देखकर वह अपने प्रारम्भिक क्षणो मे विचलित नही होता।

२. कुंथु जैसे छोटे-छोटे जीवो से पृथ्वी को आकीर्ण देखकर वह अपने प्रारम्भिक क्षणो मे विचलित नही होता।

३. बहुत बडे-बड़े महोरगो को देखकर वह अपने प्रारम्भिक क्षणो मे विचलित नही होता।

४. महर्द्धिक, महाद्युतिक, महानुभाग, महान् यशस्वी, महाबल तथा महासौख्य-वाले देवो को देखकर वह अपने प्रारम्भिक क्षणो मे विचलित नही होता।

५. नगरों मे बडे-बडे खजानो को देखकर, जिनके स्वामी मर चुके है, जिनके मार्ग प्राय. नष्ट हो चुके है, जिनके नाम और संकेत विस्मृतप्राय हो चुके है, जिनके स्वामी उच्छिन्न हो चुके है, जिनके मार्ग उच्छिन्न हो चुके है, जिनके नाम और संकेत उच्छिन्न हो चुके है, जो ग्राम आकर, नगर, खेट, कर्बट, मडब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, संबाह, सन्निवेश आदि मे तथा शृङ्गाटको, तिराहो, चौकों, चौराहो, देवकुलो, राजमार्गों, गलियों, नालियों, श्मशानों, शून्यगृहों, गिरिकन्दराओ, शान्तिगृहों, शैलगृहो, उपस्थानगृहो और भवनगृहों मे दबे हुए हैं, उन्हे देखकर वह अपने प्रारम्भिक क्षणो मे विचलित नहीं होता।

इन पांच स्थानो से तत्काल उत्पन्न होता-होता केवलवरज्ञानदर्शन अपने प्रारम्भिक क्षणो मे विचलित नही होता।

सरीरं-पदं

२३. णेरइयाणं सरीरगा पंचवण्णा पंचरसा पण्णत्ता, तं जहा—
किण्हा, °णीला, लोहिता, हालिद्दा,° सुक्किल्ला।
तित्ता, कडुया, कसाया, अंबिला,° मधुरा।

२४. एवं—णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

२५. पंच सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—
ओरालिए, वेउव्विए, आहारए, तेयए, कम्मए।

२६. ओरालियसरीरे पंचवण्णे पंचरसे पण्णत्ते, तं जहा—
किण्हे, °णीले, लोहिते, हालिद्दे,° सुक्किल्ले। तित्ते, °कडुए, कसाए, अंबिले,° महुरे।

२७. °वेउव्वियसरीरे पंचवण्णे पंचरसे पण्णत्ते, तं जहा—
किण्हे, णीले, लोहिते, हालिद्दे, सुक्किल्ले।
तित्ते, कडुए, कसाए, अंबिले, महुरे।

२८. आहारयसरीरे पंचवण्णे पंचरसे पण्णत्ते, तं जहा—
किण्हे, णीले, लोहिते, हालिद्दे, सुक्किल्ले।
तित्ते, कडुए, कसाए, अंबिले, महुरे।

२९. तेययसरीरे पंचवण्णे पंचरसे पण्णत्ते, तं जहा—

शरीर-पदम्

नैरयिकाणां शरीरकाणि पञ्चवर्णानि पञ्चरसानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कृष्णानि, नीलानि, लोहितानि, हारिद्राणि, शुक्लानि।
तिक्तानि, कटुकानि, कषायाणि, अम्लानि, मधुराणि।

एवम्—निरंतर यावत् वैमानिकानाम्।

पञ्च शरीरकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
औदारिक, वैक्रिय, आहारकं, तैजस, कर्मकम्।

औदारिकशरीरं पञ्चवर्णं पञ्चरसं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र, शुक्ल।
तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल, मधुरम्।

वैक्रियशरीर पञ्चवर्ण पञ्चरस प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र, शुक्ल।
तिक्त, कटुकं, कषाय, अम्ल, मधुरम्।

आहारकशरीर पञ्जवर्ण पञ्चरस प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्रं, शुक्ल।
तिक्तं, कटुक, कषाय, अम्ल, मधुरम्।

तैजसशरीरं पञ्चवर्ण पञ्चरसं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

शरीर-पद

२३. नैरयिक जीवों के शरीर पांच वर्ण तथा पांच रस वाले होते हैं—
१. कृष्ण, २. नील, ३. लोहित, ४. पीत, ५. शुक्ल।
१. तिक्त, २. कटुक, ३. कषाय, ४. अम्ल, ५. मधुर।

२४. इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डक-जीवों के शरीर पांच वर्ण तथा पांच रस वाले होते हैं।

२५. शरीर पांच प्रकार के होते हैं[१]—
१. औदारिक, २. वैक्रिय, ३. आहारक, ४. तैजस, ५. कर्मक।

२६. औदारिक शरीर पांच वर्ण तथा पांच रस वाला होता है—
१. कृष्ण, २. नील, ३. लोहित, ४. पीत, ५. शुक्ल।
१. तिक्त, २. कटुक, ३. कषाय, ४. अम्ल, ५. मधुर।

२७. वैक्रिय शरीर पांच वर्ण तथा पांच रस वाला होता है—
१. कृष्ण, २. नील, ३. लोहित, ४. पीत, ५. शुक्ल।
१. तिक्त, २. कटुक, ३. कषाय, ४. अम्ल, ५. मधुर।

२८. आहारक शरीर पांच वर्ण तथा पांच रस वाला होता है—
१. कृष्ण, २. नील, ३. लोहित, ४. पीत, ५. शुक्ल।
१. तिक्त, २. कटुक, ३. कषाय, ४. अम्ल, ५. मधुर।

२९. तैजस शरीर पांच वर्ण तथा पांच रस वाला होता है—

किण्हे, णीले, लोहिते, हालिद्दे, सुक्किल्ले।
तित्ते, कडुए, कसाए, अंबिले, महुरे।

कृष्णं, नीलं, लोहितं, हारिद्रं, शुक्लं।
तिक्तं, कटुकं, कषायं, अम्लं, मधुरम्।

१. कृष्ण, २. नील, ३. लोहित, ४. पीत, ५. शुक्ल।
१. तिक्त, २. कटुक, ३. कषाय, ४. अम्ल, ५. मधुर।

३०. कम्मगसरीरे पंचवण्णे पंचरसे पण्णत्ते, तं जहा—
किण्हे, णीले, लोहिते, हालिद्दे, सुक्किल्ले।
तित्ते, कडुए, कसाए, अंबिले, महुरे।°

कर्मकशरीरं पञ्चवर्णं पञ्चरसं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
कृष्णं, नीलं, लोहितं, हारिद्रं, शुक्लं।
तिक्तं, कटुकं, कषायं अम्लं, मधुरम्।

३०. कर्मक शरीर पांच वर्ण तथा पांच रस वाला होता है—
१. कृष्ण, २. नील, ३. लोहित, ४ पीत, ५. शुक्ल।
१. तिक्त, २. कटुक, ३. कषाय, ४. अम्ल, ५. मधुर।

३१. सव्वेवि णं बादरबोंदिधरा कलेवरा पंचवण्णा पंचरसा दुगंधा अट्ठफासा।

सर्वेपि बादरबोन्दिधराणि कलेवराणि पञ्चवर्णानि पञ्चरसानि द्विगन्धानि अष्टस्पर्शानि।

३१ बादर-स्थूलाकार शरीर को धारण करने वाले सभी कलेवर पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध तथा आठ स्पर्श वाले होते है।

तित्थभेद-पदं

तीर्थभेद-पदम्

तीर्थभेद-पद

३२ पंचहिं ठाणेहिं पुरिम-पच्छिमगाणं जिणाणं दुग्गमं भवति, तं जहा—
दुआइक्खं, दुव्विभज्जं, दुपस्सं, दुतितिक्खं, दुरणुचरं।

पञ्चभिः स्थानैः पूर्व-पश्चिमकानां जिनानां दुर्गमं भवति, तद्यथा—
दुराख्येयं, दुर्विभाज्यं, दुर्दर्शं, दुस्तितिक्षं, दुरनुचरम्।

३२ प्रथम तथा अन्तिम तीर्थकर के शासन मे पांच स्थान दुर्गम होते है[१२]—
१. धर्म-तत्त्व का आख्यान करना,
२. तत्त्व का अपेक्षादृष्टि से विभाग करना,
३ तत्त्व का युक्तिपूर्वक निदर्शन करना,
४ उत्पन्न परीषहो को सहन करना,
५. धर्म का आचरण करना।

३३. पंचहिं ठाणेहिं मज्झिमगाणं जिणाणं सुगमं भवति, तं जहा—
सुआइक्खं, सुविभज्जं, सुपस्सं, सुतितिक्खं, सुरणुचरं।

पञ्चभिः स्थानैः मध्यमकानां जिनानां सुगमं भवति, तद्यथा—
स्वाख्येयं, सुविभाज्यं, सुदर्शं, सुतितिक्षं, स्वनुचरम्।

३३. मध्यवर्ती तीर्थंकरो के शासन मे पांच स्थान सुगम होते है—
१ धर्म-तत्त्व का आख्यान करना,
२. तत्त्व का अपेक्षादृष्टि से विभाग करना,
३. तत्त्व का युक्तिपूर्वक निदर्शन करना,
४. उत्पन्न परीषहो को सहन करना,
५. धर्म का आचरण करना।

अब्भणुण्णात-पदं

अभ्यनुज्ञात-पदम्

अभ्यनुज्ञात-पद

३४. पंच ठाणाइं समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणानां निर्ग्रन्थानां नित्यं वर्णितानि नित्यं कीर्त्तितानि नित्यं उक्तानि

३४. श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए पांच स्थान सदा वर्णित किए है, कीर्तित किए हैं, व्यक्त किए हैं, प्रशसित

णिच्चमब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—
खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे।

नित्यं प्रशस्तानि नित्यं अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
क्षान्तिः, मुक्तिः, आर्जव, मार्दवं, लाघवम्।

किए है, अभ्यनुज्ञात [अनुमत] किए है[13]—
१. क्षांति, २. मुक्ति, ३. आर्जव, ४. मार्दव, ५. लाघव।

३५. पंच ठाणाइं समणेणं भगवता महावीरेणं °समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं° अब्भणुण्णताइं भवंति, तं जहा—
सच्चे, संजमे, तवे, चियाए, बंभचेरवासे।

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नित्यं वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्यं उक्तानि नित्यं प्रशस्तानि नित्य अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
सत्य, सयम, तपः, त्यागः, ब्रह्मचर्यवासः।

३५. श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किए है, कीर्तित किए है, व्यक्त किए हैं, प्रशसित किए है, अभ्यनुज्ञात किए है[14]—
१. सत्य, २. सयम, ३. तप, ४. त्याग, ५ ब्रह्मचर्यवास।

३६. पंच ठाणाइं समणेणं °भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइ णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं° अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—
उक्खित्तचरए, णिक्खित्तचरए, अंतचरए, पंतचरए, लूहचरए।

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणानां निर्ग्रन्थाना नित्य वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्यं उक्तानि नित्यं प्रशस्तानि नित्यं अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
उत्क्षिप्तचरक, निक्षिप्तचरकः, अन्त्यचरकः, प्रान्त्यचरकः, रूक्षचरकः।

३६. श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किए है, कीर्तित किए है, व्यक्त किए है, प्रशसित किए है, अभ्यनुज्ञात किए है—
१ उत्क्षिप्तचरक— पाक-भाजन से बाहर निकाले हुए भोजन को ग्रहण करने वाला,
२ निक्षिप्तचरक—पाक-भाजन मे स्थित भोजन को ग्रहण करने वाला,
३ अन्त्यचरक[15]—बचा-खुचा भोजन करने वाला,
४ प्रान्त्यचरक[16]—बासी भोजन करने वाला।
५. रूक्षचरक —रूखा भोजन ग्रहण करने वाला।

३७. पंच ठाणाइं °समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइ णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइ णिच्चं पसत्थाइ णिच्चं° अब्भणुण्णाताइं भवति तं जहा—

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणानां निर्ग्रन्थाना नित्यं वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्यं उक्तानि नित्य प्रशस्तानि नित्य अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—

३७. श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए पांच स्थान सदा वर्णित किए हैं, कीर्तित किए है, व्यक्त किए है, प्रशसित किए है, अभ्यनुज्ञात किए है—

अण्णातचरए, अण्णइलायचरए, मोणचरए, संसट्ठकप्पिए, तज्जात-संसट्ठकप्पिए।

अज्ञातचरकः, अन्नग्लायकचरकः, मौनचरकः, संसृष्टकल्पिकः, तज्जातसंसृष्ट-कल्पिकः ।

१. अज्ञातचरक—जाति, कुल आदि को जताये बिना भोजन लेने वाला,
२. अन्नग्लायकचरक[*]—विकृत अन्न को खाने वाला,
३. मौनचरक—बिना बोले भिक्षा लेने वाला,
४. संसृष्टकल्पिक—लिप्त हाथ या कड़छी आदि से भिक्षा लेने वाला,
५. तज्जात संसृष्टकल्पिक—देय द्रव्य से लिप्त हाथ, कड़छी आदि से भिक्षा लेने वाला।

३८. **पंच ठाणाइं °समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं° अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—**
उवणिहिए, सुद्धेसणिए, संखादत्तिए, दिट्ठलाभिए, पुट्ठलाभिए।

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणानां निर्ग्रन्थाना नित्यं वर्णितानि नित्यं कीर्त्तितानि नित्य उक्तानि नित्यं प्रशस्तानि नित्यं अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
औपनिधिकः, शुद्धैषणिकः, संख्यादत्तिकः, दृष्टलाभिकः, पृष्टलाभिकः ।

३८. श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किए हैं, कीर्तित किए है, व्यक्त किए है, प्रशसित किए है, अभ्यनुज्ञात किए हैं—
१. औपनिधिक—पास में रखे हुए भोजन को लेने वाला,
२. शुद्धैषणिक[*]—निर्दोष या व्यंजन रहित आहार लेने वाला,
३ सख्यादत्तिक—परिमित दत्तियो का आहार लेने वाला,
४. दृष्टलाभिक—सामने दीखने वाले आहार आदि को लेने वाला,
५. पृष्टलाभिक—'क्या भिक्षा लोगे' ? यह पूछे जाने पर ही भिक्षा लेने वाला।

३९. **पंच ठाणाइं °समणेणं भगवता महावीरेणं समणाण णिग्गंथाण णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइ णिच्चं बुइयाइं णिच्च पसत्थाइं णिच्चं° अब्भणुण्णाताइ भवंति, त जहा—**
आयंबिलिए, णिव्विइए, पुरिमड्ढिए, परिमितपिंडवातिए, भिण्णपिंडवातिए।

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नित्य वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्यं उक्तानि नित्य प्रशस्तानि नित्यं अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
आचाम्लिकः, निर्विकृतिकः, पूर्वार्द्धिकः, परिमितपिण्डपातिकः, भिन्नपिण्ड-पातिकः ।

३९. श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किए है, कीर्तित किए है, व्यक्त किए है, प्रशंसित किए है, अभ्यनुज्ञात किए हैं—
१. आचाम्लिक—ओदन, कुलमाष आदि मे से कोई एक अन्न खाकर किया जाने वाला तप,
२. निर्विकृतिक—घृत आदि विकृति का त्याग करने वाला,
३. पूर्वार्धिक—दिन के पूर्वार्ध में भोजन नही करने वाला,
४. परिमितपिण्डपातिक—परिमित द्रव्यों की भिक्षा लेने वाला,
५ भिन्नपिण्डपातिक—भोजन के टुकड़ों की भिक्षा लेने वाला।

४०. पंच ठाणाइं *समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं° अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—
अरसाहारे, विरसाहारे, अंताहारे, पंताहारे, लूहाहारे।

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थानां नित्यं वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्य उक्तानि नित्य प्रशस्तानि नित्य अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
अरसाहार, विरसाहारः, अन्त्याहारः, प्रान्त्याहारः, रूक्षाहार.।

४०. श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए पांच स्थान सदा वर्णित किए है, कीर्तित किए है, व्यक्त किए है, प्रशसित किए है, अभ्यनुज्ञात किए है --
१. अरसाहार—हीग आदि के बघार से रहित भोजन लेने वाला, २. विरसाहार—पुराने धान्य का भोजन करने वाला,
३. अन्त्याहार, ४ प्रान्त्याहार,
५ रूक्षाहार।

४१. पंच ठाणाइं *समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं° अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—
अरसजीवी, विरसजीवी, अंतजीवी, पंतजीवी, लूहजीवी।

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नित्य वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्यं उक्तानि नित्य प्रशस्तानि नित्य अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
अरसजीवी, विरसजीवी, अन्त्यजीवी, प्रान्त्यजीवी, रूक्षजीवी।

४१ श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किए हैं, कीर्तित किए है, व्यक्त किए है, प्रशसित किए है, अभ्यनुज्ञात किए है —
१. अरसजीवी --जीवन-भर अरस आहार करने वाला, २ विरसजीवी—जीवन-भर विरस आहार करने वाला,
३. अन्त्यजीवी, ४. प्रान्त्यजीवी
५ रूक्षजीवी।

४२. पंच ठाणाइं *समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं अब्भणुण्णाताइं° भवंति, तं जहा—
ठाणातिए, उक्कुडुआसणिए, पडिमट्ठाई, वीरासणिए णेसज्जिए।

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थाना नित्यं वर्णितानि नित्य कीर्त्तितानि नित्यं उक्तानि नित्य प्रशस्तानि नित्य अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
स्थानायतिक, उत्कुटुकासनिक., प्रतिमास्थायी, वीरासनिक. नैषधिकः।

४२ श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किए है, कीर्तित किए है, व्यक्त किए है, प्रशसित किए हैं, अभ्यनुज्ञात किए है—
१. स्थानायतिक[९]—कायोत्सर्ग मुद्रा मे युक्त होकर—दोनो बाहुओ को घुटनों की ओर झुकाकर—खडा रहने वाला,
२. उत्कुटुकासनिक -- उकडू बैठने वाला,
३ प्रतिमास्थायी[१०]-- प्रतिमाकाल में कायोत्सर्ग की मुद्रा मे अवस्थित,
४. वीरासनिक[११]—वीरासन की मुद्रा मे अवस्थित,
५. नैषधिक[१२]— विशेष प्रकार से बैठने वाला।

४३. पंच ठाणाइं °समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं अब्भणुण्णाताइं° भवंति, तं जहा—
दंडायतिए, लगंडसाई, आतावए, अवाउडए, अकंडूयए।

पञ्च स्थानानि श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणाना निर्ग्रन्थानां नित्यं वर्णितानि नित्यं कीर्त्तितानि नित्यं उक्तानि नित्यं प्रशस्तानि नित्यं अभ्यनुज्ञातानि भवन्ति, तद्यथा—
दण्डायतिकः, लगण्डशायी, आतापकः, अप्रावृतकः, अकण्डूयकः।

४३. श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किए है, कीर्तित किए है, व्यक्त किए है, प्रशसित किए है, अभ्यनुज्ञात किए है—
१. दण्डायतिक—पैरों को पसारकर बैठने वाला, २. लगंडशायी—सिर और एडी भूमि से सलग्न रहे और शेष सारा शरीर ऊपर उठ जाए अथवा पृष्ठ भाग भूमि से संलग्न रहे और सारा शरीर ऊपर उठ जाए, इस मुद्रा में सोने वाला, ३. आतापक[१]—शीतताप सहन करने वाला, ४. अप्रावृतक—वस्त्र-त्याग करने वाला। ५. अकण्डूयक—खुजली नही करने वाला।

महाणिज्जर-पदं

महानिर्जरा-पदम्

महानिर्जरा-पद

४४. पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, त जहा—
अगिलाए आयरियवेयावच्चं करेमाणे,
अगिलाए उवज्झायवेयावच्चं करेमाणे,
अगिलाए थेरवेयावच्चं करेमाणे,
अगिलाए तवस्सिवेयावच्चं करेमाणे,
अगिलाए गिलाणवेयावच्चं करेमाणे।

पञ्चभि. स्थानै. श्रमणः निर्ग्रन्थः महानिर्जरः महापर्यवसान. भवति, तद्यथा—
अग्लान्या आचार्यवैयावृत्त्य कुर्वाणः,
अग्लान्या उपाध्यायवैयावृत्त्य कुर्वाणः,
अग्लान्या स्थविरवैयावृत्त्य कुर्वाण.,
अग्लान्या तपस्विवैयावृत्त्यं कुर्वाण,
अग्लान्या ग्लानवैयावृत्त्यं कुर्वाणः।

४४ पाच स्थानो से श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा तथा महापर्यवसान वाला होता है[२]—
१. अग्लानभाव से आचार्य का वैयावृत्त्य करता हुआ,
२. अग्लानभाव से उपाध्याय का वैयावृत्त्य करता हुआ,
३ अग्लानभाव से स्थविर का वैयावृत्त्य करता हुआ,
४ अग्लानभाव से तपस्वी का वैयावृत्त्य करता हुआ,
५ अग्लानभाव से रोगी का वैयावृत्त्य करता हुआ।

४५. पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, तं जहा—
अगिलाए सेहवेयावच्चं करेमाणे,
अगिलाए कुलवेयावच्चं करेमाणे,
अगिलाए गणवेयावच्चं करेमाणे,
अगिलाए संघवेयावच्चं करेमाणे,
अगिलाए साहम्मियवेयावच्चं करेमाणे।

पञ्चभिः स्थानै. श्रमणः निर्ग्रन्थः महानिर्जरः महापर्यवसानः भवति, तद्यथा—
अग्लान्या शैक्षवैयावृत्त्यं कुर्वाणः,
अग्लान्या कुलवैयावृत्त्य कुर्वाणः,
अग्लान्या गणवैयावृत्त्य कुर्वाणः,
अग्लान्या संघवैयावृत्त्यं कुर्वाणः,
अग्लान्या सार्धमिकवैयावृत्त्यं कुर्वाणः।

४५. पाच स्थानों से श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा तथा महापर्यवसान वाला होता है[३]—
१. अग्लानभाव से शैक्ष—नवदीक्षित का वैयावृत्त्य करता हुआ,
२ अग्लानभाव से कुल का वैयावृत्त्य करता हुआ,
३ अग्लानभाव से गण का वैयावृत्त्य करता हुआ,
४. अग्लानभाव से संघ का वैयावृत्त्य करता हुआ,
५. अग्लानभाव से सार्धमिक का वैयावृत्त्य करता हुआ।

विसंभोग-पदं

४६. पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे साहम्मियं संभोइयं विसंभोइय करेमाणे णातिक्कमति, तं जहा—
१. सकिरियट्ठाणं पडिसेवित्ता भवति।
२. पडिसेवित्ता णो आलोएइ।
३. आलोइत्ता णो पट्ठवेति।
४. पट्ठवेत्ता णो णिव्विसति।
५. जाइं इमाइं थेराणं ठितिपकप्पाइं भवंति ताइं अतियंचिय-अतियंचिय पडिसेवेति, से हंदहं पडिसेवामि किं मं थेरा करेस्संति ?

विसंभोग-पदम्

पञ्चभिः स्थानैः श्रमणः निर्ग्रन्थः सार्धमिकं सांभोगिकं वैसंभोगिकं कुर्वन् नातिक्रामति, तद्यथा—
१ सक्रियस्थानं प्रतिषेविता भवति।
२. प्रतिषेव्य नो आलोचयति।
३. आलोच्य नो प्रस्थापयति।
४ प्रस्थाप्य नो निर्विशति।
५. यानि इमानि स्थविराणा स्थितिप्रकल्पानि भवन्ति तानि अतिक्रम्य-अतिक्रम्य प्रतिषेवते, तद् हन्त अहं प्रतिषेवे किं मे स्थविराः करिष्यन्ति ?

विसंभोग-पद

४६. पाच स्थानों से श्रमण-निर्ग्रन्थ अपने सार्धमिक सांभोगिक[17] को विसांभोगिक[18] -- मडली-बाह्य करता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता—
१ जो मक्रियस्थान [अशुभ कर्म का बधन करने वाले कार्य] का प्रतिसेवन करता है,
२ प्रतिसेवन कर जो आलोचना नही करता,
३ आलोचना कर जो प्रस्थापन[16] नही करता,
४ प्रस्थापन कर जो निर्वेश[19] नही करता,
५ जो स्थविरो के स्थितिकल्प[20] होते है उनमे से एक के बाद दूसरे का अतिक्रमण करता है, दूसरो के समझाने पर यह कहता है—'लो, मैं दोष का प्रतिसेवन करता हू, स्थविर मेरा क्या करेंगे ?'

पारंचित-पदं

४७ पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे साहम्मियं पारंचितं करेमाणे णातिक्कमति, तं जहा—
१. कुले वसति कुलस्स भेदाए अब्भुट्ठित्ता भवति।
२. गणे वसति गणस्स भेदाए अब्भुट्ठेत्ता भवति।
३. हिंसप्पेही।
४. छिद्दप्पेही।
५. अभिक्खण-अभिक्खणं पसिणायतणाइं पउंजित्ता भवति।

पाराञ्चित-पदम्

पञ्चभिः स्थानैः श्रमणः निर्ग्रन्थः सार्धमिकं पाराञ्चितं कुर्वन् नातिक्रामति, तद्यथा—
१ कुले वसति कुलस्य भेदाय अभ्युत्थाता भवति।
२ गणे वसति गणस्य भेदाय अभ्युत्थाता भवति।
३. हिंसाप्रेक्षी।
४. छिद्रप्रेक्षी।
५. अभीक्ष्णं-अभीक्ष्णं प्रश्नायतनानि प्रयोक्ता भवति।

पाराञ्चित-पद

४७. पाच स्थानो से श्रमण निर्ग्रन्थ अपने सार्धमिक को पाराञ्चित [दसवा प्रायश्चित्त संप्राप्त] करता हुआ आज्ञा का अनिक्रमण नही करता—
१. जो जिस कुल में रहता है उसीमें भेद डालने का यत्न करता है,
२ जो जिस गण में रहता है उसीमें भेद डालने का यत्न करता है,
३. जो हिंसाप्रेक्षी होता है—कुल, गण के सदस्यों का वध चाहता है,
४ जो छिद्रान्वेषी होता है,
५ जो बार-बार प्रश्नायतनों[21] का प्रयोग करता है।

वुग्गहट्ठाण-पदं

४८. आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि पंच वुग्गहट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—
१. आयरियउवज्झाए णं गणंसि आणं वा धारणं वा णो सम्मं पउंजित्ता भवति।
२. आयरियउवज्झाए णं गणंसि आधारातिणियाए कितिकम्मं णो सम्मं पउंजित्ता भवति।
३. आयरियउवज्झाए णं गणंसि जे सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले-काले णो सम्ममणुप्पवाइत्ता भवति।
४. आयरियउवज्झाए णं गणंसि गिलाणसेहवेयावच्चं णो सम्मम-ब्भुट्ठित्ता भवति।
५. आयरियउवज्झाए णं गणंसि अणापुच्छियचारी यावि हवइ, णो आपुच्छियचारी।

व्युद्ग्रहस्थान-पदम्

आचार्योपाध्यायस्य गणे पञ्च व्युद्ग्रह-स्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१. आचार्योपाध्यायः गणे आज्ञां वा धारणां वा नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति।
२ आचार्योपाध्यायः गणे यथारात्नि-कतया कृतिकर्म नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति।
३. आचार्योपाध्याय· गणे यानि सूत्र-पर्यवजातानि धारयति तानि काले-काले नो सम्यग् अनुप्रवाचयिता भवति।
४. आचार्योपाध्याय· गणे ग्लानशैक्ष-वैयावृत्यं नो सम्यगभ्युत्थाता भवति।
५. आचार्योपाध्यायः गणे अनापृच्छ्य-चारी चापि भवति, नो आपृच्छ्यचारी।

व्युद्ग्रहस्थान-पद

४८. आचार्य और उपाध्याय के लिए गण मे पाच विग्रह के हेतु है —
१. आचार्य तथा उपाध्याय गण मे आज्ञा व धारणा[३१] का सम्यक् प्रयोग न करे।
२. आचार्य तथा उपाध्याय गण मे यथा-रात्निक[३२] कृतिकर्म[३३] का प्रयोग न करें,
३. आचार्य तथा उपाध्याय जिन-जिन सूत्र-पर्यवजातो [सूत्रार्थ प्रकारो] को धारण करते है, उनकी उचित समय[३४] पर गण को सम्यक् वाचना न दे,
४ आचार्य तथा उपाध्याय गण मे रोगी तथा नवदीक्षित साधुओ का वैयावृत्य कराने के लिए जागरूक न रहे,
५ आचार्य तथा उपाध्याय गण को पूछे बिना ही क्षेत्रान्तरसंक्रम करे, पूछकर न करें।

अवुग्गहट्ठाण-पदं

४६. आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि पंचावुग्गहट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—
१. आयरियउवज्झाए णं गणंसि आणं वा धारणं वा सम्मं पउंजित्ता भवति।
२. °आयरियउवज्झाए णं गणंसि° आधारातिणिताए सम्मं किइकम्मं पउंजित्ता भवति।
३. आयरियउवज्झाए णं गणंसि जे सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले-काले सम्मं अणुपवाइत्ता भवति।

अव्युद्ग्रहस्थान-पदम्

आचार्योपाध्यायस्य गणे पञ्चाऽव्युद्ग्रह-स्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१. आचार्योपाध्याय. गणे आज्ञा वा धारणा वा सम्यक् प्रयोक्ता भवति।
२. आचार्योपाध्यायः गणे यथारात्नि-कतया सम्यक् कृतिकर्म प्रयोक्ता भवति।
३. आचार्योपाध्यायः गणे यानि सूत्र-पर्यवजातानि धारयति तानि काले-काले सम्यक् अनुप्रवाचयिता भवति।

अव्युद्ग्रहस्थान-पद

४६. आचार्य और उपाध्याय के लिए गण में पाच अविग्रह के हेतु है —
१ आचार्य तथा उपाध्याय गण मे आज्ञा या धारणा का सम्यक् प्रयोग करें,
२ आचार्य तथा उपाध्याय गण मे यथा-रात्निक कृतिकर्म का प्रयोग करें,
३. आचार्य तथा उपाध्याय जिन-जिन सूत्र-पर्यवजातो को धारण करते है, उनकी उचित समय पर गण को सम्यक् वाचना दें,

४. आयरियउवज्झाए गणंसि गिलाणसेहवेयावच्चं सम्मं अब्भुट्ठित्ता भवति।
५. आयरियउवज्झाए गणंसि आपुच्छियचारी यावि भवति, णो अणापुच्छियचारी।

४. आचार्योपाध्याय गणे ग्लानशैक्ष-वैयावृत्य सम्यक् अभ्युत्थाता भवति।
५ आचार्योपाध्याय गणे आपृच्छ्यचारी चापि भवति, नो अनापृच्छ्यचारी।

४. आचार्य तथा उपाध्याय गण मे रोगी तथा नवदीक्षित साधुओं का वैयावृत्य कराने के लिए जागरूक रहे,
५. आचार्य तथा उपाध्याय गण को पूछ-कर क्षेत्रान्तर-सक्रम करें, बिना पूछे न करे।

णिसिज्जा-पदं

५०. पंच णिसिज्जाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
उक्कुडुया, गोदोहिया, समपायपुता, पलियंका, अद्धपलियंका।

निषद्या-पदम्

पञ्च निषद्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
उत्कुटुका, गोदोहिका, समपादपुता, पर्यका, अर्धपर्यका।

निषद्या-पद

५० निषद्या" पाच प्रकार की होती है—
१. उत्कुटुका—पुतो को भूमि से छुआए बिना पैरो के बल पर बैठना,
२ गोदोहिका—गाय की तरह बैठना या गाय दुहने की मुद्रा मे बैठना,
३ समपादपुता—दोनो पैरो और पुतो को छुआ कर बैठना, ४ पर्यका—पद्मासन,
५ अर्द्धपर्यका - अर्द्धपद्मासन।

अज्जवट्ठाण-पदं

५१. पंच अज्जवट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—
साधुअज्जवं, साधुमद्दवं, साधुलाघवं, साधुखंती, साधुमुत्ती।

आर्जवस्थान-पदम्

पञ्च आर्जवस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
साध्वार्जव, साधुमार्दव, साधुलाघव, साधुक्षान्ति, साधुमुक्ति।

आर्जवस्थान-पद

५१ आर्जव - सवर के पाच स्थान है" —
१ साधुआर्जव—माया का सम्यक् निग्रह,
२. साधुमार्दव—अभिमान का सम्यक् निग्रह,
३ साधुलाघव—गौरव का सम्यक् निग्रह,
४ साधुक्षाति—क्रोध का सम्यक् निग्रह,
५ साधुमुक्ति—लोभ का सम्यक् निग्रह।

जोइसिय-पदं

५२. पंचविहा जोइसिया पण्णत्ता, तं जहा—
चंदा, सूरा, गहा, णक्खत्ता, ताराओ।

ज्योतिष्क-पदम्

पञ्चविधा ज्योतिष्का: प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
चन्द्राः, सूरा, ग्रहाः, नक्षत्राणि, तारा।

ज्योतिष्क-पद

५२. ज्योतिष्क पाच प्रकार के हैं—
१ चन्द्र, २ सूर्य, ३. ग्रह, ४. नक्षत्र, ५ तारा।

देव-पदं

५३. पंचविहा देवा पण्णत्ता, तं जहा—
भवियदव्वदेवा, णरदेवा,
धम्मदेवा, देवातिदेवा, भावदेवा।

देव-पदम्

पञ्चविधाः देवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
भव्यद्रव्यदेवाः, नरदेवाः, धर्मदेवाः, देवातिदेवाः, भावदेवाः।

देव-पद

५३ देव पाच प्रकार के है—
१ भव्य-द्रव्य-देव—भविष्य में होने वाला देव, २. नरदेव—राजा,
३. धर्मदेव—आचार्य, मुनि आदि,
४. देवातिदेव—अर्हत्,
५. भावदेव—देवगति मे वर्तमान देव।

परिचारणा-पदं

५४. पंचविहा परियारणा पण्णत्ता, तं जहा—
कायपरियारणा, फासपरियारणा, रूवपरियारणा, सद्दपरियारणा, मणपरियारणा।

परिचारणा-पदम्

पञ्चविधाः देवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कायपरिचारणा, स्पर्शपरिचारणा, रूपपरिचारणा, शब्दपरिचारणा, मनःपरिचारणा।

परिचारणा-पद

५४. परिचारणा" पाच प्रकार की होती है—
१ कायपरिचारणा, २ स्पर्शपरिचारणा,
३ रूपपरिचारणा, ४. शब्दपरिचारणा,
५. मनःपरिचारणा।

अग्गमहिसी-पदं

५५. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो पंच अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
काली, राती, रयणी, विज्जू, मेहा।

५६. बलिस्स ण वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो पंच अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
सुंभा, णिसुभा, रंभा, णिरंभा, मदणा।

अग्रमहिषी-पदम्

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य पञ्च अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
काली, रात्री, रजनी, विद्युत्, मेघा।

बलेः वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य पञ्च अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
शुभा, निशुभा, रभा, निरभा, मदना।

अग्रमहिषी-पद

५५. असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के पाच अग्रमहिषिया है—
१. काली, २. राती, ३. रजनी,
४. विद्युत्, ५. मेघा।

५६ वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि के पाच अग्रमहिषियां है—
१. शुम्भा, २. निशुम्भा, ३. रम्भा,
४. नीरम्भा, ५. मदना।

अणिय-अणियाहिवइ-पदं

५७. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो पंच संगामिया अणिया, पंच संगामिया अणियाधिवती पण्णत्ता, तं जहा—

अनीक-अनीकाधिपति-पदम्

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य पञ्च सांग्रामिकाणि अनीकानि, पञ्च सांग्रामिकाः अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

अनीक-अनीकाधिपति-पद

५७. असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के संग्राम करने वाली पाच सेनाएं और पांच सेनापति है—

पायत्ताणिए, पीढाणिए,
कुंजराणिए, महिसाणिए,
रहाणिए, ।
दुमे पायत्ताणियाधिवती,
सोदामे आसराया पीढाणियाधिवती,
कुंथू हत्थिराया कुंजराणियाधिवती,
लोहितक्खे महिसाणियाधिवती,
किण्णरे रधाणियाधिवती ।

पादातानीकं, पीठानीकं, कुञ्जरानीकं,
महिषानीकं, रथानीकम् ।
द्रुमः पादातानीकाधिपतिः,
सुदामा अश्वराजः पीठानीकाधिपतिः,
कुन्थुः हस्तिराजः कुञ्जरानीकाधिपतिः,
लोहिताक्षः महिषानीकाधिपतिः,
किन्नरः रथानीकाधिपतिः ।

सेनाएं—१ पादातानीक—पदातिसेना,
२ पीठानीक—अश्वसेना,
३ कुंजरानीक—हस्तीसेना,
४. महिषानीक—भैंसों की सेना,
५ रथानीक—रथसेना ।
सेनापति—
१ द्रुम—पादातानीक अधिपति,
२. अश्वराज सुदामा—पीठानीक अधिपति,
३. हस्तिराज कुंथु—कुंजरानीक अधिपति,
४ लोहिताक्ष—महिषानीक अधिपति,
५ किन्नर—रथानीक अधिपति ।

५८. बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो पंच संगामियाणिया, पंच संगामियाणियाधिवती पण्णत्ता, तं जहा—
पायत्ताणिए, °पीढाणिए,
कुंजराणिए, महिसाणिए°
रधाणिए ।
महद्दुमे पायत्ताणियाधिवती,
महासोदामे आसराया पीढाणियाधिवती, मालंकारे हत्थिराया कुंजराणियाधिपती,
महालोहिअक्खे महिसाणियाधिपती,
किंपुरिसे रधाणियाधिपती ।

बलेः वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य पञ्च सांग्रामिकानीकानि, पञ्च सांग्रामिकानीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पादातानीकं, पीठानीकं, कुञ्जरानीकं,
महिषानीकं, रथानीकम् ।
महाद्रुमः पादातानीकाधिपतिः,
महासुदामा अश्वराजः पीठानीकाधिपतिः,
मालंकारः हस्तिराजः कुञ्जरानीकाधिपतिः,
महालोहिताक्षः महिषानीकाधिपतिः,
किंपुरुषः रथानीकाधिपतिः ।

५८. वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बली के संग्राम करने वाली पांच सेनाएं हैं और पांच सेनापति हैं—
सेनाएं—
१. पादातानीक, २. पीठानीक,
३ कुंजरानीक, ४. महिषानीक,
५ रथानीक ।
सेनापति—
१. महाद्रुम—पादातानीक अधिपति,
२ अश्वराज महा सुदामा—पीठानीक अधिपति,
३. हस्तिराज मालंकार—अधिपति,
४. महालोहिताक्ष—महिषानीक अधिपति
५. किंपुरुष—रथानीक अधिपति ।

५९. धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो पंच संगामिया अणिया, पंच संगामियाणियाधिपती पण्णत्ता, तं जहा—
पायत्ताणिए जाव रहाणिए ।
भद्दसेणे पायत्ताणियाधिपती,
जसोधरे आसराया पीढाणियाधिपती,
सुदंसणे हत्थिराया कुंजराणियाधिपती,
णीलकंठे महिसाणियाधिपती,
आणंदे रहाणियाहिवई ।

धरणस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य पञ्च सांग्रामिकाणि अनीकानि, पञ्च सांग्रामिकानीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पादातानीकं यावत् रथानीकम् ।
भद्रसेनः पादातानीकाधिपतिः,
यशोधरः अश्वराजः पीठानीकाधिपतिः,
सुदर्शनः हस्तिराजः कुञ्जरानीकाधिपतिः,
नीलकण्ठः महिषानीकाधिपतिः,
आनन्दः रथानीकाधिपतिः ।

५९. नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के संग्राम करने वाली पांच सेनाएं और पांच सेनापति हैं—
सेनाएं—
१ पादातानीक, २. पीठानीक,
३. कुंजरानीक, ४. महिषानीक,
५ रथानीक ।
सेनापति—
१. भद्रसेन—पादातानीक अधिपति,
२. अश्वराज यशोधर—पीठानीक अधिपति,
३. हस्तिराज सुदर्शन—कुंजरानीक अधिपति,
४. नीलकण्ठ—महिषानीक अधिपति,
५. आनन्द—रथानीक अधिपति ।

६०. भूयाणंदस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो पंच संगामियाणिया, पंच संगामियाणियाहिवई पण्णत्ता, तं जहा—
पायत्ताणिए जाव रहाणिए।
दक्खे पायत्ताणियाहिवई,
सुग्गीवे आसराया पीढाणियाहिवई,
सुविक्कमे हत्थिराया कुंजराणियाहिवई, सेयकंठे महिसाणियाहिवई,
णंदुत्तरे रहाणियाहिवई।

भूतानन्दस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य पञ्च सांग्रामिकानीकानि, पञ्च सांग्रामिकानीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पादातानीक यावत् रथानीकम्,
दक्षः पादातानीकाधिपतिः,
सुग्रीव अश्वराजः पीठानीकाधिपतिः,
सुविक्रमः हस्तिराजः कुञ्जरानीकाधिपतिः,
श्वेतकण्ठः महिषानीकाधिपतिः,
नन्दोत्तरः रथानीकाधिपतिः।

६०. नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द के संग्राम करने वाली पांच सेनाएं तथा पांच सेनापति हैं—
सेनाएं—
१. पादातानीक, २. पीठानीक,
३. कुंजरानीक, ४. महिषानीक,
५. रथानीक।
सेनापति—
१. दक्ष—पादातानीक अधिपति,
२. अश्वराज सुग्रीव—पीठानीक अधिपति,
३. हस्तिराज सुविक्रम—कुंजरानीक अधिपति,
४. श्वेतकंठ—महिषानीक अधिपति,
५. नन्दोत्तर—रथानीक अधिपति।

६१. वेणुदेवस्स णं सुवण्णिंदस्स सुवण्णकुमाररण्णो पंच संगामियाणिया, पंच संगामियाणियाहिपती पण्णत्ता, तं जहा—
पायत्ताणिए। एवं जधा धरणस्स तधा वेणुदेवस्सवि।
वेणुदालियस्स जहा भूताणंदस्स।

वेणुदेवस्य सुपर्णेन्द्रस्य सुपर्णकुमारराजस्य पञ्च सांग्रामिकानीकानि, पञ्च सांग्रामिकानीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पादातानीकम्। एव यथा धरणस्य तथा वेणुदेवस्यापि।
वेणुदालिकस्य यथा भूतानन्दस्य।

६१. सुपर्णेन्द्र सुपर्णराज वेणुदेव के संग्राम करने वाली पांच सेनाएं और पांच सेनापति हैं—
सेनाएं—
१. पादातानीक, २. पीठानीक,
३. कुंजरानीक, ४. महिषानीक,
५. रथानीक।
सेनापति—
१. भद्रसेन—पादातानीक अधिपति,
२ अश्वराज यशोधर—पीठानीक अधिपति,
३. हस्तिराज सुदर्शन—कुंजरानीक अधिपति,
४. नीलकठ—महिषानीक अधिपति,
५. आनन्द—रथानीक अधिपति।

६२. जधा धरणस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाणं जाव घोसस्स।

यथा धरणस्य तथा सर्वेषां दाक्षिणात्यानां यावत् घोषस्य।

६२. दक्षिण दिशा के शेष भवनपति इन्द्र—हरिकान्त, अग्निशिख, पूर्ण, जलकान्त, अमितगति, वेलम्ब तथा घोष के भी पादातानीक आदि पांच संग्राम करने वाली सेनाएं तथा भद्रसेन, अश्वराज, यशोधर, हस्तिराज सुदर्शन नीलकठ और आनन्द ये पांच सेनापति हैं।

६३. जधा भूताणंदस्स तधा सव्वेसिं उत्तरिल्लाणं जाव महाघोसस्स।

यथा भूतानन्दस्य तथा सर्वेषां औदीच्यानां यावत् महाघोषस्य।

६३. उत्तर दिशा के शेष भवनपति इन्द्र— वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभंजन और महाघोष के भी पादातानीक आदि पांच संग्राम करने वाली सेनाएं तथा दक्ष, अश्वराज सुग्रीव, हस्तिराज, सुविक्रम, श्वेतकंठ और नन्दोत्तर ये पांच सेनापति हैं।

६४. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो पंच संगामिया अणिया, पंच संगामियाणियाधिवती पण्णत्ता, तं जहा—
पायत्ताणिए°पीढाणिए कुंजराणिए° उसभाणिए रधाणिए।
हरिणेगमेसी पायत्ताणियाधिवती, वाऊ आसराया पीढाणियाधिवती, एरावणे हत्थिराया कुंजराणियाधिपती, दामड्ढी उसभाणियाधिपती, माढरे रधाणियाधिपती।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य पञ्च सांग्रामिकाणि अनीकानि, पञ्च सांग्रामिकानीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पादातानीकं पीठानीकं कुञ्जरानीकं वृषभानीकं रथानीकम्।
हरिनैगमेषी पादानीकाधिपतिः, वायुः अश्वराजः पीठानीकाधिपतिः, ऐरावणः हस्तिराजः कुञ्जरानीकाधिपतिः, दामर्धिः वृषभानीकाधिपतिः, माठरः रथानीकाधिपतिः।

६४. देवेन्द्र देवराज शक्र के संग्राम करने वाली पांच सेनाएं और पांच सेनापति हैं—
सेनाएं—
१. पादातानीक, २. पीठानीक, ३. कुंजरानीक, ४. वृषभानीक, ५. रथानीक।
सेनापति—
१. हरिनैगमेषी—पादातानीक अधिपति,
२. अश्वराज वायु—पीठानीक अधिपति,
३. हस्तिराज ऐरावण—कुंजरानीक अधिपति,
४. दामर्धि—वृषभानीक अधिपति,
५. माठर—रथानीक अधिपति।

६५. ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो पंच संगामिया अणिया जाव पायत्ताणिए, पीढाणिए, कुंजराणिए, उसभाणिए, रधाणिए।
लहुपरक्कमे पायत्ताणियाधिवती, महावाऊ आसराया पीढाणियाहिवती, पुप्फदंते हत्थिराया कुंजराणियाहिवती, महादामड्ढी उसभाणियाहिवती। महामाढरे रधाणियाहिवती।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य पञ्च सांग्रामिकानीकानि यावत् पादातानीक, पीठानीक, कुञ्जरानीक, वृषभानीक, रथानीकम्।
लघुपराक्रमः पादातानीकाधिपतिः, महावायुः अश्वराजः पीठानीकाधिपतिः, पुष्पदन्तः हस्तिराजः कुञ्जरानीकाधिपतिः, महादामर्धिः वृषभानीकाधिपतिः। महामाठरः रथानीकाधिपतिः।

६५. देवेन्द्र देवराज ईशान के संग्राम करने वाली पांच सेनाएं और पांच सेनापति हैं—
सेनाएं—
१. पादातानीक, २. पीठानीक, ३. कुंजरानीक, ४. वृषभानीक, ५. रथानीक।
सेनापति—
१. लघुपराक्रम—पादातानीक अधिपति,
२. अश्वराज महावायु—पीठानीक अधिपति,
३. हस्तिराज पुष्पदंत—कुंजरानीक अधिपति,
४. महादामर्धि—वृषभानीक अधिपति,
५. महामाठर—रथानीक अधिपति।

६६. जधा सक्कस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाणं जाव आरणस्स।

यथा शक्रस्य तथा सर्वेषां दाक्षिणात्यानां यावत् आरणस्य।

६६. दक्षिण दिशा के वैमानिक इन्द्र—सनत्कुमार, ब्रह्म, शुक्र, आनत तथा आरण देवेन्द्रो के भी संग्राम करने वाली पाच सेनाए और पाच सेनापति हैं—

सेनाए—

१. पादातानीक, २. पीठानीक,
३. कुजरानीक, ४. वृषभानीक,
५. रथानीक।

सेनापति—

१. हरिनैगमेषी—पादातानीक अधिपति,
२. अश्वराज वायु—पीठानीक अधिपति,
३. हस्तिराज ऐरावण—कुजरानीक अधिपति
४. दामर्धि—वृषभानीक अधिपति,
५. माठर—रथानीक अधिपति।

६७. जधा ईसाणस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाणं जाव अच्चुतस्स।

यथा ईशानस्य तथा सर्वेषां औदीच्यानां यावत् अच्युतस्य।

६७. उत्तर दिशा के वैमानिक इन्द्र—लातक, सहस्रार, प्राणत तथा अच्युत देवेन्द्रो के भी सग्राम करने वाली पाच सेनाए और और पाच सेनापति है—

सेनाएं—

१. पादातानीक, २. पीठानीक,
३. कुजरानीक, ४. वृषभानीक,
५. रथानीक।

सेनापति—

१. लघुपराक्रम—पादातानीक अधिपति,
२. अश्वराज महावायु—पीठानीक अधिपति,
३. हस्तिराज पुष्पदंत—कुजरानीक अधिपति
४. महादामर्धि—वृषभानीक अधिपति,
५. महामाठर—रथानीक अधिपति।

देवठिति-पदं

६८. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अब्भंतरपरिसाए देवाणं पंच पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देवस्थिति-पदम्

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अभ्यन्तर-परिषदः देवानां पञ्च पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

देवस्थिति-पद

६८. देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र के अन्तरंग परिषद् के सदस्य देवो की स्थिति पाच पल्योपम की है।

६९. ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अब्भंतरपरिसाए देवीणं पंच पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अभ्यन्तर-परिषदः देवीनां पञ्च पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

६९. देवेन्द्र देवराज ईशान के अन्तरंग परिषद् के सदस्य देवियों की स्थिति पांच पल्योपम की है।

पडिहा-पदं

प्रतिघात-पदम्

प्रतिघात-पद

७०. पंचविहा पडिहा पण्णत्ता, तं जहा—
गतिपडिहा, ठितिपडिहा,
बंधणपडिहा, भोगपडिहा,
बल-वीरिय-पुरिसयार-परक्कमपडिहा।

पञ्चविधाः प्रतिघाताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
गतिप्रतिघातः, स्थितिप्रतिघातः,
बन्धनप्रतिघातः, भोगप्रतिघातः,
बल-वीर्य-पुरुषकार-पराक्रमप्रतिघातः।

७० प्रतिघात [स्खलन] पांच प्रकार का होता है—
१. गति प्रतिघात—अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा प्रशस्त गति का अवरोध,
२ स्थिति प्रतिघात—उदीरणा के द्वारा कर्म-स्थिति का अल्पीकरण,
३ बन्धन प्रतिघात—प्रशस्त औदारिक शरीर आदि की प्राप्ति का अवरोध,
४. भोग प्रतिघात—सामग्री के अभाव मे भोग की अप्राप्ति,
५ बल[९], वीर्य[१०], पुरुषकार[११] और पराक्रम[१२] का प्रतिघात।

आजीव-पदं

आजीव-पदम्

आजीव-पद

७१. पंचविधे आजीवे पण्णत्ते, तं जहा—
जातीआजीवे, कुलाजीवे,
कम्माजीवे, सिप्पाजीवे,
लिंगाजीवे।

पञ्चविध आजीवः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
जात्याजीवः, कुलाजीवः, कर्माजीवः,
शिल्पाजीवः, लिङ्गाजीवः।

७१. आजीव पाच प्रकार का होता है—
१ जात्याजीव—जाति से जीविका करने वाला,
२ कुलाजीव—कुल से जीविका करने वाला,
३ कर्माजीव—कृषि आदि से जीविका करने वाला,
४. शिल्पाजीव—कला से जीविका करने वाला,
५. लिंगाजीव[१३]—वेष से जीविका करने वाला।

राय-चिंध-पदं

राज-चिह्न-पदम्

राज-चिह्न-पद

७२. पंच रायककुधा पण्णत्ता, तं जहा—
खग्गं, छत्तं, उप्फेसं,
पाणहाओ, वालवीअणी।

पञ्च राजककुदानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
खड्ग, छत्रं, उष्णीषं,
उपानहौ, बालव्यजनी।

७२ राजचिन्ह पाच प्रकार के होते हैं—
१. खड्ग, २. छत्र, ३ उष्णीष—मुकुट,
४. जूते, ५. चामर।

उदिण्ण-परिस्सहोवसग्ग-पदं

७३. पंचहिं ठाणेहिं छउमत्थे णं उदिण्णे परिस्सहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा खमेज्जा तितिक्खेज्जा अहियासेज्जा, तं जहा—

१. उदिण्णकम्मे खलु अयं पुरिसे उम्मत्तगभूते। तेण मे एस पुरिसे अक्कोसति वा अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भंछेति वा बंधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणमच्छिंदति वा विच्छिंदति वा भिंदति वा अवहरति वा।

२. जक्खाइट्ठे खलु अयं पुरिसे। तेण मे एस पुरिसे अक्कोसति वा* अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भंछेति वा बंधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणमच्छिंदति वा विच्छिंदति वा भिंदति वा° अवहरति वा।

३. ममं च णं तब्भववेयणिज्जे कम्मे उदिण्णे भवति। तेण मे एस पुरिसे अक्कोसति वा *अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भंछेति वा बंधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणमच्छिंदति वा विच्छिंदति वा भिंदति वा °अवहरति वा।

उदीर्ण-परीषहोपसर्ग-पदम्

पञ्चभिः स्थानैः छद्मस्थः उदीर्णान् परीषहोपसर्गान् सम्यक् सहेत क्षमेत तितिक्षेत अध्यासीत, तद्यथा—

१. उदीर्णकर्मा खलु अयं पुरुषः उन्मत्तकभूतः। तेन मां एष पुरुषः आक्रोशति वा अपहसति वा निश्छोटयति वा निर्भर्त्सयति वा बध्नाति वा रुणद्धि वा छविच्छेदं करोति वा, प्रमारं वा नयति, उपद्रवति वा, वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं आच्छिनत्ति वा विच्छिनत्ति वा भिनत्ति वा अपहरति वा।

२. यक्षाविष्टः खलु अयं पुरुषः। तेन मां एष पुरुषः आक्रोशति वा अपहसति वा निश्छोटयति वा निर्भर्त्सयति वा बध्नाति वा रुणद्धि वा छविच्छेदं करोति वा, प्रमारं वा नयति, उपद्रवति वा, वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं आच्छिनत्ति वा विच्छिनत्ति वा भिनत्ति वा अपहरति वा।

३. मम च तद्भववेदनीयं कर्म उदीर्णं भवति। तेन मां एष पुरुषः आक्रोशति वा अपहसति वा निश्छोटयति वा निर्भर्त्सयति वा बध्नाति वा रुणद्धि वा छविच्छेदं करोति वा, प्रमारं वा नयति, उपद्रवति वा, वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं आच्छिनत्ति वा विच्छिनत्ति वा भिनत्ति वा अपहरति वा।

उदीर्ण-परीषहोपसर्ग-पद

७३. पांच स्थानों से छद्मस्थ उदित परीषहों तथा उपसर्गों को अविचल भाव से सहता है, क्षांति रखता है, तितिक्षा रखता है और उनमें अप्रभावित रहता है—

१. यह पुरुष उदीर्णकर्मा है, इसलिए यह उन्मत्त होकर मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे बाहर निकालने की धमकियाँ देता है, मेरी निर्भर्त्सना करता है, मुझे बांधता है, रोकता है, अंगविच्छेद करता है, पमार[14] [मूर्च्छित] करता है, उपद्रुत करता है, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोञ्छन आदि का आच्छेदन[15] करता है, विच्छेदन[16] करता है, भेदन करता है या अपहरण करता है।

२. यह पुरुष यक्षाविष्ट है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे बाहर निकालने की धमकियां देता है, मेरी निर्भर्त्सना करता है, मुझे बांधता है, रोकता है, अंगविच्छेद करता है, मूर्च्छित करता है, उपद्रुत करता है, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोंछन आदि का आच्छेदन करता है, विच्छेदन करता है, भेदन करता है या अपहरण करता है।

३. इस भव में मेरे वेदनीय कर्म उदित हो गए हैं, इसलिए यह पुरुष मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे बाहर निकालने की धमकियाँ देता है, मेरी निर्भर्त्सना करता है, मुझे बांधता है, रोकता है, अंगविच्छेद करता है, मूर्च्छित करता है, उपद्रुत करता है, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोञ्छन आदि का आच्छेदन करता है, विच्छेदन करता करता है, भेदन करता है या अपहरण करता है।

४. ममं च णं सम्ममसहमाणस्स अखममाणस्स अतितिक्खमाणस्स अणधियासमाणस्स किं मण्णे कज्जति ? एगंतसो मे पावे कम्मे कज्जति ।

४ मम च सम्यग् असहमानस्य अक्षममानस्य अतितिक्षमाणस्य अनध्यासमानस्य कि मन्ये क्रियते ? एकान्तश मम पाप कर्म क्रियते ।

४. यदि मैं इन्हे अविचल भाव से सहन नही करूँगा, क्षान्ति नही रखूंगा, तितिक्षा नही रखूंगा और उनसे प्रभावित रहूंगा तो मुझे क्या होगा ? मेरे एकान्त पाप-कर्म का सचय होगा ।

५. ममं च णं सम्मं सहमाणस्स °खममाणस्स तितिक्खमाणस्स° अहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जति ? एगंतसो मे णिज्जरा कज्जति ।

५. मम च सम्यक् सहमानस्य क्षममानस्य तितिक्षमाणस्य अध्यासमानस्य कि मन्ये क्रियते ? एकान्तशः मम निर्जरा क्रियते ।

५. यदि मै अविचल भाव से सहन करूँगा क्षान्ति रखूंगा, तितिक्षा रखूंगा और उन से अप्रभावित रहूंगा तो मुझे क्या होगा ? मेरे एकान्त निर्जरा होगी ।

इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं छउमत्थे उदिण्णे परिसहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा °खमेज्जा तितिक्खेज्जा° अहियासेज्जा ।

इत्येतैः पञ्चभि स्थानैः छद्मस्थ. उदीर्णान् परीषहोपसर्गान् सम्यक् सहेत क्षमेत तितिक्षेत अध्यासीत ।

इन पांच स्थानो से छद्मस्थ उदित परीषहो तथा उपसर्गों को अविचल भाव से सहता है, क्षान्ति रखता है, तितिक्षा रखता है और उनसे अप्रभावित रहता है ।

७४. पंचहिं ठाणेहिं केवली उदिण्णे परिसहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा °खमेज्जा तितिक्खेज्जा° अहियासेज्जा, तं जहा—

पञ्चभि स्थानैः केवली उदीर्णान् परीषहोपसर्गान् सम्यक् सहेत क्षमेत तितिक्षेत अध्यासीत, तद्यथा—

७४. पाच स्थानो से केवली उदित परीषहो और उपसर्गों को अविचल भाव से सहता है—क्षान्ति रखता है, तितिक्षा रखता है और उनसे अप्रभावित रहता है ।

१. खित्तचित्ते खलु अयं पुरिसे । तेण मे एस पुरिसे अक्कोसति वा °अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भंछेति वा बंधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुछणमच्छिंदति वा विच्छिंदति वा भिंदति वा° अवहरति वा ।

१. क्षिप्तचित्त. खलु अय पुरुषः । तेन मा एष पुरुष आक्रोशति वा अपहसति वा निश्छोटयति वा निर्भर्त्सयति वा बध्नाति वा रुणद्धि वा छविच्छेद करोति वा, प्रमार वा नयति, उपद्रवति वा, वस्त्र वा प्रतिग्रह वा कम्बल वा पादप्रोञ्छन आच्छिनत्ति वा विच्छिनत्ति वा भिनत्ति वा अपहरति वा ।

१ यह पुरुष क्षिप्तचित्त वाला– शोक आदि से बेभान है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे बाहर निकालने की धमकियां देता है, मेरी निर्भर्त्सना करता है, मुझे बांधता है, रोकता है, अगविच्छेद करता है, मूर्च्छित करता है, उपद्रुत करता है, वस्त्र, पात्र, कबल, पादप्रोञ्छन आदि का आच्छेदन करता है, विच्छेदन करता है, भेदन करता है या अपहरण करता है ।

२. दित्तचित्ते खलु अयं पुरिसे । तेण मे एस पुरिसे °अक्कोसति वा अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भंछेति वा बंधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुछण-

२. दृप्तचित्त. खलु अय पुरुष । तेन मा एष पुरुषः आक्रोशति वा अपहसति वा निश्छोटयति वा निर्भर्त्सयति वा बध्नाति वा रुणद्धि वा छविच्छेद करोति वा, प्रमारं वा नयति, उपद्रवति वा, वस्त्र वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छन

२. यह पुरुष दृप्तचित्त—उन्मत्त है, इस लिए यह मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे बाहर निकालने की धमकियां देता है, मेरी निर्भर्त्सना करता है, मुझे बांधता है, रोकता है, अगविच्छेद करता है, मूर्च्छित करता है, उपद्रुत करता है, वस्त्र,

मच्छिदति वा विच्छिदति वा भिंदति वा° अवहरति वा।

३. जक्खाइट्ठे खलु अयं पुरिसे। तेण मे एस पुरिसे °अक्कोसति वा अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भंछेति वा बंधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति उद्दवेइ वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछण-मच्छिदति वा विच्छिदति वा भिंदति वा° अवहरति वा।

४. ममं च णं तब्भववेयणिज्जे कम्मे उदिण्णे भवति। तेण मे एस पुरिसे °अक्कोसति वा अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भंछेति वा बंधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा पमारं वा णेति उद्दवेइ वा, वत्थं ना पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणमच्छिदति वा विच्छिदति वा भिंदति वा° अवहरति वा।

५. ममं च णं सम्मं सहमाणं खममाणं तितिक्खमाणं अहियासेमाणं पासेत्ता बहवे अण्णे छउमत्था समणा णिग्गंथा उदिण्णे-उदिण्णे परीसहोवसग्गे एवं सम्मं सहिस्संति °खमिस्संति तितिक्खिस्संति° अहियासिस्संति।

इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं केवली उदिण्णे परीसहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा °खमेज्जा तितिक्खेज्जा° अहियासेज्जा।

आच्छिनत्ति वा विच्छिनत्ति वा भिनत्ति वा अपहरति वा।

३. यक्षाविष्टः खलु अयं पुरुषः। तेन मां एष पुरुषः आक्रोशति वा अपहसति वा निच्छोटयति वा निर्भर्त्सयति वा बध्नाति वा रुणद्धि वा छविच्छेदं करोति वा प्रमारं वा नयति, उपद्रवति वा वस्त्र वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पाद-प्रोञ्छनं आच्छिनत्ति वा विच्छिनत्ति वा भिनत्ति वा अपहरति वा।

४. मम च तद्भववेदनीयं कर्म उदीर्णं भवति। तेन मां एष पुरुषः आक्रोशति वा अपहसति वा निश्छोटयति वा निर्भर्त्सयति वा बध्नाति वा रुणद्धि वा छविच्छेदं करोति वा प्रमारं वा नयति उपद्रवति वा, वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं आच्छिनत्ति वा विच्छिनत्ति वा भिनत्ति वा अपहरति वा।

५. मां च सम्यक् सहमानं क्षममाणं तितिक्षमाणं अध्यासमानं दृष्ट्वा बहवः अन्ये छद्मस्थाः श्रमणाः निर्ग्रन्थाः उदीर्णान्-उदीर्णान् परीषहोपसर्गान् एवं सम्यक् सहिष्यन्ते क्षमिष्यन्ते तितिक्षिष्यन्ते अध्यासिष्यन्ते।

इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः केवली उदीर्णान् परीषहोपसर्गान् सम्यक् सहेत क्षमेत तितिक्षेत अध्यासीत।

पात्र, कंबल, पादप्रोंछन आदि का आच्छेदन करता है, विच्छेदन करता है, भेदन करता है या अपहरण करता है।

३. यह पुरुष यक्षाविष्ट है इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे बाहर निकालने की धमकियां देता है, मेरी निर्भर्त्सना करता है, मुझे बांधता है, रोकता है, अंगविच्छेद करता है, मूर्च्छित करता है, उपद्रुत करता है, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोंछन आदि का आच्छेदन करता है, विच्छेदन करता है, भेदन करता है या अपहरण करता है,

४. मेरे इस भव में वेदनीय कर्म उदित हो गए हैं इसलिए यह पुरुष मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे बाहर निकालने की धमकियां देता है, मेरी निर्भर्त्सना करता है, मुझे बांधता है, रोकता है, अंगविच्छेद करता है, मूर्च्छित करता है, उपद्रुत करता है, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोंछन आदि का आच्छेदन करता है, विच्छेदन करता है, भेदन करता है या अपहरण करता है,

५. मुझे अविचल भाव से परीषहों को सहता हुआ, क्षान्ति रखता हुआ, तितिक्षा रखता हुआ, अप्रभावित रहता हुआ देखकर बहुत सारे छद्मस्थ श्रमण-निर्ग्रन्थ परीषहों और उपसर्गों के उदित होने पर उन्हें अविचल भाव से सहन करेंगे, क्षान्ति रखेंगे, तितिक्षा रखेंगे और उनसे अप्रभावित रहेंगे।

इन पांच स्थानों से केवली उदित परिषहों तथा उपसर्गों को अविचलभाव से सहता है, क्षान्ति रखता है, तितिक्षा रखता है और उनसे अप्रभावित रहता है।

हेउ-पदं

७५. पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा—
हेउं ण जाणति, हेउं ण पासति,
हेउं ण बुज्झति, हेउं णाभिगच्छति,
हेउं अण्णाणमरणं मरति।

७६. पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा—
हेउणा ण जाणति,
•हेउणा ण पासति,
हेउणा ण बुज्झति,
हेउणा णाभिगच्छति,°
हेउणा अण्णाणमरणं मरति।

७७. पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा—
हेउं जाणइ, •हेउं पासइ,
हेउं बुज्झइ हेउं अभिगच्छइ,°
हेउं छउमत्थमरणं मरति।

७८. पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा—
हेउणा जाणइ, •हेउणा पासइ,
हेउणा बुज्झइ, हेउणा अभिगच्छइ,°
हेउणा छउमत्थमरणं मरइ।

अहेउ-पदं

७९. पंच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा—
अहेउं ण जाणति,
•अहेउं ण पासति,
अहेउं ण बुज्झति,
अहेउं णाभिगच्छति,°
अहेउं छउमत्थमरणं मरति।

हेतु-पदम्

पञ्च हेतवः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
हेतु न जानाति, हेतु न पश्यति,
हेतु न बुध्यते, हेतु नाभिगच्छति,
हेतु अज्ञानमरण म्रियते।

पञ्च हेतवः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
हेतुना न जानाति, हेतुना न पश्यति,
हेतुना न बुध्यते, हेतुना नाभिगच्छति,
हेतुना अज्ञानमरण म्रियते।

पञ्च हेतवः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
हेतु जानाति, हेतु पश्यति,
हेतु बुध्यते, हेतु अभिगच्छति,
हेतु छद्मस्थमरण म्रियते।

पञ्च हेतवः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
हेतुना जानाति, हेतुना पश्यति,
हेतुना बुध्यते, हेतुना अभिगच्छति,
हेतुना छद्मस्थमरण म्रियते।

अहेतु-पदम्

पञ्च अहेतवः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अहेतु न जानाति, अहेतु न पश्यति,
अहेतु न बुध्यते, अहेतु नाभिगच्छति,
अहेतु छद्मस्थमरण म्रियते।

हेतु-पद

७५. हेतु (परोक्षज्ञानी) पांच हैं[४७]—
१. हेतु को नहीं जानने वाला,
२. हेतु को नहीं देखने वाला,
३. हेतु पर श्रद्धा नहीं करने वाला,
४. हेतु को प्राप्त नहीं करने वाला,
५. सहेतुक अज्ञानमरण मरने वाला।

७६. हेतु पांच है—
१. हेतु से नहीं जानने वाला,
२. हेतु से नहीं देखने वाला,
३. हेतु से श्रद्धा नहीं करने वाला,
४. हेतु से प्राप्त नहीं करने वाला,
५. सहेतुक अज्ञानमरण से मरने वाला।

७७. हेतु पांच है—
१. हेतु को जानने वाला,
२. हेतु को देखने वाला,
३. हेतु पर श्रद्धा करने वाला,
४. हेतु को प्राप्त करने वाला,
५. सहेतुक छद्मस्थ-मरण मरने वाला।

७८. हेतु पांच है—
१. हेतु से जानने वाला,
२. हेतु से देखने वाला,
३. हेतु से श्रद्धा करने वाला,
४. हेतु से प्राप्त करने वाला,
५. सहेतुक छद्मस्थ-मरण से मरने वाला।

अहेतु-पद

७९. अहेतु पांच है—
१. अहेतु को नहीं जानने वाला,
२. अहेतु को नहीं देखने वाला,
३. अहेतु पर श्रद्धा नहीं करने वाला,
४. अहेतु को प्राप्त नहीं करने वाला,
५. अहेतु छद्मस्थ-मरण मरने वाला।

८०. पंच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा—
अहेउणा ण जाणति,
•अहेउणा ण पासति,
अहेउणा ण बुज्झति,
अहेउणा णाभिगच्छति,
अहेउणा छउमत्थमरणं मरति।

पञ्च अहेतवः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अहेतुना न जानाति,
अहेतुना न पश्यति,
अहेतुना न बुध्यते,
अहेतुना नाभिगच्छति,
अहेतुना छद्मस्थमरणं म्रियते।

८०. अहेतु पांच हैं—
१. अहेतु से नहीं जानने वाला,
२. अहेतु से नहीं देखने वाला,
३. अहेतु से श्रद्धा नहीं करने वाला,
४. अहेतु से प्राप्त नहीं करने वाला,
५. अहेतुक छद्मस्थ-मरण से मरने वाला।

८१. पंच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा—
अहेउं जाणति, •अहेउं पासति,
अहेउं बुज्झति,
अहेउं अभिगच्छति,°
अहेउं केवलिमरणं मरति।

पञ्च अहेतवः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अहेतु जानाति, अहेतुं पश्यति,
अहेतु बुध्यते, अहेतु अभिगच्छति,
अहेतु केवलिमरण म्रियते।

८१. अहेतु पाच हैं—
१. अहेतु को जानने वाला,
२ अहेतु को देखने वाला,
३. अहेतु पर श्रद्धा करने वाला,
४ अहेतु को प्राप्त करने वाला,
५ अहेतुक केवली-मरण मरने वाला।

८२. पंच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा—
अहेउणा जाणति,
•अहेउणा पासति,
अहेउणा बुज्झति,
अहेउणा अभिगच्छति,°
अहेउणा केवलिमरणं मरति।

पञ्च अहेतवः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अहेतुना जानाति, अहेतुना पश्यति,
अहेतुना बुध्यते, अहेतुना अभिगच्छति,
अहेतुना केवलिमरणं म्रियते।

८२. अहेतु पाच है—
१. अहेतु से जानने वाला,
२. अहेतु से देखने वाला,
३. अहेतु से श्रद्धा करने वाला,
४. अहेतु से प्राप्त करने वाला,
५. अहेतुक केवली-मरण से मरने वाला।

अणुत्तर-पदं

८३. केवलिस्स णं पंच अणुत्तरा पण्णत्ता, तं जहा—
अणुत्तरे णाणे, अणुत्तरे दंसणे,
अणुत्तरे चरित्ते, अणुत्तरे तवे,
अणुत्तरे वीरिए।

अनुत्तर-पदम्

केवलिनः पञ्च अनुत्तराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अनुत्तरं ज्ञान, अनुत्तर दर्शन,
अनुत्तर चारित्र, अनुत्तरं तपः,
अनुत्तर वीर्यम्।

अनुत्तर-पद

८३ केवली के पाच स्थान अनुत्तर हैं—
१. अनुत्तर ज्ञान, २. अनुत्तर दर्शन,
३. अनुत्तर चारित्र, ४. अनुत्तर तप,
५. अनुत्तर वीर्य।

पंच-कल्लाण-पदं

८४. पउमप्पहे णं अरहा पंचचित्ते हुत्था, तं जहा—
१. चित्ताहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते।
२. चित्ताहिं जाते।
३. चित्ताहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइए।

पञ्च-कल्याण-पदम्

पद्मप्रभः अर्हन् पञ्चचित्रः अभवत्, तद्यथा—
१. चित्रायां च्युतः च्युत्वा गर्भं अवक्रान्तः।
२. चित्रायां जातः।
३. चित्रायां मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजितः।

पञ्च-कल्याण-पद

८४. पद्मप्रभ तीर्थंकर के पच-कल्याण चित्रा नक्षत्र मे हुए—
१. चित्रा मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए,
२. चित्रा नक्षत्र मे जन्मे,
३. चित्रा नक्षत्र मे मुण्डित होकर अगार-धर्म से अनगार-धर्म मे प्रव्रजित हुए,

४. चित्ताहिं अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे ।	४. चित्रायां अनन्तं अनुत्तरं निर्व्याघातं निरावरणं कृत्स्नं प्रतिपूर्णं केवलवर-ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नं ।	४. चित्रा नक्षत्र मे अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण केवलज्ञानवरदर्शन को सम्प्राप्त हुए,
५. चित्ताहिं परिणिव्वुते ।	५ चित्रायां परिनिर्वृतः ।	५ चित्रा नक्षत्र मे परिनिवृत हुए।
८५. पुप्फदंते णं अरहा पंचमूले हुत्था, तं जहा— मूलेणं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते ।	पुष्पदन्तः अर्हन् पञ्चमूलः अभवत्, तद्यथा— मूले च्युतः च्युत्वा गर्भं अवक्रान्तः ।	८५. पुष्पदन्त तीर्थंकर के पंच कल्याण मूल नक्षत्र मे हुए— मूल मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में अवक्रान्त हुए।
८६ *सीयले णं अरहा पंचपुव्वासाढे हुत्था, त जहा— पुव्वासाढाहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते ।	शीतलः अर्हन् पञ्चपूर्वाषाढः अभवत्, तद्यथा— पूर्वाषाढाया च्युतः च्युत्वा गर्भं अव-क्रान्तः ।	८६. शीतल तीर्थंकर के पंच कल्याण पूर्वाषाढा नक्षत्र मे हुए— पूर्वाषाढा मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए।
८७. विमले णं अरहा पंचउत्तराभद्दवए हुत्था, तं जहा— उत्तराभद्दवयाहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते ।	विमलः अर्हन् पञ्चोत्तरभद्रपदः अभवत्, तद्यथा— उत्तरभद्रपदाया च्युतः च्युत्वा गर्भं अवक्रान्तः ।	८७ विमल तीर्थंकर के पंच कल्याण उत्तरभाद्र-पद नक्षत्र मे हुए— उत्तरभाद्रपद मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए।
८८. अणंते णं अरहा पंचरेवतिए हुत्था, तं जहा— रेवतिहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते ।	अनन्तः अर्हन् पञ्चरैवतिकः अभवत्, तद्यथा— रेवत्या च्युतः च्युत्वा गर्भं अवक्रान्तः ।	८८ अनन्त तीर्थंकर के पंच कल्याण रेवती नक्षत्र मे हुए— रेवती मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में अवक्रान्त हुए।
८९. धम्मे णं अरहा पंचपूसे हुत्था, तं जहा— पूसेणं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते ।	धर्मः अर्हन् पञ्चपुष्यः अभवत्, तद्यथा— पुष्ये च्युतः च्युत्वा गर्भं अवक्रान्तः ।	८९ धर्म तीर्थंकर के पंच कल्याण पुष्य नक्षत्र मे हुए— पुष्य में च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में अवक्रान्त हुए।
९०. संती णं अरहा पंचभरणीए हुत्था, तं जहा— भरणीहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते ।	शान्तिः अर्हन् पञ्चभरणीकः अभवत्, तद्यथा— भरण्या च्युतः च्युत्वा गर्भं अवक्रान्तः ।	९० शान्ति तीर्थंकर के पंच कल्याण भरणी नक्षत्र मे हुए— भरणी में च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में अवक्रान्त हुए।
९१. कुंथू णं अरहा पंचकत्तिए हुत्था, तं जहा— कत्तियाहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते ।	कुन्थुः अर्हन् पञ्चकृत्तिकः अभवत्, तद्यथा— कृत्तिकायां च्युतः च्युत्वा गर्भं अव-क्रान्तः ।	९१ कुंथु तीर्थंकर के पंच कल्याण कृत्तिका नक्षत्र मे हुए— कृत्तिका मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में अवक्रान्त हुए।

९२. अरे णं अरहा पंचरेवतिए हुत्था, तं जहा—
रेवतिहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते।

अरः अर्हन् पञ्चरैवतिकः अभवत्, तद्यथा—
रेवत्यां च्युतः च्युत्वा गर्भं अवक्रान्तः।

९२. अर तीर्थंकर के पच कल्याण रेवती नक्षत्र में हुए—
रेवती मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में अवक्रान्त हुए।

९३. मुणिसुव्वए णं अरहा पंचसवणे हुत्था, तं जहा—
सवणेणं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते।

मुनिसुव्रतः अर्हन् पञ्चश्रवणः अभवत्, तद्यथा—
श्रवणे च्युतः च्युत्वा गर्भं अवक्रान्तः।

९३. मुनिसुव्रत तीर्थंकर के पंच कल्याण श्रवण नक्षत्र मे हुए—
श्रवण मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में अवक्रान्त हुए।

९४. णमी णं अरहा पंचआसिणीए हुत्था, तं जहा—
आसिणीहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते।

नमिः अर्हन् पञ्चाश्विनीकः अभवत्, तद्यथा—
अश्विन्या च्युतः च्युत्वा गर्भं अवक्रान्तः।

९४. नमि तीर्थंकर के पंच कल्याण अश्विनी नक्षत्र में हुए—
अश्विनी में च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में अवक्रान्त हुए।

९५. णेमी णं अरहा पंचचित्ते हुत्था, तं जहा—
चित्ताहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते।

नेमिः अर्हन् पञ्चचित्रः अभवत्, तद्यथा—
चित्रायां च्युतः च्युत्वा गर्भं अवक्रान्तः।

९५. नेमि तीर्थंकर के पच कल्याण चित्रा नक्षत्र मे हुए—
चित्रा मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में अवक्रान्त हुए।

९६. पासे णं अरहा पंचविसाहे हुत्था, तं जहा—
विसाहाहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते।°

पार्श्वः अर्हन् पञ्चविशाखः अभवत्, तद्यथा—
विशाखायां च्युतः च्युत्वा गर्भं अवक्रान्तः।

९६. पार्श्व तीर्थंकर के पंच कल्याण विशाखा नक्षत्र मे हुए—
विशाखा मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए।

९७. समणे भगवं महावीरे पंचहत्थुत्तरे होत्था, तं जहा—
१. हत्थुत्तराहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते।
२. हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिते।
३. हत्थुत्तराहिं जाते।
४. हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता °अगाराओ अणगारितं° पव्वइए।
५. हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे °णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे° केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे।

श्रमणः भगवान् महावीरः पञ्च-हस्तोत्तरः अभवत्, तद्यथा—
१. हस्तोत्तरायां च्युतः च्युत्वा गर्भं अवक्रान्तः।
२. हस्तोत्तरायां गर्भात् गर्भं संहृतः।
३. हस्तोत्तरायां जातः।
४. हस्तोत्तरायां मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः।
५. हस्तोत्तरायां अनन्तं अनुत्तरं निर्व्याघातं निरावरणं कृत्स्नं प्रतिपूर्णं केवलवरज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्।

९७. श्रमण भगवान् महावीर के पच कल्याण हस्तोत्तर [उत्तर फाल्गुनी] नक्षत्र में हुए[५]—
१. हस्तोत्तर नक्षत्र मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे अवक्रान्त हुए।
२. हस्तोत्तर नक्षत्र में देवानदा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ मे सहृत हुए।
३. हस्तोत्तर नक्षत्र मे जन्मे।
४. हस्तोत्तर नक्षत्र मे मुण्डित होकर अगार-धर्म से अनगार-धर्म मे प्रव्रजित हुए,
५. हस्तोत्तर नक्षत्र में अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण केवलज्ञानवरदर्शन को सप्राप्त हुए।

बीओ उद्देसो

महाणदी-उत्तरण-पदं

९८. णो कप्पइ णिग्गंथाणं वा णिग्गंथीण वा इमाओ उद्दिट्ठाओ गणियाओ वियंजियाओ पंच महण्णवाओ महाणदीओ अंतो मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा, तं जहा—
गंगा, जउणा, सरऊ, एरावती, मही।
पंचहिं ठाणेहिं कप्पति, तं जहा—
१. भयंसि वा,
२. दुब्भिक्खंसि वा,
३. पव्वहेज्ज वा णं कोई,
४. दओघंसि वा एज्जमाणंसि महता वा,
५. अणारिएसु।

महानदी-उत्तरण-पदम्

नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा इमाः उद्दिष्टाः गणिताः व्यञ्जिताः पञ्च महार्णवाः महानद्यः अन्तः मासस्य द्विकृत्वो वा त्रिकृत्वो वा उत्तरीतुं वा संतरीतुं वा, तद्यथा—
गङ्गा, यमुना, सरयूः, ऐरावती, मही।
पञ्चभिः स्थानैः कल्पते, तद्यथा—
१. भये वा,
२. दुर्भिक्षे वा,
३. प्रव्यपयेत् (प्रवाहयेत्) वा कश्चित्,
४. उदकौघे वा आयति महता वा,
५. अनार्यैः।

महानदी-उत्तरण-पद

९८. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को महानदी के रूप में कथित, गणित और प्रख्यात इन पांच महार्णव महानदियों का महीने में दो बार या तीन बार से अधिक उत्तरण तथा संतरण नहीं करना चाहिए[४]. जैसे—
१ गंगा, २ यमुना, ३. सरयू,
४. ऐरावती, ५. मही।
पांच कारणों से वह किया जा सकता है—
१. शरीर, उपकरण आदि के अपहरण का भय होने पर,
२ दुर्भिक्ष होने पर,
३. किसी के द्वारा व्यथित या प्रवाहित किए जाने पर,
४ बाढ आ जाने पर,
५ अनार्यों द्वारा उपद्रुत किए जाने पर।

पढमपाउस-पदं

९९. णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पढमपाउसंसि गामाणुगामं दूइज्जित्तए।
पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ, तं जहा—
१. भयंसि वा,
२. दुब्भिक्खंसि वा,
३. °पव्वहेज्ज वा णं कोई,
४. दओघंसि वा एज्जमाणंसि° महता वा,
५. अणारिएहिं।

प्रथम प्रावृट्-पदम्

नो कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीनां वा प्रथमप्रावृषि ग्रामानुग्राम द्रविनुम्।
पञ्चभि स्थानैः कल्पते, तद्यथा—
१. भये वा,
२. दुर्भिक्षे वा,
३. प्रव्यपयेत् (प्रवाहयेत्) वा कश्चित्,
४ उदकौघे वा आयति महता वा,
५. अनार्यैः।

प्रथम प्रावृट्-पद

९९. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो को प्रथम प्रावृट्-चातुर्मास के पूर्वकाल मे ग्रामानुग्राम विहार नही करना चाहिए। पांच कारणों से वह किया जा सकता है[४] —
१. शरीर, उपकरण आदि के अपहरण का भय होने पर,
२. दुर्भिक्ष होने पर,
३. किसी के द्वारा व्यथित—ग्राम से निकाल दिए जाने पर,
४. बाढ आ जाने पर,
५. अनार्यों द्वारा उपद्रुत किए जाने पर।

वासावास-पदं

१००. वासावासं पज्जोसविताणं णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा गामाणुगामं दूइज्जित्तए।
पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ, तं जहा—
१. णाणट्ठयाए,
२. दंसणट्ठयाए,
३. चरित्तट्ठयाए,
४. आयरिय-उवज्झाया वा से वीसुंभेज्जा।
५. आयरिय-उवज्झायाण वा बहिता वेआवच्चकरणयाए।

वर्षावास-पदम्

वर्षावासं पर्युषितानां नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा ग्रामानुग्रामं द्रवितुम्।
पञ्चभिः स्थानैः कल्पते, तद्यथा—
१. ज्ञानार्थाय,
२. दर्शनार्थाय,
३. चरित्रार्थाय,
४. आचार्योपाध्यायौ वा तस्य विष्वग्-भवेता,
५. आचार्योपाध्याययोः वा बहिस्तात् वैयावृत्यकरणाय।

वर्षावास-पद

१००. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को वर्षावास में पर्युषणा कल्पपूर्वक निवास कर ग्रामानुग्राम विहार नही करना चाहिए। पाच कारणों से वह किया जा सकता है[१३]—
१. ज्ञान के लिए, २. दर्शन के लिए,
३. चरित्र के लिए, ४. आचार्य या उपाध्याय की मृत्यु के अवसर पर,
५. वर्षाक्षेत्र से बाहर रहे हुए आचार्य या उपाध्याय का वैयावृत्य करने के लिए।

अणुग्घातिय-पदं

१०१. पंच अणुग्घातिया पण्णत्ता, तं जहा—
हत्थकम्मं करेमाणे,
मेहुणं पडिसेवेमाणे,
रातीभोयणं भुंजेमाणं,
सागारियपिंडं भुंजेमाणे
रायपिंडं भुंजेमाणे।

अनुद्घात्य-पदम्

पञ्च अनुद्घात्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
हस्तकर्म कुर्वन्,
मैथुन प्रतिषेवमाणः,
रात्रिभोजनं भुञ्जानः,
सागारिकपिण्ड भुञ्जानः,
राजपिण्ड भुञ्जानः।

अनुद्घात्य-पद

१०१. पाच अनुद्घातिक [गुरु प्रायश्चित्त के योग्य] होते है—
१ हस्तकर्म करने वाला,
२ मैथुन की प्रतिसेवना करने वाला,
३ रात्रि-भोजन करने वाला,
४. सागारिकपिंड[१४] [शय्यातरपिंड] का भोजन करने वाला,
५. राजपिंड[१५] का भोजन करने वाला।

रायंतेउर-पवेस--पदं

१०२. पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे रायंतेउरमणुपविसमाणे णाइक्कमति, तं जहा—
१. णगरे सिया सव्वतो समंता गुत्ते गुत्तदुवारे, बहवे समणमाहणा णो संचाएंति भत्ताए वा पाणाए वा णिक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, तेसिं विण्णवणट्ठयाए रायंतेउरमणुपविसेज्जा।

राजान्तःपुर-प्रवेश-पदम्

पञ्चभिः स्थानैः श्रमणः निर्ग्रंथः राजान्तःपुर अनुप्रविशन् नातिक्रामति, तद्यथा—
१. नगरं स्यात् सर्वतः समन्तात् गुप्त गुप्तद्वारं, बहवः श्रमणमाहणाः नो शक्नुवन्ति भक्ताय वा पानाय वा निष्क्रमितु वा प्रवेष्टु वा, तेषां विज्ञापनार्थाय राजान्तःपुरं अनुप्रविशेत्।

राजान्तःपुर-प्रवेश-पद

१०२. पाच स्थानो से श्रमण-निर्ग्रन्थ राजा के अन्त पुर मे अनुप्रविष्ट होता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता—
१. यदि नगर चारो ओर परकोटे से घिरा हुआ हो तथा उसके द्वार बन्द कर दिए गये हो, बहुत सारे श्रमण और माहन भोजन-पानी के लिए नगर से बाहर निष्क्रमण और प्रवेश न कर सके, उस स्थिति मे उनके प्रयोजन का विज्ञापन करने के लिए वह राजा के अन्तःपुर मे अनुप्रविष्ट हो सकता है,

२. पाडिहारियं वा पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं पच्चप्पिणमाणे रायंतेउरमणुपविसेज्जा।
३. हयस्स वा गयस्स वा दुट्ठस्स आगच्छमाणस्स भीते रायंतेउर-मणुपविसेज्जा।
४. परो व णं सहसा वा बलसा वा बाहाए गहाय रायंतेउरमणु-पवेसेज्जा।
५. बहिता व णं आरामगयं वा उज्जाणगयं वा रायंतेउरजणो सव्वतो समंता संपरिक्खिवित्ता णं सण्णिवेसिज्जा—
इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे °रायंतेउरमणुपविसमाणे° णातिक्कमइ।

२. प्रातिहारिकं वा पीठ-फलक-शय्या-संस्तारकं प्रत्यर्पयन् राजान्तःपुरमनु-प्रविशेत्।
३. हयस्य वा गजस्य वा दुष्टस्य आगच्छतः भीतः राजान्तःपुर अनु-प्रविशेत्।
४. परो वा सहसा वा बलेन वा बाहुं गृहीत्वा राजान्त पुर अनुप्रवेशयेत्।
५. बहिस्तात् वा आरामगत वा उद्यान-गतवा राजान्तःपुरजनो सर्वत समन्तात् संपरिक्षिप्य सन्निविशेत्—
इत्येतैः पञ्चभि स्थानैः श्रमण निर्ग्रन्थः राजान्त पुर अनुप्रविशन् नातिक्रामति।

२. प्रातिहारिक[15] पीठ, फलक, शय्या, सस्तारक को वापस देने के लिए राजा के अन्तःपुर मे अनुप्रविष्ट हो सकता है,
३. दुष्ट घोड़े या हाथी आदि के सामने आ जाने पर रक्षा के लिए राजा के अन्त.-पुर मे अनुप्रविष्ट हो सकता है,
४. कोई अन्य व्यक्ति अचानक बलपूर्वक बाहु पकड कर ले जाए तो राजा के अन्त -पुर मे अनुप्रविष्ट हो सकता है,
५ कोई साधु नगर के बाहर आराम[16] या उद्यान[16] मे ठहरा हुआ हो और वहा क्रीडा करने के लिए राजा का अन्तःपुर आ जाए, राजपुरुष उस आराम को घेर ले—निर्गम व प्रवेश बन्द कर दे, उस स्थिति मे वह वही रह सकता है।
इन पांच स्थानो मे श्रमण-निर्ग्रन्थ राजा के अन्तःपुर म अनुप्रविष्ट होता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता।

गब्भधरण-पदं

१०३. पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं असंवसमाणीवि गब्भं धरेज्जा, तं जहा—
१. इत्थी दुव्वियडा दुण्णिसण्णा सुक्कपोग्गले अधिट्ठिज्जा।
२. सुक्कपोग्गलसंसिट्ठे व से वत्थे अंतोजोणीए अणुपवेसेज्जा।
३. सइं वा से सुक्कपोग्गले अणुप-वेसेज्जा।
४. परो व से सुक्कपोग्गले अणुप-वेसेज्जा।

गर्भधरण-पदम्

पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्धं असंवसन्त्यपि गर्भं धरेत्, तद्यथा—
१ स्त्री दुर्विवृता दुर्निषण्णा शुक्रपुद्-गलान् अधितिष्ठेत्।
२ शुक्रपुद्गलसंसृष्टं वा तस्या वस्त्रं अन्त. योन्यां अनुप्रविशेत्।
३ स्वयं वा सा शुक्रपुद्गलान् अनु-प्रवेशयेत्।
४. परो वा तस्याः शुक्रपुद्गलान् अनु-प्रवेशयेत्।

गर्भधरण-पद

१०३ पाच कारणो से स्त्री पुरुष का सहवास न करती हुई गर्भ को धारण कर सकती है[17]—
१ अनावृत तथा दुर्निषण्ण—पुरुष वीर्य से संसृष्ट स्थान को गुह्य प्रदेश से आक्रान्त कर बैठी हुई स्त्री के योनि-देश मे शुक्र-पुद्गलो का आकर्षण होने पर,
२. शुक्र-पुद्गलो से संसृष्ट वस्त्र के योनि-देश मे अनुप्रविष्ट हो जाने पर,
३ पुत्रार्थिनी होकर स्वयं अपने ही हाथों से शुक्र-पुद्गलो को योनि-देश मे अनु-प्रविष्ट कर देने पर,
४ दूसरों के द्वारा शुक्र-पुद्गलों के योनि-देश मे अनुप्रविष्ट किए जाने पर,

५. सीओदगवियडेण वा से आयममाणीए सुक्कपोग्गला अणुपवेसेज्जा—
इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं °इत्थी पुरिसेणं सद्धिं असंवसमाणीवि गब्भं° धरेज्जा।

५. शीतोदकविकटेन वा तस्याः आचामन्त्योः शुक्रपुद्गलाः अनुप्रविशेयुः—
इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्धं असंवसन्ती गर्भं धरेत्।

५. नदी, तालाब आदि में स्नान करती हुई के योनि-देश में शुक्र-पुद्गलों के अनुप्रविष्ट हो जाने पर।
इन पांच कारणों से स्त्री पुरुष का सहवास न करती हुई भी गर्भ को धारण कर सकती है।

१०४. पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणीवि गब्भं णो धरेज्जा, तं जहा—
१. अप्पत्तजोव्वणा।
२. अतिकंतजोव्वणा।
३. जातिवंझा।
४. गेलण्णपुट्ठा।
५. दोमणंसिया—
इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं °इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणीवि गब्भं° णो धरेज्जा।

पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्धं संवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्, तद्यथा—
१. अप्राप्तयौवना।
२. अतिक्रान्तयौवना।
३. जातिबन्ध्या।
४. ग्लानस्पृष्टा।
५. दौर्मनस्यिका—
इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्धं सवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्।

१०४. पांच कारणों से स्त्री पुरुष का सहवास करती हुई भी गर्भ को धारण नहीं करती—
१. पूर्ण युवति[80] न होने से,
२. विगतयौवना[81] होने से,
३. जन्म से ही वंध्या होने से,
४. रोग से स्पृष्ट होने से,
५. शोकग्रस्त होने से।
इन पांच कारणों से स्त्री पुरुष का सहवास करती हुई भी गर्भ को धारण नहीं कर सकती।

१०५. पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणीवि णो गब्भं धरेज्जा, तं जहा—
१. णिच्चोउया।
२. अणोउया।
३. वावण्णसोया।
४. वाविद्धसोया।
५. अणंगपडिसेवणी—
इच्चेतेहिं °पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणीवि गब्भं° णो धरेज्जा।

पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्धं संवसन्त्यपि नो गर्भं धरेत्, तद्यथा—
१. नित्यर्तुका।
२. अनृतुका।
३. व्यापन्नश्रोता।
४. व्याविद्धश्रोता।
५. अनङ्गप्रतिषेविणी—
इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्धं संवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्।

१०५. पांच कारणों से स्त्री पुरुष का सहवास करती हुई भी गर्भ को धारण नहीं करती—
१. सदा ऋतुमती रहने से,
२. कभी भी ऋतुमती न होने से,
३. गर्भाशय के नष्ट हो जाने से,
४. गर्भाशय की शक्ति के क्षीण हो जाने से,
५. अप्राकृतिक काम-क्रीड़ा करने, अत्यधिक पुरुष सहवास करने या अनेक पुरुषों का सहवास करने से[82]।
इन पांच कारणों से स्त्री पुरुष का सहवास करती हुई भी गर्भ को धारण नहीं कर सकती।

१०६. पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणीवि गब्भं णो धरेज्जा, तं जहा—

पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्धं संवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्, तद्यथा—

१०६. पांच कारणों से स्त्री पुरुष का सहवास करती हुई भी गर्भ को धारण नहीं करती—

१. उउंमि णो णिगामपडिसेविणी यावि भवति।
२. समागता वा से सुक्कपोग्गला पडिविद्धंसंति।
३. उदिण्णे वा से पित्तसोणिते।
४. पुरा वा देवकम्मणा।
५. पुत्तफले वा णो णिव्विट्ठे भवति—इच्चेतेहिं *पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणीवि गब्भं° णो धरेज्जा।

१. ऋतौ नो निकामप्रतिषेविणी चापि भवति।
२. समागता वा तस्याः शुक्रपुद्गलाः परिविध्वसन्ते।
३. उदीर्णं वा तस्याः पित्तशोणितम्।
४. पुरा वा देवकर्मणा।
५. पुत्रफलं वा नो निर्दिष्टो भवति— इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्धं सवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्।

१. ऋतुकाल में वीर्यपात होने तक पुरुष का प्रतिसेवन नही करने से,
२. समागत शुक्र-पुद्गलो के विध्वस्त हो जाने से,
३. पित्त-प्रधान शोणित के उदीर्ण हो जाने से, ४. देव-प्रयोग से,
५. पुत्र फलदायी कर्म के अर्जित न होने से। इन पाच कारणो से स्त्री पुरुष का सहवास करती हुई भी गर्भ को धारण नहीं कर सकती।

णिग्गंथ-णिग्गंथी-एगओवास-पदं

१०७. पंचहिं ठाणेहिं णिग्गंथीओ य एगतओ ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेमाणा णातिक्कमंति तं जहा—
१. अत्थेगइया णिग्गंथा य णिग्गंथीओ य एगं महं अगामियं छिण्णावायं दीहमद्धमडविमणुपविट्ठा, तत्थेगयतो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेमाणा णातिक्कमंति।
२. अत्थेगइया णिग्गंथा य णिग्गंथीओ य गामंसि वा णगरंसि वा *खेडंसि वा कब्बडंसि वा मडंबंसि वा पट्टणंसि वा दोणमुहंसि वा आगरंसि वा णिगमंसि वा आसमंसि वा सण्णिवेसंसि वा° रायहाणिसि वा वासं उवागता, एगतिया जत्थ उवस्सयं लभंति, एगतिया णो लभंति, तत्थेगतो ठाणं वा *सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेमाणा° णातिक्कमंति।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी-एकत्रवास-पदम्

पञ्चभिः स्थानैः निर्ग्रन्थाः निर्ग्रन्थ्यः च एकतः स्थानं वा शय्यां वा निषीधिकां वा कुर्वन्तो नातिक्रामन्ति, तद्यथा—
१. सन्त्येके निर्ग्रन्थाश्च निर्ग्रन्थ्यश्च एकां महतीं अग्रामिकां छिन्नापातां दीर्घाध्वानं अटवीं अनुप्रविष्टाः, तत्रैकतः स्थानं वा शय्यां वा निषीधिकां वा कुर्वन्तो नातिक्रामन्ति।
२. सन्त्येके निर्ग्रन्थाश्च निर्ग्रन्थ्याश्च ग्रामे वा नगरे वा खेटे वा कर्बटे वा मडम्बे वा पत्तने वा द्रोणमुखे वा आकरे वा निगमे वा आश्रमे वा सन्निवेशे वा राजधान्यां वा वासं उपागताः, एके यत्र उपाश्रयं लभन्ते, एके नो लभन्ते, तत्रैकतः स्थानं वा शय्यां वा निषीधिकां वा कुर्वन्तो नातिक्रामन्ति।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी-एकत्रवास-पद

१०७ पाच स्थानो से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया एक स्थान पर कायोत्सर्ग, शयन तथा स्वाध्याय करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते—
१. कदाचित् कुछ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया किसी विशाल, वस्तीशून्य, आवागमन-रहित तथा लम्बी अटवी मे अनुप्रविष्ट हो जाने पर वहा एक स्थान पर कायोत्सर्ग, शयन तथा स्वाध्याय करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते,
२. कदाचित् कुछ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियां ग्राम, नगर, खेट, कर्बट, मडम्ब, पत्तन, आकर, द्रोणमुख, निगम, आश्रम, सन्निवेश और राजधानी मे गए। वहा दोनो मे से किसी वर्ग को उपाश्रय मिले या किसी को न मिले तो वे एक स्थान पर कायोत्सर्ग, शयन तथा स्वाध्याय करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते,

३. अत्थेगइया णिग्गंथा य णिग्गंथीओ य णागकुमारावासंसि वा सुवण्णकुमारावासंसि वा वासं उवागता, तत्थेगओ °ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेमाणा° णातिक्कमंति।

४. आमोसगा दीसंति, ते इच्छंति णिग्गंथीओ चीवरपडियाए पडिगाहित्तए, तत्थेगओ ठाणं वा °सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेमाणा° णातिक्कमंति।

५. जुवाणा दीसंति, ते इच्छंति णिग्गंथीओ मेहुणपडियाए पडिगाहित्तए, तत्थेगओ ठाणं वा °सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेमाणा° णातिक्कमंति।

इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं °णिग्गंथा णिग्गंथीओ य एगतओ ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेमाणा° णातिक्कमंति।

३. सन्त्येके निर्ग्रन्थाश्च निर्ग्रन्थ्यश्च नागकुमारावासे वा सुपर्णकुमारावासे वा वासं उपागताः, तत्रैकतः स्थानं वा शय्या वा निषिधीकां वा कुर्वन्तो नातिक्रामन्ति।

४. आमोषका दृश्यन्ते, ते इच्छन्ति निर्ग्रन्थीः चीवरप्रतिज्ञया परिग्रहीतुम्, तत्रैकत. स्थान वा शय्या वा निषीधिका वा कुर्वन्तो नातिक्रामन्ति।

५. युवानो दृश्यन्ते, ते इच्छन्ति निर्ग्रन्थीः मैथुनप्रतिज्ञया प्रतिग्रहीतुम्, तत्रैकत स्थान वा शय्या वा निषीधिका वा कुर्वन्तो नातिक्रामन्ति।

इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः निर्ग्रन्थाश्च निर्ग्रन्थ्यश्च एकत स्थान वा शय्या वा निषीधिका वा कुर्वन्तो नातिक्रामन्ति।

३. कदाचित् कुछ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया नागकुमार आदि के आवास मे रहें। वहां अतिविजनता होने के कारण निर्ग्रन्थियो की सुरक्षा के लिए एक स्थान पर कायोत्सर्ग, शयन तथा स्वाध्याय करने हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते,

४ कही चोर बहुत हों और वे निर्ग्रन्थियों के वस्त्रों को चुराना चाहते हों, वहा निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया एक स्थान पर कायोत्सर्ग, शयन तथा स्वाध्याय करने हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते।

५. कही युवक बहुत हो और वे निर्ग्रन्थियो के ब्रह्मचर्य को खण्डित करना चाहते हो, वहा निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियां एक स्थान पर कायोत्सर्ग, शयन तथा स्वाध्याय करने हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते।

इन पाच स्थानों मे निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियां एक स्थान पर कायोत्सर्ग, शयन तथा स्वाध्याय करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते।

१०८. पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे अचेलए सचेलियाहिं णिग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे णाइक्कमति, तं जहा—

१. खित्तचित्ते समणे णिग्गंथे णिग्गंथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे णातिक्कमति।

२. °दित्तचित्ते समणे णिग्गंथे णिग्गंथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे णातिक्कमति।

पञ्चभिः स्थानैः श्रमणः निर्ग्रन्थः अचेलकः सचेलकाभिः निर्ग्रन्थीभिः सार्धं सवसन् नातिक्रामति, तद्यथा—

१. क्षिप्तचित्त. श्रमण. निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थेषु अविद्यमानेषु अचेलक. सचेलकाभिः निर्ग्रन्थीभिः सार्धं सवसन् नातिक्रामति।

२. दृप्तचित्तः श्रमणः निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थेषु अविद्यमानेषु अचेलकः सचेलकाभिः निर्ग्रन्थीभिः सार्धं संवसन् नातिक्रामति।

१०८ पाच स्थानो से अचेल निर्ग्रन्थ सचेल निर्ग्रन्थियों के साथ रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते—

१ शोक आदि से क्षिप्तचित्त निर्ग्रन्थ, अन्य निर्ग्रन्थो के न होने पर, स्वय अचेल होते हुए, सचेल निर्ग्रन्थियो के साथ रहता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता,

२. हर्ष आदि से दृप्तचित्त निर्ग्रन्थ, अन्य निर्ग्रन्थों के न होने पर, स्वय अचेल होते हुए, सचेल निर्ग्रन्थियो के साथ रहता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता,

३. जक्खाइट्ठे समणे णिग्गंथे णिग्गंथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे णातिक्कमति।
४. उम्मायपत्ते समणे णिग्गंथे णिग्गंथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे णातिक्कमति।[१]
५. णिग्गंथीपव्वाइयए समणेणिग्गंथे णिग्गंथेहिं अविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे णातिक्कमति।

३. यक्षाविष्टः श्रमणः निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थेषु अविद्यमानेषु अचेलकः सचेलकाभिः निर्ग्रन्थिभिः सार्धं संवसन् नातिक्रामति।
४. उन्मादप्राप्तः श्रमणः निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थेषु अविद्यमानेषु अचेलकः सचेलकाभिः निर्ग्रन्थीभिः सार्धं संवसन् नातिक्रामति।
५. निर्ग्रन्थीप्रव्राजितकः श्रमणः निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थेषु अविद्यमानेषु अचेलकः सचेलकाभिः निर्ग्रन्थीभिः सार्धं संवसन् नातिक्रामति।

३. यक्षाविष्ट निर्ग्रन्थ, अन्य निर्ग्रन्थों के न होने पर, स्वयं अचेल होते हुए, सचेल निर्ग्रन्थियों के साथ रहता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता,
४. वायु-प्रकोप आदि से उन्मत्त निर्ग्रन्थ, अन्य निर्ग्रन्थों के न होने पर, स्वयं अचेल होते हुए, सचेल निर्ग्रन्थियों के साथ रहता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता,
५. निर्ग्रन्थियों द्वारा प्रव्रजित निर्ग्रन्थ, अन्य निर्ग्रन्थों के न होने पर, स्वयं अचेल होते हुए, सचेल निर्ग्रन्थियों के साथ रहता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता।

आसव-संवर-पदं

१०९. पंच आसवदारा पण्णत्ता, तं जहा—मिच्छत्तं, अविरती, पमादो, कसाया, जोगा।

आश्रव-संवर-पदम्

पञ्चाश्रवद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—मिथ्यात्व, अविरतिः, प्रमादः, कषायाः, योगाः।

आश्रव-संवर-पद

१०९. आश्रवद्वार पांच हैं—
१. मिथ्यात्व—विपरीत तत्त्वश्रद्धा,
२. अविरति—अत्यागवृत्ति,
३. प्रमाद—आत्मिक अनुत्साह,
४. कषाय—आत्मा का राग-द्वेषात्मक उत्ताप, ५. योग—मन, वचन और काया का व्यापार।

११०. पंच संवरदारा पण्णत्ता, तं जहा—संमत्तं, विरती, अपमादो, अकसाइत्तं, अजोगित्तं।

पञ्च संवरद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सम्यक्त्व, विरतिः, अप्रमाद, अकषायित्व, अयोगित्वम्।

११०. संवरद्वार पांच हैं—
१. सम्यक्त्व—सम्यक् तत्त्वश्रद्धा,
२. विरति—त्यागभाव,
३. अप्रमाद—आत्मिक उत्साह,
४. अकषाय—राग-द्वेष से निवृत्ति,
५. अयोग—प्रवृत्ति-निरोध।

दंड-पदं

१११. पंच दंडा पण्णत्ता, तं जहा—अट्ठादंडे, अणट्ठादंडे, हिंसादंडे, अकस्मादंडे, दिट्ठीविप्परियासियादंडे।

दण्ड-पदम्

पञ्च दण्डाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अर्थदण्ड, अनर्थदण्ड, हिंसादण्ड, अकस्माद्दण्ड, दृष्टिविपर्यासिकीदण्ड।

दण्ड-पद

१११. दण्ड पांच हैं—
१. अर्थदण्ड—प्रयोजनवश अपने या दूसरों के लिए त्रस या स्थावर प्राणियों की हिंसा करना, २. अनर्थदण्ड—निष्प्रयोजन हिंसा करना, ३. हिंसादण्ड—'यह मुझे मार रहा है, मारेगा या इसने मुझको मारा था'—इसलिए हिंसा करना,
४. अकस्माद्दण्ड—एक के वध के लिए प्रहार करने पर दूसरे का वध हो जाना।
५. दृष्टिविपर्यासदण्ड—मित्र को अमित्र जानकर दण्डित करना।

किरिया-पदं	क्रिया-पदम्	क्रिया-पद
११२. पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा— आरंभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया, मिच्छादंसणवत्तिया।	पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानक्रिया, मिथ्यादर्शनप्रत्यया।	११२. क्रिया पांच प्रकार की है[७४]— १. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी, ३. मायाप्रत्यया, ४. अप्रत्याख्यानक्रिया, ५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया।
११३. मिच्छादिट्ठियाणं णेरइयाणं पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा— °आरंभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया,° मिच्छादंसणवत्तिया।	मिथ्यादृष्टिकाना नैरयिकाना पच क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानक्रिया, मिथ्यादर्शनप्रत्यया।	११३. मिथ्यादृष्टि नैरयिकों के पांच क्रियाएं होती हैं[७५]— १. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी, ३. मायाप्रत्यया, ४. अप्रत्याख्यानक्रिया, ५ मिथ्यादर्शनप्रत्यया।
११४. एवं—सव्वेसिं णिरंतरं जाव मिच्छद्दिट्ठियाणं वेमाणियाणं, णवरं—विगलिंदिया मिच्छद्दिट्ठी ण भण्णंति। सेसं तहेव।	एवम्—सर्वेषां निरन्तर यावत् मिथ्या-दृष्टिकाना वैमानिकानां, नवरं—विकलेन्द्रिया मिथ्यादृष्टयो न भण्यन्ते। शेषं तथैव।	११४. इसी प्रकार विकलेन्द्रियों तथा शेष सभी मिथ्यादृष्टि वाले दण्डकों मे पाचों ही क्रियाएं होती हैं[७६]।
११५. पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा— काइया, आहिगरणिया, पाओसिया, पारितावणिया, पाणातिवातकिरिया।	पच क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— कायिकी, आधिकरणिकी, प्रादोषिकी, पारितापनिकी, प्राणातिपातक्रिया।	११५. क्रिया पाच प्रकार की है[७७]— १. कायिकी, २. आधिकरणिकी, ३ प्रादोषिकी, ४. पारितापनिकी, ५. प्राणातिपातक्रिया।
११६. णेरइयाणं पंच एवं चेव। एवं—णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।	नैरयिकाणां पञ्च एवं चैव। एवम्—निरन्तरं यावत् वैमानिकानाम्।	११६. सभी दण्डकों मे ये पाच क्रियाएं होती है[७८]।
११७. पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा— आरंभिया, °पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया,° मिच्छादंसणवत्तिया।	पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानक्रिया, मिथ्यादर्शनप्रत्यया।	११७. क्रिया पाच प्रकार की है[७९]— १. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी, ३. मायाप्रत्यया, ४. अप्रत्याख्यानक्रिया, ५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया।
११८. णेरइयाणं पंच किरिया णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।	नैरयिकाणां पच क्रियाः निरन्तर यावत् वैमानिकानाम्।	११८. सभी दण्डको मे ये पाचो क्रियाए होती है[८०]।

११९. पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
दिट्ठिया, पुट्ठिया,
पाडुच्चिया, सामंतोवणिवाइया,
साहत्थिया।

पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
दृष्टिजा, पृष्टिजा, प्रातित्यिकी,
सामन्तोपनिपातिकी, स्वाहस्तिकी।

११९. क्रिया पांच प्रकार की है[61]—
१. दृष्टिजा, २. पृष्टिजा, ३. प्रातित्यिकी,
४. सामंतोपनिपातिकी, ५. स्वाहस्तिका।

१२०. एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

एवं नैरयिकाणां यावत् वैमानिकानाम्।

१२०. सभी दण्डकों में ये पांचों क्रियाएं होती हैं[62]।

१२१. पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
णेसत्थिया, आणवणिया,
वेयारणिया, अणाभोगवत्तिया,
अणवकंखवत्तिया।
एवं जाव वेमाणियाणं।

पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
नैसृष्टिकी, आज्ञापनिका, वैदारणिका,
अनाभोगप्रत्यया, अनवकाङ्क्षप्रत्यया।
एवं यावत् वैमानिकानाम्।

१२१. क्रिया पांच प्रकार की है[63]—
१. नैसृष्टिकी, २. आज्ञापनिकी,
३. वैदारणिका, ४. अनाभोगप्रत्यया,
५. अनवकांक्षप्रत्यया।
सभी दण्डकों में ये पांचों क्रियाएं होती हैं[64]।

१२२. पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
पेज्जवत्तिया, दोसवत्तिया,
पओगकिरिया, समुदाणकिरिया,
ईरियावहिया।
एवं—मणुस्साणवि।
सेसाणं णत्थि।

पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
प्रेयःप्रत्यया, दोषप्रत्यया, प्रयोगक्रिया,
समुदानक्रिया, ऐर्यापथिकी।
एवम्—मनुष्याणामपि। शेषाणां नास्ति।

१२२. क्रिया पांच प्रकार की है[65]—
१. प्रेयस्प्रत्यया, २. दोषप्रत्यया,
३. प्रयोगक्रिया—गमनागमन की क्रिया,
४. समुदानक्रिया—मन, वचन और काया की प्रवृत्ति। ५. ईर्यापथिकी—वीतराग के मन, वचन और काया की प्रवृत्ति से होने वाला पुण्य-बंध।
ये क्रियाएं मनुष्यों के ही होती है, शेष दण्डकों में नहीं।

परिण्णा-पदं

१२३. पंचविहा परिण्णा पण्णत्ता, तं जहा—
उवहिपरिण्णा, उवस्सयपरिण्णा,
कसायपरिण्णा, जोगपरिण्णा,
भत्तपाणपरिण्णा।

परिज्ञा-पदम्

पञ्चविधा परिज्ञा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उपधिपरिज्ञा, उपाश्रयपरिज्ञा,
कषायपरिज्ञा, योगपरिज्ञा,
भक्तपानपरिज्ञा।

परिज्ञा-पद

१२३. परिज्ञा [परित्याग] पांच प्रकार की होती है—
१. उपधिपरिज्ञा, २. उपाश्रयपरिज्ञा,
३. कषायपरिज्ञा, ४. योगपरिज्ञा,
५. भक्तपानपरिज्ञा।

ववहार-पदं

१२४. पंचविहे ववहारे पण्णत्ते, तं जहा—
आगमे, सुते, आणा, धारणा,
जीते।

व्यवहार-पदम्

पञ्चविधः व्यवहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
आगमः, श्रुतं, आज्ञा, धारणा, जीतम्।

व्यवहार-पद

१२४. व्यवहार पांच प्रकार का होता है[66]—
१. आगम, २. श्रुत, ३. आज्ञा,
४. धारणा, ५. जीत।

जहा से तत्थ आगमे सिया, आगमेणं ववहारं पट्ठवेज्जा।	यथा तस्य तत्र आगमः स्याद्, आगमेन व्यवहार प्रस्थापयेत्।	जहां आगम हो वहा आगम से व्यवहार की प्रस्थापना करे।
णो से तत्थ आगमे सिया जहा से तत्थ सुते सिया, सुतेणं ववहारं पट्ठवेज्जा।	नो तस्य तत्र आगमः स्याद् यथा तस्य तत्र श्रुत स्यात्, श्रुतेन व्यवहार प्रस्थापयेत्।	जहा आगम न हो, श्रुत हो, वहा श्रुत से व्यवहार की प्रस्थापना करे।
णो से तत्थ सुते सिया °जहा से तत्थ आणा सिया, आणाए ववहार पट्ठवेज्जा।	नो तस्य तत्र श्रुत स्याद्, यथा तस्य तत्र आज्ञा स्याद्, आज्ञया व्यवहार प्रस्थापयेत्।	जहा श्रुत न हो, आज्ञा हो, वहा आज्ञा से व्यवहार की प्रस्थापना करे।
णो से तत्थ आणा सिया जहा से तत्थ धारणा सिया, धारणाए ववहारं पट्ठवेज्जा।	नो तस्य तत्राज्ञा स्याद् यथा तस्य तत्र धारणा स्याद्, धारणया व्यवहार प्रस्थापयेत्।	जहां आज्ञा न हो, धारणा हो, वहा धारणा से व्यवहार की प्रस्थापना करे।
णो से तत्थ धारणा सिया° जहा से तत्थ जीते सिया, जीतेणं ववहारं पट्ठवेज्जा।	नो तस्य तत्र धारणा स्याद् यथा तस्य तत्र जीत स्याद्, जीतेन व्यवहार प्रस्थापयेत्—	जहा धारणा न हो, जीत हो, वहा जीत से व्यवहार की प्रस्थापना करे।
इच्चेतेहिं पंचहिं ववहार पट्ठवेज्जा—आगमेण °सुतेणं आणाए धारणाए° जीतेणं।	इत्येत. पञ्चभिः व्यवहार प्रस्थापयेत्— आगमेन श्रुतेन आज्ञया धारणया जीतेन।	इन पाचो से व्यवहार की प्रस्थापना करे— आगम से, श्रुत से, आज्ञा से, धारणा से और जीत से।
जधा-जधा से तत्थ आगमे °सुते आणा धारणा° जीते तधा-तधा ववहारं पट्ठवेज्जा।	यथा-यथा तस्य तत्र आगमः श्रुत आज्ञा धारणा जीत तथा-तथा व्यवहार प्रस्थापयेत्।	जिस समय आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत मे से जो प्रधान हो उसी से व्यवहार की प्रस्थापना करे।
से किमाहु भंते ! आगमबलिया समणा णिग्गंथा ?	तत् किमाहुः भगवन् ! आगमबलिकाः श्रमणाः निर्ग्रन्थाः ?	भते ! आगमबलिक श्रमण-निर्ग्रन्थो ने इस विषय मे क्या कहा है ?
इच्चेतं पंचविधं ववहारं जया-जया जहिं-जहिं तया-तया तहिं-तहिं अणिस्सितोवस्सितं सम्मं ववहरमाणे समणे णिग्गंथे आणाए आराधए भवति।	इति एतत् पञ्चविध व्यवहारं यदा-यदा यस्मिन्-यस्मिन् तदा-तदा तस्मिन् तस्मिन् अनिश्रितोपाश्रित सम्यग् व्यवहरन् श्रमणः निर्ग्रन्थः आज्ञायाः आराधको भवति।	आयुष्मान् श्रमणो ! इन पाचो व्यवहारो मे जब-जब जिस-जिस विषय मे जो व्यवहार हो, तब-तब वहा-वहा उसका अनिश्रितोपाश्रित-मध्यस्थभाव से सम्यग् व्यवहार करता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ आज्ञा का आराधक होता है।

सुत्त-जागर-पदं	**सुप्त-जागर-पदम्**	**सुप्त-जागर-पद**
१२५. संजयमणुस्साणं सुत्ताणं पंच जागरा पण्णत्ता, तं जहा—	सयतमनुष्याणा सुप्तानां पच जागराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	१२५. सयत मनुष्य सुप्त होते है तब उनके पाच जागृत होते है—
सद्दा, °रूवा, गंधा, रसा°, फासा।	शब्दा, रूपाणि, गन्धाः, रसाः, स्पर्शाः।	१. शब्द, २. रूप, ३. गध, ४. रस, ५ स्पर्श।

१२६. संजतमणुस्साणं जागराणं पंच सुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
सद्दा, °रूवा, गंधा, रसा°, फासा।

संयत मनुष्याणां जागराणां पंच सुप्ताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
शब्दाः, रूपाणि, गन्धाः, रसाः, स्पर्शाः।

१२६. संयत मनुष्य जागृत होते है तब उनके पांच सुप्त होते है—
१. शब्द, २. रूप, ३. गंध, ४. रस, ५. स्पर्श।

१२७. असंजयमणुस्साणं सुत्ताणं वा जागराणं वा पंच जागरा पण्णत्ता, तं जहा—
सद्दा, °रूवा, गंधा, रसा,° फासा।

असंयत मनुष्याणां सुप्तानां वा जागराणां वा पञ्च जागराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
शब्दाः, रूपाणि, गन्धाः, रसाः, स्पर्शाः।

१२७. असंयत मनुष्य सुप्त हो या जागृत फिर भी उनके पांच जागृत होते हैं—
१. शब्द, २. रूप, ३. गंध, ४. रस, ५. स्पर्श।

रयादाण-वमण-पदं

रज-आदान-वमन-पदम्

रज-आदान-वमन-पद

१२८. पंचहिं ठाणेहिं जीवा रयं आदिज्जंति, तं जहा—
पाणातिवातेणं °मुसावाएणं अदिण्णादाणेणं मेहुणेणं° परिग्गहेणं।

पञ्चभिः स्थानैः जीवाः रजः आददति, तद्यथा—
प्राणातिपातेन, मृषावादेन, अदत्तादानेन, मैथुनेन, परिग्रहेण।

१२८. पांच स्थानों से जीव कर्म-रजों का आदान करते हैं—
१. प्राणातिपात से, २. मृषावाद से, ३. अदत्तादान से, ४. मैथुन से, ५. परिग्रह से।

१२९. पंचहिं ठाणेहिं जीवा रयं वमंति, तं जहा—
पाणातिवातवेरमणेणं,
°मुसावायवेरमणेणं,
अदिण्णादाणवेरमणेणं,
मेहुणवेरमणेणं,°
परिग्गहवेरमणेणं।

पञ्चभिः स्थानैः जीवाः रजः वमन्ति, तद्यथा—
प्राणातिपातविरमणेन,
मृषावादविरमणेन,
अदत्तादानविरमणेन,
मैथुनविरमणेन,
परिग्रहविरमणेन।

१२९. पांच स्थानों से जीव कर्म-रजों का वमन करते हैं—
१. प्राणातिपात विरमण से,
२. मृषावाद विरमण से,
३. अदत्तादान विरमण से,
४. मैथुन विरमण से,
५. परिग्रह विरमण से।

दत्ति-पदं

दत्ति-पदम्

दत्ति-पद

१३०. पंचमासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवण्णस्स अणगारस्स कप्पंति पंच दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, पंच पाणगस्स।

पञ्चमासिकी भिक्षुप्रतिमा प्रतिपन्नस्य अनगारस्य कल्पन्ते पञ्च दत्तीः भोजनस्य परिग्रहीतुम्, पञ्च पानकस्य।

१३०. पंचमासिकी भिक्षु-प्रतिमा से प्रतिपन्न अनगार भोजन और पानी की पांच-पांच दत्तियां ले सकता है।

उवघात-विसोहि-पदं

उपघात-विशोधि-पदम्

उपघात-विशोधि-पद

१३१. पंचविधे उवघाते पण्णत्ते, तं जहा—
उग्गमोवघाते, उप्पायणोवघाते, एसणोवघाते, परिकम्मोवघाते, परिहरणोवघाते।

पञ्चविधः उपघातः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
उद्गमोपघातः, उत्पादनोपघातः, एषणोपघातः, परिकर्मोपघातः, परिधानोपघातः।

१३१. उपघात पांच प्रकार का होता है—
१. उद्गमोपघात, २. उत्पादनोपघात, ३. एषणोपघात, ४. परिकर्मोपघात, ५. परिहरणोपघात।

१३२. पंचविहा विसोही पण्णत्ता, तं जहा—
उग्गमविसोही, उप्पायणविसोही, एसणविसोही, परिकम्मविसोही, परिहरणविसोही।

पञ्चविधा विशोधिः प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
उद्गमविशोधिः, उत्पादनविशोधिः, एषणाविशोधिः, परिकर्मविशोधिः, परिधानविशोधिः।

१३२. विशोधि पाच प्रकार की होती है[66]—
१. उद्गम की विशोधि,
१. उत्पादन की विशोधि,
३. एषणा की विशोधि,
४ परिकर्म की विशोधि,
५ परिहरण की विशोधि।

दुल्लभ-सुलभबोहि-पदं

१३३. पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोधियत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा—
अरहंताणं अवण्णं वदमाणे,
अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णं वदमाणे,
आयरियउवज्झायाणं अवण्णं वदमाणे,
चाउवण्णस्स संघस्स अवण्णं वदमाणे,
विवक्क-तव-बंभचेराणं देवाणं अवण्णं वदमाणे,

१३४. पंचहिं ठाणेहिं जीवा सुलभबोधियत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा—
अरहंताणं वण्णं वदमाणे,
*अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स वण्णं वदमाणे,
आयरियउवज्झायाणं वण्णं वदमाणे,
चाउवण्णस्स संघस्स वण्णं वदमाणे,°
विवक्क-तव-बंभचेराणं देवाणं वण्णं वदमाणे।

दुर्लभ-सुलभबोधि-पदम्

पञ्चभिः स्थानैः जीवाः दुर्लभबोधिकतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
अर्हतां अवर्ण वदन्,
अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य अवर्ण वदन्,
आचार्योपाध्याययोः अवर्ण वदन्,
चतुर्वर्णस्य सघस्य अवर्ण वदन्,
विपक्व-तपो-ब्रह्मचर्याणां देवानां अवर्ण वदन्।

पञ्चभिः स्थानैः जीवाः सुलभबोधिकतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
अर्हतां वर्ण वदन्,
अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य वर्ण वदन्,
आचार्योपाध्याययो वर्ण वदन्,
चतुर्वर्णस्य सघस्य वर्ण वदन्,
विपक्व-तपो-ब्रह्मचर्याणां देवाना वर्ण वदन्।

दुर्लभ-सुलभबोधि-पद

१३३. पाच स्थानो मे जीव दुर्लभबोधिकत्वकर्म का अर्जन करता है[67]—
१. अर्हन्तो का अवर्णवाद करता हुआ, २. अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद करता हुआ, ३ आचार्य-उपाध्याय का अवर्णवाद करता हुआ, ४ चतुर्वर्ण सघ का अवर्णवाद करता हुआ, ५. तप और ब्रह्मचर्य के विपाक से दिव्य-गति को प्राप्त देवों का अवर्णवाद करता हुआ।

१३४ पाच स्थानो मे जीव सुलभबोधिकत्वकर्म का अर्जन करता है—
१. अर्हन्तों का वर्णवाद—श्लाघा करता हुआ, २. अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म का वर्णवाद करता हुआ, ३ आचार्य-उपाध्याय का वर्णवाद करता हुआ, ४. चतुर्वर्ण संघ का वर्णवाद करता हुआ, ५ तप और ब्रह्मचर्य के विपाक से दिव्य-गति को प्राप्त देवो का वर्णवाद करता हुआ।

पडिसंलीण-अपडिसंलीण-पदं

१३५. पंच पडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा—

प्रतिसंलीन-अप्रतिसंलीन-पदम्

पञ्च प्रतिसलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

प्रतिसंलीन-अप्रतिसंलीन-पद

१३५. प्रतिसंलीन[68] पांच है—

सोइंदियपडिसंलीणे,
°चक्खिंदियपडिसंलीणे,
घाणिंदियपडिसंलीणे,
जिब्भिंदियपडिसंलीणे,°
फासिंदियपडिसंलीणे।

श्रोत्रेन्द्रियप्रतिसंलीनः,
चक्षुरिन्द्रियप्रतिसंलीनः,
घ्राणेन्द्रियप्रतिसंलीनः,
जिह्वेन्द्रियप्रतिसंलीनः,
स्पर्शेन्द्रियप्रतिसंलीनः।

१ श्रोत्रेन्द्रिय प्रतिसंलीन,
२. चक्षुरिन्द्रिय प्रतिसंलीन,
३. घ्राणेन्द्रिय प्रतिसंलीन,
४. रसनेन्द्रिय प्रतिसंलीन,
५ स्पर्शनेन्द्रिय प्रतिसंलीन।

१३६. पंच अपडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा—
सोतिंदियअपडिसंलीणे,
°चक्खिंदियअपडिसंलीणे,
घाणिंदियअपडिसंलीणे,
जिब्भिंदियअपडिसंलीणे,°
फासिंदियअपडिसंलीणे।

पञ्च अप्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियाप्रतिसंलीनः,
चक्षुरिन्द्रियाप्रतिसंलीनः,
घ्राणेन्द्रियाप्रतिसंलीनः,
जिह्वेन्द्रियाप्रतिसंलीनः,
स्पर्शेन्द्रियाप्रतिसंलीनः।

१३६. अप्रतिसंलीन पांच है—
१. श्रोत्रेन्द्रिय अप्रतिसंलीन।
२. चक्षुरिन्द्रिय अप्रतिसंलीन,
३. घ्राणेन्द्रिय अप्रतिसंलीन,
४ रसनेन्द्रिय अप्रतिसंलीन,
५ स्पर्शनेन्द्रिय अप्रतिसंलीन।

संवर-असंवर-पदं

१३७. पंचविधे संवरे पण्णत्ते, तं जहा—
सोतिंदियसंवरे, °चक्खिंदियसंवरे,
घाणिंदियसंवरे, जिब्भिंदियसंवरे,°
फासिंदियसंवरे।

संवर-असंवर-पदम्

पञ्चविधः संवरः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियसंवरः, चक्षुरिन्द्रियसंवरः,
घ्राणेन्द्रियसंवरः, जिह्वेन्द्रियसंवरः,
स्पर्शेन्द्रियसंवरः।

संवर-असंवर-पद

१३७ संवर पांच प्रकार का होता है—
१ श्रोत्रेन्द्रिय संवर,
२ चक्षुरिन्द्रिय संवर,
३ घ्राणेन्द्रिय संवर,
४ रसनेन्द्रिय संवर,
५. स्पर्शनेन्द्रिय संवर।

१३८. पंचविधे असंवरे पण्णत्ते, तं जहा—
सोतिंदियअसंवरे, °चक्खिंदियअसंवरे,
घाणिंदियअसंवरे, जिब्भिंदियअसंवरे,°
फासिंदियअसंवरे।

पञ्चविधः असंवरः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियासंवरः, चक्षुरिन्द्रियासंवरः,
घ्राणेन्द्रियासंवरः, जिह्वेन्द्रियासंवरः,
स्पर्शेन्द्रियासंवरः।

१३८ असंवर पांच प्रकार का होता है—
१ श्रोत्रेन्द्रिय असंवर,
२. चक्षुरिन्द्रिय असंवर,
३. घ्राणेन्द्रिय असंवर,
४ रसनेन्द्रिय असंवर,
५ स्पर्शनेन्द्रिय असंवर।

संजम-असंजम-पदं

१३९. पंचविधे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—
सामाइयसंजमे,
छेदोवट्ठावणियसंजमे,
परिहारविसुद्धियसंजमे,
सुहुमसंपरागसंजमे,
अहक्खायचरित्तसंजमे।

संयम-असंयम-पदम्

पञ्चविधः संयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
सामायिकसंयमः,
छेदोपस्थापनीयसंयमः,
परिहारविशुद्धिकसंयमः,
सूक्ष्मसम्परायसंयमः,
यथाख्यातचरित्रसंयमः।

संयम-असंयम-पद

१३९ संयम के पांच प्रकार हैं—
१ सामायिक संयम,
२ छेदोपस्थापनीय संयम,
३. परिहारविशुद्धिक संयम,
४ सूक्ष्मसंपराय संयम,
५. यथाख्यातचरित्र संयम।

१४०. एगिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स पंचविधे संजमे कज्जति, तं जहा—	एकेन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य: पञ्चविधः संयमः क्रियते, तद्यथा—	१४० एकेन्द्रिय जीवों का असमारम्भ करता हुआ जीव पांच प्रकार का सयम करता है—
पुढविकाइयसंजमे,	पृथ्वीकायिकसंयमः,	१. पृथ्वीकाय सयम, २. अप्काय सयम,
°आउकाइयसंजमे,	अप्कायिकसंयमः,	३. तेजस्काय सयम, ४. वायुकाय संयम,
तेउकाइयसंजमे,	तेजस्कायिकसंयमः,	५. वनस्पतिकाय सयम।
वाउकाइयसंजमे,°	वायुकायिकसंयमः,	
वणस्सतिकाइयसंजमे।	वनस्पतिकायिकसंयमः।	
१४१. एगिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जति, तं जहा—	एकेन्द्रियान् जीवान् समारभमाणस्य पञ्चविधः असयमः क्रियते, तद्यथा—	१४१. एकेन्द्रिय जीवों का समारम्भ करता हुआ जीव पाच प्रकार का असंयम करता है—
		१. पृथ्वीकाय असयम,
पुढविकाइयअसंजमे,	पृथ्वीकायिकासयमः,	२. अपकाय असयम,
°आउकाइयअसंजमे,	अप्कायिकासयमः,	३. तेजस्काय असंयम,
तेउकाइयअसंजमे,	तेजस्कायिकासयमः,	४. वायुकाय असंयम,
वाउकाइयअसंजमे,°	वायुकायिकासंयमः,	५. वनस्पतिकाय असंयम।
वणस्सतिकाइयअसंजमे।	वनस्पतिकायिकासयमः।	
१४२. पंचिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जति, तं जहा—	पञ्चेन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य पञ्चविधः सयमः क्रियते, तद्यथा—	१४२. पचेन्द्रिय जीवों का असमारम्भ करता हुआ जीव पाच प्रकार का सयम करता है—
		१. श्रोत्रेन्द्रिय संयम,
सोतिंदियसंजमे,	श्रोत्रेन्द्रियसयमः,	२. चक्षुरिन्द्रिय संयम,
°चक्खिंदियसंजमे,	चक्षुरिन्द्रियसयमः,	३. घ्राणेन्द्रिय सयम,
घाणिंदियसंजमे,	घ्राणेन्द्रियसयमः,	४. जिह्वेन्द्रिय सयम,
जिब्भिंदियसंजमे,°	जिह्वेन्द्रियसयमः,	५. स्पर्शनेन्द्रिय सयम।
फासिंदियसंजमे।	स्पर्शेन्द्रियसयमः।	
१४३. पंचिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स पंचविधे असंजमे कज्जति, तं जहा—	पञ्चेन्द्रियान् जीवान् समारभमाणस्य पञ्चविधः असंयमः क्रियते तद्यथा—	१४३. पचेन्द्रिय जीवों का समारम्भ करता हुआ जीव पाच प्रकार का असयम करता है—
सोतिंदियअसंजमे,	श्रोत्रेन्द्रियासयमः,	१. श्रोत्रेन्द्रिय असयम,
°चक्खिंदियअसंजमे,	चक्षुरिन्द्रियासयमः,	२. चक्षुरिन्द्रिय असयम,
घाणिंदियअसंजमे,	घ्राणेन्द्रियासंयमः,	३. घ्राणेन्द्रिय असयम,
जिब्भिंदियअसंजमे,°	जिह्वेन्द्रियासयमः,	४. जिह्वेन्द्रिय असंयम,
फासिंदियअसंजमे।	स्पर्शेन्द्रियासयमः।	५. स्पर्शनेन्द्रिय असयम।
१४४. सव्वपाणभूयजीवसत्ता णं असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जति, तं जहा—	सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वान् समारभमाणस्य पञ्चविधः संयमः क्रियते, तद्यथा—	१४४. सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों का असमारम्भ करता हुआ जीव पाच प्रकार का संयम करता है—

एगिंदियसंजमे, °बेइंदियसंजमे, तेइंदियसंजमे, चउरिंदियसंजमे,° पंचिंदियसंजमे।

एकेन्द्रियसंयमः, द्वीन्द्रियसंयमः, त्रीन्द्रियसंयमः, चतुरिन्द्रियसंयमः, पञ्चेन्द्रियसंयमः।

१. एकेन्द्रिय संयम, २. द्वीन्द्रिय संयम, ३. त्रीन्द्रिय संयम, ४. चतुरिन्द्रिय संयम, ५. पंचेन्द्रिय संयम।

१४५. सव्वपाणभूयजीवसत्ता णं समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जति, तं जहा— एगिंदियअसंजमे, °बेइंदियअसंजमे, तेइंदियअसंजमे, चउरिंदियअसंजमे, पंचिंदियअसंजमे।

सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वान् समारभमाणस्य पञ्चविधः असंयमः क्रियते, तद्यथा— एकेन्द्रियासंयमः, द्वीन्द्रियासंयमः, त्रीन्द्रियासंयमः, चतुरिन्द्रियासंयमः, पञ्चेन्द्रियासंयमः।

१४५. सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों[११] का समारम्भ करता हुआ जीव पांच प्रकार का असंयम करता है— १. एकेन्द्रिय असंयम, २. द्वीन्द्रिय असंयम, ३. त्रीन्द्रिय असंयम, ४. चतुरिन्द्रिय असंयम, ५. पंचेन्द्रिय असंयम।

तणवणस्सइ-पदं | तृणवनस्पति-पदम् | तृणवनस्पति-पद

१४६. पंचविहा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, तं जहा— अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खंधबीया, बीयरुहा।

पञ्चविधा तृणवनस्पतिकायिका: प्रज्ञप्ता, तद्यथा— अग्रबीजा, मूलबीजा, पर्वबीजा, स्कन्धबीजा, बीजरुहाः।

१४६. तृणवनस्पतिकायिक जीवों के पांच प्रकार हैं[१२]— १. अग्रबीज, २. मूलबीज, ३. पर्वबीज, ४. स्कन्धबीज, ५. बीजरूह।

आयार-पदं | आचार-पदम् | आचार-पद

१४७. पंचविहे आयारे पण्णत्ते, तं जहा— णाणायारे, दंसणायारे, चरित्तायारे, तवायारे, वीरियायारे

पञ्चविधः आचारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— ज्ञानाचारः, दर्शनाचारः, चरित्राचारः, तपआचारः, वीर्याचारः।

१४७. आचार[१३] के पांच प्रकार हैं— १. ज्ञानाचार, २. दर्शनाचार, ३. चरित्राचार, ४. तप आचार, ५. वीर्याचार।

आयारपकप्प-पदं | आचारप्रकल्प-पदम् | आचारप्रकल्प-पद

१४८. पंचविहे आयारपकप्पे पण्णत्ते, तं जहा— मासिए उग्घातिए, मासिए अणुग्घातिए, चउमासिए उग्घातिए, चउमासिए अणुग्घातिए, आरोवणा।

पञ्चविधः आचारप्रकल्पः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— मासिक उद्घातिक, मासिकानुद्घातिक, चातुर्मासिक उद्घातिक, चातुर्मासिकानुद्घातिक, आरोपणा।

१४८. आचारप्रकल्प[१४] के पांच प्रकार हैं— १. मासिक उद्घातिक, २. मासिक अनुद्घातिक, ३. चातुर्मासिक उद्घातिक, ४. चातुर्मासिक अनुद्घातिक, ५. आरोपणा।

आरोवणा-पदं

१४९. आरोवणा पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—
पट्ठविया, ठविया, कसिणा, अकसिणा, हाडहडा।

आरोपणा-पदम्

आरोपणा पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्रस्थापिता, स्थापिता, कृत्स्ना, अकृत्स्ना, हाडहडा।

आरोपणा-पद

१४९. आरोपणा[11] के पांच प्रकार हैं—
१. प्रस्थापिता, २. स्थापिता, ३. कृत्स्ना, ४. अकृत्स्ना, ५. हाडहडा।

वक्खारपव्वय-पदं

१५०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीयाए महाणदीए उत्तरे णं पंच वक्खारपव्वता, पण्णत्ता तं जहा—
मालवंते, चित्तकूडे, पम्हकूडे, णलिणकूडे, एगसेले।

१५१. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीयाए महाणदीए दाहिणे णं पंच वक्खारपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—
तिकूडे, वेसमणकूडे, अंजणे, मायंजणे, सोमणसे।

१५२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओयाए महाणदीए दाहिणे णं पंच वक्खारपव्वता, पण्णत्ता, तं जहा—
विज्जुप्पभे, अंकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे।

१५३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओयाए महाणदीए उत्तरे णं पंच वक्खारपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—
चंदपव्वते, सूरपव्वते, णागपव्वते, देवपव्वते, गंधमादणे।

वक्षस्कारपर्वत-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्मिन् शीतायाः महानद्याः उत्तरे पञ्च वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
माल्यवान्, चित्रकूटः, पक्ष्मकूटः, नलिनकूटः, एकशैलः।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्मिन् शीतायाः महानद्याः दक्षिणे पञ्च वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
त्रिकूट, वैश्रमणकूटः, अञ्जनः, माताञ्जनः, सौमनसः।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पश्चिमे शीतोदायाः महानद्याः दक्षिणे पञ्च वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
विद्युत्प्रभः, अङ्कावती, पक्ष्मावती, आसीविषः, सुखावहः।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पश्चिमे शीतोदायाः महानद्याः उत्तरे पञ्च वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
चन्द्रपर्वतः, सूरपर्वतः, नागपर्वतः, देवपर्वतः, गन्धमादनः।

वक्षस्कारपर्वत-पद

१५०. जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्वभाग में तथा सीता महानदी के उत्तरभाग में पांच वक्षस्कार पर्वत हैं—
१. माल्यवान्, २. चित्रकूट, ३. पक्ष्मकूट, ४. नलिनकूट, ५. एकशैल।

१५१. जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्वभाग में तथा सीता नदी के दक्षिणभाग में पांच वक्षस्कार पर्वत हैं—
१. त्रिकूट, २. वैश्रमणकूट, ३. अंजन, ४. मातांजन, ५. सौमनस।

१५२. जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिमभाग में तथा सीतोदा महानदी के दक्षिणभाग में पांच वक्षस्कार पर्वत हैं—
१. विद्युत्प्रभ, २. अंकावती, ३. पक्ष्मावती, ४. आशीविष, ५. सुखावह।

१५३. जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिमभाग में तथा सीतोदा महानदी के उत्तरभाग में पांच वक्षस्कार पर्वत हैं—
१. चन्द्रपर्वत, २. सूरपर्वत, ३. नागपर्वत, ४. देवपर्वत, ५. गंधमादन।

महादह-पदं

१५४. जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं देवकुराए कुराए पंच महद्दहा पण्णत्ता, तं जहा—
णिसहदहे, देवकुरुदहे, सूरदहे, सुलसदहे, विज्जुप्पभदहे।

१५५. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं उत्तरकुराए कुराए पंच महादहा पण्णत्ता, तं जहा—
णीलवंतदहे, उत्तरकुरुदहे, चंददहे, एरावणदहे, मालवंतदहे।

महाद्रह-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे देवकुरौ कुरौ पञ्च महाद्रहा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
निषधद्रह, देवकुरुद्रह, सूरद्रह, सुलसद्रहः, विद्युत्प्रभद्रहः।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे उत्तरकुरौ कुरौ पञ्च महाद्रहा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
नीलवद्द्रह, उत्तरकुरुद्रहः, चन्द्रद्रहः, ऐरावणद्रह, माल्यवद्द्रहः।

महाद्रह-पद

१५४. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के देवकुरु नामक कुरुक्षेत्र मे पाच महाद्रह है—

१. निषधद्रह, २. देवकुरुद्रह, ३. सूरद्रह, ४ सुलसद्रह, ५. विद्युत्प्रभद्रह।

१५५. जम्बूद्वीप द्वीप मन्दर पर्वत के उत्तरभाग मे उत्तरकुरु नामक कुरुक्षेत्र मे पाच महाद्रह हैं—
१. नीलवत्द्रह, २. उत्तरकुरुद्रह, ३. चन्द्रद्रह, ४. ऐरावणद्रह, ५ माल्यवत्द्रह।

वक्खारपव्वय-पदं

१५६. सव्वेवि णं वक्खारपव्वया सीया-सीओयाओ महाणईओ मंदरं वा पव्वत पंच जोयणसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंचगाउसताइं उव्वेहेणं।

वक्षस्कारपर्वत-पदम्

सर्वेपि वक्षस्कारपर्वता. शीताशीतोदे महानद्यौ मन्दरं वा पर्वत पञ्च योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, पञ्च-गव्यूतिशतानि उद्वेधेन।

वक्षस्कारपर्वत-पद

१५६ सभी वक्षस्कार पर्वत सीता, सीतोदा महानदी तथा मन्दर पर्वत की दिशा मे पाच सौ योजन ऊंचे तथा पाच सौ कोस गहर है।

धायइसंड-पुक्खरवर-पदं

१५७. धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीयाए महाणदीए उत्तरे णं पंच वक्खारपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—
मालवंते, एवं जहा जंबुद्दीवे तहा जाव पुक्खरवरदीवड्ढं पच्चत्थिमद्धे वक्खारपव्वया दहा य उच्चत्तं भाणियव्वं।

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पदम्

धातकीषण्ड द्वीपे पौरस्त्यार्ध मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्मिन् शीतायाः महानद्या उत्तरे पञ्च वक्षस्कारपर्वता प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
माल्यवान्, एवम् यथा जम्बूद्वीपे तथा यावत् पुष्करवरद्वीपार्ध पाश्चात्यार्ध वक्षस्कारपर्वता. द्रहाश्च उच्चत्व भणितव्यम्।

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पद

१५७. धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध मे, मन्दर पर्वत के पूर्व मे तथा सीता महानदी के उत्तर मे पाच वक्षस्कार पर्वत है—
१ माल्यवान, २. चित्रकूट, ३. पक्ष्मकूट, ४. नलिनकूट, ५ एकशैल।
इसी प्रकार धातकीषण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध मे तथा अर्धपुष्करवर द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध मे भी जम्बूद्वीप की तरह पाच-पाच वक्षस्कार पर्वत, महानदिया तथा द्रह और वक्षस्कार पर्वतो की ऊंचाई है।

समयक्खेत्त-पदं

१५८. समयक्खेत्ते णं पंच भरहाइं, पंच एरवताइं, एवं जहा चउट्ठाणे बितीयउद्देसे तहा एत्थवि भाणियव्वं जाव पच मदरा पच मदरचूलियाओ, णवरं उसुयारा णत्थि।

समयक्षेत्र-पदम्

समयक्षेत्रे पञ्चभरतानि, पञ्चैरवतानि, एव यथा चतुःस्थाने, द्वितीयोद्देशे तथा अत्रापि भणितव्य यावत् पञ्च मन्दरा. पञ्च मदरचूलिकाः, नवर इषुकारा न सन्ति।

समयक्षेत्र-पद

१५८ समयक्षेत्र मे पाच भरत और पाच ऐरवत है।
शेष वर्णन के लिए देखें [४/३३७]।
विशेष यह है कि वहा इषुकार पर्वत नही है।

ओगाहणा-पदं

१५९. उसभे णं अरहा कोसलिए पंच धणुसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

१६०. भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी पंच धणुसताइं उड्ढं उच्चत्तेण होत्था।

१६१. बाहुबली ण अणगारे °पंच धणुसताइ उड्ढं उच्चत्तेण होत्था।°

१६२. बंभी णं अज्जा °पंच धणुसताइ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।°

१६३. °सुन्दरी णं अज्जा पच धणुसताइं उड्ढ उच्चत्तेण होत्था।°

अवगाहना-पदम्

ऋषभः अर्हन् कौशलिकः पञ्च धनुः-शतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवत्।

भरतः राजा चातुरन्तचक्रवर्ती पञ्च धनुःशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवत्।

बाहुबली अनगारः पञ्च धनुःशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवत्।

ब्राह्मी आर्या पञ्च धनुःशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवत्।

सुन्दरी आर्या पञ्च धनुःशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवत्।

अवगाहना-पद

१५९. कौशलिक अर्हन्त ऋषभ पांच सौ धनुष ऊचे थे।

१६०. चातुरंत चक्रवर्ती राजा भरत पाच सौ धनुष ऊंचे थे।

१६१. अनगार बाहुबली पांच सौ धनुष ऊचे थे।

१६२. आर्या ब्राह्मी ऊंचाई में पांच सौ धनुष थी।

१६३. आर्या सुन्दरी ऊचाई में पांच सौ धनुष थी।

विबोध-पदं

१६४ पंचहिं ठाणेहिं सुत्ते विबुज्झेज्जा, तं जहा—
सद्देणं, फासेणं, भोयणपरिणामेणं, णिद्दक्खएणं, सुविणदंसणेणं।

विबोध-पदम्

पञ्चभिः स्थानैः सुप्तः विबुध्येत, तद्यथा—
शब्देन, स्पर्शेन, भोजनपरिणामेन, निद्राक्षयेण, स्वप्नदर्शनेन।

विबोध-पद

१६४. पांच कारणो से सुप्त मनुष्य विबुद्ध हो जाता है—
१. शब्द से, २. स्पर्श से, ३. भोजन परिणाम—भूख से, ४ निद्राक्षय से, ५. स्वप्नदर्शन से,

णिग्गंथी-अवलंबण-पदं

१६५ पर्चाहि ठाणेहिं समणे णिग्गंथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णातिक्कमति, त जहा—
१. णिग्गंथिं च णं अण्णयरे पसुजातिए वा पक्खिजातिए वा ओहातेज्जा, तत्थ णिग्गंथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णातिक्कमति।
२. णिग्गंथे णिग्गंथिं दुग्गंसि वा विसमंसि वा पक्खलमाणिं वा पवडमाणिं वा गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णातिक्कमति।

निर्ग्रन्थ्यवलम्बन-पदम्

पञ्चभिः स्थानैः श्रमणः निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति, तद्यथा—
१. निर्ग्रन्थी च अन्यतरः पशुजातिको वा पक्षिजातिको वा अवघातयेत्, तत्र निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति।
२. निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थीं दुर्गे वा विषमे वा प्रस्खलन्तीं वा प्रपतन्तीं वा गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति।

निर्ग्रन्थ्यवलम्बन-पद

१६५. पाच कारणों से श्रमण-निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी को पकडता हुआ, सहारा देता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता—
१. कोई पशु या पक्षी निर्ग्रन्थी को उपहत करे तो उसे पकडता हुआ, सहारा देता हुआ निर्ग्रन्थ आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता।
२. दुर्गम[१९] तथा ऊबड-खाबड स्थानों में प्रस्खलित[२०] होती हुई, गिरती हुई निर्ग्रन्थी को पकडता हुआ, सहारा देता हुआ निर्ग्रंथ आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता।

३. णिग्गंथे णिग्गंथिं सेयंसि वा पंकंसि वा पणगंसि वा उदगंसि वा उक्कसमाणिं वा उवुज्झमाणिं वा गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णातिक्कमति।

३. निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थीं सेके वा पङ्के वा पनके वा उदके वा अपकसन्तीं वा अपोह्यमानां वा गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति।

३. दल-दल मे, कीचड मे, काई मे या पानी मे फसी हुई या बहती हुई निर्ग्रन्थी को पकड़ता हुआ, सहारा देता हुआ निर्ग्रन्थ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता।

४. णिग्गंथे णिग्गंथिं णावं आरुभमाणे वा ओरोहमाणे वा णातिक्कमति।

४. निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थीं नाव आरोहयन् वा अवरोहयन् वा नातिक्रामति।

४. निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी को नाव में चढ़ाता हुआ या उतारता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता।

५. खित्तचित्तं दित्तचित्तं जक्खाइट्ठं उम्मायपत्तं उवसग्गपत्तं साहिगरणं सपायच्छित्तं जाव भत्तपाण-पडियाइक्खियं अट्ठजायं वा णिग्गंथे णिग्गंथिं गेण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णातिक्कमति।

५. क्षिप्तचित्तां दृप्तचित्तां यक्षाविष्टां उन्मादप्राप्तां उपसर्गप्राप्तां साधिकरणां सप्रायश्चित्तां यावत् भक्तपानप्रत्याख्यातां अर्थजातां वा निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति।

५ क्षिप्तचित्त[99], दृप्तचित्त[100], यक्षाविष्ट[101], उन्मादप्राप्त[102], उपसर्गप्राप्त, कलहरत, प्रायश्चित्त से डरी हुई, अनशन की हुई, किन्ही व्यक्तियो द्वारा सयम से विचलित की जाती हुई या किसी आकस्मिक कारण के समुत्पन्न हो जाने पर निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी को पकडता हुआ, सहारा देता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नहीकरता।

आयरिय-उवज्झाय-अइसेस-पदं

आचार्योपाध्यायातिशेष-पदम्

आचार्योपाध्यायातिशेष-पद

१६६. आयरिय-उवज्झायस्स णं गणंसि पंच अतिसेसा पण्णत्ता, तं जहा—

आचार्योपाध्यायस्य गणे पञ्च अतिशेषाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

१६६ गण मे आचार्य तथा उपाध्याय के पाच अतिशेष [विशेष विधिया] होते है[103]—

१. आयरिय-उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स पाए णिगज्झिय-णिगज्झिय पप्फोडेमाणे वा पमज्जेमाणे वा णातिक्कमति।

१ आचार्योपाध्याय अन्तः उपाश्रयस्य पादौ निगृह्य-निगृह्य प्रस्फोटयन् वा प्रमार्जयन् वा नातिक्रामति।

१ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय मे पैरो की धूलि को यतनापूर्वक [दूसरो पर न गिरे वैसे] झाड़ते हुए, प्रमार्जित करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते।

२. आयरिय-उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स उच्चारपासवणं विगिंचमाणे वा विसोधेमाणे वा णातिक्कमति।

२ आचार्योपाध्याय अन्तः उपाश्रयस्य उच्चारप्रश्रवण विवेचयन् वा विशोधयन् वा नातिक्रामति।

२ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय मे उच्चार-प्रश्रवण का व्युत्सर्ग और विशोधन करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते।

३. आयरिय-उवज्झाए पभू इच्छा वेयावडियं करेज्जा, इच्छा णो करेज्जा।

३. आचार्योपाध्याय प्रभुः इच्छा वैयावृत्त्य कुर्यात्, इच्छा नो कुर्यात्।

३. आचार्य और उपाध्याय की इच्छा पर निर्भर है कि वे किसी साधु की सेवा करे या न करें।

४ आयरिय-उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स एगरातं वा दुरातं वा एगगो वसमाणे णातिक्कमति।

४. आचार्योपाध्याय अन्तः उपाश्रयस्य एकरात्र वा द्विरात्र वा एकका वसन् नातिक्रामति।

४ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय मे एक रात या दो रात अकेले रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते।

५. आयरिय-उवज्झाए बाहिं उवस्सयस्स एगरातं वा दुरातं वा [एगओ?]वसमाणे णातिक्कमति।

५ आचार्योपाध्याय बहिः उपाश्रयस्य एकरात्र वा द्विरात्र वा (एकका ?) वसन् नातिक्रामति।

५ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय से बाहर एक रात या दो रात अकेले रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते।

आयरिय-उवज्झाय-गणावक्कमण-पदं

१६७. पंचहिं ठाणेहिं आयरिय-उवज्झायस्स गणावक्कमणे पण्णत्ते, तं जहा—

१. आयरिय-उवज्झाए गणंसि आणं वा धारणं वा णो सम्मं पउंजित्ता भवति।

२. आयरिय-उवज्झाए गणंसि आधारायणियाए कितिकम्मं वेणइयं णो सम्मं पउंजित्ता भवति।

३. आयरिय-उवज्झाए गणंसि जे सुयपज्जवजाते धारेति, ते काले-काले णो सम्ममणुपवादेत्ता भवति।

४. आयरिय-उवज्झाए गणंसि सगणियाए वा परगणियाए वा णिग्गंथीए बहिल्लेसे भवति।

५. मित्ते णातिगणे वा से गणाओ अवक्कमेज्जा, तेसिं संगहोवग्गहट्ठयाए गणावक्कमाणे पण्णत्ते।

आचार्योपाध्याय-गणापक्रमण-पदं

पञ्चभिः स्थानैः आचार्योपाध्यायस्य गणापक्रमणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

१. आचार्योपाध्यायः गणे आज्ञा वा धारणां वा नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति।

२. आचार्योपाध्यायः गणे यथारात्निकतया कृतिकर्म वैनयिक नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति।

३ आचार्योपाध्यायः गणे यान् श्रुत-पर्यवजातान् धारयति, तान् काले-काले नो सम्यगनुप्रवाचयिता भवति।

४. आचार्योपाध्यायः गणे स्वगण-सत्कायां वा परगणसत्काया वा निर्ग्रन्थ्यां बहिर्लेश्यो भवति।

५. मित्र ज्ञातिगणो वा तस्य गणात् अपक्रमेत, तेषां सग्रहोपग्रहार्थं गणापक्रमणं प्रज्ञप्तम्।

आचार्योपाध्याय-गणापक्रमण-पद

१६७. पांच कारणो से आचार्य तथा उपाध्याय गण से अपक्रमण [निर्गमन] करते है[108]—

१. आचार्य तथा उपाध्याय गण मे आज्ञा या धारणा का सम्यक् प्रयोग न कर सके।

२. आचार्य तथा उपाध्याय गण में यथा-रात्निक कृतिकर्म- वन्दन और विनय का सम्यक् प्रयोग न करे।

३. आचार्य तथा उपाध्याय जिन श्रुत-पर्यायों को धारण करते हैं, समय-समय पर उनकी गण को सम्यक् वाचना न दे।

४ आचार्य यथा उपाध्याय अपने गण की या दूसरे के गण की निर्ग्रन्थी मे बहिर्लेश्य-आशक्त हो जाए।

५. आचार्य तथा उपाध्याय के मित्र या स्वजन गण से अपक्रमित [निर्गत] हो जाए, उन्हे पुनः गण मे सम्मिलित करने तथा सहयोग करने के लिए वे गण से अपक्रमण करते है।

इड्ढिमंत-पदं

१६८. पंचविहा इड्ढिमंता मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—

अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेवा, वासुदेवा, भावियप्पाणो अणगारा।

ऋद्धिमत्-पदम्

पञ्चविधाः ऋद्धिमन्तः मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

अर्हन्तः, चक्रवर्तिनः, बलदेवाः, वासुदेवाः, भावितात्मानः अनगाराः।

ऋद्धिमत्-पद

१६८. ऋद्धिमान् मनुष्य पाच प्रकार के होते है[109]—

१ अर्हन्त, २. चक्रवर्ती, ३. बलदेव, ४. वासुदेव, ५. भावितात्मा अनगार।

तइओ उद्देसो

अत्थिकाय-पदं

१६९. पंच अत्थिकाया पण्णत्ता, तं जहा—
धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए।

१७०. धम्मत्थिकाए अवण्णे अगंधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्टिए लोगदव्वे।
से समासओ पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—
दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।
दव्वओ णं धम्मत्थिकाए एगं दव्वं।
खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते।
कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।
भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे।
गुणओ गमणगुणे।

१७१. अधम्मत्थिकाए अवण्णे *अगंधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे।
से समासओ पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—
दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।

अस्तिकाय-पदम्

पञ्चास्तिकाया प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
धर्मास्तिकाय:, अधर्मास्तिकाय:, आकाशास्तिकाय:, जीवास्तिकाय:, पुद्गलास्तिकाय:।

धर्मास्तिकाय: अवर्ण: अगन्ध: अरस: अस्पर्श: अरूपी अजीव: शाश्वत: अवस्थित: लोकद्रव्यम्।
स समासत: पञ्चविध: प्रज्ञप्त:, तद्यथा—
द्रव्यत:, क्षेत्रत:, कालत:, भावत:, गुणत:।
द्रव्यत: धर्मास्तिकाय: एकं द्रव्यम्।
क्षेत्रत: लोकप्रमाणमात्र:।
कालत: न कदापि न आसीत्, न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यति इति—अभूच्च भवति च भविष्यति च, ध्रुव: निचित: शाश्वत: अक्षय: अव्यय: अवस्थित: नित्य:।
भावत: अवर्ण: अगन्ध: अरस: अस्पर्श:।
गुणत: गमनगुण:।

अधर्मास्तिकाय: अवर्ण: अगन्ध: अरस: अस्पर्श: अरूपी अजीव: शाश्वत: अवस्थित: लोकद्रव्यम्।
स समासत: पञ्चविध: प्रज्ञप्त:, तद्यथा—
द्रव्यत:, क्षेत्रत:, कालत:, भावत:, गुणत:।

अस्तिकाय-पद

१६९. अस्तिकाय पांच हैं —
१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. जीवास्तिकाय ५. पुद्गलास्तिकाय।

१७०. धर्मास्तिकाय अवर्ण, अगंध, अरस, अस्पर्श, अरूप, अजीव, शाश्वत, अवस्थित तथा लोक का एक अंशभूत द्रव्य है।
संक्षेप में वह पांच प्रकार का है—
१. द्रव्य की अपेक्षा, २. क्षेत्र की अपेक्षा, ३. काल की अपेक्षा, ४. भाव की अपेक्षा, ५. गुण की अपेक्षा।
द्रव्य की अपेक्षा—एक द्रव्य है।
क्षेत्र की अपेक्षा—लोकप्रमाण है।
काल की अपेक्षा—कभी नहीं था ऐसा नहीं है, कभी नहीं है ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा ऐसा नहीं है। वह अतीत में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। अत: वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।
भाव की अपेक्षा—अवर्ण, अगंध, अरस और अस्पर्श है।
गुण की अपेक्षा—गमन-गुण है—गति में उदासीन सहायक है।

१७१. अधर्मास्तिकाय अवर्ण, अगंध, अरस, अस्पर्श, अरूप, अजीव, शाश्वत, अवस्थित तथा लोक का एक अंशभूत द्रव्य है।
संक्षेप में वह पांच प्रकार का है—
१. द्रव्य की अपेक्षा, २. क्षेत्र की अपेक्षा, ३. काल की अपेक्षा, ४. भाव की अपेक्षा, ५. गुण की अपेक्षा।

दव्वओ णं अधम्मत्थिकाए एगं दव्वं।	द्रव्यतः अधर्मास्तिकायः एक द्रव्यम्।	द्रव्य की अपेक्षा—एक द्रव्य है।
खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते।	क्षेत्रतः लोकप्रमाणमात्रः।	क्षेत्र की अपेक्षा—लोकप्रमाण है।
कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।	कालतः न कदापि न आसीत्, न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यति इति—अभूच्च भवति च भविष्यति च, ध्रुवः निचितः शाश्वतः अक्षयः अव्ययः अवस्थितः नित्यः।	काल की अपेक्षा—कभी नहीं था ऐसा नहीं है, कभी नहीं है ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा ऐसा नहीं है। वह अतीत में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। अतः वह ध्रुव निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।
भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे।	भावतः अवर्णः अगन्धः अरसः अस्पर्शः।	भाव की अपेक्षा—अवर्ण, अगंध, अरस और अस्पर्श है।
गुणओ ठाणगुणे।°	गुणतः स्थानगुणः।	गुण की अपेक्षा—स्थान गुण—स्थिति में उदासीन सहायक है।
१७२. आगासत्थिकाए अवण्णे °अगंधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगालोगदव्वे।	आकाशास्तिकायः अवर्णः अगन्धः अरसः अस्पर्शः अरूपी अजीवः शाश्वतः अवस्थितः लोकालोकद्रव्यम्।	१७२. आकाशास्तिकाय अवर्ण, अगंध, अरस, अस्पर्श, अरूप, अजीव, शाश्वत, अवस्थित तथा लोक का एक अंशभूत द्रव्य है।
से समासओ पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—	स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—	संक्षेप में वह पांच प्रकार का है—
दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।	द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः, गुणतः।	१. द्रव्य की अपेक्षा, २. क्षेत्र की अपेक्षा, ३. काल की अपेक्षा, ४. भाव की अपेक्षा, ५. गुण की अपेक्षा।
दव्वओ ण आगासत्थिकाए एगं दव्वं।	द्रव्यतः आकाशास्तिकायः एक द्रव्यम्।	द्रव्य की अपेक्षा—एक द्रव्य है।
खेत्तअ लोगालोगपमाणमेत्ते।	क्षेत्रतः लोकालोकप्रमाणमात्रः।	क्षेत्र की अपेक्षा—लोक तथा अलोक-प्रमाण है।
कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।	कालतः न कदापि न आसीत्, न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यति इति—अभूच्च भवति च भविष्यति च, ध्रुवः निचितः शाश्वतः अक्षयः अव्ययः अवस्थितः नित्यः।	काल की अपेक्षा—कभी नहीं था ऐसा नहीं है, कभी नहीं है ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा ऐसा नहीं है। वह अतीत में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। अतः वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।
भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे।	भावतः अवर्णः अगन्धः अरसः अस्पर्शः।	भाव की अपेक्षा—अवर्ण, अगंध, अरस और और अस्पर्श है।
गुणओ अवगाहणागुणे।°	गुणतः अवगाहनागुणः।	गुण की अपेक्षा—अवगाहन गुण वाला है।
१७३. जीवत्थिकाए ण अवण्णे °अगंधे अरसे अफासे अरूवी जीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे।	जीवास्तिकायः अवर्णः अगन्धः अरसः अस्पर्शः अरूपी जीवः शाश्वतः अवस्थितः लोकद्रव्यम्।	१७३. जीवास्तिकाय अवर्ण, अगंध, अरस, अस्पर्श, अरूप, अजीव, शाश्वत, अवस्थित तथा लोक का एक अंशभूत द्रव्य है

से समासओ पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—	स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—	संक्षेप में वह पांच प्रकार का है—
दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।	द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः, गुणतः।	१. द्रव्य की अपेक्षा, २. क्षेत्र की अपेक्षा, ३. काल की अपेक्षा, ४. भाव की अपेक्षा, ५. गुण की अपेक्षा।
दव्वओ णं जीवत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं।	द्रव्यतः जीवास्तिकायः अनन्तानि द्रव्याणि।	द्रव्य की अपेक्षा—अनन्त द्रव्य है।
खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते।	क्षेत्रतः लोकप्रमाणमात्रः।	क्षेत्र की अपेक्षा—लोकप्रमाण है।
कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।	कालतः न कदापि न आसीत्, न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यति इति—अभूच्च भवति च भविष्यति च, ध्रुवः निचितः शाश्वतः अक्षयः अव्ययः अवस्थितः नित्यः।	काल की अपेक्षा—कभी नहीं था ऐसा नहीं है, कभी नहीं है ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा ऐसा नहीं है। वह अतीत में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। अतः वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।
भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे।	भावतः अवर्णः अगन्धः अरसः अस्पर्शः।	भाव की अपेक्षा—अवर्ण, अगंध, अरस और अस्पर्श है।
गुणओ उवओगगुणे।°	गुणतः उपयोगगुणः।	गुण की अपेक्षा—उपयोग गुण वाला है।
१७४ पोग्गलत्थिकाए पंचवण्णे पंचरसे दुगंधे अट्ठ फासे रूवी अजीवे सासते अवट्ठिते °लोगदव्वे।	पुद्गलास्तिकायः पञ्चवर्णः पञ्चरसः द्विगन्धः अष्टस्पर्शः रूपी अजीवः शाश्वतः अवस्थितः लोकद्रव्यम्।	१७४. पुद्गलास्तिकाय पंचवर्ण, पंचरस, द्विगंध, अष्टस्पर्श, रूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित तथा लोक का एक अंशभूत द्रव्य है।
से समासओ पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—	स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—	संक्षेप में वह पांच प्रकार का है—
दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।°	द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः, गुणतः।	१. द्रव्य की अपेक्षा, २. क्षेत्र की अपेक्षा, ३. काल की अपेक्षा, ४. भाव की अपेक्षा, ५. गुण की अपेक्षा।
दव्वओ णं पोग्गलत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं।	द्रव्यतः पुद्गलास्तिकायः अनन्तानि द्रव्याणि।	द्रव्य की अपेक्षा—अनन्त द्रव्य है।
खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते।	क्षेत्रतः लोकप्रमाणमात्रः।	क्षेत्र की अपेक्षा—लोकप्रमाण है।
कालओ ण कयाइ णासि, °ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते° णिच्चे।	कालतः न कदापि नासीत्, न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यति इति—अभूच्च भवति च भविष्यति च, ध्रुवः निचितः शाश्वतः अक्षयः अव्ययः अवस्थितः नित्यः।	काल की अपेक्षा—कभी नहीं था ऐसा नहीं है, कभी नहीं है ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा ऐसा नहीं है। वह अतीत में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। अतः वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।
भावओ वण्णमंते गंधमंते रसमंते फासमंते।	भावतः वर्णवान् गन्धवान् रसवान् स्पर्शवान्।	भाव की अपेक्षा—वर्णवान्, गंधवान्, रसवान् तथा स्पर्शवान् है।
गुणओ गहणगुणे।	गुणतः ग्रहणगुणः।	गुण की अपेक्षा—ग्रहण-गुण—समुदित होने की योग्यतावाला है।

गइ-पदं

१७५. पंच गतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
णिरयगती, तिरियगती, मणुयगती,
देवगती, सिद्धिगती।

गति-पदम्

पञ्च गतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
निरयगतिः, तिर्यग्गतिः, मनुजगतिः,
देवगतिः, सिद्धिगतिः।

गति-पद

१७५. गतिया पाच हैं—
१. नरकगति, २. तिर्यञ्चगति,
३. मनुष्यगति, ४. देवगति,
५. सिद्धिगति।

इंदियत्थ-पदं

१७६. पच इंदियत्था पण्णत्ता, तं जहा—
सोतिंदियत्थे, °चक्खिदियत्थे,
घाणिंदियत्थे, जिब्भिदियत्थे,°
फासिंदियत्थे।

इन्द्रियार्थ-पदम्

पञ्च इन्द्रियार्थाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियार्थः, चक्षुरिन्द्रियार्थः,
घ्राणेन्द्रियार्थः, जिह्वेन्द्रियार्थः,
स्पर्शेन्द्रियार्थः।

इन्द्रियार्थ-पद

१७६. इन्द्रियो के पांच अर्थ [विषय] हैं—
१. श्रोत्रेन्द्रिय अर्थ, २. चक्षुरिन्द्रिय अर्थ,
३. घ्राणेन्द्रिय अर्थ, ४. जिह्वेन्द्रिय अर्थ,
५. स्पर्शनेन्द्रिय अर्थ।

मुंड-पदं

१७७ पंच मुंडा पण्णत्ता, तं जहा—
सोतिंदियमुंडे, °चक्खिदियमुंडे,
घाणिंदियमुंडे, जिब्भिदियमुंडे,°
फासिंदियमुंडे।
अहवा—
पंच मुंडा पण्णत्ता, तं जहा—
कोहमुंडे, माणमुंडे, मायामुंडे,
लोभमुंडे, सिरमुंडे।

मुण्ड-पदम्

पञ्च मुण्डाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियमुण्डः, चक्षुरिन्द्रियमुण्डः,
घ्राणेन्द्रियमुण्डः, जिह्वेन्द्रियमुण्डः,
स्पर्शेन्द्रियमुण्डः।
अथवा—
पञ्च मुण्डाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
क्रोधमुण्डः, मानमुण्डः, मायामुण्डः,
लोभमुण्डः, शिरोमुण्डः।

मुण्ड-पद

१७७. मुण्ड [जयी] पाच प्रकार के होते है—
१. श्रोत्रेन्द्रिय मुड, २. चक्षुरिन्द्रिय मुड,
३. घ्राणेन्द्रिय मुड, ४. जिह्वेन्द्रिय मुड,
५. स्पर्शनेन्द्रिय मुड।
अथवा—
मुड पाच प्रकार के होते है—
१. क्रोध मुड, २. मान मुड, ३. माया मुड,
४. लोभ मुड, ५. शिरो मुड।

बायर-पदं

१७८. अहेलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता,
तं जहा—
पुढविकाइया, आउकाइया,
वाउकाइया, वणस्सइकाइया,
ओराला तसा पाणा।

१७९. उड्ढलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता,
तं जहा—
°पुढविकाइया, आउकाइया,
वाउकाइया, वणस्सइकाइया,
ओराला तसा पाणा।°

बादर-पदम्

अधोलोके पञ्च बादराः प्रज्ञप्ताः,
तद्यथा—
पृथिवीकायिकाः, अप्कायिकाः,
वायुकायिकाः, वनस्पतिकायिकाः,
उदाराः त्रसाः प्राणाः।

ऊर्ध्वलोके पञ्च बादराः प्रज्ञप्ताः,
तद्यथा—
पृथिवीकायिकाः, अप्कायिकाः,
वायुकायिकाः, वनस्पतिकायिकाः,
उदाराः त्रसाः प्राणाः।

बादर-पद

१७८. अधोलोक मे पाच प्रकार के बादर जीव
होते है[१०६]—
१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक,
३. वायुकायिक, ४. वनस्पतिकायिक,
५. उदार त्रस प्राणी।

१७९. ऊर्ध्वलोक मे पाच प्रकार के बादर जीव
होते है[१०७]—
१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक,
३. वायुकायिक, ४. वनस्पतिकायिक,
५. उदार त्रस प्राणी।

१८०. तिरियलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता, तं जहा—
एगिंदिया, °बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया,° पंचिंदिया।

तिर्यग्लोके पञ्च बादराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
एकेन्द्रियाः, द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः, पञ्चेन्द्रियाः।

१८०. तिर्यक्लोक मे पाच प्रकार के बादर जीव होते है—
१. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय, ३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय, ५. पचेन्द्रिय।

१८१. पंचविहा बायरतेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—
इंगाले, जाले, मुम्मुरे, अच्ची, अलाते।

पञ्चविधाः बादरतेजस्कायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अङ्गारः, ज्वाला, मुर्मुरः, अर्चिः, अलातम्।

१८१. बादर तेजस्कायिक जीव पाच प्रकार के होते है—
१. अगार, २. ज्वाला—अग्निशिखा, ३. मुर्मर—चिनगारी, ४. अर्चि—लपट, ५. अलात—जलती हुई लकडी।

१८२. पंचविधा बादरवाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—
पाईणवाते, पडीणवाते, दाहिणवाते, उदीणवाते, विदिसवाते।

पञ्चविधा बादरवायुकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
प्राचीनवातः, प्रतिचीनवातः, दक्षिणवातः, उदीचीनवातः, विदिग्वातः।

१८२. बादर वायुकायिक जीव पाच प्रकार के होते है—
१. पूर्व वात, २. पश्चिम वात, ३. दक्षिण वात, ४. उत्तर वात, ५. विदिक् वात।

अचित्त-वाउकाय-पदं

अचित्त-वायुकाय-पदम्

अचित्त-वायुकाय-पद

१८३. पंचविधा अचित्ता वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—
अक्कंते, धंते, पीलिए, सरीराणुगते, संमुच्छिमे।

पञ्चविधाः अचित्ताः वायुकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
आक्रान्तः, ध्मातः, पीडितः, शरीरानुगतः, सम्मूर्च्छिमः।

१८३. अचित्त वायुकाय पाच प्रकार का होता है[१८]—
१. आक्रान्त—पैरो को पीट-पीट कर चलने से उत्पन्न वायु,
२. ध्मात—धौंकनी आदि से उत्पन्न वायु,
३. पीडित—गीले कपडो के निचोडने आदि से उत्पन्न वायु,
४. शरीरानुगत—डकार, उच्छ्वास आदि,
५. समूर्च्छिम—पखा झलने आदि से उत्पन्न वायु।

णियंठ-पदं

निर्ग्रन्थ-पदम्

निर्ग्रन्थ-पद

१८४. पंच णियंठा पण्णत्ता, तं जहा—
पुलाए, बउसे, कुसीले, णियंठे, सिणाते।

पञ्च निर्ग्रन्थाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पुलाकः, बकुशः, कुशीलः, निर्ग्रन्थः, स्नातः।

१८४. निर्ग्रन्थ पाच प्रकार के होते है[१९]—
१. पुलाक—निःसार धान्यकणों के समान जिसका चरित्र निःसार है,
२. बकुश—जिसके चरित्र मे स्थान-स्थान पर धब्बे लगे हुए हैं,
३. कुशील—जिसका चरित्र कुछ-कुछ मलिन हो गया हो,
४. निर्ग्रन्थ—जिसका मोहनीय कर्म छिन्न हो गया हो,
५. स्नातक—जिसके चार घात्यकर्म छिन्न हो गए हों।

१८५. पुलाए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—
णाणपुलाए, दंसणपुलाए,
चरित्तपुलाए, लिंगपुलाए,
अहासुहुमपुलाए णामं पंचमे।

पुलाकः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
ज्ञानपुलाकः, दर्शनपुलाकः, चरित्रपुलाकः,
लिङ्गपुलाकः यथासूक्ष्मपुलाको नाम
पञ्चमः।

१८५. पुलाक पांच प्रकार के होते है—
१. ज्ञानपुलाक—स्खलित, मिलित आदि ज्ञान के अतिचारो का सेवन करने वाला,
२. दर्शनपुलाक—सम्यक्त्व के अतिचारो का सेवन करने वाला,
३. चरित्रपुलाक—मूलगुण तथा उत्तर-गुण—दोनों मे ही दोष लगाने वाला,
४. लिंगपुलाक—शास्त्रविहित उपकरणों से अधिक उपकरण रखने वाला या बिना ही कारण अन्य लिंग को धारण करने वाला,
५. यथासूक्ष्मपुलाक—प्रमादवश अकल्प-नीय वस्तु को ग्रहण करने का मन मे भी चिन्तन करने वाला या उपर्युक्त पांचों अतिचारो मे से कुछ-कुछ अतिचारो का सेवन करने वाला।

१८६. बउसे पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—
आभोगबउसे, अणाभोगबउसे,
संवुडबउसे असंवुडबउसे,
अहासुहुमबउसे णामं पंचमे।

बकुशः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
आभोगबकुशः, अनाभोगबकुशः,
संवृतबकुशः, असंवृतबकुशः,
यथासूक्ष्मबकुशो नाम पञ्चमः।

१८६. बकुश पाच प्रकार के होते है—
१. आभोगबकुश—जान-बूझकर शरीर की विभूषा करने वाला,
२. अनाभोगबकुश—अनजान मे शरीर की विभूषा करने वाला,
३. संवृतबकुश—छिप-छिपकर शरीर आदि की विभूषा करने वाला,
४. असंवृतबकुश—प्रकटरूप मे शरीर की विभूषा करने वाला,
५. यथासूक्ष्मबकुश—प्रकट या अप्रकट मे शरीर आदि की सूक्ष्म विभूषा करने वाला।

१८७. कुसीले पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—
णाणकुसीले, दंसणकुसीले,
चरित्तकुसीले, लिंगकुसीले,
अहासुहुमकुसीले णामं पंचमे।

कुशीलः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
ज्ञानकुशीलः, दर्शनकुशीलः,
चरित्रकुशीलः, लिङ्गकुशीलः,
यथासूक्ष्मकुशीलो नाम पञ्चमः।

१८७. कुशील पाच प्रकार के होते है—
१. ज्ञानकुशील—काल, विनय आदि ज्ञानाचार की प्रतिपालना नही करने वाला,
२. दर्शनकुशील—निष्कांक्षित आदि दर्शनाचार की प्रतिपालना नही करने वाला,
३. चरित्रकुशील—कौतुक, भूतिकर्म, प्रश्नाप्रश्न, निमित्त, आजीविका, कल्क-कुरुका, लक्षण, विद्या तथा मन्त्र का प्रयोग करने वाला,
४. लिंगकुशील—वेष से आजीविका करने वाला,
५. यथासूक्ष्मकुशील—अपने को तपस्वी आदि कहने से हर्षित होने वाला।

१८८. णियंठे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—
पढमसमयणियंठे,
अपढमसमयणियंठे,
चरिमसमयणियंठे,
अचरिमसमयणियंठे,
अहासुहुमणियंठे णामं पंचमे।

निर्ग्रन्थः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
प्रथमसमयनिर्ग्रन्थः,
अप्रथमसमयनिर्ग्रन्थः,
चरमसमयनिर्ग्रन्थः,
अचरमसमयनिर्ग्रन्थः,
यथासूक्ष्मनिर्ग्रन्थो नाम पञ्चमः।

१८८. निर्ग्रन्थ पाच प्रकार के होते हैं—
१. प्रथमसमयनिर्ग्रन्थ— निर्ग्रन्थ की काल-स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है। उस काल में प्रथम समय मे वर्तमान निर्ग्रन्थ।
२. अप्रथमसमयनिर्ग्रन्थ—प्रथम समय के अतिरिक्त शेष काल मे वर्तमान निर्ग्रन्थ।
३. चरमसमयनिर्ग्रन्थ—अन्तिम समय में वर्तमान निर्ग्रन्थ।
४. अचरमसमयनिर्ग्रन्थ—अन्तिम समय के अतिरिक्त शेष समय मे वर्तमान निर्ग्रन्थ।
५. यथासूक्ष्मनिर्ग्रन्थ—प्रथम या अन्तिम समय की अपेक्षा किए बिना सामान्य रूप से सभी समयों में वर्तमान निर्ग्रन्थ।

१८९. सिणाते पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—
अच्छवी, असबले, अकम्मंसे,
संसुद्धणाणदंसणधरे—अरहा जिणे केवली, अपरिस्साई।

स्नातः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
अच्छविः, अशबलः, अकर्मांशः,
संशुद्धज्ञानदर्शनधरः—अर्हन् जिनः केवली,
अपरिश्रावी।

१८९. स्नातक पाच प्रकार के होते है—
१. अच्छवी—काय योग का निरोध करने वाला।
२. अशबल—निरतिचार साधुत्व का पालन करने वाला।
३. अकर्मांश—घात्यकर्मों का पूर्णतः क्षय करने वाला।
४. संशुद्धज्ञानदर्शनधारी—अर्हत्, जिन, केवली।
५. अपरिश्रावी—सम्पूर्ण काय योग का निरोध करने वाला।

उपधि-पदं

१९०. कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पंच वत्थाइं धारित्तए वा परिहरेत्तए वा, तं जहा—
जंगिए, भंगिए, साणए, पोत्तिए, तिरीडपट्टए णामं पंचमए।

उपधि-पदम्

कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा पञ्च वस्त्राणि धर्तुं वा परिधातुं वा, तद्यथा—
जाङ्गिक, भाङ्गिक, सानकं, पोतक, तिरीटपट्टक नाम पञ्चमकम्।

उपधि-पद

१९०. निर्ग्रन्थ तथा निर्ग्रन्थिया पाच प्रकार के वस्त्र ग्रहण कर सकती हैं तथा पहन सकती है[११]—
१. जांगमिक—त्रस जीवों के अवयवों से निष्पन्न कम्बल आदि,
२. भांगिक—अतसी से निष्पन्न,
३. सानिक—सन से निष्पन्न,
४. पोतक—रूई से निष्पन्न,
५. तिरीटपट्ट—लोध की छाल से निष्पन्न।

१६१. कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पंच रयहरणाइं धारित्तए वा परिहरेत्तए वा, तं जहा—
उण्णिए, उट्टिए, साणए, पच्चापिच्चिए, मुंजापिच्चिए णामं पंचमए।

कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीनां वा पञ्च रजोहरणानि धर्त्तुं वा परिधातुं वा, तद्यथा—
और्णिकं, औष्ट्रिकं, सानक, पञ्चापिञ्चियं, मुञ्चापिञ्चियं नाम पञ्चमकम्।

१६१. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियां पाच प्रकार के रजोहरण ग्रहण तथा धारण कर सकती है—
१. और्णिक—ऊन से निष्पन्न,
२. औष्ट्रिक—ऊट के केशो से निष्पन्न,
३. सानक—सन से निष्पन्न,
४. पच्चापिच्चिय[१११]—बल्वज नाम की मोटी घास को कूटकर बनाया हुआ,
५. मुंजापिच्चिय[११२]—मूंज को कूटकर बनाया हुआ।

णिस्साट्ठाण-पदं

१६२. धम्मण्णं चरमाणस्स पंच णिस्साट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—
छक्काया, गणे, राया, गाहावती, सरीरं।

निश्रास्थान-पदम्

धर्मं चरतः पञ्च निश्रास्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
षट्कायाः, गणः, राजा, गृहपतिः, शरीरम्।

निश्रास्थान-पद

१६२. धर्म का आचरण करने वाले साधु के पाच निश्रास्थान—आलम्बन स्थान होते हैं[११३]—
१. षट्काय, २. गण—श्रमण सघ, ३. राजा, ४. गृहपति—उपाश्रय देने वाला, ५. शरीर।

णिहि-पदं

१६३. पंच णिही पण्णत्ता, तं जहा—
पुत्तणिही, मित्तणिही, सिप्पणिही, धणणिही, धण्णणिही।

निधि-पदम्

पञ्च निधयः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पुत्रनिधिः, मित्रनिधिः, शिल्पनिधिः, धननिधिः, धान्यनिधि।

निधि-पद

१६३. निधि[११४] पाच प्रकार की होती है—
१. पुत्रनिधि, २. मित्रनिधि, ३. शिल्पनिधि, ४. धननिधि, ५. धान्यनिधि।

सोच-पदं

१६४. पंचविहे सोए पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविसोए, आउसोए, तेउसोए, मंतसोए, बंभसोए।

शौच-पदम्

पञ्चविधं शौच प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
पृथ्वीशौच, अप्शौच, तेज शौच, मन्त्रशौचं, ब्रह्मशौचम्।

शौच-पद

१६४. शौच[११५] पाच प्रकार का होता है—
१. पृथ्वी—मिट्टीशौच, २. जलशौच, ३. तेज शौच, ४. मन्त्रशौच, ५. ब्रह्मशौच—ब्रह्मचर्य आदि का आचरण।

छउमत्थ-केवलि-पदं

१६५. पंच ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणति ण पासति, तं जहा—

छद्मस्थ-केवलि-पदम्

पञ्च स्थानानि छद्मस्थः सर्वभावेन न जानाति न पश्यति, तद्यथा—

छद्मस्थ-केवलि-पद

१६५. पाच स्थानों को छद्मस्थ सर्वभाव से नही जानता, देखता—

धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं,
आगासत्थिकायं,
जीवं असरीरपडिबद्धं,
परमाणुपोग्गलं।
एयाणि चेव उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं जाणति पासति, तं जहा—
धम्मत्थिकायं, °अधम्मत्थिकायं,
आगासत्थिकायं,
जीवं असरीरपडिबद्धं,°
परमाणुपोग्गलं।

धर्मास्तिकायं, अधर्मास्तिकायं,
आकाशास्तिकाय,
जीव अशरीरप्रतिबद्ध,
परमाणुपुद्गलम्।
एतानि चैव उत्पन्नज्ञानदर्शनधर: अर्हन् जिन: केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति, तद्यथा—
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकायं,
आकाशास्तिकाय,
जीव अशरीरप्रतिबद्ध,
परमाणुपुद्गलम्।

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय,
३. अकाशास्तिकाय, ४. शरीरमुक्त जीव,
५. परमाणुपुद्गल।

केवलज्ञान तथा दर्शन को धारण करने वाले अर्हन्त, जिन तथा केवली इन्हें सर्वभाव से जानते हैं, देखते हैं—
१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय,
३. आकाशास्तिकाय ४. शरीरमुक्त जीव,
५. परमाणुपुद्गल।

महाणिरय-पदं

१९६. अधेलोगे णं पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाणिरया पण्णत्ता, तं जहा—
काले, महाकाले, रोरुए,
महारोरुए, अप्पतिट्ठाणे।

महानिरय-पदम्

अधोलोके पञ्च अनुत्तरा महातिमहान्तो महानिरया प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
काल:, महाकाल:, रौरुक:, महारौरुक:, अप्रतिष्ठान:।

महानिरय-पद

१९६. अधोलोक[111] में पांच अनुत्तर, सबसे बड़े महानरकावास हैं—
१. काल, २. महाकाल, ३. रौरुक,
४. महारौरुक, ५. अप्रतिष्ठान।

महाविमाण-पदं

१९७. उड्ढलोगे णं पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाविमाणा पण्णत्ता, तं जहा—
विजये, वेजयंते, जयंते,
अपराजिते, सव्वट्ठसिद्धे।

महाविमान-पदम्

ऊर्ध्वलोके पञ्च अनुत्तराणि महातिमहान्ति महाविमानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
विजय:, वैजयन्त:, जयन्त:, अपराजित:, सर्वार्थसिद्ध:।

महाविमान-पद

१९७. ऊर्ध्वलोक[112] में पांच अनुत्तर, सबसे बड़े महाविमान हैं—
१. विजय, २. वैजयन्त, ३. जयन्त,
४. अपराजित, ५. सर्वार्थ सिद्ध।

सत्त-पदं

१९८. पंच पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
हिरिसत्ते, हिरिमणसत्ते, चलसत्ते,
थिरसत्ते, उदयणसत्ते।

सत्त्व-पदम्

पञ्च पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ह्रीसत्त्व:, ह्रीमनसत्त्व:, चलसत्त्व:,
स्थिरसत्त्व:, उदयनसत्त्व:।

सत्त्व-पद

१९८. पुरुष पांच प्रकार के होते हैं[113]—
१. ह्रीसत्त्व, २. ह्रीमनसत्त्व,
३. चलसत्त्व, ४. स्थिरसत्त्व,
५. उदयनसत्त्व।

भिक्खाग-पदं

१९९. पंच मच्छा पण्णत्ता, तं जहा—
अणुसोतचारी, पडिसोतचारी,

भिक्षाक-पदम्

पञ्च मत्स्या: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
अनुश्रोतश्चारी, प्रतिश्रोतश्चारी,

भिक्षाक-पद

१९९. मत्स्य पांच प्रकार के होते हैं—
१. अनुश्रोतचारी, २. प्रतिश्रोतचारी—हिलसा मछली आदि,

अंतचारी, मज्झचारी सव्वचारी।

अन्तचारी, मध्यचारी, सर्वचारी।

३. अन्तचारी, ४ मध्यचारी,
५. सर्वचारी।

एवामेव पंच भिक्खागा पण्णत्ता, तं जहा—
अणुसोतचारी, °पडिसोतचारी, अंतचारी, मज्झचारी,° सव्वचारी।

एवमेव पञ्च भिक्षाकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अनुश्रोतश्चारी, प्रतिश्रोतश्चारी, अन्तचारी, मध्यचारी, सर्वचारी।

इसी प्रकार भिक्षुक पांच प्रकार के होते हैं—
१ अनुश्रोतचारी, २ प्रतिश्रोतचारी,
३. अन्तचारी, ४ मध्यचारी,
५. सर्वचारी।

वणीमग-पदं

वनीपक-पदम्

वनीपक-पद

२०० पंच वणीमगा पण्णत्ता, तं जहा—
अतिहिवणीमगे, किवणवणीमगे, माहणवणीमगे, साणवणीमगे, समणवणीमगे।

पञ्च वनीपकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अतिथिवनीपकः, कृपणवनीपकः, माहनवनीपकः, श्ववनीपकः, श्रमणवनीपकः।

२०० वनीपक—याचक पांच प्रकार के होते हैं''—
१ अतिथिवनीपक— अतिथिदान की प्रशंसा कर भोजन मांगने वाला।
२. कृपणवनीपम —कृपणदान की प्रशंसा कर भोजन वाला।
३. माहनवनीपक— ब्राह्मणदान की प्रशंसा कर भोजन मांगने वाला।
४ श्ववनीपक—कुत्ते के दान की प्रशंसा कर भोजन मांगने वाला।
५ श्रमणवनीपक— श्रमणदान की प्रशंसा कर भोजन मांगने वाला।

अचेल-पदं

अचेल-पदम्

अचेल-पद

२०१. पंचहिं ठाणेहिं अचेलए पसत्थे भवति, तं जहा—
अप्पा पडिलेहा, लाघविए पसत्थे, रूवे वेसासिए, तवे अणुण्णाते, विउले इंदियणिग्गहे।

पञ्चभिः स्थानैः अचेलकः प्रशस्तो भवति, तद्यथा—
अल्पा प्रतिलेखना, लाघविकं प्रशस्तं, रूपं वैश्वासिकं, तपोऽनुज्ञातं, विपुलः इन्द्रियनिग्रहः।

२०१ पांच स्थानों से अचेलक प्रशस्त होता है''—
१ उसके प्रतिलेखना अल्प होती है,
२. उसका लाघव प्रशस्त होता है,
३. उसका रूप [वेष] वैश्वासिक— विश्वास-योग्य होता है,
४. उसका तप अनुज्ञात्—जिनानुमत होता है,
१ उसके विपुल इन्द्रिय-निग्रह होता है।

उक्कल-पदं

२०२. पंच उक्कला पण्णत्ता, तं जहा—
दंडुक्कले, रज्जुक्कले,
तेणुक्कले, देसुक्कले, सव्वुक्कले।

उत्कल-पदम्

पञ्च उत्कलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
दण्डोत्कलः, राज्योत्कलः,
स्तेनोत्कलः, देशोत्कलः, सर्वोत्कलः।

उत्कल-पद

२०२. उत्कल[111] [उत्कट] पांच प्रकार के होते हैं—
१ दण्डोत्कल—जिसके पास प्रबल दण्ड-शक्ति हो,
२. राज्योत्कल—जिसके पास उत्कट प्रभुत्व हो,
३. स्तेनोत्कल—जिसके पास चोरों का प्रबल संग्रह हो,
४ देशोत्कल—जिसके पास प्रबल जन-मत हो,
५. सर्वोत्कल—जिसके पास उक्त दण्ड आदि सभी उत्कट हों।

समिति-पदं

२०३. पंच समितीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
इरियासमिती, भासासमिती,
•एसणासमिती,
आयाणभंड-मत्त-णिक्खेवणासमिती,
उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल°-पारिठावणियासमिती।

समिति-पदम्

पञ्च समितयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ईर्यासमितिः, भाषासमितिः,
एषणासमितिः,
आदानभाण्ड-अमत्र-निक्षेपणासमितिः,
उच्चार-प्रश्रवण-श्वेल-सिंघाण-जल्ल-पारिष्ठापनिकासमितिः।

समिति-पद

२०३. समितियां पांच हैं—
१. ईर्यासमिति, २. भाषासमिति,
३. एषणासमिति,
४ आदान-भांड-अमत्र-निक्षेपणासमिति,
५ उच्चार-प्रश्रवण-श्वेल-जल्ल-सिंघाण-परिष्ठापनिकासमिति।

जीव-पदं

२०४. पंचविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—
एगिंदिया, •बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया,° पंचिंदिया।

जीव-पदम्

पञ्चविधाः संसारसमापन्नकाः जीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
एकेन्द्रियाः, द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः, पञ्चेन्द्रियाः।

जीव-पद

२०४. संसारसमापन्नक जीव पांच प्रकार के होते हैं—
१ एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय, ३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय, ५. पंचेन्द्रिय।

गति-आगति-पदं

२०५ एगिंदिया पंचगतिया पंचागतिया पण्णत्ता, तं जहा—
एगिंदिए एगिंदिएसु उववज्जमाणे एगिंदिएहिंतो वा, •बेइंदिएहिंतो वा, तेइंदिएहिंतो वा, चउरिंदिएहिंतो वा°, पंचिंदिएहिंतो वा, उववज्जेज्जा।

गति-आगति-पदम्

एकेन्द्रियाः पञ्चगतिकाः पञ्चागतिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
एकेन्द्रियः एकेन्द्रियेषु उपपद्यमानः एकेन्द्रियेभ्यो वा, द्वीन्द्रियेभ्यो वा, त्रीन्द्रियेभ्यो वा चतुरिन्द्रियेभ्यो वा पञ्चेन्द्रियेभ्यो वा उपपद्येत।

गति-आगति-पद

२०५. एकेन्द्रिय जीवों की पांच स्थानों में गति तथा पांच स्थानों से आगति होती है—
एकेन्द्रिय जीव एकेन्द्रिय शरीर में उत्पन्न होता हुआ एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय से उत्पन्न होता है।

से चेव णं से एगिंदिए एगिंदियत्तं विप्पजहमाणे एगिंदियत्ताए वा, °बेइंदियत्ताए वा, तेइंदियत्ताए वा, चउरिंदियत्ताए वा°, पंचिंदियत्ताए वा गच्छेज्जा।

स चैव असौ एकेन्द्रियः एकेन्द्रियत्वं विप्रजहत् एकेन्द्रियतया वा, द्विन्द्रियतया वा, त्रिन्द्रियतया वा, चतुरिन्द्रियतया वा, पञ्चन्द्रियतया वा गच्छेत्।

एकेन्द्रिय जीव एकेन्द्रिय शरीर को छोड़ता हुआ एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय मे जाता है।

२०६. **बेंदिया पंचगतिया पंचागतिया एवं चेव।**

द्वीन्द्रियाः पञ्चगतिकाः पञ्चागतिकाः एवं चैव।

२०६. इसी प्रकार द्वीन्द्रिय जीवो की इन्ही पाच स्थानों मे गति तथा इन्ही पाच स्थानो से आगति होती है।

२०७. **एवं जाव पंचिंदिया पंचगतिया पंचागतिया पण्णत्ता, तं जहा— पंचिंदिए जाव गच्छेज्जा।**

एवं यावत् पञ्चेन्द्रियाः पञ्चगतिकाः पञ्चागतिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— पञ्चेन्द्रियः यावत् गच्छेत्।

२०७. इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पचेन्द्रिय जीवों की भी इन्ही पांच स्थानों मे गति तथा इन्हीं पांच स्थानों से आगति होती है।

जीव-पदं

जीव-पदम्

जीव-पद

२०८ **पंचविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—**
कोहकसाई, °माणकसाई, मायाकसाई,° लोभकसाई, अकसाई।
अहवा—
पंचविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—
°णेरइया, तिरिक्खजोणिया, मणुस्सा,° देवा, सिद्धा।

पञ्चविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी, अकषायी।
अथवा—
पञ्चविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
नैरयिकाः, तिर्यग्योनिकाः, मनुष्याः, देवाः, सिद्धाः।

२०८. सब जीव पांच प्रकार के होते है—
१ क्रोधकषायी, २. मानकषायी, ३. मायाकषायी, ४. लोभकषायी, ५. अकषायी।
अथवा—
सब जीव पाच प्रकार के होते है—
१. नैरयिक, २. तिर्यञ्च, ३. मनुष्य, ४ देव, ५ सिद्ध।

जोणि-ठिइ-पदं

योनि-स्थिति-पदम्

योनि-स्थिति-पद

२०९. **अह भंते! कल-मसूर-तिल-मुग्ग-मास-णिप्फाव-कुलत्थ-आलिसंदग-सतीण-पलिमंथगाणं—एतेसि णं धण्णाणं कुट्ठाउत्ताणं °पल्लाउत्ताणं मंचाउत्ताणं मालाउत्ताणं ओलित्ताणं लित्ताणं लंछियाणं मुद्दियाणं पिहिताणं° केवइयं कालं जोणी संचिट्ठति?**

अथ भन्ते! कला-मसूर-तिल-मुद्ग-माष-निष्पाव-कुलत्थ-आलिसंदक-सतीणा-परिमन्थकानां—एतेषां धान्यानां कोष्ठागुप्तानां पल्यागुप्तानां मञ्चागुप्तानां मालागुप्तानां अवलिप्तानां लिप्तानां लाञ्छितानां मुद्रितानां पिहितानां कियन्तं कालं योनिः संतिष्ठते?

२०९. भगवन्! मटर, मसूर, तिल, मूग, उड़द, निष्पाव—सेम, कुलथी, चवला, तूवर तथा काला चना—इन अन्नो को कोठे, पल्य, मचान और माल्य मे डालकर उनके द्वार-देश को ढँक देने, लीप देने, चारों ओर से लीप देने, रेखाओ से लाछित्त कर देने, मिट्टी से मुद्रित कर देने पर उनकी योनि [उत्पादक-शक्ति] कितने काल तक रहती है?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पंच संवच्छराइं। तेण परं जोणी पमिलायति, °तेण परं जोणी पविद्धंसति, तेण परं जोणी विद्धंसति, तेण परं बीए अबीए भवति,° तेण परं जोणीवोच्छेदे पण्णत्ते।

गौतम ! जघन्येन अन्तर्मुहूर्त, उत्कर्षेण पञ्च संवत्सराणि। तेन परं योनि प्रम्लायति, तेन परं योनि प्रविध्वमते, तेन परं योनि विध्वसते, तेन परं बीजं अबीज भवति, तेन परं योनिव्यवच्छेद प्रज्ञप्त.।

गौतम ! जघन्य अन्तमुहूर्त तथा उत्कृष्ट पाच वर्ष। उसके बाद वह म्लान हो जाती है, विध्वस्त हो जाती है, क्षीण हो जाती है, बीज अबीज हो जाता है और योनि का विच्छेद हो जाता है।

संवच्छर-पदं

२१०. पंच संवच्छरा पण्णत्ता, तं जहा—
णक्खत्तसंवच्छरे, जुगसंवच्छरे, पमाणसंवच्छरे, लक्खणसंवच्छरे, सणिचरसंवच्छरे।

२११. जुगसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—
चंदे, चंदे, अभिवड्ढिते, चंदे, अभिवड्ढिते चेव।

२१२. पमाणसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—
णक्खत्ते, चंदे, उऊ, आदिच्चे, अभिवड्ढिते।

२१३. लक्खणसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

संवत्सर-पदम्

पञ्च संवत्सराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
नक्षत्रसंवत्सरः युगसंवत्सरः प्रमाणसंवत्सरः लक्षणसंवत्सरः शनैश्चरसंवत्सरः।

युगसंवत्सरः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
चन्द्रः, चन्द्रः, अभिवर्धितः, चन्द्रः, अभिवर्धितः चैव।

प्रमाणसंवत्सरः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
नक्षत्रः, चन्द्रः, ऋतुः, आदित्यः, अभिवर्धितः।

लक्षणसंवत्सरः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—

संवत्सर-पद

२१०. संवत्सर पाच प्रकार का होता है[102]—
१. नक्षत्रसंवत्सर, २. युगसंवत्सर, ३. प्रमाणसंवत्सर, ४. लक्षणसंवत्सर, ५. शनिश्चरसंवत्सर।

२११. युगसंवत्सर पाच प्रकार का होता है[103]—
१. चन्द्र, २. चन्द्र, ३. अभिवर्धित, ४. चन्द्र, ५. अभिवर्धित।

२१२. प्रमाणसंवत्सर पाच प्रकार का होता है[104]—
१. नक्षत्र, २. चन्द्र, ३. ऋतु, ४. आदित्य, ५. अभिवर्धित।

२१३. लक्षणसंवत्सर पाच प्रकार का होता है[105]—
१. नक्षत्र, २. चन्द्र, ३. कर्म [ऋतु] ४. आदित्य, ५. अभिवर्धित।

संगहणी-गाहा

१. समगं णक्खत्ताजोगं जोयंति, समगं उदू परिणमंति।
णच्चुण्हं णातिसीतो, बहूदओ होति णक्खत्तो॥

संग्रहणी-गाथा

१. समकं नक्षत्राणियोग योजयन्ति, समकं ऋतवः परिणमन्ति।
नात्युष्णं नातिशीतः, बहूदकः भवति नक्षत्रः॥

संग्रहणी-गाथा

१. जिस संवत्सर में नक्षत्र समतया—अपनी तिथि का अतिवर्तन न करते हुए तिथियों के साथ योग करते हैं, ऋतुएं समतया—अपनी काल-मर्यादा के अनुसार परिणत होती है, न अति गर्मी होती है और न अति सर्दी तथा जिसमें पानी अधिक गिरता है, उसे नक्षत्रसंवत्सर कहते है।

२. ससिसगलपुण्णमासी, जोएइ विसमचारिणक्खत्ते। कडुओ बहूदओ वा, तमाहु संवच्छरं चंदं॥	२. शशिसकलपूर्णमासी, योजयति विषमचारिनक्षत्रः। कटुकः बहूदको वा, तमाहुः संवत्सरं चन्द्रम्॥	२. जिस संवत्सर में चन्द्रमा सभी पूर्णिमाओं का स्पर्श करता है, अन्य नक्षत्र विषमचारी—अपनी तिथियों का अतिवर्तन करने वाले होते हैं, जो कटुक—अतिगर्मी और अतिसर्दी के कारण भयंकर होता है तथा जिसमें पानी अधिक गिरता है, उसे चन्द्र संवत्सर करते हैं।
३. विसमं पवालिणो परिणमंति, अणुदूसु देंति पुप्फफलं। वासं ण सम्म वासति, तमाहु संवच्छरं कम्मं॥	३. विषमं प्रवालिनः परिणमन्ति अनृतुषु ददति पुष्पफलम्। वर्षो न सम्यग् वर्षति, तमाहुः सवत्सरं कर्म॥	३. जिस संवत्सर में वृक्ष असमय अंकुरित हो जाते है, असमय में फूल तथा फल आ जाते हैं, वर्षा उचित मात्रा में नहीं होती, उसे कर्म संवत्सर कहते है।
४. पुढविदगाणं तु रसं, पुप्फफलाणं तु देइ आदिच्चो। अप्पेणवि वासेणं, सम्मं णिप्फज्जए सासं॥	४. पृथिव्युदकानां तु रसं, पुष्पफलानां तु ददाति आदित्यः। अल्पेनापि वर्षेण, सम्यग् निष्पद्यते शस्यम्॥	४. जिस संवत्सर में वर्षा अल्प होने पर भी सूर्य पृथ्वी, जल तथा फूलों और फलों को मधुर और स्निग्ध रस प्रदान करता है तथा फसल अच्छी होती है, उसे आदित्य संवत्सर कहते है।
५. आदिच्चतेयतविता, खणलवदिवसा उऊ परिणमंति। पूरिंति रेणु थलयाइं, तमाहु अभिवड्ढितं जाण॥	५. आदित्यतेजस्तप्ता, क्षणलवदिवसर्तवः परिणमन्ति। पूरयन्ति रेणुभिः स्थलकानि, तमाहुः अभिवर्धितं जानीहि।	५. जिस संवत्सर में सूर्य के ताप से क्षण, लव, दिवस और ऋतु तप्त जैसे हो उठते है तथा आंधियों से स्थल भर जाता है, उसे अभिवर्धित संवत्सर कहते हैं।

जीवस्स णिज्जाणमग्ग-पदं	**जीवस्य-निर्याणमार्ग-पदम्**	**जीवस्य-निर्याणमार्ग-पद**
२१४ पंचविधे जीवस्स णिज्जाणमग्गे पण्णत्ते, तं जहा— पाएहिं, ऊरूहिं, उरेणं, सिरेणं, सव्वंगेहिं।	पञ्चविधः जीवस्य निर्याणमार्गः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— पादैः, ऊरुभिः, उरसा, शिरसा, सर्वाङ्गैः।	२१४ जीव के निर्याण-मार्ग[१३५] पांच है— १. पैर, २. ऊरु—घुटने से ऊपर का भाग, ३. हृदय, ४. सिर, ५. सारे अंग।
पाएहिं णिज्जायमाणे णिरयगामी भवति।	पादैः निर्यान् नरकगामी भवति।	१. पैरों से निर्याण करने वाला जीव नरकगामी होता है।
ऊरूहिं णिज्जायमाणे तिरियगामी भवति।	ऊरुभिः निर्यान् तिर्यग्गामी भवति।	२. ऊरु से निर्याण करने वाला जीव तिर्यक्गामी होता है।
उरेणं णिज्जायमाणे मणुयगामी भवति।	उरसा निर्यान् मनुष्यगामी भवति।	३. हृदय से निर्याण करने वाला जीव मनुष्यगामी होता है।
सिरेणं णिज्जायमाणे देवगामी भवति।	शिरसा निर्यान् देवगामी भवति।	४. सिर से निर्याण करने वाला जीव देवगामी होता है।
सव्वंगेहिं णिज्जायमाणे सिद्धिगति-पज्जवसाणे पण्णत्ते।	सर्वाङ्गैः निर्यान् सिद्धिगति-पर्यवसानः प्रज्ञप्तः।	५. सारे अंगों से निर्याण करने वाला जीव सिद्धगति में पर्यवसित होता है।

छेयण-पदं

२१५. पंचविहे छेयणे पण्णत्ते, तं जहा—
उप्पाछेयणे, वियच्छेयणे,
बंधच्छेयणे, पएसच्छेयणे,
दोधारच्छेयणे।

छेदन-पदम्

पञ्चविध छेदन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
उत्पादच्छेदन, व्ययच्छेदन,
बन्धच्छेदन, प्रदेशच्छेदन,
द्विधाच्छेदनम्।

छेदन-पद

२१५. छेदन [विभाग] पांच प्रकार का होता है—
१. उत्पादछेदन – उत्पादपर्याय के आधार पर विभाग करना,
२ व्ययछेदन—विनाशपर्याय के आधार पर विभाग करना,
३ बंधछेदन—सम्बन्ध-विच्छेद,
४. प्रदेशछेदन—अविभक्त वस्तु के प्रदेशों [अवयवों] का बुद्धि कल्पित विभाग।
५. द्विधारछेदन —दो टुकड़े।

आणंतरिय-पदं

२१६. पंचविहे आणंतरिए पण्णत्ते, तं जहा—
उप्पायाणंतरिए, वियाणंतरिए,
पएसाणंतरिए, समयाणंतरिए,
सामण्णाणंतरिए।

आनन्तर्य-पदम्

पञ्चविध आनन्तर्य प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
उत्पादानन्तर्य, व्ययानन्तर्य,
प्रदेशानन्तर्य, समयानन्तर्य,
सामान्यानन्तर्यम्।

आनन्तर्य-पद

२१६ आनन्तर्य [सातत्य] पांच प्रकार का होता है—
१ उत्पादआनन्तर्य—उत्पाद का अविरह,
२ व्ययआनन्तर्य— विनाश का अविरह,
३. प्रदेशआनन्तर्य—प्रदेशों की संलग्नता,
४ समयआनन्तर्य—समय की संलग्नता,
५ सामान्यआनन्तर्य—जिसमें उत्पाद, व्यय आदि विशेष पर्यायों की विवक्षा न हो, वह आनन्तर्य।

अणंत-पदं

२१७. पंचविधे अणंतए पण्णत्ते, तं जहा—
णामाणंतए, ठवणाणंतए,
दव्वाणंतए, गणणाणंतए,
पदेसाणंतए।
अहवा—पंचविहे अणंतए पण्णत्ते, तं जहा—
एगतोऽणंतए, दुहओणंतए,
देसवित्थाराणंतए,
सव्ववित्थाराणंतए, सासयाणंतए।

अनन्त-पदम्

पञ्चविध अनन्तक प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
नामानन्तक, स्थापनानन्तक,
द्रव्यानन्तकं, गणनानन्तक,
प्रदेशानन्तकम्।
अथवा—पञ्चविध अनन्तक प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
एकतोऽनन्तकं, द्विधाऽनन्तक,
देशविस्ताराऽनन्तक,
सर्वविस्ताराऽनन्तकं, शाश्वतानन्तकम्।

अनन्त-पद

२१७ अनन्तक[१९] पांच प्रकार का होता है—
१ नामअनन्तक, २. स्थापनाअनन्तक,
३. द्रव्यअनन्तक, ४. गणनाअनन्तक
५. प्रदेशअनन्तक।
अथवा—अनन्तक पांच प्रकार का होता है—
१ एकतःअनन्तक, २ द्विधाअनन्तक,
३. देशविस्तारअनन्तक, ४. सर्वविस्तार अनन्तक, ५. शाश्वत अनन्तक।

णाण-पदं

२१८. पंचविहे णाणे पण्णत्ते, तं जहा—
आभिणिबोहियणाणे,
सुयणाणे, ओहिणाणे,
मणपज्जवणाणे, केवलणाणे ।

२१९. पंचविहे णाणावरणिज्जे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा—
आभिणिबोहियणाणावरणिज्जे,
°सुयणाणावरणिज्जे,
ओहिणाणावरणिज्जे,
मणपज्जवणाणावरणिज्जे,°
केवलणाणावरणिज्जे ।

२२०. पंचविहे सज्झाए पण्णत्ते, तं जहा—
वायणा, पुच्छणा, परियट्टणा,
अणुप्पेहा, धम्मकहा ।

ज्ञान-पदम्

पञ्चविधं ज्ञानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आभिनिबोधिकज्ञानं, श्रुतज्ञानं,
अवधिज्ञानं, मनःपर्यवज्ञानं,
केवलज्ञानम् ।

पञ्चविधं ज्ञानावरणीयं कर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयं,
श्रुतज्ञानावरणीयं,
अवधिज्ञानावरणीयं,
मनःपर्यवज्ञानावरणीयं,
केवलज्ञानावरणीयम् ।

पञ्चविधः स्वाध्यायः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
वाचना, प्रच्छना, परिवर्तना,
अनुप्रेक्षा, धर्मकथा ।

ज्ञान-पद

२१८. ज्ञान के पांच प्रकार हैं—
१. आभिनिबोधिकज्ञान, २. श्रुतज्ञान,
३. अवधिज्ञान, ४. मनःपर्यवज्ञान,
५. केवलज्ञान ।

२१९. ज्ञानावरणीय कर्म के पांच प्रकार हैं—
१. आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय,
२. श्रुतज्ञानावरणीय,
३. अवधिज्ञानावरणीय,
४. मनःपर्यवज्ञानावरणीय,
५. केवलज्ञानावरणीय ।

२२०. स्वाध्याय[114] के पांच प्रकार हैं—
१. वाचना—अध्यापन, २. प्रच्छना—संदिग्ध विषयों में प्रश्न करना,
३. परिवर्तना—पठित ज्ञान की पुनरावृत्ति करना, ४. अनुप्रेक्षा—चिन्तन,
५. धर्मकथा—धर्मचर्चा ।

पच्चक्खाण-पदं

२२१. पंचविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा—
सद्दहणसुद्धे, विणयसुद्धे,
अणुभासणासुद्धे, अणुपालणासुद्धे,
भावसुद्धे ।

प्रत्याख्यान-पदम्

पञ्चविधं प्रत्याख्यानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
श्रद्धानशुद्धं, विनयशुद्धं,
अनुभाषणाशुद्ध, अनुपालनाशुद्ध,
भावशुद्धम् ।

प्रत्याख्यान-पद

२२१. प्रत्याख्यान पांच प्रकार का होता है—
१. श्रद्धानशुद्ध—श्रद्धापूर्वक स्वीकृत ।
२. विनयशुद्ध—विनय-समाचरण पूर्वक स्वीकृत ।
३. अनुभाषणाशुद्ध[115]—प्रत्याख्यान कराते समय गुरु जिस पाठ का उच्चारण करे उसे दोहराना ।
४. अनुपालनाशुद्ध[116]—कठिन परिस्थिति मे भी प्रत्याख्यान का भग न करना, उसका विधिवत् पालन करना ।
५. भावशुद्ध[117]—राग-द्वेष या आकांक्षात्मक मानसिक भावों से अदूषित ।

पडिक्कमण-पदं

२२२. पंचविहे पडिक्कमणे पण्णत्ते, तं जहा—
आसवदारपडिक्कमणे,
मिच्छत्तपडिक्कमणे,
कसायपडिक्कमणे,
जोगपडिक्कमणे,
भावपडिक्कमणे।

प्रतिक्रमण-पदम्

पञ्चविधं प्रतिक्रमणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आश्रवद्वारप्रतिक्रमण,
मिथ्यात्वप्रतिक्रमणं,
कषायप्रतिक्रमण,
योगप्रतिक्रमण,
भावप्रतिक्रमणम्।

प्रतिक्रमण-पद

२२२. प्रतिक्रमण[१११] पाच प्रकार का होता है—
१. आश्रवद्वारप्रतिक्रमण,
२. मिथ्यात्वप्रतिक्रमण,
३. कषायप्रतिक्रमण, ४. योगप्रतिक्रमण,
५ भावप्रतिक्रमण।

सुत्त-पदं

२२३ पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं वाएज्जा, तं जहा—
संगहट्ठयाए, उवग्गहट्ठयाए,
णिज्जरट्ठयाए,
सुत्ते वा मे पज्जवयाते भविस्सति,
सुत्तस्स वा अवोच्छित्तिणयट्ठयाए।

सूत्र-पदम्

पञ्चभि स्थानैः सूत्र वाचयेत्, तद्यथा—
सग्रहार्थाय, उपग्रहार्थाय,
निर्जरार्थाय,
सूत्रं वा मम पर्यवजात भविष्यति,
सूत्रस्य वा अव्यवच्छित्तिनयार्थाय।

सूत्र-पद

२२३. पाच कारणो से सूत्रो का अध्यापन कराना चाहिए—
१. सग्रह के लिए—शिष्यो को श्रुत-सम्पन्न करने के लिए।
२. उपग्रह के लिए—भक्त, पान व उपकरणो की विधिवत् उपलब्धि कर सके, वैसी क्षमता उत्पन्न करने के लिए।
३ निर्जरा के लिए—कर्म-क्षय के लिए।
४. अध्यापन से मेरा श्रुत पर्यवजात—परिस्फुट होगा, इसलिए।
५ श्रुतपरम्परा को अव्यवच्छिन्न रखने के लिए।

२२४. पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं सिक्खेज्जा, तं जहा—
णाणट्ठयाए, दंसणट्ठयाए,
चरित्तट्ठयाए, वुग्गहविमोयणट्ठयाए,
अहत्थे वा भावे जाणिस्सामीतिकट्टु।

पञ्चभि स्थानैः सूत्रं शिक्षेत्, तद्यथा—
ज्ञानार्थाय, दर्शनार्थाय, चरित्रार्थाय,
व्युद्ग्रहविमोचनार्थाय,
यथार्था(स्था)न् वा भावान्
ज्ञास्यामीतिकृत्वा।

२२४. पाच कारणो से श्रुत का अध्ययन करना चाहिए—
१. ज्ञान के लिए—अभिनव तत्त्वो की उपलब्धि के लिए।
२ दर्शन के लिए—श्रद्धा की पुष्टि के लिए।
३. चरित्र के लिए—आचार-विशुद्धि के लिए।
४ व्युद्ग्रह विमोचन के लिए—दूसरों को मिथ्या अभिनिवेश से मुक्त करने के लिए।
५. मैं यथार्थ भावों को जानूगा, इसलिए।

कप्प-पदं

२२५. सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु विमाणा पंचवण्णा पण्णत्ता, तं जहा—
किण्हा, °णीला, लोहिता, हालिद्दा,° सुक्किल्ला।

२२६. सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु विमाणा पंचजोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

२२७. बंभलोग-लंतएसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जसरीरगा उक्कोसेणं पंच रयणी उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

कल्प-पदम्

सौधर्मेशानयोः कल्पयोः विमानानि पञ्चवर्णानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कृष्णानि, नीलानि, लोहितानि, हारिद्राणि, शुक्लानि।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोः विमानानि पञ्चयोजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

ब्रह्मलोक-लान्तकयोः कल्पयोः देवानां भवधारणीयशरीरकाणि उत्कर्षेण पञ्च रत्नीः ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

कल्प-पद

२२५. सौधर्म और ईशान देवलोक मे विमान पांच वर्णों के होते हैं—
१. कृष्ण, २. नील, ३. लोहित, ४. हारिद्र, ५ शुक्ल।

२२६. सौधर्म और ईशान देवलोक मे विमान पांच सौ योजन ऊंचे है।

२२७. ब्रह्मलोक तथा लातक देवलोक मे देवताओं का भवधारणीय शरीर उत्कृष्टतः पाच रत्नि ऊंचा होता है।

बंध-पदं

२२८ णेरइया णं पंचवण्णे पंचरसे पोग्गले बंधेंसु वा बंधंति वा बंधिस्संति वा, तं जहा—
किण्हे, °णीले, लोहिते, हालिद्दे,° सुक्किले।
तित्ते, °कडुए, कसाए, अंबिले,° मधुरे।

बन्ध-पदम्

नैरयिकाः पञ्चवर्णान् पञ्चरसान् पुद्गलान् अभान्त्सुः वा बध्नन्ति वा बन्धिष्यन्ति वा, तद्यथा—
कृष्णान्, नीलान्, लोहितान्, हारिद्रान्, शुक्लान्।
तिक्तान् कटुकान्, कषायान्, अम्लान्, मधुरान्।

बन्ध-पद

२२८. नैरयिकों ने पाच वर्ण तथा पाच रसवाले पुद्गलो का बधन [कर्मरूप मे स्वीकरण] किया है, कर रहे हैं तथा करेंगे—
१. कृष्णवर्णवाले, २. नीलवर्णवाले, ३. लोहितवर्णवाले, ४. हारिद्रवर्णवाले, ५. शुक्लवर्णवाले।
१ तिक्तरसवाले, २. कटुरसवाले, ३. कषायरसवाले, ४ अम्लरसवाले, ५ मधुररसवाले।

२२९. एवं—जाव वेमाणिया।

एवम्—यावत् वैमानिकाः।

२२९. इसी प्रकार वैमानिकों तक के सारे ही दण्डक-जीवो ने पांच वर्ण तथा पाच रस वाले पुद्गलो का बधन [कर्मरूप मे स्वीकरण] किया है, कर रहे है तथा करेंगे।

महाणदी-पदं

२३०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं गंगं महाणदिं पंच महाणदीओ समप्पेंति, तं जहा—
जउणा, सरऊ, आवी, कोसी, मही।

महानदी-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे गङ्गा महानदी पञ्च महानद्यः समार्पयन्ति, तद्यथा—
यमुना, सरयूः, आवी, कोशी, मही।

महानदी-पद

२३०. जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण-भाग —भरतक्षेत्र में गंगा महानदी मे पाच महानदिया मिलती है[११]—
१. यमुना, २. सरयू, ३ आवी, ४. कोसी, ५. मही।

२३१. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं सिंधुं महाणदिं पंच महाणदीओ समप्पेंति, तं जहा—
स[त ?]द्दू, वितत्था, विभासा, एरावती, चंदभागा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे सिन्धू महानदी पञ्च महानद्यः समर्पयन्ति, तद्यथा—
शतद्रुः, वितस्ता, विपाशा, ऐरावती, चन्द्रभागा।

२३१. जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण-भाग—भरतक्षेत्र में सिन्धु महानदी में पांच महानदियां मिलती हैं[११]—
१. शतद्रु—शतलज, २. वितस्ता—झेलम, ३ विपासा—व्यास, ४. ऐरावती—रावी, ५. चन्द्रभागा—चिनाव।

२३२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रत्तं महाणदिं पंच महाणदीओ समप्पेंति, तं जहा—
किण्हा, महाकिण्हा, णीला, महाणीला, महातीरा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे रक्ता महानदी पञ्च महानद्यः समर्पयन्ति, तद्यथा—
कृष्णा, महाकृष्णा, नीला, महानीला, महातीरा।

२३२. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर-भाग—ऐरवतक्षेत्र मे रक्ता महानदी में पाच महानदिया मिलती है—
१. कृष्णा, २. महाकृष्णा, ३. नीला, ४. महानीला, ५. महातीरा।

२३३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रत्तावतिं महाणदिं पंच महाणदीओ समप्पेंति, तं जहा—
इंदा, इंदसेणा, सुसेणा, वारिसेणा, महाभोगा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे रक्तावती महानदी पञ्च महानद्यः समर्पयन्ति, तद्यथा—
इन्द्रा, इन्द्रसेना, सुषेणा, वारिषेणा, महाभोगा।

२३३. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर-भाग—ऐरवतक्षेत्र मे रक्तावती महानदी मे पाच महानदियां मिलती है—
१. इन्द्रा, २. इन्द्रसेना, ३. सुषेणा, ४ वारिषेणा, ५. महाभोगा।

तित्थगर-पदं

२३४. पंच तित्थगरा कुमारवासमज्झे वसित्ता मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, तं जहा—
वासुपुज्जे, मल्ली, अरिट्ठणेमी, पासे, वीरे।

तीर्थंकर-पदम्

पञ्च तीर्थंकराः कुमारवासमध्ये उषित्वा मुण्डा भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजिताः, तद्यथा—
वासुपूज्यः, मल्ली, अरिष्टनेमि, पार्श्वः, वीरः।

तीर्थंकर-पद

२३४. पांच तीर्थंकर कुमारवास मे रहकर मुण्ड होकर, अगार को छोड़ अनगारत्व मे प्रव्रजित हुए[१२]—
१. वासुपूज्य, २. मल्ली, ३. अरिष्टनेमि, ४ पार्श्व, ५. महावीर।

सभा-पदं

२३५. चमरचंचाए रायहाणीए पंच सभा पण्णत्ता, तं जहा—
सभासुधम्मा, उववातसभा, अभिसेयसभा, अलंकारियसभा, ववसायसभा।

सभा-पदम्

चमरचञ्चाया राजधान्या पञ्च सभाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
सभासुधर्मा, उपपातसभा, अभिषेकसभा, अलकारिकसभा, व्यवसायसभा।

सभा-पद

२३५ चमरचचा राजधानी मे पाच सभाएं है—
१ सुधर्मासभा—शयनागार,
२ उपपातसभा—प्रसवगृह,
३ अभिषेकसभा—जहा राज्याभिषेक किया जाता है,
४. अलंकारिकसभा—अलंकारगृह,
५. व्यवसायसभा—अध्ययनकक्ष।

२३६. एगमेगे णं इंदट्ठाणे पंच सभाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
सभासुहम्मा, °उववातसभा, अभिसेयसभा, अलंकारियसभा,° ववसायसभा।

एकैकस्मिन् इन्द्रस्थाने पञ्च सभाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
सभासुधर्मा, उपपातसभा, अभिषेकसभा, अलंकारिकसभा, व्यवसायसभा।

२३६. इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्र की राजधानी में पांच-पांच सभाएं हैं—
१. सुधर्मासभा, २. उपपातसभा, ३. अभिषेकसभा, ४. अलंकारिकसभा, ५. व्यवसायसभा।

णक्खत्त-पदं

२३७. पंच णक्खत्ता पंचतारा पण्णत्ता, तं जहा—
धणिट्ठा, रोहिणी, पुणव्वसू, हत्थो, विसाहा।

नक्षत्र-पदम्

पञ्च नक्षत्राणि पञ्चताराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
धनिष्ठा, रोहिणी, पुनर्वसुः, हस्तः, विशाखा।

नक्षत्र-पद

२३७. पांच नक्षत्र पांच तारोंवाले है—
१. धनिष्ठा, २. रोहिणी, ३. पुनर्वसु, ४. हस्त, ५. विशाखा।

पावकम्म-पदं

२३८. जीवा णं पंचट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा तं जहा—
एगिंदियणिव्वत्तिए,
°बेइंदियणिव्वत्तिए,
तेइंदियणिव्वत्तिए,
चउरिंदियणिव्वत्तिए,°
पंचिंदियणिव्वत्तिए,
एवं—चिण-उवचिण-बंध
उदीर-वेद तह णिज्जरा चेव।

पापकर्म-पदम्

जीवाः पञ्चस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषुः वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा—
एकेन्द्रियनिर्वर्तितान्,
द्वीन्द्रियनिर्वर्तितान्,
त्रीन्द्रियनिर्वर्तितान्,
चतुरिन्द्रियनिर्वर्तितान्,
पञ्चेन्द्रियनिर्वर्तितान्।
एवम्—चय-उपचय-बन्ध
उदीर-वेदाः तथा निर्जरा चैव।

पापकर्म-पद

२३८. जीवों ने पांच स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का, पापकर्म के रूप में, चय किया है, करते हैं तथा करेंगे—
१. एकेन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का,
२. द्वीन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का,
३. त्रीन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का,
४. चतुरिन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का,
५. पंचेन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का।
इसी प्रकार जीवो ने पांच स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का, पापकर्म के रूप में, उपचय, बंध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते है तथा करेंगे।

पोग्गल-पदं

२३९. पंचपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता।

२४०. पंचपएसोगाढा पोग्गला अणंता जाव पंचगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

पुद्गल-पदम्

पञ्चप्रदेशिकाः स्कन्धाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः।

पञ्चप्रदेशावगाढाः पुद्गलाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः यावत् पञ्चगुणरूक्षाः पुद्गलाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः।

पुद्गल-पद

२३९. पंच-प्रदेशी स्कंध अनन्त हैं।

२४०. पंच-प्रदेशावगाढ़ पुद्गल अनन्त हैं।
पांच समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं।
पांच गुण काले पुद्गल अनन्त है।
इसी प्रकार शेष वर्ण तथा गंध, रस और स्पर्शों के पांच गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं।

टिप्पणियाँ

स्थान—५

१. (सू० ५)

कामगुण—

काम का अर्थ है—अभिलाषा और गुण का अर्थ है—पुद्गल के धर्म। कामगुण के दो अर्थ हैं[1]—

१. मैथुन-इच्छा उत्पन्न करने वाले पुद्गल।

२. इच्छा उत्पन्न करने वाले पुद्गल।

२. (सू० ६-१०)

इन सूत्रों में प्रयुक्त संग, राग, मूर्छा, गृद्धि और अध्युपपन्नता—ये शब्द आसक्ति के क्रमिक विकास के द्योतक हैं। इनकी अर्थ-परम्परा इस प्रकार है—

१. संग—इन्द्रिय-विषयों के साथ सम्बन्ध।

२. राग—इन्द्रिय-विषयो से लगाव।

३. मूर्च्छा—इन्द्रिय-विषयों से उत्पन्न दोषों को न देख पाना तथा उनके संरक्षण के लिए सतत चिन्तन करना।

४. गृद्धि—प्राप्त इन्द्रिय-विषयो के प्रति असंतोष और अप्राप्त इन्द्रिय-विषयों की आकाक्षा।

५. अध्युपपन्नता—इन्द्रिय-विषयो के सेवन मे एकचित्त हो जाना; उनकी प्राप्ति मे अत्यन्त दत्तचित्त हो जाना[2]।

३. (सू० १२)

यहां अहित, अशुभ, अक्षम, अनिःश्रेयस और अननुगामिक—इन पाच शब्दो का प्रयोग प्रतिपाद्य विषय पर बल देने के लिए किया गया है। साधारणतया इनसे अहित शब्द का अर्थ ही ध्वनित होता है और प्रत्येक शब्द की अर्थ-भिन्नता पर विचार किया जाए तो इनके अर्थ इस प्रकार फलित होते है[3]—

अहित—अपाय।

अशुभ—पुण्यरहित।

अक्षम—अनौचित्य या असामर्थ्य।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र २७७ : 'कामगुण' त्ति कामस्य—मदनाभिलाषस्य अभिलाषमात्रस्य वा सपादका, गुणा—धर्मा पुद्गलानां, काम्यन्त इति कामा. ते च ते गुणाश्चेति वा कामगुणा इति।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र २७७, २७८ : सज्यन्ते—सङ्ग सम्बन्धं कुर्वन्तीति ४,·· ·········रज्यन्ते—सङ्गकारण राग यान्तीति, मूर्च्छन्ति—तद्दोषानवलोकनेन मोहमचेतनत्वमिव यान्ति सरक्षणानुबन्धवन्तो वा भवन्तीति, गृध्यन्ति—प्राप्तस्यासन्तोषेणाप्राप्तस्यापरापरस्याकाङ्क्षावन्तो भवन्तीति, अध्युपपद्यन्ते तदेकचित्ता भवन्तीति तदर्जनाय वाऽधिक्येनोपपद्यन्ते—उपपन्ना घटमाना भवन्तीति।

३. स्थानागवृत्ति, पत्र २७८।

अनि:श्रेयस— अकल्याण।

अननुगामिक—भविष्य में उपकारक के रूप में साथ नहीं देने वाला।

४. (सू० १८)

देखें—२।२४३-२४८ का टिप्पण।

५. (सू० २०)

जिस प्रकार दिशाओं के अधिपति इन्द्र, अग्नि आदि हैं, नक्षत्रों के अधिपति अश्वि, यम, दहन आदि हैं, शक्र दक्षिण लोक का अधिपति और ईशान उत्तर लोक का अधिपति है, उसी प्रकार पांच स्थावर कायों में भी क्रमशः इन्द्र, ब्रह्म, शिल्प, सम्मति और प्राजापत्य—अधिपति हैं।[1]

६-१९ (सू० २१)

प्रस्तुत सूत्र मे अवधि दर्शन के विचलित होने के पांच स्थानो का निर्देश है। विचलन का मूल कारण है मोह की चतुर्विध परिणति —विस्मय, दया, लोभ और भय का आकस्मिक प्रादुर्भाव। जो दृश्य पहले नही देखा था उसको देखते ही व्यक्ति का मन विस्मय से भर जाता है, जीवमय पृथ्वी को देख वह दया से पूर्ण हो जाता है तथा विपुल धन, ऐश्वर्य आदि देखकर वह लोभ से आकुल और अदृष्टपूर्व सर्पों को देखकर वह भयाक्रान्त हो जाता है। अत. विस्मय, दया, लोभ और भय भी उसके विचलन के कारण बनते हैं।[2]

इस सूत्र के कुछ विशेष शब्दो की मीमासा—

१. पृथ्वी को छोटा-सा —

वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए हैं—

१. थोड़े जीवो वाली पृथ्वी।

२. छोटी पृथ्वी।

अवधि ज्ञान उत्पन्न होने से पूर्व साधक के मन मे कल्पना होती है कि पृथ्वी बड़ी तथा बहुत जीवों वाली है, पर जब वह उसे अपनी कल्पना से विपरीत पाता है, तब उसका अवधिदर्शन क्षुब्ध हो जाता है।[3]

३. ग्राम नगर आदि के टिप्पण के लिए देखें २।३९० का टिप्पण। शेष कुछेक शब्दों की व्याख्या इस प्रकार है—

१. शृंगाटक— तीन मार्गों का मध्य भाग।[4] इसका आकार यह होगा >।

२. तिराहा—जहां तीन मार्ग मिलते हो।[5] इसका आकार यह होगा ⊥।

३. चौक—चार मार्गों का मध्य भाग।[6] चतुष्कोण भूभाग।

४. चौराहा—जहां चार मार्ग मिलते हों।[7] इसका आकार यह + होगा।

भिन्न-भिन्न व्याख्या ग्रन्थों में इसके अनेक अर्थ मिलते है—

१. सीमाचतुष्क।

२. त्रिपथभेदी।

३. बहुतर रथ्याओ का मिलन-स्थान।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र २७९।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र २७९, २८० : अत्यन्तविस्मयदयाभ्यामिति······विस्मयाद् भयाद्वा अदृष्टपूर्वतया विस्मयाल्लोभाद्वेति।

३. वही, पत्र २७९ : अल्पभूतां—स्तोकसत्त्वां पृथिवीं दृष्ट्वा, वा शब्दा विकल्पार्थाः, अनेकसत्त्वव्याकुलाभूरिति।

४. स्थानांगवृत्ति, पत्र २८० : शृङ्गाटकं—त्रिकोण रथ्यान्तरम्।

५. वही, पत्र २८० : त्रिकं—यत्र रथ्यानां त्रय मिलति।

६. वही, पत्र २८०।

७. वही, पत्र २८० : चतुष्कं—यत्र रथ्याचतुष्टयम्।

४. चार मार्गों का समागम।

५. छह मार्गों का समागम।[1]

स्थानाग वृत्तिकार ने इसका अर्थ आठ रथ्याओं का मध्य किया है।[2]

५. चतुर्मुख—देवकुल आदि का मार्ग।[3] देवकुलो के चारो ओर दरवाजे होते है।

६. महापथ—राजमार्ग।

७. पथ—सामान्यमार्ग।

८. नगर निर्द्धमन—नगर के नाले।[4]

९. शांतिगृह—जहां राजा आदि के लिए शांतिकर्म—होम, यज्ञ आदि किया जाता है।[5]

१०. शैलगृह—पर्वत को कुरेद कर बनाया हुआ मकान।[6]

११. उपस्थानगृह—सभामण्डप।[7]

१२. भवन-गृह—कुटुम्बीजन (घरेलू नौकर) के रहने का मकान।

भवन और गृह का अर्थ पृथक् रूप मे भी किया जा सकता है। जिसमे चार शालाएं होती है उसे भवन और जिसमें कमरे (अपवरक) होते हैं वह गृह कहलाता था।[8]

२०. (सू २२)

प्रस्तुत सूत्र मे केवलज्ञान-दर्शन के विचलित न होने के पांच स्थानों का निर्देश है। अविचलन के हेतु ये हैं[9]—

१. यथार्थ वस्तुदर्शन।

२. मोहनीय कर्म की क्षीणता।

३. भय, विस्मय और लोभ का अभाव।

४. अति गभीरता।

२१. (सू० २५)

शरीर पांच प्रकार के हैं—

१. औदारिक शरीर—स्थूल पुद्गलों से निष्पन्न, रसादि धातुमय शरीर। यह मनुष्य और तिर्यञ्चों के ही होता।

२. वैक्रिय शरीर—विविध रूप करने में समर्थ शरीर। यह नैरयिकों तथा देवों के होता है। वैक्रिय-लब्धि से सम्पन्न मनुष्यो और तिर्यञ्चो तथा वायुकाय के भी यह होता है।

३. आहारकशरीर—आहारकलब्धि से निष्पन्न शरीर। आहारकलब्धि से सम्पन्न मुनि अपनी संदेह निवृत्ति के लिए अपने आत्म-प्रदेशो से एक पुतले का निर्माण करते हैं और उसे सर्वज्ञ के पास भेजते हैं। वह उनके पास जाकर उनसे सदेह की निवृत्ति कर पुनः मुनि के शरीर मे प्रविष्ट हो जाता है। यह क्रिया इतनी शीघ्र और अदृश्य होती है कि दूसरों को इसका पता भी नही चल सकता। इस क्षमता को आहारकलब्धि कहते हैं।

---

१ अल्पपरिचित शब्दकोष।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र २८० : चत्वरं रथ्याष्टकमध्यम्।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र २८० चतुर्मुख—देवकुलादि।

४. वही, पत्र २८० नगरनिर्द्धमनेषु—तत्कालेषु।

५. वही, पत्र २८० : शान्तिगृहं—यत्र राज्ञां शान्तिकर्महोमादि क्रियते।

६. वही, पत्र २८० शैलगृह—पर्वतमुत्कीर्य यत्कृतम्।

७ वही, पत्र २८० . उपस्थानगृह—आस्थानमण्डप·।

८ वही, पत्र २८० भवनगृह—यत्र कुटुम्बिनो वास्तव्या भवन्तीति ·· तत्र भवन—चतु:शालादि गृहं तु अपवरकादिमात्रम्।

९. स्थानांगवृत्ति, पत्र २८०. केवलज्ञानदर्शनं तु न स्कन्नीयात् केवली वा याथात्म्येन वस्तुदर्शनात् क्षीणमोहनीयत्वेन भयविस्मयलोभाद्यभावेन अतिगम्भीरत्वाच्चेति।

४. तैजसशरीर—जिससे तेजोलब्धि (उपघात या अनुग्रह किया जा सके वह शक्ति) मिले और दीप्ति एवं पाचन हो वह शरीर।

५. कार्मणशरीर— कर्म-समूह से निष्पन्न अथवा कर्मविकार को कार्मणशरीर कहते है। तैजस और कार्मणशरीर सभी जीवों के होते हैं।

२२. (सू० ३२)

उत्तराध्ययन के तेईसवें अध्ययन (२३, २६, २७) मे बताया है कि प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजुजड होते हैं, इसलिए उन्हें धर्म समझाना कठिन होता है। अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्रजड होते हैं, उनके लिए धर्म का आचरण करना कठिन होता है। इस सूत्र मे दोनों तीर्थंकरों के साधुओं के लिए पांच दुर्गम स्थान बताए हैं। यदि उनका विभाग किया जाए तो प्रथम तीन प्रथम तीर्थंकर के साधुओं के लिए और अन्तिम दो अन्तिम तीर्थंकर के साधुओ के लिए हैं और यदि विभाग न किया जाए तो इस प्रकार व्याख्या की जा सकती है—

प्रथम तीर्थंकर के साधुओं को समझने मे कठिनाई होती है, इसीलिए उनके लिए धर्म के अनुपालन मे भी कठिनाई होती है। अन्तिम तीर्थंकर के साधुओ मे तितिक्षा और अनुपालन की शक्ति कम होती है, इसलिए तत्त्व का आख्यान करना भी उनके लिए दुर्गम हो जाता है।

देखें—उत्तरज्झयणाणि, अध्ययन २३।

२३, २४. (सू० ३४, ३५)

देखें—१०।१६ का टिप्पण।

२५, २६ अन्त्यचरक, प्रान्त्यचरक (सू० ३६)

वृत्तिकार ने अन्त्यचरक का अर्थ—बचा-खुचा जघन्य धान्य लेने वाला और प्रान्त्यचरक का अर्थ— बासी जघन्य धान्य लेने वाला किया है।[1]

औपपातिक (सूत्र १९) की वृत्ति में इनका अर्थ किञ्चित् परिवर्तन के साथ किया है[2]—

अन्त्यचरक—जघन्य धान्य लेने वाला।

प्रान्त्यचरक—बचा-खुचा या बासी अत्यन्त जघन्य धान्य लेने वाला।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रथम दो भिक्षाचर्या और शेष तीन रसपरित्याग के अन्तर्गत आते है। उत्क्षिप्तचरक और निक्षिप्त-चरक ये दोनो भाव-अभिग्रह है और शेष तीन द्रव्य-अभिग्रह।

२७. अन्नग्लायकचरक (सू० ३७)

वृत्तिकार ने इसके तीन संस्कृत रूप देकर उनकी भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या की है[3]—

१. अन्नग्लानकचरक—बासी अन्न खाने वाला।

२. अन्नग्लायकचरक—अन्न के बिना ग्लान होकर—भूख की वेदना से पीडित होकर खाने वाला।

३. अन्यग्लायकचरक—दूसरे ग्लान व्यक्ति के लिए भोजन की गवेषणा करने वाला।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र २८३. अन्ते भवमान्त—भुक्तावशेषं वल्लादि प्रकृष्टमान्तं प्रान्त—तदेव पर्युषितम्।

२. औपपातिकवृत्ति, पृष्ठ ७५. अन्त्य—जघन्यधान्य वल्लादि, पंताहारेत्ति—प्रकर्षेणान्त्य वल्लाद्येव भुक्तावशेष पर्युषितं वा।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र २८३: अन्नइलायचरए त्ति अन्नग्लानको दोषान्नभुगिति···अथवा अन्न विना ग्लायक—समुत्पन्न-वेदनादिकारण एवेत्यर्थ, अन्यस्मै वा ग्लायकाय भोजनार्थं चर-तीति अन्नग्लानकचरकोऽन्नग्लायकचरकोऽन्यग्लायकचरको वा।

औपपातिक वृत्ति में इसका एकमात्र अर्थ—भोजन के बिना ग्लान होने पर प्रातःकाल ही बासी अन्न खाने वाला किया है।[1] यही अर्थ अधिक संगत लगता है।

२८. शुद्धैषणिक (सू० ३८)

वृत्तिकार ने इसका अर्थ—अनतिचार एषणा किया है। एषणा के शंकित आदि दस दोष है। उनसे रहित एषणा को शुद्धैषणा कहा जाता है।

पिंडैषणा और पानैषणा सात-सात प्रकार की होती है। इनमे से किसी एक या सातो एषणाओ से आहार लेने वाला शुद्धैषणिक कहलाता है।[2]

औपपातिक के वृत्तिकार ने इसका अर्थ शंका आदि दोषरहित अथवा निर्व्यंजन आहार लेने वाला किया है।[3]

२९. स्थानायतिक (सू० ४२)

स्थानांग वृत्तिकार ने इसके दो संस्कृत रूप दिए है—स्थानातिद और स्थानातिग। स्थान का अर्थ कायोत्सर्ग है। स्थानातिद और स्थानातिग—इन दोनो का अर्थ है—कायोत्सर्ग करने वाला।[4]

'ठाणातिए' पद मे एकपदीय संधि होने के कारण वृत्तिकार को इस प्रकार की व्याख्या करनी पड़ी। इसमे मूलतः दो शब्द है—ठाण + आयतिय। 'आ' की संधि होने पर 'ठाणायतिय' बन जाता है। 'य' का लोप करने पर फिर अकार की संधि होती है और 'ठाणातिय' रूप बन जाता है। इस संधिच्छेद के आधार पर इसका संस्कृत रूप 'स्थानायतिक' बनता है और यही रूप इसके अर्थ का सूचक है।

बृहत्कल्पभाष्य मे 'ठाणायत' (स्थानायत) पाठ है।[5] उसकी वृत्ति मे स्त्रीलिंग के रूप मे स्थानायतिका का प्रयोग मिलता है।[6] जिस आसन मे सीधा खड़ा होना होता है उसका नाम स्थानायतिक है। स्थान तीन प्रकार के होते है—ऊर्ध्व-स्थान, निषीदनस्थान और शयनस्थान। स्थानायतिक ऊर्ध्वस्थान का सूचक है।

३०. प्रतिमास्थायी (सू० ४२)

वृत्तिकार ने प्रतिमा का अर्थ कायोत्सर्ग की मुद्रा मे स्थित रहना किया है।[7] कहीं-कहीं प्रतिमा का अर्थ कायोत्सर्ग भी प्राप्त होता है।[8] बैठी या खड़ी प्रतिमा की भाँति स्थिरता से बैठने या खड़ा रहने को प्रतिमा कहा गया है। यह काय-क्लेश तप का एक प्रकार है। इसमे उपवास आदि की अपेक्षा कायोत्सर्ग आसन व ध्यान की प्रधानता होती है। प्रतिमा की जानकारी के लिए देखें—दशाश्रुतस्कंध दशा सात।

३१. वीरासनिक (सू० ४२)

सिंहासन पर बैठने मे शरीर की जो स्थिति होती है, उसी स्थिति मे सिंहासन के निकाल लेने पर स्थित रहना वीरासन है। यह कठोर आसन है। इसकी साधना वीर मनुष्य ही कर सकता है। इसलिए इसका नाम 'वीरासन' है।[9]

विशेष विवरण के लिए देखें—उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ १४९, १५०।

---

१. औपपातिकसूत्र १९, वृत्ति पृष्ठ ७४ अण्णगिलायए त्ति अन्न-भोजन विना ग्लायति अन्नग्लायक', स चाभिग्रहविशेषात् प्रातरेव दोषान्नभुगिति।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र २८४।

३. औपपातिक सूत्र १९, वृत्ति पृष्ठ ७४ : सुद्धेसणिए त्ति शुद्धैषणा शङ्कादिदोषरहितता शुद्धस्य वा निर्व्यञ्जनस्य कूरादेरेषणा यस्यास्ति स तथा।

४. स्थानांगवृत्ति, पत्र २८४ 'ठाणाइए' त्ति स्थान—कायोत्सर्गं तमतिददाति प्रकरोति अतिगच्छति वेति स्थानातिद. स्थानातिगोवेति

५. बृहद्कल्पभाष्य गाथा ५९५३।

६. वही, गाथा ५९५३, वृत्ति ।

७. स्थानांगवृत्ति, पत्र २८४ प्रतिमया—एकरात्रिक्यादिकया कायोत्सर्गविशेषेणैव तिष्ठतीत्येवंशीलो य स प्रतिमास्थायी।

८. मूलाचारदर्पण ८।२०७१ 'पडिमा—कायोत्सर्ग।

९. स्थानांगवृत्ति, पत्र २८४ : 'वीरासन' भून्यस्तपादस्य सिंहासने उपविष्टस्य तदपनयने या कायावस्था तद्रूप, दुष्कर च तदिति, अत एव वीरस्य—साहसिकस्यासनमिति वीरासनमुक्तम्।

३२. नैषधिक (सू० ४२)

इसका अर्थ है—बैठने की विधि। इसके पाच प्रकार हैं। देखें—स्थानांग ५।५० तथा ७।४९ का टिप्पण।
विशेष विवरण के लिए देखें—उत्तराध्ययन · एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ १४३-१४५।

३३. आतापक (सू० ४३)

आतापना का अर्थ है—प्रयोजन के अनुरूप सूर्य का आताप लेना।
औपपातिक के वृत्तिकार ने आतापना के आसन-भेद से अनेक भेद प्रतिपादित किए है।
आतापना के तीन प्रकार है—
१. निपन्न—सोकर ली जाने वाली - उत्कृष्ट।
२. अनिपन्न—बैठकर ली जाने वाली—मध्यम।
३. ऊर्ध्वस्थित— खड़े होकर ली जाने वाली—जघन्य।
निपन्न आतापना के तीन प्रकार हैं—
१. अधोरुकशायिता, २ पार्श्वशायिता, ३. उत्तानशायिता।
अनिपन्न आतापना के तीन प्रकार है—
१. गोदोहिका, २. उत्कुटुकासनता, ३. पर्यङ्कासनता।
ऊर्ध्वस्थान आतापना के तीन प्रकार है—
१. हस्तिशौंडिका, २. एकपादिका, ३ समपादिका।
इनमें पहला प्रकार उत्कृष्ट, दूसरा मध्यम और तीसरा जघन्य है।[1]

प्रस्तुत आठ सूत्रो [३६-४३] मे विविध तप करने वाले मुनियो का उल्लेख है। इन सबका समावेश बाह्य-तप के छह प्रकारो मे से तीन प्रकार—भिक्षाचर्या, रसपरित्याग और कायक्लेश के अन्तर्गत होता है। जैसे—

१. भिक्षाचर्या

उत्क्षिप्तचरक, निक्षिप्तचरक, अज्ञातचरक, अन्नग्लायकचरक, मौनचरक, संसृष्टकल्पिक, तज्जातसंसृष्टकल्पिक, औपनिधिक, शुद्धैषणिक, संख्यादत्तिक, दृष्टलाभिक, पृष्ठलाभिक, परिमितपिंडपातिक, भिन्नपिंडपातिक।

२. रसपरित्याग

अन्त्यचरक, प्रान्त्यचरक, रूक्षचरक, आचाम्लिक, निर्विकृतिक, पूर्वार्धिक, अरसाहार, विरसाहार, अन्त्याहार, प्रान्त्याहार, रूक्षाहार, अरसजीवी, विरसजीवी, अन्त्यजीवी, प्रान्त्यजीवी, रूक्षजीवी।

३. कायक्लेश

स्थानायतिक, उत्कुटुकासनिक, प्रतिमास्थायी, वीरासनिक, नैषधिक, दंडायतिक, लगडशायी, आतापक, अप्रावृतक, अकण्डूयक।

औपपातिक सूत्र १९ मे प्राय· इन सबका इन बाह्य-तपों के प्रकारो मे उल्लेख मिलता है। वहाँ भिन्नपिंडपातिक तथा अरसजीवी, विरसजीवी, अन्त्यजीवी, प्रान्त्यजीवी और रूक्षजीवी का उल्लेख नही मिलता।

३४, ३५. (सू० ४४, ४५)

दो सूत्रों मे दस प्रकार के वैयावृत्त्य निर्दिष्ट हैं। वैयावृत्त्य का अर्थ है—सेवा करना, कार्य मे प्रवृत्त होना। अग्लान-भाव से किया जाने वाला वैयावृत्त्य महानिर्जरा—बहुत कर्मों का क्षय करने वाला तथा महापर्यवसान—जन्म-मरण का आत्यन्तिक उच्छेद करने वाला होता है। अग्लान भाव का अर्थ है—अखिन्नता, बहुमान।[2]

---

१. औपपातिक सूत्र १९, वृत्ति पृष्ठ ७५, ७६।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र २९५ : अग्लान्या—अखिन्नतया बहुमाने-नेत्यर्थ·।

दस प्रकार ये है—

१. आचार्य—ये पाँच प्रकार के होते है—प्रव्राजनाचार्य, दिगाचार्य, उद्देसनाचार्य, समुद्देशनाचार्य और वाचनाचार्य।

२. उपाध्याय—सूत्र का वाचना देने वाला।

३. स्थविर—धर्म मे स्थिर करनेवाले। ये तीन प्रकार के होते हैं—

जातिस्थविर—जिसकी आयु ६० वर्ष से अधिक है।

पर्यायस्थविर—जिसका पर्याय-काल २० वर्ष या अधिक है।

ज्ञानस्थविर—स्थानाग तथा समवायाग का धारक।

४ तपस्वी—मासक्षपण आदि बड़ी तपस्या करने वाला।

५. ग्लान—रोग आदि से असक्त, खिन्न।

६. शैक्ष—शिक्षा ग्रहण करने वाला, नवदीक्षित।[1]

७. कुल—एक आचार्य के शिष्यो का समुदाय।

८. गण—कुलो का समुदाय।

९. सघ—गणो का समुदाय।

१०. साधर्मिक—वेष और मान्यता मे समानधर्मा।[2]

वृत्तिकार ने शैक्ष वैयावृत्य के पश्चात् साधर्मिक वैयावृत्य की व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होने एक गाथा का भ उल्लेख किया है। उसमे भी यही क्रम है।[3]

विशेष विवरण के लिए देखे—१०।१७ का टिप्पण।

३६-४० (सूत्र ४६)

प्रस्तुत सूत्र के कुछ विशेष शब्दो की व्याख्या—

१ साभोगिक - एक मंडली मे भोजन करने वाला। यह इसका प्रतीकात्मक अर्थ है। स्वाध्याय, भोजन आदि सभी मडलियो मे जिसका सम्बन्ध होता है वह साभोगिक कहलाता है।

२. विसाभोगिक—जिसका सभी मडलियो से सम्बन्ध विच्छिन्न कर दिया जाता है वह विसाभोगिक है।

३. प्रस्थापन—प्रायश्चित्त रूप मे प्राप्त तप का प्रारभ।

४ निर्वेश—प्रायश्चित्त का पूर्ण निर्वाह या आसेवन।

५ स्थितिकल्प—सामाचारी की योग्य मर्यादाएं।[4]

४१. प्रश्नायतनो (सू० ४७)

वृत्तिकार ने प्रश्न के दो अर्थ किए है[5]—

१. अंगुष्ठ, कुडप आदि प्रश्नविद्या। इस के द्वारा वस्त्र, काच, अंगुष्ठ, भुजा आदि मे देवता को बुलाकर अनेक विध प्रश्नों का हल किया जाता है।[6] मूल प्रश्न व्याकरण सूत्र (दसवें अग) मे इन प्रश्न विद्याओं का समावेश था।

---

१ बौद्ध साहित्य मे शैक्ष की परिभाषा इस प्रकार मिलती है—
'उस समय एक भिक्षु जहा भगवान थे, वहाँ पहुचा। ... एक ओर बैठा हुआ वह भिक्षु भगवान से यह बोला—
"भन्ते! 'शैक्ष, शैक्ष' कहते है। क्या होने से शैक्ष होता है?"
"भिक्षु, सीखता है, इसलिए 'शैक्ष' कहलाता है।
"क्या सीखता है?"
"शील-सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण करता है, चित्त-सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण करता है तथा प्रज्ञा-सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण करता है। इसलिए वह भिक्षु 'शैक्ष' कहलाता है।"
(अगुत्तरनिकाय भाग १, पृष्ठ २३८)

२ स्थानागवृत्ति, पत्र २८५।

३ वही, वृत्ति पत्र २८५ 'सेह' त्ति शिक्षकोऽभिनवप्रव्रजित: 'साधर्मिक. समानधर्मा लिङ्गत. प्रवचनतश्चेति। "उक्त च—
आयरियउवज्झाए थेरतवस्सीगिलाणसेहाण।
साहम्मियकुलगणसघ सगय तमिह कायव्वं॥

४. स्थानागवृत्ति, पत्र २८५, २८६।

५. स्थानागवृत्ति, पत्र २८६ : प्रश्ना —अगुष्ठकुडयप्रश्नादय. सावद्यानुष्ठानपृच्छा वा।

६ वही, वृत्ति पत्र २८५।

२ पापकारी अनुष्ठानों के विषय मे प्रश्न करना। इनमें पहला अर्थ ही प्रासंगिक लगता है।

४२. आज्ञा व धारणा (सू० ४८)

वृत्ति मे आज्ञा और धारणा के दो-दो अर्थ किए गए हैं—

१. आज्ञा—(१) विध्यात्मक आदेश।[1]

(२) कोई गीतार्थ देशान्तर गया हुआ है। दूसरा गीतार्थ अपने अतिचार की आलोचना करना चाहता है। वह अगीतार्थ के समक्ष आलोचना नही कर सकता। तब वह अगीतार्थ के साथ गूढार्थ वाले वाक्यों द्वारा अपने अतिचार का निवेदन देशान्तरवासी गीतार्थ के पास कराता है। इसका नाम है आज्ञा।[2]

२. धारणा—(१) निषेधात्मक आदेश।[3]

(२) बार-बार आलोचना के द्वारा प्राप्त प्रायश्चित्त विशेष का अवधारण करना।[4]

पाँच व्यवहारो मे ये दो व्यवहार हैं। इनका विस्तृत विवेचन ५।१२४ मे किया है।

४३. यथारात्निक (सू० ४८)

इसका अर्थ है—दीक्षा-पर्याय मे छोटे-बड़े के क्रम से। विशेष विवरण के लिए देखें—दसवेआलिय ८।४० का टिप्पण।

४४. कृतिकर्म (सू० ४८)

इसका अर्थ है वन्दना।

देखें—समवाओ १२।३ का टिप्पण।

४५. उचित समय (सू० ४८)

इसका तात्पर्यार्थ यह है कि—कालक्रम से प्राप्त सूत्रो का अध्ययन उस-उस काल मे ही कराना चाहिए।[5] सूत्रो का अध्ययन-अध्यापन दीक्षा-पर्याय के कालानुमार किया जाता है। जैसे—तीन वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले को आचार, चार वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले को सूत्रकृत, पाच वर्ष वाले को दशाश्रुतस्कध, बृहत्कल्प और व्यवहार, आठ वर्ष वाले को स्थान और समवाय, दश वर्ष वाले को भगवती आदि।[6]

४६. निषद्या (सू० ५०)

इसका अर्थ है—बैठने की विधि। इसके पांच प्रकार है। बाह्य तप के पाचवे प्रकार 'कायक्लेश' मे इनका समावेश होता है। कायोत्सर्ग के तीन प्रकार है—ऊर्ध्वस्थान, निषीदनस्थान और शयनस्थान। निषीदनस्थान के अन्तर्गत इन पाँचो निषद्याओ का अन्तर्भाव होता है।

देखें—७।४६ का टिप्पण।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र २८६ 'आज्ञा' हे साधो! भवतेदं विधेय-मित्येवंरूपामादिष्टिम्।

२. वही, वृत्ति पत्र २८६ : गूढार्थपदैरगीतार्थस्य पुरतो देशान्तर-स्थगीतार्थनिवेदनाय गीतार्थो यदतिचारनिवेदन करोति साऽऽज्ञा।

३. वही, वृत्ति पत्र २८६ : धारणां, न विधेयमिदमित्येवंरूपाम्।

४. वही, वृत्ति पत्र २८६ असकृदालोचनादानेन यत्प्रायश्चित्त-विशेषावधारणं सा धारणा।

५. वही, वृत्ति, पत्र २८६ : काले काले—यथावसरम्।
कालक्कमेण पत्तं संवच्छरमाइणा उ जं जमि।
तं तंमि चेव धीरो वाएज्जा सो ए कालोऽयं॥

६. वही, वृत्ति पत्र २८६, २८७।

४७. (सू० ५१)

दसवें स्थान (सूत्र १६) मे दस प्रकार का श्रमण-धर्म निर्दिष्ट है। पांचवे स्थान (सूत्र ३४-३५) मे दस धर्म श्रमण के लिए प्रशस्त बतलाए गए है। प्रस्तुत सूत्र मे श्रमण-धर्म के अगभूत पांच धर्मों को आर्जव-स्थान कहा है। आर्जव का अर्थ है—ऋजुता, मोक्ष। प्रस्तुत प्रसग मे उसका अर्थ संवर किया है। ये आर्जवस्थान सम्यग्दर्शन पूर्वक ही होते है, अत· इन सब के पूर्व साधु शब्द का प्रयोग किया गया है। तत्त्वार्थ सूत्र ६।६ मे दसविध धर्म के पूर्व 'उत्तम' शब्द का प्रयोग मिलता है।

विशेष विवरण के लिए देखें १०।१६ का टिप्पण।

४८. परिचारणा (सू० ५४)

इसका अर्थ है—मैथुन का आसेवन। इसके पाच प्रकार है --

१. कायपरिचारणा—स्त्री और पुरुष के काय से होने वाला मैथुन का आसेवन।

२. स्पर्शपरिचारणा—स्त्री के स्पर्श से होने वाला मैथुन का आसेवन।

३. रूपपरिचारणा—स्त्री के रूप को देखकर होने वाला मैथुन का आसेवन।

४. शब्दपरिचारणा—स्त्री के शब्द सुनकर होने वाला मैथुन का आसेवन।

५. मनःपरिचारणा—स्त्री के प्रति मानसिक संकल्प से होने वाला मैथुन का आसेवन।

इसका तात्पर्य है कि कायपरिचारणा की भाति स्त्री को स्पर्श करने, रूप देखने, शब्द सुनने और मानसिक संकल्प देवो को मैथुन-प्रवृत्ति के आसेवन मे तृप्ति हो जाती है।

वृत्तिकार ने इन सबको देवताओ से सबधित माना है। तत्त्वार्थ सूत्र मे भी यही प्रतिपादित है।[1] बारहवे देवलोक तक के देवो मे मैथुनेच्छा होती है। उसके ऊपर के देवो मे वह नही होती। देवियो का अस्तित्व केवल दूसरे देवलोक तक ही है।

सौधर्म और ईशान देवलोक मे— कायपरिचारणा।

सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक मे —स्पर्शपरिचारणा।

ब्रह्म और लान्तक मे—रूपपरिचारणा।

शुक्र और सहस्रार मे—शब्दपरिचारणा।

शेष चार मे—मन परिचारणा।

इसके ऊपर के देवलोको मे किसी भी प्रकार की परिचारणा नही होती। मनुष्यो और तिर्यञ्चो मे केवल काय-परिचारणा ही होती है।

देखे—३।६ का टिप्पण।

४९-५२. (सू० ७०)

बल—शारीरिक शक्ति।

वीर्य—आत्मशक्ति।

पुरुषकार—अभिमान विशेष; पुरुष का कर्त्तव्य।

पराक्रम—अपने विषय की सिद्धि मे निष्पन्न पुरुषकार, बल और वीर्य का व्यापार[2]।

---

१. तत्त्वार्थ ४।७-६।

२. स्थानागवृत्ति, पत्र २८६ बल-शारीर, वीर्य-जीवप्रभव, पुरुषकार:—अभिमानविशेष, पराक्रम.—स एव निष्पादितस्वविषयोऽथवा पुरुषकार—पुरुषकर्त्तव्यं, पराक्रमो—बलवीर्ययोर्व्यापारणमिति।

५३. लिंगाजीव (सू० ७१)

वृत्तिकार ने एक प्राचीन गाथा का उल्लेख करते हुए लिंगाजीव के स्थान पर गणाजीव की सूचना दी है। गणाजीव का अर्थ है—अपने गण (मल्ल आदि) की किसी मिष से या साक्षात् सूचना देकर आजीविका करने वाला।[1]

५४. प्रमार (सू० ७३)

इसका अर्थ है—मूर्छा। वृत्तिकार ने इसके तीन अर्थ किए हैं[2]—

१. मूर्च्छा विशेष। २. मारणस्थान। ३. मृत्यु।

५५. आच्छेदन (सू० ७३)

इसका अर्थ है—बलात् लेना, थोड़ा लेना।[3]

५६. विच्छेदन (सू० ७३)

इसका अर्थ है—दूर ले जाकर रख देना; बहुत लेना।[4]

५७ (सू० ७५-८२)

इन सूत्रों (७५-८२) में चार हेतु-विषयक और चार अहेतु-विषयक हैं।

पदार्थ दो प्रकार के होते हैं—हेतुगम्य और अहेतुगम्य।

परोक्ष होने के कारण जो पदार्थ हेतु के द्वारा जाना जाता है, वह हेतुगम्य होता है, जैसे—दूर प्रदेश में स्थित अग्नि धूम के द्वारा जानी जाती है।

जो पदार्थ निकटवर्ती या स्पष्ट होने के कारण प्रत्यक्ष रूप से अथवा किसी आप्त पुरुष के निर्देशानुसार जाना जाता है, वह अहेतुगम्य होता है।

हेतु का अर्थ—कारण अथवा साध्य का निश्चितगमक कारण होता है। यहां हेतु और हेतुवादी—दोनों हेतु शब्द द्वारा विवक्षित है। जो हेतुवादी असम्यग्दर्शी होता है वह कार्य को जानता-देखता है, पर उसके हेतु को नहीं जानता-देखता। वह हेतुगम्य पदार्थ को हेतु के द्वारा नहीं जानता-देखता।

जो हेतुवादी सम्यक्दर्शी होता है वह कार्य के साथ-साथ उसके हेतु को भी जानता-देखता है। वह हेतुगम्य पदार्थ को हेतु के द्वारा जानता-देखता है।

जो आंशिकरूपेण प्रत्यक्षज्ञानी होता है वह धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि अहेतुगम्य पदार्थों या पदार्थ की अहेतुक (स्वाभाविक) परिणतियों को सर्वभावेन नहीं जानता-देखता। वह अहेतु (प्रत्यक्षज्ञान) के द्वारा अहेतुगम्य पदार्थों को सर्वभावेन नहीं जानता-देखता।

जो पूर्ण प्रत्यक्षज्ञानी (केवली) होता है वह धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि अहेतुगम्य पदार्थों या पदार्थ की अहेतुक (स्वाभाविक) परिणतियों को सर्वभावेन जानता-देखता है। वह प्रत्यक्षज्ञान के द्वारा अहेतुगम्य पदार्थों को सर्वभावेन जानता-देखता है।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र २८६ : लिङ्गस्थानेऽन्यत्र गणोऽधीयते, यत उक्तम्—
  "जाईकुलगणकम्मे सिप्पे आजीवणा उ पचविहा।
  सूयाए असूयाए अप्पाण कहेइ एक्केक्के॥"

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र २९० : प्रमारो—मूर्च्छाविशेषो मारणस्थान वा ···· प्रमारं मरणमेव।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र २९० : आच्छिनत्ति—बलाद्दालयति ···· अथवा ईषच्छिनत्ति।

४. स्थानांगवृत्ति पत्र २९० : विच्छिनत्ति—विच्छिन्नं करोति, दूरे व्यवस्थापयतीत्यर्थः ·· अथवा विशेषेण छिनत्ति विच्छिनत्ति।

उक्त व्याख्या के आधार पर यह फलित होता है कि प्रथम दो सूत्र असम्यग्दर्शी हेतुवादी तथा तीसरा-चौथा सूत्र सम्यग्दर्शी हेतुवादी की अपेक्षा से है। पाचवां-छठा सूत्र अपूर्ण प्रत्यक्षज्ञानी और सातवा-आठवा सूत्र पूर्णप्रत्यक्षज्ञानी की अपेक्षा से है।

मरण दो प्रकार का होता है—सहेतुक (सोपक्रम), अहेतुक (निरुपक्रम)। असम्यग्दर्शी हेतुवादी का अहेतुक मरण अज्ञानमरण कहलाता है। सम्यग्दर्शी हेतुवादी का सहेतुक मरण छद्मस्थ मरण कहलाता है। अपूर्ण प्रत्यक्षज्ञानी का सहेतुक मरण भी छद्मस्थ मरण कहलाता है। पूर्ण प्रत्यक्षज्ञानी का अहेतुक मरण केवली मरण कहलाता है।

वृत्तिकार के अनुसार प्रथम दो सूत्रों मे नकार कुत्सावाची और पाचवे-छठे सूत्र मे वह देश निषेधवाची है।[1] इस आधार पर प्रथम दो सूत्रों का अनुवाद इस प्रकार होगा—

१ (क) हेतु को असम्यक् जानता है।
 (ख) हेतु को असम्यक् देखता है।
 (ग) हेतु पर असम्यक् श्रद्धा करता है।
 (घ) हेतु को असम्यक् रूप से प्राप्त करता है।
२ (क) हेतु से असम्यक् जानता है।
 (ख) हेतु से असम्यक् देखता है।
 (ग) हेतु से असम्यक् श्रद्धा करता है।
 (घ) हेतु से असम्यक् रूप से प्राप्त करता है।

वृत्तिकार ने लिखा है कि प्रत्यक्षज्ञानी को अनुमान से जानने की आवश्यकता नही होती। इसलिए वह धूम आदि साधनो—हेतुओं को अहेतु के रूप मे (उसके लिए वे हेतु नही है इस रूप मे) जानता है।[2] अहेतु का यह अर्थ अस्वाभाविक-सा लगता है।

इन आठ सूत्रो (७५ से ८२) मे प्रयुक्त चार क्रियापद (जानाति, पश्यति, बुध्यते, अभिगच्छति) ज्ञान के क्रम से सम्बन्धित है।

भगवती ५।१९१-१९८ मे हेतु सम्बन्धी सूत्रो के क्रम मे थोडा परिवर्तन है। वहा यहा बताए गए सातवे-आठवे सूत्र को पाचवें-छठे के क्रम मे तथा पाचवे-छठे को सातवे-आठवे के क्रम मे लिया गया है।

५८. (सू० ८३)

ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म का सर्वथा क्षय होने पर अनुत्तर ज्ञान और अनुत्तर दर्शन की प्राप्ति होती है। मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय होने पर अनुत्तर चारित्र की प्राप्ति होती है। तप चारित्र का ही भेद है। तेरहवें जीवस्थान के अन्तिम क्षणो मे केवली शुक्लध्यान के अन्तिम दो भेदो मे प्रवृत्त होते है। यह उनका अनुत्तर तप है। ध्यान आभ्यन्तर तप का ही एक प्रकार है। वीर्यान्तराय कर्म का सर्वथा क्षय होने पर अनुत्तर वीर्य की प्राप्ति होती है।[3]

५९. (सू० ९७)

भगवान् महावीर का च्यवन, गर्भसंहरण, जन्म, प्रव्रज्या और कैवल्यप्राप्ति—ये पाच कार्य उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र मे हुए थे तथा उनका परिनिर्वाण स्वाति नक्षत्र मे हुआ था। अन्यान्य तीर्थंकरो का च्यवन, परिनिर्वाण आदि एक ही नक्षत्र मे हुआ है। भगवान् महावीर के जन्म और परिनिर्वाण के नक्षत्र अलग-अलग है।[4]

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र २९१ : नञ कुत्सार्थत्वात्... नञो देश-निषेधार्थत्वात्।
२. वही, पत्र २९१।
३. स्थानांगवृत्ति, पत्र २९२।
४. स्थानांगवृत्ति, पत्र २९३।

६०. (सू० ६८)

प्रस्तुत सूत्र में महानदियों के उत्तरण और संतरण की मर्यादा के अतिक्रमण का निषेध किया गया है और इसमें निषेध का अपवाद भी है। सूत्रकार ने निर्दिष्ट पांच नदियों के लिए दो विशेषण प्रयुक्त किए हैं—महार्णव और महानदी।

वृत्तिकार ने इनका अर्थ इस प्रकार किया है—[1]

१ महार्णव—समुद्र की भांति जिनमें अथाह जल हो या जो समुद्र में जा मिलती हों उन नदियों को महार्णव कहा जाता है।

२. महानदी—जो बहुत गहरी हो, उन्हें महानदी कहा जाता है।

वृत्तिकार ने एक गाथा (निशीथभाष्य गाथा ४२२३) का उल्लेख कर नदी-संतरण के व्यावहारिक दोषों का निर्देश किया है।

इन नदियों में बड़े-बड़े मत्स्य, मगरमच्छ आदि अनेक भयंकर जलचर प्राणी रहते हैं। अतः उनका प्रतिपल भय बना रहता है। इन नदी-मार्गों में अनेक चोर नौकाओं में घूमते हैं। वे मनुष्यों को मार डालते हैं तथा उनके वस्त्र आदि लूट ले जाते हैं।[2]

निशीथ (१२/४३) में भी नदी उत्तरण तथा संतरण का निषेध है। भाष्यकार ने अपायों का निर्देश देते हुए बताया है कि नौका संतरण से[3]—

१ श्वापद और चोरों का भय।

२. अनुकम्पा तथा प्रत्यनीकता का दोष।

३. संयम-विराधना, आत्म-विराधना का प्रसंग।

४ नौका पर चढ़ते-उतरते अनेक दोषों की सम्भावना। गंगा आदि नदियों के विवरण के लिए देखें—१०।२५।

६१, ६२. (सू० ६६, १००)

वर्षावास तीन प्रकार का माना गया है—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट।

जघन्य—सत्तर दिनों का—संवत्सरी से कार्तिक मास तक।

मध्यम—चार मास का—श्रावण से कार्तिक तक।

उत्कृष्ट—छहमास का—आषाढ से मृगसर तक, जैसे—आषाढ बिताकर वहीं चातुर्मास करे और मृगसर में वर्षा चालू रहने पर उसे वहीं बिताएँ।

यहां दो सूत्रों में (६६, १००) बताया गया है कि प्रथम-प्रावृट् में और वर्षावास में पर्युषणा कल्प के द्वारा निवास करने पर विहार न किया जाए। प्रावृट् का अर्थ है—आषाढ और श्रावण अथवा चार मास का वर्षाकाल।[4] आषाढ़ को प्रथम-प्रावृट् कहा जाता है।[5] प्रथम-प्रावृट् में विहार न किया जाए—अर्थात् आषाढ में विहार न किया जाए। प्रावृट् का अर्थ यदि चतुर्मास प्रमाण—वर्षाकाल किया जाए तो प्रथम-प्रावृट् में विहार के निषेध का अर्थ यह करना होगा कि पर्युषणा कल्प से पूर्ववर्ती पचास दिनों में विहार न किया जाए। पर्युषणा कल्पपूर्वक निवास करने के बाद विहार न किया जाए। इसका

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र २९४. महार्णव इवा या बहूदकत्वात् महार्णवगामिन्यो वा यास्ता वा महार्णवा महानद्यो—गुरु-निम्नगाः।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र २९४ :
 ओहारमगराइया, घोरा तत्थ उ सावया।
 सरीरोवहिमादीया, नावातेणा य कत्थइ॥

३. निशीथभाष्य, गाथा ४२२४ :
 सावयतेणे उभयं, अणुकंपादी विराहणा तिण्णि।
 संजम आउभय वा, उत्तरणावुत्तरते य॥

४. स्थानांगवृत्ति, पत्र २९४ : आषाढश्रावणौ प्रावृट् ··· अथवा चतुर्मासप्रमाणो वर्षाकाल: प्रावृडिति विवक्षित।

५. वही, पत्र २९४. आषाढस्तु प्रथमप्रावृट् ऋतूनां वा प्रथमेति प्रथमप्रावृट्।

अर्थ है कि भाद्रशुक्ला पचमी से कार्तिक तक विहार न किया जाए। इन दोनों सूत्रों का सयुक्त अर्थ यह है कि चातुर्मास में विहार न किया जाय।

प्रश्न होता है—'चातुर्मास मे विहार न किया जाए' इस प्रकार एक सूत्र द्वारा निषेध न कर, दो पृथक् सूत्रों (सूत्र ९९, १००) द्वारा निषेध क्यो किया गया ? इसका समाधान ढूढने पर सहज ही हमारा ध्यान उस प्राचीन परम्परा की ओर खिच जाता है जिसके अनुसार यह विदित है कि —मुनि पर्युषणा कल्पपूर्वक निवास करने के बाद साधारणत: विहार कर ही नही सकते। किन्तु पूर्ववर्ती पचास दिनो मे उपयुक्त सामग्री के अभाव मे विहार कर भी सकते है।[1]

बौद्ध साहित्य मे भी दो वर्षावासो का उल्लेख मिलता है —

"भिक्षुओ ! दो वर्षावास है।"

"कौन से दो ?"

"पहला और पिछला।"[2]

प्रस्तुत सूत्र (९९) मे वृत्तिकार ने 'पव्वहेज्ज' का अर्थ—ग्राम से निकाल दिए जाने पर—किया है[3] और इसके पूर्ववर्ती सूत्र मे इसी शब्द का अर्थ —व्यथित या प्रवाहित किए जाने पर—किया है।[4]

६३. सागारिकपिंड (सू० १०१)

इसका अर्थ है—शय्यातर के घर का भोजन, उपधि आदि। जिस मकान मे साधु रहते है, उसके स्वामी को शय्यातर कहा जाता है। शय्यातर के घर का पिंड आदि लेने का निषेध है। इसके कई दोष है—[5]

१ तीर्थंकर की आज्ञा का अतिक्रमण।

२. अज्ञातोञ्छ का सेवन।

३ अलाघवता आदि-आदि।

६४. राजपिंड (सू० १०१)

प्रस्तुत प्रसंग मे वृत्तिकार ने राजा का अर्थ चक्रवर्ती आदि किया है।[6] जो मूर्धाभिषिक्त है और जो सेनापति, अमात्य, पुरोहित, श्रेष्ठी और सार्थवाह—इन पाँच रत्नियो सहित राज्य-भोग करता है, उसे राजा कहा जाता है।[7] उसके घर का भोजन राजपिंड कहलाता है। सामान्य राजाओ के घर का भोजन राजपिंड नही कहलाता। राजपिंड आठ प्रकार का होता है—अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कबल और पादप्रोंछन (रजोहरण)।[8] राजपिंड के ग्रहण करने मे भी अनेक दोष उत्पन्न होते है[9]—

१ तीर्थंकर की आज्ञा का उल्लघन।

२. राज्याधिकारियों के प्रवेश और निर्गमन के समय होने वाला व्याघात।

३ लोभ, आशंका आदि-आदि।

विशेष विवरण के लिए देखे—

१. निशीथभाष्य, गाथा २४९६-२५११।

२ दसवेआलिय, ३।३ मे 'रायपिंडे किमिच्छए' का टिप्पण।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र २९४, २९५।

२ अगुत्तरनिकाय, भाग १, पृष्ठ ८४।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र २९५ प्रव्यथेत—ग्रामान्निष्कासयेत्प्रत्यनीकाश्रयेत्।

४. वही, पत्र, २९४ 'पव्वहेज्ज' त्ति प्रव्यथते—बाधते अन्तर्भूतकारितार्थत्वाद्वा प्रवाहयेत् कश्चित् प्रत्यनीक।

५. स्थानांगवृत्ति, पत्र २९६।

६. स्थानांगवृत्ति, पत्र, २९६ राजा चेह चक्रवर्त्यादि।

७ निशीथभाष्य, गाथा २४९७।

जो मुद्धा अभिसित्तो, पचहिं सहिओ पभुजते रज्जं।
तस्स तु पिंडो वज्जो, तव्विवरीयम्मि भयणा तु॥

८. वही, गाथा २५०० :

असणादिया चउरो, वत्थे पाए य कबले चेव।
पाउछणगा य तहा, अट्ठविहो राय-पिंडो उ॥

९. वही, गाथा २५०१-२५१२।

६५. अन्तःपुर (सू० १०२)

राजा के अन्त.पुर तीन प्रकार के होते है[१]—

१. जीर्ण—जहाँ वृद्ध रानियाँ रहती है।

२. नव— जहाँ युवा रानियाँ रहती हैं।

३. कन्यक—जहाँ अप्राप्त यौवना राजकुमारियाँ (बारह वर्ष के उम्र तक की) रहती है।[२]

इनके प्रत्येक के दो-दो प्रकार है—स्वस्थानगत और परस्थानगत। सामान्यतः मुनि को अन्त.पुर मे नही जाना चाहिए। क्योंकि वहाँ जाने से[३]—

१. आज्ञा, अनवस्था, मिथ्यात्व और विराधना आदि दोष उत्पन्न होते हैं।

२. दडारक्षित, दौवारिक आदि के प्रवेश-निर्गमन से व्याघात होता है।

३. वहाँ निरन्तर होने वाले गीत आदि मे उपयुक्त होकर मुनि ईर्यासमिति और एषणासमिति मे स्खलित हो सकता है।

४ रानियो के आग्रह पर श्रृंगार आदि की कथाएँ कहनी पड़ती हैं।

५. धर्म-कथा करने से मन मे अह पैदा हो सकता है कि मैंने राजा-रानी को धर्म-कथन किया है।

६ वहाँ श्रृगार आदि के दृश्य व शब्द सुनकर स्वयं को अपने पूर्व क्रीडित भोगो की स्मृति हो सकती है आदि-आदि।

वृत्तिकार ने भी चार गाथाएँ उद्धत कर इन्ही उपायो का निर्देश किया है। ये गाथाएँ निशीथभाष्य की हैं।[१]

प्रस्तुत सूत्र मे अत पुर मे प्रवेश करने के कुछेक कारणो का निर्देश है। यह आपवादिक सूत्र है।

६६. प्रातिहारिक (सू० १०२)

मुनि दो प्रकार की वस्तुएँ ग्रहण करता है—

१. स्थायी रूप से काम आने वाली, जैसे—वस्त्र, पात्र कबल, भोजन आदि-आदि।

२ अस्थायी रूप से, काल-विशेष के लिए, काम आनेवाली, जैसे—पट्ट, फलक, पुस्तक, शय्या, संस्तारक आदि-आदि।

जो वस्तु स्थायी रूप से गृहीत होती है, उसे मुनि पुन नही लौटा सकता। जो वस्तु प्रयोजन-विशेष या अस्थायी रूप से गृहीत होती है उसे पुनः लौटा सकता है। इसे प्रातिहारिक वस्तु कहा जाता है।[४]

६७, ६८. आराम, उद्यान (सू० १०२)

आराम का अर्थ है—विविध प्रकार के फूलों वाला बगीचा।[५]

उद्यान का अर्थ है—चम्पक आदि वृक्षों वाला बगीचा।[६]

६९. (सू० १०३)

प्रस्तुत सूत्र मे पुरुष के सहवास के बिना भी गर्भ-धारण के पाँच कारणो का उल्लेख है। इन सब मे पुरुष के वीर्य-पुद्गलो का स्त्री योनि मे समाविष्ट होनेसे गर्भ-धारण होने की बात कही गई है। वीर्य पुद्गलों के बिना गर्भ-धारण का

---

१. निशीथभाष्य, गाथा २५१३ :

अंतेउर च तिविध, जुण्ण णवं चेव कण्णगाण च।
एक्केक्कं पि य दुविध, सट्ठाणे चेव परठाणे॥

२. वही, गाथा २५१४-२५२०।

३. वही, गाथा २५१३, २५१४, २५१८, ५५१९।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र २९७।

५ स्थानागवृत्ति, पत्र २९७ : आरामो विविधपुष्पजात्युपशोभित।

६. स्थानागवृत्ति, पत्र २९७ : उद्यान तु चम्पकवनाद्युपशोभितमिति।

उल्लेख नहीं है। वर्तमान मे कृत्रिम गर्भाधान की प्रणाली से इसकी तुलना हो सकती है। साड या पाडे के वीर्य-पुद्गलों को निकालकर रासायनिक विधि से सुरक्षित रखा जाता है और आवश्यकतावश गाय या भैंस की योनि से उनको शरीर मे प्रविष्ट कराया जाता है। गर्भविधि पूर्ण होने पर गाय या भैंस प्रसव कर बच्चे को उत्पन्न करती है।

इसी प्रकार अमेरिका मे 'टेस्ट-ट्यूब-बेबीज' की बात प्रचलित है। पुरुष के वीर्य-पुद्गलो को कांच की एक नली मे, उचित रासायनिक मिश्रणों मे रखा जाता है और यथासमय बच्चे की उत्पत्ति होती है। उसी कांच की नली मे कुछ बड़े होने पर उसे निकाल दिया जाता है।

प्रस्तुत सूत्र के प्रथम कारण को ध्यान मे रखकर ही आगमो मे स्थान-स्थान पर ऐसे उल्लेख किए गए है कि जहां स्त्रियां बैठी हो, उस स्थान पर मुनि को तथा जहां पुरुष बैठे हो उस स्थान पर साध्वी को एक अन्तर्मुहूर्त तक नही बैठना चाहिए। यदि आवश्यकतावश बैठना ही पड़े तो भूमि का भलीभांति प्रमार्जन कर बैठना चाहिए।

दूसरे कारण में शुक्रपुद्गल से संसृष्ट वस्त्र का योनि के मध्य मे प्रवेश होने पर भी गर्भधारण की स्थिति हो जाती है। वस्त्र ही नही, दूसरे-दूसरे पदार्थों से भी ऐसा हो सकता है। वृत्तिकार ने यहां एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। केशिकुमार की माता ने अपनी योनि की खुजली मिटाने अथवा रक्त-प्रवाह को रोकने के लिए केश को योनि में प्रविष्ट किया। वह केश शुक्र-पुद्गलों से संसृष्ट था। उसके फलस्वरूप वह गर्भवती हो गई, अथवा कभी अज्ञानवश शुक्र-संश्लिष्ट वस्त्रों को पहनने पर वे अकस्मात् योनि में प्रवेश पा ले, तो भी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

तीसरे कारण की भावना यह है कि यदि किसी स्त्री का पति नपुसक है और वह स्त्री पुत्र-प्राप्ति की इच्छा रखती है किन्तु शील भंग होने के भय से पर पुरुष के साथ काम-क्रीड़ा नही कर सकती। अत वह स्वय शुक्र-पुद्गलो को एकत्रित कर अपनी योनि मे प्रविष्ट कर देती है। इससे भी गर्भधारण कर सकती है।

चौथे कारण के प्रसग मे वृत्तिकार ने 'पर' का अर्थ 'श्वसुर आदि' किया है। इसका तात्पर्य यह है कि पति के नपुसक होने पर पुत्र प्राप्ति की प्रबल इच्छा से प्रेरित होकर स्त्री अपने श्वसुर आदि ज्ञातिजनो द्वारा अपनी योनि मे शुक्र पुद्गलो का प्रवेश करवाती है। उस समय इस प्रकार की पद्धति प्रचलित थी। इसे नियोग-विधि कहा जाता है।

पाचवा कारण स्पष्ट है।

ये सभी कारण एक दृष्टि से कृत्रिम गर्भाधान के प्रकार है। किसी विशिष्ट प्रणाली द्वारा शुक्र-पुद्गलों का योनि मे प्रवेश होने पर गर्भ की स्थिति बनती है, अन्यथा नही।

७०, ७१, (सू० १०४)

वृत्तिकार ने बारह वर्ष तक की कुमारी को अप्राप्तयौवना कहा है तथा पचास या पचपन वर्ष के ऊपर की उम्र वाली स्त्री को अतिक्रान्तयौवना माना है।[१]

उनकी मान्यता है कि बारह वर्ष से पचास वर्ष की उम्र तक स्त्री मे रज स्राव होता है और वही उसकी गर्भधारण की अवस्था होती है। सोलह वर्ष की कुमारी का बीस वर्ष के युवक के साथ सहवास होने से वीर्यवान् पुत्र की उत्पत्ति होती है, क्योंकि उस अवस्था मे गर्भाशय, मार्ग, रक्त, शुक्र, अनिल और हृदय---ये शुद्ध होते है। सोलह और बीस वर्ष से कम अवस्था मे सहवास होने पर संतान की प्राप्ति नही होती और यदि होती है तो वह रोगी, अल्पायु और अभागी होती है।[२]

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र २६८ . अप्राप्तयौवना प्राय आवर्षद्वादशकादार्त्तवाभावात् तथाऽतिक्रान्तयौवना वर्षाणां पञ्चपञ्चाशत पञ्चाशतो वा।

२. वही, पत्र २६८.

मासि मासि रज स्त्रीणामजस्रं स्रवति त्र्यहम्।
वत्सराद् द्वादशादूर्ध्वं, याति पञ्चाशत क्षयम्॥
पूर्णषोडशवर्षा स्त्री, पूर्णविंशेन सगता।
शुद्धे गर्भाशये मार्गे, रक्ते शुक्रेऽनिले हृदि॥
वीर्यवन्त सुत सूते, ततो न्यूनाब्दयाः पुम.।
रोग्यल्पायुरधन्यो वा, गर्भो भवति नैव वा॥

७२. (सू० १०५)

वृत्तिकार ने अणंगपडिसेविणी का एक दूसरा अर्थ भी किया है—

अनग अर्थात् काम का विभिन्न पुरुषों के साथ अतिशय आसेवन करने से स्त्री गर्भधारण नहीं करती जैसे—वेश्या।[1]

७३. अकस्मात्‌दंड (सू० १११)

सूत्रकृताग २/२ में तेरह क्रियाओ का प्रतिपादन है। प्रस्तुत सूत्र में प्रतिपादित दंड उन्ही के पांच प्रकार हैं।

अकस्मात्‌दंड—वृत्तिकार ने लिखा है कि मगधदेश में यह शब्द इसी रूप में आबाल-गोपाल प्रसिद्ध है। अत: प्राकृत भाषा में भी इसको इसी रूप में स्वीकार कर लिया है।[2]

७४-८५. (सू० ११२-१२२)

प्रस्तुत ग्यारह सूत्रो मे पाच-पांच के क्रम से विभिन्न प्रकार की क्रियाओं का उल्लेख हुआ है। दूसरे स्थान मे दो-दो के क्रम से इन्ही क्रियाओं का उल्लेख है।

देखे—२।२-३७ के टिप्पण।

८६. (सू० १२४)

पांच व्यवहार—भगवान् महावीर तथा उत्तरवर्ती आचार्यों ने संघ-व्यवस्था की दृष्टि से एक आचार-सहिता का निर्माण किया। उसमे मुनि के कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य या प्रवृत्ति और निवृत्ति के निर्देश हैं। उसकी आगमिक संज्ञा 'व्यवहार' है। जिनसे यह व्यवहार संचालित होता है, वे व्यक्ति भी, कार्य-कारण की अभेददृष्टि से, 'व्यवहार' कहलाते है।

प्रस्तुत सूत्र मे व्यवहार सचालन में अधिकृत व्यक्तियों की ज्ञानात्मक क्षमता के आधार पर प्राथमिकता बतलाई गई है।

व्यवहार सचालन मे पहला स्थान आगमपुरुष का है। उसकी अनुपस्थिति मे व्यवहार का प्रवर्तन श्रुतपुरुष करता है। उसकी अनुपस्थिति में आज्ञापुरुष, उसकी अनुपस्थिति मे धारणापुरुष और उसकी अनुपस्थिति में जीतपुरुष करता है।

१. आगम व्यवहार—इसके दो प्रकार है—प्रत्यक्ष और परोक्ष[3]। प्रत्यक्ष के तीन प्रकार हैं[4]—

१ अवधिप्रत्यक्ष, २. मन पर्यवप्रत्यक्ष, ३. केवलज्ञानप्रत्यक्ष।

परोक्ष के तीन प्रकार है[5]—

१. चतुर्दशपूर्वधर, २. दशपूर्वधर, ३ नौपूर्वधर।

शिष्य ने यहा यह प्रश्न उपस्थित किया कि परोक्षज्ञानी साक्षात्‌रूप से श्रुत से व्यवहार करते है तो भला वे आगम-व्यवहारी कैसे कहे जा सकते हैं?[6] आचार्य ने कहा—"जैसे केवलज्ञानी अपने अप्रतिहत ज्ञानबल से पदार्थों को सर्वरूपेण जानता है, वैसे ही श्रुतज्ञानी भी श्रुतबल से जान लेता है।[7]

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र २८८ · अनङ्गं वा—काममपरापरपुरुष-सम्पर्कतोऽतिशयेन प्रतिषेवत इत्येवंशीलाऽनङ्गप्रतिषेविणी।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३०१ : अकस्माद्दंडत्ति मगधदेशे गोपालबाला-बलादिप्रसिद्धोऽकस्मादिति शब्द स इह प्राकृतेऽपि तथैव प्रयुक्त इति।

३. व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्यगाथा २०१ :

आगमतो ववहारो सुणह जहा धीरपुरिसपन्नत्तो।
पच्चक्खो य परोक्खो सो वि य दुविहो मुणेयव्वो॥

४. वही, भाष्यगाथा २०३ :

ओहिमणपज्जवे य केवलनाणे य पच्चक्खे।

५. व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा २०६ :

पारोक्खं ववहारं आगमतो सुयधरा ववहरंति।
चोद्दसदसपुव्वधरा नवपुव्वियगंधहत्थी य॥

६. वही, भाष्यगाथा २१० वृत्ति—

कथ केनप्रकारेण साक्षात् श्रुतेन व्यवहरन्त· आगमव्यवहारिण।

७. वही, भाष्य गाथा २११.

जह केवली वि जाणइ दव्वं च खेत्तं च कालभावं च।
तह चउलक्खणमेयं सुयनाणीमेव जाणाति॥

जिस प्रकार प्रत्यक्षज्ञानी भी समान अपराध मे न्यून या अधिक प्रायश्चित्त देता है, वैसे ही श्रुतज्ञानी भी आलोचक के राग-द्वेषात्मक अध्यवसायो को जानकर उनके अनुरूप न्यून या अधिक प्रायश्चित्त देता है।[1]

शिष्य ने पुन: प्रश्न किया कि—प्रत्यक्षज्ञानी आलोचना करने वाले व्यक्ति के भावो को साक्षात् जान लेते है; किन्तु परोक्षज्ञानी ऐसा नही कर सकते, अत न्यूनाधिक, प्रायश्चित्त देने का उनका आधार क्या है? आचार्य ने कहा —वत्स! नालिका से गिरने वाले पानी के द्वारा समय जाना जाता है। वहा का अधिकारी व्यक्ति समय को जानकर, दूसरो को उसकी अवगति देने के लिए, समय-समय पर शख बजाता है। शख के शब्द को सुनकर दूसरे लोग समय का ज्ञान कर लेते है। इसी प्रकार श्रुतज्ञानी भी आलोचना तथा शुद्धि करने वाले व्यक्ति की भावनाओ को सुनकर यथार्थ स्थिति का ज्ञान कर लेते है। फिर उसके अनुसार उसे प्रायश्चित्त देते है।[2] यदि वे यह जान लेते है कि अमुक व्यक्ति ने सम्यग् रूप से आलोचना नही की है, तो वे उसे अन्यत्न जाकर शोधि करने की बात कहते है।

आगमव्यवहारी के लक्षण—

आचार्य के आठ प्रकार की सपदा होती है—आचार, श्रुत, शरीर, वचन, वाचना, मति, प्रयोगमति और सग्रह-परिज्ञा। इनके प्रत्येक के चार-चार प्रकार है। इस प्रकार इसके ३२ प्रकार होते है। [देखे ८।१५ का टिप्पण]।

चार विनयप्रतिपत्तिया है[3]—

१. आचारविनय—आचार-विषयक विनय सिखाना।

२. श्रुतविनय—सूत्र और अर्थ की वाचना देना।

३. विक्षेपणाविनय—जो धर्म से दूर है, उन्हे धर्म मे स्थापित करना, जो स्थित है उन्हे प्रव्रजित करना, जो च्युत-धर्मा है, उन्हे पुन. धर्मनिष्ठ बनाना और उनके लिए हित-सपादन करना।

४. दोषनिर्घातविनय—क्रोध-विनयन, दोष-विनयन तथा काक्षा-विनयन के लिए प्रयत्न करना।[4]

जो इन ३६ गुणो मे कुशल, आचार आदि आलोचनार्ह आठ गुणो से युक्त, अठारह वर्णनीय स्थानो का ज्ञाता, दस प्रकार के प्रायश्चित्तो को जानने वाला, आलोचना के दस दोषो का विज्ञाता, व्रत षट्क और काय षट्क को जानने वाला तथा जो जातिसपन्न आदि दस गुणो से युक्त है—वह आगमव्यवहारी होता है।[5]

शिष्य ने पूछा—'भते!' वर्तमान काल मे इस भरतक्षेत्र मे आगमव्यवहारी का विच्छेद हो चुका है। अत यथार्थ-शुद्धिदायक न रहने के कारण तथा दोषों की यथार्थशुद्धि न होने के कारण वर्तमान मे चारित्र की विशुद्धि नही है। न कोई आज मासिक या पाक्षिक प्रायश्चित्त ही देता है और न कोई उसे ग्रहण करता है, इसलिए वर्तमान मे तीर्थ केवल ज्ञान-दर्शन-मय है, चारित्रमय नही। केवली का व्यवच्छेद होने के बाद थोडे समय मे ही चौदह पूर्वधरो का भी व्यवच्छेद हो जाता है। अत विशुद्धि कराने वालों के अभाव मे चारित्र की विशुद्धि भी नही रहती। दूसरी बात है कि केवली, जिन आदि अपराध के अनुसार प्रायश्चित्त देते थे, न्यून या अधिक नही। उनके अभाव मे छेदसूत्रधर मनचाहा प्रायश्चित्त देते है, कभी थोडा और कभी अधिक। अत वर्तमान मे प्रायश्चित्त देने वाले के व्यवच्छेद के साथ-साथ प्रायश्चित्त का भी लोप हो गया है।[6]

---

१ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा २१३ वृत्ति।

२ वही, भाष्य गाथा २१६, वृत्ति—

जिनास्तीर्थकृत. परोक्षे आगमे उपसहार नालीधमकेन कुर्वते, इयमत्र भावना नाडिकायां गलन्त्यामुदकगलनपरिमाणतो जानाति एतावत्युदके गलिते यामो दिवसस्य रात्रेर्वागत इति ततोऽन्यस्य परिज्ञानाय शङ्ख धमति। तत्र यथा सोऽन्यो जन. शंखस्य शब्देन श्रुतेन काल वा यामलक्षण जानाति तथा परोक्षागमगामिनोऽपि शोधिमालोचना श्रुत्वा तस्य यथावस्थित भाव जानन्ति। ज्ञात्वा च तदनुसारेण प्रायश्चित्त ददाति।

३. वही, भाष्यगाथा ३०३.

आयारे सुय विणए विक्खेवण चेव होई बोधव्वे।
दोसस्स निग्घाए विणए चउहेस पडिवत्ती॥

४. व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ३०५-३२७।

५ वही, भाष्य गाथा ३२८-३३४।

६ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ३३५-३३८.

एव भणिते भणती ते वोच्छिन्ना उपसपय इहइं।
तेसु य वोच्छिन्नेसु नत्थि विसुद्धी चरित्तस्स॥
देंतावि न दीसती न वि करेंता उपसपय केई।
तित्थ च नाणदसणनिज्जवगा चेव वोच्छिन्ना॥
चोद्दसपुव्वधराण वोच्छेदो केवलीण वुच्छेए।
केसि वी आदेसो पायच्छित्त पि वोच्छिन्न॥
ज जत्तिएण सुज्झइ पाव तस्स तहा देति पच्छित्त।
जिण चोद्दसपुव्वधरा तव्विवरीया जहिच्छाए॥

आचार्य ने कहा—वत्स ! तू यह नहीं जानता कि प्रायश्चित्तों का मूलविधान कहां हुआ है ? वर्तमान में प्रायश्चित्त है या नहीं ?[१]

प्रत्याख्यान प्रवाद नामक नौवें पूर्व की तीसरी वस्तु में समस्त प्रायश्चित्तों का विधान है। उस आकर ग्रन्थ से प्रायश्चित्तों का निर्यूहण कर निशीथ, बृहत्कल्प और व्यवहार—इन तीन सूत्रों मे उनका समावेश किया गया है।[२] आज भी विविध प्रकार के प्रायश्चित्तों को वहन करने वाले हैं। वे अपने प्रायश्चित्तों को विशेष उपायों से वहन करते है, अत: उनका वहन करना हमें दृग्गोचर नही होता। आज भी तीर्थ चारित्र सहित हैं तथा उसके निर्यापक भी हैं।[३]

[विस्तृत वर्णन के लिए देखें—व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ३५१-६०२।]

२. श्रुत व्यवहार—जो बृहत्कल्प और व्यवहार को बहुत पढ चुका है और उनको सूत्र तथा अर्थ की दृष्टि से निपुणता से जानता है, वह श्रुतव्यवहारी कहलाता है।[४] यहां श्रुत से भाष्यकार ने केवल इन दो सूत्रो का निर्देश किया है।

आचार्य भद्रबाहु ने कुल, गण, सघ आदि में कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का व्यवहार उपस्थित होने पर द्वादशागी से कल्प और व्यवहार—इन दो सूत्रो का निर्यूहण किया था। जो इन दोनों सूत्रो का अवगाहन कर चुका है और इनके निर्देशानुसार प्रायश्चित्तो का विधान करता है वह श्रुतव्यवहारी कहलाता है।[५]

३. आज्ञा व्यवहार—कोई आचार्य भक्तप्रत्याख्यान अनशन मे व्यापृत है। वे जीवनगत दोषों की शुद्धि के लिए अन्तिम आलोचना के आकांक्षी है। वे सोचते हैं—'आलोचना देने वाले आचार्य दूरस्थ है। मैं अशक्त हो गया हूं, अत. उनके पास जा नही सकता तथा वे आचार्य भी यहा आने में असमर्थ है, अतः मुझे आज्ञा व्यवहार का प्रयोग करना चाहिए।' वे शिष्य को बुलाकर उन आचार्य के पास भेजते है और कहलाते हैं—'आर्य ! मैं आपके पास शोधि करना चाहता हू।'

शिष्य वहा जाता है और आचार्य को यथोक्त बात कहता है। आचार्य भी वहां जाने मे अपनी असमर्थता को लक्षित कर अपने मेधावी शिष्य को वहा भेजने की बात सोचते हैं। तब वे अपने गण मे जो शिष्य आज्ञा-परिणामकर, अवग्रहण और धारणा मे क्षम तथा सूत्र और अर्थ में मूढ न होने वाला होता है, उसे वहां भेजते हुए कहते है—'वत्स ! तुम वहा आलोचना-आकांक्षी आचार्य के पास जाओ और उनकी आलोचना को सुनकर यहा लौट आओ।[६]

आचार्य द्वारा प्रेषित मुनि के पास आलोचनाकांक्षी आचार्य सरल हृदय से सारी आलोचना करते है।[७] आगन्तुक मुनि आलोचक आचार्य की प्रतिसेवना और आलोचना की क्रमपरिपाटी का सम्यक् अवग्रहण और धारण कर लेता है। वे

---

१ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्यगाथा ३४४
एव तु चोइयम्मी आयरितो भणइ न हु तुमे नाय।
पच्छित्त कहियतू किं धरती किं व वोच्छिन्न ॥

२. वही, भाष्य गाथा ३४५
सव्व पि य पच्छित्त पच्चक्खाणस्स ततिय वत्थुमि।
तत्तो चि य निज्जूढा पकप्पकप्पो य ववहारो ॥

३. वही, भाष्य गाथा ३४६, वृत्ति—।

४ वही, भाष्य गाथा ६०५, ६०७ :
जो सुयमहिज्जइ बहु सुतत्थ च निउण विजाणाति।
कप्पे ववहारमि य सो उ पमाण सुयहराण ॥
कप्पस्स य निज्जुत्ति ववहारस्स य परमनिउणस्स।
जो अत्थतो वियाणइ ववहारी सो अणुण्णाती ॥

५. वही, भाष्यगाथा ६०८; वृत्ति—
कुलादिकार्येषु व्यवहारे उपस्थिते यद्भगवता भद्रबाहुस्वामिना कल्पव्यवहारात्मक सूत्र निर्यूढ तदेवानुमज्जननिपुणतरार्थं परिभावनेन तन्मध्ये प्रविशन् व्यवहारविधि यथोक्त सूत्रमुख्यार्थं तस्यार्थं निर्दिशन् यः प्रयुक्ते स श्रुतव्यवहारी धीरपुरुषै प्रज्ञप्तः।

६. व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ६१०-६१५, ६२७।
समणस्स उत्तमट्ठे सल्लुद्धरणकरणे अभिमुहस्स।
दूरत्था जत्थ भवे छत्तीसगुणा उ आयरिया ॥
अपरक्कमो सि जाओ गतु जे कारणं च उप्पन्न।
अटारसमन्नयरे वसणगतो इच्छिमो आण ॥
अपरक्कमो तवस्सी गतु जे सोहिकारगसमीव।
आगतु न वाएई सो सोहिकारोवि देसाउ ॥
अह पट्ठवेइ सीस देसतरगमणनट्ठचेट्ठागो।
इच्छामज्जो काउ सोहिं तुब्भ सगासम्मि ॥
सोवि अपरक्कमगती सीस पेसेइ धारणाकुसल।
एयस्स दाणि पुरओ करेइ सोहिं जहावत्त ॥
अपरक्कमो य सीस आणापरिणामग परिच्छेज्जा।
रुक्खे य बीय काए सुत्ते वा मोहणाधारिं ॥
एव परिच्छिऊण जोग्ग नाउण पेसवे त तु।
वच्चाहि तस्सगासं सोहिं सोऊण आगच्छ ॥

७. वही, भाष्य गाथा ६२८।
अह सो गतो उ तहिय तस्स सगासम्मि सो करे साहिं।
दुगतिगचउविसुद्ध तिविहे काले विगडभावो ॥

कितने आगमों के ज्ञाता है ? उनकी प्रव्रज्या—पर्याय तपस्या से भावित है या अभावित ? उनकी गृहस्थ तथा व्रतपर्याय कितनी है ? शारीरिक बल का स्थिति क्या है ? वह क्षेत्र कैसा है ?—ये सारी बातें श्रमण उन आचार्य को पूछता है। उनके कथनानुसार तथा स्वयं के प्रत्यक्ष दर्शन से उनका अवधारण कर वह अपने प्रदेश मे लौट आता है।[1] वह अपने आचार्य के पास जाकर उसी क्रम से निवेदन करता है, जिस क्रम से उसने सभी तथ्यो का अवधारण किया था।[2]

आचार्य अपने शिष्य के कथन को अवधानपूर्वक सुनते है और छेदसूत्रो [कल्प और व्यवहार] मे निमग्न हो जाते है। वे पौर्वापर्य का अनुसधान कर, सूत्रगत नियमो के तात्पर्य की सम्यग् अवगति करते हैं। उसी शिष्य को बुलाकर कहते है—'जाओ, उन आचार्य को यह प्रायश्चित्त निवेदित कर आओ।'[3] वह शिष्य वहा जाता है और अपने आचार्य द्वारा कथित प्रायश्चित्त उन्हे सुना देता है। यह आज्ञाव्यवहार है।[4]

वृत्तिकार के अनुसार आज्ञाव्यवहार का अर्थ इस प्रकार है—दो गीतार्थ आचार्य भिन्न-भिन्न देशो मे हो, वे कारण-वश मिलने मे असमर्थ हो, ऐसी स्थिति मे कही प्रायश्चित्त आदि के विषय मे एक-दूसरे का परामर्श अपेक्षित हो, तो वे अपने शिष्यों को गूढपदो में प्रष्टव्य विषय को निगूहित कर उनके पास भेज देते है। वे गीतार्थ आचार्य भी इसी शिष्य के साथ गूढपदों मे ही उत्तर प्रेषित कर देते है। यह आज्ञाव्यवहार है।[5]

४. धारणाव्यवहार—किसी गीतार्थ आचार्य ने किसी समय किसी शिष्य के अपराध की शुद्धि के लिए जो प्रायश्चित्त दिया हो, उसे याद रखकर, वैसी ही परिस्थिति मे उसी प्रायश्चित्त-विधि का उपयोग करना धारणाव्यवहार कहलाता है। अथवा वैयावृत्य आदि विशेष प्रवृत्ति मे सलग्न तथा अशेष छेदसूत्र को धारण करने मे असमर्थ साधु को कुछ विशेष-विशेष पद उद्धृत कर धारणा करवाने को धारणा व्यवहार कहा जाता है।[6]

उद्धारणा, विधारणा, सधारणा और संप्रधारणा—ये धारणा के पर्यायवाची शब्द है।[7]

१. उद्धारणा—छेदसूत्रों से उद्धृत अर्थपदो को निपुणता से जानना।

२. विधारणा—विशिष्ट अर्थपदों को स्मृति मे धारण करना।

३. संधारणा—धारण किए हुए अर्थपदों को आत्मसात् करना।

४. सप्रधारणा—पूर्ण रूप से अर्थपदों को धारण कर प्रायश्चित्त का विधान करना।[8]

---

१. व्यवहार, उद्देशक १० भाष्य गाथा ६५६, वृत्ति—
श्रुत्वा तस्यालोचनकस्य प्रतिसेवनामालोचनाक्रमविधिं च आलोचनाक्रमपरिपाटी चावधार्य तथा तस्य यावानागमोऽस्ति तावन्तमागम तथा पुरुषजात तमष्टमादिभिर्भावितमभावित वा पर्याय गृहस्थपर्यायो यावानासीत् यावांश्च तस्य व्रतपर्याय तावन्तमुभय पर्याय बल शारीरिक तस्य तथा यादृश तत् क्षेत्रमेतत्सर्वमालोचकाचार्यकथनत स्वतो दर्शनतश्चावधार्य स्वदेश गच्छति।

२. वही, भाष्य गाथा ६६० :
आहारेउ सव्व सो गंतूण पुणो गुरुसगास।
तेसि निवेदेइ तहा जहाणुपुव्वि गत सव्व॥

३. वही भाष्य गाथा ६६१ :
सो ववहारविहण्णू अणुमज्जित्ता सुत्तोवएसण।
सीसस्स देइ आण तस्स इमं देहि पच्छित्त॥

४. व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्यगाथा ६७३ .
एव गतूण तहिं जहोवएसेण देहि पच्छित्त।
आणाए एस भणितो ववहारो धीरपुरिसेहिं॥

५. स्थानांगवृत्ति, पत्र, ३०२
यदगीतार्थस्य पुरतो गूढार्थपदैर्देशान्तरस्थगीतार्थ-निवेदनायातिचारालोचनमितरस्यापि तथैव शुद्धिदान साज्ञा।

६ वही, पत्र, ३०२
गीतार्थसविग्नेन द्रव्याद्यपेक्षया यत्रापराधे यथा या विशुद्धि कृता तामवधार्य यदन्यस्तत्रैव तथैव तामेव प्रयुङ्क्ते सा धारणा। वैयावृत्त्यकरादेर्वा गच्छोपग्रहकारिणो अशेषानु-चितस्योचितप्रायश्चित्तपदाना प्रदर्शिताना धरण धारणेति।

७ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्यगाथा ६७५ .
उद्धारणा विधारणा सधारणा सपधारणा चेव।
नाऊण धीरपुरिसा धारणववहार त बिति॥

८ वही, भाष्य गाथा ६७६-६७८ .
पाबल्लेण उवेच्च व उद्धियपयधारणा उ उद्धारा।
विविहेहि पगारेहिं धारेयव्व ति धारेउ॥
स एगी भावस्सी ह्रियकरणा ताणि एक्कभावेण।
धारेयत्थपयाणि उ तम्हा सधारणा होई।
जम्हा सपहारेउ ववहार पउजति।
तम्हा कारणा तेण नायव्वा सपहारणा॥

जो मुनि प्रवचनयशस्वी, अनुग्रहविशारद, तपस्वी, सुश्रुत, बहुश्रुत, विनय और औचित्य से युक्त वाणी वाला होता है, वह यदि प्रमादवश मूलगुणों या उत्तरगुणो मे स्खलना कर देता है, तब पूर्वोक्त तीन व्यवहारों के अभाव में भी, आचार्य छेदसूत्रों से अर्थपदो को धारण कर उसे यथायोग्य प्रायश्चित्त देते है। वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से छेदसूत्र के अर्थ का सम्यग् पर्यालोचन कर, प्राक्तन, धीर, दान्त और प्रलीन मुनियो द्वारा कथित तथ्यो के आधार पर प्रायश्चित्त का विधान करते हैं। यह धारणाव्यवहार कहलाता है।[1]

यह भी माना जाता है कि किसी ने किसी को आलोचनाशुद्धि करते हुए देखा। उसने यह अवधारण कर लिया कि इस प्रकार के अपराध के लिए यह शोधि होती है। परिस्थिति उत्पन्न होने पर वह उसी प्रकार का प्रायश्चित्त देता है तो वह धारणाव्यवहार कहलाता है।[2]

कोई शिष्य आचार्य की वैयावृत्य मे संलग्न है या गण मे प्रधान शिष्य है या यात्रा के अवसर पर आचार्य के साथ रहता है, वह छेदसूत्रों के परिपूर्ण अर्थ को धारण करने मे असमर्थ होता है। तब आचार्य उस पर अनुग्रह कर छेदसूत्रों के कई अर्थ-पद उसे धारण करवाते हैं। वह छेदसूत्रो का अंशत: धारक होता है। वह भी धारणाव्यवहार का सचालन कर सकता है।[3]

५ जीतव्यवहार—किसी समय किसी अपराध के लिए आचार्यों ने एक प्रकार का प्रायश्चित्त-विधान किया। दूसरे समय में देश, काल, धृति, संहनन, बल आदि देखकर उसी अपराध के लिए जो दूसरे प्रकार का प्रायश्चित्त-विधान किया जाता है, उसे जीतव्यवहार कहते है।

किसी आचार्य के गच्छ मे किसी कारणवश कोई सूत्रातिरिक्त प्रायश्चित्त प्रवर्तित हुआ और वह बहुतो द्वारा, अनेक बार, अनुवर्तित हुआ। उस प्रायश्चित्त-विधि को 'जीत' कहा जाता है।[4]

शिष्य ने यह प्रश्न उपस्थित किया कि चौदहपूर्वी के उच्छेद के साथ-साथ आगम, श्रुत, आज्ञा और धारणा—ये चारो व्यवहार भी व्यवच्छिन्न हो जाते है। क्या यह सही है?[5]

आचार्य ने कहा—'नही, यह सही नही है। केवली, मन:पर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चौदहपूर्वी, दशपूर्वी और नौपूर्वी—ये सब आगमव्यवहारी होते है, कल्प और व्यवहार सूत्रधर श्रुतव्यवहारी होते हैं, जो छेदसूत्र के अर्थधर होते है, वे आज्ञा

---

१ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ६८०-६८६ :

पवयण जसंसि पुरिसे अणुग्गह विसारए तवस्सिमि।
सुस्सुयबहुस्सुयमि य विवक्कपरियागसुद्धम्मि॥
एएसु धीरपुरिसा पुरिसजाएसु किंचि खलिएसु।
रहिएवि धारयंता जहारिह देंति पच्छित्त॥
रहिए नाम असन्ने आइल्लम्मि ववहारतियगंमि।
ताहेवि धारइत्ता वीमसेऊण ज भणिय॥
पुरिसस्स अइयार वियारइत्ताण जस्स ज जोग्ग।
त देंति उ पच्छित्तं जेण देंती उ त सुणए।
जो धारितो सुत्तत्थो अणुओगविहीए धीरपुरिसेहिं।
आलीणपलीणेहिं जयणाजुत्तेहि दन्तेहि॥
अल्लीणो णाणादिसु पदे-पदे लीणा उ होंति पलीणा।
कोहादी वा पलय जेसि गया ते पलीणा उ॥
जयणाजुत्तो पयत्तवा दतो जो उवरतो उ पावेहि।
अहवा दतो इंदियदमेण नोइंदिएण च॥

२. व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ६८७-६८६.

अहवा जेणण्णइया दिट्ठा सोही परस्स कीरति।
तारिसय चेव पुणो उपण्ण कारण तस्स॥
सो तमि चेव दव्वे खेत्ते काले य कारिणे पुरिसो।
तारिसय अकरेंतो न हु सो आराहतो होइ॥
सो तपि चेव दव्वे खेत्ते काले य कारणे पुरिसे।
तारिसय चिय भूया, कुव्व आराहगो होई॥

३. वही, भाष्य गाथा ६६०, ६६१.

वेयावच्चकरो वा सीसो वा देसहिंडगो वावि।
दुम्मेहत्ता न तरइ आराहेउ बहु जो उ॥
तस्स उ उद्धरिऊण अत्थपयाइ देंति आयरियो।
जेहिं उ करेइ कज्ज आहारेन्तो उ सो देस॥

४. स्थानागवृत्ति, पत्र ३०२ : द्रव्यक्षेत्रकालभावपुरुषप्रतिषेवानुवृत्त्या सहननधृत्यादिपरिहाणिमपेक्ष्य यत्प्रायश्चित्तदान यो वा यत्र गच्छे सूत्रातिरिक्त कारणत प्रायश्चित्तव्यवहार प्रवर्त्तितो बहुभिरन्यैश्चानुवर्त्तितस्तज्जीतमिति।

५. व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्यगाथा ६६६ :

ववहारे चउक्कपि य चोद्दसपुव्वमि वोच्छिन्न।

और धारणा से व्यवहार करते है। आज भी छेदसूत्रो के सूत्र और अर्थ को धारण करने वाले हैं, अतः व्यवहारचतुष्क का व्यवच्छेद चौदहपूर्वी के साथ मानना युक्तिसंगत नही है।[1]

जीतव्यवहार दो प्रकार का होता है—सावद्य जीतव्यवहार और निरवद्य जीतव्यवहार। वस्तुतः निरवद्य जीत व्यवहार से ही व्यवहरण हो सकता है सावद्य से नही।[2] परन्तु कही-कही सावद्य जीत व्यवहार का आश्रय भी लिया जाता है। जैसे—

कोई मुनि ऐसा अपराध कर डालता है कि जिसमे समूचे श्रमण-सघ की अवहेलना होती है और लोगो मे तिरस्कार उत्पन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति में शासन और लोगों मे उस अपराध की विशुद्धि की अवगति कराने के लिए अपराधी मुनि को गधे पर चढाकर सारे नगर मे घुमाते हैं, पेट के बल रेगते हुए नगर मे जाने को कहते है, शरीर पर राख लगाकर लोगों के बीच जाने को प्रेरित करते हैं, कारागृह मे प्रविष्ट करते हैं—ये सब सावद्य जीतव्यवहार के उदाहरण है।

दस प्रकार के प्रायश्चित्तों का व्यवहरण करना निरवद्य जीतव्यवहार है। अपवाद रूप मे सावद्य जीतव्यवहार का भी आलम्बन लिया जाता है।[3] जो श्रमण बार-बार दोष करता है, बहुदोषी है, सर्वथा निर्दय है तथा प्रवचन-निरपेक्ष है, ऐसे व्यक्ति के लिए सावद्य जीतव्यवहार उचित होता है।[4]

जो श्रमण वैराग्यवान्, प्रियधर्मा, अप्रमत्त और पापभीरु है, उसके कही स्खलित हो जाने पर निरवद्य जीतव्यवहार उचित होता है।[5]

जो जीतव्यवहार पार्श्वस्थ, प्रमत्तसंयत मुनियो द्वारा आचीर्ण है, भले फिर वह अनेक व्यक्तियों द्वारा आचीर्ण क्यो न हो, वह शुद्धि करने वाला नही होता।[6]

जो जीतव्यवहार सवेगपरायण दान्त मुनि द्वारा आचीर्ण है, भले फिर वह एक ही मुनि द्वारा आचीर्ण क्यो न हो, वह शुद्धि करने वाला होता है।[7]

व्यवहार साधु-संघ की व्यवस्था का आधार-बिन्दु रहा है। इसके माध्यम से सघ को निरन्तर जागरूक और विशुद्ध रखने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसलिए चारित्र की आराधना में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

८७. (सू० १३१)

देखें—१०।८४ का टिप्पण।

---

१. व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ७०१-७०३

केवलमणपज्जवनाणिणो य तत्तो य ओहिनाणजिणा।
चोद्दसदसनवपुव्वी आगमववहारिणो धीरा॥
मुत्तेण ववहरते कप्पववहार धारिणो धीरा।
अत्थधरववहारते आणाए धारणा ए य॥
ववहारचउक्कस्स, चोद्दसपुव्विम्मि छेदो ज।
भणिय तं ते मिच्छा, जम्हा सुत्त अत्थो य धरए य॥

२. व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ७१५:

ज जीत सावज्ज न तेण जीएण होइ ववहारो।
ज जीयमसावज्ज तेण उ जीएण ववहारो॥

३ वही, भाष्य गाथा ७१६, वृत्ति—

छारहड्डिहड्डमालापोट्टेण य रिंगण तु सावज्ज।
दसविह पायच्छित्त होइ असावज्ज जीय तु॥

यत् प्रवचने लोके चापराधविशुद्धये समाचरित क्षारावगण्डन हड्डो गुप्तिगृहप्रवेशन खरमारोपणं पोट्टेण उदरेण रगणं तु शब्दत्वात् खरारूढं कृत्वा ग्रामे सर्वतः पर्यटनमित्येवमादि सावद्यं जीतं, यत्तु दशविधमालोचनादिक प्रायश्चित्त तदसावद्य जीत अपवादतः कदाचित्सावद्यमपि जीतं दद्यात्।

४ व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्य गाथा ७१७ :

उसण्णबहुदोसे निद्धधसे पवयणे य निरवेक्खो।
एयारिसमि पुरिसे दिज्जइ सावज्ज जीयपि॥

५ वही, भाष्य गाथा ७१८

सविग्गे पियधम्मे अपमत्ते य वज्जभीरुम्मि
कम्हिइयमाइ खलिए देयमसावज्ज जीय तु।

६ वही, भाष्य गाथा ७२० :

ज जीयमसोहिकर पासत्थपमत्तसजयाईण्ण।
जइवि महाजणाइन्न न तेन जीएण ववहारो॥

७ वही, भाष्यगाथा ७२१.

ज जीय सोहिकर सवेगपरायणेन दतेण।
एगेण वि आइन्न तेण उ जीएण ववहारो॥

८८. (सू० १३२)

देखें—१०।८५ का टिप्पण।

८९. (सू० १३३)

वृत्तिकार ने बोधि का अर्थ जैन-धर्म किया है।[1] यह एक अर्थ है। बोधि के दूसरे-दूसरे अर्थ भी हैं—ज्ञान, दर्शन और चारित्र प्राप्ति की चिंता आदि-आदि।[2]

प्रस्तुत सूत्र में बोधि-दुर्लभता के पांच स्थान माने हैं।

(१) अर्हत् का अवर्ण बोलना—

'अर्हत् कोई है ही नहीं। वे वस्तुओं के उपभोग के कटु परिणामों को जानते हुए भी उनका उपयोग क्यों करते है? वे समवसरण आदि का आडम्बर क्यों रचते है? —ऐसी बातें करना अर्हत् का अवर्णवाद है।

(उनके अवश्यवेद्य सातावेदनीयकर्म तथा तीर्थंकर नामकर्म के वेदन से निर्जरा होती है। वे वीतराग होते है। अत: समवसरण आदि में उनकी प्रतिबद्धता नहीं होती।)

(२) अर्हत् प्रज्ञप्त धर्म का अवर्ण बोलना—

श्रुतधर्म का अवर्णवाद—प्राकृत साधारण लोगो की भाषा है। शास्त्र प्राकृत भाषा में निबद्ध हैं आदि-आदि।

चारित्रधर्म का अवर्णवाद—चारित्र से क्या प्रयोजन, दान ही श्रेय है—ऐसा कहना धर्म का अवर्णवाद है।

(३) आचार्य, उपाध्याय का अवर्ण बोलना—

ये बालक है, मन्द है आदि-आदि।

(४) चातुर्वर्ण संघ का अवर्ण बोलना—

यहां वर्ण का अर्थ प्रकार है। चार प्रकार का संघ—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका।

यह क्या संघ है जो अपने समवायबल से पशु-संघ की भांति अमार्ग को भी मार्ग की तरह मान रहा है। यह ठीक नहीं है।

(५) तप और ब्रह्मचर्य के परिपाक से देवत्व को प्राप्त देवों का अवर्ण बोलना—

जैसे—देवता नहीं है क्योंकि वे कभी उपलब्ध नहीं होते। यदि वे है तो भी कामासक्त होने के कारण उनमे कोई विशेषता नहीं है।[3]

९०. प्रतिसंलीन (सू० १३५)

प्रतिसंलीनता बाह्य तप का छठा प्रकार है। इसका अर्थ है—विषयो से इन्द्रियो का संहृत कर अपने-अपने गोलक में स्थापित करना तथा प्राप्त विषयों मे राग-द्वेष का निग्रह करना।

उत्तराध्ययन और तत्त्वार्थ सूत्र प्रतिसंलीनता के स्थान पर विविक्तशयनासन, विविक्तशय्या' आदि भी मिलते है।[4] प्रतिसंलीनता के चार प्रकार हैं[5]—

(१) इन्द्रिय प्रतिसंलीनता। (२) कषाय प्रतिसंलीनता। (३) योग प्रतिसंलीनता। (४) विविक्त शयनासन सेवन।

प्रस्तुत सूत्र में इन्द्रिय प्रतिसंलीनता के पांच प्रकारों का उल्लेख है।

विशेष विवरण के लिए देखें—

उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ १६२, १६३।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३०५ : बोधि '—जिनधर्मः।

२. देखें—३।१७६ का टिप्पण।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३०५, ३०६।

४. उत्तराध्ययन ३०।२८, तत्त्वार्थ सूत्र ९।१९।

५. औपपातिक, सूत्र १९।

६१. (सू० १३६)

प्रस्तुत सूत्र मे संयम [चारित्र] के पाँच प्रकार निर्दिष्ट है—

१. सामायिकसयम—सर्व सावद्य प्रवृत्ति का त्याग।

२. छेदोपस्थापनीयसयम—पाँच महाव्रतो को पृथक्-पृथक् स्वीकार करना। विभागश. त्याग करना।

३. परिहारविशुद्धिकसंयम— तपस्या की विशिष्ट साधना करने का उपक्रम।

४. सूक्ष्मसपरायसंयम—यह दशवे गुणस्थानवर्ती सयम है। इसमे क्रोध, मान और माया के अणु उपशान्त या क्षीण हो जाते है, केवल सूक्ष्म रूप मे लोभाणुओं का वेदन होता है।

५. यथाख्यातचारित्र सयम—वीतराग व्यक्ति का चारित्र।

विशेष विवरण के लिए देखे—उत्तरज्झयणाणि २८।३२, ३३ का टिप्पण।

६२. (सू० १४५)

प्राण, भूत, जीव और सत्त्व—ये चार शब्द कभी-कभी एक 'प्राणी' के अर्थ मे भी प्रयुक्त होते है, किन्तु इनका अर्थ भिन्न है। एक प्राचीन श्लोक मे यह भेद स्पष्ट है—

प्राणा द्वित्रिचतु: प्रोक्ता:, भूतास्तु तरव स्मृता:।
जीवा पञ्चेन्द्रिया ज्ञेया, शेषा. सत्त्वा इतीरिता:।।

दो, तीन और चार इन्द्रिय वाले प्राण, वनस्पति जगत् भूत, पञ्चेन्द्रिय जीव और शेष [पानी, पृथ्वी, तेजस् और वायु के जीव] सत्त्व कहलाते है।

६३. (सू० १४६)

अग्रबीज आदि की व्याख्या के लिए देखे—
दसवेआलियं ४। सूत्र ८ का टिप्पण।

६४. आचार (सू० १४७)

आचार शब्द के तीन अर्थ है -
आचरण, व्यवहरण, आसेवन।[1]

आचार मनुष्य का क्रियात्मक पक्ष है। प्रस्तुत सूत्र मे ज्ञान आदि के क्रियात्मक पक्ष का दिशा-निर्देश किया गया है।

(१) ज्ञानाचार—श्रुतज्ञान (शब्दज्ञान) विषयक आचरण।

यद्यपि ज्ञान पाच है किन्तु व्यवहारात्मक ज्ञान केवल श्रुतज्ञान ही है।[2] ज्ञानाचार के आठ प्रकार है[3]—

१. काल—जो कार्य जिस काल म निर्दिष्ट है, उसको उसी काल मे करना।

२ विनय—ज्ञानप्राप्ति के प्रयत्न मे विनम्र रहना।

३. बहुमान—ज्ञान के प्रति आन्तरिक अनुराग।

४. उपधान—श्रुतवाचन के समय किया जाने वाला तप।

५. अनिण्हवन—अपने वाचनाचार्य का गोपन न करना।

६. व्यजन—सूत्र का वाचन करना।

---

१. (क) स्थानागवृत्ति, पत्र ६०·
आचरणमाचारो व्यवहार.।
(ख) वही, पत्र, ३०६·
आचरणमाचारो ज्ञानादिविषयासेवेत्यर्थ·।

२. अनुयोगद्वार सूत्र २।

३. निशीथ भाष्य, गाथा ८.
काले विणये बहुमाने, उवधाने तहा अणिण्हवणे।
वजणअत्थतदुभए, अट्ठविधो णाणमायारो।।

७. अर्थ—अर्थबोध करना।

८. सूत्रार्थ—सूत्र और अर्थ का बोध करना।[1]

(२) दर्शनाचार—सम्यक्त्व विषयक आचरण। इसके आठ प्रकार है—नि.शंकित, नि:कांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपबृहण, स्थिरीकरण, वत्सलता और प्रभावना।[2]

(३) चारित्राचार—समिति-गुप्ति रूप आचरण। इसके आठ प्रकार हैं[3]—पांच समितियों और तीन गुप्तियों का प्रणिधान[4]।

(४) तप आचार—बारह प्रकार की तपस्याओं मे कुशल तथा अग्लान रहना।[5]

(५) वीर्याचार—ज्ञान आदि के विषय मे शक्ति का अगोपन तथा अनतिक्रम।

६५. आचारप्रकल्प (सू० १४८)

इसका अर्थ है—निशीथ नाम का अध्ययन। यह आचाराग की एक चूलिका है। इसमें पाच प्रकार के प्रायश्चित्तों का वर्णन है। इनके आधार पर निशीथ के भी पाच प्रकार हो जाते हैं।

६६. आरोपणा (सू०१४६)

इसका अर्थ है—एक दोष से प्राप्त प्रायश्चित्त मे दूसरे दोष के आसेवन से प्राप्त प्रायश्चित्त का आरोपण करना। इसके पाच प्रकार है—

१. प्रस्थापिता—प्रायश्चित्त मे प्राप्त अनेक तपों मे से किसी एक तप को प्रारभ करना।

२. स्थापिता—प्रायश्चित्त रूप से प्राप्त तपों को स्थापित किए रखना, वैयावृत्य आदि किसी प्रयोजन से प्रारम्भ न कर पाना।

३ कृत्स्ना—वर्तमान जैन शासन मे तप की उत्कृष्ट अवधि छह मास की है। जिसे इस अवधि से अधिक तप (प्रायश्चित्त रूप मे) प्राप्त न हो उसकी आरोपणा को अपनी अवधि में परिपूर्ण होने के कारण कृत्स्ना कहा जाता है।

४. अकृत्स्ना—जिसे छह मास से अधिक तप प्राप्त हो उसकी आरोपणा अपनी अवधि मे पूर्ण नही होती। प्रायश्चित्त के रूप मे छह मास से अधिक तप नही किया जाता। उसे उसी अवधि में समाहित करना होता है। इसलिए अपूर्ण होने के कारण इसे अकृत्स्ना कहा जाता है।

५. हाडहडा—जो प्रायश्चित्त प्राप्त हो उसे शीघ्र ही दे देना।

६७-१०२. (सू० १६५)

दुर्ग—दुर्ग का अर्थ है—ऐसा स्थान जहां कठिनाइयों से जाया जाता है। दुर्ग के तीन प्रकार है[6]—

१. वृक्षदुर्ग—सघन झाडी।

२. श्वापद दुर्ग—हिंस्र पशुओं का निवास स्थान।

३. मनुष्यदुर्ग—म्लेच्छ मनुष्यों की वसति।

---

१. निशीथ भाष्य, गाथा ६-२०।

२. देखें—उत्तरज्झयणाणि २८।३५ का टिप्पण।

३. निशीथ भाष्य, गाथा ३५ :
परिणाणजोगजुत्तो, पंचहि समितीहिं तिहिं य गुत्तीहिं।
एस चरित्ताचारो अट्ठविहो होति णायव्वो॥

४. देखें—उत्तरज्झयणाणि, अध्ययन २४।

५. देखें—उत्तरज्झयणाणि अध्ययन ३०।

६, स्थानांगवृत्ति, पत्र ३११ : दुःखेन गम्यत इति दुर्गः, स च त्रिधा—वृक्षदुर्गं श्वापददुर्गो मलेच्छादिमनुष्यदुर्गः।

प्रस्खलन, प्रपतन—वृत्तिकार ने प्रस्खलन और प्रपतन का भेद समझाते हुए एक प्राचीन गाथा का उल्लेख किया है। उसके अनुसार भूमि पर न गिरना अथवा हाथ या जानु के सहारे गिरना प्रस्खलन है और भूमि पर धड़ाम से गिर पड़ना प्रपतन है।[1]

क्षिप्तचित्त—राग, भय, मान, अपमान आदि से होने वाला चित्त का विक्षेप।[2]

दृप्तचित्त—लाभ, ऐश्वर्य, श्रुत आदि के मद से दृप्त अथवा सन्मान तथा दुर्जय शत्रु को जीतने से होने वाला दर्प।[3]

यक्षाविष्ट—पूर्वभव के वैर के कारण अथवा राग आदि के कारण देवता द्वारा अधिष्ठित।[4]

उन्मादप्राप्त—उन्माद दो प्रकार का होता है[5]—

(१) यक्षावेश—देवता द्वारा प्राप्त उन्माद।

(२) मोहनीय—रूप, शरीर आदि को देखकर अथवा पित्तमूर्च्छा से होने वाला उन्माद।

१०३ (सू० १६६)

जैन शासन मे व्यवस्था की दृष्टि से सात पदो का निर्देश है। उनमे आचार्य और उपाध्याय—दो पृथक् पद हैं। सूत्र के अर्थ की वाचना देने वाले आचार्य और सूत्र की वाचना देने वाले उपाध्याय कहलाते थे। कभी-कभी दोनों कार्य एक ही व्यक्ति सपादित करते थे।

किसी को अर्थ की वाचना देने के कारण वह आचार्य और किसी दूसरे को सूत्र की वाचना देने के कारण वह उपाध्याय कहलाता था ?[6]

प्रस्तुत सूत्र (१६६) मे आचार्य-उपाध्याय के पाँच अतिशेष बतलाए है। अतिशेष का अर्थ है—विशेष विधि। व्यवहार सूत्र (६/२) मे भी ये पाच अतिशेष निर्दिष्ट हैं। व्यवहार भाष्यकार ने इनका विस्तार से वर्णन करते हुए प्रत्येक अतिशेष के उपायो का निर्देश भी किया है।

१. पहला अतिशेष है—बाहर से आकर उपाश्रय मे पैरों की धूलि को झाड़ना। धूली को यननापूर्वक न झाड़ने से होने वाले दोषो का उल्लेख इस प्रकार है—

(१) प्रमार्जन के समय चरणधूलि तपस्वी आदि पर गिरने से वह कुपित होकर दूसरे गच्छ मे जा सकता है।

(२) कोई राजा आदि विशेष व्यक्ति प्रव्रजित है उस पर धूल गिरने से वह आचार्य को बुरा-भला कह सकता है।

(३) शैक्ष भी धूलि से स्पृष्ट होकर गण से अलग हो सकता है।[7]

२. दूसरा अतिशेष है—उपाश्रय मे उच्चार-प्रस्रवण का व्युत्सर्जन और विशोधन करना।

आचार्य-उपाध्याय शौचकर्म के लिए एक बार बाहर जाए। बार-बार बाहर जाने से अनेक दोष उत्पन्न हो सकते हैं—

(१) जिस रास्ते से आचार्य आदि जाते है, उस रास्ते मे स्थित व्यापारी लोग आचार्य आदि को देखकर उठते हैं, वन्दन आदि करते हैं। यह देखकर दूसरे लोगो के मन मे भी उनके प्रति पूजा का भाव जागृत होता है। आचार्य आदि के

---

१ स्थानांग वृत्ति, पत्र ३११ :

"भूमीए असपत्त पत्त वा हत्थजाणुगादीहिं।
पक्खलण नायव्व पवडण भूमीए गत्तेहिं॥"

२ वही, पत्र ३१२ : क्षिप्त—नष्ट रागभयापमानैश्चित्त यस्याः सा क्षिप्तचित्ता।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३१२ : दृप्त सन्मानात् दर्पवच्चित्त यस्या. सा दृप्तचित्ता।

४. वही, पत्र ३१२ : यक्षेण देवेन आविष्टा— अधिष्ठिता यक्षाविष्टा।

५ वही, पत्र ३१२ :

उम्माओ खलु दुविहो जक्खाएसो य मोहणिज्जो य।
जक्खाएसो वुत्तो मोहेण इमं तु वोच्छामि॥

६ स्थानागवृत्ति, पत्र ३१३ : आचार्यश्चासावुपाध्यायश्चेत्याचार्योपाध्याय, स हि केषाञ्चिदर्थदायकत्वादाचार्योऽन्येषा सूत्रदायकत्वादुपाध्याय इति।

७ व्यवहार, उद्देशक ६, भाष्य गाथा ८३ आदि।

बार-बार बाहर जाने से वे लोग उनको देखते हुए भी नहीं देखने वालों की तरह मुंह मोड़ कर वैसे ही बैठे रहते हैं। यह देख कर अन्य लोगों के मन में भी विचिकित्सा उत्पन्न होती है और वे भी पूजा-सत्कार करना छोड़ देते हैं।

(२) लोक मे विशेष पूजित होते देख कोई द्वेषी व्यक्ति उनको विजन में प्राप्त कर मार डालता है।

(३) कोई व्यक्ति आचार्य आदि का उड्डाह करने के लिए जंगल मे किसी नपुंसक दासी को भेजकर उन पर झूठा आरोप लगा सकता है।

(४) अज्ञानवश गहरे जंगल में चले जाने से अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती हैं।

(५) कोई वादी ऐसा प्रचार कर सकता है कि वाद के डर से आचार्य शौच के लिए चले गए। अरे! मेरे भय से उन्हें अतिसार हो गया है। चलो, मेरे भय से ये मर न जाएं। मुझे उनसे वाद नही करना है।

(६) राजा आदि के बुलाने पर, समय पर उपस्थित न होने के कारण राजा आदि की प्रव्रज्या या श्रावकत्व के ग्रहण मे प्रतिरोध हो सकता है।

(७) सूत्र और अर्थ की परिहानि हो सकती है।

३ तीसरा अतिशेष है—सेवा करने की ऐच्छिकता।

आचार्य का कार्य है कि वे सूत्र, अर्थ, मंत्र, विद्या, निमित्तशास्त्र, योगशास्त्र का परावर्तन करें तथा उनका गण मे प्रवर्तन करे। सेवा आदि मे प्रवृत्त होने पर इन कार्यों मे व्याघात आ सकता है।

व्यवहार भाष्यकार ने सेवा के अन्तर्गत भिक्षा प्राप्ति के लिए आचार्य के गोचरी जाने, न जाने के संदर्भ में बहुत विस्तृत चर्चा की है।[1]

४ चौथा अतिशेष है—एक-दो रात उपाश्रय मे अकेले रहना।

सामान्यतः आचार्य-उपाध्याय अकेले नहीं रहते। उनके साथ सदा शिष्य रहते ही हैं। प्राचीन काल में आचार्य पर्व-दिनों[2] मे विद्याओं का परावर्तन करते थे। अतः एक दिन-रात अकेले रहना पड़ता था अथवा कृष्णा चतुर्दशी अमुक विद्या साधने का दिन है और शुक्ला प्रतिपदा अमुक विद्या साधने का दिन है, तब आचार्य तीन दिन-रात तक अकेले अज्ञात मे रहते है। सूत्र मे 'वा' शब्द है। भाष्यकार ने 'वा' शब्द से यह भी ग्रहण किया है कि आचार्य महाप्राण आदि ध्यान की साधना करते समय अधिक काल तक भी अकेले रह सकते हैं। इसके लिए कोई निश्चित अवधि नहीं होती। जब तक पूरा लाभ न मिले या ध्यान का अभ्यास पूरा न हो, तब तक वह किया जा सकता है।

महाप्राणध्यान की साधना का उत्कृष्ट काल बारह वर्ष का है। चक्रवर्ती ऐसा कर सकते हैं। वासुदेव, बलदेव के वह छह वर्ष का होता है। माडलिक राजाओ के तीन वर्ष का और सामान्य लोगों के छह मास का होता है।[3]

५. पाचवा अतिशेष है—एक-दो रात उपाश्रय से बाहर अकेले रहना।

मन्त्र, विद्या आदि की साधना करते समय जब आचार्य वसति के अन्दर अकेले रहते है—तब सारा गण बाहिर रहता है और जब गण अन्दर रहता है तब आचार्य बाहर रहते है क्योकि विद्या आदि की साधना मे व्याक्षेप तथा अयोग्य व्यक्ति मंत्र आदि को सुनकर उसका दुरुपयोग न करे, इसलिए ऐसा करना होता है।[4]

व्यवहारभाष्य ने आचार्य के पाच अतिशेष और गिनाए है।[5] वे प्रस्तुत सूत्रगत अतिशेषो से भिन्न प्रकार के है।

---

१ देखें—व्यवहार, उद्देशक ६, भाष्य गाथा—१२३-२२७।

२ पर्व का एक अर्थ है—मास और अर्द्धमास के बीच की तिथि। अर्द्धमास के बीच की तिथि अष्टमी और मास के बीच की तिथि कृष्णा चतुर्दशी को पर्व कहा जाता है। इन तिथियों में विद्याएं साधी जाती हैं तथा चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के दिनों को भी पर्व माना जाता है। (व्यवहारभाष्य ६।२५२ :

पक्खस्स अट्ठमी खलु मासस्स य पक्खिअं मुणेयव्वं।
अण्णंपि होइ पव्वं उवरागो चंदसूराणं॥)

३. व्यवहार, उद्देशक ६, भाष्यगाथा २५५

बारहवासा भरहाहिवस्स, छच्चेव वासुदेवाण।
तिण्णि य मंडलियस्स, छम्मासा पागयजणस्स॥

४. वही, भाष्य गाथा २५८ :

मा अतो गणी व गणी विक्खेवो मा हु होज्ज अग्गहणं।
वसते हि परिक्खित्तो उ अत्थते कारणे तेहिं॥

५. वही, भाष्य गाथा २२८।

अन्नेवि अत्थि भणिया, अतिसेसा पंच होंति आयरिए।

(१) उत्कृष्टभक्त—जो कालानुकूल और स्वभावानुकूल हो वैसा भोजन करना।

(२) उत्कृष्टपान—जिस क्षेत्र या काल मे जो उत्कृष्ट पेय हो वह देना।

(३) वस्त्र प्रक्षालन।

(४) प्रशंसन।

(५) हाथ, पैर, नयन, दात आदि धोना।

मुख और दांत को धोने से जठराग्नि की प्रबलता होती है, आंख और पैर धोने से बुद्धि और वाणी की पटुता बढ़ती है तथा शरीर का सौन्दर्य भी वृद्धिगत होता है।[1]

आचार्यों के ये अतिशेष इसलिए है कि—

१. वे तीर्थंकर के सदेशवाहक होते हैं।

२. वे सूत्र और अर्थरूप प्रवचन के दायक होते है।

३. उनकी वैयावृत्त्य करने से महान् निर्जरा होती है।

४. वे सापेक्षता के सूत्रधार होते हैं।

५. वे तीर्थ की अव्यवच्छित्ति के हेतु होते हैं।[2]

१०४. (सू० १६७)

१. गणापक्रमण का पहला कारण है—आज्ञा और धारणा का सम्यग् प्रयोग न होना। वृत्तिकार ने इसके उदाहरण स्वरूप कालिकाचार्य का उल्लेख किया है। उनका कथानक इस प्रकार है—

उज्जैनी नगरी मे आर्यकालक विहरण कर रहे थे। वे सूत्र और अर्थ के धारक थे। उनका शिष्य-परिवार बहुत बडा था। उनके एक प्रशिष्य का नाम सागर था। वह भी सूत्र और अर्थ का धारक था। वह सुवर्णभूमि मे विहरण कर रहा था।

आर्यकालक के शिष्य अनुयोग सुनना नही चाहते थे। आचार्य ने उन्हें अनेक प्रकार से प्रेरणाएँ दी, परन्तु वे इस ओर प्रवृत्त नही हुए। एक दिन आचार्य ने सोचा—'मेरे ये शिष्य अनुयोग सुनना नही चाहते। अत: इनके साथ मेरे रहने मे क्या लाभ हो सकता है ? मैं वहाँ जाऊँ, जहाँ अनुयोग का प्रवर्तन हो सके। एक बार मैं इन्हे छोड़कर चला जाऊँगा तो इन्हे भी अपनी प्रवृत्ति पर पश्चात्ताप होगा और सम्भव है इसके मन मे अनुयोग-श्रवण के प्रति उत्सुकता उत्पन्न हो जाए।' आचार्य ने शय्यातर को बुलाकर कहा—'मैं अन्यत्र कही जाना चाहता हूँ। शिष्यो के पूछने पर तुम उन्हें कुछ भी मत बताना। जब ये तुम्हे बार-बार पूछे और विशेष आग्रह करे तो तुम उनकी भर्त्सना करते हुए कहना कि आचार्य अपने प्रशिष्य सागर के पास सुवर्णभूमि मे चले गए है।

शय्यातर को यह बात बताकर आचार्य कालक रात मे ही वहाँ से चल पडे। सुवर्णभूमि मे पहुँचे। वे आचार्य सागर के गण में रहने लगे।[3]

२. दूसरा कारण है—वदन और विनय का सम्यक् प्रयोग न कर सकना।

जैन परम्परा की गण-व्यवस्था मे आचार्य का स्थान सर्वोपरि है। वे वय, श्रुत और दीक्षा-पर्याय मे ज्येष्ठ हो ही, ऐसा नियम नही है। अत. उनका यह कर्त्तव्य है कि वे प्रतिक्रमण तथा क्षमायाचना के समय उचित विनय का प्रवर्तन करें। जो पर्याय-स्थविर तथा श्रुत-स्थविर है उनका वन्दन आदि से सम्मान करे। यदि वे अपनी आचार्य सम्पदा के अभिमान से ऐसा नही कर पाते तो वे गण से अपक्रमण कर देते है।

३. यदि आचार्य यह जान ले कि उनका शिष्य वर्ग अविनीत हो गया है, अत: सुख-सुविधाओ का अभिलाषी बन गया है, मन्द-प्रज्ञा वाला है—ऐसी स्थिति मे अपने द्वारा श्रुत का उन्हें अध्यापन करना सहज नही है, तब मे गणापक्रमण कर देते

---

१. व्यवहार, उद्देशक ६, भाष्य गाथा २३७ :
मुखनयणदंतपायादि धोवणे को गुणोत्ति ते बुद्धी।
अग्गि मतिवाणिपडुया तो होइ अणोतप्पया चेव ॥

२ वही, भाष्य गाथा १२२।

३. पूरे विवरण के लिए देखें—
बृहत्कल्प भाग १, पृष्ठ ७३,७४।

हैं। यह वृत्तिसम्मत अर्थ है, किन्तु पाठ की शब्दावली से यह अर्थ ध्वनित नहीं होता। इसकी ध्वनि यह है—आचार्य उपाध्याय अपने प्रमाद आदि कारणों से सूत्रार्थ की समुचित ढंग से वाचना न देने पर गणापक्रमण के लिए बाध्य हो जाते है।

४. जब आचार्य अपने निकाचित कर्मों के उदय के कारण अपने गण की या दूसरे गण की साध्वी मे आसक्त हो जाते हैं तो वे गण छोड़कर चले जाते है। अन्यथा प्रवचन का उड्डाह होता है।

साधारणतया आचार्य की ऐसी स्थिति नहीं आती, किन्तु—

'कम्माइं नूणं घणचिक्कणाइं गरुयाइ वज्जसाराइं।
नाणड्ढयपि पुरिसं पंथाओ उप्पहं निंति॥'

—जिस व्यक्ति के कर्म सघन, चिकने और वज्र की भांति गुरुक है, ज्ञानी होने पर भी, उसको वे पथच्युत कर देते हैं।

५. जब आचार्य यह देखें कि उनके सगे-सम्बन्धी किसी कारणवश गण से अलग हो गए है तो उन्हें पुन. गण में सम्मिलित करने के लिए तथा उन्हें वस्त्र आदि का सहयोग देने के लिए स्वयं गण से अपक्रमण करते है और अपना प्रयोजन सिद्ध होने पर पुनः गण मे सम्मिलित हो जाते है।[1]

१०५. (सू० १६८)

सामान्यत: ऋद्धि का अर्थ है—ऐश्वर्य, सम्पदा। प्रस्तुत सूत्र मे उसका अर्थ है—योगविभूतजन्य शक्ति। जो इससे सम्पन्न है, उसे ऋद्धिमान कहा गया है।

वृत्तिकार ने अनेक योग-शक्तियों का नामोल्लेख किया है।[2]

१. आमर्षौषधि, २. विप्रुडोषधि, ३. क्ष्वेलौषधि, ४. जल्लौषधि, ५. सर्वौषधि, ६. आसीविषत्व—शाप और वर देने का सामर्थ्य। ७. आकाशगामित्व, ८. क्षीणमहानसिकत्व, ९. वैक्रियकरण, १० आहारकलब्धि, ११. तेजोलब्धि, १२. पुलाकलब्धि, १३. क्षीराश्रवलब्धि, १४. मध्वाश्रवलब्धि, १५. सर्पिराश्रवलब्धि, १६. कोष्ठबुद्धिता, १७. बीजबुद्धिता, १८. पदानुसारिता, १९. सभिन्नश्रोतोलब्धि—एक साथ सभी शब्दो को सुनना। २०. पूर्वधरता, २१. अवधिज्ञान, २२. मन पर्यवज्ञान, २३. केवलज्ञान, २४. अर्हत्व, २५. गणधरता, २६. चक्रवर्तित्व, २७. बलदेवत्व, २८. वासुदेवत्व आदि-आदि।

ये लब्धियां या पद कर्मों के उदय, क्षय, उपशम, क्षयोपशम से प्राप्त होते हैं।

प्रस्तुत सूत्र मे पांच प्रकार के ऋद्धिमान् पुरुषो का उल्लेख है। उनमें प्रथम चार की ऋद्धिमत्ता, उनकी विशेष लब्धियाँ तथा तत्-तत् पद की अर्हता से है। भावितात्मा अनगार की ऋद्धिमत्ता केवल आमर्षौषधि आदि विभिन्न प्रकार की योग-जन्य लब्धियो से है।[3]

जिसकी आत्मा अभय, सहिष्णुता आदि भावनाओ तथा अनित्य, अशरण आदि बारह भावनाओ तथा प्रमोद आदि चार भावनाओ से भावित होती है, उसे भावितात्मा अनगार कहा जाता है।

१०६, १०७. (सू० १७८, १७९)

प्रस्तुत दो सूत्रो मे अधोलोक और ऊर्ध्वलोक मे पांच-पांच प्रकार के बादर जीवों का निर्देश है। इनमे तेजस्कायिक जीवो का उल्लेख नहीं है। वृत्तिकार ने बताया है कि अधोलोक के ग्रामो में बादरतेजस् की अत्यन्त न्यूनता होती है। अत: उसकी विवक्षा नहीं की गई है। सामान्यत: वह तिर्यग्लोक मे ही उत्पन्न होता है।

विशेष विवरण के लिए देखें—प्रज्ञापना पद दो, मलयगिरिवृत्ति।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३१५।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३१५।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३१६ : एतेषा च ऋद्धिमत्त्वमामर्षौषध्या-विभिरर्हदादीनां तु चतुर्णां यथासम्भवमामर्षौषध्यादिनार्हं-त्वादिना चेति।

इन सूत्रों मे त्रस प्राणी के साथ 'ओराल' (सं० उदार) शब्द का प्रयोग है। उसका अर्थ है—स्थूल। तेजस् और वायुकायिक जीवो को भी त्रस कहा जाता है। उनका व्यवच्छेद कर द्वीन्द्रिय आदि जीवों का ग्रहण करने के लिए त्रस के साथ ओराल शब्द का प्रयोग किया गया है।[1]

१०८. (सू० १८३)

यह पांच प्रकार की वायु उत्पत्ति काल मे अचेतन होती है और परिणामान्तर होने पर सचेतन भी हो सकती है।[2]

१०९. (सू० १८४)

१. पुलाक—निःसार धान्यकणों की भांति जिसका चरित्र निःसार हो उसे पुलाकनिर्ग्रन्थ कहते हैं। इसके दो भेद हैं—लब्धिपुलाक तथा प्रतिषेवापुलाक। संघ-सुरक्षा के लिए पुलाक-लब्धि का प्रयोग करने वाला लब्धिपुलाक कहलाता है तथा ज्ञान आदि की विराधना करने वाला प्रतिषेवापुलाक कहलाता है।

२. बकुश—शरीरविभूषा आदि के द्वारा उत्तरगुणो मे दोष लगाने वाला बकुश निर्ग्रन्थ कहलाता है। इसके चरित्र मे शुद्धि और अशुद्धि दोनों का सम्मिश्रण होने के कारण शबल—विचित्र वर्ण वाले चित्र की तरह विचित्रता होती है।

३. कुशील—मूल तथा उत्तरगुणो मे दोष लगाने वाला कुशील निर्ग्रन्थ कहलाता है। इसके प्रमुख रूप से दो प्रकार हैं—प्रतिषेवनाकुशील तथा कषायकुशील। दोनो के पाँच-पाँच प्रकार हैं—

प्रतिषेवनाकुशील—

(१) ज्ञानकुशील
(२) दर्शनकुशील
(३) चरित्रकुशील
(४) लिंगकुशील
(५) यथासूक्ष्मकुशील

कषायकुशील—

(१) ज्ञानकुशील—सज्वलन कषाय वश ज्ञान का प्रयोग करने वाला।
(२) दर्शनकुशील—सज्वलन कषाय वश दर्शन का प्रयोग करने वाला।
(३) चरित्रकुशील—सज्वलन कषाय मे आविष्ट होकर किसी को शाप देने वाला।
(४) लिंगकुशील—कषायवश अन्य साधुओ का वेष करने वाला।
(५) यथासूक्ष्मकुशील—मानसिक रूप से सज्वलन कषाय करने वाला।

११० (सू० १९०)

प्रस्तुत सूत्र मे पाँच प्रकार के वस्त्र बतलाये है। उनका विवरण इस प्रकार है—

१ जागमिक—जगम (त्रस) जीवो से निष्पन्न। यह दो प्रकार का होता है।[3]—

(क) विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय) जीवो से निष्पन्न। इसके अनेक प्रकार हैं—

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३१९ . नवरमधऊर्ध्वलोकयोस्तैजसा बादरा न सन्तीति पच ते उक्ता, अन्यथा षट् स्युरिति, अधोलोकग्रामेषु ये बादरास्तैजसास्त अल्पतया न विवक्षता, ये चोर्द्ध्वकपाटद्वये ते उत्पत्तुकामत्वेनोत्पत्तिस्थानास्थितत्वादिति, 'ओरालतम' त्ति त्रसत्व तेजोवायुष्वपि प्रसिद्धं अतस्तद्व्यवच्छेदेन द्वीन्द्रियादिप्रतिपत्त्यर्थमोरालग्रहण, ओराला—स्थूला एकेन्द्रियापेक्षयेति।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३१९ : एते च पूर्वमचेतनास्तत सचेतना अपि भवन्तीति।

३. बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३६६१ :
अगमजाय अगिय, त पुण विगलिंदिय च पंचिंदी।
एक्केक्क पि य एत्तो, होति विभागेणऽणेगविह ॥

(१) पट्टज—रेशमी वस्त्र ।

(२) सुवर्णज—कृमियों से निष्पन्न सूत्र, जो स्वर्ण के वर्ण का होता है ।[१]

(३) मलयज—मलण देश के कीड़ों से निष्पन्न वस्त्र ।[२]

(४) अंशुक—चिकने रेशम से बनाया गया वस्त्र ।[३]

प्रारम्भ मे यह वस्त्र सफेद होता था । बाद में रक्त, नील, श्याम आदि रगों में रंगा जाता था ।[४]

(५) चीनाशुक—कोशिकार नामक कीड़े के रेशम से बना वस्त्र अथवा चीन देश में उत्पन्न अत्यन्त मुलायम रेशम से बना वस्त्र ।[५]

निशीथ की चूर्णि मे सूक्ष्मतर अशुक को चीनाशुक अथवा चीन देश में उत्पन्न वस्त्र को चीनाशुक माना है ।[६] आचाराग के वृत्तिकार शीलाकसूरि ने अंशुक और चीनांशुक को नाना देशो मे प्रसिद्ध मात्र माना है ।[७]

विशेषावश्यक भाष्य की वृत्ति मे 'कीटज' के अन्तर्गत पाँच प्रकार के वस्त्र गिनाए गए है—पट्ट, मलय, अशुक, चीनांशुक और कृमिराग और इन सबको पट्टसूत्र विशेष माना है ।[८] इतना तो निश्चित है कि ये पाँचो प्रकार कृमि की लाला से बनाए जाते थे ।

(ख) पचेन्द्रिय जीवो से निष्पन्न । इसके अनेक प्रकार है—

(१) औणिक—भेड के बालों से बना वस्त्र ।

(२) औष्ट्रिक—ऊँट के बालो से बना वस्त्र ।

(३) मृगरोमज—इसके अनेक अर्थ है—मृग के रोएँ से बना वस्त्र ।[९]

- खरगोश या चूहे के रोएँ से बना वस्त्र ।[१०]
- बालमृग के रोएँ से बना वस्त्र ।[११]
- रकु मृग के रोएँ से बना वस्त्र, जिसे 'राकव' कहा जाता था ।[१२]

(४) कुतप—चर्म से निष्पन्न वस्त्र ।[१३] बकरी के रोएँ या चर्म से निष्पन्न वस्त्र ।[१४] बाल मृग के सूक्ष्म रोएँ से बना वस्त्र ।[१५] देशान्तरों मे प्रसिद्ध कुतप रोएँ से बना वस्त्र ।[१६] चूहे के चर्म से बना वस्त्र ।[१७] चूहे के रोएँ से बना वस्त्र ।[१८]

(५) किट्ट—भेड आदि के रोम विशेष से बना वस्त्र ।[१९] यहाँ अप्रसिद्ध, देशान्तरो मे प्रसिद्ध रोम विशेष से बना वस्त्र ।[२०]

---

१ बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३६६२, वृत्ति—
'सुवन्ने' त्ति सुवर्णवर्णं सूत्र केषाञ्चित् कृमीणां भवति तन्निष्पन्न सुवर्णसूत्रजम् ।

२. वही, गाथा ३६६२ वृत्ति—
मलयो नाम देशस्तत्सभव मलयजम् ।

३ वही, गाथा ३६६२, वृत्ति—
अशुक श्लक्ष्णपट तन्निष्पन्नमशुकम् ।

४. यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ १२६, १३० ।

५. बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३६६२, वृत्ति—
चीनांशुको नाम कोशिकाराख्य: कृमिस्तस्माद् जात चीनाशुकम् ।

६ निशीथ ६।१०-१२ की चूर्णि ·
सुहमतर चीणसुय भण्णति । चीणविसए वा ज त चीणसुय ।

७. आचारांगवृत्ति, पत्र ३६२
अशुकचीनांशुकादीनि नानादेशेषु प्रसिद्धाभिधानानि ।

८. विशेषावश्यक भाष्य, गाथा ८७८, वृत्ति—
कीटज तु पचविधम्, तद्यथा—पट्टे, मलये, असुए, चीणंसुय, किमिराए'—एते पञ्चापि पट्टसूत्रविशेषा ।

९. निशीथ भाष्य, गाथा ७६० चूर्णि ·
मियाणलोमेसु मियलोमिय ।

१० स्थानांगवृत्ति, पत्र ३२१ :
मृगरोमजं—शशलोमज मूषकरोमज वा ।

११. विशेषचूर्णि (बृहत्कल्पभाष्य, भाग ४, पृष्ठ १०१८ मे उद्धृत)
मियलोमे पम्वएयाण रोमा ।

१२ अभिधान चिन्तामणि कोष ३।३३४
राकव मृगरोमजम् ।

१३. बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३६६१, वृत्ति—
कुपतो-जीणम् ।

१४ बृहत्कल्पचूर्णि :—कुतव छागल ।

१५ विशेषचूर्णि. (बृहत्कल्प भाष्य, भाग ४, पृष्ठ १०१८ मे उद्धृत)
कुतवो तस्सेव अवयवा ।

१६. निशीथभाष्य, गाथा ७६०, चूर्णि—
कुतवकिट्टावि रोमविसेसा चेव देसतरे, इह अपसिद्धा ।

१७. आचाराग वृत्ति, पत्र ३६२ ।

१८. विशेषावश्यक भाष्य, गाथा ८७८, वृत्ति—
तत्र मूषिकलोमनिष्पन्न कौतवम् ।

१९. वही, गाथा ८७८, वृत्ति—

२०. वही, गाथा ८७८, वृत्ति—

बकरी के रोएँ से बना वस्त्र ।[1] भेड़ आदि के रोमों के मिश्रण से बना वस्त्र ।[2]

अश्व आदि के लोम से निष्पन्न वस्त्र ।[3]

प्राचीनकाल मे भेडों, ऊँटो, मृगो तथा बकरो के रोएँ को ऊखल में कूटकर वस्त्र जमाए जाते थे। उनको नमदे कहा जाता था। कुट्ट शब्द इसी का द्योतक है। निशीथ भाष्यवृत्ति मे दुगुल्ल और तिरीड वृक्ष की त्वचाओं को कूटकर नमदे बनाने का उल्लेख है।[4]

५. भांगिक—इसके दो अर्थ हैं --

(१) अतसी से निष्पन्न वस्त्र ।[5]

(२) वंशकरील के मध्य भाग को कूटकर बनाया जाने वाला वस्त्र ।[6]

६ तिरीटपट्ट—लोध्र की छाल से बना वस्त्र। तिरीड वृक्ष की छाल के तंतु सूत के तंतु के समान होते हैं। उनसे बने वस्त्र को तिरीटपट्ट कहा जाता है।[7]

आचारांग की वृत्ति में जांगिक का अर्थ ऊँट आदि की ऊन से निष्पन्न वस्त्र तथा भांगिक का अर्थ—विकलेन्द्रिय जीवो की लाला से निष्पन्न सूत से बने वस्त्र किया है।[8]

अनुयोगद्वार मे पांच प्रकार के वस्त्र बतलाए है—अडज, बोडज, कीटज, वालज और वल्कज ।[9]

प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित पांच प्रकारो मे इनका समावेश हो जाता है—

जागमिक—अडज, कीटज और बालज ।

भागिक
सानिक } —वल्कज ।
तिरीटपट्ट

पोतक —बोडज ।

वृत्तिकार अभयदेवसूरी ने एक परम्परा का उल्लेख करते हुए कहा है कि यद्यपि मूल सूत्र मे वस्त्रो के पांच प्रकार बतलाए है, परन्तु सामान्य विधि मे मुनि को ऊन तथा सूत के कपड़े ही लेने चाहिए। इनके अभाव मे रेशमी या बल्वज वस्त्र लिए जा सकते है। वे भी अल्प मूल्य वाले होने चाहिए। पाटलीपुत्र के सिक्के से जिसका मूल्य अठारह रुपयो से एक लाख रुपयों तक का हो वह महामूल्य वाला है।[10]

१११, ११२. पच्चापिच्चिय, मुंजापिच्चिय (सू० १६१)

१. 'वच्च' का अर्थ है—एक प्रकार की मोटी घास, जो दर्भ के आकार की होती है।[11] इसे बल्वज [वल्वज] कहते है। 'पिच्चिय' का अर्थ है—कुट्टिक ।[12]

---

१ विशेषचूर्णि (बृहत्कल्पभाष्य, भाग ४ पृष्ठ १०१८ मे उद्धृत)
किट्टिम सछणलियारोम ।

२ विशेषावश्यकभाष्य, गाथा, ८७८, वृत्ति—।

३. विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ८७८, वृत्ति—
अश्वादि जीवलोमनिष्पन्न किट्टिसम् ।

४. निशीथ ६।१०-१२ की चूर्णि ।

५ बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३६६३
अतसीवंशीमादी उ भंगिय ·।

६. वही, गाथा ३६६३ वृत्ति—
वंशकरीलस्य मध्याद् यद् निष्पद्यते तद् वा।

७. निशीथ ६।१०-१२ की चूर्णि —
तिरीडरुक्खस्स वागो, तम्स ततू पट्टसरिसो, सो तिरीलो पट्टो तम्मि कयाणि तिरीडपट्टाणि ।

८ आचारागवृत्ति, पत्र ३६१ ·
जंगिय ति जंगमोष्ट्राद्यूर्णानिष्पन्न, तथा 'भंगिय' ति नानाभंगिकविकलेन्द्रियलालानिष्पन्नम् ।

९. अनुयोगद्वार सूत्र ४० ।

१०. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३२२
महामूल्यता च पाटलीपुत्रीयरूपकाष्टादशकादारभ्य रूपकलक्ष यावदिति ।

११. (क) बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३६७५ वृत्ति बल्वकं—दर्भाकारं तृणविशेषम् ।
(ख) निशीथ भाष्य, गाथा ८२०, चूर्णि—बच्चको—तणविसेसोदर्भाकृतिर्भवति ।
(ग) आप्टे डिक्शनेरी—बल्वज—A Kind of Coarse grass.

१२. निशीथ भाष्य, गाथा ८२०, चूर्णि—पिच्चिउत्ति वा, चिप्पिउत्तिवा, कुट्टितो त्ति वा एगट्ठं ।

धर्मचक्रभूमि देश मे यह प्रथा थी कि लोग इस घास को कूट कर, उसका क्षोद बना लेते थे। फिर उसके टुकड़े-टुकड़े कर उसके 'बोरे' बनाते थे। कहीं-कहीं प्रावरण और बिछौने भी बनाये जाते थे। इनसे सूत निकाल कर रजोहरण गूंथे जाते थे।[1]

२. मूज को कूटकर—मूज को भी इसी प्रकार कूट कर उनसे बने बोरों से तंतु निकाल कर रजोहरण बनाये जाते थे।[2]

ये दोनों प्रकार के रजोहरण प्रकृति से कठोर होते थे। विशेष विवरण के लिए देखें—

१. बृहत्कल्पभाष्य गाथा ३६७३-३६७६।

२. निशीथभाष्य गाथा ८१९ आदि-आदि।

बृहत्कल्प मे 'पिच्चिए' के साथ मे 'चिप्पिए' पाठ मिलता है।[3] इन दोनों मे अर्थ-भेद नहीं है। निशीथचूर्णि में 'पिच्चिअ,' 'चिप्पिअ' और 'कुट्टिअ' को एकार्थक बतलाया गया।[4]

११३. (सू० १९२)

निश्रास्थान का अर्थ है—आलम्बनस्थान, उपाकारक स्थान। मुनि के लिए पाच निश्रास्थान है। उनकी उपयोगिता के कुछेक सकेत वृत्तिकार ने दिए हैं, वे इस प्रकार है—

१. षट्काय—

- पृथ्वी की निश्रा—ठहरना, बैठना, सोना, मल-मूत्र का विसर्जन आदि-आदि।
- पानी की निश्रा—परिषेक, पान, प्रक्षालन, आचमन आदि-आदि।
- अग्नि की निश्रा—ओदन, व्यजन, पानक, आचाम आदि-आदि।
- वायु की निश्रा—अचित्त वायु का ग्रहण, दृति, भस्त्रिका आदि का उपयोग।
- वनस्पति की निश्रा—संस्तारक, पाट, फलक, औषध आदि-आदि।
- त्रस की निश्रा—चर्म, अस्थि, शृंग तथा गोबर, गोमूत्र, दूध आदि-आदि।

२ गण—गुरु के परिवार को गण कहा जाता है। गण मे रहने वाले के विपुल निर्जरा होती है, विनय की प्राप्ति होती है तथा निरतर होनेवाली सारणा-वारणा से दोष प्राप्त नही होते।

३ राजा—राजा निश्रास्थान इसलिए है कि वह दुष्टो को निग्रह कर साधुओ को धर्म-पालन मे आलबन देता है। अराजक दशा मे धर्म का पालन दुर्लभ हो जाता है।

४ गृहपति—वसति या उपाश्रय देनेवाला। स्थानदान सयम साधना का महान् उपकारी तत्त्व है प्राचीन श्लोक है—

'धृतिस्तेन दत्ता मतिस्तेन दत्ता, गतिस्तेन दत्ता सुख तेन दत्तम्।
गुणश्रीसमालिंगितेभ्यो वरेभ्यो, मुनिभ्यो मुदा येन दत्तो निवास:।'

जो मुनि को उपाश्रय देता है, उसने उनको उपाश्रय देकर वस्त्र, अन्न, पान, शयन, आसन आदि सभी कुछ दे दिए।

५. शरीर—कालीदास ने कहा है—'शरीरमाद्य खलु धर्म-साधनम्।' शरीर से धर्म का स्राव होता है, जैसे पर्वत से पानी का—

१,२. बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३६७५, वृत्ति—धर्मचक्रभूमिकादौ देशे 'बच्चकं' दर्भाकार तृणविशेषं 'मुञ्जं च' शरस्तम्बं प्रथम 'चिप्पित्वा' कुट्टयित्वा तदीयो य: क्षोदस्तं कर्तयन्ति। तत. 'तै:' बच्चकसूत्रैर्मुञ्जसूत्रैश्च 'गोणी' बोरको व्यूयते, प्रावरणाऽऽस्तरणानि च 'देशी' देशविशेषं समासाद्य कुर्वन्ति। अतस्तन्निष्पन्नं रजोहरणं बच्चकचिप्पकं मुञ्जचिप्पकं वा भण्यते।

३. बृहत्कल्प, उद्देशक २, चतुर्थ विभाग, पृष्ठ १०२२।

४ निशीथभाष्य, गाथा ८२०, चूर्णि—

'शरीरं धर्म-सयुक्तं, रक्षणीय प्रयत्नतः।
शरीराच्छ्रवते धर्मः पर्वतात् सलिल यथा ।।'[१]

११४, निधि (सू० १६३)

निधि का अर्थ है—विशिष्ट वस्तु रखने का भाजन। वृत्तिकार ने पाच निधियो का वर्णन इस प्रकार किया है[२]—

१. पुत्र निधि—पुत्र को निधि इसलिए माना गया है कि वह अर्थोपार्जन कर माता-पिता का निर्वाह करता है तथा उनके आनन्द और सुख का हेतु बनता है।

'जन्मान्तरफल पुण्य, तपोदानसमुद्भवम्।
सन्ततिः शुद्धवश्या हि, परत्रेह च शर्मणे ।।

२. मित्र निधि—मित्र अर्थ और काम का साधक होता है। वह आनन्द का कारण भी बनता है, अत वह निधि है। कहा है—

'कुतस्तस्यास्तु राज्यश्री. कुतस्तस्य मृगक्षेणा।
यस्य शूरं विनीत च, नास्ति मित्रं विचक्षणम् ।।

३. शिल्प निधि—शिल्प का अर्थ है—चित्रकला आदि। यह विद्या का वाचक और पुरुषार्थ का साधन है—

विद्यया राजपूज्यः स्याद् विद्यया कामिनीप्रिय.।
विद्या ही सर्वलोकस्य, वशीकरणकार्मणम् ।।

४. धन निधि—कोश। यह सारे जीवन का आधारभूत तत्त्व है।

५. धान्य निधि—कोष्ठागार। शरीर यापन का यह मुख्य तत्त्व है। 'अन्नं वै प्राणा.'—अन्न जीवन-निर्वाह का अनन्य साधन है।

नीतिवाक्यामृत मे लिखा है—'सर्वसग्रहेषु धान्यसग्रहो महान्'—सभी संग्रहों मे धान्य-सग्रह महत्त्वपूर्ण होता है।[३]

११५. शौच (सू० १६४)

शौच दो प्रकार का होता है—द्रव्यशौच और भावशौच। इस सूत्र मे प्रथम चार द्रव्यशौच के साधक हैं और अन्तिम भाव शौच का साधक है। शौच का अर्थ है—शुद्धि।

१. पृथ्वीशौच—मिट्टी से होने वाली शुद्धि।

२ जलशौच—जल से धोने से होने वाली शुद्धि।

३. तेज शौच—अग्नि या राख से होने वाली शुद्धि।

४. मन्त्रशौच—मन्त्रविद्या से दोषो का अपनयन होने पर होने वाली शुद्धि।

५. ब्रह्मशौच—ब्रह्मचर्य आदि सद् अनुष्ठानो के आचरण से होने वाली शुद्धि।

वृत्तिकार का कथन है कि ब्रह्मशौच से सत्यशौच, तप.शौच, इद्रियनिग्रहशौच और सर्वभूतदयाशौच इन चारो को भी ग्रहण कर लेना चाहिए।[४] लौकिक मान्यता के अनुसार शौच सात प्रकार का है—आग्नेय, वारुण, ब्राह्म्य, वायव्य, दिव्य, पार्थिव और मानस।[५]

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३२२, ३२३।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३२३।

३ नीतिवाक्यामृत १८।६५।

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ३२३ अनेन च सत्यादिशौच चतुर्विधमपि सगृहीत, तच्चेदम्—

"सत्य शौच तप शौच, शौचमिन्द्रियनिग्रह।
सर्वभूतदयाशौच जलशौचञ्च पञ्चमम् ।।"

५ वही, पत्र ३२३, ३२४ लौकिकै पुनरिद सप्तधोक्तम्—यदाह—

सप्त स्नानानि प्रोक्तानि, स्वयमेव स्वयभुवा।
द्रव्यभावविशुद्धयर्थमृषीणा ब्रह्मचारिणाम् ।।
आग्नेय वारुणं ब्राह्म्य, वायव्य दिव्यमेव च
पार्थिव मानस चैव स्नान सप्तविध स्मृतम् ।।
आग्नेय भस्मना स्नानमवगाह्य तु वारुण।
आपोहिष्ठामय ब्राह्म्यं, वायव्य तु गवां रज. ।।
सूर्यदृष्ट तु यद्वृष्ट, तद्दिव्यमृषयो विदुः।
पार्थिवं तु मृदा स्नान, मन शुद्धिस्तु मानसम् ।।

पातंजलयोगप्रदीप में शौच के दो प्रकार माने हैं—बाह्य और आभ्यन्तर।

बाह्यशौच—मृत्तिका, जल आदि से पात्र, वस्त्र, स्थान, शरीर के अंगों को शुद्ध रखना, शुद्ध, सात्त्विक और नियमित आहार से शरीर को सात्त्विक, नीरोग और स्वस्थ रखना तथा वस्ती, धोती, नेती आदि से तथा औषधि से शरीर-शोधन करना—ये बाह्यशौच हैं।

आभ्यन्तरशौच—ईर्ष्या, अभिमान, घृणा, असूया आदि मलों को मैत्री आदि से दूर करना, बुरे विचारों को शुद्ध विचारों से हटाना, दुर्व्यवहार को शुद्ध व्यवहार से हटाना मानसिक शौच है।[1]

अविद्या आदि क्लेशों के मलों को विवेक-ज्ञान द्वारा दूर करना चित्त का शौच है।

११६. अधोलोक (सू० १९६)

इस सूत्र मे अधोलोक से सातवा नरक अभिप्रेत है। उसमे ये पांच नरकावास है। इन पांचों को अनुत्तर मानने के दो कारण हैं—

१ इनमे वेदना सर्वोत्कृष्ट होती है।

२. इनसे आगे कोई नरकवास नही है।

वृत्तिकार का यह भी अभिमत हैं कि प्रथम चार नरकावासो को अनुत्तर मानने का कारण उनका क्षेत्र-विस्तार भी है। ये चारों असख्य योजन के अप्रतिष्ठान नरकावास इसलिए अनुत्तर है कि वहा के नैरयिकों का आयुष्य-मान उत्कृष्ट होता है, तेतीस सागर का होता है।[2]

११७. ऊर्ध्वलोक (सू० १९७)

इस सूत्र मे 'ऊर्ध्वलोक' से अनुत्तर विमान अभिप्रेत है। उसमे पांच विमान है। वे पांचों अनुत्तर इसलिए हैं कि उनमें देवो की सपदा और आयुष्य सबसे उत्कृष्ट होता है तथा क्षेत्रमान भी बडा होता है।

११८. (सू० १९८)

देखें—४।४८६ का टिप्पण।

११९. (सू० २००)

देखे—दसवेआलिय ५।१।५१ का टिप्पण।

१२०. (सू० २०१)

देखे—उत्तरज्झयणाणि २।१३ तथा २९। सूत्र ४२ के टिप्पण।

१२१. उत्कल (सू० २०२)

वृत्तिकार ने 'उक्कल' के सस्कृत रूप 'उत्कट' और 'उत्कल' दोनो किए हैं। इसिभासिय के विवरण मे उत्कट ही मिलता है। उत्कट के 'ट' को 'ड' और 'ड' को 'ल' करने पर 'उक्कल' रूप निर्मित होता है। इसका सहज सस्कृत रूप उत्कल है। इसिभासिय में प्रतिपादित सिद्धान्त से उत्कल का अर्थ उच्छेदवादी फलित होता है। इसिभासिय के एक अर्हत् ने पांच

---

१ पातञ्जलयोगप्रदीप, पृष्ठ ३५८, ३५९।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३२४ : 'अहोलोए' त्ति सप्तमपृथिव्यामनुत्तरा.—सर्वोत्कृष्टा उत्कृष्टवेदनादित्वात्तत: पर नरकाभावाद् वा, महत्त्वं च चतुर्णां क्षेत्रोऽप्यसङ्ख्यातयोजनत्वादप्रतिष्ठानस्य तु योजनलक्षप्रमाणस्येऽप्यायुषोऽतिमहत्त्वान्महत्त्वमिति।

उत्कलों की जो व्याख्या की है वह स्थानांग की व्याख्या से सर्वथा भिन्न है। स्थानांग के मूलपाठ मे उत्कलो के नाम मात्र उल्लिखित है। अभयदेवसूरि ने उनकी व्याख्या किस आधार पर की, यह नही बताया जा सकता। संभवत उनकी व्याख्या का आधार शाब्दिक अर्थ रहा है, किन्तु प्राचीन परम्परा उन्हे भी प्राप्त नही हुई। इसिभासिय मे प्राप्त उत्कल की व्याख्या पढ़ने पर सहज ही ऐसी प्रतीति होती है।

१. दंडोत्कल—दंड के दृष्टान्त द्वारा देहात्मैक्य की स्थापना कर पुनर्जन्म का उच्छेद मानने वाला।

२. रज्जूत्कल—रज्जु के दृष्टान्त द्वारा देहात्मैक्य की स्थापना कर पुनर्जन्म का उच्छेद मानने वाला।

३. स्तैन्योत्कल—दूसरो के शास्त्रो के दृष्टान्तो को अपना बतलाकर पर-कर्तृत्व का उच्छेद करने वाला।

४. देशोत्कल—जीव के अस्तित्व को स्वीकार कर उसके कर्तृत्व आदि धर्मों का उच्छेद मानने वाला।

५. सर्वोत्कल—समस्त पदार्थों का उच्छेद मानने वाला।

प्रथम दो उत्कलों मे दड (डडे) और रज्जु के दृष्टान्त के द्वारा 'समुदयमात्रमिदं कलेवरं' इस चार्वाकीय दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया है—'जिस प्रकार दड का आदि भाग दंड नही है, मध्य भाग दड नही है और अत भाग दड नही है, उसका समुदाय मात्र दड है, वैसे ही पचभूतात्मक शरीर का समुदाय ही आत्मा है, उससे भिन्न कोई आत्मा नही है।'

रज्जु धागो का समूह मात्र है। धागो मे भिन्न उसका अस्तित्व नही है। इसी प्रकार आत्मा भी पंच महाभूतो का समुदाय मात्र है। उससे भिन्न कोई आत्मा नही है। तीसरे उत्कल के द्वारा विचार के अपहरण की प्रवृत्ति बतलाई गई है। चौथे उत्कल के द्वारा आत्मवादियो के एकाङ्गी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया है। पांचवें उत्कल के द्वारा सर्वोच्छेद-वादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया है।[1]

अभयदेवसूरि ने दण्डोत्कट या दण्डोत्कल का अर्थ दण्ड-शक्ति के आधार पर किया है[2]—

१. जिसकी आज्ञा प्रबल हो।

२. जिसका अपराध के लिए दण्ड प्रबल हो।

३. जिसका सेना-बल प्रबल हो।

४. दण्ड के द्वारा जो बढता हो।

अन्य उत्कटो की व्याख्या इस प्रकार है—

रज्जुक्कल—राज्य का प्रभुता से उत्कट।

तेणुक्कल—उत्कट चोर।

देसुक्कल—देश (मडल) से उत्कट।

सव्वुक्कल—देश-समुदाय से उत्कट।

१२२-१२५. (सू० २१०-२१३)

इन चार सूत्रों मे विभिन्न प्रकार के सवत्सरो तथा उनके भेद-प्रभेदो का उल्लेख है। अतिम सूत्र (२१३) मे नक्षत्र आदि पांच सवत्सरों के लक्षणों का निरूपण है।

---

१. इसिभासिय, अध्ययन २०।

से कि त दडुक्कले ? दडुक्कले नाम जेण दडदिट्ठतेण आदिल्लमज्झवसाणाण पण्णवणाए समुदयमेत्ताभिधाणाइ णत्थि सरीरातो पर जीवोत्ति भवगतिवोछेयं वदति, से त दडुक्कले।

से कि त रज्जुक्कले ? रज्जुकले णाम जेण रज्जुदिट्ठतेण समुदयमेत्तपण्णवणा। पचमहब्भूत—खधमेत्तभिधाणाइ, संसारससतीवोच्छेे वदति, से त रज्जुक्कले।

से कि त तेणुक्कले ? तेणुक्कले णाम जे ण अण्णसत्थदिट्ठतगाहेहि सपक्खुब्भावणाणिरए "मम ते एत" भिति परकरणच्छेदं वदति, से तं तेणुक्कले।

से कि त देसुक्कले ? देसुक्कले णाम जे ण अत्थिन्न एस इति सिद्धे जीवस्स अकत्तादिएहि गाहेहि देसुच्छेय वदति, से त देसुक्कले।

से कि त सव्वुक्कले ?। सव्वुक्कले णाम जेण सव्वत सव्वसभवाभावा णो तच्च सव्वतो सव्वहा सव्वकाल च णात्थित्ति सव्वच्छेद वदति, से त सव्वुक्कले।

२. स्थानागवृत्ति, पत्र ३२६. उक्कल त्ति उत्कटा उत्कला वा, तत्र दण्ड.—आज्ञा अपराधे दण्डन वा सैन्य वा उत्कट—प्रकृष्टो यस्य तेन वोत्कटो य स दण्डोत्कट, दण्डेन वोत्कलाति-वृद्धि याति य. स दण्डोत्कल', इत्येव सर्वत्र, नवर राज्य—प्रभुता स्तेना.—चौरा देशो—मण्डल सर्वं—एतत्समुदय इति।

वृत्तिकार ने सभी सवत्सरों के स्वरूप तथा कालमान का निर्देश भी किया है। विवरण इस प्रकार है—

१. नक्षत्रसंवत्सर—जितने काल मे चन्द्रमा नक्षत्रमंडल का परिभोग करता है, उसे नक्षत्रमास कहते है। इसमे $२७\frac{१}{६७}$ दिन होते हैं। बारह मास का एक संवत्सर होता है। नक्षत्रसंवत्सर मे [$२७\frac{१}{६७} \times १२$] $३२७\frac{५१}{६७}$ दिन होने है।[1]

२. युगसवत्सर—पाँच सवत्सरों का एक युगसंवत्सर होता है। इसमें तीन चन्द्रसवत्सर और दो अभिवर्द्धितसवत्सर होते है। चद्रसवत्सर मे [$२९\frac{३२}{६२} \times १२$] $३५४\frac{१२}{६२}$ दिन होते है और अभिवर्द्धित सवत्सर मे [$३१\frac{१२१}{१२४} \times १२$] $३८३\frac{४४}{६२}$ दिन होते है।[2]

अभिवर्द्धित संवत्सर मे अधिकमास होता है।[3]

३ प्रमाणसवत्सर—दिवस आदि के परिमाण से उपलक्षित संवत्सर।

यह भी पाँच सवत्सरो का एक समवाय होता है—[4]

(१) नक्षत्रसवत्सर।

(२) चन्द्रसवत्सर।

(३) ऋतुसवत्सर—इसमे प्रत्येक मास तीस अहोरात्र का होता है। सवत्सर मे ३६० दिन-रात होते है।

(४) आदित्यसवत्सर—इसमे प्रत्येक मास साढे तीस अहोरात्र का होता है। सवत्सर मे ३६६ दिन-रात होते है।

(५) अभिवर्धित सवत्सर।

४. लक्षणसवत्सर—लक्षणों से जाना जानेवाला सवत्सर। यह भी पांच प्रकार का है।[5]

(देखें— सूत्र २१३ का अनुवाद)।

५ शनिश्चरसवत्सर- जितने समय मे शनिश्चर एक नक्षत्र अथवा बारह राशियों का भोग करता है उतने काल-परिमाण को शनिश्चरसवत्सर कहा जाता है। नक्षत्रो के आधार पर शनिश्चरसवत्सर अठाईस प्रकार का होता है। यह भी माना जाता है कि महाग्रह शनिश्चर तीस वर्षों मे सम्पूर्ण नक्षत्र-मडल का भोग कर लेता है।[6]

६. कर्मसवत्सर—इसके दो पर्यायवाची नाम है—

ऋतुसवत्सर, सावनसवत्सर।[7]

१२६. निर्याणमार्ग (सू० २१४)

मृत्यु के समय जीव-प्रदेश शरीर के जिन मार्गों से निर्गमन करते है, उन्हे निर्याणमार्ग कहा जाता है।[8] यहाँ उल्लिखित पांच निर्याणमार्गों तथा उनके फलो का निर्देश केवल व्यावहारिक प्रतीत होता है।

१२७. अनन्तक (सू० २१७)

देखें—१०।६६ का टिप्पण।

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ३२७।

२. वही, पत्र ३२७।

३. वही, पत्र ३२७।
अभिवर्धिताख्ये सवत्सरे अधिकमास पततीति।

४. वही, पत्र ३२७।

५ वही, पत्र ३२७।

६ वही, पत्र ३२७:
यावता कालेन शनैश्चरो नक्षत्रमेकमथवा द्वादशापि राशीन् भुक्ते स शनैश्चरसवत्सर इति, यतश्चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रम्—'सनिच्छरसवच्छरे अट्ठावीसविहे पन्नत्ते—अभीई सवणे जाव उत्तरासाढा, ज वा संवच्छरे महग्गहे तीसाए सवच्छरेहिं सव्व नक्खत्तमडल समाणेइ' त्ति।

७. वही, पत्र ३२८:
यस्य ऋतुसवत्सर सावनसवत्सरश्चेति पर्यायौ।

८. वही, पत्र ३२८: निर्याण—मरणकाले शरीरिण शरीरान्निर्गमस्तस्य मार्गा निर्याणमार्गा।

१२८. स्वाध्याय (सू २२०)

देखें—उत्तरज्झयणाणि २६।१८ तथा ३०।१४ के टिप्पण।

१२६-१३१. (सू० २२१)

अनुभाषणाशुद्ध—इसमे गुरु प्रथम पुरुष की भाषा में बोलते हैं और प्रत्याख्यान करने वाला दोहराते समय उत्तम पुरुष की भाषा में बोलता है। मूलाचार मे कहा है[1]—

'गुरु के प्रत्याख्यान-वचन का अक्षर, पद, व्यजन, क्रम और घोष का अनुसरण कर दोहराना अनुभाषणाशुद्ध प्रत्याख्यान है।

अनुपालनाशुद्ध—इसको स्पष्ट करते हुए मूलाचार मे कहा है कि आतंक, उपसर्ग, दुर्भिक्ष या कान्तार में भी प्रत्याख्यान का पालन करना, उसको भग न करना अनुपालनाशुद्धप्रत्याख्यान है।[2]

भावशुद्ध —इसका अर्थ है—शुभयाग से अशुभ योग मे चले जाने जाने पर पुन: शुभयोग मे लौट आना।

जिससे मन परिणाम राग-द्वेष से दूषित नही होता उसे भावशुद्ध प्रत्याख्यान कहा जाता है।[3]

१३२. प्रतिक्रमण (सू० २२२)

प्रतिक्रमण का अर्थ है—अशुभ योग मे चले जाने पर पुन: शुभ योग मे लौट आना। प्रस्तुत सूत्र मे विषय-भेद के आधार पर प्रतिक्रमण के पांच प्रकार किए गए है—

१. आस्रवप्रतिक्रमण—प्राणातिपात आदि आस्रवों से निवृत्त होना। इसका तात्पर्य है असंयम से प्रतिक्रमण करना।

२. मिथ्यात्वप्रतिक्रमण—मिथ्यात्व से पुन. सम्यक्त्व मे लौट आना।

३. कषायप्रतिक्रमण—कषायो से निवृत्त होना।

४. योगप्रतिक्रमण—मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति से निवृत्त होना, अप्रशस्त योगो से निवृत्ति।

५ भावप्रतिक्रमण—इसका अर्थ है—मिथ्यात्व आदि मे स्वयं प्रवृत्त न होना, दूसरों को प्रवृत्त न करना और प्रवृत्त होने वाले का अनुमोदन न करना।[4]

विशेष की विवक्षा करने पर चार विभाग होते है—

१. मिथ्यात्व प्रतिक्रमण
२ असंयम प्रतिक्रमण
३. कषायप्रतिक्रमण
४. योगप्रतिक्रमण

और उसकी विवक्षा न करने पर उन चारों का समावेश भाव प्रतिक्रमण मे हो जाता है।[5]

१३३, १३४. (सू० २३०, २३१)

देखें—१०।२५ का टिप्पण।

१३५. (सू० २३४)

देखे—समवाओ १६।५ का टिप्पण।

---

१ मूलाचार, श्लोक १४४ ·
अणुभासादि गुरुवयण अक्खरपयवजण कमविसुद्ध।
घोसविसुद्धिसुद्ध एद अणुभासणासुद्ध॥

२ वही, श्लोक १४५ ·
आदके उवसग्गे समे य दुब्भिक्खवुत्ति कतारे।
ज पालिद ण भग्ग एद अणुपालणासुद्ध॥

३. वही, श्लोक १४६ :
रागेण व दोसेण व मणपरिणामे ण दूसिद ज तु।
त पुण पच्चक्खाण भावविसुद्ध तु णादव्व॥

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ३३२
मिच्छत्ताइ न गच्छइ न य गच्छावेइ नाणुजाणाइ।
ज मणवइकाएहि त भणिय भावपडिक्कमण।

५. वही, पत्र ३३२
आश्रवद्वारादि · मिति · विशेष विवक्षायां तूक्ता एव चत्वारो भेदा, यदाह—
"मिच्छत्तपडिक्कमण तहेव अस्सजमे पडिक्कमण।
कसायाण पडिक्कमण जोगाण य अप्पसत्थाण॥

छट्ठं ठाणं

षष्ठ स्थान

आमुख

प्रस्तुत स्थान मे छह की सख्या से सबद्ध विषय सकलित हैं। यह स्थान उद्देशकों मे विभक्त नहीं है। इस वर्गीकरण में गण-व्यवस्था, ज्योतिष, दार्शनिक, तात्त्विक आदि अनेक विषय हैं। भारतीय दार्शनिकों ने दो प्रकार के तत्त्व माने हैं— मूर्त और अमूर्त। मूर्ततत्त्व इन्द्रियों द्वारा जाने और देखे जा सकते हैं, इसलिए वे दृश्य होते हैं। अमूर्त तत्त्व इन्द्रियों द्वारा नहीं जाने और देखे जा सकते हैं, इसलिए वे अदृश्य होते है।

जैन दर्शन मे छह द्रव्य माने गये हैं—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय। इनमे पाच अमूर्त है। पुद्गल मूर्त है। ये सब ज्ञेय हैं। ये ज्ञाता के द्वारा जाने जाते हैं। जानने का साधन ज्ञान है। ज्ञान सबका विकसित नहीं होता। द्रव्यों के पर्याय अनत होते हैं। वे सामान्य ज्ञानी द्वारा नही जाने जा सकते। वे थोड़े-से पर्यायों को जानते हैं। परमाणु और शब्द मूर्त हैं, फिर भी छद्मस्थ (परोक्षज्ञानी) उन्हे पूर्ण रूप से नहीं जान सकता। केवली उन्हे पूर्ण रूप से जान सकता है।[1]

सुख दो प्रकार का होता है—आत्मिक सुख और पौद्गलिक सुख। आत्मिक सुख पदार्थ-निरपेक्ष होता है। वह आत्मा का सहज स्वरूप है। आत्मरमण से उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति होती है। पौद्गलिक सुख पदार्थ-सापेक्ष होता है। बाह्य वस्तुओं का ग्रहण इन्द्रियों के द्वारा होता है। रूप को देखकर, शब्द सुनकर, गन्ध को सूंघकर, रस चखकर और छूकर वस्तुए ग्रहण की जाती है। उनके साथ प्रिय भाव जुडता है तो वे सुख देती हैं और उनके साथ अप्रिय भाव जुडता है तो वे दुख देती हैं।

इन्द्रियां बाह्य और नश्वर हैं, इसलिए उनसे मिलने वाला सुख भी बाह्य और अस्थायी होता है।

जैन दर्शन यथार्थवादी है। वह अयथार्थ को अस्वीकार नहीं करता। इन्द्रियों से होने वाली सुखानुभूति यथार्थ है। उसे अस्वीकार करने से वास्तविकता का लोप होता है। इन्द्रिय-सुख सुख नहीं है, दु ख ही है। यह एकान्तिक दृष्टिकोण है। सतुलित दृष्टिकोण यह है कि इन्द्रियों से सुख भी मिलता है, दु ख भी होता है। आध्यात्मिक सुख की तुलना मे इन्द्रिय-सुख का मूल्य भले नगण्य हो, पर जो है उसे यथार्थ स्वीकृति दी गई है। प्रस्तुत स्थान मे इसलिए सुख और दु ख के छह-छह प्रकार बतलाए गए हैं।[2]

शरीर को धारण करना चाहिए या नहीं? भोजन करना चाहिए या नही? इन प्रश्नों का उत्तर जैन दर्शन ने सापेक्ष दृष्टि से दिया है। आध्यात्मिक क्षेत्र मे साधना का स्वतन्त्र मूल्य है। शरीर का मूल्य तभी है जब वह साधना में उपयोगी हो, भोजन का मूल्य तभी है जब वह साधना मे प्रवृत्त शरीर का सहयोगी हो। जो शरीर साधना के प्रतिकूल प्रवृत्ति कर रहा हो और जो भोजन साधना मे विघ्न डाल रहा हो उनकी उपयोगिता मान्य नहीं है। इसलिए शरीर को धारण करना या न करना, भोजन करना या न करना ये दोनों बाते सम्मत है। इसीलिए बतलाया गया है कि मुनि छह कारणों से भोजन कर सकता है, छह कारणों से उसे छोड सकता है।[3]

आत्मवान् व्यक्ति साधना का पथ पाकर आगे बढ़ने का चिन्तन करता है, समय की लम्बाई के साथ अनुभवों का लाभ उठाता है। अनात्मवान् साधना के पथ पर चलता हुआ भी अपने अहं का पोषण करने लग जाता है। आत्मवान् व्यक्ति परिवार को बधन मानकर उससे दूर रहने का प्रयत्न करता है, लेकिन अनात्मवान् परिवार में आसक्त होकर उसके जाल में

---

१. ६।४।

२. ६।१७, १८।

३. ६।४१, ४२।

फंस जाता है। आत्मवान् ज्ञान के आलोक मे अपने जीवन-पथ को प्रशस्त करता है। विनीत और अनाग्रही बनकर जीवन को सरल बनाता है। अनात्मवान् ज्ञान से अपने को भारी बनाता है। तर्क, विवाद और आग्रह का आश्रय लेकर वह अपने अहं को और अधिक बढाता है। आत्मवान् तप की साधना से आत्मा को उज्ज्वल करने का प्रयत्न करता है। अनात्मवान् उसी तप से लब्धि (योगज शक्ति) प्राप्तकर उसका दुरुपयोग करता है। आत्मवान् लाभ होने पर प्रसन्न नहीं होता और अनात्मवान् लाभ होने पर अपनी सफलता का बखान करता है।

आत्मवान् पूजा और सत्कार पाकर उससे प्रेरणा लेता है और उसके योग्य अपने को करने के लिए प्रयत्न करता है। अनात्मवान् पूजा और सत्कार से अपने अहं को पोषण देता है।[1]

प्रस्तुत स्थान ६ की संख्या से सम्बन्धित है। इसमे भूगोल, इतिहास, ज्योतिष लोक-स्थिति, कालचक्र, तत्त्व, शरीर रचना, दुर्लभता और पुरुषार्थ को चुनौती देने वाले असंभव कार्य आदि अनेक विषय संकलित हैं।

---

१. ४।३२, ३३।

छट्ठं ठाणं

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद

गण-धारण-पदं

१. छहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति गणं धारित्तए, तं जहा— सड्ढी पुरिसजाते, सच्चे पुरिसजाते, मेहावी पुरिसजाते, बहुस्सुते पुरिसजाते, सत्तिमं, अप्पाधिकरणे।

गण-धारण-पदम्

षड्भिः स्थानैः सम्पन्नः अनगारः अर्हति गणं धारयितुम्, तद्यथा— श्रद्धी पुरुषजातः, सत्यः पुरुषजातः, मेधावी पुरुषजातः, बहुश्रुतः पुरुषजातः, शक्तिमान्, अल्पाधिकरणः।

गण-धारण-पद

१. छह स्थानों से सम्पन्न अनगार गण को धारण करने मे समर्थ होता है[1]—
१. श्रद्धाशील पुरुष, २. सत्यवादी पुरुष, ३. मेधावी पुरुष, ४. बहुश्रुत पुरुष, ५. शक्तिशाली पुरुष, ६. कलहरहित पुरुष।

णिग्गंथी-अवलंबण-पदं

२. छहिं ठाणेहिं णिग्गथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णाइक्कमइ, तं जहा— खित्तचित्तं, दित्तचित्तं, जक्खाइट्ठं, उम्मायपत्तं, उवसग्गपत्तं, साहिकरणं।

निर्ग्रन्थ्यवलम्बन-पदम्

षड्भिः स्थानैः निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बयन् वा नातिक्रामति, तद्यथा— क्षिप्तचित्ता, दृप्तचित्ता, यक्षाविष्टा, उन्मादप्राप्तां, उपसर्गप्राप्तां, साधिकरणाम्।

निर्ग्रन्थ्यवलम्बन-पद

२. छह स्थानो से निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी को पकडता हुआ, सहारा देता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता—
निर्ग्रन्थी के—१ क्षिप्तचित्त हो जाने पर,
२. दृप्तचित्त हो जाने पर,
३. यक्षाविष्ट हो जाने पर,
४. उन्माद-प्राप्त हो जाने पर,
५. उपसर्ग-प्राप्त हो जाने पर,
६. कलह-प्राप्त हो जाने पर।

साहम्मियस्स अंतकम्म-पदं

३. छहिं ठाणेहिं णिग्गंथा णिग्गंथीओ य साहम्मियं कालगतं समायरमाणा णाइक्कमंति, तं जहा— अंतोहिंतो वा बाहिं णीणेमाणा, बाहीहिंतो वा णिब्बाहिं णीणेमाणा, उवेहेमाणा वा, उवासमाणा वा, अणुण्णवेमाणा वा, तुसिणीए वा संपव्वयमाणा।

सार्धमिकस्य अन्तकर्म-पदम्

षड्भिः स्थानैः निर्ग्रन्थाः निर्ग्रन्थ्यश्च सार्धमिक कालगत समाचरन्तः नातिक्रामन्ति, तद्यथा— अन्तो वा बहिर्नयन्तः, बहिस्ताद् वा निर्बहिर्नयन्तः, उपेक्षमाणा वा, उपासमाना वा, अनुज्ञापयन्तो वा, तुष्णीकाः संप्रव्रजन्तः।

सार्धमिक-अन्तकर्म-पद

३. छह स्थानो से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थी अपने काल-प्राप्त सार्धमिक का अन्त्य-कर्म करती हुई आज्ञा का अतिक्रमण नही करती[2]—
१. उसे उपाश्रय से बाहर लाती हुई,
२. बस्ती के बाहर लाती हुई,
३. उपेक्षा करती हुई,
४. शव के पास रहकर रात्रि-जागरण करती हुई,
५ उसके स्वजन गृहस्थों को जताती हुई,
६. उसे एकान्त मे विसर्जित करने के लिए मौन भाव से जाती हुई।

छउमत्थ-केवलि-पदं

४. छ ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणति ण पासति, तं जहा— धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं, आयासं, जीवमसरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं, सद्दं । एताणि चेव उप्पण्णणाणदसणधरे अरहा जिणे •केवली° सव्वभावेणं जाणति पासति, तं जहा— धम्मत्थिकायं, •अधम्मत्थिकायं, आयासं, जीवमसरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं,° सद्दं ।

छद्मस्थ-केवलि-पदम्

षट् स्थानानि छद्मस्थ सर्वभावेन न जानाति न पश्यति, तद्यथा— धर्मास्तिकायं, अधर्मास्तिकाय, आकाश, जीवमशरीरप्रतिबद्ध, परमाणुपुद्गल, शब्दम् । एतानि चैव उत्पन्नज्ञानदर्शनधर. अर्हन् जिन: केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति, तद्यथा— धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकायं, आकाश, जीवमशरीरप्रतिबद्धं, परमाणुपुद्गलं, शब्दम् ।

छद्मस्थ-केवलि-पद

४. छद्मस्थ छह स्थानो को सर्वभावेन' [पूर्ण-रूप से] नही जानता-देखता—
१. धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४. शरीर-मुक्त जीव ५. परमाणुपुद्गल, ६. शब्द ।
विशिष्ट ज्ञान-दर्शन को धारण करने वाले अर्हत्, जिन, केवली इन्हे सर्वभावेन जानते-देखते है—
१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४ शरीर-मुक्त जीव, ५. परमाणुपुद्गल, ६ शब्द ।

असंभव-पदं

५. छहिं ठाणेहिं सव्वजीवाणं णत्थि इड्ढीति वा जुतीति वा जसेति वा बलेति वा वीरएति वा पुरिसक्कार-परक्कमेति वा, तं जहा—
१ जीवं वा अजीवं करणताए ।
२. अजीवं वा जीवं करणताए ।
३. एगसमए णं वा दो भासाओ भासित्तए ।
४. सयं कडं वा कम्मं वेदेमि वा मा वा वेदेमि ।
५. परमाणुपोग्गलं वा छिंदित्तए वा भिंदित्तए वा अगणिकाएणं वा समोदहित्तए ।
६. बहिता वा लोगंता गमणताए ।

असंभव-पदम्

षड्भि: स्थानै: सर्वजीवाना नास्ति ऋद्धिरिति वा द्युतिरिति वा यशइति वा बलमिति वा वीर्यमिति वा पुरुपकार-पराक्रमइति वा, तद्यथा—
१. जीव वा अजीवं कर्त्तुम् ।
२. अजीवं वा जीव कर्त्तुम् ।
३ एकसमये वा द्वे भाषे भाषितुम् ।
४. स्वयं कृतं वा कर्म वेदयामि वा मा वा वेदयामि ।
५ परमाणुपुद्गल वा छेत्तु वा भेत्तु वा अग्निकायेन वा समवदग्धुम् ।
६ बहिस्ताद् वा लोकान्ताद् गन्तुम् ।

असंभव-पद

५. सब जीवो मे छह कार्य करने की ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार तथा पराक्रम नही होता—
१ जीव को अजीव मे परिणत करने की,
२ अजीव को जीव मे परिणत करने की,
३. एक समय मे दो भाषा बोलने की,
४ अपने द्वारा किए हुए कर्मो का वेदन करू या नही इस स्वतन्त्र भाव की ।
५ परमाणु पुद्गल का छेदन-भेदन करने तथा उसे अग्निकाय मे जलाने की,
६ लोकान्त से बाहर जाने की ।

जीव-पदं

६. छज्जीवणिकाया पण्णत्ता, त जहा— पुढविकाइया, •आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया,° तसकाइया ।

जीव-पदम्

षड्जीवनिकाया: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा— पृथिवीकायिका:, अप्कायिका:, तेजस्कायिका, वायुकायिका:, वनस्पतिकायिका:, त्रसकायिका. ।

जीव-पद

६ जीवनिकाय छह हैं —
१ पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक, ५ वनस्पतिकायिक, ६. त्रसकायिक ।

७. छ तारग्गहा पण्णत्ता, तं जहा—
सुक्के, बुहे, बहस्सती, अंगारए, सणिच्छरे, केतू।

षट् ताराग्रहाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
शुक्रः, बुधः, बृहस्पतिः, अङ्गारकः, शनैश्चरः, केतुः।

७. छह ग्रह तारों के आकार वाले हैं—
१. शुक्र, २. बुध, ३. बृहस्पति, ४. अंगारक, ५. शनिश्चर, ६. केतु।

८. छव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—
पुढविकाइया, °आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया,° तसकाइया।

षड्विधाः संसारसमापन्नकाः जीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पृथिवीकायिकाः, अप्कायिकाः, तेजस्कायिकाः, वायुकायिकाः, वनस्पतिकायिकाः, त्रसकायिकाः।

८. संसारसमापन्नक जीव छह प्रकार के होते हैं—
१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४ वायुकायिक, ५. वनस्पतिकायिक, ६. त्रसकायिक।

गति-आगति-पदं

गति-आगति-पदम्

गति-आगति-पद

९. पुढविकाइया छगतिया छआगतिया पण्णत्ता, तं जहा—
पुढविकाइए पुढविकाइएसु उववज्जमाणे पुढविकाइएहिंतो वा, °आउकाइएहिंतो वा, तेउकाइएहिंतो वा, वाउकाइएहिंतो वा, वणस्सइकाइएहिंतो वा,° तसकाइएहिंतो वा उववज्जेज्जा।
से चेव णं से पुढविकाइए पुढविकाइयत्तं विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा, °आउकाइयत्ताए वा, तेउकाइयत्ताए वा, वाउकाइयत्ताए वा, वणस्सइकाइयत्ताए वा,° तसकाइयत्ताए वा गच्छेज्जा।

पृथिवीकायिकाः षड्गतिकाः षडागतिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पृथिवीकायिकाः पृथिविकायिकेषु उपपद्यमानः पथिवीकायिकेभ्यो वा, अप्कायिकेभ्यो वा, तेजस्कायिकेभ्यो वा, वायुकायिकेभ्यो वा, वनस्पतिकायिकेभ्यो वा, त्रसकायिकेभ्यो वा उपपद्येत।
स चैव असो पृथिवीकायिकः पृथिवीकायिकत्वं विप्रजहत् पृथिवीकायिकतया वा, अप्कायिकतया वा, तेजस्कायिकतया वा, वायुकायिकतया वा, वनस्पतिकायिकतया वा, त्रसकायिकतया वा गच्छेत्।

९. पृथ्वीकायिक जीव छह स्थानो मे गति तथा छह स्थानों से आगति करते है—
पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकाय में उत्पन्न होता हुआ पृथ्वीकायिको से, अप्कायिको से, तेजस्कायिकों से, वायुकायिको से, वनस्पतिकायिकों से तथा त्रसकायिको से उत्पन्न होता है।
पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकाय को छोड़ता हुआ पृथ्वीकायिको मे, अप्कायिको मे, तेजस्कायिको मे, वायुकायिको मे, वनस्पतिकायिकों में तथा त्रसकायिको मे उत्पन्न होता है।

१०. आउकाइया छगतिया छआगतिया एवं चेव जाव तसकाइया।

अप्कायिकाः षड्गतिकाः षडागतिकाः एव चैव यावत् त्रसकायिकाः।

१०. इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक तथा त्रसकायिक जीव छह स्थानो मे गति तथा छह स्थानो से आगति करते है।

जीव-पदं

जीव-पदम्

जीव-पद

११. छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता तं जहा—
आभिणिबोहियणाणी, °सुयणाणी, ओहिणाणी, मणपज्जवणाणी,° केवलणाणी, अण्णाणी।

षड्विधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
आभिनिबोधिकज्ञानिनः, श्रुतज्ञानिनः, अवधिज्ञानिनः, मनःपर्यवज्ञानिनः, केवलज्ञानिनः, अज्ञानिनः।

११. सब जीव छह प्रकार के हैं—
१. आभिनिबोधिकज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी, ३. अवधिज्ञानी, ४. मनःपर्यवज्ञानी, ५. केवलज्ञानी, ६ अज्ञानी।

अहवा—छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—
एगिंदिया, °बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया,° पंचिंदिया, अणिंदिया।

अथवा—षड्विधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
एकेन्द्रियाः, द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः, पञ्चेन्द्रियाः, अनिन्द्रियाः।

अथवा—सब जीव छह प्रकार के हैं—
१. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय, ३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय, ५. पञ्चेन्द्रिय, ६. अनीन्द्रिय।

अहवा—छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—
ओरालियसरीरी, वेउव्वियसरीरी, आहारगसरीरी, तेअगसरीरी, कम्मगसरीरी, असरीरी।

अथवा—षड्विधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
औदारिकशरीरिणः, वैक्रियशरीरिणः, आहारकशरीरिणः, तैजसशरीरिणः, कर्मकशरीरिणः, अशरीरिणः।

अथवा—सब जीव छह प्रकार के हैं—
१. औदारिकशरीरी, २. वैक्रियशरीरी, ३. आहारकशरीरी, ४. तैजसशरीरी, ५. कार्मणशरीरी, ६. अशरीरी।

तणवणस्सइ-पदं

१२. छव्विहा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, तं जहा—
अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खंधबीया, बीयरुहा, संमुच्छिमा।

तृणवनस्पति-पदम्

षड्विधाः तृणवनस्पतिकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अग्रबीजाः, मूलबीजाः, पर्वबीजाः, स्कन्धबीजाः, बीजरुहाः, सम्मूर्च्छिमाः।

तृणवनस्पति-पद

१२. तृणवनस्पतिकायिक जीव छह प्रकार के हैं—
१. अग्रबीज, २. मूलबीज, ३. पर्वबीज, ४. स्कन्धबीज, ५. बीजरूह, ६. सम्मूर्च्छिम।

णो-सुलभ-पदं

१३. छट्ठाणाइं सव्वजीवाणं णो सुलभाइं भवति, तं जहा—
माणुस्सए भवे।
आरिए खेत्ते जम्मं।
सुकुले पच्चायाती।
केवलीपण्णत्तस्स धम्मस्स सवणता।
सुतस्स वा सद्दहणता।
सद्दहितस्स वा पत्तितस्स वा रोइतस्स वा सम्मं काएणं फासणता।

नो-सुलभ-पदम्

षट्स्थानानि सर्वजीवानां नो सुलभानि भवन्ति, तद्यथा—
मानुष्यकः भवः।
आर्ये क्षेत्रे जन्म।
सुकुले प्रत्याजातिः।
केवलिप्रज्ञप्तस्य धर्मस्य श्रवणम्।
श्रुतस्य वा श्रद्धानम्।
श्रद्धितस्य वा प्रतीतस्य वा रोचितस्य वा सम्यक् कायेन स्पर्शनम्।

नो-सुलभ-पद

१३. छह स्थान सब जीवों के लिए सुलभ नहीं होते—
१. मनुष्यभव, २. आर्यक्षेत्र में जन्म, ३. सुकुल में उत्पन्न होना, ४. केवलीप्रज्ञप्त धर्म का सुनना। ५. सुने हुए धर्म पर श्रद्धा, ६. श्रद्धित, प्रतीत तथा रोचित धर्म का सम्यक् कायस्पर्श—आचरण।

इंदियत्थ-पदं

१४. छ इंदियत्था पण्णत्ता, तं जहा—
सोइंदियत्थे, °चक्खिंदियत्थे, घाणिंदियत्थे, जिब्भिंदियत्थे,° फासिंदियत्थे, णोइंदियत्थे।

इन्द्रियार्थ-पदम्

षड् इन्द्रियार्थाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियार्थः, चक्षुरिन्द्रियार्थः, घ्राणेन्द्रियार्थः, जिह्वेन्द्रियार्थः, स्पर्शेन्द्रियार्थः, नोइन्द्रियार्थः।

इन्द्रियार्थ-पद

१४. इन्द्रियों के अर्थ [विषय] छह हैं—
१. श्रोत्रेन्द्रिय का अर्थ—शब्द,
२. चक्षुरिन्द्रिय का अर्थ—रूप,
३. घ्राणेन्द्रिय का अर्थ—गन्ध,
४. जिह्वेन्द्रिय का अर्थ—रस,
५. स्पर्शनेन्द्रिय का अर्थ—स्पर्श,
६. नो-इन्द्रिय [मन] का अर्थ—श्रुत।

संवर-असंवर-पदं

१५. छव्विहे संवरे पण्णत्ते, तं जहा—
सोतिंदियसंवरे, चक्खिदियसंवरे,
घाणिंदियसंवरे, जिब्भिदियसंवरे,°
फासिंदियसंवरे, णोइंदियसंवरे।

१६. छव्विहे असंवरे पण्णत्ते, तं जहा—
सोतिंदियअसंवरे, °चक्खिदियअसंवरे
घाणिंदियअसंवरे, जिब्भिदियअसंवरे°
फासिंदियअसंवरे, णोइंदियअसंवरे।

संवराऽसंवर-पदम्

षड्विधः सवरः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियसवरः, चक्षुरिन्द्रियसंवरः,
घ्राणेन्द्रियसवरः, जिह्वेन्द्रियसवरः,
स्पर्शेन्द्रियसंवरः, नोइन्द्रियसंवरः।

षड्विधः असंवरः, प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियासंवरः, चक्षुरिन्द्रियासंवरः,
घ्राणेन्द्रियासवरः, जिह्वेन्द्रियासवरः,
स्पर्शेन्द्रियासंवरः, नोइन्द्रियासवरः।

संवराऽसंवर-पद

१५. संवर के छह प्रकार हैं—
१ श्रोत्रेन्द्रिय सवर, २. चक्षुरिन्द्रिय सवर,
३. घ्राणेन्द्रिय सवर, ३. जिह्वेन्द्रिय सवर,
५. स्पर्शनेन्द्रिय संवर, ६ नो-इन्द्रिय संवर।

१६. असंवर के छह प्रकार हैं—
१. श्रोत्रेन्द्रिय असंवर,
२. चक्षुरिन्द्रिय असंवर,
३. घ्राणेन्द्रिय असंवर,
४. जिह्वेन्द्रिय असवर,
५. स्पर्शनेन्द्रिय असंवर,
६. नो-इन्द्रिय असवर।

सात-असात-पदं

१७. छव्विहे साते, पण्णत्ते, तं जहा—
सोतिंदियसाते, °चक्खिदियसाते,
घाणिंदियसाते, जिब्भिदियसाते,
फासिंदियसाते,° णोइंदियसाते।

१८. छव्विहे असाते पण्णत्ते, तं जहा—
सोतिंदियअसाते, °चक्खिदियअसाते
घाणिंदियअसाते, जिब्भिदियअसाते,
फासिंदियअसाते,° णोइंदियअसाते।

सात-असात-पदम्

षड्विध सातं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियसात, चक्षुरिन्द्रियसात,
घ्राणेन्द्रियसातं, जिह्वेन्द्रियसात,
स्पर्शेन्द्रियसातं, नोइन्द्रियसातम्।

षड्विध असातं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियासातं, चक्षुरिन्द्रियासातं,
घ्राणेन्द्रियासातं, जिह्वेन्द्रियासातं,
स्पर्शेन्द्रियासात, नोइन्द्रियासातम्।

सात-असात-पद

१७ सुख के छह प्रकार हैं—
१ श्रोत्रेन्द्रिय सुख, २. चक्षुरिन्द्रिय सुख,
३ घ्राणेन्द्रिय सुख, ४ जिह्वेन्द्रिय सुख,
५. स्पर्शनेन्द्रिय सुख, ६ नो-इन्द्रिय सुख।

१८. असुख के छह प्रकार हैं—
१ श्रोत्रेन्द्रिय असुख,
२. चक्षुरिन्द्रिय असुख,
३. घ्राणेन्द्रिय असुख,
४. जिह्वेन्द्रिय असुख,
५. स्पर्शनेन्द्रिय असुख,
६ नो-इन्द्रिय असुख।

पायच्छित्त-पदं

१९. छव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—
आलोयणारिहे, पडिक्कमणारिहे,
तदुभयारिहे, विवेगारिहे,
विउस्सग्गारिहे, तवारिहे।

प्रायश्चित्त-पदम्

षड्विधं प्रायश्चित्तं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आलोचनार्हं, प्रतिक्रमणार्हं,
तदुभयार्हं, विवेकार्हं,
व्युत्सर्गार्हं, तपोऽर्हम्।

प्रायश्चित्त-पद

१९. प्रायश्चित्त के छह प्रकार है—
१. आलोचना-योग्य, २ प्रतिक्रमण-योग्य,
३. तदुभय-योग्य, ४. विवेक-योग्य,
५. व्युत्सर्ग-योग्य, ६. तप-योग्य।

मणुस्स-पदं

२०. छव्विहा मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—
जंबूदीवगा,
धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धगा,
धायइसंडदीवपच्चत्थिमद्धगा,
पुक्खरवरदीवड्डपुरत्थिमद्धगा,
पुक्खरवरदीवड्डपच्चत्थिमद्धगा,
अंतरदीवगा।
अहवा—छव्विहा मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—
संमुच्छिममणुस्सा—
कम्मभूमगा, अकम्मभूमगा, अंतरदीवगा,
गब्भवक्कंति अमणुस्सा—
कम्मभूमगा अकम्मभूमगा अंतरदीवगा।

२१. छव्विहा इड्डिमंता मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—
अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेवा, वासुदेवा, चारणा, विज्जाहारा।

२२. छव्विहा अणिड्डिमंता मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—
हेमवतगा, हेरण्णवतगा, हरिवासगा, रम्मगवासगा, कुरुवासिणो, अंतरदीवगा।

कालचक्क-पदं

२३. छव्विहा ओसप्पिणी पण्णत्ता, तं जहा—

मनुष्य-पदम्

षड्विधा मनुष्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
जम्बूद्वीपगा,
धातकीषण्डद्वीपपौरस्त्यार्धगाः,
धातकीषण्डद्वीपपाश्चात्यार्धगा,
पुष्करवरद्वीपार्धपौरस्त्यार्धगा,
पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्धगा,
अन्तर्द्वीपगा।
अथवा—षड्विधाः मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
सम्मूर्च्छिममनुष्या—
कर्मभूमिगा (जा) अकर्मभूमिगाः *अन्तर्द्वीपगा,*
गर्भावक्रान्तिकमनुष्या—
कर्मभूमिगाः अकर्मभूमिगाः अन्तर्द्वीपगा।

षड्विधा ऋद्धिमन्त मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अर्हन्तः, चक्रवर्त्तिन, बलदेवाः, वासुदेवाः, चारणा, विद्याधराः।

षड्विधा अनृद्धिमन्त मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
हैमवतगा हैरण्यवतगा, हरिवर्षगा, रम्यक्वर्षगा, कुरुवासिनः, अन्तर्द्वीपगाः।

कालचक्र-पदम्

षड्विधा अवसर्पिणी प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

मनुष्य-पद

२०. मनुष्य छह प्रकार के होते है—
१. जम्बूद्वीप मे उत्पन्न,
२. धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध मे उत्पन्न,
३. धातकीषण्ड द्वीप के पश्चिमार्द्ध मे उत्पन्न,
४ अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्द्ध मे उत्पन्न,
५ अर्धपुष्करवरद्वीप के पश्चिमार्द्ध मे उत्पन्न,
६. अन्तर्द्वीप मे उत्पन्न।
अथवा - मनुष्य छह प्रकार के होते है—
१ कर्मभूमि मे उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम।
२ अकर्मभूमि मे उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम।
३ अन्तर्द्वीप मे उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम।
४ कर्मभूमि मे उत्पन्न होने वाले गर्भज।
५. अकर्मभूमि मे उत्पन्न होने वाले गर्भज।
६. अन्तर्द्वीप मे उत्पन्न होने वाले गर्भज।

२१ ऋद्धिमान् पुरुष छह प्रकार के होते है—
१ अर्हन्त, २. चक्रवर्ती, ३. बलदेव, ४ वासुदेव, ५. चारण[१], ६. विद्याधर।

२२. अनृद्धिमान् पुरुष छह प्रकार के होते हैं—
१ हैमवतज—हैमवत क्षेत्र मे पैदा होने वाले, २ हैरण्यवतज, ३ हरिवर्षज, ४ रम्यकवर्षज, ५. कुरुवर्षज, ६ अन्तर्द्वीपज।

कालचक्र-पद

२३. अवसर्पिणी के छह प्रकार हैं—

सुसम-सुसमा, सुसमा, सुसम-दूसमा, दूसम-सुसमा, दूसमा,° दूसम-दूसमा।

सुषम-सुषमा, सुषमा, सुषम-दु:षमा, दु:षम-सुषमा, दु:षमा, दु:षम-दु:षमा।

१. सुषम-सुषमा, २ सुषमा, ३. सुषम-दु:षमा, ४ दु:षम-सुषमा, ५. दु:षमा, ६. दु:षम-दु:षमा।

२४. छव्विहा उस्सप्पिणी पण्णत्ता, तं जहा—
दुस्सम-दुस्समा, °दुस्समा, दुस्सम-सुसमा, सुसम-दुस्समा, सुसमा,° सुसम-सुसमा।

षड्विधा उत्सर्पिणी प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
दु:षम-दु:षमा, दु:षमा, दु:षम-सुषमा, सुषम-दु:षमा, सुषमा, सुषम-सुषमा।

२४. उत्सर्पिणी के छह प्रकार है—
१. दु:षम-दु:षमा, २. दु:षमा, ३ दु:षम-सुषमा, ४. सुषम-दु:षमा, ५. सुषमा, ६. सुषम-सुषमा।

२५. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसम-सुसमाए समाए मणुया छ धणुसहस्साइं उड्ढमुच्चत्तेणं हुत्था, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालयित्था।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो: वर्षयो: अतीतायां उत्सर्पिण्यां सुषम-सुषमाया समायां मनुजा: षड् धनु:सहस्राणि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभुवन्, षड् च अर्द्धपल्योपमानि परमायु: अपालयन्।

२५. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत-ऐरवत क्षेत्र की अतीत उत्सर्पिणी के सुषम-सुषमा काल में मनुष्यों की ऊंचाई छह हजार धनुष्य की थी तथा उनकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की थी।

२६. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसम-सुसमाए समाए °मणुया छ धणुसहस्साइं उड्ढमुच्चत्तेणं पण्णत्ता, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालयित्था।°

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो: वर्षयो: अस्यां अवसर्पिण्यां सुषम-सुषमाया समायां मनुजा: षड् धनु:सहस्राणि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्ता:, षड् च अर्द्धपल्योपमानि परमायु: अपालयन्।

२६. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत-ऐरवत क्षेत्र मे वर्तमान अवसर्पिणी के सुषम-सुषमा काल मे मनुष्यो की ऊंचाई छह हजार धनुष्य तथा उनकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की है।

२७. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमेस्साए उस्सप्पिणीए सुसम-सुसमाए समाए °मणुया छ धणुसहस्साइं उड्ढमुच्चत्तेणं भविस्संति,° छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालइस्संति।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयो: वर्षयो: आगमिष्यन्त्यां उत्सर्पिण्यां सुषम-सुषमायां समायां मनुजा: षड् धनु:सहस्राणि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन भविष्यन्ति, षड्च अर्द्धपल्योपमानि परमायु: पालयिष्यन्ति।

२७. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत-ऐरवत क्षेत्र की आगामी उत्सर्पिणी के सुषम-सुषमा काल में मनुष्यों की ऊंचाई छह हजार धनुष्य होगी तथा उनकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की होगी।

२८. जंबुद्दीवे दीवे देवकुरु-उत्तरकुरुकुरासु मणुया छ धणुस्सहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालेंति।

जम्बूद्वीपे द्वीपे देवकुरूत्तरकुरुकुर्वो: मनुजा: षड् धनु:सहस्राणि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्ता:, षड् च अर्द्धपल्योपमानि परमायु: पालयन्ति।

२८. जम्बूद्वीप द्वीप में देवकुरु तथा उत्तरकुरु में मनुष्यों की ऊचाई छह हजार धनुष्य तथा उनकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की है।

२९. एवं धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे चत्तारि आलावगा जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे चत्तारि आलावगा।

एवं धातकीषण्डद्वीपपौरस्त्यार्धे चत्वार: आलापका: यावत् पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्धे चत्वार: आलापका:।

२९. इसी प्रकार धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध तथा अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध में भी मनुष्यों की ऊंचाई (सू० २६-२८ वत्)। छह हजार धनुष्य तथा उनकी आयु तीन पल्योपम की थी, है और होगी।

संघयण-पदं

३०. छव्विहे संघयणे पण्णत्ते, तं जहा— वइरोसभ-णाराय-संघयणे, उसभ-णाराय-संघयणे, णाराय-संघयणे, अद्धणाराय-संघयणे, खीलिया-संघयणे, छेवट्ट-संघयणे।

संहनन-पदम्

षड्विधं संहनन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— वज्रर्षभ-नाराच-संहनन, ऋषभ-नाराच-संहननं, नाराच-संहनन, अर्धनाराच-संहनन, कीलिका-संहननं, सेवार्त्त-संहननम्।

संहनन-पद

३०. संहनन के छह प्रकार है—

१. वज्रऋषभनाराच संहनन,
२. ऋषभनाराच संहनन,
३. नाराच संहनन, ४. अर्धनाराच संहनन,
५. कीलिका संहनन, ६. सेवार्त संहनन।

संठाण-पदं

३१. छव्विहे संठाणे, पण्णत्ते तं जहा— समचउरंसे, णग्गोहपरिमंडले, साई, खुज्जे, वामणे, हुंडे।

संस्थान-पदम्

षड्विध संस्थान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि, कुब्ज, वामन, हुण्डम्।

संस्थान-पद

३१. संस्थान[1] के छह प्रकार है—

१. समचतुरस्र, २ न्यग्रोधपरिमण्डल,
३ स्वाती, ४. कुब्ज, ५. वामन,
६. हुण्ड।

अणत्तव-अत्तव-पदं

३२. छठाणा अणत्तवओ अहिताए असुभाए अखमाए अणीसेसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा— परियाए, परियाले, सुते, तवे, लाभे, पूयासक्कारे।

३३. छट्ठाणा अत्तवतो हिताए °सुभाए खमाए णीसेसाए° आणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा— परियाए, परियाले, °सुते, तवे, लाभे,° पूयासक्कारे।

अनात्मवत्-आत्मवत्-पदम्

षट्स्थानानि अनात्मवतः अहिताय अशुभाय अक्षमाय अनिःश्रेयसाय अनानुगामिकत्वाय भवन्ति, तद्यथा— पर्यायः, परिवार, श्रुतं, तप, लाभः, पूजासत्कारः।

षट्स्थानानि आत्मवतः हिताय शुभाय क्षमाय निःश्रेयसाय आनुगामिकत्वाय भवन्ति, तद्यथा— पर्यायः, परिवारः, श्रुत, तपः, लाभः पूजासत्कार।

अनात्मवत् आत्मवत्-पद

३२. अनात्मवान् के लिए छह स्थान अहित, अशुभ, अक्षम, अनिःश्रेयस तथा अनानुगामिकता [अशुभ अनुबन्ध] के हेतु होते है[2]—

१. पर्याय—अवस्था या दीक्षा मे बडा होना, २ परिवार, ३. श्रुत, ४ तप, ५ लाभ, ६ पूजा-सत्कार।

३३. आत्मवान् के लिए छह स्थान हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस तथा आनुगामिकता के हेतु होते है[2]—

१ पर्याय, २. परिवार, ३. श्रुत, ४. तप, ५. लाभ, ६ पूजा-सत्कार।

आरिय-पदं

३४. छव्विहा जाइ-आरिया मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—

आर्य-पदम्

षड्विधाः जात्यार्या मनुष्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

आर्य-पद

३४. जाति से आर्य मनुष्य छह प्रकार के होते है[3]—

संगहणी-गाहा

१. अंबट्ठा य कलंदा य,
वेदेहा वेदिगादिया।
हरिता चुंचुणा चेव,
छप्पेता इब्भजातिओ॥

संग्रहणी-गाथा

१. अम्बष्ठाश्च कलन्दाश्च,
वैदेहाः वैदिकादिका।
हरिता चुञ्चुणा चैव,
षडप्येताः इभ्यजातयः॥

संग्रहणी-गाथा

१. अंबष्ठ, २. कलन्द, ३. वैदेह,
४. वैदिक, ५. हरित, ६. चुंचुण।
ये छहो इभ्य जाति के मनुष्य हैं।

३५. छव्विहा कुलारिया मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—
उग्गा, भोगा, राइण्णा,
इक्खागा, णाता, कोरव्वा।

षड्विधाः कुलार्याः मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
उग्राः, भोजाः, राजन्याः,
इक्ष्वाकाः, ज्ञाताः, कौरव्याः।

३५. कुल से आर्य मनुष्य छह प्रकार के होते हैं"—
१. उग्र, २. भोज, ३. राजन्य ४. इक्ष्वाकु,
५. ज्ञात, ६ कौरव।

लोगट्ठिती-पदं

लोकस्थिति-पदम्

लोकस्थिति-पद

३६. छव्विहा लोगट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—
आगासपतिट्ठिते वाए,
वातपतिट्ठिते उदही,
उदधिपतिट्ठिता पुढवी,
पुढविपतिट्ठिता तसा थावरा पाणा,
अजीवा जीवपतिट्ठिता,
जीवा कम्मपतिट्ठिता।

षड्विधा लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आकाशप्रतिष्ठितो वातः,
वातप्रतिष्ठित उदधिः,
उदधिप्रतिष्ठिता पृथिवी,
पृथिवीप्रतिष्ठिताः त्रसाः स्थावराः प्राणाः,
अजीवाः जीवप्रतिष्ठिताः,
जीवाः कर्मप्रतिष्ठिताः।

३६. लोक-स्थिति छह प्रकार की है—
१. आकाश पर वायुप्रतिष्ठित है,
२. वायु पर उदधिप्रतिष्ठित है,
३. उदधि पर पृथ्वीप्रतिष्ठित है,
४. पृथ्वी पर त्रस-स्थावर जीवप्रतिष्ठित हैं,
५ अजीव जीव पर प्रतिष्ठित है।
६. जीव कर्मों पर प्रतिष्ठित है।

दिसा-पदं

दिशा-पदम्

दिशा-पद

३७. छद्दिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
पाईणा, पडीणा, दाहिणा,
उदीणा, उड्ढा, अधा।

षड्दिशः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
प्राचीना, प्रतीचीना, दक्षिणा,
उदीचीना, ऊर्ध्वं, अधः।

३७. दिशाएं छह हैं"—
१. पूर्व, २. पश्चिम, ३. दक्षिण, ४. उत्तर,
५ ऊर्ध्व, ६. अधः।

३८. छहिं दिसाहिं जीवाणं गति पवत्तति, तं जहा—
पाईणाए, °पडीणाए, दाहिणाए,
उदीणाए, उड्ढाए,° अधाए।

षट्सु दिक्षु जीवानां गतिः प्रवर्त्तते, तद्यथा—
प्राचीनायां, प्रतीचीनायां, दक्षिणायां,
उदीचीनायां, ऊर्ध्वं, अधः।

३८. छहों ही दिशाओं में जीवों की गति [वर्तमान भव से अग्रिम भव में जाना] होती है—
१. पूर्व में, २. पश्चिम में, ३. दक्षिण में,
४. उत्तर में, ५. ऊर्ध्वदिशा में,
६. अधो दिशा में।

३९. °छहिं दिसाहिं जीवाणं°—
आगई, वक्कंती, आहारे, वुड्ढी,
णिवुड्ढी, विगुव्वणा, गतिपरियाए,
समुग्घाते, कालसंजोगे,
दंसणाभिगमे, णाणाभिगमे,
जीवाभिगमे, अजीवाभिगमे,
°पण्णत्ते, तं जहा—
पाईणाए, पडीणाए, दाहिणाए,
उदीणाए, उड्ढाए, अधाए।°

षट्सु दिक्षु जीवानां—
आगतिः, अवक्रान्तिः, आहारः,
वृद्धिः निर्वृद्धिः, विकरणं,
गतिपर्यायः, समुद्घातः, कालसंयोगः,
दर्शनाभिगमः, ज्ञानाभिगमः,
जीवाभिगमः, अजीवाभिगमः,
प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
प्राचीनायां, प्रतीचीनायां, दक्षिणायां,
उदीचीनायां ऊर्ध्वं, अधः।

३९. छहों ही दिशाओं में जीवों के—
आगति—पूर्व भव से प्रस्तुत भव में आना
अवक्रान्ति—उत्पत्ति स्थान में जाकर उत्पन्न होना।
आहार—प्रथम समय में जीवनोपयोगी पुद्गलों का संचय करना।
वृद्धि—शरीर की वृद्धि।
हानि—शरीर की हानि।
विक्रिया—विकुर्वणा करना।
गति-पर्याय—गमन करना। यहां इसका अर्थ परलोकगमन नहीं है।
समुद्घात"—वेदना आदि में तन्मय होकर आत्मप्रदेशों का इधर-उधर प्रक्षेप करना।
काल-संयोग—सूर्य आदि द्वारा कृत काल-विभाग।
दर्शनाभिगम—अवधि आदि दर्शन के द्वारा वस्तु का परिज्ञान।
ज्ञानाभिगम—अवधि आदि ज्ञान के द्वारा वस्तु का परिज्ञान।

संघयण-पदं

३०. छव्विहे संघयणे पण्णत्ते, तं जहा— वइरोसभ-णाराय-संघयणे, उसभ-णाराय-संघयणे, णाराय-संघयणे, अद्धणाराय-संघयणे, खीलिया-संघयणे, छेवट्ट-संघयणे।

संहनन-पदम्

षड्विध सहनन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— वज्रर्षभ-नाराच-सहनन, ऋषभ-नाराच-सहनन, नाराच-सहनन, अर्धनाराच-संहनन, कीलिका-संहननं, सेवार्त्त-संहननम्।

संहनन-पद

३०. सहनन के छह प्रकार है—
१. वज्रऋषभनाराच सहनन,
२ ऋषभनाराच सहनन,
३ नाराच सहनन, ४. अर्धनाराच संहनन,
५ कीलिका सहनन, ६. सेवार्त संहनन।

संठाण-पदं

३१. छव्विहे संठाणे, पण्णत्ते तं जहा— समचउरंसे, णग्गोहपरिमडले, साई, खुज्जे, वामणे, हुंडे।

संस्थान-पदम्

षड्विध सस्थान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— समचतुरस्त्रं, न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि, कुब्ज, वामन, हुण्डम्।

संस्थान-पद

३१. सस्थान[१] के छह प्रकार है—
१. समचतुरस्र, २ न्यग्रोधपरिमण्डल,
३ स्वाती, ४. कुब्ज, ५. वामन,
६. हुण्ड।

अणत्तव-अत्तव-पदं

३२. छठाणा अणत्तवओ अहिताए असुभाए अखमाए अणीसेसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा— परियाए, परियाले, सुते, तवे, लाभे, पूयासक्कारे।

३३. छट्ठाणा अत्तवतो हिताए °सुभाए खमाए णीसेसाए° आणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा— परियाए, परियाले, °सुते, तवे, लाभे,° पूयासक्कारे।

अनात्मवत्-आत्मवत्-पदम्

षट्स्थानानि अनात्मवतः अहिताय अशुभाय अक्षमाय अनिःश्रेयसाय अनानुगामिकत्वाय भवन्ति, तद्यथा— पर्यायः, परिवार, श्रुतं, तपः, लाभः, पूजासत्कारः।

षट्स्थानानि आत्मवत. हिताय शुभाय क्षमाय निःश्रेयसाय आनुगामिकत्वाय भवन्ति, तद्यथा— पर्यायः, परिवार, श्रुत, तप., लाभः पूजासत्कार.।

अनात्मवत् आत्मवत्-पद

३२ अनात्मवान् के लिए छह स्थान अहित, अशुभ, अक्षम, अनिःश्रेयस तथा अनानुगामिकता [अशुभ अनुबन्ध] के हेतु होते हैं[१०]—
१ पर्याय—अवस्था या दीक्षा मे बडा होना, २ परिवार, ३ श्रुत, ४ तप, ५ लाभ, ६ पूजा-सत्कार।

३३ आत्मवान् के लिए छह स्थान हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस तथा आनुगामिकता के हेतु होते हैं"—
१. पर्याय, २ परिवार, ३. श्रुत, ४ तप, ५ लाभ, ६ पूजा-सत्कार।

आरिय-पदं

३४. छव्विहा जाइ-आरिया मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—

आर्य-पदम्

षड्विधाः जात्यार्या मनुष्या. प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

आर्य-पद

३४. जाति से आर्य मनुष्य छह प्रकार के होते है[१२]—

संगहणी-गाहा

१ अंबट्ठा य कलंदा य,
वेदेहा वेदिगादिया।
हरिता चुंचुणा चेव,
छप्पेता इब्भजातिओ॥

संग्रहणी-गाथा

१ अम्बष्ठाश्च कलन्दाश्च,
वैदेहाः वैदिकादिकाः।
हरिता चुञ्चुणा चैव,
षडप्येताः इभ्यजातयः॥

संग्रहणी-गाथा

१. अंबष्ठ, २ कलन्द, ३. वैदेह,
४. वैदिक, ५. हरित, ६. चुंचुण।
ये छहो इभ्य जाति के मनुष्य है।

३५. छव्विहा कुलारिया मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—
उग्गा, भोगा, राइण्णा,
इक्खागा, णाता, कोरव्वा।

षड्विधाः कुलार्याः मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
उग्राः, भोजाः, राजन्याः,
इक्ष्वाकाः, ज्ञाताः, कौरव्याः।

३५. कुल से आर्य मनुष्य छह प्रकार के होते हैं''—
१. उग्र, २. भोज, ३. राजन्य ४. इक्ष्वाकु,
५. ज्ञात, ६. कौरव।

लोगट्ठिती-पदं | **लोकस्थिति-पदम्** | **लोकस्थिति-पद**

३६. छव्विहा लोगट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—
आगासपतिट्ठिते वाए,
वातपतिट्ठिते उवही,
उदधिपतिट्ठिता पुढवी,
पुढविपतिट्ठिता तसा थावरा पाणा,
अजीवा जीवपतिट्ठिता,
जीवा कम्मपतिट्ठिता।

षड्विधा लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आकाशप्रतिष्ठितो वातः,
वातप्रतिष्ठित उदधिः,
उदधिप्रतिष्ठिता पृथिवी,
पृथिवीप्रतिष्ठिताः त्रसाः स्थावराः प्राणाः,
अजीवाः जीवप्रतिष्ठिताः,
जीवाः कर्मप्रतिष्ठिताः।

३६. लोक-स्थिति छह प्रकार की है—
१. आकाश पर वायुप्रतिष्ठित है,
२. वायु पर उदधिप्रतिष्ठित है,
३. उदधि पर पृथ्वीप्रतिष्ठित है,
४. पृथ्वी पर त्रस-स्थावर जीवप्रतिष्ठित हैं,
५. अजीव जीव पर प्रतिष्ठित है।
६. जीव कर्मों पर प्रतिष्ठित है।

दिसा-पदं | **दिशा-पदम्** | **दिशा-पद**

३७. छद्दिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
पाईणा, पडीणा, दाहिणा,
उदीणा, उड्ढा, अधा।

षड्दिशः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
प्राचीना, प्रतीचीना, दक्षिणा,
उदीचीना, ऊर्ध्वं, अधः।

३७ दिशाएं छह हैं''—
१ पूर्व, २. पश्चिम, ३. दक्षिण, ४. उत्तर,
५ ऊर्ध्व, ६. अधः।

३८. छहिं दिसाहिं जीवाणं गति पवत्तति, तं जहा—
पाईणाए, °पडीणाए, दाहिणाए,
उदीणाए, उड्ढाए,° अधाए।

षट्सु दिक्षु जीवाना गतिः प्रवर्त्तते, तद्यथा—
प्राचीनायां, प्रतीचीनायां, दक्षिणायां,
उदीचीनायां, ऊर्ध्व, अधः।

३८. छहों ही दिशाओं में जीवों की गति [वर्तमान भव से अग्रिम भव में जाना] होती है—
१. पूर्व में, २. पश्चिम में, ३. दक्षिण में,
४ उत्तर मे, ५. ऊर्ध्वदिशा में,
६. अधो दिशा मे।

३९ °छहिं दिसाहिं जीवाणं°—
आगई, वक्कंती, आहारे, वुड्ढी,
णिवुड्ढी, विगुव्वणा, गतिपरियाए,
समुग्घाते, कालसंजोगे,
दसणाभिगमे, णाणाभिगमे,
जीवाभिगमे, अजीवाभिगमे,
°पण्णत्ते, तं जहा—
पाईणाए, पडीणाए, दाहिणाए,
उदीणाए, उड्ढाए, अधाए।°

षट्सु दिक्षु जीवाना—
आगतिः, अवक्रान्तिः, आहारः,
वृद्धिः निर्वृद्धिः, विकरणं,
गतिपर्यायः, समुद्घातः, कालसंयोगः,
दर्शनाभिगमः, ज्ञानाभिगमः,
जीवाभिगमः, अजीवाभिगमः
प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
प्राचीनायां, प्रतीचीनायां, दक्षिणायां,
उदीचीनायां ऊर्ध्व, अधः।

३९. छहों ही दिशाओं में जीवों के—
आगति—पूर्व भव से प्रस्तुत भव में आना
अवक्रान्ति—उत्पत्ति स्थान में जाकर उत्पन्न होना।
आहार—प्रथम समय में जीवनोपयोगी पुद्गलों का संचय करना।
वृद्धि—शरीर की वृद्धि।
हानि—शरीर की हानि।
विक्रिया—विकुर्वणा करना।
गति-पर्याय—गमन करना। यहां इसका अर्थ परलोकगमन नहीं है।
समुद्घात''—वेदना आदि में तन्मय होकर आत्मप्रदेशों का इधर-उधर प्रक्षेप करना।
काल-संयोग—सूर्य आदि द्वारा कृत काल-विभाग।
दर्शनाभिगम—अवधि आदि दर्शन के द्वारा वस्तु का परिज्ञान।
ज्ञानाभिगम—अवधि आदि ज्ञान के द्वारा वस्तु का परिज्ञान।

जीवाभिगम—अवधि आदि ज्ञान के द्वारा जीवों का परिज्ञान। अजीवाभिगम [अवधि आदि ज्ञान के द्वारा पुद्गलों का परिज्ञान] होते हैं—
१. पूर्व मे, २. पश्चिम में, ३. दक्षिण में, ४. उत्तर में, ५. ऊर्ध्वदिशा में, ६. अधोदिशा मे।

४०. एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणवि, मणुस्साणवि।

एवं पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानामपि, मनुष्याणामपि।

४०. इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्यों की गति-आगति आदि छह दिशाओं मे होती हैं।

आहार-पदं

आहार-पदम्

आहार-पद

४१. छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे आहार-माहारेमाणे णातिक्कमति, तं जहा—

षड्भिः स्थानैः श्रमणः निर्ग्रन्थः आहारं आहरन् नातिक्रामति, तद्यथा—

४१. श्रमण-निर्ग्रन्थ छह कारणो से आहार करता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता"—

संगहणी-गाहा

१. वेयण-वेयावच्चे,
ईरियट्ठाए य संजमट्ठाए।
तह पाणवत्तियाए,
छट्ठं पुण धम्मचिंताए॥

संग्रहणी-गाथा

१. वेदना-वैयावृत्याय,
ईर्यार्थाय च संयमार्थाय।
तथा प्राणवृत्तिकार्यै,
षष्ठं पुनः धर्मचिन्तायै॥

संग्रहणी-गाथा

१. वेदना—भूख की पीडा मिटाने के लिए।
२. वैयावृत्य करने के लिए।
३. ईर्यासमिति का पालन करने के लिए।
४ सयम की रक्षा के लिए।
५ प्राण-धारण के लिए।
६ धर्म-चिन्ता के लिए।

४२. छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे आहारं वोच्छिदमाणे णातिक्कमति, तं जहा—

षड्भिः स्थानैः श्रमणः निर्ग्रन्थः आहार व्युच्छिन्दन् नातिक्रामति, तद्यथा—

४२ श्रमण-निर्ग्रन्थ छह कारणों से आहार का परित्याग करता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता"—

संगहणी-गाहा

१. आतंके उवसग्गे,
तितिक्खणे बंभचेरगुत्तीए।
पाणिदया-तवहेउं,
सरीरवुच्छेयणट्ठाए॥

संग्रहणी-गाथा

१. आतङ्के उपसर्गे, तितिक्षणे ब्रह्मचर्यगुप्त्याम्।
प्राणिदया-तपोहेतोः, शरीरव्युच्छेदनार्थाय॥

संग्रहणी-गाथा

१ आतंक—ज्वर आदि आकस्मिक बीमारी हो जाने पर।
२. राजा आदि का उपसर्ग हो जाने पर।
३. ब्रह्मचर्य की तितिक्षा [सुरक्षा] के लिए
४ प्राणिदया के लिए।
५. तपस्या के लिए।
६. शरीर का व्युत्सर्ग करने के लिए।

उम्माय-पदं

४३. छहिं ठाणेहिं आया उम्मायं पाउणेज्जा, तं जहा—
अरहंताणं अवण्णं वदमाणे।
अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णं वदमाणे।
आयरिय-उवज्झायाणं अवण्णं वदमाणे।
चाउवण्णस्स संघस्स अवण्णं वदमाणे।
जक्खावेसेण चेव।
मोहणिज्जस्स चेव कम्मस्स उदएणं।

उन्माद-पदम्

षड्भिः स्थानैः आत्मा उन्मादं प्राप्नुयात्, तद्यथा—
अर्हतां अवर्णं वदन्।
अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य अवर्णं वदन्।
आचार्योपाध्याययोः अवर्णं वदन्।
चतुर्वर्णस्य संघस्य अवर्णं वदन्।
यक्षावेशेन चैव।
मोहनीयस्य चैव कर्मणः उदयेन।

उन्माद-पद

४३. छह स्थानो से आत्मा उन्माद को प्राप्त होता है—
१. अर्हन्तो का अवर्णवाद करता हुआ।
२. अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद करता हुआ।
३. आचार्य तथा उपाध्याय का अवर्णवाद करता हुआ।
४. चतुर्वर्ण संघ का अवर्णवाद करता हुआ
५. यक्षावेश से।
६. मोहनीय कर्म के उदय से।

पमाद-पदं

४४. छव्विहे पमाए पण्णत्ते, तं जहा—
मज्जपमाए, णिद्दपमाए,
विसयपमाए, कसायपमाए,
जूतपमाए, पडिलेहणापमाए।

प्रमाद-पदम्

षड्विधः प्रमादः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
मद्यप्रमादः निद्राप्रमादः विषयप्रमादः कषायप्रमादः द्यूतप्रमादः प्रतिलेखना-प्रमादः।

प्रमाद-पद

४४ प्रमाद के छह प्रकार हैं—
१ मद्यप्रमाद, २. निद्राप्रमाद
३. विषयप्रमाद, ४. कषायप्रमाद,
५. द्यूतप्रमाद, ६. प्रतिलेखनाप्रमाद।

पडिलेहणा-पदं

४५. छव्विहा पमायपडिलेहणा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. आरभडा संमद्दा,
वज्जेयव्वा य मोसली ततिया।
पप्फोडणा चउत्थी,
विक्खित्ता वेइया छट्ठी।।

प्रतिलेखना-पदम्

षड्विधा प्रमादप्रतिलेखना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. आरभटा सम्मर्दा,
वर्जयितव्या च मौशली तृतीया।
प्रस्फोटना चतुर्थी,
विक्षिप्ता वेदिका षष्ठी।।

प्रतिलेखना-पद

४५. प्रमादयुक्त प्रतिलेखना के छह प्रकार है[१८]—

संग्रहणी-गाथा

१. आरभटा, २. सम्मर्दा, ३ मोशली,
४. प्रस्फोटा, ५. विक्षिप्ता, ६. वेदिका।

४६. छव्विहा अप्पमायपडिलेहणा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. अणच्चावितं अवलितं,
अणाणुबंधि अमोसलिं चेव।
छप्पुरिमा णव खोडा,
पाणीपाणविसोहणी।।

षड्विधा अप्रमादप्रतिलेखना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. अनर्तितं अवलितं,
अननुबन्धिः अमोशली चैव।
षट्पूर्वाः नव 'खोडा',
पाणिप्राणविशोधिनी।।

४६ अप्रमादयुक्त प्रतिलेखना के छह प्रकार है[१९]—

संग्रहणी-गाथा

१. अनर्तित, २. अवलित, ३ अनानुबंधि,
४ अमोशली, ५. षट्पूर्व-नवखोटक,
६. हाथ मे प्राणियों का विशोधन करना।

लेसा-पदं

४७. छ लेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
कण्हलेसा, •णीललेसा, काउलेसा, तेउलेसा, पम्हलेसा° सुक्कलेसा।

लेश्या-पदम्

षड् लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

लेश्या-पद

४७ लेश्याएं छह है—
१. कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या, ४. तेजोलेश्या, ५ पद्मलेश्या, ६. शुक्ललेश्या।

४८. पंचिदयतिरिक्खजोणियाणं छ लेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
कण्हलेसा, •णीललेसा, काउलेसा, तेउलेसा, पम्हलेसा,° सुक्कलेसा।

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां षड् लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

४८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यक-योनिकों के छह लेश्याएं होती है—
१ कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या, ४ तेजोलेश्या, ५. पद्मलेश्या, ६. शुक्ललेश्या।

४६. एवं—मणुस्स-देवाण वि।

एव मनुष्य-देवानामपि।

४६ इसी प्रकार मनुष्यों तथा देवों के छह-छह लेश्याएं होती है।

अग्गमहिसी-पदं

५०. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

५१. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

अग्रमहिषी-पदम्

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य षड् अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य यमस्य महाराजस्य षड् अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः।

अग्रमहिषी-पद

५०. देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज सोम के छह अग्रमहिषियां है।

५१ देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज यम के छह अग्रमहिषिया हैं।

देवठिति-पदं

५२. ईसाणस्स णं देविंदस्स [देवरण्णो ?] मज्झिमपरिसाए देवाणं छ पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देवस्थिति-पदम्

ईशानस्य देवेन्द्रस्य (देवराजस्य ?) मध्यमपरिषदः देवाना षट् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

देवस्थिति-पद

५२. देवेन्द्र देवराज ईशान की मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति छह पल्योपम की है।

महत्तरिया-पदं

५३. छ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
रूवा, रूवंसा, सुरूवा, रूववती, रूवकंता, रूवप्पभा।

५४. छ विज्जुकुमारिमहत्तरिताओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
अला, सक्का, सतेरा, सोतामणी, इंदा, घणविज्जुया।

महत्तरिका पदम्

षड् दिक्कुमारीमहत्तरिका. प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
रूपा, रूपांशा, सुरूपा, रूपवती, रूपकान्ता, रूपप्रभा।

षड् विद्युत्कुमारीमहत्तरिका प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अला, शक्रा, शतेरा, सौदामिनी, इन्द्रा, घनविद्युत्।

महत्तरिका-पद

५३ दिशाकुमारियों के छह महत्तरिकाएं हैं—
१ रूपा, २ रूपांशा, ३ सुरूपा, ४. रूपवती, ५ रूपकाता, ६. रूपप्रभा।

५४. विद्युत्कुमारियो के छह महत्तरिकाएं हैं—
१. अला, २. शक्रा, ३. शतेरा, ४ सौदामिनी, ५. इन्द्रा, ६. घनविद्युत्।

अग्गमहिसी-पदं

५५. धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
अला, सक्का सतेरा,
सोतामणी, इंदा, घणविज्जुया।

५६. भूताणंदस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
रूवा, रूवंसा, सुरूवा,
रूववंती, रूवकंता, रूवप्पभा।

५७. जहा धरणस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाणं जाव घोसस्स।

५८. जहा भूताणंदस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाणं जाव महाघोसस्स।

अग्रमहिषी-पदम्

धरणस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य षड् अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अला, शक्रा, शतेरा, सौदामिनी,
इन्द्रा, घनविद्युत्।

भूतानन्दस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य षड् अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
रूपा, रूपांशा, सुरूपा, रूपवती,
रूपकांता, रूपप्रभा।

यथा धरणस्य तथा सर्वेषां दाक्षिणात्यानां यावत् घोषस्य।

यथा भूतानन्दस्य तथा सर्वेषा औदीच्यानां यावत् महाघोषस्य।

अग्रमहिषी-पद

५५. नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के छह अग्रमहिषिया है—
१. अला, २. शक्रा, ३. शतेरा,
४. सौदामिनी, ५. इन्द्रा, ६. घनविद्युत्।

५६. नागाकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द के छह अग्रमहिषियां हैं—
१. रूपा, २. रूपाशा, ३. सुरूपा,
४. रूपवती, ५. रूपकाता, ६. रूपप्रभा।

५७. दक्षिण दिशा के भवनपति इन्द्र वेणुदेव, हरिकात, अग्निशिख, पूर्ण, जलकात, अमितगति, वेलम्ब तथा घोष के भी [धरण की भाति] छह-छह अग्रमहिषिया है।

५८. उत्तर दिशा के भवनपति इन्द्र वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभञ्जन और महाघोष के भी [भूतानन्द की भाति] छह-छह अग्रमहिषिया है।

सामाणिय-पदं

५९. धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो छस्सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

६०. एवं भूताणंदस्सवि जाव महाघोसस्स।

सामानिक-पदम्

धरणस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य षट् सामानिकसाहस्त्र्यः प्रज्ञप्ताः।

एव भूतानन्दस्यापि यावत् महाघोषस्य।

सामानिक-पद

५९. नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के छह हजार सामानिक है।

६०. इसी प्रकार नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द, वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट, जलपुत्र, अमितावहन, प्रभञ्जन और महाघोष के छह-छह हजार सामानिक है।

मइ-पदं

६१. छव्विहा ओगहमती पण्णत्ता, तं जहा—

मति-पदम्

षड्विधा अवग्रहमतिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

मति-पद

६१. अवग्रहमति [सामान्य अर्थ के ग्रहण] के छह प्रकार हैं[१५]—

खिप्पमोगिण्हति, बहुमोगिण्हति, बहुविधमोगिण्हति, धुवमोगिण्हति, अणिस्सियमोगिण्हति, असंदिद्धमोगिण्हति।

क्षिप्रमवगृह्णाति, बहुमवगृह्णाति, बहुविधमवगृह्णाति, ध्रुवमवगृह्णाति, अनिश्रितमवगृह्णाति, असंदिग्धमवगृह्णाति।

१. शीघ्र ग्रहण करना,
२. बहुत ग्रहण करना,
३. बहुत प्रकार की वस्तुओं को ग्रहण करना
४. ध्रुव [निश्चल] ग्रहण करना,
५. अनिश्रित—अनुमान आदि का सहारा लिए बिना ग्रहण करना,
६. असंदिग्ध ग्रहण करना।

६२. छव्विहा ईहामती पण्णत्ता, तं जहा—
खिप्पमीहति, बहुमीहति, °बहुविधमीहति, धुवमीहति, अणिस्सियमीहति,° असंदिद्धमीहति।

षड्विधा ईहामतिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्षिप्रमीहते, बहुमीहते, बहुविधमीहते, ध्रुवमीहते, अनिश्रितमीहते, असंदिग्धमीहते।

६२. ईहामति [अवग्रह के द्वारा ज्ञात विषय की जिज्ञासा] के छह प्रकार हैं[११]—
१. शीघ्र ईहा करना, २. बहुत ईहा करना, ३. बहुत प्रकार की वस्तुओं की ईहा करना, ४. ध्रुव ईहा करना, ५. अनिश्रित ईहा करना, ६. असंदिग्ध ईहा करना।

६३. छव्विधा अवायमती पण्णत्ता, तं जहा—
खिप्पमवेति °बहुमवेति, बहुविधमवेति धुवमवेति अणिस्सियमवेति° असंदिद्धमवेति।

षड्विधा अवायमतिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्षिप्रमवैति बहुमवैति, बहुविधमवैति ध्रुवमवैति, अनिश्रितमवैति असंदिग्धमवैति।

६३. अवायमति [ईहा के द्वारा ज्ञात विषय का निर्णय] के छह प्रकार हैं[१२]—
१. शीघ्र अवाय करना,
२. बहुत अवाय करना,
३. बहुत प्रकारकी वस्तुओं का अवाय करना,
४. ध्रुव अवाय करना,
५. अनिश्रित अवाय करना,
६. असंदिग्ध अवाय करना।

६४. छव्विधा धारण [मती ?] पण्णत्ता, तं जहा—
बहुं धरेति, बहुविहं धरेति, पोराणं धरेति, दुद्धरं धरेति, अणिस्सितं धरेति, असंदिद्धं धरेति।

षड्विधा धारणा (मति ?) प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
बहु धरति, बहुविध धरति, पुराण धरति, दुर्धर धरति, अनिश्रित धरति, असंदिग्ध धरति।

६४. धारणामति [निर्णीत विषय को स्थिर करने] के छह प्रकार हैं[१३]—
१. बहुत धारणा करना,
२. बहुत प्रकार की वस्तुओं की धारणा करना, ३. पुराने की धारणा करना,
४. दुर्धर की धारणा करना,
५. अनिश्रित धारणा करना,
६. असंदिग्ध धारणा करना।

तव-पदं

६५. छव्विहे बाहिरए तवे पण्णत्ते, तं जहा—

तपः-पदम्

षड्विधं बाह्यकं तपः प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

तपः-पद

६५. बाह्य-तप के छह प्रकार हैं[१४]—

अणसणं, ओमोदरिया,
भिक्खायरिया, रसपरिच्चाए,
कायकिलेसो, पडिसंलीणता।

अनशनं, अवमोदरिका, भिक्षाचर्या,
रसपरित्यागः, कायक्लेशः,
प्रतिसलीनता।

१. अनशन, २. अवमोदरिका,
३. भिक्षाचर्या, ४. रस-परित्याग,
५. काय-क्लेश, ६. प्रतिसंलीनता।

६६. **छव्विहे अब्भंतरिए तवे पण्णत्ते, तं जहा—**
पायच्छित्तं, विणओ, वेयावच्चं,
सज्झाओ, झाणं, विउस्सग्गो।

षड्विध आभ्यन्तरिक तपः प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
प्रायश्चित्तं, विनयः, वैयावृत्त्यं,
स्वाध्यायः, ध्यानं, व्युत्सर्गः।

६६. आभ्यन्तरिक-तप के छह प्रकार है[५१]—

१. प्रायश्चित्त, २. विनय, ३. वैयावृत्त्य,
४. स्वाध्याय, ५. ध्यान, ६ व्युत्सर्ग।

विवाद-पदं

६७. **छव्विहे विवादे पण्णत्ते, तं जहा—**
ओसक्कइत्ता, उस्सक्कइत्ता,
अणुलोमइत्ता, पडिलोमइत्ता,
भइत्ता, भेलइत्ता।

विवाद-पदम्

षड्विधः विवादः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
अवष्वष्क्य, उत्ष्वष्क्य, अनुलोम्य,
प्रतिलोम्य, भक्त्वा, 'मिश्रीकृत्य'।

विवाद-पद

६७. विवाद के छह अंग है [वादी अपनी विजय के लिए इनका सहारा लेता है]—

१. वादी के तर्क का उत्तर ध्यान मे न आने पर कालक्षेप करने के लिए प्रस्तुत विषय से हट जाना।

२ पूर्ण तैयारी होते ही वादी को पराजित करने के लिए आगे आना।

३. विवादाध्यक्ष को अपने अनुकूल बना लेना अथवा प्रतिपक्षी के पक्ष का एक बार समर्थन कर उसे अपने अनुकूल बना लेना।

४ पूर्ण तैयारी होने पर विवादाध्यक्ष तथा प्रतिपक्षी की उपेक्षा कर देना।

५. सभापति की सेवा कर उसे अपने पक्ष में कर लेना।

६. निर्णायकों मे अपने समर्थकों का बहुमत करना।

खुड्डपाण-पदं

६८. **छव्विहा खुड्डा पाणा पण्णत्ता, तं जहा—**
बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया,
संमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणिया,
तेउकाइया, वाउकाइया।

क्षुद्रप्राण-पदम्

षड्विधाः क्षुद्राः प्राणाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः,
सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः,
तेजस्कायिकाः, वायुकायिकाः।

क्षुद्रप्राण-पद

६८. क्षुद्र[५६] प्राणी छह प्रकार के होते है—

१. द्वीन्द्रिय, २. त्रीन्द्रिय, ३. चतुरिन्द्रिय,
४. सम्मूर्च्छिम पञ्चेन्द्रिय तिर्यक्यौनिक,
५. तेजस्कायिक, ६. वायुकायिक।

गोयरचरिया-पदं

६९. छव्विहा गोयरचरिया पण्णत्ता, तं जहा—
पेडा, अद्धपेडा, गोमुत्तिया,
पतंगवीहिया, संबुक्कावट्टा,
गंतुपच्चागता।

गोचरचर्या-पदम्

षड्विधा गोचरचर्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पेटा, अर्धपेटा, गोमूत्रिका,
पतङ्गवीथिका, शम्बूकावर्ता,
गत्वाप्रत्यागता।

गोचरचर्या-पद

६९. गोचरचर्या के छह प्रकार है[२७]—
१ पेटा, २. अर्धपेटा, ३. गोमूत्रिका,
४ पतगवीथिका, ५. शम्बूकावर्त्ता,
६. गत्वाप्रत्यागता।

महाणिरय-पदं

७०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए छ अवक्कंतमहाणिरया पण्णत्ता, तं जहा—
लोले, लोलुए, उद्दड्ढे,
णिद्दड्ढे, जरए, पज्जरए।

७१. चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए छ अवक्कंतमहाणिरया पण्णत्ता, तं जहा—
आरे, वारे, मारे, रोरे, रोरुए,
खाडखडे।

महानिरय-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां षट् अपक्रान्तमहानिरयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
लोलः, लोलुपः, उद्दग्धः,
निर्दग्धः, जरकः, प्रजरकः।

चतुर्थ्यां पङ्कप्रभायां पृथिव्यां षड् अपक्रान्तमहानिरयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
आरः, वारः, मारः, रोरः, रोरुकः,
खाडखडः।

महानिरय-पद

७० जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण-भाग मे इस रत्नप्रभा पृथ्वी मे छह अपक्रात [अतिनिकृष्ट] नरकावास है[२८]—
१ लोल, २. लोलुप, ३. उद्दग्ध,
४ निर्दग्ध, ५ जरक, ६. प्रजरक।

७१. चौथी पकप्रभा पृथ्वी मे छह अपक्रात महानरकावास है[२९]—
१. आर, २. वार, ३. मार,
४ रौर, ५. रौरूक, ६ खाडखड।

विमाण-पत्थड-पदं

७२. बंभलोगे णं कप्पे छ विमाण-पत्थडा पण्णत्ता, तं जहा—
अरए, विरए, णीरए, णिम्मले,
वितिमिरे, विसुद्धे।

विमान-प्रस्तट-पदम्

ब्रह्मलोके कल्पे षड् विमान-प्रस्तटाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अरजाः, विरजाः, नीरजाः, निर्मलः,
वितिमिरः, विशुद्धः।

विमान-प्रस्तट-पद

७२. ब्रह्मलोक देवलोक मे छह विमान-प्रस्तट है[३०]—
१ अरजम्, २. विरजस्, ३. नीरजम्,
४ निर्मल, ५ वितिमिर, ६ विशुद्ध।

णक्खत्त-पदं

७३. चंदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो छ णक्खत्ता पुव्वंभागा समखेत्ता तीसतिमुहुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
पुव्वाभद्दवया, कत्तिया, महा,
पुव्वफग्गुणी, मूलो, पुव्वासाढा।

नक्षत्र-पदम्

चन्द्रस्य ज्यौतिषेन्द्रस्य ज्यौतिषराजस्य षड् नक्षत्राणि पूर्वभागानि समक्षेत्राणि त्रिंशद्मुहूर्तानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पूर्वभद्रपदा, कृत्तिका, मघा,
पूर्वफाल्गुनी, मूला, पूर्वाषाढा।

नक्षत्र-पद

७३. ज्यौतिषेन्द्र ज्यौतिषराज चन्द्र के अग्र-योगी, समक्षेत्री और तीस मुहूर्त तक भोग करने वाले नक्षत्र छह है[३१]—
१. पूर्वभाद्रपद, २ कृतिका, ३. मघा,
४ पूर्वफाल्गुनी, ५ मूल, ६. पूर्वाषाढा।

७४. चंदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो छ णक्खत्ता णत्तंभागा अवड्ढक्खेत्ता पण्णरसमुहुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
सयभिसया, भरणी, भद्दा,
अस्सेसा, साती, जेट्ठा।

चन्द्रस्य ज्यौतिषेन्द्रस्य ज्यौतिषराजस्य षड् नक्षत्राणि नक्तंभागानि अपार्धक्षेत्राणि पञ्चदशमुहूर्तानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
शतभिषक्, भरणी, भद्रा,
अश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा।

७४. ज्यौतिषेन्द्र ज्यौतिषराज चन्द्र के समयोगी, अपार्ध क्षेत्री और पन्द्रह मुहूर्त तक भोग करने वाले नक्षत्र छह हैं"—
१. शतभिषक्, २. भरणी, ३. भद्रा,
४. अश्लेषा, ५. स्वाति, ६. ज्येष्ठा।

७५. चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोतिसरण्णो छ णक्खत्ता उभयभागा दिवड्ढखेत्ता पणयालीसमुहुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
रोहिणी, पुणव्वसू, उत्तराफग्गुणी,
विसाहा, उत्तरासाढा,
उत्तराभद्दवया।

चन्द्रस्य ज्यौतिषेन्द्रस्य ज्यौतिषराजस्य षड् नक्षत्राणि उभयभागानि द्व्यर्धक्षेत्राणि पञ्चचत्वारिंशद्मुहूर्तानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रोहिणी, पुनर्वसुः, उत्तरफाल्गुनी,
विशाखा, उत्तराषाढा, उत्तरभद्रपदा।

७५. ज्यौतिषेन्द्र ज्यौतिषराज चन्द्र के उभययोगी, द्व्यर्ध क्षेत्री और पैतालीस मुहूर्त तक भोग करने वाले नक्षत्र छह हैं"—
१. रोहिणी, २. पुनर्वसु,
३. उत्तरफाल्गुनी, ४. विशाखा,
५. उत्तराषाढा, ६ उत्तरभाद्रपद।

इतिहास-पदं

इतिहास-पदम्

इतिहास-पद

७६. अभिचंदे णं कुलकरे छ धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था।

अभिचन्द्रः कुलकरः षड् धनुःशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवत्।

७६. अभिचन्द्र कुलकर की ऊंचाई छह सौ धनुष्य की थी।

७७ भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी छ पुव्वसतसहस्साइं महाराया हुत्था।

भरतः राजा चातुरन्तचक्रवर्ती षड् पूर्वशतसहस्राणि महाराजः अभवत्।

७७ चतुरन्तचक्रवर्ती राजा भरत छह लाख पूर्वों तक महाराज रहे।

७८. पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणियस्स छ सता वादीणं सदेवमणुयासुराए परिसाए अपराजियाणं संपया होत्था।

पार्श्वस्य अर्हतः पुरुषादानीयस्य षड् शतानि वादिना सदेवमनुजासुरायां परिषदि अपराजितानां सपत् अभवत्।

७८. पुरुषादानीय [पुरुषप्रिय] अर्हत् पार्श्व के देवो, मनुष्यों तथा असुरों की परिषद् में अपराजेय छह सौ वादी थे।

७९. वासुपुज्जे णं अरहा छहिं पुरिससतेहिं सद्धिं मुंडे °भवित्ता अगाराओ अणगारियं° पव्वइए।

वासुपूज्यः अर्हन् षड्भिः पुरुषशतैः सार्धं मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः।

७९. वासुपूज्य अर्हत् छह सौ पुरुषों के साथ मुंड होकर अगार से अनगारत्व मे प्रव्रजित हुए।

८०. चंदप्पभे णं अरहा छम्मासे छउमत्थे हुत्था।

चन्द्रप्रभः अर्हन् षण्मासान् छद्मस्थः अभवत्।

८०. चन्द्रप्रभ अर्हत् छह महीनो तक छद्मस्थ रहे।"

संजम-असंजम-पदं

संयम-असंयम-पदम्

संयम-असंयम-पद

८१. तेइंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स छव्विहे संजमे कज्जति, तं जहा—

त्रीन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य षड्विधः सयमः क्रियते, तद्यथा—

८१. त्रीन्द्रिय जीवो का आरम्भ न करने वाले के छः प्रकार का संयम होता है—

घाणामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति।	घ्राणमयात् सौख्याद् अव्यपरोपयिता भवति।	१. घ्राणमय सुख का वियोग नहीं करने से,
घाणामएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवति।	घ्राणमयेन दुःखेन असयोजयिता भवति।	२. घ्राणमय दुःख का संयोग नहीं करने से,
जिब्भामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति।	जिह्वामयात् सौख्याद् अव्यपरोपयिता भवति।	३. रसमय सुख का वियोग नहीं करने से,
°जिब्भामएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवति।	जिह्वामयेन दुःखेन असयोजयिता भवति।	४ रसमय दुःख का संयोग नहीं करने से,
फासामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति।	स्पर्शमयात् सौख्याद् अव्यपरोपयिता भवति।	५ स्पर्शमय सुख का वियोग नहीं करने से,
फासामएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवति।°	स्पर्शमयेन दुःखेन असयोजयिता भवति।	६. स्पर्शमय दुःख का सयोग नहीं करने से।

८२. तेइंदिया णं जीवा समारभमाणस्स छव्विहे असंजमे कज्जति, तं जहा—	त्रीन्द्रियान् जीवान् समारभमाणस्य षड्विध असंयमः क्रियते, तद्यथा—	८२. त्रीन्द्रिय जीवों का आरम्भ करने वाले के छह प्रकार का असंयम होता है—
घाणामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।	घ्राणमयात् सौख्याद् व्यपरोपयिता भवति।	१. घ्राणमय सुख का वियोग करने से।
घाणामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।	घ्राणमयेन दुःखेन संयोजयिता भवति।	२. घ्राणमय दुःख का सयोग करने से।
°जिब्भामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।	जिह्वामयात् सौख्याद् व्यपरोपयिता भवति।	३ रसमय सुख का वियोग करने से।
जिब्भामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।°	जिह्वामयेन दुःखेन सयोजयिता भवति।	४. रसमय दुःख का सयोग करने से।
फासामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।	स्पर्शमयात् सौख्याद् व्यपरोपयिता भवति।	५. स्पर्शमय सुख का वियोग करने से।
फासामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।	स्पर्शमयेन दुःखेन सयोजयिता भवति।	६ स्पर्शमय दुःख का सयोग करने से।

खेत्त-पव्वय-पदं	**क्षेत्र-पर्वत-पदम्**	**क्षेत्र-पर्वत-पद**
८३. जंबुद्दीवे दीवे छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	जम्बूद्वीपे द्वीपे षड् अकर्मभूम्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	८३. जम्बूद्वीप द्वीप मे छह अकर्मभूमिया हैं—
हेमवते, हेरण्णवते, हरिवस्से, रम्मगवासे, देवकुरा, उत्तरकुरा।	हैमवत, हैरण्यवतं, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, देवकुरुः, उत्तरकुरुः।	१. हैमवत, २. हैरण्यवत, ३. हरिवर्ष, ४. रम्यकवर्ष, ५ देवकुरु, ६. उत्तरकुरु।

८४. जंबुद्दीवे दीवे छव्वासा पण्णत्ता, तं जहा—
भरहे, एरवते, हेमवते,
हेरण्णवए, हरिवासे, रम्मगवासे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे षड्वर्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
भरतं, ऐरवतं, हैमवतं,
हैरण्यवतं, हरिवर्षं, रम्यकवर्षम्।

८४. जम्बूद्वीप मे छह वर्ष [क्षेत्र] हैं—
१. भरत, २. ऐरवत, ३. हैमवत,
४ हैरण्यवत, ५. हरिवर्ष, ६. रम्यकवर्ष।

८५. जंबुद्दीवे दीवे छ वासहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—
चुल्लहिमवंते, महाहिमवंते, णिसढे, णीलवंते, रुप्पी, सिहरी।

जम्बूद्वीपे द्वीपे षड् वर्षधरपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
क्षुद्रहिमवान्, महाहिमवान्, निषधः,
नीलवान्, रुक्मी, शिखरी।

८५. जम्बूद्वीप द्वीप मे छह वर्षधर पर्वत है—
१. क्षुद्रहिमवान्, २. महान्हिमवान्,
३. निषध, ४. नीलवान्, ५. रुक्मी,
६. शिखरी।

८६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं छ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
चुल्लहिमवंतकूडे, वेसमणकूडे,
महाहिमवंतकूडे, वेरुलियकूडे,
णिसढकूडे, रुयगकूडे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे षट् कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
क्षुद्रहिमवत्कूटं, वैश्रमणकूटं,
महाहिमवत्कूट, वैडूर्यकूटं,
निषधकूटं, रूचककूटम्।

८६. जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण-भाग मे छह कूट [चोटिया] हैं—
१. क्षुद्रहिमवत्कूट, २. वैश्रमणकूट,
३. महाहिमवत्कूट, ४. वैडूर्यकूट,
५. निषधकूट, ६. रुचककूट।

८७. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं छ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
णीलवंतकूडे, उवदंसणकूडे,
रुप्पिकूडे, मणिकंचणकूडे,
सिहरिकूडे, तिगिंछिकूडे।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे षट् कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
नीलवत्कूटं, उपदर्शनकूटं,
रुक्मिकूटं, मणिकाञ्चनकूटं,
शिखरिकूटं, तिगिञ्छिकूटम्।

८७. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर-भाग मे छह कूट हैं—
१. नीलवत्कूट, २. उपदर्शनकूट,
३. रुक्मिकूट, ४. मणिकाञ्चनकूट,
५. शिखरीकूट, ६. तिगिञ्छिकूट।

महादह-पदं

महाद्रह-पदम्

महाद्रह-पद

८८. जंबुद्दीवे दीवे छ महद्दहा पण्णत्ता, तं जहा—
पउमद्दहे, महापउमद्दहे,
तिगिंछिद्दहे, केसरिद्दहे,
महापोंडरीयद्दहे, पुंडरीयद्दहे।
तत्थ णं छ देवयाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितियाओ परिवसंति, तं जहा—
सिरी, हिरी, धिती, कित्ती, बुद्धी, लच्छी।

जम्बूद्वीपे द्वीपे षड् महाद्रहाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पद्मद्रहः, महापद्मद्रहः, तिगिञ्छिद्रहः
केशरीद्रहः, महापुण्डरीकद्रहः,
पुण्डरीकद्रहः।
तत्र षड् देव्यः महर्द्धिकाः
यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा—
श्रीः, ह्रीः, धृतिः, कीर्तिः, बुद्धिः,
लक्ष्मीः।

८८. जम्बूद्वीप द्वीप मे छह महाद्रह है—
१. पद्मद्रह, २. महापद्मद्रह,
३. तिगिञ्छिद्रह, ४. केशरिद्रह,
५. महापुण्डरीकद्रह, ६. पुण्डरीकद्रह।
उनमे छह महर्द्धिक, महाद्युति, महाशक्ति, महायश, महाबल, महासुख तथा पल्योपम की स्थिति वाली छह देवियां परिवास करती हैं—
१. श्री, २. ह्री, ३. धृति, ४. कीर्ति,
५. बुद्धि, ६. लक्ष्मी।

णदी-पदं

८९. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं छ महाणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
गंगा, सिंधू, रोहिया, रोहितंसा, हरी, हरिकंता।

९०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं छ महाणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
णरकंता, णारिकंता, सुवण्णकूला, रुप्पकूला, रत्ता, रत्तवती।

९१. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीताए महाणदीए उभयकूले छ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
गाहावती, दहवती, पंकवती, तत्तयला, मत्तयला, उम्मत्तयला।

९२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोदाए महाणदीए उभयकूले छ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
खीरोदा, सीहसोता, अंतोवाहिणी, उम्मिमालिणी, फेणमालिणी, गंभीरमालिणी।

धायइसंड-पुक्खरवर-पदं

९३. धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
हेमवए, °हेरण्णवते, हरिवस्से, रम्मगवासे, देवकुरा, उत्तरकुरा।°

९४. एवं जहा जंबुद्दीवे दीवे जाव अंतरणदीओ

नदी-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे षड् महानद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
गङ्गा, सिन्धुः, रोहिता, रोहितांशा, हरित्, हरिकान्ता।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे षड् महानद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
नरकान्ता, नारीकान्ता, स्वर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता, रक्तवती।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्मिन् शीताया महानद्याः उभयकूले षड् अन्तरनद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ग्राहवती, द्रहवती, पङ्कवती, तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पश्चिमे शीतोदायाः महानद्याः उभयकूले षड् अन्तरनद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
क्षीरोदा, सिंहस्रोता, अन्तर्वाहिनी, ऊर्मिमालिनी, फेनमालिनी, गम्भीरमालिनी।

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पदम्

धातकीषण्डद्वीपपौरस्त्यार्धे षड् अकर्मभूम्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
हैमवतं, हैरण्यवतं, हरिवर्षं, रम्यकवर्षं, देवकुरुः, उत्तरकुरुः।

एवं यथा जम्बूद्वीपे द्वीपे यावत् अन्तरनद्यः

नदी-पद

८९. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग मे छह महानदियां है—
१ गंगा, २ सिन्धु, ३. रोहिता, ४. रोहितांशा, ५ हरि, ६ हरिकांता।

९०. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर-भाग मे छह महानदियां हैं—
१. नरकांता, २ नारीकांता ३ सुवर्णकूला, ४ रूप्यकूला, ५ रक्ता, ६ रक्तवती।

९१ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्वभाग मे सीता महानदी के दोनो किनारो मे मिलने वाली छह अन्तर्नदियां है—
१ ग्राहवती, २. द्रहवती, ३. पंकवती, ४. तप्तजला, ५ मत्तजला, ६. उन्मत्तजला।

९२ जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत से पश्चिम-भाग मे सीतोदा महानदी के दोनो किनारों मे मिलने वाली छह अन्तर्नदियां है —
१ क्षीरोदा, २ सिंहस्रोता, ३ अन्तर्वाहिनी, ४ ऊर्मिमालिनी, ५ फेनमालिनी, ६ गम्भीरमालिनी।

धातकीषण्ड-पुष्करवर-पद

९३ धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में छह अकर्मभूमियां है—
१ हैमवत, २. हैरण्यवत, ३. हरिवर्ष, ४. रम्यकवर्ष, ५ देवकुरु, ६. उत्तरकुरु।

९४. इसी प्रकार जम्बूद्वीप द्वीप में जैसे वर्ष, वर्षधर आदि से अन्तर्-नदी तक का वर्णन किया गया है, वैसे ही यहा जानना चाहिए।

जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे भाणितव्वं।

यावत् पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्धे भणितव्यम्।

इसी प्रकार धातकीषण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध, पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में जानना चाहिए।

उउ-पदं

९५. छ उदू पण्णत्ता, तं जहा—
पाउसे, वरिसारत्ते, सरए, हेमंते, वसंते, गिम्हे।

ऋतु-पदम्

षड् ऋतवः प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
प्रावृड्, वर्षारात्रः, शरद्, हेमन्तः वसन्तः, ग्रीष्मः।

ऋतु-पद

९५. ऋतुएं छह हैं[५]—
१. प्रावृट्—आषाढ और श्रावण,
२. वर्षा—भाद्रपद और आश्विन,
३. शरद्—कार्तिक और मृगशिर,
४. हेमन्त—पौष और माघ,
५ वसन्त—फाल्गुन और चैत्र,
६ ग्रीष्म—वैशाख और ज्येष्ठ।

ओमरत्त-पदं

९६. छ ओमरत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
ततिए पव्वे, सत्तमे पव्वे, एक्कारसमे पव्वे, पण्णरसमे पव्वे, एगूणवीसइमे पव्वे, तेवीसइमे पव्वे।

अवमरात्र-पदम्

षड् अवमरात्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
तृतीयं पर्व, सप्तमं पर्व, एकादशं पर्व, पञ्चदशं पर्व, एकोनविंशतितम पर्व, त्रिविंशतितमं पर्व।

अवमरात्र-पद

९६ छह अवमरात्र [तिथिक्षय] होते है—
१ तीसरे पर्व—आषाढ-कृष्णपक्ष मे,
२ सातवें पर्व—भाद्रपद-कृष्णपक्ष मे,
३ ग्यारहवें पर्व—कार्तिक-कृष्णपक्ष मे,
४. पन्द्रहवे पर्व—पौष-कृष्णपक्ष मे,
५ उन्नीसवें पर्व—फाल्गुन-कृष्णपक्ष मे,
६. तेईसवे पर्व—वैसाख-कृष्णपक्ष मे।

अतिरत्त-पदं

९७. छ अतिरित्ता पण्णत्ता, तं जहा—
चउत्थे पव्वे, अट्ठमे पव्वे, दुवालसमे पव्वे, सोलसमे पव्वे, वीसइमे पव्वे, चउवीसइमे पव्वे।

अतिरात्र-पदम्

षड् अतिरात्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
चतुर्थं पर्व, अष्टम पर्व, द्वादश पर्व, षोडश पर्व, विंशतितम पर्व, चतुर्विंशतितम पर्व।

अतिरात्र-पद

९७. छह अतिरात्र [तिथिवृद्धि] होते है—
१. चौथे पर्व—आषाढ-शुक्लपक्ष मे,
२ आठवे पर्व—भाद्रपद-शुक्लपक्ष मे,
३. बारहवें पर्व—कार्तिक-शुक्लपक्ष मे,
४. सोलहवे पर्व—पौष-शुक्लपक्ष मे,
५ बीसवे पर्व—फाल्गुन-शुक्लपक्ष में,
६. चौबीसवें पर्व—वैसाख-शुक्लपक्ष मे,

अत्थोग्गह-पदं

९८. आभिणिबोहियणाणस्स णं छव्विहे अत्थोग्गहे पण्णत्ते, तं जहा—

अर्थावग्रह-पदम्

आभिनिबोधिकज्ञानस्य षड्विधः अर्थावग्रहः प्रज्ञप्त:, तद्यथा—

अर्थावग्रह-पद

९८. आभिनिबोधिक ज्ञान का अर्थावग्रह छह प्रकार का होता है—

सोइंदियत्थोग्गहे,
*चक्खिदियत्थोग्गहे,
घाणिदियत्थोग्गहे,
जिब्भिदियत्थोग्गहे,
फासिदियत्थोग्गहे,°
णोइंदियत्थोग्गहे।

श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः,
चक्षुरिन्द्रियार्थावग्रहः,
घ्राणेन्द्रियार्थावग्रहः,
जिह्वेन्द्रियार्थावग्रहः,
स्पर्शेन्द्रियार्थावग्रहः,
नो इन्द्रियार्थावग्रहः।

१. श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह,
२. चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह,
३ घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह,
४ जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रह,
५ स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह,
६ नोइन्द्रिय अर्थावग्रह।

ओहिणाण-पदं

९९ छव्विहे ओहिणाणे पण्णत्ते, तं जहा—
आणुगामिए, अणाणुगामिए,
वड्ढमाणए, हायमाणए, पडिवाती,
अपडिवाती।

अवधिज्ञान-पदम्

षड्विधं अवधिज्ञानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आनुगामिक, अनानुगामिकं, वर्धमानकं,
हीयमानकं, प्रतिपाति, अप्रतिपाति।

अवधिज्ञान-पद

९९ अवधिज्ञान[11] के छह प्रकार हैं—
१ आनुगामिक, २. अनानुगामिक,
३ वर्धमान, ४ हीयमान, ५. प्रतिपाति,
६ अप्रतिपाति।

अवयण-पदं

१००. णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा इमाइं छ अवयणाइं वदित्तए, तं जहा—
अलियवयणे, हीलियवयणे,
खिसितवयणे, फरुसवयणे,
गारत्थियवयणे,
विउसवितं वा पुणो उदीरित्तए।

अवचन-पदम्

नो कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा इमानि षड् अवचनानि वदितुम्, तद्यथा—
अलीकवचन, हीलितवचनं,
खिसितवचन, परुषवचन,
अगारस्थितवचनं,
व्यवशमित वा पुन. उदीरयितुम्।

अवचन-पद

१०० निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो को छह अवचन [गर्हित वचन] नही बोलने चाहिए---
१ अलीकवचन - असत्यवचन,
२ हीलितवचन---अवहेलनायुक्तवचन,
३ खिसितवचन—मर्मवेधीवचन,
४ परुषवचन—कटुकवचन,
५ अगारस्थितवचन —मेरा पुत्र, मेरी माता —ऐसा सम्बन्ध सूचक वचन।
६ उपशान्त कलह को उभाड़ने वाला वचन।

कप्पस्स पत्थार-पदं

१०१. छ कप्पस्स पत्थारा पण्णत्ता, तं जहा—
पाणातिवायस्स वाय वयमाणे।
मुसावायस्स वाय वयमाणे,
अदिण्णादाणस्स वायं वयमाणे,
अविरतिवायं वयमाणे,
अपुरिसवायं वयमाणे,
दासवायं वयमाणे—

कल्पस्यप्रस्तार-पदम्

षड् कल्पस्य प्रस्तारा: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
प्राणातिपातस्य वाद वदन्,
मृषावादस्य वादं वदन्,
अदत्तादानस्य वादं वदन्,
अविरतिवाद वदन्,
अपुरुषवादं वदन्,
दासवादं वदन्—

कल्प-प्रस्तार-पद

१०१ कल्प [साध्वाचार] के छह प्रस्तार [प्रायश्चित्त-रचना के विकल्प] है[12]—
१. प्राणातिपातसम्बन्धी आरोपात्मक वचन बोलने वाला।
२. मृषावादसम्बन्धी आरोपात्मक वचन बोलने वाला।
३ अदत्तादानसम्बन्धी आरोपात्मक वचन बोलने वाला।
४ अब्रह्मचर्यसम्बन्धी आरोपात्मक वचन बोलने वाला।
५. नपुंसक होने का आरोप लगाने वाला।
६. दास होने का आरोप लगाने वाला—

इच्चेते छकप्पस्स पत्थारे पत्थरेत्ता सम्ममपडिपूरेमाणे तट्ठाणपत्ते।

इत्येतान् षट् कल्पस्य प्रस्तारान् प्रस्तार्य सम्यक् अप्रतिपूरयन् तत्स्थानप्राप्तः।

इस प्रकार कल्प के प्रस्तारों को स्थापित कर यदि कोई साधु उन्हें प्रमाणित न कर सके तो वह तत्स्थान प्राप्त होता है—आरोपित दोष के प्रायश्चित्त का भागी होता है।

पलिमंथु-पदं

१०२. छ कप्पस्स पलिमंथू पण्णत्ता, तं जहा—
कोकुइते संजमस्स पलिमंथू,
मोहरिए सच्चवयणस्स पलिमंथू,
चक्खुलोलुए ईरियावहियाए पलिमंथू, तितिणिए एसणागोयरस्स पलिमंथू, इच्छालोभिते मोत्तिमग्गस्स पलिमंथू, भिज्जाणिदाणकरणे मोक्खमग्गस्स पलिमंथू, सव्वत्थ भगवता अणिदाणता पसत्था।

पलिमन्थु-पदम्

षड् कल्पस्य परिमन्थवः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कौकुचितः संयमस्य परिमन्थुः,
मौखरिकः सत्यवचनस्य परिमन्थुः,
चक्षुर्लोलुपः ऐर्यापथिक्याः परिमन्थुः,
'तितिणिकः' एषणागोचरस्य परिमन्थुः,
इच्छालोभिकः मुक्तिमार्गस्य परिमन्थुः,
भिध्यानिदानकरण मोक्षमार्गस्य परिमन्थुः,
सर्वत्र भगवता अनिदानता प्रशस्ता।

पलिमन्थु-पद

१०२. कल्प [साध्वाचार] के छह परिमंथु [प्रतिपक्षी] हैं"—
१. कौकुचित—चपलता करने वाला संयम का परिमंथु है।
२. मौखरिक—वाचाल सत्यवचन का परिमंथु है।
३. चक्षुर्लोलुप—दृष्टि-आसक्त ईर्यापथिक का परिमंथु है।
४. तितिणक—चिड़चिड़े स्वभाव वाला भिक्षा की एषणा का परिमंथु है।
५. इच्छालोभिक—अतिलोभी मुक्तिमार्ग का परिमंथु है।
६. भिध्यानिदानकरण—आसक्तभाव से किया जाने वाला पौद्गलिक सुखों का संकल्प मोक्षमार्ग का परिमंथु है।
भगवान् ने अनिदानता को सर्वत्र प्रशस्त कहा है।

कप्पठिति-पदं

१०३. छव्विहा कप्पट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—
सामाइयकप्पट्ठिती,
छेओवट्ठावणियकप्पट्ठिती,
णिव्विसमाणकप्पट्ठिती,
णिव्विट्ठकप्पट्ठिती,
जिणकप्पट्ठिती,
थेरकप्पट्ठिती।

कल्पस्थिति-पदम्

षड्विधा कल्पस्थितिः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
सामायिककल्पस्थितिः,
छेदोपस्थापनीयकल्पस्थितिः,
निर्विशमानकल्पस्थितिः,
निर्विष्टकल्पस्थितिः,
जिनकल्पस्थितिः,
स्थविरकल्पस्थितिः।

कल्पस्थिति-पद

१०३. कल्पस्थिति छह प्रकार की है"—
१. सामायिककल्पस्थिति,
२. छेदोपस्थापनीयकल्पस्थिति,
३. निर्विशमानकल्पस्थिति,
४. निर्विष्टकल्पस्थिति,
५. जिनकल्पस्थिति,
६. स्थविरकल्पस्थिति।

महावीरस्स छट्ठभत्त-पदं

१०४. समणे भगवं महावीरे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं मुंडे *भवित्ता अगाराओ अणगारियं° पव्वइए।

१०५. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं अणंते अणुत्तरे *णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाण-दंसणे° समुप्पण्णे।

१०६. समणे भगवं महावीरे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं सिद्धे *बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे° सव्व-दुक्खप्पहीणे।

महावीरस्य षष्ठभक्त-पदम्

श्रमण: भगवान् महावीर: षष्ठेन भक्तेन अपानकेन मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजित:।

श्रमणस्य भगवत: महावीरस्य षष्ठेन भक्तेन अपानकेन अनन्त अनुत्तर निर्व्याघात निरावरण कृत्स्न प्रतिपूर्ण केवलवरज्ञानदर्शन समुत्पन्नम्।

श्रमण: भगवान् महावीर: षष्ठेन भक्तेन अपानकेन सिद्ध बुद्ध मुक्त अन्तकृत परिनिर्वृत सर्वदुःखप्रक्षीण:।

महावीर का षष्ठभक्त-पद

१०४ श्रमण भगवान् महावीर अपानक छट्ठ-भक्त तपस्या में मुण्ड होकर अगार से अनगारत्व में प्रव्रजित हुए।

१०५ श्रमण भगवान् महावीर को अपानक छट्ठ भक्त की तपस्या में अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण केवलवरज्ञानदर्शन उत्पन्न हुआ।

१०६ श्रमण भगवान् महावीर अपानक छट्ठ-भक्त में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और सर्वदुःखों से रहित हुए।

विमाण-पदं

१०७. सणंकुमार—माहिंदेसु णं कप्पेसु विमाणा छ जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

विमान-पदम्

सनत्कुमार-माहेन्द्रयो: कल्पयो: विमानानि षड् योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

विमान-पद

१०७ सनत्कुमार तथा माहेन्द्र देवलोक के विमान छह सौ योजन ऊंचे होते हैं।

देव-पदं

१०८. सणंकुमार-माहिंदेसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जगा सरीरगा उक्कोसेणं छ रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

देव-पदम्

सनत्कुमार-माहेन्द्रयो: कल्पयो: देवाना भवधारणीयकानि शरीरकाणि उत्कर्षेण षड् रत्नी ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

देव-पद

१०८ सनत्कुमार तथा माहेन्द्र देवलोक में देवो का भवधारणीय शरीर ऊंचाई में छह रत्नि का होता है।

भोयण-परिणाम-पदं

१०९. छव्विहे भोयणपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—

मणुण्णे, रसिए, पीणणिज्जे, बिंहणिज्जे, मयणिज्जे, दप्पणिज्जे।

भोजन-परिणाम-पदम्

षड्विध: भोजनपरिणाम: प्रज्ञप्त:, तद्यथा—

मनोज्ञ:, रसिक:, प्रीणनीय:, बृंहणीय:, मदनीय:, दर्पणीय:।

भोजन-परिणाम-पद

१०९ भोजन का परिणाम" छह प्रकार का होता है—

१ मनोज्ञ—मन में आह्लाद उत्पन्न करने वाला। २. रसिक—रसयुक्त।
३ प्रीणनीय—रस, रक्त आदि धातुओं में समता लाने वाला।
४ बृंहणीय—धातुओं को उपचित करने वाला। ५. मदनीय—काम को बढ़ाने वाला। ६. दर्पणीय—पुष्टिकारक।

विस-परिणाम-पदं

११०. छव्विहे विसपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—
डक्के, भुत्ते, णिवतिते, मंसाणुसारी, सोणिताणुसारी, अट्ठिमिंजाणुसारी।

विष-परिणाम-पदम्

षड्विधः विषपरिणामः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
दष्टं, भुक्तं, निपतितं, मांसानुसारि, शोणितानुसारि, अस्थिमज्जानुसारि।

विष-परिणाम-पद

११०. विष का परिणाम छह प्रकार का होता है—
१. दष्ट—किसी विषैले प्राणी द्वारा काटे जाने पर प्रभाव डालने वाला।
२. भुक्त—खाए जाने पर प्रभाव डालने वाला।
३. निपतित—शरीर के बाहरी भाग से स्पृष्ट होकर प्रभाव डालने वाला—त्वग्-विष, दृष्टिविष आदि।
४ मासानुसारी— मास तक की धातुओ को प्रभावित करने वाला।
५. शोणितानुसारी—रक्त तक की धातुओं को प्रभावित करने वाला।
६ अस्थिमज्जानुसारी— अस्थि-मज्जा तक की धातुओ को प्रभावित करने वाला।

पट्ठ-पदं

१११. छव्विहे पट्ठे पण्णत्ते, तं जहा—
संसयपट्ठे, वुग्गहपट्ठे, अणुजोगी, अणुलोमे, तहणाणे, अतहणाणे।

पृष्ट-पदम्

षड्विधं पृष्टं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
संशयपृष्ट, व्युद्ग्रहपृष्ट, अनुयोगिः, अनुलोम, तथाज्ञान, अतथाज्ञानम्।

पृष्ट-पद

१११. प्रश्न छह प्रकार के होते है—
१. संशयप्रश्न—संशय मिटाने के लिए पूछा जाने वाला।
२ व्युद्ग्रहप्रश्न—मिथ्या अभिनिवेश से दूसरे को पराजित करने के लिए पूछा जाने वाला।
३ अनुयोगी—व्याख्या के लिए पूछा जाने वाला।
४ अनुलोम—कुशलकामना से पूछा जाने वाला।
५. तथाज्ञान—स्वयं जानते हुए भी दूसरों की ज्ञानवृद्धि के लिए पूछा जाने वाला।
६. अतथाज्ञान—स्वयं न जानने की स्थिति में पूछा जाने वाला।

विरहिय-पदं

११२. चमरचंचा णं रायहाणी उक्कोसेणं छम्मासा विरहिया उववातेणं।

११३. एगमेगे णं इंदट्ठाणे उक्कोसेणं छम्मासे विरहिते उववातेणं।

११४. अधोसत्तमा णं पुढवी उक्कोसेणं छम्मासा विरहिता उववातेणं।

११५. सिद्धिगती णं उक्कोसेणं छम्मासा विरहिता उववातेणं।

विरहित-पदम्

चमरचञ्चा राजधानी उत्कर्षेण षण्मासान् विरहिता उपपातेन।

एकैकं इन्द्रस्थान उत्कर्षेण षण्मासान् विरहितं उपपातेन।

अधःसप्तमा पृथिवी उत्कर्षेण षण्मासान् विरहिता उपपातेन।

सिद्धिगतिः उत्कर्षेण षण्मासान् विरहिता उपपातेन।

विरहित-पद

११२ चमरचञ्चा राजधानी में उत्कृष्टरूप से छह महीनों तक उपपात का विरह [व्यवधान] हो सकता है।

११३. प्रत्येक इन्द्र के स्थान में उत्कृष्टरूप से छह महीनों तक उपपात का विरह हो सकता है।

११४. निचली सातवी पृथ्वी मे उत्कृष्ट रूप से छह महीनों तक उपपात का विरह हो सकता है।

११५. सिद्धिगति मे उत्कृष्टरूप से छह महीनों तक उपपात का विरह हो सकता है।

आउयबंध-पदं

११६. छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते, तं जहा—
जातिणामणिधत्ताउए,
गतिणामणिधत्ताउए,
ठितिणामणिधत्ताउए,
ओगाहणाणामणिधत्ताउए,
पएसणामणिधत्ताउए,
अणुभागणामणिधत्ताउए।

११७. णेरइयाणं छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते, तं जहा—
जातिणामणिहत्ताउए,
°गतिणामणिहत्ताउए,
ठितिणामणिहत्ताउए,
ओगाहणाणामणिहत्ताउए,
पएसणामणिहत्ताउए,°
अणुभागणामणिहत्ताउए।

११८. एवं जाव वेमाणियाणं।

आयुर्बन्ध-पदम्

षड्विधः आयुर्बन्धः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
जातिनामनिधत्तायुः,
गतिनामनिधत्तायुः,
स्थितिनामनिधत्तायु,
अवगाहनानामनिधत्तायुः,
प्रदेशनामनिधत्तायुः,
अनुभागनामनिधत्तायु.।

नैरयिकाणां षड्विधः आयुर्बन्धः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
जातिनामनिधत्तायुः,
गतिनामनिधत्तायुः,
स्थितिनामनिधत्तायुः,
अवगाहनानामनिधत्तायुः,
प्रदेशनामनिधत्तायुः,
अनुभागनामनिधत्तायुः।

एवं यावत् वैमानिकानाम्।

आयुर्बन्ध-पद

११६. आयुष्य का बध छह प्रकार का होता है[1]—
१. जातिनामनिषिक्तायु,
२. गतिनामनिषिक्तायु,
३. स्थितिनामनिषिक्तायु,
४. अवगाहनानामनिषिक्तायु,
५. प्रदेशनामनिषिक्तायु,
६. अनुभागनामनिषिक्तायु।

११७. नैरयिकों के आयुष्य का बंध छह प्रकार का होता है—
१. जातिनामनिषिक्तायु,
२. गतिनामनिषिक्तायु,
३. स्थितिनामनिषिक्तायु,
४. अवगाहनानामनिषिक्तायु,
५. प्रदेशनामनिषिक्तायु,
६. अनुभागनामनिषिक्तायु।

११८. इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डकों के जीवो मे आयुष्य का बध छह प्रकार का होता है।

परभवियाउय-पदं

११९. णेरइया णियमा छम्मासाव-सेसाउया परभवियाउयं पगरेंति।

१२०. एवं—असुरकुमारावि जाव थणियकुमारा।

१२१. असंखेज्जवासाउया सण्णिपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिया णियमं छम्मा-सावसेसाउया परभवियाउयं पगरेंति।

१२२. असंखेज्जवासाउया सण्णिमणुस्सा णियमं °छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं° पगरेंति।

१२३. वाणमंतरा जोतिसवासिया वेमाणिया जहा णेरइया।

परभविकायुः-पदम्

नैरयिका नियमं षण्मासावशेषायुषः परभविकायुः प्रकुर्वन्ति।

एवम्—असुरकुमारा अपि यावत् स्तनित कुमाराः।

असंख्येयवर्षायुषः संज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्-योनिकाः नियमं षण्मासावशेषायुषः परभविकायुः प्रकुर्वन्ति।

असंख्येयवर्षायुषः संज्ञिमनुष्याः नियमं षण्मासावशेषायुषः परभविकायुः प्रकुर्वन्ति।

वानमन्तराः ज्यौतिषवासिकाः वैमानिकाः यथा नैरयिकाः।

परभविकायुः-पद

११९. नैरयिक वर्तमान आयुष्य के छह् मास शेष रह् जाने पर निश्चय ही परभव के आयुष्य का बंध करते हैं।

१२० इसी प्रकार असुरकुमार से स्तनितकुमार तक के सभी भवनपति देव वर्तमान आयुष्य के छह् मास शेष रहने पर निश्चय ही परभव के आयुष्य का बंध करते हैं।

१२१. असख्य वर्ष की आयु वाले समनस्क-तिर्यक्योनिक-पञ्चेन्द्रिय वर्तमान आयुष्य के छह मास शेष रहने पर निश्चय ही परभव के आयुष्य का बंध करते है।

१२२. असख्य वर्ष की आयुवाले समनस्क मनुष्य वर्तमान आयुष्य के छह मास शेष रहने पर निश्चय ही परभव के आयुष्य का बंध करते है।

१२३. वानमतर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव वर्तमान आयुष्य के छह मास शेष रहने पर निश्चय ही परभव के आयुष्य का बंध करते है।

भाव-पदं

१२४. छव्विधे भावे पण्णत्ते, तं जहा—ओदइए, उवसमिए, खइए, खओवसमिए, पारिणामिए, सण्णिवातिए।

भाव-पदम्

षड्विधः भावः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—औदयिकः, औपशमिकः, क्षायिकः, क्षायोपशमिकः, पारिणामिकः, सान्निपातिकः।

भाव-पद

१२४. भाव[४२] के छह प्रकार है—
१. औदयिक, २. औपशमिक, ३. क्षायिक, ४. क्षायोपशमिक, ५. पारिणामिक, ६. सान्निपातिक।

पडिक्कमण-पदं

१२५. छव्विहे पडिक्कमणे पण्णत्ते, तं जहा—
उच्चारपडिक्कमणे,

प्रतिक्रमण-पदम्

षड्विधं प्रतिक्रमणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
उच्चारप्रतिक्रमणं,

प्रतिक्रमण-पद

१२५. प्रतिक्रमण छह प्रकार का होता है—
१. उच्चार प्रतिक्रमण—मल-त्याग करने के बाद वापस आकर ईर्यापथिकी सूत्र के द्वारा प्रतिक्रमण करना।

पासवणपडिक्कमणे,
इत्तरिए, आवकहिए,
जंकिंचिमिच्छा, सोमणंतिए।

प्रस्रवणप्रतिक्रमणं,
इत्वरिकं, यावत्कथिकं,
यत्किञ्चिद्मिथ्या, स्वापनान्तिकम्।

२. प्रस्रवण प्रतिक्रमण—मूत्र-त्याग करने बाद वापस आकर ईर्यापथिकी सूत्र के द्वारा प्रतिक्रमण करना।

३. इत्वरिक प्रतिक्रमण—दैवसिक, रात्रिक आदि प्रतिक्रमण करना।

४. यावत्कथिक प्रतिक्रमण—हिंसा आदि से सर्वथा निवृत्त होना अथवा आजीवन अनशन करना।

५. यत्किंचित्मिथ्यादुष्कृत प्रतिक्रमण—साधारण अयतना होने पर उसकी विशुद्धि के लिए 'मिच्छामिदुक्कडं' इस भाषा में खेद प्रकट करना।

६. स्वप्नान्तिक प्रतिक्रमण—सोकर उठने के पश्चात् ईर्यापथिकी सूत्र के द्वारा प्रतिक्रमण करना।

णक्खत्त-पदं

१२६. कत्तियाणक्खत्ते छत्तारे पण्णत्ते।
१२७. असिलेसाणक्खत्ते छत्तारे पण्णत्ते।

नक्षत्र-पदम्

कृत्तिकानक्षत्रं षट्तार प्रज्ञप्तम्।
अश्लेषानक्षत्र षट्तार प्रज्ञप्तम्।

नक्षत्र-पद

१२६. कृत्तिका नक्षत्र के छह तारे हैं।
१२७. अश्लेषा नक्षत्र के छह तारे है।

पावकम्म-पदं

१२८. जीवा णं छट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणंति चिणिस्संति वा, तं जहा—
पुढविकाइयणिव्वत्तिए,
°आउकाइयणिव्वत्तिए,
तेउकाइयणिव्वत्तिए,
वाउकाइयणिव्वत्तिए,
वणस्सइकाइयणिव्वत्तिए,°
तसकायणिव्वत्तिए।
एवं—चिण-उवचिण-बंध
उदीर-वेय तह णिज्जरा चेव।

पापकर्म-पदम्

जीवा षट्स्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषु वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा—
पृथिवीकायिकनिर्वर्तितान्,
अप्कायिकनिर्वर्तितान्
तेजस्कायिकनिर्वर्तितान्,
वायुकायिकनिर्वर्तितान्,
वनस्पतिकायिकनिर्वर्तितान्,
त्रसकायनिर्वर्तितान्।
एवम्—चय-उपचय-बन्ध
उदीर-वेदाः तथा निर्जरा चैव।

पापकर्म-पद

१२८. जीवों ने छह स्थान निर्वर्तित पुद्गलों को पापकर्म के रूप मे ग्रहण किया था, करते हैं और करेंगे—
१ पृथ्वीकायनिर्वर्तित,
२ अप्कायनिर्वर्तित,
३. तेजस्कायनिर्वर्तित,
४ वायुकायनिर्वर्तित,
५. वनस्पतिकायनिर्वर्तित,
६. त्रसकायनिर्वर्तित।
इसी प्रकार जीवों के षट्काय निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्म के रूप में उपचय, बंध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे।

पोग्गल-पदं	पुद्गल-पदम्	पुद्गल-पद
१२९. छप्पएसिया णं खंधा अणंता पण्णत्ता।	षट्प्रदेशिकाः स्कन्धाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः।	१२९. छह प्रदेशी स्कन्ध अनन्त हैं।
१३०. छप्पएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।	षट्प्रदेशावगाढाः पुद्गलाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः।	१३०. छह प्रदेशावगाढ़ पुद्गल अनन्त हैं।
१३१. छसमयट्ठितीया पोग्गला अणंता पण्णत्ता।	षट्समयस्थितिकाः पुद्गलाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः।	१३१. छह समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं।
१३२. छगुणकालगा पोग्गला जाव छगुण-लुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।	षट्गुणकालकाः पुद्गलाः यावत् षड्गुणरूक्षाः पुद्गलाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः।	१३२. छह गुण काले पुद्गल अनन्त हैं— इसी प्रकार शेष वर्ण तथा गंध, रस और स्पर्शों के छह गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं।

टिप्पणियाँ

स्थान-६

१. (सू० १)

प्रस्तुत सूत्र मे गण धारण करनेवाले व्यक्ति के लिए छह कसौटिया निर्दिष्ट है—

१—श्रद्धा—अश्रद्धावान् पुरुष मर्यादानिष्ठ नही हो सकता। जो स्वय मर्यादानिष्ठ नही होता वह दूसरो को मर्यादा मे स्थापित नही कर सकता।[1] इसलिए गणी की प्रथम योग्यता 'श्रद्धा'—मर्यादाओ के प्रति विश्वास है।

२—सत्य—इसके दो अर्थ है—

१. यथार्थवचन।

२ प्रतिज्ञा के निर्वाह मे समर्थ।

यथार्थभाषी पुरुष ही यथार्थ का प्रतिपादन कर सकता है। जो की हुई प्रतिज्ञा के निर्वाह मे समर्थ होता है, वही दूसरों मे विश्वास उत्पन्न कर सकता है। गणी दूसरो के लिए विश्वस्त होना चाहिए।[2] इसलिए उसकी दूसरी योग्यता 'सत्य' है।

३—मेधा—आगम साहित्य मे मेधावी के दो अर्थ प्राप्त होते है—

१. मर्यादावान्।

२. श्रुतग्रहण करने की शक्ति से सपन्न।

जो व्यक्ति स्वय मर्यादावान् है, वही दूसरो को मर्यादा मे रख सकता है और वही व्यक्ति अपने गण मे मर्यादाओ का अक्षुण्ण पालन करा सकता है।

जो व्यक्ति तीक्ष्ण बुद्धि से सपन्न होता है, वही श्रुतग्रहण करने मे समर्थ होता है। ऐसा व्यक्ति ही दूसरों से श्रुतग्रहण कर अपने शिष्यो को उसका अध्यापन कराने मे समर्थ हो सकता है। इस प्रकार वह स्वय अनेक विषयो का ज्ञाता होकर अपने गण मे शिष्यों को भी इसी ओर प्रेरित कर सकता है।[3] इसलिए उसकी तीसरी योग्यता 'मेधा' है।

४—बहुश्रुतता—जैन परम्परा मे 'बहुश्रुत' व्यक्ति का बहुत समादर रहा है। उसे गण का एकमात्र उपष्टम्भ माना है। उत्तराध्ययन सूत्र मे 'बहुस्सुयपूआ' नाम का ग्यारहवा अध्ययन है। उसमे बहुश्रुत की महिमा बतलाई गई है। उत्तरवर्ती व्याख्या-ग्रंथो मे भी बहुश्रुत व्यक्ति के विषय मे अनेक विशेष नियम उपलब्ध होते है।[4]

प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति मे बताया गया है कि जो गणनायक बहुश्रुत नही होता, वह गण का अनुपकारी होता है। वह अपने शिष्यो की ज्ञानसंपदा कैसे बढा सकता है? जो गण या कुल अगीतार्थ (अबहुश्रुत) की निश्रा मे रहता है, उसका

---

१. स्थानागवृत्ति, पत्न ३३५. सड्ढि त्ति श्रद्धावान्, अश्रद्धावतो हि स्वयममर्यादावर्त्तितया परेषा मर्यादास्थापनायामसमर्थत्वात् गणधारणानर्हत्वम्।

२. वही, पत्न ३३५ सत्य सद्भ्यो—जीवेभ्यो हिततया प्रतिज्ञातशूरतया वा, एवभूतो हि पुरुषो गणपालक आदेयश्च स्यादिति।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र ३३५ मेधावि मर्यादया धावतीत्येवंशीलमिति निरुक्तिवशात्, एवभूतो हि गणस्य मर्यादाप्रवर्त्तको भवति, अथवा मेधाश्रुतग्रहणशक्तिस्तद्वत्, एवंभूतो हि श्रुतमन्यतो झगिति गृहीत्वा शिष्याध्यापने समर्थो भवतीति।

४. देखो—व्यवहार, उद्देशक १०, सूत्र १५; भाष्य गाथा—४६-४९।

विस्तार नहीं होता। अगीतार्थ व्यक्ति बालवृद्धाकुलगच्छ का सम्यक्प्रवर्तन नही कर पाता।[1]

इसलिए उसकी चौथी योग्यता 'बहुश्रुतता' है।

५—शक्ति—गणनायक को शक्तिसम्पन्न होना चाहिए। उसकी शक्तिसंपन्नता के चार अवयव हैं—

१. शरीर से स्वस्थ व दृढ़संहनन वाला होना।

२. मन्न के विधि-विधानो का ज्ञाता तथा अनेक मंत्रों की सिद्धियो से संपन्न।

३. तंत्र की सिद्धियो से संपन्न।

४. परिवार से संपन्न अर्थात् विशिष्ट शिष्यसंपदा से युक्त; विविध विषयो मे निष्णात शिष्यो से परिवृत।[2]

इसलिए उसकी पाचवी योग्यता 'शक्ति' है।

६. अल्पाधिकरणता—अधिकरण का अर्थ है—कलह या विग्रह। जो पुरुष स्वपक्ष या परपक्ष के साथ कलह करता रहता है उसका गौरव नही बढ़ता। जिसके प्रति गुरुत्व की भावना नही होती वह गण को लाभान्वित नहीं कर सकता।[3] इसलिए गणी की छठी योग्यता 'अकलह' (प्रशान्त भाव) है।

२. (सू० ३)

प्रस्तुत सूत्र मे कालगत निर्ग्रंथ अथवा निर्ग्रंथी की निर्हरण-क्रिया का उल्लेख है। इसमे छह बातों का निर्देश है—

१. मृतक को उपाश्रय से बाहर लाकर रखना।

किसी साधु के कालगत हो जाने पर कुछेक विधियो का पालन कर उसे उपाश्रय से बाहर लाकर परिस्थापित कर देना।

२. मृतक को उपाश्रय से बहिर्भाग से बस्ती के बाहर ले जाना—साधु की उपस्थिति मे मृतक का वहन साधु को ही करना चाहिए। इसकी विधि निम्न विवरण मे द्रष्टव्य है।

३. उपेक्षा—वृत्तिकार ने यहा उपेक्षा के दो प्रकारों की सूचना दी है—

१. व्यापार की उपेक्षा।

२. अव्यापार की उपेक्षा।

उन्होंने प्रसगवश उपेक्षा के अर्थ भी भिन्न-भिन्न किए हैं। व्यापार उपेक्षा मे उपेक्षा का अर्थ प्रवृत्ति और अव्यापार उपेक्षा मे उपेक्षा का अर्थ उदासीन भाव किया है।

(१) व्यापार की उपेक्षा का अर्थ है—मृतक विषयक छेदन, बधन आदि क्रियाए जो परंपरा से प्रसिद्ध हैं, उनमें प्रवृत्त होना।

(२) अव्यापार की उपेक्षा का अर्थ है—मृतक के संबधियो द्वारा किए जाने वाले सत्कार की उपेक्षा करना—उसमें उदासीन रहना[4]। यह अर्थ बहुत ही सक्षिप्त है। वृत्तिकार के समय मे ये बंधन और छेदन की परपराए प्रचलित रही हों,

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३३५ : बहु—प्रभूत श्रुत—सूत्रार्थरूपं यस्य तत्तथा, अन्यथा हि गणानुपकारी स्यात्, उक्तं च—

"सीसाण कुणइ कह सो तहाविहो हदि नाणमाईण।
अहियाहियसंपत्ति ससारच्छेयण परम ॥
कह सो जयउ अगीओ कह वा कुणउ अगीयनिस्साए।
कह वा करेउ गच्छं सबालवुड्डाउलं सो उ ॥

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३३५ : शक्तिमत् शरीरमन्त्रतन्त्रपरिवारादि-सामर्थ्ययुक्तं, तद्धि विविधास्वापत्सु गणस्यात्मनश्च निस्तारकं भवतीति।

३. वही, पत्र ३३५ : अप्पाहिगरणन्ति अल्प—अविद्यमानमधि-करण—स्वपक्षपरपक्षविषयो विग्रहो यस्य तत्तथा, तद्ध्यनु-वर्त्तकतया गणस्याहानिकारकं भवतीति।

४. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३३५. उपेक्षा द्विविधा—व्यापारोपेक्षा अव्यापारोपेक्षा च, तत्र व्यापारोपेक्षया तमुपेक्षमाणा, तद्विषयायां छेदनबन्धनादिकायां समयप्रसिद्धक्रियायां व्याप्रियमाणा इत्यर्थ, अव्यापारोपेक्षया च मृतकस्वजनादिभिरसं सत्क्रियमाणमुपेक्षमाणा तत्रोदासीना इत्यर्थं।

किन्तु आज इन परंपराओ का प्रचलन नही है, अत. इनका हार्द समझ पाना अत्यन्त कठिन है। इन परंपराओ का विस्तृत उल्लेख बृहत्कल्पभाष्य तथा व्यवहारभाष्य मे प्राप्त है। उनके सदर्भ मे 'उपेक्षा' का अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

बृहत्कल्पभाष्य मे इस प्रसंग मे आए हुए बधन और छेदन का अर्थ इस प्रकार है[1]—

बंधन—मृतक के दोनों पैरो के दोनो अगूठे तथा दोनों हाथो के दोनो अगूठे—चारो अंगूठों को रस्सी से बांधना तथा मुखवस्त्रिका से मुह को ढंकना।

छेदन—मृतक के अक्षत देह मे अगुली के बीच के पर्व का कुछ छेदन करना।

व्यापार उपेक्षा का यह विस्तृत अर्थ है। अव्यापार उपेक्षा का तात्पर्य स्पष्ट नही है। भाष्यो में भी उसका कोई विवरण प्राप्त नही है। प्राचीन काल मे मृतक मुनि के सबधी किस प्रकार से मृतक मुनि का सत्कार करते थे, यह ज्ञात नही है।

किन्तु यह संभव है कि अपने सबधी मुनि के कालगत होने पर गृहस्थ मरण-महोत्सव आदि मनाते हों, मृतक के शरीर पर सुगधित द्रव्य आदि चढाते हो तथा पूर्ण साज-सज्जा से शव-यात्रा निकालते हो।

४. शव के पास रात्रिजागरण—प्राचीन विधि के अनुसार जो मुनि निद्राजयी उपायकुशल, महापराक्रमी, धैर्यसंपन्न, कृतकरण (उस विधि के ज्ञाता), अप्रमादी और अभीरु होते थे, वे ही मृतक के पास बैठकर रात्रिजागरण करते थे।

रात्रि मे वे मुनि परस्पर धर्मकथा करते अथवा उपस्थित श्रावको को धर्मचर्चा सुनाते अथवा स्वयं सूत्र या धार्मिक आख्यानक का स्वाध्याय मधुर और उच्चस्वर से करते थे।[2] वृत्तिकार ने यहा दो पाठान्तरो की सूचना दी है[3]—'भयमाणा और अवसामेमाणा'। ये पाठान्तर बहुत महत्त्वपूर्ण है। इनके पीछे एक पुष्ट परपरा का सकेत है।

शव के पास रात्रिजागरण करनेवाला भयभीत न हो। वह अत्यन्त अभय और धैर्यशाली हो तथा उपरोक्त गुणो से युक्त हो।

दूसरा पाठान्तर है 'अवसामेमाणा'। इसका अर्थ है—उपशमन करनेवाला। इसके पीछे रही अर्थ-परपरा इस प्रकार है—

शव का परिष्ठापन करने के बाद यदि वह व्यन्तराधिष्ठित होकर दो-तीन बार उपाश्रय मे आ जाए तो मुनियो को अपने-अपने तपयोग की वृद्धि करनी चाहिए। इस प्रकार योग-परिवृद्धि करने पर भी वह व्यन्तराधिष्ठित मृतक वहा आए तो मुनि अपने बाएं हाथ मे मूत्र लेकर उसका सिंचन करे और कहे—'अरे गुह्यक! सचेत हो, सचेत हो। मूढ मत हो, प्रमाद मत कर।'

इतना करने पर भी वह गुह्यक एक, दो या उपस्थित सभी श्रमणो के नाम बताए तो उन-उन नाम वाले साधुओं को लुचन करा लेना चाहिए और पाच दिन का उपवास करना चाहिए। जो इतना तप न कर सके, वे एक, दो, तीन, चार उपवास करें। यह भी न करने पर गण से अलग होकर विहरण करे। उस उपद्रव के निवारण के लिए अजितनाथ और शांतिनाथ का स्तवन करें। यह उपशमन की विधि है।[4]

५. मृतक के सबंधियो को जताना—यह विधि रही है कि जो मुनि कालगत हुआ है और उसके ज्ञातिजन उस नगर में हैं तो उनको उसकी मृत्यु की सूचना देनी चाहिए। अन्यथा वे ऐसा कह सकते है कि हमे बिना पूछे ही आपने शव का परिष्ठापन कैसे कर दिया? वे कलह आदि उत्पन्न कर सकते है।

---

१. बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५५२४ :

करपायगुट्ठे दोरेण बधिउ पुत्तीए मुह छाए।
अक्खयदेहे खणण अगुलिविच्चे ण बाहिरतो॥

२. (क) बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५५२२, ५५२३ :

जितणिद्दुवायकुसला, ओरस्सबली य सत्तजुत्ता य।
कतकरण अप्पमादी, अभीरुगा जागरति तहिं॥
जागरणट्ठाए तहिं, अन्नेसिं वा वि तत्थ धम्मकहा।
सुत्त धम्मकह वा, मधुरगिरो उच्चसद्देण॥

(ख) आवश्यकचूर्णि, उत्तरभाग, पृष्ठ १०४।

३. स्थानागवृत्ति, पत्र ३३५ : पाठान्तरेण 'भयमाणत्ति वा,… उवसामेमाणत्ति।

४. बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५५४४-५५४६।

६. विसर्जित करने के लिए मौन भाव से जाना—

निर्हरण के लिए जानेवाले को किसी से बातचीत नहीं करनी चाहिए। इधर-उधर दृष्टि-विक्षेप भी नही करना चाहिए।

कालगत मुनि की निर्हरण क्रिया की विधि का विस्तृत उल्लेख बृहत्कल्पभाष्य[1], व्यवहारभाष्य[2] और आवश्यकचूर्णि[3] में मिलता है। बृहत्कल्पभाष्य के अनुसार उसका विवरण इस प्रकार है—

मुनि के शव को ले जाने के लिए वहनकाष्ठ और महास्थंडिल (जहां मृतक को परिष्ठापित किया जाता है) का निरीक्षण करना चाहिए। तीन स्थंडिलो का निरीक्षण आवश्यक होता है—

१. गांव के नजदीक, २. गांव के बीच में, ३. गाव से दूर।

इन तीनों की अपेक्षा इसलिए है कि एक के अव्यवहार्य होने पर दूसरा स्थंडिल काम में आ सके। संभव है, देखे हुए स्थंडिल को खेत के रूप मे परिवर्तित कर दिया गया हो, अथवा उस क्षेत्र मे पानी का जमाव हो गया हो, अथवा वहां हरियाली हो गई हो, अथवा वहा त्रस प्राणियों का उद्‌भव हो गया हो अथवा वहां नया गाँव बसा दिया हो अथवा वहां किसी सार्थ ने अपना पड़ाव डाल दिया हो—इन सब संभावनाओं के कारण तीन स्थंडिल अपेक्षित होते हैं। एक के अवरुद्ध होने पर दूसरे और दूसरे के अवरुद्ध होने पर तीसरे स्थंडिल को काम में लेना चाहिए।[4] मृतक को ढाई हाथ लम्बे सफेद और सुगंधित वस्त्र से ढंकना चाहिए। उसके नीचे भी वैसा ही एक वस्त्र बिछाना चाहिए। तत्पश्चात् उसको उन वस्त्रो सहित एक डोरी से बाँधकर, उस डोरी को ढंकने के लिए तीसरा अति उज्ज्वल वस्त्र ऊपर डाल देना चाहिए। सामान्यतः तीन वस्त्रों का उपयोग अवश्य होना चाहिए और आवश्यकतावश अधिक वस्त्रो का भी उपयोग किया जा सकता है। शव को मलिन वस्त्रो से ढंकने से प्रवचन की अवज्ञा होती है। लोक कहने लगते है—'अरे! ये साधु मरने पर भी शोभा प्राप्त नही करते।' मलिन वस्त्रों के कारण दो दोष उत्पन्न होते हैं—एक तो जो व्यक्ति उस सम्प्रदाय मे सम्यक्त्व ग्रहण करना चाहते है, उनका मन उससे हट जाता है और जो व्यक्ति उस संघ मे प्रव्रजित होना चाहते है, वे भी उससे दूर हो जाते है। अतः शव को अत्यन्त शुक्ल और सुन्दर वस्त्रो मे ढंकना चाहिए। जब भी साधु कालगत हुआ हो उसे उसी समय निकालना चाहिए, फिर चाहे रात हो या दिन। लेकिन रात्रि में विशेष हिम गिरता हो, चोरों या हिंसक जानवरो का भय हो, नगर के द्वार बन्द हो, मृतक महाजनो द्वारा ज्ञात हो[5] अथवा किसी ग्राम की ऐसी व्यवस्था हो कि वहा रात्रि मे शव को बाहर नही ले जाया जाता, मृतक के संबंधियों ने पहले से ऐसा कहा हो कि हमको पूछे बिना मृतक को न ले जाया जाए अथवा मृतक मुनि प्रसिद्ध आचार्य अथवा लम्बे समय तक अनशन का पालन कर कालगत हुआ हो, अथवा मास-मास की तपस्या करने वाला महान् तपस्वी हो तो शव को रात्रि के समय नही ले जाना चाहिए।

इसी प्रकार यदि सफेद कपड़ों का अभाव हो, अथवा राजा अपने अन्तःपुर के साथ तथा पुरस्वामी नगर मे प्रवेश कर रहा हो अथवा वह भट, भोजिक आदि के विशाल समूह के साथ नगर के बाहर जा रहा हो, उस समय नगर के द्वार लोगो से आकीर्ण रहते हैं, अतः शव को दिन मे नही ले जाना चाहिए। रात्रि मे उसका निर्हरण करना चाहिए।

साधु को कालगत होते ही, जब तक कि वायु से सारा शरीर अकड़ न जाए, उसके हाथ और पैरो को एकदम सीधे लम्बे फैला दें, और मुह तथा आंखों के पुटों को बद कर दें।

साधु के शव को देखकर मुनि विषाद न करें किन्तु उसका विधि से व्युत्सर्जन करे। वहा यदि आचार्य हों तो वे सारी विधि का निर्वाह करें। उनके अभाव मे गीतार्थ मुनि, उसके अभाव मे अगीतार्थ मुनि जिसको मृतक की विधि का पूर्व अनुभव

१. बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५४९९-५५६५।

२. व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्यगाथा ४२०-४५१।

३. आवश्यकचूर्णि, उत्तरभाग, पृष्ठ १०२-१०९।

४. बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५५०७ :

आसन्न मज्झ दूरे वाघातट्ठा उ थंडिले तिण्णि।
खेत्तुदय-हरिय-पाणा, णिविट्ठमादी व वाघाए॥

५. बृहत्कल्प के वृत्तिकार ने 'महानिनाद' का अर्थ महाजनो द्वारा ज्ञात किया है। किन्तु चूर्णि तथा विशेषचूर्णि में इसका अर्थ महान्निनाद (कोलाहल) किया है—देखो बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५५१६, वृत्ति, भाग ५, पृष्ठ १४६३ पर पाद-टिप्पण।

हो, उसके अभाव मे धैर्य आदि गुणो से संपन्न मुनि से सारी विधि कराई जाए। किन्तु शोक से या भय से विधि मे प्रमाद न करे।

शव के पास बैठे मुनि रात्रि जागरण करें जो निद्राजयी, उपायकुशल, शक्तिसंपन्न, धैर्यशाली, कृतकरण, अप्रमादी तथा अभीरु हो। शव के पास बैठकर वे उच्च स्वर से धर्मकथा करे।

मृतक के हाथ और पैरो के अगूठो को रस्सी से बाधकर उसके मुह को मुखवस्त्रिका से ढक दे तथा मृतक के अक्षत देह मे उसकी अगुली को मध्य से छेद डाले। फिर यदि शरीर मे कोई व्यन्तर या प्रत्यनीक देवता प्रवेश कर दे तो बाएं हाथ मे मूत्र लेकर मृतक के शरीर का सिंचन करते हुए ऐसा कहे — हे गुह्यक! सचेत हो, सचेत हो। मूढ मत बन, प्रमाद मत कर, सस्तारक से मत उठ।

उस समय उस मृत कलेवर मे प्रवेश कर कोई दूसरा अपने विकराल रूप से डराए, अट्टहास करे, अथवा भयंकर शब्द करे तो भी उपस्थित मुनि उससे भयभीत न हो और विधि से शव का व्युत्सर्ग करे।

शव के परिष्ठापन के लिए नैऋत कोण सबसे श्रेष्ठ है। उसके अभाव मे दक्षिण दिशा, उसके अभाव मे पश्चिम, उसके अभाव मे आग्नेयी (दक्षिण-पूर्व) उसके अभाव मे वायवी (पश्चिम-उत्तर), उसके अभाव मे पूर्व, उसके अभाव में उत्तर-पूर्व दिशा का उपयोग करे।

इन दिशाओ मे परिष्ठापन करने से अनेक हानि-लाभ होते है।

नैऋत मे परिष्ठापन करने से अन्न-पान और वस्त्र का प्रचुर लाभ होता है और समूचे सघ मे समाधि होती है। दक्षिण मे परिष्ठापन करने से अन्न-पान का अभाव होता है, पश्चिम मे करने से उपकरणो का अलाभ होता है, आग्नेयी मे करने से साधुओ मे परस्पर तू-तू मैं-मै होती है, वायवी मे करने मे साधुओ मे परस्पर तथा गृहस्थ और अन्य तीर्थिकों के साथ कलह बढ़ता है, पूर्व मे करने से गण-भेद और चारित्र-भेद होता है, उत्तर मे करने से रोग बढता है और उत्तर-पूर्व मे करने से दूसरा कोई साधु (निकट काल मे) मृत्यु को प्राप्त होता है।[1]

शव को परिष्ठापन के लिए ले जाते समय एक मुनि पात्र मे शुद्ध पानक ले तथा उसमे चार अगुल प्रमाण समान रूप से काटे हुए कुश लेकर, पीछे मुडकर न देखते हुए, स्थडिल की ओर गमन करे। यदि उस समय दर्भ प्राप्त न हो तो उसके स्थान पर चूर्ण अथवा केशर का उपयोग किया जा सकता है। यदि वहा कोई गृहस्थ हो तो शव को वहा रखकर हाथ-पैर धोएं तथा अन्यान्य विधियों का भी पालन करे, जिससे कि प्रवचन का उड्डाह न हो।

शव को उपाश्रय से निकालते समय या उसका परिष्ठापन करते समय उसका शिर गाव की ओर करे। गांव की ओर पैर रखने से अमगल समझा जाता है।

स्थंडिल भूमि मे पहुच कर एक मुनि उस कुश से सस्तारक तैयार करे। वह सस्तारक सर्वत्र सम होना चाहिए, ऊंचा-नीचा नही होना चाहिए। यदि कुश न मिले तो चूर्ण या नागकेशर के द्वारा अव्यवच्छिन्न रूप से ककार और उसके नीचे तकार बनाए। चूर्ण या नागकेशर के अभाव मे किसी प्रलेप आदि के द्वारा भी ऐसा किया जा सकता है। यह विधि संपन्न कर शव को उस पर परिष्ठापित कर और उसके पास रजोहरण, मुखवस्त्रिका और चोलपट्टक रखने चाहिए। इन यथाजात चिन्हो के न रखने से कालगत साधु मिथ्यात्व को प्राप्त हो सकता है तथा चिन्हो के अभाव मे राजा के पास जाकर कोई शिकायत कर सकता है कि एक मृत शव पडा है—यह सुनकर राजा कुपित होकर, आसपास के दो-तीन गांवों का उच्छेद भी कर सकता है।

---

१. बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५५०५, ५५०६

दिस अवरदक्खिणा दक्खिणा य अवरा य दक्खिणापुव्वा।
अवरुत्तरा य पुव्वा, उत्तर पुव्वुत्तरा चेव॥
समाही य भत्त-पाणे, उवकरणे तुमतुमा य कलहो य।
भेदो गेलन्नं वा, चरिमा पुण कड्डए अण्णं॥

स्थंडिल भूमि में मृतक का व्युत्सर्जन कर मुनि वहीं कायोत्सर्ग न करे किन्तु उपाश्रय में आकर आचार्य के पास, परिष्ठापन में कोई अविधि हुई हो तो उसकी आलोचना करे।

यदि कालगत मुनि के शरीर में यक्ष प्रविष्ट हो जाए और शव उठ खड़ा हो तो मुनियों को इस विधि का पालन करना चाहिए—यदि शव उपाश्रय में ही उठ जाए तो उपाश्रय को छोड़ देना चाहिए। इसी प्रकार वह यदि मोहल्ले मे उठे तो मोहल्ले को, गली में उठे तो गली को, गांव के बीच मे उठे तो ग्रामार्द्ध को, ग्रामद्वार में उठे तो गांव को, गांव और उद्यान के बीच में उठे तो मंडल को, उद्यान मे उठे तो देशखड को, उद्यान और स्वाध्याय भूमि के बीच मे उठे तो देश को तथा स्वाध्याय भूमि में उठे तो राज्य को छोड़ देना चाहिए।

शव का परिष्ठापन कर गीतार्थ मुनि एक ओर ठहर कर मुहूर्त मात्र प्रतीक्षा करे कि कहीं कालगत मुनि पुन: उठ न जाए।

परिष्ठापन करने के बाद शव के उठ जाने पर मुनि को क्या करना चाहिए—इस विधि के निदर्शन मे बृहत्कल्पभाष्य में टीकाकार वृद्धसंप्रदाय का उल्लेख करते हुए बताते है कि—

स्वाध्याय भूमि में शव का परिष्ठापन करने पर यदि वह किसी कारणवश उठे और वही पुन: गिर जाए तो मुनि को उपाश्रय छोड़ देना चाहिए। यदि वह उठा हुआ शव स्वाध्याय-भूमि और उद्यान के बीच मे गिरे तो निवेसन (मोहल्ले) का त्याग कर दे। यदि उद्यान में गिरे तो उस गृहपंक्ति (साही) को छोड़ दे। यदि उद्यान और गांव के बीच में गिरे तो ग्रामार्द्ध को छोड दे। यदि गाव के द्वार पर गिरे तो गाव को, गाव के मध्य गिरे तो मडल को, गृहपंक्ति के बीच गिरे तो देशखड को, निवेसन मे गिरे तो देश को और वसति में गिरे तो राज्य को छोड दे।[1]

मृतक साधु के उच्चारपात्र, प्रश्रवणपात्र और श्लेष्मपात्र तथा सभी प्रकार के सस्तारकों का परिष्ठापन कर देना चाहिए और यदि कोई बीमार मुनि हो तो उसके लिए इनका उपयोग भी किया जा सकता है।

यदि मुनि महामारी आदि किसी छूत की बीमारी से मरा हो तो, जिस सस्तारक से उसे ले जाया जाए, उसके टुकड़े-टुकड़े कर परिष्ठापन कर दे। इसी प्रकार उसके अन्य उपकरण, जो उसके शरीर छुए गए हों, उनका भी परिष्ठापन कर दे।

यदि साधु की मृत्यु महामारी आदि से न होकर, स्वाभाविक रूप से हुई हो तो मुहूर्त मात्र तक उसके शव को उपाश्रय मे ही रखें। गाव के बाहर परिष्ठापित शव को देखने के लिए निमित्तज्ञ मुनि दूसरे दिन जाए और शुभ-अशुभ का निर्णय करे।

जिस दिशा मे मृतक का शरीर शृगाल आदि के द्वारा आकर्षित होता है उस दिशा मे सुभिक्ष होता है और उस ओर विहार भी सुखपूर्वक हो सकता है। जितने दिन तक वह कलेवर जिस दिशा मे अक्षतरूप से स्थित होता है, उस दिशा में उतने ही वर्षों तक सुभिक्ष होता है तथा पर-चक्र के उपद्रवों का अभाव रहता है। इससे विपरीत यदि उसका शरीर क्षत हो जाता है तो उस दिशा मे दुर्भिक्ष तथा उपद्रव उत्पन्न होते है। यदि वह मृतक शरीर सीधा रहता है तो सर्वत्र सुभिक्ष और सुखविहार होता है। यह निमित्त-बोध केवल तपस्वी, आचार्य तथा लम्बे समय के अनशन से कालगत होनेवाले, मुनियो से ही प्राप्त होता है। सामान्य मुनियों के लिए ऐसा कोई नियम नही है।

यदि साधु रात्रि मे कालगत हुआ हो तो वहनकाष्ठ की आज्ञा लेने के लिए शय्यातर को जगाए। किन्तु यदि एक ही मुनि शव को उठाकर ले जाने में समर्थ हो तो वहनकाष्ठ की कोई आवश्यकता नही रहती। अन्यथा दो, तीन, चार मुनि वहनकाष्ठ से मृतक को ले जाकर पुन: उस वहनकाष्ठ को यथास्थान लाकर रख दे।[2]

व्यवहारभाष्य में स्थंडिल के विषय मे जानकारी देते हुए लिखा है कि शिलातल या शिलातल जैसा भूमिभाग प्रशस्त स्थंडिल है। अथवा जिस स्थान मे गाएं बैठती हों, बकरी आदि रहती हो, जो स्थान दग्ध हो, जिस वृक्ष-समूह के नीचे बड़े-बड़े सार्थ विश्राम करते हों, वैसे स्थान स्थंडिल के योग्य होते हैं।[3]

---

१. बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५५४१ वृत्ति, भाग ५, पत्र १४६८।
२. बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ५४९९-५५५५।
३. व्यवहारभाष्य, ७।४४१ :
सिलायलं पसत्थं तु जत्थव्वाविफासुयं।—
गामं पंतिसमादिण्णसिबादीण समीवे वा॥

कहीं-कहीं बहुत समय से आचीर्ण कुछ परंपराए होती हैं। कुछ गाव या नगरो मे ऐसी मर्यादा होती है कि अमुक प्रदेश मे ही मृतक का दाह-सस्कार होना चाहिए। कही वर्षा ऋतु मे नदी के प्रवाह से स्थंडिल-प्रदेश बह जाता है, वहां स्थंडिल-प्रदेश की सुविधा नहीं होती। आनदपुर मे उत्तरदिशा में ही मृत मुनियो का परिष्ठापन किया जाता था।[1]

इन सभी स्थानों मे उस-उस मर्यादा का पालन करने मे भी विधि का अपक्रमण नही होता। किसी गाव में सारा क्षेत्र यदि खेतो मे विभक्त कर दिया गया, और वहा खेतो की सीमा मे परिष्ठापन की आज्ञा न मिले तो मुनि शव को राजपथ में अथवा दो गांवो के बीच की सीमा मे परिष्ठापित करे। यदि इन स्थानों का अभाव हो तो सामान्य श्मशान मे मृतक को ले जाए। और यदि वहा श्मशान पालक द्वार परही शव को रोक ले और अपना 'कर' मागे तो वहा से हटकर ऐसे श्मशान मे जाएं जहां अनाथ व्यक्तियों का दाह-सस्कार होता हो। यदि ऐसा स्थान न मिले तो पुन. नगर के उसी श्मशान पर जाए और श्मशान-पालक को उपदेश द्वारा समझाए। यदि वह न माने तो उसे मृतक के वस्त्र देकर शान्त करे। फिर भी यदि वह प्रवेश का निषेध करे तो नए वस्त्र लाने के लिए गाव मे जाए। नए वस्त्र न मिलने पर राजा के पास जाकर यह शिकायत करे कि 'आपका श्मशानपालक मुनि का दाह-संस्कार करने नही देता। हम अकिंचन है। उसे 'कर' कैसे दें ? यदि राजा कहे कि श्मशानपालन अपने कर्त्तव्य मे स्वतन्त्र है। वह जैसा कहे वैसा आप करें, तो मुनि अस्थंडिल हरितकाय आदि के ऊपर धर्मास्तिकाय की कल्पना कर मृतक के शरीर का परिष्ठापन कर दे।

साधु यदि विद्यमान हों तो शव को साधु ही ले जाए। उनके न होने पर मृतक को गृहस्थ ले जाएं अथवा बैलगाडी द्वारा उसे श्मशान तक पहुचाए अथवा मल्लों के द्वारा वह कार्य सम्पन्न कराए। यदि पाण—चाडाल आदि शव को उठाते हैं तो प्रवचन का उड्डाह होता है।

यदि एकाकी साधु मृतक को वहन करने मे असमर्थ हो तो गाँव मे दूसरे सविग्न असाभोगिक मुनि हों तो उनकी सहायता ले। उनके अभाव मे पार्श्वस्थ मुनियो का या सारूपिक या सिद्धपुत्र या श्रावको का सहयोग ले। यदि ये न मिलें तो स्त्रियों की सहायता ले। इनका योग न मिलने पर मल्लगण, हस्तिपालगण, कुभकारगण से सहयोग ले। यदि यह भी संभव न हो तो भोजिक (ग्राम-महत्तर, ग्रामपच) से सहयोग मागे। उनके निषेध करने पर संवर (कचरा उठाने वाले), नख-शोधक, स्नानकारक और क्षालप्रक्षालको से सहयोग ले। यदि वे बिना मूल्य मृतक को ढोने से इन्कार करें तो उन्हे वस्त्रो से संतुष्ट कर अपना कार्य संपन्न कराए।[2]

इस प्रकार परिष्ठापन विधि को सपन्न कर मुनि कालगत साधु के उपकरण ले आचार्य के पास आए और उन्हे सारी चीज सौंप दे। आचार्य उन चीजो को देखकर पुन उसी मुनि को दे तब मुनि 'मस्तकेन वदे' इस प्रकार कहता हुआ आचार्य के वचन को स्वीकार करे।[3]

मुनि शव को जिस मार्ग से ले जाए उसी मार्ग से लौटकर न आए किन्तु दूसरा मार्ग ले। स्थंडिल भूमि में अविधि परिष्ठापन का कायोत्सर्ग न करे किन्तु गुरु के पास आकर कायोत्सर्ग करे। स्वाध्याय और तप की मार्गणा करे। शव का परिष्ठापन कर लौटते समय प्रदक्षिणा न दे। मृतक के उच्चार आदि के पात्रों का विसर्जन करे। दूसरे दिन यह जानने के लिए शव को देखने जाए कि उसकी गति शुभ हुई है या अशुभ तथा शव के लक्षण कैसे है।

३. सर्वभावेन (सूत्र ४)

नदीसूत्र मे केवलज्ञान और श्रुतज्ञान दोनो का विषय समान बतलाया गया है।[4] दोनो मे अन्तर इतना सा है कि

---

१. व्यवहारभाष्य ७।४४२ वृत्ति—केषुचित् क्षेत्रेषु दिक्षु बहुकालाचीर्णा. कल्पा भवन्ति। यथा आनन्दपुरे उत्तरस्या दिशि सयता परिष्ठापयन्ति।

२. व्यवहार, उद्देशक ७, भाष्यगाथा ४२०-४५६।

३. व्यवहार, उद्देशक ७, भाष्यगाथा ४२०, वृत्ति पत्र ७२।

४. नदी सूत्र ३३ दव्वओ ण केवलनाणी सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ, खेत्तओ ण केवलनाणी सव्व खेत्त जाणइ पासइ, कालओ ण केवलनाणी सव्व काल जाणइ पासइ, भावओ णं केवलनाणी सव्वे भावे जाणइ पासइ।

नदी सूत्र १२७ : दव्वओ ण सुयनाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइ जाणइ पासइ···भावओ ण सुयनाणी उवउत्ते सव्वे भावे जाणइ पासइ।

केवली प्रत्यक्षज्ञान से जानता है और श्रुतज्ञानी परोक्ष ज्ञान से। केवली द्रव्य को सब पर्यायों से जानता है और श्रुतकेवली कुछेक पर्यायों से जानता है। जो 'सर्वभावेन' किसी एक वस्तु को जानता है, वह सब कुछ जान लेता है। आचाराग में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन इस प्रकार हुआ है—

जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ।
जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ॥[1]

इसी आशय का एक श्लोक न्यायशास्त्र में उपलब्ध होता है—

'एको भावः सर्वथा येन दृष्टः, सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः।
सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टाः, एको भावः सर्वथा तेन दृष्टः॥

४. तारों के आकारवाले ग्रह (सू० ७)

जो तारो के आकारवाले ग्रह हैं, उन्हे ताराग्रह कहा जाता है। ग्रह नौ हैं—सूर्य, चन्द्र, मगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु। इनमे सूर्य, चन्द्र और राहु—ये तीन ग्रह तारा के आकार वाले नही हैं। शेष छह ग्रह तारा के आकार वाले है। इसलिए उन्हे 'ताराग्रह' कहा गया है।[2]

५. (सू० १२)

देखें—दसवेआलिय ४। सूत्र ८ का टिप्पण।

६. (सू० १३)

मिलाइए—उत्तरज्झयणाणि ३।७-११।

७. (सू० १४)

इन्द्रिया पाच है। उनके विषय नियत हैं, जैसे—श्रोत्रेन्द्रिय का शब्द, चक्षु इन्द्रिय का रूप, घ्राण इन्द्रिय का गन्ध, जिह्वेन्द्रिय का रस और स्पर्शनेन्द्रिय का स्पर्श। नोइन्द्रिय—मन का विषय नियत नहीं होता। वह 'सर्वार्थग्राही' होता है। तत्त्वार्थ मे उसका विषय 'श्रुत' बतलाया है[3]। श्रुत का अर्थ है शब्दात्मक ज्ञान। इसका तात्पर्य है कि मन सभी इन्द्रियो द्वारा गृहीत पदार्थों का ज्ञान करता है तथा शब्दानुसारी ज्ञान भी कर सकता है।

प्रस्तुत सूत्र में इन्द्रियो के विषय निर्दिष्ट नही है।

८. चारण (सू० २१)

चारण का अर्थ है—गमन और आगमन की विशेष लब्धि से सम्पन्न मुनि। वे मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं—

१. जंघाचारण—जिन्हे चारित्र और तप की विशेष आराधना के कारण गमनागमन की लब्धि प्राप्त होती है, वे जंघाचारण कहलाते हैं।

२. विद्याचारण— जिन्हें विद्या की आराधना के कारण गमनागमन की लब्धि प्राप्त होती है वे विद्याचारण कहलाते है।

चारणों के कुछ अन्य प्रकारों का उल्लेख भी मिलता है। जैसे—

---

१. आयारो ३।७४।
२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३३७ : तारकाकारा ग्रहास्तारकग्रहाः, लोके हि नव ग्रहाः प्रसिद्धाः, तत्र च चन्द्रादित्यराहूणामतारकारत्वादन्ये षड् तथोक्ता इति।
३. तत्त्वार्थ सूत्र २।२१ : श्रुतमनिन्द्रियस्य।

१. व्योमचारण—पर्यंकासन में बैठकर अथवा कायोत्सर्ग की मुद्रा मे स्थित होकर पैरों को हिलाए-डुलाए बिना आकाश में गमन करने वाले।

२. जलचारण—जलाशय के जीवों को कष्ट पहुंचाए बिना जल पर भूमि की तरह गमन करने वाले।

३. जंघाचारण—भूमि से चार अंगुल ऊपर गमन करने वाले।

४. पुष्पचारण—पुष्प के दल का आलंबन लेकर गमन करने वाले।

५. श्रेणिचारण—पर्वत श्रेणि के आधार पर ऊपर-नीचे गमन करने वाले।

६. अग्निशिखाचारण—अग्नि की शिखा को पकड कर अपने को बिना जलाए गमन करने वाले।

७. धूमचारण—तिरछी या ऊंची गतिवाले धुएं का आलबन ले तिरछी या ऊची गति करने वाले।

८. मर्कटतन्तुचारण—मकडी के जाल का सहारा ले गमन करने वाले।

९. ज्योतिरश्मिचारण—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि मे से किसी की भी किरणों का आलंबन ले पृथ्वी की भांति अन्तरिक्ष मे चलने वाले।

१०. वायुचारण—वायु के सहारे चलने वाले।

११. नीहारचारण—हिमपात का सहारा लेकर निरालम्बन गति करने वाले।

१२. जलदचारण—बादलों का आलम्बन ले गति करने वाले।

१३. अवश्यायचारण—ओस का आलम्बन ले गति करने वाले।

१४. फलचारण—फलो का आलम्बन ले गति करने वाले[१]।

तत्त्वार्थ राजवार्तिक मे क्रिया विषयक ऋद्धि दो प्रकार की मानी है—चारणत्व और आकाशगामित्व। जल, जंघा पुष्प आदि का आलम्बन लेकर गति करना चारणत्व है और आकाश मे गमन करना आकाशगामित्व है[२]।

श्वेताम्बर आचार्यों ने ये भेद नही दिए है। किन्तु चारण के भेद-प्रभेदो मे ये दोनों विभाग समा जाते हैं।

९. संस्थान (सू० ३१)

इसका अर्थ है—शरीर के अवयवों की रचना, आकृति। ये छह हैं।

वृत्तिकार के अनुसार इनकी व्याख्या इस प्रकार है[३]—

१. समचतुरस्र—शरीर के सभी अवयव जहा अपने-अपने प्रमाण के अनुसार होते है, वह समचतुरस्र संस्थान है। अस्र का अर्थ है—कोण। जहा शरीर के चारो कोण समान हों वह समचतुरस्र है।

२ न्यग्रोधपरिमण्डल—न्यग्रोध [वट] वृक्ष की भांति परिमण्डल संस्थान को न्यग्रोधपरिमण्डल कहा जाता है। न्यग्रोध [वट] का ऊपरी भाग विस्तृत अवयवो वाला होता है, किन्तु नीचे का भाग वैसा नही होता। उसी प्रकार न्यग्रोध-परिमण्डल संस्थान वाले व्यक्ति के नाभि के ऊपर के अवयव विस्तृत अर्थात् प्रमाणोपेत और नीचे के अवयव प्रमाण से अधिक या न्यून होते है।

३. सादि—इसमें दो शब्द है—स+आदि। आदि का अर्थ है—नाभि के नीचे का भाग। जिस शरीर में नाभि के नीचे का भाग प्रमाणोपेत है उस संस्थान का नाम सादि संस्थान है।

४. कुब्ज—जिस शरीर रचना मे पैर, हाथ, शिर और गरदन प्रमाणोपेत नही होते, शेष अवयव प्रमाणयुक्त होते हैं, उसे कुब्ज संस्थान कहा जाता है।

५. वामन—जिस शरीर रचना मे पैर, हाथ, शिर और गरदन प्रमाणोपेत होते हैं, शेष अवयव प्रमाण युक्त नहीं होते, उसे वामन संस्थान कहा जाता है।

---

१. प्रवचनसारोद्धार, द्वार ६८, वृत्ति पत्र १६८, १६९।
२. तत्त्वार्थराजवार्तिक, ३।३६, वृत्ति पृष्ठ २०२।
३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३३९।

६. हुंडक—जिस शरीर रचना में कोई भी अवयव प्रमाणोपेत नहीं होता, उसे हुंडक संस्थान कहा जाता है।

तत्त्वार्थवार्तिक में इनकी व्याख्या कुछ भिन्न प्रकार से की गई है, जैसे[1]—

१. समचतुरस्र—जिस शरीर-रचना में ऊर्ध्व, अधः और मध्यभाग सम होता है उसे समचतुरस्रसंस्थान कहा जाता है। एक कुशल शिल्पी द्वारा निर्मित चक्र की सभी रेखाएं समान होती है, इसी प्रकार इस सस्थान में सब भाग समान होते हैं।

२. न्यग्रोधपरिमण्डल—जिस शरीर-रचना में नाभि के ऊपर का भाग बड़ा [विस्तृत] तथा नीचे का भाग छोटा होता है उसे न्यग्रोधपरिमण्डल कहा जाता है। इसका यह नाम इसीलिए दिया गया है कि इस संस्थान की तुलना न्यग्रोध (वट) वृक्ष के साथ होती है।

३. स्वाति—इसमे नाभि के ऊपर का भाग छोटा और नीचे का बड़ा होता है। इसका आकार वल्मीक की तरह होता है।

४. कुब्ज—जिस शरीर-रचना मे पीठ पर पुद्गलों का अधिक संचय हो, उसे कुब्ज संस्थान कहते हैं।

५. वामन—जिसमें सभी अंग-उपांग छोटे हों, उसे वामन संस्थान रहते हैं।

६. हुण्ड—जिसमे सभी अंग-उपांग हुण्ड की तरह सस्थित हों, उसे हुण्ड संस्थान कहते हैं।

इनमे समचतुरस्र और न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थानो की व्याख्या भिन्न नही है। तीसरे संस्थान का नाम और अर्थ—दोनों भिन्न हैं। अन्तिम तीनों संस्थानों के अर्थ दोनो व्याख्याओ मे भिन्न हैं। राजवार्तिक की व्याख्या स्वाभाविक लगती है।

१०, ११. (सू० ३२, ३३)

प्रस्तुत सूत्रों में आत्मवान् और अनात्मवान्—ये दोनो शब्द विशेष विमर्शणीय है। प्रत्येक प्राणी आत्मवान् होता है, किन्तु यहां आत्मवान् विशेष अर्थ का सूचक है। जिस व्यक्ति को आत्मा उपलब्ध हो गई है, अहं विसर्जित हो गया है, वह आत्मवान् है।

साधना के क्षेत्र में दो तत्त्व महत्त्वपूर्ण होते हैं—

१. अहं का विसर्जन। २. ममकार का विसर्जन।

जिस व्यक्ति का अहं छूट जाता है, उसके लिए ज्ञान, तप, लाभ, पूजा-सत्कार आदि-आदि विकास के हेतु बनते हैं। वह आत्मवान् व्यक्ति इन स्थितियो मे सम रहता है।

अनात्मवान् व्यक्ति अहं को विसर्जित नहीं कर पाता। उसे जैसे-जैसे लाभ या पूजा-सत्कार मिलता रहता है, वैसे-वैसे उसका अहं बढ़ता है और वह किसी भी स्थिति का अकन सम्यक् नही कर पाता। ये सभी स्थितियां उसके विकास में बाधक होती हैं। अपने अहं के कारण वह दूसरो को तुच्छ समझने लगता है।

१. अवस्था या दीक्षा-पर्याय के अहं से उसमे विनम्रता का अभाव हो जाता है।

२. परिवार के अहं से वह दूसरो को हीन समझने लगता है।

३. श्रुत के अहं से उसमे जिज्ञासा का अभाव हो जाता है।

४. तप के अहं से उसमें क्रोध की मात्रा बढ़ती है।

५. लाभ के अहं से उसमें ममकार बढ़ता है।

६. पूजा-सत्कार के अहं से उसमें लोकैषणा बढ़ती है।

१२, १३. (सू० ३४, ३५)

वृत्तिकार ने जात्यार्य का अर्थ विशुद्धमातृक [जिसका मातृपक्ष विशुद्ध हो] और कुल-आर्य का अर्थ विशुद्ध-पितृक

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक पृष्ठ ५७६, ५७७।

[जिसका पितृपक्ष विशुद्ध हो] किया है[1]। ऐतिहासिक दृष्टि से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत मे दो प्रकार की व्यवस्थाए रही हैं—मातृसत्ताक और पितृसत्ताक। मातृसत्ताक व्यवस्था को 'जाति' और पितृसत्ताक व्यवस्था को 'कुल' कहा गया है।

नागों की संस्था मातृसत्ताक थी। वैदिक आर्यों के कुछ समूहों मे मातृसत्ताक व्यवस्था विद्यमान थी। ऋग्वेद में वरुण, मित्र, सविता, पूषन आदि के लिए 'आदित्य' विशेषण मिलता था। अदिति कुछ बडे देवों की माता थी। यह भी मातृ-सत्ताक व्यवस्था की सूचक है।

ऋग्वेद मे पितृसत्ताक व्यवस्था भी निर्मित होने लगी थी।

दक्षिण के केरल आदि प्रदेशो मे आज भी मातृसत्ताक व्यवस्था विद्यमान है।

इतिहासकारो की मान्यता है कि देवी-पूजा मातृसत्ताक व्यवस्था की प्रतीक है। मातृपूजा की संस्था चीन से योरोप तक फैली हुई थी। ईसाई धर्म मे मेरी की पूजा भी इसी की प्रतीक है।

यह भी माना जाता है कि वैदिक गृहसंस्था पितृप्रधान थी और अवैदिक गृहसंस्था मातृप्रधान।

प्रस्तुत सूत्रो (३४-३५) मे छह मातृसत्ताक जातियो तथा छह पितृसत्ताक कुलो का उल्लेख है।

प्रस्तुत सूत्र (३४) मे अंबट्ठ आदि छह जातियो को इभ्य जाति माना है। जो व्यक्ति इभ—हाथी रखने में समर्थ होता है, वह इभ्य कहलाता है। जनश्रुति के अनुसार इनके पास इतना धन होता था कि उसकी राशि मे सूंड को ऊंची किया हुआ हाथी भी नही दीख पाता था[2]।

अंबष्ठ—इनका उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण [८।२१] मे भी हुआ है। एरियन [६।१५] इन्हे अम्बस्तनोई के नाम से सम्बोधित करता है। ग्रीक आधारो से पता चलता है कि चिनाब के निचले हिस्से पर ये बसे हुए थे[3]।

वृत्तिकार ने कुल-आर्यो का विवरण इस प्रकार किया है—

उग्र—भगवान् ऋषभ ने आरक्षक वर्ग के रूप मे जिनकी नियुक्ति की थी, वे उग्र कहलाए। उनके वंशजो को भी उग्र कहा गया है।

भोज[4]—जो गुरु स्थानीय थे वे तथा उनके वशज।

राजन्य—जो मित्र स्थानीय थे वे तथा उनके वशज।

ईक्ष्वाकु—भगवान् ऋषभ के वशज।

ज्ञात[5]—भगवान् महावीर के वंशज।

कौरव—भगवान् शान्ति के वशज।

वृत्तिकार ने यह भी बताया है कि उग्र आदि के अर्थ लौकिक रूढि से जान लेने चाहिए[6]।

सिद्धसेनगणि ने तत्त्वार्थसूत्र के भाष्य मे पितृन्वय को जाति और मातृन्वय को कुल माना है। उन्होंने जाति-आर्य मे ईक्ष्वाकु, विदेह, हरि, अम्बष्ठ, ज्ञात, कुरु, बुम्वनाल [बुंचनाल], उग्र, भोग [भोज] और राजन्य आदि को माना है तथा कुल-आर्य मे कुलकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव के वंशजो को गिनाया है[7]।

---

१. स्थानागवृत्ति, पत्र ३४० आत्यार्या विशुद्धमातृका इत्यर्थ, कुल पैतृक. पक्ष·।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३४० · इभमर्हन्तीतीभ्या, यद् द्रव्यस्तूपान्तरित उच्छ्रितकदलिकादण्डो हस्ती न दृश्यते ते इभ्या इति श्रुतिः।

३. मैकक्रिंडिल, पृष्ठ १५५ नो० २।

४. देखें—दशवैकालिक २।८ का टिप्पण।

५ 'नाय' का सस्कृत रूपान्तर 'ज्ञात' किया जाता है। हमारे मत मे वह 'नाग' होना चाहिए। भगवान् महावीर 'नाग' वंश में उत्पन्न हुए थे। इसके पूरे विवरण के लिए देखें हमारी पुस्तक—'अतीत का अनावरण'—पृष्ठ १३१-१४३।

६ स्थानागवृत्ति, पत्र ३४० · कुल पैतृक पक्षः, उग्रा आदिदेवेनारक्षकत्वेन ये व्यवस्थापितास्तद्वंश्याश्च, ये तु गुरुत्वेन ते भोगास्तद्वंश्याश्च ये तु वयस्यतयाऽऽचरितास्ते राजन्यास्तद्वंश्याश्च इक्ष्वाकव प्रथमप्रजापतिवंशजा ज्ञाता. कुरवश्च महावीरशान्तिजिनपूर्वजा·· अथवैते लोकरूढितो ज्ञेया.।

७ तत्त्वार्थाधिगमसूत्र, ३।१५, भाष्य तथा वृत्ति।

तत्त्वार्थराजवार्तिक मे भी ईक्ष्वाकु जाति और भोज कुल में उत्पन्न व्यक्तियो को जाति-आर्य माना है। उन्होंने अनृद्धिप्राप्त आर्यों की गिनती मे जाति-आर्य को माना है, किन्तु कुल-आर्य के विषय मे कुछ नहीं कहा है।[1]

१४. (सू० ३७)

प्रस्तुत सूत्र में छह् दिशाओ का उल्लेख है। इसमें विदिशाओ का ग्रहण नही किया गया है। वृत्तिकार ने इस अग्रहण के तीन संभावित कारण माने है—

१. विदिशाएं दिशाएं नही है।
२. जीवों की गति आदि सभी प्रवृत्तिया इन छह दिशाओ में ही होती है।
३. यह छठा स्थान है, इसलिए छह् दिशाओ का ही ग्रहण किया गया है[2]।

१५. समुद्घात (सू० ३९)

विशेष विवरण के लिए देखें —७।१३८; ८।११०।

१६, १७. (सू० ४१, ४२)

विशेष विवरण के लिए देखें —उत्तरज्झयणाणि, भाग २, पृष्ठ १९५, १९६।

१८, १९. (सू० ४५, ४६)

उत्तराध्ययन २६।२५, २६ मे प्रतिलेखना की विधि और दोषो का उल्लेख है। यहां उनको प्रमाद प्रतिलेखना और अप्रमाद प्रतिलेखना के रूप मे समझाया गया है।

विशेष विवरण के लिए देखें —
उत्तरज्झयणाणि, भाग १, पृष्ठ ३५३, ३५४।
उत्तरज्झयणाणि, भाग २, पृष्ठ १९४, १९५।

२०-२३. (सू० ६१-६४)

सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष ज्ञान के चार प्रकार हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। प्रस्तुत चार सूत्रो (६१-६४) मे एक-एक के छह-छह् प्रकार बतलाए हैं, किन्तु उनके प्रतिपक्षी विकल्पों का उल्लेख नही है। धारणा के छह प्रकारो मे, 'क्षिप्र' और 'ध्रुव' के स्थान पर 'पुराण' और 'दुर्धर' का उल्लेख है।

तत्त्वार्थ सूत्र की श्वेताम्बरीय भाष्यानुसारिणी टीका मे अवग्रह आदि के बारह-बारह प्रकार किए हैं।[3] इस प्रकार उन चारों भेदों के कुल ४८ प्रकार होते हैं।

तत्त्वार्थ (दिगम्बरीय परम्परा) मे 'असंदिग्ध' और 'संदिग्ध' के स्थान पर 'अनुक्त' और 'उक्त' का निर्देश है।[4]

तत्त्वार्थ (श्वेताम्बरीय परम्परा) मे असंदिग्ध और संदिग्ध ही उल्लिखित है।[5]

---

१. तत्त्वार्थराजवार्तिक, ३।३६, वृत्ति।
२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३४१ : विदिशो न दिशो विदिक्त्वादिति षडेवोक्ता:, अथवा एभिरेव जीवानां वक्ष्यमाणा गतिप्रभृतय: पदार्था: प्राय: प्रवर्त्तन्ते, षट्स्थानकानुरोधेन वा विदिशो न विवक्षिता षडेव दिश उक्ता इति।
३. तत्त्वार्थ, १।१६, भाष्यानुसारिणी टीका, पृष्ठ ८४।
४. वही, १।१६ : बहुबहुविधक्षिप्रानि:श्रितानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम्।
५. वही, १।१६ : बहुबहुविधक्षिप्रानि:श्रितासन्दिग्धध्रुवाणां सेतराणाम्।

यन्त्र

सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष

अवग्रह	ईहा	अवाय	धारणा
१. क्षिप्र —अक्षिप्र	१. क्षिप्र—अक्षिप्र	१ क्षिप्र—अक्षिप्र	१. बहु—अबहु
२. बहु—अबहु	२. बहु—अबहु	२. बहु—अबहु	२. बहुविध—अबहुविध
३. बहुविध—अबहुविध	३. बहुविध—अबहुविध	३ बहुविध—अबहुविध	३. पुराण—अपुराण
४. ध्रुव—अध्रुव	४. ध्रुव—अध्रुव	४ ध्रुव- -अध्रुव	४ दुर्द्धर—अदुर्द्धर
५. अनिश्रित—निश्रित	५ अनिश्रित—-निश्रित	५. अनिश्रित—निश्रित	५ अनिश्रित—निश्रित
६. असंदिग्ध—संदिग्ध	६ असदिग्ध—सदिग्ध	६ असदिग्ध—सदिग्ध	६ असंदिग्ध—संदिग्ध

१. क्षिप्र—शीघ्रता से जानना।

२. बहु—-अनेक पदार्थों को एक-एक कर जानना।

व्यवहारभाष्य के अनुसार इसका अर्थ है—पाच, छह अथवा सात सौ ग्रन्थो (श्लोको) को एक बार मे ही ग्रहण कर लेना[1]।

३. बहुविध—अनेक पदार्थो को अनेक पर्यायो को जानना।

व्यवहारभाष्य के अनुसार इसका अर्थ है—अनेक प्रकार से अवग्रहण करना। जैसे—स्वय कुछ लिख रहा है; साथ-साथ दूसरे द्वारा कथित वचनो का अवधारण भी कर रहा है तथा वस्तुओं को गिन रहा है और साथ-साथ प्रवचन भी कर रहा है। ये सभी प्रवृत्तिया एक साथ चल रही है[2]।

इसका दूसरा अर्थ है—अनेक लोगो द्वारा उच्चारित तथा अनेक वाद्यो द्वारा वादित अनेक प्रकार के शब्दो को भिन्न-भिन्न रूप से ग्रहण करना[3]।

वर्तमान मे सप्तसधान नामक अवधान किया जाता है। उसमे अवधानकार के समक्ष तीन व्यक्ति तथा दो व्यक्ति दोनो पार्श्वों मे और दो व्यक्ति पीछे खडे होते है। सामने वाले तीन व्यक्ति भिन्न-भिन्न चीजें दिखाते है; एक पार्श्व वाला एक शब्द बोलता है, दूसरे पार्श्व वाला तीन अको की एक सख्या कहता है; पीछे खडे दो व्यक्ति अवधानकार के दोनो हाथो में दो वस्तुओ का स्पर्श करवाते है। ये सातो क्रियाए एक साथ होती है।

४ ध्रुव—-सार्वदिक एकरूप जानना।

५ अनिश्रित—बिना किसी हेतु की सहायता लिए जानना।

व्यवहारभाष्य मे इसका अर्थ है—जो न पुस्तकों मे लिखा गया है और जो न कहा गया है, उसका अवग्रहण करना[4]।

६ असदिग्ध—-निश्चित रूप से जानना।

---

१. व्यवहार, उद्देशक १०, भाष्यगाथा २७८
बहुग पुण पंच व छस्सत्त गथसया ॥

२-३ वही, भाष्यगाथा २७६ :
बहुहाणेगपयार जह लिहति व धारए गणेइ वि या।
अक्खाणगं कहेइ सद्दसमूह व णेगविह ॥

४. वही, भाष्यगाथा २८० :
· अणिस्सिय जन्न पोत्थए लिहिया।
अणभासियं च·· · ·· ·· ·· ॥

२४, २५. (सू० ६५, ६६)

विशेष विवरण के लिए देखें—
उत्तरज्झयणाणि, भाग २, पृष्ठ २५१-२८५।

२६. (सू० ६८)

प्राचीन मान्यता के अनुसार ये छह शूद्र कहलाते हैं[1]—

१. अल्प, २. अधम, ३. वेश्या, ४. क्रूरप्राणी, ५. मधुमक्खी, ६. नटी।

वृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र में क्षुद्र का अर्थ अधम किया है।[2] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा तेजस्कायिक और वायुकायिक प्राणियों को अधम मानने के दो हेतु हैं—

१. इनमें देवताओं का उत्पन्न न होना।

२. दूसरे भव में सिद्ध न हो पाना।[3]

सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक जीवों को अधम मानने के दो हेतु हैं—

१ इनमें देवताओं का उत्पन्न न होना।

२. अमनस्क होने के कारण पूर्ण विवेक का न होना।[4]

वाचनान्तर के अनुसार क्षुद्र प्राणी निम्न छह प्रकार के होते हैं[5]—

१ सिंह, २ व्याघ्र, ३ भेडिया, ४ चीता, ५. रीछ, ६. जरख।

२७. (सू० ६९)

विशेष विवरण के लिए देखें—
उत्तरज्झयणाणि, भाग २, पृष्ठ २६६-२६९।

२८-२९. (सू० ७०-७१)

नरक पृथिवियां सात हैं। उनमें क्रमश १३, ११, ९, ७, ५, ३ और एक प्रस्तट है। इस प्रकार कुल ४९ प्रस्तट हैं। इन नरक पृथिवियों में क्रमश इतने ही सीमन्तक आदि गोल नरकेन्द्रक हैं। सीमन्तक के चारों दिशाओं में ४९ नरकावली और विदिशाओं में ४८ नरकावली है। सारे प्रस्तट ४९ हैं। प्रत्येक प्रस्तट की दिशा और विदिशा—उभयत. एक-एक नरक की हानि करने से सातवीं पृथ्वी में चारों दिशाओं में केवल एक-एक नरक और विदिशा में कुछ भी शेष नहीं रहता।

सीमन्तक की पूर्व दिशा में सीमन्तकप्रभ, उत्तर में सीमन्तक मध्यम, पश्चिम में सीमन्तकावर्त्त और दक्षिण में सीमन्तकावशिष्ट नरक है।

सीमन्तक की अपेक्षा से चारों दिशाओं में तृतीय आदि नरक और प्रत्येक आवलिका में विलय आदि नरक होते हैं।

इस सूत्र में वर्णित लोल आदि छह नरक आवलिकागत नरकों में गिने गए हैं। वृत्तिकार के कथनानुसार यह उल्लेख 'विमाननरकेन्द्र' ग्रन्थ में है। उसके अनुसार लोल और लोलुप—ये दोनों आवलिका के अन्त में हैं; उद्दग्ध, निर्दग्ध—ये दोनों

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३४७ . अल्पमधम पणस्त्री क्रूर सरघा नटी च षट् क्षुद्रान्।

२. वही, पत्र ३४७ : परमिह क्षुद्रा.—अधमा.।

३. वही, पत्र ३४७ : अधमत्वं च विकलेन्द्रियतेजोवायूनामनन्तरभवे सिद्धिगमनाभावात्···तथा एतेषु देवानुत्पत्तेश्च।

४. वही, पत्र ३४७ · सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियातिरश्चा चाधमत्वं तेषु देवानुत्पत्ते., तथा पञ्चेन्द्रियत्वेऽप्यमनस्कतया विवेकाभावेन निर्गुणत्वादिति।

५. वही, पत्र ३४७ : वाचनान्तरे तु सिंहाः व्याघ्रा वृका दीपिका ऋक्षास्तरक्षा इति क्षुद्रा उक्ताः क्रूरा इत्यर्थः।

सीमन्तकप्रभ से बीसवें और इक्कीसवें नरक हैं; जरक और प्रजरक—ये दोनों सीमन्तकप्रभ से पैंतीसवें और छत्तीसवें नरक हैं। ये सारे नरक पूर्व दिशा की आवलिका मे ही है।

उत्तरदिशा की आवलिका मे—लोलमध्य और लोलुपमध्य।

पश्चिमदिशा की आवलिका मे—लोलावर्त्त और लोलुपावर्त्त।

दक्षिणदिशा की आवलिका मे—लोलावशिष्ट और लोलुपावशिष्ट।

चौथी नरकपृथ्वी मे सात प्रस्तट और सात नरकेन्द्रक हैं। वृत्तिकार ने सग्रहगाथा का उल्लेख कर उनके नाम इस प्रकार दिए हैं—आर, मार, नार, ताम्र, तमस्क, खाडखड और खण्डखड।

प्रस्तुत सूत्र में छह नाम उल्लिखित हैं—आर, वार, मार, रौर, रौरुक और खाडखड। ये नाम संग्रहगाथागत नामों से भिन्न-भिन्न है। छह नाम देने का कारण सम्भवत यह है कि ये छह अत्यन्त निकृष्ट है।

वृत्तिकार के अनुसार आर, मार और खाडखड—ये तीन नरकेन्द्रक है। कई वार, रौर और रौरुक को प्रकीर्णक मानते हैं अथवा यह भी सम्भव है कि ये तीन भी नरकेन्द्रक हो, जो नामान्तर से उल्लिखित हुए हैं।[1]

३० (सू० ७२)

वैमानिक देवो के तीन भेद है—

कल्प देवलोक [१२ देवलोक]

ग्रैवेयक [६ देवलोक]

अनुत्तर [५ देवलोक]

इन सब मे कुल ६२ विमान प्रस्तट है—

१-२	—	१३
३-४	—	१२
५	—	६
६	—	५
७	—	४
८	—	४
९-१०	—	४
११-१२	—	४
ग्रैवेयक	—	९
अनुत्तर	—	१
	कुल	६२

प्रस्तुतसूत्र में पाचवें देवलोक के छह विमान-प्रस्तटो का उल्लेख है[2]।

३१-३३. (सू० ७३-७५)

नक्षत्र-क्षेत्र के तीन भेद हैं—

१. समक्षेत्र—चन्द्रमा द्वारा तीस मुहूर्त्त मे भोगा जाने वाला नक्षत्र-क्षेत्र [आकाश-भाग]।

२. अर्द्धसमक्षेत्र—चन्द्रमा द्वारा १५ मुहूर्त्त मे भोगा जाने वाला नक्षत्र-क्षेत्र।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३४८।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३४९।

३. द्वयर्द्ध समक्षेत्र—चन्द्रमा द्वारा ४५ मुहूर्त्त में भोगा जाने वाला नक्षत्र-क्षेत्र।

समक्षेत्र में भोग में आने वाले छह नक्षत्र[1] चन्द्र द्वारा पूर्व भाग—अग्र से सेवित होते हैं। चन्द्र इन नक्षत्रों को प्राप्त किए बिना ही इनका भोग करता है। ये चन्द्र के अग्रयोगी माने जाते हैं। अर्द्धसमक्षेत्र में भोग में आने वाले छह नक्षत्र चन्द्र द्वारा पहले तथा पीछे सेवित होते हैं। ये चन्द्र के समयोगी माने जाते हैं।

लोकश्री सूत्र में 'भरणी' नक्षत्र के स्थान पर 'अभिजित्' नक्षत्र का उल्लेख है।[2]

डेढ़ समक्षेत्र के नक्षत्र पैंतालीस मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योग करते हैं। ये नक्षत्र चन्द्र द्वारा आगे-पीछे दोनों ओर से भोगे जाते हैं।

वृत्तिकार ने यहां एक संकेत देते हुए बताया है कि निर्धारित क्रम के अनुसार नक्षत्रों द्वारा युक्त होता हुआ चन्द्रमा सुभिक्ष करने वाला होता है और इसके विपरीत योग करने वाला दुर्भिक्ष उत्पन्न करता है[3]।

समवायांग १५।५ मे १५ मुहूर्त्त तक योग करने वाले नक्षत्रों का, तथा ४५।७ मे ४५ मुहूर्त्त तक योग करने वाले नक्षत्रो का उल्लेख है।

३४. (सू० ८०)

आवश्यकनिर्युक्ति मे चन्द्रप्रभ का छद्मस्थ-काल तीन मास का और पद्म प्रभ का छह मास का बतलाया है[4]। वृत्तिकार के अनुसार प्रस्तुत उल्लेख मतान्तर का है[5]।

३५. (सू० ९५)

प्रस्तुत सूत्र में छह ऋतुओं का प्रतिपादन है। प्रत्येक ऋतु का कालमान दो-दो मास का है—

प्रावृट्—आषाढ और श्रावण।

वर्षा—भाद्रपद और आश्विन।

शरद्—कार्तिक और मृगशिर।

हेमन्त—पौष और माघ।

वसन्त—फाल्गुन और चैत्र।

ग्रीष्म—वैसाख और ज्येष्ठ।

लौकिक व्यवहार के अनुसार छह ऋतुएं ये हैं—

१. वर्षा, २. शरद्, ३. हेमन्त, ४. शिशिर, ५. वसन्त और ६. ग्रीष्म।

ये ऋतुएं भी दो-दो महीने की हैं और इनका प्रारम्भ श्रावण से होता है।[6]

यह क्रम और व्याख्या आगमिक-क्रम और व्याख्या से भिन्न है।

---

१. बृहत्कल्प, भाष्यगाथा ५५२७ की वृत्ति मे समक्षेत्र के १५ नक्षत्र माने हैं—अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिर, पुष्य, मघा पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल, पूर्वाषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वभद्रपदा और रेवती।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३४९।

३. वही, पत्र ३४९ :

उक्तक्रमेण नक्षत्रैर्युज्यमानस्तु चन्द्रमाः।
सुभिक्षकृद्विपरीतं युज्यमानोऽन्यथा भवेत् ॥

४. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा २६०, मलयगिरिवृत्ति पत्र २०६ :

पद्मप्रभस्य षण्मासा·,····· चन्द्रप्रभस्य त्रयः।

५. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३५० : चन्द्रप्रभस्य तु त्रीनिति मतान्तरमिदमिति।

६. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३५१ : द्विमासप्रमाणकालविशेष ऋतुः, तत्राषाढश्रावणलक्षणा प्रावृट् एवं शेषाः क्रमेण, लौकिकव्यवहारस्तु श्रावणाद्याः वर्षा-शरद्धेमन्तशिशिरवसन्तग्रीष्माख्या ऋतव इति।

३६. अवधिज्ञान (सू० ९९)

इसका शाब्दिक अर्थ है---मर्यादा से होने वाला मूर्त पदार्थों का ज्ञान। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से इसकी अनेक अवधियां---मर्यादाए है, इसलिए इसे अवधिज्ञान कहा जाता है।

प्रस्तुत सूत्र मे इसके छह प्रकारो का उल्लेख है---

१. आनुगामिक---जो ज्ञान अपने स्वामी का सर्वत्र अनुगमन करता है उसे आनुगामिक अवधिज्ञान कहा जाता है। इसमें क्षेत्र की प्रतिबद्धता नही होती।

२. अनानुगामिक---जो ज्ञान अपने उत्पत्ति क्षेत्र मे ही बना रहता है उसे अनानुगामिक अवधिज्ञान कहा जाता है। यह एक स्थान पर रखे दीपक की भांति स्थित होता है। स्वामी जब उस क्षेत्र को छोड चला जाता है तब उसका ज्ञान भी लुप्त हो जाता है।

३. वर्धमानक---जो ज्ञान उत्पत्तिकाल मे छोटा हो और क्रमश बढता रहे, उसे वर्धमानक अवधिज्ञान कहा जाता है। यह वृद्धि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव चारों मे होती है।

४. हीयमानक---जो ज्ञान उत्पत्तिकाल मे बडा हो और बाद मे क्रमश घटता जाए, उसे हीयमानक अवधिज्ञान कहा जाता है। इसमे विषय का ह्रास होता जाता है।

५. प्रतिपाति---जो ज्ञान एक बार उत्पन्न होकर पुन चला जाए, उसे प्रतिपाति अवधिज्ञान कहा जाता है।

६. अप्रतिपाति---जो ज्ञान एक बार उत्पन्न हो जाने पर नष्ट न हो, उसे अप्रतिपाति अवधिज्ञान कहा जाता है।

अवधिज्ञान के दो प्रकार प्रस्तुत सूत्र के २।९६-९८ मे बतलाए गए है।

विशेष विवरण के लिए देखें---समवायाग, प्रकीर्ण समवाय १५२ तथा प्रज्ञापना पद ३३।

३७ (सू० १०१)

कल्प का अर्थ है---साधु का आचार और प्रस्तार का अर्थ है---प्रायश्चित्त की उत्तरोत्तर वृद्धि। प्रस्तुत सूत्र मे छह प्रस्तारो का उल्लेख है। उनका वर्णन इस प्रकार है --

दो साधु कही जा रहे थे। बडे साधु का पैर एक मरे हुए मेढक पर पडा। तब छोटे साधु ने आरोप की भाषा मे कहा ---'आपने इस मेढक को मार डाला?' उसने कहा ---'नही'। तब छोटे साधु ने कहा---'आपका दूसरा व्रत [सत्यव्रत] भी टूट गया।' इस प्रकार किसी साधु पर आरोप लगाकर वह गुरु के समीप आता है, उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह पहला प्रायश्चित्त-स्थान है।

वह गुरु से कहता है---'इसने मेढक की हत्या की है।' तब उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह दूसरा प्रायश्चित्त-स्थान है।

तब आचार्य बडे साधु से कहते है---'क्या तुमने मेढक को मारा है?' वह कहता है---'नही।' तब आरोप लगाने वाले को चतुर्लघु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह तीसरा प्रायश्चित्त-स्थान है। वह अवमरात्निक पुन अपनी बात दोहराता है और जब रात्निक मुनि पुन यही कहता है कि मैंने मेढक को नही 'मारा' तब उसे चतुर्गुरु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह चौथा प्रायश्चित्त-स्थान है।

तब अवमरात्निक आचार्य से कहता है---'यदि आपको मेरी बात पर विश्वास न हो तो आप गृहस्थों से पूछ ले।' आचार्य अपने वृषभों [सेवारत साधुओ] को भेजते है। वे जाकर पूछताछ करते है, तब उस काल मे अवमरात्निक को षड्-लघु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह पाचवा प्रायश्चित्त-स्थान है।

उनके पूछने पर गृहस्थ कहे कि हमने इसको मेढक मारते नही देखा है---तब अवमरात्निक को षड्गुरु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह छठा प्रायश्चित्त-स्थान है।

वे वृषभ वापस आकर आचार्य से निवेदन करते है कि उस साधु ने कोई प्राणातिपात नहीं किया तब आरोप लगाने वाले को छेद प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह सातवा प्रायश्चित्त-स्थान है।

उस समय अवमरात्निक कहता है—'ये गृहस्थ हैं। ये झूठ बोलते हैं या सच—इसका क्या विश्वास ?' ऐसा कहने पर मूल प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह आठवां प्रायश्चित्त-स्थान है।

यदि अवमरात्निक कहे कि 'ये साधु और गृहस्थ मिले हुए हैं, मैं अकेला रह गया हूं', तो उसे अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह नौवां प्रायश्चित्त-स्थान है।

वह यदि यह कहे कि 'तुम सब प्रवचन से बाहर हो—जिनशासन से विलग हो', तब उसे पाराञ्चिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह दसवा प्रायश्चित्त-स्थान है।

इस प्रकार ज्यो-ज्यो वह अपने आरोप को सिद्ध करता है त्यो-त्यो उसका प्रायश्चित्त बढ़ता जाता है और वह अन्तिम प्रायश्चित्त 'पाराञ्चित' तक पहुंच जाता है।

जो अपने अपराध का निन्दवन करता है और जो अपने झूठे आरोप को साधने का प्रयत्न करता है—दोनों के उत्तरोत्तर प्रायश्चित्त की वृद्धि होती है।

यदि कोई आरोप लगाकर उसको साधने की चेष्टा नही करता और जो आरोप लगाने वाले पर रुष्ट नही होता—दोनों के प्रायश्चित्त की वृद्धि नही होती और यदि आरोप लगाने वाला बार-बार आरोप को साधने की चेष्टा करता है और दूसरा जिस पर आरोप लगाया गया है वह, उस पर बार-बार रुष्ट होता है—दोनो के प्रायश्चित्त की वृद्धि होती है।

प्राणातिपात के विषय मे होने वाली प्रायश्चित्त की वृद्धि के समान ही शेष मृषावाद आदि पांचो स्थानो मे प्रायश्चित्त की वृद्धि होती है।

विशेष विवरण के लिए देखे—

बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ६१२८-६१६२।

३८ (सू० १०२) :

कौकुचित—इसका अर्थ है—चपलता। वह तीन प्रकार की होती है—

१ स्थान से।

२ शरीर से।

३. भाषा से।

स्थान से—अपने स्थान से इधर-उधर घूमना; यन्त्र और नर्तक की भाति अपने शरीर को नचाना।

शरीर से—हाथ या गोफण से पत्थर फेकना; भौंह, दाढ़ी, स्तन और पुतो को कम्पित करना।

भाषा से—सीटी बजाना, लोगों को हंसाने के लिए विचित्र प्रकार से बोलना, अनेक प्रकार की आवाजें करना और भिन्न-भिन्न देशी भाषाओं में बोलना।[1]

२. तितिणक—इसका अर्थ है—वस्तु की प्राप्ति न होने पर खिन्न हो बकवास करना। साधु जब गोचरी मे जाता है और किसी वस्तु का लाभ न होने पर खिन्न हो जाता है तो वह एषणा की शुद्धि नही रख सकता। वह वैसी स्थिति में एषणीय या अनेषणीय की परवाह न कर ज्यो-त्यो वस्तु की प्राप्ति करना चाहता है। इसलिए यह एषणा का प्रतिपक्षी है।

भिध्या निदान करण—भिध्या का अर्थ है—लोभ और निदान का अर्थ है—प्रार्थना या अभिलाषा। लोभ से की जाने वाली प्रार्थना आर्त्तध्यान को पोषण देती है, अत. वह मोक्ष मार्ग की पलिमन्थु है।

भ० महावीर ने निदानता को सर्वत्र अप्रशस्त कहा है, फिर निदान के साथ 'भिध्या' [लोभ] शब्द का प्रयोग क्यों—यह सहज ही प्रश्न उठता है।

वृत्तिकार का अभिमत है कि वैराग्य आदि गुणो की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले निदान मे आसक्ति भाव नही होता। वह वर्जित नही है। इस तथ्य को सूचित करने के लिए ही निदान के साथ 'भिध्या' शब्द का प्रयोग किया गया है।[2]

---

१. (क) स्थानांगवृत्ति, पत्र ३५४।
(ख) देखें—उत्तरज्झयणाणि, भाग २।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३५५।
विशेष विवरण के लिए देखें—बृहत्कल्पसूत्र ५।१६, भाष्यगाथा—६३११-६३४८।

३९. (सू० १०३)

इस सूत्र में विभिन्न संयमों व साधना के स्तरों की सूचना दी गई है। मुनि के लिए पांच संयम होते हैं—सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धिक, सूक्ष्मसंपराय और यथाख्यात।[1]

भगवान् पार्श्व के समय में सामायिक संयम की व्यवस्था थी। भगवान् महावीर ने उसके स्थान पर छेदोपस्थापनीय संयम की व्यवस्था की। इन दोनों संयमों की मर्यादाएं अनेक दृष्टिकोणों से भिन्न थीं। पृथक्-पृथक् स्थानों में उनके संकेत मिलते हैं। भाष्यकारों ने दस कल्पों के द्वारा इन दोनों संयमों की मर्यादाओं की पृथक्ता प्रदर्शित की है। दस कल्प श्वेताम्बर और दिगम्बर—दोनों परम्पराओं द्वारा सम्मत है—

१. आचेलक्य—वस्त्र न रखना अथवा अल्प वस्त्र रखना। दिगम्बर परम्परा के अनुसार इसका अर्थ है—सकल परिग्रह का त्याग।[2]

२. औद्देशिक—एक साधु के लिए बनाए गए आहार का दूसरे साभोगिक साधु द्वारा अग्रहण। दिगम्बर परम्परा के अनुसार इसका अर्थ है—साधु को उद्दिष्ट कर बनाए हुए भक्त-पान का अग्रहण।[3]

३. शय्यातरपिंड—स्थानदाता से भक्त-पान लेने का त्याग।

४. राजपिंड—राजपिंड का वर्जन।

५. कृतिकर्म—प्रतिक्रमण के समय किया जाने वाला वन्दन आदि।

६. व्रत—चतुर्याम या पंचमहाव्रत।

७. ज्येष्ठ—दीक्षा पर्याय की ज्येष्ठता का स्वीकार।

८. प्रतिक्रमण।

९. मास—शेषकाल में मासकल्प का विहार।

१०. पर्युषणाकल्प—वर्षावासीय आवास की व्यवस्था।

भगवान् पार्श्व के समय में (१) शय्यातरपिंड का वर्जन, (२) चतुर्याम, (३) पुरुषज्येष्ठत्व और (४) कृतिकर्म—ये चार कल्प अनिवार्य तथा शेष छह कल्प ऐच्छिक होते हैं। यह सामायिक संयम की मर्यादा है। भगवान् महावीर ने उक्त दसों कल्पों को श्रमण के लिए अनिवार्य बना दिया। फलत: छेदोपस्थापनीय संयम की मर्यादा में ये दसों कल्प अनिवार्य हो गए।

परिहारविशुद्धिक संयम तपस्या की विशेष साधना का एक स्तर है। निर्विशमानकल्प और निर्विष्टकल्प—ये दोनों परिहारविशुद्धिक संयम के अंग हैं।

निर्विशमानकल्पस्थिति—परिहारविशुद्ध चरित्र की साधना में अवस्थित चार तपोभिमुख साधुओं की आचार संहिता को निर्विशमानकल्प कहा जाता है। वे मुनि ग्रीष्म, शीत तथा वर्षा ऋतु में जघन्यत: क्रमश: चतुर्थभक्त (एक उपवास), षष्ठभक्त (दो उपवास) तथा अष्टमभक्त (तीन उपवास), मध्यमत: क्रमश: षष्ठभक्त, अष्टमभक्त तथा दशमभक्त (चार उपवास) और उत्कृष्टत: अष्टमभक्त, दशमभक्त तथा द्वादशभक्त (पांच उपवास) तपस्या करते हैं। पारणा में भी अभिग्रह सहित आयंबिल की तपस्या करते हैं। सभी तपस्वी जघन्यत: नव पूर्वों तथा उत्कृष्टत: दस पूर्वों के ज्ञाता होते हैं।

---

१ स्थानांग ५।१३६।

२ मूलाराधना, पृष्ठ ६०६,

सकलपरिग्रहत्याग आचेलक्यमित्युच्यते।

३ वही, पृष्ठ ६०६।

निर्विष्टकल्पस्थिति—इसका अर्थ है—परिहारविशुद्ध चरित्र में पूर्वाभिहित तपस्या कर लेने के बाद जो पूर्व परिचारकों की सेवा में संलग्न रहते हैं, उनकी आचार-विधि ।

परिहारविशुद्ध चरित्र की साधना में नौ साधु एक-साथ अवस्थित होते हैं । उनमें चार साधुओं का पहला वर्ग तपस्या करता है । उस वर्ग को निर्विशमानकल्प कहा जाता है । चार साधुओं का दूसरा वर्ग उसकी परिचर्या करता है तथा एक साधु आचार्य होता है । उन चारों की तपस्या पूर्ण हो जाने पर शेष चार साधु तपस्या करते हैं तथा जो तपस्या कर चुके, वे तपस्या में संलग्न साधुओं की परिचर्या करते हैं ।

दोनों वर्गों की तपस्या पूर्ण हो जाने के बाद आचार्य तपस्या मे अव्यवस्थित होते हैं और आठों ही साधु उनकी परिचर्या करते हैं ।[1]

जिनकल्पस्थिति—विशेष साधना के लिए जो संघ से अलग होकर रहते हैं, उनकी आचार-मर्यादा को जिनकल्पस्थिति कहा जाता है । वे अकेले रहते हैं । वे शारीरिक शक्ति और मानसिक दृढ़ता से सम्पन्न होते हैं । वे धृतिमान् और अच्छे संहनन से युक्त होते हैं । वे सभी प्रकार के उपसर्ग सहने में समर्थ तथा परीषहों का सामना करने मे निडर रहते हैं ।[2]

प्रवचनसारोद्धार के अनुसार जिनकल्पस्थिति का वर्णन इस प्रकार है—

आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और गणावच्छेदक—इन पाचों में से जो जिनकल्प को स्वीकार करना चाहते हैं, वे पहले तप, सत्त्व, सूत्र, एकत्व और बल—इन पांच तुलाओं से अपने-आप को तौलते है और इनमे पूर्ण हो जाने पर जिन-कल्प स्वीकार करते है । इनके अतिरिक्त जो मुनि इस कल्प को अपनाना चाहते हैं, उनके लिए इन पाच तुलाओं का अभ्यास अनिवार्य नही होता । वे गच्छ के अन्दर रहते हुए आगमोक्त विधि से अपनी आत्मा का परिकर्म करते है और जब जिनकल्प स्वीकार करना होता है तब सबसे पहले वे सारे संघ को एकत्रित करते है । यदि ऐसा संभव न हो सके तो अपने गण को अवश्य ही एकत्रित करते है । पश्चात् तीर्थंकर, गणधर, चतुर्दशपूर्वधर या सपूर्ण दशपूर्वधर के पास जिनकल्प स्वीकार करते हैं । इनमें से कोई उपलब्ध न होने पर वे वट, अश्वत्थ, अशोक आदि वृक्षों के समीप जाकर जिनकल्प स्वीकार करते है । यदि वे गणी होते है तो अपने गण मे गणधर की नियुक्ति कर सारे संघ से क्षमायाचना करते हैं । यदि वे गणी नहीं हैं, सामान्य साधु है, तो वे किसी की नियुक्ति नही करते किन्तु समूचे गण से क्षमायाचना करते हैं । यदि समूचा गण उपस्थित न हो तो अपने गच्छ वाले श्रमणों से क्षमायाचना करते है । वे कहते है—'यदि प्रमादवश मैंने आपके प्रति सद्व्यवहार नही किया हो तो आप मुझे क्षमा करें । मैं निःशल्य और निष्कषाय होकर आपसे क्षमायाचना करता हूं ।' तब सभी साधु आनन्द के आसू बहाते हुए हाथ जोड़कर, भूमि पर सिर को टिकाए, छोटे-बड़े के क्रम से क्षमायाचना करते है । इस क्षमायाचना से निम्न गुणों का उद्दीपन होता है ।[3]

१. निःशल्यता ।
२. विनय ।
३. दूसरों को क्षमायाचना की प्रेरणा ।
४. हल्कापन ।
५. क्षमायाचना के कारण अकेलेपन का स्थिर ध्यान या अनुभव ।
६. ममत्व का छेद ।

---

१. बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ६४४७-६४८१ ।
२. वही, गाथा ६४८४, वृत्ति—।
३. बृहत्कल्पभाष्य, गाथा १३७० :
खामितस्स गुणा खलु, निस्सल्लय विणय दीवणा मग्गे ।
लाघवियं एगत्तं, अप्पडिबंधो अ जिणकप्पे ॥

इस प्रकार क्षमायाचना कर वे अपने उत्तराधिकारी आचार्य को शिक्षा देते हुए कहते है—'गण मे बाल, वृद्ध सभी प्रकार के मुनि है। सारणा-वारणा से सघ की सम्यक् देख-रेख करना। शिष्य और आचार्य का यही क्रम है कि आचार्य अव्यवच्छित्तिकारक शिष्य का निष्पादन कर, शक्ति रहते-रहते, जिनकल्प को स्वीकार कर ले। तुम भी योग्य शिष्य का निष्पादन करने के पश्चात् इस कल्प को स्वीकार कर लेना। जो बहुश्रुत और पर्याय ज्येष्ठ मुनि है, उनके प्रति यथोचित विनय करने मे प्रमाद मत करना।

तप, स्वाध्याय, वैयावृत्य आदि-आदि साधनो के विभिन्न कार्य है। इनमे जो साधु जिस कार्य मे रुचि रखता है, उस को उसी कार्य मे योजित करना। गण मे छोटे, बडे, अल्पश्रुत या बहुश्रुत—किसी प्रकार के मुनियो का तिरस्कार मत करना।

वे साधुओ को इंगित कर कहते है—"आर्यो! मैने अमुक मुनि को योग्य समझ कर गण का भार सौपा है। तुम कभी यह मत सोचना कि यह हमसे छोटा है, समान है, अल्पश्रुत वाला है। हम इसकी आज्ञा का पालन क्यो करें? तुम हमेशा यह सोचना कि 'यह मेरे स्थान पर नियुक्त है, अत: पूज्य है।' यह सोचकर उसकी पूजा करना, उसकी आज्ञा का अखंड पालन करना।"

यह शिक्षा देकर वे वहा से अकेले ही चल पडते है। सारा सघ उनके पीछे-पीछे कुछ दूर तक चलता है। कुछ दूर जाकर सघ रुक जाता है और जिनकल्प प्रतिपन्न मुनि अकेले चले चलते है। जब तक वे दीखते है, तब तक सभी मुनि उन्हे एकटक देखते रहते है और जब वे दीखने बन्द हो जाते है तब वे अपने-अपने स्थान पर अत्यन्त आनन्दित होकर लौट आते है। वे मन ही मन कहते है—'अहो! हमारे गुरुदेव ने सुखसेवनीय स्थविरकल्प को छोडकर, अतिदुष्कर, जिनकल्प को स्वीकार किया है।'[1]

जिनकल्पिक मुनियो की चर्या आदि का विशेष विवरण बृहत्कल्पभाष्य मे प्राप्त होता है। वह इस प्रकार है—

१ श्रुत—जिनकल्पी जघन्यत प्रत्याख्यान नामक नौवें पूर्व की तीसरी आचारवस्तु के ज्ञाता तथा उत्कृष्टत, अपूर्ण दशपूर्वधर होते है। सपूर्ण दशपूर्वधर जिनकल्प अवस्था स्वीकार नही करते।

२. सहनन—वे वज्रऋषभनाराच सहनन वाले होते है।

३ उपसर्ग—उनके उपसर्ग हो ही, ऐसा कोई नियम नही है। किन्तु जो भी उपसर्ग उत्पन्न होते है, उन सबको वे समभाव से सहन करते है।

४ आतक—रोग या आतक उत्पन्न होने पर वे उन्हे समभाव मे सहन करते है।

५ वेदना—उनके दो प्रकार की वेदनाए होती है—

१ आभ्युपगमिकी—लुचन आतापना, तपस्या आदि करने से उत्पन्न वेदना।

२. औपक्रमिकी—अवस्था से उत्पन्न तथा कर्मो के उदय से उत्पन्न वेदना।

६ कतिजन—वे अकेले ही होते है।

७ स्थडिल—वे उच्चार और प्रस्रवण का उत्सर्ग विजन तथा जहा लोग न देखते हो ऐसे स्थान मे करते है।

वे कृतकार्य होने पर (हेमन्त ऋतु के चले जाने पर) उसी स्थडिल मे वस्त्रो का परिष्ठापन कर देते है। अल्पभोजी और रूक्षभोजी होने के कारण उनके मल बहुत थोडा बधा हुआ होता है, इसलिए उन्हे निर्लेपन (शुचि लेने) की आवश्यकता नही होती। बहुदिवसीय उपसर्ग प्राप्त होने पर भी वे अस्थडिल मे मल-मूत्र का उत्सर्ग नही करते।

८ वसति—वे जैसा स्थान मिले वैसे मे ही ठहर जाते है। वे साधु के लिए जीर्णा-पुनी वसति मे नहीं ठहरते। बिलों को धूल आदि से नही ढंकते, पशुओ द्वारा खाए जाने पर या तोडे जाने पर भी वसति की रक्षा के लिए पशुओ का निवारण नही करते, द्वार बन्द नही करते, अर्गला नही लगाते।

९. उनके द्वारा वसति की याचना करने पर यदि गृहस्वामी पूछे कि आप यहा कितने समय तक रहेगे? इस जगह आप को मल-मूत्र का त्याग करना है, यहा नही करना है। यहा बैठें, यहा न बैठें। इन निर्दिष्ट तृण-फलकों का उपयोग

---

[1] प्रवचनसारोद्धार, गाथा ५४०, वृत्ति पत्र १२६-१२८।

करें, इनका न करें। गाय आदि पशुओं की देख-भाल करें, मकान की उपेक्षा न करें, उसकी सार-संभाल करते रहें तथा इसी प्रकार के अन्य नियंत्रणों की बातें कहे तो जिनकल्पिक मुनि ऐसे स्थान में कभी न रहे।

१०. जिस वसति मे बलि दी जाती हो, दीपक जलता हो, अग्नि आदि का प्रकाश हो तथा गृहस्वामी कहे कि मकान का भी थोड़ा ध्यान रखें या वह पूछे कि आप इस मकान में कितने व्यक्ति रहेंगे ?—ऐसे स्थान मे भी वे नहीं रहते। वे दूसरे के मन में सूक्ष्म अप्रीति भी उत्पन्न करना नही चाहते, इसलिए इन सबका वर्जन करते है।

११. भिक्षाचर्या के लिए तीसरे प्रहर मे जाते हैं।

१२. सात पिंडैषणाओ मे से प्रथम दो को छोडकर शेष पाच एषणाओ से अलेपकृत भक्त-पान लेते हैं।

१३. मल-भेद आदि दोष उत्पन्न होने की सभावना के कारण वे आचामाम्ल नही करते। वे मासिकी आदि भिक्षु प्रतिमा तथा भद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा आदि प्रतिमाएं स्वीकार नहीं करते।

१४. जहां मासकल्प करते हैं, वहा उस गांव या नगर को छह भागो मे विभक्त कर, प्रतिदिन एक-एक विभाग में भिक्षा के लिए जाते हैं।

१५. वे एक ही वसति मे सात (जिनकल्पिको) से अधिक नही रहते। वे एक साथ रहते हुए भी परस्पर संभाषण नही करते। भिक्षा के लिए एक ही वीथि मे दो नही जाते।

१६. क्षेत्र—जिनकल्प मुनि का जन्म और कल्पग्रहण कर्मभूमि में ही होता है। देवादि द्वारा संहरण किए जाने पर वे अकर्मभूमि मे भी प्राप्त हो सकते है।

१७. काल—अवसर्पिणी काल मे उत्पन्न हो तो उनका जन्म तीसरे-चौथे अर मे होता है और जिनकल्प का स्वीकार तीसरे, चौथे और पाचवें में भी हो सकता है। यदि उत्सर्पिणी काल में उत्पन्न हो तो दूसरे, तीसरे और चौथे अर मे जन्म लेते है और जिनकल्प का स्वीकार तीसरे और चौथे अर में ही करते है।

१८. चारित्र—सामायिक अथवा छेदोपस्थानीय सयम मे वर्तमान मुनि जिनकल्प स्वीकार करते है। उसके स्वीकार के पश्चात् वे सूक्ष्मसपराय आदि चारित्र में भी जा सकते हैं।

१९. तीर्थ—वे नियमत: तीर्थ में ही होते हैं।

२०. पर्याय—जघन्यत: उनतीस वर्ष की अवस्था में (९ गृहवास के और २० श्रमण-पर्याय के) और उत्कृष्टत: गृहस्थ और साधु-पर्याय की कुछ न्यून करोड पूर्व में, इस कल्प को ग्रहण करते हैं।

२१. आगम—जिनकल्प स्वीकार करने के बाद वे नए श्रुत का अध्ययन नहीं करते, किन्तु चित्त-विक्षेप से बचने के लिए पहले पढ़े हुए श्रुत का स्वाध्याय करते हैं।

२२. वेद—स्त्रीवेद के अतिरिक्त पुरुषवेद तथा असंक्लिष्ट नपुसकवेद वाले व्यक्ति इसे स्वीकार करते हैं। स्वीकार करने के बाद वे सवेद या अवेद भी हो सकते हैं। यहां अवेद का तात्पर्य उपशान्त वेद से है। क्योंकि वे क्षपकश्रेणी नही ले सकते, उपशमश्रेणी लेते हैं। उन्हे उस भव मे केवलज्ञान नहीं होता।

२३. कल्प—वे दोनों कल्प—स्थितकल्प अथवा अस्थितकल्प वाले होते हैं।

२४. लिंग—कल्प स्वीकार करते समय वे नियमत: द्रव्य और भाव—दोनो लिंगों से युक्त होते हैं। आगे भावलिंग तो निश्चय ही होता है। द्रव्यलिंग जीर्ण या चोरों द्वारा अपहृत हो जाने पर हो भी सकता है और नहीं भी।

२५. लेश्या—उनमे कल्प स्वीकार के समय तीन प्रशस्त लेश्याए (तैजस, पद्म और शुक्ल) होती हैं। बाद मे उनमें छहों लेश्याएं हो सकती हैं, किन्तु वे अप्रशस्त लेश्याओ मे बहुत समय तक नही रहते और वे अप्रशस्त लेश्याए अति संक्लिष्ट नहीं होतीं।

२६. ध्यान—वे प्रवर्द्धमान धर्म्य ध्यान मे कल्प का स्वीकरण करते है, किन्तु बाद में उनमे आर्त्त-रौद्र ध्यान की सद्-भावना भी हो सकती है। उनमे कुशल परिणामों की उद्दामता रहती है, अत: ये आर्त्त-रौद्र ध्यान भी प्राय: निरनुबंध होते हैं।

२७. गणना—एक समय में इस कल्प को स्वीकार करने वालों की उत्कृष्ट संख्या शतपृथक्त्व (९००) और पूर्व स्वीकृत के अनुसार यह सख्या सहस्रपृथक्त्व (९०००) होती है। पन्द्रह कर्मभूमियों मे उत्कृष्टत. इतने ही जिनकल्पी प्राप्त हो सकते हैं।

२८. अभिग्रह—वे अल्पकालिक कोई भी अभिग्रह स्वीकार नही करते। उनके जिनकल्प अभिग्रह जीवन पर्यन्त होता है। उसमें गोचर आदि प्रतिनियत व निरपवाद होते हैं, अत· उनके लिए जिनकल्प का पालन ही परम विशुद्धि का स्थान है।

२९. प्रव्रज्या—वे किसी को दीक्षित नही करते, किसी को मुड नही करते। यदि ये जान जाए कि अमुक व्यक्ति अवश्य ही दीक्षा लेगा, तो वे उसे उपदेश देते है और उसे दीक्षा-ग्रहण करने के लिए संविग्न गीतार्थ साधु के पास भेज देते हैं।

३०. प्रायश्चित्त—मानसिक सूक्ष्म अतिचार के लिए भी उनको जघन्यत. चतुर्गुरुक मासिक प्रायश्चित्त लेना होता है।

३१. निष्प्रतिकर्म—वे शरीर का किसी भी प्रकार से प्रतिकर्म नही करत। आख आदि का मैल भी नही निकालते और न कभी किसी प्रकार की चिकित्सा ही करवाते हैं।

३२. कारण—वे किसी प्रकार के अपवाद का सेवन नही करते।

३३. काल—वे तीसरे प्रहर मे भिक्षा करते है और विहार भी तीसरे प्रहर मे ही करते है। शेष समय में वे प्राय: कायोत्सर्ग में स्थित रहते है।

३४. स्थिति—विहरण करने मे असमर्थ होने पर वे एक स्थान पर रहते हैं, किन्तु किसी प्रकार के दोष का सेवन नहीं करते।

३५. सामाचारी—साधु-सामाचारी के दस भेद है। इनमे से वे आवश्यिकी, नैषेधिकी, मिथ्याकार, आपृच्छा और उपसंपद्—इन पांच सामाचारियों का पालन करते है।

स्थविरकल्पस्थिति—जो संघ मे रहकर साधना करते है, उनकी आचार-मर्यादा को स्थविरकल्पस्थिति कहा जाता है। उनके मुख्य अंग ये है—

(१) सतरह प्रकार के सयम का पालन। (२) ज्ञान, दर्शन, चारित्र की परम्परा का विच्छेद न होने देना। इसके लिए शिष्यो को ज्ञान, दर्शन और चारित्र मे निपुण करना। (३) वृद्धा अवस्था में जंघाबल क्षीण होने पर स्थिरवास करना।[1]

भावसग्रह के अनुसार जिनकल्पी और स्थविरकल्पी का स्वरूपचित्रण इस प्रकार है—

जिनकल्पी—जिनकल्प मे स्थित श्रमण बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थियो से रहित, निस्नेह, निस्पृह और वाग्गुप्त होते है। वे सदा जिन भगवान् की भाति विहरण करते रहते हैं।[2]

यदि उनके पैरो मे काटा चुभ जाए या आखो में धूलि गिर जाए तो भी वे अपने हाथो से न काटा निकालते है और न धूल ही पोछते है। यदि कोई दूसरा व्यक्ति वैसा करता है तो वे मौन रहते है[3]।

वे ग्यारह अंगो के धारक होते है। वे अकेले रहते है और धर्म्य-शुक्ल ध्यान मे लीन रहते है। वे सम्पूर्ण कषायों के त्यागी, मौनव्रती और कन्दराओ मे रहते है[4]।

स्थविरकल्पी—इस दु षमकाल मे सहनन और गुणो की क्षीणता के कारण मुनि पुर, नगर और ग्राम मे रहने लगे हैं, वे तप की प्रभावना करते है। वे स्थविरकल्पी कहलाते है[5]।

वे मुनि समुदाय रूप मे विहार कर अपनी शक्ति के अनुसार धर्म की प्रभावना करते है। वे भव्य व्यक्तियों को धर्म का श्रवण कराते हैं तथा शिष्यो का ग्रहण और पालन करते हैं[6]।

---

१. बृहत्कल्पभाष्य, गाथा ६४८५।

२ भावसंग्रह, गाथा १२३ :

बहिरतरगथचुवा णिण्णेहा णिप्पिहा य जइवइणो।
जिण इव विहरंति सदा ते जिणकप्पे ठिया सवणा ॥

३. वही, गाथा १२० ·

जत्थ य कंटयभग्गो पाए णयणम्मि रयपविट्ठम्मि।
फेडंति सयं मुणिणा परावहारे य तुण्हिक्का।

४. वही, गाथा १२२ :

एगारसगधारी एआई धम्मसुक्कझाणी य।
चत्तासेसकसाया मोणवई कदरावासी ॥

५. वही, गाथा १२७

सहणणस्स य, दुस्समकालस्स तवपहावेण।
पुरनयरगामवासी, थविरे कप्पे ठिया जाया ॥

६. वही, गाथा १२६.

समुदायेण विहारो, धम्मस्स पहावणं ससत्तीए।
भवियाण धम्मसवणं, सिस्साणं च पालणं गहणं ॥

पहले मुनिगण जितने कर्मों को हजार वर्षों में क्षीण करते थे, उतने कर्मों को वर्तमान में हीन संहनन वाले, स्थविर-कल्पी मुनि, एक वर्ष में क्षीण कर देते हैं[1]।

४०. परिणाम (सू० १०६) :

वृत्तिकार ने परिणाम के चार अर्थ किए हैं[2]—१. पर्याय, २. स्वभाव, ३. धर्म, ४. विपाक।

प्रस्तुत सूत्र में परिणाम शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—पर्याय और विपाक। प्रथम दो विभाग पर्याय के और शेष चार विपाक के उदाहरण है।

४१. (सू० ११६) :

एक साथ जितने कर्म-पुद्गल जिस रूप में भोगे जाते हैं उस रूप-रचना का नाम निषेक है। निधत्त का अर्थ है—कर्म का निषेक के रूप में बन्ध होना। जिस समय आयु का बन्ध होता है तब वह जाति आदि छहों के साथ निधत्त—निषिक्त होता है। अमुक आयु का बन्ध करने वाला जीव उसके साथ-साथ एकेन्द्रिय आदि पांच जातियों में से किसी एक जाति का, नरक आदि चार गतियों मे से किसी एक गति का, अमुक समय की स्थिति—काल-मर्यादा का, अवगाहना—औदारिक या वैक्रिय शरीर मे से किसी एक शरीर का तथा आयुष्य के प्रदेशो—परमाणु-संचयो का और उसके अनुभाव—विपाकशक्ति का भी बन्ध करता है।

४२. भाव (सू० १२४) :

कर्म आठ हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय। इनके मुख्य दो वर्ग है—घात्य और अघात्य। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय—ये चार घात्य-कोटि और शेष चार अघात्य-कोटि के कर्म हैं। इनके उदय आदि से तथा काल-परिणमन से होने वाली जीव की अवस्था को भाव कहा जाता है। भाव छह हैं—

औदयिक—कर्मों के उदय से होने वाली जीव की अवस्था।

औपशमिक—मोह कर्म के उपशम से होने वाली जीव की अवस्था।

क्षायिक—कर्मों के क्षय से होने वाली जीव की अवस्था।

क्षायोपशमिक—घात्य कर्मों के क्षयोपशम [उदित कर्मों के क्षय और अनुदित कर्मों के उपशम] से होने वाली जीव की अवस्था।

पारिणामिक—काल-परिणमन से होने वाली जीव की अवस्था।

सान्निपातिक—दो या अधिक भावों के योग से होने वाली जीव की अवस्था।

इसके २६ विकल्प होते हैं—

दो के संयोग से—	१० विकल्प
तीन के संयोग से—	१० विकल्प
चार के संयोग से—	५ विकल्प
पांच के संयोग से—	१ विकल्प

इनके विस्तार के लिए देखें—अनुयोगद्वार, सूत्र २८६-२६७।

---

१. भावसंग्रह, गाथा १३१ :

वरिससहस्सेण पुरा जं कम्मं हणइ तेण काएण।
तं संपइ वरिसेण हु णिज्जरयइ हीणसंहणणे॥

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३५६ :—

परिणाम :—पर्याय: स्वभावो धर्म्म इति यावत्।
··परिणामो—विपाक:।

परस्पर अविरुद्ध विकल्पो के आधार पर इसके १५ भेद होते है—

औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक चारो गतियो मे एक-एक—४ विकल्प

क्षायिक —चारों गतियों मे—४ विकल्प

औपशमिक—चारों गतियो मे—४ विकल्प

उपशम श्रेणी का —[यह केवल एक मनुष्य गति मे ही होता है]—१ विकल्प

केवली का —[केवल मनुष्य में ही]—१ विकल्प

सिद्ध का — १ विकल्प

इसका विस्तार इस प्रकार है-

उदय, क्षयोपशम और परिणाम से निष्पन्न सान्निपातिक के चार विकल्प—

० नरक—औदयिक-नारकत्व, क्षायोपशमिक-इन्द्रिया, पारिणामिक-जीवत्व।

० तिर्यञ्च—औदयिक-तिर्यञ्चत्व, क्षायोपशमिक-इन्द्रिया, पारिणामिक-जीवत्व।

० मनुष्य—औदयिक-मनुष्यत्व, क्षायोपशमिक-इन्द्रिया, पारिणामिक-जीवत्व।

० देव—औदयिक-देवत्व, क्षायोपशमिक-इन्द्रिया, पारिणामिक-जीवत्व।

क्षय के योग से निष्पन्न सान्निपातिक के चार विकल्प

० नरक—औदयिक-नारकत्व, क्षायोपशमिक-इन्द्रिया, क्षायिक-सम्यक्त्व, पारिणामिक-जीवत्व।

इसी प्रकार अन्य तीन गतियो मे योजना करनी चाहिए।

उपशम के योग से निष्पन्न सान्निपातिक के चार विकल्प—

० नरक—औदयिक-नारकत्व, क्षायोपशमिक-इन्द्रिया, औपशमिक-सम्यक्त्व, पारिणामिक-जीवत्व।

इसी प्रकार अन्य तीन गतियो मे योजना करनी चाहिए।

० उपशम श्रेणी से निष्पन्न सान्निपातिक का एक विकल्प केवल मनुष्य के ही होता है।

औदयिक-मनुष्यत्व, क्षायोपशमिक-इन्द्रिया, उपशान्त-कषाय, पारिणामिक-जीवत्व।

० केवली मे निष्पन्न सान्निपातिक का एक विकल्प—

औदयिक-मनुष्यत्व, क्षायिक-सम्यक्त्व, पारिणामिक-जीवत्व।

० सिद्ध से निष्पन्न सान्निपातिक का एक विकल्प—

क्षायिक-सम्यक्त्व, पारिणामिक-जीवत्व।

इन विकल्पो की समस्त सख्या १५ है।

पाचो भावो के ५३ भेद भी किए गए है—

१. औपशमिक भाव के दो भेद—औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र।

२. क्षायिक भाव के नौ भेद—दर्शन, ज्ञान, दान, लाभ, उपभोग, भोग, वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र।

३. क्षायोपशमिक भाव के अठारह भेद—चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन दर्शन, पाच लब्धि, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र और सयमासयम।

४. औदयिकभाव के २१ भेद—चार गति, चार कषाय, तीन लिंग, छह लेश्या, अज्ञान, मिथ्यात्व, असिद्धत्व और असयम।

५. पारिणामिक भाव के तीन भेद—जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व[1]।

---

१. अनुयोगद्वार, सूत्र २७१-२९७।

सत्तमं ठाणं

सप्तम स्थान

आमुख

साधना व्यक्तिगत होती है, फिर भी कुछ कारणों से उसे सामुदायिकरूप दिया गया। इस कार्य में जैन तीर्थंकरों का महत्वपूर्ण योगदान है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना सम्यक्‌रूप से करने के लिए साधु संघ का सदस्य होता है। संघ में अनेक गण होते हैं। जिस गण में साधु रहता है उसकी व्यवस्था का पालन वह निष्ठा के साथ करता है। जब उसे यह अनुभूति होने लग जाय कि इस गण में रहने से मेरा विकास नहीं होता तो वह गण परिवर्तन के लिए स्वतन्त्र होता है। साधना की भूमिका के परिपक्व होने पर वह एकाकी रहने की स्वीकृति भी प्राप्त कर सकता है। प्रस्तुत स्थान मे गण-परिवर्तन के सात हेतु बतलाए गए हैं।[1]

साधना का सूत्र है अभय। भगवान् महावीर ने कहा—जो भय को नहीं जानता और नहीं छोड़ता वह अहिंसक नहीं हो सकता, सत्यवादी और अपरिग्रही भी नहीं हो सकता। भय का प्रवेश तब होता है जब व्यक्ति दूसरे से अपने को हीन मानता है। मनुष्य को मनुष्य से भय होता है, यह इहलोक भय है। मनुष्य को पशु आदि से भय होता है, यह परलोक भय है। धन आदि पदार्थों के अपहरण का भय होता है। मृत्यु का भय होता है। पीड़ा या रोग का भय होता है। अपयश का भय होता है।[2]

अहिंसा के आचार्यों ने अभय को महत्वपूर्ण स्थान दिया। राजनीति के मनीषी भय की भी उपयोगिता स्वीकार करते हैं। उनका मत है कि दण्ड-भय के बिना समाज नहीं चल सकता। प्रस्तुत आगम मे विविध विषय संकलित हैं, इसलिए इसमे भय और दण्ड के प्रकार भी प्रतिपादित हैं। दण्डनीति के सात प्रकार बतलाए गए हैं, इनमे उनके क्रमिक विकास का इतिहास है। प्रथम कुलकर विमलवाहन के समय में हाकार नीति का प्रयोग शुरू हुआ। उस समय कोई अपराध करता उन्हे "हा! तूने ऐसा किया" यह कहा जाता। यह उनके लिए महान दण्ड होता। वे स्वयं अनुशासित और लज्जाशील थे। यह दण्ड नीति दूसरे कुलकर के समय तक चली। तीसरे कुलकर यशस्वी और चौथे कुलकर अभिचन्द्र के समय में दो दण्ड नीतियों का प्रयोग होने लगा। सामान्य अपराध के लिए हाकार और बड़े अपराध के लिए माकारनीति (मत करो) का प्रयोग किया जाता था। पांचवे प्रसेनजित, छट्ठे मरुदेव और सातवे नाभि कुलकर के समय मे तीन दण्डनीतियां प्रचलित थीं। छोटे अपराध के लिए हाकार मध्यम अपराध के लिए माकार और बड़े अपराध के लिए धिक्कार की नीति का प्रयोग किया जाता था। उस समय तक मनुष्य ऋजु, मर्यादा-प्रिय और स्वयंशासित थे। जैसे-जैसे समाज व्यवस्था विकसित होती गई स्वयं का अनुशासन कम होता गया, वैसे-वैसे सामाजिक दण्ड का भी विकास होता गया। राज्य की स्थापना के साथ अनेक दण्ड प्रचलित हो गए, जैसे—

परिभाषक—थोड़े समय के लिए नजरबद करना—क्रोधपूर्ण शब्दों में अपराधी को 'यहीं बैठ जाओ' ऐसा आदेश देना।

मंडलिबंध—नजरबद करना—नियमित क्षेत्र से बाहर न जाने का आदेश देना।

चारक—कैद में डालना।

छविच्छेद—हाथ पैर आदि काटना।[3]

---

१ ७।१।

२. ७।२७।

३. ७।४०-४१।

दण्डनीति का विकास इस बात का सूचक है कि मनुष्य जितना स्वय-शासित होता है, दण्ड का प्रयोग उतना ही कम होता है। और आत्मानुशासन जितना कम होता है, दण्ड का प्रयोग उतना ही बढ़ता है। याज्ञवल्क्यस्मृति में भी धिग्दण्ड का उल्लेख मिलता है। उसके अनुसार दण्ड के चार प्रकार है—

धिग्दण्ड—धिक्कार युक्त वचनों द्वारा बुरे मार्ग पर जाने से रोकना।

वाग्दण्ड—कठोर वचनो के द्वारा अपराध करने वाले व्यक्ति को वैसा न करने की शिक्षा देना।

धनदण्ड—पैसे का दण्ड। बार-बार अपराध न करने के लिए निषेध करने पर भी न माने तब धन के रूप में जो दण्ड दिया जाता है, उसे धनदण्ड कहते है।

वधदण्ड—अनेक बार समझाने पर जब अपराधी अपने स्वभाव को नहीं बदलता, तब उसे वध करने का दण्ड दिया जाता है।[1]

मनुष्य अनेक शक्तियों का पुञ्ज है। उसमे विवेक है, चिंतन है। उसके पास भावाभिव्यक्ति के लिए भाषा का सशक्त माध्यम भी है। वह प्रारम्भ मे अपने भावों को कुछेक शब्दों मे अभिव्यक्त करता था, किन्तु विकसित अवस्था मे उसकी भाषा विकसित हो गई और उसने अभिव्यक्ति मे सौन्दर्य लाने का प्रयत्न किया। उस प्रयत्न मे गद्य और पद्य शैली का विकास हुआ। लौकिक ग्रन्थों मे उसकी विशद चर्चा मिलती है। काव्यशास्त्र और संगीतशास्त्र की दीर्घकालीन परम्परा है। सूत्रकार ने हेय और उपादेय की मीमासा के साथ-साथ ज्ञेय विषयों का सकलन भी किया है। स्वर-मण्डल उसका एक उदाहरण है। इस सग्रह सूत्र मे अन्यान्य विषयों का जहा नाम-निर्देश है वहा स्वर-मडल का विशद वर्णन मिलता है।

प्रस्तुत स्थान सात की सख्या से सम्बन्धित है। इसमें जीव-विज्ञान, लोक-स्थिति सस्थान, गोत्र, नय, आसन, पर्वत, चक्रवर्तीरत्न, दुषमाकाल की पहचान, सुषमाकाल की पहचान, सयम-असयम, आरभ, धान्य की स्थिति का समय, देवपद, समुद्घात, प्रवचन-निण्हव, नक्षत्र, विनय के प्रकार, इतिहास और भूगोल-सम्बन्धी अनेक विषय सकलित हैं।

---

१ याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय, राजधर्म, श्लोक ३६७।
धिग्दण्डस्त्वथ वाग्दण्डो, धनदण्डो वधस्तथा
योज्या व्यस्ताः समस्ता वा, ह्यपराधवशादिमे।

सत्तमं ठाणं

मूल

गणावक्कमण-पदं

१. सत्तविहे गणावक्कमणे पण्णत्ते, तं जहा—
सव्वधम्मा रोएमि।
एगइया रोएमि,
एगइया णो रोएमि।
सव्वधम्मा वितिगिच्छामि।
एगइया वितिगिच्छामि,
एगइया णो वितिगिच्छामि।
सव्वधम्मा जुहुणामि।
एगइया जुहुणामि,
एगइया णो जुहुणामि।
इच्छामि णं भंते! एगल्लविहार-पडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।

संस्कृत छाया

गणापक्रमण-पदम्

सप्तविधं गणापक्रमणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
सर्वधर्मान् रोचयामि।
एककान् रोचयामि,
एककान् नो रोचयामि।
सर्वधर्मान् विचिकित्सामि।
एककान् विचिकित्सामि,
एककान् नो विचिकित्सामि।
सर्वधर्मान् जुहोमि।
एककान् जुहोमि,
एककान् नो जुहोमि।
इच्छामि भदन्त! एकाकिविहार-प्रतिमां उपसंपद्य विहर्तुम्।

हिन्दी अनुवाद

गणापक्रमण-पद

१. सात कारणों से गण से अपक्रमण किया जा सकता है—

१. सब धर्मों [श्रुत व चारित्र के प्रकारों] में मेरी रुचि है। यहां उनकी पूर्ति के साधन नहीं है। इसलिए भंते! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूं और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूं।

२. कुछेक धर्मों में मेरी रुचि है और कुछेक धर्मों में मेरी रुचि नहीं है। जिनमें मेरी रुचि है उनकी पूर्ति के साधन यहां नहीं है। इसलिए भंते! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूं और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूं।

३. सब धर्मों के प्रति मेरा संशय है। संशय को दूर करने के लिए भंते! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूं और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूं।

४. कुछेक धर्मों के प्रति मेरा संशय है और कुछेक धर्मों के प्रति मेरा संशय नहीं है। संशय को दूर करने के लिए भंते! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूं और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूं।

५. मैं सब धर्मों को दूसरों को देना चाहता हूं। इस गण में कोई योग्य व्यक्ति नहीं है जिसे कि मैं सब धर्म दे सकूं। इसलिए भंते! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूं और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूं।

६. मैं कुछेक धर्मों को दूसरों को देना चाहता हूं और कुछेक धर्मों को नहीं देना चाहता। इस गण में कोई योग्य व्यक्ति नहीं है जिसे कि मैं जो देना चाहता हूं वह दे सकूं। इसलिए भंते! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूं और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूं।

७. भंते! मैं 'एकलविहार प्रतिमा' को स्वीकार कर विहरण करना चाहता हूं। इसलिए इस गण से अपक्रमण करता हूं।

विभंगणाण-पदं

२. सत्तविहे विभंगणाणे पण्णत्ते, तं जहा—
एगदिसिं लोगाभिगमे,
पंचदिसिं लोगाभिगमे,
किरियावरणे जीवे,
मुदग्गे जीवे, अमुदग्गे जीवे,
रूवी जीवे, सव्वमिणं जीवा।
तत्थ खलु इमे पढमे विभंगणाणे— जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं पासति पाईणं वा पडिणं वा दाहिणं वा उदीणं वा उड्ढं वा जाव सोहम्मे कप्पे। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे— एगदिसिं लोगाभिगमे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु— पंचदिसिं लोगाभिगमे।
जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—पढमे विभंगणाणे।
अहावरे दोच्चे विभंगणाणे—जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं पासति पाईणं वा पडिणं वा दाहिणं वा उदीणं वा उड्ढं जाव सोहम्मे कप्पे। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—पंचदिसिं लोगाभिगमे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—

विभंगज्ञान-पदम्

सप्तविध विभङ्गज्ञान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
एकदिशि लोकाभिगम.,
पञ्चदिशि लोकाभिगमः,
क्रियावरण जीवः,
'मुदग्ग.' जीव', 'अमुदग्गा.' जीवः,
रूपी जीव', सर्वमिदं जीवः।
तत्र खलु इद प्रथम विभङ्गज्ञानम्— यदा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञान समुत्पद्यते। स तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति प्राचीन वा प्रतीचीना वा दक्षिणा वा उदीचीनां वा ऊर्ध्व वा यावत् सौधर्म कल्पम्। तस्य एव भवति—अस्ति मम अतिशेष ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्—एकदिशि लोकाभिगम.। सन्त्येकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहु —पञ्चदिशि लोकाभिगमः। ये ते एवमाहु., मिथ्या ते एवमाहुः— प्रथम विभङ्गज्ञानम्।
अथापर द्वितीयं विभङ्गज्ञानम्। यद तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञान समुत्पद्यते। स तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति प्राचीना वा प्रतीचीना वा दक्षिणा वा उदीचीना वा ऊर्ध्व वा यावत् सौधर्म कल्पम्। तस्य एव भवति—अस्ति मम अतिशेषं ज्ञानदर्शन समुत्पन्नम्—पञ्चदिशि लोकाभिगम.। सन्त्येकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहुः—एकदिशि लोकाभिगम.। ये ते एवमाहु., मिथ्या ते

विभंगज्ञान-पद

२. विभंगज्ञान [मिथ्यात्वी का अवधिज्ञान] सात प्रकार का होता है—
१. एकदिग्लोकाभिगम—लोक एक दिशा मे ही है।
२. पंचदिग्लोकाभिगम —लोक पांचों दिशाओं मे ही है, एक दिशा में नही है।
३ क्रियावरणजीव—जीव के क्रिया का ही आवरण है, कर्म का नही।
४. मुदग्गजीव—जीव पुद्गल निर्मित ही है।
५ अमुदग्गजीव—जीव पुद्गल निर्मित नहीं ही है।
६ रूपीजीव—जीव रूपी ही है।
७. ये सब जीव है—सब जीव ही जीव हैं।
पहला विभगज्ञान—
जब तथारूप श्रमण-माहन को विभंगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभगज्ञान से पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर व सौधर्म देवलोक तक की ऊर्ध्व दिशा मे से किसी एक दिशा को देखता है, तब उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है—"मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं एक दिशा मे ही लोक को देख रहा हूं। कुछ श्रमण-माहन ऐसा कहते है कि लोक पाच दिशाओं मे है। जो ऐसा कहते है, वे मिथ्या कहते है"—यह पहला विभगज्ञान है।
दूसरा विभगज्ञान —
जब तथारूप श्रमण-माहन को विभंगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभगज्ञान से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण व सौधर्म देवलोक तक की ऊर्ध्व दिशा—इन पाचो दिशाओ को देखता है। तब उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है—"मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं पांचों दिशाओं में ही लोक को देख रहा हूं।

एगदिसिं लोगाभिगमे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—दोच्चे विभंगणाणे।

एवमाहुः—द्वितीयं विभङ्गज्ञानम्।

कुछ श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि लोक एक दिशा में ही है। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं—यह दूसरा विभंगज्ञान है।

अहावरे तच्चे विभंगणाणे—जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं पासति पाणे अतिवातेमाणे, मुसं वयमाणे, अदिण्णमादियमाणे, मेहुणं पडिसेवमाणे, परिग्गहं परिगिण्हमाणे, राइभोयणं भुंजमाणे, पावं च णं कम्मं कीरमाणं णो पासति। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—किरियावरणे जीवे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—णो किरियावरणे जीवे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—तच्चे विभंगणाणे।

अथापरं तृतीयं विभङ्गज्ञानम्—यदा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञानं समुत्पद्यते। स तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति प्राणान् अतिपातयतः, मृषा वदतः, अदत्तमाददतः, मैथुनं प्रतिषेवमाणान्, परिग्रहं परिगृह्णतः, रात्रिभोजनं भुञ्जानान्, पापं च कर्म क्रियमाणं नो पश्यति। तस्य एवं भवति—अस्ति मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्—क्रियावरणः जीवः। सन्त्येकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहुः—नो क्रियावरणः जीवः। ये ते एवमाहुः, मिथ्या ते एवमाहुः—तृतीयं विभङ्गज्ञानम्।

तीसरा विभंगज्ञान—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभंगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभंगज्ञान से जीवों को हिंसा करते हुए, झूठ बोलते हुए, अदत्त ग्रहण करते हुए, मैथुन सेवन करते हुए, परिग्रह ग्रहण करते हुए और रात्रीभोजन करते हुए देखता है, किन्तु उन प्रवृत्तियों के द्वारा होते हुए कर्म-बन्ध को नहीं देखता, तब उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है—"मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हूं कि जीव क्रिया से ही आवृत है, कर्म से नहीं।

कुछ श्रमण-माहन ऐसा कहते है कि जीव क्रिया से आवृत नहीं है। जो ऐसा कहते है, वे मिथ्या कहते है—यह तीसरा विभंगज्ञान है।

अहावरे चउत्थे विभंगणाणे—जया णं तधारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा •विभंगणाणे° समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं देवामेव पासति बाहिरब्भंतरए पोग्गले परियाइत्ता पुढेगत्तं णाणत्तं फुसित्ता फुरित्ता फुट्टित्ता विकुव्वित्ता णं चिट्ठित्तए। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—मुदग्गे जीवे संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—अमुदग्गे जीवे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—चउत्थे विभंगणाणे।

अथापरं चतुर्थं विभङ्गज्ञानम्—यदा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञानं समुत्पद्यते। स तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन देवानेव पश्यति बाह्याभ्यन्तरान् पुद्गलान् पर्यादाय पृथगेकत्वं नानात्वं स्पृष्ट्वा स्फोरयित्वा स्फोटयित्वा विकृत्य स्थातुम्। तस्य एवं भवति—अस्ति मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्—'मुदग्गः' जीवः। सन्त्येकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहुः—'अमुदग्गः' जीवः। ये ते एवमाहुः, मिथ्या ते एवमाहुः—चतुर्थं विभङ्गज्ञानम्।

चौथा विभंगज्ञान—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभंगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभंगज्ञान से देवों को बाह्य [शरीर के अवगाढ-क्षेत्र के बाहर] और अभ्यन्तर [शरीर के अवगाढ-क्षेत्र के भीतर] पुद्गलों को ग्रहण कर विक्रिया करते हुए देखता है। वे देव पुद्गलों का स्पर्श कर, उन में हलचल पैदा कर, उनका स्फोट कर, पृथक्-पृथक काल व देश में कभी एक रूप व कभी विविध रूपों की विक्रिया करते हैं। यह देख उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है—"मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हूं कि जीव पुद्गलों से ही बना हुआ है।

कुछ श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव पुद्गलों से बना हुआ नहीं है। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं—यह चौथा विभंगज्ञान है।

अहावरे पंचमे विभंगणाणे—जया णं तधारूवस्स समणस्स °वा माहणस्स वा विभंगणाणे° समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं देवामेव पासति बाहिरब्भंतरए पोग्गलए अपरियाइत्ता पुढेगत्तं णाणत्तं °फुसित्ता फुरित्ता फुट्टित्ता° विउव्वित्ता णं चिट्ठितए। तस्स ण एवं भवति—अत्थि °णं मम अतिसेसे णाणदंसणे° समुप्पण्णे—अमुदग्गे जीवे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—मुदग्गे जीवे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—पंचमे विभंगणाणे।

अथापरं पञ्चम विभङ्गज्ञानम्—यदा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञान समुत्पद्यते। स तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन देवानेव पश्यति बाह्याभ्यन्तरान् पुद्गलकान् अपर्यादाय पृथगेकत्व नानात्व स्पृष्ट्वा स्फोरयित्वा स्फोटयित्वा विकृत्य स्थातुम्। तस्य एवं भवति—अस्ति मम अतिशेष ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्—'अमुदग' जीव.। सन्त्येकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहु.—'मुदग्ग:' जीव। ये ते एवमाहु:, मिथ्या ते एवमाहु—पञ्चम विभङ्गज्ञानम्।

पाचवा विभगज्ञान—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभंगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभंगज्ञान से देवो को बाह्य और आभ्यतर पुद्गलो को ग्रहण किए बिना विक्रिया करते हुए देखता है। वे देव पुद्गलो का स्पर्श कर, उनमें हलचल पैदा कर, उनका स्फोट कर, पृथक्-पृथक् काल व देश में कभी एक रूप व कभी विविध रूपों की विक्रिया करते है यह देख उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है—"मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हू कि जीव पुद्गलों से बना हुआ नही ही है।

कुछ श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव पुद्गलो से बना हुआ है। जो ऐसा कहते है, वे मिथ्या कहते है—यह पाचवा विभगज्ञान है।

अहावरे छट्ठे विभंगणाणे—जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा °विभंगणाणे° समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं देवामेव पासति बाहिरब्भंतरए पोग्गले परियाइत्ता वा अपरियाइत्ता वा पुढेगत्तं णाणत्तं फुसित्ता °फुरित्ता फुट्टित्ता° विकुव्वित्ता णं चिट्ठित्तए। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—रूवी जीवे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—अरूवी जीवे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—छट्ठे विभंगणाणे।

अथापरं षष्ठ विभङ्गज्ञानम्—यदा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञान समुत्पद्यते। स तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन देवानेव पश्यति बाह्याभ्यन्तरान् पुद्गलान् पर्यादाय वा अपर्यादाय वा पृथगेकत्व नानात्वं स्पृष्ट्वा स्फोरयित्वा स्फोटयित्वा विकृत्य स्थातुम्। तस्य एव भवति—अस्ति मम अतिशेष ज्ञानदर्शन समुत्पन्नम्—रूपी जीव:। सन्त्येकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहु—अरूपी जीव:। ये ते एवमाहु:, मिथ्या ते एवमाहु:—षष्ठ विभङ्गज्ञानम्।

छठा विभगज्ञान—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभगज्ञान से देवो को बाह्य और आभ्यंतर पुद्गलो को ग्रहण करके और ग्रहण किए बिना विक्रिया करते हुए देखता है। वे देव पुद्गलो का स्पर्श कर, उनमें हलचल [illegible] कर, उनका स्फोट कर, पृथक्-पृथक् काल व देश में कभी एक रूप व कभी विविध रूपो की विक्रिया करते है यह देख उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है—"मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मै देख रहा हू कि जीव रूपी ही है। कुछ श्रमण-माहन ऐसा कहते है कि जीव अरूपी है जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते है—यह छठा विभगज्ञान है।

अहावरे सत्तमे विभंगणाणे—जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जति। से णं तेणं विभगणाणेणं समुप्पण्णेणं

अथापर सप्तम विभङ्गज्ञानम्—यदा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञानं समुत्पद्यते। स तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति सूक्ष्मेण वायु-

सातवा विभंगज्ञान—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभंगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभंगज्ञान से

पासई सुहुमेणं वायुकाएणं फुडं पोग्गलकायं एयंतं वेयंतं चलंतं खुब्भंतं फंदंतं घट्टंतं उदीरेंतं तं तं भावं परिणमंतं। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—सव्वमिणं जीवा। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—जीवा चेव अजीवा चेव। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु। तस्स णं इमे चत्तारि जीवणिकाया णो सम्ममुवगता भवंति, तं जहा—
पुढविकाइया, आउकाइया,
तेउकाइया, वाउकाइया।
इच्चेतेहिं चउहिं जीवणिकाएहिं मिच्छादंडं पवत्तेइ—
सत्तमे विभंगणाणे।

कायेन स्फुटं पुद्गलकायं एजमानं व्येजमानं चलन्तं क्षुभ्यन्तं स्पन्दमानं घट्टयन्तं उदीरयन्तं तं तं भावं परिणमन्तम्। तस्य एवं भवति—अस्ति मम अतिशेषं ज्ञान-दर्शनं समुत्पन्नम्—सर्वे एते जीवाः। सन्त्येकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहुः—जीवाश्चैव अजीवाश्चैव। ये ते एवमाहुः, मिथ्या ते एवमाहुः। तस्य इमे चत्वारः जीवनिकायाः नो सम्यग् उपगता भवन्ति, तद्यथा—
पृथिवीकायिकाः, अप्कायिकाः,
तेजस्कायिकाः, वायुकायिकाः।
इति एतैः चतुर्भिः जीवनिकायैः मिथ्यादण्डं प्रवर्तयति—
सप्तमं विभङ्गज्ञानम्।

सूक्ष्म वायु [मन्द वायु] के स्पर्श से पुद्गल-काय [पुद्गल राशि] को कम्पित होते हुए, विशेष रूप से कम्पित होते हुए, चलित होते हुए, क्षुब्ध होते हुए, स्पंदित होते हुए, दूसरे पदार्थों का स्पर्श करते हुए, दूसरे पदार्थों को प्रेरित करते हुए, विविध प्रकार के पर्यायों में परिणत होते हुए देखता है। तब उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है—"मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हूं कि—ये सभी जीव ही जीव है।
कुछ श्रमण-माहन ऐसा कहते है कि जीव भी है और अजीव भी हैं। जो ऐसा कहते है, वे मिथ्या कहते है।
उस विभगज्ञानी को पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय—इन चार जीव-निकायों का सम्यग् ज्ञान नहीं होता। वह इन चार जीवनिकायों पर मिथ्यादण्ड का प्रयोग करता है—यह सातवा विभंग-ज्ञान है।

जोणिसंगह-पदं

३. सत्तविधे जोणिसंगहे पण्णत्ते, तं जहा—
अंडजा, पोतजा, जराउजा, रसजा, संसेयगा, संमुच्छिमा, उब्भिगा।

योनिसंग्रह-पदम्

सप्तविधः योनिसंग्रहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
अण्डजाः, पोतजाः, जरायुजाः, रसजाः, संस्वेदजाः, सम्मूर्च्छिमाः, उद्भिज्जाः।

योनिसंग्रह-पद

३. योनि-संग्रह के सात प्रकार है—
१. अण्डज, २. पोतज, ३. जरायुज, ४. रसज, ५. संस्वेदज, ६. सम्मूर्च्छिम, ७. उद्भिज्ज।

गति-आगति-पदं

४. अंडगा सत्तगतिया सत्तागतिया पण्णत्ता, तं जहा—
अंडगे अंडगेसु उववज्जमाणे अंडगेहिंतो वा, पोतजेहिंतो वा, °जराउजेहिंतो वा, रसजेहिंतो वा, संसेयगेहिंतो वा, सम्मूच्छिमेहिंतो वा°, उब्भिगेहिंतो वा उववज्जेज्जा।
सच्चेव णं से अंडए अंडगत्तं विप्पजहमाणे अंडगत्ताए वा,

गति-आगति-पदम्

अण्डजाः सप्तगतिकाः सप्तागतिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अण्डजः अण्डजेषु उपपद्यमानः अण्डजेभ्यो वा पोतजेभ्यो वा जरायुजेभ्यो वा रसजेभ्यो वा संस्वेदजेभ्यो वा सम्मूर्च्छिमेभ्यो वा उद्भिज्जेभ्यो वा उपपद्येत।
स चैव असौ अण्डजः अण्डजत्वं विप्रजहत् अण्डजतया वा पोतजतया

गति-आगति-पद

४. अण्डज जीवों की सात गति और सात आगति होती है—
जो जीव अण्डजयोनि में उत्पन्न होता है वह अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, सम्मूर्च्छिम और उद्भिज्ज—इन सातों योनियों से आता है।
जो जीव अण्डजयोनि को छोड़कर दूसरी योनि में जाता है वह अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, सम्मूर्च्छिम

पोतगत्ताए वा, °जराउजत्ताए वा, रसजत्ताए वा, संसेयगत्ताए वा, संमुच्छिमत्ताए वा°, उब्भिगत्ताए वा गच्छेज्जा ।

वा जरायुजतया वा रसजतया वा संस्वेदजतया वा सम्मूर्च्छिमतया वा उद्भिज्जतया वा गच्छेत् ।

और उद्भिज्ज—इन सातों योनियों में जाता है ।

५. पोतगा सत्तगतिया सत्तागतिया एवं चेव । सत्तण्हवि गतिरागती भाणियव्वा जाव उब्भियत्ति ।

पोतजा सप्तगतिकाः सप्तागतिकाः एव चैव । सप्तानामपि गतिरागतिः भणितव्या यावत् उद्भिज्ज इति ।

५. पोतज जीवों की सात गति और सात आगति होती है ।
इस प्रकार सभी योनि-संग्रहों की सात-सात गति और सात-सात आगति होती है ।

संगहट्ठाण-पदं

संग्रहस्थान-पदम्

संग्रहस्थान-पद

६. आयरिय-उवज्झायस्स णं गणंसि सत्त संगहठाणा पण्णत्ता, तं जहा—

आचार्योपाध्यायस्य गणे सप्त संग्रह-स्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

६. आचार्य तथा उपाध्याय के लिए गण मे सात संग्रह के हेतु हैं—

१. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि आणं वा धारणं वा सम्मं पउंजित्ता भवति ।

१ आचार्योपाध्याय गणे आज्ञां वा धारणा वा सम्यक् प्रयोक्ता भवति ।

१. आचार्य तथा उपाध्याय गण मे आज्ञा व धारणा का सम्यक् प्रयोग करे ।

२. °आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि आधारातिणियाए किति-कम्मं सम्मं पउंजित्ता भवति ।

२ आचार्योपाध्यायः गणे यथारात्नि-कतया कृतिकर्म सम्यक् प्रयोक्ता भवति ।

२ आचार्य तथा उपाध्याय गण मे यथा-रात्निक -बड़े-छोटे के क्रम से कृतिकर्म [वन्दना] का सम्यक् प्रयोग करें ।

३. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि जे सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले-काले सम्ममणुप्पवाइत्ता भवति ।

३. आचार्योपाध्यायः गणे यानि सूत्र-पर्यवजातानि धारयति तानि काले-काले सम्यग् अनुप्रवाचयिता भवति ।

३ आचार्य तथा उपाध्याय जिन-जिन सूत्र-पर्यवजातों को धारण करते हैं, उनकी उचित समय पर गण को सम्यक् वाचना दे ।

४. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि गिलाणसेहवेयावच्चं सम्ममब्भुट्ठित्ता भवति ।°

४ आचार्योपाध्यायः गणे ग्लानशैक्ष-वैयावृत्य सम्यग् अभ्युत्थाता भवति ।

४ आचार्य तथा उपाध्याय गण के ग्लान तथा नवदीक्षित साधुओं की यथोचित सेवा के लिए सतत जागरूक रहें ।

५ आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि आपुच्छियचारी यावि भवति, णो अणापुच्छियचारी ।।

५ आचार्योपाध्यायः गणे आपृच्छ्यचारी चापि भवति, नो अनापृच्छ्यचारी ।

५ आचार्य तथा उपाध्याय गण को पूछ-कर अन्य प्रदेश में विहार करें, उसे पूछे बिना विहार न करें ।

६. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि अणुप्पण्णाइं उवगरणाइं सम्मं उप्पाइत्ता भवति ।

६ आचार्योपाध्यायः गणे अनुत्पन्नानि उपकरणानि सम्यग् उत्पादयिता भवति ।

६ आचार्य तथा उपाध्याय गण के लिए अनुपलब्ध उपकरणों को यथाविधि उप-लब्ध करें ।

७. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि पुव्वुप्पण्णाइं उवकरणाइं सम्मं सारक्खेत्ता संगोवित्ता भवति, णो असम्मं सारक्खेत्ता संगोवित्ता भवति।

७. आचार्योपाध्यायः गणे पूर्वोत्पन्नानि उपकरणानि सम्यक् संरक्षयिता संगोपयिता भवति, नो असम्यक् संरक्षयिता सगोपयिता भवति।

७. आचार्य तथा उपाध्याय गण मे प्राप्त उपकरणों का सम्यक् प्रकार से संरक्षण तथा सगोपन करें, विधि का अतिक्रमण कर संरक्षण और सगोपन न करें।

असंगहट्ठाण-पदं

असंग्रहस्थान-पदम्

असंग्रहस्थान-पद

७. आयरिय-उवज्झायस्स णं गणंसि सत्त असंगहठाणा पण्णत्ता, तं जहा—

आचार्योपाध्यायस्य गणे सप्त असग्रहस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

७. आचार्य तथा उपाध्याय के लिए गण मे सात असग्रह के हेतु है—

१. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि आणं वा धारणं वा णो सम्मं पउंजित्ता भवति।

१. आचार्योपाध्यायः गणे आज्ञां वा धारणां वा नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति।

१ आचार्य तथा उपाध्याय गण में आज्ञा व धारणा का सम्यक् प्रयोग न करें।

२. °आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि आधारातिणियाए कितिकम्मं णो सम्मं पउंजित्ता भवति।

२. आचार्योपाध्यायः गणे यथारात्निकतया कृतिकर्म नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति।

२. आचार्य तथा उपाध्याय गण मे यथारात्निक कृतिकर्म का सम्यक् प्रयोग न करें।

३. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि जे सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले-काले णो सम्ममणुप्पवाइत्ता भवति।

३. आचार्योपाध्यायः गणे यानि सूत्रपर्यवजातनि धारयति तानि काले-काले नो सम्यक्अनुप्रवाचयिता भवति।

३. आचार्य तथा उपाध्याय जिन-जिन सूत्र-पर्यवजातों को धारण करते है, उनकी उचित समय पर गण को सम्यक् वाचना न दें।

४. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि गिलाणसेहवेयावच्चं णो सम्ममब्भुट्ठित्ता भवति।

४. आचार्योपाध्यायः गणे ग्लानशैक्षवैयावृत्यं नो सम्यग्अभ्युत्थाता भवति।

४. आचार्य तथा उपाध्याय ग्लान तथा नवदीक्षित साधुओं की यथोचित सेवा के लिए सतत जागरूक न रहें।

५ आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि अणापुच्छियचारी यावि हवइ, णो आपुच्छियचारी।

५. आचार्योपाध्यायः गणे अनापृच्छ्यचारी चापि भवति, नो आपृच्छ्यचारी।

५. आचार्य तथा उपाध्याय गण को पूछे बिना अन्य प्रदेशों मे विहार करें, उसे पूछकर विहार न करें।

६. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि अणुप्पण्णाइं उवगरणाइं णो सम्मं उप्पाइत्ता भवति।

६. आचार्योपाध्याय. गणे अनुत्पन्नानि उपकरणानि नो सम्यक् उत्पादयिता भवति।

६. आचार्य तथा उपाध्याय गण के लिए अनुपलब्ध उपकरणों को यथाविधि उपलब्ध न करें।

७. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि° पच्चुप्पण्णाणं उवगरणाणं णो सम्मं सारक्खेत्ता संगोवेत्ता भवति।

७. आचार्योपाध्यायः गणे प्रत्युत्पन्नानां उपकरणानां नो सम्यक् संरक्षयिता संगोपयिता भवति।

७. आचार्य तथा उपाध्याय गण में प्राप्त उपकरणों का सम्यक् प्रकार से संरक्षण और संगोपन न करें।

पडिमा-पदं

प्रतिमा-पदम्

प्रतिमा-पद

८. सत्त पिंडेसणाओ पण्णत्ताओ।

सप्त पिण्डैषणाः प्रज्ञप्ताः।

८. पिण्ड-एषणाएं सात हैं।[1]

९. सत्त पाणेसणाओ पण्णत्ताओ।
सप्त पानैषणाः प्रज्ञप्ताः।
९. पान-एषणाएं सात है।[1]

१०. सत्त उग्गहपडिमाओ पण्णत्ताओ।
सप्त अवग्रह-प्रतिमाः प्रज्ञप्ताः।
१०. अवग्रह-प्रतिमाएं सात हैं।[1]

आयारचूला-पदं
आचारचूला-पदम्
आचारचूला-पद

११. सत्तसत्तिक्कया पण्णत्ता।
सप्तसप्तैककाः प्रज्ञप्ताः।
११. सात सप्तैकक[1] हैं—आचारचूला की दूसरी चूलिका के उद्देशक-रहित अध्ययन सात है।

१२. सत्त महज्झयणा पण्णत्ता।
सप्त महाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि।
१२. महान् अध्ययन सात है।[1]

पडिमा-पदं
प्रतिमा-पदम्
प्रतिमा-पद

१३. सत्तसत्तमिया णं भिक्खुपडिमा एकूणपण्णत्ताए राइंदिएहिं ऐगेण य छण्णउएणं भिक्खासतेणं अहासुत्तं •अहाअत्थं अहातच्चं अहामग्गं अहाकप्पं सम्मं काएणं फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया° आराहिया यावि भवति।
सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा एकोनपञ्चाशद्भिः रात्रिदिवैः एकेन च षण्णवत्या भिक्षाशतेन यथासूत्रं यथार्थ यथातत्त्व यथामार्ग यथाकल्प सम्यक् कायेन स्पृष्टा पालिता शोधिता तीरिता कीर्तिता आराधिता चापि भवति।
१३. सप्त-सप्तमिका(७ × ७)भिक्षुप्रतिमा ४९ दिन-रात तथा १९६ भिक्षादत्तियों[1] द्वारा यथासूत्र, यथाअर्थ, यथातत्त्व, यथामार्ग, यथाकल्प तथा सम्यक् प्रकार से काया से आचीर्ण, पालित, शोधित, पूरित कीर्तित और आराधित की जाती है।

अहेलोगट्ठिति-पदं
अधोलोकस्थिति-पदम्
अधोलोकस्थिति-पद

१४. अहेलोगे णं सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ।
अधोलोके सप्त पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः।
१४. अधोलोक में सात पृथ्वियां है।

१५. सत्त घणोदधीओ पण्णत्ताओ।
सप्त घनोदधयः प्रज्ञप्ताः।
१५. सात घनोदधि [ठोस समुद्र] हैं।

१६. सत्त घणवाता पण्णत्ता।
सप्त घनवाताः प्रज्ञप्ताः।
१६. सात घनवात [ठोस वायु] हैं।

१७. सत्त तणुवाता पण्णत्ता।
सप्त तनुवाताः प्रज्ञप्ताः।
१७. सात तनुवात [पतली वायु] है।

१८. सत्त ओवासंतरा पण्णत्ता।
सप्त अवकाशान्तराः प्रज्ञप्ताः।
१८. सात अवकाशान्तर [तनुवात, घनवात आदि के मध्यवर्ती आकाश] है।

१९. एतेसु णं सत्तसु ओवासंतरेसु सत्त तणुवाया पइट्ठिया।
एतेषु सप्तसु अवकाशान्तरेषु सप्त तनुवाताः प्रतिष्ठिताः।
१९. इन सात अवकाशान्तरों में सात तनुवात प्रतिष्ठित है।

२०. एतेसु णं सत्तसु तणुवातेसु सत्त घणवाता पइट्ठिया।
एतेषु सप्तसु तनुवातेसु सप्त घनवाताः प्रतिष्ठिताः।
२०. इन सात तनुवातों पर सात घनवात प्रतिष्ठित है।

२१. एतेसु णं सत्तसु घणवातेसु सत्त घणोदधी पतिट्ठिता।
एतेषु सप्तसु घनवातेषु सप्त घनोदधयः प्रतिष्ठिताः।
२१. इन सात घनवातों पर सात घनोदधि प्रतिष्ठित है।

२२. एतेसु णं सत्तसु घणोदधीसु पिंडलगपिहुल-सठाण-सठियाओ सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पढमा जाव सत्तमा।
एतेषु सप्तसु घनोदधिषु पिण्डलकपृथुल-सस्थान-संस्थिताः सप्त पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रथमा यावत् सप्तमा।
२२. इन सात घनोदधियों पर फूल की टोकरी की भांति चौड़े संस्थान वाली[1] सात पृथ्वियां प्रज्ञप्त हैं—प्रथमा यावत् सप्तमी।

२३. एतासि णं सत्तण्हं पुढवीणं सत्त णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
घम्मा, वंसा, सेला, अंजणा, रिट्ठा, मघा, माघवती।

एतासां सप्तानां पृथिवीनां सप्त नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
घर्मा, वंशा, शैला, अञ्जना, रिष्टा, मघा, माघवती।

२३. इन सात पृथ्वियों के नाम सात हैं—
१. घर्मा, २. वंशा, ३. शैला, ४. अंजना, ५. रिष्टा, ६. मघा, ७. माघवती।

२४. एतासि णं सत्तण्हं पुढवीणं सत्त गोत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
रयणप्पभा, सक्करप्पभा, वालुअप्पभा, पंकप्पभा, धूमप्पभा, तमा, तमतमा।

एतासां सप्तानां पृथिवीनां सप्त गोत्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमा, तमस्तमा।

२४. इन सात पृथ्वियों के गोत्र सात हैं—
१. रत्नप्रभा, २. शर्कराप्रभा, ३. बालुकाप्रभा, ४. पंकप्रभा, ५. धूमप्रभा, ६. तमा, ७. तमस्तमा।

बायरवाउकाइय-पदं

बादरवायुकायिक-पदम्

बादरवायुकायिक-पद

२५. सत्तविहा बायरवाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—
पाईणवाते, पडीणवाते, दाहिणवाते, उदीणवाते, उड्ढवाते, अहेवाते, विदिसिवाते।

सप्तविधा बादरवायुकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
प्राचीनवातः, प्रतिचीनवातः, दक्षिणवातः, उदीचीनवातः, ऊर्ध्ववातः, अधोवातः, विदिग्वातः।

२५. बादरवायुकायिक जीव सात प्रकार के होते हैं—
१ पूर्व की वायु, २ पश्चिम की वायु, ३. दक्षिण की वायु, ४. उत्तर की वायु, ५. ऊर्ध्वदिशा की वायु, ६. अधोदिशा की वायु, ७. विदिशा की वायु।

संठाण-पदं

संस्थान-पदम्

संस्थान-पद

२६ सत्त संठाणा पण्णत्ता, तं जहा—
दीहे, रहस्से, वट्टे, तंसे, चउरंसे, पिहुले, परिमंडले।

सप्त संस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दीर्घ, ह्रस्वं, वृत्तं, त्र्यस्रं, चतुरस्रं, पृथुलं, परिमण्डलम्।

२६. संस्थान सात हैं—
१. दीर्घ, २. ह्रस्व, ३ वृत्त—गेंद की भांति गोल, ४. त्रिकोण, ५. चतुष्कोण, ६. पृथुल—विस्तीर्ण, ७. परिमण्डल—वलय की भांति गोल।

भयट्ठाण-पदं

भयस्थान-पदम्

भयस्थान-पद

२७. सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—
इहलोगभए, परलोगभए, आदाणभए, अकम्हाभए, वेयणभए, मरणभए, असिलोगभए।

सप्त भयस्थानानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
इहलोकभयं, परलोकभयं, आदानभय, अकस्माद्भयं, वेदनाभयं, मरणभयं, अश्लोकभयम्।

२७. भय के स्थान सात हैं—
१. इहलोक भय—सजातीय से भय, जैसे—मनुष्य को मनुष्य से होने वाला भय।
२. परलोक भय—विजातीय से भय, जैसे—मनुष्य को तिर्यञ्च आदि से होने वाला भय।
३. आदान भय—धन आदि पदार्थों के अपहरण करने वाले से होने वाला भय।

४. अकस्मात् भय—किसी बाह्य निमित्त के बिना ही उत्पन्न होने वाला भय, अपने ही विकल्पों से होने वाला भय।

५. वेदना भय—पीड़ा आदि से उत्पन्न भय।

६. मरण भय—मृत्यु का भय।

७. अश्लोक भय—अकीर्ति का भय।

छउमत्थ-पदं

२८. सत्तहिं ठाणेहिं छउमत्थं जाणेज्जा, तं जहा—
पाणे अइवाएत्ता भवति।
मुसं वइत्ता भवति।
अदिण्णं आदित्ता भवति।
सद्दफरिसरसरूवगंधे आसादेत्ता भवति।
पूयासक्कारं अणुवूहेत्ता भवति।
इमं सावज्जंति पण्णवेत्ता पडिसेवेत्ता भवति।
णो जहावादी तहाकारी यावि भवति।

छद्मस्थ-पदम्

सप्तभिः स्थानैः छद्मस्थं जानीयात्, तद्यथा—
प्राणान् अतिपातयिता भवति।
मृषा वदिता भवति।
अदत्तमादाता भवति।
शब्दस्पर्शरसरूपगन्धानास्वादयिता भवति।
पूजासत्कार अनुबृंहयिता भवति।
इद सावद्यमिति प्रज्ञाप्य प्रतिषेवयिता भवति।
नो यथावादी तथाकारी चापि भवति।

छद्मस्थ-पद

२८. सात हेतुओं से छद्मस्थ जाना जाता है—
१. जो प्राणों का अतिपात करता है।
२. जो मृषा बोलता है।
३. जो अदत्त का ग्रहण करता है।
४. जो शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध का आस्वादक होता है।
५. जो पूजा और सत्कार का अनुमोदन करता है।
६. जो 'यह सावद्य—सपापहै'—ऐसा कहकर भी उसका आसेवन करता है।
७. जो जैसा कहता है वैसा नही करता।

केवलि-पदं

२९. सत्तहिं ठाणेहिं केवलीं जाणेज्जा, तं जहा—
णो पाणे अइवाइत्ता भवति।
°णो मुसं वइत्ता भवति।
णो अदिण्णं आदित्ता भवति।
णो सद्दफरिसरसरूवगंधे आसादेत्ता भवति।
णो पूयासक्कारं अणुवूहेत्ता भवति।
इमं सावज्जंति पण्णवेत्ता णो पडिसेवेत्ता भवति।°
जहावादी तहाकारी यावि भवति।

केवली-पदम्

सप्तभि स्थानैः केवलिन जानीयात्, तद्यथा—
नो प्राणान् अतिपातयिता भवति।
नो मृषा वदिता भवति।
नो अदत्तमादाता भवति।
नो शब्दस्पर्शरसरूपगन्धानास्वादयिता भवति।
नो पूजासत्कार अनुबृंहयिता भवति।
इद सावद्यमिति प्रज्ञाप्य नो प्रतिषेवयिता भवति।
यथावादी तथाकारी चापि भवति।

केवली-पद

२९. सात हेतुओं से केवली जाना जाता है—
१. जो प्राणो का अतिपात नही करता।
२. जो मृषा नही बोलता।
३. जो अदत्त का ग्रहण नहीं करता।
४. जो शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध का आस्वादक नही होता।
५. जो पूजा और सत्कार का अनुमोदन नही करता।
६. जो 'यह सावद्य—सपाप है'—ऐसा कहकर उसका आसेवन नहीं करता।
७. जो जैसा कहता है वैसा करता है।

गोत्त-पदं

३०. सत्त मूलगोत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
कासवा गोतमा वच्छा कोच्छा
कोसिआ मंडवा वासिट्ठा।

३१. जे कासवा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—
ते कासवा ते संडिल्ला ते गोला ते बाला ते मुंजइणो ते पव्वतिणो ते वरिसकण्हा।

३२. जे गोतमा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—
ते गोतमा ते गग्गा ते भारद्दा ते अंगिरसा ते सक्कराभा ते भक्खराभा ते उदत्ताभा।

३३. जे वच्छा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—
ते वच्छा ते अग्गेया ते मित्तेया ते सेलयया ते अट्ठिसेणा ते वीयकण्हा।

३४. जे कोच्छा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—
ते कोच्छा ते मोग्गलायणा ते पिंगलायणा ते कोडिणो [ण्णा ?] ते मंडलिणो ते हारिता ते सोमया।

३५. जे कोसिया ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—
ते कोसिआ ते कच्चायणा ते सालंकायणा ते गोलिकायणा ते पक्खिकायणा ते अग्गिच्चा ते लोहिच्चा।

गोत्र-पदम्

सप्त मूलगोत्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
काश्यपाः गोतमाः वत्साः कुत्साः
कौशिकाः माण्डवाः वाशिष्ठाः।

ये काश्यपाः ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ते काश्यपाः ते शाण्डिल्याः ते गोलाः ते बालाः ते मौञ्जकिनः ते पर्वतिनः ते वर्षकृष्णाः।

ये गोतमाः ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ते गोतमाः ते गार्ग्याः ते भारद्वाजाः ते आङ्गिरसाः ते शर्कराभाः ते भास्कराभाः ते उदात्ताभाः।

ये वत्साः ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
ते वत्साः ते आग्नेयाः ते मैत्रेयाः ते शाल्मलिनः ते शैलककाः ते अस्थिषेणाः ते वीतकृष्णाः।

ये कुत्सा, ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ते कौत्साः मौद्गलायनाः ते पि[पैं]ङ्गलायनाः ते कौडिन्याः ते मण्डलिनः ते हारिताः ते सौम्याः।

ये कौशिकाः ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ते कौशिकाः ते कात्यायनाः ते सालंकायनाः ते गोलिकायनाः ते पाक्षिकायणाः ते आग्नेयाः ते लौहित्याः।

गोत्र-पद

३०. मूल गोत्र[१] [एक पुरुष से उत्पन्न वंश-परम्परा] सात हैं—
१. काश्यप, २. गौतम, ३. वत्स, ४. कुत्स, ५. कौशिक, ६. माण्डव (व्य) ७. वाशिष्ठ।

३१. जो काश्यप हैं, वे सात प्रकार के है—
१. काश्यप, २. शाण्डिल्य, ३. गोल, ४. बाल, ५. मौञ्जकी, ६. पर्वती, ७. वर्षकृष्ण।

३२. जो गौतम हैं, वे सात प्रकार के है —
१. गौतम, २. गार्ग्य, ३. भारद्वाज, ४. आंगिरस, ५. शर्कराभ, ६. भास्कराभ, ७. उदत्ताभ।

३३. जो वत्स है, वे सात प्रकार के है—
१. वत्स, २. आग्नेय, ३. मैत्रेय, ४. शाल्मली, ५. शैलक (शैलनक) ६. अस्थिषेण, ७. वीतकृष्ण।

३४. जो कौत्स है, वे सात प्रकार के हैं—
१. कौत्स, २. मौद्गलायन, ३. पिंगलायन, ४. कौडिन्य, ५. मण्डली, ६. हारित, ७. सौम्य।

३५. जो कौशिक हैं, वे सात प्रकार के हैं—
१. कौशिक, २. कात्यायन, ३. सालंकायन, ४. गोलिकायन, ५. पाक्षिकायन, ६. आग्नेय, ७. लौहित्य।

३६. जे मंडवा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—
ते मंडवा ते आरिट्ठा ते संमुता ते तेला ते एलावच्चा ते कंडिल्ला ते क्षारायणा।

ये माण्डवाः ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ते माण्डवाः ते आरिष्टाः ते सम्मुताः ते तैलाः ते ऐलापत्याः ते काण्डिल्याः ते क्षारायणाः।

३६. जो माण्डव हैं, वे सात प्रकार के हैं—
१. माण्डव, २. अरिष्ट, ३. संमुत, ४. तैल, ५ ऐलापत्य, ६. काण्डिल्य, ७. क्षारायण।

३७. जे वासिट्ठा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—
ते वासिट्ठा ते उंजायणा ते जारुकण्हा ते वग्घावच्चा ते कोंडिण्णा ते सण्णी ते पारासरा।

ये वाशिष्ठाः ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ते वाशिष्ठाः ते उञ्जायनाः ते जरत्कृष्णाः ते व्याघ्रापत्याः ते कौण्डिन्याः ते संज्ञिनः ते पाराशराः।

३७. जो वाशिष्ठ है, वे सात प्रकार के है—
१ वाशिष्ठ, २ उञ्जायन, ३. जरत्कृष्ण, ४ व्याघ्रापत्य, ५. कौण्डिन्य, ६. संज्ञी, ७ पाराशर।

णय-पदं

३८. सत्त मूलणया पण्णत्ता, तं जहा— णेगमे, संगहे, ववहारे, उज्जुसुते, सद्दे, समभिरूढे, एवंभूते।

नय-पदम्

सप्त मूलनयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
नैगमः, सग्रहः, व्यवहारः, ऋजुसूत्र, शब्दः, समभिरूढः, एवभूतः।

नय-पद

३८. मूलनय सात है—
१. नैगम—भेद और अभेदपरक दृष्टिकोण।
२. सग्रह—केवल अभेदपरक दृष्टिकोण।
३ व्यवहार—केवल भेदपरक दृष्टिकोण।
४ ऋजुसूत्र—वर्तमान क्षण को ग्रहण करने वाला दृष्टिकोण।
५. शब्द—रूढ़ि से होने वाली शब्द की प्रवृत्ति को बताने वाला दृष्टिकोण।
६ समभिरूढ—व्युत्पत्ति से होने वाली शब्द की प्रवृत्ति को बताने वाला दृष्टिकोण।
७ एवभूत—वर्तमान प्रवृत्ति के अनुसार वाचक के प्रयोग को मान्य करने वाला दृष्टिकोण।

सरमंडल-पदं

३९. सत्त सरा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. सज्जे रिसभे गंधारे,
मज्झिमे पंचमे सरे।
धेवते चेव णेसादे,
सरा सत्त वियाहिता॥

स्वरमण्डल-पदम्

सप्त स्वराः प्रज्ञप्ताः,तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. षड्जः ऋषभः गान्धारः,
मध्यमः पञ्चमः स्वरः।
धैवतः चैव निषादः,
स्वराः सप्त व्याहृताः॥

स्वरमण्डल-पद

३९. स्वर[१०] सात है—
१. षड्ज, २. ऋषभ, ३. गाधार, ४. मध्यम, ५. पंचम, ६. धैवत, ७. निषाद।

४०. एएसि णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—

एतेषां सप्तानां स्वराणां सप्त स्वरस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

४०. इन सात स्वरों के सात स्वर-स्थान[११] हैं—

१. सज्जं तु अग्गजिब्भाए,
उरेण रिसभं सरं।
कंठुग्गतेणं गंधारं,
मज्झजिब्भाए मज्झिमं ॥
२. णासाए पंचमं बूया,
दंतोट्ठेण य धेवतं।
मुद्धाणेण य णेसादं,
सरट्ठाणा वियाहिता ॥

१. षड्जं त्वग्रजिह्वया,
उरसा ऋषभं स्वरम्।
कण्ठोद्गतेन गान्धारं,
मध्यजिह्वया मध्यमम् ॥
२. नासया पञ्चमं ब्रूयात्,
दन्तौष्ठेन च धैवतम्।
मूर्ध्ना च निषाद,
स्वरस्थानानि व्याहृतानि ॥

१. षड्ज का स्थान जिह्वा का अग्र भाग।
२. ऋषभ का वक्ष।
३. गांधार कण्ठ।
४. मध्यम का जिह्वा का मध्य भाग।
५. पंचम का नासा।
६. धैवत का दांत और होठ का संयोग।
७ निषाद का मूर्धा (सिर)।

४१. सत्त सरा जीवणिस्सिता पण्णत्ता, तं जहा—
१. सज्जं रवति मयूरो,
कुक्कुडो रिसभं सरं।
हंसो णदति गंधारं,
मज्झिमं तु गवेलगा ॥
२. अह कुसुमसंभवे काले,
कोइला पंचमं सरं।
छट्ठं च सारसा कोंचा,
णेसायं सत्तमं गजो ॥

सप्त स्वराः जीवनिःश्रिताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
१ षड्ज रौति मयूरः,
कुक्कुटः ऋषभं स्वरम्।
हंसो नदति गान्धार,
मध्यम तु गवेलकाः ॥
२. अथ कुसुमसभवे काले,
कोकिलाः पञ्चमं स्वरम्।
षष्ठं च सारसाः क्रौञ्चाः,
निषाद सप्तम गजः ॥

४१. जीवनिःश्रित स्वर सात है[11]—
१. मयूर षड्ज स्वर मे बोलता है।
२. कुक्कुट ऋषभ स्वर मे बोलता है।
३. हस गांधार स्वर मे बोलता है।
४. गवेलक[12] मध्यम स्वर मे बोलता है।
५. वसन्त मे कोयल पचम स्वर[13] में बोलता है।
६. क्रौच और सारस धैवत स्वर में बोलते है।
७ हाथी निषाद स्वर मे बोलता है।

४२. सत्त सरा अजीवणिस्सिता पण्णत्ता, तं जहा—
१. सज्जं रवति मुइंगो,
गोमुही रिसभं सरं।
संखो णदति गंधारं,
मज्झिमं पुण झल्लरी ॥
२ चउचलणपतिट्ठाणा,
गोहिया पंचमं सरं।
आडंबरो धेवतियं,
महाभेरी य सत्तमं ॥

सप्त स्वराः अजीवनिःश्रिताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
१. षड्जं रौति मृदङ्गः,
गोमुखी ऋषभ स्वरम्।
शङ्खो नदति गान्धारं,
मध्यमं पुनः झल्लरी ॥
२. चतुश्चरणप्रतिष्ठाना,
गोधिका पञ्चमं स्वरम्।
आडम्बरो धैवतिकं,
महाभेरी च सप्तमम् ॥

४२. अजीवनिःश्रित स्वर सात हैं—
१. मृदङ्ग से षड्ज स्वर निकलता है।
२. गोमुखी—नरसिंघा[14] नामक बाजे से ऋषभ स्वर निकलता है।
३. शख से गाधार स्वर निकलता है।
४ झल्लरी—झांझ से मध्यम स्वर निकलता है।
५. चार चरणों पर प्रतिष्ठित गोधिका से पचम स्वर निकलता है।
६. ढोल से धैवत स्वर निकलता है।
७. महाभेरी से निषाद स्वर निकलता है।

४३. एतेसि णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरलक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—
१. सज्जेण लभति वित्तिं,
कतं च ण विणस्सति।

एतेषां सप्तानां स्वराणां सप्त स्वर-लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१. षड्जेन लभते वृत्तिं,
कृतं च न विनश्यति।

४३. इन सातों स्वरो के स्वर-लक्षण सात हैं—
१. षड्ज स्वर वाले व्यक्ति आजीविका पाते है। उनका प्रयत्न निष्फल नही

गावो मित्ता य पुत्ता य,
नारीणं चेव वल्लभो ।।
२. रिसभेण उ एसज्जं,
सेणावच्चं धणाणि य ।
वत्थगंधमलंकारं,
इत्थिओ सयणाणि य ।।
३. गंधारे गीतजुत्तिण्णा,
वज्जवित्ती कलाहिया ।
भवंति कइणो पण्णा,
जे अण्णे सत्थपारगा ।।
४. मज्झिमसरसंपण्णा,
भवंति सुहजीविणो ।
खायती पियती देती,
मज्झिम-सरमस्सितो ।।
५. पंचमसरसंपण्णा,
भवंति पुढवीपती ।
सूरा संगहकत्तारो,
अणेगगणणायगा ।
६ धेवतसरसंपण्णा,
भवंति कलहप्पिया ।
साउणिया वग्गुरिया,
सोयरिया मच्छबंधा य ।।
७. चंडाला मुट्ठिया मेया,
जे अण्णे पावकम्मिणो ।
गोघातगा य जे चोरा,
णेसायं सरमस्सिता ।।

गावो मित्राणि च पुत्राश्च,
नारीणां चैव वल्लभः ।।
२. ऋषभेण तु ऐश्वर्यं,
सैनापत्य धनानि च ।
वस्त्रगधालकारं,
स्त्रियः शयनानि च ।।
३. गान्धारे गीतयुक्तिज्ञाः,
वाद्यवृत्तयः कलाधिकाः ।
भवन्ति कवयः प्राज्ञाः,
ये अन्ये शास्त्रपारगाः ।।
४. मध्यमस्वरसम्पन्नाः,
भवन्ति सुख-जीविनः ।
खादन्ति पिबन्ति ददति,
मध्यमस्वरमाश्रिताः ।।
५. पञ्चमस्वरसम्पनाः,
भवन्ति पृथिवीपतयः ।
शूराः संग्रहकर्तारः,
अनेकगणनायकाः ।।
६ धैवतस्वरसम्पन्नाः,
भवन्ति कलहप्रिया ।
शाकुनिकाः वागुरिकाः,
शौकरिका मत्स्यबन्धाश्च ।।
७. चाण्डालाः मौष्टिका मेदाः,
ये अन्ये पापकर्मिणः ।
गोघातकाश्च ये चौराः,
निषाद स्वरमाश्रिताः ।।

होता। उनके गाएं, मित्र और पुत्र होते हैं। वे स्त्रियों को प्रिय होते हैं।

२. ऋषभ स्वर वाले व्यक्ति को ऐश्वर्य, सेनापतित्व, धन, वस्त्र, गंध, आभूषण, स्त्री, शयन और आसन प्राप्त होते हैं।

३. गाधार स्वर वाले व्यक्ति गाने मे कुशल, श्रेष्ठ जीविका वाले, कला मे कुशल, कवि, प्राज्ञ और विभिन्न शास्त्रों के पारगामी होते है।

४. मध्यम स्वर वाले व्यक्ति सुख से जीते है, खाते-पीते है और दान देते है।

५. पंचम स्वर वाले व्यक्ति राजा, शूर, सग्रहकर्ता और अनेक गणो के नायक होते है।

६. धैवत स्वर वाले व्यक्ति कलहप्रिय, पक्षियो को मारने वाले तथा हिरणों, सूअरो और मछलियो को मारने वाले होते है।

७. निपाद स्वर वाले व्यक्ति चाण्डाल—फासी देने वाले, मुट्ठीबाज (Boxers), विभिन्न पाप-कर्म करने वाले, गो-घातक और चोर होते है।

४४. एतेसि णं सत्तण्हं सराणं तओ गामा पण्णत्ता, तं जहा—
सज्जगामे मज्झिमगामे गंधारगामे।

एतेषा सप्ताना स्वराणा त्रयः ग्रामाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
षड्जग्राम. मध्यमग्राम. गान्धारग्राम.

४४. इन सात स्वरों के तीन ग्राम है—
१. षड्जग्राम, २. मध्यमग्राम, ३. गाधारग्राम।

४५. सज्जगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. मंगी कोरव्वीया,
हरी य रयणी य सारकंता य ।
छट्ठी य सारसी णाम,
सुद्धसज्जा य सत्तमा ।।

षड्जग्रामस्य सप्त मूर्च्छना प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
१. मङ्गी कौरव्या,
हरित् च रजनी च सारकान्ता च ।
षष्ठी च सारसी नाम्नी,
शुद्धषड्जा च सप्तमी ।।

४५. षड्जग्राम की मूर्च्छनाएं[१] सात है—
१. मगी, २. कौरवीया, ३. हरित्, ४. रजनी, ५. सारकान्ता, ६. सारसी, ७ शुद्धषड्जा।

४६. मज्झिमगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. उत्तरमंदा रयणी,
उत्तरा उत्तरायता।
अस्सोकंता य सोवीरा,
अभिरू हवति सत्तमा ॥

मध्यमग्रामस्य सप्त मूर्च्छनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
१. उत्तरमन्द्रा रजनी,
उत्तरा उत्तरायता।
अश्वक्रान्ता च सौवीरा,
अभिरु (द्गता) भवति सप्तमी ॥

४६. मध्यमग्राम की मूर्च्छनाएं[१०] सात हैं—
१. उत्तरमन्द्रा, २. रजनी, ३. उत्तरा,
४. उत्तरायता, ५. अश्वक्रान्ता,
६. सौवीरा, ७. अभिरुद्गता।

४७. गंधारगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. णंदी य खुड्डिमा पूरिमा,
य चउत्थी य सुद्धगंधारा।
उत्तरगंधारावि य,
पंचमिया हवती मुच्छा उ ॥
२. सुट्ठुत्तरमायामा,
सा छट्ठी णियमसो उ णायव्वा।
अह उत्तरायता,
कोडिमा य सा सत्तमी मुच्छा ॥

गान्धारग्रामस्य सप्त मूर्च्छनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
१. नंदी च क्षुद्रिका पूरिका,
च चतुर्थी च शुद्धगांधरा।
उत्तरगांधारापि च,
पंचमिका भवती मूर्च्छा तु ॥
२. सुष्ठूत्तरायामा,
सा षष्ठी नियमतस्तु ज्ञातव्या।
अथ उत्तरायता,
कोटिमा च सा सप्तमी मूर्च्छा ॥

४७. गांधारग्राम की मूर्च्छनाएं[११] सात हैं—
१. नंदी, २. क्षुद्रिका, ३. पूरका,
४. शुद्धगांधारा, ५. उत्तरगांधारा,
६. सुष्ठुतर आयामा, ७. उत्तरायता कोटिमा।

४८. १. सत्त सरा कतो संभवंति ?
गीतस्स का भवति जोणी ?
कतिसमया उस्साया ?
कति वा गीतस्स आगारा ?
२. सत्त सरा णाभीतो,
भवंति गीतं च रुण्णजोणीयं।
पदसमया ऊसासा,
तिण्णि य गीयस्स आगारा ॥
३. आइमिउ आरभंता,
समुव्वहंता य मज्झगारंमि।
अवसाणे य झवेंता,
तिण्णि य गेयस्स आगारा ॥
४. छद्दोसे अट्ठगुणे,
तिण्णि य वित्ताइं दो य भणितीओ।
जो णाहिति सो गाहिइ,
सुसिक्खिओ रंगमज्झम्मि ॥
५. भीतं दुतं रहस्सं,
गायंतो मा य गाहि उत्तालं।

१. सप्त स्वराः कुतः सभवन्ति ? गीतस्य का भवति योनिः ?
कतिसमयाः उच्छ्वासाः ?
कति वा गीतस्याकाराः ?
२. सप्त स्वराः नाभितो,
भवन्ति गीतं च रुदितयोनिकम्।
पदसमयाः उच्छ्वासाः,
त्रयश्च गीतस्याकाराः ॥
३. आदिमृदु आरभमाणाः,
समुद्वहन्तश्च मध्यकारे।
अवसाने च क्षपयन्तः,
त्रयश्च गेयस्याकाराः ॥
४. षड्दोषाः अष्टगुणाः,
त्रीणि च वृत्तानि द्वे च भणिती।
यः ज्ञास्यति स गास्यति,
सुशिक्षितः रंगमध्ये ॥
५. भीतं द्रुतं ह्रस्वं,
गायन् मा च गासीः उत्तालम्।

४८. सात स्वर किनसे उत्पन्न होते है ? गीत[१०] की योनि—जाति क्या है ? उसका उच्छ्वास-काल [परिमाण-काल] कितना होता है? और उसके आकार कितने होते हैं?
सातों स्वर नाभि से उत्पन्न होते हैं। रुदन गेय की योनि है। जितने समय में किसी छन्द का एक चरण गाया जाता है, उतना उसका उच्छ्वास-काल होता है और उसके आकार तीन होते है—आदि मे मृदु, मध्य मे तीव्र और अन्त में मंद।
गीत के छह दोष, आठ गुण, तीन वृत्त और दो भणितिया होती हैं। जो इन्हें जानता है, वह सुशिक्षित व्यक्ति ही इन्हे रंगमञ्च पर गाता है।
गीत के छह दोष[११]—
१. भीत—भयभीत होते हुए गाना।
२. द्रुत—शीघ्रता से गाना।
३. ह्रस्व—शब्दों को लघु बनाकर गाना।
४. उत्ताल—ताल से आगे बढ़कर या ताल के अनुसार न गाना।
५. काक स्वर—कौए की भांति कर्णकटु स्वर से गाना।
६. अनुनास—नाक से गाना।
गीत के आठ गुण[१२]—
१. पूर्ण—स्वर के आरोह-अवरोह आदि परिपूर्ण होना।

काकस्सरमणुणासं,
च होंति गेयस्स छद्दोसा ॥
६. पुण्णं रत्तं च अलंकियं,
च वत्तं तहा अविघुट्ठं ।
मधुरं समं सुललियं,
अट्ठ गुणा होंति गेयस्स ॥
७. उर-कंठ-सिर-विसुद्धं,
च गिज्जते मउय-रिभिअ-पदबद्धं ।
समतालपदुक्खेवं,
सत्तस्सरसीहरं गेयं ॥
८. णिद्दोसं सारवंतं च,
हेउजुत्त मलंकियं ।
उवणीतं सोवयारं च,
मितं मधुर मेव य ॥
९. सममद्धसमं चेव,
सव्वत्थ विसमं च जं ।
तिण्णि वित्तप्पयाराइं,
चउत्थं णोपलब्भती ॥
१० सक्कता पागता चेव,
दोण्णि य भणिति आहिया ।
सरमंडलंमि गिज्जंते,
पसत्था इसिभासिता ॥
११. केसी गायति मधुरं ?
केसि गायति खरं च रुक्खं च ?
केसी गायति चउरं ?
केसि विलंबं ? दुतं केसी ?
विस्सरं पुण केरिसी ?
१२. सामा गायइ मधुरं,
काली गायइ खरं च रुक्खं च ।
गोरी गायति चउरं,
काण विलंबं, दुतं अंधा ॥
विस्सरं पुण पिंगला ।
१३. तंतिसमं तालसमं,
पावसमं लयसमं गहसमं च ।

काकस्वरं अनुनासं,
च भवन्ति गेयस्य षड्दोषा ॥
६. पूर्णं रक्त च अलङ्कृत,
च व्यक्तं तथा अविघुष्टम् ।
मधुरं समं सुललित,
अष्टगुणाः भवन्ति गेयस्य ॥
७ उरः-कण्ठ-शिरो-विशुद्ध,
च गीयते मृदुक-रिभित-पदबद्धम् ।'
समतालपदोत्क्षेप,
सप्तस्वरसीभर गेयम् ॥
८ निर्दोषं सारवन्त च,
हेतुयुक्त मलङ्कृतम् ।
उपनीत सोपचारं च,
मितं मधुरमेव च ।
९. सममर्धसम चैव,
सर्वत्र विषम च यत् ।
त्रयो वृत्तप्रकारा ,
चतुर्थो नोपलभ्यते ॥
१०. सस्कृता प्राकृता चैव,
द्वे च भणिती आहृते ।
स्वरमण्डले गीयमाने,
प्रशस्ते ऋषिभाषिते ॥
११ कीदृशी गायति मधुर ?
कीदृशी गायति खर च रूक्षञ्च ?
कीदृशी गायति चतुरं ?
कीदृशी विलम्ब ? द्रुत कीदृशी ?
विस्वर पुन. कीदृशी ?
१२. श्यामा गायति मधुर,
काली गायति खरञ्च रूक्षञ्च ।
गौरी गायति चतुर,
काणा विलम्ब, द्रुत अन्धा ॥
विस्वर पुनः पिङ्गला ।
१३. तन्त्रीसम तालसम,
पादसमं लयसमं ग्रहसम च ।

२. रक्त—गाए जाने वाले राग से परिष्कृत होना ।
३ अलकृत—विभिन्न स्वरों से सुशोभित होना ।
४ व्यक्त —स्पष्ट स्वर वाला होना ।
५ अविघुष्ट—नियत या नियमित स्वरयुक्त होना ।
६ मधुर—मधुर स्वरयुक्त होना ।
७ सम[२१]—ताल, वीणा आदि का अनुगमन करना ।
८. सुकुमार —ललित, कोमल-लययुक्त होना ।
गीत के ये आठ गुण और है—
१. उरोविशुद्ध—जो स्वर वक्ष में विशाल होता है ।
२. कण्ठविशुद्ध—जो स्वर कण्ठ मे नही फटना ।
३ शिरोविशुद्ध—जो स्वर सिर से उत्पन्न होकर भी नासिका से मिश्रित नही होता ।
४ मृदु—जो राग कोमल स्वर से गाया जाता है ।
५. रिभित—घोलना—बहुल आलाप के कारण खेल-सा करते हुए स्वर ।
६. पदबद्ध[२४]— गेय पदों में निबद्ध रचना ।
७. समताल पदोत्क्षेप —जिसमें ताल, झाझ आदि का शब्द और नर्तक का पादनिक्षेप— ये सब सम हो—एक दूसरे से मिलते हो ।
८ सप्तस्वरसीभर —जिसमें सातो स्वर तन्त्री आदि के सम हों ।
गेयपदों के आठ गुण इस प्रकार हैं —
१. निर्दोष —बत्तीस दोष रहित होना ।
२ सारवत्—अर्थयुक्त होना ।
३ हेतुयुक्त— हेतुयुक्त होना ।
४ अलकृत—काव्य के अलकारों से युक्त होना ।
५. उपनीत—उपसहार युक्त होना ।
६. सोपचार —कोमल, अविरुद्ध और अलज्जनीय का प्रतिपादन करना अथवा व्यग या हसी युक्त होना ।
७. मित— पद और उसके अक्षरों से परिमित होना ।
८. मधुर—शब्द, अर्थ और प्रतिपादन की दृष्टि से प्रिय होना ।
वृत्त—छन्द[२५] तीन प्रकार का होता है—
१. सम—जिसमें चरण और अक्षर सम हों—चार चरण हों और उनमे लघु-गुरु अक्षर समान हों ।

नीससिऊससियसमं,	निःश्वसितोच्छ्वसितसमं,
संचारसमा सरा सत्त ॥	संचारसमा स्वराः सप्त ॥
१४. सत्त सरा तओ गामा,	१४. सप्त स्वराः त्रयः ग्रामाः,
मुच्छणा एक्कविसती ।	मूर्च्छना एकविंशतिः ।
ताणा एगूणपण्णासा,	ताना एकोनपञ्चाशत्,
समत्तं सरमंडलं ॥	समाप्तं स्वरमण्डलम् ॥

२. अर्द्धसम—जिसमे चरण या अक्षरो मे से कोई एक सम हो, या तो चार चरण हों या विषम चरण होने पर भी उनमे लघु-गुरु अक्षर समान हों।

३. सर्वविषम—जिसमें चरण और अक्षर सब विषम हों।

भणितियां—गीत की भाषाएं दो हैं—
१. संस्कृत, २. प्राकृत।
ये दोनों प्रशस्त और ऋषिभाषित है। ये स्वरमण्डल में गाई जाती है।
मधुर गीत कौन गाती है ?
परुष और रूखा गीत कौन गाती है ?
चतुर गीत कौन गाती है ?
विलम्ब गीत कौन गाती है ?
द्रुत—शीघ्र गीत कौन गाती है ?
विस्वर गीत कौन गाती है ?
श्यामा स्त्री मधुर गीत गाती है।
काली स्त्री परुष और रूखा गाती है।
केशी स्त्री चतुर गीत गाती है।
काणी स्त्री विलम्ब गीत गाती है।
अंधी स्त्री द्रुत गीत गाती है।
पिंगला स्त्री विस्वर गीत गाती है।
सप्तस्वर-सीभर की व्याख्या इस प्रकार है—

१. तन्त्रीसम[११]—तन्त्री-स्वरों के साथ-साथ गाया जाने वाला गीत।

२. तालसम[१९]—ताल-वादन के साथ-साथ गाया जाने वाला गीत।

३. पादसम[२८]—स्वर के अनुकूल निर्मित गेय पद के अनुसार गाया जाने वाला गीत।

४. लयसम[२९]—वीणा आदि को आहत करने पर जो लय उत्पन्न होती है, उसके अनुसार गाया जाने वाला गीत।

५. ग्रहसम[३०]—वीणा आदि के द्वारा जो स्वर पकड़े, उसी के अनुसार गाया जाने वाला गीत।

६. निःश्वसितोच्छ्वसितसम—सांस लेने और छोड़ने के क्रम का अतिक्रमण न करते हुए गाया जाने वाला गीत।

७. संचारसम—सितार आदि के साथ गाया जाने वाला गीत।

इस प्रकार गीत-स्वर तन्त्री आदि से सम्बन्धित होकर सात प्रकार का हो जाता है।

सात स्वर, तीन ग्राम और इक्कीस मूर्च्छनाएं हैं। प्रत्येक स्वर सात तानों[३१] से गाया जाता है, इसलिए उसके ४९ भेद हो जाते हैं। इस प्रकार स्वरमण्डल समाप्त होता है।

कायकिलेस-पदं

४९. सत्तविधे कायकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा—
ठाणातिए, उक्कुडुयासणिए, पडिमठाई, वीरासणिए, णेसज्जिए, दंडायतिए, लगंडसाई।

कायक्लेश-पदम्

सप्तविधः कायक्लेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
स्थानायतिकः, उत्कुटुकासनिकः, प्रतिमास्थायी, वीरासनिकः, नैषद्यिकः, दण्डायतिकः, लगण्डशायी।

कायक्लेश-पद

४९. कायक्लेश[11] के सात प्रकार हैं—
१ स्थानायतिक, २. उत्कुटुकासनिक, ३ प्रतिमास्थायी. ४. वीरासनिक, ५. नैषद्यिक, ६. दण्डायतिक, ७ लगडशायी।

खेत्त-पव्वय-णदी-पदं

५०. जंबुद्दीवे दीवे सत्त वासा पण्णत्ता, तं जहा—
भरहे, एरवते, हेमवते, हेरण्णवते, हरिवासे, रम्मगवासे, महाविदेहे।

५१ जंबुद्दीवे दीवे सत्त वासहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—
चुल्लहिमवंते, महाहिमवंते, णिसढे, णीलवंते, रुप्पी, सिहरी, मंदरे।

५२. जंबुद्दीवे दीवे सत्त महाणदीओ पुरत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—
गंगा, रोहिता, हरी, सीता, णरकंता, सुवण्णकूला, रत्ता।

५३ जंबुद्दीवे दीवे सत्त महाणदीओ पच्चत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—
सिंधू, रोहितंसा, हरिकंता, सीतोदा, णारिकंता, रुप्पकूला, रत्तावती।

५४. धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त वासा पण्णत्ता, तं जहा—
भरहे, °एरवते, हेमवते, हेरण्णवते, हरिवासे, रम्मगवासे,° महाविदेहे।

क्षेत्र-पर्वत-नदी-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे सप्त वर्षाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भरत, ऐरवत, हैमवतं, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, महाविदेह.।

जम्बूद्वीपे द्वीपे सप्त वर्षधरपर्वताः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
क्षुद्रहिमवान्, महाहिमवान्, निषधः, नीलवान्, रुक्मी, शिखरी, मन्दरः।

जम्बू द्वीपे द्वीपे सप्त महानद्य, पूर्वाभिमुखा लवणसमुद्रं समर्पयन्ति, तद्यथा—
गङ्गा, रोहिता, हरित्, शीता, नरकान्ता, स्वर्णकूला, रक्ता।

जम्बूद्वीपे द्वीपे सप्त महानद्य पश्चिमाभिमुखा लवणसमुद्रं समर्पयन्ति, तद्यथा—
सिन्धुः, रोहितांशा, हरिकान्ता, शीतोदा, नारीकान्ता, रूप्यकूला, रक्तवती।

धातकीषण्डद्वीपपौरस्त्यार्धे सप्त वर्षाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भरत, ऐरवतं, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्षं, रम्यकवर्ष, महाविदेहः।

क्षेत्र-पर्वत-नदी-पद

५० जम्बूद्वीप द्वीप में सात वर्ष—क्षेत्र है—
१ भरत, २. ऐरवत, ३. हैमवत, ४ हैरण्यवत, ५ हरिवर्ष, ६. रम्यकवर्ष, ७ महाविदेह।

५१ जम्बूद्वीप द्वीप में सात वर्षधर पर्वत है —
१ क्षुद्रहिमवान्, २. महाहिमवान्, ३ निषध, ४. नीलवान्, ५ रुक्मी, ६ शिखरी, ७. मन्दर।

५२ जम्बूद्वीप द्वीप में सात महानदियां पूर्वाभिमुख होती हुई लवण-समुद्र में समाप्त होती है—
१. गगा, २. रोहिता, ३. हरित्, ४ शीता, ५ नरकान्ता, ६. सुवर्णकूला, ७ रक्ता।

५३ जम्बूद्वीप द्वीप मे सात महानदियां पश्चिमाभिमुख होती हुई लवण-समुद्र मे समाप्त होती है —
१. सिधू, २. रोहितांशा, ३. हरिकांता, ४. शीतोदा, ५. नारीकाता, ६. रुप्यकूला, ७. रक्तवती।

५४. धातकीषण्डद्वीप के पूर्वार्द्ध में सात क्षेत्र हैं—
१. भरत, २. ऐरवत, ३. हैमवत, ४. हैरण्यवत, ५. हरिवर्ष, ६. रम्यकवर्ष, ७. महाविदेह।

५५. धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त वासहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा— चुल्लहिमवंते, °महाहिमवंते, णिसढे, णीलवंते, रुप्पी, सिहरी,° मंदरे।

धातकीषण्डद्वीपपौरस्त्यार्धे सप्त वर्षधर-पर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— क्षुद्रहिमवान्, महाहिमवान्, निषधः, नीलवान्, रुक्मी, शिखरी, मन्दरः।

५५. धातकीषण्डद्वीप के पूर्वार्द्ध में सात वर्षधर पर्वत हैं—
१. क्षुद्रहिमवान्, २. महाहिमवान्, ३. निषध, ४. नीलवान्, ५. रुक्मी, ६. शिखरी, ५. मन्दर।

५६. धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त महाणदीओ पुरत्थाभिमुहीओ कालोयसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा— गंगा, °रोहिता, हरी, सीता, णरकंता, सुवण्णकूला,° रत्ता।

धातकीषण्डद्वीपपौरस्त्यार्धे सप्त महा-नद्यः पूर्वाभिमुखाः कालोदसमुद्र समपर्यन्ति, तद्यथा— गङ्गा, रोहिता, हरित्, शीता, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रक्ता।

५६. धातकीषण्डद्वीप के पूर्वार्द्ध में सात महा-नदिया पूर्वाभिमुख होती हुई कालोद समुद्र मे समाप्त होती है—
१. गंगा, २. रोहिता, ३. हरित्, ४. शीता. ५. नरकाता, ६. सुवर्णकूला, ७. रक्ता।

५७. धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त महाणदीओ पच्चत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा— सिंधु, °रोहितंसा, हरिकंता, सीतोदा, णारिकंता, रुप्पकूला,° रत्तावत्ती।

धातकीषण्डद्वीपे पौरस्त्यार्धे सप्त महानद्यः पश्चिमाभिमुखाः लवणसमुद्रं समर्पयन्ति, तद्यथा— सिन्धुः, रोहितांशा, हरिकान्ता, शीतोदा, नारीकान्ता, रूप्यकूला, रक्तवती।

५७. धातकीषण्डद्वीप के पूर्वार्द्ध में सात महा-नदियां पश्चिमाभिमुख होती हुई कालोद समुद्र मे समाप्त होती है—
१. सिंधू, २. रोहितांशा, ३. हरिकाता, ४. शीतोदा, ५. नारीकांता, ६. रूप्यकूला, ७. रक्तवती।

५८ धायइसंडदीवे, पच्चत्थिमद्धे णं सत्त वासा एवं चेव, णवरं—पुरत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, पच्चत्थाभिमुहीओ कालोदं। सेसं तं चेव।

धातकीषण्डद्वीपे पाश्चात्यार्धे सप्त वर्षाणि एवं चैव, नवरं—पूर्वाभिमुखा लवणसमुद्रं समर्पयन्ति, पश्चिमाभि-मुखाः कालोदम्। शेषं तच्चैव।

५८. धातकीषण्डद्वीप के पश्चिमार्ध मे सात वर्ष, सात वर्षधर पर्वत और सात नदियों के नाम पूर्वार्धवर्ती वर्ष आदि के समान ही हैं। केवल इतना अन्तर आता है कि पूर्वाभिमुखी नदिया लवण समुद्र मे और पश्चिमाभिमुखी नदिया कालोद समुद्र में समाप्त होती है।

५९. पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे णं सत्त वासा तहेव, णवरं—पुरत्थाभि-मुहीओ पुक्खरोदं समुद्दं समप्पेंति, पच्चत्थाभिमुहीओ कालोदं समुद्दं समप्पेंति। सेसं तं चेव।

पुष्करवरद्वीपार्धपौरस्त्यार्धे सप्त वर्षाणि तथैव, नवरम्—पूर्वाभिमुखा पुष्करोदं समुद्रं समर्पयन्ति, पश्चिमाभि-मुखाः कालोदं समुद्रं समर्पयन्ति। शेषं तच्चैव।

५९. अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध मे सात वर्ष, सात वर्षधर पर्वत और सात नदियों के नाम धातकीषण्डद्वीपवर्ती वर्ष आदि के समान ही है। केवल इतना अन्तर आता है कि पूर्वाभिमुखी नदिया पुष्करोद समुद्र मे और पश्चिमाभिमुखी नदियां कालोद समुद्र में समाप्त होती है।

६०. एवं पच्चत्थिमद्धेवि। णवरं— पुरत्थाभिमुहीओ कालोदं समुद्दं समप्पेंति, पच्चत्थाभिमुहीओ पुक्खरोदं समप्पेंति। सव्वत्थ वासा वासहरपव्वता णदीओ य भाणितव्वाणि।

एवं पाश्चात्यार्धेऽपि। नवरम्— पूर्वाभिमुखाः कालोदं समुद्रं समर्पयन्ति, पश्चिमाभिमुखाः पुष्करोदं समर्पयन्ति। सर्वत्र वर्षाणि वर्षधरपर्वताः नद्यः च भणितव्याः।

६०. अर्धपुष्करवरद्वीप के पश्चिमार्ध मे सात वर्ष, सात वर्षधर पर्वत और सात नदियों के नाम धातकीषण्डद्वीपवर्ती वर्ष आदि के समान ही है। केवल इतना अन्तर आता है कि पूर्वाभिमुखी नदियां कालोद समुद्र में और पश्चिमाभिमुख नदिया पुष्करोद समुद्र में समाप्त होती है।

कुलगर-पदं

६१. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तीताए उस्सप्पिणीए सत्त कुलगरा हुत्था, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. मित्तदामे सुदामे य, सुपासे य सयंपभे।
विमलघोसे सुघोसे य, महाघोसे य सत्तमे ॥

६२. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सत्त कुलगरा हुत्था—

१. पढमित्थ विमलवाहण, चक्खुम जसमं चउत्थमभिचंदे।
तत्तो य पसेणइए, मरुदेवे चेव णाभी य।

६३. एएसि णं सत्तण्हं कुलगराणं सत्त भारियाओ हुत्था, तं जहा—

१. चंदजस चंदकंता, सुरूव पडिरूव चक्खुकंता य।
सिरिकंता मरुदेवी, कुलकरइत्थीण णामाइं ॥

६४. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सत्त कुलकरा भविस्संति—

१. मित्तवाहण सुभोमे य, सुप्पभे य सयंपभे।
दत्ते सुहुमे सुबंधू य, आगमिस्सेण होक्खती ॥

६५. विमलवाहणे णं कुलकरे सत्तविधा रुक्खा उवभोगत्ताए हव्वमागच्छिसु, तं जहा—

कुलकर-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे अतीतायां उत्सर्पिण्यां सप्त कुलकराः अभूवन्, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१ मित्रदामा सुदामा च, सुपार्श्वच स्वयप्रभः।
विमलघोषः सुघोषश्च, महाघोषश्च सप्तमः ॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे अस्यां अवसर्पिण्यां सप्त कुलकरा अभूवन्—

१. प्रथमो विमलवाहनः, चक्षुष्मान् यशस्वान् चतुर्थोभिचन्द्रः।
ततः प्रसेनजित्, मरुदेवश्चैव नाभिश्च ॥

एतेषां सप्तानां कुलकराणां सप्त भार्या अभूवन्, तद्यथा—

१. चन्द्रयशाः चन्द्रकान्ता, सुरूपा प्रतिरूपा चक्षुष्कान्ता च।
श्रीकान्ता मरुदेवी, कुलकरस्त्रीणां नामानि ॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे आगमिष्यन्त्यां उत्सर्पिण्यां सप्त कुलकराः भविष्यन्ति—

१. मित्रवाहन सुभौमश्च, सुप्रभश्च स्वयप्रभः।
दत्तः सूक्ष्मः सुबन्धुश्च, आगमिष्यताभविष्यति ॥

विमलवाहने कुलकरे सप्तविधाः रुक्षाः उपभोग्यतायै अर्वाक् आगच्छन्, तद्यथा—

कुलकर-पद

६१. जम्बूद्वीप द्वीप के भरतक्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी मे सात कुलकर हुए थे—

१. मित्रदामा, २. सुदामा, ३. सुपार्श्व, ४. स्वयप्रभ, ५. विमलघोष, ६. सुघोष, ७. महाघोष।

६२. जम्बूद्वीप द्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी मे सात कुलकर[11] हुए थे—

१. विमलवाहन, २ चक्षुष्मान, ३. यशस्वी, ४. अभिचन्द्र, ५. प्रसेनजित्, ६. मरुदेव, ७ नाभि।

६३. इन सात कुलकरों के सात भार्याएं थी —

१. चन्द्रयशा, २. चन्द्रकाता, ३. सुरूपा, ४ प्रतिरूपा, ५. चक्षुष्काता, ६. श्रीकाता, ७. मरुदेवी।

६४. जम्बूद्वीप द्वीप के भरतक्षेत्र मे आगामी उत्सर्पिणी में सात कुलकर होंगे—

१. मित्रवाहन, २. सुभौम, ३. सुप्रभ, ४. स्वयंप्रभ, ५. दत्त, ६. सूक्ष्म, ७. सुबन्धु।

६५. विमलवाहन कुलकर के सात प्रकार के वृक्ष निरन्तर उपभोग में आते थे—

१. मतंगया य भिंगा,
चित्तंगा चेव होंति चित्तरसा।
मणियंगा य अणियणा,
सत्तमगा कप्परुक्खा य॥

१. मदाङ्गकाश्च भृङ्गा,
श्चित्राङ्गाश्चैव भवन्ति चित्ररसाः।
मण्यङ्गाश्च अनग्नाः,
सप्तमकः कल्परुक्षाश्च॥

१. मदाङ्गक, २. भृङ्ग, ३. चित्राङ्ग, ४. चित्ररस, ५. मण्यङ्ग, ६. अनग्नक, ७. कल्पवृक्ष।

६६. सत्तविधा दंडनीति पण्णत्ता, तं जहा—
हक्कारे, मक्कारे, धिक्कारे, परिभासे, मंडलबंधे, चारए, छविच्छेदे।

सप्तविधा दण्डनीतिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
हाकारः, माकारः, धिक्कारः, परिभाषः, मण्डलबन्धः, चारकः, छविच्छेदः।

६६. दण्डनीति[१४] के सात प्रकार हैं—
१. हाकार—हा! तूने यह क्या किया?
२. माकार—आगे ऐसा मत करना।
३. धिक्कार—धिक्कार है तुझे, तूने ऐसा किया?
४. परिभाष—थोड़े समय के लिए नजरबन्द करना, क्रोधपूर्ण शब्दों में 'यहीं बैठ जाओ' का आदेश देना।
५ मण्डलबंध—नियमित क्षेत्र से बाहर न जाने का आदेश देना।
६ चारक—कैद मे डालना।
७. छविच्छेद—हाथ-पैर आदि काटना।

चक्कवट्टिरयण-पदं

चक्रवर्त्तिरत्न-पदम्

चक्रवर्त्तिरत्न-पद

६७. एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंत-चक्कवट्टिस्स सत्त एगिंदियरतणा पण्णत्ता, तं जहा—
चक्करयणे, छत्तरयणे, चम्मरयणे, दंडरयणे, असिरयणे, मणिरयणे, काकणिरयणे।

एकैकस्य राज्ञः चातुरन्तचक्रवर्तिनः सप्त एकेन्द्रियरत्नानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
चक्ररत्नं, छत्ररत्न, चर्मरत्न, दण्डरत्न, असिरत्नं, मणिरत्नं, काकिनीरत्नम्।

६७. प्रत्येक चतुरंत चक्रवर्ती राजा के सात एकेन्द्रिय रत्न होते हैं[१५]—
१. चक्ररत्न, २. छत्ररत्न, ३. चर्मरत्न, ४. दण्डरत्न, ५. असिरत्न, ६. मणिरत्न, ७. काकणीरत्न।

६८. एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंत-चक्कवट्टिस्स सत्त पंचिंदियरतणा पण्णत्ता, तं जहा—
सेणावतिरयणे, गाहावतिरयणे, वड्ढइरयणे, पुरोहितरयणे, इत्थिरयणे, आसरयणे, हत्थिरयणे।

एकैकस्य राज्ञः चातुरन्तचक्रवर्तिनः सप्त पञ्चेन्द्रियरत्नानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
सेनापतिरत्न, गृहपतिरत्नं, वर्धकिरत्नं, पुरोहितरत्नं, स्त्रीरत्नं, अश्वरत्नं, हस्तिरत्नम्।

६८. चतुरन्त चक्रवर्ती राजा के सात पञ्चेन्द्रिय रत्न होते हैं[१६]—
१. सेनापतिरत्न, २. गृहपतिरत्न, ३. वर्द्धकीरत्न, ४. पुरोहितरत्न, ५. स्त्रीरत्न, ६. अश्वरत्न, ७. हस्तिरत्न।

दुस्समा-लक्खण-पदं

दुःषमा-लक्षण-पदम्

दुःषमा-लक्षण-पद

६९. सत्तहिं ठाणेहिं ओगाढं दुस्समं जाणेज्जा, तं जहा—

सप्तभिः स्थानैः अवगाढां दुष्षमां जानीयात्, तद्यथा—

६९. सात स्थानों से दुष्षमाकाल की अवस्थिति जानी जाती है—

अकाले वरिसइ, काले ण वरिसइ,
असाधू पुज्जंति, साधू ण पुज्जंति,
गुरूहिं जणो मिच्छं पडिवण्णो,
मणोदुहता, वइदुहता।

अकाले वर्षति, काले न वर्षति,
असाधवः पूज्यन्ते, साधवो न पूज्यन्ते,
गुरुभिः जनः मिथ्या प्रतिपन्नः,
मनोदुःखता, वाग्दुःखता।

१. अकाल में वर्षा होती है।
२. समय पर वर्षा नहीं होती।
३. असाधुओं की पूजा होती है।
४. साधुओं की पूजा नहीं होती।
५. व्यक्ति गुरुजनों के प्रति मिथ्या—अविनयपूर्ण व्यवहार करता है।
६. मन-सम्बन्धी दुःख होता है।
७. वचन-सम्बन्धी दुःख होता है।

सुसमा-लक्खण-पदं

७०. सत्तहिं ठाणेहिं ओगाढं सुसमं जाणेज्जा, तं जहा—
अकाले ण वरिसइ, काले वरिसइ,
असाधू ण पुज्जंति, साधू पुज्जंति
गुरूहिं जणो सम्मं पडिवण्णो,
मणोसुहता, वइसुहता।

सुषमा-लक्षण-पदम्

सप्तभिः स्थानैः अवगाढां सुषमा जानीयात्, तद्यथा—
अकाले न वर्षति, काले वर्षति,
असाधवो न पूज्यन्ते, साधवः पूज्यन्ते,
गुरुभिः जनः सम्यक् प्रतिपन्नः,
मनःसुखता, वाक्सुखता।

सुषमा-लक्षण-पद

७० सात स्थानों से सुषमाकाल की अवस्थिति जानी जाती है—
१ अकाल में वर्षा नहीं होती।
२ समय पर वर्षा होती है।
३ असाधुओं की पूजा नहीं होती।
४ साधुओं की पूजा होती है।
५ व्यक्ति गुरुजनों के प्रति मिथ्या व्यवहार नहीं करता।
६. मन-सम्बन्धी सुख होता है।
७. वचन-सम्बन्धी सुख होता है।

जीव-पदं

७१. सत्तविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—
णेरइया, तिरिक्खजोणिया,
तिरिक्खजोणिणीओ, मणुस्सा,
मणुस्सीओ, देवा, देवीओ।

जीव-पदम्

सप्तविधाः संसारसमापन्नकाः जीवाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
नैरयिकाः, तिर्यग्योनिकाः,
तिर्यग्योनिक्यः, मनुष्याः,
मानुष्यः, देवाः, देव्यः।

जीव-पद

७१. संसारसमापन्नक जीव सात प्रकार के होते हैं—
१ नैरयिक, २. तिर्यञ्चयोनिक,
३ तिर्यञ्चयोनिकी, ४. मनुष्य,
५. मानुषी, ६. देव, ७. देवी।

आउभेद-पदं

७२. सत्तविधे आउभेदे पण्णत्ते, तं जहा—

आयुर्भेद-पदम्

सप्तविधः आयुर्भेदः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—

आयुर्भेद-पद

७२. आयुष्य-भेद[१९] [अकालमृत्यु] के सात कारण हैं—

संगहणी-गाहा

१. अज्झवसाण-णिमित्ते,
आहारे वेयणा पराघाते।
फासे आणापाणू,
सत्तविधं भिज्जए आउं ॥

संग्रहणी-गाथा

१ अध्यवसान-निमित्ते,
आहारो वेदना पराघातः।
स्पर्शः आनापानौ,
सप्तविधं भिद्यते: आयुः ॥

१. अध्यवसान—राग, स्नेह और भय आदि की तीव्रता।
२. निमित्त—शस्त्रप्रयोग आदि।
३. आहार —आहार की न्यूनाधिकता।
४· वेदना—नयन आदि की तीव्रतम वेदना
५. पराघात—गढ़े आदि में गिरना।
६. स्पर्श —सांप आदि का स्पर्श।
७. आन-अपान—उच्छ्वास-निःश्वास का निरोध।

जीव-पदं

७३. सत्तविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—
पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सतिकाइया, तसकाइया, अकाइया।
अहवा—सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—
कण्हलेसा °णीललेसा काउलेसा तेउलेसा पम्ह लेसा° सुक्कलेसा अलेसा।

जीव-पदम्

सप्तविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पृथिवीकायिकाः, अप्कायिकाः, तेजस्कायिकाः, वायुकायिकाः, वनस्पतिकायिकाः, त्रसकायिकाः, अकायिकाः।
अथवा—सप्तविधः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कृष्णलेश्याः नीललेश्याः कापोतलेश्याः तेजोलेश्याः पद्मलेश्याः शुक्ललेश्याः अलेश्याः।

जीव-पद

७३. सभी जीव सात प्रकार के है—
१. पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक, ५ वनस्पतिकायिक, ६ त्रसकायिक, ७. अकायिक।

अथवा—सभी जीव सात प्रकार के है—
१. कृष्णलेश्या वाले, २. नीललेश्या वाले, ३. कापोतलेश्या वाले, ४. तेजस्लेश्यावाले, ५. पद्मलेश्या वाले, ६. शुक्ललेश्या वाले, ७. अलेश्य।

बंभदत्त-पदं

७४. बंभदत्ते णं राया चाउरंतचक्कवट्टी सत्त धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, सत्त य वाससयाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा अधेसत्तमाए पुढवीए अप्पतिट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववण्णे।

ब्रह्मदत्त-पदम्

ब्रह्मदत्तः राजा चातुरन्तचक्रवर्ती सप्त धनूंषि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, सप्त च वर्ष-शतानि परमायुः पालयित्वा कालमासे कालं कृत्वा अधःसप्तमायां पृथिव्यां अप्रतिष्ठाने नरके नैरयिकत्वेन उपपन्नः।

ब्रह्मदत्त-पद

७४. चतुरत चक्रवर्ती राजा ब्रह्मदत्त की ऊंचाई सात धनुष्य की थी। वे सात सौ वर्षों की उत्कृष्ट आयु का पालन कर, मरणकाल में मरकर, निचली सातवी पृथ्वी के अप्रतिष्ठान नरक में नैरयिक के रूप में उत्पन्न हुए।

मल्ली-पव्वज्जा-पदं

७५. मल्ली णं अरहा अप्पसत्तमे मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, तं जहा—

मल्ली-प्रव्रज्या-पदम्

मल्ली अर्हन् आत्मसप्तमः मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजितः, तद्यथा—

मल्ली-प्रव्रज्या-पद

७५. अर्हत् मल्ली[१८], अपने सहित सात राजाओं के साथ, मुण्डित होकर अगार से अनगार अवस्था मे प्रव्रजित हुए—

मल्ली विदेहरायवरकण्णगा,
पडिबुद्धी इक्खागराया,
चंदच्छाये अंगराया,
रुप्पी कुणालाधिपती,
संखे कासीराया,
अदीणसत्तू कुरुराया,
जितसत्तू पंचालराया।

मल्ली विदेहराजवरकन्यका,
प्रतिबुद्धिः इक्ष्वाकराजः
चन्द्रच्छायः अङ्गराजः,
रुक्मी कुणालाधिपतिः,
शङ्खः काशीराजः,
अदीनशत्रुः कुरुराजः,
जितशत्रुः पञ्चालराजः।

१. विदेह राजा की वरकन्या मल्ली।
२. इक्ष्वाकुराज प्रतिबुद्धि—साकेत निवासी।
३. अंग जनपद का राजा चन्द्रच्छाय—चम्पा निवासी।
४. कुणाल जनपद का राजा रुक्मी—श्रावस्ती निवासी।
५. काशी जनपद का राजा शंख—वाराणसी निवासी।
६. कुरु देश का राजा अदीनशत्रु—हस्तिनापुर निवासी।
७ पञ्चाल जनपद का राजा जितशत्रु—कम्पिल्लपुर निवासी।

दंसण-पदं

७६. सत्तविहे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—
सम्मद्दंसणे, मिच्छद्दंसणे, सम्मामिच्छदंसणे, चक्खुदंसणे, अचक्खुदंसणे, ओहिदंसणे, केवलदंसणे।

दर्शन-पदम्

सप्तविध दर्शनं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
सम्यग्दर्शनं, मिथ्यादर्शनं, सम्यग्मिथ्यादर्शनं, चक्षुर्दर्शनं, अचक्षुर्दर्शनं, अवधिदर्शनं, केवलदर्शनम्।

दर्शन-पद

७६. दर्शन के सात प्रकार हैं—
१. सम्यग्दर्शन, २. मिथ्यादर्शन,
३ सम्यग्मिथ्यादर्शन, ४. चक्षुदर्शन,
५ अचक्षुदर्शन, ६. अवधिदर्शन,
७ केवलदर्शन।

छउमत्थ-केवलि-पदं

७७. छउमत्थ-वीयरागे णं मोहणिज्ज-वज्जाओ सत्त कम्मपयडीओ वेदेति, तं जहा—
णाणावरणिज्जं, दंसणावरणिज्जं, वेयणिज्जं, आउयं, णामं, गोतं, अंतराइयं।

७८. सत्त ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण याणति ण पासति, तं जहा—
धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, जीवं असरीरपडिबद्धं, परमाणु पोग्गलं सद्दं, गंधं।
एयाणि चेव उप्पण्णणाण॰दंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं॰ जाणति पासति, तं जहा—

छद्मस्थ-केवलि-पदम्

छद्मस्थ-वीतरागः मोहनीयवर्जाः सप्त कर्मप्रकृतीः वेदयति, तद्यथा—
ज्ञानावरणीयं, दर्शनावरणीय, वेदनीय, आयुः, नाम, गोत्र, अन्तरायिकम्।

सप्त स्थानानि छद्मस्थः सर्वभावेन न जानाति न पश्यति, तद्यथा—
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीव अशरीरप्रतिबद्धं, परमाणुपुद्गलं, शब्दं, गन्धम्।
एतानि चैव उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अर्हन् जिनः केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति, तद्यथा—

छद्मस्थ-केवलि-पद

७७ छद्मस्थ-वीतराग मोहनीय कर्म को छोड़कर सात कर्म प्रकृत्तियों का वेदन करता है—
१ ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय,
३. वेदनीय, ४. आयुष्य, ५. नाम,
६. गोत्र, ७. अन्तराय।

७८. सात पदार्थों को छद्मस्थ सम्पूर्ण रूप से न जानता है, न देखता है—
१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय,
३. आकाशास्तिकाय, ४. शरीरमुक्तजीव,
५. परमाणुपुद्गल, ६. शब्द, ७. गंध।

विशिष्ट ज्ञान-दर्शन को धारणा करने वाले अर्हत्, जिन, केवली, इन पदार्थों को सम्पूर्ण रूप से जानते-देखते हैं—

धम्मत्थिकायं, °अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, जीवं असरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं, सद्दं,° गंधं।

धर्मास्तिकायं, अधर्मास्तिकायं, आकाशास्तिकायं, जीवं अशरीरप्रतिबद्धं, परमाणुपुद्गलं, शब्दं, गन्धम्।

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. शरीरमुक्तजीव, ५. परमाणुपुद्गल, ६. शब्द, ७. गंध।

महावीर-पदं

७९. समणे भगवं महावीरे वइरोसभणारायसंघयणे समचउरंस-संठाण-संठिते सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था।

महावीर-पदम्

श्रमणः भगवान् महावीरः वज्रर्षभनाराचसंहननः समचतुरस्र-संस्थान-संस्थितः सप्त रत्नीः ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवत्।

महावीर-पद

७९. श्रमण भगवान् महावीर वज्रऋषभनाराच संघयण और समचतुरस्र संस्थान से संस्थित थे। उनकी ऊंचाई सात रत्नि की थी।

विकहा-पदं

८०. सत्त विकहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

इत्थिकहा, भत्तकहा, देसकहा, रायकहा, मिउकालुणिया, दंसणभेयणी, चरित्तभेयणी।

विकथा-पदम्

सप्त विकथाः, प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा, राजकथा, मृदुकारुणिकी, दर्शनभेदिनी, चरित्रभेदिनी।

विकथा-पद

८०. विकथाएं सात हैं—

१. स्त्रीकथा, २. भक्तकथा, ३ देशकथा, ४. राज्यकथा, ५. मृदुकारुणिकी—वियोग के समय करुणरस प्रधान वार्ता। ६. दर्शनभेदिनी—सम्यक्दर्शन का विनाश करने वाली वार्ता। ७. चारित्रभेदिनी—चारित्र का विनाश करने वाली वार्ता।

आयरिय-उवज्झाय-अइसेस-पदं

८१. आयरिय-उवज्झायस्स णं गणंसि सत्त अइसेसा पण्णत्ता, तं जहा—

१. आयरिय-उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स पाए णिगिज्झिय-णिगिज्झिय पप्फोडेमाणे वा पमज्जमाणे वा णातिक्कमति।

२. °आयरिय-उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स उच्चारपासवणं विगिंचमाणे वा विसोधेमाणे वा णातिक्कमति।

३. आयरिय-उवज्झाए पभू इच्छा वेयावडियं करेज्जा, इच्छा णो करेज्जा।

आचार्य-उपाध्याय-अतिशेष-पदम्

आचार्योपाध्यायस्य गणे सप्तातिशेषाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

१. आचार्योपाध्यायः अन्तः उपाश्रयस्य पादौ निगृह्य-निगृह्य प्रस्फोटयन् वा प्रमार्जयन् वा नातिक्रामति।

२. आचार्योपाध्यायः अन्तः उपाश्रयस्य उच्चारप्रश्रवणं विवेचयन् वा विशोधयन् वा नातिक्रामति।

३. आचार्योपाध्यायः प्रभुः इच्छा वैयावृत्त्यं कुर्यात्, इच्छा नो कुर्यात्।

आचार्य-उपाध्याय-अतिशेष-पद

८१. गण में आचार्य और उपाध्याय के सात अतिशेष होते हैं—

१. आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय में पैरों की धूलि को [दूसरों पर न गिरे वैसे] झाड़ते हुए, प्रमार्जित करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते।

२. आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय में उच्चार-प्रस्रवण का व्युत्सर्ग और विशोधन करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते।

३. आचार्य और उपाध्याय की इच्छा पर निर्भर है कि वे किसी साधु की सेवा करें या न करें।

४. आयरिय-उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स एगरातं वा दुरातं वा एगगो वसमाणे णातिक्कमति ।
५. आयरिय-उवज्झाए° बाहिं उवस्सयस्स एगरातं वा दुरातं वा (एगओ ?) वसमाणे णातिक्कमति ।
६. उवकरणातिसेसे ।
७. भत्तपाणातिसेसे ।

४. आचार्योपाध्यायः अन्तः उपाश्रयस्य एकरात्रं वा द्विरात्रं वा एककः वसन् नातिक्रामति ।
५. आचार्योपाध्यायः बहिः उपाश्रयस्य एकरात्रं वा द्विरात्रं वा (एककः ?) वसन् नातिक्रामति ।
६. उपकरणातिशेषः ।
७. भक्तपानातिशेषः ।

४. आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के भीतर एक रात या दो रात तक अकेले रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते ।
५. आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के बाहर एक रात या दो रात तक अकेले रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते ।
६. उपकरण की विशेषता[११]—उज्ज्वल वस्त्र धारण करना ।
७. भक्त-पान की विशेषता—स्थिरबुद्धि के लिए उपयुक्त मृदु-स्निग्ध भोजन करना ।

संजम-असंजम-पदं

८२. सत्तविधे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविकाइयसंजमे,
°आउकाइयसंजमे,
तेउकाइयसंजमे, वाउकाइयसंजमे,
वणस्सइकाइयसंजमे,°
तसकाइयसंजमे,
अजीवकाइयसंजमे ।

संयम-असंयम-पदम्

सप्तविधः संयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पृथिवीकायिकसंयमः,
अप्कायिकसंयमः,
तेजस्कायिकसंयमः, वायुकायिकसंयमः,
वनस्पतिकायिकसंयमः,
त्रसकायिकसंयमः,
अजीवकायिकसंयमः ।

संयम-असंयम-पद

८२. संयम के सात प्रकार हैं[१२]—
१. पृथ्वीकायिक संयम ।
२. अप्कायिक संयम ।
३. तेजस्कायिक संयम ।
४. वायुकायिक संयम ।
५. वनस्पतिकायिक संयम ।
६. त्रसकायिक संयम ।
७. अजीवकायिक संयम—अजीव वस्तुओं के ग्रहण और उपभोग की विरति करना ।

८३. सत्तविधे असंजमे पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविकाइयअसंजमे,
°आउकाइयअसंजमे,
तेउकाइयअसंजमे,
वाउकाइयअसंजमे,
वणस्सइकाइयअसंजमे,°
तसकाइयअसंजमे,
अजीवकाइयअसंजमे ।

सप्तविधः असंयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पृथिवीकायिकासंयमः,
अप्कायिकासंयमः,
तेजस्कायिकासंयमः,
वायुकायिकासंयमः,
वनस्पतिकायिकासंयमः,
त्रसकायिकासंयमः,
अजीवकायिकासंयमः ।

८३. असंयम के सात प्रकार हैं[१३]—
१. पृथ्वीकायिक असंयम ।
२. अप्कायिक असंयम ।
३. तेजस्कायिक असंयम ।
४. वायुकायिक असंयम ।
५. वनस्पतिकायिक असंयम ।
६. त्रसकायिक असंयम ।
७. अजीवकायिक असंयम ।

आरंभ-पदं

८४. सत्तविहे आरंभे पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविकाइयआरंभे,
°आउकाइयआरंभे,
तेउकाइयआरंभे,
वाउकाइयआरंभे,
वणस्सइकाइयआरंभे,
तसकाइयआरंभे°
अजीवकाइयआरंभे ।

८५. °सत्तविहे अणारंभे पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविकाइयअणारंभे° ।

८६. सत्तविहे सारंभे पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविकाइयसारंभे° ।

८७ सत्तविहे असारंभे पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविकाइयअसारंभे° ।

८८. सत्तविहे समारंभे पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविकाइयसमारंभे° ।

८९. सत्तविहे असमारंभे पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविकाइयअसमारंभे° ।°

आरम्भ-पदम्

सप्तविधः आरम्भः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पृथिवीकायिकारम्भः,
अप्कायिकारम्भः,
तेजस्कायिकारम्भः,
वायुकायिकारम्भः,
वनस्पतिकायिकारम्भः,
त्रसकायिकारम्भः,
अजीवकायारम्भः ।

सप्तविधः अनारम्भः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पृथिवीकायिकानारम्भ.° ।

सप्तविधः संरम्भः प्रज्ञप्तः,तद्यथा—
पृथिवीकायिकसंरम्भः° ।

सप्तविधः असंरम्भः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पृथिवीकायिकासंरम्भः° ।

सप्तविधः समारम्भः प्रज्ञप्त , तद्यथा—
पृथिवीकायिकसमारम्भः° ।

सप्तविधः असमारम्भः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पृथिवीकायिकासमारम्भः° ।

आरम्भ-पद

८४. आरम्भ[11] के सात प्रकार हैं—
१. पृथ्वीकायिक आरम्भ ।
२. अप्कायिक आरम्भ ।
३. तेजस्कायिक आरम्भ ।
४. वायुकायिक आरम्भ ।
५. वनस्पतिकायिक आरम्भ ।
६. त्रसकायिक आरम्भ ।
७. अजीवकायिक आरम्भ ।

८५. अनारम्भ के सात प्रकार है—
पृथ्वीकायिक अनारम्भ० ।

८६. संरम्भ[11] के सात प्रकार है—
पृथ्वीकायिक संरम्भ० ।

८७. असंरम्भ के सात प्रकार है—
पृथ्वीकायिक असरम्भ० ।

८८. समारम्भ[11] के सात प्रकार है—
पृथ्वीकायिक समारम्भ० ।

८९. असमारम्भ के सात प्रकार है—
पृथ्वीकायिक असमारम्भ० ।

जोणि-ठिइ-पदं

९०. अध भंते ! अदसि-कुसुम्भ-कोद्दव-कंगु-रालग-वरट्ट-कोदूसग-सण-सरिसव-मूलगबीयाणं—एतेसि णं धण्णाणं कोट्ठाउत्ताणं पल्लाउत्ताणं °मंचाउत्ताणं मालाउत्ताणं ओलित्ताणं लित्ताणं लंछियाणं मुद्दियाणं° पिहियाणं केवइय कालं जोणी संचिट्ठति ?

योनि-स्थिति-पदम्

अथ भन्ते ! अतसी-कुसुम्भ-कोद्रव-कंगू-रालक-वरट-कोदूषक-सन-सर्षप-मूलक-बीजानाम्—एतेषां धान्याना कोष्ठा-गुप्तानां पल्यागुप्तानां मञ्चागुप्तानां मालागुप्तानां अवलिप्तानां लिप्तानां लाञ्छिताना मुद्रितानां पिहितानां कियत् कालं योनिः संतिष्ठते ?

योनि-स्थिति-पद

९०. भगवन् ! अलसी, कुसुम्भ, कोदव, कंगु, राल, गोलचना, कोदव की एक जाति, सन, सर्षप, मूलकबीज—ये धान्य जो कोष्ठ-गुप्त, पल्यगुप्त, मञ्चगुप्त, मालागुप्त, अवलिप्त, लिप्त, लांछित, मुद्रित, पिहित है, उनकी योनि कितने काल तक रहती है ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त संवच्छराइं। तेण परं जोणी पमिलायति *तेण परं जोणी पविद्धंसति, तेण परं जोणी विद्धंसति, तेण परं बीए अबीए भवति, तेण परं॰ जोणी वोच्छेदे पण्णत्ते।

गौतम ! जघन्येन अन्तर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण सप्त संवत्सराणि। तेन परं योनि प्रम्लायति, तेन परं योनि प्रविध्वंसते, तेन परं योनि विध्वसते, तेन पर बीजं अबीजं भवति, तेन परं योनि व्यवच्छेदः प्रज्ञप्तः।

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः सात वर्ष तक। उसके बाद योनि म्लान हो जाती है, प्रविध्वस्त हो जाती है, विध्वस्त हो जाती है, बीज अबीज हो जाता है, योनि का व्युच्छेद हो जाता है"।

ठिति-पदं

९१. बायरआउकाइयाणं उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता।

९२. तच्चाए णं वालुयप्पभाए पुढवीए उक्कोसेणं णेरइयाणं सत्त सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

९३. चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए जहण्णेणं णेरइयाणं सत्त सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

स्थिति-पदम्

बादरअप्कायिकानां उत्कर्षेण सप्त वर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ताः।

तृतीयायाः बालुकाप्रभायाः पृथिव्याः उत्कर्षेण नैरयिकाणा सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

चतुर्थ्याः पङ्कप्रभायाः पृथिव्याः जघन्येन नैरयिकाणा सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

स्थिति-पद

९१. बादर अप्कायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति सात हजार वर्ष की है।

९२. तीसरी बालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की है।

९३. चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य स्थिति सात सागरोपम की है।

अग्गमहिसी-पदं

९४. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

९५. ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

९६. ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

अग्रमहिषी-पदम्

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य वरुणस्य महाराजस्य सप्त अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य सप्त अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य यमस्य महाराजस्य सप्त अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः।

अग्रमहिषी-पद

९४. देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वरुण के सात अग्रमहिषियां हैं।

९५. देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल महाराज सोम के सात अग्रमहिषियां हैं।

९६. देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल महाराज यम के सात अग्रमहिषियां हैं।

देव-पदं

९७. ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अब्भितरपरिसाए देवाणं सत्त पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देव-पदम्

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य आभ्यन्तरपरिषदः देवाना सप्त पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

देव-पद

९७. देवेन्द्र देवराज ईशान के आभ्यन्तर परिषद् वाले देवों की स्थिति सात पल्योपम की है।

९८. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अग्गमहिसीणं देवीणं सत्त पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अग्रमहिषीणां देवीनां सप्त पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९८. देवेन्द्र देवराज शक्र के अग्रमहिषी देवियों की स्थिति सात पल्योपम की है।

९९. सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

सौधर्मे कल्पे परिगृहीतानां देवीनां उत्कर्षेण सप्त पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९९. सौधर्मकल्प में परिगृहीत देवियों की उत्कृष्ट स्थिति सात पल्योपम की है।

१००. सारस्सयमाइच्चाणं (देवाणं ?) सत्त देवा सत्तदेवसता पण्णत्ता।

सारस्वतादित्यानां (देवानां ?) सप्त देवाः सप्तदेवशतानि प्रज्ञप्तानि।

१००. सारस्वत और आदित्य जाति के देव स्वामीरूप में सात हैं और उनके सात सौ देवों का परिवार है।

१०१. गद्दतोयतुसियाणं देवाणं सत्त देवा सत्त देवसहस्सा पण्णत्ता।

गर्दतोयतुषितानां देवानां सप्त देवाः सप्त देवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

१०१. गर्दतोय और तुषित जाति के देव स्वामीरूप में सात हैं और उनके सात हजार देवों का परिवार है"।

१०२. सणंकुमारे कप्पे उक्कोसेणं देवाणं सत्त सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

सनत्कुमारे कल्पे उत्कर्षेण देवानां सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०२. सनत्कुमारकल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की है।

१०३. माहिंदे कप्पे उक्कोसेणं देवाणं सातिरेगाइं सत्त सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

माहेन्द्रे कल्पे उत्कर्षेण देवानां सातिरेकाणि सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०३. माहेन्द्रकल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम की है।

१०४. बंभलोगे कप्पे जहण्णेणं देवाणं सत्त सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

ब्रह्मलोके कल्पे जघन्येन देवानां सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ताः।

१०४. ब्रह्मलोककल्प के देवों की जघन्य स्थिति सात सागरोपम की है।

१०५. बंभलोय-लंतएसु णं कप्पेसु विमाणा सत्त जोयणसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

ब्रह्मलोक-लान्तकयोः कल्पयोः विमानानि सप्त योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

१०५. ब्रह्मलोक और लान्तक कल्पों में विमानों की ऊंचाई सात सौ योजन की है।

१०६. भवणवासीणं देवाणं भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेणं सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

भवनवासिनां देवानां भवधारणीयानि शरीरकाणि उत्कर्षेण सप्त रत्नीः ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

१०६. भवनवासी देवों के भवधारणीय शरीर की उत्कृष्ट ऊंचाई सात रत्नि की है।

१०७. °वाणमंतराणं देवाणं भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेणं सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

वानमन्तराणां देवानां भवधारणीयानि शरीरकाणि उत्कर्षेण सप्त रत्नीः ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

१०७. वानमंतर देवों के भवधारणीय शरीर की उत्कृष्ट ऊंचाई सात रत्नि की है।

१०८. जोइसियाणं देवाणं भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेणं सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।°

ज्योतिष्काणा देवानां भवधारणीयानि शरीरकाणि उत्कर्षेण सप्त रत्नीः ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

१०८. ज्योतिष्क देवों के भवधारणीय शरीर की उत्कृष्ट ऊंचाई सात रत्नि की है।

१०९. सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेणं सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोः देवानां भवधारणीयानि शरीरकाणि उत्कर्षेण सप्त रत्नीः ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

१०९. सौधर्म और ईशानकल्प के देवों के भवधारणीय शरीर की उत्कृष्ट ऊंचाई सात रत्नि की है।

णंदीसरवर-पदं

११०. णंदिस्सरवरस्स णं दीवस्स अंतो सत्त दीवा पण्णत्ता, तं जहा—
जंबुद्दीवे, धायइसंडे, पोक्खरवरे, वरुणवरे, खीरवरे, घयवरे, खोयवरे।

१११. णंदीसरवरस्स णं दीवस्स अंतो सत्त समुद्दा पण्णत्ता, तं जहा—
लवणे, कालोदे, पुक्खरोदे, वरुणोदे, खीरोदे, घओदे, खोओदे।

नन्दीश्वरवर-पदम्

नन्दीश्वरवरस्य द्वीपस्य अन्तः सप्त द्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
जम्बूद्वीपः, धातकीषण्डः, पुष्करवरः, वरुणवरः क्षीरवरः, घृतवरः, क्षोदवरः।

नन्दीश्वरवरस्य द्वीपस्य अन्तः सप्त समुद्रा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
लवण, कालोद, पुष्करोद., वरुणोद., क्षीरोद., घृतोद., क्षोदोदः।

नन्दीश्वरवर-पद

११०. नन्दीश्वर वरद्वीप के अन्तराल मे सात द्वीप हैं।
१. जम्बूद्वीप, २. धातकीषण्ड, ३. पुष्करवर, ४. वरुणवर, ५. क्षीरवर, ६ घृतवर, ७. क्षोदवर।

१११ नन्दीश्वरवरद्वीप के अन्तराल मे सात समुद्र हैं—
१. लवण, २. कालोद, ३. पुष्करोद, ४ वरुणोद, ५. क्षीरोद, ६ घृतोद, ७. क्षोदोद।

सेढि-पदं

११२. सत्त सेढीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
उज्जुआयता, एगतोवंका, दुहतोवंका, एगतोखहा, दुहतोखहा, चक्कवाला, अद्धचक्कवाला।

श्रेणि-पदम्

सप्त श्रेण्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ऋज्वायता, एकतोवक्रा, द्वितोवक्रा, एकतःखहा, द्वितःखहा, चक्रवाला, अर्धचक्रवाला।

श्रेणि-पद

११२. श्रेणियां[४]—आकाश की प्रदेशपंक्तियां सात हैं—
१. ऋजुआयता—जो सीधी और लंबी हो।
२. एकतोवक्रा—जो एक दिशा मे वक्र हो।
३. द्वितोवक्रा—जो दोनों ओर वक्र हो।
४. एकतःखहा—जो एक दिशा मे अंकुश की तरह मुड़ी हुई हो; जिसके एक ओर त्रसनाड़ी का आकाश हो।
५. द्वितःखहा—जो दोनों ओर अंकुश की तरह मुड़ी हुई हो; जिसके दोनों ओर त्रसनाड़ी के बाहर का आकाश हो।
६. चक्रवाला—जो वलय की आकृतिवाली हो।
७. अर्द्धचक्रवाला—जो अर्द्धवलय की आकृतिवाली हो।

अणिय-अणियाहिवइ-पदं

११३. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाधिपती पण्णत्ता, तं जहा—

अनीक-अनीकाधिपति-पदम्

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य सप्त अनीकानि, सप्त अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

अनीक-अनीकाधिपति-पद

११३. असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के सात सेनाएं और सात सेनापति हैं—

पायत्ताणिए, पीढाणिए, कुंजराणिए, महिसाणिए, रहाणिए, णट्टाणिए, गंधव्वाणिए।

*दुमे पायत्ताणियाधिवती, सोदामे आसराया पीढाणियाधिवती, कुंथू हत्थिराया कुंजराणियाधिवती, लोहितक्खे महिसाणियाधिवती,° किण्णरे रधाणियाधिवती, रिट्ठे णट्टाणियाधिवती, गीतरती गंधव्वाणियाधिवती।

पादातानीकं, पीठानीकं, कुञ्जरानीकं, महिषानीकं, रथानीकं, नाट्यानीकं, गन्धर्वानीकम्।

द्रुमः पादातानीकाधिपतिः सुदामा अश्वराजः पीठानीकाधिपतिः, कुन्थुः हस्तिराजः कुञ्जरानीकाधिपतिः, लोहिताक्षः महिषानीकाधिपतिः, किन्नरः रथानीकाधिपतिः, रिष्टः नाट्यानीकाधिपतिः, गीतरतिः गन्धर्वानीकाधिपतिः।

सेनाएं—
१. पदातिसेना, २. अश्वसेना,
३. हस्तिसेना, ४. महिषसेना,
५ रथसेना, ६. नर्तकसेना,
७. गन्धर्वसेना—गायकसेना।

सेनापति—
१. द्रुम—पदातिसेना का अधिपति।
२. अश्वराज सुदामा—अश्वसेना का अधिपति। ३. हस्तिराज कुन्थु—हस्तिसेना का अधिपति।
४. लोहिताक्ष—महिषसेना का अधिपति।
५ किन्नर—रथसेना का अधिपति।
६. रिष्ट—नर्तकसेना का अधिपति।
७. गीतरति—गंधर्वसेना का अधिपति।

११४. बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सत्ताणिया, सत्त अणियाधिपती पण्णत्ता, तं जहा—
पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए।
महद्दुमे पायत्ताणियाधिपती जाव किंपुरिसे रधाणियाधिपती, महारिट्ठे णट्टाणियाधिपती, गीतजसे गंधव्वाणियाधिपती।

बलेः वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य सप्तानीकानि, सप्तानीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पादातानीक यावत् गन्धर्वानीकम्।
महाद्रुमः पादातानीकाधिपतिः यावत् किंपुरुषः रथानीकाधिपतिः, महारिष्टः नाट्यानीकाधिपतिः, गीतयशाः गन्धर्वानीकाधिपतिः।

११४ वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बली के सात सेनाएं और सात सेनापति हैं—
सेनाएं—
१. पदातिसेना, २. अश्वसेना,
३. हस्तिसेना, ४. महिषसेना,
५. रथसेना, ६. नर्तकसेना,
७. गन्धर्वसेना।

सेनापति—
१. महाद्रुम—पदातिसेना का अधिपति।
२. अश्वराज महासुदामा—अश्वसेना का अधिपति।
३. हस्तिराज मालंकार—हस्तिसेना का अधिपति।
४. महालोहिताक्ष—महिषसेना का अधिपति।
५. किंपुरुष—रथसेना का अधिपति।
६. महारिष्ट—नर्तकसेना का अधिपति।
७. गीतयश—गायकसेना का अधिपति।

११५. धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाधिपती पण्णत्ता, तं जहा—
पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए।
भद्दसेणे पायत्ताणियाधिपती जाव आणंदे रधाणियाधिपती,
णंदणे णट्टाणियाधिपती,
तेतली गंधव्वाणियाधिपती।

धरणस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य सप्तानीकानि सप्तानीकाधिपतयः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पादातानीकं यावत् गन्धर्वानीकम्।
भद्रसेनः पादातानीकाधिपतिः यावत् आनन्दः रथानीकाधिपतिः,
नन्दनः नाट्यानीकाधिपतिः,
तेतलि: गन्धर्वानीकाधिपति:।

११५. नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के सात सेनाएं और सात सेनापति हैं—
सेनाएं—
१. पदातिसेना, २. अश्वसेना,
३. हस्तिसेना, ४. महिषसेना,
५. रथसेना, ६. नर्तकसेना,
७. गन्धर्वसेना।
सेनापति—
१. भद्रसेन—पदातिसेना का अधिपति।
२. अश्वराज यशोधर—अश्वसेना का अधिपति।
३ हस्तिराज सुदर्शन—हस्तिसेना का अधिपति।
४ नीलकण्ठ—महिषसेना का अधिपति।
५ आनन्द—रथसेना का अधिपति।
६. नन्दन—नर्तकसेना का अधिपति।
७. तेतली—गन्धर्वसेना का अधिपति।

११६. भूताणंदस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता, तं जहा—
पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए।
दक्खे पायत्ताणियाहिवती जाव णंदुत्तरे रहाणियाहिवई,
रती णट्टाणियाहिवई,
माणसे गंधव्वाणियाहिवई।

भूतानन्दस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य सप्त अनीकानि, सप्त अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पादातानीक यावत् गन्धर्वानीकम्।
दक्षः पादातानीकाधिपतिः यावत् नन्दोत्तरः रथानीकाधिपतिः,
रतिः नाट्यानीकाधिपति,
मानसः गन्धर्वानीकाधिपतिः।

११६. नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द के सात सेनाएं और सात सेनापति हैं—
सेनाएं—
१. पदातिसेना, २. अश्वसेना,
३. हस्तिसेना, ४. महिषसेना,
५. रथसेना, ६. नर्तकसेना,
७ गन्धर्वसेना।
सेनापति—
१. दक्ष—पदातिसेना का अधिपति।
२. अश्वराज सुग्रीव—अश्वसेना का अधिपति।
३ हस्तिराज सुविक्रम—हस्तिसेना का अधिपति।
४. श्वेत कण्ठ—महिषसेना का अधिपति।
५. नन्दोत्तर—रथसेना का अधिपति।
६. रति—नर्तकसेना का अधिपति।
७. मानस—गन्धर्वसेना का अधिपति।

११७. *जधा धरणस्स तधा सव्वेसिं दाहिणिल्लाणं जाव घोसस्स ।

यथा धरणस्य तथा सर्वेषां दाक्षिणात्यानां यावत् घोषस्य ।

११७. दक्षिण दिशा के भवनपति देवों के इन्द्र वेणुदेव, हरिकांत, अग्निशिख, पूर्ण, जलकांत, अमितगति, वेलम्ब तथा घोष के धरण की भांति सात-सात सेनाएं और सात-सात सेनापति हैं।

११८. जधा भूताणंदस्स तधा सव्वेसिं उत्तरिल्लाणं जाव महाघोसस्स ।°

यथा भूतानन्दस्य तथा सर्वेषां औदीच्यानां यावत् महाघोषस्य ।

११८. उत्तर दिशा के भवनपति देवों के इन्द्र, वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभञ्जन और महाघोष के भूतानन्द की भांति सात-सात सेनाएं और सात-सात सेनापति हैं।

११९. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाहिवती पण्णत्ता, तं जहा—
पायत्ताणीए जाव रहाणिए, णट्टाणिए, गंधव्वाणिए ।
हरिणेगमेसी पायत्ताणीयाधिपती जाव माढरे रधाणियाधिपती, सेते णट्टाणियाहिवती, तुंबरू गंधव्वाणियाधिपती ।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सप्त अनीकानि, सप्त अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पादातानीकं यावत् रथानीकम्, नाट्यानीकं, गन्धर्वानीकम् ।
हरिनैगमेषी पादातानीकाधिपतिः यावत् माठरः रथानीकाधिपतिः, श्वेतः नाट्यानीकाधिपतिः, तुम्बरुः गन्धर्वानीकाधिपतिः ।

११९. देवेन्द्र देवराज शक्र के सात सेनाएं और सात सेनापति हैं—
सेनाएं—
१. पदातिसेना, २. अश्वसेना, ३. हस्तिसेना, ४. महिषसेना, ५. रथसेना, ६. नर्तकसेना, ७. गन्धर्वसेना।
सेनापति—
१. हरिनैगमेषी—पदातिसेना का अधिपति।
२. अश्वराज वायु—अश्वसेना का अधिपति।
३. हस्तिराज ऐरावण—हस्तिसेना का अधिपति।
४. दामर्द्धि—महिषसेना का अधिपति।
५. माठर—रथसेना का अधिपति।
६. श्वेत—नर्तकसेना का अधिपति।
७. तुम्बुरु—गन्धर्वसेना का अधिपति।

१२०. ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता, तं जहा—
पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए ।
लहुपरक्कमे पायत्ताणियाहिवती जाव महासेते णट्टाणियाहिवती, रते गंधव्वाणियाधिपती ।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सप्त अनीकानि, सप्त अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पादातानीकं यावत् गन्धर्वानीकम् ।
लघुपराक्रमः पादातानीकाधिपतिः यावत् महाश्वेतः नाट्यानीकाधिपतिः ।
रतः गन्धर्वानीकाधिपतिः ।

१२०. देवेन्द्र देवराज ईशान के सात सेनाएं और सात सेनापति हैं—
सेनाएं—
१. पदातिसेना, २. अश्वसेना, ३. हस्तिसेना ४. महिषसेना, ५. रथसेना, ६. नर्तकसेना, ७. गंधर्व सेना।
सेनापति—
१. लघुपराक्रम—पदातिसेना का अधिपति।
२. अश्वराज महावायु—अश्वसेना का अधिपति।
३. हस्तिराज पुष्पदन्त—हस्तिसेना का अधिपति।
४. महादामर्द्धि—महिषसेना का अधिपति
५. महामाठर—रथसेना का अधिपति।
६. महाश्वेत—नर्तकसेना का अधिपति।
७. रत—गन्धर्वसेना का अधिपति।

१२१. *जधा सक्कस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाणं जाव आरणस्स।

यथा शक्रस्य तथा सर्वेणां दाक्षिणात्यानां यावत् आरणस्य।

१२१. दक्षिण दिशा के देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार, ब्रह्म, शुक्र, आनत और आरण के, शक्र की भांति, सात-सात सेनाएं और सात-सात सेनापति हैं।

१२२. जधा ईसाणस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाणं जाव अच्चुतस्स°।

यथा ईशानस्य तथा सर्वेणा ओदीच्यानां यावत् अच्युतस्य।

१२२. उत्तर दिशा के देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र, लातक, सहस्रार, प्राणत और अच्युत के ईशान की भांति, सात-सात सेनाएं और सात-सात सेनापति हैं।

१२३. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो दुमस्स पायत्ताणियाहिवतिस्स सत्त कच्छाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
पढमा कच्छा जाव सत्तमा कच्छा।

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य द्रुमस्य पादातानीकाधिपतेः सप्त कक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
प्रथमा कक्षा यावत् सप्तमी कक्षा।

१२३. असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के पदाति सेना के अधिपति द्रुम के सात कक्षाएं हैं—
पहली यावत् सातवीं।

१२४. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो दुमस्स पायत्ताणियाधिपतिस्स पढमाए कच्छाए चउसट्ठि देवसहस्सा पण्णत्ता। जावतिया पढमा कच्छा तव्विगुणा दोच्चा कच्छा। जावतिया दोच्चा कच्छा तव्विगुणा तच्चा कच्छा। एवं जाव जावतिया छट्ठा कच्छा तव्विगुणा सत्तमा कच्छा।

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य द्रुमस्य पादातानीकाधिपतेः प्रथमायां कक्षायां चतुःषष्ठि देवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि। यावती प्रथमा कक्षा तद्द्विगुणा द्वितीया कक्षा। यावती द्वितीया कक्षा तद्द्विगुणा तृतीया कक्षा। एवं यावत् यावती षष्ठी कक्षा तद्द्विगुणा सप्तमी कक्षा।

१२४. असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के पदाति-सेना के अधिपति द्रुम की प्रथम कक्षा मे ६४ हजार देव हैं। दूसरी कक्षा में उससे दुगुने—१२८००० देव हैं। तीसरी कक्षा में दूसरी से दुगुने—२५६००० देव हैं। इसी प्रकार सातवीं कक्षा में छठी से दुगुन देव है।

१२५. एवं बलिस्सवि, णवरं—महद्दुमे सट्ठिदेवसाहस्सिओ। सेसं तं चेव।

एवं बलेरपि, नवरं—महाद्रुमः षष्ठि-देवसाहस्रिकः शेष तच्चैव।

१२५. वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बली के पदाति-सेना के अधिपति महाद्रुम की प्रथम कक्षा मे ६० हजार देव हैं। अग्रिम कक्षाओं मे क्रमशः दुगुने-दुगुने हैं।

१२६. धरणस्स एवं—चेव, णवरं—अट्ठावीसं देवसहस्सा। सेसं तं चेव।

धरणस्य एवम्—चैव, नवरं—अष्टाविंशतिः देवसहस्राणि शेषं तच्चैव।

१२६. नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के पदातिसेना के अधिपति भद्रसेन की प्रथम कक्षा में २८ हजार देव हैं। अग्रिम कक्षाओं में क्रमशः दुगुन-दुगुने हैं।

१२७. जधा धरणस्स एवं जाव महाघोसस्स, णवरं—पायत्ताणियाधिपती अण्णे, ते पुव्वभणिता।

यथा धरणस्य एव यावत् महाघोषस्य, नवरं—पादातानिकाधिपतयः अन्ये, ते पूर्वभणिताः।

१२७. भूतानन्द से महाघोष तक के सभी इन्द्रों के पदाति सेनापतियों की कक्षाओं की देव-संख्या धरण की भांति ज्ञातव्य है। उनके सेनापति दक्षिण और उत्तर दिशा के भेद से भिन्न-भिन्न हैं, जो पहले बताए जा चुके हैं।

१२८. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो हरिणेगमेसिस्स सत्त कच्छाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
पढमा कच्छा एवं जहा चमरस्स तहा जाव अच्चुतस्स।
णाणत्तं पायत्ताणियाधिपतीणं। ते पुव्वभणिता। देवपरिमाणं इमं—
सक्कस्स चउरासीतिं देवसहस्सा, ईसाणस्स असीतिं देवसहस्साइं जाव अच्चुतस्स लहुपरक्कमस्स दस देवसहस्सा जाव जावतिया छट्ठा कच्छा तब्बिगुणा सत्तमा कच्छा।
देवा इमाए गाधाए अणुगंतव्वा—
१. चउरासीति असीति, बावत्तरी सत्तरी य सट्ठी य।
पण्णा चत्तालीसा, तीसा बीसा य दससहस्सा॥

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य हरिनैगमेषिनः सप्त कक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
प्रथमा कक्षा एवं यथा चमरस्य तथा यावत् अच्युतस्य।
नानात्वं पादातानीकाधिपतीनाम्। ते पूर्वभणिता। देवपरिमाणं इदम्—
शक्रस्य चतुरशीतिः देवसहस्राणि, ईशानस्य अशीतिः देवसहस्राणि यावत् अच्युतस्य लघुपराक्रमस्य दश देवसहस्राणि यावत् यावती षष्ठी कक्षा तद्द्विगुणा सप्तमी कक्षा।
देवाः अनया गाथया अनुगन्तव्याः—
१. चतुरशीतिरशीतिः, द्विसप्ततिः सप्ततिश्च षष्ठिश्च।
पञ्चाशत् चत्वारिंशत्, त्रिंशत् विंशतिश्च दशसहस्राणि॥

१२८. देवेन्द्र देवराज शक्र के पदातिसेना के अधिपति हरिनैगमेषी के सात कक्षाएं हैं—
पहली यावत् सातवीं।
इसी प्रकार अच्युत तक के सभी देवेन्द्रों के पदातिसेना के अधिपतियों के सात-सात कक्षाएं हैं।
उनके पदातिसेना के अधिपति भिन्न-भिन्न हैं, जो पहले बताए जा चुके हैं। उनकी कक्षाओं का देव-परिमाण इस प्रकार है—
शक्र के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा में ८४ हजार देव है।
ईशान के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा मे ८० हजार देव है।
सनत्कुमार के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा मे ७२ हजार देव है।
माहेन्द्र के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा मे ७० हजार देव हैं।
ब्रह्म के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा में ६० हजार देव हैं।
लान्तक के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा में ५० हजार देव हैं।
शुक्र के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा में ४० हजार देव हैं।
सहस्रार के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा में ३० हजार देव हैं।
प्राणत के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा में २० हजार देव हैं।
अच्युत के पदातिसेना के अधिपति की प्रथम कक्षा में १० हजार देव है।
इन सब के शेष छहों कक्षाओं मे पूर्ववत् उत्तरोत्तर दुगुने-दुगुने देव हैं।

वयणविकप्प-पदं

१२६. सत्तविहे वयणविकप्पे पण्णत्ते, तं जहा—
आलावे, अणालावे, उल्लावे, अणुल्लावे, संलावे, पलावे, विप्पलावे।

वचनविकल्प-पदम्

सप्तविधः वचनविकल्पः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
आलापः, अनालापः, उल्लापः, अनुल्लापः, संलापः, प्रलापः, विप्रलापः।

वचनविकल्प-पद

१२६. वचन के सात विकल्प हैं—
१. आलाप—थोडा बोलना।
२. अनालाप—कुत्सित आलाप करना।
३. उल्लाप—काकु-ध्वनिविकार के द्वारा बोलना।
४. अनुल्लाप—कुत्सित ध्वनिविकार के द्वारा बोलना।
५. संलाप—परस्पर भाषण करना।
६. प्रलाप—निरर्थक बोलना।
७. विप्रलाप—विरुद्ध वचन बोलना।

विणय-पदं

१३०. सत्तविहे विणए पण्णत्ते, तं जहा—
णाणविणए, दंसणविणए, चरित्तविणए, मणविणए, वइविणए, कायविणए, लोगोवयारविणए।

१३१. पसत्थमणविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—
अपावए, असावज्जे, अकिरिए, णिरुवक्केसे, अणण्हयकरे, अच्छविकरे, अभूताभिसंकणे।

विनय-पदम्

सप्तविधः विनयः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
ज्ञानविनयः, दर्शनविनयः, चरित्रविनयः, मनोविनयः, वाग्विनयः, कायविनयः, लोकोपचारविनयः।

प्रशस्तमनोविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
अपापकः, असावद्यः, अक्रियः, निरुपक्लेशः, अनास्नवकरः, अक्षयिकरः, अभूताभिशङ्कनः।

विनय-पद

१३० विनय[८८] के सात प्रकार हैं—
१. ज्ञानविनय, २. दर्शनविनय, ३. चरित्रविनय, ४. मनविनय—अकुशल मन का निरोध और कुशल की प्रवृत्ति, ५. वचनविनय—अकुशल वचन का निरोध और कुशल की प्रवृत्ति। ६. कायविनय—अकुशल काय का निरोध और कुशल की प्रवृत्ति। ७. लोकोपचारविनय—लोक-व्यवहार के अनुसार विनय करना।

१३१. प्रशस्त मनविनय के सात प्रकार हैं—
१ अपापक—मन को शुभ चिन्तन मे प्रवृत्त करना।
२. असावद्य—मन को चोरी आदि गर्हित कर्मों मे न लगाना।
३ अक्रिय—मन को कायिकी, आधिकरणिकी आदि क्रियाओं में प्रवृत्त न करना।
४ निरुपक्लेश—मन को शोक, चिन्ता आदि मे प्रवृत्त न करना।
५. अनास्नवकर—मन को प्राणातिपात आदि पाच आश्रवों में प्रवृत्त न करना।
६. अक्षयिकर—मन को प्राणियों को व्यथित करने मे न लगाना।
७. अभूताभिशङ्कन—मन को अभयंकर बनाना।

१३२. अपसत्थमणविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—
पावए, सावज्जे, सकिरिए, सउवक्केसे, अण्हयकरे, छविकरे, भूताभिसंकणे।

अप्रशस्तमनोविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पापकः, सावद्यः, सक्रियः, सोपक्लेशः, आस्नवकरः, क्षयिकरः, भूताभिशङ्कनः।

१३२. अप्रशस्त मनविनय के सात प्रकार हैं—
१. पापक, २ सावद्य, ३. सक्रिय, ४. सोपक्लेश, ५. आस्नवकर, ६. क्षयिकर, ७. भूताभिशङ्कन।

१३३. पसत्थवइविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—
अपावए, असावज्जे, *अकिरिए, णिरुवक्केसे, अणण्हयकरे, अच्छविकरे,° अभूताभिसंकणे।

प्रशस्तवाग्विनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
अपापकः, असावद्यः, अक्रियः, निरुपक्लेशः, अनास्नवकरः, अक्षयिकरः, अभूताभिशङ्कनः।

१३३. प्रशस्त वचनविनय के सात प्रकार हैं—
१. अपापक, २. असावद्य, ३. अक्रिय, ४. निरुपक्लेश, ५. अनास्नवकर, ६. अक्षयिकर, ७. अभूताभिशङ्कन।

१३४. अपसत्थवइविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—
पावए, सावज्जे, सकिरिए, सउवक्केसे, अण्हयकरे, छविकरे,° भूताभिसंकणे।

अप्रशस्तवाग्विनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पापकः, सावद्यः, सक्रियः सोपक्लेशः, आस्नवकरः, क्षयिकरः, भूताशिङ्कनः।

१३४. अप्रशस्त वचनविनय के सात प्रकार हैं—
१. पापक, २. सावद्य, ३. सक्रिय, ४. सोपक्लेश, ५. आस्नवकर, ६. क्षयिकर, ७. भूताभिशङ्कन।

१३५. पसत्थकायविणए सत्तविधे पण्णत्ते तं जहा—
आउत्तं गमणं, आउत्तं ठाणं, आउत्तं णिसीयणं, आउत्तं, तुअट्टणं, आउत्तं उल्लंघणं, आउत्तं पल्लंघणं, आउत्तं सव्विदियजोगजुंजणता।

प्रशस्तकायविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
आयुक्त गमनं, आयुक्तं स्थानं, आयुक्तं निषदनं, आयुक्तं त्वग्वर्तनं, आयुक्त उल्लङ्घनं, आयुक्तं प्रलङ्घनं, आयुक्तं सर्वेन्द्रिययोगयोजनम्।

१३५. प्रशस्त कायविनय के सात प्रकार हैं—
१. आयुक्त गमन—यतनापूर्वक चलना।
२. आयुक्त स्थान—यतनापूर्वक खड़ा होना, कायोत्सर्ग करना।
३. आयुक्त निषदन—यतनापूर्वक बैठना।
४. आयुक्त त्वग्वर्तन—यतनापूर्वक सोना।
५. आयुक्त उल्लंघन—यतनापूर्वक उल्लघन करना। ६. आयुक्त प्रलंघन—यतनापूर्वक प्रलंघन करना।
७. आयुक्त सर्वेन्द्रिययोगयोजना—यतनापूर्वक सब इन्द्रियों का प्रयोग करना।

१३६. अपसत्थकायविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—
अणाउत्तं गमणं, *अणाउत्तं ठाणं, अणाउत्तं णिसीयणं, अणाउत्तं तुअट्टणं, अणाउत्तं उल्लंघणं, अणाउत्तं पल्लंघणं,° अणाउत्तं सव्विदियजोगजुंजणता।

अप्रशस्तकायविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
अनायुक्तं गमनं, अनायुक्तं स्थान, अनायुक्तं निषदनं, अनायुक्तं त्वग्वर्तनं, अनायुक्तं उल्लङ्घनं, अनायुक्तं प्रलङ्घन, अनायुक्तं सर्वेन्द्रिययोगयोजनम्।

१३६. अप्रशस्त कायविनय के सात प्रकार है—
१. अनायुक्त गमन।
२. अनायुक्त स्थान।
३. अनायुक्त निषदन।
४. अनायुक्त त्वग्वर्तन।
५. अनायुक्त उल्लघन।
६ अनायुक्त प्रलंघन।
७. अनायुक्त सर्वेन्द्रिययोगयोजनता।

१३७. लोगोवयारविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—
अब्भासवत्तितं, परच्छंदाणुवत्तितं, कज्जहेउं, कतपडिकतिता, अत्तगवेसणता, देसकालण्णता, सव्वत्थेसु अपडिलोमता।

लोकोपचारविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
अभ्यासवर्तितं, परच्छन्दानुवर्तितं, कार्यहेतोः, कृतप्रतिकृतिता, आर्त्त-गवेषणता, देशकालज्ञता, सर्वार्थेषु अप्रतिलोमता।

१३७. लोकोपचारविनय के सात प्रकार हैं—
१. अभ्यासवर्तित्व—श्रुत-ग्रहण करने के लिए आचार्य के समीप बैठना।
२. परछन्दानुवर्तित्व—दूसरों के अभिप्राय के अनुसार वर्तन करना।
३. कार्यहेतु—'इसने मुझे ज्ञान दिया'—इसलिए उसका विनय करना।
४. कृतप्रतिकृतिता—प्रत्युपकार की भावना से विनय करना।
५. आर्त्तगवेषणता—रोगी के लिए औषध आदि की गवेषणा करना।
६. देशकालज्ञता—अवसर को जानना।
७. सर्वार्थ अप्रतिलोमता—सब विषयों में अनुकूल आचरण करना।

समुग्घात-पदं

समुद्घात-पदम्

समुद्घात-पद

१३८. सत्त समुग्घाता पण्णत्ता, तं जहा—
वेयणासमुग्घाए,
कसायसमुग्घाए,
मारणंतियसमुग्घाए,
वेउव्वियसमुग्घाए,
तेजससमुग्घाए,
आहारगसमुग्घाए,
केवलिसमुग्घाए।

सप्त समुद्घाताः, प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
वेदनासमुद्घातः,
कषायसमुद्घातः,
मारणान्तिकसमुद्घातः,
वैक्रियसमुद्घातः,
तैजससमुद्घातः,
आहारकसमुद्घातः,
केवलिसमुद्घातः।

१३८. समुद्घात सात हैं—
१. वेदनासमुद्घात—असात वेदनीय कर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।
२. कषाय समुद्घात—कषाय मोहकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।
३. मारणान्तिक समुद्घात—आयुष्य के अन्तर्मुहूर्त्त अवशिष्ट रह जाने पर उसके आश्रित होने वाला समुद्घात।
४. वैक्रिय समुद्घात—वैक्रिय नामकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।
५. तैजस समुद्घात—तैजसनामकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।
६. आहारक समुद्घात—आहारक नामकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।
७. केवली समुद्घात—वेदनीय, नाम, गोत्र और आयुष्य कर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।

१३९. मणुस्साणं सत्त समुग्घाता पण्णत्ता एवं चेव ।

मनुष्याणां सप्त समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः एवं चैव ।

१३९. मनुष्यों में ये सातों प्रकार के समुद्घात होते हैं।

पवयणणिण्हग-पदं

१४०. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तित्थंसि सत्त पवयणणिण्हगा पण्णत्ता, तं जहा—

बहुरता, जीवपएसिया, अवत्तिया, सामुच्छेइया, दोकिरिया, तेरासिया, अबद्धिया ।

१४१. एएसि णं सत्तण्हं पवयणणिण्हगाणं सत्त धम्मायरिया हुत्था, तं जहा—

जमाली, तीसगुत्ते, आसाढे, आसमित्ते, गंगे, छलुए, गोट्ठामाहिले ।

१४२. एतेसि णं सत्तण्हं पवयणणिण्हगाणं सत्तउप्पत्तिणगरा हुत्था, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. सावत्थी उसभपुरं,
सेयबिया मिहिलउल्लगातीरं ।
पुरिमंतरंजि दसपुरं,
णिण्हगउप्पत्तिणगराइं ।।

प्रवचननिह्नव-पदम्

श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य तीर्थे सप्त प्रवचननिह्नवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

बहुरताः, जीवप्रदेशिकाः, अव्यक्तिकाः, सामुच्छेदिकाः, द्वैक्रियाः, त्रैराशिकाः, अबद्धिकाः ।

एतेषां सप्तानां प्रवचननिह्नवानां सप्त धर्माचार्याः अभवन्, तद्यथा—

जमालिः, तिष्यगुप्तः, आषाढः, अश्वमित्रः, गङ्गः, षडुलूकः, गोष्ठामाहिलः ।

एतेषां सप्तानां प्रवचननिह्नवानां सप्तोत्पत्तिनगराणि अभवन्, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. श्रावस्तीः ऋषभपुर,
श्वेतविका मिथिलाउल्लुकातीरम् ।
पुर्यन्तरञ्जिः दशपुर,
निह्नवोत्पत्तिनगराणि ।।

प्रवचननिह्नव-पद

१४०. श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ में प्रवचन-निह्नव[^] सात हुए हैं—

१. बहुरत, २. जीवप्रादेशिक, ३. अव्यक्तिक, ४. सामुच्छेदिक, ५. द्वैक्रिय, ६. त्रैराशिक, ७. अबद्धिक ।

१४१. इन सात प्रवचन-निह्नवों के सात धर्माचार्य थे—

१. जमाली, २. तिष्यगुप्त, ३. आषाढ, ४. अश्वमित्र, ५. गंग, ६. षडुलूक, ७. गोष्ठामाहिल ।

१४२. इन सात प्रवचन-निह्नवों के उत्पत्ति-नगर सात है—

१. श्रावस्ति, २. ऋषभपुर, ३. श्वेतविका, ४. मिथिला, ५. उल्लुकातीर, ६. अन्तरजिका, ७. दशपुर ।

अणुभाव-पदं

१४३. सातावेयणिज्जस्स णं कम्मस्स सत्तविधे अणुभावे पण्णत्ते, तं जहा—

मणुण्णा सद्दा, मणुण्णा रूवा, °मणुण्णा गंधा, मणुण्णा रसा,° मणुण्णा फासा, मणो सुहता, वइसुहता ।

अनुभाव-पदम्

सातवेदनीयस्य कर्म्मणः सप्तविधः अनुभावः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—

मनोज्ञाः शब्दाः, मनोज्ञानि रूपाणि, मनोज्ञाः गन्धाः, मनोज्ञाः रसाः, मनोज्ञाः स्पर्शाः, मनःसुखता, वाक्सुखता ।

अनुभाव-पद

१४३. सातवेदनीय कर्म का अनुभाव सात प्रकार का होता है—

१. मनोज्ञ शब्द, २. मनोज्ञ रूप, ३. मनोज्ञ गन्ध, ४. मनोज्ञ रस, ५. मनोज्ञ स्पर्श, ६. मन की सुखता, ७. वचन की सुखता ।

१४४. असातावेयणिज्जस्स णं कम्मस्स सत्तविधे अणुभावे पण्णत्ते, तं जहा—
अमणुण्णा सद्दा, °अमणुण्णा रूवा, अमणुण्णा गंधा, अमणुण्णा रसा, अमणुण्णा फासा, मणोदुहता,° वइदुहता।

असातवेदनीयस्य कर्मणः सप्तविधः अनुभावः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
अमनोज्ञाः शब्दाः, अमनोज्ञानि रूपाणि, अमनोज्ञाः गन्धाः, अमनोज्ञाः रसाः, अमनोज्ञाः स्पर्शाः, अमनोदुःखता, वाग्-दुःखता।

१४४. असातवेदनीय कर्म का अनुभव सात प्रकार का होता है—
१. अमनोज्ञ शब्द, २. अमनोज्ञ रूप, ३. अमनोज्ञ गन्ध, ४. अमनोज्ञ रस, ५. अमनोज्ञ स्पर्श, ६ मन की दुःखता, ७. वचन की दुःखता।

णक्खत्त-पदं

नक्षत्र-पदम्

नक्षत्र-पद

१४५. महाणक्खत्ते सत्त तारे पण्णत्ते।

मघानक्षत्रं सप्त तारं प्रज्ञप्तम्।

१४५. मघानक्षत्र सात तारों वाला होता है।

१४६. अभिईयादिया णं सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, तं जहा—
अभिई, सवणो, धणिट्ठा, सतभिसया, पुव्वभद्दवया, उत्तरभद्दवया, रेवती।

अभिजिदादिकानि सप्त नक्षत्राणि पूर्व-द्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अभिजित्, श्रवणः, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वभद्रपदा, उत्तरभद्रपदा, रेवती।

१४६ अभिजित् आदि सात नक्षत्र पूर्वद्वार वाले है—
१. अभिजित्, २. श्रवण, ३. घनिष्ठा, ४. शतभिषक्, ५. पूर्वभाद्रपद, ६. उत्तरभाद्रपद, ७. रेवती।

१४७. अस्सिणियादिया णं सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तं जहा—
अस्सिणी, भरणी, कित्तिया, रोहिणी, मिगसिरे, अद्दा, पुणव्वसू।

अश्विन्यादिकानि सप्त नक्षत्राणि दक्षिणद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरः, आर्द्रा, पुनर्वसुः।

१४७ अश्विनी आदि सात नक्षत्र दक्षिणद्वार वाले हैं—
१ अश्विनी, २. भरणी, ३ कृत्तिका, ४ रोहिणी, ५ मृगशिर, ६. आर्द्रा, ७ पुनर्वसु।

१४८. पुस्सादिया ण सत्त णक्खत्ता अवरदारिया पण्णत्ता, तं जहा—
पुस्सो, असिलेसा, मघा, पुव्वाफग्गुणी, उत्तराफग्गुणी, हत्थो, चित्ता।

पुष्यादिकानि सप्त नक्षत्राणि अपर-द्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पुष्यः, अश्लेषा, मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी, हस्तः, चित्रा।

१४८ पुष्य आदि सात नक्षत्र पश्चिमद्वार वाले है—
१ पुष्य, २. अश्लेषा, ३ मघा, ४ पूर्वफाल्गुनी ५ उत्तरफाल्गुनी, ६ हस्त, ७ चित्रा।

१४९. सातियाइया णं सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तं जहा—
साती, विसाहा, अणुराहा, जेट्ठा, मूलो, पुव्वासाढा, उत्तरासाढा।

स्वात्यादिकानि सप्त नक्षत्राणि उत्तरद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा।

१४९. स्वाति आदि सात नक्षत्र उत्तरद्वार वाले हैं—
१. स्वाति, २. विशाखा, ३. अनुराधा, ४. ज्येष्ठा, ५. मूल, ६. पूर्वाषाढा, ७ उत्तराषाढा।

कूड-पदं

कूट-पदम्

कूट-पद

१५०. जंबुद्दीवे दीवे सोमणसे वक्खार-पव्वते सत्त कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे सौमनसे वक्षस्कारपर्वते सप्त कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

१५०. जम्बूद्वीप द्वीप मे सौमनस वक्षस्कारपर्वत के कूट सात है—

संगहणी-गाहा

१. सिद्धे सोमणसे या,
बोद्धव्वे मंगलावतीकूडे ।
देवकुरु विमल कंचण,
विसिट्ठकूडे य बोद्धव्वे ।।

संग्रहणी-गाथा

१. सिद्धः सौमनसश्च,
बोद्धव्यं मङ्गलावतीकूटम् ।
देवकुरुः विमलः काञ्चनः,
विशिष्टकूटं च बोद्धव्यम् ।।

१. सिद्ध, २. सौमनस, ३. मंगलावती, ४. देवकुरु, ५. विमल, ६. काचन, ७. विशिष्ट ।

१५१. जंबुद्दीवे दीवे गंधमायणे वक्खार-पव्वते सत्त कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सिद्धे य गंधमायण,
बोद्धव्वे गंधिलावतीकूडे ।
उत्तरकुरु फलिहे,
लोहितक्खे आणंदणे चेव ।।

जम्बूद्वीपे द्वीपे गन्धमादने वक्षस्कार-पर्वते सप्त कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

१. सिद्धश्च गंधमादनो,
बोद्धव्य गन्धिलावतीकूटम् ।
उत्तरकुरुः स्फटिकः,
लोहिताक्ष आनन्दनश्चैव ।।

१५१. जम्बूद्वीप द्वीप मे गधमादन वक्षस्कार-पर्वत के कूट सात है—

१ सिद्ध, २. गंधमादन, ३. गंधलावती, ४. उत्तरकुरु, ५ स्फटिक, ६. लोहिताक्ष, ७. आनन्दन ।

कुलकोडि-पदं

१५२ बिइंदियाण सत्त जाति-कुलकोडि-जोणीपमुह-सयसहस्सा पण्णत्ता ।

कुलकोटि-पदम्

द्वीन्द्रियाणां सप्त जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ।

कुलकोटि-पद

१५२. द्वीन्द्रिय जाति के योनि-प्रवाह में होने वाली कुलकोटिया सात लाख है ।

पावकम्म-पदं

१५३. जीवाणं सत्तट्ठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—
णेरइयनिव्वत्तिते,
°तिरिक्खजोणियणिव्वत्तिते,
तिरिक्खजोणिणीणिव्वत्तिते,
मणुस्सणिव्वत्तिते,
मणुस्सीणिव्वत्तिते,°
देवणिव्वत्तिते, देवीणिव्वत्तिते ।
एवं—चिण-°उवचिण-बंध-
उदीर-वेद तह° णिज्जरा चेव ।

पापकर्म-पदम्

जीवाः सप्तस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषुः वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा तद्यथा—
नैरयिकनिर्वर्तितान्,
तिर्यग्योनिकनिर्वर्तितान्,
तिर्यग्योनिकीनिर्वर्तितान्,
मनुष्यनिर्वर्तितान्,
मानुषीनिर्वर्तितान्,
देवनिर्वर्तितान्, देवीनिर्वर्तितान् ।
एवम्—चय-उपचय-बन्ध-
उदीर-वेदाः तथा निर्जरा चैव ।

पापकर्म-पद

१५३ जीवों ने सात स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का, पापकर्म के रूप मे, चय किया है, करते हैं और करेंगे—
१. नैरयिक निर्वर्तित पुद्गलो का ।
२. तिर्यक्योनिक निर्वर्तित पुद्गलों का ।
३. तिर्यक्योनिकी निर्वर्तित पुद्गलों का ।
४. मनुष्य निर्वर्तित पुद्गलो का ।
५ मानुषी निर्वर्तित पुद्गलो का ।
६ देव निर्वर्तित पुद्गलों का ।
७. देवी निर्वर्तित पुद्गलो का ।
इसी प्रकार जीवों ने सात स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलो का पापकर्म के रूप मे उपचय, बंध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे ।

पोग्गल-पदं

१५४. सत्तपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता।

१५५. सत्तपएसोगाढा पोग्गला जाव सत्तगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

पुद्गल-पदम्

सप्तप्रदेशिकाः स्कन्धाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः।

सप्तप्रदेशावगाढाः पुद्गलाः यावत् सप्तगुणरूक्षाः पुद्गलाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः।

पुद्गल-पद

१५४. सप्तप्रदेशी स्कंध अनन्त हैं।

१५५. सप्तप्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त हैं।
सात समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं।
सात गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं।
इस प्रकार शेष वर्ण तथा गंध, रस और स्पर्शों के सात गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं।

टिप्पणियाँ

स्थान–७

१,२ (सू० ८,६)

पिंड-एषणाएं सात हैं—

१. संसृष्ट—देयवस्तु से लिप्त हाथ या कड़छी आदि से आहार लेना।

२. असंसृष्ट—देयवस्तु से अलिप्त हाथ या कड़छी आदि से आहार लेना।

३. उद्धृत—थाली, बटलोई आदि से परोसने के लिए निकालकर दूसरे बर्तन में डाला हुआ आहार लेना।

४. अल्पलेपिक—रूखा आहार लेना।

५. अवगृहीत—खाने के लिए थाली मे परोसा हुआ आहार लेना।

६. प्रगृहीत—परोसने के लिए कड़छी या चम्मच आदि से निकाला हुआ आहार लेना।

७. उज्झितधर्मा—जो भोजन अमनोज्ञ होने के कारण परित्याग करने योग्य हो, उसे लेना।

पान-एषणा के प्रकार भी पिण्ड-एषणा के समान हैं। यहां अल्पलेपिक पानैषणा का अर्थ इस प्रकार है—काञ्जी, ओसामण, गरम जल, चावलों का धोवन आदि अलेपकृत हैं और इक्षुरस, द्राक्षापानक, अम्लिका पानक आदि लेपकृत हैं।[1]

३. (सू० १०)

अवग्रह-प्रतिमा का अर्थ है—स्थान के लिए प्रतिज्ञा या संकल्प। वे सात हैं—

१. मैं अमुक प्रकार के स्थान में रहूँगा दूसरे में नहीं।

२. मैं दूसरे साधुओं के लिए स्थान की याचना करूंगा तथा दूसरों के द्वारा याचित स्थान में रहूँगा। यह गच्छान्तर्गत साधुओं के होती है।

३. मैं दूसरो के लिए स्थान की याचना करूंगा, किन्तु दूसरो के द्वारा याचित स्थान में नही रहूंगा। यह यथालन्दिक साधुओं के होती है। उन मुनियों के सूत्र का अध्ययन जो शेष रह जाता है उसे पूर्ण करने के लिए वे आचार्य से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिए वे आचार्य के लिए स्थान की याचना करते हैं, किन्तु स्वयं दूसरे साधुओं द्वारा याचित स्थान मे नहीं रहते।

४. मैं दूसरों के लिए स्थान की याचना नही करूंगा, परन्तु दूसरों के द्वारा याचित स्थान मे रहूंगा। यह जिनकल्प दशा का अभ्यास करने वाले साधुओं के होती है।

५. मैं अपने लिए स्थान की याचना करूंगा, दूसरो के लिए नही। यह जिनकल्पिक साधुओं के होती है।

६. जिसका मैं स्थान ग्रहण करूंगा उसी के यहा पलाल आदि का संस्तारक प्राप्त हो तो लूंगा अन्यथा उकड़ू या नैषधिक आसन मे बैठा-बैठा रात बिताऊंगा। यह जिनकल्पिक या अभिग्रहधारी साधुओं के होती है।

७. जिसका मैं स्थान ग्रहण करूंगा उसी के यहां सहज ही बिछे हुए सिलापट्ट या काष्ठपट्ट प्राप्त हो तो लूंगा, अन्यथा उकड़ू या नैषधिक आसन में बैठा-बैठा रात बिताऊंगा। यह जिनकल्पिक या अभिग्रहधारी साधुओं के होती है।

---

१. प्रवचनसारोद्धार, गाथा ७४४, वृत्ति पत्र २१५, २१६।

४. (सू० ११)

सात सप्तैकक—

१. स्थान सप्तैकक
२. नैषेधिकी सप्तैकक
३. उच्चारप्रस्रवणविधि सप्तैकक
४. शब्द सप्तैकक
५. रूप सप्तैकक
६. परक्रिया सप्तैकक
७ अन्योन्यक्रिया सप्तैकक।

५. (सू० १२)

सूत्रकृताङ्ग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध के अध्ययन पहले श्रुतस्कन्ध के अध्ययनों की अपेक्षा बड़े हैं, अतः उन्हें महान् अध्ययन कहे गए है। वे सात हैं—

१. पुण्डरीक
२. क्रियास्थान
३. आहारपरिज्ञा
४. प्रत्याख्यानक्रिया
५. अनाचारश्रुत
६. आर्द्रककुमारीय
७. नालन्दीय।

६. भिक्षादत्तियों (सू० १३)

भिक्षादत्तियों का क्रम यह है—

प्रथम सप्तक मे	— ७ भिक्षादत्तिया
दूसरे सप्तक मे	—१४ भिक्षादत्तिया
तीसरे सप्तक मे	—२१ भिक्षादत्तिया
चौथे सप्तक में	—२८ भिक्षादत्तिया
पाचवें सप्तक मे	—३५ भिक्षादत्तिया
छठे सप्तक मे	—४२ भिक्षादत्तिया
सातवें सप्तक में	—४९ भिक्षादत्तिया
	कुल १९६ भिक्षादत्तिया

७. चौड़े संस्थान वाली (सू० २२)

वृत्तिकार ने 'पिहलगपिहुलसठाणसठियाओ' को पाठान्तर माना है। उनके अनुसार मूल पाठ है—'छत्तातिच्छत्त-संठाणसठियाओ'। इसका अर्थ है—एक छत्ते के बाद दूसरा छत्ता, इस प्रकार सात छत्ते हैं। उनमें नीचे का सबसे बड़ा है, ऊपर के क्रमशः छोटे हैं। सातो पृथ्वियों का भी यही आकार है। वे क्रमश नीचे-नीचे हैं।[1]

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३६६।

८. गोत्र (सू० ३०)

गोत्र का अर्थ है—एक पुरुष से उत्पन्न वंश-परम्परा। प्रस्तुत सूत्र में सात मूलगोत्र बतलाए हैं। उस समय ये मुख्य गोत्र थे और धीरे-धीरे काल-व्यवधान से अनेक-अनेक उत्तर गोत्र विकसित होते गए। वृत्तिकार ने इन सातों गोत्रों के कुछ उदाहरण दिए हैं, जैसे—

(१) काश्यप गोत्र—मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि को छोड़कर शेष बावीस तीर्थंकर, सभी चक्रवर्ती [क्षत्रिय], सातवें से ग्यारहवें गणधर [ब्राह्मण] तथा जम्बूस्वामी आदि [वैश्य]—ये सभी कश्यप गोत्रीय थे। इसका तात्पर्य है कि इस गोत्र में इन तीनों वर्गों का समावेश था।

(२) गोतम गोत्र—मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि, नारायण और पद्म को छोड़कर सभी बलदेव-वासुदेव तथा इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति ये तीन गणधर गोतम-गोत्रीय थे।

(३) वत्सगोत्र—दशवैकालिक के रचयिता शय्यंभव आदि वत्सगोत्री थे।

(४) कौत्सगोत्र—शिवभूति आदि।

(५) कौशिकगोत्र—षडूलुक, [रोहगुप्त] आदि।

(६) मांडव्य गोत्र—मण्डुऋषि के वंशज।

(७) वाशिष्ठ गोत्र—वशिष्ठ के वंशज, छठे गणधर तथा आर्यसुहस्ती आदि।[1]

९. नय (सू० ३८)

ज्ञान करने की दो पद्धतियां हैं—पदार्थग्राही और पर्यायग्राही। पदार्थग्राही में अनन्त धर्मात्मक पदार्थ को किसी एक धर्म के माध्यम से जाना जाता है। पर्यायग्राही पद्धति में पदार्थ के एक पर्याय [धर्म या अवस्था] को जाना जाता है। पदार्थ-ग्राही पद्धति को 'प्रमाण' और पर्यायग्राही पद्धति को 'नय' कहा जाता है। प्रमाण इन्द्रिय और मन दोनों से होता है, किन्तु नय केवल मन से ही होता है, क्योंकि अंशों का ग्रहण मानसिक अभिप्राय से ही हो सकता है। नय सात है—

१. नैगमनय—द्रव्य में सामान्य और विशेष, भेद और अभेद आदि अनेक धर्मों के विरोधी युगल रहते हैं। नैगम-नय दोनों की एकाश्रयता का साधक है। वह दोनों को यथास्थान मुख्यता और गौणता देता है। जब भेद प्रधान होता है तब अभेद गौण हो जाता है और जब अभेद प्रधान होता है तब भेद गौण हो जाता है। नैगमनय के अनेक भेद है—भूतनैगम, वर्तमाननैगम, भावीनैगम अथवा द्रव्य-नैगम, पर्याय-नैगम, द्रव्य-पर्याय-नैगम।

२. संग्रहनय—यह अभेददृष्टि प्रधान है। यह भेद से अभेद की ओर बढ़ता है। सत्ता सामान्य—जैसे विश्व एक है, यह इसका चरम रूप है। गाय और भैंस में पशुत्व की समानता है। गाय और मनुष्य में भी समानता है, दोनों शरीरधारी है। गाय और परमाणु में भी ऐक्य है, क्योंकि दोनों प्रमेय है।

३. व्यवहारनय—जितने पदार्थ लोक में प्रसिद्ध है, अथवा जो-जो पदार्थ लोक-व्यवहार में आते है, उन्हीं को मानने और अदृष्ट तथा अव्यवहार्य पदार्थों को न मानने को व्यवहारनय कहा जाता है। यह विभाजन की दृष्टि है। यह अभेद से भेद की ओर बढता है। यह पदार्थ में अनन्त भेद कर डालता है, जैसे—विश्व के दो रूप है—चेतन और अचेतन। चेतन के दो प्रकार है, आदि-आदि।

यह नय दो प्रकार का है—उपचारबहुल और लौकिक।

उपचारबहुल, जैसे—पहाड़ जलता है।

लौकिक, जैसे—भौंरा काला है।

४. ऋजुसूत्रनय—यह वर्तमानपरक दृष्टि है। यह अतीत और भविष्य में वास्तविक सत्ता स्वीकार नहीं करती।

५. शब्दनय—यह भिन्न-भिन्न लिंग, वचन आदि से युक्त शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ स्वीकार करता है। यह शब्द, रूप और उसके अर्थ का नियामक है। इसके अनुसार पहाड़ का जो अर्थ है वह 'पहाड़ी' शब्द व्यक्त नहीं कर सकता। जो

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३७०।

अर्थ 'नदी' शब्द में है वह 'नद' मे नही है। 'स्तुति' और 'स्तोत्र' के अर्थों मे भी भिन्नता है। 'मनुष्य है' और 'मनुष्य हैं' इनमें एकवचन और बहुवचन के कारण अर्थ में भिन्नता है।

६. समभिरूढनय—इसका कथन है कि जो शब्द जहा रूढ है, उसका वही प्रयोग करना चाहिए। स्थूल दृष्टि मे घट, कुट, कुम्भ एकार्थक हैं। समभिरूढनय इसे स्वीकार नही करता। इसके अनुसार 'घट' और 'कुट' एक नही है। घट वह वस्तु है जो माथे पर रखा जाये और कुट वह पदार्थ है, जो कही बडा, कही चौडा, कही संकडा—इस प्रकार कुटिल आकारवाला हो। इसके अनुसार कोई भी शब्द किसी का पर्यायवाची नही है। पर्यायवाची माने जाने वाले शब्दों मे भी अर्थ का बहुत बड़ा भेद है।

७. एवम्भूतनय—यह नय क्रिया मे प्रवर्त्तमान अर्थ मे ही उसके वाचक शब्द को मान्य करता है। इसके अनुसार अध्यापक तभी अध्यापक है जब वह अध्यापन क्रिया में प्रवर्तमान है। अध्यापन कराया था या कराएगा इसलिए वह अध्यापक नहीं है।

१०. स्वर (सू० ३९)

स्वर का सामान्य अर्थ है—ध्वनि, नाद। संगीत मे प्रयुक्त स्वर शब्द का कुछ विशेष अर्थ होता है। संगीतरत्नाकर में स्वर की व्याख्या करते हुए लिखा है—जो ध्वनि अपनी-अपनी श्रुतियो के अनुसार मर्यादित अन्तरों पर स्थित हो, जो स्निग्ध हो, जिसमे मर्यादित कम्पन हो और अनायास ही श्रोताओ को आकृष्ट कर लेती हो, उसे स्वर कहते है। इसकी चार अवस्थाए है—

(१) स्थानभेद (Pitch)
(२) रूप भेद या परिणाम भेद (Intensity)
(३) जातिभेद (Quality)
(४) स्थिति (Duration)

स्वर सात हैं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद। इन्हे सक्षेप मे —स, रि, ग, म, प, ध, नी कहा जाता है। अंग्रेजी मे क्रमश. Do, Re, Mi, Fa, So, Ka, Si, कहते है और इनके सांकेतिक चिन्ह क्रमश. C, D, E, F, G, A, B हैं। सात स्वरो की २२ श्रुतिया [स्वरों के अतिरिक्त छोटी-छोटी सुरीली ध्वनिया] हैं—षड्ज, मध्यम और पञ्चम की चार-चार, निषाद और गान्धार की दो-दो और ऋषभ और धैवत की तीन-तीन श्रुतियां हैं।

अनुयोगद्वार सूत्र [२९८-३०७] मे भी पूरा स्वर-मडल मिलता है। अनुयोगद्वार तथा स्थानाग—दोनों मे प्रकरण की समानता है। कही-कही शब्द-भेद है।

सात स्वरो की व्याख्या इस प्रकार है—

(१) षड्ज—नासा, कठ, छाती, तालु, जिह्वा और दन्त—इन छह स्थानो मे उत्पन्न होने वाले स्वर को षड्ज कहा जाता है।

(२) ऋषभ—नाभि से उठा हुआ वायु कठ और शिर से आहत होकर वृषभ की तरह गर्जन करता है, उसे ऋषभ कहा जाता है।

(३) गान्धार—नाभि से उठा हुआ वायु कण्ठ और शिर से आहत होकर व्यक्त होता है और इसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध होती है, इसलिए इसे गान्धार कहा जाता है।

(४) मध्यम—नाभि से उठा हुआ वायु वक्ष और हृदय मे आहत होकर फिर नाभि मे जाता है। यह काया के मध्य-भाग मे उत्पन्न होता है, इसलिए इसे मध्यम स्वर कहा जाता है।

(५) पचम—नाभि से उठा हुआ वायु वक्ष, हृदय, कठ और सिर से आहत होकर व्यक्त होता है। यह पांच स्थानों से उत्पन्न होता है, इसलिए इसे पचम स्वर कहा जाता है।

(६) धैवत—यह पूर्वोत्थित स्वरो का अनुसन्धान करता है, इसलिए इसे धैवत कहा जाता है।

(७) निषाद—इसमें सब स्वर निषण्ण होते हैं—इससे सब अभिभूत होते हैं, इसलिए इसे निषाद कहा जाता है।[1]

बौद्ध परम्परा में सात स्वरों के नाम ये है—

सहर्ष्य, ऋषभ, गान्धार, धैवत, निषाद, मध्यम तथा कैशिक।[2]

कई विद्वान् सहर्ष्य को षड्ज के पर्याय स्वरूप तथा कैशिक को पंचम स्थान पर मानते हैं।[3]

११. स्वर स्थान (सू० ४०)

स्वर के उपकारी—विशेषता प्रदान करने वाले स्थान को स्वर स्थान कहा जाता है। षड्जस्वर का स्थान जिह्वाग्र है। यद्यपि उसकी उत्पत्ति में दूसरे स्थान भी व्यापृत होते हैं और जिह्वाग्र भी दूसरे स्वरों की उत्पत्ति मे व्यापृत होता है, फिर भी जिस स्वर की उत्पत्ति मे जिस स्थान का व्यापार प्रधान होता है, उसे उसी स्वर का स्थान कहा जाता है।

प्रस्तुत सूत्र में सात स्वरो के सात स्वर स्थान बतलाए गए हैं।

नारदी शिक्षा मे ये स्वर स्थान कुछ भिन्न प्रकार से उल्लिखित हुए हैं[4]—

षड्ज कंठ से उत्पन्न होता है, ऋषभ सिर से, गाधार नासिका से, मध्यम उर से, पंचम उर, सिर तथा कंठ से, धैवत ललाट से तथा निषाद शरीर की संधियों से उत्पन्न होता है।

इन सात स्वरों के नामों की सार्थकता बताते हुए नारदी शिक्षा मे कहा गया है कि—'षड्ज' संज्ञा की सार्थकता इसमें है कि वह नासा, कण्ठ, उर, तालु, जिह्वा तथा दन्त इन छह् स्थानो से उद्भूत होता है। 'ऋषभ' की सार्थकता इसमें है कि वह ऋषभ अर्थात् बैल के समान नाद करने वाला है। 'गाधार' नासिका के लिए गन्धावह होने के कारण अन्वर्थक बताया गया है। 'मध्यम' की अन्वर्थकता इसमे है कि वह उरस् जैसे मध्यवर्ती स्थान मे आहत होता है। 'पचम' सज्ञा इसलिए सार्थक है कि इसका उच्चारण नाभि, उर, हृदय, कण्ठ तथा सिर—इन पाच स्थानो मे सम्मिलित रूप से होता है।[5]

१२. (सू० ४१)

नारदीशिक्षा मे प्राणियों की ध्वनि के साथ सप्त स्वरों का उल्लेख नितान्त भिन्न प्रकार से मिलता है[6]—

षड्ज स्वर—मयूर।

ऋषभ स्वर—गाय।

गांधार स्वर—बकरी।

मध्यम स्वर—क्रौंच।

पचम स्वर—कोयल।

धैवत स्वर—अश्व।

निषाद स्वर—कुंजर।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३७४।

२. लंकावतार सूत्र—अथ रावणो······सहर्ष्य-ऋषभ-गान्धार-धैवत-निषाद-मध्यम-कैशिक-गीतस्वरग्राममूर्च्छनादियुक्तेन ······गाथाभिर्गीतैरनुगायतिस्म।

३. जरनल ऑफ म्यूजिक एकेडमी, मद्रास, सन् १६४५, खंड १६, पृष्ठ १७।

४. नारदीशिक्षा १।५।६,७ :

कण्ठादुत्तिष्ठते षड्जः, शिरसस्त्वृषभः स्मृतः।
गान्धारस्त्वनुनासिक्य, उरसो मध्यमः स्वरः॥
उरसः शिरसः कण्ठादुत्थितः पंचमः स्वरः।
ललाटाद्धैवतं विद्यान्निषादं सर्वसन्धिजम्॥

५. भारतीय सगीत का इतिहास, पृष्ठ १२१।

६. नारदीशिक्षा १।५।४,५ :

षड्जं मयूरो वदति, गावो रम्भन्ति चर्षभम्।
अजावदति तु गान्धार, क्रौंचो वदति मध्यमम्॥
पुष्पसाधारणे काले, पिको वक्ति च पंचमम्।
अश्वस्तु धैवतं वक्ति, निषादं कुञ्जर॥

१३. गवेलक (सू० ४१)

वृत्तिकार ने गवेलक को दो शब्द—गव + एलक मानकर इससे गाय और भेड़—दोनो का ग्रहण किया है और विकल्प में इसे केवल भेड़ का पर्यायवाची माना है।[1]

१४. पंचम स्वर (सू० ४१)

प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त 'अथ' शब्द का विशेष अर्थ है। गवेलक सदा मध्यम स्वर मे बोलते हैं, वैसे ही कोयल सदा पञ्चम स्वर में नही बोलता। वह केवल वसन्त ऋतु मे ही पञ्चम स्वर मे बोलता है।[2]

१५. नरसिंघा (सू० ४२)

एक प्रकार का बड़ा बाजा जो तुरही के समान होता है। यह फूक से बजाया जाता है। जिस स्थान से फूका जाता है वह संकडा और आगे का भाग क्रमश. चौडा होता चला जाता है।

१६. ग्राम (सू० ४४)

यह शब्द समूहवाची है। संवादी स्वरो का वह समूह ग्राम है जिसमे श्रुतिया व्यवस्थित रूप मे विद्यमान हो और जो मूर्च्छना, तान, वर्ण, क्रम, अलकार इत्यादि का आश्रय हो।[3] ग्राम तीन हैं—

षड्जग्राम, मध्यमग्राम और गान्धारग्राम।

षड्जग्राम—इसमे षड्ज स्वर चतु श्रुति, ऋषभ त्रिश्रुति, गान्धार द्विश्रुति, मध्यम चतु श्रुति, पञ्चम चतु श्रुति, धैवत त्रिश्रुति और निषाद द्विश्रुति होता है।[4] इसमे 'षड्ज-पञ्चम', 'ऋषभ-धैवत', 'गान्धार-निषाद' और 'षड्ज-मध्यम'—ये परस्पर सवादी है। जिन दो स्वरों में नौ अथवा तेरह श्रुतियो का अन्तर हो, वे परस्पर सवादी हैं।

शार्ङ्गदेव कहते है—षड्जग्राम नामक राग षड्जमध्यमा जाति से उत्पन्न सम्पूर्ण राग है। इसका ग्रह एवं अंशस्वर तार षड्ज है, न्यासस्वर मध्यम है, अपन्यासस्वर षड्ज है, अवरोही और प्रसन्नान्त अलकार इसमें प्रयोज्य है। इसकी मूर्च्छना षड्जादि [उत्तरमन्द्रा] है। इसमे काकली-निषाद एव अन्तर-गान्धार का प्रयोग होता है, वीर, रौद्र, अद्भुत रसों में नाटक की सन्धि मे इसका विनियोग है। इस राग का देवता बृहस्पति है और वर्षाऋतु में, दिन के प्रथम प्रहर मे, यह गेय है।[5] यह शुद्ध राग है।

मध्यमग्राम—इसमे 'ऋषभ-पञ्चम', 'ऋषभ-धैवत', 'गान्धार-निषाद' और 'षड्ज-मध्यम' परस्पर सवादी है। शार्ङ्गदेव का विधान है कि—

मध्यमग्राम राग का विनियोग हास्य एव शृगार मे है। यह राग गान्धारी, मध्यमा और पञ्चमी जातियो से मिलकर उत्पन्न हुआ है। काकली-निषाद का प्रयोग इसमे विहित है। इस राग का अंश-ग्रह-स्वर मन्द्र षड्ज, न्याय-स्वर मध्यम और मूर्च्छना 'सौवीरी' है। प्रसन्नादि और अवरोही के द्वारा मुखसन्धि मे इसका विनियोग है। यह राग ग्रीष्म ऋतु के प्रथम प्रहर मे गाया जाता है।[6] महर्षि भरत ने सात शुद्ध रागो मे इसे गिना है। इसमे षड्जस्वर चतु.श्रुति, ऋषभ त्रिश्रुति, गान्धार द्विश्रुति, मध्यम चतु श्रुति, पञ्चम त्रिश्रुति, धैवत चतु श्रुति और निषाद द्विश्रुति होता है।

गान्धार ग्राम—महर्षि भरत ने इसकी कोई चर्चा नही की है। उन्होने केवल दो ग्रामो को ही माना है। कुछ आचार्यों ने गान्धार ग्राम और तज्जन्य रागो का वर्णन करके लौकिक विनोद के लिए भी उनके प्रयोग का विधान किया है।[7]

---

१. स्थानागवृत्ति, पत्र ३७४ गवेलग त्ति गावश्च एलकाश्च ऊरणका गवेलका अथवा गवेलका—ऊरणका एव इति।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ३७५ : अथे त्ति विशेषार्थ., विशेषार्थता चैव—यथा गवेलका अविशेषेण मध्यम स्वर नदन्ति न तथा कोकिला. पञ्चम, अपि तु कुसुमसम्भवे काल इति।

३ मतङ्ग भरतकोश, पृष्ठ १८९।

४ भरत. (बम्बई सस्करण) अध्याय २८ पृष्ठ ४३४।

५ सगीतरत्नाकर (अड्यार सस्करण) राग, पृष्ठ २६-२७।

६ सगीतरत्नाकर (अड्यार सस्करण) राग, पृष्ठ ३१।

७. प्रो० रामकृष्णकवि, भरतकोश, पृष्ठ ५४२।

परन्तु अन्य आचार्यों ने लौकिक विनोद के लिए ग्रामजन्य रागों का प्रयोग निषिद्ध बतलाया है।[1] नारद की सम्मति के अनुसार गान्धारग्राम का प्रयोग स्वर्ग में ही होता है।[2] इसमें षड्ज स्वर त्रिश्रुति, ऋषभ द्विश्रुति, गान्धार चतुःश्रुति, मध्यम-पञ्चम और धैवत त्रि-त्रिश्रुति और निषाद चतुःश्रुति होता है। गान्धार ग्राम का वर्णन केवल संगीतरत्नाकर या उसके आधार पर लिखे गए ग्रन्थों में है।

इस ग्राम के स्वर बहुत टेढ़े-मेढ़े हैं अतः गाने में बहुत कठिनाइयां आती हैं। इसी दुरूहता के कारण 'इसका प्रयोग स्वर्ग में होता है'—ऐसा कह दिया गया है।

वृत्तिकार के अनुसार 'मंगी' आदि इक्कीस प्रकार की मूर्च्छनाओं के स्वरों की विशद व्याख्या पूर्वगत के स्वर-प्राभृत मे थी। वह अब लुप्त हो चुका है। इस समय इनकी जानकारी उसके आधार पर निर्मित भरतनाट्य, वैशाखिल आदि ग्रन्थों से जाननी चाहिए।[3]

१७-१९. मूर्च्छना (सू० ४५-४७)

इसका अर्थ है—सात स्वरों का क्रमपूर्वक आरोह और अवरोह।[4] महर्षि भरत ने इसका अर्थ सात स्वरों का क्रम-पूर्वक प्रयोग किया है। मूर्च्छना समस्त रागों की जन्मभूमि है। यह चार प्रकार की होती है—

१. पूर्णा २. षाडवा ३. औडुविता ४. साधारणा।[5]

अथवा—१. शुद्धा २. अंतरसंहिता ३. काकलीसंहिता ४. अन्तरकाकलीसंहिता।[6]

तीन सूत्रों [४५, ४६, ४७] में षड्ज आदि तीन ग्रामों की सात-सात मूर्च्छनाएं उल्लिखित हैं।

भरतनाट्य,[7] संगीतदामोदर, नारदीशिक्षा[8] आदि ग्रंथों मे भी मूर्च्छनाओं का उल्लेख है। वे भिन्न-भिन्न प्रकार से हैं। भरतनाट्य मे गाधार ग्राम को मान्यता नही दी गई है।

मूल सूत्र	भरतनाट्य	संगीतदामोदर	नारदीशिक्षा
	षड्जग्राम की मूर्च्छनाएं		
मंगी	उत्तरमद्रा	ललिता	उत्तरमंद्रा
कौरवीया	रजनी	मध्यमा	अभिरुद्गता
हरित्	उत्तरायता	चित्रा	अश्वक्रान्ता
रजनी	शुद्धषड्जा	रोहिणी	सौवीरा
सारकान्ता	मत्सरीकृता	मतगजा	हृष्यका
सारसी	अश्वक्रान्ता	सौवीरी	उत्तरायता
शुद्धषड्जा	अभिरुद्गता	षण्मध्या	रजनी

---

१. प्रो० रामकृष्ण कवि, भरतकोश, पृष्ठ ५४२।

२. वही, पृष्ठ ५४२।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३७५ :

इह च मङ्गीप्रभृतीनामेकविंशतिमूर्च्छनानां स्वरविशेषाः 'पूर्वगते स्वरप्राभृते भणिताः अधुना तु तद्विनिर्गतेभ्यो भरत-वैशाखिलादिशास्त्रेभ्यो विज्ञेया इति'।

४. संगीतरत्नाकर, स्वर प्रकरण, पृष्ठ १०३, १०४।

५. वही, पृष्ठ ११४।

६. भरत अध्याय २८, पृष्ठ ४३५।

७. भरतनाट्य २८।२७-३० :

आद्या ह्युत्तरमन्द्रा स्याद्, रजनी चोत्तरायता।
चतुर्थी शुद्धषड्जा तु, पञ्चमी मत्सरीकृता॥
अश्वक्रान्ता तु षष्ठी स्यात्, सप्तमी चाभिरुद्गता।
षड्जग्रामाश्रिता एता, विज्ञेया. सप्त मूर्च्छना:।
सौवीरी हरिणाश्वा च, स्यात् कलोपनता तथा॥
चतुर्थी शुद्धमध्यमा तु, मार्गवी पौरवी तथा॥
हृष्यका चैव विज्ञेया, सप्तमी द्विजसत्तमाः।
मध्यमग्रामजा ह्येता, विज्ञेयाः सप्त मूर्च्छनाः॥

८. नारदीशिक्षा १।२।१३,१४।

मध्यमग्राम की मूर्च्छनाएं

उत्तरमंद्रा	सौवीरी	पचमा	नंदी
रजनी	हरिणाश्वा	मत्सरी	विशाला
उत्तरा	कलोपनता	मृदुमध्यमा	सुमुखी
उत्तरायता	शुद्धमध्या	शुद्धा	चित्रा
अश्वक्रान्ता	मार्गी	अन्द्रा	चित्रवती
सौवीरा	पौरवी	कलावती	सुखा
अभिरुद्गता	कृष्यका	तीव्रा	बला

गान्धारग्राम की मूर्च्छनाएं

नंदी		सौद्री	आप्यायनी
क्षुद्रिका		ब्राह्मी	विश्वचूला
पूरका	गान्धार ग्राम का	वैष्णवी	चन्द्रा
शुद्धगांधारा	अस्तित्व नही	खेदरी	हैमा
उत्तरगांधारा	माना है।	सुरा	कपर्दिनी
सुष्ठुतरआयामा		नादावती	मैत्री
उत्तरायता कोटिमा		विशाला	बार्हती

प्रस्तुत चार्ट से मूर्च्छनाओ के नामो मे कितना भेद है, यह स्पष्ट हो जाता है।

नारदीशिक्षा मे जो २१ मूर्च्छनाए बताई गई है उनमे सात का सम्बन्ध देवताओ से, सात का पितरो से और सात का ऋषियो से है। शिक्षाकार के अनुसार मध्यमग्रामीय मूर्च्छनाओ का प्रयोग यक्षो द्वारा, षड्जग्रामीय मूर्च्छनाओ का ऋषियों तथा लौकिक गायको द्वारा तथा गान्धारग्रामीय मूर्च्छनाओं का प्रयोग गन्धर्वो द्वारा होता है।[1]

इस आधार पर मूर्च्छनाओ के तीन प्रकार होते है—देवमूर्च्छनाए, पितृमूर्च्छनाए और ऋषिमूर्च्छनाए।

२०. गीत (सू० ४८)

दशांशलक्षणों से लक्षित स्वरसन्निवेश, पद, ताल एवं मार्ग—इन चार अगों से युक्त गान 'गीत' कहलाता है।[2]

२१, २२. गीत के छह दोष, गीत के आठ गुण (सूत्र ४८)

नारदीशिक्षा में गीत के दोषों और गुणों का सुन्दर विवेचन प्राप्त होता है। उसके अनुसार दोष चौदह और गुण दस है। वे इस प्रकार है—

चौदह दोष[3]—

शंकित, भीत, उद्घृष्ट, अव्यक्त, अनुनासिक, काकस्वर, शिरोगत, स्थानवर्जित, विस्वर, विरस, विश्लिष्ट, विषमाहत, व्याकुल तथा तालहीन।

प्रस्तुत सूत्रगत छह दोषों का समावेश इनमे हो जाता है—

भीत—भीत	ताल-वर्जित—तालहीन
द्रुत—विषमाहत	काकस्वर—काकस्वर
ह्रस्व—अव्यक्त	अनुनास—अनुनासिक

दस गुण[4]—

रक्त, पूर्ण, अलकृत, प्रसन्न, व्यक्त, विकृष्ट, श्लक्ष्ण, सम, सुकुमार और मधुर।

---

१. नारदीशिक्षा १।२।१३, १४।

२. सगीतरत्नाकर, कल्लीनाथकृत टीका, पृष्ठ ११।

३. नारदीशिक्षा १।३।१२,१३।

४. वही, १।३।१

नारदीशिक्षा के अनुसार इन दस गुणों की व्याख्या इस प्रकार है—

१. रक्त—जिसमे वेणु तथा वीणा के स्वरों का गानस्वर के साथ सम्पूर्ण सामंजस्य हो।

२. पूर्ण—जो स्वर और श्रुति से पूरित हो तथा छन्द, पाद और अक्षरों के संयोग से सहित हो।

३. अलकृत—जिसमे उर, सिर और कण्ठ—तीनो का उचित प्रयोग हो।

४. प्रसन्न—जिसमें गद्‌गद् आदि कण्ठ दोष न हो तथा जो निःशंकतायुक्त हो।

५. व्यक्त—जिसमे गीत के पदों का स्पष्ट उच्चारण हो, जिससे कि श्रोता स्वर, लिंग, वृत्ति, वार्तिक, वचन, विभक्ति आदि अंगों को स्पष्ट समझ सके।

६. विक्रुष्ट—जिसमें पद उच्चस्वर से गाए जाते हों।

७. श्लक्ष्ण—जिसमें ताल की लय आद्योपान्त समान हो।

८. सम—जिसमे लय की समरसता विद्यमान हो।

९. सुकुमार—जिसमे स्वरो का उच्चारण मृदु हो।

१०. मधुर—जिसमें सहजकण्ठ से ललित पद, वर्ण और स्वर का उच्चारण हो[१]।

प्रस्तुत सूत्र मे आठ गुणों का उल्लेख है। उपर्युक्त दस गुणों मे से सात गुणों के नाम प्रस्तुत सूत्रगत नामों के समान हैं। अविघुष्ट नामक गुण का नारदीशिक्षा मे उल्लेख नहीं है। अभयदेवकृत वृत्ति की व्याख्या का उल्लेख हम अनुवाद में दे चुके है। यह अन्वेषणीय है कि वृत्तिकार ने ये व्याख्याएं कहाँ से ली थीं।

२३. सम (सू० ४८)

जहां स्वर—ध्वनि को गुरु अथवा लघु न कर आद्योपान्त एक ही ध्वनि मे उच्चारित किया जाता है, वह 'सम' कहलाता है[२]।

२४. पदबद्ध (सू० ४८)

इसे निबद्धपद भी कहा जाता है। पद दो प्रकार का है—निबद्ध और अनिबद्ध। अक्षरो की नियत संख्या, छन्द तथा यति के नियमो से नियन्त्रित पदसमूह 'निबद्ध-पद' कहलाता है[३]।

२५. छन्द (सू० ४८)

तीन प्रकार के छन्द की दूसरी व्याख्या इस प्रकार है—

- सम—जिसमे चारों चरणों के अक्षर समान हों।
- अर्द्धसम—जिसमें पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरण के अक्षर समान हों।
- सर्वविषम—जिसमें सभी चरणों के अक्षर विषम हों।[४]

---

१. नारदीशिक्षा १।३।१-११।

२. भरत का नाट्यशास्त्र २९।४७ :
  सर्वसाम्यात् समो ज्ञेयः, स्थिरस्त्वेकस्वरोऽपि यः ॥

३. भरत का नाट्यशास्त्र ३२।३६।
  नियताक्षरसंबद्धं, छन्दोयतिसमन्वितम्।
  निबद्धं तु पदं ज्ञेयं, नानाछन्दःसमुद्भवम् ॥

४. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३७६ : अन्ये तु व्याचक्षते सम यत्र चतुर्ष्वपि पादेषु समान्यक्षराणि, अर्द्धसम यत्र प्रथमतृतीययोर्द्वितीयचतुर्थयोश्च समत्वं, तथा सर्वत्र—सर्वपादेषु विषम च विषमाक्षरम्।

२६. तन्त्रीसम (सू० ४८)

अनुयोगद्वार में इसके स्थान पर अक्षरसम है। जहाँ दीर्घ, ह्रस्व, प्लुत और सानुनासिक अक्षर के स्थान पर उसके जैसा ही स्वर गाया जाए, उसे अक्षरसम कहा जाता है[1]।

२७. तालसम (सू०४८)

दाहिने हाथ से ताली बजाना 'काम्या' है। बाएं हाथ से ताली बजाना 'ताल' और दोनों हाथों से ताली बजाना 'संनिपात' है[2]।

२८. पावसम (सू० ४८)

अनुयोगद्वार में इसके स्थान पर 'पदसम' है[3]।

२९. लयसम (सू० ४८)

तालक्रिया के अनन्तर [अगली तालक्रिया से पूर्व तक] किया जाने वाला विश्राम लय कहलाता है[4]।

३०. ग्रहसम (सू० ४८)

इसे समग्रह भी कहा जाता है। ताल मे सम, अतीत और अनागत—ये तीन ग्रह हैं। गीत, वाद्य और नृत्य के साथ होने वाला ताल का आरम्भ अवपाणि या समग्रह, गीत आदि के पश्चात् होने वाला ताल आरम्भ अवपाणि या अतीतग्रह तथा गीत आदि से पूर्व होने वाला ताल का प्रारम्भ उपरिपाणि या अनागतग्रह कहलाता है। सम, अतीत और अनागत ग्रहों में क्रमशः मध्य, द्रुत और विलंबित लय होता है[5]।

३१. तानों (सू० ४८)

इसका अर्थ है—स्वर-विस्तार, एक प्रकार की भाषाजनक राग। ग्राम रागो के आलाप-प्रकार भाषा कहलाते है[6]।

३२. कायक्लेश (सू० ४९)

कायक्लेश बाह्य तप का पाचवा प्रकार है। इसका अर्थ जिस किसी प्रकार से शरीर को कष्ट देना नहीं है, किन्तु आसन तथा देह-मूर्च्छा विसर्जन की कुछ प्रक्रियाओ से शरीर को जो कष्ट होता है, उसका नाम कायक्लेश है। प्रस्तुत सूत्र मे इसके सात प्रकार निर्दिष्ट है। ये सब आसन से सम्बन्धित हैं। उत्तराध्ययन मे भी कायक्लेश की परिभाषा आसन के सन्दर्भ में की गई है[7]। औपपातिक सूत्र मे आसनों के अतिरिक्त सूर्य की आतापना, सर्दी मे वस्त्रविहीन रहना, शरीर को न खुजलाना, न थूकना तथा शरीर का परिकर्म और विभूषा न करना—ये भी कायक्लेश के प्रकार बतलाए गए हैं।[8]

१. स्थानायतिक—कायोत्सर्ग मे स्थिर होना।

देखें—उत्तरज्झयणाणि भाग २, पृष्ठ २७१-२७४।

---

१ अनुयोगद्वार ३०७।८ वृत्ति पत्र १२२ : यत्र दीर्घे अक्षरे दीर्घो गीतस्वर क्रियते ह्रस्वे ह्रस्व प्लुते प्लुत सानुनासिके तु सानु-नासिक. तदक्षरसमम्।

२ भरत का संगीत सिद्धान्त, पृष्ठ २३५।

३. अनुयोगद्वार ३०७।८।

४ भरत का सगीतसिद्धान्त, पृष्ठ २४२।

५. सगीतरत्नाकर, ताल, पृष्ठ २६।

६. भरत का सगीतसिद्धान्त, पृष्ठ २२६।

७. उत्तराध्ययन ३०।२६ :

ठाणा वीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा।
उग्गा जहा धरिज्जंति, कायकिलेसं तमाहियं॥

८ औपपातिक, सूत्र ३६ : से किं तं कायकिलेसे ? कायकिलेसे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—ठाणट्ठिइए उक्कुडुयासणिए पडिमट्ठाई वीरासणिए नेसज्जिए आयावए अवाउडए अकंडुयए अणिट्ठुहए सव्वगाय-परिकम्म-विभूस-विप्पमुक्के।

२. उत्कुटुकासन—दोनों पैरों को भूमि पर टिकाकर दोनों पुतों को भूमि से न छुहाते हुए जमीन पर बैठना। इसका प्रभाव वीर्यग्रन्थियों पर पड़ता है और यह ब्रह्मचर्य की साधना में बहुत फलदायी है।

३. प्रतिमास्थायी—भिक्षु-प्रतिमाओं की विविध मुद्राओं में स्थित रहना।

देखें—दशाश्रुतस्कन्ध, दशा सात।

४. वीरासनिक—बद्धपद्मासन की भांति दोनों पैरों को रख, हाथों को पद्मासन की तरह रखकर बैठना। आचार्य अभयदेवसूरी ने सिंहासन पर बैठकर उसे निकाल देने पर जो मुद्रा होती है, उसे वीरासन माना है[1]। इससे धैर्य, सन्तुलन और कष्टसहिष्णुता का विकास होता है।

५. नैषधिक—इसका अर्थ है बैठकर किए जाने वाले आसन। स्थानांग ५।५० मे निषद्या के पांच प्रकार बतलाए हैं—

१. उत्कुटुका—[पूर्ववत्]

२. गोदोहिका—घुटनों को ऊंचा रखकर पंजों के बल पर बैठना तथा दोनों हाथों को दोनों साथलों पर टिकाना।

३. समपादपुता—दोनों पैरों और पुतों को समरेखा में भूमि से सटाकर बैठना।

४. पर्यङ्का—जिनप्रतिमा की भांति पद्मासन में बैठना।

५. अर्द्धपर्यङ्का—एक पैर को ऊरु पर टिकाकर बैठना।

६. दण्डायतिक—दण्ड की तरह सीधे लेटकर दोनों पैरो को परस्पर सटाकर दोनों हाथो को दोनों पैरों से सटाना। इससे दैहिक प्रवृत्ति और स्नायविक तनाव का विसर्जन होता है।

७. लगंडशायी—भूमि पर सीधे लेटकर लकुट की भांति एड़ियों और सिर को भूमि से सटाकर शरीर को ऊपर उठाना। इससे कटि के स्नायुओं की शुद्धि और उदर-दोषों का शमन होता है।

विशेष विवरण के लिए देखें—उत्तरज्झयणाणि—भाग २, पृष्ठ २७१-२७४।

३३. कुलकर (सू० ६२)

सुदूर अतीत मे भगवान् ऋषभ के पहले यौगलिक व्यवस्था चल रही थी। उसमे न कुल था, न वर्ग और न जाति। उस समय एक युगल ही सब कुछ होता था। काल के परिवर्तन के साथ यह व्यवस्था टूटने लगी तब 'कुल' व्यवस्था का विकास हुआ। इस व्यवस्था मे लोग 'कुल' के रूप में संगठित होकर रहने लगे। प्रत्येक कुल का एक मुखिया होता उसे 'कुलकर' कहा जाता। वह कुल का सर्वेसर्वा होता और उसे व्यवस्था बनाए रखने के लिए अपराधी को दण्ड देने का अधिकार भी होता था। उस समय मुख्य कुलकर सात हुए थे, जिनके नाम प्रस्तुत सूत्र मे दिए गए है। इनका विस्तार से वर्णन आवश्यकनिर्युक्ति गाथा १५२-१६६ में हुआ है।

देखें—स्थानाग १०।१४३, १४४ का टिप्पण।

३४. दंडनीति (सू० ६६) :

प्रथम तीन दंडनीतियां कुलकरों के समय में प्रवर्तमान थीं। पहले और दूसरे कुलकर के समय में 'हाकार', तीसरे और चौथे कुलकर के समय में छोटे अपराध में हाकार और बड़े अपराध में 'माकार' दंडनीति प्रचलित थी। पांचवें, छठे और सातवें कुलकरों के समय में छोटे अपराध के लिए हाकार, मध्यम अपराध के लिए माकार और बड़े अपराध के लिए धिक्कार दंडनीति प्रचलित थी।[2] शेष चार चक्रवर्ती भरत के समय मे प्रवर्तित हुई।[3] एक अभिमत यह भी है कि अन्तिम चारों

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३७८ :
वीरासनिको—य' सिंहासननिविष्टमिवास्ते।

२. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १६७, १६८ :
हक्कारे मक्कारे धिक्कारे चेव दंडनीईओ।
वुच्छं तासि विसेसं जहक्कमं आणुपुव्वीए॥
पढमबीयाण पढमा तइयचउत्थाण अभिनवा बीया।
पंचमछट्ठस्स य, सत्तमस्स तइया अभिनवा उ॥

३. (क) आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १६६.
सेसा उ दंडनीई, माणकानिहीओ होति भरहस्स।

(ख) आवश्यकनिर्युक्तिभाष्य, गाथा ३ (आवश्यकनिर्युक्ति अवचूर्णि पृष्ठ १७५ पर उद्धृत)
परिभासणा उ पढमा, मंडलबंधम्मि होइ बीया उ।
चारग छविच्छेआई, भरहस्स चउव्विहा नीई॥

में से प्रथम दो—परिभाषा और मंडलबंध—भगवान् ऋषभ ने प्रवर्तित की और अन्तिम दो चक्रवर्ती भरत के माणवकनिधि से उत्पन्न हुई तथा वे चारों भरत के शासनकाल मे प्रचलित रही।[1] आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति मे चारों दंडनीतियों को भरत द्वारा ही प्रवर्तित माना है।[2] यह भी माना गया है कि बंध-बेड़ी का प्रयोग और घात-डंडे का प्रयोग ऋषभ के राज्य में प्रवृत्त हुए तथा मृत्युदंड भरत के राज्य से चला।[3]

३५-३६. (सू० ६७, ६८) :

प्रस्तुत दो सूत्रों मे चक्रवर्ती के सात एकेन्द्रिय रत्न और सात पञ्चेन्द्रिय रत्नो का उल्लेख है।

इन्हे रत्न इसलिए कहा गया है कि ये अपनी-अपनी जाति के सर्वोत्कृष्ट होते है।

चक्र आदि सात रत्न पृथ्वीकाय के जीवो के शरीर से बने हुए होते है, इसलिए इन्हे एकेन्द्रिय कहा जाता है।[4] इन सातों का प्रमाण इस प्रकार है[5]—चक्र, छत्र और दंड—ये तीनो व्याम[6]-तुल्य है—तिरछे फैलाए हुए दोनो हाथों की अंगुलियों के अतराल जितने बडे हैं। चर्म दो हाथ लम्बा होता है। असि बत्तीस अंगुल का, मणि चार अगुल लम्बा और दो अंगुल चौड़ा होता है तथा काकिणी की लम्बाई चार अंगुल होती है। इन रत्नो का मान तत्-तत् चक्रवर्ती की अपनी-अपनी अगुल के प्रमाण से है।

इनमें चक्र, छत्र, दंड और असि की उत्पत्ति चक्रवर्ती की आयुधशाला मे तथा चर्म, मणि और कागणि की उत्पत्ति चक्रवर्ती के श्रीघर मे होती है।

सेनापति, गृहपति, वर्द्धकि और पुरोहित—ये चार पुरुषरत्न है। इनकी उत्पत्ति चक्रवर्ती की राजधानी विनीता में होती है।

अश्व और हस्ती—ये दो पञ्चेन्द्रिय रत्न है। इनकी उत्पत्ति वैताढ्यगिरि की उपत्यका में होती है।

स्त्री रत्न की उत्पत्ति उत्तरदिशा की विद्याधर श्रेणी मे होती है।[7]

प्रवचनसारोद्धार मे इन चौदह रत्नो की व्याख्या इस प्रकार है[8]—

१. सेनापति—यह दलनायक होता है तथा गगा और सिन्धु नदी के पार वाले देशों को जीतने मे बलिष्ठ होता है।

२. गृहपति—चक्रवर्ती के गृह की समुचित व्यवस्था मे तत्पर रहने वाला। इसका काम है शाली आदि सभी धान्यों, सभी प्रकार के फलों और सभी प्रकार की शाक-सब्जियो का निष्पादन करना।

---

१. आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ १३१ : अन्नेसिं परिभासा मडलबधो य उसभसामिणा उप्पावितो, चारगच्छविच्छेदो माणवगणिधीतो।

२ आवश्यकनिर्युक्ति, अवचूर्णि पृष्ठ १७६ मे उद्धृत :—हारिभद्रीय-वृत्तौ तु चतुर्विधापि भरतेनैव प्रवर्त्तितेति।

३. आवश्यकभाष्य, गाथा १८, १६, आवश्यकनिर्युक्ति अवचूर्णि पृ० १६३, १६४।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३७६ : रत्न निगद्यते तत् जातौ जातौ यदुत्कृष्ट मितिवचनात् चक्रादिजातिषु यानि वीर्यत उत्कृष्टानि तानि चक्ररत्नादीनि मन्तव्यानि, तत्र चक्रादीनि सप्तैकेन्द्रियाणि—पृथिवीपरिणामरूपाणि।

५. प्रवचनसारोद्धार, गाथा १२१६, १२१७ :

चक्क छत्त दड तिन्निवि एयाइ वाममित्ताइ।
चम्म दुहत्थदीह बत्तीस अगुलाइ असी॥
चउरगुलो मणी पुण तस्सद्ध चेव होई विच्छिन्नो।
चउरंगुलप्पमाणा सुवन्नवरकागिणी नेया॥

६ प्रवचनसारोद्धारवृत्ति, पत्र ३५१ : चक्र छत्र दडमित्येतानि त्रीण्यपि रत्नानि व्यामप्रमाणानि। व्यामो नाम प्रसारितोभयबाहो पुमस्तिर्यग्हस्तद्वयांगुलयोरतरालम्।

७ आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ २०७ भरहस्स ण रन्नो चक्करयणे छत्तरयणे दडरयणे असिरयणे एते ण चत्तारि एगिदियरयणा आयुधसालाए समुप्पन्ना, चम्मरयणे मणिरयणे कागणिरयणे णव य महाणिहओ एते ण सिरिघरसि समुप्पन्ना, सेणावतिरयणे गाहावतिरयणे वड्ढतिरयणे पुरोहितरयणे एते ण चत्तारि मणुयरयणा विणीताए रायहाणीए समुप्पन्ना, आसरयणे हत्थिरयणे एते ण दुवे पचेंदियरयणा वेयड्ढगिरिपादमूले समुप्पन्ना, इत्थिरयणे उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए समुप्पन्ने।

८. प्रवचनसारोद्धार वृत्ति, पत्र ३५०, ३५१।

३. पुरोहित—ग्रहों की शांति के लिए उपक्रम करने वाला।

४. हाथी }
५. घोड़ा } अत्यन्त वेग और महान् पराक्रम से युक्त।

६. वर्धकी—गृह, निवेश आदि के निर्माण का कार्य करने वाला। यह तमिस्रगुहा मे उन्मग्नजला और निमग्नजला—इन दो नदियों को पार करने के लिए सेतु का निर्माण करता है। चक्रवर्ती की सेना इन्ही सेतुओ से नदी पार करती है।

७. स्त्री—अत्यन्त अद्भुत् काम-जन्य सुख को देने वाली होती है।

८. चक्र—सभी आयुधों मे श्रेष्ठ तथा दुर्दम शत्रु पर विजय पाने में समर्थ।

९. छत्र—यह चक्रवर्ती के हाथ का स्पर्श पाकर बारह योजन लम्बा-चौडा हो जाता है। यह विशिष्ट प्रकार से निर्मित, विविध धातुओं से समलंकृत, विविध चिह्नों से मंडित तथा धूप, हवा, वर्षा से बचाने मे समर्थ होता है।

१० चर्म—बारह योजन लम्बे चौड़े छत्र के नीचे प्रातःकाल में बोए गए शाली आदि बीजो को मध्याह्न में उपभोग योग्य बनाने मे समर्थ।

११. मणि—यह वैडूर्यमय, तीन कोने और छह अंश वाला होता है। यह छत्र और चर्म—इन दो रत्नों के बीच स्थित होता है। यह बारह योजन में विस्तृत चक्रवर्ती की सेना मे सर्वत्र प्रकाश बिखेरता है। जब चक्रवर्ती तमिस्रगुहा और खडप्रपात गुहा मे प्रवेश करता है तब उसके हस्तिरत्न के शिर के दाहिनी ओर इस मणि को बाँध दिया जाता है। तब बारह योजन तक तीनो दिशाओ मे दोनो पार्श्वों मे तथा आगे इसका प्रकाश फैलता है। इसको हाथ या सिर पर बाँधने से देव, तिर्यञ्च "और मनुष्य द्वारा कृत सभी प्रकार के उपद्रव तथा रोग नष्ट हो जाते हैं। इसको सिर पर या शरीर के किसी अंग-उपांग पर धारण कर संग्राम में जाने से किसी भी शस्त्र-अस्त्र से वह व्यक्ति अवध्य और सभी प्रकार के भयों से मुक्त होता है। इस मणिरत्न को अपनी कलाई पर बाँध कर रखने वाले व्यक्ति का यौवन स्थिर रहता है तथा उसके केश और नख भी बढ़ते-घटते नही।

१२. काकिणी—यह आठ सौवर्णिक प्रमाण का होता है। यह चारों ओर से सम तथा विष को नष्ट करने में समर्थ होता है। जहां चाँद, सूरज, अग्नि आदि अधकार को नष्ट करने मे समर्थ नही होते, वैसी तमिस्रगुहा मे यह काकिणी रत्न अन्धकार को समूल नष्ट कर देता है। इसकी किरणें बारह योजन तक फैलती है। यह सदा चक्रवर्ती के स्कधावार में स्थापित रहता है। इसका प्रकाश रात को भी दिन बना देता है। इसके प्रभाव से चक्रवर्ती द्वितीय अर्धभरत को जीतने के लिए सारी सेना के साथ तमिस्रगुहा मे प्रवेश करता है।

१३. खड्ग (असि)—सग्राम भूमि मे इसकी शक्ति अप्रतिहत होती है। इसका वार खाली नही जाता।

१४. दंड—यह वज्रमय होता है। इसकी पाँचों लताएँ रत्नमय होती हैं और यह सभी शत्रुओ की सेनाओं को नष्ट करने मे समर्थ होता है। यह चक्रवर्ती के स्कधावार में जहाँ कही विषमता होती है, उसे सम करता है और सर्वत्र शांति स्थापित करता है। यह चक्रवर्ती के सभी मनोरथों को पूरा करता है तथा उसके हितों को साधता है। यह दिव्य और अप्रतिहत होता है। विशेष प्रयत्न से इसका प्रहार करने पर यह हजार योजन तक नीचे जा सकता है।

३७ आयुष्य-भेद (सू० ७२)

षट्प्राभृत मे आयुःक्षय के कई कारण माने हैं[1]—

---

१. षट्प्राभृत, भावप्राभृत गाथा २५, २६ :

विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसाणं।
आहारुस्सासाणं णिरोहणा खिज्जए आऊ॥
हिमजलणसलिलगुरुयरपव्वयतरुरुहणपडणभंगेहिं।
रसविज्जजोयधारणअणयपसंगेहिं विविहेहिं॥

१. विष का सेवन
२. वेदना
३. रक्तक्षय
४. भय
५. शस्त्र
६. भूत, पिशाच आदि से ग्रस्त
७. संक्लेश
८. आहार का निरोध
९. श्वासोच्छ्वास का निरोध

इनके अतिरिक्त

१. हिम—अत्यधिक ठंड
२. अग्नि
३. जल
४. ऊँचे पर्वत से गिरना
५ ऊँचे वृक्ष से गिरना
६. रसों या विद्याओं का अविधिपूर्वक सेवन ।

ये भी अपमृत्यु के कारण होते है ।

३८. अर्हत्-मल्ली (सू० ७५) :

आवश्यकनिर्युक्ति के अनुसार मल्लीनाथ के साथ तीन सौ पुरुष प्रव्रजित हुए थे ।[1] स्थानाग मे भी इनके साथ तीन सौ पुरुषों के प्रव्रजित होने का ही उल्लेख है ।[2]

स्थानाग की वृत्ति मे अभयदेवसूरि ने 'मल्लिजिनः स्त्रीशतैरपित्रिभिः'—मल्ली के साथ तीन सौ स्त्रियों के प्रव्रजित होने की भी बात स्वीकार की है ।[3]

आवश्यकनिर्युक्ति गाथा २२४ की दीपिका मे मल्लीनाथ के साथ तीन सौ पुरुष और तीन सौ स्त्रियो—छह सौ व्यक्तियों के प्रव्रजित होने का उल्लेख है ।[4]

प्रवचनसारोद्धार के वृत्तिकार का अभिमत भी यही है ।[5]

प्रस्तुत सूत्र मे मल्ली के अतिरिक्त छह प्रधान व्यक्तियो के नाम गिनाए गए है । वे सब मल्ली के पूर्वभव के साथी थे और वे सब साथ-साथ दीक्षित भी हुए थे । प्रस्तुत भव मे भी वे मल्ली के साथ दीक्षित होते हैं । वे मल्ली के साथ प्रव्रजित होने वाले तीन सौ पुरुषो में से ही थे । वे विशेष व्यक्ति थे तथा मल्ली के पूर्वभव के साथी थे, अतः उनका पृथक् उल्लेख किया गया है । उन सबका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. मल्ली—विदेह जनपद की राजधानी मिथिला मे कुंभ नाम का राजा राज्य करता था । उसकी रानी का नाम प्रभावती था । उसने एक पुत्री को जन्म दिया । माता-पिता ने उसका नाम मल्ली रखा । वह अब लगभग सौ वर्ष की हुई तब एक दिन उसने अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव के छह मित्रो की उत्पत्ति के विषय मे जाना और उनको प्रतिबोध देने के लिए एक उपाय ढूंढा । उसने अपने घर के उपवन में अपना सोने का एक पोला प्रतिबिम्ब बनाया । उसके मस्तक में एक छिद्र रखा गया था । वह उस छिद्र मे प्रतिदिन अपने भोजन का एक ग्रास डाल देती और उस छिद्र को ढँक देती ।

२ राजा प्रतिबुद्धि—साकेत नगरी मे प्रतिबुद्धि राजा राज्य करता था । एक बार वह पद्मावती देवी द्वारा किये जाने वाले नागयज्ञ मे भाग लेने गया और वहां अपूर्व श्रीदामगंडक (माला) को देखकर अतिविस्मित हुआ और अपने अमात्य से पूछा—'क्या तुमने पहले कही ऐसी माला देखी है ?' अमात्य ने कहा —'देव ! विदेह राजा की कन्या मल्ली के पास जो दामगंडक है, उसके लक्षांश मे भी यह तुलनीय नही होती ।' राजा ने पुनः पूछा—'बताओ वह कैसी है ?' अमात्य ने कहा—'राजन् ! उस जैसी दूसरी है ही नही, तब भला मैं कैसे बताऊं कि वह कैसी है ?'

---

१ आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा २२४
पासो मल्लीअ तिहि तिहि सएहिं ।

२. स्थानाग ३।५३० ।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र १६८ ।

४ आवश्यकनिर्युक्तिदीपिका, पत्र ६३ . मल्लिस्त्रिभिर्नृशतैः स्त्रीशतैश्चेत्यनुक्तमपि ज्ञेयम् ।

५. प्रवचनसारोद्धारवृत्ति, पत्र ६६ ।

राजा का मन विस्मय से भर गया। उसका सारा अध्यवसाय मल्ली की ओर लग गया और उसने विवाह का प्रस्ताव देकर अपने दूत को मिथिला की ओर प्रस्थान कराया।

३. राजा चन्द्रच्छाय—चम्पा नगरी में चन्द्रच्छाय नाम का राजा राज्य करता था। वहाँ अर्हन्नक नाम का एक समुद्र-व्यापारी रहता था। एक बार वह लम्बी सामुद्रिक यात्रा से निवृत्त हो अपने नगर मे आया और दो दिव्य कुंडल राजा को भेंट देने राजसभा में गया। राजा ने पूछा—'तुम लोग अनेक-अनेक देशों में घूमते हो। वहाँ तुमने कहीं कुछ आश्चर्य देखा है।' अर्हन्नक ने कहा—स्वामिन्! इस बार सामुद्रिक यात्रा में एक देव ने हमको धर्म से विचलित करने के लिए अनेक उपसर्ग उत्पन्न किए। हम धर्म पर अडिग रहे। देव ने विविध प्रकार से प्रयास किया, परन्तु वह हमें विचलित करने मे असफल रहा तब उसने प्रसन्न होकर हमें दो कुंडल युगल दिये। हम जब मिथिला मे गए तब एक कुंडल युगल हमने राजा कुंभ को उपहार रूप दिया। उसने अपने हाथों से मल्ली को वे कुंडल पहनाए। उस कन्या को देख हम अत्यन्त विस्मित हुए। ऐसा रूप और लावण्य हमने अन्यत्र कहीं नहीं देखा।'

राजा ने यह सुना और मल्ली कन्या को पाने के लिए छटपटा उठा। उसने अपने दूत को मिथिला की ओर प्रस्थान कराया।

४. राजा रुक्मी—श्रावस्ती नगरी में रुक्मीराज नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पुत्री का नाम सुबाहु था। एक बार उसके चातुर्मासिक मज्जनक महोत्सव के समय राजा ने नगर के चौराहे पर एक सुन्दर मंडप बनवाया और उस दिन वह वहीं बैठा रहा। कन्या सुबाहु सज्जित होकर अपने पिता को वन्दन करने वहाँ आई। राजा ने उसे गोद में बिठा लिया और उसके रूप-लावण्य को अत्यन्त गौर से देखने लगा। उसने वर्षधर से पूछा—'क्या अन्य किसी कन्या का ऐसा मज्जनक महोत्सव कहीं देखा है?' उसने कहा—'राजन्! जैसा मज्जनक महोत्सव मल्ली कन्या का देखा है, उसकी तुलना मे यह कुछ नहीं है। उसकी रमणीयता का यह लक्षांश भी नहीं है।'

राजा ने मल्ली का वरण करने के लिए अपने दूत के साथ विवाह का प्रस्ताव भेजा। दूत मिथिला की ओर चल पड़ा।

५. राजा शंख—एक बार कन्या मल्ली के कुंडलों की संधि टूट गई। उसे जोड़ने के लिए महाराज कुंभक ने स्वर्णकारों को बुलाया और कुंडलों को ठीक करने के लिए कहा। स्वर्णकार उन्हे ठीक करने में असमर्थ रहे। राजा ने उन्हे देश-निकाला दे दिया।

वे स्वर्णकार वाणारसी के राजा शंखराज की शरण में आए। राजा ने उनके देश-निष्कासन का कारण पूछा। उन्होंने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने पूछा—'मल्ली कन्या कैसी है?' उन्होंने उसके रूप और लावण्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

राजा मल्ली मे आसक्त हो गया। उसने विवाह का प्रस्ताव देकर अपने दूत को मिथिला की ओर भेजा।

६. राजा अदीनशत्रु—एक बार मल्लीकुमारी के छोटे भाई मल्लदिन्न ने अपनी अन्तःपुर की चित्रशाला को चित्रकारों से चित्रित कराया। उन चित्रकारों मे एक युवक चित्रकार था। उसे चित्रकला में विशेष लब्धि प्राप्त थी। एक बार उसने परदे के भीतर बैठी हुई मल्ली का अंगूठा देख लिया। उस अंगूठे के आकार के आधार पर उसने मल्ली का पूरा चित्र चित्रित कर डाला। कुमार मल्लदिन्न अन्तःपुर की चित्रशाला मे पहुचा और विविध प्रकार के चित्रों को देख विस्मय से भर गया। देखते-देखते उसने मल्ली का रूप देखा। उसे साक्षात् मल्लीकुमारी समझकर सोचा—'अहो! यह तो मेरी बड़ी बहिन मल्ली है। मैंने यहां आकर इसका अविनय किया है।' वह अत्यन्त लज्जित हो, एक ओर जाने लगा। जो धाय माता वहा उपस्थित थी, उसने कहा—'कुमार! यह तो आपके भगिनी का चित्र-मात्र है।' यह सुनकर कुमार स्तंभित सा रह गया। अस्थान पर ऐसे चित्र को चित्रित करने के कारण उसने चित्रकार के वध का आदेश दे दिया। चित्रकारों का मन बहुत दुःखी हुआ। उन्होंने उसे छोड़ने के लिए कुमार से प्रार्थना की। किन्तु कुमार ने उसकी छेनी को तोड़कर उसे देश से निष्कासित कर डाला।

वह युवा चित्रकार हस्तिनागपुर के राजा अदीनशत्रु की शरण मे चला गया। राजा ने उसके आगमन का कारण पूछा। उसने सारी घटना कह सुनाई।

राजा ने अपने दूत को विवाह का प्रस्ताव देकर मिथिला की ओर भेजा।

७. राजा जितशत्रु—एक बार चोक्षा नाम की परिव्राजिका मल्ली के भवन में आई। वह दानधर्म और शौचधर्म का निरूपण करती थी। मल्ली ने उसे पराजित कर दिया। परिव्राजिका कुपित होकर काम्पिल्यपुर के राजा जितशत्रु की शरण में चली गई। राजा ने कहा—तुम देश-देशातरों में घूमती हो। क्या कहीं तुमने हमारे अन्तःपुर की रानियों के सदृश रूप और लावण्य देखा है? उसने कहा—महाराज! मल्ली कन्या के समक्ष आपकी सभी रानिया फीकी लगती हैं। ये सब उसके पद-नख से भी तुलनीय नहीं है।

राजा मल्ली को पाने अधीर हो उठा। उसने भी अपना दूत वहा भेज दिया।

इस प्रकार साकेत, चम्पा, श्रावस्ती, वाणारसी, हस्तिनागपुर और काम्पिल्य के राजाओ के दूत मिथिला पहुंचे और अपने-अपने महाराजा के लिए मल्ली की याचना की। राजा कुम्भ ने उन्हे निरस्कृत कर नगर से निकाल दिया।

वे छहों दूत अपने-अपने स्वामी के पास आए और सारी घटना कह सुनाई। छहों राजाओं ने अत्यन्त कुपित होकर मिथिला की ओर प्रस्थान कर दिया।

राजा कुंभ ने यह सुना और वह अपनी सेना को सज्जित कर सीमा पर जा बैठा। युद्ध प्रारंभ हुआ। छहो राजाओं की सेना के समक्ष राजा कुम्भ की सेना ठहर नही सकी। वह हार गया। तब मल्ली ने गुप्त रूप से छहों राजाओं के पास एक-एक व्यक्ति को भेजकर यह कहलाया कि—आपको मल्ली वरण करना चाहती है। छहो राजा नगर मे आए और उसी उद्यान मे ठहरे जहां मल्ली की प्रतिमा स्थित थी। मल्ली की प्रतिमा को देख वे अत्यन्त आसक्त हो गए और निर्निमेष दृष्टि से उसे देखने लगे। मल्लीकुमारी वहा आई और प्रतिमा के शिर पर दिए ढक्कन को उठाया। उससे दुर्गन्ध फूटने लगी। सभी नाक बंद कर दूर जा बैठे। मल्ली उनके समक्ष आकर बोली—'अरे! आपने नाक क्यो बंद कर डाला है?' उन्होने कहा—'दुर्गन्ध फूट रही है।' मल्ली ने पुद्गलो के परिणाम की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करते हुए उन्हें कामभोगों में आसक्त न होने के लिए प्रेरित किया।

सभी को जातिस्मृति उत्पन्न हुई। सभी प्रव्रज्या के लिए तैयार हुए। मल्ली ने कहा—'आप अपने-अपने राज्य में जाकर राज्य की व्यवस्था कर मेरे पास आएं।' सबने यह स्वीकार किया। पश्चात् मल्लीकुमारी छहों राजाओं को राजा कुंभ के पास ले आई और उन्हें कुंभ के चरणो मे प्रणत कर विसर्जित किया।[1] अन्त में 'पोष शुक्ला एकादशी को कुमारी मल्ली इन छहों राजाओ के साथ तथा नन्द और नंदिमित्र आदि नागवशीय कुमारो तथा तीन सौ पुरुषों और तीन सौ स्त्रियों के साथ दीक्षित हुई।[2]

वृत्तिकार का अभिमत है कि मल्ली को केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद उसने इन सबको दीक्षित किया था।[3]

वृत्तिकार के इस अभिमत का आधार क्या है, वह अन्वेष्टव्य है।

३९. उपकरण की विशेषता (सू० ८१)

आचार्य और उपाध्याय के सात अतिशेष होते है, उनमें छठा है उपकरण-अतिशेष। इसका अर्थ है—अच्छे और उज्ज्वल वस्त्र आदि उपकरण रखना। यह पुष्ट परपरा रही है कि आचार्य और रोगी साधु के वस्त्र बार-बार धोने चाहिए। क्योंकि आचार्य के वस्त्र न धोने से लोगों मे अवज्ञा होती है और रोगी के वस्त्र न धोने से उसे अजीर्ण आदि रोग उत्पन्न होते हैं।[4]

देखें—५।१६६ का टिप्पण।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३८०-३८२।

२. वही, पत्र ३८२ : पोषशुद्धैकादश्यामष्टमभक्तेनाश्विनीनक्षत्रे तैः षड्भिर्नृपतिभिर्नन्दनन्दिमित्रादिभिर्नागवंशकुमारैस्तथा बाह्यपर्षदा पुरुषाणां त्रिभिः शतैरभ्यन्तरपर्षदा च त्रिभिः शतैः सह प्रवव्राज।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३८२ : उत्पन्नकेवलश्च तान् प्रव्राजितवानिति।

४. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३८४ :

आयरियगिलाणाणं मइला मइला पुणोवि धोवंति।
मा हु गुरूण अवण्णो लोगम्मि अजीरणं इयरे॥

४०-४१ (सू० ८२,८३)

समवायांग में संयम[1] और असंयम[2] के सतरह-सतरह प्रकार बतलाए गए हैं। उनमें से यहां सात-सात प्रकारों का निर्देश है।

४२-४४ (सू० ८४-८६)

प्रस्तुत सूत्रों में—आरंभ, संरंभ और समारंभ—इन तीन शब्दों का उल्लेख है। ये क्रमबद्ध नहीं हैं। इनका क्रम है—संरंभ, समारंभ और आरंभ। वृत्तिकार ने इनका अर्थ इस प्रकार किया है[3]—

आरम्भ—वध।

संरंभ—वध का संकल्प।

समारंभ—परिताप।

उत्तराध्ययन २४।२०-२५ तथा तत्त्वार्थ ६।८ में इनका क्रमबद्ध उल्लेख है।

तत्त्वार्थवार्तिक में इनकी व्याख्या इस प्रकार है[4]—

संरंभ—प्रवृत्ति का संकल्प।

समारंभ—प्रवृत्ति के लिए साधन-सामग्री को जुटाना।

आरंभ—प्रवृत्ति का प्रारंभ।

४५. (सू० ९०)

तीसरे स्थान [सूत्र १२५] मे शाली, व्रीहि आदि कुछ धान्यों के योनि-विच्छेद का निरूपण किया है। प्रस्तुत सूत्र में उन धान्यों का निरूपण है जिनका योनि-विच्छेद सात वर्षों के पश्चात् होता है।

देखें—३।१२५ का टिप्पण।

४६. (सू० १०१)

समवायाग ७७।३ में गर्दतोय और तुषित—दोनो के संयुक्त परिवार की संख्या सतहत्तर हजार बतलाई है। प्रस्तुत सूत्र से वह भिन्न है।

देखें—समवायांग ७७।३ का टिप्पण।

४७. श्रेणियां (सू० ११२)

श्रेणी का अर्थ है—आकाश प्रदेश की वह पक्ति जिसके माध्यम से जीव और पुद्गलो की गति होती है। जीव और पुद्गल श्रेणी के अनुसार ही गति करते है—एक स्थान से दूसरे स्थान में जाते है। श्रेणियां सात है—

१. ऋजु-आयता—जब जीव और पुद्गल ऊचे लोक से नीचे लोक मे और नीचे लोक से ऊंचे लोक में जाते हुए सम-रेखा मे गति करते हैं, कोई घुमाव नहीं लेते, उस मार्ग को ऋजु-आयात [सीधी और लंबी] श्रेणी कहा जाता है। इस गति में केवल एक समय लगता है।

२. एकतोवक्रा—आकाश प्रदेश की पंक्तियां—श्रेणियां—ऋजु ही होती हैं। उन्हें जीव या पुद्गल की घुमावदार गति—एक दिशा से दूसरी दिशा में गमन करने की अपेक्षा से वक्रा कहा गया है। जब जीव और पुद्गल ऋजु गति करते-करते दूसरी श्रेणी में प्रवेश करते हैं तब उन्हें एक घुमाव लेना होता है इसलिए उस मार्ग को 'एकतोवक्रा श्रेणी' कहा जाता

---

१. समवायांग, १७।२।
२. वही, १७।१।
३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३८४।
४. तत्त्वार्थवार्तिक, पृष्ठ ५१३, ५१४।

है, जैसे—कोई जीव या पुद्गल नीचे लोक की पूर्व दिशा से च्युत होकर ऊंचे लोक की पश्चिम दिशा में जाता है तो पहले-पहल वह ऋजुगति के द्वारा ऊंचे लोक की पूर्व दिशा में पहुचता है—समश्रेणी गति करता है। वहां से वह पश्चिम दिशा की ओर जाने के लिए एक घुमाव लेता है।

३. द्वितोवक्रा—जिस श्रेणी में दो घुमाव लेने पड़ते हैं उसे 'द्वितोवक्रा' कहा जाता है। जब जीव ऊंचे लोक के अग्निकोण [पूर्व-दक्षिण] मे मरकर नीचे लोक के वायव्य कोण [उत्तर-पश्चिम] में उत्पन्न होता है तब वह पहले समय में अग्निकोण से तिरछी-गति कर नैऋत कोण की ओर जाता है। दूसरे समय मे वहा से तिरछा होकर वायव्य कोण की ओर जाता है। तीसरे समय मे नीचे वायव्य कोण में जाता है। यह तीन समय की गति त्रसनाड़ी अथवा उसके बाहरी भाग में होती है। पुद्गल की गति भी इसी प्रकार होती है।

४. एकतःखहा—जब स्थावर जीव त्रसनाडी के बायें पार्श्व से उसमे प्रवेश कर उसके बायें या दाएँ किसी पार्श्व में दो या तीन घुमाव लेकर नियत स्थान में उत्पन्न होता है। उसके त्रसनाडी के बाहर का आकाश एक ओर से स्पृष्ट होता है है इसलिए इसे 'एकत.खहा' कहा जाता है। इसमे भी एकतोवक्रा, द्वितोवक्रा श्रेणी की भाति वक्र गति होती है किन्तु त्रसनाडी की अपेक्षा से इसका स्वरूप उनसे भिन्न है। पुद्गल की गति भी इसी प्रकार की होती है।

५. द्वितःखहा—जब स्थावर जीव त्रसनाड़ी के किसी एक पार्श्व से उसमे प्रवेश कर उसके बाह्यवर्ती दूसरे पार्श्व में दो या तीन घुमाव लेकर नियत स्थान में उत्पन्न होता है, उसके त्रसनाडी के बाहर का दोनों ओर का आकाश स्पृष्ट होता है इसलिए उसे 'द्वितःखहा' कहा जाता है। पुद्गल की गति भी इसी प्रकार होती है।

६. चक्रवाला—इस आकार मे जीव की गति नही होती, केवल पुद्गल की ही गति होती है।

७. अर्द्धचक्रवाला।

इन सात श्रेणियो का उल्लेख भगवती २५।३ और ३४।१ मे भी मिलता है। ३४।१ मे बताया गया है—ऋजु-आयत श्रेणी मे उत्पन्न होने वाला जीव एक सामयिक विग्रहगति से उत्पन्न होता है। एकतोवक्रा श्रेणी मे उत्पन्न होने वाला जीव द्वि-सामयिक विग्रहगति से उत्पन्न होता है। द्वितोवक्रा श्रेणी मे उत्पन्न होने वाला जीव एक प्रतर मे समश्रेणी मे उत्पन्न होता है तो वह त्रि-सामयिक विग्रहगति करता है और यदि वह विश्रेणी मे उत्पन्न होता है तो चतु सामयिक विग्रहगति करता है।

एक ओर से वक्र आदि आकारवाली प्रदेशो की पक्तिया लोक के अन्त में स्थित प्रदेशो की अपेक्षा से है।

इन सातों श्रेणियों की स्थापना इस प्रकार है—

श्रेणी		स्थापना
१, ऋजु-आयत	—	—
२. एकतोवक्रा	—	⌐
३. द्वितोवक्रा	—	⌐∟
४. एकत:खहा	—	⌐
५. द्वित खहा	—	⌐—○—¬
६. चक्रवाला	—	○
७. अर्द्धचक्रवाला	—	C

४८. विनय (सू० १३०)

विनय का एक अर्थ है—कर्म पुद्गलों का विनयन—विनाश करने वाला प्रयत्न। इस परिभाषा के अनुसार ज्ञान, दर्शन आदि को विनय कहा गया है, क्योकि उनके द्वारा कर्म पुद्गलो का विनयन होता है। विनय का दूसरा अर्थ है—भक्ति-बहुमान आदि करना। इस परिभाषा के अनुसार ज्ञान-विनय का अर्थ है—ज्ञान की भक्ति-बहुमान करना। तपस्या का पूर्णांग एवं व्यवस्थित निरूपण औपपातिक में मिलता है। वहा ज्ञान-विनय के पाच, दर्शन-विनय के दो, चारित्र-विनय के पांच प्रकार बतलाए गए है।[1] सख्या की असमानता के कारण वे यहाँ निर्दिष्ट नही हैं।

---

१. ओवाइय, सूत्र ४०।

औपपातिक [सू० ४०] में प्रशस्त और अप्रशस्त मन तथा वचन विनय के बारह-बारह प्रकार निर्दिष्ट हैं। किन्तु यहां संख्या नियमन के कारण उनके सात भेद प्रतिपादित हैं। कायविनय और लोकोपचार विनय के प्रकार दोनों मे समान हैं।

४६. प्रवचन-निन्हव (सू० १४०)

दीर्घकालीन परंपरा मे विचारभेद होना अस्वाभाविक नही है। जैन परंपरा मे भी ऐसा हुआ है। आमूलचूल विचार परिवर्तन होने पर कुछ साधुओं ने अन्य धर्म को स्वीकार किया, उनका यहां उल्लेख नही है। यहां उन साधुओं का उल्लेख है जिनका किसी एक विषय मे, चालू परंपरा के साथ, मतभेद हो गया और व वर्तमान शासन से पृथक् हो गए, किन्तु किसी अन्य धर्म का स्वीकार नही किया। इसलिए उन्हे अन्य धर्मी नहीं कहा गया, किन्तु जैन शासन के निन्हव [किसी एक विषय का अपलाप करने वाले] कहा गया है। इस प्रकार के निन्हव सात हुए है। इनमें से दो भगवान् महावीर की कैवल्यप्राप्ति के बाद हुए हैं और शेष पांच निर्वाण के बाद।[1] इनका अस्तित्व-काल भगवान् महावीर के कैवल्य प्राप्ति के चौदह वर्ष से निर्वाण के बाद ५८४ वर्ष तक का है।[2] यह विषय आगम-संकलन काल मे कल्पसूत्र से प्रस्तुत सूत्र मे संक्रान्त हुआ है। उनका विवरण इस प्रकार है—

१. बहुरत—भगवान महावीर के कैवल्यप्राप्ति के चौदह वर्ष पश्चात् श्रावस्ती नगरी मे बहुरतवाद की उत्पत्ति हुई।[3] इसके प्ररूपक आचार्य जमाली थे।

जमालि कुडपुर नगर के रहने वाले थे। उनकी माता का नाम सुदर्शना था। वह भगवान् महावीर की बड़ी बहिन थी। जमाली का विवाह भगवान् की पुत्री प्रियदर्शना के साथ हुआ।[4]

वे पांच सौ पुरुषो के साथ भगवान् महावीर के पास दीक्षित हुए। उनके साथ-साथ उनकी पत्नी प्रियदर्शना भी हजार स्त्रियों के साथ दीक्षित हुई। जमाली ने ग्यारह अंग पढ़े। वे अनेक प्रकार की तपस्याओं से अपनी आत्मा को भावित कर विहार करने लगे।

एक बार वे भगवान् के पास आये और उनसे अलग विहार करने की आज्ञा मागी। भगवान् मौन रहे। वे भगवान् को वन्दना कर अपने पाच सौ निर्ग्रन्थों को साथ ले अलग विहार करने लगे।

विहार करते-करते वे एकबार श्रावस्ती नगरी में पहुंचे। वहां तिन्दुक उद्यान के कोष्ठक चैत्य में ठहरे। तपस्या चालू थी। पारणा में वे अन्त-प्रान्त आहार का सेवन करते। उनका शरीर रोगाक्रान्त हो गया। पित्तज्वर से उनका शरीर जलने लगा। वे बैठे रहने मे असमर्थ थे। एक दिन घोरतम वेदना से पीड़ित होकर उन्होंने अपने श्रमण-निर्ग्रन्थों को बुलाकर कहा—श्रमणो ! बिछौना करो। वे बिछौना करने लगे। पित्तज्वर की वेदना बढ़ने लगी। उन्हे एक-एक पल भारी लग रहा था। उन्होने पूछा—बिछौना कर लिया या किया जा रहा है।[5] श्रमणों ने कहा — देवानुप्रिय ! बिछौना किया नहीं, किया

---

१. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ७८४ :

णाणुप्पत्तीय दुवे, उप्पण्णा णिव्वुए सेसा।

२. वही, गाथा ७८३, ७८४ :

चोद्दस सोलहसवासा, चोद्दस वीसुत्तरा य दोण्णिसया।
अट्ठावीसा य दुवे, पचेव सया उ चोयाला॥
पंचसया चुलसीया····· ············ ··········।

३. आवश्यकभाष्य, गाथा १२५ :

चउदस वासाणि तया जिणेण उप्पाडियस्स नाणस्सा।
तो बहुरयाणदिट्ठी सावत्थीए समुप्पन्ना॥

४. कुछ आचार्य यह भी मानते हैं कि ज्येष्ठा, सुदर्शना, अनवद्यांगी—ये सभी नाम जमाली की पत्नी के हैं—अन्येतु व्याचक्षते—ज्येष्ठा सुदर्शना अनवद्यांगीति जमालिगृहिणी नामानि।
(आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४०५।)

५. यहां आचार्य मलयगिरि ने घटनाक्रम और सिद्धान्त पक्ष का निरूपण किया है, वह भगवती सूत्र के निरूपण से भिन्न है। उनके अनुसार जमाली ने अपने श्रमणो से पूछा—'बिछौना किया या नहीं ? श्रमणों ने उत्तर दिया—'कर दिया।' जमालि उठा और उसने देखा कि बिछौना अभी पूरा नही किया गया है। यह देख वह क्रुद्ध हो उठा। उसने सोचा—'क्रियमाण को कृत कहना मिथ्या है। अर्द्धसंस्तृत संस्तारक (बिछौना) असंस्तृत ही है। उसे संस्तृत नही माना जा सकता।
(आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४०२।)

जा रहा है। यह सुन उनके मन में विचिकित्सा उत्पन्न हुई—भगवान् क्रियमाण को कृत कहते हैं, यह सिद्धान्त मिथ्या है। मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूं कि बिछौना किया जा रहा है, उसे कृत कैसे माना जा सकता है ? उन्होंने तात्कालिक घटना से प्राप्त अनुभव के आधार पर यह निश्चय किया—'क्रियमाण को कृत नही कहा जा सकता। जो सम्पन्न हो चुका है, उसे ही कृत कहा जा सकता है। कार्य की निष्पत्ति अंतिम क्षण मे ही होती है, पहले-दूसरे आदि क्षणों मे नही।' उन्होंने अपने निर्ग्रन्थो को बुलाकर कहा—भगवान महावीर कहते हैं—

'जो चल्यमान है वह चलित है, जो उदीर्यमाण है, वह उदीरित है और जो निर्जीर्यमाण है वह निर्जीर्ण है। किन्तु मैं अपने अनुभव के आधार पर कहता हूं कि यह मिथ्या सिद्धान्त है। यह प्रत्यक्ष घटना है कि बिछौना क्रियमाण है, किन्तु कृत नहीं है। वह संस्तीर्यमाण है, किन्तु संस्तृत नही है।'

कुछ निर्ग्रन्थ उनकी बात से सहमत हुए और कुछ नही हुए। उस समय कुछ स्थविरों ने उन्हे समझाने का प्रयत्न किया, परन्तु उन्होंने स्थविरों का अभिमत नही माना। कुछ श्रमणों को जमाली के निरूपण मे विश्वास हो गया। वे उनके पास रहे। कुछ श्रमणों को उनके निरूपण में विश्वास नही हुआ वे भगवान् महावीर के पास चले गए।

साध्वी प्रियदर्शना भी वही (श्रावस्ती मे) कुंभकार ढक के घर में ठहरी हुई थी। वह जमाली के दर्शनार्थ आई। जमाली ने अपनी सारी बात उसे कही। उसने पूर्व अनुराग के कारण जमाली की बात मान ली उसने आर्याओ को बुलाकर उन्हे जमाली का सिद्धान्त समझाया और कुंभकार को भी उससे अवगत किया। कुंभकार ने मन ही मन सोचा—साध्वी के मन मे शका उत्पन्न हो गई है, किन्तु मैं शकित नही होऊगा। उसने साध्वी से कहा—मैं इस सिद्धान्त का मर्म नही समझ सकता।

एक बार साध्वी प्रियदर्शना अपने स्थान पर स्वाध्याय—पौरुषी कर रही थी। ढक ने एक अंगारा उस पर फेंका। साध्वी की संघाटी का एक कोना जल गया। साध्वी ने कहा—ढक ! मेरी सघाटी क्यो जला दी ? तब ढक ने कहा—'नही, संघाटी जली कहां है, वह जल रही है।' उसने विस्तार से 'क्रियमाण कृत' की बात समझाई। साध्वी प्रियदर्शना ने इसके मर्म को समझा और जमाली को समझाने गई। जमाली नही समझा, तब वह अपनी हजार साध्वियों तथा शेष साधुओं के साथ भगवान् की शरण मे चली गई।

जमाली अकेले रह गए। वे चंपा नगरी मे गए। भगवान् महावीर भी वहीं समवसृत थे। वे भगवान के समवसरण में गए और बोले—'देवानुप्रिय ! आपके बहुत सारे शिष्य असर्वज्ञदशा मे गुरुकुल से अलग हुए है, वैसे मैं नही हुआ हू। मैं सर्वज्ञ होकर आपसे अलग हुआ हू।' फिर कुछ प्रश्नोत्तर हुए। जमाली ने भगवान् की बाते सुनी, पर वे उन्हे अच्छी नही लगी। वे उठे और भगवान् से अलग चले गए और अन्त तक 'क्रियमाण कृत नही है'—इस सिद्धान्त का प्रचार करते रहे।[1]

बहुतरतवादी द्रव्य की निष्पत्ति मे दीर्घकाल की अपेक्षा मानते है। वे क्रियमाण को कृत नहीं मानते किन्तु वस्तु के निष्पन्न होने पर ही उसका अस्तित्व स्वीकार करते है।

२. जीवप्रादेशिक—भगवान् महावीर के कैवल्यप्राप्ति के सोलह वर्ष पश्चात् ऋषभपुर[2] मे जीवप्रादेशिकवाद की उत्पत्ति हुई।[3]

एक बार ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए आचार्यवसु राजगृह नगर मे आए और गुणशील चैत्य मे ठहरे। वे चौदह-पूर्वी थे। उनके शिष्य का नाम तिष्यगुप्त था। वह उनसे आत्मप्रवाद-पूर्व पढ रहा था। उसमे भगवान् महावीर और गौतम का संवाद आया।

गौतम ने पूछा—भगवन् ! क्या जीव के एक प्रदेश को जीव कहा जा सकता है ?

भगवान्—नही !

---

१. भगवती ६।३३; आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४०२-४०५।

२. यह राजगृह का प्राचीन नाम था।
(आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका पत्र १४३, ऋषभपुर राजगृहस्याख्या)

३. आवश्यक भाष्यगाथा, १२७
सोलसवासाणि तया जिणेण उप्पाडियस्स नाणस्स।
जीवपएसिअदिट्ठी उसभपुरम्मी समुप्पन्ना॥

गौतम—भगवन् ! क्या दो, तीन यावत् संख्यात प्रदेश को जीव कहा जा सकता है ?

भगवान्—'नहीं। अखंड चेतन द्रव्य में एक प्रदेशन्यून को भी जीव नहीं कहा जा सकता है।'

यह सुन तिष्यगुप्त का मन शंकित हो गया। उसने कहा—'अंतिम प्रदेश के बिना शेष प्रदेश जीव नहीं हैं, इसलिए अंतिम प्रदेश ही जीव है।' गुरु ने उसे समझाया, परन्तु उसने अपना आग्रह नहीं छोड़ा, तब उसे संघ से अलग कर दिया।

अब तिष्यगुप्त अपनी बात का प्रचार करते हुए अनेक गांवों-नगरों में गये। अनेक व्यक्तियों को अपनी बात समझाई। एक बार वे आलमकल्पा नगरी में आये और अंबसालवन में ठहरे। उस नगर मे मित्रश्री नामका श्रमणोपासक रहता था। वह तथा दूसरे श्रावक धर्मोपदेश सुनने आए। तिष्यगुप्त ने अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया। मित्रश्री ने जान लिया कि ये मिथ्या प्ररूपण कर रहे हैं। फिर भी वह प्रतिदिन प्रवचन सुनने आता रहा। एक दिन उसके घर मे जीमनवार था। उसने तिष्यगुप्त को घर आने का निमन्त्रण दिया। तिष्यगुप्त भिक्षा के लिए गये, तब मित्रश्री ने अनेक प्रकार के खाद्य उनके सामने प्रस्तुत किए और प्रत्येक पदार्थ का एक-एक छोटा टुकडा उन्हें देने लगा। इसी प्रकार चावल का एक-एक दाना, घास का एक-एक तिनका और वस्त्र का एक-एक तार उन्हें दिया। तिष्यगुप्त ने मन ही मन सोचा कि यह अन्य सामग्री मुझे बाद मे देगा। किन्तु इतना देने पर मित्रश्री तिष्यगुप्त के चरणों मे वन्दन कर बोला—'अहो मैं धन्य हू, कृतपुण्य हू कि आप जैसे गुरुजनों का मेरे घर पादार्पण हुआ है।' इतना सुनते ही तिष्यगुप्त को क्रोध आ गया और वे बोले—'तुमने मेरा तिरस्कार किया है।' मित्रश्री बोला—'नहीं, मैं भला आपका तिरस्कार क्यो करता ? मैंने आपके सिद्धान्त के अनुसार ही आपको भिक्षा दी है, भगवान् महावीर के सिद्धान्त के अनुसार नही। आप अंतिम प्रदेश को ही वास्तविक मानते हैं, दूसरे प्रदेशों को नही। अत मैंने प्रत्येक पदार्थ का अंतिम भाग आपको दिया है, शेष नही।'

तिष्यगुप्त समझ गए। उन्होंने कहा—'आर्य ! इस विषय में मैं तुम्हारा अनुशासन चाहता हूं।' मित्रश्री ने उन्हें समझा कर मूल विधि से भिक्षा दी।

तिष्यगुप्त सिद्धान्त के मर्म को समझ कर पुन. भगवान् के शासन में सम्मिलित हो गए।[1]

जीव के असंख्य प्रदेश हैं। किन्तु जीव प्रादेशिक मतानुसारी जीव के चरम प्रदेश को ही जीव मानते हैं, शेष प्रदेशों को नहीं।

३. अव्यक्तिक—भगवान् महावीर के निर्वाण के २१४ वर्ष पश्चात् श्वेतविका नगरी में अव्यक्तवाद की उत्पत्ति हुई।[2] इसके प्रवर्तक आचार्य आषाढ के शिष्य थे।

श्वेतविका नगरी के पोलास उद्यान में आचार्य आषाढ़ ठहरे हुए थे। वे अपने शिष्यों को योगाभ्यास कराते थे। उस गण मे एकमात्र वे ही वाचनाचार्य थे।

एक बार आचार्य आषाढ़ को हृदयशूल उत्पन्न हुआ और वे उसी रोग से मर गए। मर कर वे सौधर्म कल्प के नलिनीगुल्म विमान में उत्पन्न हुए। उन्होंने अवधिज्ञान से अपने मृत शरीर को देखा और देखा कि उनके शिष्य आगाढ योग में लीन हैं तथा उन्हें आचार्य की मृत्यु की जानकारी भी नहीं है। तब देवरूप मे आचार्य आषाढ नीचे आए और पुन: उन्होंने अपने मृत शरीर मे प्रवेश कर दिया। तत् पश्चात् उन्होंने अपने शिष्यों को जागृत कर कहा—'वैरात्रिक करो।' शिष्यों ने वैसा ही किया। जब उनकी योग-साधना का क्रम पूरा हुआ तब आचार्य आषाढ देवरूप में प्रकट होकर बोले—'श्रमणो ! मुझे क्षमा करे। मैंने असंयती होते हुए भी संयतात्माओं से वंदना करवाई है।' अपनी मृत्यु की सारी बात बता वे अपने स्थान पर चले गए।

श्रमणों को संदेह हो गया कि कौन जाने कौन साधु है और कौन देव ? निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। सभी चीजें अव्यक्त है। उनका मन सन्देह में डोलने लगा। अन्य स्थविरों ने उन्हे समझाया, पर वे नहीं समझे। उन्हें संघ से अलग कर दिया।

---

१. आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४०५, ४०६।

२. आवश्यकभाष्य, गाथा १२६ :

चउदस दो वाससया तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
अव्वत्तगाण दिट्ठी सेयविआए समुप्पन्ना॥

एक बार वे श्रमण विहार करते हुए राजगृह मे आए। वहा मौर्यवशी राजा बलभद्र श्रमणोपासक था। उसने श्रमणों के आगमन तथा उनके दर्शन की बात सुनी। उसने अपने चार पुरुषों को बुलाकर कहा — 'जाओ, उन श्रमणों को यहां ले आओ।' वे गए और श्रमणों को ले आए। राजा ने कहा—'इन सभी श्रमणो के कोड़े मारो।' चार पुरुष गए और हाथी को मारने के कोड़े ले आए। साधुओं ने कहा—'राजन्! हम तो जानते थे कि तुम श्रावक हो' तुम हमे मरवाओगे?' राजा ने कहा—'तुम चोर हो या चारक हो या गुप्तचर हो? यह कौन जानता है?' उन्होने कहा—हम साधु है। राजा बोला—'तुम श्रमण हो या चारक तथा मैं ही श्रावक हूं या नही—यह निश्चयपूर्वक कौन कह सकता है?' इस घटना से वे सब समझ गए। उन्हे अपने अज्ञान पर खेद हुआ। उन्होने अपनी भ्रांति का निराकरण कर सत्य को पहचान लिया। राजा ने क्षमा-याचना करते हुए कहा—'श्रमणो! मैंने आपको प्रतिबोध देने के लिए ऐसा किया था। आप क्षमा करें'।[1]

अव्यक्तवाद को माननेवालों का कथन है कि किसी भी वस्तु के विषय मे निश्चयपूर्वक कुछ भी नही कहा जा सकता। सब कुछ अनिश्चित है, अव्यक्त है।

अव्यक्तवाद मत का प्रवर्तन आचार्य आषाढ ने नही किया था। इसके प्रवर्तक थे उनके शिष्य। किन्तु इस मत के प्रवर्तन में आचार्य आषाढ का देवरूप निमित्त बना था अत: उन्हे इस मत का आचार्य मान लिया गया। इसका दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि आचार्य आषाढ के शिष्यो ने अव्यक्तवाद का प्रतिपादन किया। जिस समय यह घटना लिखी गई उस समय उनके शिष्यों के नाम का परिचय न रहा हो, अत: सांकेतिक रूप मे अभेदोपचार की दृष्टि से आचार्य आषाढ को ही उस मत का प्रवर्तक बतलाया गया। इस प्रश्न के एक पहलू पर अभयदेवसूरि ने विमर्श प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार आचार्य आषाढ अव्यक्त मत को संस्थापित करने वाले श्रमणो के आचार्य थे। इसीलिए उन्हे अव्यक्तवाद के आचार्य के रूप मे उल्लिखित किया गया है।[2]

४. समुच्छेदिक—भगवान महावीर के निर्वाण के २२० वर्ष पश्चात् मिथिला पुरी मे समुच्छेदवाद की उत्पत्ति हुई।[3] इसके प्रवर्तक आचार्य अश्वमित्र थे।

एक बार मिथिलानगरी के लक्ष्मीगृह चैत्य मे आचार्य महागिरि ठहरे हुए थे। उनके शिष्य का नाम कौण्डिन्य और प्रशिष्य का नाम अश्वमित्र था। वह दसवें अनुप्रवाद (विद्यानुप्रवाद) पूर्व के नैपुणिक वस्तु (अध्याय) का अध्ययन कर रहा था। उसमे छिन्नछेदनय के अनुसार एक आलापक यह था कि पहले समय मे उत्पन्न सभी नारक विच्छिन्न हो जाएँगे, दूसरे-तीसरे समय में उत्पन्न नैरयिक भी विच्छिन्न हो जाएँगे। इस प्रकार सभी जीव विच्छिन्न हो जाएँगे। इस पर्यायवाद के प्रकरण को सुनकर अश्वमित्र का मन शकायुक्त हो गया। उसने सोचा, यदि वर्तमान समय मे उत्पन्न सभी जीव विच्छिन्न हो जायेंगे तो सुकृत और दुष्कृत कर्मों का वेदन कौन करेगा? क्योकि उत्पन्न होने के अन्तर ही सबकी मृत्यु हो जाती है।

गुरु ने कहा—'वत्स। ऋजुसूत्र नय के अभिप्राय से ऐसा कहा गया है, सभी नयो की अपेक्षा से नही। निर्ग्रन्थ प्रवचन सर्वनयसापेक्ष होता है। अत. शका मत कर। वस्तु मे अनन्त धर्म होते है। एक पर्याय के विनाश से वस्तु का सर्वथा नाश नही होता, आदि-आदि।' आचार्य के बहुत समझाने पर भी वह नही समझा। तब आचार्य ने उसे सघ से अलग कर दिया।

एक बार वह समुच्छेदवाद का निरूपण करता हुआ कपिल्लपुर मे आया। वहा खडरक्षा नाम के श्रावक थे। वे सभी शुल्कपाल (चुगी अधिकारी) थे। उन्होने उसे पकड़कर पीटा। उसने कहा—'मैंने तो सुना था कि तुम सब श्रावक हो। श्रावक होते हुए भी तुम साधुओ को पीटते हो? यह उचित नही है।'

श्रावको ने उत्तर देते हुए कहा—'आपके मत के अनुसार वे श्रावक विच्छिन्न हो गए और जो प्रव्रजित हुए थे वे भी व्युच्छिन्न हो गए। न हम श्रावक है और न आप साधु। आप कोई चोर है।'

यह सुन उसने कहा—'मुझे मत पीटो, मैं समझ गया।' वह इस घटना से प्रतिबुद्ध हो सघ मे सम्मिलित हो गया।

---

१ आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४०६, ४०७।

२. स्थानागवृत्ति, पत्र ३९१

सोऽमव्यक्तमतधर्माचार्यो, न चाय तन्मतप्ररूपकत्वेन किन्तु प्रागवस्थायामिति।

३. आवश्यकभाष्य, गाथा १३१

वीसा दो वाससया तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
सामुच्छेइयदिट्ठी, मिहिलपुरीए समुप्पन्ना॥

४ आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४०८, ४०९।

समुच्छेदवादी प्रत्येक पदार्थ का संपूर्ण विनाश मानते हैं वे एकान्त समुच्छेद का निरूपण करते हैं।

५. द्वैक्रिय—भगवान् महावीर के निर्वाण के २२८ वर्ष पश्चात् उल्लुकातीर नगर में द्विक्रियावाद की उत्पत्ति हुई।[1] इसके प्रवर्तक आचार्य गंग थे।

प्राचीन काल में उल्लुका नदी के एक किनारे खेड़ा था और दूसरे किनारे उल्लुकातीर नाम का नगर था। वहां आचार्य महागिरी के शिष्य आचार्य धनगुप्त रहते थे। उनके शिष्य का नाम गंग था। वे भी आचार्य थे। वे उल्लुका नदी के इस ओर खेड़े में वास करते थे। एक बार वे शरद् ऋतु में अपने आचार्य को वंदना करने निकले। मार्ग में उल्लुका नदी थी। वे नदी में उतरे। वे गंजे थे। ऊपर सूरज तप रहा था। नीचे पानी की ठंडक थी। उन्हें नदी पार करते समय सिर को सूर्य की गर्मी और पैरों को नदी की ठंडक का अनुभव हो रहा था। उन्होंने सोचा—'आगमों में ऐसा कहा है कि एक समय में एक ही क्रिया का वेदन होता है, दो का नहीं। किन्तु मुझे प्रत्यक्षतः एक साथ दो क्रियाओं का वेदन हो रहा है।' वे अपने आचार्य के पास पहुंचे और अपना अनुभव उन्हें सुनाया। गुरु ने कहा—'वत्स! वास्तव में एक समय में एक ही क्रिया का वेदन होता है, दो का नहीं। मन का क्रम बहुत सूक्ष्म है, अतः हमें उसकी पृथक्ता का पता नहीं लगता।' गुरु के समझाने पर भी वे नहीं समझे, तब उन्हें संघ से अलग कर दिया।

अब आचार्य गंग संघ से अलग होकर अकेले विहरण करने लगे। एक बार वे राजगृह नगर में आए। वहां महातपः-तीरप्रभ नामका एक झरना था। वहां मणिनाग नामक नाग का चैत्य था। आचार्य गंग उस चैत्य में ठहरे। धर्म-प्रवचन सुनने के लिए पर्षद् जुडी। आचार्य गंग ने अपने द्वैक्रियवाद के मत का प्रतिपादन किया। तब मणिनाग ने उस परिषद् में कहा—अरे दुष्ट शिष्य! तू अप्रज्ञापनीय का प्रज्ञापन क्यों कर रहा है? इसी स्थान पर एक बार भगवान् ने एक समय में एक ही क्रिया के वेदन की बात का प्रतिपादन किया था। तू क्या उनसे अधिक ज्ञानी है? अपनी विपरीत प्ररूपणा को छोड़ो, अन्यथा तेरा कल्याण नहीं होगा। मणिनाग की बात सुन आचार्य गंग के मन में प्रकम्पन पैदा हुआ और उन्होंने सोचा कि मैंने यह ठीक नहीं किया। वे अपने गुरु के पास आए और प्रायश्चित्त ले संघ में सम्मिलित हो गए।[2]

द्वैक्रियवादी एक ही क्षण में एक साथ दो क्रियाओं का अनुवेदन मानते हैं।

६. त्रैराशिक—भगवान् महावीर के निर्वाण के ५४४ वर्ष पश्चात् अतरंजिका नगरी में त्रैराशिक मत का प्रवर्तन हुआ।[3] इसके प्रवर्तक आचार्य रोहगुप्त (षडूलुक) थे।

प्राचीन काल में अतरंजिका नाम की नगरी थी। वहां के राजा का नाम बलश्री था। वहां भूतगृह नाम का एक चैत्य था। एक बार आचार्य श्रीगुप्त वहां ठहरे हुए थे। उनके संसारपक्षीय भानेज रोहगुप्त उनका शिष्य था। एक बार वह दूसरे गांव से आचार्य को वंदना करने आ रहा था। वहां एक परिव्राजक रहता था। उसका नाम था पोट्टशाल। वह अपने पेट को लोहे की पट्टी से बांध कर, जंबू वृक्ष की एक टहनी को हाथ में ले घूमता था। किसी के पूछने पर वह कहता—'ज्ञान के भार से मेरा पेट फट न जाए इसलिए मैं अपने पेट को लोहे की पट्टियों से बांधे रहता हूं तथा इस समूचे जम्बूद्वीप में मेरा प्रतिवाद करने वाला कोई नहीं, अतः जम्बू वृक्ष की शाखा को हाथ में ले घूमता हूं।' वह सभी धार्मिकों को वाद के लिए चुनौती दे रहा था। सारे गांव में चुनौती का पटह फेरा। रोहगुप्त ने उसकी चुनौती स्वीकार कर आचार्य को सारी बात सुनाई। आचार्य ने कहा—वत्स! तूने ठीक नहीं किया। वह परिव्राजक अनेक विद्याओं का ज्ञाता है। इस दृष्टि से वह तुझसे बलवान् है। वह सात विद्याओं में पारंगत है—

---

१ आवश्यकभाष्य, गाथा १३३ :
अट्ठावीसा दो वाससया तइया सिद्धिगयस्स वीरस्स।
दो किरियाणं दिट्ठी उल्लुगतीरे समुप्पन्ना॥

२. (क) आवश्यक, मलयगिरि वृत्ति, पत्र ४०९, ४१०।
(ख) विशेषआवश्यकभाष्य गाथा २४५० :
मणिनागेणारद्धो भयोववत्तिपडिबोहितोवोत्तुं।
इच्छामो गुरुमूलं गंतूण ततो पडिक्कंतो॥

३. आवश्यकभाष्य, गाथा १३५ :
पंच सया चोयाला तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
पुरिमंतरंजियाए तेरासियदिट्ठि उप्पन्ना॥

१. वृश्चिकविद्या
२. सर्पविद्या
३. मूषकविद्या
४. मृगीविद्या
५. वराहीविद्या
६. काकविद्या
७. पोताकीविद्या

रोहगुप्त ने यह सुना। वह अवाक् रह गया। कुछ क्षणों के बाद वह बोला—'गुरुदेव ! अब क्या किया जाए ? क्या मैं कहीं भाग जाऊं ?' आचार्य ने कहा—'वत्स ! भय मत खा। मैं तुझे इन विद्याओं की प्रतिपक्षी सात विद्याएं सिखा देता हूं। तू आवश्यकतावश उनका प्रयोग करना'।' रोहगुप्त अत्यन्त प्रसन्न हो गया। आचार्य ने सात विद्याएं उसे सिखाईं—

१. मायूरी
२. नाकुली
३. बिडाली
४. व्याघ्री
५. सिंही
६. उलूकी
७. उलावकी

आचार्य ने रजोहरण को मंत्रित कर रोहगुप्त को देते हुए कहा—'वत्स ! इन सात विद्याओं से तू उस परिव्राजक को पराजित कर सकेगा। यदि इन विद्याओं के अतिरिक्त किसी दूसरी विद्या की आवश्यकता पड़े तो तू इस रजोहरण को घुमाना। तू अजेय होगा, तुझे तब कोई पराजित नहीं कर सकेगा। इन्द्र भी तुझे जीतने मे समर्थ नहीं हो सकेगा।'

रोहगुप्त गुरु का आशीर्वाद ले राजसभा मे गया। राजा बलश्री के समक्ष वाद करने का निश्चय कर परिव्राजक पोट्टशाल को बुला भेजा। दोनों वाद के लिए प्रस्तुत हुए। परिव्राजक ने अपने पक्ष की स्थापना करते हुए कहा—राशि दो हैं—जीव राशि और अजीव राशि। रोहगुप्त ने जीव, अजीव और नोजीव इन तीन राशियों की स्थापना करते हुए कहा—परिव्राजक का कथन मिथ्या है। विश्व मे प्रत्यक्षत. तीन राशियां उपलब्ध होती है। नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य आदि जीव हैं। घट, पट आदि अजीव है और छुछुंदर की कटी हुई पूंछ नोजीव है आदि-आदि। इस प्रकार अनेक युक्तियों के द्वारा रोहगुप्त ने परिव्राजक को निरुत्तर कर दिया।

अपनी पराजय देख परिव्राजक अत्यन्त क्रुद्ध हो एक-एक कर सभी विद्याओं का प्रयोग करने लगा। रोहगुप्त सावधान था ही, उसने भी बारी-बारी से उन विद्याओं की प्रतिपक्षी विद्याओं का प्रयोग कर उनको विफल बना दिया। परिव्राजक ने जब देखा कि उसकी सभी विद्याएँ विफल हो रही है, तब उसने अन्तिम अस्त्र के रूप मे गर्दभी विद्या का प्रयोग किया। रोहगुप्त ने भी अपने आचार्य द्वारा प्रदत्त अभिमन्त्रित रजोहरण का प्रयोग कर उसे भी विफल कर डाला। सभी सभासदों ने परिव्राजक को पराजित घोषित कर उसका तिरस्कार किया।

विजय प्राप्त कर रोहगुप्त आचार्य के पास आया और सारी घटना ज्यों की त्यों उन्हे सुनाई। आचार्य ने कहा—शिष्य ! तूने असत्य प्ररूपणा कैसे की ? तूने क्यों नहीं कहा कि राशि तीन नहीं है ?

रोहगुप्त बोला—भगवन् ! मैं उसकी प्रज्ञा को नीचा दिखाना चाहता था। अत. मैंने ऐसी प्ररूपणा कर उसको सिद्ध भी किया है।

आचार्य ने कहा—अभी समय है। जा और अपनी भूल स्वीकार कर आ।

रोहगुप्त अपनी भूल स्वीकार करने के लिए तैयार न हुआ और अन्त मे आचार्य से कहा—यदि मैंने तीन राशि की स्थापना की है तो उसमे दोष ही क्या है ? उसने अपनी बात को विविध प्रकार से सिद्ध करने का प्रयत्न किया। आचार्य ने अनेक युक्तियों से तीन राशि के मत का खंडन कर उसे सही तत्त्व पहचानने के लिए प्रेरित किया, परन्तु सब व्यर्थ। अन्त में आचार्य ने सोचा—यह स्वयं नष्ट होकर अनेक दूसरे व्यक्तियों को भी भ्रान्त करेगा। अच्छा है कि मैं लोगों के समक्ष राजसभा मे इसका निग्रह करूं। ऐसा करने से लोगो का इस पर विश्वास नहीं रहेगा और मिथ्या तत्त्व का प्रचार भी रुक जायगा।

आचार्य राजसभा मे गए और महाराज बलश्री से कहा—'राजन् ! मेरे शिष्य रोहगुप्त ने सिद्धान्त के विपरीत तथ्य की स्थापना की है। हम जैन दो ही राशि स्वीकार करते है, किन्तु वह आग्रहवश इसको स्वीकार नहीं कर रहा है। आप उसको राजसभा मे बुलाएं और मैं जो चर्चा करूं, वह आप सुने।' राजा ने आचार्य की बात मान ली।

चर्चा प्रारंभ हुई। छह मास बीत गए। एक दिन राजा ने आचार्य से कहा—इतना समय बीत गया। मेरे राज्य का सारा कार्य अव्यवस्थित हो रहा है। यह वाद कब तक चलेगा ? आचार्य ने कहा—'राजन् ! मैंने जानबूझकर इतना समय

बिताया है। आज मैं उसका निग्रह करूंगा।'

दूसरे दिन प्रात: वाद प्रारम्भ हुआ। आचार्य ने कहा—यदि तीन राशि वाली बात सही है तो कुत्रिकापण मे चलें। वहां सभी वस्तुएं उपलब्ध होती हैं।

राजा को साथ लेकर सभी कुत्रिकापण में गए और वहां के अधिकारी से कहा—'हमे जीव, अजीव और नोजीव—ये पदार्थ दो।' वहां के अधिकारी देव ने जीव और अजीव ला दिए और कहा—नोजीव की श्रेणि का कोई पदार्थ विश्व में है ही नहीं। राजा को आचार्य के कथन की यथार्थता प्रतीत हुई।

इस प्रकार आचार्य ने १४४ प्रश्नो[1] द्वारा रोहगुप्त का निग्रह कर उसे पराजित किया। राजा ने आचार्य श्रीगुप्त का बहुत सम्मान किया और सभी पार्षदों ने रोहगुप्त का तिरस्कार कर उसे राजसभा से निष्काषित कर भगा दिया। राजा ने उसे अपने देश से निकल जाने का आदेश दिया और सारे नगर में जैन शासन के विजय की घोषणा करवाई।

रोहगुप्त मेरा भानजा है, उसने मेरे साथ इतनी प्रत्यनीकता बरती है। वह मेरे साथ रहने के योग्य नही है। आचार्य के मन में क्रोध उभर आया और उन्होने उसके सिर पर 'खेल-मल्लक' (श्लेष्म पात्र) फेंका, उससे रोहगुप्त का सारा शरीर राख से भर गया और वह अपने आग्रह के लिए संघ से पृथक् हो गया।

रोहगुप्त ने अपनी मति से तत्त्वों का निरूपण किया और वैशेषिक मत की प्ररूपणा की। उसके अनेक शिष्यों ने अपनी मेधा शक्ति से उन तत्त्वो को आगे बढाकर उसको प्रसिद्ध किया।[2]

७ अबद्धिक—भगवान् महावीर के निर्वाण के ५८४ वर्ष पश्चात् दशपुर नगर में अबद्धिक मत का प्रारम्भ हुआ। इसके प्रवर्तक थे आचार्य गोष्ठामाहिल।[3]

उस समय दसपुर नाम का नगर था। वहां राजकुल से सम्मानित ब्राह्मणपुत्र आर्यरक्षित रहता था। उसने अपने पिता से पढना प्रारम्भ किया। पिता का सारा ज्ञान जब वह पढ चुका तब विशेष अध्ययन के लिए पाटलिपुत्र नगर मे गया और वहां चारो वेद, उनके अंग और उपांग तथा अन्य अनेक विद्याओं को सीखकर घर लौटा। माता के द्वारा प्रेरित होकर उसने जैन आचार्य तोसलिपुत्र से भागवती दीक्षा ग्रहण कर दृष्टिवाद का अध्ययन प्रारम्भ किया और तदनन्तर आर्य वज्र के पास नौ पूर्वों का अध्ययन सम्पन्न कर दसवें पूर्व के चौबीस यविक ग्रहण किए।

आचार्य आर्यरक्षित के तीन प्रमुख शिष्य थे—दुर्बलिकापुष्यमित्र, फल्गुरक्षित और गोष्ठामाहिल। उन्होंने अन्तिम समय मे दुर्बलिकापुष्यमित्र को गण का भार सौंपा।

एक बार आचार्य दुर्बलिकापुष्यमित्र अर्थ की वाचना दे रहे थे। उनके जाने के बाद विंध्य उस वाचना का अनुभाषण कर रहा था। गोष्ठामाहिल उसे सुन रहा था। उस समय आठवें कर्मप्रवाद पूर्व के अंतर्गत कर्म का विवेचन चल रहा था। उसमे एक प्रश्न यह था कि जीव के साथ कर्मों का बंध किस प्रकार होता है ? उसके समाधान मे कहा गया था कि कर्म का बंध तीन प्रकार से होता है—

---

१. आवश्यकनिर्युक्तिदीपिका मे १४४ प्रश्नो का विवरण इस प्रकार प्राप्त है—

वैशेषिक षट् पदार्थ का निरूपण करते हैं—

१ द्रव्य	४. सामान्य
२. गुण	५. विशेष
३. कर्म	६. समवाय

द्रव्य के नौ भेद हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक्, मन और आत्मा।

गुण में सतरह भेद हैं—रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न।

कर्म के पांच भेद हैं—उत्क्षेपण, अवक्षेपण प्रसारण, आकुंचन और गमन।

सत्ता के पांच भेद हैं—सत्ता, सामान्य, सामान्यविशेष, विशेष और समवाय।

इन भेदों का योग (९+१७+५+५)=३६ होता है। इनको पृथ्वी, अपृथ्वी, नो पृथ्वी, नो अपृथ्वी—इन चार विकल्पो से गुणित करने पर ३६×४=१४४ भेद प्राप्त होते हैं।

आचार्य ने इसी प्रकार के १४४ प्रश्नो द्वारा रोहगुप्त को निरुत्तर कर उसका निग्रह किया। (आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका पत्र १४५, १४६)

२. आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति पत्र ४११-४१५

३. आवश्यकभाष्य, गाथा १४१ :

पंचसया चुलसीआ तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
अबद्धिगाण दिट्ठी दसपुरनयरे समुप्पन्ना॥

१. स्पृष्ट—कुछ कर्म जीव प्रदेशो के साथ स्पर्श मात्र करते हैं और कालान्तर मे स्थिति का परिपाक होने पर उनसे विलग हो जाते हैं। जैसे—सूखी भीत पर फेंकी गई रेत भींत का स्पर्श मात्र कर नीचे गिर जाती है।

२ स्पृष्टबद्ध—कुछ कर्म जीव-प्रदेशों का स्पर्श कर बद्ध होते है और वे भी कालान्तर मे विलग हो जाते हैं। जैसे—गीली भींत पर फेंकी गई रेत, कुछ चिपक जाती है और कुछ नीचे गिर जाती है।

३. स्पृष्टबद्ध निकाचित—कुछ कर्म जीव-प्रदेशो के साथ गाढ रूप मे बध प्राप्त करते हैं। वे भी कालान्तर मे विलग हो जाते हैं।[1]

यह प्रतिपादन सुनकर गोष्ठामाहिल का मन विचिकित्सा से भर गया। उसने कहा—कर्म को जीव के साथ बद्ध मानने से मोक्ष का अभाव हो जाएगा, कोई भी प्राणी मोक्ष नही जा सकेगा। अत. सही सिद्धान्त यही है कि कर्म जीव के साथ स्पृष्ट होते है, बद्ध नही, क्योंकि कालान्तर मे वे वियुक्त होते हैं। जो वियुक्त होता है, वह एकात्मक से बद्ध नही हो सकता। उसने अपनी शका विन्ध्य के समक्ष रखी। विन्ध्य ने बताया कि आचार्य ने इसी प्रकार का अर्थ बत.या है।

गोष्ठामाहिल के गले यह बात नही उतरी। वह मौन रहा। एक बार नौवे पूर्व की वाचना चल रही थी। उसमें साधुओं के प्रत्याख्यान का वर्णन आया। उसका प्रतिपाद्य था कि यथाशक्ति और यथाकाल प्रत्याख्यान करना चाहिए। गोष्ठामाहिल ने सोचा—अपरिमाण प्रत्याख्यान ही श्रेयस्कर होता है, परिमाण प्रत्याख्यान मे वाछा का दोष उत्पन्न होता है। एक व्यक्ति परिमाण प्रत्याख्यान के अनुसार पौरुषी, उपवास आदि करता है, किन्तु पौरुषी या उपवास का कालमान पूर्ण होते ही उसमे खाने-पीने की आशा तीव्र हो जाती है। अत यह सदोष है। यह सोचकर वह विन्ध्य के पास गया और अपने विचार उनके समक्ष रखे। विन्ध्य ने उसे सुना-अनसुना कर, उसकी उपेक्षा की। तब गोष्ठामाहिल ने आचार्य दुर्बलिकापुष्यमित्र के पास जाकर अपने विचार व्यक्त किए। आचार्य ने कहा—अपरिमाण का अर्थ क्या है ? क्या इसका अर्थ यावत् शक्ति है या भविष्यत् काल है ? यदि यावत् शक्ति अर्थ को स्वीकार किया जाए तो वह हमारे मन्तव्य का ही स्वीकार होगा और यदि दूसरा अर्थ लिया जाए तो जो व्यक्ति यहां से मर कर देवरूप मे उत्पन्न होते हैं, उनमे सभी व्रतों के भंग का प्रसग आ जाता है। अत: अपरिमित प्रत्याख्यान का सिद्धान्त अयथार्थ है। गोष्ठामाहिल को उसमे भी श्रद्धा नहीं हुई और वह विप्रतिपन्न हो गया। आचार्यने उसे समझाया। अपने आग्रह को छोडना उसके लिए सभव नही था। वह और आग्रह करने लगा। दूसरे गच्छो के स्थविरों को इसी विषय मे पूछा। उन्होने कहा—'आचार्य ने जो अर्थ दिया है, वह सही है।' गोष्ठामाहिल ने कहा—आप नही जानते। मैंने जैसा कहा है, वैसे ही तीर्थंकरो ने भी कहा है। स्थविरो ने पुन: कहा—'आर्य ! तुम नही जानते, तीर्थंकरों की आशातना मत करो।' परन्तु गोष्ठामाहिल अपने आग्रह पर दृढ रहा। तब स्थविरों ने सारे सघ को एकत्रित किया। समूचे सघ ने देवता के लिए कायोत्सर्ग किया। देवता उपस्थित होकर बोला—कहो, क्या आदेश है ? सघ ने कहा—तीर्थंकर के पास जाओ और यह पूछो कि जो गोष्ठामाहिल कह रहा है वह सत्य है या दुर्बलिकापुष्यमित्र आदि सघ का कथन सत्य है ? देवता ने कहा—'मुझ पर अनुग्रह करे तथा मेरे गमन मे कोई प्रतिघात न हो इसलिए आप सब कायोत्सर्ग करे।' सारा सघ कायोत्सर्ग मे स्थित हुआ। देवता गया और भगवान् तीर्थंकर से पूछकर लौटा। उसने कहा—'सघ जो कह रहा है वह सत्य है, गोष्ठामाहिल का कथन मिथ्या है।' देवता का कथन सुनकर सब प्रसन्न हुए।

गोष्ठामाहिल ने कहा—इस बेचारे में कौन सी शक्ति है कि यह तीर्थंकर के पास जाकर कुछ पूछे ?

लोगो ने उसे समझाया, पर वह नहीं माना। अन्त मे पुष्यमित्र उसके साथ आकर बोले—आर्य ! तुम इस सिद्धान्त पर पुनर्विचार करो, अन्यथा तुम संघ मे नही रह सकोगे। गोष्ठामाहिल ने उनके वचनो का भी आदर नही किया। उसका आग्रह पूर्ववत् रहा। तब सघ ने उसे बहिष्कृत कर डाला।[2]

अबद्धिक मतवादी मानते हैं कि कर्म आत्मा का स्पर्श करते है, उसके साथ एकीभूत नही होते।

---

१. आवश्यक, मलयगिरि वृत्ति पत्र ४१६ में इनके स्थान पर बद्ध, बद्धस्पृष्ट और बद्धस्पृष्टनिकाचित—ये शब्द हैं।

२. आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४१५-४१८।

इन सात निन्हवों में जमाली, रोहगुप्त तथा गोष्ठामाहिल ये तीन अन्त तक अलग रहे, भगवान् के शासन में पुनः सम्मिलित नहीं हुए, शेष चार पुनः शासन मे आ गए।

संख्या	प्रवर्तक आचार्य	नगरी	प्रर्वातत मत	समय
१	जमाली	श्रावस्ती	बहुरतवाद	भगवान् महावीर के कैवल्य प्राप्ति के १४ वर्ष बाद।
२	तिष्यगुप्त	ऋषभपुर	जीवप्रादेशिकवाद	भगवान् महावीर के कैवल्य प्राप्ति के १६ वर्ष बाद।
३	आचार्य आपाढ	श्वेतबिका	अव्यक्तवाद	निर्वाण के २१४ वर्ष बाद।
४	अश्वमित्र	मिथिला	समुच्छेदवाद	निर्वाण के २२० वर्ष बाद।
५	गंग	उल्लुकातीर नगर	द्वैक्रिय	निर्वाण के २२८ वर्ष बाद।
६	रोहगुप्त (षडूलुक)	अंतरजिका	त्रैराशिक	निर्वाण के ५४४ वर्ष बाद।
७	गोष्ठामाहिल	दशपुर	अबद्धिक	निर्वाण के ५८४ वर्ष बाद।

अट्ठमं ठाणं

अष्टम स्थान

आमुख

प्रस्तुत स्थान आठ की संख्या से सम्बन्धित है। इसके उद्देशक नहीं हैं। इसमे जीवविज्ञान, कर्मशास्त्र, लोकस्थिति, गणव्यवस्था, ज्योतिष्, आयुर्वेद, इतिहास, भूगोल आदि अनेक विषय संकलित हैं। वे एक विषय से सम्बन्धित नहीं हैं। उनमें परस्पर भी सम्बद्धता नहीं है।

मनुष्य की प्रकृति समान नहीं होती। कोई व्यक्ति सरल होता है, वह माया का आचरण नहीं करता। कोई व्यक्ति माया करता है और उसे अपना चातुर्य मानता है। जिसकी आत्मा में पाप के प्रति ग्लानि होती है, धर्म के प्रति आस्था होती है, कृत कर्मों का फल अवश्य मिलता है—इस सिद्धान्त के प्रति विश्वास होता है, वह माया करके प्रसन्न नहीं होता। उसके हृदय में माया शल्य के समान सदा चुभती रहती है। व्यवहार में भी माया का फल अच्छा नहीं मिलता। परस्पर का सम्बन्ध टूट जाता है। दोनों दृष्टियों से माया का व्यवहार उसके लिए चिन्तनीय बन जाता है। वह माया की आलोचना करता है, प्रायश्चित्त और तप कर्म स्वीकार कर आत्मा को शुद्ध बनाता है।

कुछ व्यक्ति ऐसे होते है जो माया करके मन मे प्रसन्न होते हैं। अपने अहं को और अधिक जगाते हैं। मैंने जो कुछ किया दूसरा उसको समझ ही नहीं पाया। ऐसी भावना वाले व्यक्ति कभी माया को दूसरों के सामने प्रकट नहीं करते। वे सोचते हैं कि आलोचना करने से मेरी प्रतिष्ठा कम होगी, मेरा अपयश होगा। ऐसा सोचकर वे मायाचरण की आलोचना नहीं करते।[1]

अहं वस्तु से नहीं आता। अहं जागता है भावना से। अपनी भावना के द्वारा मनुष्य वस्तु में से अहं निकालता है। दूसरों से अपने को बड़ा समझने की भावना जाग जाती है या जगा दी जाती है, तब अहं अस्तित्व मे आ जाता है और वह आकार ले लेता है। अहं का दूसरा नाम मद है। प्रस्तुत स्थान मे आठ प्रकार के मद बतलाए गए हैं। जातक किसी-न-किसी जाति मे पैदा होता ही है। उच्चजाति और नीचजाति का विभाजन ही मद का कारण बनता है। कुल का मद होता है। बल का मद होता है, मैं शक्तिशाली हूँ। रूप का मद होता है, मैं सबसे सुन्दर हूँ। तपस्या का भी मद हो सकता है, जितना मैंने तप किया है, दूसरे वैसा तप नहीं कर सकते। ज्ञान का भी मद हो सकता है, मैने इतना अध्ययन किया है। ऐश्वर्य का मद होता है। ये मद मनुष्य को भटका देते हैं। मद करने वाले की मृदुता समाप्त हो जाती है।[2]

माया और मद ये दोनों मनुष्य मे मानसिक विकार पैदा करते हैं। जो व्यक्ति मन से विकृत होता है वह शरीर से भी स्वस्थ नहीं होता। बहुत सारे शारीरिक रोगों के निमित्त मानसिक विकार बनते हैं। रुग्णमन शरीर को भी रुग्ण बना देता है। मानसिक रोगों की चिकित्सा का उपाय है धर्म। माया की चिकित्सा ऋजुता और मद की चिकित्सा मृदुता के द्वारा हो सकती है। मानसिक विकार मिटने पर शारीरिक रोग भी मिट जाते है। कुछ शारीरिक रोग शारीरिक दोषों से भी उत्पन्न होते हैं, उनकी चिकित्सा आयुर्वेद की पद्धति से की जाती है। आयुर्वेद के ग्रन्थों मे चिकित्सा पद्धति के आठ अंग मिलते हैं। सूत्रकार ने आठ की संख्या में उनका भी संकलन किया है।[3] इसी प्रकार निमित्त आदि लौकिक विषय भी इसमे संकलित है।[4]

---

१. ८।९, १०

२. ८।२१

३. ८।२६

४. ८।२३

जैनदर्शन ने तत्त्ववाद के क्षेत्र मे ही अनेकान्त का प्रयोग नही किया है, आचार और व्यवस्था के क्षेत्र में भी उसका प्रयोग किया है। साधना अकेले मे हो सकती है या सघबद्धता मे इस प्रश्न पर जैन आचार्यों ने सर्वांगीण दृष्टि से विचार किया। उन्होंने सघ को बहुत महत्त्व दिया। साधना करने वाला सघ मे दीक्षित होकर ही विकास करता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं कि वह अकेला रहकर साधना के उच्च शिखर पर पहुँच सके। किन्तु सघबद्धता साधना का एक-मात्र विकल्प नहीं है। अकेलेपन मे भी साधना की जा सकती है। किन्तु यह कठिनाइयों से भरा हुआ मार्ग है। अकेला रहकर वही साधना कर सकता है जिसे विशिष्ट योग्यता उपलब्ध हो। सूत्रकार ने एकाकी साधना की योग्यता के आठ मानदण्ड बतलाए हैं—

१ श्रद्धा	५ शक्ति
२ सत्य	६ अकलहत्व
३ मेधा	७ धृति
४. बहुश्रुतत्व	८ वीर्यसम्पन्नता[1]

ये योग्यताएँ सघबद्धता मे भी अपेक्षित है किन्तु एकाकी साधना मे इनकी अनिवार्यता है। सघबद्धता योग्यता के विकास के लिए है। उसका विकास हो जाए और साधक अकेले मे साधना की अपेक्षा का अनुभव करे तो वह एकाकी विहार भी कर सकता है। इस प्रकार सघबद्धता और एकाकी विहार दोनों को स्वीकृति देकर सूत्रकार ने यह प्रमाणित कर दिया कि आचार और व्यवस्था को अनेकान्त की कसौटी पर कस कर ही उनकी वास्तविकता को समझा जा सकता है।

---

१. ८।१

अट्ठमं ठाणं

मूल | संस्कृत छाया | हिन्दी अनुवाद

एगल्लविहार-पडिमा-पदं

१. अट्ठहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति एगल्लविहारपडिमं उवसंपिज्जित्ता णं विहरित्तए, तं जहा—
सड्ढी पुरिसजाते, सच्चे पुरिसजाते,
मेहावी पुरिसजाते,
बहुस्सुते पुरिसजाते,
सत्तिमं, अप्पाधिगरणे,
धितिमं, वीरियसंपण्णे।

एकलविहार-प्रतिमा-पदम्

अष्टभिः स्थानैः सम्पन्नः अनगारः अर्हति एकलविहारप्रतिमां उपसपद्य विहर्तुम्, तद्यथा—
श्रद्धी पुरुषजातः, सत्य. पुरुषजातः,
मेधावी पुरुषजात.,
बहुश्रुत पुरुषजातः,
शक्तिमान्, अल्पाधिकरणः,
धृतिमान्, वीर्यसम्पन्न.।

एकलविहार-प्रतिमा-पद

१. आठ स्थानो मे सम्पन्न अनगार 'एकल-विहार प्रतिमा'[1] को स्वीकार कर विहार कर सकता है—
१. श्रद्धावान् पुरुष, २. सत्यवादी पुरुष, ३ मेधावी पुरुष, ४ बहुश्रुत पुरुष, ५. शक्तिमान् पुरुष, ६ अल्पाधिकरण पुरुष, ७. धृतिमान् पुरुष, ८. वीर्यसम्पन्न पुरुष।

जोणिसंगह-पदं

२. अट्ठविधे जोणिसंगहे पण्णत्ते, तं जहा—
अंडगा, पोतगा, °जराउजा,
रसजा, संसेयगा, संमुच्छिमा,°
उब्भिगा, उववातिया।

योनिसंग्रह-पदम्

अष्टविधः योनिसंग्रहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
अण्डजाः, पोतजा., जरायुजा, रसजाः,
सम्वेदजाः, सम्मूर्च्छिमाः, उद्भिज्जाः,
औपपातिकाः।

योनिसंग्रह-पद

२. योनिसग्रह[2] आठ प्रकार का है—
१ अण्डज, २. पोतज, ३. जरायुज, ४ रसज, ५. संस्वेदज, ६. सम्मूर्च्छिम, ७. उद्भिज्ज, ८ औपपातिक।

गति-आगति-पदं

३. अंडगा अट्ठगतिया अट्ठागतिआ पण्णत्ता, तं जहा—
अंडए अंडएसु उववज्जमाणे अंडएहिंतो वा,
पोतएहिंतो वा, °जराउजेहिंतो वा,
रसजेहिंतो वा, संसेयगेहिंतो वा,
संमुच्छिमेहिंतो वा,
उब्भिएहिंतो वा,°
उववातिएहिंतो वा उववज्जेज्जा।

गति-आगति-पदम्

अण्डजाः अष्टगतिकाः अष्टागतिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अण्डज. अण्डजेषु उपपद्यमान अण्डजेभ्यो वा,
पोतजेभ्यो वा, जरायुजेभ्यो वा,
रसजेभ्यो वा, सस्वेदजेभ्यो वा,
सम्मूर्च्छिमेभ्यो वा,
उद्भिज्जेभ्यो वा,
औपपातिकेभ्यो वा उपपद्येत।

गति-आगति-पद

३. अण्डज की आठ गति और आठ आगति होती है—
जो जीव अण्डज योनि मे उत्पन्न होता है वह अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज्ज और औपपातिक—इन आठों योनियो मे आता है।

से चेव णं से अंडए अंडगत्तं विप्प-जहमाणे अंडगत्ताए वा, पोतगत्ताए वा, °जराउजत्ताए वा, रसजत्ताए वा, संसेयगत्ताए वा, संमुच्छिमत्ताए वा, उब्भियत्ताए वा,° उववातियत्ताए वा गच्छेजा।

स चैव असौ अण्डजः अण्डजत्वं विप्रजहत् अण्डजतया वा, पोतजतया वा, जरायुजतया वा, रसजतया वा, सस्वेदजतया वा, सम्मूर्च्छिमतया वा, उद्भिज्जतया वा, औपपातिकतया वा गच्छेत्।

जो जीव अण्डज योनि को छोड़कर दूसरी योनि में जाता है वह अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, सस्वेदज, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज्ज और औपपातिक—इन आठों योनियों मे जाता है।

४. एवं पोतगावि जराउजावि सेसाणं गतिरागति णत्थि।

एवं पोतजा अपि जरायुजा अपि शेषाणां गतिः आगतिः नास्ति।

४. इसी प्रकार पोतज और जरायुज जीवों की भी गति और आगति आठ प्रकार की होती है। शेष रसज आदि जीवों की गति और आगति आठ प्रकार की नहीं होती।

कम्म-बंध-पदं

कर्म-बन्ध-पदम्

कर्म-बन्ध-पद

५. जीवा णं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—
णाणावरणिज्जं, दरिसणावरणिज्जं, वेयणिज्जं, मोहणिज्जं, आउयं, णामं, गोत्तं, अंतराइयं।

जीवा अष्ट कर्मप्रकृतीः अचिन्वन् वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा—
ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीयं, वेदनीय, मोहनीयं, आयुः, नाम, गोत्र, अन्तरायिकम्।

५. जीवो ने ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय—इन आठ कर्म-प्रकृतियो का चय किया है, करते है और करेंगे।

६. णेरइया णं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा एवं चेव।

नैरयिका अष्ट कर्मप्रकृतीः अचिन्वन् वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा एवं चैव।

६. नैरयिकों ने ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय—इन आठ कर्म-प्रकृतियों का चय किया है, करते है और करेंगे।

७. एवं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

एव निरन्तर यावत् वैमानिकानाम्।

७. इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डकों ने आठ कर्म-प्रकृतियों का चय किया है, करते है और करेंगे।

८. जीवा णं अट्ठ कम्मपगडीओ उवचिणिंसु वा उवचिणंति वा उवचिणिस्संति वा एवं चेव।
एवं—चिण-उवचिण-बंध
उदीर-वेय तह णिज्जरा चेव।
एते छ चउवीसा दंडगा भाणियव्वा।

जीवा अष्ट कर्मप्रकृतीः उपाचिन्वन् वा उपचिन्वन्ति वा उपचेष्यन्ति वा एव चैव।
एवम्—चय-उपचय-बन्ध
उदीर-वेदाः तथा निर्जरा चैव।
एते षट् चतुर्विंशति दण्डका भणितव्याः।

८. जीवो ने आठ कर्म-प्रकृतियो का चय, उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते है और करेंगे।
नैरयिक से वैमानिक तक के सभी दण्डकों ने आठ कर्म-प्रकृतियों का चय, उपचय, बंध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हे और करेंगे।

आलोयणा-पदं

आलोचना-पदम्

आलोचना-पद

९. अट्ठहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु—

अष्टभिः स्थानैः मायी मायां कृत्वा—

९. आठ कारणों से मायावी माया करके

णो आलोएज्जा, णो पडिक्कमेज्जा,
°णो णिंदेज्जा, णो गरिहेज्जा,
णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा,
णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा,
णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं°
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—
करिंसु वाहं, करेमि वाहं,
करिस्सामि वाहं,
अकित्ती वा मे सिया,
अवण्णे वा मे सिया,
अविणए वा मे सिया,
कित्ती वा मे परिहाइस्सइ,
जसे वा मे परिहाइस्सइ।

नो आलोचयेत्, नो प्रतिक्रामेत्,
नो निन्देत्, नो गर्हेत,
नो व्यावर्तेत, नो विशोधयेत्,
नो अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत,
नो यथार्ह प्रायश्चित्त तपःकर्म
प्रतिपद्येत, तद्यथा—
अकार्षं वाहं, करोमि वाहं,
करिष्यामि वाहं,
अकीर्तिः वा मे स्यात्,
अवर्णो वा मे स्यात्,
अविनयो वा मे स्यात्,
कीर्तिः वा मे परिहास्यति,
यशो वा मे परिहास्यति।

उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि नही करता, 'फिर ऐसा नही करूंगा'—ऐसा नहीं कहता, यथोचित प्रायश्चित्त तथा तपः-कर्म स्वीकार नही करता—
१. मैंने अकरणीय कार्य किया है,
२. मैं अकरणीय कार्य कर रहा हूं,
३. मैं अकरणीय कार्य करूंगा,
४. मेरी अकीर्ति होगी,
५. मेरा अवर्ण होगा,
६. मेरा अविनय होगा—पूजा सत्कार नही होगा,
७. मेरी कीर्ति कम हो जाएगी,
८. मेरा यश कम हो जाएगा।

१०. अट्ठहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु—
आलोएज्जा, °पडिक्कमेज्जा,
णिंदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा,
विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा,
अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं°
पडिवज्जेज्जा, तं जहा—
१. मायिस्स णं अस्सिं लोए गरहिते भवति।
२. उववाए गरहिते भवति।
३. आयाती गरहिता भवति।
४. एगमवि मायी मायं कट्टु—
णो आलोएज्जा, °णो पडिक्कमेज्जा,
णो णिंदेज्जा, णो गरिहेज्जा,
णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा,
णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा,
णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं°
पडिवज्जेज्जा,
णत्थि तस्स आराहणा।
५. एगमवि मायी मायं कट्टु—
आलोएज्जा, °पडिक्कमेज्जा,

अष्टभिः स्थानैः मायी माया कृत्वा—
आलोचयेत्, प्रतिक्रामेत्, निन्देत्,
गर्हेत, व्यावर्तेत, विशोधयेत्,
अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत,
यथार्ह प्रायश्चित्त तपःकर्म प्रतिपद्येत,
तद्यथा—
१. मायिनः अयं लोकः गर्हितो भवति।
२. उपपातः गर्हितो भवति।
३. आजातिः गर्हिता भवति।
४. एकामपि मायी माया कृत्वा—
नो आलोचयेत्, नो प्रतिक्रामेत्,
नो निन्देत्, नो गर्हेत,
नो व्यावर्तेत, नो विशोधयेत्,
नो अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत,
नो यथार्ह प्रायश्चित्त तपःकर्म
प्रतिपद्येत,
नास्ति तस्य आराधना।
५. एकामपि मायी मायां कृत्वा—
आलोचयेत्, प्रतिक्रामेत्, निन्देत्,

१०. आठ कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि करता है, 'फिर ऐसा नही करूंगा'—ऐसा कहता है, यथोचित प्रायश्चित्त तथा तपःकर्म स्वीकार करता है'—
१. मायावी का इहलोक गर्हित होता है,
२. उपपात गर्हित होता है,
३. आजाति—जन्म गर्हित होता है,
४. जो मायावी एक भी माया का आचरण कर उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि नही करता, 'फिर ऐसा नही करूंगा'—ऐसा नही कहता, यथोचित प्रायश्चित्त तथा तपःकर्म स्वीकार नही करता उसके आराधना नही होती।
५. जो मायावी एक भी माया का आचरण कर उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण,

णिंदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं° पडिवज्जेज्जा, अत्थि तस्स आराहणा।

गर्हेत, व्यावर्तेत, विशोधयेत्, अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत, यथार्ह प्रायश्चित्त तपःकर्म प्रतिपद्येत, अस्ति तस्य आराधना।

निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि करता है, 'फिर से ऐसा नहीं करूंगा'—ऐसा कहता है, यथोचित प्रायश्चित्त तथा तपःकर्म स्वीकार करता है, उसके आराधना होती है।

६. बहुओवि मायी मायं कट्टु— णो आलोएज्जा, णो पडिक्कमेज्जा, णो णिंदेज्जा, णो गरिहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अकरणाए अब्भुट्ठेज्जा, णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं° पडिवज्जेज्जा, णत्थि तस्स आराहणा।

६. बह्वीमपि मायी माया कृत्वा— नो आलोचयेत्, नो प्रतिक्रामेत्, नो निन्देत्, नो गर्हेत, नो व्यावर्तेत, नो विशोधयेत्, नो अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत, नो यथार्ह प्रायश्चित्त तपःकर्म प्रतिपद्येत, नास्ति तस्य आराधना।

६. जो मायावी बहुत माया का आचरण कर उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि नहीं करता, 'फिर ऐसा नहीं करूंगा'—ऐसा नहीं कहता यथोचित प्रायश्चित्त तथा तपःकर्म स्वीकार नहीं करता, उसके आराधना नहीं होती।

७. बहुओवि मायी मायं कट्टु— आलोएज्जा, °पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेज्जा,° अत्थि तस्स आराहणा।

७. बह्वीमपि मायी माया कृत्वा— आलोचयेत्, प्रतिक्रामेत्, निन्देत्, गर्हेत, व्यावर्तेत, विशोधयेत्, अकरणतया अभ्युत्तिष्ठेत, यथार्ह प्रायश्चित्त तपःकर्म प्रतिपद्येत, अस्ति तस्य आराधना।

७. जो मायावी बहुत माया का आचरण कर उसकी आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्यावर्तन तथा विशुद्धि करता है, 'फिर से ऐसा नहीं करूंगा'—ऐसा कहता है, यथोचित प्रायश्चित्त तथा तपःकर्म स्वीकार करता है, उसके आराधना होती है।

८. आयरिय-उवज्झायस्स वा मे अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जेज्जा, से य ममभालोएज्जा मायी णं एसे।

मायी णं मायं कट्टु से जहाणामए— अयागरेति वा तंबागरेति वा तउआगरेति वा सीसागरेति वा रुप्पागरेति वा सुवण्णागरेति वा तिलागणीति वा तुसागणीति वा बुसागणीति वा णलागणीति वा दलागणीति वा सोंडियालिंछाणि

८. आचार्य-उपाध्यायस्य वा मे अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पद्येत, स च मां आलोकयेत् मायी एषः।

मायी माया कृत्वा स यथानामक— अयआकर इति वा ताम्राकर इति वा त्रपुआकर इति वा सीसाकर इति वा रूप्याकरः इति वा सुवर्णाकर इति वा तिलाग्निरिति वा तुषाग्निरिति वा बुसाग्निरिति वा नलाग्निरिति वा दलाग्निरिति वा शुण्डिकालिञ्छाणि वा

८. मेरे आचार्य या उपाध्याय को अतिशायी ज्ञान और दर्शन प्राप्त होने पर कहीं ऐसा जान न लें कि 'यह मायावी है।'

अकरणीय कार्य करने के बाद मायावी उसी प्रकार अन्दर ही अन्दर जलता है, जैसे —
लोहे को गालने की भट्टी,
ताम्बे को गालने की भट्टी,
त्रपु को गालने की भट्टी,
शीशे को गालने की भट्टी,
चांदी को गालने की भट्टी,
सोने को जलाने की भट्टी,
तिल की अग्नि, तुष की अग्नि,

वा भंडियालिछाणि वा गोलियालिछाणि वा कुंभारावाएति वा कवेल्लुआवाएति वा इट्टावाएति वा जंतवाडचुल्लीति वा लोहारंबरिसाणि वा।

तत्ताणि समजोतिभूताणि किंसुकफुल्लसमाणाणि उक्कासहस्साइं विणिम्मुयमाणाइं विणिम्मुयमाणाइं, जालासहस्साइं पमुचमाणाइं पमुचमाणाइं, इंगालसहस्साइं पविक्खिरमाणाइं-पविक्खिरमाणाइं, अंतो-अंतो झियायंति, एवामेव मायी मायं कट्टु अंतो-अंतो झियाइ।

भण्डिकालिञ्छाणि वा गोलिकालिञ्छाणि वा कुम्भकारापाकः इति वा कवेल्लुकापाकः इति वा इष्टापाकः इति वा यंत्रपाटचुल्लीति वा लोहकाराम्बरीषा वा।

तप्तानि समज्योतिर्भूतानि किंशुकपुष्पसमानानि उल्कासहस्राणि विनिर्मुञ्चन्ति विनिर्मुञ्चन्ति, ज्वालासहस्राणि प्रमुञ्चन्ति-प्रमुञ्चन्ति, अङ्गारसहस्राणि प्रविकिरन्ति-प्रविकिरन्ति, अन्तरन्तः ध्मायन्ति, एवमेव मायी माया कृत्वा अन्तरन्तः ध्मायति।

भूसे की अग्नि, नलाग्नि[४]—नरकट की अग्नि, पत्तो की अग्नि, सुण्डिका का चूल्हा[५], भण्डिका का चूल्हा[६], गोलिका का चूल्हा[७], घड़ों का कजावा, खपरैलों का कजावा, ईंटों का कजावा, गुड़ बनाने की भट्टी, लोहकार की भट्टी—तपती हुई, अग्निमय होती हुई, किंशुक-फूल के समान लाल होती हुई, सहस्रों उल्काओं और सहस्रों ज्वालाओं को छोड़ती हुई, सहस्रों अग्निकणों को फेंकती हुई, अन्दर ही अन्दर जलती है, इसी प्रकार मायावी माया करके अन्दर ही अन्दर जलता है।

जंपि य णं अण्णे केइ वदंति तंपि य णं मायी जाणति अहमेसे अभिसंकिज्जामि-अभिसंकिज्जामि।

मायी णं मायं कट्टु अणालोइयपडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा अण्णतरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति, तं जहा—

णो महिड्डिएसु °णो महज्जुइएसु णो महाणुभागेसु णो महायसेसु णो महाबलेसु णो महासोक्खेसु° णो दूरंगतिएसु, णो चिरट्ठितिएसु।

से णं तत्थ देवे भवति णो महिड्डिए °णो महज्जुइए णो महाणुभागे णो महायसे णो महाबले णो महासोक्खे णो दूरगतिए° णो चिरट्ठितिए।

यदपि च अन्ये केपि वदन्ति तमपि च मायी जानाति अहमेषोऽभिशङ्क्ये-अभिशङ्क्ये।

मायी माया कृत्वा अनालोचिताप्रतिक्रान्तः कालमासे कालं कृत्वा अन्यतरेषु देवलोकेषु देवतया उपपत्ता भवति, तद्यथा—

नो महर्द्धिकेषु, नो महाद्युतिकेषु, नो महानुभागेसु, नो महायशस्सु, नो महाबलेषु, नो महासौख्येषु, नो दूरगतिकेषु, नो चिरस्थितिकेषु।

स तत्र देव भवति नो महर्द्धिकः नो महाद्युतिकः नो महानुभागः नो महायशाः नो महाबलः नो महासौख्यः नो दूरगतिकः नो चिरस्थितिकः।

यदि कोई आपस मे बात करते है तो मायावी समझता है कि 'ये मेरे बारे मे ही शंका करते है।'

कोई मायावी माया करके उसकी आलोचना या प्रतिक्रमण किए बिना ही मरण-काल मे मरकर किसी देवलोक मे देव के रूप मे उत्पन्न होता है। किन्तु वह महान् ऋद्धिवाले, महान् द्युतिवाले, वैक्रियादि शक्ति से युक्त, महान् यशस्वी, महान् बलवाले, महान् सौख्यवाले, ऊंची गति वाले और लम्बी स्थिति वाले देवों में उत्पन्न नही होता। वह देव होता है किन्तु महान् ऋद्धिवाला, महान् द्युतिवाला, वैक्रिय आदि शक्ति से युक्त, महान् यशस्वी, महान् बलवाला, महान् सौख्यवाला ऊंची गति वाला और लम्बी स्थिति वाला देव नही होता।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भंतरिया परिसा भवति, सावि य णं णो आढाति णो परिजाणाति णो महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेति,

यापि च तस्य तत्र बाह्याभ्यन्तरिका परिषद् भवति, साऽपि च नो आद्रियते नो परिजानाति नो महार्हेन आसनेन उपनिमन्त्रयते, भाषामपि च तस्य भाष-

वहा देवलोक मे उसके बाह्य और आभ्यन्तर परिषद्[८] होती है। परन्तु इन दोनों परिषदो के सदस्य न उसको आदर देते है, न उसे स्वामी के रूप मे स्वीकार करते है और न महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रित करते हैं।

भासंपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पंच देवा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति—मा बहुं देवे ! भासउ-भासउ ।

माणस्य यावत् चत्वारः पञ्च देवाः अनुक्ताश्चैव अभ्युत्तिष्ठन्ति—मा बहु देवः भाषता-भाषताम् ।

जब वह भाषण देना प्रारम्भ करता है तब चार-पांच देव बिना कहे ही खड़े होते हैं और कहते हैं—'देव ! अधिक मत बोलो, अधिक मत बोलो ।'

से णं ततो देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठितिक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव माणुस्सए भवे जाइं इमाइं कुलाइं भवंति, तं जहा—

स ततः देवलोकात् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं च्यव च्युत्वा इहैव मानुष्यके भवे यानि इमानि कुलानि भवन्ति, तद्यथा—

वह देव आयु, भव और स्थिति के क्षय होने के अनन्तर ही देवलोक से च्युत होकर इसी मनुष्य भव में अन्तकुल, प्रान्तकुल, तुच्छकुल, दरिद्रकुल, भिक्षाककुल, कृपण-कुल तथा इसी प्रकार के कुलों में मनुष्य के रूप उत्पन्न होता है ।

अंतकुलाणि वा पंतकुलाणि वा तुच्छकुलाणि वा दरिद्दकुलाणि वा भिक्खागकुलाणि वा किवणकुलाणि वा, तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाति ।

अन्तकुलानि वा प्रान्तकुलानि वा तुच्छ-कुलानि वा दरिद्रकुलानि वा भिक्षाक-कुलानि वा कृपणकुलानि वा, तथाप्रकारेषु कुलेषु पुस्त्वेन प्रत्यायाति ।

से णं तत्थ पुमे भवति दुरूवे दुवण्णे दुग्गंधे दुरसे दुफासे अणिट्ठे अकंते अप्पिए अमणुण्णे अमणामे हीणस्सरे दीणस्सरे अणिट्ठस्सरे अकंतस्सरे अपियस्सरे अमणुण्णस्सरे अमणामस्सरे अणाएज्जवयणे पच्चायाते ।

स तत्र पुमान् भवति दूरूपः दुर्वर्णः दुर्गन्धः दूरसः दुःस्पर्शः अनिष्टः अकान्तः अप्रियः अमनोज्ञः अमनआपः हीनस्वरः दीनस्वरः अनिष्टस्वरः अकान्तस्वरः अप्रियस्वरः अमनोज्ञस्वरः अमनआप-स्वरः अनादेयवचनः प्रत्याजातः ।

वहां वह कुरूप, कुवर्ण, दुर्गन्ध, अनिष्ट रस और कठोर स्पर्श वाला होता है । वह अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और मन के लिए अगम्य होता है । वह हीन-स्वर दीनस्वर, अनिष्टस्वर, अकान्तस्वर, अप्रियस्वर, अमनोज्ञस्वर, अरुचिकरस्वर, और अनादेय वचन वाला होता है ।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भंतरिया परिसा भवति, सावि य णं णो आढाति णो परिजाणाति णो महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेति, भासंपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पंच जणा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति—मा बहुं अज्जउत्तो ! भासउ-भासउ ।

यापि च तस्य तत्र बाह्याभ्यन्तरिका परिषद् भवति, सापि च नो आद्रियते नो परिजानाति नो महार्हेन आसनेन उपनिमन्त्रयते, भाषामपि च तस्य भाषमाणस्य यावत् चत्वारः पञ्च जनाः अनुक्ताः चैव अभ्युत्तिष्ठन्ति—मा बहु आर्यपुत्र ! भाषता भाषताम् ।

वहां उसके बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् होती है । परन्तु इन दोनों परिषद् के सदस्य न उसको आदर देते हैं, न उसे स्वामी के रूप में स्वीकार करते हैं न महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रित करते हैं । जब वह भाषण देना प्रारम्भ करता है तब चार-पांच मनुष्य बिना कहे ही खड़े होते हैं और कहते हैं—'आर्यपुत्र ! अधिक मत बोलो, अधिक मत बोलो ।'

मायी णं मायं कट्टु आलोचित-पडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा अण्णतरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति, तं जहा—

मायी माया कृत्वा आलोचित-प्रतिक्रान्तः कालमासे कालं कृत्वा अन्यतरेषु देव-लोकेषु देवतया उपपत्ता भवति, तद्यथा—

मायावी माया करके उसकी आलोचना-प्रतिक्रमण कर मरणकाल में मृत्यु को पाकर किसी एक देवलोक में देव के रूप में उत्पन्न होता है । वह महान् ऋद्धि वाले, महान् द्युति वाले, वैक्रिय आदि शक्ति से युक्त, महान् यशस्वी, महान् बल वाले, महान् सौख्य वाले, ऊंची गति वाले और लम्बी स्थिति वाले देवों में उत्पन्न होता है।

महिड्ढिएसु •महज्जुइएसु महाणुभागेसु महायसेसु महाबलेसु महासोक्खेसु दूरंगतिएसु° चिरट्ठितिएसु ।

से णं तत्थ देवे भवति महिड्ढिए •महज्जुइए महाणुभागे महायसे महाबले महासोक्खे दूरंगतिए° चिरट्ठितिए हारविराइयवच्छे कडक-तुडितथंभितभूए अंगद-कुडल-मट्ठगंडतलकण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणे विचित्त-वत्थाभरणे विचित्तमाला-मउली कल्लाणगपवरवत्थ-परिहिते कल्लाणगपवर-गंध मल्लाणुलेवणधरे भासुरबोंदी पलंबवणमालधरे दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं रसेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघातेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणे पभासेमाणे महयाहत-णट्ट-गीत-वादित-तंती-तल-ताल-तुडित-घणमुइंग-पडुप्प-वादितरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ ।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भंतरिया परिसा भवति, सावि य णं आढाइ परिजाणाति महारिहेणं आसणेणं उवणिमंतेति, भासंपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पंच देवा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति—बहुं देवे ! भासउ-भासउ ।

महर्द्धिकेषु महाद्युतिकेषु महानुभागेषु महायशस्सु महाबलेषु महासौख्येषु दूरंगतिकेषु चिरस्थितिकेषु ।

स तत्र देवो भवति महर्द्धिकः महाद्युतिकः महानुभाग: महायशाः महाबलः महासौख्यः दूरगतिकः चिरस्थितिकः हारविराजितवक्षाः कटक-त्रुटितस्तंभितभुजः अङ्गद-कुण्डल-मृष्ट-गण्डतलकर्णपीठधारी विचित्रहस्ताभरणः विचित्रवस्त्राभरणः विचित्रमालामौलिः कल्याणकप्रवरवस्त्र-परिहितः कल्याणकप्रवरगन्ध-माल्यानुलेपनधरः भास्वरबोन्दी प्रलम्ब-वनमालाधरः दिव्येन वर्णेन दिव्येन गन्धेन दिव्येन रसेन दिव्येन स्पर्शेन दिव्येन संघातेन दिव्येन संस्थानेन दिव्यया ऋद्धया दिव्यया द्युत्या दिव्यया प्रभया दिव्यया छायया दिव्यया अर्च्चिषा दिव्येन तेजसा दिव्यया लेश्यया दश दिशः उद्योतयमानः प्रभासयमानः महताऽऽहत-नृत्य-गीत-वादित-तन्त्री-तल-ताल-तूर्य-घन-मृदङ्ग-पटुप्रवादित-रवेण दिव्यान् भोगभोगान् भुञ्जानः विहरति ।

यावि च तस्य तत्र बाह्याभ्यन्तरिका परिषद् भवति, सापि च आद्रियते परिजानाति महार्हेन आसनेन उपनिमन्त्रयते, भाषामपि च तस्य भाषमाणस्य यावत् चत्वारः पञ्च देवा अनुक्ताश्चैव अभ्युत्तिष्ठन्ति—बहु देव ! भाषतां-भाषताम् ।

वह महान् ऋद्धिवाला, महान् द्युतिवाला, वैक्रिय आदि शक्ति से युक्त, महान् यशस्वी, महान् बल वाला, महान् सौख्य वाला, ऊंची गति वाला और लम्बी स्थिति वाला देव होता है। उसका वक्ष हार से शोभित होता है। वह भुजा मे कड़े, त्रुटित और अगद [बाजूबन्द] पहने हुए होता है। उसके कानों मे लोल तथा कपोल तक कानों को घिसते हुए कुण्डल होते हैं। उसके हाथ मे नाना प्रकार के आभूषण होते हैं। वह विचित्र वस्त्राभरणों, विचित्र मालाओं व सेहरो, मंगल व प्रवर वस्त्रों को पहने हुए होता है। वह मगल और प्रवर सुगन्धित पुष्प तथा विलेपन को धारण किए हुए होता है। उसका शरीर तेजस्वी होता है। वह प्रलम्ब वनमाला [आभूषण] को धारण किए हुए होता है। वह दिव्य वर्ण, दिव्य गन्ध, दिव्य रस, दिव्य स्पर्श, दिव्य सघात [शरीर की बनावट], दिव्य सस्थान [शरीर की आकृति] और दिव्य ऋद्धि से युक्त होता है। वह दिव्यद्युति" दिव्य-प्रभा, दिव्यछाया, दिव्यअर्चि, दिव्यतेज और दिव्यलेश्या" से दशों दिशाओं को उद्योतित करता है, प्रभासित" करता है। वह आहत नाट्यों, गीतो" तथा कुशल वादक के द्वारा बजाए हुए वादित्र, तन्त्री, तल, ताल, त्रुटित, घन और मृदङ्ग की महान् ध्वनि से युक्त दिव्य भोगो को भोगता हुआ रहता है।

उसके बाह्य और आभ्यन्तर दो परिषदे होती है। दोनो परिषदो के सदस्य उसका आदर करते है, उसे स्वामी के रूप मे स्वीकार करते है और उसे महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निमंत्रित करते है। जब वह भाषण देना प्रारम्भ करता है तब चार-पांच देव बिना कहे ही खड़े होते है और कहते है—'देव ! और अधिक बोलो, और अधिक बोलो।'

से णं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं °भवक्खएणं ठिति-क्खएणं अणंतरं चयं° चइत्ता इहेव माणुस्सए भवे जाइं इमाइं कुलाइं भवंति—अड्ढाइं °दित्ताइं विच्छिण्णविउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणाइं बहुधण-बहुजायरूव-रययाइं आओग-पओग-संपउत्ताइं-विच्छड्डियं-पउर-भत्तपाणाइं बहु-दासी-दास-गो-महिस-गवेलय-प्पभूयाइं° बहुजणस्स अपरिभूताइं, तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाति।

स ततः देवलोकात् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं च्यवं च्युत्वा इहैव मानुष्यके भवे यानि इमानि कुलानि भवन्ति—आढ्यानि दीप्तानि विस्तीर्ण-विपुल-भवन-शयनासन-यान-वाहनानि बहुधन-बहुजातरूप-रजतानि आयोग-प्रयोग-सप्रयुक्तानि विच्छर्दित-प्रचुर-भक्तपानानि बहुदासी-दास-गो-महिष-गवेलक-प्रभूतानि बहुजनस्य अपरि-भूतानि, तथाप्रकारेषु कुलेषु पुस्त्वेन प्रत्यायाति।

वह देव आयु, भव, और स्थिति के क्षय होने के अनन्तर ही देवलोक से च्युत होकर इसी मनुष्य भव मे आढ्य, दीप्त तथा विस्तीर्ण और विपुल भवन, शयन, आसन, यान और वाहन वाले, बहुधन-बहुस्वर्ण तथा चादी वाले, आयोग और प्रयोग [ऋण देने] मे संप्रयुक्त, प्रचुर भक्त-पान का संग्रह रखने वाले, अनेक दासी-दास, गाय-भैंस, भेड़ आदि रखने वाले और बहुत व्यक्तियो के द्वारा अप-राजित---ऐसे कुलो मे मनुष्य के रूप मे उत्पन्न होता है।

से णं तत्थ पुमे भवति सुरूवे सुवण्णे सुगंधे सुरसे सुफासे इट्ठे कंते °पिए मणुण्णे° मणामे अहीणस्सरे °अदीणस्सरे इट्ठस्सरे कंतस्सरे पियस्सरे मणुण्णस्सरे° मणामस्सरे आदेज्जवयणे पच्चायाते।

स तत्र पुमान् भवति सुरूप. सुवर्ण. सुगन्ध सुरस सुस्पर्श इष्ट कान्त प्रियः मनोज्ञ मनआप अहीनस्वर अदीनस्वरः इष्टस्वरः कान्तस्वर. प्रियस्वर. मनोज्ञ-स्वर मनआपस्वर. आदेयवचनः प्रत्याजातः।

वहा वह सुरूप, सुवर्ण, सुगन्ध, सुरस और सुस्पर्श वाला होता है। वह इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मन के लिए गम्य होता है। वह अहीन स्वर, अदीन स्वर, इष्ट स्वर, कात स्वर, प्रिय स्वर, मनोज्ञ स्वर, रुचिकर स्वर और आदेय वचन वाला होता है।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भंतरिया परिसा भवति, सावि य णं आढाति °परिजाणाति महारिहेणं आसणेणं उवणिमंतेति, भासंपि य से भास-माणस्स जाव चत्तारि पंच जणा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठंति—बहुं अज्जउत्ते! भासउ-भासउ।

यापि च तस्य तत्र बाह्याभ्यन्तरिका परिषद् भवति, सापि च आद्रियते परिजानाति महार्हेन आसनेन उपनिमन्त्रयते, भाषामपि तस्य स भास-माणस्य यावत् चत्वार पञ्च जनाः अनुक्ताश्चैव अभ्युत्तिष्ठन्ति—बहु आर्य-पुत्र! भाषता-भाषताम्।

वहा उसके बाह्य और आभ्यन्तर दो परि-षदें होती है। दोनों परिषदों के सदस्य उसका आदर करते है, उसे स्वामी के रूप मे स्वीकार करते है और उसे महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निम-न्त्रित करते है। जब वह भाषण देना प्रारम्भ करता है तब चार-पांच मनुष्य बिना कहे ही खड़े होते हैं और कहते है 'आर्यपुत्र! और अधिक बोलो, और अधिक बोलो।'

संवर-असंवर-पदं

११. अट्ठविहे संवरे पण्णत्ते, त जहा—सोइंदियसंवरे, °चक्खिदियसंवरे, घाणिंदियसंवरे, जिब्भिंदियसंवरे,° फासिंदियसंवरे, मणसंवरे, वइसंवरे, कायसवरे।

संवर-असंवर-पदम्

अष्टविध सवर प्रज्ञप्त, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियसवर, चक्षुरिन्द्रियसंवर., घ्राणेन्द्रियसवर., जिह्वेन्द्रियसवर., स्पर्शेन्द्रियसवर., मनःसवरः, वाक्सवर., कायसवर।

संवर-असंवर-पद

११. संवर आठ प्रकार का होता है—

१. श्रोत्रेन्द्रिय सवर, २. चक्षुइन्द्रिय सवर, ३. घ्राणइन्द्रिय संवर, ४. जिह्वाइन्द्रिय संवर, ५. स्पर्शइन्द्रिय संवर, ६. मन सवर, ७. वचन संवर, ८. काय संवर।

१२. अट्ठविहे असंवरे पण्णत्ते, तं जहा—
सोतिंदियअसंवरे,
°चक्खिंदियअसंवरे,
घाणिंदियअसंवरे,
जिब्भिंदियअसंवरे,
फासिंदियअसंवरे, मणअसंवरे,
वइअसंवरे°, कायअसंवरे।

अष्टविधः असंवरः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियासंवरः, चक्षुरिन्द्रियासंवरः,
घ्राणेन्द्रियासंवरः, जिह्वेन्द्रियासंवरः,
स्पर्शेन्द्रियासंवरः, मनोऽसंवरः,
वागसंवरः, कायासंवरः।

१२. असंवर आठ प्रकार का होता है—
१. श्रोत्रेन्द्रिय असंवर,
२. चक्षुइन्द्रिय असंवर,
३. घ्राणइन्द्रिय असंवर,
४. जिह्वाइन्द्रिय असंवर,
५. स्पर्शइन्द्रिय असंवर,
६. मन असंवर, ७. वचन असंवर,
८. काय असंवर।

फास-पदं

स्पर्श-पदम्

स्पर्श-पद

१३. अट्ठ फासा पण्णत्ता, तं जहा—
कक्खडे, मउए, गरुए, लहुए, सीते,
उसिणे, णिद्धे, लुक्खे।

अष्ट स्पर्शाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कर्कशः, मृदुकः, गुरुकः, लघुकः,
शीतः, उष्णः, स्निग्धः, रूक्षः।

१३. स्पर्श आठ प्रकार का होता है—
१. कर्कश, २. मृदु, ३. गुरु, ४. लघु,
५. शीत, ६. उष्ण, ७. स्निग्ध, ८. रूक्ष।

लोगट्ठिति-पदं

लोकस्थिति-पदम्

लोकस्थिति-पद

१४ अट्ठविधा लोगट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—
आगासपतिट्ठिते वाते, वातपतिट्ठिते उदही, °उदधिपतिट्ठिता पुढवी, पुढविपतिट्ठिता तसा थावरा पाणा, अजीवा जीवपतिट्ठिता,° जीवा कम्मपतिट्ठिता, अजीवा जीवसंगहीता, जीवा कम्मसंगहिता।

अष्टविधा लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आकाशप्रतिष्ठितो वातः, वातप्रतिष्ठितः उदधिः, उदधिप्रतिष्ठिता पृथ्वी,
पृथ्वीप्रतिष्ठिता त्रसाः स्थावराः प्राणाः,
अजीवाः जीवप्रतिष्ठिताः,
जीवाः कर्मप्रतिष्ठिताः,
अजीवाः जीवसगृहीताः,
जीवाः कर्मसगृहीताः।

१४ लोकस्थिति आठ प्रकार की होती है[५]—
१ वायु आकाश पर टिका हुआ है,
२. समुद्र वायु पर टिका हुआ है,
३. पृथ्वी समुद्र पर टिकी हुई है,
४. त्रस-स्थावर प्राणी पृथ्वी पर टिके हुए हैं,
५. अजीव जीव पर आधारित हैं,
६ जीव कर्म पर आधारित है,
७ अजीव जीव के द्वारा संगृहीत हैं,
८. जीव कर्म के द्वारा संगृहीत है।

गणिसंपया-पदं

गणिसंपत्-पदम्

गणिसंपत्-पद

१५. अट्ठविहा गणिसंपया पण्णत्ता, तं जहा—
आयारसंपया, सुयसंपया, सरीरसंपया, वयणसंपया, वायणासंपया, मतिसंपया, पओगसंपया, संगहपरिण्णा णाम अट्ठमा।

अष्टविधा गणिसंपत् प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
आचारसम्पत्, श्रुतसम्पत्, शरीरसम्पत्,
वचनसम्पत्, वाचनासम्पत्, मतिसम्पत्,
प्रयोगसम्पत्, संग्रहपरिज्ञा नाम अष्टमी।

१५. गणिसम्पदा[६] आठ प्रकार की होती है—
१. आचार-सम्पदा—संयम की समृद्धि,
२. श्रुत-सम्पदा—श्रुत की समृद्धि,
३. शरीर-सम्पदा—शरीर-सौंदर्य,
४ वचन-सम्पदा—वचन-कौशल,
५. वाचना-सम्पदा—अध्यापन-पटुता,
६. मति-सम्पदा—बुद्धि-कौशल,
७. प्रयोग-सम्पदा—वाद-कौशल,
८. संग्रह-परिज्ञा—संघ-व्यवस्था में निपुणता।

महाणिहि-पदं

१६. एगमेगे णं महाणिही अट्ठचक्कवालपतिट्ठाणे अट्ठट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते।

महानिधि-पदम्

एकैकः महानिधिः अष्टचक्रवालप्रतिष्ठानः अष्टाष्टयोजनानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तः।

महानिधि-पद

१६. प्रत्येक महानिधि आठ-आठ पहियों पर आधारित है और आठ-आठ योजन ऊंचा है।

समिति-पदं

१७. अट्ठ समितीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
इरियासमिती, भासासमिती, एसणासमिती, आयाणभंड-मत्त-णिक्खेवणासमिती, उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण जल्ल-परिठावणियासमिती, मणसमिती, वइसमिती, कायसमिती।

समिति-पदम्

अष्ट समितयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ईर्यासमितिः, भाषासमितिः, एषणासमितिः, आदानभण्ड-अमत्र-निक्षेपणासमितिः, उच्चार-प्रस्रवण-क्ष्वेल, सिङ्घाण, जल्ल-पारिष्ठापनिकासमिति, मनःसमितिः, वाक्समितिः, कायसमितिः।

समिति-पद

१७ समितियां[१५] आठ हैं—
१. ईर्यासमिति, २. भाषासमिति,
३. एषणासमिति, ४. आदान-भांड-अमत्र-निक्षेपणासमिति,
५. उच्चार-प्रस्रवण-क्ष्वेल-सिंघाण-जल्ल-परिष्ठापनासमिति,
६. मनसमिति, ७. वचनसमिति,
८. कायसमिति।

आलोयणा-पदं

१८. अट्ठहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति आलोयणं पडिच्छित्तए, तं जहा—
आयारवं, आधारवं, ववहारवं, ओवीलए, पकुव्वए, अपरिस्साई, णिज्जावए, अवायदंसी।

आलोचना-पदम्

अष्टभिः स्थानैः सम्पन्नः अनगारः अर्हति आलोचना प्रत्येषितुम्, तद्यथा—
आचारवान्, आधारवान्, व्यवहारवान्, अपव्रीडकः, प्रकारी, अपरिश्रावी, निर्यापकः, अपायदर्शी।

आलोचना-पद

१८. आठ स्थानों से सम्पन्न अनगार आलोचना देने के योग्य होता है—
१. आचारवान्—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य—इन पांच आचारों से युक्त।
२. आधारवान्—आलोचना लेने वाले के द्वारा आलोच्यमान समस्त अतिचारों को जानने वाला,
३. व्यवहारवान्—आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत—इन पांच व्यवहारों को जानने वाला।
४. अपव्रीडक—आलोचना करने वाले व्यक्ति में, वह लाज या संकोच से मुक्त होकर सम्यक् आलोचना कर सके वैसा, साहस उत्पन्न करने वाला।
५. प्रकारी—आलोचना करने पर विशुद्धि कराने वाला।
६. अपरिश्रावी—आलोचना करने वाले के आलोचित दोषों को दूसरे के सामने प्रकट न करने वाला।
७. निर्यापक—बड़े प्रायश्चित्त को भी निभा सके—ऐसा सहयोग देने वाला।
८. अपायदर्शी—प्रायश्चित्त-भङ्ग से तथा सम्यक् आलोचना न करने से उत्पन्न दोषों को बताने वाला।

१९. अट्ठहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति अत्तदोसमालोइत्तए, तं जहा—
जातिसंपण्णे, कुलसंपण्णे, विणय-संपण्णे, णाणसंपण्णे, दंसणसंपण्णे, चरित्तसंपण्णे, खंते, दंते।

अष्टभिः स्थानैः सम्पन्नः अनगारः अर्हति आत्मदोषं आलोचयितुम्, तद्यथा—
जातिसम्पन्नः, कुलसम्पन्नः, विनय-सम्पन्नः, ज्ञानसम्पन्नः, दर्शनसम्पन्नः, चरित्रसम्पन्नः, क्षान्तः, दान्तः।

१९. आठ स्थानों से सम्पन्न अनगार अपने दोषों की आलोचना करने के लिए योग्य होता है—
१. जाति सम्पन्न, २. कुल सम्पन्न, ३. विनय सम्पन्न, ४. ज्ञान सम्पन्न, ५. दर्शन सम्पन्न, ६. चरित्र सम्पन्न, ७. क्षान्त, ८. दान्त।

पायच्छित्त-पदं

२०. अट्ठविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—
आलोयणारिहे, पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउसग्गारिहे, तवारिहे, छेयारिहे, मूलारिहे।

प्रायश्चित्त-पदम्

अष्टविध प्रायश्चित्तं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आलोचनार्हं, प्रतिक्रमणार्हं, तदुभयार्हं, विवेकार्हं, व्युत्सर्गार्हं, तपोर्हं, छेदार्हं, मूलार्हम्।

प्रायश्चित्त-पद

२०. प्रायश्चित्त[१८] आठ प्रकार का होता है—
१ आलोचना के योग्य,
२ प्रतिक्रमण के योग्य,
३ आलोचना और प्रतिक्रमण—दोनों के योग्य,
४. विवेक के योग्य,
५ व्युत्सर्ग के योग्य, ६. तप के योग्य,
७. छेद के योग्य, ८ मूल के योग्य।

मयट्ठाण-पदं

२१. अट्ठ मयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—
जातिमए, कुलमए, बलमए, रूवमए, तवमए, सुतमए, लाभमए, इस्सरियमए।

मदस्थान-पदम्

अष्ट मदस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
जातिमदः, कुलमदः, बलमदः, रूपमदः, तपोमदः, श्रुतमदः, लाभमदः, ऐश्वर्यमदः।

मदस्थान-पद

२१. मद[१९] के स्थान आठ है—
१. जातिमद, २. कुलमद, ३. बलमद, ४. रूपमद, ५. तपोमद, ६. श्रुतमद, ७ लाभमद, ८. ऐश्वर्यमद।

अकिरियावादि-पदं

२२. अट्ठ अकिरियावाई पण्णत्ता, तं जहा—
एगावाई, अणेगावाई, मितवाई, णिम्मितवाई, सायवाई, समुच्छेदवाई, णितावाई, णसंतपर-लोगवाई।

अक्रियावादि-पदम्

अष्ट अक्रियावादिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
एकवादी, अनेकवादी, मितवादी, निर्मितवादी, सातवादी, समुच्छेदवादी, नित्यवादी, असत्परलोकवादी।

अक्रियावादि-पद

२२. अक्रियावादी[२०] आठ हैं—
१ एकवादी—एक ही तत्त्व को स्वीकार करने वाले, २. अनेकवादी—धर्म और धर्मी को सर्वथा भिन्न मानने वाले अथवा सकल पदार्थों को विलक्षण मानने वाले, एकत्व को सर्वथा अस्वीकार करने वाले, ३ मितवादी—जीवों को परिमित मानने वाले, ४. निर्मितवादी—ईश्वरकर्तृत्ववादी, ५. सातवादी—सुख से ही सुख की प्राप्ति मानने वाले, सुखवादी, ६ समुच्छेदवादी—क्षणिक-वादी। ७ नित्यवादी—लोक को एकान्त मानने वाले, ८. असत्परलोकवादी—परलोक मे विश्वास न करने वाले।

महाणिमित्त-पदं

२३. अट्ठविहे महाणिमित्ते पण्णत्ते, तं जहा—
भोमे, उप्पाते, सुविणे, अंतलिक्खे, अंगे, सरे, लक्खणे, वंजणे।

महानिमित्त-पदम्

अष्टविध महानिमित्त प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
भौम, उत्पात, स्वप्न, अन्तरिक्षं, अङ्ग, स्वर, लक्षण, व्यञ्जनम्।

महानिमित्त-पद

२३. महानिमित्त आठ प्रकार का होता है—
१. भौम, २. उत्पात, ३. स्वप्न, ४ आन्तरिक्ष, ५. आङ्ग, ६. स्वर, ७. लक्षण, ८. व्यञ्जन।

वयणविभत्ति-पदं

२४. अट्ठविधा वयणविभत्ती पण्णत्ता, तं जहा—

वचनविभक्ति-पदम्

अष्टविधा वचनविभक्ति प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

वचनविभक्ति-पद

२४. वचन-विभक्ति के आठ प्रकार हैं—

संगहणी-गाहा

१. णिद्देसे पढमा होती,
बितिया उवएसणे।
ततिया करणम्मि कता,
चउत्थी संपदावणे॥
२. पंचमी य अवदाणे,
छट्ठी सस्सामिवादणे।
सत्तमी सण्णिहाणत्थे,
अट्ठमी आमंतणी भवे॥
३. तत्थ पढमा विभत्ती,
णिद्देसे—सो इमो अहं व त्ति।
बितिया उण उवएसे—
भण कुण व इमं व तं वत्ति॥
४. ततिया करणम्मि कया—
णीतं व कतं व तेण व मए वा।
हंदि णमो साहाए,
हवति चउत्थी पदाणंमि॥
५. अवणे गिण्हसु तत्तो,
इत्तोत्ति वा पंचमी अवादाणे।
छट्ठी तस्स इमस्स वा,
गतस्स वा सामि-संबंधे॥

संग्रहणी-गाथा

१. निर्देशे प्रथमा भवति,
द्वितीया उपदेशने।
तृतीया करणे कृता,
चतुर्थी संप्रदापने॥
२. पञ्चमी च अपादाने,
षष्ठी स्वस्वामिवादने।
सप्तमी सन्निधानार्थे,
अष्टम्यामन्त्रणी भवेत्॥
३. तत्र प्रथमा विभक्ति,
निर्देशे—स अयं अहं वेति।
द्वितीया पुनः उपदेशे—
भण कुरु वा इमं वा तं वेति॥
४. तृतीया करणे कृता—
नीत वा कृत वा तेन वा मया वा।
हृदि नमः स्वाहा,
भवति चतुर्थी प्रदाने॥
५. अपनय गृहाण तत,
इत इति वा पञ्चमी अपादाने।
षष्ठी तस्यास्य वा,
गतस्य वा स्वामि-सम्बन्धे॥

१ निर्देश, २. उपदेश, ३. करण, ४ सम्प्रदान, ५ अपादान, ६ स्वस्वामिवचन, ७. सन्निधानार्थ ८ आमत्रणी।

निर्देश के अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है, जैसे - वह, यह, मैं। उपदेश में द्वितीया विभक्ति होती है, जैसे—इसे बता, वह कर।

करण में तृतीया विभक्ति होती है, जैसे - शकट से लाया गया है, मेरे द्वारा किया गया है। सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है, जैसे —नमःस्वाहा।

अपादान में पंचमी विभक्ति होती है, जैसे— घर से दूर ले जा, इस कोठे से ले जा। स्वस्वामिवचन में षष्ठी विभक्ति होती है, जैसे—यह उसका या इसका नौकर है।

६. हवइ पुण सत्तमी
तम्मिमम्मि आहारकालभावे य ।
आमंतणी भवे अट्ठमी
उ जह हे जुवाण ! त्ति ।।

६. भवति पुनः सप्तमी
तस्मिन् अस्मिन् आधारकालभावे च ।
आमन्त्रणी भवेत् अष्टमी
तु यथा हे युवन् ! इति ।।

सन्निधानार्थ में सप्तमी विभक्ति होती है,
जैसे—उसमें, इसमे ।
आमंत्रणी मे आठवी विभक्ति होती है,
जैसे—हे जवान !

छउमत्थ-केवलि-पदं

२५. अट्ठ ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण याणति पासति, तं जहा—
धम्मत्थिकायं, °अधम्मत्थिकायं,
आगासत्थिकायं,
जीवं असरीरपडिबद्धं,
परमाणुपोग्गलं, सद्दं,° गंधं, वातं ।
एताणि चेव उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली °सव्वभावेणं जाणइ पासइ, तं जहा—
धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं,
आगासत्थिकायं,
जीवं असरीरपडिबद्धं,
परमाणुपोग्गलं,
सद्दं,° गंधं, वातं ।

छद्मस्थ-केवलि-पदम्

अष्ट स्थानानि छद्मस्थः सर्वभावेन न जानाति न पश्यति, तद्यथा—
धर्मास्तिकायं अधर्मास्तिकायं,
आकाशास्तिकायं,
जीवं अशरीरप्रतिबद्धं,
परमाणुपुद्गलं, शब्दं, गन्धं, वातम् ।
एतानि चैव उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अर्हन् जिनः केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति, तद्यथा—
धर्मास्तिकायं, अधर्मास्तिकायं,
आकाशास्तिकायं,
जीवं अशरीरप्रतिबद्धं,
परमाणुपुद्गलं,
शब्दं, गन्धं, वातम् ।

छद्मस्थ-केवलि-पद

२५. आठ पदार्थों को छद्मस्थ सम्पूर्णरूप से न जानता है, न देखता है—
१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय,
३ आकाशास्तिकाय ४. शरीरमुक्तजीव,
५. परमाणुपुद्गल ६. शब्द,
७ गध, ८ वायु ।
प्रत्यक्ष ज्ञान-दर्शन को धारण करने वाले अर्हत्, जिन, केवली इन्हे सम्पूर्णरूप से जानते-देखते है—
१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय,
३. आकाशास्तिकाय, ४. शरीरमुक्तजीव,
५. परमाणुपुद्गल, ६. शब्द,
७. गध, ८. वायु ।

आउवेद-पदं

२६ अट्ठविधे आउवेदे पण्णत्ते, तं जहा—
कुमारभिच्चे, कायतिगिच्छा,
सालाई, सल्लहत्ता, जंगोली,
भूतवेज्जा, खारतंते, रसायणे ।

आयुर्वेद-पदम्

अष्टविधः आयुर्वेदः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
कुमारभृत्य, कायचिकित्सा, शालाक्यं,
शल्यहत्य, जगोली, भूतविद्या,
क्षारतन्त्र, रसायनम् ।

आयुर्वेद-पद

२६. आयुर्वेद[1] के आठ प्रकार है—
१. कुमारभृत्य—बालकों का चिकित्सा-शास्त्र ।
२. कायचिकित्सा—ज्वर आदि रोगो का चिकित्सा-शास्त्र ।
३. शालाक्य—कान, मुंह, नाक आदि के रोगो की शल्य-चिकित्सा का शास्त्र ।
४ शल्यहत्या—शल्य-चिकित्सा का शास्त्र
५. जगोली—अंगदतन्त्र—विष-चिकित्सा का शास्त्र ।
६. भूतविद्या—देव, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच आदि से ग्रस्त व्यक्तियों की चिकित्सा का शास्त्र ।
७. क्षारतन्त्र—वाजीकरण तन्त्र—वीर्य-पुष्टि का शास्त्र ।
८. रसायन—पारद आदि धातुओ के द्वारा की जाने वाली चिकित्सा का शास्त्र ।

अग्गमहिसी-पदं

२७. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अट्ठग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
पउमा, सिवा, सची, अंजू, अमला, अच्छरा, णवमिया, रोहिणी।

२८. ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अट्ठग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
कण्हा, कण्हराई, रामा, रामरक्खिता, वसू, वसुगुत्ता, वसुमित्ता, वसुंधरा।

२९. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो अट्ठग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

३०. ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो अट्ठग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

अग्रमहिषी-पदम्

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अष्टाग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पद्मा, शिवा, शची, अञ्जू, अमला, अप्सरा, नवमिका, रोहिणी।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अष्टाग्रमहिष्य प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
कृष्णा, कृष्णराजी, रामा, रामरक्षिता, वसू, वसुगुप्ता, वसुमित्रा, वसुंधरा।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य अष्टाग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य वैश्रमणस्य महाराजस्य अष्टाग्रमहिष्य. प्रज्ञप्ता.।

अग्रमहिषी-पद

२७ देवेन्द्र देवराज शक्र के आठ अग्रमहिषिया है --
१ पद्मा, २. शिवा, ३. शची, ४. अजू, ५ अमला, ६ अप्सरा, ७ नवमिका, ८ रोहिणी।

२८ देवेन्द्र देवराज ईशान के आठ अग्रमहिषिया है—
१ कृष्णा, २. कृष्णराजी, ३. रामा, ४ रामरक्षिता, ५. वसु, ६. वसुगुप्ता, ७. वसुमित्रा, ८ वसुन्धरा।

२९ देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज सोम के आठ अग्रमहिषिया है।

३० देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल महाराज वैश्रमण के आठ अग्रमहिषिया है।

महग्गह-पदं

३१. अट्ठ महग्गहा पण्णत्ता, तं जहा—
चंदे, सूरे, सुक्के, बुहे, बहस्सती, अंगारे, सणिचरे, केऊ।

महाग्रह-पदम्

अष्ट महाग्रहा प्रज्ञप्ता., तद्यथा—
चन्द्र., सूर, शुक्र, बुधः, बृहस्पतिः, अङ्गार., शनैश्चर, केतु।

महाग्रह-पद

३१ महाग्रह आठ है—
१ चन्द्र, २. सूर्य, ३ शुक्र, ४ बुध, ५. बृहस्पति, ६. अगार, ७ शनिश्चर, ८. केतु।

तणवणस्सइ-पदं

३२. अट्ठविधा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, तं जहा—
मूले, कंदे, खंधे, तया, साले, पवाले, पत्ते, पुप्फे।

तृणवनस्पति-पदम्

अष्टविधा तृणवनस्पतिकायिका प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वक्, शाला, प्रवाल, पत्र, पुष्पम्।

तृणवनस्पति-पद

३२ तृणवनस्पतिकायिक आठ प्रकार के होते है—
१ मूल, २. कद, ३. स्कद, ४ त्वक, ५ शाखा, ६ प्रवाल, ७. पत्र, ८ पुष्प।

संजम-असंजम-पदं

३३. चउरिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स अट्ठविधे संजमे कज्जति, तं जहा—

संयम-असंयम-पदम्

चतुरिन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य अष्टविधः सयम क्रियते, तद्यथा—

संयम-असंयम-पद

३३. चतुरिन्द्रिय जीवों का आरम्भ नहीं करने वाले के आठ प्रकार का संयम होता है—

चक्खुमातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति।	चक्षुर्मयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।	१. चक्षुमय सुख का वियोग नही करने से,
चक्खुमएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवति।	चक्षुर्मयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति।	२. चक्षुमय दुःख का संयोग नही करने से,
°घाणामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति।	घ्राणमयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।	३. घ्राणमय सुख का वियोग नही करने से,
घाणामएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवति।	घ्राणमयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति।	४. घ्राणमय दुःख का संयोग नही करने से,
जिब्भामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति।	जिह्वामयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।	५. रसमय सुख का वियोग नही करने से,
जिब्भामएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवति।°	जिह्वामयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति।	६. रसमय दुःख का संयोग नही करने से,
फासामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति।	स्पर्शमयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।	७. स्पर्शमय सुख का वियोग नही करने से,
फासामएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवति।	स्पर्शमयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति।	८. स्पर्शमय दुःख का संयोग नही करने से।
३४. चउरिंदियाणं जीवा समारभमाणस्स अट्ठविधे असंजमे कज्जति, तं जहा—	चतुरिन्द्रियान् जीवान् समारभमाणस्य अष्टविधः असंयमः क्रियते, तद्यथा—	३४. चतुरिन्द्रिय जीवो का आरम्भ करने वाले के आठ प्रकार का असंयम होता है—
चक्खुमातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।	चक्षुर्मयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।	१. चक्षुमय सुख का वियोग करने से,
चक्खुमएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।	चक्षुर्मयेन दुःखेन संयोजयिता भवति।	२. चक्षुमय दुःख का संयोग करने से,
°घाणामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।	घ्राणमयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।	३. घ्राणमय सुख का वियोग करने से,
घाणामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।	घ्राणमयेन दुःखेन संयोजयिता भवति।	४. घ्राणमय दुःख का संयोग करने से,
जिब्भामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।	जिह्वामयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।	५. रसमय सुख का वियोग करने से,
जिब्भामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।°	जिह्वामयेन दुःखेन संयोजयिता भवति।	६. रसमय दुःख का संयोग करने से,
फासामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।	स्पर्शमयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।	७. स्पर्शमय सुख का वियोग करने से,

फासामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।

स्पर्शमयेन दु:खेन सयोजयिता भवति।

८. स्पर्शमय दु:ख का संयोग करने से।

सुहुम-पदं

३५. अट्ठ सुहुमा पण्णत्ता, तं जहा—
पाणसुहुमे, पणगसुहुमे, बीयसुहुमे, हरितसुहुमे, पुप्फसुहुमे, अंडसुहुमे, लेणसुहुमे, सिणेहसुहुमे।

सूक्ष्म-पदम्

अष्ट सूक्ष्माणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
प्राणसूक्ष्म, पनकसूक्ष्म, बीजसूक्ष्मं, हरितसूक्ष्म, पुष्पसूक्ष्मं, अण्डसूक्ष्मं, लयनसूक्ष्म, स्नेहसूक्ष्म।

सूक्ष्म-पद

३५. सूक्ष्म आठ हैं—
१. प्राणसूक्ष्म, २. पनकसूक्ष्म,
३. बीजसूक्ष्म, ४. हरितसूक्ष्म,
५. पुष्पसूक्ष्म, ६. अण्डसूक्ष्म,
७. लयनसूक्ष्म, ८. स्नेहसूक्ष्म।

भरहचक्कवट्टि-पदं

३६. भरहस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठ पुरिसजुगाइं अणुबद्ध सिद्धाइं °बुद्धाइं मुत्ताइं अंतगडाइं परिणिव्वुडाइं° सव्वदुक्खप्पहीणाइं, तं जहा—
आदिच्चजसे, महाजसे, अतिबले, महाबले, तेयवीरिए, कत्तवीरिए, दंडवीरिए, जलवीरिए।

भरतचक्रवर्ति-पदम्

भरतस्य राज्ञ चतुरन्तचक्रवर्त्तिन: अष्ट पुरुषयुगानि अनुबद्ध सिद्धा: बुद्धा: मुक्ता: अन्तकृता: परिनिर्वृता सर्वदु:ख-प्रक्षीणा, तद्यथा—
आदित्ययशा, महायशा, अतिबल:, महाबल:, तेजोवीर्य, कार्त्तवीर्य, दण्डवीर्य: जलवीर्य।

भरतचक्रवर्ति-पद

३६. चतुरन्त चक्रवर्ती राजा भरत के आठ उत्तराधिकारी पुरुषयुग—राजा लगातार सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत और समस्त दुःखों से रहित हुए[१]—
१. आदित्ययशा, २. महायशा,
३. अतिबल, ४. महाबल,
५. तेजोवीर्य, ६. कार्त्तवीर्य,
७. दण्डवीर्य, ८. जलवीर्य।

पास-गण-पदं

३७. पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणियस्स अट्ठगणा अट्ठ गणहरा होत्था, तं जहा—
सुभे, अज्जघोसे, वसिट्ठे, बंभचारी, सोमे, सिरिधरे, वीरभद्दे, जसोभद्दे।

पार्श्व-गण-पदम्

पार्श्वस्य अर्हत पुरुषादानीयस्य अष्ट गणा: अष्ट गणधरा अभवन् तद्यथा—
शुभ:, आर्यघोष, वशिष्ठ:, ब्रह्मचारी, सोम:, श्रीधर, वीरभद्र, यशोभद्र:।

पार्श्व-गण-पद

३७. पुरुषादानीय[१] अर्हत् पार्श्व के आठ गण और आठ गणधर[१] थे—
१. शुभ, २. आर्यघोष, ३. वशिष्ठ,
४. ब्रह्मचारी, ५. सोम, ६. श्रीधर,
७. वीरभद्र, ८. यशोभद्र।

दंसण-पदं

३८. अट्ठविधे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—
सम्मदंसणे, मिच्छदंसणे, सम्मामिच्छदंसणे, चक्खुदंसणे, °अचक्खुदंसणे, ओहिदंसणे,° केवलदंसणे, सुविणदंसणे।

दर्शन-पदम्

अष्टविध दर्शन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
सम्यग्दर्शनं, मिथ्यादर्शन, सम्यग्मिथ्यादर्शन, चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन, स्वप्नदर्शनम्।

दर्शन-पद

३८. दर्शन[१] आठ प्रकार का होता है—
१. सम्यग्दर्शन, २. मिथ्यादर्शन,
३. सम्यग्मिथ्यादर्शन, ४. चक्षुदर्शन,
५. अचक्षुदर्शन, ६. अवधिदर्शन,
७. केवलदर्शन, ८. स्वप्नदर्शन।

ओवमिय-काल-पदं

३९. अट्ठविधे अद्धोवमिए पण्णत्ते, तं जहा—
पलिओवमे, सागरोवमे,
ओसप्पिणी, उस्सप्पिणी,
पोग्गलपरियट्टे, तीतद्धा,
अणागतद्धा, सव्वद्धा।

औपमिक-काल-पदम्

अष्टविधं अद्ध्वौपम्य प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
पल्योपमं, सागरोपम, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी, पुद्गलपरिवर्त्तं, अतीताद्ध्वा, अनागताद्ध्वा, सर्वाद्ध्वा।

औपमिक-काल-पद

३९. औपमिक अद्धा[१९] [काल] आठ प्रकार का होता है—
१. पल्योपम, २. सागरोपम,
३. अवसर्पिणी, ४. उत्सर्पिणी,
५. पुद्गलपरिवर्त, ६. अतीत-अद्धा,
७. अनागत-अद्धा, ८. सर्व-अद्धा।

अरिट्ठणेमि-पदं

४०. अरहतो णं अरिट्ठणेमिस्स जाव अट्ठमातो पुरिसजुगातो जुगंतकरभूमि।
दुवासपरियाए अंतमकासी।

अरिष्टनेमि-पदम्

अर्हतः अरिष्टनेमेः यावत् अष्टमं पुरुषयुग युगान्तकरभूमिः।
द्विवर्षपर्याये अन्तमकार्षुः।

अरिष्टनेमि-पद

४०. अर्हत् अरिष्टनेमि से आठवें पुरुषयुग तक युगान्तकर भूमि रही—मोक्ष जाने का क्रम रहा, आगे नहीं[१७]।
अर्हत् अरिष्टनेमि को केवलज्ञान प्राप्त किए दो वर्ष हुए थे, उसी समय से उनके शिष्य मोक्ष जाने लगे।

महावीर-पदं

४१. समणेणं भगवता महावीरेण अट्ठ रायाणो मुंडे भवेत्ता अगाराओ अणगारितं पव्वाइया, तं जहा—

महावीर-पदम्

श्रमणेन भगवता महावीरेण अष्ट राजानः मुण्डान् भावयित्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्राजिताः, तद्यथा—

महावीर-पद

४१. श्रमण भगवान् महावीर ने आठ राजाओं को मुण्डित कर, अगार से अनगार अवस्था में प्रव्रजित किया[१८]—

संगहणी-गाहा

१. वीरंगए वीरजसे,
संजय एणिज्जए य रायरिसी।
सेये सिवे उद्दायणे,
तह संखे कासिवद्धणे॥

संग्रहणी-गाथा

१ वीराङ्गकः वीरयशा,
सजय एणेयकश्च राजर्षि।
श्वेतः शिवः, उद्रायणः,
तथा शङ्खः काशीवर्द्धनः॥

१. वीराङ्गक, २. वीरयशा, ३. संजय,
४. एणेयक, ५. सेय, ६. शिव,
७. उद्रायण, ८. शंख-काशीवर्द्धन।

आहार-पदं

४२. अट्ठविहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—
मणुण्णे—असणे पाणे खाइमे साइमे।
अमणुण्णे—असणे पाणे खाइमे साइमे॥

आहार-पदम्

अष्टविधः आहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
मनोज्ञ—अशन पान खाद्यं स्वाद्यम्।
अमनोज्ञ—अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम्।

आहार-पद

४२. आहार आठ प्रकार का होता है—
१. मनोज्ञ अशन, २. मनोज्ञ पान,
३. मनोज्ञ खाद्य, ४. मनोज्ञ स्वाद्य,
५. अमनोज्ञ अशन, ६. अमनोज्ञ पान,
७. अमनोज्ञ खाद्य, ८. अमनोज्ञ स्वाद्य।

कण्हराइ-पदं

४३. उप्पिं सणंकुमार-माहिंदाणं कप्पाणं हेट्ठिं बंभलोगे कप्पे रिट्ठ-विमाण-पत्थडे, एत्थ णं अक्खाडग-समचउरंस-संठाण-संठिताओ अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

पुरत्थिमे ण दो कण्हराईओ,
दाहिणे णं दो कण्हराईओ,
पच्चत्थिमे णं दो कण्हराईओ,
उत्तरे णं दो कण्हराईओ।

पुरत्थिमा अब्भंतरा कण्हराई दाहिणं बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा।
दाहिणा अब्भंतरा कण्हराई पच्चत्थिमं बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा।
पच्चत्थिमा अब्भंतरा कण्हराई उत्तर बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा।
उत्तरा अब्भंतरा कण्हराई पुरत्थिमं बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा।
पुरत्थिमपच्चत्थिमिल्लाओ बाहिराओ दो कण्हराईओ छलंसाओ।
उत्तरदाहिणाओ बाहिराओ दो कण्हराईओ तंसाओ।
सव्वाओ वि णं अब्भंतरकण्हराईओ चउरंसाओ।

४४. एतासि णं अट्ठण्हं कण्हराईणं अट्ठ णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
कण्हराईति वा, मेहराईति वा, मघाति वा, माघवतीति वा, वातफलिहेति वा, वातपलिक्खोभेति वा, देवफलिहेति वा, देवपलिक्खोभेति वा।

कृष्णराजि-पदम्

उपरि सनत्कुमार-माहेन्द्रयोः कल्पयोः अधस्तात् ब्रह्मलोके कल्पे रिष्टविमान-प्रस्तटे, अत्र अक्षवाटक-समचतुरस्र-संस्थान-संस्थिताः अष्ट कृष्णराजयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

पौरस्त्ये द्वे कृष्णराजी,
दक्षिणस्यां द्वे कृष्णराजी,
पाश्चात्ये द्वे कृष्णराजी,
उत्तरस्यां द्वे कृष्णराजी।

पौरस्त्या अभ्यन्तरा कृष्णराजिः दाक्षिणात्यां बाह्यां कृष्णराजिं स्पृष्टा।
दक्षिणा अभ्यन्तरा कृष्णराजिः पाश्चात्यां बाह्यां कृष्णराजिं स्पृष्टा।
पाश्चात्या अभ्यन्तरा कृष्णराजिः औत्तराहीं बाह्यां कृष्णराजिं स्पृष्टा।
उत्तरा अभ्यन्तरा कृष्णराजिः पौरस्त्यां बाह्यां कृष्णराजिं स्पृष्टा।
पौरस्त्यपाश्चात्ये बाह्ये द्वे कृष्णराजी षडस्रे।
उत्तरदक्षिणे बाह्ये द्वे कृष्णराजी त्र्यस्रे।
सर्वा अपि अभ्यन्तरकृष्णराजयः चतुरस्राः।

एतासां अष्टानां कृष्णराजीनां अष्ट नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
कृष्णराजीति वा, मेघराजीति वा, मघेति वा, माघवतीति वा, वातपरिघा इति वा, वातपरिक्षोभा इति वा, देवपरिघा इति वा, देवपरिक्षोभा इति वा।

कृष्णराजि-पद

४३ सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक के ऊपर तथा ब्रह्मलोक देवलोक के नीचे रिष्ट-विमान का प्रस्तट है। वहां अखाड़े के समान समचतुरस्र [चतुष्कोण] संस्थान वाली आठ कृष्णराजियां—काले पुद्गलों की पंक्तियां है—

१ पूर्व में दो (१, २) कृष्णराजियां हैं,
२ दक्षिण में दो (३,४) कृष्णराजियां हैं,
३ पश्चिम में दो (५,६) कृष्णराजियां हैं,
४ उत्तर में दो (७,८) कृष्णराजियां हैं।

पूर्व की आभ्यन्तर कृष्णराजी दक्षिण की बाह्य कृष्णराजी से स्पृष्ट है।
दक्षिण की आभ्यन्तर कृष्णराजी पश्चिम की बाह्य कृष्णराजी से स्पृष्ट है।
पश्चिम की आभ्यन्तर कृष्णराजी उत्तर की बाह्य कृष्णराजी से स्पृष्ट है।
उत्तर की आभ्यन्तर कृष्णराजी पूर्व की बाह्य कृष्णराजी से स्पृष्ट है।
पूर्व और पश्चिम की बाह्य दो कृष्ण-राजियां षट्कोण वाली है।
उत्तर और दक्षिण की बाह्य दो कृष्ण-राजियां त्रिकोण वाली है।
समस्त आभ्यन्तर कृष्णराजियां चतुष्कोण वाली है।

४४ इन आठ कृष्णराजियों के आठ नाम है—

१ कृष्णराजी, २. मेघराजी, ३ मघा, ४ माघवती, ५ वातपरिघ, ६ वातपरिक्षोभ, ७ देवपरिघ, ८. देवपरिक्षोभ।

४५. एतासि णं अट्ठण्हं कण्हराईणं अट्ठसु ओवासंतरेसु अट्ठ लोगंतिय-विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—
अच्ची, अच्चिमाली, वइरोअणे, पभंकरे, चंदाभे, सूराभे, सुपइट्ठाभे, अग्गिच्चाभे।

एतासां अष्टाना कृष्णराजीनां अष्टमु अवकाशान्तरेषु अष्ट लोकान्तिक-विमानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अचि:, अर्चिर्माली, वैरोचनः, प्रभंकरः, चन्द्राभः, सूराभः, सुप्रतिष्ठाभः, अग्न्यर्च्याभः।

४५. इन आठ कृष्णराजियो के आठ अवकाशान्तरों मे आठ लोकान्तिक विमान हैं—
१. अचि, २. अचिमाली, ३ वैरोचन, ४. प्रभकर, ५ चन्द्राभ, ६ सूराभ, ७. सुप्रतिष्ठाभ, ८ अग्न्यर्चाभ।

४६. एतेसु णं अट्ठसु लोगंतियविमाणेसु अट्ठविधा लोगंतिया देवा पण्णत्ता, तं जहा—

एतेषु अष्टसु लोकान्तिकविमानेषु अष्टविधाः लोकान्तिका देवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

४६. इन आठ लोकान्तिक विमानों मे आठ प्रकार के लोकान्तिक देव हैं—

संगहणी-गाहा

१. सारस्सतमाइच्चा,
वण्ही वरुणा य गद्दतोया य।
तुसिता अव्वाबाहा,
अग्गिच्चा चेव बोद्धव्वा॥

संग्रहणी-गाथा

१. सारस्वता आदित्याः,
वह्नयः वरुणाश्च गर्दतोयाश्च।
तुषिता अव्याबाधा,
अग्न्यर्च्चा चैव बोद्धव्याः॥

१. सारस्वत, २ आदित्य, ३. वह्नि, ४ वरुण, ५ गर्दतोय, ६. तुषित, ७. अव्याबाध, ८. अग्न्यर्च।

४७. एतेसि णं अट्ठण्हं लोगंतियदेवाणं अजहण्णमणुक्कोसेणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

एतेषा अष्टानां लोकान्तिकदेवाना अजघन्योत्कर्षेण अष्ट सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

४७ इन आठ लोकान्तिक देवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति आठ-आठ सागरोपम की है।

मज्झपदेस-पदं

मध्यप्रदेश-पदम्

मध्यप्रदेश-पद

४८. अट्ठ धम्मत्थिकाय-मज्झपएसा पण्णत्ता।

अष्ट धर्मास्तिकाय-मध्यप्रदेशः प्रज्ञप्ता।

४८. धर्मास्तिकाय के आठ मध्यप्रदेश (रुचक प्रदेश) है।

४९. अट्ठ अधम्मत्थिकाय-°मज्झपएसा पण्णत्ता।°

अष्ट अधर्मास्तिकाय-मध्यप्रदेशाः प्रज्ञप्ताः।

४९ अधर्मास्तिकाय के आठ मध्यप्रदेश है।

५०. अट्ठ आगासत्थिकाय-°मज्झपएसा पण्णत्ता।°

अष्ट आकाशास्तिकाय-मध्यप्रदेशाः प्रज्ञप्ताः।

५० आकाशास्तिकाय के आठ मध्यप्रदेश है।

५१. अट्ठ जीव-मज्झपएसा पण्णत्ता।

अष्ट जीव-मध्यप्रदेशाः प्रज्ञप्ताः।

५१ जीव के आठ मध्यप्रदेश है।

महापउम-पदं

महापद्म-पदम्

महापद्म-पद

५२. अरहा णं महापउमे अट्ठ रायाणो मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वावेस्सति, तं जहा—
पउमं, पउमगुम्मं, णलिणं, णलिणगुम्मं, पउमद्धयं, धणुद्धयं, कणगरहं, भरहं।

अर्हन् महापद्मः अष्ट राज्ञः मुण्डान् भावयित्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्राजयिष्यति, तद्यथा—
पद्मं, पद्मगुल्मं, नलिनं, नलिनगुल्मं, पद्मध्वजं, धनुर्ध्वजं, कनकरथं, भरतम्।

५२ अर्हत् महापद्म आठ राजाओ को मुण्डित-कर, अगार मे अनगार अवस्था मे प्रव्रजित करेंगे—
१. पद्म, २. पद्मगुल्म, ३. नलिन, ४ नलिनगुल्म, ५. पद्मध्वज, ६. धनुर्ध्वज, ७. कनकरथ, ८. भरत।

कण्ह-अग्गमहिसी-पदं

५३. कण्हस्स णं वासुदेवस्स अट्ठ अग्गमहिसीओ अरहतो णं अरिट्ठणेमिस्स अंतिते मुंडा भवेत्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइया सिद्धाओ °बुद्धाओ मुत्ताओ अंतगडाओ परिणिव्वुडाओ° सव्वदुक्खप्पहीणाओ, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. पउमावती य गोरी,
गंधारी लक्खणा सुसीमा य।
जंबवती सच्चभामा,
रुप्पिणी अग्गमहिसीओ ॥

कृष्ण-अग्रमहिषी-पदम्

कृष्णस्य वासुदेवस्य अष्टाग्रमहिष्यः अर्हतः अरिष्टनेमेः अन्तिके मुण्डाः भूत्वा अगाराद् अनगारिता प्रव्रजिताः सिद्धाः बुद्धाः मुक्ताः अन्तकृताः परिनिर्वृताः सव्वदुःखप्रक्षीणाः, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. पद्मावती च गौरी,
गान्धारी लक्ष्मणा सुसीमा च।
जाम्बवती सत्यभामा,
रुक्मिणी अग्रमहिष्यः ॥

कृष्ण-अग्रमहिषी-पद

५३. वासुदेव कृष्ण की आठ अग्रमहिषियां अर्हत् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर, अगार से अनगार अवस्था मे प्रव्रजित होकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और समस्त दुःखों से रहित हुई'—

१. पद्मावती, २. गोरी, ३. गांधारी, ४. लक्ष्मणा, ५. सुसीमा, ६. जाम्बवती, ७ सत्यभामा, ८. रुक्मिणी।

पुव्ववत्थु-पदं

५४. वीरियपुव्वस्स णं अट्ठ वत्थू अट्ठ चूलवत्थू पण्णत्ता।

पूर्ववस्तु-पदम्

वीर्यपूर्वस्य अष्ट वस्तूनि अष्ट चूलावस्तूनि प्रज्ञप्तानि।

पूर्ववस्तु-पद

५४. वीर्यप्रवाद पूर्व के आठ वस्तु [मूल अध्ययन] और आठ चूलिका-वस्तु है।

गति-पदं

५५. अट्ठगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
णिरयगती, तिरियगती, °मणुयगती, देवगती,° सिद्धिगती, गुरुगती, पणोल्लणगती, पब्भारगती।

गति-पदम्

अष्टगतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
निरयगतिः, तिर्यग्गतिः, मनुजगतिः, देवगतिः, सिद्धिगतिः, गुरुगतिः, प्रणोदनगतिः, प्राग्भारगतिः।

गति-पद

५५. गतियां आठ है''—
१. नरकगति, २. तिर्यञ्चगति, ३. मनुष्यगति, ४. देवगति, ५. सिद्धिगति, ६. गुरुगति, ७. प्रणोदनगति, ८. प्राग्भारगति।

दीवसमुद्द-पदं

५६. गंगा-सिंधु-रत्त-रत्तवति-देवीणं दीवा अट्ठ-अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता।

५७. उक्कामुह-मेहमुह-विज्जमुह-विज्जुदंतदीवा णं दीवा अट्ठ-अट्ठ जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता।

द्वीपसमुद्र-पदम्

गङ्गा-सिन्धु-रक्ता-रक्तवती-देवीनां द्वीपाः अष्टाऽष्ट योजनानि आयाम-विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः।

उल्कामुख-मेघमुख-विद्युन्मुख-विद्युद्दन्त-द्वीपाः द्वीपाः अष्टाऽष्ट योजनशतानि आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः।

द्वीपसमुद्र-पद

५६. गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तवती नदियों की अधिष्ठात्री देवियों के द्वीप आठ-आठ योजन लम्बे-चौड़े हैं''।

५७. उल्कामुख, मेघमुख, विद्युत्मुख और विद्युद्दन्त द्वीप आठ-आठ सौ योजन लम्बे-चौड़े हैं।

५८. कालोदे णं समुद्दे अट्ठ जोयणसय-सहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते।

कालोदः समुद्रः अष्ट योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

५८. कालोद समुद्र की गोलाकार चौड़ाई आठ लाख योजन की है।

५९. अब्भंतरपुक्खरद्धे णं अट्ठ जोयण-सयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते।

अभ्यन्तरपुष्करार्धः अष्ट योजनशत-सहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

५९. आभ्यन्तर पुष्करार्ध की गोलाकार चौड़ाई आठ लाख योजन की है।

६०. एवं बाहिरपुक्खरद्धेवि।

एवं बाह्यपुष्करार्धोपि।

६०. इसी प्रकार बाह्य पुष्करार्ध की गोलाकार चौड़ाई आठ लाख योजन की है।

काकणिरयण-पदं

काकिनीरत्न-पदम्

काकिनीरत्न-पद

६१. एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्क-वट्टिस्स अट्ठसोवण्णिए काकणि-रयणे छत्तले दुवालसंसिए अट्ठ-कण्णिए अधिकरणिसंठिते।

एकैकस्य राज्ञः चतुरन्तचक्रवर्तिनः अष्टसौवर्णिकं काकिनीरत्नं षट्तलं द्वादशास्रिकं अष्टकर्णिकं अधिकरणीय-संस्थितम्।

६१. प्रत्येक चतुरन्त चक्रवर्ती राजा के आठ सुवर्ण[11] जितना भारी काकिणी रत्न होता है। वह छह तल (मध्यखण्ड), बारहकोण, आठ कर्णिका (कोण-विभाग) और अह-रन के संस्थान वाला होता है।

मागध-जोयण-पदं

मागध-योजना-पदम्

मागध-योजना-पद

६२. मागधस्स णं जोयणस्स अट्ठ धणु-सहस्साइं णिधत्ते पण्णत्ते।

मागधस्य योजनस्य अष्ट धनुःसहस्राणि निघत्तं प्रज्ञप्तम्।

६२. मगध मे योजन[12] का प्रमाण आठ हजार धनुष्य का है।

जंबूदीव-पदं

जम्बूद्वीप-पदम्

जम्बूद्वीप-पद

६३. जंबू णं सुदंसणा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं, साति-रेगाइं अट्ठ जोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता।

जम्बूः सुदर्शना अष्ट योजनानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, बहुमध्यदेशभागे अष्ट योजनानि विष्कम्भेण, सातिरेकानि अष्ट योजनानि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्ता।

६३ सुदर्शना जम्बू वृक्ष आठ योजन ऊँचा है। वह बहुमध्य-देशभाग [ठीक बीच] मे आठ योजन चौड़ा और सर्व परिमाण में आठ योजन से अधिक है[13]।

६४ कूडसामली णं अट्ठ जोयणाइं एवं चेव।

कूटशाल्मली अष्ट योजनानि एवं चैव।

६४ कूटशाल्मली वृक्ष आठ योजन ऊंचा है। वह बहुमध्य-देशभाग मे आठ योजन चौड़ा और सर्व परिमाण में आठ योजन से अधिक है[14]।

६५. तिमिसगुहा णं अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं।

तमिस्रगुहा अष्ट योजनानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन।

६५. तमिस्र गुफा आठ योजन ऊंची है।

६६. खंडप्पवातगुहा णं अट्ठ °जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं।°

खण्डप्रपातगुहा अष्ट योजनानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन।

६६. खण्डप्रपात गुफा आठ योजन ऊंची है।

६७. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये

६७. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व में

पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उभतो कूले अट्ठ वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
चित्तकूडे, पम्हकूडे, णलिणकूडे, एगसेले, तिकूडे, वेसमणकूडे, अंजणे, मायंजणे।

शीतायाः महानद्याः उभतः कूले अष्ट वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
चित्रकूटः, पक्ष्मकूटः, नलिनकूटः, एकशैलः, त्रिकूटः, वैश्रमणकूटः, अञ्जनः, माताञ्जनः।

शीता महानदी के दोनों तटों पर आठ वक्षस्कार पर्वत हैं —
१ चित्रकूट, २. पक्ष्मकूट, ३ नलिनकूट, ४. एकशैल, ५. त्रिकूट, ६ वैश्रमणकूट, ७. अञ्जन, ८. माताञ्जन।

६८. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोयाए महाणदीए उभतो कूले अट्ठ वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
अंकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे, चंदपव्वते, सूरपव्वते, णागपव्वते, देवपव्वते।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदायाः महानद्याः उभतः कूले अष्ट वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अङ्कावती, पक्ष्मावती, आशीविषः, सुखावहः, चन्द्रपर्वतः, सूरपर्वतः, नागपर्वतः, देवपर्वतः।

६८ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दोनों तटों पर आठ वक्षस्कार पर्वत हैं—
१ अंकावती, २ पक्ष्मावती, ३ आशीविष, ४ सुखावह, ५ चन्द्रपर्वत, ६ सूरपर्वत, ७ नागपर्वत, ८ देवपर्वत।

६९. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उत्तरे णं अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—
कच्छे, सुकच्छे, महाकच्छे, कच्छगावती, आवत्ते, °मंगलावत्ते, पुक्खले,° पुक्खलावती।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीतायाः महानद्याः उत्तरे अष्ट चक्रवर्त्तिविजयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कच्छः, सुकच्छः, महाकच्छः, कच्छकावती, आवर्त्तः, मङ्गलावर्त्तः, पुष्कलः, पुष्कलावती।

६९ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के उत्तर में चक्रवर्ती के आठ विजय हैं—
१. कच्छ, २ सुकच्छ, ३. महाकच्छ, ४ कच्छकावती, ५ आवर्त, ६. मंगलावर्त, ७ पुष्कल, ८ पुष्कलावती।

७० जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए दाहिणे णं अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—
वच्छे, सुवच्छे, °महावच्छे, वच्छगावती, रम्मे, रम्मगे, रमणिज्जे,° मंगलावती।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीतायाः महानद्याः दक्षिणे अष्ट चक्रवर्त्तिविजयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
वत्सः, सुवत्सः, महावत्सः, वत्सकावती, रम्यः, रम्यकः, रमणीयः, मङ्गलावती।

७० जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दरपर्वत के पूर्व में शीता महानदी के दक्षिण में चक्रवर्ती के आठ विजय हैं—
१ वत्स, २. सुवत्स, ३. महावत्स, ४. वत्सकावती, ५. रम्य, ६ रम्यक, ७. रमणीय, ८. मंगलावती।

७१. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोयाए महाणदीए दाहिणे णं अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—
पम्हे, °सुपम्हे, महपम्हे, पम्हगावती, संखे, णलिणे, कुमुए,° सलिलावती।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदायाः महानद्याः दक्षिणे अष्ट चक्रवर्त्तिविजयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पक्ष्म, सुपक्ष्म, महापक्ष्म, पक्ष्मकावती, शङ्ख, नलिन, कुमुद, सलिलावती।

७१ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दक्षिण में चक्रवर्ती के आठ विजय हैं—
१. पक्ष्म, २. सुपक्ष्म, ३. महापक्ष्म, ४. पक्ष्मकावती, ५. शंख, ६. नलिन, ७. कुमुद, ८. सलिलावती।

७२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोयाए महाणदीए उत्तरे णं अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—
वप्पे, सुवप्पे, °महावप्पे, वप्पगावती, वग्गू, सुवग्गू, गंधिले,° गंधिलावती।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदायाः महानद्याः उत्तरे अष्ट चक्रवर्त्तिविजयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
वप्रः, सुवप्रः, महावप्रः, वप्रकावती, वल्गुः, सुवल्गुः, गन्धिलः, गन्धिलावती।

७२. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के उत्तर में चक्रवर्ती के आठ विजय हैं—
१. वप्र, २. सुवप्र, ३. महावप्र, ४ वप्रकावती, ५. वल्गु, ६. सुवल्गु, ७. गन्धिल, ८. गन्धिलावती।

७३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उत्तरे णं अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
खेमा, खेमपुरी, °रिट्ठा, रिट्ठपुरी, खग्गी, मंजूसा, ओसधी,° पुंडरीगिणी।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीतायाः महानद्याः उत्तरे अष्ट राजधान्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
क्षेमा, क्षेमपुरी, रिष्टा, रिष्टपुरी, खड्गी, मञ्जूषा, औषधि, पौडरीकिणी।

७३. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दरपर्वत के पूर्व मे शीता महानदी के उत्तर मे आठ राजधानिया हैं—
१ क्षेमा, २. क्षेमपुरी ३ रिष्टा, ४. रिष्टपुरी, ५ खड्गी, ६. मंजूषा, ७ औषधि, ८. पौडरीकिणी।

७४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणईए दाहिणे णं अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
सुसीमा, कुंडला, °अपराजिया, पभंकरा, अंकावई, पम्हावई, सुभा,° रयणसंचया।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीतायाः महानद्याः दक्षिणे अष्ट राजधान्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
सुसीमा, कुण्डला, अपराजिता, प्रभाकरा, अङ्कावती, पक्ष्मावती, शुभा, रत्नसंचया।

७४. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व मे शीता महानदी के दक्षिण मे आठ राजधानियां है—
१ सुसीमा, २. कुण्डला, ३. अपराजिता, ४ प्रभाकरा. ५. अकावती, ६. पक्ष्मावती, ७ शुभा, ८. रत्नसंचया।

७५ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओदाए महाणदीए दाहिणे णं अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
आसपुरा, °सीहपुरा, महापुरा, विजयपुरा, अवराजिता, अवरा, असोया,° वीतसोगा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया महानद्या दक्षिणे अष्ट राजधान्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अश्वपुरी, सिंहपुरी, महापुरी, विजयपुरी, अपराजिता, अपरा, अशोका, वीतशोका।

७५ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के दक्षिण मे आठ राजधानिया हैं—
१. अश्वपुरी. २ सिंहपुरी, ३ महापुरी, ४. विजयपुरी, ५. अपराजिता, ६ अपरा, ७ अशोका, ८. वीतशोका।

७६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोयाए महाणईए उत्तरे णं अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
विजया, वेजयंती, °जयंती, अपराजिया, चक्कपुरा, खग्गपुरा, अवज्झा,° अउज्झा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया महानद्या उत्तरे अष्ट राजधान्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
विजया, वैजयन्ती, जयती, अपराजिता, चक्रपुरी, खड्गपुरी, अवध्या, अयोध्या।

७६ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के उत्तर मे आठ राजधानिया है—
१. विजया, २. वैजयन्ती, ३. जयन्ती, ४. अपराजिता, ५. चक्रपुरी, ६ खड्गपुरी, ७. अवध्या, ८. अयोध्या।

७७. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उत्तरे णं उक्कोसपए अट्ठ अरहंता, अट्ठ चक्कवट्टी, अट्ठ बलदेवा, अट्ठ वासुदेवा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीतायाः महानद्याः उत्तरे उत्कर्षपदे अष्ट अर्हन्तः, अष्ट चक्रवर्तिनः, अष्ट बलदेवाः, अष्ट वासुदेवा उदपदिषत वा उत्पद्यन्ते वा उत्पत्स्यन्ते वा।

७७. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के उत्तर मे उत्कृष्टत आठ अर्हत्, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, होते है और होंगे"।

७८. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए [महाणदीए?] दाहिणे णं उक्कोसपए एवं चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीतायाः (महानद्याः ?) दक्षिणे उत्कर्षपदे एव चैव।

७८. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता [महानदी ?] के दक्षिण मे उत्कृष्टत. आठ अर्हत्, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे. होते है और होंगे"।

७९. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओयाए महाणदीए दाहिणे णं उक्कोसपए एवं चेव।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदाया. महानद्याः दक्षिणे उत्कर्षपदे एव चैव।

७९. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के दक्षिण मे उत्कृष्टतः आठ अर्हत्, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, होते हैं और होंगे"।

८०. एवं उत्तरेणवि।

एवं उत्तरेणापि।

८०. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के उत्तर मे उत्कृष्टत. आठ अर्हत्, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, होते हैं और होंगे"।

८१. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणईए उत्तरे णं अट्ठ दीहवेयड्ढा, अट्ठ तिमिसगुहाओ, अट्ठ खंडगप्पवातगुहाओ, अट्ठ कयमालगा देवा, अट्ठ णट्टमालगा देवा, अट्ठ गंगाकुंडा, अट्ठ सिंधुकुंडा, अट्ठ गंगाओ, अट्ठ सिंधूओ, अट्ठ उसभकूडा पव्वता, अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीतायाः महानद्याः उत्तरे अष्ट दीर्घ-वैताढ्याः, अष्ट तमिस्रगुहाः, अष्ट खण्डकप्रपातगुहाः, अष्ट कृतमालकाः देवाः, अष्ट नृत्यमालकाः देवाः, अष्ट गङ्गाकुण्डानि, अष्ट सिन्धुकुण्डानि, अष्ट गङ्गाः, अष्ट सिन्धवः, अष्ट ऋषभकूटाः पर्वताः, अष्ट ऋषभकूटाः देवाः प्रज्ञप्ताः।

८१. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व मे शीता महानदी के उत्तर मे आठ दीर्घ-वैताढ्य, आठ तमिस्रगुफाएं, आठ खण्डक-प्रपातगुफाएं, आठ कृतमालक देव, आठ नृत्यमालक देव, आठ गंगाकुण्ड, आठ सिन्धुकुण्ड, आठ गंगा आठ सिन्धु, आठ ऋषभकूट पर्वत और आठ ऋषभकूट देव है।

८२. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए दाहिणे णं अट्ठ दीहवेअड्ढा एवं चेव जाव अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये शीतायाः महानद्याः दक्षिणे अष्ट दीर्घवैताढ्याः एव चैव यावत् अष्ट ऋषभकूटाः देवाः प्रज्ञप्ताः।

८२. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व मे शीता महानदी के दक्षिण में आठ दीर्घ-वैताढ्य, आठ तमिस्रगुफाएं, आठ खण्डक-प्रपातगुफाए, आठ कृतमालक देव, आठ

णवरमेत्थ रत्त-रत्तावती, तासिं चेव कुंडा।

नवरं—अत्र रक्ता-रक्तवती, तासां चैव कुण्डानि।

नृत्यमालक देव, आठ रक्ताकुण्ड, आठ रक्तवतीकुण्ड, आठ रक्ता, आठ रक्तवती, आठ ऋषभकूट पर्वत और आठ ऋषभकूट देव है।

८३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोयाए महाणदीए दाहिणे णं अट्ठ दीयवेयड्ढा जाव अट्ठ णट्टमालगा देवा, अट्ठ गंगाकुंडा, अट्ठ सिंधुकुंडा, अट्ठ गंगाओ, अट्ठ सिंधूओ, अट्ठ उसभकूडा पव्वता, अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदायाः महानद्याः दक्षिणे अष्ट दीर्घवैताढ्याः यावत् अष्ट नृत्यमालकाः देवाः, अष्ट गंगाकुण्डानि, अष्ट सिन्धुकुण्डानि, अष्ट गंगाः, अष्ट सिन्धवः, अष्ट ऋषभकूटाः पर्वताः, अष्ट ऋषभकूटाः देवाः प्रज्ञप्ताः।

८३. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दक्षिण में आठ दीर्घवैताढ्य, आठ तमिस्रगुफाएं, आठ खण्डकप्रपातगुफाएं, आठ कृतमालक देव, आठ नृत्यमालक देव, आठ गंगाकुण्ड, आठ सिन्धुकुण्ड, आठ गंगा, आठ सिन्धु, आठ ऋषभकूट पर्वत और आठ ऋषभकूट देव हैं।

८४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओयाए महाणदीए उत्तरे णं अट्ठ दीहवेयड्ढा जाव अट्ठ णट्टमालगा देवा पण्णत्ता। अट्ठ रत्ता कुंडा, अट्ठ रत्तावतिकुंडा, अट्ठ रत्ताओ, °अट्ठ रत्तावतीओ, अट्ठ उसभकूडा पव्वता,° अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये शीतोदायाः महानद्याः उत्तरे अष्ट दीर्घवैताढ्याः यावत् अष्ट नृत्यमालकाः देवाः प्रज्ञप्ताः। अष्ट रक्ताकुण्डानि, अष्ट रक्तवतीकुण्डानि, अष्ट रक्ताः, अष्ट रक्तवत्यः, अष्ट ऋषभकूटाः पर्वताः, अष्ट ऋषभकूटाः देवाः प्रज्ञप्ताः।

८४. जम्बूद्वीप द्वीप से मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के उत्तर में आठ दीर्घवैताढ्य, आठ तमिस्रगुफाएं, आठ खण्डकप्रपातगुफाएं, आठ कृतमालक देव, आठ नृत्यमालक देव, आठ रक्ताकुण्ड, आठ रक्तवतीकुण्ड, आठ रक्ता, आठ रक्तवती, आठ ऋषभकूट पर्वत और आठ ऋषभकूट देव है।

८५. मंदरचूलिया णं बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

मन्दरचूलिका बहुमध्यदेशभागे अष्ट योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।

८५. मन्दरचूलिका बहुमध्य-देशभाग में आठ योजन चौडी है।

धायइसंड-पदं

धातकीषण्ड-पदम्

धातकीषण्ड-पद

८६. धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं धायइरुक्खे अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं, साइरेगाइं अट्ठ जोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।

धातकीषण्डद्वीपपौरस्त्यार्धे धातकीरुक्षः अष्ट योजनानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, बहुमध्यदेशभागे, अष्ट योजनानि विष्कम्भेण, सातिरेकाणि अष्ट योजनानि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्तः।

८६. धातकीषण्डद्वीप के पूर्वार्ध में धातकीवृक्ष आठ योजन ऊंचा है। वह बहुमध्यदेशभाग में आठ योजन चौडा और सर्वपरिणाम में आठ योजन से अधिक है।

८७. एवं धायइरुक्खाओ आढवेत्ता सच्चेव जंबूदीववत्तव्वता भाणियव्वा जाव मंदरचूलियत्ति।

एवं धातकीरुक्षात् आरभ्य सा एव जम्बूद्वीपवक्तव्यता भणितव्या यावत् मन्दरचूलिकेति।

८७. इसी प्रकार धातकीषण्ड के पूर्वार्ध में धातकीवृक्ष से लेकर मन्दरचूलिका तक का वर्णन जम्बूद्वीप की भांति वक्तव्य हैं।

८८. एवं पच्चत्थिमद्धेवि महाधातइरुक्खातो आढवेत्ता जाव मंदरचूलियत्ति।

एवं पाश्चात्यार्धेऽपि महाधातकीरुक्षात् आरभ्य यावत् मन्दरचूलिकेति।

८८. इसी प्रकार धातकीषण्ड के पश्चिमार्द्ध मे महाधातकी वृक्ष से लेकर मन्दरचूलिका तक का वर्णन जम्बूद्वीप की भांति वक्तव्य है।

पुक्खरवर-पदं

पुष्करवर-पदम्

पुष्करवर-पद

८९. एवं पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धेवि पउमरुक्खाओ आढवेत्ता जाव मंदरचूलियत्ति।

एवं पुष्करवरद्वीपार्धपौरस्त्यार्धेऽपि पद्मरुक्षात् आरभ्य यावत् मन्दरचूलिकेति।

८९ इसी प्रकार अर्द्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्द्ध मे पद्म वृक्ष से लेकर मन्दरचूलिका तक का वर्णन जम्बूद्वीप की भांति वक्तव्य है।

९०. एवं पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धेवि महापउमरुक्खातो जाव मंदरचूलियत्ति।

एवं पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्धेऽपि महापद्मरुक्षात् यावत् मन्दरचूलिकेति।

९० इसी प्रकार अर्धपुष्करवरद्वीप के पश्चिमार्द्ध मे महापद्म वृक्ष से लेकर मन्दरचूलिका तक का वर्णन जम्बूद्वीप की भांति वक्तव्य है।

कूड-पदं

कूट-पदम्

कूट-पद

९१. जंबुद्दीवे दीवे मंदरे पव्वते भद्दसालवणे अट्ठ दिसाहत्थिकूडा पण्णत्ता, तं जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरे पर्वते भद्रशालवने अष्ट दिशाहस्तिकूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

९१ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के भद्रशालवन मे आठ दिशा-हस्तिकूट [पूर्व आदि दिशाओं मे हाथी के आकार वाले शिखर] है—

संगहणी-गाहा

१. पउमुत्तर णीलवंते,
सुहत्थि अंजणागिरी।
कुमुदे य पलासे य,
वडेंसे रोयणागिरी॥

संग्रहणी-गाथा

१. पद्मोत्तरं नीलवान्,
सुहस्ती अञ्जनगिरि।
कुमुदश्च पलाशश्च,
अवतंस रोचनगिरि॥

१ पद्मोत्तर, २. नीलवान् ३. सुहस्ती, ४ अजनगिरि, ५. कुमुद, ६. पलाश, ७. अवतंसक, ८. रोचनगिरि।

जगती-पदं

जगती-पदम्

जगती-पद

९२ जंबूदीवस्स णं दीवस्स जगती अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य जगती अष्ट योजनानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, बहुमध्यदेशभागे अष्ट योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।

९२ जम्बूद्वीप द्वीप की जगती आठ योजन ऊंची और बहुमध्यदेशभाग मे आठ योजन चौड़ी है।

कूड-पदं

कूट-पदम्

कूट-पद

९३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं महाहिमवंते वासहरपव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे महाहिमवति वर्षधरपर्वते अष्ट कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

९३. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के दक्षिण मे महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के आठ कूट है—

संगहणी-गाहा

१. सिद्ध महाहिमवंते,
हिमवंते रोहिता हिरीकूडे।
हरिकंता हरिवासे,
वेरुलिए चेव कूडा उ ॥

संग्रहणी-गाथा

१. सिद्धः महाहिमवान्,
हिमवान् रोहितः ह्रीकूट।
हरिकान्ता हरिवर्ष,
वैडूर्यं चैव कूटानि तु ॥

१. सिद्ध, २. महाहिमवान्, ३. हिमवान्, ४. रोहित, ५. ह्रीकूट, ६. हरिकांत, ७. हरिवर्ष, ८. वैडूर्य।

९४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रुप्पिमि वासहरपव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. सिद्धे य रुप्पि रम्मग,
णरकंता बुद्धि रुप्पकूडे य।
हिरण्णवते मणिकंचणे,
य रुप्पिम्मि कूडा उ ॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे रुक्मिणि वर्षधरपर्वते अष्ट कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ सिद्धश्च रुक्मी रम्यकः,
नरकान्त बुद्धिः रूप्यकूट च।
हिरण्यवान् मणिकाञ्चन च,
रुक्मिणि कूटानि तु ॥

९४. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर में रुक्मी वर्षधर पर्वत के आठ कूट है—
१. सिद्ध, २. रुक्मी, ३. रम्यक, ४ नरकान्त, ५ बुद्धि, ६. रूप्यकूट, ७ हैरण्यवत, ८. मणिकाञ्चन।

९५ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं रुयगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. रिट्ठे तवणिज्ज कंचण,
रयत दिसासोत्थिते पलंबे य।
अंजणे अंजणपुलए,
रुयगस्स पुरत्थिमे कूडा ॥
तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठितीओ परिवसंति, तं जहा—
२. णंदुत्तरा य णंदा,
आणंदा णंदिवद्धणा।
विजया य वेजयंती,
जयंती अपराजिया ॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये रुचकवरे पर्वते अष्ट कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ रिष्टं तपनीय काञ्चन,
रजत दिशासौवस्तिक प्रलम्बश्च।
अञ्जनं अञ्जनपुलक,
रुचकस्य पौरस्त्ये कूटानि ॥
तत्र अष्ट दिशाकुमारीमहत्तरिका महर्द्धिका यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा—
२. नन्दोत्तरा च नन्दा,
आनन्दा नन्दिवर्धना।
विजया च वैजयन्ती,
जयन्ती अपराजिता ॥

९५. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व मे रुचकवर पर्वत के आठ कूट है—
१ रिष्ट, २. तपनीय, ३. कांचन, ४. रजत, ५. दिशास्वस्तिक, ६. प्रलंब, ७. अजन, ८. अंजनपुलक।
वहा महान् ऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाली दिशाकुमारी महत्तरिकाए रहती है—
१. नन्दोत्तरा, २. नन्दा, ३. आनन्दा, ४ नन्दिवर्धना, ५ विजया ६. वैजयन्ती, ७ जयन्ती, ८. अपराजिता।

९६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं रुयगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. कणए कंचणे पउमे,
णलिणे ससि दिवायरे चेव।
वेसमणे वेरुलिए,
रुयगस्स उ दाहिणे कूडा ॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे रुचकवरे पर्वते अष्ट कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ कनक काञ्चन पद्म,
नलिन शशी दिवाकरश्चैव।
वैश्रमण वैडूर्य,
रुचकस्य तु दक्षिणे कूटानि ॥

९६ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के दक्षिण मे रुचकवर पर्वत के आठ कूट है—
१. कनक, २. काञ्चन, ३. पद्म, ४. नलिन, ५. शशी, ६. दिवाकर, ७. वैश्रमण, ८. वैडूर्य।

तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—

२. समाहारा सुप्पतिण्णा,
सुप्पबुद्धा जसोहरा।
लच्छिवती सेसवती,
चित्तगुत्ता वसुंधरा।

तत्र अष्ट दिशाकुमारीमहत्तरिकाः महर्द्धिकाः यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा—

२. समाहारा सुप्रतिज्ञा,
सुप्रबुद्धा यशोधरा।
लक्ष्मीवती शेषवती,
चित्रगुप्ता वसुन्धरा

वहां महान् ऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाएं रहती हैं—

१. समाहारा, २. सुप्रतिज्ञा, ३. सुप्रबुद्धा, ४. यशोधरा, ५ लक्ष्मीवती, ६ शेषवती, ७ चित्रगुप्ता, ८. वसुन्धरा।

९७. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं रुयगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सोत्थिते य अमोहे य,
हिमवं मंदरे तहा।
रुअगे रुयगुत्तमे चंदे,
अट्ठमे य सुदंसणे॥

तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—

२. इलादेवी सुरादेवी,
पुढवी पउमावती।
एगणासा णवमिया,
सीता भद्दा य अट्ठमा॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्ये रुचकवरे पर्वते अष्ट कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

१. स्वस्तिकश्च अमोहश्च,
हिमवान् मन्दरस्तथा।
रुचक रुचकोत्तमः चन्द्र,
अष्टमश्च सुदर्शनः॥

तत्र अष्ट दिशाकुमारीमहत्तरिकाः महर्द्धिकाः यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा—

२ इलादेवी सुरादेवी,
पृथ्वी पद्मावती।
एकनाशा नवमिका,
शीता भद्रा च अष्टमी॥

९७ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम में रुचकवर पर्वत के आठ कूट हैं—

१ स्वस्तिक, २. अमोह, ३ हिमवान्, ४ मन्दर, ५ रुचक, ६ रुचकोत्तम, ७. चन्द्र, ८ सुदर्शन।

वहां महान् ऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाएं रहती हैं—

१ इलादेवी, २. सुरादेवी, ३ पृथ्वी, ४ पद्मावती, ५. एकनासा, ६. नवमिका, ७ सीता, ८ भद्रा।

९८. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रुअगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

१. रयण-रयणुच्चए या,
सव्वरयण रयणसंचए चेव।
विजये य वेजयंते,
जयंते अपराजिते॥

तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे रुचकवरे पर्वते अष्ट कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

१ रत्न रत्नोच्चयश्च,
सर्वरत्न रत्नसंचयश्चैव।
विजयश्च वैजयन्त,
जयन्त अपराजित॥

तत्र अष्ट दिशाकुमारीमहत्तरिकाः महर्द्धिकाः यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा—

९८ जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर में रुचकवर पर्वत के आठ कूट हैं—

१. रत्न, २. रत्नोच्चय, ३. सर्वरत्न, ४ रत्नसञ्चय, ५. विजय, ६. वैजयन्त, ७. जयन्त, ८. अपराजित।

वहां महान् ऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाएं रहती हैं—

२. अलंबुसा मिस्सकेसी,
पोंडरिगी य वारुणी।
आसा सव्वगा चेव,
सिरी हिरी चेव उत्तरतो ॥

२. अलंबुषा मिश्रकेशी,
पौंडरिकी च वारुणी।
आशा सर्वगा चैव,
श्रीः ह्रीः चैव उत्तरतः ॥

१. अलंबुषा, २. मिश्रकेशी,
३. पौण्डरिकी ४ वारुणी, ५. आशा,
६. सर्वगा, ७ श्री, ८. ह्री।

महत्तरिया-पदं

९९. अट्ठ अहेलोगवत्थव्वाओ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. भोगंकरा भोगवती,
सुभोगा भोगमालिणी।
सुवच्छा वच्छमित्ता य,
वारिसेणा बलाहगा ॥

महत्तरिका-पदम्

अष्ट अधोलोकवास्तव्याः दिशाकुमारीमहत्तरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. भोगकरा भोगवती,
सुभोगा भोगमालिनी।
सुवत्सा वत्समित्रा च,
वारिषेणा बलाहका ॥

महत्तरिका-पद

९९. अधोलोक मे रहने वाली दिशाकुमारियों की महत्तरिकाएं आठ है—

१. भोगंकरा, २ भोगवती,
३. सुभोगा, ४. भोगमालिनी,
५ सुवत्सा, ६ वत्समित्रा,
७ वारिषेणा, ८ बलाहका।

१००. अट्ठ उड्ढलोगवत्थव्वाओ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. मेघंकरा मेघवती,
सुमेघा मेघमालिणी।
तोयधारा विचित्ता य,
पुप्फमाला अणिंदिता ॥

अष्ट ऊर्ध्वलोकवास्तव्याः दिशाकुमारीमहत्तरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

१. मेघंकरा मेघवती,
सुमेघा मेघमालिनी।
तोयधारा विचित्रा च,
पुष्पमाला अनिन्दिता ॥

१००. ऊंचे लोक मे रहने वाली दिशाकुमारियों की महत्तरिकाएं आठ हैं—

१. मेघंकरा, २. मेघवती,
३. सुमेघा, ४. मेघमालिनी,
५ तोयधारा, ६. विचित्रा,
७ पुष्पमाला, ८. अनिन्दिता।

कप्प-पदं

१०१. अट्ठ कप्पा तिरिय-मिस्सोववण्णगा पण्णत्ता, तं जहा—
सोहम्मे, °ईसाणे, सणंकुमारे, माहिंदे, बंभलोगे, लंतए, महासुक्के,° सहस्सारे।

१०२. एतेसु णं अट्ठसु कप्पेसु अट्ठ इंदा पण्णत्ता तं जहा—
सक्के, °ईसाणे, सणंकुमारे, माहिंदे, बंभे, लंतए, महासुक्के,° सहस्सारे।

कल्प-पदम्

अष्ट कल्पाः तिर्यग्-मिश्रोपपन्नकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
सौधर्मः, ईशानः, सनत्कुमारः, माहेन्द्रः, ब्रह्मलोकः, लान्तकः, महाशुक्रः, सहस्रारः।

एतेषु अष्टसु कल्पेषु अष्टेन्द्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
शक्रः, ईशानः, सनत्कुमारः, माहेन्द्रः, ब्रह्मा, लांतकः, महाशुक्रः, सहस्रारः।

कल्प-पद

१०१. आठ कल्प [देवलोक] तिर्यग्-मिश्रोपपन्नक [तिर्यञ्च और मनुष्य दोनों के उत्पन्न होने योग्य] है—
१. सौधर्म, २. ईशान, ३. सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५. ब्रह्म, ६. लान्तक, ७. महाशुक्र, ८. सहस्रार।

१०२. इन आठ कल्पो मे आठ इन्द्र है—
१. शक्र, २. ईशान, ३. सनत्कुमार, ४. माहेन्द्र, ५. ब्रह्म, ६. लान्तक, ७. महाशुक्र, ८. सहस्रार।

१०३. एतेसि णं अट्ठण्हं इंदाणं अट्ठ परियाणिया विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—
पालए, पुप्फए, सोमणसे,
सिरिवच्छे, णंदियावत्ते,
कामकमे, पीतिमणे, मणोरमे।

एतेषा अष्टाना इन्द्राणा अष्ट पारियानिकानि विमानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पालक, पुष्पकं, सौमनस, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त्त,कामक्रमं,प्रीतिमन.,मनोरमम्।

१०३ इन आठ इन्द्रों के आठ पारियानिक विमान'' है—
१ पालक, २. पुष्पक, ३. सौमनस,
४ श्रीवत्स, ५. नन्द्यावर्त्त, ६. कामक्रम,
७ प्रीतिमन, ८ मनोरम।

पडिमा-पदं

१०४. अट्ठट्ठमिया णं भिक्खुपडिमा चउसट्ठीए राइंदिएहिं दोहि य अट्ठासीतेहिं भिक्खासतेहिं अहासुत्तं •अहाअत्थं अहातच्चं अहामग्गं अहाकप्पं सम्मं काएणं फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया॰ अणुपालितावि भवति।

प्रतिमा-पदम्

अष्टाष्टमिका भिक्षुप्रतिमा चतुःषष्ठिक रात्रिदिवै द्वाभ्या च आष्टाशीतै भिक्षाशतैः यथासूत्र यथार्थ यथातत्त्वं यथामार्ग यथाकल्प सम्यक् कायेन स्पृष्टा पालिता शोधिता तीरिता कीर्तिता अनुपालिता अपि भवति।

प्रतिमा-पद

१०४ अष्टाष्टमिका (८×८) भिक्षु-प्रतिमा ६४ दिन-रात तथा २८८ भिक्षादत्तियों द्वारा यथासूत्र, यथाअर्थ, यथातत्त्व, यथामार्ग, यथाकल्प तथा सम्यक् प्रकार से काया से आचीर्ण, पालित, शोधित,पूरित, कीर्तित और अनुपालित की जाती है।

जीव-पदं

१०५. अट्ठविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—
पढमसमयणेरइया,
अपढमसमयणेरइया,
•पढमसमयतिरिया,
अपढमसमयतिरिया,
पढमसमयमणुया,
अपढमसमयमणुया,
पढमसमयदेवा,॰
अपढमसमयदेवा।

१०६. अट्ठविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—
णेरइया, तिरिक्खजोणिया,
तिरिक्खजोणिणीओ, मणुस्सा,
मणुस्सीओ, देवा, देवीओ, सिद्धा।
अहवा—अट्ठविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

जीव-पदम्

अष्टविधा संसारसमापन्नका जीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
प्रथमसमयनैरयिका,
अप्रथमसमयनैरयिका,
प्रथमसमयतिर्यञ्च,
अप्रथमसमयतिर्यञ्च,
प्रथमसमयमनुजा,
अप्रथमसमयमनुजा,
प्रथमसमयदेवा,
अप्रथमसमयदेवा।

अष्टविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
नैरयिका, तिर्यग्योनिका,
तिर्यग्योनिक्यः,
मनुष्या, मानुष्य, देवाः, देव्य, सिद्धा।
अथवा—अष्टविधा, सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

जीव-पद

१०५. समारसमापन्नक जीव आठ प्रकार के है—
१. प्रथम समय नैरयिक।
२ अप्रथम समय नैरयिक।
३ प्रथम समय तिर्यञ्च।
४ अप्रथम समय तिर्यञ्च।
५ प्रथम समय मनुष्य।
६ अप्रथम समय मनुष्य।
७ प्रथम समय देव।
८ अप्रथम समय देव।

१०६ सभी जीव आठ प्रकार के है—
१ नैरयिक, २ तिर्यञ्चयोनिक,
३ तिर्यञ्चयोनिकी, ४. मनुष्य,
५. मानुषी, ६. देव, ७. देवी,
८. सिद्ध।

अथवा—सभी जीव आठ प्रकार के है—

आभिणिबोहियणाणी, °सुयणाणी, ओहिणाणी, मणपज्जवणाणी,° केवलणाणी, मतिअण्णाणी, सुतअण्णाणी, विभंगणाणी।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी।

१. आभिनिबोधिकज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी, ३. अवधिज्ञानी, ४. मनःपर्यवज्ञानी, ५. केवलज्ञानी, ६. मतिअज्ञानी, ७. श्रुतअज्ञानी, ८. विभंगज्ञानी।

संजम-पदं

१०७. अट्ठविधे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—
पढमसमयसुहुमसंपरागसरागसंजमे,
अपढमसमयसुहुमसंपरागसरागसंजमे,
पढमसमयबादरसंपरागसरागसंजमे,
अपढमसमयबादरसंपरागसरागसंजमे,
पढमसमयउवसंतकसायवीतरागसंजमे,
अपढमसमयउवसंतकसायवीतरागसंजमे,
पढमसमयखीणकसायवीतरागसंजमे,
अपढमसमयखीणकसायवीतरागसंजमे।

संयम-पदम्

अष्टविधः संयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
प्रथमसमयसूक्ष्मसंपरायसरागसंयमः,
अप्रथमसमयसूक्ष्मसंपरायसरागसंयमः,
प्रथमसमयबादरसंपरायसरागसंयमः,
अप्रथमसमयबादरसंपरायसरागसंयमः,
प्रथमसमयोपशान्तकषायवीतरागसंयमः,
अप्रथमसमयोपशान्तकषायवीतरागसंयमः,
प्रथमसमयक्षीणकषायवीतरागसंयमः,
अप्रथमसमयक्षीणकषायवीतरागसंयमः।

संयम-पद

१०७. संयम के आठ प्रकार हैं—
१. प्रथमसमय सूक्ष्मसंपराय सराग-संयम।
२. अप्रथमसमय सूक्ष्मसंपराय सराग-संयम।
३. प्रथमसमय बादरसंपराय सराग-संयम।
४. अप्रथमसमय बादरसंपराय सराग-संयम।
५. प्रथमसमय उपशांतकषाय वीतराग-संयम।
६. अप्रथमसमय उपशांतकषाय वीतराग-संयम।
७. प्रथमसमय क्षीणकषाय वीतराग-संयम।
८. अप्रथमसमय क्षीणकषाय वीतराग-संयम।

पुढवि-पदं

१०८. अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा— रयणप्पभा, °सक्करप्पभा, वालुअप्पभा, पंकप्पभा, धूमप्पभा, तमा,° अहेसत्तमा, ईसिपब्भारा।

पृथिवी-पदम्

अष्ट पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमा, अधःसप्तमी, ईषत्प्राग्भारा।

पृथिवी-पद

१०८. पृथ्वियां आठ हैं—
१. रत्नप्रभा, २. शर्कराप्रभा, ३. बालुकाप्रभा, ४. पंकप्रभा, ५. धूमप्रभा, ६. तमःप्रभा, ७. अधःसप्तमी (महातमःप्रभा), ८. ईषत्प्राग्भारा।

१०९. ईसिपब्भाराए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभागे अट्ठजोयणिए खेत्ते अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

ईषत्प्राग्भारायाः पृथिव्याः बहुमध्यदेशभागे अष्टयोजनिक क्षेत्रं अष्ट योजनानि बाहल्येन प्रज्ञप्तम्।

१०९. ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के बहुमध्यदेशभाग में आठ योजन लम्बे-चौड़े क्षेत्र की मोटाई आठ योजन की है।

११०. ईसिपब्भाराए णं पुढवीए अट्ठ णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
ईसिति वा, ईसिपब्भाराति वा,
तणूति वा, तणुतणूइ वा,
सिद्धीति वा, सिद्धालएत्ति वा,
मुत्तीति वा, मुत्तालएति वा।

ईषत्प्राग्भाराया पृथिव्या: अष्ट नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
ईषत् इति वा, ईषत्प्राग्भारेति वा,
तनुरिति वा, तनुतनुरिति वा,
सिद्धिरिति वा, सिद्धालय इति वा,
मुक्तिरिति वा, मुक्तालय इति वा।

११०. ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के आठ नाम है—
१. ईषत्, २. ईषत्प्राग्भारा, ३. तनु, ४. तनुतनु, ५. सिद्धि, ६. सिद्धालय, ७ मुक्ति, ८. मुक्तालय।

अब्भुट्ठेतव्व-पदं

अभ्युत्थातव्य-पदम्

अभ्युत्थातव्य-पद

१११. अट्ठहिं ठाणेहिं सम्मं घडितव्वं जतितव्वं परक्कमितव्वं अस्सिं च णं अट्ठे णो पमाएतव्वं भवति—
१. असुयाणं धम्माणं सम्मं सुणणत्ताए अब्भुट्ठेतव्वं भवति।
२. सुताणं धम्माणं ओगिण्हणयाए उवधारणयाए अब्भुट्ठेतव्वं भवति।
३. णवाणं कम्माणं संजमेणमकरणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।
४. पोराणाण कम्माणं तवसा विगिंचणताए विसोहणताए अब्भुट्ठेतव्वं भवति।
५. असंगिहीतपरिजणस्स संगिण्हणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।
६. सेहं आयारगोयर गाहणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।
७. गिलाणस्स अगिलाए वेयावच्चकरणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।
८. साहम्मियाणमधिकरणंसि उप्पण्णंसि तत्थ अणिस्सितोवस्सितो अपक्खग्गाही मज्झत्थभावभूते कह णु साहम्मिया अप्पसद्दा अप्पझंझा अप्पतुमंतुमा? उवसामणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।

अष्टाभिः स्थानैः सम्यग् घटितव्य यतितव्य पराक्रमितव्य अस्मिन् च अर्थे नो प्रमदितव्य भवति—
१ अश्रुतानां धर्माणा सम्यक् श्रवणतायै अभ्युत्थातव्य भवति।
२ श्रुतानां धर्माणा अवग्रहणतायै उपधारणतायै अभ्युत्थातव्य भवति।
३. नवाना कर्मणा सयमेन अकारणतायै अभ्युत्थातव्य भवति।
४. पुराणाना कर्मणा तपसा विवेचनतायै विशोधनतायै अभ्युत्थातव्य भवति।
५. असगृहीतपरिजनस्य सग्रहणतायै अभ्युत्थातव्य भवति।
६. शैक्ष आचारगोचर ग्राहणतायै अभ्युत्थातव्य भवति।
७. ग्लानस्य अग्लान्या वैयावृत्यकरणतायै अभ्युत्थातव्य भवति।
८ सार्धमिकाना अधिकरणे उत्पन्ने तत्र अनिश्रितोपाश्रितो अपक्षग्राही मध्यस्थभावभूत कथ नु सार्धमिका: अल्पशब्दा: अल्पझझा: अल्पतुमन्तुमा ? उपशमनतायै अभ्युत्थातव्य भवति।

१११. साधक आठ वस्तुओ के लिए सम्यक् चेष्टा[1] करे, सम्यक् प्रयत्न[1] करे, सम्यक् पराक्रम[1] करे और इन आठ स्थानों मे किंचित् भी प्रमाद न करे—
१ अश्रुत धर्मों को सम्यक् प्रकार से सुनने के लिए जागरूक रहे।
२ सुने हुए धर्मों के मानसिक ग्रहण और उनकी स्थिर स्मृति के लिए जागरूक रहे।
३ सयम के द्वारा नए कर्मों का निरोध करने के लिए जागरूक रहे।
४. तपस्या के द्वारा पुराने कर्मों का विवेचन—पृथक्करण और विशोधन करने के लिए जागरूक रहे।
५. असगृहीत परिजनों—शिष्यो को आश्रय देने के लिए जागरूक रहे।
६. शैक्ष—नव-दीक्षित मुनि को आचारगोचर[1] का सम्यग् बोध कराने के लिए जागरूक रहे।
७ ग्लान की अग्लानभाव से वैयावृत्य करने के लिए जागरूक रहे।
८ सार्धमिको मे परस्पर कलह उत्पन्न होने पर—ये मेरे सार्धमिक किस प्रकार अपशब्द, कलह और तू-तू मैं-मैं से मुक्त हो—ऐसा चिन्तन करते हुए लिप्सा और अपेक्षा-रहित होकर, किसी का पक्ष न लेकर, मध्यस्थ-भाव को स्वीकार कर उसे उपशांत करने के लिए जागरूक रहे।

विमाण-पदं

११२. महासुक्क-सहस्सारेसु णं कप्पेसु विमाणा अट्ठ जोयणसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

विमान-पदम्

महाशुक्र-सहस्रारेषु कल्पेषु विमानानि अष्ट योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

विमान-पद

११२. महाशुक्र और सहस्रार कल्पों में विमान आठ सौ योजन ऊंचे हैं।

वादि-पदं

११३. अरहतो णं अरिट्ठणेमिस्स अट्ठसया वादीणं सदेवमणुयासुराए परिसाए वादे अपराजिताणं उक्कोसिया वादिसंपया हुत्था।

वादि-पदम्

अर्हतः अरिष्टनेमेः अष्टशतानि वादिनां सदेवमनुजासुरायां परिषदि वादे अपराजितानां उत्कर्षिता वादिसम्पत् अभवत्।

वादि-पद

११३. अर्हत् अरिष्टनेमि के आठ सौ साधु वादी थे। वे देव, मनुष्य और असुर—किसी की भी परिषद् में वादकाल में पराजित नहीं होते थे। यह उनकी उत्कृष्टवादी सम्पदा थी।

केवलिसमुग्घात-पदं

११४. अट्ठसमइए केवलिसमुग्घाते पण्णत्ते, तं जहा—
पढमे समए दंडं करेति,
बीए समए कवाडं करेति,
ततिए समए मंथं करेति,
चउत्थे समए लोगं करेति,
पंचमे समए लोगं पडिसाहरति,
छट्ठे समए मंथं पडिसाहरति,
सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरति,
अट्ठमे समए दंडं पडिसाहरति।

केवलिसमुद्घात-पदम्

अष्ट सामयिकः केवलिसमुद्घातः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
प्रथमे समये दण्डं करोति,
द्वितीये समये कपाटं करोति,
तृतीये समये मन्थं करोति,
चतुर्थे समये लोकं करोति,
पञ्चमे समये लोकं प्रतिसंहरति,
षष्ठे समये मन्थं प्रतिसंहरति,
सप्तमे समये कपाटं प्रतिसंहरति,
अष्टमे समये दण्डं प्रतिसंहरति।

केवलिसमुद्घात-पद

११४. केवली-समुद्घात[१] आठ समय का होता है—
१. केवली पहले समय में दण्ड करते हैं।
२. दूसरे समय में कपाट करते हैं।
३. तीसरे समय में मथान करते हैं।
४. चौथे समय में समूचे लोक को भर देते हैं।
५. पांचवें समय में लोक का—लोक में परिव्याप्त आत्म-प्रदेशों का संहरण करते हैं।
६. छठे समय में मथान का संहरण करते हैं।
७. सातवें समय में कपाट का संहरण करते हैं।
८. आठवें समय में दण्ड का संहरण करते हैं।

अणुत्तरोववाइय-पदं

११५. समणस्स णं भगवतो महावीरस्स अट्ठ सया अणुत्तरोववाइयाणं गतिकल्लाणाणं °ठितिकल्लाणाणं,° आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसंपया हुत्था।

अनुत्तरोपपातिक-पदम्

श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अष्ट शतानि अनुत्तरोपपातिकानां गति-कल्याणानां स्थितिकल्याणानां आगमिष्यद्भद्राणां उत्कर्षिता अनुत्तरोपपातिकसम्पत् अभवत्।

अनुत्तरोपपातिक-पद

११५. श्रमण भगवान् महावीर के अनुत्तरविमान में उत्पन्न होने वाले साधु आठ सौ थे। वे कल्याण-गतिवाले, कल्याण-स्थिति वाले तथा भविष्य में निर्वाण प्राप्त करने वाले थे। वह उनकी उत्कृष्ट अनुत्तरोपपातिक सम्पदा थी।

वाणमंतर-पदं

११६. अट्ठविधा वाणमंतरा देवा पण्णत्ता, तं जहा—
पिसाया, भूता, जक्खा, रक्खसा, किण्णरा, किंपुरिसा, महोरगा, गंधव्वा।

११७. एतेसि णं अट्ठविहाणं वाणमंतर देवाणं अट्ठ चेइयरुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१ कलंबो उ पिसायाणं,
वडो जक्खाण चेइयं।
तुलसी भूयाण भवे,
रक्खसाणं च कंडओ॥
२ असोओ किण्णराणं च,
किंपुरिसाणं तु चंपओ।
णागरुक्खो भुयंगाणं,
गंधव्वाण य तेंदुओ॥

जोइस-पदं

११८. इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अट्ठजोयणसते उड्ढमबाहाए सूरविमाणे चारं चरति।

११९. अट्ठ णक्खत्ता चंदेणं सद्धिं पमद्दं जोगं जोएंति, तं जहा—
कत्तिया, रोहिणी, पुणव्वसू, महा, चित्ता, विसाहा, अणुराधा, जेट्ठा।

दार-पदं

१२०. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स दारा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

वानमन्तर-पदम्

अष्टविधाः वानमन्तराः देवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पिशाचाः, भूताः, यक्षाः, राक्षसाः, किन्नराः, किंपुरुषाः, महोरगाः, गन्धर्वाः।

एतेषां अष्टविधानां वानमन्तरदेवानां अष्ट चैत्यरुक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. कदम्बस्तु पिशाचानां,
वटो यक्षाणां चैत्यम्।
तुलसी भूतानां भवेत्,
राक्षसानां च काण्डकः॥
२. अशोकः किन्नराणां च,
किंपुरुषाणां तु चम्पकः।
नागरुक्षः भुजङ्गानां,
गन्धर्वाणां तु तिन्दुकः॥

ज्योतिष-पदम्

अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः बहुसमरमणीयात् भूमिभागात् अष्टयोजनशतं ऊर्ध्वअबाधया सूरविमानं चारं चरति।

अष्ट नक्षत्राणि चन्द्रेण सार्धं प्रमर्दं योगं योजयन्ति, तद्यथा—
कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसुः, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा।

द्वार-पदम्

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य द्वाराणि अष्ट योजनानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

वानमन्तर-पद

११६. वाणमंतर आठ प्रकार के हैं—
१. पिशाच, २. भूत, ३. यक्ष, ४. राक्षस, ५ किन्नर, ६. किंपुरुष, ७. महोरग, ८. गन्धर्व।

११७. इन आठ वाणमंतर देवों के चैत्यवृक्ष आठ है—

१. पिशाचों का चैत्यवृक्ष कदब है।
२. यक्षों का चैत्यवृक्ष बट है।
३ भूतों का चैत्यवृक्ष तुलसी है।
४. राक्षसों का चैत्यवृक्ष काण्डक है।
५. किन्नरों का चैत्यवृक्ष अशोक है।
६ किंपुरुषों का चैत्यवृक्ष चम्पक है।
७ महोरगों का चैत्यवृक्ष नागवृक्ष है।
८. गन्धर्वों का चैत्यवृक्ष तेंदुक—आबनूस है।

ज्योतिष-पद

११८. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम [समतल] रमणीय भूभाग से आठ सौ योजन की ऊंचाई पर सूर्य विमान गति करता है।

११९. आठ नक्षत्र चन्द्रमा के साथ प्रमद [स्पर्श] योग[३१] करते हैं—
१ कृत्तिका, २. रोहिणी, ३. पुनर्वसु, ४. मघा, ५. चित्रा, ६. विशाखा, ७. अनुराधा, ८. ज्येष्ठा।

द्वार-पद

१२०. जम्बूद्वीप द्वीप के द्वार आठ-आठ योजन ऊंचे हैं।

१२१. सव्वेसिंपि, णं दीवसमुद्दाणं दारा अट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

सर्वेषामपि द्वीपसमुद्राणां द्वाराणि अष्ट योजनानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

१२१. सभी द्वीप-समुद्रों के द्वार आठ-आठ योजन ऊंचे है।

बंधठिति-पदं

बन्धस्थिति-पदम्

बन्धस्थिति-पद

१२२. पुरिसवेयणिज्जस्स णं कम्मस्स जहण्णेणं अट्ठसंवच्छराइं बंधठिति पण्णत्ता।

पुरुषवेदनीयस्य कर्मणः जघन्येन अष्ट सवत्सराणि बन्धस्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२२. पुरुषवेदनीय कर्म की बंध-स्थिति कम से कम आठ वर्षों की है।

१२३. जसोकित्तीणामस्स णं कम्मस्स जहण्णेणं अट्ठ मुहुत्ताइं बंधठिती पण्णत्ता।

यशोकीर्त्तिनाम्नः कर्मणः जघन्येन अष्ट मुहूर्त्ता बन्धस्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२३. यश:कीर्ति नाम कर्म की बंध-स्थिति कम से कम आठ मुहूर्त्त की है।

१२४. उच्चागोतस्स णं कम्मस्स °जहण्णेणं अट्ठ मुहुत्ताइं बंधठिती पण्णत्ता।°

उच्चगोत्रस्य कर्मणः जघन्येन अष्ट मुहूर्त्ता बन्धस्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२४. उच्च गोत्र कर्म की बंध-स्थिति कम से कम आठ मुहूर्त्त की है।

कुलकोडि-पदं

कुलकोटि-पदम्

कुलकोटि-पद

१२५. तेइंदियाणं अट्ठ जाति-कुलकोडि-जोणीपमुह-सतसहस्सा पण्णत्ता।

त्रीन्द्रियाणां अष्ट जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुख-शतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

१२५. त्रीन्द्रिय जाति के योनि-प्रवाह में होने वाली कुल-कोटिया आठ लाख है[४८]।

पावकम्म-पदं

पापकर्म-पदम्

पापकर्म-पद

१२६ जीवा ण अट्ठठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—
पढमसमयणेरइयणिव्वत्तिते,
°अपढमसमयणेरइयणिव्वत्तिते,
पढमसमयतिरियणिव्वत्तिते,
अपढमसमयतिरियणिव्वत्तिते,
पढमसमयमणुयणिव्वत्तिते,
अपढमसमयमणुयणिव्वत्तिते,
पढमसमयदेवणिव्वत्तिते,°
अपढमसमयदेवणिव्वत्तिते।

जीवा: अष्टस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषुः वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा—
प्रथमसमयनैरयिकनिर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयनैरयिकनिर्वर्तितान्,
प्रथमसमयतिर्यग्निर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयतिर्यग्निर्वर्तितान्,
प्रथमसमयमनुजनिर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयमनुजनिर्वर्तितान्,
प्रथमसमयदेवनिर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयदेवनिर्वर्तितान्।

१२६. जीवो ने आठ स्थानो से निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्म के रूप मे चय किया है, करते है और करेंगे—
१. प्रथमसमय नैरयिकनिर्वर्तित पुद्गलों का।
२. अप्रथमसमय नैरयिकनिर्वर्तित पुद्गलो का।
३. प्रथमसमय तिर्यञ्चनिर्वर्तित पुद्गलो का।
४. अप्रथमसमय तिर्यञ्चनिर्वर्तित पुद्गलों का।
५. प्रथमसमय मनुष्यनिर्वर्तित पुद्गलों का।
६. अप्रथमसमय मनुष्यनिर्वर्तित पुद्गलों का।
७ प्रथमसमय देवनिर्वर्तित पुद्गलो का।
८. अप्रथमसमय देवनिर्वर्तित पुद्गलो का।

एवं—चिण-उवचिण-°बंध उदीर-वेय तह° णिज्जरा चेव।

एवम्—चय-उपचय-बन्ध उदीर-वेदाः तथा निर्जरा चैव।

इसी प्रकार उनका उपचय, बन्धन, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते है और करेंगे।

पोग्गल-पदं	पुद्गल-पदम्	पुद्गल-पद
१२७. अट्ठपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता।	अष्टप्रदेशिकाः स्कन्धाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः।	१२७. अष्टप्रदेशी स्कंध अनन्त है।
१२८. अट्ठपएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव अट्ठगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।	अष्टप्रदेशावगाढाः पुद्गलाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः यावत् अष्टगुणरूक्षाः पुद्गलाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः।	१२८. अष्टप्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त है। आठ समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त है। आठ गुण काले पुद्गल अनन्त है। इसी प्रकार शेष वर्ण तथा गंध, रस और स्पर्शो के आठ गुण वाले पुद्गल अनन्त है।

टिप्पणियाँ

स्थान—८

१. एकलविहार प्रतिमा (सू० १)

एकलविहार प्रतिमा का अर्थ है—अकेला रहकर साधना करने का सकल्प। जैन परपरा के अनुसार साधक तीन स्थितियों में अकेला रह सकता है[१]—

१. एकाकिविहार प्रतिमा स्वीकार करने पर।

२. जिनकल्प प्रतिमा स्वीकार करने पर।

३. मासिक आदि भिक्षु प्रतिमाए स्वीकार करने पर।

प्रस्तुत सूत्र मे एकाकिविहार प्रतिमा स्वीकार करने की योग्यता के आठ अग बतलाए गए है। वे ये हैं[२]—

१ श्रद्धावान्—अपने अनुष्ठानो के प्रति पूर्ण आस्थावान्। ऐसे व्यक्ति का सम्यक्त्व और चारित्र मेरु की भाति अडोल होता है।

२ सत्य पुरुष—सत्यवादी। ऐसा व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञा के पालन मे निडर होता है, सत्याग्रही होता है।

३ मेधावी—श्रुतग्रहण की मेधा से सम्पन्न।

४ बहुश्रुत—जघन्यत. नौवें पूर्व की तीसरी वस्तु को तथा उत्कृष्टत: असम्पूर्ण दस पूर्वों को जानने वाला।

५. शक्तिमान्—तपस्या, सत्त्व, सूत्र, एकत्व और बल इन पांच तुलाओ से जो अपने आपको तोल लेता है उसे शक्तिमान् कहा जाता है। छह मास तक भोजन न मिलने पर भी जो भूख से पराजित न हो, ऐसा अभ्यास तपस्या-तुला है। भय और निद्रा को जीतने का अभ्यास सत्त्व-तुला है। उन्हे जीतने के लिए वह पहली रात को, सब साधुओं के सो जाने पर, उपाश्रय में ही कायोत्सर्ग करता है। दूसरी बार उपाश्रय से बाहर, तीसरे चरण मे किसी चौक में, चौथे मे शून्य घर में और पाचवें क्रम मे श्मशान मे रात मे कायोत्सर्ग करता है। तीसरी तुला है सूत्र-भावना। वह सूत्र के परावर्तन से उच्छ्वास आदि काल के भेद को जानने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। एकत्व-तुला के द्वारा वह आत्मा को शरीर से भिन्न जानने का अभ्यास कर लेता है। बल-तुला के द्वारा वह मानसिक बल को इतना विकसित कर लेता है कि जिससे भयकर उपसर्ग उपस्थित होने पर भी उनसे विचलित नही होता।

जो साधक जिनकल्प प्रतिमा स्वीकार करता है, उसके लिए ये पाच तुलाए है। इनमे उत्तीर्ण होने पर ही वह जिनकल्प प्रतिमा स्वीकार कर सकता है।

६. अल्पाधिकरण—उपशान्त कलह की उदीरणा तथा नए कलहो का उद्भावन न करने वाला।

७ धृतिमान्—अरति और रति मे समभाव रखने वाला तथा अनुलोम और प्रतिलोम उपसर्गों को सहने मे समर्थ।

८. वीर्यसपन्न—स्वीकृत साधना से सतत उत्साह रखने वाला।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९५: एकाकिनो विहारो—ग्रामादिचर्या स एव प्रतिमाभिग्रह: एकाकिविहार प्रतिमा जिनकल्प प्रतिमा मासिक्यादिका वा भिक्षुप्रतिमा।

२ वही, पत्र, ३९५।

२. योनि-संग्रह (सू० २)

योनि-संग्रह का अर्थ है—प्राणियो की उत्पत्ति के स्थानो का सग्रह।

जीव यहा से मरकर जहा उत्पन्न होता है, उसे 'गति' और जहाँ से आकर यहा उत्पन्न होता है, उसे 'आगति' कहते हैं।

अडज, पोतज और जरायुज—इन तीन प्रकार के जीवो की गति और आगति आठ-आठ प्रकार की होती है।

शेष रसज, संस्वेदिम, सम्मूर्च्छिम, उद्भिन्न और औपपातिक [नरक और देव] जीवो की गति और आगति आठ प्रकार की नही होती। ये नारक या देवयानि मे उत्पन्न नही होते, क्योकि इनमे (नारक तथा देवयोनि मे) केवल पञ्चेन्द्रिय जीव ही उत्पन्न होते है। औपपातिक जीव भी रसज आदि योनियो मे उत्पन्न नही होते। वे केवल पञ्चेन्द्रिय और एकेन्द्रिय जीवों की योनियो मे ही उत्पन्न होते है।[1]

३. (सू० १०)

जो व्यक्ति एक भी माया का आचरण कर उसकी विशुद्धि नही करता उसके तीनों जन्म गर्हित होते है—

१ उसका वर्तमान जीवन गर्हित होता है। लोग स्थान-स्थान पर उसकी निन्दा करते है और उसे बुरा-भला कहते है। वह अपने दोष के कारण सदा भीत और उद्विग्न रहता है तथा अपने प्रकट और प्रच्छन्न दोषो को छुपाता रहता है। इन आचरणों से वह अपना विश्वास खो देता है। इस प्रकार उसका वर्तमान जीवन निन्दित हो जाता है।

२. उसका उपपात (देव जीवन) गर्हित होता है। मायावी व्यक्ति मरकर यदि देवयोनि मे उत्पन्न होता है तो वह किल्बिषिक आदि नीच देवो के रूप मे उत्पन्न होता है।

३ उसका आयाति—जन्म गर्हित होता है। मायावी किल्बिषिक आदि देवस्थानो से च्युत होकर पुन मनुष्य जन्म मे आता है तब वह गर्हित होता है, जनता द्वारा सम्मानित नही होता।[2]

जो मायावी अपनी माया की विशुद्धि नही करता, उसके अनर्थों की ओर सकेत करते हुए वृत्तिकार ने बताया है कि—

जो व्यक्ति लज्जा, गौरव या विद्वत्ता के मद से अपने अपराध को गुरु के समक्ष स्पष्ट नही करते, वे कभी आराधक नही हो सकते।

जितना अनर्थ शस्त्र, विष, दुष्प्रयुक्त वैताल (भूत) और यत्र तथा क्रुद्ध सर्प नही करता उतना अनर्थ आत्मा में रहा हुआ माया-शल्य करता है। इसके अस्तित्व-काल मे सम्बोधि अत्यन्त दुर्लभ हो जाती है और प्राणी अनन्त जन्म-मरण करता है।[3]

प्रस्तुत सूत्र मे माया का आचरण कर उसकी आलोचना करने और न करने मे होन वाले अनर्थों का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन हुआ है। वृत्तिकार ने आलोचना करने वालो के कुछेक गुणो की ओर सकेत किया है। गुण मनोविज्ञान की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ३६५।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ३६७।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३६७

लज्जाए गारवेण य बहुस्सुयमएण वावि दुच्चरिय।
जे न कहिंति गुरूण न हु ते आराहगा होंति॥
नवि तं सत्थ व विस व दुप्पउत्तो व कुणइ वेयालो।
जत व दुप्पउत्त सप्पो व पमाइणो कुद्धा॥
ज कुणइ भावसल्ल अणुद्धिय उत्तमट्ठकालम्मि
दुल्लहबोहीयत्त अणतससारियत्त वा॥

आलोचना से आठ गुण निष्पन्न होते हैं[1]—

१ लघुता—मन अत्यन्त हल्का हो जाता है।
२ प्रसन्नता—मानसिक प्रसन्नता बनी रहती है।
३. आत्मपरनियंत्रिता—स्व और पर नियंत्रण सहज फलित होता है।
४. आर्जव—ऋजुता बढ़ती है।
५. शोधि—दोषों की विशुद्धि होती है।
६ दुष्करकरण—दुष्कर कार्य करने की क्षमता बढ़ती है।
७. आदर—आदर भाव बढ़ता है।
८ नि:शल्यता—मानसिक गांठें खुल जाती हैं और नई गांठें नहीं घुलती, ग्रन्थि-भेद हो जाता है।

४. नलाग्नि (सू० १०)

इसका अर्थ है—नरकट की अग्नि। नरकट पतली-लम्बी पत्तियों तथा पतले गांठदार डंठल वाला एक पौधा होता है।

५-७ शुण्डिका भण्डिका गोलिका का चूल्हा (सू० १०)

'सोंडिय' पेटी के आकार का एक भाजन होता है जो मद्य पकाने के लिए, आटा भिगोने के काम आता है। वृत्तिकार ने इसका अर्थ 'कजावा' किया है।[2]

लिछाणि का अर्थ है चूल्हा। वृत्तिकार ने प्राचीन मत का उल्लेख करते हुए 'गोलिय' 'सोंडिय', और 'भंडिय' को अग्नि के आश्रयस्थान—विभिन्न प्रकार के चूल्हे माना है।[3] कुछ व्याख्याकारों ने इन्हें विभिन्न देशों में रूढ़ आटे को पकाने वाली अग्नियों के प्रकार माना है।[4] वृत्तिकार ने वैकल्पिक अर्थ करते हुए 'भंडिका' को छोटी हांडी और 'गोलिका' को बड़ी हांडी माना है।[5]

८ बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् (सू० १०)

देवताओं के कर्मकर स्थानीय देव और देवियां बाह्य परिषद की सदस्य होती हैं तथा पुत्र कलत्र स्थानीय देव और देवियां आभ्यन्तर परिषद् के सदस्य होते हैं।[6]

९. आयु, भव और स्थिति के क्षय (सू० १०)

आगमों में मृत्यु के वर्णन में प्राय: ये तीन शब्द संयुक्त रूप में प्रयुक्त होते हैं। ऐसे तो ये तीनों शब्द एकार्थक हैं, किन्तु इनमें कुछ भेद भी है।

आयुक्षय—मनुष्य आदि की पर्याय के निमित्तभूत आयुष्य कर्म के पुद्गलों का निर्जरण।

भवक्षय—वर्तमान भव (पर्याय) का सर्वथा विनाश।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९९।
लहुयाल्हायजणणं अप्पपरनियत्ति अज्जव सोही।
दुक्करकरणं आढा निस्सल्लत्तं च सोहिगुणा॥

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९८ : शुण्डिका. पिटकाकाराणि सुरा-पिष्टस्वेदनभाजनानि कवेल्लयो वा संभाव्यन्ते।

३. वही, पत्र ३९८ : उक्तं च वृद्धैः—गोलियसोंडियभंडिय-लिछाणि अग्गेराधयाः।

४ वही, पत्र ३९८ अन्यैस्तु देशभेदरूढ्या एते पिष्टपाचकाग्न्यादि भेदा इत्युक्तम्।

५ वही, पत्र ३९८ भंडिका—स्थाल्य वा एव महत्यो गोलिका।

६. वही, पत्र ३९८ देवलोकेषु बाह्या अप्रत्यासन्ना दासादिवत् अभ्यन्तरा प्रत्यासन्ना पुत्रकलत्रादिवत् परिषत् परिवारो भवति।

स्थितिक्षय—आयु: स्थिति के बंध का क्षय अथवा वर्तमान भव के कारणभूत सभी कर्मों का क्षय।[1]

१०. अंतकुल ··· कृपणकुल (सू० १०)

यहां छह कुलों का नामोल्लेख हुआ है। ये कुल व्यक्तिवाची नहीं किन्तु समूहवाची हैं। इनसे उस समय की सामाजिक व्यवस्था का एक रूप सामने आता है। वृत्तिकार ने उनकी व्याख्या इस प्रकार की है[2]—

अंतकुल—म्लेच्छकुल। वरुट, छिपक आदि का कुल।

प्रांतकुल—चांडाल आदि के कुल।

तुच्छकुल—छोटे परिवार वाले कुल, तुच्छ विचार वाले कुल।

दरिद्रकुल—निर्धनकुल।

भिक्षाककुल—भिक्षा से जीवन-निर्वाह करने वाले भिखमंगों के कुल।

कृपणकुल—दान द्वारा आजीविका चलाने वाले कुल; नट, नग्नाचार्य आदि के कुल जो खेल-तमाशा आदि दिखाकर आजीविका चलाते हैं।

११ दिव्यद्युति (सू० १०)

सामान्यत. आगमों में यह पाठ 'जुई या जुति' प्राप्त होता है। इसका अर्थ है 'द्युति'। वृत्तिकार ने जिस आदर्श को मानकर व्याख्या की है, उसमें उन्हें 'जुत्ति' पाठ मिला है। उसके आधार पर उन्होंने इसका संस्कृत पर्याय 'युक्ति' और उसका अर्थ—अन्यान्य 'भातों' (विभागों वाला) किया है।[3]

१२. दिव्यप्रभा···दिव्यलेश्या (सू० १०)

प्रभा—माहात्म्य।

छाया—प्रतिबिम्ब।

अर्चि—शरीर से निर्गत तेज की ज्वाला।

तेज—शरीरस्थ कांति।

लेश्या—शुक्ल आदि अन्तःस्थ परिणाम।

१३. उद्योतित ··· प्रभासित (सू० १०)

उद्योतित का अर्थ है—स्थूल वस्तुओं को प्रकाशित करना और प्रभासित का अर्थ है—सूक्ष्म वस्तुओं को प्रकाशित करना ऐसे ये दोनों शब्द एकार्थक भी है।[4]

१४. आहत नाट्यों, गीतों (सू० १०)

वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए हैं[5]—

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९८ देवलोकादवधे आयु: कर्म्मपुद्गलनिर्जरणेन, भवक्षयेण—आयु कर्मादिनिबन्धनदेवपर्यायनाशन, स्थितिक्षयेण—आयु स्थितिबन्धक्षयेण देवभवनिबन्धनशेषकर्म्मणा वा।

२ स्थानांगवृत्ति पत्र ३९८ अन्तकुलाणि—वरुटछिपकादीना प्रान्तकुलानि—चण्डालादीना तुच्छकुलानि—अल्पमानुषाणि अगम्भीराशयानि वा दरिद्रकुलानि—अनीश्वराणि कृपणकुलानि—तर्क्कणवृत्तीनि नटनग्नाचार्यादीना भिक्षाककुलानि—भिक्षणवृत्तीनि।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९९. युक्त्या—अन्यान्यभक्तिभिस्तथा विधद्रव्ययोजनेन।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९९ उद्योतयमान:—स्थूलवस्तूपदर्शनत: प्रभासयमानस्तु—सूक्ष्मवस्तूपदर्शनत इति, एकार्थिकत्वेऽपि चैतेषां न दोष:।

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९९

(क) अहत —अनुबद्धो रवस्यैतद्विशेषणं नाट्यं नृत्तं तेन युक्तं गीतं नाट्यगीतम्।

(ख) अथवा 'आहय' त्ति आख्यानकप्रतिबद्धं यन्नाट्यं तेन युक्तं यत् तद् गीतम्।

१. गायनयुक्त नृत्य।

२. आख्यानक (कथानक) प्रतिबद्ध नाट्य और उसके उपयुक्त गीत।

१५. (सू० १४)

प्रस्तुत सूत्र मे लोकस्थिति के आठ प्रकारों मे छठा प्रकार है—'जीव कर्म पर आधारित है' तथा आठवा प्रकार है—'जीव कर्म के द्वारा संगृहीत है।' ये दोनों विवक्षा से प्रतिपादित हुए है। पहले मे जीवो के अपग्राहकत्व के रूप मे कर्मों का आधार विवक्षित है और दूसरे में कर्म जीवों को बाधने वाले के रूप मे विवक्षित है।[1]

इसी प्रकार पाचवें और सातवें प्रकार मे जीव और पुद्गल एक-दूसरे के उपकारी है, इसलिए उन्हे एक-दूसरे पर आधारित कहा है। तथा वे परस्पर एक-दूसरे से बधे हुए है, इसलिए उन्हे एक-दूसरे द्वारा सगृहीत कहा है।

१६. गणि सपदा (सू० १५)

प्रस्तुत सूत्र में गणी—आचार्य की आठ प्रकार की सम्पदाओ का उल्लेख है। दशाश्रुतस्कध [दशा ४] मे इन संपदाओ का पूरा विवरण प्राप्त होता है। वहा प्रत्येक सपदा के चार-चार प्रकार बतलाए हैं।

स्थानाग के वृत्तिकार ने इनके भेदों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है।[2] वह इस प्रकार है—

१. आचार सपदा [सयम की समृद्धि]—

१. संयमध्रुवयोगयुक्तता—चारित्र में सदा समाधियुक्त होना।

२. असप्रग्रह—जाति, श्रुत आदि मदो का परिहार।

३. अनियतवृत्ति—अनियत विहार। व्यवहार भाष्य मे इसका अर्थ अनिकेत भी किया है।[3]

४. वृद्धशीलता—शरीर और मन की निर्विकारता, अचचलता।

२. श्रुत सपदा [श्रुत की समृद्धि]—

१. बहुश्रुतता—अग और उपाग श्रुत मे निष्णातता, युगप्रधान पुरुष।

२. परिचितसूत्रता—आगमों से चिर परिचित होना। व्यवहार भाष्य मे बताया है कि जो व्यक्ति उत्क्रम, क्रम आदि अनेक प्रकार से अपने नाम की तरह श्रुत से परिचित होता है उसकी उस निपुणता को परिचितसूत्रता कहा जाता है।[4]

३. विचित्रसूत्रता—स्व और पर दोनो परम्पराओ के ग्रन्थों मे निपुणता। व्यवहार भाष्य मे इसके साथ-साथ इसका अर्थ उत्सर्ग और अपवाद को जाननेवाला भी किया है।[5]

४. घोषविशुद्धिकर्ता—अपने शिष्यो को सूत्र उच्चारण का स्पष्ट अभ्यास कराने मे समर्थता।

३. शरीर सपदा [शरीर सौन्दर्य]—

१. आरोहपरिणाहयुक्तता—आरोह का अर्थ—ऊँचाई और परिणाह का अर्थ है—विशालता। इस सपदा का अर्थ है—शरीर की उचित ऊचाई और विशालता से सम्पन्न होना।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४००: षष्ठपदे जीवोपग्राहकत्वेन कर्मण आधारता विवक्षितेह तु तस्यैव जीवबन्धनतेति विशेषः।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०१।

३. व्यवहारसूत्र, उद्देशक १०, भाष्यगाथा २५८, पत्र ३७:
अनियमचारी अनिययवित्ती अणिहितो विहोइ अनिकेता।

४. वही, भाष्यगाथा २६१, पत्र ३८:
सगनामं व परिचियं उक्कमउक्कमतो बहूहि विगमेहि।

५. व्यवहारसूत्र, उद्देशक १०, भाष्यगाथा २६१, पत्र ३८:
ससमयपरसमएहि य उस्सग्गोववायतो चित्त॥

२. अनवत्रपता—अलज्जनीय अंगवाला होना। व्यवहारभाष्य मे इसका अर्थ है—अहीनसर्वाङ्ग—जिसके सभी अग अहीन हों—पूर्ण हों।[1]

३. परिपूर्ण इन्द्रियता—पाचों इन्द्रिया की परिपूर्णता और स्वस्थता।

४. स्थिरसहननता—प्रथम सहनन—वज्रऋषभनाराच सहनन से युक्त।[2]

४. वचन संपदा [वचन-कौशल]—

१. आदेय वचनता—जिसके वचनो को सभी स्वीकार करते हों।

२. मधुर वचनता—व्यवहारभाष्य में इसके तीन अर्थ किए।[3]

१. अर्थयुक्तवचन।

२. अपरुषवचन।

३ क्षीरास्रव आदि लब्धियुक्त वचन।

३. अनिश्रितवचनता—मध्यस्थ वचन।

व्यवहारभाष्य में इसके दो अर्थ किए है[4] —

१. जो वचन क्रोध आदि से उत्पन्न न हो।

२ जो वचन राग-द्वेष युक्त न हो।

४. असदिग्धवचनता—व्यवहारभाष्य मे इसके तीन अर्थ किए हैं—[5]

१. अव्यक्तवचन।

२ अस्पष्ट अर्थ वाला वचन।

३. अनेक अर्थों वाला वचन।

५. वाचना सपदा [अध्यापन-कौशल]—

१. विदित्वोद्देशन—शिष्य की योग्यता को जानकर उद्देशन करना।

२ विदित्वा समुद्देशन—शिष्य की योग्यता को जानकर समुद्देशन करना।

३ परिनिर्वाप्यवाचना—पहले दी गई वाचना को पूर्ण हृदयंगम कराकर आगे की वाचना देना।

४. अर्थ निर्यापणा—अर्थ के पौर्वापर्य का बोध कराना।

६ मति सपदा [बुद्धि-कौशल]—

१ अवग्रह २. ईहा ३ अवाय ४. धारणा।

७ प्रयोग सपदा [वाद-कौशल]—

१. आत्म परिज्ञान—वाद या धर्मकथा मे अपने सामर्थ्य का परिज्ञान।

२ पुरुष परिज्ञान—वादी के मत का ज्ञान, परिषद् का ज्ञान।

३. क्षेत्र परिज्ञान—वाद करने के क्षेत्र का ज्ञान।

४ वस्तु परिज्ञान—वाद-काल मे निर्णायक के रूप मे स्वीकृत सभापति आदि का ज्ञान।

व्यवहारभाष्य मे इसके दो अर्थ किए है।[6]

---

१ व्यवहारसूत्र, उद्देशक १०, भाष्यगाथा २६५, पत्र ३८

तणुनजाए घाऊ अलज्जणीयो अहीणसव्वगो।

२ वही, भाष्यगाथा २६६, पत्र ३८ पढमगसघयणथिरो ॰ ॰।

३. वही, भाष्यगाथा २६७, २६८, पत्र ३९

''अत्थावगाढ भवे महुर ॥

अहवा अफरुसवयणो खीरासवमादिलद्धिजुत्तो वा।

४ वही, भाष्यगाथा २६८, पत्र ३९ ·

निस्सिय कोहाईहिं अहवा वीयरागदोसेहिं ॥

५ वही, भाष्यगाथा २६९, पत्र ३९ :

अव्वत्त अफुडत्थ अत्थ बहुत्ता व होंति सदिद्ध।

विवरीयमसदिद्ध वयणे ······ ··॥

६ व्यवहारसूत्र, उद्देशक १०, भाष्यगाथा २८७, पत्र, ४१ :

वत्थु परवादी ऊ बहु आगमितो न वा व णाऊणं।

रायावरायमच्चो दारुणभद्दस्सभावोत्ति ॥

१. यह जानना कि परवादी अनेक आगमों का ज्ञाता है या नही।

२. यह जानना कि राजा, अमात्य आदि कठोर स्वभाव वाले हैं अथवा भद्र स्वभाव वाले।

८. संग्रह-परिज्ञा [संघ व्यवस्था मे निपुणता]—

१. बालादियोग्यक्षेत्र—स्थानांग के वृत्तिकार ने यहा केवल 'बालादियोग्यक्षेत्र' मात्र लिखा है। इसका स्पष्ट आशय व्यवहारभाष्य मे मिलता है। व्यवहारभाष्य मे इसके स्थान पर 'बहुजनयोग्यक्षेत्र' शब्द है। भाष्यकार ने इसका अर्थ करते हुए दो विकल्प प्रस्तुत किए है।[1] आचार्य को वर्षा ऋतु के लिए ऐसे क्षेत्र का निर्वाचन करना चाहिए जो विस्तीर्ण हो, जो समूचे संघ के लिए उपयुक्त हो।

२ जो क्षेत्र बालक, दुर्बल, ग्लान तथा प्राघूर्णकों के लिए उपयुक्त हो।

भाष्यकार ने आगे लिखा है कि ऐसे क्षेत्र की प्रत्युपेक्षणा न करने से साधुओ का संग्रह नही हो सकता तथा वे साधु दूसरे गच्छों मे भी चले जा सकते है।[2]

२ पीठ-फलग संप्राप्ति—पीठ-फलग आदि की उपलब्धि करना। व्यवहारभाष्य मे इसका आशय स्पष्ट करते हुए लिखा है कि वर्षाकाल मे मुनि अन्यत्र विहार नही करते तथा उस समय वस्त्र आदि भी नहीं लेते। वर्षाकाल मे पीठ-फलग के बिना संस्तारक आदि मैले हो जाते हैं तथा भूमि की शीतलता से कुन्थु आदि जीवों की उत्पत्ति भी होती है। अत आचार्य वर्षाकाल मे पीठ-फलग आदि की उचित व्यवस्था करें।[3]

३. कालसमानयन—यथा समय स्वाध्याय, भिक्षा आदि की व्यवस्था करना। व्यवहारभाष्य मे इसको स्पष्ट करते हुए बताया है कि आचार्य को यथासमय स्वाध्याय, उपकरणों की प्रत्युप्रेक्षा, उपधि का संग्रह तथा भिक्षा आदि की व्यवस्था करनी चाहिए।[4]

४ गुरु पूजा—यथोचित विनय की व्यवस्था बनाए रखना।

व्यवहार भाष्य मे गुरु के तीन प्रकार किए है—

१. प्रव्रज्या देनेवाला गुरु।

२. अध्यापन करानेवाला गुरु।

३. दीक्षा पर्याय मे बड़े मुनि।

इन तीनों प्रकार के गुरुओ की पूजा करना अर्थात् उनके आने पर खड़े होना, उनके दंड (यष्टि) को ग्रहण करना, उनके योग्य आहार का संपादन करना, विहार आदि मे उनके उपकरणों का भार ढोना तथा उनका मर्दन आदि करना।[5]

प्रवचन सारोद्धार मे सातवी सम्पदा का नाम 'प्रयोगमति' है।[6] सम्पदाओ के अवान्तर भेदो मे शाब्दिक भिन्नता है

---

१ व्यवहारसूत्र उद्देशक १०, भाष्यगाथा २६०, पत्र ४१

बासे बहुजणजोग्गं विच्छिन्नं ज तु गच्छपाओग्गं।
अहवा वि बालदुब्बलगिलाणआदेसमादीणं॥

२ वही, भाष्यगाथा २६१, पत्र ४१ ·

खेत्ते असंते असंगहिया ताहे वच्चंति त उ अन्नत्थ।

३ वही, भाष्यगाथा २६१, २६२, पत्र ४१ :

···न उ मइल्लेति निसेज्जा पीढफलगाण गहणंमि।
विहरे न तु वासासुं अन्नकाले उ गम्मते णत्थ।
पाणासीयल कुंथादिया ततो गहणं वासासु॥

४. वही, भाष्यगाथा २६३, पत्र ४१ :

जं जंमि होइ काले कायव्वं तं समाणए तंमि।
सज्झाया पडु उवही उप्पायण भिक्खमादी य॥

५ वही, भाष्यगाथा २६४, २६५, पत्र ४१, ४२ ·

अह गुरु जे ण पव्वावितो उ जस्स व अहीति पासंमि।
अहवा अहागुरु खलु हवंति रायणियतरागा उ॥
तेंसि अब्भुट्ठाणं दंडग्गह तह य होइ आहारे।
उवही वहण विस्सामण य संपूयणा एसा॥

६ प्रवचनसारोद्धार, गाथा ५४२ .

आयार सुय सरीरे वयणे वायण मई पओगमई।
एएसु संपया खलु अट्ठमिया संगहपरिण्णा॥

तथा कही-कही आर्थिक भिन्नता भी है। वह इस प्रकार है—

१. आचार संपदा—

१. चरणयुत, २. मदरहित, ३. अनियतवृत्ति, ४. अचचल।

२. श्रुतसंपदा—

१. युग (युग प्रधानता), २. परिचितसूत्र, ३ उत्सर्गी, ४. उदात्तघोष।

३. शरीर सपदा—

१. चतुरस्र, २. अकुण्टादि—परिपूर्ण कर्मेन्द्रियता, ३. बधिरत्ववर्जित— अविकल इन्द्रियता, ४ तप समर्थ—सभी प्रकार की तपस्या करने मे समर्थ।

४. वचन संपदा—

१ वादी, २. मधुर वचन, ३ अनिश्रित वचन, ४. स्फुट वचन।

५. वाचना सपदा—

१. योग्य वाचना—शिष्य की योग्यता को जानकर उद्देशन, समुद्देशन देना।

२. परिणत वाचना—पहले दी हुई वाचना को हृदयगम कराकर आगे की वाचना देना।

३. निर्यापयिता—वाचना का अन्त तक निर्वाह करना।

४. निर्वाहक—पूर्वापर की सगति बिठाकर अर्थ का निर्वाह करना।

६. मति सपदा—

१. अवग्रह, २ ईहा, ३ अवाय, ४ धारणा।

७ प्रयोगमति संपदा—

१ शक्तिज्ञान—वाद करने की अपनी शक्ति का ज्ञान।

२ पुरुषज्ञान—वादी के मत का ज्ञान।

३ क्षेत्रज्ञान,

४ वस्तुज्ञान।

८. सग्रह परिज्ञा—

१ गणयोग्य उपग्रह—गण के निर्वाह योग्य क्षेत्र का सकलन।

२. ससक्त सपद्—व्यक्तियो को अनुरूप देशना देकर उन्हें आकृष्ट करना।

३. स्वाध्याय संपद्—यथा समय स्वाध्याय, प्रत्युत्प्रेक्षण, भिक्षाटन उपधिग्रहण की व्यवस्था करना।

४ शिक्षा उपसंग्रह सपद्—गुरु, प्रव्राजक, अध्यापक, रत्नाधिक आदि मुनियो का भार वहन करने, वैयावृत्य करने तथा विनय करने की शिक्षा देने मे समर्थ।[1]

प्रवचन सारोद्धार के वृत्तिकार ने मतान्तरो का भी उल्लेख किया है। उन्होने जो ये उपभेद किए है उनका आधार दशाश्रुतस्कध से कोई भिन्न ग्रन्थ रहा है।

---

१. प्रवचनसारोद्धार, गाथा ५४३-५४६

चरणजुओ मयरहिओ अनिययवित्ती अचचलो चेव।
जुग परिचिय उस्सग्गी उदत्तघोसाइ विन्नओ॥
चउरसोऽकुटाई बहिरत्तणवज्जिओ तवे सत्तो।
वाई महुरत्तऽनिस्सिय फुडवयणो सपया वयणंमि॥
जोगो परियणवायण निज्जविया वायणाए निव्वहणे।
ओग्गह ईहावाया धारण मइसपया चउरोत्त॥
सत्ती पुरिस खेत्त वत्थु नाउ पओजए वाय।
गणजोग्ग ससत्त सज्झाए सिक्खण जाणे॥

१७. समितियां (सू० १७)

उत्तराध्ययन २४।२ मे ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उत्सर्ग को समिति और मन, वचन और काया के गोपन को 'गुप्ति' कहा है। प्रस्तुत सूत्र मे इन आठों को 'समिति' कहा गया है। मन, वचन और काया का निरोध भी होता है और सम्यक् प्रवर्तन भी। उत्तराध्ययन में जहां इनको 'गुप्ति' कहा है, वहा इनके निरोध की अपेक्षा की गई है और यहा इनके सम्यक् प्रवर्तन के कारण इनको समिति कहा है।

१८. प्रायश्चित्त (सू० २०)

प्रस्तुत सूत्र मे स्खलना हो जाने पर मुनि के लिए आठ प्रकार के प्रायश्चित्त बतलाए गए हैं। अपराध की लघुता और गुरुता के आधार पर इनका प्रतिपादन हुआ है। लघुता और गुरुता का निर्णय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के आधार पर किया जाता है। एक ही प्रकार के अपराध मे भी प्रायश्चित्त की भिन्नता हो सकती है। यह प्रायश्चित्त देने वाले व्यक्ति पर निर्भर है कि वह अपराध के किस पक्ष को कहां लघु और गुरु मानता है। प्रायश्चित्त दान की विविधता का हेतु पक्षपात नही, किन्तु विवेक है। निशीथ प्रायश्चित्त सूत्र है। उसमे विस्तार से प्रायश्चित्तों का उल्लेख है। यहा केवल आठ प्रकार के प्रायश्चित्तो का नामोल्लेख मात्र है। स्थानाग १०।७३ मे प्रायश्चित्त के दस प्रकार बतलाए हैं। विशेष विवरण वहां से ज्ञातव्य है।

१९. मद (सू० २१)

अगुत्तरनिकाय मे मद के तीन प्रकार तथा उनमे होने वाले अपायो का निर्देश है—

१. यौवन मद, २. आरोग्य मद, ३. जीवन मद।

इनसे मत्त व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से दुष्कर्म करता है। वह शिक्षा को त्याग देता है। उसकी दुर्गति और पतन होता है। वह मर कर नरक मे जाता है।[1]

२०. अक्रियावादी (सू० २२)

चार समवसरणों मे एक अक्रियावादी है।[2] वहा उसका अर्थ अनात्मवादी—क्रिया के अभाव को मानने वाला, केवल चित्तशुद्धि को आवश्यक एवं क्रिया को अनावश्यक मानने वाला—किया है। प्रस्तुत सूत्र मे इसका प्रयोग 'अनात्मवादी' और 'एकान्तवादी'—दोनों अर्थों में किया गया है। इन आठ वादो मे छह वाद एकान्तदृष्टि वाले है। 'समुच्छेदवाद' और 'नास्तिमोक्षपरलोकवाद'—ये दो अनात्मवाद हैं। उपाध्याय यशोविजयजी ने धर्म्यंश की दृष्टि से जैसे चार्वाक को नास्तिक-अक्रियावादी कहा है, वैसे ही धर्मांश की दृष्टि से सभी एकांतवादियो को नास्तिक कहा है—

'धर्म्यंशे नास्तिको ह्येको, बार्हस्पत्यः प्रकीर्तितः।
धर्मांशे नास्तिका ज्ञेयाः, सर्वेऽपि परतीर्थिकाः॥'[3]

अक्रियावादियो के चौरासी प्रकार बतलाए गए है—[4]

असियसयं किरियाणं अक्किरियाणं च होइ चुलसीती।
अन्नाणिय सत्तट्ठी वेणइयाणं च बत्तीसा॥

---

१. अंगुत्तरनिकाय, प्रथम भाग, पृष्ठ १४६, १५०।
२. सूत्रकृतांग १।१२।१, भगवती ३०।१।
३. नयोपदेश, श्लोक १२६।
४. सूत्रकृतांगनिर्युक्ति, गाथा ११९।

प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित वादों का संकलन करते समय सूत्रकार के सामने कौन सी दार्शनिक धाराए रही हैं, इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है, किन्तु वर्तमान मे उन धाराओ के सवाहक दार्शनिक ये हैं—

१. एकवादी—

१. ब्रह्माद्वैतवादी—वेदान्त।

२. विज्ञानाद्वैतवादी—बौद्ध।

३. शब्दाद्वैतवादी—वैयाकरण।

ब्रह्माद्वैतवादी के अनुसार ब्रह्म, विज्ञानाद्वैतवादी के अनुसार विज्ञान और शब्दाद्वैतवादी के अनुसार शब्द पारमार्थिक तत्त्व है, शेष तत्त्व अपारमार्थिक है, इसलिए ये सारे एकवादी है। अनेकान्तदृष्टि के अनुसार सभी पदार्थ सग्रहनय की दृष्टि से एक और व्यवहारनय की दृष्टि से अनेक है।

२. अनेकवादी—वैशेषिक अनेकवादी दर्शन है। उसके अनुसार धर्म-धर्मी, अवयव-अवयवी भिन्न-भिन्न है।[1]

३. मितवादी—

१ जीवो की परिमित सख्या मानने वाले। इसका विमर्श स्याद्वादमंजरी मे किया गया है।[2]

२ आत्मा को अगुष्टपर्व जितना अथवा श्यामाक तदुल जितना मानने वाले। यह औपनिषदिक अभिमत है।

३ लोक को केवल सात द्वीप-समुद्र का मानने वाले। यह पौराणिक अभिमत है।

४ निर्मितवादी—नैयायिक, वैशेषिक आदि लोक को ईश्वरकृत मानते है।[3]

५ सातवादी—बौद्ध।

वृत्तिकार के अनुसार 'सातवाद' बौद्धो का अभिमत है।[4] इसकी पुष्टि सूत्रकृताग ३।४।६ से होती है। चार्वाक का साध्य सुख है, फिर भी उसे 'सातवादी' नही माना जा सकता क्योंकि 'सात सातेण विज्जति'—सुख का कारण सुख ही है, यह कार्य-कारण का सिद्धान्त चार्वाक के अभिमत मे नही है। बौद्ध दर्शन पुनर्जन्म मे विश्वास करता है और उसकी मध्यम प्रतिपदा भी कठिनाइयो से बचकर चलने की है, इसलिए उसे 'सातवादी' माना जा सकता है।

सूत्रकृताग के चूर्णिकार ने सातवाद को बौद्ध सिद्धान्त माना है। 'सात सातेण विज्जति'—इस श्लोक की भूमिका मे उन्होने लिखा है कि अब बौद्धो का परामर्श किया जा रहा है—'इदानी शाक्या परामृश्यन्ते'।[5] भगवान् महावीर के अनुसार कायक्लेश भी सम्मत था। सूत्रकृताग म उसका प्रतिनिधिवाक्य है—'अत्तहिय खु दुहेण लब्भई'—आत्म-हित कष्ट से सिद्ध होता है। 'सात सातेण विज्जई'—इसी का प्रतिपक्षी सिद्धान्त है। इसके माध्यम से बौद्धो ने जैनो के सामने यह विचार प्रस्तुत किया था कि शारीरिक कष्ट की अपेक्षा मानसिक समाधि का सिद्धान्त श्रेष्ठ है। कार्य-कारण के सिद्धान्तानुसार उन्होने यह प्रतिपादित किया कि दुःख सुख का कारण नही हो सकता, इसलिए सुख सुख से ही लब्ध होता है।

सूत्रकृतांग के वृत्तिकार ने सातवाद को बौद्धो का अभिमत माना ही है, किन्तु साथ-साथ इसे परिषह से पराजित कुछ जैन मुनियो का अभिमत माना है।[6]

६ समुच्छेदवादी—प्रत्येक पदार्थ क्षणिक होता है। दूसरे क्षण मे उसका उच्छेद हो जाता है। इसलिए बौद्ध समुच्छेदवादी है।

---

१ स्याद्वादमजरी, श्लोक ४

स्वतोनुवृत्तिव्यतिवृत्तिभाजो, भावा न भावान्तरनेयरूपा।
परात्मतत्त्वादतथात्मतत्त्वाद् द्वयवदन्तोकुशला स्खलन्ति॥

२ वही, श्लोक २९

मुक्तोपि वाभ्येतु भव भवो वा भवस्थशून्योस्तु मितात्मवादे।
षड्जीवकाय त्वमनन्तसख्य, माख्यस्तथा नाथ यथा न दोष॥

३ न्यायसूत्र, ४।१।१९-२१

ईश्वर कारण पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्।
न पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्ते।
तत्कारितत्वादहेतु।

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ४०४।

५ सूत्रकृतागचूर्णि, पृष्ठ १२१।

६ सूत्रकृतागवृत्ति, पत्र ९६ एके शाक्यादय स्वयूथ्या वा लोचादिनोपतप्ता।

७. नित्यवादी—सांख्याभिमत सत्कार्यवाद के अनुसार पदार्थ कूटस्थ नित्य है। कारणरूप मे प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व विद्यमान है। कोई भी नया पदार्थ उत्पन्न नहीं होता और कोई भी पदार्थ नष्ट नही होता। केवल उनका आविर्भाव-तिरोभाव होता है।[1]

८. असत् परलोकवादी—[2]चार्वाकदर्शन मोक्ष या परलोक को स्वीकार नही करता।

२१. आयुर्वेद (सू० २६)

आयुर्वेद का अर्थ है—जीवन के उपक्रम और संरक्षण का ज्ञान; चिकित्सा शास्त्र। वह आठ प्रकार का है—

१. कुमारभृत्य—बाल-चिकित्सा शास्त्र। इसमे बालकों के पोषण और दूध सम्बन्धी दोषों का सशोधन तथा अन्य दोषजनित व्याधियों के उपशमन के उपाय निर्दिष्ट होते है।

२. कायचिकित्सा—इसमे मध्य-अग से समाश्रित ज्वर, अतिसार, रक्तजनित शोथ, उन्माद प्रमेह, कुष्ठ आदि रोगो के शमन के उपाय निर्दिष्ट होते हैं।

३ शालाक्य—मुह के ऊपर के अंगो मे (कान, मुह, नयन और नाक) व्याप्त रोगों के उपशमन का उपाय बताने वाला शास्त्र।

४. शल्यहत्या—शरीर के भीतर रहे हुए तृण, का", पाषाण, कण, लोह, लोष्ठ, अस्थि, नख आदि शल्यो के उद्धरण का शास्त्र।

५. जंगोली - इसे विष-विघातक शास्त्र या अगद-तंत्र भी कहते है। सर्प आदि विषैले जीवो मे डसे जाने पर उसकी चिकित्सा का निर्देश करनेवाला शास्त्र।

६. भूतविद्या—भूत आदि के निग्रह के लिए विद्यातत्र। देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर, पिशाच, नाग आदि से आविष्ट चित्तवाले व्यक्तियो के उपद्रव को मिटाने के लिए शातिकर्म, बलिकर्म आदि का विधान तथा ग्रहों की शाति का निर्देश करने वाला शास्त्र।

७ क्षारतत्र —वीर्यपुष्टि के उपाय बताने वाला शास्त्र। सुश्रुत आदि ग्रन्थो मे इसे वाजीकरण तत्र कहा है।

८ रसायन—इसका शाब्दिक अर्थ है—अमृत-तुल्य रस की प्राप्ति। वय को स्थायित्व देने, आयुष्य को बढाने, बुद्धि को वृद्धिगत करने तथा रोगो का अपहरण करने मे समर्थ रसायनो का प्रतिपादन करने वाला शास्त्र।[3]

जयधवला मे आयुर्वेद के आठ अग इस प्रकार है[4]— १ शालाक्य २. कायचिकित्सा ३ भूततत्र ४ शल्य ५ अगद-तंत्र ६ रसायनतत्र ७. बालरक्षा ८. बीजवर्द्धन।

सुश्रुत में आयुर्वेद के आठ अग ये है[5]—

१. शल्य, २. शालाक्य, ३ कायचिकित्सा, ४ भूतविद्या, ५ कौमारभृत्य, ६ अगदतत्र, ७ रसायनतत्र, ८. वाजीकरणतत्र।

प्रस्तुत सूत्र में उल्लिखित आठ नामो से ये कुछ भिन्न हैं; जगोली के स्थान पर यहा 'अगदतत्र' और क्षारतत्र के स्थान 'वाजीकरण तंत्र' शब्द है। इनके क्रम मे भी अन्तर है।

---

१. सांख्यकारिका ९।

२ तत्त्वोपप्लवसिंह, पृष्ठ १ :
पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति तत्त्वानि।
तत्समुदाये शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञा॥

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०६।

४ कसायपाहुड, भाग १, पृष्ठ १४७ शालाक्य कायचिकित्सा भूततत्र शल्यमगदतत्र रसायनतत्र बालरक्षा बीजवर्द्धनमिति आयुर्वेदस्य अष्टाङ्गानि।

५ सुश्रुत, पृ० १. शल्य शालाक्य कायचिकित्सा भूतविद्या कौमारभृत्यमगदतत्र रसायनतत्र वाजीकरणतत्रमिति।

२२. (सू० ३६)

प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित नाम अन्यत्र कुछ व्यत्यय और भिन्नता के साथ भी मिलते हैं[१]—

१. आदित्ययशा, २ महायशा, ३. अतिबल, ४. बलभद्र, ५ बलवीर्य, ६ कार्त्तवीर्य, ७ जलवीर्य, ८. दंडवीर्य।

२३-२४. पुरुषादानीय …… गणधर (सू० ३७)

यह भगवान् पार्श्व की लोकप्रियता का सूचक है। वे जनता को बहुत प्रिय और उपादेय थे। भगवान् महावीर ने अनेक स्थानों पर 'पुरुषादाणीय' शब्द से उन्हें सम्बोधित किया है।

समवायांग (समवाय ८।८) में भगवान् पार्श्व के आठ गणो और आठ गणधरो के नाम कुछ परिवर्तन के साथ मिलते है—

१ शुभ २ शुभघोष ३ वसिष्ठ ४ ब्रह्मचारी ५ सोम ६ श्रीधर ७ वीरभद्र ८ यश।

गण और गणधरो के नाम एक ही थे—गण गणधरो के नाम से ही प्रसिद्ध थे।

समवायाग और स्थानागवृत्ति मे अभयदेवसूरि ने लिखा है कि—स्थानाग और पर्युषणाकल्प मे भगवान् पार्श्व के आठ ही गण माने गये है, किन्तु आवश्यकनिर्युक्ति मे दस गणो का उल्लेख है। दो गणधर अल्पायुष्य वाले थे इसलिए यहा उनकी विवक्षा नही की गई है।[२]

समवायाग मे आठो नाम एक श्लोक मे हैं, इसलिए सम्भव है 'यश' यशोभद्र का सक्षेप हो। स्थानाग की कुछ हस्त-लिखित प्रतियो मे 'वीरिते भद्जसे'—ऐसा पाठ है। उसके अनुसार 'वीर्यभद्र' और 'यश'—य नाम बनते है।

२५. दर्शन (सू० ३८)

प्रस्तुत सूत्र मे दर्शन शब्द की समानता मे आठ पर्याय वर्गीकृत है। किन्तु सब मे दर्शन शब्द एक ही अर्थ मे प्रयुक्त नही है। दर्शन का एक वर्ग है—सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन और सम्यग्मिथ्यादर्शन। इसमे दर्शन शब्द का प्रयोग 'श्रद्धा' के अर्थ मे हुआ है।[३] इसका दूसरा वर्ग है—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। इसमे दर्शन शब्द का अर्थ है—निर्विकल्पबोध, सामान्यबोध या अनाकारबोध।

स्वप्नदर्शन मे दर्शन शब्द का अर्थ है—प्रतिभासबोध। वृत्तिकार का अभिमत है कि स्वप्नदर्शन का अचक्षुदर्शन मे अन्तर्भाव होने पर भी सुप्तावस्था के भेद प्रभेदो के कारण उसकी पृथक् विवक्षा की है।[४]

२६. औपमिक अद्धा (सू० ३९)

काल के दो प्रकार है—उपमाकाल और अनुपमाकाल (सख्या-परिमितकाल)। पल्य, सागर आदि उपमाकाल हैं। अवसर्पिणी आदि छह विभाग सागरोपम से निष्पन्न होते है, अत. उन्हे भी उपमाकाल माना है।

---

१. (क) आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ३६३

राया आइच्चजसो, महाजसे अइबले य बलभद्दे।
बलविरिए कत्तविरिए जलविरिए दडविरिए य॥

(ख) स्थानागवृत्ति, पत्र ४०७, ४०८।

२ (क) समवायांगवृत्ति, पत्र १४ इद चैतत्प्रमाण स्थानाङ्गे पर्युषणाकल्पे च श्रूयते, केवलमावश्यके अन्यथा तत्र ह्युक्तम्—'दस नवग गणाण माण जिणिदाण, [आवश्यकनिर्युक्ति गाथा २६८] ति कोऽर्थः ? पार्श्वस्य दश गणा गणधराश्च, तदिह द्वयोरल्पायुष्कत्वादिना कारणेनाविवक्षाऽनुगन्तव्येति।

(ख) स्थानागवृत्ति, पत्र ४०८।

३ (क) तत्त्वार्थसूत्र १।२।

(ख) स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०८।

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ४०८ स्वप्नदर्शनस्याचक्षुर्दर्शनान्तर्भावेऽपि सुप्तावस्थोपाधितो भेदो विवक्षित इति।

'समय' से लेकर 'शीर्षप्रहेलिका' तक का समय अनुपमाकाल कहा जाता है।[1]

पुद्गल-परिवर्त—

जितने समय मे जीव समस्त लोकाकाश के पुद्गलों का स्पर्श करता है, उसे पुद्गल-परिवर्त कहते हैं। उसका काल-मान असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी जितना है। इसके सात भेद हैं—

१. औदारिक पुद्गल-परावर्तन—औदारिक शरीर के योग्य समस्त पुद्गलो का औदारिक शरीर के रूप मे ग्रहण, परिणमन और उत्सर्ग करने में जितना समय लगता है उसे औदारिक पुद्गल-परावर्तन कहते हैं।

इसी प्रकार—

२. वैक्रिय पुद्गल-परावर्तन।

३. तैजस पुद्गल-परावर्तन।

४. कार्मण पुद्गल-परावर्तन।

५. मनः पुद्गल-परावर्तन।

६. वचन पुद्गल-परावर्तन।

७. प्राणापान पुद्गल-परावर्तन—होते हैं

२७. (सू० ४०)

प्रस्तुत सूत्र मे पुरुषयुग का अर्थ है—एक व्यक्ति का अस्तित्वकाल और भूमि का अर्थ है—काल।

इस सूत्र का प्रतिपाद्य यह है कि अरिष्टनेमि के पश्चात् उनके आठ उत्तराधिकारी पुरुषों तक मोक्ष जाने का क्रम रहा। उसके पश्चात् वह क्रम अवरुद्ध हो गया।[2]

२८. (सू० ४१)

वृत्तिकार के अनुसार 'वीरगए वीरजसे…' —इस गाथा के तीन चरण ही आदर्शों मे उपलब्ध होते है। उन्होने—'तह सखे कासिवद्धणए'—इस चतुर्थ चरण के द्वारा गाथा की पूर्ति की है, किन्तु यह चतुर्थ चरण कहां से लिया गया, इसका उन्होने कोई उल्लेख नही किया है।[3]

भगवान् महावीर ने आठ राजाओ को दीक्षित किया। उनका परिचय इस प्रकार है—

१. वीरांगक, २. वीरयशा, ३. संजय—

वृत्तिकार ने तीनो राजाओं का कोई विवरण प्रस्तुत नही किया है। उत्तराध्ययन के अठारहवे अध्ययन मे 'सजय' राजा का नाम आता है। किन्तु वह आचार्य गर्दभालि के पास दीक्षित होता है। अतः प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित 'सजय' कोई दूसरा होना चाहिए।

४. एणेयक —

वृत्तिकार के अनुसार यह केतकार्द्ध जनपद की श्वेताबी नगरी के राजा प्रदेशी, जो भगवान का श्रमणोपासक था, का अधीनवर्ती कोई राजा था।[4] इसके विषय मे विशेष सामग्री उपलब्ध नही है।

राजप्रश्नीय सूत्र[5] मे प्रदेशी राजा के अंतेवासी राजा का नाम जितशत्रु दिया है। सम्भव है इसका गोत्र 'एणेय' हो

---

१ स्थानांगवृत्ति पत्र, ४०८।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०८ अष्टम पुरुषयुग—अष्टपुरुष कालं यावत् युगान्तकरभूमि: पुरुषलक्षणयुगापेक्षयाऽन्तकराणां—भवक्षयकारिणां भूमि:—काल सा आसीदिति, इदमुक्तं भवति—नेमिनाथस्य शिष्यप्रशिष्यक्रमेणाष्टौ पुरुषान् यावन्निर्वाणं गतवन्तो न परत इति।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०८ 'तह सखे कासिवद्धणए' इत्येव चतुर्थपादे सति गाथा भवति, न चैव दृश्यते पुस्तकेष्विति।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०८ '
स च केतकार्द्धजनपदश्वेतबीनगरीराजस्य प्रदेशिनाम्न श्रमणोपासकस्य निजक कश्चिद्राजर्षि।

५. राजप्रश्नीय ५।६।

और यहां प्रस्तुत सूत्र में उसका मूल नाम न देकर केवल गोत्र से ही उसका उल्लेख किया गया हो। वृत्तिकार ने भी उसका गोत्र 'एणेय' माना है।[1]

५. श्वेत—यह आमलकल्पा नगरी का राजा था। उसकी रानी का नाम धारणी था। एक बार भगवान् जब आमलकल्पा नगरी में आए तब राजा और रानी दोनों प्रवचन सुनने गए।[2]

६. शिव—यह हस्तिनापुर का राजा था। इसकी पटरानी का नाम धारणी और पुत्र का नाम शिवभद्र था। एक बार उसने सोचा—'मेरा ऐश्वर्य प्रतिदिन बढ रहा है, यह पूर्वकृत अच्छे कर्मों का फल है। अत मुझे इस जन्म में भी शुभ कर्मों का सचय करना चाहिए।' उसने सारी व्यवस्था कर अपने पुत्र को राज्यभार सौंप दिया और स्वयं 'दिशाप्रोक्षित तापस'[3] बन गया। वह बेले-बेले की तपस्या करता, आतापना लेता और जमीन पर पड़े पत्तो आदि से पारना करता। इस प्रकार घोर तपस्या करते-करते उसे 'विभग ज्ञान' उत्पन्न हुआ। उसने सात समुद्र और सात द्वीप देखे और सोचा—'मुझे दिव्यज्ञान उत्पन्न हुआ है। इनके आगे कोई द्वीप-समुद्र नही है।' वह तत्काल नगर में आया और अनेक लोगों को अपनी उपलब्धि के विषय में बताया। उन दिनों भगवान् महावीर उसी नगर में समवसृत थे। गणधर गौतम भिक्षाचरी के लिए नगर में गए और उन्होंने तापस शिव द्वारा प्रचारित कथन सुना। वे भगवान् महावीर के पास आए और पूछा। भगवान् ने असख्य द्वीप-समुद्रों की बात कही। तापस शिव ने लोगो से भगवान् का यह कथन सुना। उसके मन में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा और विभ्रम पैदा हुआ। तत्क्षण उसका विभग अज्ञान नष्ट हो गया। भगवान् महावीर के प्रति उसके मन में भक्ति उत्पन्न हुई। वह भगवान् के पास आया, निर्ग्रन्थ प्रवचन में अपना विश्वास प्रकट किया और प्रव्रजित हो गया तथा वह ग्यारह अगो का अध्ययन कर मुक्त हो गया।[4]

७. उद्रायण—भगवान् महावीर के समय में सिन्धु-सौवीर आदि १६ जनपदों, वीतभय आदि ३६३ नगरो में उद्रायण राज्य करता था। वह दस मुकुटबद्ध राजाओ का अधिपति और भगवान् महावीर का श्रावक था।

राजा उद्रायण के पुत्र का नाम अभीचि (अभिजित्) था। राजा का इस पर बहुत स्नेह था। 'राज्य में गृद्ध होकर यह दुर्गति में न चला जाए'—ऐसा सोचकर उद्रायण ने राज्य-भार अपने पुत्र को न देकर अपने भानजे को दिया और स्वयं भगवान् महावीर के पास प्रव्रजित हो गया।

एक बार ऋषि उद्रायण उसी नगर में आया। अकस्मात् उसे रोग उत्पन्न हुआ। वैद्यों ने दही खाने के लिए कहा। महाराज केसी ने सोचा कि उद्रायण पुन: राज्य छीनने आया है। इस आशका से उसने विषमिश्रित दही दिया और उद्रायण उसे खाते ही मर गया।

उद्रायण मे अनुराग रखने वाली किसी देवी ने वीतभय नगर पर पाषाण की वर्षा की। सारा नगर नष्ट हो गया। केवल उद्रायण का शय्यातर, जो एक कुभकार था, वह बचा, शेष सारे लोग मारे गए।[5]

८. शङ्ख—इस राजा के विषय में निश्चित जानकारी प्राप्त नही होती। मूलपाठगत विशेषण 'कासिवद्धणे' से यह जाना जा सकता है कि यह काशी जनपद के राजाओ की परम्परा में महत्त्वपूर्ण राजा था, जिसके समय में काशी जनपद का विकास हुआ।

वृत्तिकार भी 'अय च न प्रतीत' ऐसा कहकर इस विषय का अपना अपरिचय व्यक्त करते है। उन्होंने एक तथ्य की ओर ध्यान खींचते हुए बताया है कि अन्तकृतदशा (६।१६) में ऐसा उल्लेख है कि भगवान् ने वाराणसी में राजा अलक को प्रव्रजित किया था। यदि वह कोई अपर है तो यह 'शख' नाम नामान्तर है।

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ४०८ एणेयको गोत्रत।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ४०८।

३ इसका अर्थ है कि प्रत्येक पारणा में जो पूर्व आदि दिशाओ में क्रमश पानी आदि सींचकर फल-पुष्प आदि खाते है—वैसे तापस। औपपातिक (सू० ९४) में वानप्रस्थ तापसो के अनेक प्रकार हैं। उनमें यह एक है।

४ भगवती ११।५७-८७, स्थानागवृत्ति, पत्र ४०९।

५ स्थानागवृत्ति, पत्र ४०९।

उत्तराध्ययन वृत्ति (नेमिचन्द्रीय, पत्र १७३) में मथुरा नगरी के राजा शंख के प्रव्रजित होने का उल्लेख है।

विपाक के अनुसार काशीराज अलक भगवान् महावीर के पास प्रव्रजित हुए थे।

ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि जब भगवान् पोतनपुर में समवसृत हुए तब शंख, वीर, शिव, भद्र आदि राजाओं ने दीक्षा ग्रहण की थी।[1] इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि सभी राजे एक ही दिन दीक्षित हुए थे।

२९. महापद्म (सू० ५२)

आगामी उत्सर्पिणी में होने वाले प्रथम तीर्थंकर। इनका विस्तृत वर्णन ९।६२ में है।

३०. (सू० ५३)

प्रस्तुत सूत्र में कृष्ण की आठ रानियों का उल्लेख है। इनका विस्तृत वर्णन अन्तकृतदशा में है। एक बार तीर्थंकर अरिष्टनेमि द्वारका में आए। वासुदेव कृष्ण के पूछने पर उन्होंने द्वारका के दहन का कारण बताया। तब कृष्ण ने नगर में यह घोषणा करवाई कि 'अरिष्टनेमि ने नगरी का विनाश बताया है। जो कोई व्यक्ति दीक्षित होगा, मैं उसके अभिनिष्क्रमण का सारा भार वहन करूंगा।' यह सुनकर कृष्ण की आठों रानियां भगवान् के पास दीक्षित हो गईं। वे बीस वर्ष तक संयम पर्याय का पालन कर, एक मास की संलेखना कर मुक्त हुईं।[2]

३१. (सू० ५५)

प्रस्तुत सूत्र में गति के प्रथम पांच प्रकार एक वर्ग के हैं और अन्तिम तीन प्रकार दूसरे वर्ग के हैं। द्वितीय वर्ग में गति का अर्थ है—एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना।

गुरुगति—

परमाणु आदि की स्वाभाविक गति। इसी गति के कारण परमाणु व सूक्ष्म स्कंध किसी बाह्य प्रेरणा के बिना ऊंचे, नीचे और तिरछे लोक में गति करते हैं।

प्रणोदनगति—

दूसरे की प्रेरणा से होने वाली गति—जैसे—मनुष्य आदि के द्वारा प्रक्षिप्त बाण आदि की गति।

प्राग्भारगति—

दूसरे द्रव्यों से आक्रान्त होने पर होनेवाली गति। जैसे—नौका में भरे हुए माल से उसकी (नौका की) नीचे की ओर होने वाली गति।[3]

३२. (सू० ५६)

वृत्तिकार के अनुसार ये चारों भरत और ऐरवत की नदियां हैं। इनकी अधिष्ठातृ देवियों के निवासद्वीप तद्-तद् नदियों के प्रपातकुंड के मध्यवर्ती द्वीप हैं।[4]

३३. सुवर्ण (सू० ६१)

प्रस्तुत सूत्र में काकिणीरत्न का विवरण दिया गया है। वह आठ सुवर्ण जितना भारी होता है। 'सुवर्ण' उस समय का तोल था। उसका विवरण इस प्रकार है—

---

१. श्री गुणचन्द्र महावीरचरित्र, प्रस्ताव ८, पत्र ३३७ :
'पत्तो पोयणपुरं, तहिं च संखवीरसिवभद्दपमुहा नरिंदा दिक्खा गाहिया।'

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४१०, ४११।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४११, ४१२।

४. स्थानांगवृत्ति पत्र, ४१२ : नवरं गङ्गाद्या भरतैरवतनद्यस्तदधिष्ठातृदेवीनां निवासद्वीपा गङ्गादिप्रपातकुण्डमध्यवर्त्तिन।

४ मधुर तृणफलों [?] का एक श्वेत सर्षप।
१६ श्वेत सर्षपों का एक धान्यमाषकफल।
२ धान्यमाषकफलों की एक गुंजा।
५ गुंजाओं का एक कर्ममाषक।
१६ कर्ममाषकों का एक सुवर्ण।
ये सारे तोल भरत चक्रवर्ती के समय मे प्रचलित थे। यह काकिणीरत्न चार अगुल प्रमाण का होता है।[1]

३४. योजन (सू० ६२)

वृत्तिकार ने योजन का विस्तार से माप दिया है। उसके अनुसार—
. अनन्त निश्चयपरमाणुओ का एक परमाणु।
. ८ परमाणुओं का एक त्रसरेणु।
. ८ त्रसरेणुओं का एक रथरेणु।
. ८ रथरेणुओं का एक बालाग्र।
. ८ बालाग्रों की एक लिक्षा।
. ८ लिक्षाओ की एक यूका।
. ८ यूकाओं का एक यव।
. ८ यवों का एक अगुल।
. २४ अगुल का एक हाथ।
. ४ हाथों का एक धनुष्य।
· दो हजार धनुष्यो का एक गव्यूत।
· ४ गव्यूतो का एक योजन।

प्रस्तुत सूत्र मे मगध देश में व्यवहृत योजन का माप बताया है। इसका फलित है कि अन्यान्य देशो मे योजन के भिन्न-भिन्न माप प्रचलित थे। जिस देश मे सोलह सौ धनुष्यो का एक गव्यूत होता है वहा छह हजार चार सौ [६४००] धनुष्यो का एक योजन होगा।[2] यह सैद्धान्तिक प्रतिपादन है। धनुष्य और योजन के माप के विषय मे भिन्न-भिन्न मत प्रचलित रहे है।

वर्तमान मे दक्षिण भारत के मैसूर राज्य मे श्रवणबेलगोल मे ५७ फुट ऊची बाहुबली की मूर्ति है। यह माना जाता है कि सम्राट् भरत के पुत्रदेव ने पौदनपुर के पास ५२५ धनुष्य ऊची बाहुबली की मूर्ति बनानी चाही। किन्तु स्थान की अनुपयुक्तता के कारण नही बना सके। तब चामुण्डराय [सन् ९८३] ने उसी प्रमाण की मूर्ति बनाई।[3] इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि ५२५ धनुष्य ५७ फुट के बराबर है। इसका फलितार्थ हुआ कि एकफुट लगभग सवा नौ धनुष्य जितना होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ८ हजार धनुष्य या ८७० फुट का एक योजन होता है अर्थात् सवा फर्लांग से कुछ अधिक का एक योजन होता है।

---

१ स्थानांगवृत्ति पत्र ४१२ अप्टमौत्रणिक काकणिरत्न, सुवर्णमान तु चत्वारि मधुरतृणफलान्येक श्वेतसर्षप षोडश श्वेतसर्षपा एक धान्यमाषकफल द्वे धान्यमाषकफले एका गुञ्जा पञ्च गुञ्जा एक कर्ममाषक षोडश कर्ममाषका एक सुवर्ण, एतानि च मधुरतृणफलादीनि भरतकालभावीनि गृह्यन्ते इदञ्च चतुरङ्गुल प्रमाण चउरगुलप्पमाणा सुवन्नवरकागणी नेयत्ति वचनादिति।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ४१२ मागधग्रहणात् क्वचिदन्यदपि योजन स्यादिति प्रतिपादित, तत्र यस्मिन् देशे षोडशभिर्धनु शतैर्गव्यूत स्यात्तत्र षड्भि सहस्रैश्चतुर्भि शतैर्धनुषा योजन भवतीति।

३ एपिग्राफिक कर्नाटिका II, 234, Page 98.

योजन भी भिन्न २ होते हैं। प्रस्तुत विवरण मे भी चार गव्यूत का एक योजन माना है। गव्यूत का अर्थ है—वह दूरी जिसमें गाय का रंभाना सुना जा सके।[1] सामान्यत: गाय का रंभाना एक फर्लांग तक सुना जा सकता है। इसके आधार पर चार फर्लांग का एक योजन होता है। कहीं-कहीं एक माइल का भी योजन माना है।

३५-३६. (सू० ६३, ६४)

जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार ये वृक्ष आधे-आधे योजन भूमि में हैं तथा इनके तने की मोटाई आधे-आधे योजन की है। इस आधे-आधे योजन के कारण ही ऊंचाई या चौडाई मे 'सातिरेक' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी आधार पर सर्व परिमाण में ये वृक्ष आठ-आठ योजन से कुछ अधिक हैं।

३७-४०. (सू० ७७-८०)

इन चार सूत्रों के अनुसार आठ-आठ विजयों मे आठ-आठ अर्हत, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव होते हैं, किन्तु अर्हन्त, चक्रवर्ती बलदेव और वासुदेव एक साथ बत्तीस नहीं हो सकते। महाविदेह मे कम से कम चार चक्रवर्ती या चार वासुदेव अवश्य होते हैं। जहा वासुदेव होते है वहा चक्रवर्ती नही होते। इसलिए एक साथ उत्कृष्टत: २८ चक्रवर्ती या २८ वासुदेव हो सकते है।[2]

४१. पारियानिक विमान (सू० १०३)

जो गमन के हेतुभूत होते है उन्हें पारियानिक विमान कहते है। पालक आदि आभियोगिक देव अपने-अपने स्वामी इन्द्रो के लिए स्वय यान के रूप मे प्रयुक्त होते हैं। पूर्वसूत्र (१०२) मे उल्लिखित इन्द्रो के ये क्रमश. विमान है। ये सारे नाम उनके आभियोगिक देवों के है। वे यान रूप मे काम आते हैं। अत: उन्ही के नाम से वे यान भी व्यवहृत होते है।[3] दसवे स्थान मे इनका विवरण दिया गया है।[4]

४२-४५. चेष्टा, प्रयत्न, पराक्रम, आचार-गोचर (सू० १११)

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त कुछ विशेष शब्दो का विमर्श—

१. संघटना चेष्टा—अप्राप्त की प्राप्ति।

२. प्रयत्न—प्राप्त का संरक्षण।

३. पराक्रम—शक्ति-क्षय होने पर भी विशेष उत्साह बनाए रखना।[5]

४. आचार-गोचर—

१. साधु के आचार का गोचर [विषय] महाव्रत आदि।

२. आचार—ज्ञान आदि पाच आचार। गोचर—भिक्षाचर्या।[6]

४६. केवली समुद्घात (सू० ११४)

केवलज्ञानी के वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म की स्थिति से आयुष्य कर्म की स्थिति कम रह जाने पर, दोनो को समान करने के लिए स्वभावत. समुद्घात क्रिया होती है—आत्म-प्रदेश समूचे लोक मे फैल जाते है। इस क्रिया का कालमान

---

१. बुद्धिस्ट इंडिया, पृष्ठ ४१ ·
Gavyuta, A cow's call.

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४१५।

३ स्थानांग वृत्ति, पत्र ४१७ परियायते—गम्यते यैस्तानि परियानानि तान्येव पारियानिकानि परियान वा—गमनं प्रयोजन येषा तानि पारियानिकानि यानकारकाभियोगिकपालकादिदेवकृतानि पालकादीनि।

४. स्थानांग १०।१५०

५ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४१८. घटितव्य—अप्राप्तेषु योग कार्य:, यतितव्य—प्राप्तेषु तदवियोगार्थं यत्न: कार्य, पराक्रमितव्य—शक्तिक्षयेऽपि तत्पालने, पराक्रम—उत्साहातिरेको विधेय इति।

६ वही, पत्र ४१८. आचार—साधुसमाचारस्तस्य, गोचरो—विषयो व्रतषट्कादिराचारगोचर अथवा आचारश्च ज्ञानादिविषय पञ्चधा, गोचरश्च—भिक्षाचर्येत्याचारगोचरम्।

आठ समय का है। पहले समय में केवली के आत्म-प्रदेश लोक के अन्त तक ऊर्ध्व और अधो दिशा की तरफ फैल जाते है। उनका विष्कंभ (चौड़ाई) शरीर प्रमाण होता है, इसलिए उनका आकार दंड जैसा बन जाता है। दूसरे समय मे वे ही प्रदेश चौड़े होकर लोक के अन्त तक जाकर कपाटाकार बन जाते है। तीसरे समय मे वे प्रदेश वातवलय के सिवाय समूचे लोक मे फैल जाते हैं। इसे मन्थान कहते हैं। चौथे समय में वे प्रदेश पूर्ण लोक मे फैल जाते है—आत्मा लोक व्यापी बन जाती है। इसके बाद पाचवे, छठे, सातवें, आठवें समय मे आत्मा के प्रदेश क्रमश· मन्थान, कपाट और दण्ड के आकार होकर पूर्ववत् देहस्थित हो जाते है। इन आठ समयों मे पहले और आठवें समय मे औदारिक योग, दूसरे,छठे और सातवें समय मे औदारिक मिश्र योग तथा तीसरे, चौथे और पाचवें समय मे कार्मण योग होता है।

रत्नशेखर सूरि आदि कई विद्वान यह मानते है कि जिस जीव का आयुष्य छह मास से अधिक है, यदि उसे केवल-ज्ञान हो जाए तो वह जीव निश्चय ही समुद्घात करता है। किन्तु अन्य केवली समुद्घात करते ही हैं— ऐसा नियम नही है।

आर्यश्याम ने एक स्थान पर कहा है—

अगतूण समुग्घायमणता केवली जिणा।
जाइमरणविप्पमुक्का, सिद्धि वरगति गया॥

अनत केवली और जिन बिना समुद्घात किये ही जन्म-मरण से विप्रमुक्त हो सिद्ध हो गए।[1]

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का अभिमत इससे भिन्न है। वे कहते है कि प्रत्येक जीव मोक्ष प्राप्ति से पूर्व समुद्घात करता ही है। समुद्घात करने के पश्चात् ही केवली योग निरोध कर शैलेशी अवस्था को पाकर, अयोगी होता हुआ पाच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण करने के समय मात्र मे मोक्ष प्राप्त कर लेता है।[2]

वैदिकों मे प्रचलित आत्म व्यापकता के सिद्धान्त के साथ इसका समन्वय होता है। हेमचन्द्र, यशोविजय आदि विद्वानो ने इसका समन्वय किया है।

दिगम्बरो की यह मान्यता है कि केवली समुद्घात करते है, किन्तु सैद्धान्तिक मान्यता यह है कि केवली समुद्घात करते नहीं, वह स्वत. होती है। समुद्घात करना आलोचनार्ह क्रिया है।

वृत्तिकार ने यहा यह उल्लेख किया है कि तीर्थंकर नेमिनाथ के शिष्यो मे से किसी ने अघाति कर्मों का आयुष्य कर्म के साथ समीकरण करने के लिए केवली समुद्घात किया था।[3]

इस उल्लेख से यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या और किसी तीर्थंकर के शिष्यो ने समुद्घात नही किया ? यदि किया था तो वृत्तिकार ने महावीर के शिष्यो का उल्लेख क्यो नही किया ? सभव है परपरागत यही घटना प्रचलित रही हो, जिसका कि उल्लेख वृत्तिकार ने किया है।

४७. प्रमर्दयोग (सू० ११६)

प्रमर्द योग का अर्थ है—स्पर्श योग। प्रस्तुत सूत्रगत आठ नक्षत्र उभययोगी होते है। चन्द्रमा को उत्तर और दक्षिण दोनो ओर से स्पर्श करते है। चन्द्रमा इनके बीच से निकल जाता है।

४८. (सू० १२५)

तीन इन्द्रिय वाले जीवो की योनिया दो लाख है और उनकी कुलकोटिया आठ लाख। योनि का अर्थ है—उत्पत्ति स्थान और कुलकोटि का अर्थ है—उस एक ही स्थान मे उत्पन्न होने वाली विविध जातिया। गोबर एक योनि है। उसमें कृमि, कीट, बिच्छू आदि अनेक जातिया उत्पन्न होती है, उन्हे कुल कहा जाता है। जैसे—कृमिकुल, कीटकुल, वृश्चिककुल आदि।

---

१ प्रज्ञापना पद ३६।

२. आवश्यक, मलयगिरी वृत्ति पत्र ५३६ मे उद्धृत।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र ४१६ एतेषा च नेमिनाथस्य विनेयानां मध्ये कश्चित्केवली भूत्वा वेदनीयादिकर्म्मस्थितीनामायुष्क-स्थित्या समीकरणार्थं केवलिसमुद्घात कृत्वानिति।

णवमं ठाणं

नवम स्थान

आमुख

इसमे पचहत्तर सूत्र हैं। इनके विषय भिन्न-भिन्न है। इसका पहला सूत्र भगवान महावीर के समय की गण-व्यवस्था पर कुछ प्रकाश डालता हुआ गण की अखंडता के साधनभूत अमात्सर्य का निरूपण करता है। प्रत्यनीकता अखडता के लिए घुण है, अत. जो श्रमण, आचार्य, उपाध्याय आदि का प्रत्यनीक होता है, कर्त्तव्य से प्रतिकूल आचरण करता है उसे गण से अलग कर देना ही श्रेयस्कर होता है।

ऐतिहासिक तथ्यों को अभिव्यक्ति देने वाले सूत्र इस स्थान मे सकलित है। जैसे सूत्र सख्या २९, ६१ आदि-आदि। सूत्र ६० मे भगवान महावीर के तीर्थ मे तीर्थकर नाम का कर्म-बध करने वाले नौ व्यक्तियों का कथन है। उसमे सात पुरुष हैं और दो स्त्रियां। इनका अन्यान्य आगम-ग्रन्थों तथा व्याख्या-ग्रन्थों मे वर्णन मिलता है। पोट्टिल अनगार का उल्लेख अनुत्तरोपपातिक सूत्र मे भी मिलता है, किन्तु वहाँ महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध होने की बात कही है और यहाँ भरत क्षेत्र से सिद्ध होने का उल्लेख है। अत यह उससे भिन्न होना चाहिए। तीर्थंकर नामकर्म बध के बीस कारण बतलाए हैं। इन नौ व्यक्तियों के तीर्थंकर नामकर्म बध के भिन्न-भिन्न कारण प्रस्तुत हुए हैं।

सूत्र ६२ में महाराज श्रेणिक के भव-भवान्तरों का विवरण है। इस एक ही सूत्र मे भगवान महावीर के दर्शन का समग्रता से अवबोध हो जाता है। इसमे समग्र भाव से महावीर का तत्त्वदर्शन, श्रमणचर्या और श्रावकचर्या का उल्लेख है।

इस स्थान के सूत्र १३ मे रोगोत्पत्ति के नौ कारणों का उल्लेख है। वह बहुत ही मननीय है। इनमे आठ कारण शारीरिक रोगों की उत्पत्ति के हेतु है और इन्द्रियार्थ-विकोपन—मानसिक रोग को उत्पन्न करता है। वृत्तिकार ने बताया है कि अधिक बैठने या कठोर आसन पर बैठने से मसे का रोग होता है। अधिक खाने से अथवा थोड़े-थोड़े समय के अन्तराल मे खाने से अजीर्ण तथा अनेक उदर रोग उत्पन्न होते हैं। ये सारे शारीरिक रोग हैं। मानसिक रोग का मूल कारण है—इन्द्रियार्थ-विकोपन अथवा काम-विकार। इससे उन्माद उत्पन्न होता है और वह सारे मानसिक सन्तुलन को बिगाड़ कर व्यक्ति में अनेक प्रकार के मानसिक रोगों की उत्पत्ति करता है। अन्तत वह मरण के द्वार तक भी पहुचा देता है। काम-विकार से उत्पन्न होने वाले दस दोष ये हैं—

१. स्त्री के प्रति अभिलाषा।
२. उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न।
३ उसका सतत स्मरण।
४. उसका उत्कीर्त्तन।
५ प्राप्त न होने पर उद्वेग।
६ प्रलाप।
७. उन्माद।
८ व्याधि।
९. अकर्मण्यता।
१० मृत्यु।

इसी प्रकार अब्रह्मचर्य से बचने के नौ व्यावहारिक उपायों का भी ब्रह्मचर्य गुप्ति (सूत्र ३) के नाम से उल्लेख हुआ है। उनमें अन्तिम उपाय है—ब्रह्मचारी को सुविधावादी नहीं होना चाहिए। यह उपाय श्रमण को सतत श्रमशील और कष्ट-सहिष्णु बनने की प्रेरणा देता है।

णवमं ठाणं

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
विसंभोग-पदं	**विसंभोग-पदम्**	**विसंभोग-पद**
१. णवहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे संभोइयं विसंभोइयं करेमाणे णातिक्कमति, तं जहा— आयरियपडिणीयं, उवज्झायपडिणीयं, थेरपडिणीयं, कुलपडिणीयं, गणपडिणीयं, संघपडिणीयं, णाणपडिणीयं, दंसणपडिणीयं, चरित्तपडिणीयं ।	नवभिः स्थानैः श्रमण. निर्ग्रन्थः साम्भोगिकं वैसभोगिक कुर्वन् नातिक्रामति, तद्यथा— आचार्यप्रत्यनीकं, उपाध्यायप्रत्यनीकं, स्थविरप्रत्यनीकं, कुलप्रत्यनीक, गणप्रत्यनीकं, संघप्रत्यनीक, ज्ञानप्रत्यनीक, दर्शनप्रत्यनीक, चरित्रप्रत्यनीकम् ।	१. नौ स्थानों से श्रमण-निर्ग्रन्थ साभोगिक साधु को विसाभोगिक[1] करता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण नही करता — १. आचार्य का प्रत्यनीक । २. उपाध्याय का प्रत्यनीक । ३. स्थविर का प्रत्यनीक । ४. कुल का प्रत्यनीक । ५ गण का प्रत्यनीक । ६. सघ का प्रत्यनीक । ७. ज्ञान का प्रत्यनीक । ८. दर्शन का प्रत्यनीक । ९ चारित्र का प्रत्यनीक ।
बंभचेरअज्झयण-पदं	**ब्रह्मचर्याध्ययन-पदम्**	**ब्रह्मचर्याध्ययन-पद**
२. णव बंभचेरा पण्णत्ता, तं जहा— सत्थपरिण्णा, लोगविजओ, °सीओसणिज्जं, सम्मत्तं, आवंती, धूतं, विमोहो,° उवहाणसुयं, महापरिण्णा ।	नव ब्रह्मचर्याणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— शस्त्रपरिज्ञा, लोकविजयः, शीतोष्णीयं, सम्यक्त्व, आवन्ती, धूत, विमोहः, उपधानश्रुतं, महापरिज्ञा ।	२. ब्रह्मचर्य —आचाराग सूत्र के नौ अध्ययन है— १. शस्त्रपरिज्ञा, २. लोकविजय, ३. शीतोष्णीय, ४. सम्यक्त्व, ५. आवन्ती-लोकसार, ६. धूत, ७. विमोह, ८. उपधानश्रुत, ९. महापरिज्ञा ।
बंभचेरगुत्ति-पदं	**ब्रह्मचर्यगुप्ति-पदम्**	**ब्रह्मचर्यगुप्ति-पद**
३. णव बंभचेरगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा— १. विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता भवति— णो इत्थिसंसत्ताइं णो पसुसंसत्ताइं णो पंडगसंसत्ताइं ।	नव ब्रह्मचर्यगुप्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— १. विविक्तानि शयनासनानि सेविता भवति— नो स्त्रीसंसक्तानि नो पशुससक्तानि नो पण्डकसंसक्तानि ।	३. ब्रह्मचर्य की गुप्तिया नौ है[2]— १. ब्रह्मचारी विविक्त शयन और आसन का सेवन करता है । स्त्री, पशु और नपुंसक से ससक्त शयन और आसन का सेवन नही करता ।

इसी प्रकार सूत्र १५, १६ नक्षत्रों की चन्द्रमा के साथ स्थिति तथा अन्यान्य ज्योतिष के सूत्र भी संकलित हैं। ६८वें सूत्र में शुक्र-ग्रहण के भ्रमण-क्षेत्र को नौ विधियों मे बाँटकर उसका विवरण प्रस्तुत किया गया है।

सूत्र ६२ मे राजा, ईश्वर, तलवार आदि अधिकारी वर्ग का उल्लेख है। इससे उस समय मे प्रचलित विभिन्न नियुक्तियों का आधार मिलता है। टीकाकार ने राजा से महामांडलिक, जो आठ हजार राजाओं का अधिपति होता था, का ग्रहण किया है। इसी प्रकार अन्यान्य व्याख्याओं से भी उस समय की राज्य-व्यवस्था तथा सामाजिक व्यवस्था का अवबोध हो आता है। देखें टिप्पण सख्या २९ से ३७। इस प्रकार इस स्थान में भगवान पार्श्व, भगवान महावीर तथा महाराज श्रेणिक के विषय में विविध जानकारी मिलती है। कुछेक श्रावक-श्राविकाओं के जीवनोत्कर्ष का भी कथन प्राप्त है। इसलिए यह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

२. णो इत्थीणं कहं कहेत्ता भवति।
२. नो स्त्रीणां कथा कथयिता भवति।
२. वह केवल स्त्रियों में कथा नहीं करता अथवा स्त्री की कथा नहीं करता।

३. णो इत्थिठाणाइं सेवित्ता भवति।
३. नो स्त्रीस्थानानि सेविता भवति।
३. वह स्त्रियों के स्थानों का सेवन नहीं करता।

४. णो इत्थीणमिंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता णिज्झाइत्ता भवति।[3]
४. नो स्त्रीणां इन्द्रियाणि मनोहराणि मनोरमाणि आलोकयिता निध्याता भवति।
४. वह स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को नहीं देखता और न उनका अवधानपूर्वक चिन्तन करता है।

५. णो पणीतरसभोई [भवति ?]।
५. नो प्रणीतरसभोजी (भवति ?)।
५. वह प्रणीतरस का भोजन नहीं करता।

६. णो पाणभोयणस्स अतिमातमाहारए सया भवति।
६. नो पानभोजनस्य अतिमात्र आहारकः सदा भवति।
६. वह सदा पान-भोजन का अतिमात्रा में आहार नहीं करता।

७. णो पुव्वरतं पुव्वकीलियं सरेत्ता भवति।
७. नो पूर्वरत पूर्वक्रीडित स्मर्त्ता भवति।
७. वह पूर्व अवस्था में आचीर्ण भोग तथा क्रीडाओं का स्मरण नहीं करता।

८. णो सद्दाणुवाती णो रूवाणुवाती णो सिलोगाणुवाती [भवति ?]।
८. नो शब्दानुपाती नो रूपानुपाती नो श्लोकानुपाती (भवति ?)।
८. वह शब्द, रूप और श्लोक [कीर्ति] का अनुपाती नहीं होता—उनमें आसक्त नहीं होता।

९. णो सातसोक्खपडिबद्धे यावि भवति।
९. नो सातसौख्यप्रतिबद्धश्चापि भवति।
९. वह सात और सुख में प्रतिबद्ध नहीं होता।

बंभचेरअगुत्ति-पदं

ब्रह्मचर्यागुप्ति-पदम्

ब्रह्मचर्यागुप्ति-पद

४. णव बंभचेरअगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
नव ब्रह्मचर्यागुप्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
४. ब्रह्मचर्य की अगुप्तियां नौ हैं—

१. णो विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता भवति—इत्थीसंसत्ताइं पसुसंसत्ताइं पंडगसंसत्ताइं।
नो विविक्तानि शयनासनानि सेविता भवति—स्त्रीसंसक्तानि पशुसंसक्तानि पण्डकसंसक्तानि।
१. ब्रह्मचारी विविक्त शयन और आसन का सेवन नहीं करता। स्त्री, पुरुष और नपुंसक सहित शयन और आसन का सेवन करता है।

२. इत्थीणं कहं कहेत्ता भवति।
२. स्त्रीणां कथा कथयिता भवति।
२. वह केवल स्त्रियों में कथा करता है अथवा स्त्री की कथा करता है।

३. इत्थिठाणाइं सेवित्ता भवति।
३. स्त्रीस्थानानि सेविता भवति।
३. वह स्त्रियों के स्थानों का सेवन करता है।

४. इत्थीणं इंदियाइं °मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता° णिज्झाइत्ता भवति।
४. स्त्रीणां इन्द्रियाणि मनोहराणि मनोरमाणि आलोकयिता निध्याता भवति।
४. वह स्त्रियों के मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को देखता है और उनका अवधानपूर्वक चिन्तन करता है।

५. पणीयरसभोई [भवति ?]।
५. प्रणीतरसभोजी (भवति ?)।
५. वह प्रणीतरस का भोजन करता है।

६. पाणभोयणस्स अइमायमाहारए सया भवति।
७. पुव्वरयं पुव्वकीलियं सरित्ता भवति।
८. सद्दाणुवाई रूवाणुवाई सिलोगाणुवाई [भवति ?]
९. सायासोक्खपडिबद्धे यावि भवति।

६. पानभोजनस्य अतिमात्रमाहारकः सदा भवति।
७. पूर्वरतं पूर्वक्रीडितं स्मर्त्ता भवति।
८. शब्दानुपाती रूपानुपाती श्लोकानुपाती (भवति ?)।
९ सातसौख्यप्रतिबद्धश्चापि भवति।

६. वह सदा पान-भोजन का अतिमात्रा मे आहार करता है।
७. वह पूर्व अवस्था मे आचीर्ण भोग तथा क्रीडाओं का स्मरण करता है।
८. वह शब्द, रूप और श्लोक [कीर्ति] का अनुपाती होता है—उनमे आसक्त होता है।
९ वह सात और सुख मे प्रतिबद्ध होता है।

तित्थगर-पदं

५. अभिणंदणाओ णं अरहओ सुमती अरहा णवहिं सागरोवमकोडीसयसहस्सेहिं वीइक्कंतेहिं समुप्पण्णे।

तीर्थंकर-पदम्

अभिनन्दनात् अर्हतः सुमतिः अर्हन् नवसु सागरोपमकोटिशतसहस्रेषु व्यतिक्रान्तेषु समुत्पन्नः।

तीर्थंकर-पद

५ अर्हत् अभिनन्दन के पश्चात् नौ लाख करोड सागरोपम काल बीत जाने पर अर्हत् सुमति समुत्पन्न हुए।

सब्भावपयत्थ-पदं

६. णव सब्भावपयत्था पण्णत्ता, तं जहा—
जीवा, अजीवा, पुण्णं, पावं, आसवो, संवरो, णिज्जरा, बंधो, मोक्खो।

सद्भावपदार्थ-पदम्

नव सद्भावपदार्थाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
जीवाः, अजीवाः, पुण्यं, पापं, आश्रवः, संवरः, निर्जरा, बन्धः, मोक्षः।

सद्भावपदार्थ-पद

६ सद्भाव पदार्थ [अनुपचरित या पारमार्थिक वस्तु] नौ है—
१. जीव, २. अजीव, ३. पुण्य,
४. पाप, ५. आश्रव, ६. संवर,
७ निर्जरा, ८. बंध, ९. मोक्ष।

जीव-पदं

७ णवविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—
पुढविकाइया, °आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया,° वणस्सइकाइया, बेइंदिया, °तेइंदिया, चउरिंदिया,° पंचिंदिया।

जीव-पदम्

नवविधाः संसारसमापन्नकाः जीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पृथिवीकायिकाः, अप्कायिकाः, तेजस्कायिकाः, वायुकायिकाः, वनस्पतिकायिकाः, द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः, पञ्चेन्द्रियाः।

जीव-पद

७ संसारसमापन्नक जीव नौ प्रकार के है—
१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक,
३. तेजस्कायिक, ४ वायुकायिक,
५. वनस्पतिकायिक, ६. द्वीन्द्रिय,
७. त्रीन्द्रिय. ८. चतुरिन्द्रिय,
९ पञ्चेन्द्रिय।

गति-आगति-पदं

८. पुढविकाइया णवगतिया णवआगतिया पण्णत्ता, तं जहा—

गति-आगति-पदम्

पृथिवीकायिकाः नवगतिकाः नवागतिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

गति-आगति-पद

८. पृथ्वीकायिक जीवो की नौ गति और नौ आगति होती है—

पुढविकाइए पुढवीकाइएसु उववज्ज- माणे पुढविकाइएहिंतो वा, *आउकाइएहिंतो वा, तेउकाइएहिंतो वा, वाउकाइएहिंतो वा, वणस्सइकाइएहिंतो वा, बेइंदिएहिंतो वा, तेइंदिएहिंतो वा, चउरिंदिएहिंतो वा, पंचिंदिएहिंतो वा उववज्जेजा।

पृथिवीकायिकः पृथिवीकायिकेषु उपपद्यमानः पृथिवीकायिकेभ्यो वा, अप्कायिकेभ्यो वा, तेजस्कायिकेभ्यो वा, वायुकायिकेभ्यो वा, वनस्पतिकायिकेभ्यो वा, द्वीन्द्रियेभ्यो वा, त्रीन्द्रियेभ्यो वा, चतुरिन्द्रियेभ्यो वा, पञ्चेन्द्रियेभ्यो वा उपपद्येत।

पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने वाला जीव पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय—इन नौ जातियों से आता है।

से चेव णं से पुढविकाइए पुढविकायत्तं विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा, *आउकाइयत्ताए वा, तेउकाइयत्ताए वा, वाउकाइयत्ताए वा, वणस्सइकाइयत्ताए वा, बेइंदियत्ताए वा, तेइंदियत्ताए वा, चउरिंदियत्ताए वा,° पंचिंदियत्ताए वा गच्छेज्जा।

स चैव असौ पृथिवीकायिक पृथिवीकायत्व विप्रजहत् पृथिवीकायिकतया वा, अप्कायिकतया वा, तेजस्कायिकतया वा, वायुकायिकतया वा, वनस्पतिकायिकतया वा, द्वीन्द्रियतया वा, त्रीन्द्रियतया वा, चतुरिन्द्रियतया वा, पञ्चेन्द्रियतया वा गच्छेत्।

पृथ्वीकाय से निकलने वाला जीव पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय—इन नौ जातियों में जाता है।

६. एवमाउकाइयावि जाव पंचिंदियत्ति।

एवमप्कायिका अपि यावत् पञ्चेन्द्रिया इति।

६. इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय इन सभी प्राणियों की गति-आगति नौ-नौ हैं।

जीव-पदं

जीव-पदम्

जीव-पद

१०. णवविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—
एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, णेरइया, पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणुया देवा सिद्धा।

नवविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
एकेन्द्रियाः, द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः, नैरयिकाः, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः, मनुजाः, देवाः, सिद्धाः।

१० सब जीव नौ प्रकार के हैं—
१. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय, ३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय, ५. नैरयिक, ६. पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक, ७. मनुष्य, ८. देव, ९. सिद्ध।

अहवा—णवविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—
पढमसमयणेरइया,
अपढमसमयणेरइया,
•पढमसमयतिरिया,
अपढमसमयतिरिया,
पढमसमयमणुया,
अपढमसमयमणुया,
पढमसमयदेवा,°
अपढमसमयदेवा, सिद्धा।

अथवा—नवविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
प्रथमसमयनैरयिकाः,
अप्रथमसमयनैरयिकाः,
प्रथमसमयतिर्यञ्चः,
अप्रथमसमयतिर्यञ्चः,
प्रथमसमयमनुजाः,
अप्रथमसमयमनुजाः,
प्रथमसमयदेवाः, अप्रथमसमयदेवाः,
सिद्धाः।

अथवा—सब जीव नौ प्रकार के हैं—
१. प्रथम समय नैरयिक।
२. अप्रथम समय नैरयिक।
३. प्रथम समय तिर्यञ्च।
४. अप्रथम समय तिर्यञ्च।
५. प्रथम समय मनुष्य।
६. अप्रथम समय मनुष्य।
७. प्रथम समय देव।
८. अप्रथम समय देव।
९. सिद्ध।

ओगाहणा-पदं

११. णवविहा सव्वजीवोगाहणा पण्णत्ता, तं जहा—
पुढविकाइओगाहणा,
आउकाइओगाहणा,
•तेउकाइओगाहणा,
वाउकाइओगाहणा,°
वणस्सइकाइओगाहणा,
बेइंदियओगाहणा,
तेइंदियओगाहणा,
चउरिंदियओगाहणा,
पंचिंदियओगाहणा।

अवगाहना-पदम्

नवविधा सर्वजीवावगाहना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पृथिवीकायिकावगाहना,
अप्कायिकावगाहना,
तेजस्कायिकावगाहना,
वायुकायिकावगाहना,
वनस्पतिकायिकावगाहना,
द्वीन्द्रियावगाहना,
त्रीन्द्रियावगाहना,
चतुरिन्द्रियावगाहना,
पञ्चेन्द्रियावगाहना।

अवगाहना-पद

११. सब जीवों की अवगाहना नौ प्रकार की होती है—
१. पृथ्वीकायिक अवगाहना।
२. अप्कायिक अवगाहना।
३. तेजस्कायिक अवगाहना।
४. वायुकायिक अवगाहना।
५. वनस्पतिकायिक अवगाहना।
६. द्वीन्द्रिय अवगाहना।
७. त्रीन्द्रिय अवगाहना।
८. चतुरिन्द्रिय अवगाहना।
९. पञ्चेन्द्रिय अवगाहना।

संसार-पदं

१२. जीवा णं णवहिं ठाणेहिं संसारं वत्तिसु वा वत्तंति वा वत्तिस्संति वा, तं जहा—
पुढविकाइयत्ताए, •आउकाइयत्ताए, तेउकाइयत्ताए, वाउकाइयत्ताए, वणस्सइकाइयत्ताए, बेइंदियत्ताए, तेइंदियत्ताए, चउरिंदियत्ताए,° पंचिंदियत्ताए।

संसार-पदम्

जीवाः नवभिः स्थानैः संसारं अवर्तिषत वा वर्तन्ते वा वर्तिष्यन्ते वा, तद्यथा—
पृथिवीकायिकतया, अप्कायिकतया, तेजस्कायिकतया, वायुकायिकतया, वनस्पतिकायिकतया, द्वीन्द्रियतया, त्रीन्द्रियतया, चतुरिन्द्रियतया, पञ्चेन्द्रियतया।

संसार-पद

१२. जीवो ने नौ स्थानों से ससार में परिवर्तन किया था, करते है और करेंगे—
१. पृथ्वीकाय के रूप मे।
२. अप्काय के रूप मे।
३. तेजस्काय के रूप मे।
४. वायुकाय के रूप मे।
५. वनस्पतिकाय के रूप में।
६. द्वीन्द्रिय के रूप में।
७. त्रीन्द्रिय के रूप मे।
८. चतुरिन्द्रिय के रूप मे।
९. पञ्चेन्द्रिय के रूप मे।

रोगुप्पत्ति-पदं

१३. णवहिं ठाणेहिं रोगुप्पत्ती सिया तं जहा—
अच्चासणयाए, अहितासणयाए, अतिणिद्दाए, अतिजागरितेणं, उच्चारणिरोहेणं, पासवणणिरोहेणं, अद्धाणगमणेणं, भोयणपडिकूलताए, इंदियत्थविकोवणयाए।

रोगोत्पत्ति-पदम्

नवभिः स्थानैः रोगोत्पत्तिः स्यात्, तद्यथा—
अत्यशनतया (अत्यासनतया), अहिताशनतया, अतिनिद्रया, अतिजागरितेन, उच्चारनिरोधेन, प्रस्रवणनिरोधेन, अध्वगमनेन, भोजनप्रतिकूलतया, इन्द्रियार्थविकोपनतया।

रोगोत्पत्ति-पद

१३. रोग की उत्पत्ति के नौ स्थान हैं[१]—
१. निरन्तर बैठे रहना या अतिभोजन करना।
२. अहितकर आसन पर बैठना या अहित-कर भोजन करना।
३. अतिनिद्रा। ४. अतिजागरण।
५ उच्चार [मल] का निरोध।
६. प्रश्रवण का निरोध।
७. पथगमन। ८. भोजन की प्रतिकूलता।
९. इन्द्रियार्थविकोपन—कामविकार।

दरिसणावरणिज्ज-पदं

१४. णवविधे दरिसणावरणिज्जे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा—
णिद्दा, णिद्दाणिद्दा, पयला, पयलापयला, थीणगिद्धी, चक्खुदंसणावरणे, अचक्खुदंसणावरणे, ओहिदंसणावरणे, केवलदंसणावरणे।

दर्शनावरणीय-पदम्

नवविधं दर्शनावरणीयं कर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धिः, चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरणं, अवधिदर्शनावरणं, केवलदर्शनावरणम्।

दर्शनावरणीय-पद

१४. दर्शनावरणीय कर्म के नौ प्रकार हैं[२]—
१ निद्रा—सोया हुआ व्यक्ति सुख से जाग जाए, वैसी निद्रा।
२ निद्रानिद्रा—घोरनिद्रा, सोया हुआ व्यक्ति कठिनाई से जागे, वैसी निद्रा।
३. प्रचला—खड़े या बैठे हुए जो निद्रा आए।
४ प्रचला-प्रचला—चलते-फिरते जो निद्रा आए।
५. स्त्यानर्द्धि—संकल्प किए हुए कार्य को निद्रा में कर डाले, वैसी प्रगाढतम निद्रा।
६. चक्षुदर्शनावरणीय—चक्षु के द्वारा होने वाले दर्शन [सामान्य ग्रहण] का आवरण।
७ अचक्षुदर्शनावरणीय—चक्षु के सिवाय शेष इन्द्रिय और मन से होने वाले दर्शन का आवरण।
८. अवधिदर्शनावरणीय—मूर्त्त द्रव्यों के साक्षात् दर्शन का आवरण।
९. केवलदर्शनावरणीय—सर्व द्रव्य-पर्यायों के साक्षात् दर्शन का आवरण।

जोइस-पदं

१५. अभिई णं णक्खत्ते सातिरेगे णव मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोगं जोएति।

ज्योतिष-पदम्

अभिजित् नक्षत्र सातिरेकान् नव मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योगं योजयति।

ज्योतिष-पद

१५. अभिजित् नक्षत्र चन्द्रमा के साथ नौ मुहूर्त से कुछ अधिक काल तक योग करता है[३]।

१६. अभिइआइआ णं णव णक्खत्ता णं चंदस्स उत्तरेणं जोगं जोएंति, तं जहा—
अभिई, सवणो, धणिट्ठा, °सयभिसया, पुव्वाभद्दवया, उत्तरापोट्ठवया, रेवई, अस्सिणी,° भरणी।

अभिजिदादिकानि नव नक्षत्राणि चन्द्रस्योत्तरेण योगं योजयन्ति, तद्यथा—
अभिजित्, श्रवणः, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वभाद्रपदा, उत्तरप्रोष्ठपदा, रेवती, अश्विनी, भरणी।

१६. अभिजित् आदि नौ नक्षत्र चन्द्रमा के साथ उत्तर दिशा से योग करते हैं[१]—
१. अभिजित्, २. श्रवण, ४. धनिष्ठा, ४. शतभिषक्, ५. पूर्वभाद्रपद, ६. उत्तरभाद्रपद, ७. रेवती, ८. अश्विनी, ९. भरणी।

१७. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ णव जोअणसताइं उड्ढं अबाहाए उवरिल्ले ताराख्वे चारं चरति।

अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः बहुसमरमणीयात् भूमिभागात् नव योजनशतानि ऊर्ध्वं अबाधया उपरितनं तारारूपं चारं चरति।

१७. इन रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसमरमणीय भूभाग से नौ सौ योजन की ऊंचाई पर सब से ऊचा तारा [शनैश्चर] गति करता है[२]।

मच्छ-पदं

मत्स्य-पदम्

मत्स्य-पद

१८. जंबुद्दीवे णं दीवे णवजोयणिया मच्छा पविसिसु वा पविसंति वा पविसिस्संति वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे नवयोजनिकाः मत्स्याः प्राविशन् वा प्रविशन्ति वा प्रवेक्ष्यन्ति वा।

१८. जम्बूद्वीप द्वीप में नौ योजन के मत्स्यों ने प्रवेश किया था, करते हैं और करेंगे[३]।

बलदेव-वासुदेव-पदं

बलदेव-वासुदेव-पदम्

बलदेव-वासुदेव-पद

१९. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए णव बलदेव-वासुदेव-पियरो हुत्था, तं जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे अस्यां अवसर्पिण्यां नव बलदेव-वासुदेवपितरः अभवन्, तद्यथा—

१९. जम्बूद्वीप द्वीप के भारतवर्ष मे इस अवसर्पिणी में बलदेव-वासुदेव के ये नौ पिता हुए—

संगहणी-गाहा

१. पयावती य बंभे,
रोद्दे सोमे सिवेति य।
महसीहे अग्गिसीहे,
दसरहे णवमे य वसुदेवे॥
इत्तो आढत्तं जधा समवाये णिरवसेसं जाव—
एगा से गब्भवसही,
सिज्झिहिति आगमेसेणं।

संग्रहणी-गाथा

१. प्रजापतिश्च ब्रह्मा,
रुद्रः सोमः शिवइति च।
महासिंहोऽग्निसिंहो,
दशरथः नवमश्च वसुदेवः॥
इतः आरभ्य यथा समवाये निरवशेषं यावत्—
एका तस्य गर्भवसतिः,
सेत्स्यति आगमिष्यति।

१. प्रजापति, २. ब्रह्म, ३. रौद्र, ४. सोम, ५. शिव, ६. महासिंह, ७. अग्निसिंह ८. दशरथ, ९. वसुदेव।

यहा से आगे शेष सब समवयांग की भांति वक्तव्य है, यावत् वह आगामी काल में एक गर्भावास कर सिद्ध होगा।

२०. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमेसाए उस्सप्पिणीए णव बलदेव-वासुदेवपितरो भविस्संति, णव बलदेव-वासुदेवमायरो भविस्संति।
एवं जधा समवाए णिरवसेसं जाव महाभीमसेणे, सुग्गीवे य अपच्छिमे।
१. एए खलु पडिसत्तू,
कित्तिपुरिसाण वासुदेवाणं।
सव्वे वि चक्कजोही,
हम्मीहिंती सचक्केहिं॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे आगमिष्यति उत्सर्पिण्यां नव बलदेव-वासुदेवपितरः भविष्यन्ति, नव बलदेव-वासुदेवमातरो भविष्यन्ति।
एवं यथा समवाये निरवशेष यावत् महाभीमसेनः, सुग्रीवश्च अपश्चिमः।
१. एते खलु प्रतिशत्रवः,
कीर्त्तिपुरुषाणां वासुदेवानाम्।
सर्वेऽपि चक्रयोधिनो,
हनिष्यन्ति स्वचक्रैः।

२०. जम्बूद्वीप द्वीप के भारतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी मे बलदेव-वासुदेव के नौ माता-पिता होंगे।

शेष सब समवायांग की भांति वक्तव्य है यावत् महाभीमसेन और सुग्रीव। ये कीर्तिपुरुष वासुदेवों के प्रतिशत्रु होंगे। ये सब चक्रयोधी होंगे और ये सब अपने ही चक्र से वासुदेव द्वारा मारे जाएंगे।

महाणिहि-पदं

२१. एगमेगे णं महाणिधी णव-णव जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

२२. एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स णव महाणिहिओ [णो ?] पण्णत्ता, तं जहा—

महानिधि-पदम्

एकैकः महानिधिः नव-नव योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

एकैकस्य राज्ञः चतुरन्तचक्रवर्तिनः नव महानिधयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

महानिधि-पद

२१. प्रत्येक महानिधि की चौड़ाई नौ-नौ योजन की है।

२२. प्रत्येक चतुरन्त चक्रवर्ती राजा के नौ महानिधि[1] होते हैं—

संगहणी-गाहा

१. णेसप्पे पंडुयए,
पिंगलए सव्वरयण महापउमे।
काले य महाकाले,
माणवग महाणिही संखे॥
२. णेसप्पंमि णिवेसा,
गामागर-णगर-पट्टणाणं च।
दोणमुह-मडंबाणं,
खंधाराणं गिहाणं च।
३. गणियस्स य बीयाणं,
माणुम्माणस्स जं पमाणं च।
धण्णस्स य बीयाणं,
उप्पत्ती पंडुए भणिया॥

संग्रहणी-गाथा

१. नैसर्पः पाण्डुकः,
पिङ्गलकः सर्वरत्नः महापद्मः।
कालश्च महाकालः,
माणवकः महानिधिः शङ्खः॥
२. नैसर्पे निवेशाः,
ग्रामाकर-नगर-पट्टनानां च।
द्रोणमुख-मडम्बानां,
स्कन्धावाराणां गृहाणाञ्च॥
३. गणितस्य च बीजानां,
मानोन्मानस्य यत् प्रमाणं च।
धान्यस्य च बीजानां,
उत्पत्तिः पाण्डुके भणिता॥

१. नैसर्प, २. पाण्डुक, ३. पिंगल, ४. सर्वरत्न, ५. महापद्म, ६. काल, ७. महाकाल, ८. माणवक, ९. शंख।

ग्राम, आकर, नगर, पट्टण, द्रोणमुख, मडंब, स्कंधावार और गृहों की रचना का ज्ञान नैसर्प महानिधि से होता है।

गणित तथा बीजों के मान और उन्मान का प्रमाण तथा धान्य और बीजों की उत्पत्ति का ज्ञान 'पाण्डुक' महानिधि से होता है।

४. सव्वा आभरणविही,
पुरिसाणं जा य होइ महिलाणं ।
आसाण य हत्थीण य,
पिंगलगणिहिम्मि सा भणिया ।।

४. सर्वः आभारणविधिः,
पुरुषाणां या च भवति महिलानां ।।
अश्वानां च हस्तिनां च,
पिङ्गलकनिधौ सा भणिता ।।

स्त्री, पुरुष, घोड़े और हाथियों की समस्त आभारणविधि का ज्ञान 'पिंगल' महानिधि से होता है।

५. रयणाइं सव्वरयणे,
चोद्दस पवराइं चक्कवट्टिस्स ।
उप्पज्जंति एगिंदियाइं,
पंचिंदियाइं च ।।

५. रत्नानि सर्वरत्ने,
चतुर्दश प्रवराणि चक्रवर्त्तिनः ।
उत्पद्यन्ते एकेन्द्रियाणि
पञ्चेन्द्रियाणि च ।।

चक्रवर्ती के सात एकेन्द्रिय और सात पञ्चेन्द्रिय रत्न—इन चौदह रत्नों की उत्पत्ति का वर्णन 'सर्वरत्न' महानिधि से प्राप्त होता है।

६. वत्थाण य उप्पत्ती,
णिप्फत्ती चेव सव्वभत्तीणं ।।
रंगाण य धोयाण य,
सव्वा एसा महापउमे ।।

६. वस्त्राणां च उत्पत्तिः,
निष्पत्तिः चैव सर्वभक्तीना ।
रङ्गवता च धौताना च,
सर्वा एषा महापद्मे ।।

रंगे हुए या श्वेत सभी प्रकार के वस्त्रों की उत्पत्ति व निष्पत्ति का ज्ञान 'महापद्म' महानिधि से होता है।

७. काले कालण्णाणं,
भव्व पुराणं च तीसु वासेसु ।
सिप्पसत्तं कम्माणि य,
तिण्णि पयाए हियकराइं ।।

७. काले कालज्ञान,
भव्य पुराण च त्रिषु वर्षेषु ।
शिल्पशत कर्माणि च,
त्रीणि प्रजायै हितकराणि ।।

अनागत व अतीत के तीन-तीन वर्षों के शुभाशुभ का कालज्ञान, सौ प्रकार के शिल्पों[10] का ज्ञान और प्रजा के लिए हितकर सुरक्षा, कृषि, वाणिज्य—इन तीन कर्मों का ज्ञान 'काल' महानिधि से होता है।

८. लोहस्स य उप्पत्ती,
होइ महाकाले आगराणं च ।
रुप्पस्स सुवण्णस्स य,
मणि-मोत्ति-सिल-प्पवालाणं ।।

८. लोहस्य चोत्पत्तिः,
भवति महाकाले आकराणाञ्च ।
रूप्यस्य सुवर्णस्य च,
मणि-मुक्ता-शिला-प्रवालानाम् ।।

लोह, चांदी तथा सोने के आकर, मणि, मुक्ता, स्फटिक और प्रवाल की उत्पत्ति का ज्ञान 'महाकाल' महानिधि से होता है।

९. जोधाण य उप्पत्ती,
आवरणाणं च पहरणाणं च ।
सव्वा य जुद्धनीती,
माणवए दंडणीती य ।।

९. योधाना चोत्पत्ति,
आवरणाना च प्रहरणानाञ्च ।
सर्वा च युद्धनीतिः,
माणवके दण्डनीतिश्च ।।

योद्धाओं, कवचों और आयुधों के निर्माण का ज्ञान तथा समस्त युद्धनीति और दण्डनीति का ज्ञान 'माणवक' महानिधि से होता है।

१०. णट्टविही णाडगविही,
कव्वस्स चउव्विहस्स उप्पत्ती ।
संखे महाणिहिम्मी,
तुडियंगाणं च सव्वेसिं ।।

१०. नृत्यविधिः नाटकविधिः,
काव्यस्य चतुर्विधस्योत्पत्तिः ।
शङ्खे महानिधौ,
त्रुटिताङ्गाना च सर्वेषाम् ।।

नृत्यविधि, नाटकविधि, चार प्रकार के काव्यों[11] तथा सभी प्रकार के वाद्यों की विधि का ज्ञान 'शंख' महानिधि से होता है।

११. चक्कट्ठपइट्ठाणा,
अट्ठुस्सेहा य णव य विक्खंभे ।
बारसदीहा मंजूस-संठिया
जाह्नवीए मुहे ।।

११ चक्राष्टप्रतिष्ठानाः,
अष्टोत्सेधाश्च नव च विष्कम्भे ।
द्वादशदीर्घाः मञ्जूषा-संस्थिताः
जाह्नव्या मुखे ।।

प्रत्येक महानिधि आठ-आठ चक्रों पर अवस्थित है। वे आठ योजन ऊंचे, नौ योजन चौड़े, बारह योजन लम्बे तथा मंजूषा के संस्थान वाले होते हैं। वे सभी गंगा के मुहाने पर अवस्थित रहते हैं।

१२. वेरुलियमणि-कवाडा,
कणगमया विविध-रयण-पडिपुण्णा।
ससि-सूर-चक्क-लक्खण-अणुसम-
जुग-बाहु-वयणा य ॥

१२. वैडूर्यमणि-कपाटाः,
कनकमयाः विविध-रत्न-प्रतिपूर्णाः।
शशि-सूर-चक्र-लक्षणानुसम-
युग-बाहु-बदनाश्च ॥

उन निधियों के कपाट वैडूर्य-रत्नमय और सुवर्णमय होते हैं। उनमें विविध रत्न जड़े हुए होते हैं। उन पर चन्द्र, सूर्य और चक्र के आकार के चिह्न होते हैं। वे सभी समान होते है और उनके दरवाजे के मुखभाग मे खम्भे के समान वृत्त और लम्बी द्वार-शाखाएं होती हैं।

१३. पलिओवमट्ठितीया,
णिहिसरिणामा य तेसु खलु देवा।
जेसिं ते आवासा,
अक्किज्जा आहिवच्चा वा।
१४. एए ते णवणिहिणो,
पभूतधणरयणसंचयसमिद्धा।
जे वसमुवगच्छंती,
सव्वेसिं चक्कवट्टीणं ॥

१३. पल्योपमस्थितिकाः,
निधिसदृग्नामानश्च तेषु खलु देवाः।
येषां ते आवासाः,
अक्रेयाः आधिपत्याः वा ॥
१४. एते ते नव निधयः,
प्रभूतधनरत्नसंचयसमृद्धाः।
ये वशमुपगच्छन्ति,
सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ॥

वे सभी निधि एक पल्योपम की स्थिति-वाले होते हैं। जो-जो निधियों के नाम हैं उन्ही नामो के देव उनमे आवास करते हैं। उनका क्रय-विक्रय नहीं होता और उन पर सदा देवो का आधिपत्य रहता है।

वे नौ निधि प्रभूत धन और रत्नों के संचय से समृद्धि होते हैं और वे समस्त चक्र-वर्तियों के वश मे रहते हैं।

विगति-पदं

२३. णव विगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
खीरं, दधिं, णवणीतं, सप्पि, तेलं, गुलो, महुं, मज्जं, मंसं।

विकृति-पदम्

नव विकृतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
क्षीरं, दधि, नवनीत, सर्पिः, तैल, गुड, मधु, मद्य, मासम्।

विकृति-पद

२३. विकृतियां[११] नौ हैं—
१. दूध, २. दही, ३. नवनीत, ४. घृत, ५. तैल, ६. गुड, ७. मधु, ८. मद्य, ९. मास।

बोंदी-पदं

२४. णव-सोत-परिस्सवा बोंदी पण्णत्ता, तं जहा—
दो सोत्ता, दो णेत्ता, दो घाणा, मुहं, पोसए, पाऊ।

बोंदी-पदम्

नव-स्रोत-परिश्रवा बोन्दी प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
द्वे श्रोत्रे, द्वे नेत्रे, द्वे घ्राणे, मुख, उपस्थ, पायुः।

बोंदी-पद

२४ शरीर मे नौ स्रोत झर रहे है—
दो कान, दो नेत्र, दो नाक, मुह, उपस्थ और अपान।

पुण्ण-पदं

२५. णवविधे पुण्णे पण्णत्ते, तं जहा—
अण्णपुण्णे, पाणपुण्णे, वत्थपुण्णे, लेणपुण्णे, सयणपुण्णे, मणपुण्णे, वइपुण्णे, कायपुण्णे, णमोक्कारपुण्णे।

पुण्य-पदम्

नवविध पुण्य प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
अन्नपुण्य, पानपुण्य, वस्त्रपुण्य, लयनपुण्य, शयनपुण्य, मन पुण्यं, वाक्पुण्य, कायपुण्य, नमस्कारपुण्यम्।

पुण्य-पद

२५. पुण्य के नौ प्रकार हैं—
१. अन्नपुण्य, २. पानपुण्य, ३. वस्त्रपुण्य, ४. लयनपुण्य, ५. शयनपुण्य, ६. मनपुण्य, ७. वचनपुण्य, ८. कायपुण्य, ९. नमस्कारपुण्य।

पावायतण-पदं

२६. नव पावस्सायतणा पण्णत्ता, तं जहा—
पाणातिवाते, मुसावाए,
°अदिण्णादाणे, मेहुणे,°
परिग्गहे, कोहे, माणे,
माया, लोभे।

पापायतन-पदम्

नव पापस्यायतनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
प्राणातिपातः, मृषावादः, अदत्तादानं, मैथुनं, परिग्रहः, क्रोधः, मानं, माया, लोभः।

पापायतन-पद

२६. पाप के आयतन [स्थान] नौ हैं—
१. प्राणातिपात, २. मृषावाद,
३. अदत्तादान, ४. मैथुन, ५. परिग्रह,
६. क्रोध, ७. मान, ८. माया,
९. लोभ।

पावसुयपसंग-पदं

२७. णवविधे पावसुयपसंगे पण्णत्ते, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. उप्पाते णिमित्ते मंते,
आइक्खिए तिगिच्छिए।
कला आवरणे अण्णाणे
मिच्छापवयणे ति य॥

पापश्रुतप्रसंग-पदम्

नवविधः पापश्रुतप्रसङ्गः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. उत्पातः निमित्त मन्त्रः,
आख्यात चैकित्सिक ।
कला आवरण अज्ञान
मिथ्याप्रवचनमिति च॥

पापश्रुतप्रसंग-पद

२७. पापश्रुत-प्रसग[१३] के नौ प्रकार हैं—

१. उत्पात—प्रकृति-विप्लव और राष्ट्र-विप्लव का सूचक शास्त्र।
२. निमित्त—अतीत, वर्तमान और भविष्य को जानने का शास्त्र।
३. मत्र—मन्त्र-विद्या का प्रतिपादक शास्त्र
४. आख्यायिका—मातग-विद्या—एक विद्या जिससे अतीत आदि की परोक्ष बातें जानी जाती हैं।
५. चिकित्सा—आयुर्वेद आदि।
६. कला—७२ कलाओं का प्रतिपादक शास्त्र। ७. आवरण—वास्तुविद्या।
८. अज्ञान—लौकिकश्रुत—भरतनाट्य आदि।
९. मिथ्याप्रवचन—कुतीर्थिको के शास्त्र।

णेउणिय-पदं

२८. नव णेउणिया वत्थू पण्णत्ता, तं जहा—
१. संखाणे णिमित्ते काइया
पोराणे पारिहत्थिए।
परपंडिते वाई य,
भूतिकम्मे तिगिच्छिए॥

नैपुणिक-पदम्

नव नैपुणिकानि वस्तूनि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१. संख्यानः नैमित्तिकः कायिकः
पुराणः पारिहस्तिकः।
परपण्डितः वादी च,
भूतिकर्मा चैकित्सिकः॥

नैपुणिक-पद

२८. नैपुणिक[१४] वस्तु [पुरुष] नौ हैं—
१. संख्यान—गणित को जानने वाला।
२. नैमित्तिक—निमित्त को जानने वाला।
३. कायिक—इडा, पिंगला आदि प्राण-तत्त्वों को जानने वाला।
४. पौराणिक—इतिहास को जानने वाला,
५. पारिहस्तिक—प्रकृति से ही समस्त कार्यो मे दक्ष।
६. परपण्डित—अनेक शास्त्रों को जानने वाला।
७ वादी—वाद-लब्धि से सम्पन्न।
८. भूतिकर्म—भस्मलेप या डोरा बांधकर ज्वर आदि की चिकित्सा करने वाला।
९. चैकित्सिक—चिकित्सा करने वाला।

गण-पदं

२९. समणस्स णं भगवतो महावीरस्स नव गणा हुत्था, तं जहा—
गोदासगणे, उत्तरबलिस्सहगणे, उद्देहगणे, चारणगणे, उद्दवाइयगणे, विस्सवाइयगणे, कामड्ढियगणे, माणवगणे, कोडियगणे।

गण-पदम्

श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य नव गणाः अभवन्, तद्यथा—
गोदासगणः, उत्तरबलिस्सहगणः, उद्देहगणः, चारणगणः, उद्दवाइयगणः, विस्सवाइयगणः, कामर्द्धिकगणः, मानवगणः, कोटिकगणः।

गण-पद

२९. श्रमण भगवान् महावीर के नौ गण[१०] थे—
१. गोदासगण, २. उत्तरबलिस्सहगण,
३. उद्देहगण, ४. चारणगण,
५. उद्दवाइयगण [उडुपाटितगण],
६. विस्सवाइयगण [वेशपाटितगण],
७. कामर्द्धिकगण, ८. मानवगण,
९. कोटिकगण।

भिक्खा-पदं

३०. समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णवकोडिपरिसुद्धे भिक्खे पण्णत्ते, तं जहा—
ण हणइ, ण हणावइ, हणंतं णाणुजाणइ, ण पयइ, ण पयावेति, पयंतं णाणुजाणति, ण किणति, ण किणावेति, किणंतं णाणुजाणति।

भिक्षा-पदम्

श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणानां निर्ग्रन्थानां नवकोटिपरिशुद्धं भैक्षं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
न हन्ति, न घातयति, घ्नन्तं नानुजानाति, न पचति, न पाचयति, पचन्तं नानुजानाति, न क्रीणाति, न क्रापयति, क्रीणन्तं नानुजानाति।

भिक्षा-पद

३० श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए नौकोटिपरिशुद्ध भिक्षा का निरूपण किया है—
१ न हनन करता है।
२. न हनन करवाता है।
३ न हनन करने वालों का अनुमोदन करता है।
४ न पकाता है। ५. न पकवाता है।
६ न पकाने वाले का अनुमोदन करता है।
७. न मोल लेता है।
८. न मोल लिवाता है।
९. न मोल लेने वाले का अनुमोदन करता है।

देव-पदं

३१. ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो णव अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

३२ ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अग्गमहिसीणं णव पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

३३ ईसाणे कप्पे उक्कोसेणं देवीणं णव पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देव-पदम्

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य वरुणस्य महाराजस्य नव अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः।

ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अग्रमहिषीणां नव पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ताः।

ईशाने कल्पे उत्कर्षेण देवीनां नव पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

देव-पद

३१ देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल महाराज वरुण के नौ अग्रमहिषियां हैं।

३२ देवेन्द्र देवराज ईशान की अग्रमहिषियों की स्थिति नौ पल्योपम की है।

३३ ईशान कल्प में देवियों की उत्कृष्ट स्थिति नौ पल्योपम की है।

३४. णव देवणिकाया पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. सारस्सयमाइच्चा,
वण्ही वरुणा य गद्दतोया य।
तुसिया अव्वाबाहा,
अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य ।

नव देवनिकायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. सारस्वताः आदित्याः,
वह्नयः वरुणाश्चः गर्दतोयाश्च ।
तुषिताः अव्याबाधाः,
अग्न्यर्च्चाश्चैव रिष्टाश्च ॥

३४. नौ देवनिकाय है[१]—

१. सारस्वत, २. आदित्य, ३. वह्नि,
४. वरुण, ५. गर्दतोय, ६. तुषित,
७. अव्याबाध, ८. अग्न्यर्च, ९. रिष्ट।

३५. अव्वाबाहाणं देवाणं णव देवा णव देवसया पण्णत्ता ।

अव्याबाधाना देवानां नव देवाः नव देवशतानि प्रज्ञप्तानि ।

३५. अव्याबाध जाति के देव स्वामीरूप मे नौ हैं और उनके नौसौ देवों का परिवार है।

३६. °अग्गिच्चाणं देवाणं णव देवा णव देवसया पण्णत्ता ।

अग्न्यर्च्चानां देवानां नव देवाः नव देवशतानि प्रज्ञप्तानि ।

३६. अग्न्यर्च जाति के देव स्वामीरूप मे नौ हैं और उनके नौ सौ देवों का परिवार है।

३७. रिट्ठाणं देवाणं णव देवा णव देवसया पण्णत्ता° ।

रिष्टानां देवानां नव देवाः नव देवशतानि प्रज्ञप्तानि ।

३७. रिष्ट जाति के देव स्वामीरूप मे नौ है और उनके नौ सौ देवो का परिवार है।

३८. णव गेवेज्ज-विमाण-पत्थडा पण्णत्ता, तं जहा—
हेट्ठिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
हेट्ठिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
हेट्ठिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
मज्झिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
मज्झिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
मज्झिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
उवरिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
उवरिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे,
उवरिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे ।

नव ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
अधस्तन-अधस्तन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः;
अधस्तन-मध्यम-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः,
अधस्तन-उपरितन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः,
मध्यम-अधस्तन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः,
मध्यम-मध्यम-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः,
मध्यम-उपरितन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः,
उपरितन-अधस्तन-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः,
उपरितन-मध्यम-ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटः,
उपरितन-उपरितन-ग्रैवेयक-विमान प्रस्तटः ।

३८. ग्रैवेयक विमान के प्रस्तट नौ है—
१ निचले त्रिक के निचले ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।
२. निचले त्रिक के मध्यम ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।
३. निचले त्रिक के ऊपर वाले ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।
४. मध्यम त्रिक के निचले ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।
५. मध्यम त्रिक के मध्यम ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।
६. मध्यम त्रिक के ऊपर वाले ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।
७. ऊपर वाले त्रिक के निचले ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।
८. ऊपर वाले त्रिक के मध्यम ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।
९. ऊपरवाले त्रिक के ऊपर वाले ग्रैवेयक विमान का प्रस्तट।

३९. एतेसि णं णवण्हं गेविज्ज-विमाण-पत्थडाणं णव णामधिज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

एतेषां नवानां ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटानां नव नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

३९. ग्रैवेयक विमान के इन नौ प्रस्तटों के नौ नाम हैं—

संगहणी-गाहा

१. भद्दे सुभद्दे सुजाते,
सोमणसे पियदरिसणे।
सुदंसणे अमोहे य,
सुप्पबुद्धे जसोधरे।

संग्रहणी-गाथा

१ भद्रः सुभद्रः सुजातः,
सौमनसः प्रियदर्शनः।
सुदर्शनः अमोहश्च,
सुप्रबुद्धः यशोधरः॥

१. भद्र, २. सुभद्र, ३. सुजात,
४ सौमनस, ५. प्रियदर्शन, ६. सुदर्शन,
७. अमोह, ८. सुप्रबुद्ध, ९. यशोधर।

आउपरिणाम-पदं

४०. णवविहे आउपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—
गतिपरिणामे, गतिबंधणपरिणामे,
ठितिपरिणामे, ठितिबंधणपरिणामे,
उड्ढंगारवपरिणामे,
अहेगारवपरिणामे,
तिरियंगारवपरिणामे,
दीहंगारवपरिणामे,
रहस्संगारवपरिणामे।

आयुःपरिणाम-पदम्

नवविध आयुःपरिणामः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
गतिपरिणामः, गतिबन्धनपरिणामः,
स्थितिपरिणामः, स्थितिबन्धनपरिणामः,
ऊर्ध्वगौरवपरिणामः,
अधोगौरवपरिणामः,
तिर्यग्गौरवपरिणामः,
दीर्घगौरवपरिणामः,
ह्रस्वगौरवपरिणामः।

आयुःपरिणाम-पद

४०. आयुपरिणाम के नौ प्रकार हैं[११]—
१. गति परिणाम,
२ गति-बंधन परिणाम,
३ स्थिति परिणाम,
४ स्थिति-बंधन परिणाम,
५ ऊर्ध्व गौरव परिणाम,
६ अधो गौरव परिणाम,
७ तिर्यक् गौरव परिणाम,
८. दीर्घ गौरव परिणाम,
९ ह्रस्व गौरव परिणाम।

पडिमा-पदं

४१. णवणवमिया णं भिक्खुपडिमा एगासीतीए रातिदिएहिं चउहि य पंचुत्तरेहिं भिक्खासतेहिं अहासुत्तं °अहाअत्थं अहातच्चं अहामग्गं अहाकप्पं सम्मं काएणं फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया° आराहिया यावि भवति।

प्रतिमा-पदम्

नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा एकाशीत्या रात्रिदिवैः चतुर्भिः च पञ्चोत्तरैः भिक्षा-शतैः यथासूत्रं यथार्थं यथातत्त्वं यथा-मार्गं यथाकल्पं सम्यक् कायेन स्पृष्टा पालिता शोधिता तीरिता कीर्तिता आराधिता चापि भवति।

प्रतिमा-पद

४१ नव-नवमिका (९×९) भिक्षु-प्रतिमा ८१ दिन-रात तथा ४०५ भिक्षादत्तियों द्वारा यथासूत्र, यथाअर्थ, यथातत्त्व, यथा-मार्ग, यथाकल्प तथा सम्यक् प्रकार से काया से आचीर्ण, पालित, शोधित, पूरित, कीर्तित और आराधित की जाती है।

पायच्छित्त-पदं

४२. णवविधे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—

प्रायश्चित्त-पदम्

नवविधं प्रायश्चित्तं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

प्रायश्चित्त-पद

४२ प्रायश्चित्त नौ प्रकार का होता है—

आलोयणारिहे, °पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउसग्गारिहे, तवारिहे, छेयारिहे,° मूलारिहे, अणवट्ठप्पारिहे ।

आलोचनार्हं, प्रतिक्रमणार्हं, तदुभयार्हं, विवेकार्हं, व्युत्सर्गार्हं, तपोर्हं, छेदार्हं, मूलार्हं, अनवस्थाप्यार्हम् ।

१. आलोचना के योग्य, २. प्रतिक्रमण के योग्य, ३. आलोचना और प्रतिक्रमण—दोनों के योग्य, ४. विवेक के योग्य, ५. व्युत्सर्ग के योग्य, ६. तप के योग्य, ७. छेद के योग्य, ८. मूल के योग्य, ९. अनवस्थाप्य के योग्य ।

कूड-पदं

कूट-पदम्

कूट-पद

४३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं भरहे दीहवेतड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे भरते दीर्घवैताढ्ये नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

४३. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के दक्षिण मे भरत क्षेत्रवर्ती दीर्घ-वैताढ्य के नौ कूट हैं—

संगहणी-गाहा

१. सिद्धे भरहे खंडग,
माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा ।
भरहे वेसमणे या,
भरहे कूडाण णामाइं ।।

संग्रहणी-गाथा

१. सिद्धो भरतः खण्डकः,
माणिः वैतायढ्य पूर्णः तमिस्रगुहा ।
भरतो वैश्रमणश्च,
भरते कूटानां नामानि ।।

१ सिद्धायतन, २. भरत, ३ खण्डकप्रपातगुहा, ४. माणिभद्र, ५. वैताढ्य, ६. पूर्णभद्र, ७. तमिस्रगुहा, ८. भरत, ९. वैश्रमण ।

४४. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं णिसहे वासहरपव्वते णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. सिद्धे णिसहे हरिवस,
विदेह हरि धिति अ सीतोया ।
अवरविदेहे रुयगे,
णिसहे कूडाण णामाणि ।।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे निषधे वर्षधरपर्वते नव कूटानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—
१ सिद्धो निषधो हरिवर्ष,
विदेहः ह्री. धृतिश्च शीतोदा ।
अपरविदेहः रुचको,
निषधे कूटाना नामानि ।।

४४. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के दक्षिण मे निषधवर्षधर पर्वत के नौ कूट है—
१. सिद्धायतन, २. निषध, ३. हरिवर्ष, ४. पूर्वविदेह, ५. हरि, ६. धृति, ७. शीतोदा, ८. अपरविदेह, ९. रुचक ।

४५. जंबुद्दीवे दीवे मंदरपव्वते णंदणवणे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. णंदणे मंदरे चेव,
णिसहे हेमवते रयय रुयए य ।
सागरचित्ते वइरे,
बलकूडे चेव बोद्धव्वे ।।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरपर्वते नन्दनवने नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ नन्दनो मन्दरश्चैव,
निषधो हैमवतः रजतः रुचकश्च ।
सागरचित्रं वज्रं,
बलकूटं चैव बोद्धव्यम् ।।

४५. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के नन्दन-वन मे नौ कूट हैं—
१. नन्दन, २. मन्दर, ३. निषध, ४ हैमवत, ५. रजत, ६. रुचक, ७. सागरचित्र, ८. वज्र, ९. बल ।

४६. जंबुद्दीवे दीवे मालवंतवक्खारपव्वते णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. सिद्धे य मालवंते,
उत्तरकुरु कच्छ सागरे रयते।
सीता य पुण्णणामे,
हरिस्सहकूडे य बोद्धव्वे॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे माल्यवत्वक्षस्कारपर्वते नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ सिद्धश्च माल्यवान्,
उत्तरकुरु कच्छः सागरः रजतः।
शीता च पूर्णनामा,
हरिस्सहकूटं च बोद्धव्यम्॥

४६. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के [उत्तर मे उत्तरकुरा के पश्चिम पार्श्व मे] माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के नौ कूट हैं—
१ सिद्धायतन, २. माल्यवान्, ३. उत्तरकुरु, ४. कच्छ, ५. सागर, ६ रजत, ७. शीता, ८. पूर्णभद्र, ९ हरिस्सह।

४७. जंबुद्दीवे दीवे कच्छे दीहवेयड्डे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. सिद्धे कच्छे खंडग,
माणी वेयड्ड पुण्ण तिमिसगुहा।
कच्छे वेसमणे या,
कच्छे कूडाण णामाइं।

जम्बूद्वीपे द्वीपे कच्छे दीर्घवैताढ्ये नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ सिद्धः कच्छः खण्डकः,
माणिः वैताढ्य पूर्ण तमिस्रगुहा।
कच्छो वैश्रवणश्च,
कच्छे कूटाना नामानि।

४७. जम्बूद्वीप द्वीप के कच्छवर्ती दीर्घवैताढ्य के नौ कूट हैं—
१. सिद्धायतन, २. कच्छ, ३. खण्डकप्रपातगुहा, ४ माणिभद्र, ५ वैताढ्य, ६ पूर्णभद्र, ७ तमिस्रगुहा, ८. कच्छ, ९. वैश्रमण।

४८. जंबुद्दीवे दीवे सुकच्छे दीहवेयड्डे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. सिद्धे सुकच्छे खंडग,
माणी वेयड्ड पुण्ण तिमिसगुहा।
सुकच्छे वेसमणे या,
सुकच्छे कूडाण णामाइं।

जम्बूद्वीपे द्वीपे सुकच्छे दीर्घवैताढ्ये नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१. सिद्धः सुकच्छः खण्डकः,
माणि वैताढ्य पूर्ण तमिस्रगुहा।
सुकच्छो वैश्रमणश्च,
सुकच्छे कूटाना नामानि॥

४८ जम्बूद्वीप द्वीप के सुकच्छवर्ती दीर्घवैताढ्य के नौ कूट हैं—
१. सिद्धायतन, २. सुकच्छ, ३ खण्डकप्रपातगुहा, ४. माणिभद्र, ५ वैताढ्य, ६. पूर्णभद्र, ७. तमिस्रगुहा, ८. सुकच्छ, ९ वैश्रमण।

४९. एवं जाव पोक्खलावइम्मि दीहवेयड्डे।

एवम् यावत् पुष्कलावत्या दीर्घवैताढ्ये।

४९. इसी प्रकार महाकच्छ कच्छकावती, आवर्त, मंगलावर्त, पुष्कल और पुष्कलावती मे विद्यमान दीर्घवैताढ्य के नौ-नौ कूट हैं।

५०. एवं वच्छे दीहवेयड्डे।

एवं वत्से दीर्घवैताढ्ये।

५० इसी प्रकार वत्स में विद्यमान दीर्घवैताढ्य के नौ कूट हैं।

५१. एवं जाव मंगलावतिम्मि दीहवेयड्डे।

एवं यावत् मङ्गलावत्या दीर्घवैताढ्ये।

५१. इसीप्रकार सुवत्स, महावत्स, वत्सकावती, रम्य, रम्यक, रमणीय और मंगलावती मे विद्यमान दीर्घवैताढ्य के नौ-नौ कूट हैं।

५२. जंबुद्दीवे दीवे विज्जुप्पभे वक्खारपव्वते णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. सिद्धे अ विज्जुणामे,
देवकुरा पम्ह कणग सोवत्थी।
सीओदा य सयजले,
हरिकूडे चेव बोद्धव्वे॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे विद्युत्प्रभे वक्षस्कारपर्वते नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ सिद्धश्च विद्युन्नामा,
देवकुरा पद्म कनक सौवस्तिकः।
शीतोदा च शतज्वल,
हरिकूटं चैव बोद्धव्यम्॥

५२. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत के नौ कूट हैं—
१. सिद्धायतन, २. विद्युत्प्रभ, ३. देवकुरा, ४. पक्ष्म, ५ कनक, ६. स्वस्तिक, ७. शीतोदा, ८. शतज्वल, ९. हरि।

५३. जंबुद्दीवे दीवे पम्हे दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. सिद्धे पम्हे खंडग,
माणी वेयड्ढ °पुण्ण तिमिसगुहा।
पम्हे वेसमणे या,
पम्हे कूडाण णामाइं ॥°

जम्बूद्वीपे द्वीपे पक्ष्मणि दीर्घवैताढ्ये नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१. सिद्धः पक्ष्म खण्डकः,
माणिः वैताढ्यः पूर्णः तमिस्रगुहा।
पक्ष्म वैश्रमणश्च,
पक्ष्मणि कूटानां नामानि ॥

५३. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पक्ष्मवर्ती दीर्घवैताढ्य के नौ कूट हैं—
१. सिद्धायतन, २ पक्ष्म,
३ खण्डकप्रपातगुहा, ४. माणिभद्र,
५. वैताढ्य, ६ पूर्णभद्र,
७. तमिस्रगुहा, ८. पक्ष्म,
९. वैश्रमण।

५४. एवं चेव जाव सलिलावतिम्मि दीहवेयड्ढे।

एव चैव यावत् सलिलावत्या दीर्घवैताढ्ये।

५४. इसी प्रकार सुपक्ष्म, महापक्ष्म, पक्ष्मकावती, शख, नलिन, कुमुद और सलिलावती, मे विद्यमान दीर्घवैताढ्य के नौ-नौ कूट हैं।

५५ एवं वप्पे दीहवेयड्ढे।

एव वप्रे दीर्घवैताढ्ये।

५५. इसी प्रकार वप्र में विद्यमान दीर्घवैताढ्य के नौ कूट है।

५६. एवं जाव गंधिलावतिम्मि दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

एव यावत् गन्धिलावत्या दीर्घवैताढ्ये नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

५६. इसी प्रकार सुवप्र, महावप्र, वप्रकावती, वल्गु, सुवल्गु, गंधिल और गंधिलावती में मे विद्यमान दीर्घवैताढ्य के नौ-नौ कूट है—

१. सिद्धे गंधिल खंडग,
माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा।
गंधिलावति वेसमणे,
कूडाणं होंति णामाइं।

१. सिद्धो गन्धिलः खण्डक,
माणि. वैताढ्य. पूर्णः तमिस्रगुहा।
गन्धिलावती वैश्रमणः,
कूटाना भवन्ति नामानि ॥

१. सिद्धायतन, २. गंधिलावती,
३. खण्डकप्रपातगुहा, ४. माणिभद्र,
५. वैताढ्य, ६ पूर्णभद्र,
७. तमिस्रगुहा ८. गधिलावती,
९ वैश्रमण।

एवं सव्वेसु दीहवेयड्ढेसु दो कूडा सरिसणामया, सेसा ते चेव।

एव सर्वेषु दीर्घवैताढ्ये द्वे कूटे सदृशनामके, शेषाणि तानि चैव।

सभी दीर्घवैताढ्यो के दो-दो [दूसरा और आठवा] कूट एक ही नाम के [उसी विजय के नाम के] हैं और शेष सात कूट सबमे एक रूप हैं।

५७. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं णेलवंते वासहरपव्वते णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. सिद्धे णेलवंते विदेहे,
सीता कित्ती य णारिकंता य।
अवरविदेहे रम्मगकूडे,
उवदंसणे चेव ॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरस्मिन् नीलवत् वर्षधरपर्वते नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१. सिद्धो नीलवान् विदेहः,
शीता कीर्तिश्च नारीकान्ता च।
अपरविदेहो रम्यककूटं,
उपदर्शन चैव ॥

५७. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर में नीलवान् वर्षधर पर्वत के नौ कूट हैं—
१. सिद्धायतन, २. नीलवान्,
३. पूर्वविदेह, ४. शीता, ५. कीर्ति,
६. नारिकांता, ७. अपरविदेह,
८. रम्यक, ९. उपदर्शन।

५८. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं एरवते दीहवेतड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
१. सिद्धेरवए खंडग,
माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा।
एरवते वेसमणे,
एरवते कूडणामाइं॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरस्मिन् ऐरवते दीर्घवैताढ्ये नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१. सिद्ध ऐरवतः खण्डकः,
माणि: वैताढ्यः पूर्णः तमिस्रगुहा।
एरवतो वैश्रमणः,
ऐरवते कूटनामानि॥

५८. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर में ऐरवत दीर्घवैताढ्य के नौ कूट हैं—
१. सिद्धायतन, २. ऐरवत, ३. खण्डकप्रपातगुहा, ४. माणिभद्र, ५ वैताढ्य ६. पूर्णभद्र, ७. तमिस्रगुहा, ८. ऐरवत, ९ वैश्रमण।

पास-पदं

५९. पासे णं अरहा पुरिसादाणिए वज्जरिसहणारायसंघयणे समचउरंस-संठाण-संठिते णव रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था।

पार्श्व-पदम्

पार्श्व अर्हन् पुरुषादानीयः वज्रर्षभनाराचसंहनन: समचतुरस्र-संस्थान-संस्थितः नव रत्नीः ऊर्ध्वं उच्चत्वेन अभवत्।

पार्श्व-पद

५९. वज्रऋषभनाराचसंहनन वाले तथा समचतुरस्र संस्थान वाले पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व की ऊंचाई नौ रत्नि की थी।

तित्थगरणामणिव्वत्तण-पदं

६०. समणस्स णं भगवतो महावीरस्स तित्थंसि णवहिं जीवेहिं तित्थगरणामगोत्ते कम्मे णिव्वत्तिते, तं जहा—
सेणिएणं, सुपासेणं, उदाइणा, पोट्टिलेणं अणगारेणं, दढाउणा, संखेणं, सतएणं, सुलसाए सावियाए, रेवतीए।

तीर्थकरनामनिर्वर्तन-पदम्

श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य तीर्थे नवभिः जीवैः तीर्थकरनामगोत्रं कर्म निर्वर्तितम्, तद्यथा—
श्रेणिकेन, सुपार्श्वेण, उदायिना, पोट्टिलेन अनगारेण, दृढायुषा, शङ्खेन, शतकेन, सुलसया श्राविकया, रेवत्या।

तीर्थंकरनामनिर्वर्तन-पद

६० श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ में नौ जीवों ने तीर्थंकर नामगोत्र कर्म अर्जित किया था[१८]—
१ श्रेणिक, २. सुपार्श्व, ३. उदायी, ४. पोट्टिल अनगार, ५. दृढायु, ६ श्रावक शंख, ७. श्रावक शतक, ८. श्राविका सुलसा, ९. श्राविका रेवती।

भावितित्थगर-पदं

६१. एस णं अज्जो, १. कण्हे वासुदेवे, २ रामे बलदेवे, ३ उदए पेढालपुत्ते, ४. पुट्टिले, ५ सतए गाहावती, ६ दारुए णियंठे, ७ सच्चई णियंठीपुत्ते,
८. सावियबुद्धे अंब[म्म ?]डे परिव्वायए,
९. अज्जावि णं सुपासा पासावच्चिज्जा।

भावितीर्थकर-पदम्

एष आर्य! १ कृष्णः वासुदेवः, २. रामो बलदेवः, ३ उदकः पेढालपुत्रः, ४ पोट्टिलः, ५ शतकः गाहापतिः, ६ दारुकः निर्ग्रन्थः, ७. सत्यकिः निर्ग्रन्थीपुत्रः,
८. श्राविकाबुद्धः अम्ब(म्म ?)डः परिव्राजकः,
९. आर्याअपि सुपार्श्वा पार्श्वापत्यीया।

भावितीर्थंकर-पद

६१ आर्यो![१९]
१. वासुदेव कृष्ण, २. बलदेव राम, ३. उदकपेढालपुत्र, ४. पोट्टिल, ५. गृहपति शतक, ६. निर्ग्रन्थ दारुक, ७. निर्ग्रन्थीपुत्र सत्यकी,
८. श्राविका के द्वारा प्रतिबुद्ध अम्मड परिव्राजक,
९. पार्श्वनाथ की परम्परा में दीक्षित आर्या सुपार्श्वा।

आगमेस्साए उस्सप्पिणीए चाउज्जामं धम्मं पण्णवइत्ता सिज्झिहिति °बुज्झिहिति मुच्चिहिति परिणिव्वाइहिति सव्वदुक्खाणं° अंतं काहिति ।

आगमिष्यत्यां उत्सर्पिण्यां चातुर्यामं धर्मं प्रज्ञाप्य सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वाष्यन्ति सर्वदुःखानां अन्तं करिष्यन्ति ।

—ये नौ आगामी उत्सर्पिणी मे चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत तथा समस्त दुःखो से रहित होगे ।

महापउम-पदं

महापद्म-पदम्

महापद्म-पद

६२. एस णं अज्जो ! सेणिए राया भिंभिसारे कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए सीमंतए णरए चउरासीतिवाससहस्सट्ठितीयंसि णिरयंसि णेरइयत्ताए उववज्जिहिति ।

एष आर्य ! श्रेणिकः राजा भिंभिसारः कालमासे कालं कृत्वा अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः, सीमन्तके नरके चतुरशीतिवर्षसहस्रस्थितिके निरये नैरयिकता उपपत्स्यते ।

६२. आर्यो !
राजा भिम्भिसार श्रेणिक मरणकाल में मृत्यु को प्राप्तकर इसी रत्नप्रभा पृथ्वी के सीमन्तक नरक के ८४ हजार वर्ष की स्थिति वाले भाग मे नारकीय के रूप मे उत्पन्न होगा ।

से णं तत्थ णेरइए भविस्सति—काले कालोभासे °गंभीरलोमहरिसे भीमे उत्तासणए° परमकिण्हे वण्णेणं । से णं तत्थ वेयणं वेदिहिती उज्जलं °तिउलं पगाढं कडुयं कक्कसं चंडं दुक्खं दुग्गं दिव्वं° दुरहियासं ।

स तत्र नैरयिको भविष्यति—कालः कालावभासः गम्भीरलोमहर्षः भीमः उत्त्रासनकः परमकृष्णः वर्णेन । स तत्र वेदनां वेदयिष्यति उज्ज्वलां त्रितुलां प्रगाढां कटुकां कर्कशां चण्डां दुःखां दुर्गां दिव्यां दुरधिसहाम् ।

वह वहां नैरयिक होगा । उसका वर्ण काला, काली आभा वाला, महान् लोमहर्षक, विकराल, उद्वेगजनक और परमकृष्ण होगा । वह वहां ज्वलन्त, मन, वचन और काय—तीनों की कसौटी करने वाली, अत्यन्त तीव्र, प्रगाढ, कटुक, कर्कश, चण्ड, दुःखकर, दुर्ग की भांति अलघ्य, देव-निर्मित, असह्य वेदना का वेदन करेगा ।

से णं ततो णरयाओ उव्वट्टेत्ता आगमेसाए उस्सप्पिणीए इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वेयड्ढगिरिपायमूले पुंडेसु जणवएसु सतदुवारे णगरे संमुइस्स कुलकरस्स भद्दाए भारियाए कुच्छिंसि पुमत्ताए पच्चायाहिती ।

स ततः नरकात् उद्वर्त्य आगमिष्यन्त्यां उत्सर्पिण्यां इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे वैताढ्यगिरिपादमूले पुण्ड्रेषु जनपदेषु शतद्वारे नगरे सन्मतेः कुलकरस्य भद्रायाः भार्यायाः कुक्षौ पुंस्तया प्रत्याजनिष्यते ।

वह उस नरक से निकलकर आगामी उत्सर्पिणी काल मे इसी जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र के वैताढ्य पर्वत के पादमूल में 'पुण्ड्र[20]' जनपद के शतद्वार नगर में 'सन्मति' कुलकर की भद्रा नामक भार्या की कुक्षि में पुरुष के रूप मे उत्पन्न होगा ।

तए णं सा भद्दा भारिया णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीतिक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरं लक्खण-वंजण-°गुणोववेयं माणुम्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंग-सुंदरंगं ससिसोमाकारं कंतं पियदंसणं° सुरूवं दारगं पयाहिती ।

तदा सा भद्रा भार्या नवानां मासानां बहुप्रतिपूर्णानां अर्धाष्टमानां च रात्रिदिवानां व्यतिक्रान्तानां सुकुमालपाणिपादं अहीन-प्रतिपूर्ण-पञ्चेन्द्रियशरीरं लक्षण-व्यञ्जन-गुणोपेतं मानोन्मान-प्रमाण-प्रतिपूर्ण-सुजात-सर्वाङ्ग-सुन्दराङ्गं शशिसौम्याकारं कान्तं प्रियदर्शनं सुरूपं दारकं प्रजनिष्यते ।

वह भद्रा भार्या परिपूर्ण नौ मास तथा साढे सात दिन-रात बीत जाने पर सुकुमार हाथ-पैर वाले, अहीन प्रतिपूर्ण पञ्चेन्द्रिय शरीर वाले, लक्षण-व्यञ्जन[21] और गुणो से युक्त अवयव वाले, मान[22]-उन्मान[23]-प्रमाण[24] आदि से सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर वाले, चन्द्रमा की भांति सौम्याकार, कमनीय, प्रियदर्शन वाले सुरूप पुत्र का प्रसव करेगी ।

जं रयणिं च णं से दारए पयाहिती, तं रयणिं च णं सतदुवारे णगरे सब्भंतरबाहिरए भारग्गसो य कुंभग्गसो य पउमवासे य रयणवासे य वासे वासिहिति।

यस्यां रजन्या च सदारकः प्रजनिष्यते, तस्या रजन्या च शतद्वारे नगरे साभ्यन्तरबाह्यके भाराग्रशश्च कुम्भाग्रशश्च पद्मवर्षश्च रत्नवर्षश्च वर्षं वर्षिष्यति।

जिस रात्रि में वह बालक का प्रसव करेगी, उस रात को सारे शतद्वार नगर में भार और कुम्भ के प्रमाणवाले पद्म और रत्नों की वर्षा होगी।

तए णं तस्स दारयस्स अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे वीइक्कंते °णिवत्ते असुइजायकम्मकरणे संपत्ते° बारसाहे अयमेयारूवं गोण्णं गुणणिप्फण्णं णामधिज्जं काहिंति, जम्हा णं अम्हमिमंसि दारगंसि जातंसि समाणंसि सयदुवारे णगरे सब्भिंतरबाहिरए भारग्गसो य कुंभग्गसो य पउमवासे य रयणवासे य वासे वुट्ठे, तं होउ णमम्हमिमस्स दारगस्स णामधिज्जं महापउमे-महापउमे। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामधिज्जं काहिंति महापउमेत्ति।

तदा तस्य दारकस्य मातापितरौ एकादशे दिवसे व्यतिक्रान्ते निवृत्ते अशुचिजातकर्मकरणे सम्प्राप्ते द्वादशाहे इदं एतद्रूपं गौणं गुणनिष्पन्नं नामधेयं करिष्यतः, यस्मात् अस्माकं अस्मिन् दारके जाते सति शतद्वारे नगरे साभ्यन्तरबाह्यके भाराग्रशश्च कुम्भाग्रशश्च पद्मवर्षश्च रत्नवर्षश्च वर्षं वृष्टं, तत् भवतु आवयो अस्य दारकस्य नामधेयं महापद्म-महापद्म। तदा तस्य दारकस्य मातापितरौ नामधेयं करिष्यतः महापद्म इति।

ग्यारह दिन बीत जाने पर, उस बालक के माता-पिता प्रसव जनित अशुचि कर्म से निवृत्त हो बारहवें दिन उसका यथार्थ गुणनिष्पन्न नामकरण करेंगे। उस बालक के उत्पन्न होने पर समस्त शतद्वार नगर के भीतर-बाहर, भार[१५] और कुम्भ[१६] के प्रमाणवाले पद्म और रत्नों की वर्षा हुई थी, अतः हमारे बालक का नाम महापद्म होना चाहिए। यह पर्यालोचन कर उस बालक के माता-पिता उसका नाम महापद्म रखेंगे।

तए णं महापउमं दारगं अम्मापितरो सातिरेगं अट्ठवासजातगं जाणित्ता महता-महता रायाभिसेएणं अभिसिंचिहिति।

से णं तत्थ राया भविस्सति महताहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे रायवण्णओ जाव रज्जं पसासेमाणे विहरिस्सति।

तदा महापद्मं दारकं मातापितरौ सातिरेकं अष्टवर्षजातकं ज्ञात्वा महता-महता राज्याभिषेकेन अभिषेक्ष्यतः।

स तत्र राजा भविष्यति महता-हिमवत्-महा-मलय-मन्दर-महेन्द्रसारः राज्यवर्णकः यावत् राज्यं प्रशासयन् विहरिष्यति।

बालक महापद्म को आठ वर्ष से कुछ अधिक आयु वाला जानकर उसके माता-पिता उसे महान् राज्याभिषेक के द्वारा अभिषिक्त करेंगे। वह महान् हिमालय, महान् मलय, मेरु और महेन्द्र की भांति सर्वोच्च राजा होगा।

तए णं तस्स महापउमस्स रण्णो अण्णदा कयाइ दो देवा महिड्ढिया °महज्जुइया महाणुभागा महायसा महाबला° महासोक्खा सेणाकम्मं काहिंति, तं जहा—
पुण्णभद्दे य, माणिभद्दे य।

तदा तस्य महापद्मस्य राज्ञः अन्यदा कदाचिद् द्वौ देवौ महर्द्धिकौ महाद्युतिकौ महानुभागौ महायशसौ महाबलौ महासौख्यौ सेनाकर्म करिष्यतः, तद्यथा—
पूर्णभद्रश्च, माणिभद्रश्च।

अन्यदा कदाचित् महर्द्धिक, महाद्युति सम्पन्न, महानुभाग, महान् यशस्वी, महान् बली और महान् सुखी पूर्णभद्र[१७] और माणिभद्र[१८] नामक दो देव राजा महापद्म को सैनिक शिक्षा देंगे।

तए णं सतदुवारे णगरे बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावति-सत्थवाह-प्पभितयो अण्णमण्णं सद्दावेहिंति, एवं वइस्संति—जम्हा णं देवाणुप्पिया ! अम्हं महापउमस्स रण्णो दो देवा महिड्ढिया °महज्जुइया महाणुभागा महायसा महाबला° महासोक्खा सेणाकम्मं करेंति, तं जहा—

पुण्णभद्दे य, माणिभद्दे य।

तं होउ णं अम्हं देवाणुप्पिया ! महापउमस्स रण्णो दोच्चेवि णामधेज्जे देवसेणे-देवसेणे। तते णं तस्स महापउमस्स रण्णो दोच्चेवि णामधेज्जे भविस्सइ देवसेणेति।

तए णं तस्स देवसेणस्स रण्णो अण्णया कयाई सेय-संखतल-विमल-सण्णिकासे चउदंते हत्थिरयणे समुप्पज्जिहिति। तए णं से देवसेणे राया तं सेय संखतल-विमल-सण्णिकासं चउदंतं हत्थिरयणं दुरूढे समाणे सतदुवारं णगरं मज्झंमज्झेणं अभिक्खणं-अभिक्खणं अतिज्जाहिति य णिज्जाहिति य।

तए णं सतदुवारे णगरे बहवे राईसर-तलवर-°माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावति-सत्थवाह-प्पभितयो° अण्णमण्णं सद्दावेहिंति, एवं वइस्संति—जम्हा णं देवाणुप्पिया! अम्हं देवसेणस्स रण्णो सेते संखतल-विमल-सण्णिकासे चउदंते हत्थिरयणे समुप्पण्णे, तं होउ णमम्हं

तदा शतद्वारे नगरे बहवः राजेश्वर-तलवर-माडम्बिक-कौटुम्बिक-इभ्य-श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाह-प्रभृतयः अन्योन्य शब्दाययिष्यन्ति, एवं वदिष्यन्ति—यस्मात् देवानुप्रियाः ! अस्माक महापद्मस्य राज्ञः द्वौ देवौ महर्द्धिकौ महाद्युतिकौ महानुभागौ महायशसौ महाबलौ महासोख्यौ सेनाकर्म कुर्वतः, तद्यथा—

पूर्णभद्रश्च, माणिभद्रश्च।

तद् भवतु अस्माकं देवानुप्रिया ! महापद्मस्य राज्ञः द्वितीयमपि नामधेय देवसेनः-देवसेनः। तदा तस्य महापद्मस्य राज्ञः द्वितीयमपि नामधेयं भविष्यति देवसेनइति।

तदा तस्य देवसेनस्य राज्ञः अन्यदा कदाचित् श्वेत-शङ्खतल-विमल-सन्निकाश चतुर्दन्त हस्तिरत्न समुत्पत्स्यते। तदा स देवसेनः राजा त श्वेत शङ्खतल-विमल-सन्निकाशं चतुर्दन्त हस्तिरत्नं आरूढः सन् शतद्वारं नगरं मध्यमध्येन अभीक्ष्ण-अभीक्ष्णं अतियास्यति च निर्यास्यति च।

तदा शतद्वारे नगरे बहव राजेश्वर-तलवर-माडम्बिक-कौटुम्बिक-इभ्य-श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाह-प्रभृतयः अन्योन्य शब्दाययिष्यन्ति, एवं वदिष्यन्ति—यस्मात् देवानुप्रियाः ! अस्माकं देवसेनस्य राज्ञः श्वेतः शङ्खतल-विमल-सन्निकाशं चतुर्दन्तं हस्तिरत्नं समुत्पन्नम्, तद् भवतु अस्माक

तब उस शतद्वार नगर में अनेक राजा[1], ईश्वर[1], तलवर[1] माडम्बिक[1], कौटुम्बिक[1], इभ्य[1], श्रेष्ठि[1] सेनापति[1], सार्थवाह[1] आदि इस प्रकार एक दूसरे को सम्बोधित करेंगे और इस प्रकार कहेंगे—"देवानुप्रियो ! महर्द्धिक, महाद्युतिसपन्न, महानुभाग, महान् यशस्वी, महान् बली और महान् सुखी पूर्णभद्र और माणिभद्र नामक दो देव राजा महापद्म को सैनिक शिक्षा दे रहे हैं। इसलिए देवानुप्रियो ! हमारे महापद्म राजा का दूसरा नाम 'देवसेन' होना चाहिए।" तब से उस महापद्म राजा का दूसरा नाम 'देवसेन' होगा।

अन्यदा कदाचित् राजा देवसेन के विमल शंखतल के समान श्वेत चतुर्दन्त हस्तिरत्न उत्पन्न होगा। तब वे राजा देवसेन विमल शंखतल के समान श्वेत चतुर्दन्त हस्तिरत्न पर आरूढ होकर शतद्वार नगर के बीचोबीच होते हुए बार-बार प्रवेश और निष्क्रमण करेंगे। तब उस शतद्वार नगर मे अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि इस प्रकार एक-दूसरे को सम्बोधित करेंगे और इस प्रकार कहेंगे—"देवानुप्रियो ! हमारे राजा देवसेन के विमल शंखतल के समान श्वेत चतुर्दन्त हस्तिरत्न उत्पन्न हुआ है। अतः देवानुप्रियो ! हमारे राजा देवसेन का तीसरा नाम 'विमलवाहन' होना चाहिए।" तब से उस देवसेन राजा का तीसरा नाम 'विमलवाहन' होगा।

देवाणुप्पिया ! देवसेणस्स तच्चेवि णामधेज्जे विमलवाहणे-[विमलवाहणे ?] । तए णं तस्स देवसेणस्स रण्णो तच्चेवि णामधेज्जे भविस्सति विमलवाहणेति ।

देवानुप्रियाः ! देवसेनस्य तृतीयमपि नामधेय विमलवाहनः (विमलवाहनः ?)। तदा तस्य देवसेनस्य राज्ञः तृतीयमपि नामधेय भविष्यति विमलवाहनइति ।

तए णं से विमलवाहणे राया तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता अम्मापितीहिं देवत्तं गतेहिं गुरु-महत्तरएहिं अब्भणुण्णाते समाणे, उदुम्मि सरए, संबुद्धे अणुत्तरे मोक्खमग्गे पुणरवि लोगंतिएहिं जीयकप्पिएहिं देवेहिं, ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं उरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धण्णाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरिआहिं वग्गूहिं अभिणंदिज्जमाणे अभि-थुव्वमाणे य बहिया सुभूमिभागे उज्जाणे एगं देवदूसमादाय मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयाहिति ।

तदा स विमलवाहनः राजा त्रिंशत् वर्षाणि अगारवासमध्ये उषित्वा मातापित्रोः देवत्वं गतयोः गुरुमहत्तरकैः अभ्यनुज्ञातः सन्, ऋतौ शरदि, संबुद्धः अनुत्तरे मोक्षमार्गे पुनरपि लोकान्तिकैः जीतकल्पिकैः देवैः, ताभिः इष्टाभिः कान्ताभिः प्रियाभिः मनोज्ञाभिः मन-आपाभिः उदाराभिः कल्याणाभिः शिवाभिः धन्याभिः मङ्गलाभिः सश्रीकाभिः वाग्भिः अभिनन्द्यमानः अभिष्टूयमानश्च बाह्ये सुभूमिभागे उद्याने एकं देवदूष्यमादाय मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजिष्यति ।

राजा विमलवाहन तीस वर्ष तक गृहस्था-वास में रहेंगे। माता-पिता के स्वर्गस्थ होने पर वे अपने गुरुजनों और महत्तरों की आज्ञा प्राप्त करेंगे। वे शरद्‌ऋतु में जीतकल्पिक लोकान्तिक देवों द्वारा अनुत्तर मोक्षमार्ग के लिए संबुद्ध होंगे। वे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मन प्रिय, उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मंगल, 'श्री' सहित वाणी से अभिनन्दित और अभिष्टुत [संस्तुत] होते हुए नगर के बाहर 'सुभूमिभाग' नामक उद्यान में एक देव-दूष्य रखकर, मुण्ड होकर, अगार से अन-गार अवस्था में प्रव्रजित होंगे।

से णं भगवं जं चेव दिवसं मुंडे भवित्ता *अगाराओ अणगारियं पव्वयाहिति तं चेव दिवसं सयमेय-मेतारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हि-हिति—जे केइ उवसग्गा उप्पज्जिज-हिंति, त जहा—

स भगवान् यस्मिश्चैव दिवसे मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजिष्यति तस्मिश्चैव दिवसे स्वयमेव एतद्रूप अभिग्रह अभिग्रहिष्यति—ये केऽपि उप-सर्गा उत्पत्स्यन्ते, तद्यथा—

वे भगवान् जिस दिन मुण्ड होकर, अगार से अनगार अवस्था में प्रव्रजित होंगे, उसी दिन वे स्वयं निम्न प्रकार का अभिग्रह स्वीकार करेंगे—

दिव्वा वा माणुसा वा तिरिक्ख-जोणिया वा ते सव्वे सम्मं सहिस्सइ खमिस्सइ तितिक्खिस्सइ अहिया-सिस्सइ ।

दिव्या वा मानुषा वा तिर्यग्योनिका वा तान् सर्वान् सम्यक् सहिष्यते क्षमिष्यते तितिक्षिष्यति अध्यासिष्यते ।

देवता मनुष्य या तिर्यंच सम्बन्धी जो कोई उपसर्ग उत्पन्न होंगे, उन सबको मैं भली-भांति सहन करूंगा, अहीनभाव से सहन करूंगा, तितिक्षा करूंगा तथा अविचल भाव से सहन करूंगा।

तए णं से भगवं अणगारे भविस्सति इरियासमिते भासासमिते एवं जहा वद्धमाणसामी तं चेव णिरवसेसं जाव अव्वावारविउसजोग जुत्ते ।

तदा स भगवान् अनगारः भविष्यति— ईर्यासमितः भाषासमितः एवं यथा वर्ध-मानस्वामी तच्चैव निरवशेष यावत् अव्यापारव्युत्सृष्टयोगयुक्तः ।

वे भगवान् ईर्यासमित, भाषासमित [भगवान् वर्धमान की भांति सम्पूर्ण विषय वक्तव्य है, यावत्] वे अव्यापार तथा व्युत्सृष्ट योग से युक्त होंगे।

तस्स णं भगवंतस्स एतेणं विहारेणं विहरमाणस्स दुवालसहिं संवच्छरेहिं वीतिक्कंतेहिं तेरसहि य पक्खेहिं तेरसमस्स णं संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स अणुत्तरेणं णाणेणं जहा भावणाते केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जिहिति। जिणे भविस्सति केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी सणेरइय जाव पंच महव्वयाइं सभावणाइं छच्च जीवणिकाए धम्मं देसेमाणे विहरिस्सति।

तस्य भगवतः एतेन विहारेण विहरतः द्वादशैःसंवत्सरैः व्यतिक्रान्तैः त्रयोदशैश्च पक्षैः त्रयोदशस्य संवत्सरस्य अन्तरा वर्तमानस्य अनुत्तरेण ज्ञानेन यथा भावनायां केवलवरज्ञानदर्शनं समुत्पत्स्यते। जिनः भविष्यति केवली सर्वज्ञः सर्वदर्शी सनैरयिक यावत् पञ्चमहाव्रतानि सभावनानि षट् च जीवनिकायान् धर्मं दिशन् विहरिष्यति।

वे भगवान् इस विहार से विहरण करते हुए बारह वर्ष और तेरह पक्ष बीत जाने पर, तेरहवें वर्ष के अन्तराल में वर्तमान होंगे, उस समय उन्हें अनुत्तरज्ञान [भावना[14] अध्ययन की वक्तव्यता] के द्वारा केवलवरज्ञानदर्शन समुत्पन्न होगा। उस समय वे जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी होकर नैरयिक आदि लोकों के पर्यायों को जानेंगे-देखेंगे। ये भावना सहित पांच महाव्रतों, छह जीवनिकायों और धर्म की देशना देते हुए विहार करेंगे।

से जहाणामए अज्जो! मए समणाणं णिग्गंथाणं एगे आरंभठाणे, पण्णत्ते।
एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं एगं आरंभठाणं पण्णवेहिति।

अथ यथानामकं आर्य! मया श्रमणानां निर्ग्रन्थानां एक आरम्भस्थानं प्रज्ञप्तम्।
एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणानां निर्ग्रन्थानां एकं आरम्भस्थान प्रज्ञापयिष्यति।

आर्यो! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए एक आरम्भस्थान का निरूपण किया है, इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए एक आरम्भस्थान का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए अज्जो! मए समणाणं णिग्गंथाणं दुविहे बंधणे पण्णत्ते, तं जहा—
पेज्जबंधणे य, दोसबंधणे य।
एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं दुविहं बंधणं पण्णवेहिती, तं जहा—
पेज्जबंधणं च, दोसबंधणं च।

अथ यथानामकं आर्य! मया श्रमणानां निर्ग्रन्थानां द्विविधं बन्धन प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
प्रेयोबन्धनञ्च, दोषबन्धनञ्च।
एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणानां निर्ग्रन्थानां द्विविध बन्धनं प्रज्ञापयिष्यति, तद्यथा—
प्रेयोबन्धनञ्च, दोषबन्धनञ्च।

आर्यो! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के बन्धनों—प्रेयस्-बन्धन और द्वेष-बन्धन—का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के बन्धनों—प्रेयस्-बन्धन और द्वेष-बन्धन—का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए अज्जो! मए समणाणं णिग्गंथाणं तओ दंडा पण्णत्ता, तं जहा—
मणदंडे, वयदंडे, कायदंडे।
एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं तओ दंडे पण्णवेहिति, तं जहा—
मणोदंडं, वयदंडं, कायदंडं।

अथ यथानामक आर्य! मया श्रमणानां निर्ग्रन्थानां त्रय. दण्डाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
मनोदण्डः, वचोदण्डः, कायदण्डः।
एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणानां निर्ग्रन्थानां त्रीन् दण्डान् प्रज्ञापयिष्यति, तद्यथा—
मनोदण्डं, वचोदण्डं, कायदण्डम्।

आर्यो! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए तीन दण्डों—मनोदण्ड, वचनदण्ड, कायदण्ड—का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए तीन प्रकार के दण्डों—मनोदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड—का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए °अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तं जहा—
कोहकसाए, माणकसाए, मायाकसाए, लोभकसाए।
एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं चत्तारि कसाए पण्णवेहिति, तं जहा—
कोहकसायं, माणकसायं, मायाकसायं, लोभकसायं।

अथ यथानामक आर्य ! मया श्रमणानां निर्ग्रन्थानां चत्वार कषायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
क्रोधकषायः, मानकषायः, मायाकषायः, लोभकषाय ।
एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणानां निर्ग्रन्थाना चतुरः कषायान् प्रज्ञापयिष्यति, तद्यथा—
क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय, लोभकषाय ।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए चार कषायों—क्रोध कषाय, मान कषाय, माया कषाय और लोभ कषाय—का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए चार कषायों—क्रोध कषाय, मान कषाय, माया कषाय और लोभ कषाय—का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं पंच कामगुणा पण्णत्ता, तं जहा—
सद्दे, रूवे, गंधे, रसे, फासे।
एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं पंच कामगुणे पण्णवेहिति, तं जहा—
सद्दं, रूवं, गंधं, रसं, फासं।

अथ यथानामक आर्य ! मया श्रमणाना निर्ग्रन्थाना पञ्च कामगुणाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
शब्द, रूपं, गन्ध, रस, स्पर्श ।
एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणाना निर्ग्रन्थाना पञ्च कामगुणान् प्रज्ञापयिष्यति, तद्यथा—
शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्शम् ।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए पाच कामगुणों—शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श—का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए पाच कामगुणों—शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं छज्जीवणिकाया पण्णत्ता, तं जहा—
पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया।
एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं छज्जीवणिकाए पण्णवेहिति, तं जहा—
पुढविकाइए, आउकाइए, तेउकाइए, वाउकाइए, वणस्सइकाइए,° तसकाइए।

अथ यथानामक आर्य ! मया श्रमणाना निर्ग्रन्थाना षट् जीवनिकाया प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकाः, अप्कायिका, तेजस्कायिका, वायुकायिका, वनस्पतिकायिकाः, त्रसकायिका ।
एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणाना निर्ग्रन्थाना षट् जीवनिकायान् प्रज्ञापयिष्यति, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकान्, अप्कायिकान्, तेजस्कायिकान्, वायुकायिकान्, वनस्पतिकायिकान्, त्रसकायिकान् ।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए छह जीवनिकायों—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय—का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए छह जीवनिकायों—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय—का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए °अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—

अथ यथानामक आर्य ! मया श्रमणानां निर्ग्रन्थाना सप्त भयस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए सात भय-स्थानों—इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात्भय, वेदनाभय,

°इहलोगभए, परलोगभए, आदाणभए, अकम्हाभए, वेयणभए, मरणभए, असिलोगभए।° एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं सत्त भयट्ठाणे पण्णवेहिति, °तं जहा—
इहलोगभयं, परलोगभयं, आदाणभयं, अकम्हाभयं, वेयणभयं, मरणभयं, असिलोगभयं।°

इयलोकभयं, परलोकभयं, आदानभयं, अकस्मात्भयं, वेदनाभयं, मरणभयं, अश्लोकभयम्। एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणानां निर्ग्रन्थानां सप्त भयस्थानानि प्रज्ञापयिष्यति, तद्यथा—
इहलोकभयं, परलोकभयं, आदानभयं, अकस्मात्भय, वेदनाभयं, मरणभयं, अश्लोकभयम्।

मरणभय और अश्लोकभय—का निरूपण किया है, इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी सात भय-स्थानों—इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात्भय, वेदनाभय, मरणभय और अश्लोकभय—का निरूपण करेंगे।

एवं अट्ठ मयट्ठाणे, णव बंभचेरगुत्तीओ, दसविधे समणधम्मे, एवं जाव तेत्तीसमासातणाउत्ति।

एव अष्ट मदस्थानानि, नव ब्रह्मचर्यगुप्तयः, दशविधः श्रमणधर्मः, एवम् यावत् त्रयस्त्रिंशदाशातना इति।

आर्यो! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए आठ मदस्थानों, नौ ब्रह्मचर्यगुप्तियों, दश श्रमण-धर्मों यावत् तेतीस आशातनाओं का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए आठ मद-स्थानों, नौ ब्रह्मचर्यगुप्तियों, दश श्रमण-धर्मों यावत् तेतीस आशातनाओं का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए अज्जो! मए समणाणं णिग्गंथाणं णग्गभावे मुंडभावे अण्हाणए अदंतवणए अच्छत्तए अणुवाहणए भूमिसेज्जा फलगसेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोए बंभचेरवासे परघरपवेसे लद्धावलद्धवित्तीओ पण्णत्ताओ। एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं णग्गभावं °मुंडभावं अण्हाणयं अदंतवणयं अच्छत्तयं अणुवाहणयं भूमिसेज्जं फलगसेज्जं कट्ठसेज्जं केसलोयं बंभचेरवासं परघरपवेसं° लद्धावलद्धवित्ती पण्णवेहिती।

अथ यथानामक आर्य! मया श्रमणानां निर्ग्रन्थानां नग्नभावः मुण्डभावः अस्नानकं अदन्तधावनकं अछत्रकं अनुपानत्कं भूमिशय्या फलकशय्या काष्ठशय्या केशलोचः ब्रह्मचर्यवासः परगृहप्रवेशः लब्धापलब्धवृत्तयः प्रज्ञप्ताः। एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणानां निर्ग्रन्थानां नग्नभावं मुण्डभावं अस्नानकं अदन्तधावनकं अछत्रकं अनुपानत्कं भूमिशय्या फलकशय्या काष्ठशय्या केशलोचं ब्रह्मचर्यवासं परगृहप्रवेशं लब्धापलब्धवृत्तीः प्रज्ञापयिष्यति।

आर्यो! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए नग्नभाव, मुण्डभाव, स्नान का निषेध, दतौन का निषेध, छत्र का निषेध, जूतों का निषेध, भूमिशय्या, फलकशय्या, काठशय्या, केशलोच, ब्रह्मचर्यवास, परघर-प्रवेश और लब्धापलब्ध वृत्ति का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए नग्नभाव, मुण्ड-भाव, स्नान का निषेध, दतौन का निषेध, छत्र का निषेध, जूतों का निषेध, भूमि-शय्या, फलकशय्या[1], काष्ठशय्या[2], केश-लोच, ब्रह्मचर्यवास, परघरप्रवेश और लब्धापलब्धवृत्ति[3] का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए अज्जो! मए समणाणं णिग्गंथाणं आधाकम्मिएति वा उद्देसिएति वा मीसज्जाएति वा अज्झोयरएति वा पूतिए कीते पामिच्चे अच्छेज्जे अणिसट्ठे अभिहडेति वा कंतारभत्तेति वा

अथ यथानामक आर्य! मया श्रमणानां निर्ग्रन्थानां आधार्मिकमिति वा औद्देशिकमिति वा मिश्रजातमिति वा अध्यवतरकमिति वा पूतिकं क्रीतं प्रामित्यं आच्छेद्यं अनिसृष्टं अभिहृतमिति वा कान्तारभक्तमिति वा

आर्यो! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए आधाकर्मिक[4], औद्देशिक[5], मिश्रजात[6] अध्यवतर[7], पूतिकर्म[8], क्रीत[9], प्रामित्य[10] आच्छेद्य[11], अनिसृष्ट[12], अभ्याहृत[13], कान्तारभक्त[14], दुर्भिक्षभक्त[15], ग्लान-भक्त[16], वार्दलिकाभक्त[17], प्राघूर्णभक्त[18],

दुब्भिक्खभत्तेति वा गिलाणभत्तेति वा वद्दलियाभत्तेति वा पाहुणभत्तेति वा मूलभोयणेति वा कंदभोयणेति वा फलभोयणेति वा बीयभोयणेति वा हरियभोयणेति वा पडिसिद्धे।

दुर्भिक्षभक्तमिति वा ग्लानभक्तमिति वा बार्दलिकाभक्तमिति वा प्राघूर्णभक्तमिति वा मूलभोजनमिति वा कन्दभोजनमिति वा फलभोजनमिति वा बीजभोजनमिति वा हरितभोजनमिति वा प्रतिषिद्धम्।

मूलभोजन, कन्दभोजन, फलभोजन, बीजभोजन और हरितभोजन का निषेध किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए आधाकर्मिक, औद्देशिक, मिश्रजात, अध्यवतर, पूतिकर्म, क्रीत, प्रामित्य, आच्छेद्य, अनिसृष्ट, अभ्याहृत, कान्तारभक्त, दुर्भिक्षभक्त, ग्लानभक्त, बार्दलिकाभक्त, प्राघूर्णभक्त, मूलभोजन, कन्दभोजन, फलभोजन, बीजभोजन और हरितभोजन, का निषेध करेंगे।

एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं आधाकम्मियं वा °उद्देसियं वा मीसज्जाय वा अज्झोयरयं वा पूतियं कीतं पामिच्चं अच्छेज्जं अणिसट्ठं अभिहडं वा कंतारभत्तं वा दुब्भिक्खभत्तं वा गिलाणभत्तं वा वद्दलियाभत्तं वा पाहुणभत्तं वा मूलभोयणं वा कंदभोयणं वा फलभोयणं वा बीयभोयणं वा° हरितभोयणं वा पडिसेहिस्सति।

एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणानां निर्ग्रन्थानां आधार्कमिक वा औद्देशिक वा मिश्रजातं वा अध्यवतरकं वा पूतिक क्रीत प्रामित्यं आच्छेद्य अनिसृष्ट अभिहृतं वा कान्तारभक्त वा दुर्भिक्षभक्त वा ग्लानभक्त वा बार्दलिकाभक्त वा प्राघूर्णभक्त वा मूलभोजन वा कदभोजन वा फलभोजनं वा बीजभोजन वा हरितभोजन वा प्रतिषेत्स्यति।

से जहाणामए अज्जो! मए समणाणं णिग्गंथाणं पंचमहव्वतिए सपडिक्कमणे अचेलए धम्मे पण्णत्ते। एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं पंचमहव्वतियं °सपडिक्कमणं° अचेलगं धम्मं पण्णवेहिती।

अथ यथानामक आर्य! मया श्रमणाना निर्ग्रन्थाना पञ्चमहाव्रतिक. सप्रतिक्रमण: अचेलक: धर्म: प्रज्ञप्त:। एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणाना निर्ग्रन्थानां पञ्चमहाव्रतिक सप्रतिक्रमण अचेलक धर्म प्रज्ञापयिष्यति।

आर्यो! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए प्रतिक्रमण और अचेलतायुक्त पांच महाव्रतात्मक धर्म का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए प्रतिक्रमण और अचेलतायुक्त पांच महाव्रतात्मक धर्म का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए अज्जो! मए समणोवासगाणं पंचाणुव्वतिए सत्तसिक्खावतिए-दुवालसविधे सावगधम्मे पण्णत्ते। एवामेव महापउमेवि अरहा समणोवासगाणं पंचाणुव्वतियं °सत्तसिक्खावतियं-दुवालसविधं° सावगधम्मं पण्णवेस्सति।

अथ यथानामकं आर्य! मया श्रमणोपासकाना पञ्चाणुव्रतिक: सप्तशिक्षाव्रतिक:—द्वादशविध: श्रावकधर्म: प्रज्ञप्त:। एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणोपासकानां पञ्चाणुव्रतिक सप्तशिक्षाव्रतिक द्वादशविधं श्रावकधर्मं प्रज्ञापयिष्यति।

आर्यो! मैंने पांच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत—इस बारह प्रकार के श्रावक-धर्म का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी पांच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत—इस बारह प्रकार के श्रावक-धर्म का निरूपण करेंगे।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं सेज्जातरपिंडेति वा रायपिंडेति वा पडिसिद्धे। एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं सेज्जातरपिंडं वा रायपिंडं वा पडिसेहिस्सति।

अथ यथानामकं आर्य ! मया श्रमणानां निर्ग्रन्थानां शय्यातरपिण्डमिति वा राजपिण्डमिति वा प्रतिषिद्धम्। एवमेव महापद्मोऽपि अर्हन् श्रमणानां निर्ग्रन्थानां शय्यातरपिण्डं वा राजपिण्डं वा प्रतिषेत्स्यति।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए शय्यातरपिण्ड[४७] और राजपिण्ड[४८] का निषेध किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए शय्यातर-पिण्ड और राजपिण्ड का निषेध करेंगे।

से जहाणामए अज्जो ! मम णव गणा एगारस गणधरा। एवामेव महापउमस्सवि अरहतो णव गणा एगारस गणधरा भविस्संति।

अथ यथानामकं आर्य ! मम नव गणाः एकादश गणधराः। एवमेव महापद्मस्यापि अर्हतः नव गणाः एकादश गणधराः भविष्यन्ति।

आर्यो ! मेरे नौ गण और ग्यारह गणधर हैं। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म के भी नौ गण और ग्यारह गणधर होंगे।

से जहाणामए अज्जो ! अहं तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता °अगाराओ अणगारियं° पव्वइए, दुवालस संवच्छराइं तेरस पक्खा छउमत्थ-परियागं पाउणित्ता तेरसहिं पक्खेहिं ऊणगाइं तीसं वासाइं केवलि-परियागं पाउणित्ता, बायालीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, बावत्तरिवासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिज्झिस्सं °बुज्झिस्सं मुच्चिस्सं परिणिव्वाइस्सं° सव्वदुक्खाणमंतं करेस्सं।

अथ यथानामक आर्य ! अहं त्रिंशत् वर्षाणि अगारवासमध्ये उषित्वा मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः, द्वादश संवत्सराणि त्रयोदश पक्षान् छद्मस्थपर्यायं प्राप्य त्रयोदशैः पक्षैः ऊनकानि त्रिंशद् वर्षाणि केवलिपर्यायं प्राप्य, द्वाचत्वारिंशद् वर्षाणि श्रामण्य-पर्यायं प्राप्य, द्विसप्ततिवर्षाणि सर्वायुः पालयित्वा असिधं अबोधिषं अमुच परिनिरवासिषं सर्वदुःखानां अन्तमकार्षम्,

आर्यो ! मैं तीस वर्ष तक गृहस्थावस्था में रहकर, मुण्ड होकर, अगार से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुआ। मैंने बारह वर्ष और तेरह पक्ष तक छद्मस्थ-पर्याय का पालन किया, तीस वर्षों में तेरह पक्ष कम काल तक केवली-पर्याय का पालन किया— इस प्रकार बयालीस वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर, बहत्तर वर्ष की पूर्णायु पालकर मैं सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परि-निर्वृत होऊंगा तथा समस्त दुःखों का अंत करूंगा। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी तीस वर्ष तक गृहस्थावस्था में रहकर, मुण्ड होकर, अगार से अनगार अवस्था में प्रव्रजित होंगे। वे बारह वर्ष और तेरह पक्ष तक छद्मस्थ-पर्याय का पालन करेंगे, तीस वर्षों में तेरह पक्ष कम काल तक केवली-पर्याय का पालन करेंगे—इस प्रकार बयालीस वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर, बहत्तर वर्ष की पूर्णायु पालकर वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त होंगे तथा समस्त दुःखों का अन्त करेंगे।

एवामेव महापउमेवि अरहा तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता °मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वाहिती, दुवालस संवच्छराइं °तेरसपक्खा छउमत्थ-परियागं पाउणित्ता, तेरसहिं पक्खेहिं ऊणगाइं तीसं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता, बायालीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता,° बावत्तरिवासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिज्झिहिती °बुज्झिहिती मुच्चिहिती परि-णिव्वाइहिती° सव्वदुक्खाणमंतं काहिती—

एवमेव महापद्मोपि अर्हन् त्रिंशद् वर्षाणि अगारवासमध्ये उषित्वा मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारिता प्रव्रजिष्यति, द्वादश सवत्सराणि त्रयोदशपक्षान् छद्मस्थपर्याय प्राप्य, त्रयोदशैः पक्षैः ऊनकानि त्रिंशद् वर्षाणि केवलिपर्यायं प्राप्य, द्वाचत्वारिंशद् वर्षाणि श्रामण्य-पर्याय प्राप्य, द्विसप्ततिवर्षाणि सर्वायुः पालयित्वा सेत्स्यति भोत्स्यते मोक्ष्यति परिनिर्वास्यति सर्वदुःखानां अन्तं करिष्यति—

संगहणी-गाहा

१. जस्सील-समायारो,
अरहा तित्थंकरो महावीरो ।
तस्सील-समायारो,
होति उ अरहा महापउमो ॥

संग्रहणी-गाथा

१. यच्छील-समाचारः,
अर्हन् तीर्थकरो महावीरः ।
तच्छील-समाचारो,
भविष्यति तु अर्हन् महापद्म ॥

णक्खत्त-पदं

६३. णव णक्खत्ता चंदस्स पच्छंभागा पण्णत्ता, तं जहा—

नक्षत्र-पदम्

नव नक्षत्राणि चन्द्रस्य पश्चाद्भागानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

नक्षत्र-पद

६३ नौ नक्षत्र चन्द्रमा के पृष्ठभाग में होते हैं[११] चन्द्रमा उनका पृष्ठभाग से भोग करता है]—

संगहणी-गाहा

१. अभिई समणो धणिट्ठा,
रेवती अस्सिणि मग्गसिर पूसो ।
हत्थो चित्ता य तहा,
पच्छंभागा णव हवंति ॥

संग्रहणी-गाथा

१. अभिजित् श्रवणः धनिष्ठा,
रेवति अश्विनी मृगशिराः पुष्यः ।
हस्तः चित्रा च तथा,
पश्चाद्भागानि नव भवन्ति ॥

१. अभिजित, २ श्रवण, ३. धनिष्ठा, ४ रेवति, ५ अश्विनी, ६ मृगशिर, ७ पुष्य, ८. हस्त, ९. चित्रा।

विमाण-पदं

६४. आणत-पाणत-आरणच्चुतेसु कप्पेसु विमाणा णव जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

विमान-पदम्

आनत-प्राणत-आरणाच्युतेषु कल्पेषु विमानानि नव योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि ।

विमान-पद

६४ आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों मे विमान नौ सौ योजन ऊंचे है ।

कुलगर-पदं

६५. विमलवाहणे णं कुलकरे णव धणुसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था।

कुलकर-पदम्

विमलवाहन कुलकर नव धनुशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन अभवत् ।

कुलकर-पद

६५ कुलकर विमलवाहन नौ सौ धनुष्य ऊंचे थे।

तित्थगर-पदं

६६. उसभेणं अरहा कोसलिएणं इमीसे ओसप्पिणीए णवहिं सागरोवम-कोडाकोडीहिं वीइक्कंताहिं तित्थे पवत्तिते।

तीर्थकर-पदम्

ऋषभेण अर्हता कौशलिकेन अस्यां अवसर्प्पिण्यां नवभिः सागरोपमकोटि-कोटिभिः व्यतिक्रान्ताभिः तीर्थं प्रवर्तितं ।

तीर्थंकर-पद

६६. कौशलिक अर्हन् ऋषभ ने इसी अवसर्पिणी के नौ कोटि-कोटि सागरोपम काल व्यतीत होने पर तीर्थ का प्रवर्तन किया था।

दीव-पदं

६७. घणदंत-लट्ठदंत-गूढदंत-सुद्धदंत-दीवा णं दीवा णव-णव जोयण-सताइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता।

द्वीप-पदम्

घनदन्त-लष्टदन्त-गूढदन्त-सुद्धदन्त-द्वीपाः द्वीपाः नव-नव योजनशतानि आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः ।

द्वीप-पद

६७. घनदन्त, लष्टदन्त, गूढदन्त, शुद्धदन्त— ये द्वीप नौ-सौ, नौ सौ योजन लम्बे-चौड़े हैं।

महग्गह-पदं

६८. सुक्कस्स णं महागहस्स णव वीहीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
हयवीही, गयवीही, णागवीही, वसहवीही, गोवीही, उरगवीही, अयवीही, मियवीही, वेसाणरवीही।

महाग्रह-पदम्

शुक्रस्य महाग्रहस्य नव वीथयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
हयवीथिः, गजवीथिः, नागविथिः, वृषभवीथिः, गोवीथिः, उरगवीथिः, अजवीथिः, मृगवीथिः, वैश्वानरवीथिः।

महाग्रह-पद

६८. महाग्रह शुक्र के नौ वीथिया है"—
१. हयवीथि, २. गजवीथि, ३. नागवीथि, ४. वृषभवीथि, ५. गोवीथि, ६. उरगवीथि, ७. अजवीथि, ८. मृगवीथि, ९. वैश्वानरवीथि।

कम्म-पदं

६९. णवविधे णोकसायवेयणिज्जे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा—
इत्थिवेए, पुरिसवेए, णपुंसगवेए, हासे, रती, अरती, भये, सोगे, दुगुंछा।

कर्म-पदम्

नवविध नोकषायवेदनीयं कर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
स्त्रीवेदः, पुरुषवेदः नपुंसकवेदः, हास्यं, रतिः, अरतिः, भयं, शोकः, जुगुप्सा।

कर्म-पद

६९. नोकषायवेदनीय कर्म नौ प्रकार का है"—
१. स्त्रीवेद, २. पुरुषवेद, ३. नपुंसकवेद, ४ हास्य, ५ रति, ६. अरति, ७ भय, ८. शोक, ९. जुगुप्सा।

कुलकोडि-पदं

७०. चउरिंदियाणं णव जाइ-कुलकोडि-जोणिपमुह-सयसहस्सा पण्णत्ता।
७१ भुयगपरिसप्प-थलयर-पंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं णव जाइ-कुलकोडि-जोणिपमुह-सयसहस्सा पण्णत्ता।

कुलकोटि-पदम्

चतुरिन्द्रियाणां नव जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख-शतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।
भुजगपरिसर्प-स्थलचर-पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकानां नव जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख-शतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

कुलकोटि-पद

७० चतुरिन्द्रिय जाति के योनि-प्रवाह मे होने वाली कुलकोटिया नौ लाख है।
७१ पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्थलचर भुजग-परिसर्प के योनिप्रवाह मे होने वाली कुल-कोटिया नौ लाख है।

पावकम्म-पदं

७२. जीवा णवट्ठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—
पुढविकाइयणिव्वत्तिते,
*आउकाइयणिव्वत्तिते,
तेउकाइयणिव्वत्तिते,
वाउकाइयणिव्वत्तिते,
वणस्सइकाइयणिव्वत्तिते,
बेइंदियणिव्वत्तिते,
तेइंदियणिव्वत्तिते,

पापकर्म-पदम्

जीवाः नवस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषुः वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकनिर्वर्तितान्,
अप्कायिकनिर्वर्तितान्,
तेजस्कायिकनिर्वर्तितान्,
वायुकायिकनिर्वर्तितान्,
वनस्पतिकायिकनिर्वर्तितान्,
द्वीन्द्रियनिर्वर्तितान्,
त्रीन्द्रियनिर्वर्तितान्,

पापकर्म-पद

७२. जीवों ने नौ स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्म के रूप मे चय किया है, करते है और करेंगे—
१. पृथ्वीकायिक निर्वर्तित पुद्गलों का,
२. अप्कायिक निर्वर्तित पुद्गलों का,
३ तेजस्कायिक निर्वर्तित पुद्गलों का,
४. वायुकायिक निर्वर्तित पुद्गलों का,
५. वनस्पतिकायिक निर्वर्तित पुद्गलों का,
६ द्वीन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का,
७ त्रीन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का,

चउरिंदियणिव्वत्तिते,°
पंचिदियणिव्वत्तिते ।
एवं—चिण-उवचिण-°बंध
उदीर-वेद तह° णिज्जरा चेव ।

चतुरिन्द्रियनिर्वर्तितान्,
पञ्चेन्द्रियनिर्वर्तितान् ।
एवम्—चय-उपचय-बन्ध
उदीर-वेदाः तथा निर्जरा चैव ।

८. चतुरिन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का,
९. पञ्चेन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का ।
इसी प्रकार उनका उपचय, बन्धन, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे ।

पोग्गल-पदं

पुद्गल-पदम्

पुद्गल-पद

७३. णवपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता जाव णवगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ।

नवप्रदेशिकाः स्कन्धाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः यावत् नवगुणरूक्षाः पुद्गलाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः ।

७३. नवप्रदेशी स्कंध अनन्त हैं ।
नवप्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त हैं ।
नौ समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं ।
नौ गुण काले पुद्गल अनन्त हैं ।
इसी प्रकार शेष वर्ण तथा गंध, रस और स्पर्शों के नौ गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं ।

टिप्पणियाँ

स्थान–९

१ सांभोगिक··· विसांभोगिक (सू० १)

यहां संभोग का अर्थ है—सम्बन्ध। समवायाग सूत्र मे मुनियों के पारस्परिक सम्बन्ध बारह प्रकार के बतलाए गए है। जिनमें ये सम्बन्ध चालू होते हैं वे सांभोगिक और जिनके साथ इन सम्बन्धों का विच्छेद कर दिया जाता है वे विसांभोगिक कहलाते हैं। साधारण स्थिति मे सांभोगिक को विसाभोगिक नही किया जा सकता। विशेष स्थिति उत्पन्न होने पर ही ऐसा किया जा सकता है। प्रस्तुत सूत्र मे संभोग विच्छेद करने का एक ही कारण निर्दिष्ट है। वह है—प्रत्यनीकता—कर्त्तव्य से प्रतिकूल आचरण।

२. (सू० ३)

देखें—समवाओ ६।१ का टिप्पण।

३. (सू० १३)

प्रस्तुत सूत्र मे रोगोत्पत्ति के नौ कारण बतलाए है। उनमें से कुछएक की व्याख्या इस प्रकार है—

१. अच्चासणयाए—वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए है—१ अत्यासन से—निरन्तर बैठे रहने से। इससे मसे आदि रोग उत्पन्न होते है। २ अत्यशन से—अति भोजन करने से। इससे अजीर्ण हो जाने के कारण अनेक रोग उत्पन्न हो सकते है।

२ अहियासणयाए—वृत्तिकार ने इसके तीन अर्थ किए है—

१. अहितासन से—पाषाण आदि अहितकर आसन पर बैठने से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

२. अहित-अशन से—अहितकर भोजन करने से।

३. अध्यसन से—किए हुए भोजन के जीर्ण न होने पर पुनः भोजन करने से—'अजीर्णे भुज्यते यत्तु, तदध्यसनमुच्यते।'

३. इन्द्रियार्थ-विकोपन—इसका अर्थ है—कामविकार। कामविकार से उन्माद आदि रोग ही उत्पन्न नही होते किन्तु वह व्यक्ति को मृत्यु के द्वार तक भी पहुचा देता है। वृत्तिकार ने कामविकार के दस दोषों का क्रमशः उल्लेख किया है—

१. काम के प्रति अभिलाषा	६. प्रलाप
२. उसको प्राप्त करने की चिन्ता	७ उन्माद
३. उसका सतत स्मरण	८. व्याधि
४. उसका उत्कीर्त्तन	९. जड़ता, अकर्मण्यता
५. उद्वेग	१०. मृत्यु

ये दोष एक के बाद एक आते रहते हैं।[1]

४. (सू० १४)

तत्त्वार्थसूत्र ८।७ में भी दर्शनावरणीय कर्म की ये नौ उत्तर प्रकृतिया उल्लिखित है। प्रस्तुत सूत्र से उनका क्रम कुछ भिन्न है। वहा पहले चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल है और बाद मे निद्रापचक का उल्लेख है।

तत्त्वार्थसूत्र के श्वेताम्बरीय पाठ और भाष्य मे निद्रा आदि के पश्चात् 'वेदनीय' शब्द रखा गया है, जैसे —निद्रा-वेदनीय, निद्रानिद्रावेदनीय आदि।[2]

दिगम्बरीय पाठ में इन शब्दों के बाद 'वेदनीय' शब्द नही है। राजवार्तिक और सर्वार्थसिद्धि टीका में इनके बाद दर्शनावरण जोड़ने को कहा गया है।[3]

स्थानाग के वृत्तिकार अभयदेवसूरी ने निद्रापचक का जो अर्थ किया है वह मूल अनुवाद मे प्रदत्त है। उन्होने थीण-गिद्धी के दो संस्कृत रूपान्तर दिए हैं[4]—

१. स्त्यानर्द्धि २ स्त्यानगृद्धि।

बौद्ध साहित्य मे इसका रूप स्त्यानऋद्धि मिलता है।

तत्त्वार्थ वार्तिक के अनुसार निद्रापंचक का विवरण इस प्रकार है[5]—

१ निद्रा—मद, खेद और क्लम को दूर करने के लिए सोना निद्रा है। इसके उदय मे जीव तम अवस्था को प्राप्त होता है।

२ निद्रा-निद्रा—बार-बार निद्रा मे प्रवृत्त होना निद्रा-निद्रा है। इसके उदय से जीव महातम अवस्था को प्राप्त होता है।

३ प्रचला—जिस नीद से आत्मा मे विशेष रूप से प्रचलन उत्पन्न हो उसे प्रचला कहा जाता है। शोक, श्रम, मद आदि के कारण इसकी उत्पत्ति होती है। यह इन्द्रिय-व्यापार से उपरत होकर बैठे हुए व्यक्ति के शरीर और नेत्र आदि मे विकार उत्पन्न करती है। इसके उदय से जीव बैठे-बैठे ही खुर्राटे भरने लगता है। उसका शरीर और उसकी आखें विचलित होती है और वह व्यक्ति देखते हुए भी नही देख पाता।

४ प्रचला-प्रचला—प्रचला की बार-बार आवृत्ति से जब मन वासित हो जाता है, तब उसे प्रचला-प्रचला कहा जाता है। इसके उदय से जीव बैठे-बैठे ही अत्यन्त खुर्राटे लेने लगता है और बाण आदि के द्वारा शरीर के अवयव छिन्न हो जाने पर भी वह कुछ नही जान पाता।

५ स्त्यानगृद्धि इसका शाब्दिक अर्थ है स्वप्न मे विशेष शक्ति का आविर्भाव होना। इसकी प्राप्ति मे जीव सोते-सोते ही अनेक रौद्र कर्म तथा बहुविध क्रियाए कर डालता है।

गोम्मटसार के अनुसार निद्रापचक का विवरण इस प्रकार है[6]—

(१) 'स्त्यानगृद्धि' के उदय से जगाने के बाद भी जीव सोता रहता है। वह उस सुप्त अवस्था मे भी कार्य करता है, बोलता है।

(२) 'निद्रा-निद्रा' के उदय से जीव आखें नही खोल सकता।

(३) 'प्रचला-प्रचला' के उदय से लार गिरती है और अग कापते है।

(४) 'निद्रा' के उदय से चलता हुआ जीव ठहरता है, बैठता है, गिरता है।

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ४२३, ४२४।

२ तत्त्वार्थ सूत्र ८।७

३ तत्त्वार्थवार्तिक पृ० ५७२।

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ४२४।

५ तत्त्वार्थवार्तिक, पृष्ठ ५७२, ५७३।

६ गोम्मटसार, कर्मकाण्ड, गाथा २३-२५।

(५) 'प्रचला' के उदय से जीव के नेत्र कुछ खुले रहते हैं और वह सोते हुए भी थोड़ा-थोड़ा जागता है और बार-बार मंद-मंद सोता है।

५-७. (सू० १५-१८)

मिलाइए—समवाओ ९।५-७।

८. (सू० १८)

यद्यपि लवण समुद्र में पाच सौ योजन के मत्स्य होते है किन्तु नदी के मुहाने पर जगती के रध्र की उचितता से केवल नौ योजन के मत्स्य ही प्रवेश पा सकते है। अथवा जागतिक नियम ही ऐसा है कि इससे ज्यादा बड़े मत्स्य उसमें आते ही नही।[1] ये मत्स्य लवण समुद्र से जबूद्वीप की नदियों में आ जाते हैं।

मिलाइये—समवाओ ९।८।

९ महानिधि (सू० २२)

प्रस्तुत सूत्र मे नौ निधियो का उल्लेख है। निधि का अर्थ है—खजाना। वृत्तिकार का अभिमत है कि चक्रवर्त्ती के अपने राज्य के लिए उपयोगी सभी वस्तुओ की प्राप्ति इन नौ निधियों से होती है, इसीलिए इन्हे नव निधान के रूप मे गिनाया जाता है।[2] प्रचलित परम्परा के अनुसार ये निधिया देवकृत और देवाधिष्ठित मानी जाती है। परन्तु वास्तव मे ये सभी आकर ग्रन्थ है, जिनसे सभ्यता और सस्कृति तथा राज्य सचालन की अनेक विधियो का उद्भव हुआ है। इनमे तत् तत् विषयों का सर्वाङ्गीण ज्ञान भरा था, इसलिए इन्हें निधि के रूप मे माना गया। ये आकर ग्रन्थ अपने विषय की पूर्ण जानकारी देते थे। हम इन नौ निधियो को ज्ञान की विभिन्न शाखाओ में इस प्रकार बाट सकते है—

१ नैसर्प निधि—वास्तुशास्त्र।
२. पाडुक निधि—गणितशास्त्र तथा वनस्पतिशास्त्र।
३. पिंगल निधि—मडनशास्त्र।
४. सर्वरत्न निधि—लक्षणशास्त्र।
५ महापद्म निधि—वस्त्र-उत्पत्तिशास्त्र।
६ काल निधि—कालविज्ञान, शिल्पविज्ञान और कर्मविज्ञान का प्रतिपादक महाग्रन्थ।
७ महाकाल निधि—धातुवाद।
८. माणवक निधि—राजनीति व दडनीतिशास्त्र।
९. शख निधि—नाट्य व वाद्यशास्त्र।

१०. सौ प्रकार के शिल्प (सू० २२)

कालनिधि महाग्रन्थ मे सौ प्रकार के शिल्पो का वर्णन है। वृत्तिकार ने घट, लोह, चित्र, वस्त्र और नापित—इन पांचों को मूल शिल्प माना है और प्रत्येक के बीस-बीस भेद होते हैं, ऐसा लिखा है।[3] वे बीस-बीस भेद कौन-कौन से है, यह

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४२५ लवणसमद्रे यद्यपि पञ्चशतयोजनायामा मत्स्या भवन्ति तथापि नदीमुखेषु जगतीरन्ध्रौचित्येनैतावतामेव प्रवेश इति, लोकानुभावो वाऽयमिति।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४२६ चक्रवर्तिराज्योपयोगीनि द्रव्याणि सर्वाण्यपि नवसु निधिष्ववतरन्ति, नव निधानतया व्यवह्रियन्त इत्यर्थः।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४२६. शिल्पशत कालनिधो वर्तते, शिल्पशत च घटलोहचित्रवस्त्रशिल्पाना प्रत्येक विंशतिभेदत्वादिति।

इनके पाँच-पाँच विकृतिगत होते हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—
अन्वेषणीय है। सूत्रकार को सौ शिल्प कौन से गम्य थे, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता।

११. चार प्रकार के काव्य (सू० २२)

वृत्तिकार ने काव्य के चार-चार विकल्प प्रस्तुत किए हैं[1]—

१. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रतिपादक ग्रन्थ।

२. संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश या सकीर्ण भाषा [मिश्रित-भाषा] निबद्ध ग्रन्थ।

३. सम, विषम, अर्द्धसम या वृत्त मे निबद्ध ग्रन्थ।

४. गद्य, पद्य, गेय और वर्णपद भेद मे निबद्ध ग्रन्थ।

१२. विकृतियां (सू० २३)

विकृति का अर्थ है विकार। जो पदार्थ मानसिक विकार पैदा करते है उन्हें विकृति कहा गया है।[2] प्रस्तुत सूत्र में नौ विकृतियों का उल्लेख है।

प्रवचनसारोद्धार[3] मे दस विकृतियो का कथन है। उनमे अवगाहिम [पक्वान्न] विकृति का अतिरिक्त उल्लेख है। जो पदार्थ घी अथवा तेल में तला जाता है, उसे अवगाहिम कहते है। 'स्थानागवृत्ति में लिखा है कि पक्वान्न कदाचित् अविकृति भी होता है, इसलिए विकृतिया नौ निर्दिष्ट है। यदि पक्वान्न को विकृति माना जाए तो विकृतिया दस हो जाती है।'[4]

प्रवचनसारोद्धार के वृत्तिकार ने विकृति के विषय मे प्रचलित प्राचीन परपरा का उल्लेख करते हुए अनेक तथ्य उपस्थित किए हैं। अवगाहिम विकृति के विषय मे उन्होने विशेष जानकारी दी है। उनका कथन है कि घी अथवा तेल से भरी हुई कड़ाही मे एक, दो, तीन घाण निकाले जाते है तब तक वे सब पदार्थ अवगाहिम विकृति के अन्तर्गत आते हैं। यदि उसी घी या तेल मे चौथा घाण निकाला जाता है [चौथी बार उसी मे कोई चीज तली जाती है] तब वह निर्विकृति हो जाती है। ऐसे पदार्थ योगवहन करनेवाले मुनि भी ले सकते है। यदि चल्हे पर चढी हुई उसी कडाही मे बार-बार घी या तेल डाला जाता है तो चौथे घाण मे भी वह वस्तु निर्विकृतिक नही होती।

दूध मिश्रित चावल मे यदि चावलो पर चार अगुल दूध रहता है तो वह निर्विकृतिक माना जाता है। और यदि दूध पांच अंगुल से ज्यादा होता है तो विकृति माना जाता है। इसी प्रकार दही और तेल के विषय मे भी जानना चाहिए। गुड, घी, और तेल से बने पदार्थों में यदि वे एक अगुल ऊपर तक सटे हुए हो तो वे विकृति नही हैं। मधु और मांस के रस से बने हुए पदार्थों मे यदि वे रस मे आधे अगुल तक सटे हुए हो तो विकृति के अन्तर्गत नही आते। जिन पदार्थों में गुड, मांस, नवनीत आदि के आर्द्रामलक जितने छोटे-छोटे टुकड़े (शण वृक्ष के मुकुट जितने छोटे) मिश्रित हो, वे पदार्थ भी निर्विकृतिक माने जाते है। और जिनमे इनके बड़े-बड़े टुकडे मिश्रित हो वे विकृति मे गिने जाते है।

प्राचीन आगम व्याख्या साहित्य मे तीन शब्द प्रचलित है—विकृति, निर्विकृति और विकृतिगत। विकृति और निर्विकृति की बात हम ऊपर कह चुके है।

विकृतिगत का अर्थ है—दूसरे पदार्थों के मिश्रण से जिस विकृति की शक्ति नष्ट हो जाती है उसे विकृतिगत कहा जाता है। इसके तीस प्रकार हैं। दूध, दही, घी, तेल, गुड और अवगाहिम—इनके पाँच-पाँच विकृतिगत होते हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ४२० काव्यस्य चतुर्विधस्य धर्मार्थकाममोक्षलक्षणपुरुषार्थप्रतिबद्धग्रन्थस्य अथवा संस्कृतप्राकृतापभ्रंशसङ्कीर्णभाषानिबद्धस्य अथवा समविषमार्द्धसमवृत्तबद्धतया गद्यतया चेति अथवा गद्यपद्यगेयवर्णपदभेदबद्धस्येति।

२. प्रवचनसारोद्धारवृत्ति, पत्र ५३ विकृतयो—मनसो विकृतिहेतुत्वादिति।

३ प्रवचनसारोद्धार, गाथा २१७ :

दुद्ध दहि नवणीयं घयं तहा तेल्लमेव गुड मज्जं।
महु मंसं चेव तहा ओगाहिमगं च विगईओ॥

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ४२७ पक्वान्नं तु कदाचिदविकृतिरपि तेनेना नव, अन्यथा तु दशापि भवन्तीति।

दूध के पांच विकृतिगत—

१. दुग्धकांजिका—दूध की राब।

२ दुग्धाटी—मावा होना या दही अथवा छाछ के साथ दूध को पकाने से पकने वाला पदार्थ।

३. दुग्धावलेहिका—चावलों के आटे में पकाया हुआ दूध।

४. दुग्धसारिका— द्राक्षा डालकर पकाया हुआ दूध।

५ खीर

दही के पांच विकृतिगत।

१ घोलबड़े।

२. घोल—कपड़े से छना हुआ दही।

३. शिखरिणी—हाथ से मथकर चीनी डाला हुआ दही।

४. करंबक—दही युक्त चावल।

५. नमक युक्त दही का मट्ठा—इसमे सोगरी आदि न डालने पर भी वह विकृतिगत होता है, उनके डालने पर तो होता ही है।

घृत के पांच विकृतिगत—

१ औषधपक्व घृत।

२ घृतकिट्टिका—घृत का मैल।

३. घृत-पक्व—औषध के ऊपर तैरता हुआ घृत।

४. निर्भञ्जन—पक्वान्न से जला हुआ घृत।

५. विस्यंदन—दही की मलाई पर तैरते हुए घृत-बिन्दुओं से बना पदार्थ।

तेल के पांच विकृतिगत—

१. तैलमलिका।

२. तिलकुट्टि।

३. निर्भञ्जन—पक्वान्न से जला हुआ तैल।

४. तैल-पक्व—औषध के ऊपर तैरता हुआ तैल।

५. लाक्षा आदि द्रव्य में पकाया गया तैल।

गुड़ के पांच विकृतिगत—

१. आधा पका हुआ ईक्षु रस।

२. गुड़ का पानी।

३. शक्कर।

४. खांड।

५. पकाया हुआ गुड़।

अवगाहिम के पांच विकृतिगत—

१. तवे पर घी डालकर एक रोटी पका ली और पुनः दूसरी बार उसमें घी डाले बिना दूसरी रोटी पकाई जाए वह विकृतिगत है।

२. बिना नया घी और तेल डाले उसी कड़ाई मे तीन घाण निकल चुकने के पश्चात् चौथे घाण मे जो पदार्थ निष्पन्न होते हैं वे विकृतिगत हैं।

३. गुडधानिका आदि।

४ कढाही में निष्पन्न सुकुमारिका [मिष्टान्न] को निकालने के पश्चात् उसी कढाही मे घी या तेल लगा हुआ रह जाता है। उसमे पानी डालकर सिझाई हुई लपसी (लपनश्री) विकृतिगत है।

५. घी या तेल से संश्लिष्ट बर्तन मे पकाई हुई पूपिका।

वृत्तिकार का अभिमत है कि यद्यपि खीर आदि द्रव्य साक्षात् विकृतिया नही है, किन्तु विकृतिगत है। फिर भी ये विशेष पदार्थ हैं तथा ये भी मनोविकार पैदा करते है। जो निर्विकृतिक की साधना करते है उनके लिए ये कल्प्य है, परन्तु इनके सेवन से उनके कोई विशेष निर्जरा नही होती। अत निर्विकृतिक तप करनेवाले इनका सेवन नही करते।

जो व्यक्ति विविध तपस्याओं मे अपने आप को अत्यन्त क्षीण कर चुका है, वह यदि स्वाध्याय, अध्ययन आदि करने में असमर्थ हो तो वह इन विकृतिगत का आसेवन कर सकता है। उसके महान् कर्म-निर्जरा होती है।[1]

विकृति विषयक वह परपरा काफी प्राचीन प्रतीत होती है। प्रवचनसारोद्धार ग्यारहवी शताब्दी की रचना है, किन्तु यह परम्परा तत्कालीन नही है।

ग्रन्थकार ने इसका वर्णन आवश्यक चूर्णि (उत्तर भाग, पृष्ठ ३१९, ३२०) के आधार पर किया है।[2] इसकी रचना लगभग चार शताब्दी पूर्व की है। यह परंपरा उसमे भी प्राचीन रही है।

वर्तमान मे विकृति सबधी मान्यताओ मे बहुत परिवर्तन हो चुका है।

१३. पापश्रुतप्रसंग (सू० २७)

प्रस्तुत सूत्र मे नौ पापश्रुत प्रसगो का उल्लेख है। जो शास्त्र पापबन्ध का हेतु होता है, उसे पापश्रुत कहा जाता है। प्रसग का अर्थ है आसेवन[3] या उसका विस्तार।

समवायाग २९।१ मे उनतीस पापश्रुत प्रसगो का उल्लेख है। वहा मूल मे आठ पापश्रुत प्रसग माने है—भौम, उत्पात, स्वप्न, अन्तरिक्ष अग, स्वर, व्यजन और लक्षण। यह अष्टाग निमित्त है। इनके सूत्र, वृत्ति और वार्तिक के भेद से २४ प्रकार होते है। शेष पाच अन्य है। परन्तु प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित नौ नाम इनसे सर्वथा भिन्न है। ऐसे तो समवायाग मे उल्लिखित 'निमित्त' के अन्तर्गत ये सारे आ जाते है। फिर भी दोनो उल्लेखो मे बहुत बडा अन्तर है।

वृत्तिकार ने प्रसग का एक अर्थ विस्तार किया है और वहा सूत्र, वृत्ति और वार्तिक का सकेत दिया है।[4] यदि हम यहा प्रत्येक के ये तीन-तीन भेद करे तो [९ × ३] २७ भेद होते है।

वत्तिकार ने तद्-तद् पापश्रुत प्रसगो के ग्रन्थो का भी नामोल्लेख किया है[5]—

१ उत्पाद—राष्ट्रोत्पात आदि ग्रन्थ।

२ निमित्त—कूटपर्वत आदि ग्रन्थ।

३ मत्र—जीवोद्धरण गारुड आदि ग्रन्थ।

४ आवरण—वास्तुविद्या आदि ग्रन्थ।

५ अज्ञान—भारत, काव्य, नाटक आदि ग्रन्थ।

विस्तृत टिप्पण के लिए देखें—समवायाग, २९, टिप्पण १।

१४ नैपुणिक (सू० २८)

निपुण का अर्थ है—सूक्ष्मज्ञान। जो सूक्ष्मज्ञान के धनी है उन्हे नैपुणिक कहा जाता है। इसका दूसरा अर्थ है—अनुप्रवाद नामक नौवे पूर्व के इन्ही नामो के नौ अध्ययन।[6]—

---

१ प्रवचनसारोद्धारवृत्ति, पत्र ५५, ५६।

२ प्रवचनसारोद्धार, गाथा २३५

आवस्सय चुण्णीए परिभणिय एत्थ वण्णिय कहिय।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र, ४२८ प्रसङ्ग—तथासेवारूप।

४ वही, पत्र ४२८, प्रसङ्ग—विस्तरो वा—सूत्रवृत्तिवार्तिकरूप.

५ वही, पत्र ४२८।

६ वही, पत्र ४२८ निपुण—सूक्ष्मज्ञान······पुरुषा इत्यर्थ।·· अथवा अनुप्रवादाभिधानस्य······अध्ययनविशेषा एवेति।

१. संख्यान—गणितशास्त्र या गणितशास्त्र का सूक्ष्म ज्ञानी।

२. निमित्त—चूडामणि आदि निमित्त शास्त्रों का ज्ञाता।

३. कायिक—शरीर में रहे हुए इडा, पिंगला आदि प्राण-तत्त्वों का विशिष्ट ज्ञाता।

४. पौराणिक—बहुत वृद्ध होने के कारण बहुविध बातों का ज्ञान रखने वाला व्यक्ति अथवा पुराणशास्त्रों का विशिष्ट ज्ञानी।

५. पारिहस्तिक—प्रकृति से ही सभी कार्यों को उचित समय में दक्षता से करने वाला।

६. परपंडित—बहुत शास्त्रों को जानने वाला अथवा पंडित मित्रों के घने संपर्क में रहने वाला।

७. वादी—वाद करने की लब्धि से सम्पन्न अथवा मंत्रवादी, धातुवादी (रसायनशास्त्र को जानने वाला)।

८. भूतिकर्म—मंत्रित राख आदि देकर ज्वर आदि को दूर करने में निपुण।

९. चैकित्सिक—विविध रोगों की चिकित्सा में निपुण।[1]

१५. नौ गण (सू० २९)

यह विषय मूलतः कल्पसूत्र मे प्रतिपादित है। नौ की संख्या के अनुरोध से इसे आगमन-सकलन काल मे प्रस्तुत सूत्र में संकलित किया गया है।

एक सामाचारी का पालन करने वाले साधु-समुदय को गण कहा जाता है। प्रस्तुत सूत्र में नौ गणों का उल्लेख है—

१ गोदासगण—प्राचीन गोत्री आर्य भद्रबाहु स्थविर के चार शिष्य थे—गोदास, अग्निदत्त, यज्ञदत्त और सोमदत्त। गोदास काश्यपगोत्री थे। उन्होने गोदास गण की स्थापना की। इस गण से चार शाखाएं निकली—तामलिप्तिका, कोटिवर्षिका, पाडुवर्द्धनिका और दासीखर्वटिका।

२ उत्तरबलिस्सहगण—माठरगोत्री आर्य सभूतविजय के बारह शिष्य थे। उनमे आर्य स्थूलभद्र एक थे। इनके दो शिष्य हुए—आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती। आर्य महागिरि के आठ शिष्य हुए, उनमें स्थविर उत्तर और स्थविर बलिस्सह दो थे। दोनों के संयुक्त नाम से 'उत्तरबलिस्सह' नाम के गण की उत्पत्ति हुई।

३. उद्देहगण—आर्य सुहस्ती के बारह अंतेवासी थे। उनमे स्थविर रोहण भी एक थे। ये काश्यपगोत्री थे। इनसे 'उद्देहगण' की उत्पत्ति हुई।

४. चारणगण—स्थविर श्रीगुप्त भी आर्य सुहस्ती के शिष्य थे। ये हारित गोत्र के थे। इनसे चारणगण की उत्पत्ति हुई।

५. उडुपाटितगण—स्थविर जशभद्र आर्य सुहस्ती के शिष्य थे। ये भारद्वाजगोत्री थे। इनसे उडुपाटितगण की उत्पत्ति हुई।

६. वेशपाटितगण—स्थविर कामिड्ढी आर्य सुहस्ती के शिष्य थे। ये कुंडिलगोत्री थे। इनसे वेशपाटितगण की उत्पत्ति हुई।

७. कामर्द्धिकगण—यह वेशपाटितगण का एक कुल था।

८. मानवगण—आर्य सुहस्ती के शिष्य ऋषिगुप्त ने इस गण की स्थापना की। ये वाशिष्टगोत्री थे।

९. कोटिकगण—स्थविर सुस्थित और सुप्रतिबद्ध से इस गण की उत्पत्ति हुई।

प्रत्येक गण की चार-चार शाखाएं और उद्देह आदि गणो के अनेक कुल थे। इनकी विस्तृत जानकारी के लिए देखें—कल्पसूत्र, सूत्र २०६—२१६।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४२८।

१६. (सू० ३४)

कृष्णराजी, मघा आदि आठ कृष्णराजिओं के आठ अवकाशान्तरों मे आठ लोकान्तिकविमान हैं [स्था० ८।४४, ४५] इनमें सारस्वत आदि आठ लोकान्तिक देव रहते हैं। नौंवा देवनिकाय रिष्ट लोकान्तिक देव कृष्णराजि के मध्यवर्ती रिष्टाभ-विमान के प्रस्तट में निवास करते हैं। ये नौ लोकान्तिक देव है। ये ब्रह्म देवलोक के समीप रहते हैं अतः इन्हें लोकान्तिक देव कहा जाता है। इनकी स्थिति आठ सागरोपम की होती है और ये सात-आठ भव मे मुक्त हो जाते हैं। तीर्थंकर की प्रव्रज्या से एक वर्ष पूर्व ये स्वयंसंबुद्ध भगवान् से अपनी रीति को निभाने के लिए कहते हैं—'भगवन्! समस्त जीवों के हित के लिए आप अब तीर्थ का प्रवर्तन करें।'

१७. (सू० ४०)

आयुष्य के साथ इतने प्रश्न और जुड़े हुए होते है कि—

(१) जीव किस गति में जायेगा ?

(२) वहां उसकी स्थिति कितनी होगी ?

(३) वह ऊंचा, नीचा या तिरछा—कहां जायेगा ?

(४) वह दूरवर्ती क्षेत्र में जायेगा या निकटवर्ती क्षेत्र मे ? इन चार प्रश्नों मे आयुपरिणाम के नौ प्रकार समा जाते हैं, जैसे—प्रश्न १ मे (१, २) प्रश्न २ मे (३, ४), प्रश्न ३ मे (५, ६, ७) प्रश्न ४ मे (८, ९)। जब अगले जीवन के आयुष्य का बन्ध होता है तब इन सभी बातो का भी उसके साथ-साथ निश्चय हो जाता है।

वृत्तिकार ने परिणाम के तीन अर्थ किए हैं—स्वभाव, शक्ति और धर्म[1]।

आयुष्य कर्म के परिणाम नौ हैं—

(१) गति परिणाम—इसके माध्यम से जीव मनुष्यादि गति को प्राप्त करता है।

(२) गतिबन्धन परिणाम—इसके माध्यम से जीव प्रतिनियत गतिकर्म का बंध करता है, जैसे—जीव नरकायु-स्वभाव से मनुष्यगति, तिर्यग्गति नामकर्म का बंध करता है, देवगति और नरकगति का बंध नही करता।

(३) स्थिति परिणाम—इसके माध्यम से जीव भवसंबंधी स्थिति (अन्तर्मुहूर्त से तेत्तीस सागर तक) का बन्ध करता है।

(४) स्थिति बंधन परिणाम—इसके माध्यम से जीव वर्तमान आयु के परिणाम से भावी आयुष्य की नियत स्थिति का बन्ध करता है, जैसे—तिर्यग् आयुपरिणाम से देव आयुष्य का उत्कृष्ट बंध अठारह सागर का होता है।

(५) ऊर्ध्वगौरव परिणाम—गौरव का अर्थ है गमन। इसके माध्यम से जीव ऊर्ध्व-गमन करता है।

(६) अधोगौरव परिणाम—इसके माध्यम से जीव अधोगमन करता है।

(७) तिर्यग् गौरव परिणाम—इसके माध्यम से जीव को तिर्यक् गमन की शक्ति प्राप्त होती है।

(८) दीर्घगौरव परिणाम—इसके माध्यम से जीव लोक से लोकान्त पर्यन्त दीर्घगमन करता है।

(९) ह्रस्वगौरव परिणाम—इसके माध्यम से जीव ह्रस्वगमन (थोड़ा गमन) करता है।

वृत्तिकार ने यहा 'अन्यथाप्यूह्यमेतद्'—इसकी दूसरे प्रकार से भी व्याख्या की जा सकती है—कहा है[2]। वह दूसरा प्रकार क्या है, यह अन्वेषणीय है।

यहां गति शब्द का वाच्यार्थ किया जाए तो ये परिणाम परमाणु आदि पर भी घटित हो सकते हैं।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३० परिणाम:—स्वभाव: शक्ति: धर्म इति।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३०।

१८. (सू० ६०)

भगवान् महावीर के तीर्थ में तीर्थंकर गोत्र बांधने वाले नौ व्यक्ति हुए हैं। उनका वर्णन इस प्रकार है—

१. श्रेणिक—ये मगध देश के राजा थे। इनका विस्तृत विवरण निरयावलिका सूत्र मे प्राप्त है। ये आगामी चौबीसी में पद्मनाभ नाम के प्रथम तीर्थंकर होंगे।

२. सुपार्श्व—ये भगवान् महावीर के चाचा थे। इनके विषय में विशेष जानकारी प्राप्त नही है। ये आगामी चौबीसी में सूर देव नाम के दूसरे तीर्थंकर होंगे।

३. उदायी—यह कोणिक का पुत्र था। उसने अपने पिता की मृत्यु के बाद पाटलीपुत्र नगर बसाया और वहीं रहने लगा। जैन धर्म के प्रति उसकी परम आस्था थी। वह पर्व-तिथियों में पौषध करता और धर्म-चिन्ता में समय व्यतीत करता था। धार्मिक होने के साथ-साथ वह अत्यन्त पराक्रमी भी था। उसने अपने तेज से सभी राजाओं को अपना सेवक बना दिया था। वे राजा सदा यही चिंतन करते कि उदायी राजा जीवित रहते हुए हम सुखपूर्वक स्वच्छंदता से नहीं जी सकते।

एक बार किसी एक राजा ने कोई अपराध कर डाला। उदायी ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसका राज्य छीन लिया। राजा वहा से पलायन कर शरण पाने अन्यत्र जा रहा था। बीच मे ही उसकी मृत्यु हो गई। उसका पुत्र भटकता हुआ उज्जयिनी नगरी मे गया और राजा के पास रहने लगा। अवन्तीपति भी उदायी से क्रुद्ध था। दोनों ने मिलकर उदायी को मार डालने का षड्यन्त्र रचा।

वह राजपुत्र उज्जयिनी से पाटलीपुत्र आया और उदायी का सेवक बन रहने लगा। उदायी को यह मालूम नही था कि यह उसके शत्रु राजा का पुत्र है। वह राजकुमार उदायी का छिद्रान्वेषण करता रहा परन्तु उसे कोई छिद्र न मिला।

उसने जैन मुनियों को उदायी के प्रासाद मे बिना रोक-टोक आते-जाते देखा। उसके मन मे भी राजकुल मे स्व-च्छंद प्रवेश पाने की लालसा जाग उठी। वह एक जैन आचार्य के पास प्रव्रजित हो गया। अब वह साधु-आचार का पूर्णत: पालन करने लगा। उसकी आचारनिष्ठा और सेवाभावना से आचार्य का मन अत्यन्त प्रसन्न रहने लगा। वे इससे अति प्रभा-वित हुए। किसी ने उसकी कपटता को नही आंका।

महाराज उदायी प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को पौषध करते थे और आचार्य उसको धर्मकथा सुनाने के लिए पास मे रखते थे।

एक बार पौषध दिन मे आचार्य सायंकाल उदायी के निवास-स्थान पर गए। वह प्रव्रजित राजपुत्र भी आचार्य के उपकरण ले उनके साथ गया। उदायी को मारने की इच्छा से उसने अपने पास एक तीखी कैंची रख ली थी। किसी को इसका भेद मालूम नही था। वह साथ-साथ चला और उदायी के समीप अपने आचार्य के साथ बैठ गया।

आचार्य ने धर्मप्रवचन किया और सो गए। महाराज उदायी भी थक जाने के कारण वही भूमि पर सो गए। वह मुनि जागता रहा। रौद्र ध्यान मे वह एकाग्र हो गया और अवसर का लाभ उठाते हुए अपनी कैंची राजा के गले पर फेंक दी। राजा का कोमल कंठ छिद गया। कंठ से लहू बहने लगा।

वह पापी श्रमण वहां से बाहर चला गया। पहरेदारो ने भी उसे श्रमण समझकर नहीं रोका।

रक्त की धारा बहते-बहते आचार्य के सस्तारक तक पहुच गई। आचार्य उठे। उन्होंने कटे हुए राजा के गले को देखा। वे अवाक् रह गए। उन्होंने शिष्य को वहां न देखकर सोचा—'उस कपटी श्रमण का ही यह कार्य होना चाहिए, इसी-लिए वह कही भाग गया है।' उन्होने मन ही मन सोचा—'राजा की इस मृत्यु से जैन शासन कलंकित होगा और सभी यह कहेगे कि एक जैन आचार्य ने अपने ही श्रावक राजा को मार डाला। अत: मैं प्रवचन की ग्लानि को मिटाने के लिए अपने आप की घात कर डालूं। इससे यह होगा कि लोग सोचेंगे—राजा और आचार्य को किसी ने मार डाला। इससे शासन बदनाम नहीं होगा।'

आचार्य ने अन्तिम प्रत्याख्यान कर उसी कैंची से अपना गला काट डाला।

प्रात:काल सारे नगर में यह बात फैल गई कि राजा और आचार्य की हत्या उस शिष्य ने की है। वह कपटवेशधारी

किसी राजा का पुत्र होना चाहिए। सैनिक उसकी तलाश में गए, परन्तु वह नही मिला। राजा और आचार्य का दाह-संस्कार हुआ।

वह उदायीमारक श्रमण उज्जयिनी मे गया और राजा से सारा वृतान्त कहा। राजा ने कहा—'अरे दुष्ट! इतने समय तक का श्रामण्य पालन करने पर भी तेरी जघन्यता नही गई? तूने ऐसा अनार्य कार्य किया? तेरे से मेरा क्या हित सध सकता है। चला जा, तू मेरी आखो के सामने मत रह।' राजा ने उसकी अत्यन्त भर्त्सना की और उसे देश से निकाल डाला।[1]

४ पोट्टिल अनगार—अनुत्तरोपपातिक मे पोट्टिल अनगार की कथा है। उसके अनुसार ये हस्तिनागपुर के वासी थे। इनकी माता का नाम भद्रा था। इन्होने बत्तीस पत्नियो को त्याग कर भगवान् महावीर के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। अन्त में एक मास की संलेखना कर सर्वार्थसिद्ध मे उत्पन्न हुए। वहाँ से च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र मे सिद्ध हो गए। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में उनके भरत क्षेत्र में सिद्ध होने की बात कही है। इससे लगता है कि ये अनगार कोई अन्य है।

५ दृढायु—इनके विषय में विशेष जानकारी प्राप्त नही है।

६, ७ शंख तथा शतक—ये दोनों श्रावस्ती नगरी के श्रावक थे। एक बार भगवान् महावीर श्रावस्ती पधारे और कोष्ठक चैत्य में ठहरे। अनेक श्रावक-श्राविकाए वन्दन करने आई। भगवान् का प्रवचन सुना और सब अपने-अपने घर की ओर चले गए। रास्ते मे शंख ने दूसरे श्रावकों से कहा—'देवानुप्रियो! घर जाकर आहार आदि विपुल सामग्री तैयार करो। हम उसका उपभोग करते हुए पाक्षिक पर्व की आराधना करते हुए विहरण करेंगे।' उन्होने उसे स्वीकार किया। बाद में शंख ने सोचा—'अशन आदि का उपभोग करते हुए पाक्षिक पौषध की आराधना करना मेरे लिए श्रेयस्कर नही है। मेरे लिए श्रेयस्कर यही होगा कि मैं प्रतिपूर्ण पौषध करू।'

वह अपने घर गया और अपनी पत्नी उत्पला को सारी बात बताकर पौषधशाला मे प्रतिपूर्ण पौषध कर बैठ गया।

इधर दूसरे श्रावक घर गए और भोजन आदि तैयार करा कर एक स्थान मे एकत्रित हुए। वे शख की प्रतीक्षा में बैठे थे। शंख नही आया तब शतक[2] को उसे बुलाने भेजा। पुष्कली शख के घर आया और बोला—'भोजन तैयार है। चलो, हम सब साथ बैठकर उसका उपभोग करे और पश्चात् पाक्षिक पौषध करे।' शख ने कहा—'मैं अभी प्रतिपूर्ण पौषध कर चुका हू अत. मैं नही चल सकता।' पुष्कली ने लौटकर श्रावको को सारी बात कही। श्रावकों ने पुष्कली के साथ भोजन किया।

प्रात काल हुआ। शख भगवान् के चरणो मे उपस्थित हुआ। भगवान् को वन्दना कर वह एक स्थान पर बैठ गया। दूसरे श्रावक भी आए। भगवान् को वन्दना कर उन सबने धर्मप्रवचन सुना।

पश्चात् वे शख के पास आकर बोले—इस प्रकार हमारी अवहेलना करना क्या आपको शोभा देता है? भगवान् ने यह सुन उनसे कहा—शख की अवहेलना मत करो। यह अवहेलनीय नही है। यह प्रियधर्मा और दृढधर्मा है। यह सुदृष्टि जागरिका[3] मे स्थित है।[4]

८ सुलसा—राजगृह मे प्रसेनजित नामका राजा राज्य करता था। उसके रथिक का नाम नाग था। सुलसा उसकी भार्या थी। नाग सुलसा से पुत्र-प्राप्ति के लिए इन्द्र की आराधना करता था। एक बार सुलसा ने उससे कहा—'तुम दूसरा विवाह कर लो।' नाग ने कहा—'मैं तुम्हारे से ही पुत्र चाहता हू।'

एक बार देवसभा मे सुलसा के सम्यक्त्व की प्रशसा हुई। एक देव उसकी परीक्षा करने साधु का वेश बनाकर आया। सुलसा ने उसके आगमन का कारण पूछा। साधु ने कहा—'तुम्हारे घर मे लक्षपाक तैल है। वैद्य ने मुझे उसके सेवन के

---

१. परिशिष्ट पर्व, सर्ग ६, पृष्ट १०४-१०६।

२ वृत्तिकार ने शतक की पहचान पुष्कली से की है—(स्थानागवृत्ति पत्र, ४३२ पुष्कली नामा श्रमणोपासक शतक इत्यपरनाम) भगवती (१२।१) मे पुष्कली का शतक नाम प्राप्त नही है। वृत्तिकार के सामने इसका क्या आधार रहा है, यह कहा नही जा सकता।

३ जागरिकाए तीन है—
 १ बुद्ध जागरिका—केवली की जागरणा।
 २ अबुद्ध जागरिका—छद्मस्थ मुनियों की जागरणा।
 ३ सुदृष्टि जागरिका—श्रमणोपासकों की जागरणा।

४ विशेष विवरण के लिए देखें—भगवती १२।२०, २१।

लिए कहा है। वह मुझे दो।' सुलसा खुशी-खुशी घर मे गई और तैल का पात्र उतारने लगी। देव-माया से वह गिरकर टूट गया। दूसरा और तीसरा पात्र भी गिरकर टूट गया। फिर भी सुलसा को कोई खेद नही हुआ। साधुरूप देव ने यह देखा और प्रसन्न होकर उसे बत्तीस गुटिकाएं देते हुए कहा—'प्रत्येक गुटिका के सेवन से तुम्हे एक-एक पुत्र होगा।' विशेष प्रयोजन पर तुम मुझे याद करना। मैं आ जाऊगा।' यह कहकर देव अन्तर्हित हो गया।

सुलसा ने—'सभी गुटिकाओं से मुझे एक ही पुत्र हो'—ऐसा सोचकर सभी गुटिकाएं एक साथ खा ली। अब उदर में बत्तीस पुत्र बढ़ने लगे। उसे असह्य वेदना होने लगी। उसने कायोत्सर्ग कर देव का स्मरण किया, देव आया। सुलसा ने सारी बात कह सुनाई। देव ने पीडा शान्त की। उसके बत्तीस पुत्र हुए।

६ रेवती—एक बार भगवान् महावीर मेढिकग्राम नगर में आए। वहा उनके पित्तज्वर का रोग उत्पन्न हुआ और वे अतिसार से पीडित हुए। यह जनप्रवाद फैल गया कि भगवान् महावीर गोशालक की तेजोलेश्या से आहत हुए हैं और छह महीनों के भीतर काल कर जाएंगे।

भगवान् महावीर के शिष्य मुनि सिंह ने अपनी आतापना तपस्या संपन्न कर सोचा—'मेरे धर्माचार्य भगवान् महावीर पित्तज्वर से पीड़ित हैं। अन्यतीर्थिक यह कहेगे कि भगवान् गोशालक की तेजोलेश्या से आहत होकर मर रहे हैं। इस चिंता से अत्यन्त दुखित होकर मुनि सिंह मालुकाकच्छ वन मे गए और सुबक-सुबक कर रोने लगे। भगवान् ने यह जाना और अपने शिष्यो को भेजकर उसे बुलाकर कहा—'सिंह ! तूने जो सोचा है वह यथार्थ नही है। मैं आज से कुछ कम सोलह वर्ष तक केवली पर्याय मे रहूगा। जा, तू नगर मे जा। वहां रेवती नामक श्राविका रहती है। उसने मेरे लिए दो कुष्माण्ड-फल पकाए है। वह मत लाना। उसके घर बिजोरापाक भी बना है। वह वायुनाशक है। उसे ले आना। वही मेरे लिए हितकर है।'

सिंह गया। रेवती ने अपने भाग्य की प्रशंसा करते हुए, मुनि सिंह ने जो मागा, वह दे दिया। सिंह स्थान पर आया, महावीर ने बिजोरापाक खाया। रोग उपशान्त हो गया।

आगामी चौवीसी मे इनका स्थान इस प्रकार होगा—

१ श्रेणिक का जीव पद्मनाभ नाम के प्रथम तीर्थंकर।

२. सुपार्श्व का जीव सूरदेव नाम के दूसरे तीर्थंकर।

३. उदायी का जीव सुपार्श्व नाम के तीसरे तीर्थंकर।

४. पोट्टिल का जीव स्वयप्रभ नाम के चौथे तीर्थंकर।

५. दृढायु का जीव सर्वानुभूति नाम के पाचवें तीर्थंकर।

६. शख का जीव उदय नाम के सातवें तीर्थंकर।

७. शतक का जीव शतकीर्ति नाम के दसवें तीर्थंकर।

८. सुलसा का जीव निर्ममत्व नाम के पन्द्रहवें तीर्थंकर।

इनमें से शंख और रेवती का वर्णन भगवती में प्राप्त है परन्तु वहा इनके भावी तीर्थंकर होने का उल्लेख नही है। इनके कथानकों से यह स्पष्ट नही होता कि उनके तीर्थंकरगोत्र बधन के क्या-क्या कारण है।

१९. (सू० ६१)

उदकपेढालपुत्त—इनका मूल नाम उदक और पिता का नाम पेढाल था। ये उदकपेढालपुत्त के नाम से प्रसिद्ध थे। वे वाणिज्य ग्राम के निवासी थे। ये भगवान् पार्श्व की परम्परा में दीक्षित हुए। एक बार ये नालन्दा के उत्तर-पूर्व दिशा में स्थित हस्तिद्वीपवनषण्ड में ठहरे हुए थे। इन्हे श्रावक विषय पर विशेष संशय उत्पन्न हुआ। गणधर गौतम से संशय-

निवारण कर ये चतुर्याम धर्म को छोड़ पञ्चयाम धर्म मे दीक्षित हो गए।[1]

पोट्टिल और शतक—

इनका वर्णन ६।६० के टिप्पण में किया जा चुका है।

दारुक—वृत्तिकार के अनुसार ये वासुदेव के पुत्र थे तथा अरिष्टनेमि के पास दीक्षित हुए थे। उन्होंने इनके विशेष विवरण के लिए अनुत्तरोपपातिक सूत्र की ओर संकेत किया है। परन्तु उपलब्ध अनुत्तरोपपातिक में 'दारुक' नाम के किसी अनगार का विवरण प्राप्त नही है। अन्तकृत सूत्र के तीसरे वर्ग के बारहवें अध्ययन मे दारुक अनगार का विवरण है। उनके पिता का नाम वासुदेव और माता का नाम धारणी था। वे यहा विवक्षित नहीं हो सकते। क्योंकि वे तो अन्त-कृत हो गए और प्रस्तुत सूत्र में आगामी उत्सर्पिणी मे सिद्ध होने वालो का कथन है। अत ये कौन अनगार थे—इसको जानने के स्रोत उपलब्ध नही हैं।

सत्यकी—वैशाली गणतन्त्र के अधिपति महाराज चेटक की पुत्री का नाम सुज्येष्ठा था। वह प्रव्रजित हुई और अपने उपाश्रय मे कायोत्सर्ग करने लगी।

वहां एक पेढाल परिव्राजक रहता था। उसे अनेक विद्याएं सिद्ध थी। वह अपनी विद्या को देने के लिए योग्य व्यक्ति की खोज कर रहा था। उसने सोचा—यदि किसी ब्रह्मचारिणी स्त्री से पुत्र उत्पन्न हो तो ये विद्याए बहुत कार्यकर हो सकती है। एक बार उसने साध्वी को कायोत्सर्ग मे स्थित देखा। उसने मन्त्र विद्या से धूमिका व्यामोह (वातावरण को धूमिल बनाकर) से साध्वी मे वीर्य का निवेश किया। उसके गर्भ रहा। एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम सत्यकी रखा। एक बार वह साध्वी अपने पुत्र के साथ भगवान् के समवसरण मे गई। उस समय वहा कालसदीप नाम का विद्याधर आया और भगवान् से पूछा—'मुझे किससे भय है?' भगवान् ने सत्यकी की ओर इशारा करते हुए कहा—'इस सत्यकी से।' तब कालसदीप उसके पास आकर अवज्ञा करते हुए बोला—'अरे! तू मुझे मारेगा?' यह कह कर उसे अपने पैरो मे गिराया।

एक बार पेढाल परिव्राजक ने साध्वियो से सत्यकी को ले जाकर उसे विद्याए सिखाई। पाच जन्म तक वह रोहिणी विद्या द्वारा मारा गया। छठे जन्म मे जब आयु-काल केवल छह महीनो का रहा तब उसने उसे साधना छोड़ दिया। सातवें जन्म मे वह सिद्ध हुई। वह उस सत्यकी के ललाट मे छेद कर शरीर मे प्रवेश कर गई। देवता ने उस ललाट-विवर को तीसरी आख के रूप मे परिवर्तित कर दिया। सत्यकी ने देवता की स्थापना की। उसने कालसन्दीप को मार डाला और वह विद्याधरो का राजा हो गया। तब से वह सभी तीर्थंकरो को वदना कर नाटक दिखाता हुआ विहरण कर रहा है।

अम्मड परिव्राजक—एक बार श्रमण भगवान् महावीर चम्पा नगरी मे समवसृत हुए। परिव्राजक विद्याधर श्रमणोपासक अम्मड ने भगवान् से धर्म सुनकर राजगृह की ओर प्रस्थान किया। उसे जाते देख भगवान् ने कहा—'श्राविका सुलसा को कुशल समाचार कहना।' अम्मड ने सोचा—'पुण्यवती है सुलसा कि जिसको स्वय भगवान् अपना कुशल समाचार भेज रहे हैं। उसमे ऐसा कौन-सा गुण है? मैं उसके सम्यक्त्व की परीक्षा करूंगा।'

अम्मड परिव्राजक के वेश मे सुलसा के घर गया और बोला—'आयुष्मति! मुझे भोजन दो, तुम्हें धर्म होगा।' सुलसा ने कहा—'मैं जानती हू किसे देने से धर्म होता है।'

अम्मड आकाश में गया, पद्मासन मे स्थित होकर विभिन्न लोगो को विस्मित करने लगा। लोगों ने उसे भोजन के लिए निमन्त्रण दिया। उसने निमंत्रण स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। पूछने पर उसने कहा—'मैं सुलसा के यहां भोजन लूँगा।' लोग दौड़े-दौड़े गए और सुलसा को बधाइया देने लगे। उसने कहा—'मुझे पाखडियों से क्या लेना है।' लोगों ने अम्मड से यह बात कही। अम्मड ने कहा—यह परम सम्यग्दृष्टि है। इसके मन मे व्यामोह नहीं है। वह तब लोगों को साथ ले सुलसा के घर गया। सुलसा ने उसका स्वागत किया। वह उससे प्रतिबद्ध हुआ।

---

1. सूत्रकृताग २।७ मे यह विवरण प्राप्त है किन्तु वहा सिद्ध, बुद्ध होने की बात नही है। अनुत्तरोपपातिक के तीसरे वर्ग के आठवें अध्ययन मे पेढालपुत्त का वर्णन है, वहा उनका सर्वार्थसिद्ध में उपपात, वहा से महाविदेह मे सिद्ध होने की बात कही है।

वृत्तिकार ने बताया है कि औपपातिक सूत्र (४०) में अम्मड परिव्राजक के महाविदेह में सिद्ध होने की बात बताई है। वह कोई अन्य है।[1]

सुपार्श्वा— यह पार्श्व की परम्परा में प्रव्रजित साध्वी थी।

समवायांग सूत्र २५८ में आगामी उत्सर्पिणी में होने वाले २४ तीर्थंकरों के नाम है। उसके अनुसार यहां उल्लिखित नामों में से छठा 'निर्ग्रन्थदारुक' और नौवां 'आर्या सुपार्श्वा' को छोड़कर शेष सात तीर्थंकर होंगे।

वृत्तिकार का अभिमत है कि इनमें से कुछ मध्यम तीर्थंकर के रूप मे तथा कई केवली के रूप में होंगे।[2]

२०. पुण्ड्र (सू० ६२)

विंध्याचल के समीप का भूभाग।

२१. लक्षण-व्यञ्जन (सू० ६२)

लक्षण—सामुद्रिकशास्त्र में उक्त मनुष्य का मान, उन्माद आदि। शरीर पर चक्र आदि के चिह्न तथा रेखाएं। ये जन्मगत होते हैं।

व्यंजन— शरीर पर होने वाले मष, तिल आदि। ये जन्म के साथ या बाद मे भी उत्पन्न होते है।[3]

२२-२४. मान-उन्मान-प्रमाण (सू० ६२)

जल से भरे कुण्ड मे उस पुरुष को उतारा जाता है जिसका 'मान' जानना होता है। उस पुरुष के अन्दर पैठने पर जितना जल कुंड से बाहर निकलता है, वह यदि एक द्रोण [१६ सेर] प्रमाण होता है, तब उस पुरुष को मानोपपन्न कहा जाता है।[4]

उन्मान—तराजू में तोलने पर जिस व्यक्ति का भार 'अर्द्धभार' [डेढ मन ढाई सेर] प्रमाण होता है, उस व्यक्ति को उन्मानोपपन्न कहा जाता है।[5]

प्रमाण—जिस व्यक्ति की ऊचाई अपने अगुल से एक सौ आठ अंगुल होती है, उसे प्रमाणोपपन्न कहा जाता है।[6]

२५-२६. भार और कुंभ (सू० ६२)

भार—चार तोले का एक पल होता है। दो हजार पलों का एक 'भार' होता है। चौसठ तोले का एक सेर मानने पर तीन मन पांच सेर का एक 'भार' होगा।

भार का दूसरा अर्थ है—एक पुरुष द्वारा उठाया जाने वाला वजन।[7]

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३४ · यच्चौपपातिकोपाङ्गे महाविदेहे सेत्स्यतीत्यभिधीयते सोऽन्य इति सम्भाव्यते।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३४ एतेषु च मध्यमतीर्थंकरत्वेनो-त्पत्स्यन्ते केचित्केचित्तु केवलित्वेन।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३८ : लक्षणं—पुरुषलक्षणं शास्त्राभिहित... व्यञ्जनं—मषतिलकादि······

माणुम्माणपमाणादि लक्खणं वंजणं तु मसमाई।
सहजं च लक्खणं वंजणं तु पच्छा समुप्पन्नं॥

४. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३८ . मान—जलद्रोणप्रमाणता, सा ह्येवं—जलभृते कुण्डे प्रमातव्यपुरुष उपवेश्यते, ततो यज्जलं कुण्डान्निर्गच्छति तद्यदि द्रोणप्रमाण भवति तदा स पुरुष मानोपपन्न इत्युच्यते।

५. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३८ : उन्मान तुलारोपितस्यार्द्धभार-प्रमाणता।

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३८ . प्रमाण—आत्माङ्गुलेनाष्टोत्तर-शताङ्गुलोच्छ्रयता।

७. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३८ . विंशत्या पलशतैर्भारो भवति अथवा पुरुषोत्क्षेपणीयो भारो भारक इति।

कुंभ—बत्तीस सेर अथवा ३२ × ६४ = २०४८ तोलों का एक कुभ होता है।[1]

२७-२८. पूर्णभद्र ··· और माणिभद्र (सू० ६२)

पूर्णभद्र—दक्षिण यक्षनिकाय का इन्द्र।[2]

माणिभद्र—उत्तर यक्षनिकाय का इन्द्र।[3]

२९-३७. राजा सार्थवाह (सू० ६२)

राजा—यहा इसके द्वारा 'महामाडलिक' शब्द अभिप्रेत है।[4] आठ हजार राजाओ के अधिपति को महामांडलिक कहा जाता है।[5]

ईश्वर—इसके अनेक अर्थ है—युवराज, माडलिक—चार हजार राजाओ का अधिपति, अमात्य अथवा अणिमा आदि आठ लब्धियों से युक्त।[6]

तलवर—कोतवाल। प्राचीन काल मे राजा परितुष्ट होकर जिसे पट्टबंध से विभूषित करता था उसे तलवर कहा जाता था।[7]

माडबिक—मडब का अधिपति। जिसके आसपास कोई नगर न हो उसे 'मडब' कहते है।[8]

कौटुम्बिक—कतिपय कुटुम्बों का स्वामी।[9]

इभ्य—धनवान्। जिसके पास इतना धन हो कि उसके धन के ढेर मे छिपा हुआ हाथी भी न मिले।[10]

श्रेष्ठी—नगरसेठ। इसके मस्तक पर श्रीदेवी से अकित सोने का एक पट्ट बधा रहता था।[11]

सेनापति—हाथी, अश्व, रथ और पैदल—इन चतुर्विध सेनाओ का अधिपति। इसकी नियुक्ति राजा करता था।[12]

सार्थवाह—सथवाडो का नायक।[13]

३८. भावना (सू० ६२)

पाच महाव्रत की पचीस भावनाए है। इनके विवरण के लिए देखे—आयारचूला १५।४३-७८, उत्तरज्झयणाणि, भाग २, पृष्ठ २९७, २९८।

३९-४० फलकशय्या, काष्ठशय्या (सू० ६२)

फलकशय्या—पतले और लम्बे काष्ठ से बनी शय्या।

काष्ठशय्या—मोटे और लम्बे काष्ठ से बनी शय्या।

---

१. स्थानागवृत्ति, पत्र ४३८ : कुम्भ आढकषष्ठ्यादिप्रमाणत।
२. स्थानागवृत्ति, पत्र ४३९ : पूर्णभद्रश्च—दक्षिणयक्षनिकायेन्द्र।
३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३९ माणिभद्रश्च—उत्तरयक्षनिकायेन्द्र।
४ स्थानागवृत्ति, पत्र ४३९ : राजा महामाडलिक।
५. वही, पत्र ४३९ विलोयपण्णत्ती।
६. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३९ : ईश्वरो—युवराजो माण्डलिकोऽमात्यो वा, अन्ये च व्याचक्षते—अणिमाद्यष्टविधैश्वर्ययुक्त ईश्वर इति।
७. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३९ तलवर :—परितुष्टनरपतिप्रदत्तपट्टबन्धनभूषितः।
८ स्थानागवृत्ति, पत्र ४३९ . माडम्बिक.—छिन्नमडम्बाधिप.।
९ स्थानागवृत्ति, पत्र ४३९ कौटुम्बिकः—कतिपयकुटुम्बप्रभुः।
१० स्थानागवृत्ति, पत्र ४३९ इभ्य – अर्थवान्। स च किल यदीयपुञ्जीकृतद्रव्यराश्यन्तरितो हस्त्यपि नोपलभ्यत इत्येतावतार्थेनेति भाव.।
११ स्थानागवृत्ति, पत्र ४३९ श्रेष्ठी—श्रीदेवताध्यासितसौवर्णपट्टभूषितोत्तमाङ्ग पुरज्येष्ठो वणिक्।
१२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३९ : सेनापति.—नृपतिनिरूपितो हस्त्यश्वरथपदातिसमुदायलक्षणाया सेनायाः प्रभुरित्यर्थः।
१३ स्थानागवृत्ति, पत्र ४३९, सार्थवाहक.—सार्थनायकः।

४१. लब्धापलब्धवृत्ति (सू० ६२)

सम्मानपूर्वक प्राप्त भिक्षा और असम्मानपूर्वक प्राप्त भिक्षा।

४२. आधाकर्मिक (सू० ६२)

श्रमण के लिए बनाया गया आहार आदि।

४३-४८. औद्देशिक, मिश्रजात, अध्यवतर, पूतिकर्म, क्रीत, प्रामित्य (सू० ६२)

देखें—दसवेआलियं ३।२ का टिप्पण।

४९-५०. आच्छेद्य, अनिसृष्ट (सू० ६२)

आच्छेद्य—बलात् नौकर आदि से छीन कर साधु को देना।[1]

अनिसृष्ट—जो वस्तु अनेक व्यक्तियों के अधिकार की हो और उन व्यक्तियों में से एक या अधिक व्यक्ति उस वस्तु को देना न चाहते हों, ऐसी वस्तु ग्रहण करना अनिसृष्ट दोष है।[2]

५१. अभ्याहृत (सू० ६२)

देखें—दसवेआलियं ३।२ का टिप्पण।

५२-५६. कान्तारभक्त···प्राघूर्णभक्त (सू० ६२)

कान्तारभक्त—प्राचीनकाल में मुनियों का गमनागमन सार्थवाहों के साथ-साथ होता था। कभी वे अटवी में साधु पर दया लाकर, उसके लिए भोजन बनाकर दे देते थे। इसे कान्तारभक्त कहा जाता है।

दुर्भिक्षभक्त—भयंकर दुष्काल होने पर राजा तथा अन्य धनाढ्य व्यक्ति भक्त-पान तैयार कर देते थे। वह दुर्भिक्ष-भक्त कहलाता था।[3]

ग्लानभक्त—इसके तीन अर्थ हैं—

(१) आरोग्यशाला [अस्पताल] में दिया जाने वाला भोजन।

(२) आरोग्यशाला के बिना भी सामान्यतः रोगी को दिया जाने वाला भोजन।[4]

(३) रोग के उपशमन के लिए दिया जाने वाला भोजन।[5]

वार्दलिकाभक्त—आकाश में बादल छाए हुए हैं। वर्षा गिर रही है। ऐसे समय में भिक्षु भिक्षा के लिए नहीं जा सकते। यह सोचकर गृहस्थ उनके लिए विशेषतः दान का निरूपण करता है। वह वार्दलिकाभक्त कहलाता है।[6]

निशीथ चूर्णि में इसका अर्थ इस प्रकार है—

सात दिनों तक वर्षा पड़ने पर राजा साधुओं के निमित्त भोजन बनवाता है।[7]

प्राघूर्णभक्त—अतिथि को दिया जाने वाला भोजन। वृत्तिकार ने प्राघूर्णक के दो अर्थ किए हैं—

(१) आगन्तुक भिक्षुक (२) गृहस्थ।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४३ : 'आच्छेद्य' बलाद् भृत्यादिसत्कमाच्छिद्य यत्स्वामी साधवे ददाति।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४३ : अनिसृष्टं साधारणं बहूनामेकादिना अननुज्ञातं दीयमानम्।

३. निशीथ ९।६ चूर्णि :—जं दुब्भिक्खे राया देति तं दुब्भिक्खभत्तं।

४. निशीथ ९।६ चूर्णि :—आरोग्गसालाए वा···गिलाणस्स आरोग्गसालाए जं गिलाणस्स दिज्जति तं गिलाणभत्तं।

५. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४३ : रोगोपशान्तये ददाति।

६. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४३ : वार्दलिका—मेघाडम्बरं तत्र हि वृष्ट्या भिक्षाभ्रमणाक्षमो भिक्षुकलोको भवतीति गृही तदर्थं विशेषतो भक्तं दानाय निरूपयतीति।

७. निशीथ ९।६ चूर्णि :—सत्ताहवद्दले पडंते भत्तं करेति राया अपुण्णाणं वा अधिक्कीणं भत्तं करेति राया।

इसके आधार पर प्राघूर्णभक्त के दो अर्थ होते है—

(१) आगन्तुक भिक्षुओ के निमित्त बनाया गया भोजन।

(२) भिक्षुओ के लिए बनवाकर दूसरे गृहस्थ द्वारा दिया जाने वाला भोजन।[1]

निशीथ चूर्णि मे इसका अर्थ है—राजा के मेहमान के लिए बनाया गया भोजन।[2]

वृत्तिकार ने कातारभक्त आदि को आधाकर्म आदि के अन्तर्गत माना है।[3]

५७. शय्यातर पिंड (सू० ६२)

स्थानदाता का पिंड। इसके अन्तर्गत चारो प्रकार का आहार, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोछन, सूचि, नखकर्तरी और कर्णशोधनी—ये भी स्थानदाता के हो तो वे भी शय्यातर पिंड के अन्तर्गत आते है।[4]

विशेष विवरण के लिए देखें—दसवेआलिय ३।५ का टिप्पण।

५८. राजपिंड (सू० ६२)

देखे—दसवेआलिय ३।२ का टिप्पण।

५९ (सू० ६३)

वृत्तिकार ने यहा मतान्तर का उल्लेख किया है। उसके अनुसार दस नक्षत्र चन्द्रमा का पश्चिम मे योग करते है। वे ये है—

१ अश्विनी २ भरणी ३ श्रवण ४ अनुराधा ५ धनिष्ठा ६ रेवती ७ पुष्य ८ मृगशिर ९ हस्त १० चित्रा।

६० (सू० ६८)

शुक्र ग्रह समधरणीतल से नौ सौ योजन ऊपर भ्रमण करता है। उसके भ्रमण-क्षेत्र को नौ वीथियो [क्षेत्र-विभागो] मे विभक्त किया गया है। प्रत्येक वीथि मे प्राय. तीन-तीन नक्षत्र होते है। भद्रबाहुसंहिता के अनुसार उनका वर्णन इस प्रकार है[6]—

१. नागवीथी—भरणी, कृत्तिका, अश्विनी।

२. गजवीथी—मृगशिरा, रोहिणी, आर्द्रा।

३. ऐरावणपथ—पुष्या, आश्लेषा, पुनर्वसु।

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ४४३ प्राघूर्णका— आगन्तुका भिक्षका एव तदर्थं यद्भक्त तत्तथा, प्राघूर्णको वा गृही स यद्दापयति तदर्थं सस्कृत्य तत् तथा।

२ निशीथ ९।६ चूर्णि—रण्णो का ति पाहुणगो आगता तस्स भत्त आदेसभत्त।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र ४४३ : कान्तारभक्तादय आधाकर्मादि भेदा एव।

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ४४४।

५ स्थानागवृत्ति, पत्र ४४४ : मतान्तर पुनरेवम्—

अस्सिणिभरणी सवणो अणुराहधणिट्ठरेवईपुस्सो।
मगसिर हत्थ चित्ता पच्छिमजोगा मुणेयव्वा॥

६ भद्रबाहुसंहिता १५।४४-४८

० नागवीथीति विज्ञेया, भरणी-कृत्तिकाश्विनी।
रोहिण्याद्रा मृगशिरा, गजवीथीति निर्दिशेत्॥

० ऐरावणपथ विन्द्यात्, पुष्याश्लेषापुनर्वसू।
फाल्गुनी च मघा चैव, वृषवीथीति सज्ञिता॥

० गोवीथी रेवती चैव, द्वे च प्रोष्ठपदे तथा।
जरद्गवपथ विद्याच्छ्रवणं वसु-वारुणम्॥

० अजवीथी विशाखा च चित्रा स्वाति करस्तथा।
ज्येष्ठामूलानुराधासु मृगवीथीति सज्ञिता॥

० अभिजिद् द्वे तथाषाढे, वैश्वानरपथ स्मृत।
....॥

४. वृषवीथी—उत्तरफल्गुनी, पूर्वफल्गुनी, मघा ।

५. गोवीथी—रेवती, उत्तरप्रोष्ठपद, पूर्वप्रोष्ठपद ।

६. जरद्‌गवपथ—श्रवणा, पुनर्वसु, शतभिषग् ।

७. अजवीथी—विशाखा, चित्रा, स्वाति, हस्त ।

८. मृगवीथी—ज्येष्ठा, मूला, अनुराधा ।

९. वैश्वानरपथ—अभिजित्, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा ।

स्थानांग वृत्तिकार ने भद्रबाहुकृत आर्याछन्द के श्लोकों का उद्धरण देकर नौ वीथियों के नक्षत्रों का उल्लेख किया है।[1] ये श्लोक प्रकाशित भद्रबाहुसंहिता में उपलब्ध नहीं होते। यह अन्वेष्टव्य है कि वृत्तिकार ने ये श्लोक किस ग्रन्थ से उद्धृत किए हैं।

वृत्तिकार का अभिमत है कि कहीं-कहीं हयवीथी के स्थान पर नागवीथी और नागवीथी के स्थान पर ऐरावणपथ भी मिलता है।[2]

इन विभिन्न वीथियों के नक्षत्रों के विषय में भी सभी एकमत नहीं हैं। वराहमिहिरकृत बृहत्संहिता तथा वाजसनेयी प्रातिशाख्य आदि ग्रंथों में नक्षत्र विषयक मतभेद स्पष्ट दृग्गोचर होता है।

शुक्र ग्रह जब इन वीथियों में विचरण करता है तब होने वाले लाभ-अलाभ की चर्चा करते हुए वृत्तिकार ने भद्रबाहु-कृत दो श्लोक उद्धृत किए हैं। उनके अनुसार जब शुक्र ग्रह प्रथम तीन वीथियों में विचरण करता है तब वर्षा अधिक, धान्य सुलभ और धन की वृद्धि होती है। जब वह मध्य की तीन वीथियों में विचरण करता है तब धन-धान्य आदि मध्यम होते हैं और जब वह अन्तिम तीन वीथियों में विचरण करता है, तब लोकमानस पीडित होता है, अर्थ का नाश होता है।[3]

भद्रबाहुसंहिता के पन्द्रहवें अध्याय में इसका विस्तृत-विवेचन उपलब्ध होता है।

६१. (सू० ६९)

'नो' शब्द के कई अर्थ होते हैं—निषेध, आंशिक निषेध, साहचर्य आदि। प्रस्तुत प्रसंग में उसका अर्थ है—साहचर्य। क्रोध, मान, माया और लोभ—ये चार कषाय हैं। प्रत्येक के चार-चार भेद होते हैं—अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन। इन सोलह कषायों के साहचर्य से जो कर्म उदय में आते हैं, उन्हें नोकषाय कहा जाता है। प्रस्तुत सूत्र में वे निर्दिष्ट हैं। जैसे बुध ग्रह स्वयं कुछ भी फल नहीं देता है, किन्तु दूसरे ग्रहों के साथ रहकर अपना फल देता है, इसी प्रकार ये नोकषाय भी मूल कषायों के साथ रहकर फल देते हैं।

जो कर्म नोकषाय के रूप में अनुभूत होते हैं वे नोकषायवेदनीय कहलाते हैं। वे नौ हैं—

(१) स्त्रीवेद—शरीर में पित्त के प्रकोप से मीठा खाने की अभिलाषा उत्पन्न होती है। उसी प्रकार इस कर्म के उदय से स्त्री की पुरुष के प्रति अभिलाषा होती है।

(२) पुरुषवेद—शरीर में श्लेष्म के प्रकोप से खट्टा खाने की अभिलाषा उत्पन्न होती है। उसी प्रकार इस कर्म के उदय से पुरुष की स्त्री के प्रति अभिलाषा होती है।

(३) नपुंसकवेद—शरीर में पित्त और श्लेष्म—दोनों के प्रकोप से भुने हुए पदार्थों को खाने की इच्छा उत्पन्न

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४५ :
भरण्यी स्वात्याग्नेयं नागाख्या वीथिरुत्तरे मार्गे ।
रोहिण्यादिरिभाख्या चादित्यादि: सुरगजाख्या ॥
वृषभाख्या पैत्र्यादिः श्रवणादि मध्यमे जरद्‌गवाख्या ।
प्रोष्ठपदादि चतुष्के गोवीथि स्तासु मध्यफलम् ॥
अजवीथी हस्तादि मृगवीथी वैन्द्रदैवतादि स्यात् ।
दक्षिणमार्गे वैश्वानराख्याषाढद्वयं ब्राह्म्यम् ॥

२. वही, पत्र ४४५ या चेह हयवीथी साऽन्यत्र नागवीथीति रूढा नागवीथी चैरावणपदमिति ।

३. वही, पत्र ४४५ :
एतासु भृगुर्विचरति नागगजैरावतीषु वीथिषु चेत् ।
बहु वर्षेत् पर्जन्य सुलभौषधयोऽर्थवृद्धिश्च ॥
पशुसज्ञासु च मध्यमसस्यफलादिर्यदा चरेद् भृगुजः ।
अजमृगवैश्वानरवीथिष्वर्थभयार्दितो लोकः ॥

होती है। उसी प्रकार इस कर्म के उदय से नपुंसक व्यक्ति के मन में स्त्री और पुरुष के प्रति अभिलाषा होती है।

(४) हास्य—इस कर्म के उदय से सनिमित्त या अनिमित्त हास्य उत्पन्न होता है।

(५) रति—इस कर्म के उदय से पदार्थों के प्रति रुचि उत्पन्न होती है।

(६) अरति—इस कर्म के उदय से पदार्थों के प्रति अरुचि उत्पन्न होती है।

(७) भय—इस कर्म के उदय से सात प्रकार का भय उत्पन्न होता है।

(८) शोक—इस कर्म के उदय से आक्रन्दन आदि शोक उत्पन्न होता है।

(९) जुगुप्सा—इस कर्म के उदय से जीव में घृणा के भाव उत्पन्न होते हैं।[1]

तत्त्वार्थ ८।९ में 'नोकषाय' के स्थान पर 'अकषाय' शब्द का प्रयोग है। यहां 'अ' निषेध अर्थ में नहीं किन्तु ईषद् अर्थ में प्रयुक्त है।[2] अकषायवेदनीय के नौ प्रकारों का वर्णन इस प्रकार है—

(१) हास्य—इसके उदय से हास्य की प्रवृत्ति होती है।

(२) रति—इसके उदय से देश आदि को देखने की उत्सुकता उत्पन्न होती है।

(३) अरति—इसके उदय से अनौत्सुक्य उत्पन्न होता है।

(४) भय—इसके उदय से उद्वेग उत्पन्न होता है। उद्वेग का अर्थ है भय। वह सात प्रकार का होता है।

(५) शोक—इसका परिणाम चिन्ता होता है।

(६) जुगुप्सा—इसके उदय से व्यक्ति अपने दोषों को ढांकता है।

(७) स्त्रीवेद—इसके उदय से मृदुता, अस्पष्टता, क्लीवता, कामावेश, नेत्रविभ्रम, आस्फालन और पुंस्कामिता आदि स्त्रीभावों की उत्पत्ति होती है।

(८) पुंवेद—इसके उदय से पुंस्त्वभावों की उत्पत्ति होती है।

(९) नपुंसकवेद—इसके उदय से नपुंसकभावों की उत्पत्ति होती है।[3]

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४५।

२. तत्त्वार्थवार्तिक, पृष्ठ ५७४ : ईषदर्थत्वात् नञः।

३. वही, पृष्ठ ५७४।

दसमं ठाणं

दशम स्थान

आमुख

इसमे एक सौ अठहत्तर सूत्र हैं। इन सूत्रों मे विषयों की बहुविधता है। सूत्र(९३)मे दस प्रकार के शस्त्रों का उल्लेख है। अग्नि, विष, नमक, स्नेह, क्षार तथा अम्लता—ये छह द्रव्य शस्त्र हैं तथा मन की दुष्प्रवृत्ति, वचन की दुष्प्रवृत्ति, काया की दुष्प्रवृत्ति तथा मन की आसक्ति—ये चार भावशस्त्र है।

इसके पन्द्रहवें सूत्र मे प्रव्रज्या के दस प्रकार बतलाए हैं। वास्तव मे ये सब प्रव्रज्या के कारण हैं। प्रव्रज्या ग्रहण के अनेक कारण हो सकते है। उनमे से यहां दस कारणों का सकलन किया गया है। आगमकार ने उदाहरणों का कोई उल्लेख नहीं किया है। टीकाकार ने उदाहरणों का नामोल्लेख मात्र किया है। हमने अन्यान्य स्रोतों से उन उदाहरणों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है, देखें—टिप्पण सख्या ६।

इसके सत्तरहवें सूत्र में वैयापृत्य या वैयावृत्य का उल्लेख है। वैयावृत्य का अर्थ है—सेवा करना और वैयापृत्य का अर्थ है—कार्य मे व्यापृत करना। सेवा सगठन का अटूट सूत्र है। सेवा दो प्रकार की होती है—शारीरिक और चैतसिक। शारीरिक अस्वस्थता को सरलता से मिटाया जा सकता है किन्तु चैतसिक अस्वस्थता को मिटाने के लिए धृति और उपाय की आवश्यकता होती है। इस सूत्र मे दोनों का सुन्दर वर्णन है, देखें—टिप्पण संख्या ८।

सूत्र (९६) मे वचन के अनुयोग के दस प्रकार बतलाए है। इनसे शब्दों के अर्थों को समझने का विज्ञान प्राप्त होता है। एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। उनको समझने के लिए वचन के अनुयोग का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है, देखें—टिप्पण सख्या ३६।

भारतीय सस्कृति मे दान की परम्परा बहुत प्राचीन है। दान देने के अनेक कारण बनते हैं। कुछ व्यक्ति भय से दान देते है, कुछ ख्याति के लिए और कुछ दया से प्रेरित होकर। प्रस्तुत सूत्र (९७) मे दस दानों का निरूपण तत्कालीन समाज मे प्रचलित प्रेरणाओं का इतिहास प्रस्तुत करता है, देखें—टिप्पण ३७।

सूत्र (१०३) मे भगवान महावीर के दस स्वप्नों का सुन्दर वर्णन है।

इस स्थान में यत्र-तत्र विज्ञान सम्बन्धी तथ्यों का भी उद्घाटन हुआ है। जैन परम्परा मे आहारसज्ञा, भयसज्ञा आदि दस संज्ञाएं मान्य रही हैं। सज्ञा के दो अर्थ होते हैं—सवेगात्मक ज्ञान या स्मृति तथा मनोविज्ञान। इन दस सज्ञाओं में आठ संज्ञाएं सवेगात्मक हैं और दो संज्ञाएं—लोकसज्ञा और ओघसज्ञा ज्ञानात्मक है।

आज का विज्ञान छठी इन्द्रिय की कल्पना करता है। उसकी तुलना ओघसज्ञा से की जा सकती है। विस्तार के लिए देखें—टिप्पण ४४।

इस स्थान मे विभिन्न आगमों का विवरण प्राप्त होता है, जो आज अप्राप्त है। सूत्र (११०) मे दस दशाओं का कथन है, ऐसे दस आगमो का कथन है जिनमे दस-दस अध्ययन हैं। प्रथम छह दशाओं का विवरण आज भी प्राप्त है किन्तु अन्तिम चार—बंधदशा, द्विगृद्धिदशा, दीर्घदशा और सक्षेपिकदशा का कोई भी विवरण प्राप्त नही है। वृत्तिकार शीलांकसूरि भी 'अस्माक अप्रतीताः' इतना कहकर विराम ले लेते हैं। इसका अभिप्रायः यही है कि विक्रम की बारहवीं शती तक आते-आते ये चारों ग्रन्थ अविदित हो गए थे।

सूत्र (११६) मे प्रश्नव्याकरण सूत्र के दस अध्ययनों का उल्लेख है। इनके आधार पर समूचे सूत्र के विषयों की परिकल्पना की जा सकती है। वर्तमान में उपलब्ध प्रश्नव्याकरण इससे सर्वथा भिन्न है। इसके रूप का निर्णय कब हुआ,

किसने किया, यह ज्ञात नहीं है। इतना निश्चित है कि यह अर्वाचीन कृति है और नामसाम्य के कारण इसका समावेश आगम सूची में कर लिया गया।

इसी प्रकार आगम ग्रन्थों की विशेष जानकारी के लिए टिप्पण ४५ से ५५ द्रष्टव्य हैं।

कुछेक सूत्रों में सामाजिक विधि-विधानों का भी सुन्दर निरूपण हुआ है। सूत्र(१३७) में दस प्रकार के पुत्रों का उल्लेख है। इनकी व्याख्याएँ विभिन्न प्रकार की सामाजिक विधियों की ओर संकेत करती हैं। 'क्षेत्रज' पुत्र की व्याख्या में बताया गया है कि किसी स्त्री का पति मर गया है, अथवा वह नपुंसक या सन्तानावरोधक व्याधि से ग्रस्त है तो कुल के मुख्यों की आज्ञा से उस स्त्री में, नियोग विधि से, सन्तान उत्पन्न करना भी वैध माना जाता था। इस विधि से उत्पन्न सन्तान को 'क्षेत्रज पुत्र' कहा जाता है। मनुस्मृति में बारह प्रकार के पुत्रों का उल्लेख हुआ है। विशेष विवरण के लिए देखें टिप्पण ५८।

सूत्र (१३५) में दस प्रकार के धर्मों का उल्लेख है। 'धर्म' आज चर्चा का विषय बन चुका है। इस सूत्र में धर्म और कर्त्तव्य का पृथक् निर्देश बहुत सुन्दर ढंग से हुआ है।

सूत्र (१६०) में दसों आश्चर्यों का वर्णन है। आश्चर्य का अर्थ है— कभी-कभी घटित होने वाली घटना। इनमें से १, २, ४ और ६ भगवान महावीर के समय में और शेष भिन्न-भिन्न तीर्थंकरों के समय में हुए हैं। इन दसों आश्चर्यों की पृष्ठभूमि में अनेक ऐतिहासिक तथ्य गर्भित हैं। इनमें दूसरा आश्चर्य है—भगवान महावीर का गर्भापहरण। इसके सन्दर्भ में अनेक तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है। विशेष विवरण के लिए देखें—टिप्पण ६१।

इस स्थान में भी पूर्ववत् विषयों की बहुविधता है। मुख्य रूप से इसमें न्याय शास्त्र के अनेक स्थल, गणित शास्त्र मुख्य भेदों का उल्लेख, वचनानुयोग के प्रकार तथा गणितानुयोग और द्रव्यानुयोग के अनेक सूत्र संकलित हैं। दसवां स्थान होने के कारण इसमें प्रत्येक विषय का कुछ विस्तार से वर्णन हुआ है। इसी प्रकार जीव विज्ञान से सम्बन्धित दस प्रकार के सूक्ष्मों का अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शब्द विज्ञान के विषय में दस प्रकार के शब्द, दस प्रकार के अतीत के इन्द्रिय-विषय, दस प्रकार के वर्तमान के इन्द्रिय-विषय तथा दस प्रकार के अनागत इन्द्रिय-विषय—ये चारों सूत्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। ये इस बात की ओर संकेत करते हैं कि जो भी शब्द बोला जाता है उसकी तरंगें आकाशिक रिकार्ड में अंकित हो जाती हैं। इसके आधार पर भविष्य में उन तरंगों के माध्यम से उच्चारित शब्दों का संकलन किया जा सकता है।

दसमं ठाणं

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
लोगट्ठिति-पदं	**लोकस्थिति-पदम्**	**लोकस्थिति-पद**
१. दसविधा लोगट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—	दशविधा लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—	१. लोकस्थिति दस प्रकार की है—
१. जण्णं जीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायंति—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।	१. यत् जीवा अपद्राय-अपद्राय तत्रैव-तत्रैव भूयः-भूयः प्रत्याजायन्ते—एवमप्येका लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता।	१. जीव बार-बार मरते हैं और वहीं लोक मे बार-बार प्रत्युत्पन्न होते है—यह एक लोकस्थिति है।
२. जण्णं जीवाणं सया समितं पावे कम्मे कज्जति—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।	२. यत् जीवैः सदा समितं पापं कर्म क्रियते—एवमप्येका लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता।	२. जीवों को सदा, प्रतिक्षण पापकर्म [ज्ञानावरण आदि] का बंध होता है—यह एक लोकस्थिति है।
३. जण्णं जीवाणं सया समितं मोहणिज्जे पावे कम्मे कज्जति—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।	३. यत् जीवैः सदा समितं मोहनीयं पापं कर्म क्रियते—एवमप्येका लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता।	३. जीवों के सदा, प्रतिक्षण मोहनीय पाप-कर्म का बंध होता है—यह एक लोकस्थिति है।
४. ण एवं भूतं वा भव्वं वा भविस्सति वा जं जीवा अजीवा भविस्संति, अजीवा वा जीवा भविस्संति—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।	४. न एवं भूतं वा भाव्यं वा भविष्यति वा यज्जीवा अजीवा भविष्यन्ति, अजीवा वा जीवा भविष्यन्ति—एवमप्येका लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता।	४. न ऐसा कभी हुआ है, न ऐसा हो रहा है और न ऐसा कभी होगा कि जीव अजीव हो जाए और अजीव जीव हो जाए—यह एक लोकस्थिति है।
५. ण एवं भूतं वा भव्वं वा भविस्सति वा जं तसा पाणा वोच्छिज्जिस्संति थावरा पाणा भविस्संति, थावरा पाणा वोच्छिज्जिस्संति तसा पाणा भविस्संति—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।	५. न एवं भूतं वा भाव्यं वा भविष्यति वा यत् त्रसाः प्राणा व्यवच्छेत्स्यन्ति स्थावराः प्राणाः भविष्यन्ति, स्थावराः प्राणाः व्यवच्छेत्स्यन्ति त्रसाः प्राणाः भविष्यन्ति—एवमप्येका लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता।	५. न ऐसा कभी हुआ, न ऐसा हो रहा है और न ऐसा कभी होगा कि त्रस जीवों का व्यवच्छेद हो जाए और सब जीव स्थावर हो जाए, स्थावर जीवों का व्यवच्छेद हो जाए और सब जीव त्रस हो जाएं—यह एक लोकस्थिति है।
६. ण एवं भूतं वा भव्वं वा भविस्सति वा जं लोगे अलोगे भविस्सति, अलोगे वा लोगे भविस्सति—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।	६. न एवं भूतं वा भविष्यति वा यत् लोकोऽलोको भविष्यति, अलोको वा लोको भविष्यति—एवमप्येका लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता।	६. न ऐसा कभी हुआ, न ऐसा हो रहा है और न ऐसा कभी होगा कि लोक अलोक हो जाए और अलोक लोक हो जाए—यह एक लोकस्थिति है।

७. ण एवं भूतं वा भव्वं भविस्सति वा जं लोए अलोए पविस्सति, अलोए वा लोए पविस्सति—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

८. जाव ताव लोगे ताव ताव जीवा, जाव ताव जीवा ताव ताव लोए—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

९. जाव ताव जीवाण य पोग्गलाण य गतिपरियाए ताव ताव लोए, जाव ताव लोगे ताव ताव जीवाण य पोग्गलाण य गतिपरियाए—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

१०. सव्वेसुवि ण लोगंतेसु अबद्धपासपुट्ठा पोग्गला लुक्खत्ताए कज्जति, जेणं जीवा य पोग्गला य णो संचायंति बहिया लोगंता गमणयाए—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

७. न एव भूतं वा भाव्यं वा भविष्यति वा यल्लोकः अलोके प्रवेक्ष्यति, अलोकः वा लोके प्रवेक्ष्यति—एवमप्येका लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता।

८. यावत् तावत् लोकः तावत्-तावज्जीवाः, यावत् तावत् जीवास्तावत्तावल्लोकः—एवमप्येका लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. यावत् तावज्जीवाना च पुद्गलानाञ्च गतिपर्यायः तावत् तावल्लोकः, यावत् तावल्लोकः तावत् तावज्जीवानाञ्च पुद्गलानाञ्च गतिपर्यायः—एवमप्येका लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. सर्वेष्वपि लोकान्तेषु अबद्धपार्श्वस्पृष्टाः पुद्गला. रूक्षतया क्रियन्ते, येन जीवाश्च पुद्गलाश्च नो शक्नुवन्ति बहिस्ताल्लोकान्तात् गमनतायै—एवमप्येका लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता।

७. न ऐसा कभी हुआ, न ऐसा हो रहा है और न ऐसा कभी होगा कि लोक अलोक में प्रविष्ट हो जाए और अलोक लोक में प्रविष्ट हो जाए—यह एक लोकस्थिति है।

८. जहा लोक है वहां जीव है और जहां जीव है वहां लोक है—यह एक लोकस्थिति है।

९. जहां जीव और पुद्गलों का गतिपर्याय है वहा लोक है और जहां लोक है वहां जीव और पुद्गलो का गतिपर्याय है—यह एक लोकस्थिति है।

१०. समस्त लोकान्तों के पुद्गल दूसरे रूक्ष पुद्गलो के द्वारा अबद्धपार्श्वस्पृष्ट [अबद्ध और अस्पृष्ट] होने पर भी लोकान्त के स्वभाव से रूक्ष हो जाते हैं, जिससे जीव और पुद्गल लोकान्त से बाहर जाने मे समर्थ नही होते—यह एक लोकस्थिति है।

इंदियत्थ-पदं

२. दसविहे सद्दे पण्णत्ते, तं जहा—

संगह-सिलोगो

१. णीहारि पिंडिमे लुक्खे,
भिण्णे जज्जरिते इ य।
दीहे रहस्से पुहत्ते य,
काकणी खिंखिणिस्सरे॥

इन्द्रियार्थ-पदम्

दशविधः शब्दः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—

संग्रह-श्लोक

१. निर्हारी पिण्डिमः रूक्षः,
भिन्नः जर्जरितोऽपि च।
दीर्घः ह्रस्व. पृथक्त्वश्च,
काकणी किंकिणीस्वरः॥

इन्द्रियार्थ-पद

२. शब्द के दस प्रकार है—

१ निर्हारी—घोषवान् शब्द, जैसे—घण्टा का। २. पिण्डिम—घोषवर्जित शब्द, जैसे—नगाड़े का। ३. रूक्ष—जैसे—कौवे का। ४. भिन्न—वस्तु के टूटने से होने वाला शब्द। ५. जर्जरित—जैसे—तार वाले बाजे का शब्द। ६. दीर्घ[1]—जो दूर तक सुनाई दे, जैसे—मेघ का शब्द।
७. ह्रस्व[2]—सूक्ष्म शब्द, जैसे—वीणा का।
८. पृथक्त्व—अनेक बाजों का सयुक्त शब्द।
९. काकणी—काकली, सूक्ष्मकण्ठों की गीतध्वनि।
१०. किंकिणी स्वर—घूंघरों की ध्वनि।

३. दस इंदियत्था तीता पण्णत्ता, तं जहा—	दश इन्द्रियार्थाः अतीताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	३. इन्द्रियों के अतीतकालीन विषय दस हैं—
देसेणवि एगे सद्दाइं सुणिंसु।	देशेनापि एके शब्दान् अश्रौषुः।	१. किसी ने शरीर के एक भाग से भी शब्द सुने थे।
सव्वेणवि एगे सद्दाइं सुणिंसु।	सर्वेणापि एके शब्दान् अश्रौषुः।	२. किसी ने समस्त शरीर से भी शब्द सुने थे।
देसेणवि एगे रूवाइं पासिंसु।	देशेनापि एके रूपाणि अद्राक्षुः।	३. किसी ने शरीर के एक भाग से भी रूप देखे थे।
सव्वेणवि एगे रूवाइं पासिंसु।	सर्वेणापि एके रूपाणि अद्राक्षुः।	४. किसी ने समस्त शरीर से भी रूप देखे थे।
°देसेणवि एगे गंधाइं जिंघिसु।	देशेनापि एके गन्धान् अघ्रासिषुः।	५. किसी ने शरीर के एक भाग से भी गंध सूंघे थे।
सव्वेणवि एगे गंधाइं जिंघिसु।	सर्वेणापि एके गन्धान् अघ्रासिषुः।	६. किसी ने समस्त शरीर से भी गंध सूंघे थे।
देसेणवि एगे रसाइं आसादेंसु।	देशेनापि एके रसान् अस्वादिषत।	७ किसी ने शरीर के एक भाग से भी रस चखे थे।
सव्वेणवि एगे रसाइं आसादेंसु।	सर्वेणापि एके रसान् अस्वादिषत।	८. किसी ने समस्त शरीर से भी रस चखे थे।
देसेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेंसु°।	देशेनापि एके स्पर्शान् प्रतिसमवेदयन्।	९. किसी ने शरीर के एक भाग से भी स्पर्शों का संवेदन किया था।
सव्वेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेंसु।	सर्वेणापि एके स्पर्शान् प्रतिसमवेदयन्।	१०. किसी ने समस्त शरीर से भी स्पर्शों का संवेदन किया था।

४. दस इंदियत्था पडुप्पण्णा पण्णत्ता, तं जहा—	दश इन्द्रियार्थाः प्रत्युत्पन्नाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	४. इन्द्रियों के वर्तमानकालीन विषय दस हैं—
देसेणवि एगे सद्दाइं सुणेंति।	देशेनापि एके शब्दान् शृण्वन्ति।	१. कोई शरीर के एक भाग से भी शब्द सुनता है।
सव्वेणवि एगे सद्दाइं सुणेंति।	सर्वेणापि एके शब्दान् शृण्वन्ति।	२. कोई समस्त शरीर से भी शब्द सुनता है।
°देसेणवि एगे रूवाइं पासंति।	देशेनापि एके रूपाणि पश्यन्ति।	३. कोई शरीर के एक भाग से भी रूप देखता है।
सव्वेणवि एगे रूवाइं पासंति।	सर्वेणापि एके रूपाणि पश्यन्ति।	४. कोई समस्त शरीर से भी रूप देखता है।
देसेणवि एगे गंधाइं जिघंति।	देशेनापि एके गन्धान् जिघ्रन्ति।	५. कोई शरीर के एक भाग से भी गंध सूंघता है।
सव्वेणवि एगे गंधाइं जिघंति।	सर्वेणापि एके गन्धान् जिघ्रन्ति।	६. कोई समस्त शरीर से भी गंध सूंघता है।
देसेणवि एगे रसाइं आसादेंति।	देशेनापि एके रसान् आस्वदन्ते।	७. कोई शरीर के एक भाग से भी रस चखता है।
सव्वेणवि एगे रसाइं आसादेंति।	सर्वेणापि एके रसान् आस्वदन्ते।	८. कोई समस्त शरीर से भी रस चखता है।
देसेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेंति।	देशेनापि एके स्पर्शान् प्रतिसंवेदयन्ति।	९. कोई शरीर के एक भाग से भी स्पर्शों का संवेदन करता है।
सव्वेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेंति।	सर्वेणापि एके स्पर्शान् प्रतिसंवेदयन्ति।	१०. कोई समस्त शरीर से भी स्पर्शों का संवेदन करता है।

५. दस इंदियत्था अणागता पण्णत्ता, तं जहा—
देसेणवि एगे सद्दाइं सुणिस्संति।
सव्वेणवि एगे सद्दाइं सुणिस्संति।
°देसेणवि एगे रूवाइं पासिस्संति।
सव्वेणवि एगे रूवाइं पासिस्संति।
देसेणवि एगे गंधाइं जिंघिस्संति।
सव्वेणवि एगे गंधाइं जिंघिस्संति।
देसेणवि एगे रसाइं आसादेस्संति।
सव्वेणवि एगे रसाइं आसादेस्संति।
देसेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेस्संति।°
सव्वेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेस्संति।

दश इन्द्रियार्थाः अनागताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
देशेनापि एके शब्दान् श्रोष्यन्ति।
सर्वेणापि एके शब्दान् श्रोष्यन्ति।
देशेनापि एके रूपाणि द्रक्ष्यन्ति।
सर्वेणापि एके रूपाणि द्रक्ष्यन्ति।
देशेनापि एके गन्धान् घ्रास्यन्ति।
सर्वेणापि एके गन्धान् घ्रास्यन्ति।
देशेनापि एके रसान् आस्वदिष्यन्ति।
सर्वेणापि एके रसान् आस्वदिष्यन्ति।
देशेनापि एके स्पर्शान् प्रतिसवेदयिष्यन्ति।
सर्वेणापि एके स्पर्शान् प्रतिसवेदयिष्यन्ति।

५—इन्द्रियों के भविष्यत्कालीन विषय दस हैं—
१. कोई शरीर के एक भाग से भी शब्द सुनेगा।
२. कोई समस्त शरीर से भी शब्द सुनेगा।
३. कोई शरीर के एक भाग से भी रूप देखेगा।
४. कोई समस्त शरीर से भी रूप देखेगा।
५. कोई शरीर के एक भाग से भी गंध सूंघेगा।
६. कोई समस्त शरीर से भी गंध सूंघेगा।
७. कोई शरीर के एक भाग से भी रस चखेगा।
८. कोई समस्त शरीर से भी रस चखेगा।
९. कोई शरीर के एक भाग से भी स्पर्शों का संवेदन करेगा।
१०. कोई समस्त शरीर से भी स्पर्शों का सवेदन करेगा।

अच्छिण्ण-पोग्गल-चलण-पदं

६. दसहिं ठाणेहिं अच्छिण्णे पोग्गले चलेज्जा, तं जहा—
आहारिज्जमाणे वा चलेज्जा।
परिणामेज्जमाणे वा चलेज्जा।
उस्ससिज्जमाणे वा चलेज्जा।
णिस्ससिज्जमाणे वा चलेज्जा।
वेदेज्जमाणे वा चलेज्जा।
णिज्जरिज्जमाणे वा चलेज्जा।
विउव्विज्जमाणे वा चलेज्जा।
परियारिज्जमाणे वा चलेज्जा।
जक्खाइट्ठे वा चलेज्जा।
वातपरिगए वा चलेज्जा।

अच्छिन्न-पुद्गल-चलन-पदम्

दशभिः स्थानैः अच्छिन्नः पुद्गलः चलेत्, तद्यथा—
आह्रियमाणो वा चलेत्।
परिणम्यमानो वा चलेत्।
उच्छ्वस्यमानो वा चलेत्।
निःश्वस्यमानो वा चलेत्।
वेद्यमानो वा चलेत्।
निर्जीर्यमाणो वा चलेत्।
विक्रियमाणो वा चलेत्।
परिचार्यमाणो वा चलेत्।
यक्षाविष्टो वा चलेत्।
वातपरिगतो वा चलेत्।

अच्छिन्न-पुद्गल-चलन-पद

६. दस स्थानों से अच्छिन्न [स्कंध से संलग्न] पुद्गल चलित होता है'—
१. आहार के रूप में लिया जाता हुआ पुद्गल चलित होता है।
२. आहार के रूप में परिणत किया जाता हुआ पुद्गल चलित होता है।
३. उच्छ्वास के रूप में लिया जाता हुआ पुद्गल चलित होता है।
४. निश्वास के रूप में लिया जाता हुआ पुद्गल चलित होता है।
५. वेद्यमान पुद्गल चलित होता है।
६. निर्जीर्यमान पुद्गल चलित होता है।
७. वैक्रिय शरीर के रूप में परिणममान पुद्गल चलित होता है।
८. परिचारणा [संभोग] के समय पुद्गल चलित होता है।
९. शरीर में यक्ष के प्रविष्ट होने पर पुद्गल चलित होता है।
१०. देहगत वायु या सामान्य वायु की प्रेरणा से पुद्गल चलित होता है।

कोधुप्पत्ति-पदं

७. दसहिं ठाणेहिं कोधुप्पत्ती सिया, तं जहा—
मणुण्णाइं मे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाइं अवहरिंसु।
अमणुण्णाइं मे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाइं उवहरिंसु।
मणुण्णाइं मे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाइं अवहरइ।
अमणुण्णाइं मे सद्द-फरिस-°रस-रूव°-गंधाइं उवहरति।
मणुण्णाइं मे सद्द-°फरिस-रस-रूव-गंधाइं° अवहरिस्सति।
अमणुण्णाइं मे सद्द-°फरिस-रस-रूव गंधाइं° उवहरिस्सति।
मणुण्णाइं मे सद्द-°फरिस-रस-रूव°-गंधाइं अवहरिंसु वा अवहरइ वा अवहरिस्सति वा।
अमणुण्णाइं मे सद्द-°फरिस-रस-रूव-गंधाइं° उवहरिंसु वा उवहरति वा उवहरिस्सति वा।
मणुण्णामणुण्णाइंमेसद्द-°फरिस-रस-रूव-गंधाइं° अवहरिंसु वा अवहरति वा अवहरिस्सति वा, उवहरिंसु वा उवहरति वा उवहरिस्सति वा।
अहं च णं आयरिय-उवज्झायाणं सम्मं वट्टामि, ममं च णं आयरिय-उवज्झाया मिच्छं विप्पडिवण्णा।

क्रोधोत्पत्ति-पदम्

दशभिः स्थानैः क्रोधोत्पत्तिः स्यात्, तद्यथा—
मनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् अपाहार्षीत्।
अमनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् उपाहार्षीत्।
मनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् अपहरति।
अमनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् उपहरति।
मनोज्ञान मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् अपहरिष्यति।
अमनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् उपहरिष्यति।
मनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् अपाहार्षीत् वा अपहरति वा अपहरिष्यति वा।
अमनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् उपाहार्षीत् वा उपहरति वा उपहरिष्यति वा।
मनोज्ञाऽमनोज्ञान् मे शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् अपाहार्षीत् वा अपहरति वा अपहरिष्यति वा, उपाहार्षीत् वा उपहरति वा उपहरिष्यति वा।
अहं च आचार्योपाध्याययोः सम्यग् वर्त्ते, मां च आचार्योपाध्यायौ मिथ्या विप्रतिपन्नौ।

क्रोधोत्पत्ति-पद

७. दस कारणों से क्रोध की उत्पत्ति होती है—
१. अमुक व्यक्ति ने मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध का अपहरण किया था।
२. अमुक व्यक्ति ने अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध मुझे उपहृत किए हैं।
३. अमुक व्यक्ति मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध का अपहरण करता है।
४. अमुक व्यक्ति अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध मुझे उपहृत करता है।
५. अमुक व्यक्ति मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध का अपहरण करेगा।
६. अमुक व्यक्ति अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध मुझे उपहृत करेगा।
७. अमुक व्यक्ति ने मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध का अपहरण किया था, करता है और करेगा।
८. अमुक व्यक्ति ने अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध मुझे उपहृत किए हैं, करता है और करेगा।
९. अमुक व्यक्ति ने मनोज्ञ तथा अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध का अपहरण किया है, करता है और करेगा तथा उपहृत किए हैं, करता है और करेगा।
१०. मैं आचार्य और उपाध्याय के प्रति सम्यग् वर्तन [अनुकूल व्यवहार] करता हूं, परन्तु आचार्य और उपाध्याय मेरे साथ मिथ्यावर्तन [प्रतिकूल व्यवहार] करते हैं।

संजम-असंजम-पदं

८. दसविधे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविकाइयसंजमे,
°आउकाइयसंजमे,
तेउकाइयसंजमे,
वाउकाइयसंजमे,°
वणस्सतिकाइयसंजमे,
बेइंदियसंजमे,
तेइंदियसंजमे,
चउरिंदियसंजमे,
पंचिंदियसंजमे,
अजीवकायसंजमे।

संयम-असंयम-पदम्

दशविधः संयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकसंयमः,
अप्कायिकसंयमः,
तेजस्कायिकसंयमः,
वायुकायिकसंयमः,
वनस्पतिकायिकसंयमः,
द्वीन्द्रियसंयमः,
त्रीन्द्रियसंयमः,
चतुरिन्द्रियसंयमः,
पञ्चेन्द्रियसंयमः,
अजीवकायसंयमः।

संयम-असंयम-पद

८. संयम के दस प्रकार हैं—
१. पृथ्वीकायिक संयम,
२. अप्कायिक संयम,
३. तेजस्कायिक संयम,
४. वायुकायिक संयम,
५. वनस्पतिकायिक संयम,
६. द्वीन्द्रिय संयम,
७. त्रीन्द्रिय संयम,
८. चतुरिन्द्रिय संयम,
९. पञ्चेन्द्रिय संयम,
१०. अजीवकाय संयम।

९. दसविधे असंजमे पण्णत्ते, तं जहा—
पुढविकाइयअसंजमे,
आउकाइयअसंजमे,
तेउकाइयअसंजमे,
वाउकाइयअसंजमे,
वणस्सतिकाइयअसंजमे,
°बेइंदियअसंजमे,
तेइंदियअसंजमे,
चउरिंदियअसंजमे,
पंचिंदियअसंजमे,°
अजीवकायअसंजमे।

दशविधः असंयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकासंयमः,
अप्कायिकासंयमः,
तेजस्कायिकासंयमः,
वायुकायिकासंयमः,
वनस्पतिकायिकासंयमः,
द्वीन्द्रियासंयमः,
त्रीन्द्रियासंयमः,
चतुरिन्द्रियासंयमः,
पञ्चेन्द्रियासंयमः,
अजीवकायासंयमः।

९. असंयम के दस प्रकार हैं—
१. पृथ्वीकायिक असंयम,
२. अप्कायिक असंयम,
३. तेजस्कायिक असंयम,
४. वायुकायिक असंयम,
५. वनस्पतिकायिक असंयम,
६. द्वीन्द्रिय असंयम,
७. त्रीन्द्रिय असंयम,
८. चतुरिन्द्रिय असंयम,
९. पञ्चेन्द्रिय असंयम,
१०. अजीवकाय असंयम।

संवर-असंवर-पदं

१०. दसविधे संवरे पण्णत्ते, तं जहा—
सोतिंदियसंवरे, °चक्खिंदियसंवरे,
घाणिंदियसंवरे, जिब्भिंदियसंवरे,°
फासिंदियसंवरे, मणसंवरे,
वयसंवरे, कायसंवरे,
उवकरणसंवरे, सूचीकुसग्गसंवरे।

संवर-असंवर-पदम्

दशविधः संवरः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियसंवरः, चक्षुरिन्द्रियसंवरः,
घ्राणेन्द्रियसंवरः, जिह्वेन्द्रियसंवरः,
स्पर्शेन्द्रियसंवरः, मनःसंवरः, वचःसंवरः,
कायसंवरः, उपकरणसंवरः,
शुचीकुशाग्रसंवरः।

संवर-असंवर-पद

१०. संवर के दस प्रकार हैं—
१. श्रोत्र-इन्द्रिय संवर,
२. चक्षु-इन्द्रिय संवर,
३. घ्राण-इन्द्रिय संवर,
४. रसन-इन्द्रिय संवर,
५. स्पर्शन-इन्द्रिय संवर,
६. मन संवर, ७. वचन संवर,
८. काय संवर, ९. उपकरण संवर[1],
१०. सूचीकुशाग्र संवर[2]।

११. दसविधे असंवरे पण्णत्ते, तं जहा—
सोतिंदियअसंवरे, °चक्खिदियअसंवरे, घाणिंदियअसंवरे, जिब्भिदियअसंवरे, फासिंदियअसंवरे, मणअसंवरे, वयअसंवरे, कायअसंवरे, उवकरणअसंवरे,°
सूचीकुसग्गअसंवरे,

दशविधः असंवरः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियासंवर, चक्षुरिन्द्रियासंवरः, घ्राणेन्द्रियासंवरः, जिह्वेन्द्रियासंवरः, स्पर्शेन्द्रियासंवरः, मनोसंवरः, वचोसंवरः, कायासंवरः, उपकरणासंवरः, शूचीकुशाग्रासंवरः ।

११. असंवर के दस प्रकार है—
१. श्रोत्र-इन्द्रिय असंवर,
२. चक्षु-इन्द्रिय असंवर,
३. घ्राण-इन्द्रिय असंवर,
४. रसन-इन्द्रिय असवर,
५. स्पर्शन-इन्द्रिय असंवर,
६. मन असंवर, ७. वचन असंवर,
८. काय असवर, ९. उपकरण असंवर,
१०. सूचीकुशाग्र असंवर ।

अहमंत-पदं

अहमन्त-पदम्

अहमन्त-पद

१२. दसहिं ठाणेहिं अहमंतीति थंभिज्जा, तं जहा—
जातिमएण वा, कुलमएण वा, °बलमएण वा, रूवमएण वा, तवमएण वा, सुतमएण वा, लाभमएण वा,° इस्सरियमएण वा, णागसुवण्णा वा मे अंतियं हव्वमागच्छंति,
पुरिसधम्मातो वा मे उत्तरिए आहोधिए णाणदंसणे समुप्पण्णे।

दशभिः स्थानैः अहमन्तीति स्तभ्नीयात्, तद्यथा—
जातिमदेन वा, कुलमदेन वा, बलमदेन वा, रूपमदेन वा, तपःमदेन वा, श्रुतमदेन वा, लाभमदेन वा, ऐश्वर्यमदेन वा, नागसुपर्णाः वा ममान्तिकं अर्वाग् आगच्छन्ति,
पुरुषधर्मात् वा मम औत्तरिकं आधोवधिकं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम् ।

१२. दस स्थानों से व्यक्ति अपने-आप को अन्त [चरमकोटि का] मानकर स्तब्ध होता है—
१. जाति के मद से, २. कुल के मद से,
३. बल के मद से, ४. रूप के मद से,
५. तप के मद से, ६. श्रुत के मद से,
७. लाभ के मद से, ८. ऐश्वर्य के मद से,
९. नागकुमार अथवा सुपर्णकुमार मेरे पास दौड़े-दौड़े आते हैं ।
१०. साधारण पुरुषों के ज्ञान-दर्शन से अधिक अवधिज्ञान और अवधिदर्शन मुझे प्राप्त हुए है ।

समाधि-असमाधि-पदं

समाधि-असमाधि-पदम्

समाधि-असमाधि-पद

१३. दसविधा समाधी पण्णत्ता, तं जहा—
पाणातिवायवेरमणे,
मुसावायवेरमणे,
अदिण्णादाणवेरमणे,
मेहुणवेरमणे, परिग्गहवेरमणे,
इरियासमिती, भासासमिती,
एसणासमिती, आयाण-भंड-मत्त-णिक्खेवणासमिति, उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिती।

दशविधः समाधिः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
प्राणातिपातविरमणम्,
मृषावादविरमणम्,
अदत्तादानविरमणम्,
मैथुनविरमणम्, परिग्रहविरमणम्,
ईर्यासमितिः, भाषासमितिः,
एषणासमितिः, आदान-भण्ड-अमत्र-निक्षेपणासमितिः, उच्चार-प्रश्रवण-श्लेष्म-सिंघाणक-जल्ल-पारिष्ठापनिकासमितिः ।

१३. समाधि के दस प्रकार हैं—
१. प्राणातिपात विरमण,
२. मृषावाद-विरमण,
३. अदत्तादान-विरमण,
४. मैथुन-विरमण, ५. परिग्रह-विरमण,
६. ईर्यासमिति, ७. भाषासमिती
८. एषणासमिति, ९. आदान-भण्ड-अमत्र-निक्षेप-समिति, १०. उच्चार-प्रश्रवण-श्लेष्म-सिंघाण-जल्ल-पारिष्ठापनिका-समिति ।

१४. दसविधा असमाधी पण्णत्ता, तं जहा—
पाणातिवाते, °मुसावाते, अदिण्णादाणे, मेहुणे,° परिग्गहे, इरियाऽसमिती, °भासाऽसमिती, एसणाऽसमिती, आयाण-भंड-मत्त-णिक्खेवणाऽवणाऽसमिती, उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-जल्ल-पारिट्ठावणियाऽसमिती।

दशविधः असमाधिः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
प्राणातिपातः, मृषावादः, अदत्तादानं, मैथुन, परिग्रहः, ईर्याऽसमितिः, भाषाऽसमितिः, एषणाऽसमितिः, आदान-भण्ड-अमत्र-निक्षेपणाऽसमितिः, उच्चार-प्रश्रवण-श्लेष्म-सिंघाणक-जल्ल-पारिष्ठापनिकाऽसमितिः।

१४. असमाधि के दस प्रकार हैं—
१. प्राणातिपात का अविरमण,
२. मृषावाद का अविरमण,
३. अदत्तादान का अविरमण,
४ मैथुन का अविरमण,
५ परिग्रह का अविरमण,
६. ईर्या की असमिति—असम्यक् प्रवृत्ति,
७. भाषा की असमिति,
८. एषणा की असमिति,
९. आदान-भण्ड-अमत्र-निक्षेप की असमिति
१०. उच्चार-प्रस्रवण-श्लेष्म-सिंघाण-जल्ल-पारिष्ठापनिका की असमिति।

पव्वज्जा-पदं

प्रव्रज्या-पदम्

प्रव्रज्या-पद

१५ दसविधा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

दशविधा प्रव्रज्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

१५ प्रव्रज्या के दस प्रकार है[1]—

संगहणी-गाहा

१. छंदा रोसा परिजुण्णा,
सुविणा पडिस्सुता चेव।
सारणिया रोगिणिया,
अणाढिता देवसण्णत्ती॥
वच्छाणुबंधिया।

संग्रहणी-गाथा

१. छन्दा रोषा परिद्यूना,
स्वप्ना प्रतिश्रुता चैव।
स्मारणिका रोगिणिका,
अनादृता देवसज्ञप्ति.॥
वत्साऽनुबन्धिका।

१. छन्दा—अपनी या दूसरों की इच्छा से ली जाने वाली।
२ रोषा—क्रोध से ली जाने वाली।
३ परिद्यूना—दरिद्रता से ली जाने वाली।
४ स्वप्ना—स्वप्न के निमित्त से ली जाने वाली या स्वप्न मे ली जाने वाली।
५. प्रतिश्रुता—पहले की हुई प्रतिज्ञा के कारण ली जाने वाली।
६. स्मारणिका—जन्मान्तरो की स्मृति होने पर ली जाने वाली।
७. रोगिणिका—रोग का निमित्त मिलने पर ली जाने वाली।
८. अनादृता—अनादर होने पर ली जाने वाली।
९ देवसंज्ञप्ति—देव के द्वारा प्रतिबुद्ध हो कर ली जाने वाली।
१०. वत्सानुबन्धिका—दीक्षित होते हुए पुत्र के निमित्त से ली जाने वाली।

समणधम्म-पदं

१६. दसविधे समणधम्मे पण्णत्ते, तं जहा—
खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे, सच्चे, संजमे, तवे, चियाए, बंभचेरवासे।

श्रमणधर्म-पदम्

दशविधः श्रमणधर्मः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
क्षान्तिः, मुक्तिः, आर्जवं, मार्दवं, लाघवं, सत्यं, संयमः, तपः, त्यागः, ब्रह्मचर्यवासः।

श्रमणधर्म-पद

१६. श्रमण-धर्म के दस प्रकार हैं—
१. क्षान्ति, २. मुक्ति—निर्लोभता, अनासक्ति। ३. आर्जव, ४. मार्दव, ५. लाघव, ६. सत्य, ७. संयम, ८. तप, ९. त्याग—अपने साम्भोगिक साधुओं को भोजन आदि का दान, १०. ब्रह्मचर्यवास।

वेयावच्च-पदं

१७. दसविधे वेयावच्चे पण्णत्ते, तं जहा—
आयरियवेयावच्चे,
उवज्झायवेयावच्चे,
थेरवेयावच्चे,
तवस्सिवेयावच्चे,
गिलाणवेयावच्चे,
सेहवेयावच्चे, कुलवेयावच्चे,
गणवेयावच्चे, संघवेयावच्चे,
साहम्मियवेयावच्चे।

वैयावृत्त्य-पदम्

दशविधं वैयावृत्त्यं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आचार्यवैयावृत्त्यं, उपाध्यायवैयावृत्त्यं, स्थविरवैयावृत्त्यं, तपस्विवैयावृत्त्यं, ग्लानवैयावृत्त्यं, शैक्षवैयावृत्त्यं, कुलवैयावृत्त्यं, गणवैयावृत्त्यं, संघवैयावृत्त्यं, साधर्मिकवैयावृत्त्यम्।

वैयावृत्त्य-पद

१७. वैयावृत्त्य के दस प्रकार हैं—
१. आचार्य का वैयावृत्त्य।
२. उपाध्याय का वैयावृत्त्य।
३. स्थविर का वैयावृत्त्य।
४. तपस्वी का वैयावृत्त्य।
५. ग्लान का वैयावृत्त्य।
६. शैक्ष का वैयावृत्त्य।
७. कुल का वैयावृत्त्य।
८. गण का वैयावृत्त्य।
९. संघ का वैयावृत्त्य।
१०. साधर्मिक का वैयावृत्त्य।

परिणाम-पदं

१८. दसविधे जीवपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—
गतिपरिणामे, इंदियपरिणामे, कसायपरिणामे, लेसापरिणामे, जोगपरिणामे, उवओगपरिणामे, णाणपरिणामे, दंसणपरिणामे, चरित्तपरिणामे, वेयपरिणामे।

१९. दसविधे अजीवपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—
बंधणपरिणामे, गतिपरिणामे, संठाणपरिणामे, भेदपरिणामे, वण्णपरिणामे, रसपरिणामे, गंधपरिणामे, फासपरिणामे, अगुरुलहुपरिणामे, सद्दपरिणामे।

परिणाम-पदम्

दशविधः जीवपरिणामः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
गतिपरिणामः, इन्द्रियपरिणामः, कषायपरिणामः, लेश्यापरिणामः, योगपरिणामः, उपयोगपरिणामः, ज्ञानपरिणामः, दर्शनपरिणामः, चरित्रपरिणामः, वेदपरिणामः।

दशविधः अजीवपरिणामः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
बन्धनपरिणामः, गतिपरिणामः, संस्थानपरिणामः, भेदपरिणामः, वर्णपरिणामः, रसपरिणामः, गन्धपरिणामः, स्पर्शपरिणामः, अगुरुलघुपरिणामः, शब्दपरिणामः।

परिणाम-पद

१८. जीव-परिणाम के दस प्रकार हैं—
१. गतिपरिणाम, २. इन्द्रियपरिणाम, ३. कषायपरिणाम, ४. लेश्यापरिणाम, ५. योगपरिणाम, ६. उपयोगपरिणाम, ७. ज्ञानपरिणाम, ८. दर्शनपरिणाम, ९. चारित्रपरिणाम, १०. वेदपरिणाम,

१९. अजीव-परिणाम के दस प्रकार हैं—
१. बन्धनपरिणाम—संहत होना।
२. गतिपरिणाम, ३. संस्थानपरिणाम,
४. भेदपरिणाम—टूटना।
५. वर्णपरिणाम, ६. रसपरिणाम,
७. गंधपरिणाम, ८. स्पर्शपरिणाम,
९. अगुरुलघुपरिणाम,
१०. शब्दपरिणाम।

असज्झाइय-पदं

२०. दसविधे अंतलिक्खए असज्झाइए पण्णत्ते, तं जहा—
उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, णिग्घाते, जुवए, जक्खालित्ते, धूमिया, महिया रयुग्घाते।

२१. दसविधे ओरालिए असज्झाइए पण्णत्ते, तं जहा—
अट्ठि, मंसे, सोणिते, असुइसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराए सूरोवराए, पडणे, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

संजम-असंजम-पदं

२२. पंचिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स दसविधे संजमे कज्जति, तं जहा—
सोतामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति।
सोतामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।
°चक्खुमयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति।
चक्खुमएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।
घाणामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति।
घाणामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।
जिब्भामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति।
जिब्भामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।
फासामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति°।
फासामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।।

अस्वाध्यायिक-पदम्

दशविधं आन्तरिक्षकं अस्वाध्यायिकं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
उल्कापातः, दिग्दाहः, गर्जितं, विद्युत्, निर्घातः, यूपकः, यक्षादीप्तं, धूमिका, महिका, रजउद्घातः।

दशविधं औदारिकं अस्वाध्यायिकं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
अस्थि, मांस, शोणितं, अशुचिसामन्तं, श्मशानसामन्तं, चन्द्रोपरागः, सूरोपरागः, पतनं, राजविग्रहः, उपाश्रयस्यान्तः औदारिकं शरीरकम्।

संयम-असंयम-पदम्

पञ्चेन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य दशविधः संयमः क्रियते, तद्यथा—
श्रोत्रमयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।
श्रोत्रमयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति।
चक्षुर्मयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।
चक्षुर्मयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति।
घ्राणमयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।
घ्राणमयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति।
जिह्वामयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।
जिह्वामयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति।
स्पर्शमयात् सौख्यात् अव्यपरोपयिता भवति।
स्पर्शमयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति।

अस्वाध्यायिक-पद

२०. अन्तरिक्ष-सम्बन्धी अस्वाध्याय के दस प्रकार हैं[1]—
१. उल्कापात, २. दिग्दाह, ३. गर्जन, ४. विद्युत्, ५. निर्घात—कौंधना। ६. यूपक, ७. यक्षादीप्त, ८. धूमिका, ९. महिका, १०. रजउद्घात।

२१. औदारिक अस्वाध्याय के दस प्रकार हैं[2]—
१. अस्थि, २. मांस, ३. रक्त, ४. अशुचि के पास, ५. श्मशान के पास, ६. चन्द्र-ग्रहण, ७. सूर्य-ग्रहण, ८. पतन—प्रमुख व्यक्ति का मरण। ९. राज्य-विप्लव, १०. उपाश्रय के भीतर सौ हाथ तक कोई औदारिक कलेवर के होने पर।

संयम-असंयम-पद

२२. पञ्चेन्द्रिय जीवों का आरम्भ नहीं करने वाले के दस प्रकार का संयम होता है—
१. श्रोत्रमय सुख का वियोग नहीं करने से,
२. श्रोत्रमय दुःख का संयोग नहीं करने से,
३. चक्षुमय सुख का वियोग नहीं करने से,
४. चक्षुमय दुःख का संयोग नहीं करने से,
५. घ्राणमय सुख का वियोग नहीं करने से,
६. घ्राणमय दुःख का संयोग नहीं करने से,
७. रसमय सुख का वियोग नहीं करने से,
८. रसमय दुःख का संयोग नहीं करने से,
९. स्पर्शमय सुख का वियोग नहीं करने से,
१०. स्पर्शमय दुःख का संयोग नहीं करने से।

२३. °पंचिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स दसविधे असंजमे कज्जति, तं जहा—
सोतामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति।
सोतामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।
चक्खुमयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति।
चक्खुमएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।
घाणामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति।
घाणामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।
जिब्भामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति।
जिब्भामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।
फासामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति।
फासामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति°।

पञ्चेन्द्रियान् जीवान् समारभमाणस्य दशविधः असंयमः क्रियते, तद्यथा—
श्रोत्रमयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।
श्रोत्रमयेन दुःखेन संयोजयिता भवति।
चक्षुर्मयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।
चक्षुर्मयेन दुःखेन संयोजयिता भवति।
घ्राणमयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।
घ्राणमयेन दुःखेन संयोजयिता भवति।
जिह्वामयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।
जिह्वामयेन दुःखेन संयोजयिता भवति।
स्पर्शमयात् सौख्यात् व्यपरोपयिता भवति।
स्पर्शमयेन दुःखेन संयोजयिता भवति।

२३. पञ्चेन्द्रिय जीवों का आरम्भ करने वाले के दस प्रकार का असंयम होता है—
१. श्रोत्रमय सुख का वियोग करने से।
२. श्रोत्रमय दुःख का संयोग करने से।
३. चक्षुमय सुख का वियोग करने से।
४. चक्षुमय दुःख का संयोग करने से।
५. घ्राणमय सुख का वियोग करने से।
६. घ्राणमय दुःख का संयोग करने से।
७. रसमय सुख का वियोग करने से।
८. रसमय दुःख का संयोग करने से।
९. स्पर्शमय सुख का वियोग करने से।
१०. स्पर्शमय दुःख का संयोग करने से।

सुहुम-पदं

२४. दस सुहुमा पण्णत्ता, तं जहा—
पाणसुहुमे, पणगसुहुमे, °बीयसुहुमे, हरितसुहुमे, पुप्फसुहुमे, अंडसुहुमे, लेणसुहुमे,° सिणेहसुहुमे, गणियसुहुमे, भंगसुहुमे।

सूक्ष्म-पदम्

दश सूक्ष्माणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
प्राणसूक्ष्म, पनकसूक्ष्मं, बीजसूक्ष्मं, हरितसूक्ष्म, पुष्पसूक्ष्मं, अण्डसूक्ष्मं, लयनसूक्ष्मं, स्नेहसूक्ष्म, गणितसूक्ष्मं, भङ्गसूक्ष्मम्।

सूक्ष्म-पद

२४. सूक्ष्म दस हैं"—
१. प्राणसूक्ष्म—सूक्ष्म जीव।
२. पनकसूक्ष्म—काई।
३. बीजसूक्ष्म—चावल आदि के अग्रभाग की कलिका।
४. हरितसूक्ष्म—सूक्ष्म तृण आदि।
५. पुष्पसूक्ष्म—वट आदि के पुष्प।
६. अण्डसूक्ष्म—चीटी आदि के अण्डे।
७. लयनसूक्ष्म—कीडीनगरा।
८. स्नेहसूक्ष्म—ओस आदि।
९. गणितसूक्ष्म—सूक्ष्म बुद्धिगम्य गणित।
१०. भंगसूक्ष्म—सूक्ष्म बुद्धिगम्य विकल्प।

महाणदी-पदं

२५. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं गंगा-सिंधु-महाणदीओ दस महाणदीओ समप्पेंति, तं जहा—

जउणा, सरऊ, आवी, कोसी, मही, सतद्दू, वितत्था, विभासा, एरावती, चंदभागा।

२६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रत्ता-रत्तवतीओ महाणदीओ दस महाणदीओ समप्पेंति, तं जहा—

किण्हा, महाकिण्हा, णीला, महाणीला, महातीरा, इंदा, °इंदसेणा, सुसेणा, वारिसेणा,° महाभोगा।

रायहाणी-पदं

२७. जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे दस रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. चंपा महुरा वाणारसी य सावत्थि तह य साकेतं।
हत्थिणउर कंपिल्लं, मिहिला कोसंबि रायगिहं॥

महानदी-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे गङ्गा-सिन्धू-महानद्योः दश महानद्यः समर्पयन्ति, तद्यथा—

यमुना, सरयूः, आवी, कोशी, मही, शतद्रुः, वितस्ता, विपाशा, ऐरावती, चन्द्रभागा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे रक्तारक्तवत्यो र्महानद्योः दश महानद्यः समर्पयन्ति, तद्यथा—

कृष्णा, महाकृष्णा, नीला, महानीला, महातीरा, इन्द्रा, इन्द्रसेना, सुषेणा, वारिषेणा, महाभोगा।

राजधानी-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे दश राजधान्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. चंपा मथुरा वाणारसी च श्रावस्तिः तथा च साकेतम्।
हस्तिनापुरं काम्पिल्यं, मिथिला कोशाम्बी राजगृहम्।

महानदी-पद

२५. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के दक्षिण में महानदी गगा और सिंधु में दस महानदियां मिलती हैं[४]—

१. यमुना, २. सरयू, ३. आपी, ४. कोशी, ५. मही, ६. शतद्रू, ७. वितस्ता, ८. विपाशा, ९. ऐरावती, १०. चन्द्रभागा।

२६. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर मे महानदी रक्ता और रक्तवती में दस महानदिया मिलती है—

१. कृष्णा, २. महाकृष्णा, ३. नीला, ४. महानीला, ५ तीरा, ६. महातीरा, ७. इन्द्रा, ८. इन्द्रसेना, ९. वारिषेणा, १०. महाभोगा।

राजधानी-पद

२७. जम्बूद्वीप द्वीप के भरतवर्ष में दस राजधानियां प्रज्ञप्त हैं[५]—

१. चम्पा—अंगदेश की।
२. मथुरा—सूरसेन की।
३. वाराणसी—काशी राज्य की।
४. श्रावस्ती—कुणाल की।
५. साकेत—कोशल की।
६. हस्तिनापुर—कुरु की।
७. कांपिल्य—पांचाल की।
८. मिथिला—विदेह की।
९. कौशाम्बी—वत्स की।
१०. राजगृह—मगध की।

राय-पदं

२८. एयासु णं दससु रायहाणीसु दस रायाणो मुंडा भवेत्ता °अगाराओ अणगारियं° पव्वइया, तं जहा—
भरहे, सगरे, मघवं, सणंकुमारे, संती, कुंथू, अरे, महापउमे, हरिसेणे, जयणामे।

राज-पदम्

एतासु दशसु राजधानीसु दश राजानः मुण्डाः भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजिता, तद्यथा—
भरतः, सगरः, मघवा, सनत्कुमारः, शान्तिः, कुन्थुः, अरः, महापद्मः, हरिषेणः, जयनामः।

राज-पद

२८. इन दस राजधानियों में दस राजा मुडित होकर, अगार से अणगार अवस्था मे प्रव्रजित हुए थे[५]—
१. भरत, २. सगर, ३. मघवा, ४. सनत्कुमार, ५. शान्ति, ६. कुन्थु, ७. अर, ८. महापद्म, ९. हरिषेण, १०. जय।

मंदर-पदं

२९. जंबुद्दीवे दीवे मंदरे पव्वए दस जोयणसयाइं उव्वेहेणं, धरणितले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, उवरिं दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं, दसदसाइं जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।

मन्दर-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरः पर्वतः दश योजनशतानि उद्वेधेन, धरणितले दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण, उपरि दश योजनशतानि विष्कम्भेण, दशदशानि योजनसहस्राणि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्तः।

मन्दर-पद

२९. जम्बूद्वीप द्वीप में मन्दर पर्वत एक हजार योजन गहरा है—भूगर्भ में है। भूमितल पर उसकी चौडाई दस हजार योजन की है। ऊपर—पण्डकवन के प्रदेश में—एक हजार योजन चौडा है। उसका सर्व परिमाण एक लाख योजन का है।

दिसा-पदं

३०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स बहुमज्झदेसभागे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिम-हेट्ठिल्लेसु खुड्डगपतरेसु, एत्थ णं अट्ठपएसिए रुयगे पण्णत्ते, जओ णं इमाओ दसदिसाओ पवहंति, तं जहा—
पुरत्थिमा, पुरत्थिमदाहिणा, दाहिणा, दाहिणपच्चत्थिमा, पच्चत्थिमा, पच्चत्थिमुत्तरा, उत्तरा, उत्तरपुरत्थिमा, उड्ढा, अहा।

दिशा-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य बहुमध्यदेशभागे अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः उपरितन-अधस्तनेषु क्षुल्लकप्रतरेषु, अत्र अष्टप्रादेशिकः रुचकः प्रज्ञप्तः, यत इमा दश दिशः प्रवहन्ति, तद्यथा—
पौरस्त्या, पौरस्त्यदक्षिणा, दक्षिणा, दक्षिणपाश्चात्या, पाश्चात्या, पाश्चात्योत्तरा, उत्तरा, उत्तरपौरस्त्या, ऊर्ध्वा, अधः।

दिशा-पद

३०. जम्बूद्वीप द्वीप मे मन्दर पर्वत के बहुमध्य-देशभाग मे इसी रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के क्षुल्लकप्रतर में गोस्तनाकार चार प्रदेश हैं तथा निचले क्षुल्लकप्रतर में भी गोस्तनाकार चार प्रदेश है। इस प्रकार यह अष्टप्रादेशिक रुचक हैं। इससे दस दिशाएं निकलती हैं—
१. पूर्व, २. पूर्व-दक्षिण, ३. दक्षिण, ४. दक्षिण-पश्चिम, ५. पश्चिम, ६. पश्चिम-उत्तर, ७. उत्तर, ८. उत्तर-पूर्व, ९. ऊर्ध्व, १०. अधस्।

३१. एतासि णं दसण्हं दिसाणं दस णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

एतासां दशानां दिशां दश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

३१. इन दस दिशाओं के दस नाम है—

संगहणी-गाहा

१. इंदा अग्गेइ जम्मा य,
णेरती वारुणी य वायव्वा ।
सोमा ईसाणी य,
विमला य तमा य बोद्धव्वा ।।

संग्रहणी-गाथा

१. ऐन्द्री आग्नेयी याम्या च,
नैर्ऋती वारुणी च वायव्या ।
सौम्या ऐशानी च,
विमला च तमा च बोद्धव्या ।।

१. ऐन्द्री, २. आग्नेयी, ३. याम्या, ४. नैर्ऋती, ५. वारुणी, ६. वायव्या, ७. सोमा, ८. ईशानी, ९. विमला, १०. तमा ।

लवणसमुद्द-पदं

३२. लवणस्स णं समुद्दस्स दस जोयण-सहस्साइं गोतित्थविरहिते खेत्ते पण्णत्ते ।

लवणसमुद्र-पदम्

लवणस्य समुद्रस्य दश योजनसहस्राणि गोतीर्थविरहित क्षेत्र प्रज्ञप्तम् ।

लवणसमुद्र-पद

३२. लवण समुद्र का दस हजार योजन क्षेत्र गोतीर्थ-विरहित'' [समतल] है ।

३३. लवणस्स णं समुद्दस्स दस जोयण-सहस्साइं उदगमाले पण्णत्ते ।

लवणस्य समुद्रस्य दश योजनसहस्राणि उदगमाला प्रज्ञप्ता ।

३३. लवण समुद्र की उदकमाला'' [वेला] दस हजार योजन चौड़ी है ।

पायाल-पदं

३४. सव्वेवि णं महापाताला दसदसाइं जोयणसहस्साइं उव्वेहेणं पण्णत्ता, मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, बहुमज्झदेसभागे एगपएसियाए सेढीए दसदसाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, उवरिं मुहमूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता ।

तेसि णं महापातालाणं कुड्डा सव्व-वइरामया सव्वत्थ समा दस जोय-णसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता ।

पाताल-पदम्

सर्वेपि महापातालाः दशदशानि योजन-सहस्राणि उद्वेधेन प्रज्ञप्ताः, मूले दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः, बहुमध्यदेशभागे एकप्रादेशिक्या श्रेण्या दशदशानि योजनसहस्राणि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः, उपरि मुखमूले दश योजन-सहस्राणि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः ।

तेषां महापातालानां कुड्यानि सर्व-वज्रमयानि सर्वत्र समानि दश योजन-शतानि बाहल्येन प्रज्ञप्तानि ।

पाताल-पद

३४. सभी महापातालो की गहराई एक लाख योजन की है । मूल-भाग मे उनकी चौडाई दस हजार योजन की है । मूल-भाग की चौडाई से दोनो ओर एक प्रदेशात्मक श्रेणी की वृद्धि होते-होते बहुमध्यदेशभाग मे एक लाख योजन की चौड़ाई हो जाती है । ऊपर मुख-भाग मे उनकी चौड़ाई दस हजार योजन की है ।

उन महापातालो की भीतें वज्रमय और सर्वत्र बराबर है । उनकी मोटाई एक हजार योजन की है ।

३५. सव्वेवि णं खुड्डा पाताला दस जोयणसताइं उव्वेहेणं पण्णत्ता, मूले दसदसाइं जोयणाइं विक्खं-भेणं पण्णत्ता, बहुमज्झदेसभागे एगपएसियाए सेढीए दस जोयण-सताइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, उवरिं मुहमूले दसदसाइं जोयणाइं विक्खं-भेणं पण्णत्ता ।

तेसि णं खुड्डापातालाणं कुड्डा सव्व-वइरामया सव्वत्थ समा दस जोय-णाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता ।

सर्वेपि क्षुद्राः पाताल. दश योजनशतानि उद्वेधेन प्रज्ञप्ताः, मूले दशदशानि योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः, बहु-मध्यदेशभागे एकप्रादेशिक्या श्रेण्या दश योजनशतानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः, उपरि मुखमूले दशदशानि योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः ।

तेषां क्षुद्रापातालानां कुड्यानि सर्व-वज्रमयानि सर्वत्र समानि दश योज-नानि बाहल्येन प्रज्ञप्तानि ।

३५. सभी छोटे पातालो की गहराई एक हजार योजन की है । मूल-भाग मे उनकी चौडाई सौ योजन की है । मूलभाग की चौड़ाई से दोनों ओर एक प्रदेशात्मक श्रेणी की वृद्धि होते-होते बहुमध्यदेशभाग मे एक हजार योजन की चौड़ाई हो जाती है । ऊपर मुख भाग मे उनकी चौड़ाई सौ योजन की है ।

उन छोटे पातालों की समस्त भीतें वज्र-मय और सर्वत्र बराबर है । उनकी मोटाई दस योजन की है ।

पव्वय-पदं

३६. धायइसंडगा णं मंदरा दस जोयण-सयाइं उव्वेहेणं, धरणीतले देसूणाइं दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, उवरिं दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

३७. पुक्खरवरदीवड्ढगा णं मंदरा दस-जोयणसयाइं उव्वेहेणं, एवं चेव।

३८. सव्वेवि णं वट्टवेयड्ढपव्वता दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा पल्लगसंठिता; दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

खेत्त-पदं

३९. जंबुद्दीवे दीवे दस खेत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
भरहे, एरवते, हेमवते, हेरण्णवते, हरिवस्से, रम्मगवस्से, पुव्वविदेहे, अवरविदेहे, देवकुरा, उत्तरकुरा।

पव्वय-पदं

४०. माणुसुत्तरे णं पव्वते मूले दस बावीसे जोयणसते विक्खंभेणं पण्णत्ते।

४१. सव्वेवि णं अंजण-पव्वता दस जोयणसयाइं उव्वेहेणं, मूले दस जोयण-सहस्साइं विक्खंभेणं, उवरिं दस जोयणसताइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

४२. सव्वेवि णं दहिमुहपव्वता दस जोयण-सताइं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा पल्लगसंठिता, दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

पर्वत-पदम्

धातकीषण्डका मन्दरा दश योजन-शतानि उद्वेधेन, धरणीतले देशोनानि दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण, उपरि दश योजनशतानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः।

पुष्करवरद्वीपार्धका मन्दरा दश योजन-शतानि उद्वेधेन, एवं चैव।

सर्वेपि वृत्तवैताढ्यपर्वता दश योजन-शतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, दश गव्यूति-शतानि उद्वेधेन, सर्वत्र समानि पल्यक-संस्थिता:, दश योजनशतानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः।

क्षेत्र-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे दश क्षेत्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
भरत, ऐरवत, हैमवतं, हैरण्यवत, हरि-वर्षं, रम्यकवर्षं, पूर्वविदेहः, अपरविदेहः, देवकुरुः, उत्तरकुरुः।

पर्वत-पदम्

मानुषोत्तरो पर्वतो मूले दश द्वाविंशति योजनशत विष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

सर्वेपि अञ्जन-पर्वता दश योजन-शतानि उद्वेधेन, मूले दश योजन-सहस्राणि विष्कम्भेण, उपरि दशयोजन-शतानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः।

सर्वेपि दधिमुखपर्वता दश योजन-शतानि उद्वेधेन, सर्वत्र समाः पल्यक-संस्थिता:, दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः।

पर्वत-पद

३६. धातकीषण्ड के मन्दर पर्वत एक हजार योजन गहरे है—भूगर्भ में हैं। भूमितल पर उनकी चौड़ाई दस हजार योजन से कुछ कम है। वे ऊपर एक हजार योजन चौड़े हैं।

३७. अर्द्धपुष्करवर द्वीप के मन्दर पर्वत एक हजार योजन गहरे है—भूगर्भ में है। शेष पूर्ववत्।

३८. सभी वृत्तवैताढ्य पर्वतो की ऊपर की ऊचाई एक हजार योजन की है। उनकी गहराई एक हजार गाऊ की है। वे सर्वत्र सम है। उनका आकार पल्य जैसा है। उनकी चौडाई एक हजार योजन की है।

क्षेत्र-पद

३९. जम्बूद्वीप द्वीप मे दस क्षेत्र है—
१ भरत, २ ऐरवत, ३ हैमवत, ४ हैरण्यवत, ५ हरिवर्ष, ६ रम्यकवर्ष, ७ पूर्वविदेह, ८ अपरविदेह, ९ देवकुरा, १० उत्तरकुरा।

पर्वत-पद

४०. मानुषोत्तर पर्वत का मूल भाग १०२२ योजन चौड़ा है।

४१. सभी अंजन पर्वतो की गहराई एक हजार योजन की है। मूलभाग मे उनकी चौडाई दस हजार योजन की है। ऊपर के भाग मे उनकी चौड़ाई एक हजार योजन की है।

४२. सभी दधिमुख पर्वतों की गहराई एक हजार योजन की है। वे सर्वत्र सम है। उनका आकार पल्य जैसा है। वे दस हजार योजन चौड़े है।

४३. सव्वेवि णं रतिकरपव्वता दस जोयणसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दसगाउयसताइं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा झल्लरिसंठिता, दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

सर्वेपि रतिकरपर्वता दश योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, दशगव्यूतिशतानि उद्वेधेन, सर्वत्र समाः झल्लरिसंस्थिताः, दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः।

४३. सभी रतिकर पर्वतों की ऊपर की ऊंचाई एक हजार योजन की है। उनकी गहराई एक हजार गाऊ की है। वे सर्वत्र सम हैं। उनका आकार झालर जैसा है। उनकी चौड़ाई दस हजार योजन की है।

४४. रुयगवरे णं पव्वते दस जोयणसयाइं उव्वेहेणं, मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, उवरिं दस जोयणसताइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

रुचकवरः पर्वतः दश योजनशतानि उद्वेधेन, मूले दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण, उपरि दश योजनशतानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

४४. रुचकवर पर्वत की गहराई एक हजार योजन की है। मूलभाग में उसकी चौड़ाई दस हजार योजन की है। ऊपर के भाग की चौड़ाई एक हजार योजन की है।

४५. एवं कुंडलवरेवि।

एवं कुण्डलवरोऽपि।

४५. कुण्डलवर पर्वत रुचकवर पर्वत की भांति वक्तव्य है।

दवियाणुओग-पदं

द्रव्यानुयोग-पदम्

द्रव्यानुयोग-पद

४६. दसविहे दवियाणुओगे पण्णत्ते तं जहा—
दवियाणुओगे, माउयाणुओगे, एगट्ठियाणुओगे, करणाणुओगे, अप्पितणप्पिते, भाविताभाविते, बाहिराबाहिरे, सासतासासते, तहणाणे, अतहणाणे।

दशविधः द्रव्यानुयोगः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
द्रव्यानुयोगः, मातृकानुयोगः, एकार्थिकानुयोगः, करणानुयोगः, अर्पितानर्पितः, भाविताभावितः, बाह्याबाह्य, शाश्वताशाश्वत, तथाज्ञानं, अतथाज्ञानम्।

४६. द्रव्यानुयोग के दस प्रकार हैं[१८]—
१. द्रव्यानुयोग, २. मातृकानुयोग, ३. एकार्थिकानुयोग, ४. करणानुयोग, ५. अर्पितानर्पित, ६. भाविताभावित, ७. बाह्याबाह्य, ८. शाश्वताशाश्वत, ९. तथाज्ञान, १०. अतथाज्ञान।

उप्पातपव्वय-पदं

उत्पातपर्वत-पदम्

उत्पातपर्वत-पद

४७. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तिगिंछिकूडे उप्पातपव्वते मूले दस बावीसे जोयणसते विक्खंभेणं पण्णत्ते।

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य तिगिंछिकूटः उत्पातपर्वतः मूले दश द्वाविंशति योजनशत विष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

४७. असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के तिगिंछिकूट नामक उत्पात पर्वत[१९] का मूलभाग १०२२ योजन चौड़ा है।

४८. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमस्स महारण्णो सोमप्पभे उप्पातपव्वते दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउयसताइं उव्वेहेणं, मूले दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य सोमस्य महाराजस्य सोमप्रभः उत्पातपर्वतः दश योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, दश गव्यूतिशतानि उद्वेधेन, मूले दश योजनशतानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

४९. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो जमस्स महारण्णो जमप्पभे उप्पातपव्वते एवं चेव।

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य यमस्य महाराजस्य यमप्रभः उत्पातपर्वतः एव चैव।

५०. एवं वरुणस्सवि।

एवं वरुणस्यापि।

५१. एवं वेसमणस्सवि।

एवं वैश्रमणस्यापि।

४८-५१ असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर के लोकपाल महाराज सोम, यम, वरुण और वैश्रमण के स्वनामख्यात—सोमप्रभ, यमप्रभ, वरुणप्रभ और वैश्रमणप्रभ—उत्पात पर्वतों की ऊपर से ऊंचाई एक-एक हजार योजन की है। उनकी गहराई एक-एक हजार गाऊ की है। मूलभाग में उनकी चौड़ाई एक-एक हजार योजन की है।

५२. बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो रुयगिंदे उप्पातपव्वते मूले दस बावीसे जोयणसते विक्खंभेणं पण्णत्ते।

बलेः वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य रुचकेन्द्रः उत्पातपर्वतः मूले दश द्वाविंशति योजनशतं विष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

५२. वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि के रुचकेन्द्र नामक उत्पात पर्वत का मूलभाग १०२२ योजन चौड़ा है।

५३. बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सोमस्स एवं चेव, जधा चमरस्स लोगपालाणं तं चेव बलिस्सवि।

बलेः वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य सोमस्य एवं चैव, यथा चमरस्य लोकपालानां तच्चैव बलेरपि।

५३. वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि के लोकपाल महाराज सोम, यम, वैश्रमण और वरुण के स्वनामख्यात उत्पात पर्वतों की ऊपर से ऊंचाई एक-एक हजार योजन की है। उनकी गहराई एक-एक हजार गाऊ की है। मूलभाग में उनकी चौड़ाई एक-एक हजार योजन की है।

५४. धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो धरणप्पभे उप्पातपव्वते दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउयसताइं उव्वेहेणं, मूले दस जोयणसताइं विक्खंभेणं।

धरणस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य धरणप्रभः उत्पातपर्वतः दश योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, दश गव्यूतिशतानि उद्वेधेन, मूले दश योजनशतानि विष्कम्भेण।

५४. नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के धरणप्रभ नामक उत्पात पर्वत की ऊपर से ऊंचाई एक हजार योजन की है। उसकी गहराई एक हजार गाऊ की है। मूलभाग मे उसकी चौडाई एक हजार योजन की है।

५५. धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो काल-वालस्स महारण्णो कालवालप्पभे उप्पातपव्वते जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेण एवं चेव।

धरणस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य कालपालस्य महाराजस्य कालपालप्रभः उत्पातपर्वतः योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन एवं चैव।

५६. एवं जाव संखवालस्स।

एवं यावत् शङ्खपालस्य।

५५, ५६. नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के लोकपाल महाराज कालपाल, कोलपाल, शैलपाल और शंखपाल के स्वनामख्यात उत्पात पर्वतो की ऊपर से ऊंचाई सौ-सौ योजन की है। उनकी गहराई एक-एक हजार गाऊ की है। मूलभाग मे उनकी चौडाई एक-एक हजार योजन की है।

५७. एवं भूताणंदस्सवि।

एवं भूतानन्दस्यापि।

५७. भूतेन्द्र भूतराज भूतानन्द के भूतानन्दप्रभ नामक उत्पात पर्वत की ऊपर से ऊंचाई एक हजार योजन की है। उसकी गहराई एक हजार गाऊ की है। मूलभाग मे उसकी चौड़ाई एक हजार योजन की है।

५८. एवं लोगपालाणवि से जहा धरणस्स।

एवं लोकपालानामपि तस्य यथा धरणस्य।

५८. इसी प्रकार इसके लोकपाल महाराज कालपाल, कोलपाल, शंखपाल, शैलपाल के स्वनामख्यात उत्पात पर्वतों की ऊपर से ऊंचाई एक-एक हजार योजन की है। उनकी गहराई एक-एक हजार गाऊ की है। मूलभाग मे उनकी चौड़ाई एक-एक हजार योजन की है।

५९. एवं जाव थणियकुमाराणं सलोगपालाणं भाणियव्वं, सव्वेसिं उप्पायपव्वया भाणियव्वा सरिसणामगा।

एवं यावत् स्तनितकुमाराणां सलोकपालानां भणितव्यम्, सर्वेषां उत्पातपर्वताः भणितव्याः सदृग्नामकाः।

५९. इसी प्रकार सुपर्णकुमार यावत् स्तनितकुमार देवों के इन्द्र तथा उनके लोकपालों के स्वनामख्यात उत्पात पर्वतों का वर्णन धरण तथा उसके लोकपालों के उत्पात पर्वतों की भांति वक्तव्य है।

६०. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सक्कप्पभे उप्पातपव्वते दस जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउयसहस्साइं उव्वेहेणं, मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य शक्रप्रभः उत्पातपर्वतः दश योजनसहस्राणि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, दश गव्यूतिसहस्राणि उद्वेधेन, मूले दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

६०. देवेन्द्र देवराज शक्र के शक्रप्रभ नामक उत्पात पर्वत की ऊपर से ऊंचाई दस हजार योजन की है। उसकी गहराई दस हजार गाऊ की है। मूलभाग में उसकी चौड़ाई दस हजार योजन की है।

६१. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो।
जधा सक्कस्स तधा सव्वेसिं लोगपालाणं, सव्वेसिं च इंदाणं जाव अच्चुयत्ति। सव्वेसिं पमाणमेगं।

शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य।
यथा शक्रस्य तथा सर्वेषां लोकपालानाम्, सर्वेषां च इन्द्राणां यावत् अच्युत-इति। सर्वेषां प्रमाणमेकम्।

६१. देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज सोम के सोमप्रभ उत्पात पर्वत का वर्णन शक्र के उत्पात पर्वत की भांति वक्तव्य है। शेष सभी लोकपालों तथा अच्युत पर्यन्त सभी इन्द्रों के उत्पात पर्वतों का वर्णन शक्र की भांति वक्तव्य है। क्योंकि उन सबका क्षेत्र-प्रमाण एक जैसा है।

ओगाहणा-पदं

अवगाहना-पदम्

अवगाहना-पद

६२. बायरवणस्सइकाइयाणं उक्कोसेणं दस जोयणसयाइं सरीरोगाहणा पण्णत्ता।

बादरवनस्पतिकायिकानां उत्कर्षेण दश योजनशतानि शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता।

६२. बादर वनस्पतिकायिक जीवों के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की है।

६३. जलचर-पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं उक्कोसेणं दस जोयणसताइं सरीरोगाहणा पण्णत्ता।

जलचर-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां उत्कर्षेण दश योजनशतानि शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता।

६३. तिर्यग्योनिक जलचर पञ्चेन्द्रिय जीवों के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की है।

६४. उरपरिसप्प-थलचर-पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं उक्कोसेणं °दस जोयणसताइं सरीरोगाहणा पण्णत्ता।°

उरःपरिसर्प-स्थलचर-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां उत्कर्षेण दश योजनशतानि शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता।

६४. तिर्यग्योनिक स्थलचर पञ्चेन्द्रिय उरःपरिसर्पों के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की है।

तित्थगर-पदं

तीर्थकर-पदम्

तीर्थंकर-पद

६५. संभवाओ णं अरहातो अभिणंदणे अरहा दसहिं सागरोवमकोडिसतसहस्सेहिं वीतिक्कंतेहिं समुप्पण्णे।

सम्भवाद् अर्हतः अभिनन्दनः अर्हन् दशसु सागरोपमकोटिशतसहस्रेषु व्यतिक्रान्तेषु समुत्पन्नः।

६५. अर्हत् संभव के बाद दस लाख करोड सागरोपम काल व्यतीत होने पर अर्हत् अभिनन्दन समुत्पन्न हुए।

अणंत-पदं

९६. दसविहे अणंतए पण्णत्ते, तं जहा—
णामाणंतए, ठवणाणंतए,
दव्वाणंतए, गणणाणंतए,
पएसाणंतए, एगतोणंतए,
दुहतोणंतए, देसवित्थाराणंतए,
सव्ववित्थाराणंतए, सासताणंतए।

अनन्त-पदम्

दशविधं अनन्तकं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
नामानन्तकं, स्थापनानन्तकं,
द्रव्यानन्तकं, गणनानन्तकं,
प्रदेशानन्तकं, एकतोनन्तकं,
द्विधानन्तकं, देशविस्तारानन्तकं,
सर्वविस्तारानन्तकं, शाश्वतानन्तकम्।

अनन्त-पद

९६. अनन्तक[1] के दस प्रकार हैं—
१. नाम अनन्तक—किसी वस्तु का अनंत ऐसा नाम। २. स्थापना अनन्तक—किसी वस्तु में अनन्तक की स्थापना [आरोपण]। ३. द्रव्य अनन्तक—परिमाण की दृष्टि से अनन्त। ४. गणना अनन्तक—संख्या की दृष्टि से अनन्त। ५. प्रदेश अनन्तक—अवयवों की दृष्टि से अनन्त। ६. एकतः अनन्तक—एक ओर से अनन्त, जैसे—अतीत काल। ७. उभयतः अनन्तक—दो ओर से अनन्त, जैसे—अतीत और अनागत काल। ८. देशविस्तार अनन्तक—प्रतर की दृष्टि में अनन्त। ९. सर्वविस्तार अनन्तक—व्यापकता की दृष्टि से अनन्त। १०. शाश्वत अनन्तक—शाश्वतता की दृष्टि से अनन्त।

पुव्ववत्थु-पदं

९७. उप्पायपुव्वस्स णं दस वत्थू पण्णत्ता।
९८. अत्थिणत्थिप्पवायपुव्वस्स णं दस चूलवत्थू पण्णत्ता।

पूर्ववस्तु-पदम्

उत्पादपूर्वस्य दश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।
अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वस्य दश चूला-वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।

पूर्ववस्तु-पद

९७. उत्पाद पूर्व के वस्तु [अध्याय] दस हैं।
९८. अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व के चूला-वस्तु दस हैं।

पडिसेवणा-पदं

९९. दसविहा पडिसेवणा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. दप्प पमायऽणाभोगे,
आउरे आवतीसु य।
संकिते सहसक्कारे,
भयप्पओसा य वीमंसा॥

प्रतिषेवणा-पदम्

दशविधा प्रतिषेवणा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. दर्पः प्रमादोनाभोगः,
आतुरे आपत्सु च।
शङ्किते सहसाकारे,
भय प्रदोषाच्च विमर्शः॥

प्रतिषेवणा-पद

९९. प्रतिषेवणा के दस प्रकार हैं[2]—
१. दर्पप्रतिषेवणा—दर्प [उद्धतभाव] से किया जाने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। २. प्रमादप्रतिषेवणा—कषाय, विकथा आदि से किया जाने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। ३. अनाभोग प्रतिषेवणा—विस्मृतिवश किया जाने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। ४. आतुरप्रतिषेवणा—भूख-प्यास और रोग से अभिभूत होकर किया जाने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। ५. आपत्प्रतिषेवणा—आपदा प्राप्त होने पर किया जाने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। ६. शंकितप्रतिषेवणा—एषणीय आहार आदि को भी शंका सहित लेने से होने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। ७. सहसाकरणप्रतिषेवणा—अकस्मात् होने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। ८. भयप्रतिषेवणा—भयवश होने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। ९. प्रदोषप्रतिषेवणा—क्रोध आदि कषाय से किया जाने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन। १०. विमर्शप्रतिषेवणा—शिष्यों की परीक्षा के लिए किया जाने वाला प्राणातिपात आदि का आसेवन।

आलोयणा-पदं

७०. दस आलोयणादोसा पण्णत्ता, तं जहा—
१. आकंपइत्ता अणुमाणइत्ता,
जं दिट्ठं बायरं च सुहुमं वा।
छण्णं सद्दाउलगं,
बहुजण अव्वत्त तस्सेवी ॥

आलोचना-पदम्

दश आलोचना दोषाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
१. आकम्प्य अनुमन्य,
यद् दृष्टं बादरं च सूक्ष्मं वा।
छन्नं शब्दाकुलकं,
बहुजनं अव्यक्तं तत्सेवी ॥

आलोचना-पद

७०. आलोचना के दस दोष हैं[1]—

१. आकम्प्य—सेवा आदि के द्वारा आलोचना देने वाले की आराधना कर आलोचना करना। २. अनुमान्य—मैं दुर्बल हूं, मुझे थोड़ा प्रायश्चित्त देना—इस प्रकार अनुनय कर आलोचना करना। ३ यद्दृष्ट—आचार्य आदि के द्वारा जो दोष देखा गया है—उसी की आलोचना करना। ४ बादर—केवल बड़े दोषों की आलोचना करना। ५. सूक्ष्म—केवल छोटे दोषों की आलोचना करना। ६. छन्न—आचार्य न सुन पाए वैसे आलोचना करना। ७ शब्दाकुल—जोर-जोर से बोलकर दूसरे अगीतार्थ साधु सुनें वैसे आलोचना करना। ८. बहुजन—एक के पास आलोचना कर फिर उसी दोष की दूसरे के पास आलोचना करना। ९ अव्यक्त—अगीतार्थ के पास दोषों की आलोचना करना। १० तत्सेवी—आलोचना देने वाले जिन दोषों का स्वयं सेवन करते हैं, उनके पास उन दोषों की आलोचना करना।

७१. दसहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति अत्तदोसमालोएत्तए, तं जहा—
जाइसंपण्णे, कुलसंपण्णे,
°विणयसंपण्णे, णाणसंपण्णे,
दंसणसंपण्णे, चरित्तसंपण्णे,°
खंते, दंते, अमायी,
अपच्छाणुतावी।

दशभिः स्थानैः संपन्नः अनगारः अर्हति आत्मदोष आलोचयितुम्, तद्यथा—
जातिसम्पन्नः, कुलसम्पन्नः,
विनयसम्पन्नः, ज्ञानसम्पन्नः
दर्शनसम्पन्नः, चरित्रसम्पन्नः,
क्षान्तः, दान्तः, अमायी,
अपश्चात्तापी।

७१ दस स्थानों से सम्पन्न अनगार अपने दोषों की आलोचना करने के लिए योग्य होता है[1]—
१ जातिसम्पन्न, २ कुलसम्पन्न,
३. विनयसम्पन्न, ४. ज्ञानसम्पन्न,
५ दर्शनसम्पन्न, ६. चारित्रसम्पन्न,
७. क्षान्त, ८ दान्त, ९ अमायावी,
१०. अपश्चात्तापी।

७२. दसहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति आलोयणं पडिच्छित्तए, तं जहा—
आयारवं, आहारवं, °ववहारवं, ओवीलए, पकुव्वए, अपरिस्साई, णिज्जावए,° अवायदंसी, पियधम्मे, दढधम्मे।

दशभिः स्थानैः सम्पन्नः अनगारः अर्हति आलोचनां प्रतिदातुम्, तद्यथा—
आचारवान्, आधारवान्, व्यवहारवान्, अपव्रीडकः, प्रकारी, अपरिश्रावी, निर्यापकः, अपायदर्शी, प्रियधर्मा, दृढधर्मा।

७२. दस स्थानों से सम्पन्न अनगार आलोचना देने के योग्य होता है[२४]—

१ आचारवान्—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य—इन पांच आचारों से युक्त। २. आधारवान्—आलोचना लेने वाले के द्वारा आलोच्यमान समस्त अतिचारों को जानने वाला। ३. व्यवहारवान्—आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत—इन पांच व्यवहारों को जानने वाला। ४. अपव्रीडक—आलोचना करने वाले व्यक्ति में, वह लाज या संकोच से मुक्त होकर सम्यक् आलोचना कर सके वैसा, साहस उत्पन्न करने वाला। ५. प्रकारी—आलोचना करने पर विशुद्धि कराने वाला। ६. अपरिश्रावी—आलोचना करने वाले के आलोचित दोषों को दूसरों के सामने प्रगट न करने वाला। ७. निर्यापक—बड़े प्रायश्चित्त को भी निभा सके—ऐसा सहयोग देने वाला। ८. अपायदर्शी—प्रायश्चित्त-भङ्ग से तथा सम्यक् आलोचना न करने से उत्पन्न दोषों को बताने वाला। ९. प्रियधर्मा—जिसे धर्म प्रिय हो। १०. दृढधर्मा—जो आपत्काल में भी धर्म से विचलित न हो।

पायच्छित्त-पदं

प्रायश्चित्त-पदम्

प्रायश्चित्त-पद

७३. दसविधे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—
आलोयणारिहे, °पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउसग्गारिहे, तवारिहे, छेयारिहे, मूलारिहे,° अणवट्ठप्पारिहे, पारंचियारिहे।

दशविध प्रायश्चित्तं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आलोचनार्ह, प्रतिक्रमणार्ह, तदुभयार्ह, विवेकार्ह, व्युत्सर्गार्ह, तपोर्ह, छेदार्ह, मूलार्ह, अनवस्थाप्यार्ह, पाराञ्चितार्हम्।

७३. प्रायश्चित्त दस प्रकार का होता है[२५]—

१. आलोचना-योग्य—गुरु के समक्ष अपने दोषों का निवेदन।
२. प्रतिक्रमण-योग्य—'मिथ्या मे दुष्कृतम्'—मेरा दुष्कृत निष्फल हो इसका भावना पूर्वक उच्चारण।
३. तदुभय-योग्य—आलोचना और प्रतिक्रमण।
४. विवेक-योग्य—अशुद्ध आहार आदि का उत्सर्ग।
५. व्युत्सर्ग-योग्य—कायोत्सर्ग।
६. तप-योग्य—अनशन, ऊनोदरी आदि।
७. छेद-योग्य—दीक्षा पर्याय का छेदन।
८. मूल-योग्य—पुनर्दीक्षा।
९. अनवस्थाप्य-योग्य—तपस्यापूर्वक पुनर्दीक्षा।
१०. पाराञ्चिक-योग्य—भर्त्सना एवं अवहेलना पूर्वक पुनर्दीक्षा।

मिच्छत्त-पदं

७४. दसविधे मिच्छत्ते पण्णत्ते, तं जहा—
अधम्मे धम्मसण्णा,
धम्मे अधम्मसण्णा,
उम्मग्गे मग्गसण्णा,
मग्गे उम्मग्गसण्णा,
अजीवेसु जीवसण्णा,
जीवेसु अजीवसण्णा,
असाहुसु साहुसण्णा,
साहुसु असाहुसण्णा,
अमुत्तेसु मुत्तसण्णा,
मुत्तेसु अमुत्तसण्णा।

मिथ्यात्व-पदम्

दशविधं मिथ्यात्वं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
अधर्मे धर्मसंज्ञा,
धर्मे अधर्मसंज्ञा,
उन्मार्गे मार्गसंज्ञा,
मार्गे उन्मार्गसंज्ञा,
अजीवेषु जीवसंज्ञा,
जीवेषु अजीवसंज्ञा,
असाधुषु साधुसंज्ञा,
साधुषु असाधुसंज्ञा,
अमुक्तेषु मुक्तसंज्ञा,
मुक्तेषु अमुक्तसंज्ञा।

मिथ्यात्व-पद

७४. मिथ्यात्व के दस प्रकार हैं—
१. अधर्म में धर्म की संज्ञा।
२. धर्म में अधर्म की संज्ञा।
३. अमार्ग में मार्ग[११] की संज्ञा।
४. मार्ग में अमार्ग की संज्ञा।
५. अजीव में जीव की संज्ञा।
६. जीव में अजीव की संज्ञा।
७. असाधु में साधु की संज्ञा।
८. साधु में असाधु की संज्ञा।
९. अमुक्त में मुक्त की संज्ञा।
१०. मुक्त में अमुक्त की संज्ञा।

तित्थगर-पदं

७५. चंदप्पभे णं अरहा दस पुव्वसतसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे °बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

७६. धम्मे णं अरहा दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे°।

७७. णमी णं अरहा दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे °बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे°।

तीर्थंकर-पदम्

चन्द्रप्रभः अर्हन् दश पूर्वशतसहस्राणि सर्वायुः पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रक्षीणः।

धर्मः अर्हन् दश वर्षशतसहस्राणि सर्वायुः पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रक्षीणः।

नमिः अर्हन् दश वर्षसहस्राणि सर्वायुः पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रक्षीणः।

तीर्थंकर-पद

७५. अर्हत् चन्द्रप्रभ दस लाख पूर्व का पूर्णायु पालकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और समस्त दुःखों से रहित हुए।

७६. अर्हत् धर्म दस लाख वर्ष का पूर्णायु पालकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और समस्त दुःखों से रहित हुए।

७७. अर्हत् नमि दस हजार वर्ष का पूर्णायु पालकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और समस्त दुःखों से रहित हुए।

वासुदेव-पदं

७८. पुरिससीहे णं वासुदेवे दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता छट्ठीए तमाए पुढवीए णेरइयत्ताए उववण्णे।

वासुदेव-पदम्

पुरुषसिंहः वासुदेवः दश वर्षशतसहस्राणि सर्वायुः पालयित्वा षष्ठ्यां तमायां पृथिव्यां नैरयिकतया उपपन्नः।

वासुदेव-पद

७८. पुरुषसिंह नामक पांचवें वासुदेव दस लाख वर्ष का पूर्णायु पालकर 'तमा' नामक छठी पृथ्वी में नैरयिक के रूप में उत्पन्न हुए।

तित्थगर-पदं

७९. णेमी णं अरहा दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस य वाससयाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे °बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख°प्पहीणे।

तीर्थंकर-पदम्

नेमिः अर्हन् दश धनूंषि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन दश च वर्षशतानि सर्वायुः पालयित्वा: सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रक्षीणः।

तीर्थंकर-पद

७९. अर्हत् नेमि के शरीर की ऊंचाई दस धनुष्य की थी। वे एक हजार वर्ष का पूर्णायु पालकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और समस्त दुःखों से रहित हुए।

वासुदेव-पदं

८०. कण्हे णं वासुदेवे दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस य वाससयाइं सव्वाउयं पालइत्ता तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए णेरइयत्ताए उववण्णे।

वासुदेव-पद

कृष्णः वासुदेवः दश धनूंषि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, दश च वर्षशतानि सर्वायुः पालयित्वा तृतीयायां बालुकाप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकतया उपपन्नः।

वासुदेव-पद

८०. वासुदेव कृष्ण के शरीर की ऊंचाई दस धनुष्य की थी। वे एक हजार वर्ष का पूर्णायु पालकर 'बालुकाप्रभ' नामक तीसरी पृथ्वी मे नैरयिक के रूप मे उत्पन्न हुए।

भवणवासि-पदं

८१. दसविहा भवणवासी देवा पण्णत्ता, तं जहा—
असुरकुमारा जाव थणियकुमारा।

भवनवासि-पदम्

दशविधाः भवनवासिनः देवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
असुरकुमाराः यावत् स्तनितकुमाराः।

भवनवासि-पद

८१. भवनवासी देव दस प्रकार के हैं—

१. असुरकुमार,	२. नागकुमार,
३. सुपर्णकुमार,	४ विद्युत्कुमार,
५. अग्निकुमार,	६. द्वीपकुमार,
७. उदधिकुमार,	८. दिशाकुमार,
९. वायुकुमार,	१०. स्तनितकुमार।

८२. एएसि णं दसविधाणं भवणवासीणं देवाणं दस चेइयरुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—

एतेषां दशविधानां भवनवासिनां देवानां दश चैत्यरुक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

८२. इन भवनवासी देवो के दस चैत्य वृक्ष है—

संगहणी-गाहा

१. अस्सत्थ सत्तिवण्णे,
सामलि उंबर सिरीस दहिवण्णे।
वंजुल पलास वग्घा,
तते य कणियाररुक्खे॥

संग्रहणी-गाथा

१. अश्वत्थः सप्तपर्णः,
शालमल्युदुम्बरः शिरीषः दधिपर्णः।
वंजुल पलाश व्याघ्राः,
ततश्च कर्णिकाररुक्षः॥

१. अश्वत्थ—पीपल।
२. सप्तपर्ण—सात पत्तों वाला पलाश।
३. शालमली—सेमल।
४. उदुम्बर—गूलर।
५. शिरीष।
६. दधिपर्ण।
७. वंजुल—अशोक।
८. पलाश—तीन पत्तों वाला पलाश।
९. व्याघ्र[१०]—लाल एरण्ड।
१०. कर्णिकार—कनेर।

सोक्ख-पदं

८३. दसविधे सोक्खे पण्णत्ते, तं जहा—
१. आरोग्ग दीहमाउं,
अड्ढेज्जं काम भोग संतोसे।
अत्थि सुहभोग णिक्खम्म-
मेवतत्तो अणाबाहे॥

सौख्य-पदम्

दशविधं सौख्यं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
१. आरोग्यं दीर्घमायुः,
आढ्यत्वं कामः भोगः संतोषः।
अस्ति शुभभोगः निष्क्रमः
एव ततोऽनाबाधः॥

सौख्य-पद

८३. सुख के दस प्रकार हैं[६६]—
१. आरोग्य,
२. दीर्घ आयुष्य,
३. आढ्यता—धन की प्रचुरता।
४. काम—शब्द और रूप।
५. भोग—गंध, रस और स्पर्श।
६. सन्तोष[६७]—अल्पइच्छा।
७. अस्ति—जब-जब जो प्रयोजन होता है उसकी तब-तब पूर्ति हो जाना।
८. शुभभोग—रमणीय विषयों का भोग करना।
९. निष्क्रमण—प्रव्रज्या।
१०. अनाबाध—जन्म, मृत्यु आदि की बाधाओं से रहित—मोक्ष-सुख।

उवघात-विसोहि-पदं

८४. दसविधे उवघाते पण्णत्ते, तं जहा—
उग्गमोवघाते, उप्पायणोवघाते,
•एसणोवघाते, परिकम्मोवघाते,°
परिहरणोवघाते, णाणोवघाते,
दंसणोवघाते, चरित्तोवघाते,
अचियत्तोवघाते, सारक्खणोवघाते।

उपघात-विशोधि-पदम्

दशविधः उपघातः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
उद्गमोपघातः, उत्पादनोपघातः,
एषणोपघातः, परिकर्मोपघातः,
परिधानोपघातः, ज्ञानोपघातः,
दर्शनोपघातः, चरित्रोपघातः,
अप्रीत्युपघातः, संरक्षणोपघातः।

उपघात-विशोधि-पद

८४. उपघात के दस प्रकार हैं—
१ उद्गम [भिक्षा सम्बन्धी दोषों] से होने वाला चारित्र का उपघात।
२. उत्पाद [भिक्षा सम्बन्धी दोषों] से होने वाला चारित्र का उपघात।
३ एषणा [भिक्षा सम्बन्धी दोषों] से होने वाला चारित्र का उपघात।
४ परिकर्म [वस्त्र-पात्र आदि संवारने] से होने वाला चारित्र का उपघात।
५ परिहरण [अकल्प्य उपकरणों के उपभोग] से होने वाला चारित्र का उपघात।
६. प्रमाद आदि से होने वाला ज्ञान का उपघात।
७. शंका आदि से होने वाला दर्शन का उपघात।
८. समितियों के भंग से होने वाला चारित्र का उपघात।
९. अप्रीति उपघात—अप्रीति से होने वाला विनय आदि का उपघात।
१०. संरक्षण उपघात—शरीर आदि में मूर्च्छा रखने से होने वाला परिग्रह-विरति का उपघात।

८५. दसविधा विसोही पण्णत्ता, तं जहा—
उग्गमविसोही, उप्पायणविसोही, °एसणाविसोही, परिकम्मविसोही, परिहरणविसोही, णाणविसोही, दंसणविसोही, चरित्तविसोही, अचियत्तविसोही,° सारक्खणविसोही।

दशविधा विशोधिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
उद्गमविशोधिः, उत्पादनविशोधिः, एषणाविशोधिः, परिकर्मविशोधिः, परिधानविशोधिः, ज्ञानविशोधिः, दर्शनविशोधिः, चरित्रविशोधिः, अप्रीतिविशोधिः, सरक्षणविशोधिः.

८५. विशोधि के दस प्रकार है—
१. उद्गम की विशोधि।
२. उत्पादन की विशोधि।
३. एषणा की विशोधि।
४. परिकर्म-विशोधि,
५. परिहरण-विशोधि।
६. ज्ञान की विशोधि।
७. दर्शन की विशोधि।
८. चारित्र की विशोधि।
९ अप्रीति की विशोधि—अप्रीति का निवारण।
१० सरक्षण-विशोधि—सयम के साधन-भूत उपकरण रखने से होने वाली विशोधि।

संकिलेस-असंकिलेस-पदं

संक्लेश-असंक्लेश-पदम्

संक्लेश-असंक्लेश-पद

८६. दसविधे संकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा—
उवहिसंकिलेसे, उवस्सयसंकिलेसे, कसायसंकिलेसे, भत्तपाणसंकिलेसे, मणसंकिलेसे, वइसंकिलेसे, कायसंकिलेसे, णाणसंकिलेसे, दंसणसंकिलेसे, चरित्तसंकिलेसे।

दशविधः सक्लेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
उपधिसक्लेशः, उपाश्रयसक्लेशः, कषायसक्लेशः, भक्तपानसक्लेशः, मनःसक्लेशः, वाक्सक्लेशः, कायसक्लेशः, ज्ञानसक्लेशः, दर्शनसक्लेशः, चरित्रसक्लेशः।

८६ सक्लेश के दस प्रकार है"—
१. उपधि-सक्लेश—उपधि विषयक असमाधि।
२. उपाश्रय-सक्लेश—स्थान विषयक असमाधि।
३ कषाय-सक्लेश—कषाय से होने वाली असमाधि।
४ भक्तपान-सक्लेश—भक्तपान से होने वाली असमाधि।
५. मन का सक्लेश।
६. वाणी के द्वारा होने वाला सक्लेश।
७. काया से होने वाला सक्लेश।
८ ज्ञान-संक्लेश—ज्ञान की अविशुद्धता।
९. दर्शन-सक्लेश—दर्शन की अविशुद्धता,
१०. चारित्र-सक्लेश—चारित्र की अविशुद्धता।

८७. दसविहे असंकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा—
उवहिअसंकिलेसे, °उवस्सयअसंकिलेसे, कसायअसंकिलेसे, भत्तपाणअसंकिलेसे, मणअसंकिलेसे, वइअसंकिलेसे, कायअसंकिलेसे, णाणअसंकिलेसे, दंसणअसंकिलेसे,° चरित्तअसंकिलेसे।

दशविधः असक्लेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
उपध्यसंक्लेशः, उपाश्रयासक्लेशः, कषायासंक्लेशः, भक्तपानासंक्लेशः, मनोऽसंक्लेशः, वागसक्लेशः, कायासंक्लेशः, ज्ञानासंक्लेशः, दर्शनासंक्लेशः, चरित्रासंक्लेशः।

८७. असंक्लेश के दस प्रकार है—
१. उपधि-असक्लेश,
२. उपाश्रय-असंक्लेश,
३. कषाय-असक्लेश,
४. भक्तपान-असक्लेश,
५. मन-असंक्लेश,
६. वचन-असक्लेश,
७. काय-असक्लेश,
८. ज्ञान-असंक्लेश,
९. दर्शन-असक्लेश,
१०. चारित्र-असक्लेश।

बल-पदं

८८. दसविधे बले पण्णत्ते, तं जहा—
सोतिंदियबले, °चक्खिदियबले, घाणिंदियबले, जिब्भिंदियबले,° फासिंदियबले, णाणबले, दंसणबले, चरित्तबले, तवबले, वीरियबले।

बल-पदम्

दशविध बल प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियबलं, चक्षुरिन्द्रियबलं, घ्राणेन्द्रियबलं, जिह्वेन्द्रियबलं, स्पर्शेन्द्रियबलं, ज्ञानबलं, दर्शनबलं, चरित्रबलं, तपोबलं, वीर्यबलं।

बल-पद

८८. बल [सामर्थ्य] के दस प्रकार हैं—
१. श्रोत्रेन्द्रियबल, २. चक्षुइन्द्रियबल, ३. घ्राणइन्द्रियबल, ४. जिह्वाइन्द्रियबल, ५. स्पर्शइन्द्रियबल, ६. ज्ञानबल, ७. दर्शनबल, ८. चारित्रबल, ९. तपोबल, १०. वीर्यबल।

भासा-पदं

८९. दसविहे सच्चे पण्णत्ते, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. जणवय सम्मय ठवणा,
णामे रूवे पडुच्चसच्चे य।
ववहार भाव जोगे,
दसमे ओवम्मसच्चे य॥

भाषा-पदम्

दशविध सत्य प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. जनपद: सम्मत स्थापना,
नाम रूपं प्रतीत्यसत्य च।
व्यवहार: भाव: योग:,
दशम औपम्यसत्यञ्च॥

भाषा-पद

८९. सत्य के दस प्रकार हैं"—
१. जनपद सत्य, २. सम्मत सत्य, ३. स्थापना सत्य, ४. नाम सत्य, ५. रूप सत्य, ६. प्रतीत्य सत्य, ७. व्यवहार सत्य, ८. भाव सत्य, ९. योग सत्य, १०. औपम्य सत्य।

९०. दसविधे मोसे पण्णत्ते, तं जहा—
१. कोधे माणे माया,
लोभे पिज्जे तहेव दोसे य।
हास भए अक्खाइय,
उवघात णिस्सिते दसमे॥

दशविध मृषा प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
१. क्रोधे माने मायाया,
लोभे प्रेयसि तथैव दोषे च।
हासे भये आख्यायिकाया,
उपघाते निश्रित दशमम्॥

९०. मृषा-वचन के दस प्रकार हैं"—
१. क्रोध निश्रित, २. मान निश्रित, ३. माया निश्रित, ४. लोभ निश्रित, ५. प्रेयस् निश्रित, ६. द्वेष निश्रित, ७. हास्य निश्रित, ८. भय निश्रित, ९. आख्यायिका निश्रित, १०. उपघात निश्रित।

९१. दसविधे सच्चामोसे पण्णत्ते, तं जहा—
उप्पण्णमीसए, विगतमीसए, उप्पण्ण-विगतमीसए, जीवमीसए, अजीवमीसए, जीवाजीवमीसए, अणंतमीसए, परित्तमीसए, अद्धामीसए, अद्धद्धामीसए।

दशविधं सत्यमृषा प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
उत्पन्नमिश्रक, विगतमिश्रक, उत्पन्न-विगतमिश्रक, जीवमिश्रक, अजीवमिश्रक, जीवाजीवमिश्रक, अनन्तमिश्रक, परीतमिश्रक, अध्वामिश्रक, अध्वाऽध्वामिश्रकम्।

९१. सत्यामृषा [मिश्रवचन] के दस प्रकार है—
१. उत्पन्नमिश्रक, २. विगतमिश्रक, ३. उत्पन्नविगतमिश्रत, ४ जीवमिश्रक, ५ अजीवमिश्रक, ६. जीवअजीवमिश्रक, ७. अनन्तमिश्रक, ८. परीतमिश्रक, ९. अद्धा [काल] मिश्रक, १०. अद्धा-अद्धा [कालांश] मिश्रक।

दिट्ठिवाय-पदं

९२. दिट्ठिवायस्स णं दस णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—
दिट्ठिवाएति वा, हेउवाएति वा,
भूयवाएति वा, तच्चावाएति वा,
सम्मावाएति वा, धम्मावाएति वा,
भासाविजएति वा, पुव्वगतेति वा,
अणुजोगगतेति वा,
सव्वपाणभूतजीवसत्तसुहावहेति वा।

दृष्टिवाद-पदम्

दृष्टिवादस्य दश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
दृष्टिवाद इति वा, हेतुवाद इति वा,
भूतवाद इति वा, तत्त्ववाद इति वा,
सम्यग्वाद इति वा, धर्मवाद इति वा,
भाषाविचय इति वा, पूर्वगत इति वा,
अनुयोगगत इनि वा,
सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वसुखावह इति वा।

दृष्टिवाद-पद

९२. दृष्टिवाद के दस नाम हैं—

१. दृष्टिवाद, २. हेतुवाद,
३. भूतवाद, ४. तत्त्ववाद [तथ्यवाद],
५. सम्यग्वाद, ६. धर्मवाद,
७. भाषाविचय [भाषाविजय],
८. पूर्वगत, ९. अनुयोगगत,
१०. सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वसुखावह।

सत्थ-पदं

९३ दसविधे सत्थे पण्णत्ते, तं जहा—

संगह-सिलोगो

१. सत्थमग्गी विसं लोणं,
सिणेहो खारमंबिलं।
दुप्पउत्तो मणो वाया,
काओ भावो य अविरती॥

शस्त्र-पदम्

दशविध शस्त्रं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

संग्रह-श्लोक

१ शस्त्र अग्निः विष लवण,
स्नेहः क्षारः आम्लम्।
दुष्प्रयुक्त मनो वाक्,
कायः भावश्च अविरतिः॥

शस्त्र-पद

९३. शस्त्र[11] के दस प्रकार हैं—

१. अग्नि, २. विष, ३. लवण, ४. स्नेह,
५. क्षार, ६ अम्ल, ७ दुष्प्रयुक्त मन,
८. दुष्प्रयुक्त वचन, ९. दुष्प्रयुक्त काया,
१०. अविरति—
ये चारों [७, ८, ९, १०] भाव—आत्म-परिणामात्मक शस्त्र हैं।

दोस-पदं

९४. दसविहे दोसे पण्णत्ते, तं जहा—
१. तज्जातदोसे मतिभंगदोसे,
पसत्थारदोसे परिहरणदोसे।
सलक्खण-क्कारण-हेउदोसे,
संकामणं णिग्गह-वत्थुदोसे॥

दोष-पदम्

दशविध. दोषः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
१. तज्जातदोषः मतिभङ्गदोषः,
प्रशास्तृदोषः परिहरणदोषः।
स्वलक्षण-कारण-हेतुदोषः,
सक्रामण निग्रह-वस्तुदोषः॥

दोष-पद

९४. दोष के दस प्रकार है[12]—
१. तज्जातदोष—वादकाल मे प्रतिवादी से क्षुब्ध होकर मौन हो जाना।
२. मतिभगदोष—तत्त्व की विस्मृति हो जाना।
३. प्रशास्तृदोष—सभ्य या सभानायक की ओर से होने वाला दोष।
४. परिहरणदोष—वादी द्वारा उपन्यस्त हेतु का छल या जाति से परिहार करना।
५. स्वलक्षणदोष—वस्तु के निर्दिष्ट लक्षण मे अव्याप्त, अतिव्याप्त, असम्भव दोष का होना।
६. कारणदोष—कारण सामग्री के एकाश को कारण मान लेना; पूर्ववर्ती होने मात्र से कारण मान लेना।
७. हेतुदोष—असिद्ध, विरुद्ध, अनैकातिक आदि दोष।
८ सक्रमणदोष—प्रस्तुत प्रमेय को छोड़ अप्रस्तुत प्रमेय की चर्चा करना।
९. निग्रहदोष—छल आदि के द्वारा प्रतिवादी को निगृहीत करना।
१०. वस्तुदोष—पक्ष के दोष।

विसेस-पदं

९५. दसविधे विसेसे पण्णत्ते, तं जहा—
१. वत्थु तज्जातदोसे य,
दोसे एगट्ठिएति य।
कारेण य पडुप्पण्णे,
दोसे णिच्चेहिय अट्ठमे ॥
अत्तणा उवणीते य,
विसेसे ति य ते दस ॥

विशेष-पदम्

दशविधः विशेषः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
१ वस्तु तज्जातदोषश्च,
दोष एकार्थिक इति च।
कारणं च प्रत्युत्पन्न,
दोषो नित्य. अधिकोष्टमः ॥
आत्मना उपनीत च,
विशेष. इति च ते दश ॥

विशेष-पद

९५. विशेष के दस प्रकार हैं"—
१. वस्तुदोषविशेष—पक्ष-दोष के विशेष प्रकार।
२ तज्जातदोषविशेष—वादकाल मे प्रतिवादी से प्राप्त क्षेत्र के विशेष प्रकार।
३. दोषविशेष—अतिभंग आदि दोषो के विशेष प्रकार।
४. एकार्थिकविशेष—पर्यायवाची शब्दों मे निरुर्थक्तिभेद से होने वाला अ-वैशिष्ट्य।
५. कारणविशेष—कारण के विशेष प्रकार।
६. प्रत्युत्पन्नदोषविशेष—वस्तु को क्षणिक मानने पर कृतनाश और आकृत योग नामक दोष।
७. नित्यदोषविशेष—वस्तु को सर्वथा नित्य मानने पर प्राप्त होने वाले दोष के विशेष प्रकार।
८. अधिकदोषविशेष वादकाल मे दृष्टान्त, निगमन आदि का अतिरिक्त प्रयोग।
९. आत्मनाउपनीतविशेष—उदाहरणदोष का एक प्रकार।
१० विशेष—वस्तु का भेदात्मक धर्म।

सुद्धवायाणुओग-पदं

९६ दसविधे सुद्धवायाणुओगे पण्णत्ते, तं जहा—
चंकारे, मंकारे, पिंकारे, सेयंकारे, सायंकारे, एगत्ते, पुधत्ते, संजूहे, संकामिते, भिण्णे।

शुद्धवागनुयोग-पदम्

दशविध· शुद्धवागनुयोग प्रज्ञप्त, तद्यथा—
चकार, मकार, अपिकार·, मेकार·, सायकार एकत्वं, पृथक्त्व, सयूथ, सक्रामित, भिन्नम्।

शुद्धवागनुयोग-पद

९६ शुद्धवचन [वाक्य-निरपेक्ष पदो] का अनुयोग दस प्रकार का होता है"—
१ चकार अनुयोग—चकार के अर्थ का विचार।
२. मकार अनुयोग—मकार का विचार।
३. पिकार अनुयोग—'अपि' के अर्थ का विचार।
४. सेयकार अनुयोग—'से' अथवा 'सेय' के अर्थ का विचार।
५ सायकार अनुयोग—'सायं' आदि निपात शब्दों के अर्थ का विचार।
६. एकत्व अनुयोग—'एक वचन' का विचार।
७ पृथक्त्व अनुयोग—बहुवचन का विचार।
८ सयूथ अनुयोग—समास का विचार।
९. संक्रामित अनुयोग—विभक्ति और वचन के संक्रमण का विचार।
१०. भिन्न अनुयोग—क्रमभेद, कालभेद आदि का विचार।

दाण-पदं

९७. दसविहे दाणे पण्णत्ते, तं जहा—

संगह-सिलोगो

१. अणुकंपा संगहे चेव,
भये कालुणिए ति य।
लज्जाए गारवेणं च,
अहम्मे उण सत्तमे ॥
धम्मे य अट्ठमे वुत्ते,
काहीति य कतंति य ॥

दान-पदम्

दशविधं दानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

संग्रह-श्लोक

१. अनुकम्पा संग्रहश्चैव,
भयं कारुणिक इति च।
लज्जया गौरवेण च,
अधर्मः पुनः सप्तमः ॥
धर्मश्च अष्टमः उक्तः,
करिष्यतीति च कृतमिति च ॥

दान-पद

९७. दान के दस प्रकार हैं[१७]—

१. अनुकम्पादान—करुणा से देना।
२. संग्रहदान—सहायता के लिए देना।
३. भयदान—भय से देना।
४. कारुण्यकदान—मृत के पीछे देना।
५. लज्जादान—लज्जावश देना।
६. गौरवदान—यश के लिए देना, गर्व-पूर्वक देना।
७. अधर्मदान—हिंसा, असत्य आदि पापों में आसक्त व्यक्ति को देना।
८. धर्मदान—संयमी को देना।
९. कृतमितिदान—अमुक ने सहयोग किया था, इसलिए उसे देना।
१०. करिष्यतिदान—अमुक आगे सहयोग करेगा, इसलिए उसे देना।

गति-पदं

९८. दसविधा गती पण्णत्ता, तं जहा—
णिरयगती, णिरयविग्गहगती,
तिरियगती, तिरियविग्गहगती,
°मणुयगती, मणुयविग्गहगती,
देवगती, देवविग्गहगती,°
सिद्धिगती, सिद्धिविग्गहगती।

गति-पदम्

दशविधा गतिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
निरयगतिः, निरयविग्रहगतिः,
तिर्यग्गतिः, तिर्यग्विग्रहगतिः,
मनुजगतिः, मनुजविग्रहगतिः,
देवगतिः, देवविग्रहगतिः,
सिद्धिगतिः, सिद्धिविग्रहगतिः।

गति-पद

९८. गति के दस प्रकार हैं[१८]—
१. नरकगति, २. नरकविग्रहगति,
३. तिर्यञ्चगति, ४. तिर्यञ्चविग्रहगति,
५. मनुष्यगति, ६. मनुष्यविग्रहगति,
७. देवगति, ८. देवविग्रहगति,
९. सिद्धिगति, १०. सिद्धिविग्रहगति।

मुंड-पदं

९९. दस मुंडा पण्णत्ता, तं जहा—
सोतिंदियमुंडे, °चक्खिंदियमुंडे,
घाणिंदियमुंडे, जिब्भिंदियमुंडे,°
फासिंदियमुंडे,° कोहमुंडे,
°माणमुंडे, मायामुंडे,° लोभमुंडे,
सिरमुंडे।

मुण्ड-पदम्

दश मुण्डाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियमुण्डः, चक्षुरिन्द्रियमुण्डः,
घ्राणेन्द्रियमुण्डः, जिह्वेन्द्रियमुण्डः,
स्पर्शेन्द्रियमुण्डः, क्रोधमुण्डः, मानमुण्डः,
मायामुण्डः, लोभमुण्डः, सिरोमुण्डः।

मुण्ड-पद

९९. मुण्ड के दस प्रकार हैं—
१. श्रोत्रेन्द्रिय मुण्ड—श्रोत्रेन्द्रिय के विकार का अपनयन करने वाला।
२. चक्षुइन्द्रिय मुण्ड—चक्षुइन्द्रिय के विकार का अपनयन करने वाला।
३. घ्राणइन्द्रिय मुण्ड—घ्राणइन्द्रिय के विकार का अपनयन करने वाला।
४. जिह्वाइन्द्रिय मुण्ड—रसनइन्द्रिय के विकार का अपनयन करने वाला।
५. स्पर्शइन्द्रिय मुण्ड—स्पर्शनइन्द्रिय के विकार का अपनयन करने वाला।
६. क्रोध मुण्ड—क्रोध का अपनयन करने वाला। ७. मान मुण्ड—मान का अपनयन करने वाला। ८. माया मुण्ड—माया का अपनयन करने वाला। ९. लोभ मुण्ड—लोभ का अपनयन करने वाला। १०. शिर मुण्ड—शिर के केशों का अपनयन करने वाला।

संखाण-पदं

१००. दसविधे संखाणे पण्णत्ते, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. परिकम्मं ववहारो,
रज्जू रासी कला-सवण्णे य।
आवंतावति वग्गो,
घणो य तह वग्गवग्गोवि।।
कप्पो य०।

१०१. दसविधे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा—

१. अणागयमतिक्कंतं,
कोडीसहियं णियंटितं चेव।
सागारमणागारं,
परिमाणकडं णिरवसेसं।
संकेयगं चेव अद्धाए,
पच्चक्खाणं दसविहं तु।।

संख्यान-पदम्

दशविधं संख्यानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. परिकर्म व्यवहारः,
रज्जुः राशिः कला-सवर्ण च।
यावत्तावत् इति वर्गः,
घनश्च तथा वर्गवर्गोऽपि।।
कल्पश्च०।

दशविध प्रत्याख्यान प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

१. अनागतमतिक्रान्त,
कोटिसहित नियन्त्रित चैव।
सागारमनागार,
परिमाणकृत निरवशेषम्।।
सकेतक चैव अध्वाया.,
प्रत्याख्यान दशविधं तु।।

संख्यान-पद

१००. संख्यान के दस प्रकार है"—

१. परिकर्म, २. व्यवहार, ३. रज्जु, ४. राशि, ५. कलासवर्ण, ६. यावत्तावत्, ७. वर्ग, ८. घन, ९. वर्गवर्ग, १०. कल्प।

१०१. प्रत्याख्यान के दस प्रकार है"—

१ अनागतप्रत्याख्यान—भविष्य में करणीय तप को पहले करना।

२ अतिक्रान्तप्रत्याख्यान—वर्तमान मे करणीय तप नही किया जा सके, उसे भविष्य मे करना।

३ कोटिसहितप्रत्याख्यान—एक प्रत्याख्यान का अन्तिम दिन और दूसरे प्रत्याख्यान का प्रारम्भिक दिन हो, वह कोटि सहित प्रत्याख्यान है।

४. नियन्त्रितप्रत्याख्यान—नीरोग या ग्लान अवस्था मे भी 'मैं अमुक प्रकार का तप अमुक-अमुक दिन अवश्य करूंगा'—इस प्रकार का प्रत्याख्यान करना।

५. साकारप्रत्याख्यान—[अपवाद सहित] प्रत्याख्यान।

६ अनाकारप्रत्याख्यान—[अपवादरहित] प्रत्याख्यान।

७. परिमाणकृतप्रत्याख्यान—दत्ति, कवल, भिक्षा, गृह, द्रव्य आदि के परिमाण युक्त प्रत्याख्यान।

८ निरवशेषप्रत्याख्यान—अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का सम्पूर्ण परित्याग युक्त प्रत्याख्यान।

९ संकेतप्रत्याख्यान—संकेत या चिह्न सहित किया जाने वाला प्रत्याख्यान।

१०. अध्वाप्रत्याख्यान—मुहूर्त्त, पौरुषी आदि कालमान के आधार पर किया जाने वाला प्रत्याख्यान।

सामायारी-पदं

१०२. दसविहा सामायारी पण्णत्ता, तं जहा—

संगह-सिलोगो

१. इच्छा मिच्छा तहक्कारो,
आवस्सिया य णिसीहिया।
आपुच्छणा य पडिपुच्छा,
छंदणा य णिमंतणा ॥
उवसंपया य काले,
सामायारी दसविहा उ।

सामाचारी-पदम्

दशविधा सामाचारी प्रज्ञप्ता, तद्यथा—

संग्रह-श्लोक

१. इच्छा मिथ्या तथाकारः,
आवश्यकी च नैषेधिकी।
आप्रच्छना च प्रतिपृच्छा,
छन्दना च निमन्त्रणा ॥
उवसंपदा च काले,
सामाचारी दशविधा तु ॥

सामाचारी-पद

१०२. सामाचारी के दस प्रकार हैं"—

१. इच्छा—कार्य करने या कराने में इच्छाकार का प्रयोग।
२ मिथ्या—भूल हो जाने पर स्वयं उसकी आलोचना करना।
३ तथाकार—आचार्य के वचनों को स्वीकार करना।
४. आवश्यकी—उपाश्रय के बाहर जाते समय आवश्यक कार्य के लिए जाता हूं' कहना।
५ नैषेधिकी—कार्य से निवृत्त होकर आए तब 'मैं निवृत्त हो चुका हूं' कहना।
६ आपृच्छा—अपना कार्य करने की आचार्य से अनुमति लेना।
७ प्रतिपृच्छा—दूसरे का कार्य करने की आचार्य से अनुमति लेना।
८ छन्दना—आहार के लिए साधर्मिक साधुओं को आमंत्रित करना।
९. निमंत्रणा—'मैं आपके लिए आहार आदि लाऊं'—इस प्रकार गुरु आदि को निमंत्रित करना।
१०. उपसंपदा—ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विशेष प्राप्ति के लिए कुछ समय तक दूसरे आचार्य का शिष्यत्व स्वीकार करना।

महावीर-सुमिण-पदं

१०३. समणे भगवं महावीरे छउमत्थ-कालियाए अंतिमराइयंसी इमे दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तं जहा—

१. एगं च णं महं घोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुमिणे पराजितं पासित्ता णं पडिबुद्धे।

२. एगं च णं महं सुक्किलपक्खगं पुंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

महावीर-स्वप्न-पदम्

श्रमणः भगवान् महावीरः छद्मस्थ-कालिक्यां अन्तिमरात्रिकायां इमान् दश महास्वप्नान् दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तद्यथा—

१. एकं च महान्तं घोररूपदीप्तधरं तालपिशाचं स्वप्ने पराजितं दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।

२. एकं च महान्तं शुक्लपक्षकं पुंस्कोकिलकं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।

महावीर-स्वप्न-पद

१०३. श्रमण भगवान् महावीर छद्मस्थकालीन अवस्था में रात के अन्तिम भाग में दस महास्वप्न देखकर प्रतिबुद्ध हुए"।

१. महान् घोररूप वाले दीप्तिमान् एक तालपिशाच [ताड जैसे लम्बे पिशाच] को स्वप्न में पराजित हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए।

२. श्वेत पंखों वाले एक बड़े पुंस्कोकिल को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।

३. एगं च णं महं चित्तविचित्त-पक्खग पुसकोइलं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।	३. एक च महान्त चित्रविचित्रपक्षक पुंस्कोकिल स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।	३. चित्रविचित्र पंखो वाले एक बड़े पुंस्कोकिल को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।
४. एगं च णं महं दामदुगं सव्व-रयणामयं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।	४. एक च महद् दामद्विक सर्वरत्नमय स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।	४. सर्व रत्नमय दो बड़ी मालाओं को स्वप्न मे देखकर प्रतिबुद्ध हुए।
५. एगं च णं महं सेतं गोवग्गं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।	५. एक च महान्त श्वेत गोवर्ग स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।	५. एक महान् श्वेत गोवर्ग को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।
६. एगं च णं मह पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमितं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।	६ एक च महत् पद्मसरः सर्वतः समन्तात् कुसुमित स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।	६. चहुओर कुसुमित एक बड़े पद्मसरोवर को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।
७. एगं च णं महं सागरं उम्मी-वीची-सहस्सकलितं भुयाहिं तिण्णं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।	७ एकं च महान्त सागर उर्म्मि-वीचि-सहस्रकलित भुजाभ्या तीर्ण स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।	७. स्वप्न में हजारो ऊर्मियों और वीचियो से परिपूर्ण एक महासागर को भुजाओं से तीर्ण हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए।
८. एगं च णं महं दिणयरं तेयसा जलंतं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।	८ एक च महान्त दिनकर तेजसा ज्वलन्त स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।	८ तेज से जाज्वल्यमान एक महान् सूर्य को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।
९. एगं च णं महं हरि-वेरुलिय-वण्णाभेणं णियएणमंतेणं माणु-सुत्तरं पव्वतं सव्वतो समंता आवेढियं परिवेढियं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।	९. एक च महान्त हरि-वैडूर्य-वर्णाभेन निजकेन आन्त्रेण मानुषोत्तर पर्वत सर्वतः समन्तात् आवेष्टित परिवेष्टित स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।	९ स्वप्न मे भूरे व नीले वर्ण वाली अपनी आंतो से मानुषोत्तर पर्वत को चारों ओर से आवेष्टित और परिवेष्टित हुआ देख-कर प्रतिबुद्ध हुए।
१०. एगं च णं महं मंदरे पव्वते मंदरचूलियाए उवरिं सीहासण-वरगयमत्ताणं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।	१० एक च महान्त मदरे पर्वते मन्दर-चूलिकाया उपरि सिंहासनवरगत आत्मन स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।	१०. स्वप्न मे महान् मन्दर पर्वत की मन्दर-चूलिका पर अवस्थित सिंहासन के ऊपर अपने आपको बैठे हुए देखकर प्रतिबुद्ध हुए।
१. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं घोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुमिणे पराजितं पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणेणं भगवता महावीरेणं मोहणिज्जे कम्मे मूलओ उग्घाइते।	१. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एक च महान्त घोररूपदीप्तधर तालपिशाच स्वप्ने पराजितं दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणेन भगवता महावीरेण मोहनीय कर्म मूलतः उद्घातितम्।	१ श्रमण भगवान् महावीर महान् घोर-रूप वाले दीप्तिमान् एक तालपिशाच [ताड जैसे लम्बे पिशाच] को स्वप्न मे पराजित हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान् ने मोहनीय कर्म को मूल से उखाड़ फेंका।

२. अण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं सुक्किलपक्खगं °पुंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं° पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे सुक्कज्झाणोवगए विहरइ।

२. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एकं च महान्तं शुक्लपक्षकं पुंस्कोकिलकं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणः भगवान् महावीरः शुक्लध्यानोपगतः विहरति ।

२. श्रमण भगवान् महावीर श्वेत पंखों वाले एक बड़े पुंस्कोकिल को देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान् शुक्लध्यान को प्राप्त हुए।

३. अण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं चित्तविचित्तपक्खगं °पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं° पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे ससमय-परसमयियं चित्तविचित्तं दुवालसंगं गणिपिडगं आघवेति पण्णवेति परूवेति दंसेति णिदंसेति उवदंसेति, तं जहा—

आयारं, °सूयगडं, ठाणं, समवायं, विवा [आ ?] हपण्णत्ति, णायधम्मकहाओ, उवासगदसाओ, अंतगडदसाओ, अणुत्तरोववाइयदसाओ, पण्हावागरणाइं, विवागसुयं,° दिट्ठिवायं ।

३ यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एकं च महान्तं चित्रविचित्रपक्षकं पुंस्कोकिलं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणः भगवान् महावीरः स्वसमय-परसामयिकं चित्रविचित्रकं द्वादशाङ्गं गणिपिटकं आख्याति प्रज्ञापयति प्ररूपयति दर्शयति निदर्शयति, उपदर्शयति तद्यथा—

आचारं, सूत्रकृत, स्थानं, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातधर्मकथाः, उपासकदशाः, अन्तकृतदशाः, अनुत्तरोपपातिकदशाः, प्रश्नव्याकरणानि, विपाकसूत्र, दृष्टिवादम्।

३ श्रमण भगवान् महावीर चित्र-विचित्र पंखों वाले एक बड़े पुंस्कोकिल को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान् ने स्व-समय और पर-समय का निरूपण करने वाले, द्वादशांग गणिपिटक का आख्यान किया, प्रज्ञापन किया, प्ररूपण, किया, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया।

आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, विवाहप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाक और दृष्टिवाद।

४ अण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं दामदुगं सव्वरयणा°मयं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे दुविहं धम्मं पण्णवेति, तं जहा—

अगारधम्मं च, अणगारधम्मं च ।

४. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एकं च महद् दामद्विकं सर्वरत्नमयं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणः भगवान् महावीरः द्विविधं धर्मं प्रज्ञापयति, तद्यथा—

अगारधर्मञ्च, अनगारधर्मञ्च ।

४ श्रमण भगवान् महावीर सर्वरत्नमय दो बड़ी मालाओं को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान् ने अगारधर्म [गृहस्थ-धर्म] और अनगार-धर्म [साधु-धर्म] —इन दो धर्मों की प्ररूपणा की।

५. अण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं सेतं गोवग्गं सुमिणे °पासित्ता णं° पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स चाउव्वणाइण्णे संघे, तं जहा—

समणा, समणीओ, सावगा, सावियाओ ।

५. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एकं च महान्तं श्वेतं गोवर्गं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य चातुर्वर्णाकीर्णः संघः, तद्यथा—

श्रमणाः, श्रमण्यः, श्रावकाः, श्राविकाः ।

५. श्रमण भगवान् महावीर एक महान् श्वेत गोवर्ग को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान् के चतुर्वर्णात्मक—श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका—संघ हुआ।

६. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं पउमसरं *सव्वओ समंता कुसुमितं सुमिणे पासित्ता णं° पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे चउव्विहे देवे पण्णवेति, तं जहा—
भवणवासी, वाणमंतरे, जोइसिए, वेमाणिए।

६. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एकं च महत् पद्मसरः सर्वतः समन्तात् कुसुमितं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणः भगवान् महावीरः चतुर्विधान् देवान् प्रज्ञापयति, तद्यथा—
भवनवासिनः, वानमन्तरान्, ज्योतिष्कान्, वैमानिकान्।

६. श्रमण भगवान् महावीर चहुं ओर कुसुमित एक बड़े पद्मसरोवर को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान ने भवनपति, वानमन्तर, ज्योतिष और वैमानिक इन चार प्रकार के देवों की प्ररूपणा की।

७. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं सागरं उम्मी-वीची-*सहस्सकलितं भुयाहिं तिण्णं सुमिणे पासित्ता णं° पडिबुद्धे, तं ण समणेणं भगवता महावीरेणं अणादिए अणवदग्गे दीहमद्धे चाउरंते संसारकंतारे तिण्णे।

७. यत् श्रमण भगवान् महावीरः एकं च महान्त सागरं उर्म्मि-वीचि-सहस्र-कलितं भुजाभ्यां तीर्णं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणेन भगवता महावीरेण अनादिकः अनवदग्रं दीर्घाद्-ध्वान चातुरन्तं संसारकान्तार तीर्णम्।

७. श्रमण भगवान् महावीर स्वप्न में हजारों ऊर्मियों और वीचियों से परिपूर्ण एक महासागर को भुजाओं से तीर्ण हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान् ने अनादि, अनन्त, प्रलम्ब और चार अन्तवाले संसार रूपी कानन को पार किया।

८. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं दिणयरं *तेयसा जलंतं सुमिणे पासित्ता णं° पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अणंते अणुत्तरे *णिव्वाघाए णिरा-वरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवर-णाणदंसणे° समुप्पण्णे।

८. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एकं च महान्तं दिनकरं तेजसा ज्वलन्तं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अनन्तं अनुत्तरं निर्व्याघातं निरावरणं कृत्स्नं प्रतिपूर्णं केवलवरज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्।

८. श्रमण भगवान् महावीर तेज से जाज्वल्यमान एक महान् सूर्य को स्वप्न मे देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान् को अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, पूर्ण, प्रतिपूर्ण, केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त हुए।

९. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं हरि-वेरुलिय-°वण्णाभेणं णियएणमंतेणं माणु-सुत्तरं पव्वतं सव्वतो समंता आवेढियं परिवेढियं सुमिणे पासित्ता णं° पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवतो महावीरस्स सदेवमणुयासुरे लोगे उराला कित्ति-वण्ण-सद्द-सिलोगा परिगुव्वंति—इति खलु समणे भगवं महावीरे, इति खलु समणे भगवं महावीरे।

९. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एकं च महान्तं हरिवैडूर्यवर्णाभेन निजकेन आन्त्रेण मानुषोत्तरं पर्वतं सर्वतः समन्तात् आवेष्टितं परिवेष्टितं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य सदेवमनुजासुरे लोके उदाराः कीर्ति-वर्ण-शब्द-श्लोकाः 'परिगुव्वति' (परिगुप्यन्ति)—इति खलु श्रमणः भगवान् महावीरः, इति खलु श्रमणः भगवान् महावीरः।

९. श्रमण भगवान् महावीर स्वप्न में भूरे व नीले वर्ण वाली अपनी आंतों से मानुषोत्तर पर्वत को चारों ओर से आवेष्टित और परिवेष्टित हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप भगवान् की देव, मनुष्य और असुरों के लोक में प्रधान कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लाघा व्याप्त हुई। 'श्रमण भगवान् महावीर ऐसे हैं, श्रमण भगवान महावीर ऐसे हैं'—ये शब्द सर्वत्र फैल गए।

१०. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं मंदरे पव्वते मंदर-चूलियाए उवरिं °सीहासणवरगय-मत्ताणं सुमिणे पासित्ता णं° पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे सदेवमणुयासुराए परिसाए मज्झगते केवलिपण्णत्तं धम्मं आघवेति पण्णवेति °परूवेति दंसेति णिदंसेति° उवदंसेति।

१०. यत् श्रमण: भगवान् महावीर: एकं च महान्तं मन्दरे पर्वते मन्दरचूलिकाया: उपरि सिंहासनवरगतमात्मानां स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्ध:, तत् श्रमण: भगवान् महावीर: सदेवमनुजासुरायां परिषदि मध्यगत: केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं आख्याति प्रज्ञापयति प्ररूपयति दर्शयति निदर्शयति उपदर्शयति।

१०. श्रमण भगवान् महावीर स्वप्न मे महान् मन्दर पर्वत की मन्दरचूलिका पर अव-स्थित सिंहासन के ऊपर अपने आपको बैठे हुए देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फल-स्वरूप भगवान् ने देव, मनुष्य और असुर की परिषद् के बीच मे केवलीप्रज्ञप्त धर्म का आख्यान किया, प्रज्ञापन किया, प्ररूपण किया, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया।

रुचि-पदं

रुचि-पदम्

रुचि-पद

१०४. दसविधे सरागसम्मद्दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—

दशविधं सरागसम्यग्दर्शनं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

१०४. सराग-सम्यग्दर्शन के दस प्रकार है"—

संगहणी-गाहा

१. णिसग्गुवएसरुई,
आणारुई सुत्तबीयरुइ मेव।
अभिगम-वित्थाररुई,
किरिया-संखेव-धम्मरुई॥

संग्रहणी-गाथा

१ निसर्गोपदेशरुचि:,
आज्ञारुचि: सूत्रबीजरुचिरेव।
अभिगम-विस्ताररुचि:,
क्रिया-संक्षेप-धर्मरुचि:॥

१. निसर्ग रुचि—नैसर्गिक सम्यग्दर्शन।
२. उपदेश रुचि—उपदेशजनित सम्यग्-दर्शन।
३ आज्ञा रुचि—वीतराग द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त से उत्पन्न सम्यग्दर्शन।
४. सूत्र रुचि— सूत्र ग्रन्थो के अध्ययन से उत्पन्न सम्यग्दर्शन।
५ बीज रुचि—सत्य के एक अश के सहारे अनेक अशो मे फैलने वाला सम्यग् दर्शन।
६ अभिगम रुचि— विशाल ज्ञानराशि के आशय को समझने पर प्राप्त होने वाला सम्यग्दर्शन।
७ विस्तार रुचि—प्रमाण और नय की विविध भगियो के बोध से उत्पन्न सम्यग्-दर्शन।
८ क्रिया रुचि—क्रियाविषयक सम्यग्-दर्शन।
९ सक्षेप रुचि - मिथ्या आग्रह के अभाव मे स्वल्प ज्ञान जनित सम्यग्दर्शन।
१० धर्म रुचि—धर्म विषयक सम्यग्दर्शन।

सण्णा-पदं

संज्ञा-पदम्

संज्ञा-पद

१०५. दस सण्णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
आहारसण्णा, °भयसण्णा,
मेहुणसण्णा,° परिग्गहसण्णा,
कोहसण्णा, °माणसण्णा
मायासण्णा,° लोभसण्णा,
लोगसण्णा, ओहसण्णा।

दश संज्ञा: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा,
मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा,
क्रोधसंज्ञा, मानसंज्ञा,
मायासंज्ञा, लोभसंज्ञा,
लोकसंज्ञा, ओघसंज्ञा।

१०५ संज्ञा के दस प्रकार है"—
१. आहारसंज्ञा, २. भयसज्ञा,
३. मैथुनसंज्ञा, ४. परिग्रहसज्ञा,
५ क्रोधसज्ञा, ६ मानसंज्ञा,
७ मायासंज्ञा, ८. लोभसंज्ञा,
९ लोकसज्ञा, १० ओघसज्ञा।

१०६. णेरइयाणं दस सण्णाओ एवं चेव।
१०७. एवं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

नैरयिकाणा दश संज्ञाः एवं चेव।
एवं निरन्तरं यावत् वैमानिकानाम्।

१०६, १०७. नैरयिकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको के जीवों में दस संज्ञाएं होती हैं।

वेयणा-पदं

१०८. णेरइया णं दसविधं वेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—
सीतं, उसिणं, खुधं, पिवासं, कंडुं, परज्झं, भयं, सोगं, जरं, वाहिं।

वेदना-पदम्

नैरयिका दशविधा वेदना प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति, तद्यथा—
शीता उष्णा, क्षुधं, पिपासा, कण्डू, परज्झ (परतन्त्रता), भय, शोक, जरा, व्याधिम्।

वेदना-पद

१०८. नैरयिक दस प्रकार की वेदना का अनुभव करते है—
१. शीत, २. ऊष्ण, ३. क्षुधा, ४. पिपासा, ५. खुजलाना, ६. परतन्त्रता, ७ भय, ८. शोक, ९ जरा, १० व्याधि।

छउमत्थ-केवलि-पदं

१०९. दस ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणति ण पासति, त जहा—
धम्मत्थिकायं, °अधम्मत्थिकायं आगासत्थिकायं,
जीवं असरीरपडिबद्धं,
परमाणुपोग्गलं, सद्दं, गंधं,° वातं,
अयं जिणे भविस्सति वा ण वा भविस्सति,
अयं सव्वदुक्खाणमंतं करेस्सति वा ण वा करेस्सति।
एताणि चेव उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा °जिणे केवली सव्वभावेण जाणइ पासइ—
धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं,
जीवं असरीरपडिबद्धं,
परमाणुपोग्गलं, सद्दं, गंधं, वातं,
अयं जिणे भविस्सति वा ण वा भविस्सति,°
अयं सव्वदुक्खाणमंतं करेस्सति वा ण वा करेस्सति।

छद्मस्थ-केवलि-पदम्

दश स्थानानि छद्मस्थ सर्वभावेन न जानाति न पश्यति, तद्यथा—
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय,
जीव अशरीरप्रतिबद्धं,
परमाणुपुद्गल, शब्द, गन्ध, वात,
अय जिनो भविष्यति वा न वा भविष्यति,
अय सर्वदुःखाना अन्त करिष्यति वा न वा करिष्यति।
एतानि चेव उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अर्हन् जिनः केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति—
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय,
जीव अशरीरप्रतिबद्ध,
परमाणुपुद्गल, शब्द, गन्ध, वात,
अयजिनः भविष्यति वा न वा भविष्यति,
अयं सर्वदुःखाना अन्त करिष्यति वा न वा करिष्यति।

छद्मस्थ-केवलि-पद

१०९ दस पदार्थों को छद्मस्थ सम्पूर्ण रूप से न जानता है, न देखता है—
१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीरमुक्तजीव, ५ परमाणुपुद्गल, ६ शब्द, ७. गध, ८. वायु, ९. यह जिन होगा या नही? १० यह सभी दुःखों का अन्त करेगा या नही?

विशिष्ट ज्ञान-दर्शन को धारण करने वाले अर्हन्, जिन, केवली इनको सम्पूर्ण रूप से जानते, देखते है—
१ धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. शरीरमुक्तजीव, ५. परमाणुपुद्गल, ६. शब्द, ७. गंध, ८. वायु, ९ यह जिन होगा या नही? १० यह सभी दुःखों का अन्त करेगा या नही?

दसा-पदं

११०. दस दसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
कम्मविवागदसाओ,
उवासगदसाओ,
अंतगडदसाओ,
अणुत्तरोववाइयदसाओ,
आयारदसाओ,
पण्हावागरणदसाओ,
बंधदसाओ, दोगिद्धिदसाओ,
दीहदसाओ, संखेवियदसाओ।

१११. कम्मविवागदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

संगह-सिलोगो

१ मियापुत्ते य गोत्तासे,
अंडे सगडेतियावरे।
माहणे णंदिसेणे,
सोरिए य उदुंबरे॥
सहसुद्दाहे आमलए,
कुमारे लेच्छई इति॥

११२ उवासगदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
१. आणंदे कामदेवे आ,
गाहावतिचूलणीपिता।
सुरादेवे चुल्लसतए,
गाहावतिकुंडकोलिए॥
सद्दालपुत्ते महासतए,
णंदिणीपिया लेइयापिता॥

११३. अंतगडदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
१. णमि मातंगे सोमिले,
रामगुत्ते सुदंसणे चेव।
जमाली य भगाली य,
किंकसे चिल्लाए ति य॥
पाले अंबडपुत्ते य,
एमेते दस आहिता॥

दशा-पदम्

दश दशाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
कर्मविपाकदशा, उपासकदशा,
अन्तकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा,
आचारदशा, प्रश्नव्याकरणदशा,
बन्धदशा, द्विगृद्धिदशा, दीर्घदशा,
संक्षेपिकदशा।

कर्मविपाकदशाना दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

संग्रह-श्लोक

१. मृगापुत्र. च गोत्रास.,
अण्ड: शकटइति चापर:।
माहन नन्दिषेण:,
शौरिकश्च उदुम्बर:।
सहसोद्दाह आमरक.,
कुमार: लिच्छवीति॥

उपासकदशानां दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ आनन्द: कामदेवश्च,
गृहपतिचूलनीपिता॥
सुरादेव. चुल्लशतक:,
गृहपतिकुण्डकोलिक।
सद्दालपुत्र: महाशतक,
नन्दिनीपिता लेईयकापिता॥

अन्तकृतदशानां दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१ नमि. मातङ्ग: सोमिल,
रामगुप्त. सुदर्शनश्चैव।
जमालिश्च भगालिश्च,
किंकष चिल्वक इति च॥
पाल: अम्मडपुत्रश्च,
एवमेते दश आहृता॥

दशा-पद

११०. दशा—दस अध्ययन वाले आगम दस हैं[७७]—
१. कर्मविपाकदशा, २. उपासकदशा,
३. अन्तकृतदशा,
४. अनुत्तरोपपातिकदशा,
५. आचारदशा—दशाश्रुतस्कन्ध,
६. प्रश्नव्याकरणदशा, ७. बंधदशा,
८. द्विगृद्धिदशा, ९. दीर्घदशा,
१०. संक्षेपिकदशा।

१११. कर्मविपाकदशा के अध्ययन दस हैं[७८]—
१. मृगापुत्र, २. गोत्रास, ३. अण्ड,
४ शकट, ५. ब्राह्मण, ६. नन्दिषेण,
७. शौरिक, ८ उदुम्बर,
९ सहस्रोद्दाह आमरक,
१०. कुमारलिच्छवी।

११२. उपासकदशा के अध्ययन दस हैं[७९]—
१ आनन्द, २. कामदेव,
३ गृहपति चूलिनीपिता,
४ सुरादेव, ५. चुल्लशतक,
६ गृहपति कुण्डकोलिक,
७ सद्दालपुत्त, ८ महाशतक,
९ नन्दिनीपिता, १०. लेयिकापिता।

११३. अन्तकृतदशा के अध्ययन दस हैं[८०]—
१ नमि. २ मातग, ३. सोमिल,
४. रामगुप्त, ५ सुदर्शन, ६ जमाली,
७ भगाली, ८ किंकष, ९ चिल्वक,
१०. पाल अम्बडपुत्र।

११४. अनुत्तरोववातियदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
१. इसिदासे य धण्णे य,
सुणक्खत्ते कातिए ति य।
संठाणे सालिभद्दे य,
आणंदे तेतली ति य॥
दसण्णभद्दे अतिमुत्ते,
एमेते दस आहिया॥

अनुत्तरोपपातिकदशाना दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१. ऋषिदासश्च धन्यश्च,
सुनक्षत्रश्च कार्तिक इति च।
संस्थानः शालिभद्रश्च,
आनन्दः तेतलि· इति च॥
दशार्णभद्रः अतिमुक्तः,
एवमेते दश आहृताः।

११४. अनुत्तरोपपातिकदशा के अध्ययन दस हैं—
१. ऋषिदास, २. धन्य, ३. सुनक्षत्र, ४. कार्तिक, ५. संस्थान, ६. शालिभद्र, ७. आनन्द, ८. तेतली, ९. दशार्णभद्र, १०. अतिमुक्त।

११५. आयारदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
वीसं असमाहिट्ठाणा,
एगवीसं सबला,
तेत्तीसं आसायणाओ,
अट्ठविहा गणिसंपया,
दस चित्तसमाहिट्ठाणा,
एगारस उवासगपडिमाओ,
बारस भिक्खुपडिमाओ,
पज्जोसवणाकप्पो,
तीसं मोहणिज्जट्ठाणा,
आजाइट्ठाणं।

आचारदशानां दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
विंशति असमाधिस्थानानि,
एकविंशति· शबला,
त्रयस्त्रिंशदाशातना,
अष्टविधा गणिसपद्,
दश चित्तसमाधिस्थानानि,
एकादश उपासकप्रतिमा,
द्वादश भिक्षुप्रतिमा,
पर्युषणाकल्प·,
त्रिंशन्मोहनीयस्थानानि,
आजातिस्थानम्।

११५. आचारदशा [दशाश्रुतस्कन्ध] के अध्ययन दस हैं—
१. बीस असमाधिस्थान,
२. इक्कीस शबलदोष,
३. तेतीस आशातना,
४. अष्टविध गणिसम्पदा,
५. दस चित्त-समाधिस्थान,
६. ग्यारह उपासकप्रतिमा,
७. बारह भिक्षुप्रतिमा,
८. पर्युषणाकल्प,
९. तीस मोहनीयस्थान,
१०. आजातिस्थान।

११६. पण्हावागरणदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
उवमा, संखा,
इसिभासियाइं,
आयरियभासियाइं,
महावीरभासिआइं,
खोमगपसिणाइं,
कोमलपसिणाइं,
अद्दागपसिणाइं,
अंगुट्ठपसिणाइं,
बाहुपसिणाइं।

प्रश्नव्याकरणदशाना दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
उपमा, सख्या,
ऋषिभाषितानि,
आचार्यभाषितानि,
महावीरभाषितानि,
क्षौमकप्रश्नाः,
कोमलप्रश्नाः,
अद्दाग (आदर्श) प्रश्नाः,
अगुष्ठप्रश्नाः
बाहुप्रश्नाः।

११६. प्रश्नव्याकरणदशा के अध्ययन दस हैं—
१. उपमा, २. सख्या, ३. ऋषिभाषित, ४. आचार्यभाषित, ५. महावीरभाषित, ६. क्षौमकप्रश्न, ७. कोमलप्रश्न, ८. आदर्शप्रश्न, ९. अंगुष्ठप्रश्न, १०. बाहुप्रश्न।

११७. बंधदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
बंधे य मोक्खे य देवद्धि,
दसारमंडलेवि य।
आयरियविप्पडिवत्ती,
उवज्झायविप्पडिवत्ती,
भावणा, विमुत्ती, सातो, कम्मे।

बन्धदशानां दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
बन्धश्च मोक्षश्च देवर्द्धिः,
दशारमण्डलोऽपि च।
आचार्यविप्रतिपत्तिः,
उपाध्यायविप्रतिपत्तिः,
भावना, विमुक्तिः, सातं, कर्म।

११७. बंधदशा के अध्ययन दस हैं[३३]—
१. बंध, २ मोक्ष, ३. देवर्द्धि, ४. दशारमण्डल, ५. आचार्यविप्रतिपत्ति, ६. उपाध्यायविप्रतिपत्ति, ७. भावना, ८. विमुक्ति, ९ सात, १०. कर्म।

११८. दोगेद्धिदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
वाए, विवाए, उववाते, सुखेत्ते,
कसिणे, बायालीसं सुमिणा,
तीसं महासुमिणा,
बावत्तरिं सव्वसुमिणा,
हारे, रामगुत्ते, य,
एमेते दस आहिता।

द्विगृद्धिदशानां दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
वादः, विवादः, उपपातः, सुक्षेत्रं,
कृत्स्नं, द्वाचत्वारिंशत् स्वप्नाः,
त्रिंशत् महास्वप्नाः,
द्विसप्ततिः सर्वस्वप्नाः हारः,रामगुप्तश्च,
एवमेते दश आहृताः।

११८. द्विगृद्धिदशा के अध्ययन दस हैं[३४]—
१. वाद, २. विवाद, ३ उपपात, ४ सुक्षेत्र, ५. कृत्स्न, ६ बयालीस स्वप्न, ७. तीस महास्वप्न, ८ बहत्तर सर्वस्वप्न, ९ हार, १० रामगुप्त।

११९. दीहदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
१. चंदे सूरे य सुक्के य,
सिरिदेवी पभावती।
दीवसमुद्दोववत्ती,
बहूपुत्ती मंदरेति य॥
थेरे संभूतविजए य,
थेरे पम्ह ऊसासणीसासे॥

दीर्घदशानां दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
१. चन्द्रः सूरश्च शुक्रश्च,
श्रीदेवी प्रभावती।
द्वीपसमुद्रोपपत्तिः,
बहुपुत्री मन्दरा इति च॥
स्थविरः संभूतविजयश्च,
स्थविरः पक्ष्मा उच्छ्वासनिःश्वासः॥

११९. दीर्घदशा के अध्ययन दस हैं[३५]—
१. चन्द्र, २ सूर्य, ३ शुक्र, ४ श्रीदेवी, ५. प्रभावती, ६. द्वीपसमुद्रोपपत्ति, ७. बहुपुत्री मन्दरा, ८. स्थविर सम्भूतविजय, ९. स्थविर पक्ष्म, १०. उच्छ्वास-निःश्वास।

१२०. संखेवियदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
खुड्डिया विमाणपविभत्ती,
महल्लिया विमाणपविभत्ती,
अंगचूलिया, वग्गचूलिया,
विवाहचूलिया, अरुणोववाते,
वरुणोववाते, गरुलोववाते,
वेलंधरोववाते, वेसमणोववाते।

संक्षेपिकदशानां दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
क्षुद्रिका विमानप्रविभक्तिः,
महती विमानप्रविभक्तिः, अङ्गचूलिका,
वर्गचूलिका, विवाहचूलिका,
अरुणोपपातः, वरुणोपपातः, गरुडोपपातः,
वेलन्धरोपपातः, वैश्रमणोपपातः॥

१२०. संक्षेपिकदशा के अध्ययन दस हैं[३६]—
१. क्षुल्लिका विमानप्रविभक्ति,
२. महती विमानप्रविभक्ति,
३ अंग चूलिका—आचार आदि अंगों की चूलिका,
४. वर्गचूलिका—अन्तकृतदशा की चूलिका,
५. विवाहचूलिका—भगवती की चूलिका,
६ अरुणोपपात, ७ वरुणोपपात, ८. गरुडोपपात, ९ वेलन्धरोपपात, १०. वैश्रमणोपपात।

कालचक्क-पदं

कालचक्र-पदम्

कालचक्र-पद

१२१. दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणीए।

दश सागरोपमकोटिकोटीः कालः अवसर्पिण्याः।

१२१. अवसर्पिणी काल दस कोटि-कोटि सागरोपम का होता है।

१२२. दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो उस्सप्पिणीए।

दश सागरोपमकोटिकोटी: काल: उत्सर्पिण्या.।

१२२. उत्सर्पिणी काल दस कोटि-कोटि सागरोपम का होता है।

अणंतर-परंपर-उववण्णादि-पदं

अनन्तर-परम्पर-उपपन्नादि-पदम्

अनन्तर-परम्पर-उपपन्नादि-पद

१२३. दसविधा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—
अणंतरोववण्णा, परंपरोववण्णा,
अणंतरावगाढा, परंपरावगाढा,
अणंतराहारगा, परंपराहारगा,
अणंतरपज्जत्ता, परंपरपज्जत्ता,
चरिमा, अचरिमा।
एवं—णिरंतरं जाव वेमाणिया।

दशविधा: नैरयिका: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—
अनन्तरोपपन्ना:, परम्परोपपन्ना:,
अनन्तरावगाढा:, परम्परावगाढा:,
अनन्तराहारका:, परम्पराहारका:,
अनन्तरपर्याप्ता:, परम्परपर्याप्ता:,
चरमा:, अचरमा:।
एवम्—निरतर यावत् वैमानिका:।

१२३ नैरयिक दस प्रकार के हैं—
१ अनन्तर उपपन्न—जिन्हें उत्पन्न हुए एक समय हुआ।
२ परम्पर उपपन्न—जिन्हें उत्पन्न हुए दो आदि समय हुए हों।
३ अनन्तर अवगाढ—विवक्षित क्षेत्र से अव्यवहित आकाश प्रदेश में अवस्थित।
४ परम्पर अवगाढ—विवक्षित क्षेत्र से व्यवहित आकाश-प्रदेश में अवस्थित।
५. अनन्तर आहारक—प्रथम समय के आहारक।
६ परम्पर आहारक—दो आदि समयों के आहारक।
७ अनन्तर पर्याप्त—प्रथम समय के पर्याप्त।
८ परम्पर पर्याप्त—दो आदि समयों के पर्याप्त।
९ चरम—नरकगति मे अन्तिम बार उत्पन्न होने वाले।
१० अचरम—जो भविष्य में नरकगति मे उत्पन्न होंगे।
इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डकों के जीवों के दस-दस प्रकार हैं।

णरय-पदं

नरक-पदम्

नरक-पद

१२४. चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए, दस णिरयावाससतसहस्सा पण्णत्ता।

चतुर्थ्यां पंकप्रभायां पृथिव्यां दश निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

१२४ चौथी पंकप्रभा पृथ्वी में दस लाख नरकावास हैं।

ठिति-पदं

स्थिति-पदम्

स्थिति-पद

१२५. रयणप्पभाए पुढवीए जहण्णेणं णेरइयाणं दसवाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता।

रत्नप्रभायां पृथिव्यां जघन्येन नैरयिकाणां दशवर्षसहस्राणि स्थिति: प्रज्ञप्ता।

१२५ रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है।

१२६. चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए उक्कोसेणं णेरइयाणं दस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

चतुर्थ्यां पङ्कप्रभायां पृथिव्यां उत्कर्षेण नैरयिकाणां दश सागरोपमाणि स्थिति: प्रज्ञप्ता।

१२६. चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है।

१२७ पंचमाए णं धूमप्पभाए पुढवीए जहण्णेणं णेरइयाणं दस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

पञ्चम्यां धूमप्रभायां पृथिव्यां जघन्येन नैरयिकाणां दश सागरोपमाणि स्थिति: प्रज्ञप्ता।

१२७ पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य स्थिति दस सागरोपम की है।

१२८. असुरकुमाराणं जहण्णेणं दसवास-सहस्साइं ठिती पण्णत्ता।
एवं जाव थणियकुमाराणं।

असुरकुमाराणां जघन्येन दशवर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।
एवं यावत् स्तनितकुमाराणाम्।

१२८. असुरकुमार देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है।
इसी प्रकार स्तनितकुमार तक के सभी भवनपति देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है।

१२९. बायरवणस्सतिकाइयाणं उक्कोसेणं दसवाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता।

बादरवनस्पतिकायिकानां उत्कर्षेण दशवर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ताः।

१२९. बादर वनस्पतिकायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्ष की है।

१३०. वाणमंतराणं देवाणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता।

वानमन्तराणां देवानां जघन्येन दशवर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्त।

१३०. वानमन्तर देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है।

१३१. बंभलोगे कप्पे उक्कोसेणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

ब्रह्मलोके कल्पे उत्कर्षेण देवानां दश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३१. ब्रह्मलोककल्प—पांचवें देवलोक के देवों की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है।

१३२. लंतए कप्पे देवाणं जहण्णेणं दस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

लान्तके कल्पे देवानां जघन्येन दश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३२. लान्तककल्प—छठे देवलोक मे देवो की जघन्य स्थिति दस सागरोपम की है।

भाविभद्दत्त-पदं

१३३. दसहिं ठाणेहिं जीवा आगमेसिभद्दत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—
अणिदाणताए, दिट्ठिसंपण्णताए, जोगवाहिताए, खंतिखमणताए, जिंतिंदियताए, अमाइल्लताए, अपासत्थताए, सुसामण्णताए, पवयणवच्छल्लताए, पवयणउब्भावणताए।

भाविभद्रत्व-पदम्

दशभिः स्थानैः जीवाः आगमिष्यद्भद्रतायै कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—
अनिदानतया, दृष्टिसम्पन्नतया, योगवाहितया, क्षान्तिक्षमणतया, जितेन्द्रियतया, अमायितया, अपार्श्वस्थतया, सुश्रमणतया, प्रवचनवत्सलतया, प्रवचनोद्भावनतया।

भाविभद्रत्व-पद

१३३. दस स्थानों से जीव भावी कल्याणकारी कर्म करते है—
१. अनिदानता—भौतिक समृद्धि के लिए साधना का विनिमय न करना। २ दृष्टिसपन्नता—सम्यक्दृष्टि की आराधना। ३ योगवाहिता[१]—समाधिपूर्ण जीवन। ४ क्षान्तिक्षमणता—समर्थ होते हुए भी क्षमा करना। ५. जितेन्द्रियता। ६ ऋजुता। ७ अपार्श्वस्थता—ज्ञान, दर्शन और चारित्र के आचार की शिथिलता न रखना। ८. सुश्रामण्य। ९ प्रवचन वत्सलता—आगम और शासन के प्रति प्रगाढ अनुराग। १० प्रवचन-उद्भावनता—आगम और शासन की प्रभावना।

आसंसप्पओग-पदं

१३४. दसविहे आसंसप्पओगे पण्णत्ते, तं जहा—
इहलोगासंसप्पओगे,
परलोगासंसप्पओगे,
दुहओलोगासंसप्पओगे,
जीवियासंसप्पओगे,
मरणासंसप्पओगे,
कामासंसप्पओगे,
भोगासंसप्पओगे,
लाभासंसप्पओगे,
पूयासंसप्पओगे,
सक्कारासंसप्पओगे।

आशंसाप्रयोग-पदम्

दशविधः आशंसाप्रयोगः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
इहलोकाशंसाप्रयोगः,
परलोकाशंसाप्रयोगः,
द्वयलोकाशंसाप्रयोगः,
जीविताशंसाप्रयोगः,
मरणाशंसाप्रयोगः,
कामाशंसाप्रयोगः,
भोगाशंसाप्रयोगः,
लाभाशंसाप्रयोगः,
पूजाशंसाप्रयोगः,
सत्काराशंसाप्रयोगः।

आशंसाप्रयोग-पद

१३४ आशसाप्रयोग के दस प्रकार है—
१. इहलोक की आशसा करना।
२. परलोक की आशसा करना।
३. इहलोक और परलोक की आशंसा करना।
४. जीवन की आशंसा करना।
५. मरण की आशसा करना।
६. काम [शब्द और रूप] की आशसा करना।
७. भोग [गंध, रस और स्पर्श] की आशंसा करना।
८. लाभ की आशंसा करना।
९. पूजा की आशंसा करना।
१०. सत्कार की आशंसा करना।

धम्म-पदं

१३५. दसविधे धम्मे पण्णत्ते, तं जहा—
गामधम्मे, णगरधम्मे, रट्ठधम्मे, पासंडधम्मे, कुलधम्मे, गणधम्मे, संघधम्मे, सुयधम्मे, चरित्तधम्मे, अत्थिकायधम्मे।

धर्म-पदम्

दशविधः धर्मः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
ग्रामधर्मः, नगरधर्मः, राष्ट्रधर्मः, पाषण्डधर्मः, कुलधर्मः, गणधर्मः, संघधर्मः, श्रुतधर्मः, चरित्रधर्मः, अस्तिकायधर्मः।

धर्म-पद

१३५. धर्म के दस प्रकार है—
१. ग्रामधर्म—गांव की व्यवस्था—आचार-परम्परा।
२. नगरधर्म—नगर की व्यवस्था।
३. राष्ट्रधर्म—राष्ट्र की व्यवस्था।
४ पाषण्डधर्म—पाषण्डों—श्रमण सम्प्रदायों का आचार।
५ कुलधर्म—उग्र आदि कुलों का आचार।
६. गणधर्म—गण-राज्यों की व्यवस्था।
७. संघधर्म—गोष्ठियों की व्यवस्था।
८. श्रुतधर्म—ज्ञान की आराधना, द्वादशाङ्गी की आराधना।
९ चारित्रधर्म—संयम की आराधना।
१०. अस्तिकायधर्म—गति सहायक द्रव्य—धर्मास्तिकाय।

थेरपदं

१३६. दस थेरा पण्णत्ता, तं जहा—
गामथेरा, णगरथेरा, रट्ठथेरा, पसत्थथेरा, कुलथेरा, गणथेरा, संघथेरा, जातिथेरा, सुअथेरा, परियायथेरा।

स्थविर-पदम्

दश स्थविराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
ग्रामस्थविराः, नगरस्थविराः, राष्ट्रस्थविराः, प्रशास्तृस्थविराः, कुलस्थविराः, गणस्थविराः, संघस्थविराः, जातिस्थविराः, श्रुतस्थविराः, पर्यायस्थविराः।

स्थविर-पद

१३६. स्थविर दस प्रकार के होते है—
१. ग्रामस्थविर, २ नगरस्थविर,
३ राष्ट्रस्थविर, ४ प्रशास्तास्थविर—प्रशासक ज्येष्ठ, ५ कुलस्थविर,
६ गणस्थविर, ७ संघस्थविर,
८ जातिस्थविर—साठ वर्ष की आयु वाला।
९. श्रुतस्थविर—समवाय आदि अंगों को धारण करने वाला।
१० पर्यायस्थविर—बीस वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाला।

पुत्त-पदं

१३७. दस पुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—
अत्तए, खेत्तए, दिण्णए, विण्णए, उरसे, मोहरे, सोंडीरे, संवुड्ढे, उवयाइते, धम्मंतेवासी।

पुत्र-पदम्

दश पुत्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
आत्मजः, क्षेत्रजः, दत्तकः, विज्ञकः, औरसः, मौखरः, शौण्डीरः, संवर्धितः, औपयाचितकः, धर्मान्तेवासी।

पुत्र-पद

१३७. पुत्र दस प्रकार के होते है—
१. आत्मज—अपने पिता से उत्पन्न।
२. क्षेत्रज—नियोग-विधि से उत्पन्न।
३ दत्तक—गोद लिया हुआ।
४. विज्ञक—विद्या-शिष्य।
५ औरस—स्नेहवश स्वीकृत पुत्र।
६ मौखर—वाक्पटुता के कारण पुत्र रूप में स्वीकृत।
७ शौंडीर—पराक्रम के कारण पुत्र रूप में स्वीकृत।
८ संवर्द्धित—पोषित अनाथ-पुत्र।
९. औपयाचितक—देवता की आराधना से उत्पन्न पुत्र अथवा सेवक।
१० धर्मान्तेवासी—धर्म-शिष्य।

अणुत्तर-पदं

१३८. केवलिस्स णं दस अणुत्तरा पण्णत्ता, तं जहा—
अणुत्तरे णाणे, अणुत्तरे दंसणे, अणुत्तरे चरित्ते, अणुत्तरे तवे, अणुत्तरे वीरिए, अणुत्तरा खंती, अणुत्तरा मुत्ती, अणुत्तरे अज्जवे, अणुत्तरे मद्दवे, अणुत्तरे लाघवे।

अनुत्तर-पदम्

केवलिनः दश अनुत्तराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
अनुत्तरं ज्ञानं, अनुत्तरं दर्शनं, अनुत्तरं चरित्रं, अनुत्तरं तपः, अनुत्तरं वीर्यं, अनुत्तरं क्षान्तिः, अनुत्तरा मुक्तिः, अनुत्तरं आर्जवं, अनुत्तरं मार्दवं, अनुत्तरं लाघवम्।

अनुत्तर-पद

१३८. केवली के दस अनुत्तर होते हैं—
१. अनुत्तर ज्ञान, २. अनुत्तर दर्शन, ३ अनुत्तर चारित्र, ४. अनुत्तर तप, ५ अनुत्तर वीर्य, ६. अनुत्तर क्षान्ति, ७. अनुत्तर मुक्ति, ८. अनुत्तर आर्जव, ९. अनुत्तर मार्दव, १०. अनुत्तर लाघव।

कुरा-पदं

१३९. समयखेत्ते णं दस कुराओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
पंच देवकुराओ, पंच उत्तरकुराओ। तत्थ णं दस महतिमहालया महादुमा पण्णत्ता, तं जहा—
जंबू सुदंसणा, धायइरुक्खे, महाधायइरुक्खे, पउमरुक्खे, महापउमरुक्खे, पंच कूडसामलीओ। तत्थ णं दस देवा महिड्ढिया जाव परिवसंति, तं जहा—
अणाढिते जंबुद्दीवाधिपती, सुदंसणे, पियदंसणे, पोंडरीए, महापोंडरीए, पंच गरुला वेणुदेवा।

कुरु-पदम्

समयक्षेत्रे दशकुरवः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
पञ्च देवकुरवः, पञ्चोत्तरकुरवः। तत्र दश महातिमहान्तः महाद्रुमाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
जम्बूः सुदर्शना, धातकीरुक्षः, महाधातकीरुक्षः, पद्मरुक्षः, महापद्मरुक्षः, पञ्च कूटशाल्मलयः। तत्र दश देवा महर्द्धिकाः यावत् परिवसन्ति, तद्यथा—
अनादृतः जम्बूद्वीपाधिपतिः, सुदर्शनः प्रियदर्शनः, पौण्डरीकः, महापौण्डरीकः, पञ्च गरुडाः वेणुदेवाः।

कुरु-पद

१३९ समयक्षेत्र में दस कुरा है—
पांच देवकुरा। पाच उत्तरकुरा।
वहा दस विशाल महाद्रुम हैं—
१. जम्बू सुदर्शना, २. धातकी, ३ महाधातकी, ४. पद्म, ५ महापद्म और पाच कूटशालमली।

वहा महर्द्धिक, महाद्युति सम्पन्न, महानुभाग, महान् यशस्वी, महान् बली और महान् सुखी तथा पल्योपम की स्थितिवाले दस देव रहते है—
१. जम्बूद्वीपाधिपति अनादृत, २. सुदर्शन, ३ प्रियदर्शन, ४. पौंडरीक, ५. महापौंडरीक और पांच गरुड़ वेणुदेव।

दुस्समा-लक्खण-पदं

१४०. दसहिं ठाणेहिं ओगाढं दुस्समं जाणेज्जा, तं जहा—
अकाले वरिसइ, काले ण वरिसइ, असाहू पूइज्जंति, साहू ण पूइज्जंति, गुरूसु जणो मिच्छं पडिवण्णो, अमणुण्णा सद्दा, °अमणुण्णा रूवा, अमणुण्णा गंधा, अमणुण्णा रसा अमणुण्णा° फासा।

दुःषमा-लक्षण-पदम्

दशभिः स्थानैः अवगाढां दुःषमां जानीयात्, तद्यथा—
अकाले वर्षति, काले न वर्षति, असाधवः पूज्यन्ते, साधवः न पूज्यन्ते, गुरुषु जनो मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः, अमनोज्ञाः शब्दाः, अमनोज्ञानि रूपाणि, अमनोज्ञाः गन्धाः, अमनोज्ञाः रसाः, अमनोज्ञाः स्पर्शाः।

दुःषमा-लक्षण-पद

१४०. दस स्थानो से दुष्षमा काल की अवस्थिति जानी जाती है—
१. असमय मे वर्षा होती है,
२. समय पर वर्षा नहीं होती,
३. असाधुओ की पूजा होती है,
४. साधुओ की पूजा नही होती,
५. मनुष्य गुरुजनो के प्रति मिथ्या व्यवहार करता है, ६. शब्द अमनोज्ञ हो जाते है,
७. रस अमनोज्ञ हो जाते है,
८. रूप अमनोज्ञ हो जाते है,
९. गध अमनोज्ञ हो जाते है,
१०. स्पर्श अमनोज्ञ हो जाते हैं।

सुसमा-लक्खण-पदं

१४१. दसहिं ठाणेहिं ओगाढं सुसमं जाणेज्जा, तं जहा—
अकाले ण वरिसति,
*काले वरिसति,
असाहू ण पूइज्जंति,
साहू पूइज्जंति,
गुरुसु जणो सम्मं पडिवण्णो,
मणुण्णा सद्दा, मणुण्णा रूवा,
मणुण्णा गंधा, मणुण्णा रसा,°
मणुण्णा फासा।

सुषमा-लक्षण-पदम्

दशभिः स्थानैः अवगाढां सुषमां जानीयात्, तद्यथा—
अकाले न वर्षति, काले वर्षति, असाधवो न पूज्यन्ते, साधवः पूज्यन्ते, गुरुषु जनः सम्यक् प्रतिपन्नः, मनोज्ञाः शब्दाः, मनोज्ञानि रूपाणि, मनोज्ञाः गन्धाः, मनोज्ञाः रसाः, मनोज्ञाः स्पर्शाः।

सुषमा-लक्षण-पद

१४१. दस स्थानों से सुषमा काल की अवस्थिति जानी जाती है—
१. असमय में वर्षा नहीं होती,
२. समय पर वर्षा होती है,
३. असाधुओं की पूजा नहीं होती,
४. साधुओं की पूजा होती है,
५. मनुष्य गुरुजनों के प्रति सम्यग्-व्यवहार करता है,
६. शब्द मनोज्ञ होते हैं,
७. रस मनोज्ञ होते हैं,
८. रूप मनोज्ञ होते हैं,
९. गंध मनोज्ञ होते हैं,
१०. स्पर्श मनोज्ञ होते हैं।

रुक्ख-पदं

१४२. सुसमसुसमाए णं समाए दसविहा रुक्खा उवभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. मतंगया य भिंगा, तुडितंगा दीव जोति चित्तंगा।
चित्तरसा मणियंगा, गेहागारा अणियणा य॥

रुक्ष-पदम्

सुषमसुषमायां समायां दशविधाः रुक्षाः उपभोग्यतायै अर्वाग् आगच्छन्ति, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१ मदाङ्गकाश्च भृङ्गाः, त्रुटिताङ्गाः दीपाः ज्योतिषाः चित्राङ्गाः।
चित्ररसाः मण्यङ्गाः, गेहाकारा अनग्नाश्च॥

वृक्ष-पद

१४२ सुषम-सुषमा काल में दस प्रकार के वृक्ष उपभोग में आते हैं—

१. मदाङ्गक—मादक रस वाले,
२. भृङ्ग—भाजनाकार पत्तों वाले,
३. त्रुटिताङ्ग—वाद्यध्वनि उत्पन्न करने वाले, ४. दीपाङ्ग—प्रकाश करने वाले,
५. ज्योतिअङ्ग—अग्नि की भांति ऊष्मा सहित प्रकाश करने वाले,
६. चित्राङ्ग—मालाकार पुष्पों से लदे हुए,
७. चित्ररस—विविध प्रकार के मनोज्ञ रस वाले,
८. मणिअंग—आभरणाकार अवयवोंवाले,
९ गेहाकार—घर के आकार वाले,
१०. अनग्न—नग्नत्व को ढांकने के उपयोग में आने वाले।

कुलगर-पदं

१४३. जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे तीताए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा हुत्था, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. सयंजले सयाऊ य,
अणंतसेणे य अजितसेणे य।
कक्कसेणे भीमसेणे,
महाभीमसेणे य सत्तमे॥
दढरहे दसरहे, सयरहे।

कुलकर-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे अतीतायां उत्सर्पिण्यां दश कुलकराः अभवन्, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. स्वयंजलः शतायुश्च,
अनन्तसेनश्च अजितसेनश्च।
कर्कसेनो भीमसेनः,
महाभीमसेनश्च सप्तमः॥
दृढरथो दशरथः, शतरथः।

कुलकर-पद

१४३. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र मे अतीत उत्सर्पिणी मे दस कुलकर हुए थे—

१. स्वयजल, २. शतायु, ३ अनन्तसेन, ४. अजितसेन, ५. कर्कसेन, ६. भीमसेन, ७. महाभीमसेन, ८. दृढरथ, ९. दशरथ, १०. शतरथ।

१४४. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमीसाए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा भविस्संति, तं जहा—
सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमंधरे, विमलवाहणे, संमुती, पडिसुते, दढधणू, दसधणू, सतधणू।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे आगमिष्यन्त्यां उत्सर्पिण्यां दश कुलकराः भविष्यन्ति, तद्यथा—
सीमंकरः, सीमंधरः, क्षेमकरः, क्षेमधरः, विमलवाहनः, सन्मतिः, प्रतिश्रुतः, दृढधनुः, दशधनुः, शतधनुः।

१४४. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी मे दस कुलकर होंगे—
१. सीमंकर, २ सीमंधर, ३. क्षेमकर, ४. क्षेमंधर, ५. विमलवाहन, ६. सन्मति, ७. प्रतिश्रुत, ८. दृढधनु, ९. दशधनु, १०. शतधनु।

वक्खारपव्वय-पदं

१४५. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीताए महाणईए उभओकूले दस वक्खारपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—
मालवंते, चित्तकूडे, पम्हकूडे, °णलिणकूडे, एगसेले, तिकूडे, वेसमणकूडे, अंजणे, मायंजणे,° सोमणसे।

१४६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं सीओदाए महाणईए उभओकूले दस वक्खारपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—

वक्षस्कारपर्वत-पदम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्मिन् शीतायाः महानद्याः उभतः कूले दश वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
माल्यवान्, चित्रकूटः, पक्ष्मकूटः, नलिनकूटः, एकशैलः, त्रिकूटः, वैश्रमणकूटः, अञ्जनः, माताञ्जनः, सौमनसः।

जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पश्चिमे शीतोदायाः महानद्याः उभतः कूले दश वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

वक्षस्कारपर्वत-पद

१४५. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व में महानदी शीता के दोनों तटों पर दस वक्षस्कार पर्वत हैं—

१. माल्यवान्, २. चित्रकूट, ३. पक्ष्मकूट ४. नलिनकूट, ५. एकशैल, ६. त्रिकूट, ७. वैश्रमणकूट, ८. अञ्जन, ९. माताञ्जन, १०. सौमनस।

१४६. जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम मे महानदी शीतोदा के दोनो तटों पर दस वक्षस्कार पर्वत है—

विज्जुप्पभे, °अंकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे, चंदपव्वते, सूरपव्वते, णागपव्वते, देवपव्वते,° गंधमायणे।

विद्युत्प्रभः, अङ्कावती, पक्ष्मावती, आशीविषः, सुखावहः, चन्द्रपर्वतः, सूरपर्वतः, नागपर्वतः, देवपर्वतः, गन्धमादनः।

१. विद्युत्प्रभ, २. अङ्कावती, ३. पक्ष्मावती, ४. आसीविष, ५. सुखावह, ६. चन्द्रपर्वत, ७. सूरपर्वत, ८. नागपर्वत, ९. देवपर्वत, १०. गंधमादन।

१४७ एवं धायइसंडपुरत्थिमद्धेवि वक्खारा भाणियव्वा जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे।

एवं धातकीषण्डपौरस्त्यार्धेऽपि वक्षस्कारा: भणितव्याः यावत् पुष्करवरद्वीपार्ध-पाश्चात्यार्धे।

१४७. इसी प्रकार धातकीषण्ड के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में तथा अर्द्धपुष्करवर द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में शीता और शीतोदा महानदियों के दोनों तटों पर दस-दस वक्षस्कार पर्वत हैं।

कप्प-पदं

कल्प-पदम्

कल्प-पद

१४८. दस कप्पा इंदाहिट्ठिया पण्णत्ता, तं जहा—
सोहम्मे, °ईसाणे, सणंकुमारे, माहिंदे, बंभलोए, लंतए, महासुक्के,° सहस्सारे, पाणते, अच्चुते।

दश कल्पाः इन्द्राधिष्ठिताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
सौधर्मः, ईशानः, सनत्कुमारः, माहेन्द्रः, ब्रह्मलोकः, लान्तकः, महाशुक्रः, सहस्रारः, प्राणतः, अच्युतः।

१४८. इन्द्राधिष्ठित कल्प दस हैं—
१. सौधर्म, २. ईशान, ३. सनत्कुमार, ४. माहेन्द्र, ५. ब्रह्मलोक, ६. लान्तक, ७. शुक्र, ८. सहस्रार, ९. प्राणत, १०. अच्युत।

१४९. एतेसु णं दससु कप्पेसु दस इंदा पण्णत्ता, तं जहा—
सक्के, ईसाणे, °सणंकुमारे, माहिंदे, बंभे, लंतए, महासुक्के, सहस्सारे, पाणते,° अच्चुते।

एतेषु दशसु कल्पेषु दश इन्द्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
शक्रः, ईशानः, सनत्कुमारः, माहेन्द्रः, ब्रह्मा, लान्तकः, महाशुक्रः, सहस्रारः, प्राणतः, अच्युतः।

१४९. इन दस कल्पों में इन्द्र दस हैं—
१. शक्र, २. ईशान, ३. सनत्कुमार, ४. माहेन्द्र, ५. ब्रह्म, ६ लान्तक, ७. महाशुक्र, ८ सहस्रार, ९ प्राणत, १० अच्युत।

१५०. एतेसि णं दसण्हं इंदाणं दस परिजाणिया विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—
पालए, पुप्फए, °सोमणसे, सिरिवच्छे, णंदियावत्ते, कामकमे, पीतिमणे, मणोरमे,° विमलवरे, सव्वतोभद्दे।

एतेषां दशानां इन्द्राणां दश पारियानिकानि विमानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
पालक, पुष्पक, सौमनसं, श्रीवत्सं, नन्द्यावर्त्तं, कामक्रमं, प्रीतिमनः, मनोरमं, विमलवर, सर्वतोभद्रम्।

१५० इन दस इन्द्रों के पारियानिक विमान दस हैं—
१. पालक, २. पुष्पक, ३. सौमनस, ४. श्रीवत्स, ५. नंद्यावर्त्त, ६ कामक्रम, ७ प्रीतिमान, ८. मनोरम, ९. विमलवर, १० सर्वतोभद्र।

पडिमा-पदं

प्रतिमा-पदम्

प्रतिमा-पद

१५१. दसदसमिया णं भिक्खुपडिमा एगेण राइंदियसतेणं अद्धछट्ठेहि य भिक्खासतेहिं अहासुत्तं °अहाअत्थं अहातच्चं अहामग्गं अहाकप्पं सम्मं काएणं फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया° आराहिया यावि भवति।

दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा एकेन रात्रिंदिवशतेन अर्धषष्ठैश्च भिक्षाशतैः यथासूत्रं यथार्थं यथातथ्यं यथामार्गं यथाकल्पं सम्यक् कायेन स्पृष्टा पालिता शोधिता तीरिता कीर्तिता आराधिता चापि भवति।

१५१. दस दशमिका (१० × १०) भिक्षु-प्रतिमा सौ दिन-रात तथा ५५० भिक्षा-दत्तियों द्वारा यथासूत्र, यथाअर्थ, यथातथ्य, यथामार्ग, यथाकल्प तथा सम्यक् प्रकार से काया से आचीर्ण, पालित, शोधित, पूरित, कीर्तित और आराधित की जाती है।

जीव-पदं	जीव-पदम्	जीव-पद
१५२. दसविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—	दशविधाः संसारसमापन्नकाः जीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	१५२. संसारसमापन्नक जीव दस प्रकार के है—
पढमसमयएगिंदिया,	प्रथमसमयैकेन्द्रियाः,	१. प्रथमसमय एकेन्द्रिय।
अपढमसमयएगिंदिया,	अप्रथमसमयैकेन्द्रियाः,	२. अप्रथमसमय एकेन्द्रिय।
°पढमसमयबेइंदिया,	प्रथमसमयद्वीन्द्रियाः,	३. प्रथमसमय द्वीन्द्रिय।
अपढमसमयबेइंदिया,	अप्रथमसमयद्वीन्द्रियाः,	४ अप्रथमसमय द्वीन्द्रिय।
पढमसमयतेइंदिया,	प्रथमसमयत्रीन्द्रियाः,	५ प्रथमसमय त्रीन्द्रिय।
अपढमसमयतेइंदिया,	अप्रथमसमयत्रीन्द्रियाः,	६. अप्रथमसमय त्रीन्द्रिय।
पढमसमयचउरिंदिया,	प्रथमसमयचतुरिन्द्रियाः,	७ प्रथमसमय चतुरिन्द्रिय।
अपढमसमयचउरिंदिया,	अप्रथमसमयचतुरिन्द्रियाः,	८. अप्रथमसमय चतुरिन्द्रिय।
पढमसमयपंचिंदिया,°	प्रथमसमयपञ्चेन्द्रियाः,	९ प्रथमसमय पञ्चेन्द्रिय।
अपढमसमयपंचिंदिया।	अप्रथमसमयपञ्चेन्द्रियाः।	१०. अप्रथमसमय पञ्चेन्द्रिय।
१५३. दसविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—	दशविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	१५३. सर्व जीव दस प्रकार के है—
पुढविकाइया, °आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया,° वणस्सइकाइया, बेंदिया, °तेइंदिया, चउरिंदिया,° पंचेंदिया, अणिंदिया।	पृथिवीकायिकाः, अप्कायिकाः, तेजस्कायिकाः, वायुकायिकाः, वनस्पतिकायिकाः, द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः चतुरिन्द्रियाः, पञ्चेन्द्रियाः, अनिन्द्रियाः।	१. पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४ वायुकायिक, ५ वनस्पतिकायिक, ६. द्वीन्द्रिय, ७ त्रीन्द्रिय ८. चतुरिन्द्रिय, ९. पञ्चेन्द्रिय, १० अनिन्द्रिय।
अहवा—दसविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—	अथवा—दशविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	अथवा—सर्व जीव दस प्रकार के है—
पढमसमयणेरइया,	प्रथमसमयनैरयिकाः,	१ प्रथमसमय नैरयिक,
अपढमसमयणेरइया,	अप्रथमसमयनैरयिकाः,	२. अप्रथमसमय नैरयिक,
°पढमसमयतिरिया,	प्रथमसमयतिर्यञ्चः,	३. प्रथमसमय तिर्यञ्च,
अपढमसमयतिरिया,	अप्रथमसमयतिर्यञ्चः,	४. अप्रथमसमय तिर्यञ्च,
पढमसमयमणुया,	प्रथमसमयमनुजाः,	५. प्रथमसमय मनुष्य,
अपढमसमयमणुया,	अप्रथमसमयमनुजाः,	६. अप्रथमसमय मनुष्य,
पढमसमयदेवा,°	प्रथमसमयदेवाः,	७. प्रथमसमय देव,
अपढमसमयदेवा,	अप्रथमसमयदेवाः,	८. अप्रथमसमय देव,
पढमसमयसिद्धा,	प्रथमसमयसिद्धाः,	९. प्रथमसमय सिद्ध,
अपढमसमयसिद्धा।	अप्रथमसमयसिद्धाः।	१०. अप्रथमसमय सिद्ध।

सताउय-दसा-पदं

१५४. वाससताउयस्स णं पुरिसस्स दस दसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

संगह-सिलोगो

१. बाला किड्डा मंदा,
बला पण्णा हायणी।
पवंचा पब्भारा,
मुम्मुही सायणी तधा ॥

शतायुष्क-दशा-पदम्

वर्षशतायुषः पुरुषस्य दश दशाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

संग्रह-श्लोक

१. बाला क्रीडा मन्दा,
बला प्रज्ञा हायिनी।
प्रपञ्चा प्राग्भारा,
मृन्मुखी शायिनी तथा ॥

शतायुष्क-दशा-पद

१५४. शतायु पुरुष के दस दशाएं होती हैं[1]—

१. बाला, २. क्रीड़ा, ३. मन्दा, ४. बला, ५. प्रज्ञा, ६. हायिनी ७. प्रपञ्चा, ८ प्राग्भारा, ९. मृन्मुखी, १०. शायिनी।

तणवणस्सइ-पदं

१५५. दसविधा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, तं जहा—
मूले, कंदे, *खंधे, तया, साले, पवाले, पत्ते,[2] पुप्फे, फले, बीये।

तृणवनस्पति-पदम्

दशविधाः तृणवनस्पतिकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
मूलं, कन्दः, स्कन्धः, त्वक्, शाखा, प्रवालं, पत्रं, पुष्पं, फलं, बीजम्।

तृणवनस्पति-पद

१५५. तृणवनस्पतिकायिक दस प्रकार के होते है—
१ मूल, २. कन्द, ३. स्कन्ध, ४. त्वक्, ५. शाखा, ६. प्रवाल, ७ पत्र, ८. पुष्प, ९. फल, १०. बीज।

सेढि-पदं

१५६. सव्वाओवि णं विज्जाहरसेढीओ दस-दस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

१५७. सव्वाओवि णं आभिओगसेढीओ दस-दस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

श्रेणि-पदम्

सर्वा अपि विद्याधरश्रेण्यः दश-दश योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः।

सर्वाअपि आभियोगश्रेण्यः दश-दश योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः।

श्रेणि-पद

१५६. दीर्घवैताढ्य पर्वत के सभी विद्याधरनगरों की श्रेणिया दस-दस योजन चौड़ी हैं।

१५७. दीर्घवैताढ्य पर्वत के सभी आभियोगिक श्रेणिया[10] [आभियोगिक देवों की श्रेणियां] दस-दस योजन चौड़ी हैं।

गेविज्जग-पदं

१५८. गेविज्जगविमाणा णं दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

ग्रैवेयक-पदम्

ग्रैवेयकविमानानि दश योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

ग्रैवेयक-पद

१५८. ग्रैवेयक विमानो की ऊपर की ऊंचाई दस सौ योजन की है।

तेयसा भासकरण-पदं

१५९ दसहिं ठाणेहिं सह तेयसा भासं कुज्जा, तं जहा—

१. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते समाणे परिकुविते तस्स तेयं णिसिरेज्जा। से तं परितावेति, से तं परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

तेजसा भस्मकरण-पदम्

दशभिः स्थानैः सह तेजसा भस्म कुर्यात्, तद्यथा—

१. कोपि तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा अत्याशात (द) येत्, स च अत्याशाति- (दि) तः सन् परिकुपितः तस्य तेजः निसृजेत्। स तं परितापयति, स तं परिताप्य तमेव सह तेजसा भस्म कुर्यात्।

तेज से भस्मकरण-पद

१५९. दस कारणों से श्रमण-माहन [अत्याशातना करने वाले को] तेज से भस्म कर डालता है—

१. कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। वह अत्याशातना से कुपित होकर, उस पर तेज फेंकता है। वह तेज उस व्यक्ति को परितापित करता है, परितापित कर उसे तेज से भस्म कर देता है।

२. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते समाणे देवे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। से तं परितावेति, से तं परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

२. कोपि तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातितः सन् देवः परिकुपितः तस्य तेजः निसृजेत्। स तं परितापयति, स तं परिताप्य तमेव सह तेजसा भस्म कुर्यात्।

२. कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-संपन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर कोई देव कुपित होकर अत्याशातना करने वाले पर तेज फेंकता है। वह तेज उस व्यक्ति को परितापित करता है, परितापित कर उसे तेज से भस्म कर देता है।

३. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते समाणे परिकुविते देवेवि य परिकुविते ते दुहओ पडिण्णा तस्स तेयं णिसिरेज्जा। ते तं परितावेंति, ते तं परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

३. कोपि तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातितः सन् परिकुपितः देवोपि च परिकुपितः तौ द्वौ (कृत) प्रतिज्ञौ तस्य तेजः निसृजेताम्। तौ तं परितापयतः, तौ तं परिताप्य तमेव सह तेजसा भस्म कुर्याताम्।

३. कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर मुनि व देव दोनों कुपित होकर उसे मारने की प्रतिज्ञा कर उस पर तेज फेंकते है। वह तेज उस व्यक्ति को परितापित करता है, परितापित कर उसे तेज से भस्म कर देता है।

४. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा संमुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

४ कोपि तथारूप श्रमण वा माहन वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातितः (सन् ?) परिकुपितः तस्य तेजः निसृजेत्। तत्र स्फोटाः सम्मूर्च्छन्ति, ते स्फोटाः भिद्यन्ते, ते स्फोटाः भिन्नाः सन्तः तमेव सह तेजसा भस्म कुर्युः।

४. कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। तब वह अत्याशातना से कुपित होकर, उस पर तेज फेंकता है। तब उसके शरीर में स्फोट (फोडे) उत्पन्न होते हैं। वे फूटते है और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देते है।

५. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] देवे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा संमुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

५. कोपि तथारूप श्रमण वा माहनं वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातितः (सन् ?) देवः परिकुपितः तस्य तेजः निसृजेत्। तत्र स्फोटाः सम्मूर्च्छन्ति, ते स्फोटाः भिद्यन्ते, ते स्फोटाः भिन्नाः सन्तः तमेव सह तेजसा भस्म कुर्युः।

५. कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर कोई देव कुपित होकर, आशातना करने वाले पर तेज फेंकता है। तब उसके शरीर मे स्फोट उत्पन्न होते हैं। वे फूटते है और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देते है।

६. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए देवेवि य परिकुविए ते दुहओ पडिण्णा तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा संमुच्छंति, °ते फोडा भिज्जंति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा° भासं कुज्जा।

६. कोपि तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातितः (सन् ?) परिकुपितः देवोपि च परिकुपितः तौ द्वौ (कृत) प्रतिज्ञौ तस्य तेजः निसृजेताम्। तत्र स्फोटाः सम्मूर्च्छन्ति, ते स्फोटाः भिद्यन्ते, ते स्फोटाः भिन्नाः सन्तः तमेव सह तेजसा भस्म कुर्युः।

६. कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर मुनि व देव दोनो कुपित होकर उसे मारने की प्रतिज्ञा कर उस पर तेज फेंकते है। तब उसके शरीर में स्फोट उत्पन्न होते है। वे फूटते हैं और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देते है।

७. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा संमुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, तत्थ पुला संमुच्छंति, ते पुला भिज्जंति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

७. कोपि तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातितः (सन् ?) परिकुपितः तस्य तेजः निसृजेत्। तत्र स्फोटाः सम्मूर्च्छन्ति, ते स्फोटाः भिद्यन्ते, तत्र पुलाः सम्मूर्च्छन्ति, ते पुलाः भिद्यन्ते, ते पुलाः भिन्नाः सन्तः तमेव सह तेजसा भस्म कुर्युः।

७. कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-संपन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। तब वह अत्याशातना से कुपित होकर, उस पर तेज फेंकता है। तब उसके शरीर में स्फोट उत्पन्न होते हैं। वे फूटते है। उनमे पुल [फुसिया] निकलती है। वे फूटती हैं और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देती है।

८. °केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] देवे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा संमुच्छंति, ते फोडा भिज्जति, तत्थ पुला संमुच्छंति, ते पुला भिज्जंति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

८. कोपि तथारूपं श्रमण वा माहनं वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातितः (सन् ?) देवः परिकुपितः तस्य तेजः निसृजेत्। तत्र स्फोटाः सम्मूर्च्छन्ति, ते स्फोटाः भिद्यन्ते, तत्र पुलाः सम्मूर्च्छन्ति, ते पुलाः भिद्यन्ते, ते पुलाः भिन्नाः सन्तः तमेव सह तेजसा भस्म कुर्युः।

८. कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर कोई देव कुपित होकर अत्याशातना करने वाले पर तेज फेकता है। तब उसके शरीर में स्फोट उत्पन्न होते है। वे फूटते है। उनमे पुल [फुसिया] निकलती है। वे फूटती है और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देती हैं।

९. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए देवेवि य परिकुविए ते दुहओ पडिण्णा तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा संमुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, तत्थ पुला संमुच्छंति, ते पुला भिज्जंति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।°

९. कोपि तथारूपं श्रमणं वा माहन वा अत्याशातयेत्, स च अत्याशातितः (सन् ?) परिकुपितः देवोपि च परिकुपितः तौ द्वौ (कृत) प्रतिज्ञौ तस्य तेजः निसृजेताम्। तत्र स्फोटाः सम्मूर्च्छन्ति, ते स्फोटा भिद्यन्ते, तत्र पुलाः सम्मूर्च्छन्ति, ते पुलाः भिद्यन्ते, ते पुलाः भिन्नाः सन्तः तमेव सह तेजसा भस्म कुर्युः।

९. कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर मुनि व देव—दोनो कुपित होकर उसे मारने की प्रतिज्ञा कर, उस पर तेज फेंकते है। तब उसके शरीर में स्फोट उत्पन्न होते है, वे फूटते है, उनमें पुल [फुसिया] निकलती हैं। वे फूटतीं है और फूटकर उसे तेज से भस्म कर देती है।

१०. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेमाणे तेयं णिसिरेज्जा, से य तत्थ णो कम्मति, णो पकम्मति, अंचिअंचिय करेति, करेत्ता आयाहिण-पयाहिणं करेति, करेत्ता उड्ढं वेहासं उप्पतति, उप्पतेत्ता से णं ततो पडिहते पडिणियत्तति, पडिणियत्तित्ता तमेव सरीरगं अणुदहमाणे-अणुदहमाणे सह तेयसा भासं कुज्जा—जहा वा गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवे तेए।

१०. कोपि तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा अत्याशातयन् तेजः निसृजेत्, स च तत्र नो क्रमते, नो प्रक्रमते, आञ्चिताञ्चितं करोति, कृत्वा आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा ऊर्ध्वं विहायः उत्पतति, उत्पत्य स ततः प्रतिहतः प्रतिनिवर्त्तते, प्रतिनिवृत्त्य तदेव शरीरकं अनुदहत्-अनुदहत् सह तेजसा भस्म कुर्यात्—यथा वा गोशालस्य मङ्खलीपुत्रस्य तपस्तेजः।

१०. कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि-सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता हुआ उस पर तेज फेंकता है। वह तेज उसमे घुस नही सकता। उसके ऊपर-नीचे, नीचे-ऊपर आता-जाता है, दाएं-बाएं प्रदक्षिणा करता है। वैसा कर आकाश मे चला जाता है। वहां से लौटकर उस श्रमण-माहन के प्रबल तेज से प्रतिहत होकर वापस उसी के पास चला जाता है, जो उसे फेंकता है। उसके शरीर मे प्रवेश कर उसे उसकी तेजोलब्धि के साथ भस्म कर देता है। जिस प्रकार मंखलीपुत्र गोशालक ने भगवान् महावीर पर तेज का प्रयोग किया था। [वीतरागता के प्रभाव से भगवान् भस्मसात् नही हुए। वह तेज लौटा और उसने गोशालक को ही जला डाला।]

अच्छेरग-पदं

१६०. दस अच्छेरगा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. उवसग्ग गब्भहरणं,
इत्थीतित्थं अभाविया परिसा।
कण्हस्स अवरकंका,
उत्तरणं चंदसूराणं॥
२. हरिवंसकुलुप्पत्ती,
चमरुप्पातो य अट्ठसयसिद्धा।
अस्संजतेसु पूआ,
दसवि अणंतेण कालेण॥

आश्चर्यक-पदम्

दश आश्चर्यकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. उपसर्गाः गर्भहरणं,
स्त्रीतीर्थं अभाविता परिषत्।
कृष्णस्य अपरकंका,
उत्तरणं चन्द्रसूरयोः॥
२. हरिवंशकुलोत्पत्तिः,
चमरोत्पातश्च अष्टशतसिद्धाः।
असंयतेषु पूजा,
दशापि अनन्तेन कालेन॥

आश्चर्यक-पद

१६०. आश्चर्य दस है[११]—

१. उपसर्ग—तीर्थकरों के उपसर्ग होना।
२. गर्भहरण—भगवान् महावीर का गर्भापहरण।
३. स्त्री का तीर्थंकर होना।
४. अभावित परिषद्—तीर्थंकर के प्रथम धर्मोपदेशक की विफलता।
५. कृष्ण का अपरकंका नगरी में जाना।
६. चन्द्र और सूर्य का विमान सहित पृथ्वी पर आना।
७ हरिवंश कुल की उत्पत्ति।
८. चमर का उत्पात—चमरेन्द्र का सौधर्म-कल्प [प्रथम देवलोक] में जाना।
९. एक सौ आठ सिद्ध—एक समय में एक साथ एक सौ आठ व्यक्तियों का मुक्त होना।
१०. असंयमी की पूजा।
—ये दसों आश्चर्य अनन्तकाल के व्यवधान से हुए हैं।

कंड-पदं

१६१. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए रयणे कंडे दस जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

१६२. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए वइरे कंडे दस जोयणसताइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

१६३. एवं वेरुलिए लोहितक्खे मसारगल्ले हंसगब्भे पुलए सोगंधिए जोतिरसे अंजणे अंजणपुलए रतय जातरूवे अंके फलिहे रिट्ठे। जहा—रयणे तहा सोलसविधा भाणितव्वा।

काण्ड-पदम्

अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः रत्नं काण्डं दश योजनशतानि बाहल्येन प्रज्ञप्तम्।

अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः वज्रं काण्डं दश योजनशतानि बाहल्येन प्रज्ञप्तम्।

एवं वैडूर्यं लोहिताक्षं मसारगल्लं हंसगर्भं पुलकं सौगन्धिकं ज्योतीरसं अञ्जनं अञ्जनपुलकं रजतं जातरूपं अङ्कं स्फटिकं रिष्टम्। यथा—रत्नं तथा षोडशविधाः भणितव्याः।

काण्ड-पद

१६१-१६३. रत्नकाण्ड, वज्रकाण्ड, वैडूर्यकाण्ड लोहिताक्षकाण्ड, मसारगल्लककाण्ड हंसगर्भकाण्ड, पुलककाण्ड, सौगन्धिककाण्ड, ज्योतिरसकाण्ड, अञ्जनकाण्ड, अञ्जनपुलककाण्ड, रजतकाण्ड, जातरूपकाण्ड, अङ्ककाण्ड, स्फटिककाण्ड और रिष्टकाण्ड—इनमें से प्रत्येक काण्ड दस सौ-दस सौ योजन मोटा है।

उव्वेह-पदं

१६४. सव्वेवि णं दीव-समुद्दा दस जोयणसताइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

१६५. सव्वेवि णं महादहा दस जोयणाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

१६६. सव्वेवि णं सलिलकुंडा दस जोयणाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

१६७. सीता-सीतोया णं महाणईओ मुहमूले दस-दस जोयणाइं उव्वेहेणं पण्णत्ताओ।

उद्वेध-पदम्

सर्वेपि द्वीप-समुद्राः दश योजनशतानि उद्वेधेन प्रज्ञप्ताः।

सर्वेपि महाद्रहाः दश योजनानि उद्वेधेन प्रज्ञप्ताः।

सर्वाण्यपि सलिलकुण्डानि दश योजनानि उद्वेधेन प्रज्ञप्तानि।

शीता-शीतोदा महानद्यः मुखमूले दश-दश योजनानि उद्वेधेन प्रज्ञप्ताः।

उद्वेध-पद

१६४. सभी द्वीप-समुद्र दस सौ दस सौ योजन गहरे हैं।

१६५. सभी महाद्रह दस-दस योजन गहरे हैं।

१६६. सभी सलिलकुंड [प्रपातकुण्ड] दस-दस योजन गहरे हैं।

१६७. शीता और शीतोदा महानदियों का मुख-मूल [समुद्र-प्रवेश स्थान] दस-दस योजन गहरा है।

णक्खत्त-पदं

१६८. कत्तियाणक्खत्ते सव्वबाहिराओ मंडलाओ दसमे मंडले चारं चरति।

१६९. अणुराधाणक्खत्ते सव्वब्भंतराओ मंडलाओ दसमे मंडले चारं चरति।

नक्षत्र-पदम्

कृत्तिकानक्षत्रं सर्वबाह्यात् मण्डलात् दशमे मण्डले चारं चरति।

अनुराधानक्षत्रं सर्वाभ्यन्तरात् मण्डलात् दशमे मण्डले चारं चरति।

नक्षत्र-पद

१६८. कृत्तिका नक्षत्र चन्द्रमा के सर्व-बाह्य मंडल से दसवें मंडल में गति करता है।

१६९. अनुराधा नक्षत्र चन्द्रमा के सर्वाभ्यन्तर मंडल से दसवें मंडल में गति करता है।

णाणविद्धिकर-पदं

१७०. दस णक्खत्ता णाणस्स विद्धिकरा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. मिगसिरमद्दा पुस्सो,
तिण्णि य पुव्वाइं मूलमस्सेसा।
हत्थो चित्ता य तहा,
दस विद्धिकराइं णाणस्स ॥

ज्ञानवृद्धिकर-पदम्

दश नक्षत्राणि ज्ञानस्य वृद्धिकराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

संग्रहणी-गाथा

१. मृगशिरा आर्द्रा पुष्यः,
त्रीणि च पूर्वाणि मूलमश्लेषा।
हस्तश्चित्रा च तथा,
दश वृद्धिकराणि ज्ञानस्य ॥

ज्ञानवृद्धिकर-पद

१७०. ज्ञान की वृद्धि करने वाले नक्षत्र दस हैं—

१. मृगशिरा, २. आर्द्रा, ३. पुष्य,
४. पूर्वाषाढा, ५. पूर्वभाद्रपद,
६. पूर्वफाल्गुनी, ७. मूल,
८. अश्लेषा, ९. हस्त, १०. चित्रा।

कुलकोडि-पदं

१७१. चउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं दस जाति-कुलकोडि-जोणिपमुह-सतसहस्सा पण्णत्ता।

१७२. उरपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं दस जाति-कुल-कोडि-जोणिपमुह-सतसहस्सा पण्णत्ता।

कुलकोटि-पदम्

चतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रितिर्यग्योनिकानां दश जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख-शत-सहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

उरःपरिसर्पस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्-योनिकानां दश जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुख-शतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

कुलकोटि-पद

१७१. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्थलचर चतुष्पद के योनिप्रवाह में होने वाली कुल-कोटियां दस लाख हैं।

१७२. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्थलचर उरःपरिसर्प के योनिप्रवाह में होने वाली कुल-कोटियां दस लाख हैं।

पावकम्म-पदं

१७३. जीवा णं दसठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—
पढमसमयएगिंदियणिव्वत्तिए,
अपढमसमयएगिंदियणिव्वत्तिए,
पढमसमयबेइंदियणिव्वत्तिए,
अपढमसमयबेइंदियणिव्वत्तिए,
पढमसमयतेइंदियणिव्वत्तिए,
अपढमसमयतेइंदियणिव्वत्तिए,
पढमसमयचउरिंदियणिव्वत्तिए,
अपढमसमयचउरिंदियणिव्वत्तिए,
पढमसमयपंचिंदियणिव्वत्तिए,
अपढमसमयपंचिंदियणिव्वत्तिए।

पापकर्म-पदम्

जीवा दशस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचैषुः वा चिन्वन्ति वा चेष्यन्ति वा, तद्यथा—
प्रथमसमयैकेन्द्रियनिर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयैकेन्द्रियनिर्वर्तितान्,
प्रथमसमयद्वीन्द्रियनिर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयद्वीन्द्रियनिर्वर्तितान्,
प्रथमसमयत्रीन्द्रियनिर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयत्रीन्द्रियनिर्वर्तितान्,
प्रथमसमयचतुरिन्द्रियनिर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयचतुरिन्द्रियनिर्वर्तितान्,
प्रथमसमयपञ्चेन्द्रियनिर्वर्तितान्,
अप्रथमसमयपञ्चेन्द्रियनिर्वर्तितान्।

पापकर्म-पद

१७३. जीवों ने दस स्थानों में निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्म के रूप में चय किया है, करते हैं और करेंगे—

१. प्रथमसमय एकेन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का। २. अप्रथमसमय एकेन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का। ३. प्रथमसमय द्वीन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का। ४. अप्रथमसमय द्वीन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का। ५. प्रथमसमय त्रीन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का। ६. अप्रथमसमय त्रीन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का। ७. प्रथमसमय चतुरिन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का। ८. अप्रथमसमय चतुरिन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का। ९. प्रथमसमय पञ्चेन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का। १०. अप्रथमसमय पञ्चेन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का।

एवं—चिण-उवचिण-बंध
उदीर-वेय तह णिज्जरा चेव ।

एवम्—चय-उपचय-बन्ध
उदीर-वेदाः तथा निर्जरा चैव ।

इसी प्रकार उनका उपचय, बंधन, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे ।

पोग्गल-पदं

पुद्गल-पदम्

पुद्गल-पद

१७४. दसपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता।
दशप्रदेशिकाः स्कन्धाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः ।
१७४. दस प्रदेशी स्कन्ध अनन्त हैं ।

१७५. दसपएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ।
दशप्रदेशावगाढाः पुद्गलाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः ।
१७५. दस प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त हैं ।

१७६. दससमयठितीया पोग्गला अणंता पण्णत्ता ।
दशसमयस्थितिकाः पुद्गलाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः ।
१७६. दस समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं ।

१७७. दसगुणकालगा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ।
दशगुणकालकाः पुद्गलाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः ।
१७७. दस गुण वाले पुद्गल अनन्त हैं ।

१७८. एवं वण्णेहिं गंधेहिं रसेहिं फासेहिं दसगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ।
एवं वर्णैः गन्धैः रसैः स्पर्शैः दशगुणरूक्षाः पुद्गलाः अनन्ताः प्रज्ञप्ताः ।
१७८. इसी प्रकार शेष वर्ण तथा गंध, रस और स्पर्शों के दस गुण वाले पुद्गल अनन्त है।

ग्रन्थ परिमाण

अक्षर परिमाण—१६५४४८

अनुष्टुप् श्लोक परिमाण—५१७० अक्षर

टिप्पणियाँ

स्थान–१०

१,२. दीर्घ, ह्रस्व (सू० २)

वृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त दीर्घ (दीह) और ह्रस्व (रहस्स) शब्दों के दो-दो अर्थ किए हैं[1]—

(१) दीर्घ—दीर्घवर्णाश्रित शब्द।

(२) दूरश्रव्य—दूर तक सुनाई देने वाला शब्द, किन्तु इसका अर्थ दूरश्रव्य की अपेक्षा प्रलम्बध्वनि वाला शब्द अधिक संगत लगता है।

ह्रस्व—(१) ह्रस्ववर्णाश्रित शब्द।

(२) लघुध्वनि वाला शब्द।

३. (सू० ६)

प्रस्तुत सूत्र का प्रतिपाद्य यह है कि शरीर या किसी स्कंध से संबद्ध पुद्गल दस कारणों से चलित होता है—स्थानान्तरित होता है।

वृत्तिकार के अनुसार दसों स्थानों की व्याख्या प्रथमा और सप्तमी—दोनों विभक्तियों से की जा सकती है।

१. खाद्यमान पुद्गल अथवा खाने के समय पुद्गल चलित होता है।

२. परिणत होता हुआ पुद्गल अथवा जठराग्नि के द्वारा खल और रस में परिणत होते समय पुद्गल चलित होता है।

३. उच्छ्वासवायु का पुद्गल अथवा उच्छ्वास के समय पुद्गल चलित होता है।

४. निःश्वासवायु का पुद्गल अथवा निःश्वास के समय पुद्गल चलित होता है।

५. वेद्यमान कर्म-पुद्गल अथवा कर्मवेदन के समय पुद्गल चलित होता है।

६. निर्जीर्यमान कर्म-पुद्गल अथवा कर्म निर्जरण के समय पुद्गल चलित होता है।

७. वैक्रियशरीर के रूप में परिणत होता हुआ पुद्गल अथवा वैक्रिय शरीर की परिणति के समय पुद्गल चलित होता है।

८. परिचर्यमाण (मैथुन में संप्रयुक्त) वीर्य के पुद्गल अथवा मैथुन के समय पुद्गल चलित होता है।

९. यक्षाविष्टशरीर अथवा यक्षावेश के समय पुद्गल (शरीर) चलित होता है।

१०. देहगतवायु से प्रेरित पुद्गल अथवा शरीर में वायु के बढ़ने पर बाह्य वायु से प्रेरित पुद्गल चलित होता है।[2]

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४७ : दीर्घो—दीर्घवर्णाश्रितो दूरश्रव्यो वा···
ह्रस्वो—ह्रस्ववर्णाश्रयो विवक्षया लघुर्वा।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४८।

४,५ उपकरण संवरसूचीकुशाग्रसंवर (सू० १०)

उपकरणसंवर—उपधि के दो प्रकार है—ओघ उपधि और उपग्रह उपधि। जो उपकरण प्रतिदिन काम मे आते है उन्हे 'ओघ' और जो कोई विशिष्ट कारण उपस्थित होने पर संयम की सुरक्षा के लिए स्वीकृत किए जाते है उन्हे 'उपग्रह' उपधि कहा जाता है।[1]

उपकरण संवर का अर्थ है—अप्रतिनियत और अकल्पनीय वस्त्र आदि उपकरणों का अस्वीकार अथवा बिखरे हुए वस्त्र आदि उपकरणों को व्यवस्थित रख देना।

यह उल्लेख औधिक उपधि की अपेक्षा से है।[2]

सूचीकुशाग्रसंवर—सूई और कुशाग्र का संवरण (संगोपन) कर रखना, जिससे वे शरीरोपघातक न हों। ये उपकरण औधिक नहीं होते किन्तु प्रयोगजनवश कदाचित् रखे जाते है।

सूची और कुशाग्र—ये दो शब्द समस्त औपग्रहिक उपकरणों के सूचक है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रथम आठ भाव-संवर और शेष दो द्रव्य-संवर है।[3]

६ (सू० १५)

प्रस्तुत सूत्र मे प्रव्रज्या के दस प्रकार बतलाए गए है। प्रव्रज्या ग्रहण के अनेक कारण हो सकते है। उनमे से कुछेक कारणो का यहां उल्लेख है। वृत्तिकार ने दसो प्रकार की प्रव्रज्याओं के उदाहरणो का नामोल्लेख मात्र किया है।[4] उनका विस्तार इस प्रकार है—

१ छन्दा—अपनी इच्छा से ली जाने वाली प्रव्रज्या।

(क) एक बौद्ध भिक्षु थे। उनका नाम था गोविंद। एक जैन आचार्य ने उन्हे अठारह बार वाद मे पराजित किया। इस पराजय से खिन्न होकर उन्होने सोचा—'जब तक मैं इनके (जैनो के) सिद्धान्तो को पूर्ण रूप से समझ नही लेता, तब तक इनको वाद-प्रतिवाद मे जीत नही सकूगा।'

ऐसा सोचकर वे उन्ही जैन आचार्य के पास आए, जिन्होने उन्हें पराजित किया था। उन्होने ज्ञान सीखना प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे उन्होने सारा ज्ञान सीख लिया। इस चेष्टा से ज्ञानावरण कर्म का क्षय होने पर उन्हे ज्ञान की प्राप्ति हुई।

एक बार वे आचार्य के पास गए। अपनी सारी बात उनके समक्ष सरलता से रखते हुए उन्होने कहा—'आप महाव्रत (प्रव्रज्या) ग्रहण कराये।' आचार्य ने उन्हे दीक्षित कर दिया। अन्त मे वे सूरि पद पर अधिष्ठित हुए और वे गोविन्द-वाचक के नाम से प्रसिद्ध हुए।[5]

---

१. ओघनिर्युक्ति गाथा ६६८, वृत्ति पृष्ठ ४६६ तत्र ओघोपधि-नित्यमेव यो गृह्यते, अवग्रहोपधिस्तु कारणे आपन्ने संयमार्थं यो गृह्यते सोऽवग्रहोपधिरिति।

२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४८ उपकरणसंवर:—अप्रतिनियता-कल्पनीयवस्त्राद्यग्रहणरूपोऽथवा विप्रकीर्णस्य वस्त्राद्युपकरणस्य संवरणमुपकरणसंवर, अयं चौघिकोपकरणापेक्ष।

३. वही, वृत्ति पत्र ४४८ एष तूपलक्षणत्वात्समस्तौपग्रहिकोप-करणापेक्षो द्रष्टव्य, इह चान्त्यपदद्वयेन द्रव्यसंवरावुक्ताविति।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४४९।

५ मुनि पुण्यविजयजी ने गोविंदवाचक का अस्तित्व काल विक्रम की पाँचवीं शताब्दी माना है। (महावीर जैन विद्यालय रजत महोत्सव अंक, पृष्ठ १९९-२०१) इन्होंने 'गोविंदनिर्युक्ति' नामक दार्शनिक ग्रन्थ की रचना की जिसमे एकेन्द्रिय जीवो की सिद्धि की गई है। (निशीथ भाष्य गाथा ३६५६, चूर्णि)। ··

बृहत्कल्प के वृत्तिकार दर्शन-विशुद्धि कारक ग्रन्थो का नामोल्लेख करते हुए सन्मतितर्क और तत्त्वार्थ के साथ-साथ गोविंदनिर्युक्ति का भी उल्लेख करते हैं—

(क) बृहत्कल्पभाष्य गाथा २८८०, वृत्ति—दर्शनविशुद्धि-कारणीया गोविंदनिर्युक्ति, आदि शब्दात् सम्म (न्म) ति—तत्त्वार्थप्रभृतीनि च, शास्त्राणि ··।

(ख) वही, भाष्य गाथा ५४७३, वृत्ति—आवश्यकचूर्णि मे भी 'गोविंदनिर्युक्ति' को दर्शन प्रभावक शास्त्र माना है। (आवश्यकचूर्णि), पूर्वभाग, पृष्ठ ३५३ —दंसणंवि दंसणप्पभावगाणि। सत्थाणि जहा गोविंदनिज्जुत्तिमादीणि।

निशीथभाष्य मे गोविंदवाचक का उदाहरण 'भावस्तेन' के अन्तर्गत लिया है।

(क) निशीथभाष्य गाथा ३६५६ गोविंदज्जोणाणे।

(ख) वही, गाथा ६२५५ ··· गोविंदपवज्जा।

वृत्ति-भावतेणो जहा गोविंदवायगो ··। भावस्तेन तीन प्रकार के हैं—ज्ञानस्तेन, दर्शनस्तेन और चारित्र-स्तेन। गोविंदवाचक ज्ञानस्तेन थे—अर्थात् ज्ञान लेने के लिए प्रव्रजित हुए थे।

दशवैकालिक निर्युक्ति में भी गोविंदवाचक का नामोल्लेख हुआ है।

दशवैकालिकनिर्युक्ति गाथा ८२।

(ख) प्राचीन काल मे नासिक्य (वर्तमान मे नासिक) नामका नगर था। वहां नद नामका वणिक् रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुन्दरी था। वह उसको अत्यन्त प्रिय थी। क्षणभर के लिए भी वह उससे विलग होना नही चाहता था। इस अत्यन्त प्रीति के कारण लोग उसको 'सुन्दरीनंद' के नाम से पुकारने लगे।

नंद का भाई पहले ही दीक्षित हो चुका था। उसने अपने छोटे भाई की आसक्ति के विषय मे सुना और सोचा कि वह नरकगामी न हो जाए, इसलिए उसको प्रतिबोध देने वहां आया। सुन्दरीनंद ने उसे भक्त-पान से परिलाभित किया। मुनि ने उसको अपने पात्र साथ लेकर चलने को कहा। सुन्दरीनद ने सोचा—थोड़े समय बाद मुझे विसर्जित कर देगा, किन्तु मुनि उसे अपने स्थान (उद्यान) पर ले गए। मार्ग मे लोगो ने सुन्दरीनंद के हाथो मे साधु के पात्र देखकर कहा—सुन्दरीनद ने दीक्षा ले ली है।

मुनि उद्यान मे पहुंचे और सुन्दरीनद को प्रव्रजित होने के लिए प्रतिबोध दिया। सुन्दरीनद पर उसका कोई प्रभाव नही पड़ा।

मुनि वैक्रियलब्धि से सम्पन्न थे। उन्होने सोचा—इसको समझाने का अब कोई दूसरा उपाय नही है। मैं इसे कुछ विशेष के द्वारा प्रलोभित करूँ। उन्होने कहा—'चलो, हम मेरु पर्वत पर घूम आए।' सुन्दरीनंद अपनी पत्नी को छोड़ जाने के लिए तैयार नही हुआ। मुनि ने उसे कहा—अभी हम मुहूर्त्त भर मे लौट आयेंगे। उसने स्वीकार कर लिया। मुनि उसे मेरु पर्वत पर ले गए और थोड़े समय बाद लौट आए। परन्तु सुन्दरीनद का मन नही बदला।

तब मुनि ने एक वानरयुगल की विकुर्वणा[1] की और सुन्दरीनद से पूछा—'वानरी और सुन्दरी मे कौन सुन्दर है? उसने कहा—भगवन्! यह कैसी तुलना? जितना सरसव और मेरु मे अन्तर है, इतना इन दोनो मे अन्तर है।' तदनन्तर मुनि ने विद्याधर युगल की विकुर्वणा की और वही प्रश्न पूछा। सुन्दरीनद ने कहा—'भगवन्! दोनो तुल्य है' पश्चात् मुनि ने देवयुगल की विकुर्वणा कर वही प्रश्न पूछा। देवागना को देखकर सुन्दरीनद ने कहा—'भगवन्! इसके समक्ष सुन्दरी वानरी जैसी लगती है।' मुनि बोले—'देवागना की प्राप्ति थोड़े से धर्माचरण से भी हो सकती है।'

यह सुनकर सुन्दरीनंद का मन लोभ से भर गया और उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।[2]

२ रोष से ली जाने वाली प्रव्रज्या—

प्राचीन समय में रथवीरपुर नगर के दीपक उद्यान मे आचार्य आर्यकृष्ण समवसृत थे। उसी नगर मे एक मल्ल भी रहता था। उसका नाम था शिवभूति। वह अत्यन्त पराक्रमी और साहसिक था।

एक बार वह राजा के पास गया और नौकर रख लेने के लिए प्रार्थना की। राजा ने कहा—'मैं परीक्षा लूगा। यदि तू उसमे उत्तीर्ण हो गया तो तुझे रख लूगा।'

एक दिन राजा ने उसे बुलाकर कहा—'मल्ल! आज कृष्ण चतुर्दशी है। श्मशान मे चामुंडा का मन्दिर है। वहा जाओ और बलि देकर लौट आओ।' राजा ने उसको बलि चढाने के लिए पशु और मदिरा भरे पात्र दिए।

---

१. आवश्यक के टीकाकार मलयगिरि ने यहां मतान्तर का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वानरयुगल, विद्याधरयुगल और देवयुगल—ये तीनो युगल वहां साक्षात् देखे थे।

आवश्यक, मलयगिरि वृत्ति पत्र ५३३

अन्नेभणति सच्चग चेव दिट्ठ।

बौद्ध लेखक अश्वघोष (ई० चौथी शताब्दी) ने 'सौंदरानद' काव्य लिखा है उसकी कथावस्तु भी इससे मिलती-जुलती है। 'उदान' में आठ वर्ग हैं। उसके तीसरे वर्ग का नाम 'नदवर्ग' है। इसमे मुख्य रूपसे महात्मा बुद्ध के मौसेरे भाई नद की कथा है। वह बहुत विलासी था। महात्मा बुद्ध ने उसे विविध प्रकार से समझाकर सांसारिक आसक्ति से मुक्त कर अपने धर्म मे दीक्षित किया। यह कथा भी इस कथानक के समान प्रतीत होती है।

२. आवश्यक मलयगिरिवृत्ति पत्र, ५३३;

आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग पृष्ठ ५६६।

दूसरी ओर राजा ने अपने दूसरे कर्मकरों को बुलाकर कहा—'तुम छुपकर वहां जाओ और इसे इस-इस प्रकार से डराने का प्रयास करो।'

राजा की आज्ञा पाकर मल्ल शिवभूति श्मशान में गया और बलि दे, पशुओं को मारकर वहीं खा गया।

उधर दूसरे व्यक्ति मिलकर भयंकर शब्द करने लगे किन्तु मल्ल शिवभूति के रोमांच भी नहीं हुआ। अपने कार्य से, निवृत्त हो, वह राजा के पास गया। उसके अनूठे साहस की बात राजा के पास पहले ही पहुंच चुकी थी। राजा ने उसे अपने पास रख लिया।

एक बार राजा ने अपने सेनापति को बुलाकर कहा—'जाओ, मथुरा को जीत आओ।' सेनापति ने अपनी सेना के साथ वहां से प्रस्थान किया। मल्ल शिवभूति भी साथ मे था। कुछ दूर जाकर शिवभूति ने सेनापति से कहा—हमने राजा से पूछा ही नही कि किस मथुरा को जीतना है—मथुरा या पांडुमथुरा ? सब चिंतित हो गए। राजा को पुनः पूछना अपने सिर पर आपत्ति को लेना है। ऐसा सोचकर शिवभूति ने कहा—'दोनो मथुराओं को साथ ही जीत लेना चाहिए।' सेनापति ने कहा—'दल को दो भागों मे नही बांटा जा सकता और एक-एक पर विजय प्राप्त करने में बहुत समय लग सकता है।' शिवभूति ने कहा—'जो दुर्जेय है वह मुझे दी जाए।' पाडुमथुरा को जीतने का कार्य उसे सौंप दिया गया। वह वहां गया और दुर्ग को तोड़कर किनारे पर रहने वाले लोगो को उत्पीड़न करने लगा। उसके भय से सारा नगर खाली हो गया। नगर को जीतकर वह राजा के पास आया। राजा ने प्रसन्न होकर कहा—'बोल, तू क्या चाहता है ?' उसने कहा—'राजन् ! आप मुझे यह छूट दें कि मैं जहां चाहूं वहां घूम-फिर सकू।' राजा ने उसे वह छूट दे दी। अब वह घूम-फिरकर आधी रात गए घर लौटता। कभी घर आता और कभी आता ही नहीं। उसकी पत्नी उसके घर पहुंचे बिना न सोती और न भोजन ही करती। इस प्रकार कुछ दिन बीते। वह अत्यन्त निराश हो गई। एक बार उसने अपनी सासू से सारी बात कही। सासू ने कहा—जा, तू खा-पी ले और सो जा। आज मैं भूखी-प्यासी उसकी प्रतीक्षा मे जागती रहूंगी। वह पत्नी सो गई। मां जागती रही।

आधी रात बीत गई थी। शिवभूति आया और द्वार खोलने के लिए कहा। माता ने उपालम्भ देते हुए कहा—'जहां इस समय द्वार खुले रहते हों, वहां चला जा।' यह सुन शिवभूति का मन क्रोध से भर गया। वह वहां से चला। साधुओं के उपाश्रय के पास आया और देखा कि द्वार खुले है। वह भीतर गया। आचार्य बैठे थे। वन्दना कर वह बोला—'आप मुझे प्रव्रजित करें।' आचार्य ने प्रव्रज्या देने की अनिच्छा प्रगट की। तब उसने स्वय लुंचन कर डाला। आचार्य ने तब उसे साधु के अन्य उपकरण दिए। अब वे साथ-साथ विहरण करने लगे।[1]

३. गरीबी के कारण ली जाने वाली प्रव्रज्या—

एक बार आचार्य सुहस्ती कौशाम्बी नगरी मे आए। मुनिजन भिक्षा के लिए नगरी मे घूमने लगे। एक गरीब व्यक्ति ने उन्हें देखा। वह भूखा था। उसने मुनियो के पास जाकर भोजन मांगा। मुनियो ने कहा—'हमारे आचार्य के पास भोजन मांगो। हम वही उपाश्रय मे जा रहे हैं।' वह उनके साथ उपाश्रय मे गया और उसके आचार्य से भोजन देने की प्रार्थना की। आचार्य ने कहा—वत्स हम ऐसे भोजन नही दे सकते। यदि तुम प्रव्रज्या ग्रहण कर लो, तो हम तुम्हें भरपेट भोजन देंगे।

वह क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित था। उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।[2]

४. स्वप्न के निमित्त से ली जानेवाली प्रव्रज्या—

प्राचीन काल मे गंगानदी के तट पर पुष्पभद्र नामका एक सुन्दर नगर था। वहां के राजा का नाम पुष्पकेतु और रानी का नाम पुष्पवती था। वह अत्यन्त सुन्दर और सुकुमार थी। एक बार उसने एक युगल का प्रसव किया। पुत्र का नाम पुष्पचूल और पुत्री का नाम पुष्पचूला रखा गया। वे दोनों बालक साथ-साथ बढ़ने लगे। दोनों मे बहुत स्नेह था। एक बार राजा ने

---

१. आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, पत्र, ४१८, ४१९।

२. अभिधानराजेन्द्र, भाग ७, पृष्ठ १९७।

सोचा—"इन दोनों बालकों का परस्पर गाढ़ स्नेह है। यदि ये अलग हो गए तो जीवित नहीं रह सकेंगे। तो अच्छा है, मैं इनको परस्पर विवाह-सूत्र में बांध दू।"

राजा ने अपने मित्रों, पौरजनों तथा मंत्रियों से पूछा—"अन्तःपुर मे जो रत्न उत्पन्न होता है, उसका स्वामी कौन है?" सभी ने एक स्वर से कहा—'राजा उसका स्वामी है।' राजा ने परस्पर दोनों का विवाह कर डाला। रानी ने इसका विरोध किया, परन्तु राजा ने रानी की बात नही सुनी। राजा से अपमानित होने पर रानी ने दीक्षा ग्रहण कर ली। व्रतो का पालन कर वह मृत्यु के बाद देवी बनी।

राजा पुष्पकेतु की मृत्यु के पश्चात् कुमार पुष्पचूल राजा बना और अपनी पत्नी के साथ (बहिन के साथ) भोग भोगता हुआ आनन्द में रहने लगा।

इधर देवने अवधिज्ञान से अकृत्य में नियोजित अपनी पुत्री पुष्पचूला को देखा और सोचा—'यह मेरी प्राणप्रिया पुत्री है। इस कुकर्म से कही नरक मे न चली जाए। अत. मुझे प्रयत्न करना चाहिए।'

एक बार देव ने पुष्पचूला को नरक के दारुण दुःखों से पीडित नारकों को दिखाया। पुष्पचूला का मन कांप उठा। उसने स्वप्न की बात अपने पति से कही। पुष्पचूल ने इस उपद्रव को शान्त करने के लिए शान्तिकर्म करवाया। परन्तु देव प्रतिदिन पुष्पचूला को नरक के दारुण दृश्य दिखाने लगा।

राजा ने अपने नगर के अन्यतीर्थिकों को बुलाकर नरक के विषय मे पूछा। उनसे कोई समाधान न मिलने पर राजा ने आचार्य अग्निकापुत्र को बुला भेजा और वही प्रश्न पूछा। आचार्य ने नरक के यथार्थ स्वरूप का चित्रण किया। रानी का मन आश्वस्त हुआ। उसने नरक गमन का कारण पूछा। आचार्य ने उसके कारणों का निरूपण किया।

कुछ दिन पश्चात् रानी ने स्वप्न मे स्वर्ग के दृश्य देखे। आचार्य अग्निकापुत्र से समाधान पाकर वह प्रव्रजित हो गई।[1]

५ प्रतिश्रुत (प्रतिज्ञा) के कारण ली जाने वाली प्रव्रज्या—

राजगृह मे धन्यक नामका सार्थवाह रहता था। उसका विवाह शालीभद्र की छोटी बहिन के साथ हुआ था। शालीभद्र दीक्षा के लिए तैयार हुआ। यह समाचार उसकी बहिन तक पहुचा। उसने सुना कि उसका भाई शालीभद्र प्रतिदिन एक-एक पत्नी और एक-एक शय्या का त्याग करता है। वह बहुत दु.खी हुई। उस समय वह अपने पति धन्यक को स्नान करा रही थी। उसकी आखे डबडबा आई और दो-चार आसू धन्यक के कंधो पर गिरे। धन्यक ने अपनी पत्नि के विवर्ण मुख को देखा और दु.ख का कारण पूछा। उसने कहा—मेरा भाई शालीभद्र दीक्षा लेने की तैयारी कर रहा है और प्रतिदिन एक-एक पत्नी का त्याग करता चला जा रहा है। धन्यक ने कहा—'तुम्हारा भाई कायर है, हीनसत्त्व है। यदि दीक्षा लेनी ही है तो एक साथ त्याग क्यों नही कर देता।'

उसने कहा—'कहना सरल है, करना अत्यन्त कठिन। आप दीक्षा क्यों नही ले लेते?'

धन्यक बोला—हा, तुम्हारा कहना ठीक है। आज मैं प्रतिज्ञा करता हू कि मैं शीघ्र ही दीक्षा ले लूगा।' इस प्रतिज्ञा के आधार पर वह शालीभद्र के साथ भगवान् के पास दीक्षित हो गया।

६. जन्मान्तरों की स्मृति से ली जाने वाली प्रव्रज्या—

विदेह जनपद की राजधानी मिथिला के राजा कुम्भ की पुत्री का नाम मल्लीकुमारी था। उसके पूर्व भव के छह साथी थे। उनकी उत्पत्ति इस प्रकार हुई—

१. साकेत नगरी में राजा प्रतिबुद्धि के रूप में।

२. चंपा नगरी में राजा चन्द्रच्छाय के रूप मे।

३. श्रावस्ती नगरी में राजा रुक्मी के रूप मे।

४. वाराणसी नगरी मे शंखराज के रूप में।

५. हस्तिनागपुर नगर में राजा अदीनशत्रु के रूप मे।

---

१. परिशिष्टपर्व, सर्ग ६, पृष्ठ ६६-१०१

६. कांपिल्यपुर में राजा जितशत्रु के रूप में।

इन सबको प्रतिबोध देने के लिए कुमारी ने एक उपाय किया (देखें ७।७५ का टिप्पण)। उन्हें अपने-अपने पूर्वभव की स्मारणा कराई। सभी राजाओं को जाति-स्मृतिज्ञान उत्पन्न हुआ और वे सब मल्ली के साथ दीक्षित हो गए।

७. रोग के कारण ली जाने वाली प्रव्रज्या—

एक बार इन्द्र ने चौथे चक्रवर्ती सनत्कुमार के रूप की प्रशसा की। दो देवों ने इसे स्वीकार नहीं किया और वे परीक्षा करने के लिए ब्राह्मण के रूप में वहा आए। दोनों प्रासाद के अन्दर गए और सीधे राजा के पास पहुच गए। राजा उस समय तैल-मर्दन कर रहा था। ब्राह्मण रूप देवो ने उसके अनावृत रूप को देखा और अत्यन्त आश्चर्य चकित हुए। वे एकटक उसको निहारने लगे। राजा ने पूछा —आप यहा क्यो आए है? उन्होने कहा—'तीनों लोक में आपके रूप की प्रशसा हो रही है। उसे आंखों से देखने के लिए हम यहा आए है।" राजा गर्व से उन्मत्त होकर बोला—"मेरा वास्तविक रूप आपको देखना हो तो आप राजसभा में आए। मैं जब राजसभा मे सजधज कर बैठता हूं तब मेरा रूप दर्शनीय होता है।" दोनो सभा भवन मे आने का वादा कर चले गए।

राजा शीघ्र ही अभ्यजन सपन्न कर, शरीर के सभी अगोपागो का शृगार कर सभा मे गया और एक ऊचे सिंहासन पर जा बैठा।

दोनो ब्राह्मण आए। राजा के रूप को देख खिन्न स्वर मे बोले—"अहो! मनुष्यो का रूप, लावण्य और यौवन क्षणभगुर होता है।"

राजा ने पूछा—यह आपने कैसे कहा?

उन्होंने सारी बात बताई।

राजा ने अपने विभूषित अग-प्रत्यगों का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया और सोचा—मेरे यौवन का तेज इतने ही समय मे क्षीण हो गया। संसार अनित्य है, शरीर असार है। रूप और यौवन का अभिमान करना मूर्खता है। भोगों का सेवन करना उन्माद है। परिग्रह पाश है, बंधन है। यह सोचकर वह अपने पुत्र को राज्य का भार सौंप आचार्य विरत के पास प्रव्रजित हो गया।

उपर्युक्त विवरण उत्तराध्ययन की बृहद्वृत्ति (अध्ययन १८) के अनुसार है।

स्थानागवृत्तिकार ने रोग से ली जाने वाली प्रव्रज्या मे 'सनत्कुमार' के दृष्टान्त की ओर संकेत किया है। किन्तु उत्तराध्ययन बृहद्वृत्तिगत विवरण में चक्रवर्ती सनत्कुमार के प्रव्रज्या से पूर्व, रोग उत्पन्न होने की बात का उल्लेख नही है। प्रव्रज्या के बाद प्रान्त और नीरस आहार करने के कारण उनके शरीर मे सात व्याधिया उत्पन्न होती है—ऐसा उल्लेख अवश्य है।

परम्परा से भी यही सुना जाता रहा है कि उनके शरीर में रोग उत्पन्न हुए थे और उन रोगों की ओर ब्राह्मण वेष-धारी देवो ने संकेत भी किया था। इस सकेत से प्रतिबुद्ध होकर चक्रवर्ती सनत्कुमार दीक्षित हो जाते हैं।

यह सारा कथानक-भेद है।

८. अनादर के कारण ली जाने वाली प्रव्रज्या—

मगध जनपद में नंदि नाम का गाव था। वहा गौतम ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम धारणी था। एक बार वह गर्भवती हुई। गर्भ के छह मास बीते तब गौतम ब्राह्मण मर गया और धारणी भी एक पुत्र का प्रसव कर मर गई। ऐसी स्थिति मे बालक का पालन उसका मामा करने लगा। उसने उसका नाम नंदीषेण रखा। जब बड़ा हुआ तब वह अपने मामा के यहा ही नौकर के रूप मे रह गया।

गांव के लोग नदिषेण के विषय मे बातचीत करते और उसे बुरा-भला कहते। वे उसको अनादर की दृष्टि से देखने लगे। यह बात नदिषेण को अखरने लगी। एक दिन उसके मामा ने कहा—वत्स! लोगों की बातों पर ध्यान मत दे। मैं तुझे कुंवारा नहीं रखूगा। यदि दूसरा कोई अपनी पुत्री नही देगा तो मैं अपनी पुत्री के साथ तेरा विवाह कराऊंगा। मेरे तीन पुत्रिया है।

नंदिषेण बहुत कुरूप था। अत: तीनों पुत्रियों ने उसके साथ विवाह करने से इन्कार कर दिया।

नंदिषेण को यह बहुत बुरा लगा। 'ऐसे तिरस्कृत जीवन से मरना अच्छा है'—ऐसा सोचकर वह घर से निकला और आत्महत्या करने के लिए उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। उस समय उसका संपर्क एक मुनि से हुआ। उन्होंने उसके विचार परिवर्तित किए और वह नदीवर्द्धन सूरी के पास प्रव्रजित हो गया।[1]

९. देवता के प्रतिबोध से ली जाने वाली प्रव्रज्या—

इस विषय में मुनि मेतार्य की कथा प्रसिद्ध है। मेतार्य पूर्वभव में पुरोहित पुत्र थे। उनकी राजपुत्र के साथ मैत्री थी। राजपुत्र के चाचा सागरचन्द्र प्रव्रजित हो चुके थे। सागरचन्द्र ने दोनों—राजपुत्र और पुरोहित पुत्र को कपट से प्रव्रजित कर दिया। राजपुत्र ने यह सोचकर इस कपट को सहन कर लिया कि चलो, ये मेरे चाचा ही तो है। किन्तु पुरोहित पुत्र के मन मे आचार्य सागरचन्द्र के प्रति बहुत जुगुप्सा पैदा हो गई। एक बार दोनो मित्रों ने आपस में यह प्रतिज्ञा की कि जो देवलोक से च्युत होकर पहले मर्त्यलोक मे जाएगा, उसे प्रतिबोध देने का कार्य दूसरे को करना होगा। दोनो मर कर देव बने। पुरोहित पुत्र का जीव देवलोक से पहले च्युत हुआ और राजगृह नगर के मेय चाडाल की पत्नी के गर्भ मे आया।

चाडाल की स्त्री की मैत्री एक सेठानी के साथ थी। वह नगर मे मांस बेचने के लिए आया करती थी। एक दिन सेठानी ने कहा—बहिन! तू अन्यत्र मत जा। मैं ही सारा मांस खरीद लूगी। चाडालिनी प्रतिदिन वहा आती और मांस देकर चली जाती। दोनो की मैत्री सघन होती गई।

सेठानी भी गर्भवती थी। किन्तु उसके सदा मृत संतान ही उत्पन्न होती थी। इस बार भी उसने एक मृत कन्या का प्रसव किया।

इधर चाडालिनी ने पुत्र का प्रसव किया। सेठानी ने अपनी मृत पुत्री उसे दी और उसका पुत्र ले लिया। अति प्रेम के कारण चाडालिनी ने कुछ भी आनाकानी नही की। सेठानी ने बच्चे को लेकर चाडालिनी के पैरों पर रखते हुए कहा—तेरे प्रभाव से यह जीवित रहे। उसका नाम मेतार्य रखा।

अब मेतार्य सेठ के घर बढ़ने लगा। उसने अनेक कलाएं सीखी और यौवन मे प्रवेश किया। पूर्वभव के देवमित्र को अपनी प्रतिज्ञा (संकेत) का स्मरण हो आया। वह देवलोक से मेतार्य के पास आया और अपने संकेत का स्मरण कराते हुए उसे प्रतिबोध दिया, किन्तु मेतार्य ने उसकी बात नहीं मानी।

अब उसका विवाह आठ धनी कन्याओ के साथ एक ही दिन होना निश्चित हुआ। वह पालकी मे बैठ नगर मे घूमने लगा। तब देव मेय के शरीर में प्रविष्ट हुआ। मेय जोर-जोर से रोते हुए कहने लगा—'हाय! यदि मेरी पुत्री भी आज जीवित होती तो मैं भी उसके विवाह की तैयारी करता।' उसकी पत्नी ने यह सुना। वह आई और बीती हुई सारी घटना उसे सुनाई। यह सुनकर देव के प्रभाव से चाडाल मेय उठा और सीधा मेतार्य की शिविका के पास गया और मेतार्य को शिविका से नीचे गिराते हुए कहा—'अरे, तुम एक नीच जाति के होते हुए भी उच्च जाति की कन्याओ के साथ विवाह कर रहे हो।' उसने मेतार्य को एक गड्ढे में ढकेल दिया। सारे नगर मे मेतार्य की निन्दा होने लगी। आठ कन्याओ ने उसके साथ विवाह करने से इन्कार कर दिया। तदन्तर देव ने आकर मेतार्य को सारी बात बताई और प्रव्रज्या के लिए तैयार होने के लिए कहा।

मेतार्य ने कहा—'मैं तैयार हू। किन्तु तुम मेरे अवर्णवाद को धो डालो। मैं बारह वर्ष तक यहा रहकर फिर प्रव्रजित हो जाऊंगा।'

देव ने पूछा—'अवर्णवाद को मिटाने के लिए मैं क्या कर सकता हूं?'

मेतार्य ने कहा—'मेरा विवाह राजकन्या के साथ करा दो। सारा अवर्णवाद मिट जायेगा।'

देवता ने मेतार्य को एक बकरा दिया। वह प्रतिदिन रत्नमय मींगना करता था। मेतार्य ने उन रत्नो से एक थाल भर कर राजा के पास भेजा और राजकुमारी की मांग की। राजा ने उसकी मांग अस्वीकार कर दी।

---

१. अभिधानराजेन्द्र, भाग ४, पृष्ठ १७५७।

वह प्रतिदिन रत्नों से भरा थाल राजा के पास भेजता रहा। एक दिन अमात्य अभयकुमार ने पूछा—ये इतने रत्न कहां से आए हैं ? उसने कहा—'मेरे घर एक बकरा है। वह प्रतिदिन इतने रत्न देता है।' अभयकुमार ने उसे मंगवाया, किन्तु उस बकरे ने वहां गोबर के मिगने दिए। अभयकुमार ने उसका कारण पूछा, तब मेतार्य ने कहा—'यह देव प्रभाव से सोने की मिंगनिए देता है। यदि आपको विश्वास न हो तो और परीक्षा कर सकते हैं।'

अभयकुमार ने कहा—'हमारे महाराज प्रतिदिन वैभारगिरि पर्वत पर भगवत् वंदन के लिए जाते हैं। उन्हें बड़ी कठिनाइयो से पर्वत पर चढ़ना पड़ता है। अत: ऊपर तक रथ-मार्ग का निर्माण करा दे।'

मेतार्य ने अपने देवमित्र से वैसा ही रथ-मार्ग बनवा दिया। (आज भी उसके अवशेष मिलते हैं।)

दूसरी बार अभयकुमार ने कहा—'राजगृह नगर के परकोटे को सोने का बनवाओ।' मेतार्य ने वह भी कार्य पूरा कर डाला।

तीसरी बार अभयकुमार ने कहा—'मेतार्य ! अब तुम यहा एक समुद्र लाकर उसमें स्नान कर शुद्ध हो जाओगे तो राजकुमारी को हम तुम्हे सौंप देंगे।'

देव-प्रभाव से मेतार्य इसमें भी सफल हुआ। राजकुमारी के साथ उसका विवाह संपन्न हुआ। वह अपनी नवोढा पत्नी के साथ शिविका में बैठ कर नगर में गया।

राजकन्या के साथ मेतार्य के परिणय की वार्ता सारे शहर मे फैल गई। अब आठ कन्याओं के पिताओं ने भी यह सुना और अपनी-अपनी कन्या पुन: देने का प्रस्ताव किया। मेतार्य ने उन सब कन्याओ के साथ विवाह कर लिया।

बारह वर्ष बीत गए। देवमित्र आया और प्रव्रजित होने की प्रेरणा दी।

मेतार्य की सभी पत्नियों ने देव से अनुरोध किया कि और बारह वर्ष तक इनका सहवास रहने दें। देव उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर चला गया।

बारह वर्ष और बीत जाने पर मेतार्य अपनी सभी पत्नियों के साथ प्रव्रजित हो गया।[1]

१०. पुत्र के अनुबंध से ली जाने वाली प्रव्रज्या—

अवती जनपद मे तुबवन नाम का गाव था। वहा धनगिरि नाम का इभ्यपुत्र रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुनन्दा था। जब वह गर्भवती हुई तब धनगिरि आर्य सिंहगिरि के पास दीक्षित हो गया। नौ मास पूर्ण होने पर सुनन्दा ने एक बालक को जन्म दिया। बालक को देखने के लिए आगत कुछ महिलाओं ने कहा—'कितना अच्छा होता यदि इस बालक के पिता दीक्षित नही होते।' बालक (जिसका नाम वज्र रखा गया था) ने यह सुना और वह उन्हीं वाक्यो को बार-बार स्मरण करने लगा। ऐसा करने से उसे जाति-स्मृतिज्ञान उत्पन्न हुआ। वह अपने पूर्वभव को देखकर रोने लगा और रात-दिन खूब रोते ही रहता। माता इससे बहुत कष्ट पाने लगी। छह महीने बीत गए।

एक बार मुनि धनगिरि तथा आर्यसमित उसी नगर मे आए और भिक्षा मांगने निकले। वे सुनंदा के घर आए। सुनदा ने कहा—'इस बालक को ले जाओ।' मुनि उसे लेना नहीं चाहते थे। तब सुनंदा ने पुन: कहा—'इतने समय तक मैंने इस बालक की रक्षा की है, अब आप इसकी रक्षा करें।' मुनि ने कहा—कही तुम्हे बाद में पश्चात्ताप न करना पड़े ? सुनंदा ने कहा—नही ! आप इसे ले जाएं। मुनि ने साक्ष्यकर उस छह महीने के बालक को ले लिया और अपने पात्र मे रख चोलपट्ट से बाध दिया। बालक ने रोना बद कर दिया।

मुनि धनगिरि उपाश्रय मे आए। झोली को भारी देखकर आचार्य ने हाथ पसारा। धनगिरि ने झोली आचार्य के हाथ थमा दी। अति भारी होने के कारण आचार्य ने कहा—अरे ! यह तो वज्र जैसा भारी-भरकम है। आचार्य ने झोली खोली और देवकुमार सदृश सुन्दर बालक को देखकर कहा—'आर्यो ! इस बालक की रक्षा करो। यह प्रवचन का प्रभावक होगा।'

अत्यन्त भारी होने के कारण बालक का नाम वज्र रखा और साध्वियों को सौंप दिया। साध्वियों ने उस बालक को शय्यातर के घर रखा और वे शय्यातर उसका भरण-पोषण करने लगे।

---

१. आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४७७, ४७८।

एक बार सुनंदा ने उस बालक को मांगा। शय्यातर ने उसे देने से इन्कार करते हुआ कहा कि यह हमारी धरोहर है। इसे हम नहीं दे सकते। वह प्रतिदिन आती और अपने पुत्र को स्तनपान कराकर चली जाती। इस प्रकार तीन वर्ष बीत गए।

एक बार मुनि धनगिरि विहार करते हुए वहां आए। सुनंदा के मन में पुत्र-प्राप्ति की लालसा तीव्र हुई। वह राज-सभा में गई और अपने पुत्र को पुनः दिलाने की प्रार्थना की। राजा ने धनगिरि को बुला भेजा। उसने कहा—'इसीने मुझे दान में दिया था।' सारे नगर ने सुनंदा का पक्ष लिया। राजा ने कहा—'मेरा कौन अपना है और कौन पराया ? मेरे लिए सब समान है। बालक जिसके पास चला जाए, वह उसीका हो जाएगा।' सबने यह बात मान ली। प्रश्न उठा कि पहले कौन बुलायेगा ? किसी ने कहा कि धर्म पुरुषोत्तम होता है अतः पुरुष ही पहले पुकारेगा। किसी ने कहा—नही, माता दुष्करकारिणी होती है, अतः उसी का यह अधिकार होना चाहिए।

माता सुनंदा ने बालक को प्रलोभित करने के लिए कुछेक खिलौनों को दिखाते हुए कहा—'वज्र ! आ, इधर आ !' बालक ने माता की ओर देखा, किन्तु उस ओर पैर नहीं बढ़ाए। माता ने तीन बार उसे पुकारा, वह नहीं आया।

तब पिता मुनि धनगिरि ने कहा—'वज्र ! ले, कर्मरज का प्रमार्जन करने के लिए यह रजोहरण ग्रहण कर। बालक दौड़ा और रजोहरण हाथ मे ले लिया।

राजा ने मुनि धनगिरि को बालक सौंप दिया। उसकी विजय हुई।

सुनंदा ने सोचा—मेरे पति, भाई और पुत्र—'सभी प्रव्रजित हो गए हैं, तो भला मैं घर मे क्यों रहूं।'

वह भी प्रव्रजित हो गई। अब बालक वज्र उसके पास रहने लगा।[1]

७. (सूत्र १६)

पांचवें स्थान मे दो सूत्रों (३४-३५) मे दस धर्मों का उल्लेख मिलता है। वहां वृत्तिकार से उनका अर्थ इस प्रकार किया है[2]—

१. क्षांति—क्रोधनिग्रह।
२. मुक्ति—लोभनिग्रह।
३ आर्जव—मायानिग्रह।
४. मार्दव—माननिग्रह।
५ लाघव—उपकरण की अल्पता; ऋद्धि, रस और सात—इन तीनो गौरवों का त्याग।
६ सत्य—काय-ऋजुता, भाव-ऋजुता, भाषा-ऋजुता और अविसंवादनयोग—कथनी-करनी की समानता।
७ संयम—हिंसा आदि की निवृत्ति।
८. तप।
९. त्याग—अपने सांभोगिक साधुओं को भक्त आदि का दान।
१०. ब्रह्मचर्यवास—कामभोग विरति।

१ वृत्तिकार ने दस धर्म की एक दूसरी परम्परा का उल्लेख किया है।[3] यह तत्त्वार्थसूत्रानुसारी परम्परा है। उसके अनुसार दस धर्म के नाम और क्रम में कुछ अन्तर है।

---

१ आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ३८७, ३८८।
२. स्थानांगवृत्ति, पत्र २८२, २८३।
३. वही, पत्र २८३ :
"खंती य मद्दवऽज्जव मुत्ती तवसंजमे य बोद्धव्वे।
सच्चं सोयं आकिंचणं च बंभं च जइधम्मो॥

१. उत्तम क्षमा, २. उत्तम मार्दव, ३. उत्तम आर्जव ४. उत्तम शौच, ५. उत्तम सत्य, ६. उत्तम संयम, ७. उत्तम तप, ८. उत्तम त्याग, ९. उत्तम आकिञ्चन्य, १०. उत्तम ब्रह्मचर्य।

तत्त्वार्थवार्तिक के अनुसार इनकी व्याख्या इस प्रकार है—

१. क्षमा—क्रोध के निमित्त मिलने पर भी कलुष न होना। शुभ परिणामों से क्रोध आदि की निवृत्ति।[1]

२. मार्दव—जाति, ऐश्वर्य, श्रुत, लाभ आदि का मद नहीं करना; दूसरे के द्वारा परिभव के निमित्त उपस्थित करने पर भी अभिमान नहीं करना।

३. आर्जव—मन, वचन और काया की ऋजुता।

४. शौच—लोभ की अत्यन्त निवृत्ति। लोभ चार प्रकार का है—जीवनलोभ, आरोग्यलोभ, इन्द्रियलोभ और उपभोगलोभ। लोभ के तीन प्रकार और हैं—(१) स्वद्रव्य का अत्याग (२) परद्रव्य का अपहरण (३) धरोहर की हड़प।[2]

५. सत्य।

६ संयम—प्राणीपीडा का परिहार और इन्द्रिय-विजय। संयम के दो प्रकार हैं—(१) उपेक्षासंयम—राग-द्वेषात्मक चित्तवृत्ति का अभाव। (२) अपहृत संयम—भावशुद्धि, कायशुद्धि आदि।

७. तप।

८. त्याग—सचित्त तथा अचित्त परिग्रह की निवृत्ति।

९. आकिञ्चन्य—शरीर आदि सभी बाह्य वस्तुओं में ममत्व का त्याग।

१०. ब्रह्मचर्य—कामोत्तेजक वस्तुओं तथा दृश्यों का वर्जन तथा गुरु की आज्ञा का पालन।[3]

आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा विरचित 'द्वादशानुप्रेक्षा' के अन्तर्गत 'धर्म अनुप्रेक्षा' में इन दस धर्मों की व्याख्याएं प्राप्त हैं। वे उपर्युक्त व्याख्याओं से यत्र-तत्र भिन्न हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. क्षमा—क्रोधोत्पत्ति के बाह्य कारणों के प्राप्त होने पर भी क्रोध न करना।

२. मार्दव—कुल, रूप, जाति, बुद्धि, तप, श्रुत और शील का गर्व न करना।

३. आर्जव—कुटिलभाव को छोड़कर निर्मल हृदय से प्रवृत्ति करना।

४. सत्य—दूसरों को संताप देने वाले वचनों का त्याग कर, स्व और पर के लिए हितकारी वचन बोलना।

५ शौच—कांक्षाओं से निवृत्त होकर वैराग्य में रमण करना।

६ संयम—व्रत तथा समितियों का यथार्थ पालन, दण्ड-त्याग तथा इन्द्रिय-जय।

७ तप—विषयों तथा कषायों का निग्रह कर अपनी आत्मा को ध्यान और स्वाध्याय से भावित करना।

८. त्याग—आसक्ति को छोड़कर पदार्थों के प्रति वैराग्य रखना।

९. आकिञ्चन्य—निस्संग होकर अपने सुख-दुःख के भावों का निग्रह कर निर्द्वन्द्व रूप से विहरण करना।

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक' पृष्ठ ५२३।

२. वही, पृष्ठ ५२३।

३. वही, पृष्ठ ५९५-६००।

१०. ब्रह्मचर्य—स्त्री के अंग-प्रत्यंगो को देखते हुए भी उनमें दुर्भाव न लाना।[1]

आवश्यक चूर्णि के अनुसार इन दसों धर्मों का समवतार मूल गुण (महाव्रत) तथा उत्तर गुणों मे होता है—
सयम का प्रथम महाव्रत प्राणातिपात विरति में,
सत्य का दूसरे महाव्रत मृषावाद विरति में,
अकिंचनता का तीसरे महाव्रत अदत्त विरति में,
ब्रह्मचर्य का चौथे महाव्रत मैथुन विरति में तथा
शेष धर्मों का उत्तर गुणों में समावेश होता है।[2]

८. (सूत्र १७)

वृत्तिकार ने 'वेयावच्चे' के दो संस्कृत रूप दिए हैं 'वैयावृत्य' और वैयापृत्य'। इनका अर्थ है—सेवा करना, कार्य मे व्यापृत होना। प्रस्तुत सूत्र मे व्यक्ति-भेद व समूह-भेद से उसके दस प्रकार बतलाए गए हैं। केवल संघ-वैयावृत्य या साधर्मिक-वैयावृत्य से काम चल सकता था किन्तु विशेष व स्पष्ट अवबोध के लिए इन सभी भेद-प्रभेदों का उल्लेख किया गया है। वास्तव मे ये सभी एक ही धर्म-संघ के अंग-प्रत्यंग हैं।

तत्त्वार्थ ९।२४ में निर्दिष्ट वैयावृत्य के दस प्रकारों तथा प्रस्तुत सूत्र के दस प्रकारों मे नाम-भेद तथा क्रम-भेद है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक के अनुसार वैयावृत्य का अर्थ तथा भेद और व्याख्या इस प्रकार है—

वैयावृत्य का अर्थ है—आचार्य, उपाध्याय आदि जब व्याधि, परिषह या मिथ्यात्व से ग्रस्त हों तब इन दोषों का प्रतीकार करना। रोग आदि की स्थिति मे उन्हे प्रासुक औषधि, आहार-पान, वसति, पीठ, फलक, संस्तरण आदि धर्मोपकरण उपलब्ध करना तथा उन्हे सम्यक्त्व में पुनः स्थापित करना वैयावृत्य है। बाह्य द्रव्यों की प्राप्ति के अभाव मे अपने हाथ से कफ, श्लेष्म आदि मलों का अपनयन कर अनुकूलता पैदा करना वैयावृत्य है।

वह दस प्रकार का है—

१. आचार्य का वैयावृत्य—भव्य जीव जिनकी प्रेरणा से व्रतों का आचरण करते हैं, उनको आचार्य कहा जाता है। उनका वैयावृत्य करना।

२. उपाध्याय का वैयावृत्य—जो मुनि व्रत शील और भावना के आधार हैं, उनके पास जाकर विनय से श्रुत का अध्ययन करते हैं उन्हे उपाध्याय कहा जाता है। उनका वैयावृत्य करना।

३. तपस्वी का वैयावृत्य—मासोपवास आदि तप करने वाला तपस्वी कहलाता है। उनका वैयावृत्य करना।

४. शैक्ष का वैयावृत्य—जो श्रुतज्ञान के शिक्षण मे तत्पर और व्रतों की भावना मे निपुण है उसे शैक्ष कहते हैं। उसका वैयावृत्य करना।

---

१. बट्प्राभृत, द्वादशानुप्रेक्षा, श्लोक ७१-८१।
कोहुप्पत्तिस्स पुणो बहिरंग जदि हवेदि सक्खाद।
ण कुणदि किंचि वि कोहं तस्स खमा होदि धम्मोत्ति॥
कुलरूवजादिबुद्धिसु तवसुदसीलेसु गारवं किंचि।
जो ण वि कुव्वदि समणो मद्दवधम्मं हवे तस्स॥
मोत्तूण कुडिलभाव णिम्मलहिदयेण चरदि जो समणो।
अज्जवधम्मं तइयो तस्स दु संभवदि णियमेण॥
परसंतावयकारणवयणं मोत्तूण सपरहिदवयणं।
जो वददि भिक्खु तुरियो तस्स दु धम्मो हवे सच्चं॥
कंखाभावणिवित्तिं किच्चा वेरग्गभावणाजुत्तो।
जो वट्टदि परममुणी तस्स दु धम्मो हवे सोच्चं॥
वदसमिदिपालणाए दंडच्चाएण इंदियजएण।
परिणममाणस्स पुणो संजमधम्मो हवे णियमा॥
विसयकसायविणिग्गहभावं काऊण झाणसज्झाए।
जो भावइ अप्पाणं तस्स तवं होदि णियमेण॥
णिव्वेगतियं भावइ मोहं चइऊण सव्वदव्वेसु।
जो तस्स हवे चागो इदि भणिदं जिणवरिंदेहिं॥
होऊण य णिस्संगो णियभावं णिग्गहित्तु सुहदुहदं।
णिद्दंदेण दु वट्टदि अणयारो तस्स किंचण्हं॥
सव्वंग पेच्छंतो इत्थीणं तासु मुयदि दुब्भावं।
सो बम्हचेरभावं सुक्कदि खलु दुद्धरं धरदि॥
सावयधम्मं चत्ता जदिधम्मे जो हु वट्टए जीवो।
सो ण य वज्जदि मोक्खं धम्मं इदि चिंतये णिच्चं॥

१. आवश्यकचूर्णि, उत्तर भाग, पृष्ठ ११७।

५. ग्लान का वैयावृत्त्य—जिसका शरीर रोग आदि से आक्रान्त है, वह ग्लान है। उसका वैयावृत्त्य करना।

६. गण का वैयावृत्त्य—स्थविर मुनियों की संगति को गण कहा जाता है। उसका वैयावृत्त्य करना।

७. कुल का वैयावृत्त्य—दीक्षा देने वाले आचार्य की शिष्य-परम्परा को कुल कहा जाता है। उसका वैयावृत्त्य करना।

८. संघ का वैयावृत्त्य—श्रमण-समूह को संघ कहा जाता है। उसका वैयावृत्त्य करना।

९. साधु का वैयावृत्त्य—चिरकाल से प्रव्रजित साधक को साधु कहा जाता है। उसका वैयावृत्त्य करना।

१०. मनोज्ञ का वैयावृत्त्य—मनोज्ञ के तीन अर्थ हैं—

१. अभिरूप—जो अपने ही संघ के साधु के वेश में है।

२. जो संसार मे अपनी विद्वत्ता, वाक्-कौशल और महाकुलीनता के कारण प्रसिद्ध है।

३ संस्कारी असंयत सम्यक्-दृष्टि।

स्थानांग में उक्त साधर्मिक और स्थविर 'वैयावृत्त्य' का इसमे उल्लेख नहीं है। उनके स्थान पर साधु और मनोज्ञ ये दो प्रकार निर्दिष्ट हैं। स्थानांग वृत्ति में सार्धमिक का अर्थ साधु किया गया है।[१]

वैयावृत्त्य करने के चार कारण बतलाए गए हैं—

१. समाधि पैदा करना।

२. विचिकित्सा दूर करना, ग्लानि का निवारण करना।

३. प्रवचन वात्सल्य प्रकट करना।

४. सनाथता—निःसहायता या निराधारता की अनुभूति न होने देना।[२]

व्यवहार भाष्य में प्रत्येक वैयावृत्त्य स्थान के तेरह-तेरह द्वार उल्लिखित हैं, वे ये हैं—

१. भोजन लाकर देना।

२. पानी लाकर देना।

३. संस्तारक देना।

४. आसन देना।

५. क्षेत्र और उपधि का प्रतिलेखन करना।

६. पाद प्रमार्जन करना अथवा औषधि पिलाना।

७. आंख का रोग उत्पन्न होने पर औषधि लाकर देना।

८. मार्ग में विहार करते समय उनका भार लेना तथा मर्दन आदि करना।

९. राजा आदि के क्रुद्ध होने पर उत्पन्न क्लेश से निस्तार करना।

१०. शरीर को हानि पहुंचाने वाले तथा उपधि को चुरानेवालों से संरक्षण करना।

११. बाहर से आने पर दंड (यष्टि) ग्रहण कर रखना।

१२. ग्लान होने पर उचित व्यवस्था करना।

१३. उच्चार पात्र, प्रश्रवण पात्र और श्लेष्म पात्र की व्यवस्था करना।

प्रस्तुत प्रसंग में तीर्थंकर के वैयावृत्त्य का कोई उल्लेख नहीं है। शिष्य ने आचार्य से पूछा—'क्या तीर्थंकर का वैयावृत्त्य नहीं करना चाहिए? क्या वैसा करने से निर्जरा नहीं होती? आचार्य ने कहा—'दस व्यक्तियों के मध्य में आचार्य का ग्रहण किया गया है। इसमें तीर्थंकर समाविष्ट हो जाते है। यहां आचार्य शब्द केवल निर्देशन के लिए है।

---

२. स्थानागवृत्ति, पत्र ४४६ : समानो धर्मः सधर्मस्तेन चरन्तीति सार्धमिका- साधव।

२. तत्त्वार्थराजवार्तिक (दूसरा भाग) पृष्ठ ६२४ : समाध्याधान-विचिकित्साभावप्रवचनवात्सल्याद्यभिव्यक्त्यर्थम्।

आचार्य का अर्थ है—स्वयं आचार का पालन करना तथा दूसरों से उसका पालन करवाना। इस दृष्टि से तीर्थंकर स्वयं आचार्य होते हैं। स्कन्दक ने गौतम गणधर से पूछा—'आपको किसने यह अनुशासन दिया ?'

गौतम ने कहा—'धर्माचार्य ने।'

यहां आचार्य का अभिप्राय तीर्थंकर से है।[१]

पांचवें स्थान के दो सूत्रों [४४-४५] में अग्लान भाव से दस प्रकार के वैयावृत्य करने वाला, महान कर्मक्षय करने वाला और आत्यन्तिक पर्यवसान वाला होता है—ऐसा कहा है।

९. (सू० १८)

परिणाम का अर्थ है—एक पर्याय से दूसरे पर्याय मे जाना। इसमे सर्वथा विनाश और सर्वथा अवस्थान—ध्रौव्य नहीं होता। यह कथन द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से है। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से परिणम का अर्थ है—सत् पर्याय का विनाश और असत् पर्याय का उत्पाद।

प्रस्तुत सूत्र मे जीव के दस परिणाम बतलाए है। वे जीव के परिणमनशील अध्यवसाय या अवस्थाएं हैं।

इन दस परिणामों के अवान्तर भेद चालीस हैं—

१. गति परिणाम—चार गतियां—नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव।
२. इंद्रिय परिणाम—पांच इन्द्रियां—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु: और श्रोत्र।
३. कषाय परिणाम—चार कषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ।
४. लेश्या परिणाम—छह लेश्या—कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल।
५. योग परिणाम—तीन योग—मन, वचन और काय।
६. उपयोग परिणाम—दो उपयोग—साकार और अनाकार।
७. ज्ञान परिणाम—पांच ज्ञान—मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यव और केवल।
८. दर्शन परिणाम—तीन दर्शन—चक्षु:दर्शन, अचक्षु:दर्शन और अवधिदर्शन।
९. चारित्र परिणाम—पांच चारित्र—सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय और यथाख्यात।
१०. वेद परिणाम—तीन वेद—पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद।

१०. (सू० १९)

पुद्गलों के परिणाम (अव्यवस्थान्तर) को अजीव परिणाम कहा जाता है। वह दस प्रकार का है[२]—

१. बंधन परिणाम—पुद्गलों का परस्पर सम्बन्ध स्निग्धता और रूक्षता के कारण होता है। (देखें—तत्त्वार्थ सूत्र ५।३२-३६)

बंधन तीन प्रकार का होता है—

१. प्रयोग बंध—जीव के प्रयोग से होने वाला बंध।
२. विस्रसाबध—स्वभाव से होने वाला बंध।
३. मिश्र बंध—जीव के प्रयत्न और स्वभाव—दोनों से होने वाला बंध।

२. गति परिणाम—पुद्गलों की गति। यह दो प्रकार का है—

१. स्पृशद्गतिपरिणाम—प्रयत्न विशेष से क्षेत्र-प्रदेशो का स्पर्श करते हुए गति का होना।
२. अस्पृशद्गतिपरिणाम—क्षेत्रप्रदेशो का स्पर्श न करते हुए गति का होना।

---

१. व्यवहारभाष्य १०।१२३-१३३।
२ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५०, ४५१।

जैसे—बहुत ऊंचे मकान से पत्थर गिराने पर उसके गिरने का कालभेद तथा अनवरत गति करने वाले पदार्थों का देशान्तर प्राप्ति का कालभेद प्राप्त होता है—यह अस्पृशद्गति परिणाम है।

विकल्प से इसके दो भेद और होते हैं—

दीर्घगति परिणाम और ह्रस्वगति परिणाम।

३. संस्थान परिणाम—संस्थान का अर्थ है—आकृति। उसके दो प्रकार हैं—

१. इत्थंस्थ—नियत आकार वाला। इसके पांच प्रकार हैं— परिमंडल, वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण और आयात।

२. अनित्थंस्थ—अनियत आकार वाला।

४. भेद परिणाम—यह पांच प्रकार का है—

० खण्डभेद—मिट्टी की दरार।

० प्रतरभेद—जैसे—अभ्रपटल के प्रतर।

० अनुतटभेद—बास या ईक्षु को छीलना।

० चूर्णभेद—चूर्ण, जैसे—आटा।

० उत्करिकाभेद—काठ आदि का उत्किरण।

तत्त्वार्थवार्तिक मे इसके छह भेद निर्दिष्ट है। उनमे इन पाच के अतिरिक्त एक चूर्णिका को और माना है। चूर्ण और चूर्णिका का अर्थ इस प्रकार दिया है—

१. चूर्ण—जौ, गेहू आदि के सत्तू मे होनेवाली कणिका।

२. चूर्णिका—उड़द. मूंग आदि का आटा।[1]

५. वर्णपरिणाम—इसके पाच प्रकार है—कृष्ण, पीत, नील, रक्त और श्वेत।

६. गध परिणाम—इसके दो प्रकार है—सुगध और दुर्गन्ध।

७ रस परिणाम—इसके पाच प्रकार हैं—तिक्त, कटु, कसैला, आम्ल और मधुर।

८. स्पर्श परिणाम—इसके आठ प्रकार हैं—कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष।

९. अगुरुलघुपरिणाम—अत्यन्त सूक्ष्म परिणाम। भाषा, मन और कर्म वर्गणा के पुद्गल अत्यन्त सूक्ष्म परिणाम वाले होते हैं। यह निश्चय नय की अपेक्षा से है। व्यवहार नय की अपेक्षा से इसके चार भेद होते हैं—

१. गुरुक—पत्थर आदि। इसका स्वभाव है नीचा जाना।

२. लघुक—धूम आदि। इसका स्वभाव है ऊंचा जाना।

३. गुरुलघुक—वायु आदि। इसका स्वभाव है—तिर्यग् गति करना।

४. अगुरुलघुक—जो न गुरु होता है और न लघु, जैसे—भाषा आदि की वर्गणाएं।

१०. शब्द परिणाम—देखें स्थानाग २।२।

इनमे वर्ण, गंध, रस और स्पर्श—ये चार पुद्गल के गुण है और शेष परिणाम उनके कार्य है।

११. (सू० २०, २१)

जैन परम्परा मे अस्वाध्यायिक वातावरण मे स्वाध्याय करने का निषेध है। आवश्यक सूत्र (४) के अनुसार अस्वाध्यायिक मे स्वाध्याय करना ज्ञान का अतिचार है। इस निषेध के पीछे अनेक कारण रहे है। उनका आकलन व्यवहारभाष्य, निशीथभाष्य तथा स्थानांगवृत्ति आदि अनेक ग्रन्थों मे प्राप्त है। निषेध के कुछेक कारण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

१ श्रुतज्ञान की अभक्ति। २. लोकविरुद्ध व्यवहार। ३. प्रमत्तछलना। ४. विद्या साधन का वैगुण्य। ५. श्रुतज्ञान के आचार की विराधना। ६. अहिंसा। ७. उड्डाह। ८ अप्रीति।

---

१ तत्त्वार्थवार्तिक ५।२४, पृष्ठ ४८९ चूर्णो यवगोधूमादीनां सक्तुकणिकादि।······चूर्णिका माषमुद्गादीनाम्।

प्रथम पाँच कारण उक्त दोनों भाष्यों में निर्दिष्ट हैं[1] और शेष तीन कारण भाष्य तथा फलित रूप में प्राप्त होते हैं।

ग्राममहत्तर की मृत्यु के समय स्वाध्याय का वर्जन न करने पर लोक गर्हा करते थे—

'हमारे गांव का मुखिया चल बसा है और ये साधु पढ़ने मे लगे हुए है। इन्हे उसका कोई दुःख ही नही है।' इस लोक गर्हा से बचने के लिए ऐसे प्रसंगों पर स्वाध्याय का वर्जन किया जाता था।[2]

इसी प्रकार युद्ध आदि के समय भी स्वाध्याय का वर्जन न करने पर लोक उड्डाह (अपवाद) करते थे—'हमारे शिर पर आपदाओं के पहाड़ टूट रहे है, पर ये साधु अपनी पढाई में लीन हैं।' इस उड्डाह से बचने के लिए भी स्वाध्याय का वर्जन किया जाता था।[3]

भाष्य-निर्दिष्ट स्वाध्याय-वर्जन के कारणों का अध्ययन करने पर सहज ही यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वाध्याय-वर्जन के बहुत सारे कारण उस समय की प्रचलित लौकिक और अन्य साप्रदायिक मान्यताओं पर आधृत है . व्यवहार पालन की दृष्टि मे इन्हे स्वीकार किया गया है। इनमें सामयिक स्थिति की झलक अधिक है।

कुछ कारण ऐसे भी हैं जिनका सबध लोक व्यवहार से नही है, जैसे— कुहासा गिरने पर स्वाध्याय का वर्जन अहिंसा की दृष्टि से किया गया है। कुहासा गिरने के समय सारा वातावरण अप्काय के जीवो से आक्रान्त हो जाता है। उस समय मुनि को किसी प्रकार की कायिकी और वाचिकी चेष्टा नही करनी चाहिए।[4]

व्यन्तर आदि देवताओ के द्वारा या निर्घात आदि के पीछे भी व्यन्तर आदि देवताओ के हाथ होने की कल्पना की गई है। वे व्यन्तर साधु को ठग सकते हैं, इस संभावना से भी वैसे प्रसगों मे स्वाध्याय का वर्जन किया गया है।

अतीत की बहुत सारी मान्यताएं, गर्हा के मानदड और अप्रीति के निमित्त आज व्यवहृत नही हैं। इसलिए अस्वाध्यायिक के प्रकरण का जितना ऐतिहासिक मूल्य है उतना व्यावहारिक मूल्य नही है। प्रस्तुत प्रकरण मे इतिहास के अनेक तथ्य उद्घाटित होते है।

इस तथ्य को ध्यान मे रखकर इसे विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत स्थान के बीसवें सूत्र मे दस प्रकार के आतरिक्ष अस्वाध्यायिक बतलाए गए है। उनका विवरण इस प्रकार है—

१. उल्कापात — पुच्छल तारे आदि का टूटना। उल्कापात के समय आकाश में रेखा दीख पड़ती है।

निशीथ भाष्य मे निर्दिष्ट है कि कुछ उल्काएं रेखा खींचती हुई गिरती हैं और कुछ केवल उद्योत करती हुई गिरती है।[5]

२. दिग्दाह—पुद्गलो की विचित्र परिणति के कारण कभी-कभी दिशाए प्रज्वलित जैसी हो उठती है। उस समय का प्रकाश छिन्नमूल होता है—भूमि पर स्थित नही दिखाई देता। किन्तु आकाश में स्थित दीखता है।

३. गर्जन—बादलों का गर्जन। व्यवहारभाष्य में इसके स्थान पर गुजित शब्द है। उसका अर्थ है—गुजमान महाध्वनि।[6]

---

१. (क) व्यवहारभाष्य ७।२६६ .

सुयनाणमि अभत्ती लोगविरुद्ध पमत्तछलणा य।
विज्जासाहणवेगुण धम्मयाए य मा कुणसु ॥

(ख) निशीथभाष्य गाथा ६१७१ :

सुयणाणम्मि अभत्ती लोगविरुद्ध पमत्तछलणा य।
विज्जासाहण वइगुण्ण धम्मयाए य मा कुणसु ॥

२. निशीथभाष्य गाथा ६०९७ :

महत्तरपगते बहुपक्खिते, व सत्तघरअंतरमते वा।
णिद्दुक्ख त्ति य गरहा, ण करेंति सणीयम वा वि ॥

३ निशीथभाष्यगाथा ६०९५ :

सेणाहिव भोइ महयर, पुसित्थीणं च मल्लजुद्धे वा।
लोट्ठादि-भडणे वा, गुज्झमुड्डाहमचियत्त ॥

चूर्णि—जणोभणेज्ज,—अम्हे आवइपत्ताण इमे सज्झाय करेतित्ति अचियत्त हवेज्ज

४. व्यवहारभाष्य ७।२७६ :

पढममि सव्वचिट्ठा सज्झातो वा निवारतो नियमा।
सेसेसु असज्झातो चेट्ठा न निवारिया अण्णा ॥

५ निशीथभाष्य गाथा ६०८९ ·

उक्का सरेहा पगासजुत्ता वा।

६ व्यवहारभाष्य ७।२८८ :

···निग्घायगुजिते···। वृत्ति—गुञ्जमानो महाध्वनिर्गुंजितम्।

४. विद्युत्—बिजली का चमकना ।

५. निर्घात—बादलों से आच्छादित या अनाच्छादित आकाश मे व्यन्तरकृत महान् गर्जन की ध्वनि ।[1] यहा गर्जित और विद्युत् की भाति निर्घात भी स्वाभाविक पौद्गलिक परिणति होना चाहिए। इस आधार पर इसका अर्थ होगा—प्रचण्ड शब्द युक्त वायु ।

६. यूपक—इसका अर्थ है—चन्द्र-प्रभा और सन्ध्या-प्रभा का मिश्रण ।[2]

व्यवहारभाष्य मे इसका अर्थ सध्याच्छेदावरण [संध्या के विभाग का आवरण] किया है ।[3]

इसकी भावना यह है कि शुक्ल पक्ष की द्वितीया, तृतीया और चतुर्थी को चन्द्रमा संध्यागत होता है इसलिए सध्या का यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाता। फलतः रात्रि में स्वाध्याय-काल का ग्रहण नही किया जा सकता। अत उस समय कालिक सूत्रों का अस्वाध्यायिक रहता है ।[4]

कई आचार्यों का अभिमत है कि शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया—इन तीन तिथियों मे, सूर्य के उदय और अस्त के समय, ताम्रवर्ण जैसे लाल और कृष्णश्याम अमोघ मोघा [आकाश मे प्रलम्ब श्वेत श्रेणिया] होते है, उन्हे यूपक कहा जाता है। कुछ आचार्य इसमे अस्वाध्यायिक नही मानते और कुछ मानते है। जो मानते हैं उनके अनुसार यूपक मे दो प्रहर तक अस्वाध्यायिक रहता है ।[5]

७. यक्षादिप्त—स्थानागवृत्ति मे इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है। व्यवहार भाष्य की वृत्ति के अनुसार इसका अर्थ है—किसी एक दिशा मे कभी-कभी दिखाई देने वाला विद्युत् जैसा प्रकाश ।[6]

८. धूमिका—यह महिका का ही एक भेद है।

इसका वर्ण धूम की तरह काला होता है।

९ महिका—तुषारापात, कुहासा।

ये दोनों [धूमिका और महिका] कार्तिक आदि गर्भ मासो[7] [कार्तिक, मृगशिर, पौष और माघ] मे गिरती है।

१०. रज उद्घात—स्वाभाविक रूप से चारों ओर धूल का गिरना।

प्रस्तुत स्थान के इक्कीसवें सूत्र मे औदारिक अस्वाध्याय के दस भेद बतलाए हैं। उनमे प्रथम तीन—अस्थि, मांस और रक्त—की विचारणा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से इस प्रकार की है।

(१) द्रव्य से—अस्थि, मांस और शोणित। क्वचित्, चर्म, अस्थि, मास और शोणित।

(२) क्षेत्र से—मनुष्य सबधी हो तो सौ हाथ और तिर्यञ्च सम्बन्धी हो तो साठ हाथ।

(३) काल से—मनुष्य सम्बन्धी—मृत्यु का एक अहोरात्र। लड़की उत्पन्न हो तो आठ दिन। लड़का उत्पन्न हो तो सात दिन।

हड्डिया यदि सौ हाथ के भीतर स्थित हों तो मनुष्य की मृत्यु दिन से लेकर बारह वर्षों तक। यदि हड्डियां चिता मे दग्ध या वर्षा से प्रवाहित हो तो अस्वाध्यायिक नही होता। यदि हड्डिया भूमि से खोदी गई हो तो अस्वाध्यायिक होता है। तिर्यञ्च सम्बन्धी हो तो जन्म-काल से तीसरे प्रहर तक। यदि बिल्ली चूहे आदि का घात करती हो तो एक अहोरात्र तक अस्वाध्यायिक रहता है।

(४) भाव से—नदी आदि सूत्रो के अध्ययन का वर्जन।

४. अशुचिसामन्त—रक्त, मूत्र और मल की गन्ध आती हो और वे प्रत्यक्ष दीखते हो तो अस्वाध्यायिक होती है।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५१ · निर्घात—साभ्रे निरभ्रे वा गगने व्यन्तरकृतो महागर्जितध्वनि.।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५१ सध्याप्रभा चन्द्रप्रभा च यद् युगपद् भवतस्तत् जुयगोत्ति भणितम्।

३. व्यवहारभाष्य ७।२८६।
सञ्झाच्छेयोवरणो उ जुक्तो ·····।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५१।

५ व्यवहारभाष्य ७।२८६, वृत्तिपत्र ४६।

६ व्यवहारभाष्य ७।२८४ वृत्ति पत्र ४६ यक्षालिप्तं नाम एकस्यादिशि अन्तरान्तरा यद् दृश्यते विद्युत् सदृश प्रकाशः।

७. व्यवहारभाष्य ७।२७८ वृत्ति पत्र ४८ गर्भमासो नाम कार्तिकादि यावत् माघमास।

५. श्मशानसामन्त—शवस्थान के समीप अस्वाध्यायिक होता है।

६-७. चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण—चन्द्रग्रहण में जघन्यतः आठ प्रहर और उत्कृष्टतः बारह प्रहर तक अस्वाध्यायिक रहता है। सूर्यग्रहण मे जघन्यत. बारह प्रहर और उत्कृष्टतः सोलह प्रहर तक अस्वाध्यायिक रहता है।

इनका विस्तार इस प्रकार है—

१. जिस रात्री मे चन्द्रग्रहण होता है उसी रात्री के चार प्रहर और दूसरे दिन के चार प्रहर—इस प्रकार जघन्यतः आठ प्रहर का अस्वाध्यायिक होता है। यदि प्रातःकाल मे चन्द्रग्रहण होता है और चन्द्रग्रहण-काल में अस्त हो जाता है तो उस दिन के चार प्रहर, उस रात के चार प्रहर और दूसरे दिन के चार प्रहर—इस प्रकार बारह प्रहर होते है।

२. यदि सूर्य ग्रहण-काल मे ही अस्त होता है तो उस रात्री के चार प्रहर, चार दूसरे दिन के और चार प्रहर उस रात्री के—इस प्रकार जघन्यत. बारह प्रहर होते है।

यदि सूर्य-ग्रहण प्रातःकाल ही प्रारम्भ हो जाता है तो उस दिन-रात के चार-चार प्रहर तथा दूसरे दिन-रात के चार-चार प्रहर—इस प्रकार उत्कृष्टतः १६ प्रहर होते है।

कई यह मानते है कि सूर्य-ग्रहण जिस दिन होता है वह दिन और रात अस्वाध्याय-काल है तथा चन्द्रग्रहण जिस रात मे होता है और उसी रात मे समाप्त हो जाता है, तो वह रात और जब तक दूसरा चन्द्र उदित नही हो जाता तब तक अस्वाध्याय काल है।[1]

व्यवहार भाष्य मे चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण को सदैव अस्वाध्याय। (अन्तरिक्ष अस्वाध्याय) मे गिनाया है।[2] स्थानाग सूत्र मे वे औदारिक वर्ग मे गृहीत है। वृत्तिकार ने बताया है कि ये यद्यपि अन्तरिक्ष से सबधित हैं फिर भी इनके विमान पृथिवीकायिक होने के कारण इन्हे औदारिक माना है।

अन्तरिक्ष वर्ग मे उक्त उल्का आदि आकस्मिक होते हैं और चन्द्र आदि के विमान शाश्वत होते हैं। इस विलक्षणता के कारण ही उन्हे दो भिन्न वर्गों मे रखा गया है।[3] किन्तु पाठ का अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि आन्तरिक्ष वर्ग वाले सूत्र मे दस की संख्या पूर्ण हो जाती है, अतः चन्द्रोपराग और सूर्योपराग भी औदारिकता को ध्यान में रखकर उनका समावेश औदारिक वर्ग में किया गया।

८. पतन—राजा, अमात्य, सेनापति, ग्रामभोगिक आदि विशिष्ट व्यक्तियों का मरण।

दंडिक के मर जाने पर, जब तक क्षोभ नही मिट जाता तबतक अस्वाध्यायिक रहता है। दूसरे दण्डिक की नियुक्ति हो जाने पर भी एक अहोरात्र तक अस्वाध्याय-काल रहता है। इसी प्रकार दूसरे-दूसरे विशिष्ट व्यक्तियो के मर जाने पर भी एक अहोरात्र का अस्वाध्याय काल जानना चाहिए।

९. राज-व्युद्ग्रह—राजा आदि के परस्पर विग्रह हो जाने पर जब तक विग्रह उपशान्त नही होता तब तक अस्वाध्याय-काल रहता है।

वृत्तिकार ने सेनापति, ग्राममहत्तर, प्रसिद्ध स्त्री-पुरुष आदि के परस्पर कलह हो जाने पर भी अस्वाध्याय-काल माना है।[4]

व्यवहार भाष्य के वृत्तिकार ने यह भी बताया है कि जब दो ग्रामो के बीच परस्पर वैमनस्य हो जाने पर नवयुवक अपने-अपने ग्राम का पक्ष लेकर पथराव करते है अथवा हाथापाई करते हैं, तब स्वाध्याय नही करना चाहिए तथा मल्लयुद्ध आदि प्रवर्तित होते समय भी अस्वाध्याय-काल रहता है। व्युद्ग्रह के प्रारभ से लेकर उपशान्त न होने तक अस्वाध्याय-काल है। जब सारा वातावरण भयमुक्त हो जाता है तब भी एक अहोरात्र तक अस्वाध्याय-काल रहता है।[5]

---

१. व्यवहारभाष्य, सप्तमभाग वृत्ति पत्र ४९, ५०।

२. वही, वृत्तिपत्र ५०।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५२।

४ वही, पत्र ४५२।

५. व्यवहारभाष्य, सप्तमभाग, पत्र ५१।

१०. बस्ती के अन्दर मनुष्य आदि का उद्भिन्न कलेवर हो तो सौ हाथ तक अस्वाध्यायिक रहता है और अनुद्भिन्न होने पर भी, गंध आदि के कारण सौ हाथ तक अस्वाध्यायिक रहता है। जब उसका परिष्ठापन हो जाता है तब वह स्थान शुद्ध हो जाता है।

व्यवहार सूत्र [उद्देशक ७] मे बतलाया गया है कि मुनि अस्वाध्यायिक वातावरण मे स्वाध्याय न करे, किन्तु स्वाध्यायिक वातावरण मे ही स्वाध्याय करे। भाष्यकार ने अस्वाध्यायिक के दो प्रकार बतलाए है—आत्म-समुत्थित और पर-समुत्थित।[1]

अपने शरीर मे व्रण आदि से रक्त झरना—यह आत्म-समुत्थित अस्वाध्यायिक है।

परसमुत्थ अस्वाध्यायिक पाच प्रकार का होता है—

१. सयमघाती २. औत्पातिक ३. देवप्रयुक्त ४ व्युद्ग्रह ५ शरीर संबंधी।

१. सयमघाती—इसके तीन भेद है—

१. महिका २. सचित्त रज ३. वर्षा —इसके तीन प्रकार है—

- बुद्बुद्—जिस वर्षा से पानी मे बुलबुले उठते हो।
- बुद्बुद् सहित वर्षा।
- फुआरवाली वर्षा।

निशीथ चूर्णि के अनुसार महिका सूक्ष्म होने के कारण गिरने के समय ही सर्वत्र व्याप्त होकर सब कुछ अप्काय से भावित कर देती है। इसलिए महिका-पात के समय ही स्वाध्याय, गमनागमन आदि चेष्टाए वर्जनीय हैं।[2]

सचित्त रज यदि निरतर गिरता है तो वह तीन दिन के पश्चात् सब कुछ पृथ्वीकाय से भावित कर देता है अत. तीन दिन के पश्चात् जितने समय तक सचित्त रज पात हो उतने समय तक स्वाध्याय वर्जित है।[3]

वर्षा के तीनों प्रकार क्रमश· तीन, पाच और सात दिनों के पश्चात् सब कुछ अप्कायभावित कर देते है। अत· तीन, पांच और सात दिनों के पश्चात् जितने दिनों तक वर्षापात हो उतने समय तक स्वाध्याय वर्जित है।[4]

इनका द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—इन चार दृष्टियो से वर्जन किया गया है।

द्रव्य दृष्टि से—महिका, सचित्त रज और वर्षा—ये वर्जनीय है।

क्षेत्र दृष्टि से—जिस क्षेत्र मे ये गिरते हैं, वह क्षेत्र वर्जनीय है।

कालदृष्टि से—जितने समय तक गिरते है, उतने समय तक स्वाध्याय आदि वर्जनीय है।

भाव दृष्टि से—गमनागमन, स्वाध्याय, प्रतिलेखन आदि वर्जनीय है।[5]

२. औत्पातिक—इसके पाच प्रकार हैं—

(१) पांशुवृष्टि (२) मास वृष्टि (३) रुधिरवृष्टि (४) केशवृष्टि (५) शिलावृष्टि।

मास और रुधिर वृष्टि के समय एक अहोरात्र और शेष तीनो मे जब तक उनकी वृष्टि होती हो तब तक सूत्र का स्वाध्याय वर्जित है।

३. देवप्रयुक्त—

(१) गन्धर्वनगर—चक्रवर्ती आदि के नगर में उत्पात होने की संभावना होने पर उस उत्पात का संकेत देने के लिए देव उसी नगर पर एक दूसरे नगर का निर्माण करते हैं और वह स्पष्ट दिखाई देता रहता है। (२) दिग्दाह (३) विद्युत् (४) उल्का (५) गर्जित (६) यूपक (७) चन्द्रग्रहण (८) सूर्यग्रहण (९) निर्घात (१०) गुञ्जित।

इनमें गन्धर्व नगर निश्चित ही देवकृत होता है, शेष दिग्दाह आदि देवकृत भी होते हैं और स्वाभाविक भी।[6] देवकृत

---

१ व्यवहार भाष्य ७।२६८ : असज्झाइय च दुविह आयसमुत्थ च परसमुत्थ च ॥

२ निशीथभाष्य गाथा ६०८२, ६०८३ चूर्णि—

३, ४. वही, गाथा ६०८२, ६०८३।

५ निशीथभाष्य गाथा ६०८३।

६ व्यवहारभाष्य ७।२८५।

मे स्वाध्याय का निषेध है किन्तु जो स्वाभाविक होते हैं उनमे स्वाध्याय का वर्जन नही होता। अमुक गर्जन आदि देवकृत हैं अथवा स्वाभाविक इसका निर्णय नही किया जा सकता। इसलिए स्वाभाविक गर्जन आदि में भी स्वाध्याय आदि का वर्जन किया जाता है।

इसी प्रकार सूर्य के अस्त होने पर (एक मुहूर्त्त तक), आधी रात मे सूर्योदय से एक मुहूर्त्त पूर्व और मध्याह्न मे भी स्वाध्याय वर्जित है।

चैत्र की पूर्णिमा, आषाढ़ की पूर्णिमा, आसोज की पूर्णिमा और कार्तिक की पूर्णिमा तथा उनके साथ आने वाली प्रतिपदा को भी स्वाध्याय नही करना चाहिए। क्योंकि इन चार तिथियों मे बड़े उत्सवों का आयोजन होता है। साथ-साथ जिस देश मे जो-जो महान उत्सव जितने दिन तक होते हैं, उतने दिनों तक स्वाध्याय का वर्जन करना चाहिए। जिस उत्सव में अनेक प्राणियो का वध होता हो, उस महोत्सव के आरम्भ से लेकर पूर्ण होने तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

४. व्युद्ग्रह—दो राजा परस्पर लड़ते हों, दो सेनापति लड़ते हों, मल्लयुद्ध होता हो, दो ग्रामों के बीच कलह होता हो, अथवा लोग परस्पर लड़ते हों—मारपीट करते हो तथा रजःपर्व [होली जैसे पर्व] के दिनों मे भी स्वाध्याय का वर्जन करना चाहिए।

राजा की मृत्यु के पश्चात् जब तक दूसरे राजा का अभिषेक नही हो जाए, तब तक स्वाध्याय का वर्जन करना चाहिए। क्योंकि लोगो के मन मे, विशेषतः राजवर्गीय लोगों के मन मे यह विचार उत्पन्न हो सकता है कि आज हम तो विपत्ति से गुजर रहे है और ये पठन-पाठन कर रहे हैं। राजा की मृत्यु का इन्हे शोक नही है।

इन सभी व्युद्ग्रहों मे, जितने काल तक व्युद्ग्रह रहे उतने दिन तक, तथा व्युद्ग्रह के उपशान्त होने पर एक अहोरात्र तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

ग्राम का स्वामी, ग्राम का प्रधान, बहुपरिवार वाले व्यक्ति अथवा शय्यातर की मृत्यु होने पर [अपने उपाश्रय से यदि सात घर के भीतर हों तो] एक अहोरात्र तक अस्वाध्यायिक रहता है। ऐसी वेला में स्वाध्याय आदि करने पर लोगों मे गर्हा होती है, अप्रीति होती है।

५. शरीर सम्बन्धी—शारीरिक अस्वाध्याय के दो प्रकार हैं—(१) मनुष्य सम्बन्धी, (२) तिर्यञ्च सम्बन्धी।

मनुष्य या तिर्यञ्च का कलेवर, रुधिर आदि पड़ा हो तो स्वाध्याय का वर्जन करना चाहिए।

कुछ विशेष—

प्रकृति में अनेक प्रकार की विचित्र घटनाएं घटित होती हैं। इन घटनाओं की अद्भुतता तथा ग्रह, उपग्रह और नक्षत्रो में होने वाले अस्वाभाविक परिवर्तनों को शुभ-अशुभ मानने की प्रवृत्ति समूचे ससार में रही है। इसके साथ-साथ विभिन्न प्रकार की वृष्टियो, आकाशगत अनेक दृश्यों एवं बिजली से सम्बन्धित घटनाओं से भी शुभ-अशुभ की कल्पनाएं होती हैं।

ग्रीस तथा रोम मे भूकम्प, रक्तवर्षा, पाषाणवर्षा तथा दुग्धवर्षा को अत्यन्त अशुभ माना गया है[1]।

जापान मे भूकम्प, बाढ तथा आंधी को युद्ध का सूचक माना जाता रहा है[2]।

बेबीलोन मे वर्ष के प्रथम मास में नगर पर धूलि का गिरना तथा भूकम्प अशुभ माने जाते हैं[3]।

ईरान में मेघ गर्जन, बिजली की चमक तथा धूलि मेघों को अशुभ माना जाता है[4]।

दक्षिण पूर्वी अफ्रीका में अशनिवृष्टि, करकावृष्टि को अशुभ का द्योतक माना जाता रहा है[5]।

इङ्गलैण्ड के देहातों मे कड़क के साथ बिजली का चमकना ग्राम के प्रमुख व्यक्ति की मृत्यु का सूचक माना जाता है[6]।

---

1. Dictionary of Greek and Roman antiquities, Page, 417.
2. Encyclopedia of Religion and Ethics, Vol. 4, Page 806.
3. The Book of the Zodiac, page 119.
4. The wild Rue, Pages 99-100.
5. The History of the Mankind, Vol. I Page 56.
6. Encylopedia of Superstitions, Page 196.

अफ्रीका और पोलैण्ड[1] तथा रोम एवं चीन[2] मे उल्कादर्शन को अशुभ माना जाता है।

इस्लाम धर्म मे उल्का को भूत-पिशाच तथा दैत्य के रूप मे माना गया है[3]।

अथर्ववेदसंहिता मे भूकम्प, भूमि का फटना, उल्का, धूमकेतु, सूर्यग्रहण आदि को अशुभ माना है[4]।

ब्राह्मण ग्रन्थों मे धूलि, मास, अस्थि एव रुधिर की वर्षा, आकाश मे गन्धर्व-नगरों का दर्शन अशुभ के द्योतक माने गए हैं[5]।

बाल्मीकि रामायण में रुधिरवृष्टि को अत्यन्त अशुभ माना गया है[6]।

इसी प्रकार उत्तरवर्ती सस्कृत काव्यों मे भूप्रकम्पन, उल्कापात, रुधिरवृष्टि, करकवृष्टि, दिग्दाह, महावात, वज्रपात, धूलिवर्षा आदि-आदि को अशुभ माना गया है।

लगता है, इन लौकिक मान्यताओ के आधार पर अस्वाध्यायिक की मान्यता का प्रचलन हुआ है।

अस्वाध्यायिक के विशेष विवरण के लिए देखे—

- व्यवहार भाष्य ७।२६६-३२०।
- निशीथभाष्य गाथा ६०७४-६१७६।
- आवश्यकनिर्युक्ति गाथा १३६५-१३७५।

१२. (सू० २४)

देखे—दसवेआलियं ८।१५ के टिप्पण।

१३. (सू० २५)

प्रस्तुत सूत्र में गगा-सिंधू मे मिलने वाली दस नदियो के नामोल्लेख है। प्रथम पाच गगा मे और शेष पाच सिंधू मे मिलने वाली नदिया है। उनका परिचय इस प्रकार है—

१ गंगा—इसका उद्गम स्थल हिमालय मे गगोत्री है। यह १५२० मील लम्बी है। यह पश्चिमोत्तर बिहार और बगाल मे बहती हुई बगाल की खाडी मे जा मिलती है।

२. सिंधू—इसका उद्गम-स्थल कैलाश पर्वत का उत्तरीय अचल है। इसकी लम्बाई १८०० मील है और यह भारत के पश्चिम-उत्तर और पश्चिम-दक्षिण मे बहती हुई अरब समुद्र मे जा मिलती है। प्राचीन समय मे यह नदी जिन क्षेत्रों से होकर बहती थी उसे सप्तसिन्धु कहते थे क्योकि इसमे उस समय छह अन्य नदिया मिलती थीं। उनमे शतद्रु आदि पाच नदिया तथा छठी नदी सरस्वती थी।

३ यमुना—यह गगा मे मिलने वाली सबसे लम्बी नदी है। उद्गम से सगम तक इसकी लम्बाई ८६० मील है। इसका उद्गम हिमालय के यमुनोत्री से हुआ है। यह प्राय. विन्ध्य क्षेत्र के पार्वत्य प्रान्तो की उत्तरी सीमा तथा सयुक्त प्रान्त के उपजाऊ मैदानो मे बहती हुई इलाहाबाद (प्रयाग) के पास गगा मे जा मिलती है। इसका जल स्वच्छ तथा कुछ हरा है।

४. सरयू— इसे घाघरा, घग्घर भी कहते हैं। यह ६०० मील लम्बी है और छपरे से १४ मील पूर्व गगा मे जा मिलती है।

---

1. The Golden Bough, Part 3, Page, 65-66.
2. Encyclopedia of Religion and Ethics, Vol. X, Page 371.
3. The Golden Bough, Part 3, Page 53.

४ अथर्ववेद-संहिता १९।९।८।

५ षट्विंशब्राह्मण प्रपाठक ५, खड ८।

६ (क) बाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड २३।१

तस्मिन् याते जनस्थानादशिवं शोणितोदकम्।
अभ्यवर्षन् महामेघस्तुमुलो गर्दभारुणः॥

(ख) वही, युद्धकाड ३५।२५, २६, ५१।३३; ५७।३८; ९६।४१, १०८।२१।

५. आपी (राप्ती ?)—राप्ती का उद्‌गम नेपाल राज्य के उत्तरी ऊची पर्वतमाला से होता है। यह बरहज (?) के पास घाघरा नदी मे जा मिलती है।

६. कोशी—इसके दो नाम और हैं—कौशिकी और सप्त-कौशिकी। सम्भव है, इसका नाम किसी ऋषिकन्या के आधार पर पड़ा हो। नेपाल के पूर्वी भाग मे हिमालय से निकली हुई अनेक नदियों के योग से इसका निर्माण हुआ है। यह कुल ३०० मील लम्बी है, परन्तु भारत मे केवल ८४ मील तक प्रवाहित होकर, कोलगाव से कुछ उत्तर में गंगा में जा मिलती है। यह नदी अपने वेग, बाढ और मार्ग बदलने के लिए प्रसिद्ध है।

७. मही —यह एक छोटी नदी है जो पटना के पास हाजीपुर मे गगा से मिलती है। गण्डक नदी भी वही गगा मे मिलती है।

८. शतद्रु—इसको 'सतलज' भी कहते है। यह नौ सौ मील लम्बी है। इसका उद्‌गम स्थल मानसरोवर है। यह अनेक धाराओं से मिलती हुई पीठनकोट के पास सिन्धु नदी मे जा मिलती है।

९. वितस्ता—इसका वर्तमान नाम झेलम है। यह नदी कश्मीर घाटी के उत्तरपूर्व मे सीमास्थित पहाड़ों से निकल कर उत्तर-पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है। कई छोटी नदियो को साथ लिए, कश्मीर और पजाब मे बहती हुई, यह नदी झग जिले मे चिनाब नदी मे जा मिलती है और उसके साथ सिन्धु मे जा गिरती है। इसकी लम्बाई ४५० मील है।

१०. विपासा—इसे वर्तमान मे ब्यास कहते है। यह २९० मील लम्बी है आर पजाब की पाचो नदियो मे सबसे छोटी है। यह कपूरथला की दक्षिण सीमा पर सतलज नदी मे जा मिलती है। कहा जाता है कि व्यास की सुन्दर स्तुति सुनकर इस नदी ने सुदामा की सेना को रास्ता दिया था। अत इसका नाम व्यास पडा।

११ ऐरावती—इसका प्राचीन नाम 'परुष्णी' भी था। वर्तमान मे इसे 'रावी' कहते है। यह हिमालय के दक्षिण अञ्चल मे निकलकर कश्मीर और पजाब मे बहती है। यह ४५० मील लम्बी है। यह सरायसिन्धू से कुछ ही आगे बढ़ने पर चिनाब नदी मे जा मिलती है।

१२. चन्द्रभागा—इसको वर्तमान मे 'चिनाब' कहते हैं। चन्द्रा और भागा—इन दो नदियो से मिलकर यह नदी बनी है। यह अनेक नदियों को अपने साथ मिलाती हुई मुल्तान की दक्षिणी सीमा पर सतलज नदी मे जा मिलती है। इसकी लम्बाई लगभग ९०० मील है।

१४ (सू० २७)

१. चपा—यह अंग जनपद की राजधानी थी। इसकी आधुनिक पहिचान भागलपुर से २४ मील दूर पर स्थित 'चम्पापुर' और चम्पानगर से की है।

देखें उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ ३८०, ३८१।

२. मथुरा—यह शूरसेन देश की राजधानी थी। वर्तमान मथुरा के नैऋत्य कोण मे पांच माइल पर बसे हुए महोली गांव से इसकी पहचान की गई है।

मद्रास प्रान्त मे 'बैगई' नदी के किनारे बसे हुए गांव को भी मथुरा कहा जाता था। वहा पांड्यराज की राजधानी थी। वर्तमान मे जो 'मदुरा' नाम से प्रसिद्ध है, उसका प्राचीन नाम मथुरा था।

३. वाराणसी—यह काशी जनपद की राजधानी थी। नौवें चक्रवर्ती महापद्म यहाँ से प्रव्रजित हुए थे।

देखें—उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ ३७६, ३७७।

४. श्रावस्ती—यह कुणाल जनपद की राजधानी थी। इसकी आधुनिक पहचान सहेट-महेट से की जाती है। तीसरे चक्रवर्ती 'मघवा' यहां से प्रव्रजित हुए थे।

देखें—उत्तराध्ययन: एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ ३८४, ३८५।

५. साकेत—यह कोशल जनपद की राजधानी थी। प्राचीन काल मे यह जनपद दो भागों में विभक्त था—उत्तर

कोशल और दक्षिण कोशल। सरयू नदी पर बसी हुई अयोध्या नगरी दक्षिण कोशल की राजधानी थी और राप्ती नदी पर बसी हुई श्रावस्ती नगरी उत्तर कोशल की राजधानी थी।

बौद्ध ग्रन्थों मे यह माना गया है कि प्रसेनजित कोशल राजा बिम्बिसार से महापुण्य श्रेष्ठी धनंजय को साथ ले अपने नगर श्रावस्ती की ओर जा रहा था। उसकी इच्छा थी कि ऐसे पुण्यवान् व्यक्ति को अपने नगर मे बसाया जाए। जब वे श्रावस्ती से सात योजन दूर रहे तब सध्या का समय हो गया। वे वही रुक गए। धनंजय ने राजा प्रसेनजित से कहा— 'मैं नगर मे बसना नही चाहता। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं यही बस जाऊं।' राजा ने आज्ञा दे दी। धनजय ने वहा नगर बसाया। वहा साय ठहरा गया था, इसलिए उस नये नगर का नाम साकेत रखा गया।[1] भरत और सगर ये दो चक्रवर्ती यहां से प्रव्रजित हुए।

६. हस्तिनापुर—यह कुरु जनपद की राजधानी थी। इसकी पहचान मेरठ जिले के मवाना तहसील मे मेरठ से २२ मील उत्तर-पूर्व मे स्थित हस्तिनापुर गांव से की गई है। इसका दूसरा नाम नागपुर था।

सनत्कुमार चक्रवर्ती तथा शाति, कुथु और अर— ये तीन चक्रवर्ती तथा तीर्थंकर यहा से प्रव्रजित हुए थे।

देखें—उत्तराध्ययन. एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ ३७४।

७ कांपिल्य—यह पाञ्चाल जनपद की राजधानी थी। कन्निघम ने इसकी पहचान उत्तर प्रदेश के फरुखाबाद जिले में फतेहगढ से २८ मील उत्तर-पूर्व, गगा के समीप मे स्थित 'कापिल' से की है। कायमगंज रेलवे स्टेशन से यह केवल पाच मील दूर है। दसवें चक्रवर्ती हरिषेण यहा से प्रव्रजित हुए थे।

देखें—उत्तरध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ ३७३, ३७४।

८. मिथिला—देखें उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ ३७१, ३७२, ३७३।

९. कौशाम्बी—यह वत्स जनपद की राजधानी थी। इसकी आधुनिक पहचान इलाहाबाद से दक्षिण-पश्चिम में स्थित 'कोसम' गाव से की है।

देखे उत्तराध्ययन: एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ ३७९, ३८०।

१०. राजगृह—यह मगध जनपद की राजधानी थी। महाभारत के सभापर्व मे इसका नाम 'गिरिव्रज' भी दिया है। महाभारतकार तथा जैन ग्रन्थकार यहा पाच पर्वतो का उल्लेख करते है। किंतु उनके नामो मे मतभेद है—

महाभारत—वैहार [वैभार], वाहार, वृषभ, ऋषिगिरि, चैत्यक।

वायुपुराण—वैभार, विपुल, रत्नकूट, गिरिव्रज, रत्नाचल।

जैन—वैभार, विपुल, उदय, सुवर्ण, रत्नगिरि।

सम्भव है इन्ही पर्वतों के कारण राजगृह को 'गिरिव्रज' कहा गया हो। जयधवला मे उद्धृत श्लोको तथा तिलोयपण्णत्ती मे राजगृह का एक नाम 'पंचशैलपुर' और 'पचशैलनगर' मिलता है। उनमे कुछ पर्वतो के नाम भी भिन्न हैं—

विपुल, ऋषि, वैभार, छिन्न और पाडु।[2]

वर्तमान मे इसका नाम 'राजगिर' है। यह बिहार से लगभग १३-१४ मील दक्षिण मे है। आवश्यक चूर्णि मे यह वर्णन है कि पहले यहा क्षितिप्रतिष्ठित नाम का नगर था। उसके क्षीण होने पर जितशत्रु राजा ने इसी स्थान पर 'चनकपुर' नगर बसाया। तदनन्तर वहा ऋषभपुर नगर बसाया गया। बाद मे 'कुशाग्रपुर'। इसके पूरे जल जाने के बाद श्रेणिक के पिता प्रसेनजित ने राजगृह नगर बसाया। भगवती २।११२, ११३ में राजगृह मे उष्ण झरने का उल्लेख आता है और उसका नाम 'महातपोपतीरप्रभ' है। चीनी प्रवासी फाहियान और हयुयेन्सान ने अपनी डायरी मे इन उष्ण झरनो को देखने का उल्लेख करते है। बौद्ध ग्रन्थो मे इन उष्ण झरनो को 'तपोद' कहा है।

ग्यारहवें चक्रवर्ती 'जय' यहां से प्रव्रजित हुए थे।

---

१ धम्मपद, अट्ठकथा।

२ कषायपाहुड १, पृष्ठ ७३, तिलोयपण्णत्ती १।६४-६७।

१५. (सू० २८)

प्रस्तुत सूत्र मे दस राजधानियों में दस राजाओं ने मुनिदीक्षा ली, इस प्रकार का सामान्य उल्लेख किया है। किन्तु किस राजा ने कहा दीक्षा ली, इसका कोई उल्लेख नहीं है और न ही राजधानियों तथा राजाओ का क्रमशः उल्लेख है। वृत्तिकार ने आवश्यक निर्युक्ति और निशीथ भाष्य के आधार पर प्रस्तुत सूत्र की स्पष्टता की है। आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार चक्रवर्तियों के जन्म-स्थान इस प्रकार है[1]—

१. भरत—साकेत। २. सगर—साकेत। ३ मघवा—श्रावस्ती। ४-८. सनत्कुमार, शांति, कुंथु अर और सुभूम—हस्तिनागपुर। ६. महापद्म—वाराणसी। १०. हरिषेण—कांपिल्य। ११. जय—राजगृह। १२. ब्रह्मदत्त—कांपिल्य।

इनमे सुभूम और ब्रह्मदत्त प्रव्रजित नही हुए थे।[2]

निशीथभाष्य मे प्रस्तुत विषय भिन्न प्रकार से वर्णित है। उसके अनुसार बारह चक्रवर्ती दस राजधानियों मे उत्पन्न हुए थे। कौन चक्रवर्ती किस राजधानी मे उत्पन्न हुआ उसका स्पष्ट निर्देश वहा नही है। वहा केवल इतना सा उल्लेख प्राप्त है कि शांति, कुंथु और अर —ये तीन एक राजधानी मे उत्पन्न हुए थे और शेष नौ चक्रवर्ती नौ राजधानियो मे उत्पन्न हुए, यह स्वत: प्राप्त हो जाता है।[3]

प्रस्तुत सूत्र मे दस चक्रवर्ती राजाओ के प्रव्रज्या-नगरो का उल्लेख है, किन्तु उनके जन्म-नगरो का उल्लेख नही है। वृत्तिकार ने लिखा है कि जो चक्रवर्ती जहा उत्पन्न हुए वही प्रव्रजित हुए।[4] इस नियम के आधार पर निशीथभाष्य का निरूपण समीचीन प्रतीत होता है। प्रस्तुत सूत्र मे दस प्रव्रज्या-नगरो का उल्लेख है और उक्त नियम के अनुसार उनके उत्पत्ति-नगर भी वे ही है, तब वे दस होने ही चाहिए। आवश्यक निर्युक्ति मे किस अभिप्राय से चक्रवर्तियो के छह उत्पत्ति नगरो का उल्लेख किया है—यह कहना कठिन है।

उत्तराध्ययन मे इन दसों की प्रव्रज्या का उल्लेख है, किन्तु प्रव्रज्या नगरो का उल्लेख नहीं है।[5]

१६. गोतीर्थ विरहित (सू० ३२)

गोतीर्थ का अर्थ है —तालाब आदि मे गायों के उतरने की भूमि। यह क्रमशः निम्न, निम्नतर होती है। लवण समुद्र के दोनो पार्श्वों में पिचानवें-पिचानवे हजार योजन तक पानी गोतीर्थाकार (क्रमशः निम्न, निम्नतर) है। उनके बीच मे दस हजार योजन तक पानी समतल है। उसी को 'गोतीर्थ विरहित' कहा गया है।[6]

---

१. आवश्यकनिर्युक्ति गाथा ३६७

जम्मण विणीअउज्झा सावत्थी पंच हत्थिणपुरंमि।
वाणारसि कंपिल्ले रायगिहे चेव कंपिल्ले॥

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५४ द्वौ च सुभूमब्रह्मदत्ताभिधानौ न प्रव्रजितौ।

३. (क) निशीथभाष्य गाथा २५६०, २५६१ :

चंपा महुरा वाणारसी य सावत्थिमेव साएत।
हत्थिणपुर कंपिल्लं, मिहिला कोसंबि रायगिहं॥
संती कुंथू य अरो, तिण्णि वि जिणचक्की एकहिं जाया।
तेण दस होंति जत्थ य, केसव जाया जणाइण्णा॥

(ख) स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५४।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५४ ये च यत्रोत्पन्नास्ते तत्रैव प्रव्रजिता.।

५ उत्तराध्ययन १८।३४-४३।

६. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५५ गवां तीर्थं—तडागादाववतारमार्गो गोतीर्थं, ततो गोतीर्थमिव गोतीर्थं—अवतारवती भूमि, तद्विरहित सममित्यर्थं, एतच्च पञ्चनवतियोजनसहस्राण्यर्वाग्भागत परभागतश्च गोतीर्थरूपां भूमिं विहाय मध्ये भवतीति।

१७. उदकमाला (सू० ३३)

उदकमाला का अर्थ है—पानी की शिखा—वेला। यह समुद्र के मध्य भाग मे होती है। इसकी चौड़ाई दस हजार योजन की और ऊंचाई सोलह हजार योजन की है।[1]

१८. (सू० ४६)

अनुयोग का अर्थ है व्याख्या। व्याख्येय वस्तु के आधार पर अनुयोग चार प्रकार का है—

१. चरणकरणानुयोग २. धर्मकथानुयोग ३. गणितानुयोग ४. द्रव्यानुयोग।

द्रव्यानुयोग के दस प्रकार है—

१. द्रव्यानुयोग—जीव आदि पदार्थो के द्रव्यत्व की व्याख्या। द्रव्य का अर्थ है—गुण-पर्यायवान पदार्थ। जो सह-भावी धर्म है वे गुण कहलाते है और जो काल या अवस्थाकृत धर्म होते है वे पर्याय कहलाते है। जीव में ज्ञान आदि सह-भावी गुण और मनुष्यत्व, बालत्व आदि पर्यायकृत धर्म होते हैं, अत वह द्रव्य है।

२ मातृकानुयोग—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य को मातृकापद कहते हैं। इनके आधार पर द्रव्यो की विचारणा करना मातृकानुयोग है।

३. एकार्थिकानुयोग—एकार्थवाची या पर्यायवाची शब्दो की व्याख्या। जैसे—जीव, प्राणी, भूत और सत्त्व—ये एकार्थवाची है।

४. करणानुयोग—साधनो की व्याख्या। एक द्रव्य की निष्पत्ति मे प्रयुक्त होने वाले साधनो का विचार जैसे—घड़े की निष्पत्ति मे मिट्टी, कुभकार, चक्र, चीवर, दड आदि कारण साधक होते है, उसी प्रकार जीव की क्रियाओ मे काल, स्वभाव, नियति, कर्म आदि साधक होते है।

५. अर्पित-अनर्पित—इस अनुयोग के द्वारा द्रव्य के मुख्य और गौण धर्म का विचार किया जाता है।

द्रव्य अनेक धर्मात्मक होता है, किन्तु प्रयोजनवश किसी एक धर्म को मुख्य मानकर उसकी विवक्षा की जाती है। वह 'अर्पणा' है और शेष धर्मों की अविवक्षा होती है वह 'अनपर्णा' है। उमास्वाति ने अनेक धर्मात्मक द्रव्य की सिद्धि के लिए इस अनुयोग का प्रतिपादन किया है।[2]

६. भावित-अभावित—द्रव्यान्तर से प्रभावित या अप्रभावित होने का विचार।

भावित—जैसे—जीव प्रशस्त या अप्रशस्त वातावरण से भावित होता है। उसमे ससर्ग से दोष या गुण आते है। यह जीव की भावित अवस्था है।

अभावित—वृत्तिकार ने इसकी व्याख्या मे वज्रतडुल का उदाहरण दिया है। यह या तो ससर्ग को प्राप्त नही होता या संसर्ग प्राप्त होने पर भी उससे भावित नही होता।

७. बाह्य-अबाह्य—वृत्तिकार ने बाह्य और अबाह्य के दो अर्थ किए है—

(१) बाह्य—असदृश या भिन्न। जैसे—जीव द्रव्य आकाश से बाह्य है—चैतन्य धर्म के कारण उससे विलक्षण है। वह आकाश से अबाह्य भी है—अमूर्त्त धर्म के कारण उससे सदृश है।

(२) जीव के लिए घट आदि द्रव्य बाह्य हैं तथा कर्म और चैतन्य आन्तरिक (अबाह्य) है।[3]

नदी सूत्र में अवधिज्ञान का बाह्य और अबाह्य की दृष्टि से विचार किया गया है। इससे इस अनुयोग का यह अर्थ फलित होता है कि द्रव्य के सार्वदिक (अबाह्य) और असार्वदिक (बाह्य) धर्मों का विचार करना।[4]

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५५ उदकमाला—उदकशिखा वेलेत्यर्थ, दशयोजनसहस्राणि विष्कम्भत उच्चैस्त्वेन षोडशसहस्राणीति, समुद्रमध्यभागादेवोत्थितेति।

२ तत्त्वार्थसूत्र ५।३१ · अर्पितानर्पित सिद्धे.।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५७।

४ नंदीसूत्र (पुण्यविजयजी द्वारा सम्पादित) पृष्ठ ३१।

८. शाश्वत-अशाश्वत—द्रव्य के शाश्वत, अशाश्वत का विचार।

९. तथाज्ञान—द्रव्य का यथार्थ विचार।

१०. अतथाज्ञान—द्रव्य का अयथार्थ विचार।

१९. उत्पात पर्वत (सू० ४७)

नीचे लोक से तिरछे लोक में आने के लिए चमर आदि भवनपति देव जहा से ऊर्ध्वगमन करते है उन्हें उत्पात पर्वत कहा जाता है।

२०. अनन्तक (सू० ९६)

जिसका अन्त नही होता उसे अनन्त कहा जाता है। प्रस्तुत सूत्र में उसका अनेक सदर्भों मे प्रयोग किया गया है। संदर्भ के साथ प्रत्येक शब्द का अर्थ भी आंशिक रूप में परिवर्तित हो जाता है। नाम और स्थापना के साथ अनन्त शब्द का प्रयोग किसी विशेष अर्थ का सूचक नही है। इनमें नामकरण और आरोपण की मुख्यता है, किन्तु 'अनन्त' के अर्थ की कोई मुख्यता नही है।

वृत्तिकार ने नामकरण के विषय मे एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। सामयिक भाषा (आगमिक संकेत) के अनुसार वस्त्र का नाम अनन्तक है।[1]

द्रव्य के साथ अनन्त का प्रयोग द्रव्यों की व्यक्तिशः अनन्तता का सूचक है। गणना के साथ अनन्त शब्द के प्रयोग का सबंध संख्या से है। जैन गणित में गणना के तीन प्रकार हैं—संख्यात, असंख्यात और अनन्त। सख्यात की गणना होती है। असंख्यात की गणना नहीं होती, पर वह सान्त होता है। अनन्त की न गणना होती है और न उसका अन्त होता है। प्रदेश के साथ अनन्त शब्द द्रव्य के अवयवो का निर्धारण करता है। जीव के प्रदेश असख्य होते है। आकाश और अनन्त-प्रदेशी पुद्गलस्कधों के प्रदेश अनन्त होते हैं। एकतः और उभयतः इन दोनों के साथ अनन्त शब्द का प्रयोग काल-विस्तार को सूचित करता है।

पाचवें स्थान (सूत्र-२१७) मे वृत्तिकार ने एकतः अनन्तक का अर्थ—आयाम लक्षणात्मक अनन्त (एक श्रेणीक क्षेत्र) और उभयतः अनन्त का अर्थ—आयाम और विस्तार लक्षणात्मक अनन्त (प्रतर क्षेत्र) किया है।[2] तथा सूत्र की व्याख्या मे एकतः अनन्तक का उदाहरण—अतीत या अनागत काल और उभयतः अनन्तक का उदाहरण—सर्वकाल दिया है।[3] वस्तुतः इनमें कोई विरोध नहीं है। इनकी व्याख्या देश और काल—दोनों दृष्टियो से की जा सकती है।

देशविस्तार और सर्वविस्तार के साथ अनन्त शब्द का प्रयोग दिग् और क्षेत्र के विस्तार को सूचित करता है। पांचवें स्थान में वृत्तिकार[4] ने देश बिस्तार का अर्थ दिगात्मक विस्तार तथा प्रस्तुत सूत्र मे उसका अर्थ एक आकाश प्रतर किया है।[5]

इस प्रकार विभिन्न संदर्भों के साथ अनन्त शब्द विभिन्न अर्थों की सूचना देता है। यह अनन्त शब्द की निक्षेप पद्धति का एक उदाहरण है।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३२६ : नामानन्तकं अतनष्कमिति यस्य नाम, यथा समयभाषया वस्त्रमिति।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ३२६ : एकत.—एकेनांशेनायामलक्षणेना-नन्तकमेकतोऽनन्तकम्—एकश्रेणीकं क्षेत्रं, द्विधा—आयाम-विस्ताराभ्यामनन्तक द्विधानन्तकं—प्रतरक्षेत्रम्।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५९ : एकतोऽनन्तकमतीताद्धा अनागताद्धा वा, द्विधाऽनन्तकं सर्वाद्धा।

४ स्थानागवृत्ति, पत्र ३२९ : क्षेत्रस्य यो रुचकापेक्षया पूर्वा-द्यन्यतरदिग्लक्षणो देशस्तस्य विस्तारो— विष्कम्भस्तस्य प्रदेशा-पेक्षया अनन्तकं देशविस्तारानन्तकम्।

५. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४५९ : देशविस्तारानन्तक एक आकाश-प्रतरः।

२१ (सू० ६६)

निशीथभाष्य मे प्रतिषेवणा के दो प्रकार बतलाए गए हैं—दर्प प्रतिषेवणा और अल्प प्रतिषेवणा।[1]

दर्प का अर्थ है—व्यायाम, वल्गन और धावन।[2] निशीथभाष्य की चूर्णि मे व्यायाम के अर्थ की स्पष्टता दो उदाहरणों से की गई है, जैसे—लाठी चलाना, पत्थर उठाना। वल्गन का अर्थ कूदना और धावन का अर्थ दौड़ना है। बाहुयुद्ध आदि भी इसी प्रकरण मे सम्मिलित हैं।[3] भाष्यकार ने दर्प का एक अर्थ प्रमाद किया है।[4] दर्प से होने वाली प्रतिषेवणा दर्पिका प्रतिषेवणा कहलाती है। यह प्रमाद या उद्धतता से होने वाला दोषाचरण है। दर्पिका प्रतिवेषणा मूलगुण और उत्तर-गुण दोनो की होती है।

दर्प प्रतिषेवणा निष्कारण की जाने वाली प्रतिषेवणा है। कल्प प्रतिषेवणा किसी विशेष प्रयोजन के उपस्थित होने पर की जाती है।[5] भाष्यकार ने दर्पिका और कल्पिका—इन दोनो को प्रमाद प्रतिषेवणा और अप्रमाद प्रतिषेवणा से अभिन्न माना है। उसके अनुसार प्रमादप्रतिषेवणा ही दर्पिका प्रतिषेवणा है और अप्रमादप्रतिषेवणा ही कल्पिका प्रतिषेवणा है।[6]

प्रस्तुत गाथा मे कल्पिका प्रतिषेवणा या अप्रमाद प्रतिषेवणा का उल्लेख नही है किन्तु इसमे आए हुए अनाभोग और और सहसाकार उसी के दो प्रकार है।[7]

अनाभोग का अर्थ है—अत्यन्त विस्मृति।[8]

अनाभोग प्रतिसेवी किसी भी प्रमाद से प्रमत्त नही होता। किंतु कदाचित् उसे ईर्यासमिति आदि के समाचरण की विस्मृति हो जाती है। यह उसकी अनुपयुक्तता (उपयोग शून्यता) की प्रतिवेषणा है।[9] सद्साकार प्रतिषेवणा मे उपयुक्त अवस्था होने पर भी दैहिक चचलता की विवशता के कारण प्राणातिपात आदि का समाचरण हो जाता है।[10]

कटकाकीर्ण पथ मे चलने वाला मनुष्य सावधान होते हुए भी कही न कही पैर को पूर्ण नियन्त्रित न रखने के कारण बीध लेता है। इसी प्रकार सावधानी पूर्वक प्रवृत्ति करते हुए मुनि से भी शारीरिक चचलता के कारण कही न कही प्राणाति-पात आदि का समाचरण हो जाता है।[11] इसमे न प्रमाद है और न विस्मृति, किन्तु शारीरिक विवशता है।

आतुर प्रतिषेवणा—

भाष्यकार ने आतुर के तीन प्रकार बतलाए है[12]—

(१) क्षुधातुर (२) पिपासातुर (३) रोगातुर।

इससे कामातुर और क्रोधातुर आदि का वर्णन सहज ही प्राप्त हो जाता है।

---

१. निशीथभाष्य गाथा ८८ :
दप्पे सकारणमि य, दुविधा पडिसेवणा समासेण।
एक्केक्का वि य दुविधा मूलगुणे उत्तरगुणे य ॥

२. निशीथभाष्य गाथा ४६४ :
वायामवग्गणादी, णिक्कारणधावण तु दप्पो तु।

३ निशीथभाष्य गाथा ४६४ · चूर्णि—वायामो जहा लगुडि-भमाडण, उवलयकड्ढण, वग्गण मल्लवत्। आदि सद्दगहणा बाहु-जुद्धकरण चीवरडेवण वा धावण खड्डयप्पवण।।

४ निशीथभाष्य गाथा ९१ : दप्पो तु जो पमादो।

५. निशीथभाष्य गाथा ८८ : चूर्णि—सकारणमि य त्ति णाण-दसणाणि अहिकिच्च सजमादि-जोगेसु य असरमाणेसु पडिसेव त्ति, सा कप्पे।

६. निशीथभाष्य गाथा ९० :
दप्पे कप्प पमत्ताणभोग आहच्चतो य चरिमा तु।
पडिलोम-परूवणता, अत्थेण होति अणुलोमा ॥

७ निशीथभाष्यगाथा ९० : चूर्णि—
जा सा अपमत्त-पडिसेवा सा दुविहा—अणाभोगा आहच्चओ य।

८. निशीथभाष्य गाथा ९५ : चूर्णि—अणाभोगो णाम अत्यतविस्मृतिः

९ निशीथभाष्यगाथा ९५ :
ण पमादो कातव्वो, जतण-पडिसेवणा अतो पढम।
सा तु अणाभोगेणं, सहसक्कारेण वा होज्जा ॥

१०. निशीथभाष्य गाथा ९७ : चूर्णि—सहस्साकरणमेय ति सहसा-करणं सहसक्करण जाणमाणस्स परायत्तस्सेत्यर्थः।

११. निशीथभाष्य गाथा १०० .
असि कंटकविसमादिसु, गच्छतो सिक्खिओ वि जत्तेण।
चुक्कइ एमेव मुणी, छलिज्जति अप्पमत्तो वि ॥

१२. निशीथभाष्य गाथा ४७६ :
पढम-बितियदुतो वा बाधितो वा ज सेवे आतुरा एसा।
दव्वादिअलभे पुण, चउविधा आवती होति ॥

आपद्प्रतिषेवणा—आपत् की व्याख्या चार दृष्टियों से की गई है।[1]

१. द्रव्यतः आपत्—मुनि योग्य आहार आदि की अप्राप्ति।

२. क्षेत्रतः आपत्—अरण्यविहार आदि की स्थिति।

३. कालतः आपत्—दुर्भिक्ष आदि का समय।

४. भावतः आपत्—शरीर की रुग्णावस्था।

शंकित प्रतिषेवणा—प्रस्तुत सूत्र की संग्रह गाथा में 'शंकितप्रतिषेवणा' का उल्लेख है। निशीथ भाष्य मे इसके स्थान पर 'तितिण' प्रतिषेवणा का उल्लेख है।[2] शंकित प्रतिषेवणा का अर्थ वही है जो अनुवाद में प्राप्त है। तितिण प्रतिषेवणा का अर्थ आहार आदि प्राप्त न होने पर गिड़गिड़ाना।[3]

विमर्श प्रतिषेवणा—चूर्णिकार के अनुसार शिष्यों की परीक्षा के लिए गुरुजन सचित्त भूमि आदि पर चलने लग जाते थे। इस कार्य पर शिष्य की प्रतिक्रिया जान वे उसकी श्रद्धा या अश्रद्धा का निर्णय करते थे।[4]

निशीथभाष्य में प्रतिषेवणा का प्रकरण बहुत विस्तृत है। तात्कालिक धारणा की जानकारी के लिए यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

२२. (सू० ७०)

प्रस्तुत सूत्र मे जो संग्रहीत गाथा है वह निशीथभाष्य चूर्णि में भी मिलती है।[5] मूलाचार मे भी कुछ शाब्दिक परिवर्तन के साथ यही गाथा प्राप्त है।[6] निशीथ चूर्णि, स्थानागवृत्ति, तत्त्वार्थवार्तिक, मूलाचार की वसुनन्दि कृत वृत्ति आदि का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोषों की अर्थ-परम्परा कहीं-कहीं विस्मृत हुई है। उस विस्मृत परम्परा का अर्थ शाब्दिक आधार पर किया गया है। इस मत की पुष्टि के लिए दो शब्द —'अणुमाणइत्ता' और 'छन्न' प्रस्तुत किए जा सकते हैं। अभयदेवसूरि ने 'अणुमाणइत्ता' का अर्थ—आलोचनाचार्य मृदु दंड देने वाले हैं या अमृदु दंड देने वाले हैं ऐसा 'अनुमान कर' मृदु प्रायश्चित्त की सम्भावना होने पर 'आलोचना करना'—किया है।[7]

निशीथभाष्य चूर्णि में इसका अर्थ—अनुनय कर—किया गया है।[8]

तत्त्वार्थवार्तिक और मूलाचार के अर्थ आगे दिए गए हैं। इनमे 'अनुनय कर' या 'आलोचनाचार्य को करुणार्द्र बनाकर'—यह अर्थ अधिक प्रासंगिक लगता है।

स्थानांगवृत्ति[9] और निशीथभाष्यचूर्णि[10] में 'छन्न' का अर्थ है—इतने धीमे स्वर में आलोचना करना, जिसे वह स्वयं ही सुन सके, आलोचनाचार्य न सुन पाएं।

तत्त्वार्थवार्तिक तथा मूलाचार में 'छन्न' का आशय उक्त अर्थ से भिन्न है।

---

१ निशीथभाष्य, गाथा ४७६, चूर्णि।

२. निशीथभाष्य गाथा ४७७ .

दप्पपमादाणाभोगा आतुरे आवतीसु य।
तितिणे सहस्सक्कारे भयप्पदोसा य वीमंसा॥

३. निशीथभाष्य गाथा ४८० : चूर्णि—आहारादिसु अलब्भमाणेसु तिडितिडेइ।

४. निशीथभाष्य, गाथा ४८० : चूर्णि।

५. निशीथभाष्य भाग ४, पृष्ठ ३६३।

६. मूलाचार, शीलगुणाधिकार, गाथा १५ :

आकंपिय अणुमाणिय जं दिट्ठ बादरंच सुहुमं च।
छण्णं सद्दाकुलियं बहुजणमव्वत्त तस्सेवी॥

७. स्थानागवृत्ति, पत्र ४६० . 'अणुमाणइत्ता' अनुमान कृत्वा, किमयं मृदुदण्ड उतोग्रदण्ड इति ज्ञात्वेत्यर्थः, अयमभिप्रायोऽस्य—यद्ययं मृदुदण्डस्ततो दास्याम्यालोचनामन्यथा नेति।

८. निशीथ भाष्य, भाग ४, पृष्ठ ३६३ : "थरमं थोव एस पच्छित्तं दाहिति ण वा दाहिति॥
पुव्वामेव आयरियं अणुणेति—'दुब्बलो हं थोवं मे पच्छित्तं देज्जह॥"

९ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४६० : प्रच्छन्नमालोचयति यथात्मनैव शृणोति नाचार्यः।

१०. निशीथभाष्य भाग ४ पृष्ठ ३६३ . चूर्णि—"छण्णं" ति—तहा अवराहे अप्पसद्देण उच्चरइ जहा अप्पणा चेव सुणेति, णो गुरु।

हमने प्रस्तुत सूत्र का अनुवाद स्थानांगवृत्ति और निशीथभाष्यचूर्णि के आधार पर किया है। इसलिए उनके आधार पर शेष शब्दों पर विचार नहीं किया गया है। तत्वार्थवार्तिक में आलोचना के दस दोषों का विवरण प्राप्त है किन्तु उसमें सब दोषों का नामोल्लेख नहीं है। केवल तीसरे दोष का नाम 'मायाचार' और चौथे का 'स्थूल' दिया है। मूलाचार तथा उसकी वृत्ति में इन सभी दोषों का नामोल्लेख पूर्वक विवरण दिया गया है। इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन हम नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं—

१. 'गुरु को उपकरण देने से वे मुझे लघु प्रायश्चित्त देंगे'—ऐसा सोचकर उपकरण देना। यह पहला दोष है।

मूलाचार में पहला दोष 'आकंप्य' है। इसका अर्थ है—आचार्य को भक्त, पान, उपकरण आदि दे अपना आत्मीय बनाकर दोष निवेदन करना।

२. 'मैं प्रकृति से दुर्बल हूं, ग्लान हू, उपवास आदि करने मे असमर्थ हूं, यदि आप लघु प्रायश्चित्त दें तो मैं दोष निवेदन करूं'—यह कह कर दोष निवेदन करना। यह दूसरा दोष है।

मूलाचार में दूसरा दोष 'अनुमान्य' है। इसका अर्थ है—शरीर की शक्ति, आहार और बल की अल्पता दिखाकर, दीन वचनों से आचार्य को अनुमत कर—उनके मन मे करुणा पैदा कर दोष निवेदन करना।

३. दूसरे द्वारा अज्ञात दोषों को छुपाकर केवल ज्ञात दोषों का निवेदन करना—यह मायाचार नामका तीसरा दोष है।

मूलाचार मे इसे तीसरा 'दृष्ट' दोष माना है।

४ आलस्य या प्रमादवश अन्य अपराधों की परवाह न कर केवल स्थूल दोषों का निवेदन करना।

मूलाचार मे इसे चौथा 'बादर' दोष माना है।

५. महादुश्चर प्रायश्चित्त प्राप्त होने के भय से महान दोषों का संवरण कर छोटे प्रमाद का निवेदन करना। यह पांचवां दोष है।

मूलाचार मे इसे पांचवां 'सूक्ष्म' दोष माना है।

६. इस प्रकार का दोष हो जाने पर क्या प्रायश्चित प्राप्त हो सकता है, इसको उपायों द्वारा जानकर गुरु की उपासना कर दोष का निवेदन करना। यह छठा दोष है।

मूलाचार मे छठा दोष 'प्रच्छन्न' है। इसका अर्थ है—किसी मिस से दोष-कथन कर स्वयं प्रायश्चित ले लेना।

७ पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के समय अनेक साधु आलोचना करते हैं। उस समय कोलाहल-पूर्ण वातावरण मे दोष-कथन करना। यह सातवा दोष है।

मूलाचार में इसे सातवा 'शब्दाकुलित' दोष माना है।

८. गुरु के द्वारा दिया गया प्रायश्चित्त युक्त है या नही, आगम विहित है या नही—इस प्रकार शंकाशील होकर दूसरे साधुओ से पूछताछ करना। यह आठवां दोष है।

मूलाचार में आठवा दोष 'बहुजन' है। इसका अर्थ है—एक आचार्य को अपने दोष का निवेदन कर, प्रायश्चित्त लेकर उसमे श्रद्धा न करते हुए पुन. दूसरे आचार्य के पास उस दोष का निवेदन करना।

९. जिस किसी उद्देश्य से अपने जैसे ही अगीतार्थ के समक्ष अपने दोषों का निवेदन करना।

मूलाचार मे नौंवा दोष 'अव्यक्त' है। इसका अर्थ है—लघु प्रायश्चित्त के निमित्त अव्यक्त (प्रायश्चित्त देने मे अकुशल) के समक्ष अपने दोषो का निवेदन करना।

१०. 'मेरा दोष इसके दोष के समान है। उसको यही जानता है। इसको जो प्रायश्चित प्राप्त हुआ है वही मेरे लिए भी युक्त है'—ऐसा सोचकर अपने दोषों का सवरण करना यह दसवा दोष है।

मूलाचार में दसवां दोष 'तत्सेवी' है। इसका अर्थ है—जो व्यक्ति अपने समान ही दोषों से युक्त है उसको अपने दोष का निवेदन करना, जिससे कि वह बड़ा प्रायश्चित्त न दे।

इन दोनों ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर अर्थ-भेद स्पष्ट परिलक्षित होता है।

षट्प्राभृत की श्रुतसागरीय वृत्ति मे आलोचना के दस दोषो का संग्रह गाथा मे उल्लेख है। वह गाथा मूलाचार की है, किन्तु इन दोषों की मूलाचारगत व्याख्या और श्रुतसागरीय व्याख्या मे कही-कही बहुत बड़ा मत-भेद है।

मूलाचार की वृत्ति का अर्थ ऊपर दिया जा चुका है। श्रुतसागरीय की व्याख्या निम्न प्रकार से है—

१ आकंपित—आचार्य मुझे दंड न दे दें—इस भय से आलोचना करना।

२. अनुमानित—यदि इतना पाप किया जाएगा तो उससे निस्तार नही होगा, ऐसा अनुमान कर आलोचना करना।

३. यत्दृष्ट—जो दोष किसी के द्वारा देखा गया है, उसी की आलोचना करना।

४. बादर—केवल स्थूल दोषों का प्रकाशन करना।

५ सूक्ष्म—केवल सूक्ष्म दोषों का प्रकाशन करना।

६. छन्न—गुप्त रूप से केवल आचार्य के पास अपना दोष प्रकट करना, दूसरे के पास नही।

७ शब्दाकुल—जब शोरगुल हो तब अपने दोष को प्रगट करना।

८. बहुजन—जब बहुत बड़ा संघ एकत्रित हो, तब दोष प्रगट करना।

९. अव्यक्त—दोष को अव्यक्त रूप से प्रगट करना।

१० तत्सेवी—जिस दोष का प्रकाशन किया है, उसका पुनः सेवन करना।[1]

२३. (सू० ७१)

मिलाइए—स्थानांग ८।१८; तुलना के लिए देखें निशीथभाष्य, भाग ४, पृष्ठ ३६२ आदि।

२४. (सू० ७२)

प्रस्तुत सूत्र मे आलोचना देने वाले अनगार के दस गुणों का उल्लेख है। आठवें स्थान के अठारहवें सूत्र में आठ गुणों का उल्लेख हुआ है और यहां उनके अतिरिक्त दो गुण और उल्लिखित हैं।

इन दस गुणों में सातवा गुण है—'निर्यापक'। आठवें स्थान में वृत्तिकार ने इसका अर्थ[2]—'बड़े प्रायश्चित्त को भी निभा सके'—ऐसा सहयोग देने वाला, किया है। प्रस्तुत सूत्र में उसका अर्थ[3]—ऐसा प्रायश्चित्त देने वाला जिसे प्रायश्चित्त लेने वाला निभा सके—किया है। ये दोनों अर्थ भिन्न है।

'निर्यापक' प्रायश्चित्त देने वाले का विशेषण है, इसलिए प्रथम अर्थ ही सगत लगता है।

२५. (सू० ७३)

प्रस्तुत सूत्र में दस प्रकार के प्रायश्चित्त निर्दिष्ट है। इनका निर्देश दोषों की लघुता और गुरुता के आधार पर किया गया है। कई दोष आलोचना प्रायश्चित्त द्वारा, कई प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त द्वारा है और कई पारांचिक प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध होते हैं। इसी आधार पर प्रायश्चित्तों का निरूपण किया गया है।

आचार्य अकलंक ने बताया है कि जीव के परिणाम असङ्ख्येय लोक जितने होते हैं। जितने परिणाम होते हैं उतने ही अपराध होते हैं और जितने अपराध होते हैं उतने ही उनके प्रायश्चित्त होने चाहिए, किन्तु ऐसा नही है। प्रायश्चित्त के जो

---

१. षट्प्राभृत १।९, श्रुतसागरीय वृत्ति पृष्ठ ९।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४०२ : 'णिज्जवए त्ति निर्यापयति तथा करोति यथा गुर्वपि प्रायश्चित्तं शिष्यो निर्वाहयतीति निर्यापक इति।

३. वही, वृत्ति, पत्र ४६१ : 'निज्जवए' यस्तथा प्रायश्चित्तं दत्ते यथा परो निर्वोढुमलं भवतीति।

प्रकार निर्दिष्ट हैं वे व्यवहार नय की दृष्टि से पिंडरूप मे निर्दिष्ट हैं।[1]

दिगंबर परम्परानुसारी तत्त्वार्थ सूत्र तथा उसकी व्याख्या—तत्त्वार्थवार्तिक मे प्रायश्चित्त के नौ ही प्रकार निर्दिष्ट हैं[2]—

१. आलोचना २. प्रतिक्रमण ३ तदुभय ४. विवेक ५ व्युत्सर्ग ६ तप ७. छेद ८. परिहार ९. उपस्थापना।

इनमें दसवें प्रायश्चित्त—पाराचिक का उल्लेख नही है। 'मूल' प्रायश्चित्त के स्थान पर 'उपस्थापना' का उल्लेख है। वहां इसका वही अर्थ किया गया है, जो श्वेताम्बर आचार्यों ने 'मूल' का किया है।[3]

तत्त्वार्थवार्तिक मे 'अनवस्थाप्य' का भी उल्लेख नही है, किन्तु उसमें 'परिहार' नामक प्रायश्चित्त का उल्लेख है, जो श्वेताम्बर परम्परा मे प्राप्त नही है। इसका अर्थ है—पक्ष, मास आदि काल-मर्यादा के अनुसार प्रायश्चित्त प्राप्त मुनि को संघ से बाहर रखना।[4]

प्रायश्चित्त प्राप्ति के प्रकरण मे अनुपस्थापन और पाराचिक प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। किन्तु उनका अर्थ श्वेताम्बर परम्परा से भिन्न है।

अपकृष्ट आचार्य के पास प्रायश्चित्त ग्रहण करना अनुपस्थापन है और तीन आचार्यों तक, एक आचार्य से अन्य आचार्य के पास प्रायश्चित्त ग्रहण के लिए भेजना पारांचिक है।[5]

तत्त्वार्थवार्तिक मे प्रायश्चित्त प्राप्ति का विवरण इस प्रकार है[6]—

१. विद्या और ध्यान के साधनो को ग्रहण करने आदि मे विनय के बिना प्रवृत्ति करना दोष है, उसका प्रायश्चित्त है आलोचना।

२ देश और काल के नियम से अवश्य करणीय विधानों को धर्म-कथा आदि के कारण भूल जाने पर पुन: करने के समय प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त।

३ भय, शीघ्रता, विस्मरण, अज्ञान, अशक्ति और आपत्ति आदि कारणो से महाव्रतों मे अतिचार लग जाना—इसके लिए छेद के पहले के छहों प्रायश्चित्त हैं।

४ शक्ति का गोपन न कर प्रयत्न से परिहार करते हुए भी किसी कारणवश अप्रासुक के स्वय ग्रहण करने या ग्रहण कराने मे, त्यक्त प्रासुक का विस्मरण हो जाए और ग्रहण करने पर उसका स्मरण हो जाए तो उसका पुन. उत्सर्ग (विवेक) करना ही प्रायश्चित्त है।

५ दु:स्वप्न, दुश्चिन्ता, मलोत्सर्ग, मूत्र का अतिचार, महानदी और महा अटवी को पार करने में व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त है।

६. बार-बार प्रमाद, बहुदृष्ट अपराध, आचार्य आदि के विरुद्ध वर्तन करना, सम्यग्दर्शन की विराधना होने पर क्रमश: छेद, मूल अनुपस्थापन और पाराचिक प्रायश्चित्त दिया जाता है।

प्रायश्चित्त के निम्न निर्दिष्ट प्रयोजन है[7]—

१. प्रमादजनित दोषों का निराकरण। २. भावों की प्रसन्नता। ३. शल्य रहित होना। ४. अव्यवस्था का निवारण। ५ मर्यादा का पालन। ६. संयम की दृढ़ता। ७ आराधना।

प्रायश्चित्त एक प्रकार की चिकित्सा है। चिकित्सा रोगी को कष्ट देने के लिए नहीं की जाती, किन्तु रोग निवारण के लिए की जाती है। इसी प्रकार प्रायश्चित्त भी राग आदि अपराधों के उपशमन के लिए दिया जाता है।

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक ९।२२ : जीवस्यासंख्येयलोकपरिणामाः परिणामविकल्पा, अपराधाश्च तावन्त एव, न तेषा तावद्विकल्प प्रायश्चित्तमस्ति।

२. वही . ९।२२।

३. वही ९।२२ . पुनर्दीक्षाप्रापणमुपस्थापना।

४. तत्त्वार्थवार्तिक ९।२२ . पक्षमासादिविभागेन दूरत : परिवर्जन परिहारः।

५. वही ९।२२।

६. वही ९।२२।

७. वही ९।२२।

निशीथभाष्यकार ने तीर्थंकर की धनवंतरी से, प्रायश्चित्त प्राप्त साधु की रोगी से, अपराधों की रोगों से और प्रायश्चित्त की औषध से तुलना की है।[1]

२६. मार्ग (सू० ७४)

प्रस्तुत सूत्र में 'मार्ग' शब्द मोक्ष-मार्ग का सूचक है। सूत्रकृतांग [प्रथम श्रुतस्कंध] के ग्यारहवें अध्ययन का नाम 'मार्ग' है। उसमे अहिंसा को 'मार्ग' बताया गया है। उत्तराध्ययन के अठाईसवें अध्ययन का नाम 'मोक्षमार्गगति' है। उसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को मार्ग कहा गया है।[2]

तत्त्वार्थ के प्रथम सूत्र में सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र को मोक्ष मार्ग कहा है।[3]

इन व्याख्या-विकल्पों में केवल प्रतिपादन-पद्धति का भेद है, किन्तु आशय-भेद नहीं है।

२७. व्याघ्र (सू० ८२)

प्रस्तुत सूत्र में दस भवनपति देवों के दस चैत्यवृक्षों का उल्लेख है। उसमें वायुकुमार के चैत्यवृक्ष का नाम 'वप्प' है। आदर्शों तथा मुद्रित पुस्तकों मे 'वप्पा' 'वप्पो' 'वप्पे' ये शब्द मिलते हैं। किन्तु उपलब्ध कोषों में वृक्षवाची 'वप्र' शब्द नहीं मिलता। यहां 'वग्घ' [स० व्याघ्र] शब्द होना चाहिए था। पाइयसद्दमहण्णव में व्याघ्र शब्द के दो अर्थ किए हैं—

१ लाल एरण्ड का वृक्ष। २ करंज का पेड़।

आप्टे की संस्कृत इंगलिश डिक्शनेरी में भी 'व्याघ्र' शब्द का अर्थ 'रक्त एरंड' किया है। अत: यहा 'वग्घ' [व्याघ्र] शब्द ही उपयुक्त लगता है।

२८ (सू० ८३)

बौद्ध परम्परा में तेरह प्रकार के सुख-युगलों की परिकल्पना की गई है। उन युगलों में एक को अधम और एक को श्रेष्ठ माना है।[4]

१. गृहस्थ सुख, प्रव्रज्या सुख।
२. कामभोग सुख, अभिनिष्क्रमण सुख।
३ लौकिक सुख, लोकोत्तर सुख।
४. सास्रव सुख, अनास्रव सुख।
५. भौतिक सुख, अभौतिक सुख।
६. आर्य सुख, अनार्य सुख।
७. शारीरिक सुख, चैतसिक सुख।
८. प्रीति सुख, अप्रीति सुख।
९. आस्वाद सुख, उपेक्षा सुख।
१०. असमाधि सुख, समाधि सुख।
११. प्रीति आलबन सुख, अप्रीति आलंबन सुख।
१२. आस्वाद आलंबन सुख, उपेक्षा आलंबन सुख।
१३. रूप आलबन सुख, अरूप आलंबन सुख।

---

१. निशीथभाष्य, गाथा ६५०७ :
धन्नंतरितुल्लो जिणो, णायव्वो आतुरोवमो साहू।
रोगा इव अवराहा, ओसहसरिसा य पच्छित्ता॥

२. उत्तराध्ययन २८।१ :
मोक्खमग्गगइं तच्चं, सुणेह जिणभासियं।
चउकारणसंजुत्तं, नाणदंसणलक्खणं॥

३ तत्त्वार्थ १।१ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।

४. अगुत्तरनिकाय, प्रथमभाग, पृष्ठ ८१-८३।

२९. सन्तोष (सू० ८३)

इसका अर्थ है—अल्पेच्छता। वह आनन्दरूप होती है, इसलिए सुख है। ससार के सभी सुख संतोष-प्रसूत होते हैं।[1]

अपने सामर्थ्य के अनुसार पुरुषार्थ करने के पश्चात् जो फलप्राप्ति होती है उसमें तथा प्राप्त अवस्था मे प्रसन्नचित्त रहना और सब प्रकार की तृष्णाओ को छोड देना सतोष है।

मनुस्मृति मे संतोष को सुख का मूल और असंतोष को दुख का मूल माना है।[2]

संतोष और तुष्टि मे अन्तर है। संतोष चित्त की प्रसन्नता है और तुष्टि चित्त का आलस्य और प्रमाद आवरण। साख्यकारिका मे तुष्टि के नौ प्रकार बतलाए है। उनमे चार आध्यात्मिक और पाच बाह्य है।

'प्रकृति से आत्मा सर्वथा पृथक् है'—ऐसा समझकर भी जो साधक असद् उपदेश से सन्तुष्ट होकर आत्मा के श्रवण, मनन आदि द्वारा उसके विवेकज्ञान के लिए प्रयत्न नही करता, उसके चार आध्यात्मिक तुष्टियाँ होती है—

१. प्रकृति-तुष्टि—प्रकृति स्वयमेव विवेक उत्पन्न कराकर कैवल्य प्रदान करेगी, इस आशा से धारणा, ध्यान आदि का अभ्यास न करना, यह प्रकृतितुष्टि है।

२. उपादान-तुष्टि—विवेकख्याति सन्यास से उत्पन्न होती है। इसलिए ध्यान से सन्यास ग्रहण उत्तम है। यह उपादान-तुष्टि है। इसका दूसरा नाम 'सलिल' है।

३. काल-तुष्टि—फलोत्पत्ति के लिए काल की अपेक्षा होती है। प्रव्रज्या से भी तत्काल निर्वाण नही होता। काल के परिपाक से सिद्धि होती है, अत· उद्विग्नता से कोई लाभ नही है। यह काल-तुष्टि है।

४. भाग्य-तुष्टि—विवेकज्ञान न प्रकृति से, न काल से और न प्रव्रज्या ग्रहण से उत्पन्न होता है। मुक्त होने मे भाग्य ही हेतु है, अन्य नही—इस उपदेश से जो तुष्टि होती है, उसे भाग्यतुष्टि कहते है।

आत्मा से भिन्न प्रकृति, महान् अहंकार आदि को आत्मस्वरूप समझते हुए जीव को वैराग्य होने पर जो तुष्टियाँ होती हैं, वे बाह्य है। वे पांच प्रकार की है—

१. पार-तुष्टि—'धनोपार्जन के उपाय दु खद है'—इस विचार से विषयो के प्रति वैराग्य होना पार-तुष्टि है।

२. सुपार-तुष्टि—'धन के रक्षण मे महान् कष्ट होता है'—इस विचार से विषयो से उपरत होना सुपार-तुष्टि है।

३. पारापार-तुष्टि—'धन भोग से नष्ट हो जाएगा'—इस विचार से विषयो से उपरत होना पारापार-तुष्टि है।

४. अनुत्तमाम्भ-तुष्टि—'विषयो के प्रति वासना भोग से वृद्धिगत होती है और उनकी अप्राप्ति मे कष्ट होता है'—इस विचार से विषयो से उपरत होना अनुत्तमाम्भ-तुष्टि कहलाती है।

५. उत्तमाम्भ-तुष्टि—'भूतो को पीड़ा दिए बिना विषयो का उपभोग नही हो सकता—इस विचार से हिंसा से उपरत होना उत्तमाम्भ-तुष्टि है।'[3]

३०. (सू०८६)

देखें—३।४३८ का टिप्पण।

३१. (सू० ८९)

भगवान् ने कहा—'आर्यो! सत्य दस प्रकार का होता है—

---

१. स्थानांगवृत्ति' पत्र ४६३ संतोष—अल्पेच्छता तत् सुखमेव आनन्दानुरूपत्वात् सतोषस्य, उक्त च—
आरोगसारिय माणसुत्तण सच्चसारिओ धम्मो।
विज्जा निच्छयसारा सुहाइं सन्तोससराइ॥

२ मनुस्मृति ४।१२ · सतोषमूलं हि सुख, दु.खमूल विपर्यय।

३ साख्यकारिका ५०, तत्त्वकौमुदीव्याख्या, पृष्ठ १४५-१४८।
आध्यात्मिकाश्चतस्रः प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्या।
बाह्या विषयोपरमात् पञ्च च नवतुष्टयोभिमताः॥

१. जनपद सत्य २. सम्मत सत्य ३. स्थापना सत्य ४ नाम सत्य ५. रूप सत्य ६. प्रतीत्य सत्य ७. व्यवहार सत्य ८. भाव सत्य ९. योग सत्य १०. औपम्य सत्य।

१. आर्यो ! किसी जनपद के निवासी पानी को 'नीरु' (कन्नड़) कहते हैं और किसी जनपद के निवासी पानी को 'तण्णी' (तमिल) कहते हैं।

आर्यो ! नीरु और तण्णी के अर्थ दो नही है। केवल जनपद के भेद से ये शब्द दो हैं। पानी को नीरु और तण्णी कहना जनपद सत्य है।

२. आर्यो ! कमल और मेढक—दोनों कीचड मे उत्पन्न होते है, फिर भी कमल को पकज कहा जाता है, मेढक को नही कहा जाता।

आर्यो ! जिस अर्थ के लिए जो शब्द रूढ होता है वही उसके लिए प्रयुक्त होता है। आर्यो ! यह सम्मत सत्य है।

३ आर्यो ! एक वस्तु मे दूसरी वस्तु का आरोपण किया जाता है। शतरज के मोहरो को हाथी, ऊट, वजीर आदि कहा जाता है। आर्यो ! यह स्थापना सत्य है।

४. आर्यो ! किसी का नाम लक्ष्मीपति है और किसी का नाम अमरचन्द। लक्ष्मीपति को भीख मागते और अमरचन्द को मरते देखा है।

आर्यो ! गुणविहीन होने पर भी किसी व्यक्ति या वस्तु को उस नाम से अभिहित किया जाता है। आर्यो ! यह नाम सत्य है।

५. आर्यो ! एक स्त्रीवेषधारी पुरुष को स्त्री, नट वेषधारी पुरुष को नट और साधु वेषधारी पुरुष को साधु कहा जाता है।

आर्यो ! किसी रूप विशेष के आधार पर व्यक्ति को वही मान लेना रूप सत्य है।

६. आर्यो ! अनामिका अगुलि कनिष्ठा की अपेक्षा से बडी है और वह मध्यमा की अपेक्षा से छोटी है। छोटा होना और बडा होना सापेक्ष है। पत्थर लोह मे हल्का है और काठ से भारी है। हल्का होना और भारी होना सापेक्ष है। एक वस्तु की तुलना मे छोटी-बडी या हल्की-भारी होती है। आर्यो ! यह प्रतीत्य सत्य है।

७ आर्यो ! कहा जाता है—पर्वत जलता है, मार्ग जाता है, गाव आ गया। परन्तु यथार्थ मे ऐसा कहां होता है।

आर्यो ! क्या पर्वत कभी जलता है ? क्या मार्ग चलता है ? क्या गांव एक स्थान से दूसरे स्थान पर आता है ?

आर्यो ऐसा नही होता। पर्वत पर रहा ईधन जलता है, मार्ग पर चलने वाला पथिक जाता है, गाव की ओर जाने वाला मनुष्य वहा पहुच जाता है। आर्यो ! यह व्यवहार सत्य है।

८. आर्यो ! प्रत्येक वस्तु मे अनन्त पर्याय होते है। कुछ पर्याय व्यक्त होते हैं और शेष अव्यक्त। काल-मर्यादा के अनुसार व्यक्त पर्याय अव्यक्त हो जाते है और अव्यक्त पर्याय व्यक्त। वस्तु का प्रतिपादन व्यक्त पर्याय के आधार पर किया जाता है। दूध सफेद है। क्या उसमे दूसरे वर्ण नही हैं ? उसमे पाचों वर्ण है। किन्तु वे सब व्यक्त नही है। केवल श्वेत वर्ण व्यक्त है। इसलिए कहा जाता है कि दूध सफेद है। आर्यो ! यह भाव सत्य है।

९. आर्यो ! एक आदमी इधर से आ रहा है। दूसरा उसे पुकारता है—'दडी' इधर आओ, और वह आ जाता है। ऐसा क्यों होता है ? उसके पास दड है, इसलिए वह अपने आप को दडी समझता है, दूसरे भी उसे दडी समझते हैं आर्यो ! यह योग सत्य है।

१०. आर्यो ! कहा जाता है—आंखे कमल के समान हैं। आंखे विकस्वर हैं और कमल भी विकस्वर होता है। इस समान धर्म के आधार पर आखो को कमल से उपमित किया गया है। आर्यो ! यह औपम्य सत्य है।

तत्त्वार्थवार्तिक मे दस प्रकार के सत्य-सदभावों के नाम और विवरण प्राप्त हैं। उनमे क्रमभेद, नामभेद और व्याख्या भेद है।

वह इस प्रकार है—

स्थानांग	तत्वार्थवार्तिक
१. जनपद सत्य	नाम सत्य
२. सम्मत सत्य	रूप सत्य
३. स्थापना सत्य	स्थापना सत्य
४. नाम सत्य	प्रतीत्य सत्य
५. रूप सत्य	सवृति सत्य
६. प्रतीत्य सत्य	सयोजना सत्य
७ व्यवहार सत्य	जनपद सत्य
८. भाव सत्य	देश सत्य
९. योग सत्य	भाव सत्य
१०. औपम्य सत्य	समय सत्य

तत्वार्थवार्तिक के अनुसार उनकी व्याख्या इस प्रकार है—

१. नाम सत्य—किसी भी सचेतन या अचेतन वस्तु के गुणविहीन होने पर भी, व्यवहार के लिए उसकी वह संज्ञा करना।

२ रूप सत्य—वस्तु की अनुपस्थिति मे भी रूप मात्र से उसका उल्लेख करना, जैसे—पुरुष के चित्र को देखकर उसमे चैतन्य गुण न होने पर भी उसे पुरुष शब्द से व्यवहृत करना।

३. स्थापना सत्य—मूल वस्तु के न होने पर भी किसी मे उसका आरोपण करना। जैसे—शतरंज मे हाथी, घोड़े, वजीर की कल्पना कर मोहरों को उन-उन नामों से बुलाना।

४. प्रतीत्य सत्य—आदि-अनादि औपशमिक आदि भावों की दृष्टि से कहा जाने वाला वचन।

५ सवृति सत्य—लोक व्यवहार मे प्रसिद्ध प्रयोग के अनुसार कहा जाने वाला वचन। जैसे—पृथ्वी, पानी आदि अनेक कारणो से उत्पन्न होने पर भी कमल को पकज कहना।

६. सयोजना सत्य—धूप, उबटन आदि मे तथा कमल, मकर, हस, सर्वतोभद्र, क्रौंचव्यूह आदि मे सचेतन, अचेतन द्रव्यों के भाव, विधि आकार आदि की योजना करने वाला वचन।

७. जनपद सत्य—आर्य और अनार्य रूप में विभक्त बत्तीस देशो मे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला वचन।

८. देश सत्य—ग्राम, नगर, राज्य, गण, मत, जाति, कुल, आदि धर्मों के उपदेशक वचन।

९. भाव सत्य—छद्मस्थता के कारण यथार्थ न जानते हुए भी सयती या श्रावक को सर्व धर्म पालन के लिए—'यह प्रासुक है' 'यह अप्रासुक है'—ऐसा बताने वाला वचन।

१०. समय सत्य—आगमों मे वर्णित पदार्थों का यथार्थ निरूपण करने वाला वचन।[1]

३२. (सू० ९०)

आर्यो ! झूठ बोलने के दस कारण है—

---

१. तत्वार्थवार्तिक १।२०।

१. क्रोध २. मान ३. माया ४. लोभ ५. प्रेम ६. द्वेष ७. हास्य ८. भय ९. आख्यायिका १०. उपघात।

आर्यो ! कुछ मनुष्य क्रोध के वशीभूत होकर झूठ बोलते हैं। वे कभी-कभी अपने मित्र को भी शत्रु बता देते हैं। ऐसा क्यों होता है ? आर्यो ! क्रोध के आवेश मे उन्हें यह भान नहीं रहता कि यह मेरा मित्र है या शत्रु।

आर्यो ! कुछ मनुष्य मान के वशीभूत होकर झूठ बोलते हैं। वे निर्धन होने पर भी अपने आपको धनवान् बता देते हैं। ऐसा क्यों होता है ? आर्यो ! वे मान के आवेश में उद्धत होकर अपने को धनवान् बताते हैं।

आर्यो ! कुछ मनुष्य माया के वशीभूत होकर झूठ बोलते हैं। एक नकटा यह कहते हुए घूम रहा है—'नाक कटालो, भगवान् का दर्शन हो जाएगा।' एक मद्य विक्रेता यह कहते हुए घूम रहा है—मद्यपान करो, सब चिन्ताओं से मुक्ति मिल जाएगी। ऐसा क्यों होता है ? आर्यो ! माया के आवेश मे मनुष्यों को यह भान नहीं रहता कि दूसरों को ठगना कितना बुरा होता है।

आर्यो ! कुछ मनुष्य लोभ के वशीभूत होकर झूठ बोलते हैं। एक मनुष्य अल्पमूल्य वस्तु को बहुमूल्य बताता है। ऐसा क्यों होता है ? आर्यो ! लोभ के आवेश में वह भूल जाता है कि दूसरों के हित का विघटन करना कितना बड़ा पाप है।

आर्यो ! कुछ मनुष्य प्रेम के वशीभूत होकर झूठ बोलते हैं। वे अपने व्यक्ति के समक्ष यह कह देते हैं—"मैं तो आपका दास हूं।" ऐसा क्यो होता है ? आर्यो ! प्रेम मे व्यक्ति अंधा हो जाता है। उसे नही दीखता कि मैं किसके सामने क्या कह रहा हूं।

आर्यो ! कुछ मनुष्य द्वेष के वशीभूत होकर झूठ बोलते हैं। वे कभी-कभी गुणवान् को निर्गुण बता देते हैं। ऐसा क्यों होता है ? आर्यो ! द्वेष मे व्यक्ति दूसरे को नीचा दिखाने मे ही अपना गौरव समझता है।

आर्यो ! कुछ मनुष्य हास्य के वशीभूत होकर झूठ बोलते है। वे कभी-कभी मजाक मे एक दूसरे की चीज उठा लेते है और पूछने पर नकार जाते हैं। ऐसा क्यो होता है ? आर्यो ! वे मन बहलाने के लिए ऐसा करते हैं।

आर्यो ! कुछ मनुष्य भय के वशीभूत होकर झूठ बोलते हैं। वे यह सोचते हैं कि—यदि मैं ऐसा करूंगा तो वह मुझे मार डालेगा। इस भय से वे सत्य नही बोलते। ऐसा क्यों होता है ? आर्यो ! भय मनुष्य को असमंजस मे डाल देता है।

आर्यो कुछ मनुष्य आख्यायिका के माध्यम से झूठ बोलते है। ये आख्यायिका में अयथार्थ का गुम्फन कर झूठ बोलते है। ऐसा क्यों होता है ? आर्यो ! वे सरसता के सहारे असत् को सत् रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं।

आर्यो ! कुछ मनुष्य उपघातकारक (प्राणी पीड़ाकारक) वचन बोलते है। वे चोर को चोर कहकर उसे पीड़ा पहुचाने का यत्न करते हैं। ऐसा क्यों होता है ? आर्यो ! दूसरो को पीडा देने की भावना जाग जाने पर वे ऐसा करते है।

उमास्वाती ने असत् के प्रतिपादन को अनृत कहा है।[1]

अनृत के दो अंग होते हैं—विपरीत अर्थ का प्रतिपादन और प्राणी-पीडाकर अर्थ का प्रतिपादन।[2] प्रस्तुत सूत्र मे प्रतिपादित मृषा के दस प्रकारो में प्रारम्भ के नौ प्रकार विपरीत अर्थ के प्रतिपादक हैं और दसवा प्रकार प्राणी पीडाकर अर्थ का प्रतिपादक है।

स्थानांग के वृत्तिकार ने अभ्याख्यान के संदर्भ मे उपघात मिश्रित की व्याख्या की है। इसलिए उन्होंने अचोर को चोर कहना—इस अभ्याख्यान वचन को उपघात-निश्रित मृषा माना है।[3] हमने उपघात-निश्रित की व्याख्या दशवैकालिक ७/११ के सन्दर्भ में की है। उसके अनुसार अचोर को चोर कहना उपघात-निश्रित मृषा नही है, किन्तु चोर को चोर कहना उपघात-निश्रित मृषा है।[4]

---

१. तत्त्वार्थ सूत्र ७।१४ असदभिधानमनृतम्।

२. तत्त्वार्थराजवार्तिक ७।१४ · असदिति पुनरुच्यमाने अप्रशस्तार्थं यत् तत्सर्वमनृतमुक्तं भवति। तेन विपरीतार्थस्य प्राणिपीडाकरस्य चानृतत्वमुपपन्नं भवति।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४६५ : उवघायनिस्सिए त्ति उपघाते—प्राणिवधे निश्रितं—आश्रितं दशमं मृषा, अचोरेऽयमित्यभ्याख्यानवचनम्।

४ दशवैकालिक ७।१२, १३ ·

तहेव काणं काणे त्ति पंडगं पंडगे त्ति वा।
वाहियं वा वि रोगि त्ति तेणं चोरे त्ति नो वए॥
एएणन्नेण अट्ठेण परो जेणुवहम्मई।
आयार-भाव-दोसन्नू न तं भासेज्ज पन्नवं॥

३३ शस्त्र (सू० ९३)

वध या हिंसा के साधन को शस्त्र कहा जाता है। वह दो प्रकार का होता है—द्रव्य शस्त्र और भाव शस्त्र। प्रस्तुत सूत्र मे दोनों प्रकार के शस्त्रो का सकलन है। इनमे प्रथम छह द्रव्य शस्त्र है, शेष चार भाव शस्त्र है—आन्तरिक शस्त्र है।

३४. (सू० ९४)

वाद का अर्थ है गुरु-शिष्य के बीच होने वाली ज्ञानवर्धक चर्चा अथवा वादी और प्रतिवादी के बीच जयलाभ के लिए होने वाला विवाद।[1]

प्रस्तुत सूत्र मे वादकाल मे होने वाले दोषो का निरूपण है।

१. तज्जातदोष—वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए है—

(१) गुरु आदि के जाति, आचरण आदि विषयक दोष बतलाना।

(२) वादकाल मे प्रतिवादी से क्षुब्ध होकर मौन हो जाना।[2] अनुवाद द्वितीय अर्थानुसारी है। इसकी तुलना न्याय-दर्शन सम्मत 'अननुभाषण' नामक निग्रहस्थान से की जा सकती है। तीन बार सभा के कहने पर भी वादी द्वारा विज्ञात तत्त्व का उच्चारण न करना 'अननुभाषण' नामक निग्रह स्थान है।[3]

२. मतिभगदोष—इसकी तुलना 'अप्रतिभा' नामक निग्रह स्थान से की जा सकती है। प्रतिपक्षी के आक्षेप का उत्तर न सूझने पर वादी का मौन रह जाना अथवा भय, प्रमाद, विस्मृति या सकोचवश उत्तर न दे पाना 'अप्रतिभा' नामक निग्रह-स्थान है।[4]

३ प्रशास्तृदोष—सभानायक और सभ्य—ये प्रशास्ता कहलाते है। वे झुकाव या अपेक्षा के वश प्रतिवादी को विजयी बना देते है। प्रमेय की विस्मृति होने पर उसे याद दिला देते है। इस प्रकार के कार्य प्रशास्ता के लिए अनाचरणीय होते हैं। इसलिए इन्हे प्रशास्तृदोष कहा जाता है।

४. परिहरणदोष—वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए है[5]—

(१) अपने दर्शन की मर्यादा या लोकरूढि के अनुसार अनासेव्य का आसेवन नही करना।

(२) वादी द्वारा उपन्यस्त हेतु का सम्यक् परिहार न करना। उदाहरण स्वरूप—बौद्ध तार्किक ने पक्ष की स्थापना की—

'शब्द अनित्य है क्योंकि वह कृत है, जैसे घट। इस पर मीमासक का परिहार यह है—तुम शब्द की अनित्यता सिद्ध करने के लिए घटगत कृतत्व को साधन बना रहे हो या शब्दगत कृतकत्व को? यदि घटगत कृतकत्व को साधन बना रहे हो तो वह शब्द मे नही है, इसलिए तुम्हारा हेतु असाधारण अनैकातिक है।[6]

इस प्रकार का परिहरण सम्यक् परिहार नही है। यह (परिहरण दोष) मतानुज्ञा निग्रहस्थान मे तुलनीय है। उसका अर्थ है—अपने पक्ष मे लगाए गए दोष का समाधान किए बिना दूसरे पक्ष मे उसी प्रकार के दोष का आरोपण करना मतानुज्ञा निग्रह स्थान है।[7]

---

१ स्थानागवृत्ति, पत्र ४६७।

२ वही, वृत्तिपत्र ४६७ तस्य गुर्वादेर्जात—जाति प्रकारा वा जन्ममर्मकर्मादिलक्षण तज्जात तदेव दूषणमितिकृत्वा दोष-स्तज्जातदोष तथाविधकुलादिना दूषणमित्यर्थ, अथवा तस्मात्-प्रतिवाद्यादे सकाशाज्जात क्षोभान्मुखस्तम्भादि लक्षणो दोष-स्तज्जातदोष।

३ न्यायदर्शन ५।२।१७ विज्ञातस्य परिषदा त्रिरभिहितस्याप्यनु-च्चारणमननुभाषणम्।

४ न्यायदर्शन ५।२।१८
उत्तरस्याऽप्रतिपत्तिरप्रतिभा।

५ स्थानागवृत्ति, पत्र ४६७
परिहरण—आसेवा स्वदर्शनस्थित्या लोकरूढ्या वा अनासेव्यस्य तदेव दोष परिहरणदोष, अथवा परिहरण—अनासेवन सभारूढ्या सेव्यस्य वस्तुनस्तदेव तस्माद्वा दोष. परिहरणदोष, अथवा वादिनोपन्यस्तस्य दूषणस्य असम्यक्-परिहारो जात्युत्तर परिहरण दोष इति।

६ स्थानागवृत्ति, पत्र ४६७।

७ न्यायदर्शन ५।२।२१ स्वपक्षदोषाभ्युपगमात् परपक्षदोषप्रसङ्गो मतानुज्ञा।

५. लक्षणदोष—

अव्याप्त—जो लक्षण लक्ष्य के एक देश में मिलता है, वह अव्याप्त लक्षणदोष है। जैसे पशु का लक्षण विषाण।

अतिव्याप्त—जो लक्षण लक्ष्य और अलक्ष्य दोनों में मिलता है वह अतिव्याप्त लक्षणदोष है। जैसे—वायु का लक्षण गतिशीलता।

असंभव—जो लक्षण अपने लक्ष्य मे अंशतः भी नहीं मिलता, वह असंभव लक्षण-दोष है। जैसे—पुद्‌गल का लक्षण चैतन्य।[1]

६. कारण दोष—मुक्त जीव का सुख निरुपम होता है—इस वाक्य में सर्वविदित साध्य और साधन धर्म से अनुगत दृष्टान्त नहीं है, इसलिए यह उपपत्ति मात्र है। परोक्ष अर्थ का निर्णय करने के लिए प्रयुक्त उपपत्ति को कारण कहाजाता है।

७. हेतुदोष—

असिद्ध—अज्ञान, संदेह या विपर्यय के कारण जिस हेतु के स्वरूप की प्रतीति नही होती, वह असिद्ध हेतुदोष है। जैसे—शब्द अनित्य है, क्योंकि वह चाक्षुष है।

विरुद्ध—विवक्षित साध्य से विपरीत पक्ष मे व्याप्त हेतु विरुद्ध हेतु दोष है। जैसे शब्द नित्य है, क्योंकि वह कृतक है।

अनैकान्तिक—जो हेतु साध्य के अतिरिक्त दूसरे साध्य मे भी घटित होता है, वह अनैकान्तिक हेतु दोष है। जसे यह असर्वज्ञ है, क्योंकि बोलता है।[2]

८. सक्रमण दोष—प्रस्तुत प्रमेय को छोडकर अप्रस्तुत प्रमेय की चर्चा करना, परमत द्वारा असम्मत तत्त्व को उसका मान्य तत्त्व बतलाना या प्रतिवादी के पक्ष को स्वीकार करना।

यह हेत्वन्तर और अर्थान्तर निग्रहस्थान से तुलनीय है। हेत्वन्तर का अर्थ है—अपने पहले हेतु को छोडकर दूसरे हेतु को उपस्थित करना। अर्थान्तर का अर्थ है—प्रस्तुत अर्थ से असम्बद्ध अर्थ का प्रतिपादन करना।[3]

९. निग्रहदोष—इसका अनुवाद वृत्ति के आधार पर किया गया है। न्याय दर्शन के अभिप्राय मे भी इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। वादी के निग्रहस्थान मे न पडने पर भी प्रतिवादी द्वारा उसको निग्रहस्थान मे पडा हुआ कहना निग्रहदोष है। न्यायदर्शन की भाषा में इसे 'निरनुयोज्यानुयोग' कहा जाता है।[4]

१०. वस्तुदोष—पक्ष के दोष पांच हैं—

१. प्रत्यक्षनिराकृत—शब्द अश्रावण है (श्रवण का विषय नही है)। २ अनुमान निराकृत—शब्द नित्य है।

३. प्रतीति निराकृत—शशी चंद्र नही है। ४. स्ववचन निराकृत—मैं कहता हू वह मिथ्या है।

५. लोकरूढिनिराकृत—मनुष्य की खोपड़ी पवित्र है।

३५. (सूत्र ९५)

जिस धर्म के द्वारा अभिन्नता का बोध होता है उसे सामान्य और जिससे भिन्नता का बोध होता है उसे विशेष कहा जाता है। सामान्य सग्राहक और विशेष विभाजक होता है। प्रस्तुत सूत्र मे दस विशेष सगृहीत है। मूल पाठ में दस विशेषों के नाम उल्लिखित नही हैं। उनका प्रतिपादन एक संग्रह गाथा के द्वारा किया गया है। वह गाथा कहाँ से सगृहीत है, यह अभी ज्ञात नहीं हो सका है। इसलिए इसके संक्षिप्त नामो का ठीक-ठीक अर्थ लगाना बड़ा जटिल है। वृत्तिकार ने इनके अर्थ किए हैं, किन्तु स्थान-स्थान पर प्रदर्शित विकल्पो से ज्ञात होता है कि उनके सामने इनकी निर्णायक अर्थ-परम्परा नही

---

१. भिक्षुन्यायकर्णिका १।७,८,९।

२. भिक्षुन्यायकर्णिका ३।१७,१८,१९।

३. न्यायदर्शन ५।२।६,७।

४ वही, ५।२।२३ अनिग्रहस्थाने निग्रहस्थानाभियोगो निरनुयोज्यानुयोग।

थी। उदाहरण के लिए हम 'अत्तणा उवणीते य' इस पद को लेते हैं। वृत्तिकार ने दोनों में शेष का अध्याहार कर इसकी व्याख्या की है।[1] किन्तु अन्य स्थलों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि 'अत्तणा उवणीते' (सं० आत्मना उपनीतं) यह विशेष का एक ही प्रकार होना चाहिए। चौथे स्थान (सूत्र ५०२) से आहरणतद्दोष (साध्यविकल उदाहरण) का तीसरा प्रकार 'अत्तोवणीत' (स० आत्मोपनीत) है। परमत में दोष दिखाने के लिए दृष्टान्त प्रस्तुत किया जाए और उससे स्वमत दूषित हो जाए, उसे 'आत्मोपनीत' नामक आहरणतद्दोष कहा जाता है।

ऐसा करने पर विशेष की संख्या नौ रह जाती है। इस संग्रहगाथा के चतुर्थ चरण में 'विसेसे' और 'ते' ये दो शब्द हैं। वृत्तिकार ने इस विशेष को भावनावाक्य माना है और 'ते' को विशेष का सर्वनाम।[2] उन्होंने 'अत्तणा' और 'उवणीत' को पृथक् माना इसलिए उन्हें ऐसा करना पड़ा। यदि इन्हें दो नहीं माना जाता तो विशेष का दसवां प्रकार 'विशेष' होता। इसका अर्थ विशेष नामक वस्तु-धर्म किया जा सकता है। वस्तु में दो प्रकार के धर्म होते हैं—सामान्य और विशेष। विशेष के दो प्रकार हैं—गुण और पर्याय।[3]

इसी प्रकार प्रत्युत्पन्न का वृत्तिगत अर्थ भी विचारणीय है। वृत्तिकार के अनुसार इसका अर्थ है—वस्तु को केवल वार्तमानिक या प्रत्युत्पन्न मानने पर कृतकर्म के प्रणाश और अकृत कर्म के भोग की आपत्ति होना। गाथा में 'पडुपन्न' शब्द पडुप्पन्नविणासी' का संक्षिप्त रूप हो सकता है। 'पडुप्पन्नविणासी' आहरण का एक प्रकार है। उसका अर्थ है—उत्पन्न दूषण का परिहार करने के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला दृष्टान्त।

प्रस्तुत सूत्र में विशेष का वर्गीकरण है। विशेष सामान्य के प्रतिपक्ष में होता है। इससे यह फलित होता है कि इन दसों विशेषों के प्रतिपक्ष में दस सामान्य होने चाहिए जैसे—

वस्तुदोषविशेष	—	वस्तुदोषसामान्य
तज्जातदोषविशेष	—	तज्जातदोषसामान्य
दोषविशेष	—	दोषसामान्य
एकार्थिकविशेष	—	एकार्थिक सामान्य आदि-आदि।

सूत्रकार के सामने निर्दिष्ट वर्गीकरण के सामान्य और विशेष क्या रहे हैं, इसे जानने के साधन सुलभ नहीं हैं। फिर भी यह अनुसंधेय अवश्य है। वृत्तिकार ने दोष विशेष के अन्तर्गत पूर्व सूत्र निर्दिष्ट मतिभग, प्रशास्तृ, परिहरण, स्वलक्षण, कारण, हेतु, संक्रमण, निग्रह आदि दोषों का संग्रह किया है। उनके अनुसार प्रस्तुत सूत्र में ये विशेष की कोटि में आते हैं।

एकार्थिक विशेष की व्याख्या समभिरूढ नय की दृष्टि से की जा सकती है। साधारणतया शब्दकोषों में एक वस्तु के अनेक नामों को एकार्थक या पर्यायवाची माना जाता है। किन्तु समभिरूढ नय की दृष्टि से शब्द एकार्थक नहीं होते। वह निरुक्ति की भिन्नता के आधार पर प्रत्येक शब्द का स्वतंत्र अर्थ स्वीकार करता है,[4] जैसे—भिक्षा करने वाला भिक्षु, मौन करने वाला वाचयम, इन्द्रिय और मन का दमन करने वाला दान्त।

अधिक दोष विशेष न्यायदर्शन के 'अधिक' नामक निग्रहस्थान से तुलनीय है।[5]

३६. (सू० ९६)

१. चकार अनुयोग—चकार शब्द के अनेक अर्थ है—

(१) समाहार—महति, एक ही तरह हो जाना।

(२) इतरेतरयोग—मिलित व्यक्तियों या वस्तुओं का सम्बन्ध।

(३) समुच्चय—शब्दों या वाक्यों का योग।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४६६,

अत्तणत्ति आत्मना कृतमिति शेष।

उपनीत प्रापितं परेणेति शेष॥

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४६६ चकारयोर्विशेषशब्दस्य च प्रयोगो भावनावाक्ये दर्शित।

३. प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार ५।६, विशेषोऽपि द्विरूपो गुणः पर्यायश्च।

४. प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार ७।३६ : पर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थमभिरोहन् समभिरूढः।

५. न्यायदर्शन ५।२।१३ 'हेतूदाहरणाधिकमधिकम्।

(४) अन्वाचय—मुख्य काम या विषय के साथ गौण काम या विषय जोड़ना।

(५) अवधारण—निश्चय।

(६) पादपूरण—पदपूर्ति।

जैसे—'इत्थियो समणाणि य'—यहां 'य' शब्द समुच्चय के अर्थ में प्रयुक्त है।

२. मंकार अनुयोग—जेणामेव……तेणामेव यहां 'मकार' का प्रयोग आगमिक है, अलाक्षणिक है—प्राकृत व्याकरण से सिद्ध नहीं है। उसके अनुसार इसका रूप 'जेणेव' 'तेणेव' होता है।

३. पिकार अनुयोग—'अपि' शब्द के अनेक अर्थ हैं, जैसे—सम्भावना, निवृत्ति, अपेक्षा, समुच्चय, गर्हा, शिष्या-मर्षण—विचार, अलंकार तथा प्रश्न। 'एवंपि एगे आसासे'—यहां 'अपि, का प्रयोग, ऐसे भी' और, अन्यथा भी'—इन दो प्रकारान्तों का समुच्चय करता है।

४. सेयंकार अनुयोग—'से' शब्द के अनेक अर्थ हैं, जैसे—अथ, वह, उसका आदि। 'से भिक्खु'—यहां से का अर्थ अथ है।

'न से चाइत्ति वुच्चइ'—यहां से का अर्थ वह (वे) है।

अथवा 'सेय' शब्द के अनेक अर्थ हैं, जैसे—श्रेयस्—कल्याण।

एष्यत्काल—भविष्यत काल आदि।

'सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं'—यहां 'सेय' शब्द 'श्रेयस्' के अर्थ में प्रयुक्त है।

'सेय काले अकम्मं वावि भवइ'—यहां 'सेय' शब्द भविष्यत काल का द्योतक है।

५. सायंकार अनुयोग—'सायं' शब्द के अनेक अर्थ हैं, जैसे—सत्य, सद्भाव, प्रश्न आदि।

६. एकत्व अनुयोग—

'नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं य तवो तहा।

एस मग्गुत्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥ उत्तरा ॥२८।२

यहां ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप के समुदितरूप को ही मोक्ष-मार्ग कहा है। इसलिए बहुतों के लिए भी 'मग्ग' यह एकवचन का प्रयोग है।

७. पृथक्त्व अनुयोग—जैसे—धम्मत्थिकाये, धम्मत्थिकायदेसे, धम्मत्थिकायप्पदेसा—

यहां—धम्मत्थिकायप्पदेसा—इसमे दो के लिए बहुवचन नहीं है किन्तु धर्मास्तिकाय के प्रदेशो का असंख्यत्व बतलाने के लिए है।

८. संयूथ अनुयोग—'सम्मत्तदंसणसुद्धं' इस समासान्त पद का विग्रह अनेक प्रकार से किया जा सकता है, जैसे—

(१) सम्यग्दर्शन के द्वारा शुद्ध (तृतीया)

(२) सम्यग्दर्शन के लिए शुद्ध (चतुर्थी)

(३) सम्यग्दर्शन से शुद्ध (पंचमी)

९. संक्रामित अनुयोग—जैसे—'साहूण वंदणेणं नासति पाव असंकिया भावा' साधु को वंदना करने से पाप का नाश होता है और साधु के पास रहने से भाव अशंकित होते हैं। यहां वंदना के प्रसंग मे 'साहूण' षष्ठी विभक्ति है। उसका भाव अशंकित होने के सम्बन्ध में पंचमी विभक्ति के रूप मे सक्रमण कर लेना चाहिए।

वचन-संक्रमण—जैसे—'अच्छंदा जे न भुजंति, न से चाइत्ति वुच्चइ'—यहां 'से चाई' यह बहुवचन के स्थान मे एक-वचन है।

१०. भिन्न अनुयोग—जैसे—'तिविहं तिविहेणं'—यह सग्रह-वाक्य है। इसमे (१) मणेणं वायाए कायेणं (२) न करेमि, न कारवेमि, करतं पि अन्नं न समणुजाणामि—इन दो खंडों का सग्रह किया गया है। द्वितीय-खंड 'न करेमि' आदि तीन वाक्यों में 'तिविहेणं' का स्पष्टीकरण है और प्रथम खंड 'मणेणं' आदि तीन वाक्यांशों मे 'तिविहेणं' का स्पष्टीकरण है। यहां 'न करेमि' आदि बाद मे है और 'मणेणं' आदि पहले। यह क्रम-भेद है।

कालभेद—जैसे 'सक्के देविंदे देवराया वदति नमंसति'—यहां अतीत के अर्थ में वर्तमान की क्रिया का प्रयोग है।

वृत्तिकार ने लिखा है कि १०।९४,९५,९६—ये तीन सूत्र अत्यन्त गम्भीर होने के कारण दूसरे प्रकार से भी विमर्शनीय हैं। यह दूसरा प्रकार क्या हो सकता है यह अन्वेषणीय है।[1]

३७. (सू० ९७)

भारतीय संस्कृति मे दान की परम्परा बहुत प्राचीन है। दान का अर्थ है—देना। इस देने की पृष्ठभूमि मे अनेक प्रेरणाए काम करती रही है। वे प्रेरणाए एक जैसी नही है। कुछ व्यक्ति दूसरो की दीन-दशा से द्रवित होकर दान देते हैं, भय से प्रेरित होकर दान देते है और कुछ अपनी ख्याति के लिए दान देते है।

प्रस्तुत सूत्रगत दस दानो का निरूपण तत्कालीन समाज मे प्रचलित प्रेरणाओ का इतिहास है।

वाचकमुख्य उमास्वाति ने उनकी व्याख्या इस प्रकार की है।

१ अनुकम्पादान—

'कृपणेऽनाथदरिद्रे व्यसनप्राप्ते च रोगशोकहते।
यद्दीयते कृपार्थादनुकम्पा तद्भवेद्दानम्॥

—कृपण, अनाथ, दरिद्र, दुःखी, रोगी और शोकग्रस्त व्यक्ति पर करुणा लाकर जो दान दिया जाता है, वह अनुकम्पा दान है।

२ सग्रहदान—

'अभ्युदये व्यसने वा यत्किञ्चिद्दीयते सहायार्थम्।
तत् सग्रहतोऽभिमत, मनिभिर्दानं न मोक्षाय॥

किसी भी व्यक्ति को उसके अभ्युदयकाल या कष्टदशा मे सहायता देने के लिए जो दान दिया जाता है, वह सग्रह दान है।

३. भयदान—

'राजारक्षपुरोहितमधुमुखमावल्लदण्डपाशिषु च।
यद्दीयते भयार्थात् तद्भयदान बुधैर्ज्ञेयम्॥'

—जो दान राजा, आरक्षक, पुरोहित, मधुमुख, चुगलखोर और कोतवाल आदि के भय से दिया जाता है, वह भयदान है।

४. कारुण्यदान—कारुण्य का अर्थ शोक है। अपने प्रियजन का वियोग होने पर उसके उपकरण—वस्त्र, खटिया, आदि दान मे देते है। इसके पीछे एक लौकिक मान्यता है कि उसके उपकरण दान मे देने पर वह जन्मान्तर मे सुखी होता है। इस प्रकार का दान कारुण्यदान कहलाता है। वास्तव मे यह कारुण्यजन्य (शोकजन्य) दान है। फिर भी कार्यकारण का अभेद मानकर इसकी सज्ञा कारुण्यदान की गई है।

५ लज्जादान—

"अभ्यर्थित परेण तु यद्दान जनसमूहमध्यगत:।
परचित्तरक्षणार्थं लज्जायास्तद्भवेद्दानम्॥"

जनसमूह के बीच कोई किसी से याचना करता है तब वह दाता दूसरे की बात रखने के लिए दान देता है, वह लज्जादान है।

६. गौरवदान—

'नटनर्त्तमुष्टिकेभ्यो दान सबंधिबधुमित्रेभ्य.।
यद्दीयते यशोर्थं गर्वेण तु तद् भवेद्दानम्॥'

---

१ स्थानांगवृत्ति पत्र ४७० इद च दोषादि सूत्रत्रयमन्यथापि विमर्शनीय गम्भीरत्वादस्येति।

जो दान अपने यश के लिए नट, नृत्यकार, मुक्केबाजों तथा अपने सम्बन्धि, बन्धु और मित्रों को दिया जाता है, वह गौरव दान है।

७. अधर्मदान—

'हिंसानृतचौर्योद्यतपरदारपरिग्रहप्रसक्तेभ्यः।
यद्दीयते हि तेषां तज्जानीयादधर्माय ॥'

जो व्यक्ति हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार और संग्रह में आसक्त हैं, उन्हें जो दान दिया जाता है, वह अधर्म दान है।

८. धर्मदान—

'समतृणमणिमुक्तेभ्यो यद्दानं दीयते सुपात्रेभ्यः।
अक्षयमतुलमनन्तं, तद्दानं भवति धर्माय ॥'

जो तृण, मणि और मुक्ता में समभाव वाले हैं, जो सुपात्र हैं, उन्हें दिया जाने वाला दान धर्मदान है। यह दान अक्षय है, अतुल है और अनन्त है।

९. करिष्यतिदान—भविष्य मे यह मेरा उपकार करेगा, इस बुद्धि से किया जाने वाला दान करिष्यतिदान है।

१०. कृतमिति दान—

'शतशः कृतोपकारो दत्तं च सहस्रशो ममानेन।
अहमपि ददामि किञ्चित् प्रत्युपकाराय तद्दानम् ॥'

'इसने मेरा सैकड़ों बार उपकार किया है और इसने मुझे हजारों बार दिया है। मैं भी इसका कुछ प्रत्युपकार करूं।' इस भावना से दिया जाने वाला दान कृतमिति दान है।[1]

३८. (सू० ९८)

विग्रहगति—यहाँ वृत्तिकार ने इसका अर्थ—आकाश विभाग का अतिक्रमण कर होने वाली गति—किया है।[2]

भगवती में एक-सामयिक, द्वि-सामयिक, त्रि-सामयिक और चतुःसामयिक विग्रहगति का उल्लेख मिलता है।[3] एक-सामयिक विग्रहगति मे जो विग्रह शब्द है उसका अर्थ वक्र या घुमाव नहीं है। वहाँ बताया है कि एक-सामयिक विग्रहगति से वही जीव उत्पन्न होता है जिसका उत्पत्ति-स्थान ऋजु-आयात श्रेणी मे होता है।[4]

ऋजु श्रेणी में उत्पन्न होने वाले की गति ऋजु होती है। उसमें कोई घुमाव नहीं होता। तत्त्वार्थ टीका में इस विग्रह का अर्थ अवच्छेद या विराम किया गया है।[5]

प्रथम चार गतियों मे उत्पन्न होने वाले जीव ऋजु और वक्र—इन दोनों गतियों से गमन करते है। वृत्तिकार का यह आशय है कि प्रत्येक गति के दूसरे पद में 'विग्रह' का प्रयोग है, इसलिए प्रथम पद की व्याख्या ऋजु गति के आधार पर की जानी चाहिए।

सिद्धगति में उत्पन्न होने वाले जीव केवल ऋजु गति से ही गमन करते हैं। उनके विग्रहगति नहीं होती। फलतः 'सिद्धि विग्गहगति' यह दसवा पद ही नही बनता। वृत्तिकार ने इसका अर्थ—'सिद्धि अविग्गहगती' इस पाठ के आधार पर

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४७०, ४७१।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४७१ विग्रहात्—क्षेत्र विभागान् अतिक्रम्य गति. गमनम्।

३. भगवती ३४।२ · गोयमा! एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा चउसमइएण वा···।

४. भगवती ३४।३ : उज्जुआययाए सेढीए उववज्जमाणे एगसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

५. तत्त्वार्थाधिगमसूत्र २।२९, वृत्ति पत्र १८३, १८४ . एक समयेन वा विग्रहेणोत्पद्येतेति, विग्रहशब्दोऽत्रावच्छेदवचनो न वक्रताभिधायीत्यतोऽयमर्थः—एक समयेन वाऽवच्छेदेन विरामेण। कस्यावच्छेदेनेति चेत्? सामर्थ्याद् गतेरेव, एकसमय परिणामगतिकालोत्तरभाविनाऽवच्छेदेनोत्पद्येत।

किया है। इस अर्थ को स्वीकार करने पर सिद्धि गति के दोनों पदों का एक ही अर्थ हो जाता है। इस समस्या का समाधान हमे भगवती सूत्र के उक्त पाठ से ही मिल सकता है। वहाँ विग्रह शब्द ऋजु और विग्रह गति वाली परम्परा से सम्बन्धित नहीं है। वह उस परम्परा से सम्बन्धित है जिसमें पारलौकिक गति के लिए केवल विग्रह शब्द ही प्रयुक्त होता है। जहाँ ऋजु और विग्रह—ये दोनो गतियाँ विवक्षित हैं, वहाँ एक-समय की गति को ऋजुगति और द्विसमय आदि की गति को वक्रगति माना जाता है। इस परम्परा मे एक सामयिक गति को भी विग्रह गति माना गया है।

उक्त अर्थ-परम्परा को मान्य करने पर नरकगति का अर्थ नरक नामक पर्याय और नरकविग्रहगति का अर्थ नरक मे उत्पन्न होने के लिए होनेवाली गति—होगा। शेष सभी गतियो की अर्थ-योजना इसी प्रकार करणीय है।

३९. (सू० १००)

प्रस्तुत सूत्र मे गणित के दश प्रकार निर्दिष्ट है—

१. परिकर्म—यह गणित की एक सामान्य प्रणाली है। भारतीय प्रणाली मे मौलिक परिकर्म आठ माने जाते है—(१) संकलन [जोड़] (२) व्यवकलन [बाकी], (३) गुणन [गुणन करना], (४) भाग [भाग करना], (५) वर्ग [वर्ग करना] (६) वर्गमूल [वर्गमूल निकालना] (७) घन [घन करना] (८) घनमूल [घनमूल निकालना]। परन्तु इन परिकर्मों मे से अधिकाश का वर्णन सिद्धान्त ग्रन्थों मे नही मिलता।

ब्रह्मगुप्त के अनुसार पाटी गणित मे बीस परिकर्म है—(१) सकलित (२) व्यवकलित अथवा व्युत्कलिक (३) गुणन (४) भागहर (५) वर्ग (६) वर्गमूल (७) घन (८) घनमूल (९-१३) पाच जातिया[1] (अर्थात् पाच प्रकार के भिन्नों को सरल करने के नियम) (१४) त्रैराशिक (१५) व्यस्तत्रैराशिक (१६) पचराशिक (१७) सप्तराशिक (१८) नवराशिक (१९) एकदसराशिक (२०) भाण्ड-प्रति-भाण्ड[2]।

प्राचीन काल से ही हिन्दू गणितज्ञ इस बात को मानते रहे है कि गणित के सब परिकर्म मूलत. दो परिकर्मों—सकलित और व्यवकलित—पर आश्रित है। द्विगुणीकरण और अर्धीकरण के परिकर्म जिन्हे मिस्र, यूनान और अरब वालो ने मौलिक माना है। ये परिकर्म हिन्दू ग्रन्थों मे नही मिलते। ये परिकर्म उन लोगों के लिए महत्त्वपूर्ण थे जो दशमलव पद्धति से अनभिज्ञ थे।[3]

२. व्यवहार—ब्रह्मदत्त के अनुसार पाटीगणित मे आठ व्यवहार हैं—

(१) मिश्रक-व्यवहार (२) श्रेढी-व्यवहार (३) क्षेत्र-व्यवहार (४) खात-व्यवहार (५) चिति-व्यवहार (६) क्राकचिक व्यवहार (७) राशि-व्यवहार (८) छाया-व्यवहार।[4]

पाटीगणित—यह दो शब्दो से मिलकर बना है—(१) पाटी और (२) गणित। अतएव इसका अर्थ है। वह गणित जिसको करने मे पाटी की आवश्यकता पडती है। उन्नीसवी शताब्दी के अन्ततक कागज की कमी के कारण प्रायः पाटी का ही प्रयोग होता था और आज भी गावो मे इसकी अधिकता देखी जाती है। लोगों की धारणा है कि यह शब्द भारतवर्ष के सस्कृतेतर साहित्य से निकलता है, जो कि उत्तरी भारतवर्ष की एक प्रान्तीय भाषा थी। 'लिखने की पाटी' के प्राचीनतम सस्कृत पर्याय 'पलक' और 'पट्ट' है, न कि पाटी।[5] 'पाटी', शब्द का प्रयोग सस्कृत साहित्य मे प्राय. ५वी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। गणित-कर्म को कभी-कभी धूली कर्म भी कहते थे, क्योंकि पाटी पर धूल बिछा कर अक लिखे जाते थे। बाद के कुछ लेखको ने 'पाटी गणित' के अर्थ मे 'व्यक्त गणित' का प्रयोग किया है, जिससे कि बीजगणित से, जिसे वे अव्यक्त गणित कहते थे पृथक् समझा जाए। जब सस्कृत ग्रन्थो का अरबी मे अनुवाद हुआ तब पाटीगणित और धूली कर्म शब्दो का भी अरबी मे अनुवाद कर लिया गया। अरबी के सगत शब्द क्रमशः 'इल्म-हिसाब-अलतख्त' और 'हिसाब-अलगुबार'[6] है।

---

१ पाच जातिया ये हैं—१ भाग जाति, २ प्रभाग जाति, ३ भागानुबन्ध जाति, ४ भागापवाद जाति, ५ भाग-भाग जाति।

२ ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, अध्याय १२, श्लोक १।

३ हिंदूगणित, पृष्ठ ११८।

४ ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, अध्याय १२, श्लोक १।

५ अमेरिकन मैथेमेटिकल मथली, जिल्द ३५, पृष्ठ ५२६।

६. हिन्दूगणितशास्त्र का इतिहास भाग १ पृष्ठ ११७, ११६,

पाटीगणित के कुछ उल्लेखनीय ग्रन्थ—(१) बक्षाली हस्तलिपि (लगभग ३०० ई०), (२) श्रीधरकृत पाटी गणित और त्रिशतिका (लगभग ७५० ई०), (३) गणित सार संग्रह (लगभग ८५० ई०), (४) गणित तिलक (१०३९ ई०), (५) लीलावती (११५० ई०) (६) गणितकौमुदी (१३५६ ई०) और मुनिश्वर कृत पाटीसार (१६५८ ई०)—इन ग्रन्थों मे उपर्युक्त बीस परिकर्मों और आठ व्यवहारों का वर्णन है। सूत्रों के साथ-साथ अपने प्रयोग को समझाने के लिए उदाहरण भी दिए गए हैं—भास्कर द्वितीय ने लिखा है कि लल्ल ने पाटीगणित पर एक अलग ग्रन्थ लिखा है।

यहां श्रेणी व्यवहार का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। सीढी की तरह गणित होने से इसे सेढी-व्यवहार या श्रेणी-व्यवहार कहते है। जैसे—एक व्यक्ति किसी दूसरे को चार रुपये देता है, दूसरे दिन पाच रुपये अधिक, तीसरे दिन उससे पाच रुपये अधिक। इस प्रकार पन्द्रह दिन तक वह देता है। तो कुल कितने रुपये दिये ?

प्रथम दिन देता है उसे 'आदि धन' कहते है। प्रतिदिन जितने रुपये बढ़ाता है उसे 'चय' कहते है। जितने दिनों तक देता है उसे 'गच्छ' कहते है। कुल धन को श्रेणी-व्यवहार या संवर्धन कहते हैं। अन्तिम दिन जितना देता है उसे 'अन्त्यधन' कहते है। मध्य मे जितना देता है उसे 'मध्यधन' कहते है।

विधि—जैसे—गच्छ ३५ है। इनमे एक घटाया १५ — १ = १४ रहे। इसको चय से १४ × ५ गुणा किया—७० आये। इसमे आदि धन मिलाया ७० + ४ = ७४। यह अन्त्य धन हुआ। ७४ + ४ आदि धन = ७८ का आधा ३९ मध्य धन हुआ।

३९ × १५ गच्छ = ५८५ संवर्धन हुआ।

इसी प्रकार विजातीय अंक एक से नौ या उससे अधिक संख्या की जोड, उस जोड़ की जोड, वर्गफल और घनफल की जोड, इमी गणित के विषय है।

३. रज्जु — इसे क्षेत्र-गणित कहते हैं। इससे तालाब की गहराई, वृक्ष की ऊंचाई आदि नापी जाती है।

भुज, कोटि, कर्ण, जात्यत्रिस्र, व्यास, वृत्तक्षेत्र और परिधि आदि इसके अंग हैं।

४. राशि — इसे राशि-व्यवहार कहते हैं। पाटीगणित मे आए हुए आठ व्यवहारो मे यह एक है। इससे अन्त की ढेरी की परिधि से उसका 'घनहस्तफल' निकाला जाता है।

अन्न के ढेर मे बीच की ऊंचाई को वेध कहते हैं। मोटे अन्न चना आदि मे परिधि का १/१० भाग वेध होता है। छोटे अन्न मे परिधि का १/११ भाग वेध होता है। शूर धान्य में परिधि का १/९ भाग वेध होता है। परिधि का १/६ करके उसका वर्ग करने के बाद परिधि से गुणन करने से घनहस्तफल निकलता है। जैसे — एक स्थान पर मोटे अन्न की परिधि ६० हाथ की है। उसका घनहस्तफल क्या होगा ?

६० ÷ १० = ६ वेध हुआ।

परिधि ६० ÷ ६ = १० इसका वर्ग १० × १० = १०० हुआ। १०० × ६ वेध = ६०० घनहस्तफल होगा।

५. कलासवर्ण — जो सख्या पूर्ण न हो, अशों मे हो — उसे समान करना 'कलासवर्ण' कहलाता है। इसे समच्छेदीकरण, सवर्णन और समच्छेदविधि भी कहते है (हिन्दू गणितशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ १७९)। सख्या के ऊपर के भाग को 'अंश' और नीचे के भाग को 'हर' कहते है।

जैसे—१/२ और १/३ है। इसका अर्थ कलासवर्ण ३/६ २/६ होगा।

६. यावत् तावत् — इसे गुणकार भी कहते है[1]।

पहले जो कोई संख्या सोची जाती है उसे गच्छ कहते है। इच्छानुसार गुणन करने वाली सख्या को वाञ्छ या इष्ट-संख्या कहते हैं।

गच्छ संख्या को इष्ट-सख्या से गुणन करते हैं। उसमे फिर इष्ट मिलाते है। उस संख्या को पुन: गच्छ से गुणा करते हैं। तदनन्तर गुणनफल मे इष्ट के दुगुने का भाग देने पर गच्छ का योग आता है। इस प्रक्रिया को 'यावत् तावत्' कहते है।

---

१. स्थानांगवृत्ति पत्र ४७१ . जावं तावति वा गुणकारोत्ति वा एगट्ठा।

जैसे — कल्पना करो कि इष्ट १६ है, इसको इष्ट १० से गुणा किया — १६ × १० = १६०। इसमें पुन: इष्ट १० मिलाया (१६० + १० = १७०)। इसको गच्छ से गुणा किया (१७० × १६ = २७२०) इसमें इष्ट की दुगुनी संख्या से भाग दिया २७२० ÷ २० = १३६, यह गच्छ का योगफल है। इस वर्ग को पाटी गणित भी कहा जाता है[1]।

७. वर्ग — वर्ग शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'पंक्ति' अथवा 'समुदाय'। परन्तु गणित में इसका अर्थ 'वर्गघात' तथा 'वर्गक्षेत्र' अथवा उसका क्षेत्रफल होता है। पूर्ववर्ती आचार्यों ने इसकी व्यापक परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'समचतुरस्र' (अर्थात् वर्गाकार क्षेत्र) और उसका क्षेत्रफल वर्ग कहलाता है। दो समान संख्याओं का गुणन भी वर्ग है[2]। परन्तु परवर्ती लेखकों ने इसके अर्थ को सीमित करते हुए लिखा है — "दो समान संख्याओं का गुणनफल वर्ग है[3]। वर्ग के अर्थ में कृति शब्द का प्रयोग भी मिलता है, परन्तु बहुत कम[4]। इसे समद्विराशिघात भी कहा जाता है। भिन्न-भिन्न विद्वानों ने इसकी भिन्न-भिन्न विधियों का निरूपण किया है।

८. घन — इसका प्रयोग ज्यामितीय और गणितीय — दोनों अर्थों में अर्थात् ठोस घन तथा तीन समान संख्याओं के गुणनफल को सूचित करने में किया गया है। आर्यभट्ट प्रथम का मत है — तीन समान संख्याओं का गुणनफल तथा बारह बराबर कोणों (और भुजाओं) वाला ठोस भी घन है[5]। श्रीधर[6], महावीर[7] और भास्कर द्वितीय[8] का कथन है कि तीन समान संख्याओं का गुणनफल घन है। घन के अर्थ में 'वृन्द' शब्द का भी यत्र-कुत्र प्रयोग मिलता है। इसे 'समत्रिराशिघात' भी कहा जाता है। घन निकालने की विधियों में भी भिन्नता है।

९. वर्ग-वर्ग — वर्ग को वर्ग से गुणा करना। इसे 'समचतुर्घात' भी कहते हैं। पहले मूल संख्या को उसी संख्या से गुणा करना। फिर गुणनफल की संख्या को गुणनफल की संख्या से गुणा करना। जो संख्या आती है उसे वर्ग-वर्ग फल कहते हैं। जैसे — ४ × ४ = १६ × १६ = २५६। यह वर्ग-वर्ग फल है।

१०. कला गणित में इसे 'क्रकच-व्यवहार' कहते है। यह पाटीगणित का एक भेद है। इससे लकड़ी की चिराई और पत्थरों की चिनाई आदि का ज्ञान होता है। जैसे — एक काष्ठ मूल में २० अंगुल मोटा है और ऊपर में १६ अंगुल मोटा है। वह १०० अंगुल लम्बा है। उसको चार स्थानों में चीरा तो उसकी हस्तात्मक चिराई क्या होगी? मूल मोटाई और ऊपर की मोटाई का योग किया — २० + १६ = ३६। इसमें २ का भाग दिया ३६ ÷ २ = १८। इसको लम्बाई से गुणा किया — १०० × १८ = १८००। फिर इसे चीरने की संख्या से गुणा किया १८०० × ४ = ७२००। इसमें ५७६ का भाग दिया ७२०० — ५७६ = १२ १/२। यह हस्तात्मक चिराई है।

स्थानांग वृत्तिकार ने सभी प्रकारों के उदाहरण नहीं दिए हैं। उनका अभिप्राय यह है कि सभी प्रकारों के उदाहरण मन्द बुद्धि वालों के लिए सहजतया ज्ञातव्य नहीं होते अतः उनका उल्लेख नहीं किया गया है।[9]

सूत्रकृतांग २।१ की व्याख्या के प्रारंभ में 'पौंडरीक' शब्द के निक्षेप के अवसर पर वृत्तिकार ने एक गाथा उद्धृत की है, उसमें गणित के दस प्रकारों का उल्लेख किया है[10]। वहां नौ प्रकार स्थानांग के समान ही है। केवल एक प्रकार भिन्न रूप से उल्लिखित है। स्थानांग का कल्प शब्द उसमें नहीं है। वहां 'पुद्गल' शब्द का उल्लेख है, जो स्थानांग में प्राप्त नहीं है।

४० (सू० १०१)

प्रस्तुत सूत्र में विभिन्न परिस्थितियों के निमित्त से होने वाले प्रत्याख्यान का निर्देश किया गया है। मूलाचार में कुछ

---

१ स्थानांगवृत्ति पत्र ४७१ इदं च पाटीगणितं त श्रूयते।

२ आर्यभटीय, गणितपाद, श्लोक ३।

३ त्रिशतिका, पृष्ठ ५।

४ हिन्दूगणितशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ १४७।

५ आर्यभटीय, गणितपाद, श्लोक ३।

६ त्रिशतिका, पृष्ठ ६।

७. गणित-सारसंग्रह, पृष्ठ १४

८ लीलावती, पृष्ठ ५।

९ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४७२।

१० सूत्रकृतांग २।१, वृत्तिपत्र ४ :

परिकम्म रज्जु रासी ववहारे तह कलासवण्णे य।

पुग्गल जावं ताव घणे य घणवग्ग वग्गे य॥

नाम-परिवर्तन के साथ इनका निर्देश मिलता है। उसकी अर्थ-परम्परा भी कुछ भिन्न है। स्थानांग वृत्तिकार अभयदेवसूरि ने अनागत प्रत्याख्यान का प्रयोजन इस प्रकार बतलाया है—

'पर्युषण पर्व के समय आचार्य, तपस्वी, ग्लान आदि के वैयावृत्य में संलग्न रहने के कारण मैं प्रत्याख्यान-तपस्या नहीं कर सकूंगा'—इस प्रयोजन से अनागत तप वर्तमान में किया जाता है।

मूलाचार के वृत्तिकार वसुनंदि श्रमण के शब्दों मे चतुर्दशी आदि को किया जाने वाला तप त्रयोदशी आदि को कर लिया जाता है।

इसी प्रकार विशिष्ट प्रयोजन उपस्थित होने पर पर्युषण पर्व आदि मे करणीय तप नहीं किया जा सका, उसे बाद मे किया जाता है।

वसुनंदि श्रमण के शब्दो मे चतुर्दशी आदि को किया जाने वाला उपवास प्रतिपदा आदि तिथियो मे किया जा सकता है। यह अतिक्रान्त प्रत्याख्यान भी सम्मत रहा है।

कोटि सहित प्रत्याख्यान की अर्थ-परम्परा दोनों में भिन्न है। अभयदेवसूरि के अनुसार इसका अर्थ है—प्रथम दिन के उपवास की समाप्ति और दूसरे दिन के उपवास के प्रारंभ के बीच समय का व्यवधान न होना।

वसुनदि श्रमण के अनुसार यह सकल्प समन्वित प्रत्याख्यान की प्रक्रिया है। किसी मुनि ने संकल्प किया—'अगले दिन स्वाध्याय-वेला पूर्ण होने पर यदि शक्ति ठीक रही तो मैं उपवास करूंगा, अन्यथा नही करूँगा।'

स्थानाग मे प्रत्याख्यान के चौथे प्रकार का नाम 'नियन्त्रित' है मूलाचार मे चौथे प्रत्याख्यान का नाम 'विखडित' है।

यहां नाम-भेद होने पर भी अर्थ-भेद नही है। स्थानाग वृत्ति में एक सूचना यह प्राप्त होती है कि यह प्रत्याख्यान वज्रऋषभनाराच सहनन वाले चौदह पूर्वधर, जिनकल्पी और स्थविरों के होता था। वर्तमान में यह व्युच्छिन्न माना जाता है।

पांचवें और छठे प्रत्याख्यान का दोनो में अर्थ-भेद है। अभयदेवसूरि ने 'आकार' का अर्थ अपवाद और वसुनदि श्रमण ने उसका अर्थ भेद किया है। अनाभोग (विस्मृति), सहसाकार (आकस्मिक) महत्तर की आज्ञा आदि प्रत्याख्यान के अपवाद होते है। अभयदेवसूरि ने बताया है कि साकार प्रत्याख्यान मे सभी अपवाद व्यवहार मे लाए जा सकते हैं। अनाकार प्रत्याख्यान मे 'महत्तर' की आज्ञा आदि अपवाद व्यवहार में नहीं लाए जा सकते। अनाभोग और सहसाकार की छूट उसमे भी रहती है।

वसुनदी श्रमण ने भेद का आशय इस प्रकार स्पष्ट किया है—'अमुक नक्षत्र मे अमुक तपस्या करनी है' इस प्रकार नक्षत्र आदि के भेद के आधार पर दीर्घकालीन तपस्याए करना साकार प्रत्याख्यान है। नक्षत्र आदि का विचार किए बिना स्वेच्छा से उपवास आदि करना अनाकार प्रत्याख्यान है। मूलाचार मे 'परिणामकृत' के स्थान पर 'परिणामगत' शब्द है। स्थानाग वृत्तिकार ने इसे दत्ति, कवल आदि के उदाहरण से समझाया है और मूलाचार वृत्तिकार ने इसे तपस्या के काल-परिणाम के उदाहरण के द्वारा समझाया है। इनके मूल आशय मे कोई भेद प्रतीत नही होता।

स्थानांग में आठवें प्रत्याख्यान का नाम 'निरवशेष' है और मूलाचार मे 'अपरिशेष' है। वसुनदि श्रमण ने इसका अर्थ—यावज्जीवन संपूर्ण आहार का परित्याग किया है। श्वेताम्बर साहित्य मे यावज्जीवन का अर्थ अभिहित नही है।

स्थानाग में प्रत्याख्यान का नवां प्रकार है 'सकेतक' और दसवा प्रकार है 'अध्वा'। मूलाचार में नवा प्रत्याख्यान है 'अध्वानगत' और दसवा है 'सहेतुक'।

नवें और दसवें प्रत्याख्यान के विषय मे दोनों परंपराओ मे क्रमभेद, नामभेद और अर्थभेद—तीनो है। अभयदेवसूरी ने 'संकेतक' की जो व्याख्या की है, उसके आधार पर यह फलित होता है कि उन्होंने मूलपाठ 'सकेतक' माना है।[1] सकेत

---

1. स्थानांगवृत्ति पत्र ४७३ · केतनं केत:—चिह्नमङ्गुष्ठमुष्टि-ग्रन्थिगृहादिकं स एव केतकः सह केतकेन सकेतकं ग्रन्थादि-सहितमित्यर्थः।

प्रत्याख्यान की व्याख्या इस प्रकार मिलती है—कोई गृहस्थ खेत पर गया हुआ है। उसके प्रहर दिन तक का प्रत्याख्यान है। प्रहर दिन बीत गया। भोजन न मिलने पर वह सोचता है—मेरा एक भी क्षण बिना त्याग के न जाए; इसलिए वह प्रत्याख्यान करता है कि—'जब तक यह दीप नही बुझेगा या जब तक मैं घर नही जाऊंगा या जब तक पसीने की बूंदे नही सूखेंगी या जब तक मेरी मुट्ठी नहीं खुलेगी तब तक मैं कुछ भी न खाऊँगा और न पीऊंगा।

अभयदेवसूरि ने अध्वा प्रत्याख्यान का अर्थ—पौरुषी आदि कालमान के आधार पर किया जाने वाला प्रत्याख्यान किया है। वसुनंदि श्रमण ने अध्वानजगत प्रत्याख्यान का अर्थ मार्ग विषयक प्रत्याख्यान किया है। यह अटवी, नदी आदि पार करते समय उपवास आदि करने की पद्धति का सूचक है। सहेतुक प्रत्याख्यान का अर्थ है—उपसर्ग आदि आने पर किया जाने वाला उपवास।

इस प्रकार की पूर्ण जानकारी के लिए स्थानाग वृत्ति पत्र ४७२, ४७३, भगवती ७।२, आवश्यक निर्युक्ति अध्ययन ६ और मूलाचार षड् आवश्यकाधिकार गाथा १४०, १४१ द्रष्टव्य हैं।

दोनो परंपराओ मे कुछ पाठो और अर्थों का भेद सचमुच आश्चर्यजनक है। इसकी पृष्ठभूमि मे पाठ-परम्परा का परिवर्तन और अर्थ-परंपरा की विस्मृति अन्वेषणीय है। सकेत और अध्वा प्रत्याख्यान के स्थान पर सहेतुक पाठ और उसका अर्थ तथा अध्वानजगत का अर्थ जितना स्वाभाविक और उस समय की परपरा के निकट लगता है उतना सकेत और अध्वा का नही लगता।

४१. (सू० १०२)

भगवती (२५।५५५) मे इन सामाचारियो का क्रम यही है, किन्तु उत्तराध्ययन [अध्ययन २६] मे उनका क्रम भिन्न है। क्रमभेद के अतिरिक्त एक नाम भेद भी है। 'निमत्रणा' के स्थान पर 'अभ्युत्थान' है। किन्तु इनके तात्पर्यार्थ मे कोई अन्तर नही है। उत्तराध्ययन की निर्युक्ति मे 'निमतणा' ही है।[1] अभ्युत्थान का अर्थ है—गुरुपूजा। शान्त्याचार्य ने इसका अर्थ गौरवार्ह आचार्य, ग्लान, बाल आदि मुनियो के लिए यथोचित आहार, भेषज आदि लाना—किया है।[2]

मूलाराधना तथा मूलाचार मे 'आवस्सिया' के स्थान पर 'आसिया' शब्द का प्रयोग मिलता है। अर्थ मे कोई भेद नही है।[3]

मूलाचार मे 'निमंतणा' के स्थान पर 'सनिमतणा' का प्रयोग मिलता है।

विशेष विवरण के लिए देखे—

उत्तरज्झयणाणि २६।१-७ का टिप्पण।

४२. (सू० १०३)

भगवान् महावीर अपने जन्मस्थान कुण्डपुर से अभिनिष्क्रमण कर ज्ञातखड उपवन मे एकाकी प्रव्रजित हुए। वह मृगशीर्ष कृष्णा दशमी का दिन था। आठ मास तक विहार कर वे अपने पिता के मित्र के आश्रम मे पर्युषणाकल्प के लिए ठहरे। वहा दो महीने रहकर, वे अकाल मे ही वहा से निकल कर अस्थिग्राम सन्निवेश के बाहिर शूलपाणि यक्षायतन मे ठहरे। वहा शूलपाणि ने उन्हे अनेक कष्ट दिए। तब व्यन्तर देव सिद्धार्थ ने उसे भगवान् महावीर का परिचय दिया। शूलपाणि का क्रोध उपशात हुआ। वह भगवान् की भक्ति करने लगा।

शूलपाणि यक्ष ने भगवान् को रात्री के [कुछ समय कम] चारो प्रहर तक परितापित किया। अतिम रात्री मे भगवान् को कुछ नीद आई और तब उन्होने दस स्वप्न देखे।

---

१ उत्तराध्ययन निर्युक्ति गाथा ४८७

२ उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति, पत्र ५३४,५३५।

३. (क) मूलाराधना गाथा २०५६।

(ख) मूलाचार, समाचाराधिकार गाथा १२५।

यहां अंतिम रात्रि का अर्थ है—रात्री का अवसान, रात्री का अंतिम भाग ।[1]

'छउमत्थकालियाए अंतिमराइयंसि'—इस पाठ को देखने पर यही धारणा बनती है कि छद्मस्थकाल की अंतिम रात्री में भगवान् महावीर ने दस स्वप्न देखे। किंतु आवश्यकनिर्युक्ति आदि उत्तरवर्ती ग्रन्थों तथा व्याख्याग्रन्थों के साथ इस धारणा की संगति नहीं बैठती। वृत्तिकार ने जो अर्थ किया है वह प्रस्तुत पाठ और उत्तरवर्ती ग्रन्थों की संगति बिठाने का प्रयत्न है।

एक बार भगवान् महावीर अस्थिग्राम गए। वहां एक वाणव्यन्तर का मंदिर था। उसमे शूलपाणि यक्ष की प्रभावशाली प्रतिमा थी। जो व्यक्ति उस मन्दिर में रात्रिवास करता, वह यक्ष द्वारा मारा जाता था। लोग वहा दिनभर रहते और रात को अन्यत्र चले जाते। वहाँ इन्द्रशर्मा नामक ब्राह्मण पुजारी रहता था। वह भी दिन-दिन मे मंदिर मे रहता और रात में पास वाले गांव में अपने घर चला जाता।

भगवान् महावीर वहा आए। बहुत सारे लोग एकत्रित हो गए। भगवान् ने मंदिर में रात्रिवास करने की आज्ञा मागी। देवकुलिक (पुजारी) ने कहा—मैं आज्ञा नही दे सकता। गाँववाले जाने। भगवान् ने गाँववालो से पूछा। उन्होने कहा—'यहा नहीं रहा जा सकता। आप गाँव में चले।' भगवान् ने कहा—'नही, मुझे तुम आज्ञा मात्र दे दो। मैं यही रहना चाहता हू।' तब गाववालो ने कहा—अच्छा, आप जहा चाहे वहां रहे।' भगवान् मंदिर के अदर गए और एक कोने मे कायोत्सर्ग मुद्रा कर स्थित हो गए।

पुजारी इन्द्रशर्मा मदिर के अदर गया। प्रतिमा की पूजा की और भगवान् को सबोधित कर कहा—'चलो, यहाँ क्यों खड़े हो? अन्यथा मारे जाओगे।' भगवान् मौन रहे। व्यन्तर देव ने सोचा—'देवकुलिक और गाव के लोगों द्वारा कहने पर भी यह भिक्षु यहाँ से नही हट रहा है। मैं भी इसे अपने आग्रह का मजा चखाऊँ।'

साझ की वेला हुई। शूलपाणि ने भीषण अट्टहास कर महावीर को डराना चाहा। लोग इस भयानक शब्द से काप उठे। उन्होने सोचा—'आज देवार्य मौत के कवल बन जाएँगे।'

उसी गाव मे एक पार्श्वापत्यिक परिव्राजक रहता था। उसका नाम उत्पल था। वह अष्टाग निमित्त का जानकार था। उसने सारा वृत्तान्त सुना। किन्तु रात मे वहा जाने का साहस उसने भी नही किया।

शूलपाणि यक्ष ने जब देखा कि उसका पहला वार खाली गया है, तब उसने हाथी, पिशाच और भयकर सर्प के रूप धारण कर भगवान् को डगना चाहा। भगवान् अब भी अडोल खड़े थे। यह देख यक्ष का क्रोध उभर आया। उसने एक साथ सात वेदनाए उदीर्ण की। अब भगवान् के सिर, नासा, दात, कान, आख, नख और पीठ मे भयकर वेदना होने लगी। एक-एक वेदना भी इतनी तीव्र थी कि उससे मनुष्य मृत्यु पा सकता था। सातो का एक साथ आक्रमण अत्यन्त अनिष्टकारी था किन्तु भगवान् अडोल थे। वे ध्यान की श्रेणी मे ऊपर चढ रहे थे।

यक्ष अत्यन्त श्रान्त हो गया। वह भगवान् के चरणों मे गिर पडा और बोला—'भट्टारक! मुझ पापी को आप क्षमा करें।' भगवान् अब भी वैसे ही मौन खडे थे।

इस प्रकार उस रात के चारो प्रहरों मे भगवान् को अत्यन्त भयानक कष्टों का सामना करना पडा। रात के पिछले प्रहर के अतिम भाग मे भगवान् को नीद आ गई। उसमें उन्होने दस महास्वप्न देखे। स्वप्न देख वे प्रतिबुद्ध हो गए।

प्रस्तुत सूत्र में दस स्वप्न तथा उनकी फलश्रुति निर्दिष्ट है।

प्रातःकाल हुआ। लोग आए। अष्टाग निमित्तज्ञ उत्पल तथा देवकुलिक इन्द्रशर्मा भी वहां आए। वहाँ का सारा वातावरण सुगंधमय था। वे मदिर मे गए। भगवान् को देखा। सब उनके चरणो में गिर पड़े।

उत्पल आगे बढा और बोला—'स्वामिन्! आपने रात के अतिम भाग मे दस स्वप्न देखे हैं। उनकी फलश्रुति मैं अपने ज्ञान-बल से जानता हूँ। आप स्वय उसके ज्ञाता हैं। भगवान्! आपने जो दो मालाएँ देखी थी उस स्वप्न की फलश्रुति मै नही जान पाया। आप कृपा कर बताएं।'

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४७६ : अतिमराइयंसि त्ति अन्तिमा—अन्तिमभागरूपा अवयव [illegible]ायोपचारात् सा चासौ रात्रिका चान्तिमरात्रिका तस्यां रात्र[illegible]ान इत्यर्थ ।

भगवान् ने कहा—'उत्पल ! जो तुम नहीं जानते, वह मैं जानता हूं ! इस स्वप्न का अर्थ यह है कि मैं दो प्रकार के धर्मों की प्ररूपणा करूँगा—सागार धर्म और अनगार धर्म।'

उत्पल भगवान् को वंदन कर चला गया। भगवान् ने वहा पहला वर्षावास बिताया।[1]

बौद्ध साहित्य मे भी बुद्ध के पाच स्वप्नो का उल्लेख है।

जिस समय तथागत बोधिसत्व ही थे, बुद्धत्व लाभ नही हुआ था, तब उन्होने पाँच महान् स्वप्न देखे—

१ यह महापृथ्वी उनकी महान् शय्या बनी हुई थी; पर्वतराज हिमालय उनका तकिया था; पूर्वीय समुद्र बायें हाथ से पश्चिमीय समुद्र दाहिने हाथ मे और दक्षिण समुद्र दोनो पावो से ढका था।

२. उनकी नाभी से तिरिया नामक तिनको ने उगकर आकाश को जा छुआ था।

३. कुछ काले सिर तथा श्वेत रंग के जीव पाव से ऊपर की ओर बढ़ते-बढते घुटनो तक ढँककर खड़े हो गए।

४ विभिन्न वर्णों के चार पक्षी चारो दिशाओ से आए और उनके चरणो मे गिरकर सभी सफेद वर्ण के हो गए।

५. तथागत गूथ पर्वत पर ऊपर-ऊपर चलते है और चलते समय उससे सर्वथा अलिप्त रहते है।

इनकी फलश्रुति इस प्रकार है—

१. अनुपम सम्यक् संबोधि को प्राप्त करना।

२. आर्य अष्टागिक मार्ग का ज्ञान प्राप्त कर, उसे देव-मनुष्यो तक प्रकाशित करना।

३ बहुत से श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ प्राणान्त होने तक तथागत के शरणागत होना।

४. क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र—चारो वर्ण वाले तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय के अनुसार प्रव्रजित हो अनुपम विमुक्ति को साक्षात् करेंगे।

५. तथागत चीवर, भिक्षा, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय और भैषज्य-परिष्कारों को प्राप्त करने वाले हैं। तथागत इनके प्रति अनासक्त, मूर्च्छित रहते है। वे इनमे बिना उलझे हुए, इनके दुष्परिणामों को देखते हुए मुक्त-प्रज्ञ हो इनका उपभोग करते है।[2]

दोनों श्रमण नेताओ द्वारा दृष्ट स्वप्नो मे शब्द-साम्य नही है, किन्तु उनकी पृष्ठभूमि और तात्पर्य मे बहुत सामीप्य प्रतीत होता है।

४३. (सू० १०४)

देखे—उत्तरज्झयणाणि २८।१६ का टिप्पण।

४४ (सू० १०५)

प्रस्तुत प्रकरण मे संज्ञा के दो अर्थ किए गए है—आभोग [संवेगात्मक ज्ञान या स्मृति] और मनोविज्ञान।[3] संज्ञा के दस प्रकार निर्दिष्ट है। उनमे प्रथम आठ प्रकार संवेगात्मक तथा अंतिम दो प्रकार ज्ञानात्मक है। इनकी उत्पत्ति बाह्य और आन्तरिक उत्तेजना से होती है। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओ की उत्पत्ति के चार-चार कारण चतुर्थ स्थान मे निर्दिष्ट है।[4] क्रोध, मान, माया और लोभ—इन चार संज्ञाओ की उत्पत्ति के कारणो का निर्देश भी प्राप्त होता है।[5]

ओघसंज्ञा—वृत्तिकार ने इसका अर्थ—सामान्य अवबोध क्रिया, दर्शनोपयोग या सामान्य प्रवृत्ति—किया है।[6] तत्त्वार्थ भाष्यकार ने ज्ञान के दो निमित्तो का निर्देश किया है। इन्द्रिय के निमित्त से होने वाला ज्ञान और अनिन्द्रिय के

---

१ आवश्यक, मलयगिरि वृत्ति, पत्र २६९, २७०।

२ अंगुत्तरनिकाय, द्वितीय भाग, पृष्ठ ४२५-४२७।

३ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४७८ संज्ञान संज्ञा आभोग इत्यर्थः मनोविज्ञानमित्यन्ये।

४ स्थानांग ४।५७६-५८२

५ स्थानांग ४।८०-८३

६ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४७९ : मतिज्ञानावरणक्षयोपशमाच्छब्दाद्यर्थगोचरा सामान्यावबोधक्रियैव संज्ञायतेऽनयेत्योघसंज्ञा, तथा तद्विशेषावबोधक्रियैव संज्ञायते ऽनयेति लोकसंज्ञा।

निमित्त से होने वाला ज्ञान। स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द का ज्ञान स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिय से होता है। यह इन्द्रिय निमित्त से होनेवाला ज्ञान है। अनिन्द्रिय के निमित्त से होने वाले ज्ञान के दो प्रकार हैं—मानसिक ज्ञान और ओघज्ञान। इन्द्रियज्ञान विभागात्मक होता है, जैसे—नाक से गंध का ज्ञान होता है, चक्षु से रूप का ज्ञान होता है। ओघज्ञान निर्विभाग होता है। वह किसी इन्द्रिय या मन से नहीं होता। किन्तु वह चेतना की, इन्द्रिय और मन से पृथक्, एक स्वतंत्र क्रिया है।[1]

सिद्धसेनगणि ने ओघज्ञान को एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया है—वल्ली वृक्ष आदि पर आरोहण करती है। उसका यह आरोहण-ज्ञान न स्पर्शन इन्द्रिय से होता है और न मानसिक निमित्त से होता है। वह चेतना के अनावरण की एक स्वतंत्र क्रिया है।[2]

वर्तमान के वैज्ञानिक एक छठी इन्द्रिय की कल्पना कर रहे हैं। उसकी तुलना ओघसंज्ञा से की जा सकती है। उनकी कल्पना का विवरण इन शब्दों में है[3]—

सामान्यतया यह माना जाता है कि हमारे पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं,—आंख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा।

वैज्ञानिक अब यह मानने लगे हैं कि इन पांच ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त एक छठी ज्ञानेन्द्रिय भी है।

इसी छठी इन्द्रिय को अंग्रेजी में 'ई-एस-पी' (एक्स्ट्रासेन्सरी पर्सेप्शन) अथवा अतीन्द्रिय अंतःकरण कहते हैं।

कई वैज्ञानिक ऐसा मानते हैं कि प्रकृति ने यह इन्द्रिय बाकी पांचों ज्ञानेन्द्रियों से भी पहले मनुष्य को उसके पूर्वजों को तथा अनेक पशु-पक्षियों को प्रदान की थी। मनुष्य में तो यह शक्ति जब तक ही प्राकृतिक रूप में पाई जाती है, क्योंकि सभ्यता के विकास के साथ-साथ उसने इसका 'अभ्यास' त्याग दिया। अनेक पशु-पक्षियों में यह अब भी देखने में आती है। उदाहरण के लिए—

१. भूकंप या तूफान आने से पहले पशु-पक्षी उसका आभास पाकर अपने बिलों, घोंसलों या अन्य सुरक्षित स्थानों में पहुंच जाते हैं।

२. कई मछलियां देख नहीं सकतीं, परन्तु सूक्ष्म विद्युत् धाराओं के जरिए पानी में उपस्थित रुकावटों से बचकर संचार करती हैं।

आधुनिक युग में आदिम जातियों के मनुष्यों में भी यह छठी इन्द्रिय काफी हद तक पायी जाती है। उदाहरण के लिए—

१. आस्ट्रेलिया के आदिवासियों का कहना है कि वे धुएं के संकेत का प्रयोग तो केवल उद्दिष्ट व्यक्ति का ध्यान खींचने के लिए करते हैं और इसके बाद उन दोनों में विचारों का आदान-प्रदान मानसिक रूप से ही होता है।

२. अमरीकी आदिवासियों में तो इस छठी इन्द्रिय के लिए एक विशिष्ट नाम का प्रयोग होता है और वह है शुम्फो।'

लोकसंज्ञा—वृत्तिकार ने इसका अर्थ—विशेष अवबोध क्रिया, ज्ञानोपयोग और विशेष प्रवृत्ति—किया है।[4]

ओघसंज्ञा के संदर्भ में इसका अर्थ विभागात्मक ज्ञान [इन्द्रियज्ञान और मानसज्ञान] किया जा सकता है।

शीलांकसूरी ने आचारांग वृत्ति में लोकसंज्ञा का अर्थ लौकिक मान्यता किया है।[5] किन्तु वह मूलस्पर्शी प्रतीत नहीं होता।

---

१ तत्त्वार्थभाष्य १।१४ तत्रेन्द्रियनिमित्तं स्पर्शनादीनां पञ्चानां स्पर्शादिषु पञ्चस्वेव स्वविषयेषु। अनिन्द्रियनिमित्तं मनोवृत्तिरोघज्ञानं च।

२. तत्त्वार्थसूत्र, भाष्यानुसारिणी टीका १।१४, पृ० ७६: ओघ:—सामान्यं अप्रविभक्तरूपं यत्र न स्पर्शनादीनीन्द्रियाणि तानि मनोनिमित्तमाश्रीयन्ते, केवलं मत्यावरणीयक्षयोपशम एव तस्य ज्ञानस्योत्पत्तौ निमित्तं, यथा—वल्लयादीनां नीव्राद्यभिसर्पणज्ञानं न स्पर्शननिमित्तं न मनोनिमित्तमिति, तस्मात् तत्र मत्यज्ञानावरणक्षयोपशम एव केवलो निमित्तीक्रियते ओघज्ञानस्य।

३ नवभारत टाइम्स (बम्बई) २४ मई १९७०।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४७६।

५ आचारांग वृत्ति पत्र ११ लोकसंज्ञा स्वच्छन्दघटितविकल्परूपा लौकिकाचरिता।

आचारांग निर्युक्ति मे संज्ञा के चौदह प्रकार मिलते है[1]—

१. आहार संज्ञा, २. भय संज्ञा, ३. परिग्रह सज्ञा, ४ मैथुन संज्ञा, ५. सुख-दुख संज्ञा, ६. मोह संज्ञा, ७. विचिकित्सा संज्ञा, ८. क्रोध संज्ञा, ९. मान संज्ञा १०. माया संज्ञा, ११. लोभ सज्ञा, १२. शोक संज्ञा, १३. लोक संज्ञा, १४. धर्म संज्ञा।

प्रस्तुत प्रसग मे कुछ मनोवैज्ञानिक तथ्य भी ज्ञातव्य हैं। मनोविज्ञान ने मानसिक प्रतिक्रियाओ के दो रूप माने हैं—भाव (Feeling) और संवेग [Emotion].

भाव सरल और प्राथमिक मानसिक प्रतिक्रिया है। सवेग जटिल प्रतिक्रिया है।

भय, क्रोध, प्रेम, उल्लास, ह्रास, ईर्ष्या आदि को सवेग कहा जाता है। उसकी उत्पत्ति मनोवैज्ञानिक परिस्थिति मे होती है और वह शारीरिक और मानसिक यत्र को प्रभावित करता है।

सवेग के कारण बाह्य और आन्तरिक परिवर्तन होते है। बाह्य परिवर्तनो मे ये तीन मुख्य हैं—

१. मुखाकृति अभिव्यंजन (Facial expression)

२. स्वराभिव्यजन (Vocal expression)

३. शारीरिक स्थिति (Bodily posture)

आन्तरिक परिवर्तन—

१. श्वास की गति में परिवर्तन (Changes in respiration)

२ हृदय की गति मे परिवर्तन (Changes in heart beat)

३. रक्तचाप मे परिवर्तन (Changes in blood pressure)

४. पाचनक्रिया मे परिवर्तन (Changes in gastro intestinal or digestvie function)

५. रक्त मे रासायनिक परिवर्तन (Chemical Changes in blood)

६. त्वक् प्रतिक्रियाओ तथा मानस-तरगो मे परिवर्तन (Changes in psychogalvanic responses and Brain waves)

७. ग्रन्थियों की क्रियाओं मे परिवर्तन (Changes in the activities of the glands)

मनोविज्ञान के अनुसार सवेग का उद्गम स्थान हाइपोथेलेमस (Hypothalamus) माना जाता है। यह मस्तिष्क के मध्य भाग में होता है। यही सवेग का सचालन और नियन्त्रण करता है। यदि इसको काट दिया जाए तो सारे सवेग नष्ट हो जाते है।

भाव रागात्मक होता है। उसके दो प्रकार है—सुखद और दु:खद। उसकी उत्पत्ति के लिए बाह्य उत्तेजना आवश्यक नही होती।

४५. (सू० ११०)

दशा—यह शब्द दस से निष्पन्न हुआ है। जिसके ग्रन्थ मे दस अध्ययन है उसे दशा कहा गया है। इसका अर्थ है—शास्त्र।[2] प्रस्तुत सूत्र मे दस दशाओ [दस अध्ययन वाले शास्त्रो] का उल्लेख है और इसके अगले सूत्र में उनके अध्ययनों के नाम हैं।

१. कर्म विपाक दशा—ग्यारहवें अग का प्रथम श्रुतस्कध। इसमे अशुभ कर्मों के विपाक का प्रतिपादन है।

२. उपासकदशा—यह सातवा अंग है। इसमे भगवान् महावीर के प्रमुख दस उपासकों—श्रावकों का वर्णन है।

---

१ आचाराग निर्युक्ति गाथा ३९
आहार भय परिग्गह मेहुण सुखदुक्ख मोह वितिगिच्छा।
कोह माण माया लोहे सोगे लोगे य धम्मोहे ॥

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ४८० दशाधिकाराभिधायकत्वाद्दशा.···
शास्त्रस्याभिधानमिति।

३. अन्तकृतदशा—यह आठवां अंग है। इसके आठ वर्ग हैं। इसके प्रथम वर्ग में दस अध्ययन हैं। इसमें अन्तकृत—संसार का अन्त करने वाले व्यक्तियों का वर्णन है।

४. अनुत्तरोपपातिकदशा—यह नौवां अंग है। इसमें पांच अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले जीवों का वर्णन है।

५. आचारदशा—इसका रूढ नाम है—दशाश्रुतस्कंध। इसमें पांच प्रकार के आचारों—ज्ञानआचार, दर्शनआचार, तपआचार और वीर्यआचार का वर्णन है।

६. प्रश्नव्याकरणदशा—यह दसवां अंग है। इसमें अनेकविध प्रश्नों का व्याकरण है।

७-१०—वृत्तिकार ने शेष चार दशाओं का विवरण नहीं दिया है। 'अस्माकं अप्रतीता'—'हमें ज्ञात नहीं हैं'—ऐसा कहकर छोड़ दिया है।[1]

४६. (सू० १११)

कर्मविपाकदशा—वृत्तिकार के अनुसार यह ग्यारहवें अंग 'विपाक' का प्रथम श्रुतस्कंध है।[2]

विपाक के दो श्रुतस्कंध हैं—दुःखविपाक और सुखविपाक। प्रत्येक में दस-दस अध्ययन हैं।

वर्तमान में उपलब्ध विपाक सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध [दुःखविपाक] के दस अध्ययन ये हैं—

१. मृगापुत्र २. उज्झितक ३. अभग्नसेन ४. शकट ५. बृहस्पतिदत्त ६. नंदिवर्द्धन [नंदिषेण] ७. उम्बरदत्त ८. शौरिकदत्त ९. देवदत्त १०. अंजू।

दूसरे श्रुतस्कंध [सुखविपाक] के दस अध्ययन ये है—

१. सुबाहु २. भद्रनंदी ३ सुजात ४ सुवासव ५. जिनदास ६. वैश्रमण ७. महाबल ८. भद्रनंदि ९. महश्चन्द्र १०. वरदत्त।

प्रस्तुत सूत्र में आए हुए नाम विपाक सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध (दुःख विपाक) के दस अध्ययनों के है। दूसरे श्रुतस्कंध के अध्ययनों की यहां विवक्षा नहीं की है। इससे पूर्ववर्ती सूत्र (१०।११०) की वृत्ति में वृत्तिकार ने इसका उल्लेख करते हुए द्वितीय श्रुतस्कंध के अध्ययनों की अन्यत्र चर्चा की बात कही है।[3]

पूर्ववर्ती सूत्र की वृत्ति से यह भी प्रतीत होता है कि विपाक सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध का नाम 'कर्मविपाकदशा है।'[4]

कर्मविपाक दशा के अध्ययन	उपलब्धविपाक सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध के अध्ययन
१. मृगापुत्र	मृगापुत्र
२. गोत्रास	उज्झितक
३. अण्ड	अभग्नसेन
४. शकट	शकट
५. ब्राह्मण	बृहस्पतिदत्त
६ नंदिषेण	नंदिवर्द्धन
७. शौरिक	उम्बरदत्त
८. उदुंबर	शौरिकदत्त
९. सहस्रोद्दाह आमरक	देवदत्ता
१०. कुमार लिच्छई	अंजू

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८० तथा बन्धदशा द्विगृद्धिदशा दीर्घदशा संक्षेपिक-दशाश्चास्माकमप्रतीता इति।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८० : ''कर्मविपाकदशा, विपाकश्रुताख्यस्यैकादशाङ्गस्य प्रथमश्रुतस्कन्धः।

३. वही, पत्र ४८० द्वितीयश्रुतस्कन्धोऽप्यस्य दशाध्ययनात्मक एव, न चासाविहाभिमत, उत्तरत्र विवरिष्यमाणत्वादिति।

४ स्थानांग वृत्ति ४८० : कर्म्मण .—अशुभस्य विपाक'.—फल कर्मविपाक. तत्प्रतिपादका दशाध्ययनात्मकत्वाद्दशा कर्म्म. विपाकदशा विपाकश्रुताख्यस्यैकादशाङ्गस्य प्रथमश्रुतस्कन्ध।

दोनों के अध्ययन से नामों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। विपाक सूत्र मे अध्ययनों के कई नाम व्यक्ति परक और कई नाम वस्तु परक [घटना परक] है।

प्रस्तुत सूत्र मे वे नाम केवल व्यक्ति परक है। दो अध्ययनों मे क्रम-भेद है। प्रस्तुत सूत्र में जो आठवा अध्ययन है वह विपाक का सातवां अध्ययन है और इसका जो सातवा अध्ययन है वह विपाक का आठवां अध्ययन है। सभी अध्ययनो से सम्बन्धित घटनाएं इस प्रकार है—

१ मृगापुत्र—प्राचीन समय में मृगग्राम नाम का नगर था। वहा विजय नाम का क्षत्रिय राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम मृगा था। उसके एक पुत्र हुआ। उसका नाम मृगापुत्र रखा गया।

एक बार महावीर के समवसरण मे एक जात्यन्ध व्यक्ति आया। उसे देखकर गौतम ने भगवान् से पूछा—'भदन्त ! क्या इस नगर मे भी कोई जात्यन्ध व्यक्ति है ?' भगवान् ने उन्हें मृगापुत्र की बात कही, जो जन्म से अन्धा और आकृति रहित था। गौतम के मन मे कुतूहल हुआ और वे भगवान की आज्ञा ले उसे देखने के लिए उसके घर गए। गौतम का आगमन सुन मृगादेवी बाहर आई। वन्दना कर आगमन का कारण पूछा। गौतम ने कहा—'मैं तेरे पुत्र को देखने के लिए आया हू।' मृगावती ने भौंहरे का द्वार खोला और गौतम को अपना पुत्र दिखाया। गौतम उस अत्यन्त घृणास्पद प्राणी को देखकर आश्चर्यचकित रह गए। वे भगवान् के पास आए और पूछा—'भगवन् ! यह पिछले जन्म मे कौन था ?' भगवन् ने कहा—'पुराने जमाने मे विजयवर्द्धमान' नाम का एक खेट (क्षुद्र गाव) था। वहा मकायी नाम का राष्ट्रकूट[1] (गवर्नर) था। वह रिश्वत, भेट आदि लेता था। लोगो को वह बहुत पीडित करता था। एक बार वह अनेक रोगो से ग्रस्त हुआ और मर कर नरक गया। वहाँ से च्युत होकर वह यहा मृगावती के गर्भ मे पुत्ररूप मे उत्पन्न हुआ है। वह केवल लोदे के आकार का इन्द्रिय-विहीन और अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त है। यहा से मरकर वह पुन नरक मे जाएगा।

२. गोत्रास—हस्तिनागपुर मे भीम नाम का पशु चोर (कूटग्राह) रहता था। उसकी भार्या का नाम उत्पला था। एक बार वह गर्भवती हुई। तीन मास पूर्ण होने पर उसे पशुओ के विभिन्न अवयवों का मास खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। उसने अपने पति भीम से यह बात कही। पति ने उसे आश्वासन दिया। एक रात्रि मे वह भीम घर से निकला और नगर मे जहा गोबाडा था वहा आया। उसने अनेक पशुओं के विभिन्न अवयव काटे और घर आ उन्हे अपनी स्त्री को खिलाया। दोहद पूरा हुआ। नौ मास व्यतीत होने पर उसने एक पुत्र का प्रसव किया। जन्मते ही बालक जोर-जोर से चिल्लाने लगा। उसकी आवाज सुनकर अनेक पशु भयभीत हो, इधर-उधर दौडने लगे। माता-पिता ने उसका नाम 'गोत्रास'[2] रखा। युवा अवस्था मे उसने अनेक बार गोमास खाया, अनेक दुराचार सेवन किए और अनेक पशुओ के अवयवों से अपनी भूख शान्त की। इन पाप कर्मों से वह दूसरे नरक मे नारक के रूप मे उत्पन्न हुआ। वहा से च्युत होकर वह वाणिज्यग्राम नगर के सार्थवाह विजय की भार्या भद्रा के गर्भ मे आया। उसका नाम उज्झितक रखा गया। युवा अवस्था मे वह कामध्वज गणिका मे आसक्त हो गया। एक बार वह गणिका के साथ काम-भोग भोग रहा था। राजा भी वहा जा पहुंचा। उसने उज्झितक' को देखा। उसका क्रोध उभर आया। उसने उसे पकड कर खूब पीटा। तिल-तिल कर उसके मास का छेदन कर उसे खिलाया और चौराहे पर उसकी विडम्बना कर उसे मार डाला। मरकर वह नरक मे गया।

प्रस्तुत सूत्र मे इस अध्ययन का नाम पूर्वभव के नाम के आधार पर 'गोत्रास' रखा गया और विपाक सूत्र मे अगले भव के नाम के आधार पर उज्झितक रखा गया है।

३. अड—पुरिमतालपुर मे निन्नक नाम का एक व्यापारी रहता था। वह अनेक प्रकार के अडो का व्यापार करता था। उसके पुरुष जगल मे जाते और अनेक प्रकार के अडे चुरा ले आते थे। इस प्रकार निन्नक ने बहुत पाप संचित किए। मरकर वह नरक मे गया। वहा से निकलकर वह चोरो के सरदार विजय की पत्नी खडश्री के गर्भ मे आया। नौ मास पूर्ण होने पर खडश्री ने पुत्र का प्रसव किया। उसका नाम 'अभग्नसेन' रखा गया। युवा होने पर उसका विवाह आठ सुन्दर

---

१ विवागसुय पृष्ठ ८८ राष्ट्रकूट—A royal officer who is the head of the province is the Governer.

२ यहॉ 'गो' शब्द सामान्य पशुवाची है। इसका अर्थ है—पशुओं को त्रास देनेवाला।

कन्याओं से किया। पिता की मृत्यु के पश्चात् वह चोरों का अधिपति हुआ। वह लूट-खसोट करने लगा। जनता त्राहि-त्राहि करने लगी। पुरिमताल की जनता अपने राजा महाबल के पास गई और सारी बात कही। राजा ने युक्ति से अभग्नसेन को पकड़वाया। उसके तिल-तिल मास का छेदन कर उसे खिलाया और उसे उसी का रक्त पिलाकर उसकी कदर्थना की। वह मरकर नरक गया।

प्रस्तुत सूत्र मे अध्ययन का 'अड' नाम पूर्वभव के व्यापार के आधार पर किया गया है और विपाक सूत्र मे अग्रिम-भव के नाम के आधार पर 'अभग्नसेन' रखा है।

४ शकट—शाखाजनी नगर मे सुभद्रा नाम का सार्थवाह रहता था। उसकी भार्या का नाम भद्रा था। उसके पुत्र का नाम 'शकट' था। युवा अवस्था में वह सुदर्शना नाम की गणिका मे अनुरक्त हो गया। एक बार वहाँ के अमात्य सुषेण ने उसे वहां से भगा कर स्वयं सुदर्शना गणिका के साथ भोग भोगने लगा। एक बार शकट पुन: वहा आया और गणिका के साथ भोग भोगने लगा। अमात्य ने यह देखा। उसने गणिका और शकट को पकडवा कर मरवा डाला। वह नरक मे गया।

५. ब्राह्मण—प्राचीन काल मे सर्वतोभद्र नाम का नगर था। वहा जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। उसके पुरोहित का नाम महेश्वरदत्त था। राजा ने अपने शत्रुओं पर विजय पाने के लिए यज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञ मे अनेक ब्राह्मण नियुक्त किए गए। महेश्वरदत्त उसमे प्रमुख था। उस यज्ञ मे प्रतिदिन चारों वर्ण का एक-एक लडका, अष्टमी आदि मे दो-दो लडके, चातुर्मास मे चार-चार छह मास मे आठ-आठ और वर्ष मे सोलह-सोलह तथा प्रतिपक्ष की सेना आने पर आठ सौ-आठ सौ लडकों की बलि दी जाती थी। इस प्रकार का पाप-कर्म कर महेश्वरदत्त नरक मे उत्पन्न हुआ।

वहा से निकल कर वह कौशाम्बी नगरी मे सोमदत्त पुरोहित की भार्या वसुदत्ता के गर्भ मे पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ। उसका नाम बृहस्पतिदत्त रखा।

कुमार बृहस्पतिदत्त वहा से राजा उदयन का पुरोहित हुआ। यह रनिवास मे आने-जाने लगा। उसके लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं था। एक बार राजा ने उसे पद्मावती रानी के साथ सहवास करते देख लिया। अत्यन्त क्रुद्ध होकर राजा ने उसे मरवा डाला।

६. नंदीषेण—प्राचीन काल मे सिंहपुर नाम का नगर था। वहा सिंहरथ राजा राज्य करता था। दुर्योधन उसका काराध्यक्ष था। वह चोरों को बहुत कष्ट देता था और उन्हे विविध प्रकार की यातनाए देता था। उस क्रूरता के कारण वह मरकर नरक मे गया।

वहा से निकल कर वह मथुरा नगरी के राजा श्रीदाम के यहा पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ। उसका नाम नदिषेण (नदिवर्द्धन) रखा। एक बार उसने राजा को मारकर स्वय राजा बनने का षडयत्र रचा। षडयत्र का पता लगने पर राजा ने उसे राजद्रोह के अपराध के कारण दंडित किया। राजा ने उसे पकडवाकर नगर के प्रमुख चौराहे पर भेजा। वहा राज-पुरुषों ने उसे गरम पिघले हुए लोहे से स्नान कराया; गरम सिंहासन पर उसे बिठाया और क्षारतेल से उसका अभिषेक किया और मरकर नरक मे गया।

७. शौरिक—पुराने जमाने मे नदीपुर नाम का नगर था। वहा मित्र नाम का राजा राज्य करता था। उसके रसोइए का नाम श्रीक था। वह हिंसा मे रत, मासप्रिय और लोलुपी था। मरकर वह नरक मे गया।

वहा से निकलकर वह शौरिक नगर मे शौरिकदत्त नाम का मछुआ हुआ। उसे मछलियो का मास बहुत प्रिय था। एक बार उसके गले मे मछली का काटा अटक गया। उसे अतुल वेदना हुई। उस तीव्र वेदना मे मरकर वह नरक मे गया।

विपाक सूत्र में यह आठवा अध्ययन है और सातवा अध्ययन है—'उंबरदत्त'।

८. उंबरदत्त—प्राचीन काल में विजयपुर नगर मे कनकरथ नाम का राजा राज्य करता था। उसके वैद्य का नाम धन्वन्तरी था। वह मांसप्रिय और मास खाने का उपदेश देता था। मरकर वह नरक मे गया।

वहां से निकलकर वह पाडलीषण्ड नगर के सार्थवाह सागरदत्त के यहा पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ। उसका नाम उदुम्बर

रखा। एक बार उसे सोलह रोग[1] हुए। उनकी तीव्र वेदना से मरकर वह नरक में गया।

९. सहस्सोद्दाह—प्राचीन समय मे सुप्रतिष्ठ नगर में सिंहसेन नाम का राजा राज्य करता था। उसके पांच सौ रानियां थी। वह श्यामा नाम की रानी मे बहुत आसक्त था। इससे अन्य ४९९ रानियो की माताओं ने श्यामा को मार डालने का षड्यन्त्र रचा। राजा सिंहसेन को इस षड्यन्त्र का पता चला। उसने अपने नगर के बाहर एक बड़ा घर बनवाया। उसमें खान-पान की सारी सुविधाए रखी। एक दिन उसने उन ४९९ रानी-माताओं को आमन्त्रित किया और उस घर मे ठहराया। जब सब आ गई तब उसने उस घर मे आग लगवा दी। सब जल कर राख हो गई। राजा मरकर नरक में गया।

वहा से निकल कर वह जीव रोहितक नगर मे दत्तसार्थवाह के घर पुत्री के रूप मे उत्पन्न हुआ। उसका नाम देवदत्त रखा गया। पुष्पनदी राजा के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ। राजा पुष्पनदी अपनी माता का बहुत विनीत था। वह हर समय उसकी भक्ति करता और उसी के कार्य मे रत रहता था। देवदत्ता ने अपनी सास को अपने आनन्द मे विघ्न समझकर उसे मार डाला। राजा को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ। उसने विविध प्रकार से देवदत्ता की कदर्थना कर उसे मरवा डाला।

सैकड़ो व्यक्तियो को एक साथ जला देने के कारण, अथवा सहसा अग्नि लगाकर जला देने के कारण उसका नाम 'सहस्सोद्दाह' अथवा सहसोदाह है।

इस कथानक की मुख्य नायिका देवदत्ता होने के कारण विपाक सूत्र मे इस अध्ययन का नाम 'देवदत्ता' है।

१० कुमार लिच्छई—प्राचीन समय मे इन्द्रपुर नगर मे पृथिवीश्री नाम की गणिका रहती थी। वह अनेक राजकुमारो और वणिक् पुत्रों को मंत्र आदि से वशीभूत कर उसके साथ भोग भोगती थी। वह मरकर छठी नरक मे गई। वहा से निकल कर वह वर्द्धमान नगर के सार्थवाह धनदेव के घर पुत्री के रूप मे उत्पन्न हुई। उसका नाम अजू रखा। उसका विवाह राजा विजय के साथ हुआ। वह कुछ वर्ष जीवित रही और योनिशूल से मृत्यु को प्राप्त कर नरक मे गई।

इस अध्ययन का नाम 'कुमार लिच्छई' मीमासनीय है। प्रस्तुत सूत्र मे इसका नाम लिच्छवी कुमारो के आधार पर रखा गया है। विपाक सूत्र मे इसका नाम 'अजू' है। जो कथानक की मुख्य नायिका है। इन सबका विस्तृत विवरण विपाक सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध से जानना चाहिए।

४७ (सू० ११२)

भगवान् महावीर के दस प्रमुख श्रावक थे। उनका पूरा विवरण उपासकदशा सूत्र मे प्राप्त है। संक्षेप में वह इस प्रकार है—

१. आनन्द—यह वाणिज्यग्राम [बनियाग्राम] मे रहता था। यह अतुल वैभवशाली और साधन-सम्पन्न था। भगवान् महावीर से बोधि प्राप्त कर इसने बारह व्रत स्वीकार किए तदनन्तर श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं सम्पन्न की। उसे अवधिज्ञान प्राप्त हुआ। गौतम गणधर ने इस पर विश्वास नहीं किया और वे आनन्द से इस विषय में विवाद कर बैठे। भगवान् ने गौतम को आनन्द से क्षमायाचना करने के लिए भेजा।

२. कामदेव—यह चम्पानगरी का वासी श्रावक था। एक देवता ने इसकी धर्म-दृढता की परीक्षा करने के लिए उपसर्ग किए। यह अविचलित रहा।

---

१ सोलह रोग ये हैं—

१ श्वास, २ खासी, ३ ज्वर, ४ दाह, ५ उदरशूल, ६ भगदर, ७ अर्श, ८ अजीर्ण, ९ भ्रमापन, १० शिर शूल, ११ अरुचि, १२ अक्षिवेदना, १३ कर्णवेदना, १४ खुजली, १५. जलोदर, १६ कोढ़।

३. चुलनीपिता—यह वाराणसी [बनारस] का वासी धनाढ्य श्रावक था। एक बार यह भगवान् के पास धर्म प्रवचन सुन प्रतिबुद्ध हुआ। बारह व्रत स्वीकार किए। तत्पश्चात् प्रतिमाओं का वहन किया।

एक बार पूर्वरात्र में उसके सामने एक देव प्रकट हुआ और अपनी प्रतिज्ञाओं का त्याग करने के लिए कहा। चुलनीपिता ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। तब देव ने उसकी दृढ़ता की परीक्षा करने के लिए उसके सामने उसके छोटे-बड़े पुत्रों को मार डाला। अन्त में देवता ने उसकी माता को मार डालने की धमकी दी। तब चुलनीपिता अपने व्रत से विचलित हो गया और उसको पकड़ने के लिए दौड़ा। देव आकाशमार्ग से उड़ गया। चुलनीपिता के हाथ में केवल खम्भा आया और वह जोर से चिल्ला उठा। यथार्थता का ज्ञान होने पर उसने अतिचार की आलोचना की।

४. सुरादेव—यह वाराणसी में रहने वाला श्रावक था। इसकी पत्नी का नाम धन्ना था। इसने भगवान् महावीर से श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किए। एक बार वह पौषध में स्थित था। अर्द्ध रात्रि के समय एक देव प्रकट हुआ और बोला—'देवानुप्रिय ! यदि तू अपने व्रतों को भंग नहीं करेगा तो मैं तेरे सभी पुत्रों को मारकर उबलते हुए तेल की कड़ाही में डाल दूंगा और एक साथ सोलह रोग उत्पन्न कर तुझे पीड़ित करूंगा।' यह सुन सुरादेव विचलित हो गया और वह उसे पकड़ने दौड़ा। देव अन्तर्हित हो गया। वह चिल्लाने लगा। यथार्थ ज्ञात होने पर उसने आलोचना कर शुद्धि की।

५. चुल्लशतक—यह आलंभीनगरी का वासी था। एक बार यह पौषधशाला में पौषध कर रहा था। एक देव ने उसे धर्म छोड़ने के लिए कहा। चुल्लशतक अपने धर्म में दृढ़ रहा। जब देवता उसका सारा धन अपहरण कर ले जाने लगा तब वह च्युत हुआ और उसे पकड़ने दौड़ा। अन्त में देवमाया को समझ वह आश्वस्त हुआ। वह प्रायश्चित्त ले शुद्ध हुआ।

६. कुण्डकोलिक—यह कांपिल्यपुर का वासी श्रावक था। एक बार वह मध्याह्न में अशोकवन में आया और शिलापट्ट पर बैठ धर्मध्यान में स्थित हो गया। उस समय एक देव आया और उसे गोशालक का मत स्वीकार करने के लिए कहा—कुण्डकोलिक ने इसे अस्वीकार कर डाला। वाद-विवाद हुआ। अन्त में देव पराजित होकर चला गया। कुण्डकोलिक अपने सिद्धान्त पर बहुत ही दृढ़ हुआ।

७. सद्दालपुत्त—यह पोलासपुर का निवासी कुम्भकार आजीवक मत का अनुयायी था। एक बार मध्याह्न के समय अशोकवन में धर्म्यध्यान में स्थित था। उस समय एक देव प्रगट होकर बोला—'कल यहां त्रिकालज्ञाता, केवलज्ञानी और केवलदर्शनी महामानव आयेंगे। तुम उनकी भक्ति करना। दूसरे दिन भगवान् महावीर वहां आये। वह उनके दर्शन करने गया और प्रतिबुद्ध हो उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। गोशालक को यह बात मालूम हुई। वह पुनः उसे अपने मत में लाने के लिए प्रयास करने लगा। शकडाल तनिक भी विचलित नहीं हुआ।

एक बार वह प्रतिमा में स्थित था। एक देव उसकी दृढ़ता की परीक्षा करने आया और उसकी भार्या को मार डालने की बात कही। उससे डरकर वह व्रतच्युत हो गया।

८. महाशतक—यह राजगृह नगर का निवासी श्रावक था। इसके तेरह पत्नियां थीं। इसकी प्रधान पत्नी रेवती ने अपनी बारह सौतों को मार डाला।

एक बार महाशतक पौषध कर रहा था। रेवती वहां आई और कामभोग की प्रार्थना करने लगी। महाशतक ने उसे कोई आदर नहीं दिया।

एक बार वह श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का पालन कर रहा था। उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। इसी बीच रेवती पुनः वहां आई और उसने भोग की प्रार्थना की, किन्तु वह विचलित नहीं हुआ।

९. नन्दिनीपिता—यह श्रावस्ती का निवासी श्रावक था। चौदह वर्ष तक श्रावक के व्रतों का पालन कर पन्द्रहवें वर्ष में वह गृहस्थी से विलग हो धर्म्य-ध्यान में समय बिताने लगा। उसने बीस वर्ष पर्यन्त श्रावक-पर्याय का पालन किया।

१०. लेयिकापिता—यह श्रावस्ती नगरी का निवासी था। इसने बीस वर्ष पर्यन्त श्रावक-पर्याय का पालन किया।

४८. (सू० ११३)

प्रस्तुत सूत्र में अन्तकृतदशा के दस अध्ययनों के नाम दिये गये हैं।

वर्तमान में उपलब्ध इस सूत्र के आठ वर्ग हैं। पहले दो वर्गों मे दस-दस, तीसरे मे तेरह, चौथे-पांचवें में दस-दस, छठें में सोलह, सातवें मे तेरह और आठवें मे दस अध्ययन है।

वृत्तिकार के अनुसार नमि आदि दस नाम प्रथम दस अध्ययनों के नाम हैं। ये नाम अन्तकृत साधुओं के हैं, किन्तु वर्तमान मे उपलब्ध अन्तकृतदशा के प्रथम वर्ग के अध्ययन-संग्रह मे ये नाम नही पाए जाते। वहां इनके बदले ये नाम उपलब्ध होते हैं—

१. गौतम, २. समुद्र, ३ सागर, ४ गम्भीर, ५. स्तिमित,
६ अचल, ७ कापिल्य, ८ अक्षोम्य, ९. प्रसेनजित्, १०. विष्णु।

इसलिए सम्भव है कि प्रस्तुत सूत्र के नाम किसी दूसरी वाचना के हैं। ये नाम जन्मान्तर की अपेक्षा से भी नहीं होने चाहिए, क्योंकि उनके विवरणो मे जन्मान्तरों का कथन नही हुआ है[1]।

छठे वर्ग के सोलह उद्देशको मे 'किंकर्म' और 'सुदर्शन' ये दो नाम आए है। ये दोनों यहां आए हुए आठवें और पांचवें नाम से मिलते हैं। चौथे वर्ग मे जाली और मयाली नाम आये है जो कि प्रस्तुत सूत्र मे जमाली और भगाली से बहुत निकट हैं।

तत्त्वार्थवार्तिक मे अन्तकृतदशा के विषयवस्तु के दो विकल्प प्रस्तुत है—(१) प्रत्येक तीर्थंकर के समय मे होने वाले उन दस-दस केवलियो का वर्णन है जिन्होने दस-दस भीषण उपसर्ग सहन कर सभी कर्मों का अन्त कर अन्तकृत हुए थे।

(२) इसमे अर्हत् और आचार्यों की विधि तथा सिद्ध होने वालो की अन्तिम विधि का वर्णन है। महावीर के तीर्थ मे अन्तकृत होने वालो के दस नाम ये है—नमि, मतग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलीक, किष्कम्बल, पाल और अम्बष्ठपुत्र[2]। प्रस्तुत सूत्र के कुछ नाम इनसे मिलते हैं।

४९. [सू० ११४]

अनुत्तरोपपातिक दशा के तीन वर्ग हैं। प्रथम वर्ग मे दस, दूसरे मे तेरह और तीसरे में दस अध्ययन है।

प्रस्तुत सूत्र मे दस अध्ययनों के नाम है—ये सम्भवत तीसरे वर्ग के होने चाहिए। वर्तमान मे उपलब्ध अनुत्तरोपपातिक सूत्र के तीसरे वर्ग के दस अध्ययनो के प्रथम तीन नाम प्रस्तुत सूत्र के प्रथम तीन नामो से मिलते हैं। उनमें क्रम-भेद अवश्य है। शेष नाम नही मिलते। उपलब्ध अनुत्तरोपपातिक के तीसरे वर्ग के दस अध्ययनो के नाम इस प्रकार हैं—

१ धन्य, २ सुनक्षत्र, ३ ऋषिदास, ४ पेल्लक, ५ रामपुत्र,
६ चन्द्रमा, ७. प्रोष्ठक[3] ८ पेढालपुत्र, ९. पोट्टिल, १०. विहल्ल [वेहल्ल]।

प्रस्तुत सूत्र के नाम तथा अनुत्तरोपपातिक के नाम किन्हीं दो भिन्न-भिन्न वाचनाओ के होने चाहिए।

तत्त्वार्थराजवार्तिक मे ये दस नाम इस प्रकार है—ऋषिदास, वान्य,[4] सुनक्षत्र, कार्तिक, नन्द, नन्दन, शालिभद्र, उभय, वारिषेण और चिलातपुत्र। विषयवस्तु के दो विकल्प हैं—

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८३ इह चाष्टौ वर्गास्तत्र प्रथमवर्गे दशाध्ययनानि, तानि चामूनि—'नमी' त्यादि सार्द्ध रूपकम्, एतानि च नमीत्यादिकान्यन्तकृत्साधुनामानि अन्तकृद्दशाङ्ग प्रथमवर्गेऽध्ययनसंग्रहेनोपलभ्यन्ते यतस्तत्राभिधीयते—

"गोयम, १ समुद्द, २ सागर, ३ गभीरे, ४ चेव होइ थिमिए, ५ य।

अयले ६ कंपिल्ले ७ खलु अक्खोभ ८ पसेणई ९ विण्हू १०॥ इति ततो वाचनान्तरापेक्षाणीमानीति सम्भावयाम:, न च जन्मान्तरनामापेक्षयैतानि, भविष्यन्तीति वाच्यं, जन्मान्तराणा तत्रानभिधीयमानत्वादिति॥

२ तत्त्वार्थराजवार्तिक १।२०।

३ वृत्तिकार ने 'पोट्टिके इय' पाठ मानकर उसका संस्कृत रूप 'प्रोष्ठक इति' दिया है। प्रकाशित पुस्तक मे 'पिट्टिमाइय' पाठ और उसका अर्थ 'पृष्टिमातृक' मिलता है।

४. इसके स्थान पर 'धन्य' पाठान्तर दिया हुआ है। वस्तुत: मूलपाठ धन्य ही होना चाहिए। ऐसा होने पर दोनों परम्पराओं मे एक ही नाम हो जाता है।

१. महावीर के तीर्थ से अनुत्तरोपपातिक विमानों मे उत्पन्न होने वाले दस मुनियों का वर्णन।

२. अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले जीवों का आयुष्य, विक्रिया आदि का वर्णन[1]।

दस मुमुक्षुओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. ऋषिदास—यह राजगृह का निवासी था। इसकी माता का नाम भद्रा था। इसने ३२ कन्याओ के साथ विवाह किया तथा प्रव्रज्या ग्रहण कर, मासिक संलेखना से देहत्याग कर सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न हुआ।

२. धन्य—काकंदी में भद्रा नामक सार्थवाह रहती थी। उसके एक पुत्र था। उसका नाम था धन्य। उसका विवाह ३२ कन्याओं के साथ हुआ। भगवान् महावीर से धर्म श्रवण कर वह दीक्षित हो गया। प्रव्रज्या लेकर वह तपोयोग मे सलग्न हो गया। उसने बेले-बेले (दो-दो दिन के उपवास) की तपस्या और पारणं मे आचाम्ल प्रारंभ किया। विकट तपस्या के कारण उसका शरीर केवल ढाचा मात्र रह गया। एक बार भगवान् महावीर ने मुनि धन्य को अपने चौदह हजार शिष्यो मे 'दुष्कर करनी' करने वाला बताया।

३. सुनक्षत्र—यह काकदी का निवासी था। इसकी माता का नाम भद्रा था। भगवान् महावीर से प्रव्रज्या ग्रहण कर इसने ग्यारह अंगो का अध्ययन किया और अनेक वर्षों तक श्रामण्य का पालन किया।

४. कार्तिक—भगवती १८।३८-५८ मे हस्तिनागपुरवासी कार्तिकसेठ का वर्णन है। उसने प्रव्रज्या ग्रहण की और वह मरकर सौधर्म कल्प मे उत्पन्न हुआ। वृत्तिकार का कथन है कि वह कोई अन्य है और प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित कार्तिक कोई दूसरा होना चाहिए।[2] इसका विवरण प्राप्त नही है।

५ सट्ठाण [स्वस्थान]—विवरण अज्ञात है।

६ शालिभद्र—यह राजगृह का निवासी था। इसके पिता का नाम गोभद्र और माता का नाम भद्रा था। शालिभद्र ने ३२ कन्याओ के साथ विवाह किया और बहुत ऐश्वर्यमय जीवन जीया। इसके पिता गोभद्र मरकर देवयोनि मे उत्पन्न हुए और शालिभद्र के लिए विविध भोग-सामग्री प्रस्तुत करने लगे।

एक बार नेपाल का व्यापारी रत्नकंबल बेचने वहा आया। उनका मूल्य अधिक होने के कारण किसी ने उन्हे नही खरीदा। राजा ने भी उन्हे खरीदने से इन्कार कर दिया।

हताश होकर व्यापारी अपने देश लौट रहा था। भद्रा ने सारे कबल खरीद लिए। कबल सोलह थे और भद्रा की पुत्र-वधुए ३२ थी। उसने कबलो के बत्तीस टुकड़े कर उन्हें पोंछने के लिए दे दिए।

राजा ने यह बात सुनी। वह कुतूहलवश शालिभद्र को देखने आया। माता ने कहा—'पुत्र! तुम्हें देखने स्वामी घर आए हैं।' स्वामी की बात सुन उसे वैराग्य हुआ और जब भगवान् महावीर राजगृह आए तब वह दीक्षित हो गया।

प्रस्तुत सूत्र मे इसी शालिभद्र का उल्लेख होना सभव है, किन्तु उपलब्ध अनुत्तरोपपातिक सूत्र मे इस नाम का अध्ययन प्राप्त नही है। तत्त्वार्थवार्तिक से भी अनुत्तरोपपातिक के 'शालिभद्र' नामक अध्ययन की पुष्टि होती है।[3]

७. आनद—भगवान् के एक शिष्य का नाम 'आनद' था। वह बेले-बेले की तपस्या करता था। एक बार वह पारणा के दिन गोचरी के लिए निकला। गोशाल ने उससे बातचीत की। भिक्षा से निवृत्त हो आनंद भगवान् के पास आया और सारी बातें उन्हे कही।

इसका विशेष विवरण प्राप्त नही है।

आनद नामक मुनि का एक उल्लेख निरयावलिका के 'कप्पवडिसिया' के नौवें अध्ययन मे प्राप्त होता है। किन्तु वहाँ उसे दशवें देवलोक मे उत्पन्न माना है तथा महाविदेह क्षेत्र मे सिद्ध होने की बात कही है। अत: यह प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित आनंद से भिन्न है।

८. तेतली—ज्ञाताधर्मकथा [१।१४] मे तेतलीपुत्र के दीक्षित होने और सिद्धगति प्राप्त करने की बात मिलती है।

---

१. तत्त्वार्थराजवार्तिक १।२०।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८३ : यो भगवत्या श्रूयते सोऽन्य एव अय पुनरन्योऽनुत्तर सुरेषूपपन्न इति।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८३ सोऽयमिह सम्भाव्यते, केवलमनुत्तरोपपातिकाङ्गे नाधीत इति।

प्रस्तुत सूत्र में उल्लिखित 'तेतली' से यह भिन्न है। इसका विशेष विवरण प्राप्त नहीं है।[1]

९. दशार्णभद्र—दशार्णपुर नगर के राजा का नाम दशार्णभद्र था। एक बार भगवान् महावीर वहां आए। राजा अपने ठाट-बाट के साथ दर्शन करने गया। उसे अपनी ऋद्धि और ऐश्वर्य पर बहुत गर्व था। इन्द्र ने इसके गर्व को नष्ट करने की बात सोची। इन्द्र भी अपनी ऋद्धि के साथ भगवान् को वन्दन करने आया। राजा दशार्णभद्र ने इन्द्र की ऋद्धि देखी। उसे अपनी ऋद्धि क्षीण प्रतीत हुई। वैराग्य बढा और वह वहीं भगवान् के पास दीक्षित हो गया।

प्रस्तुत सूत्र में उल्लिखित यही दशार्णभद्र होना चाहिए। अनुत्तरोपपातिक सूत्र में इसका नामोल्लेख नहीं है। कहीं-कहीं इसके सिद्धगति प्राप्त करने का उल्लेख भी मिलता है।[2]

१०. अतिमुक्तक—पोलासपुर नगर में विजय नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम 'श्री' था। उसके पुत्र का नाम अतिमुक्तक था। जब वह छह वर्ष का था, तब एक बार गणधर गौतम को भिक्षा-चर्या के लिए घूमते देखा। वह उनकी अंगुली पकड अपने घर ले गया। भिक्षा दी और उनके साथ-साथ भगवान् के पास आ दीक्षित हो गया।

उपर्युक्त विवरण अन्तकृतदशा के छठे वर्ग के पन्द्रहवें अध्ययन मे प्राप्त है।

प्रस्तुत सूत्र का अतिमुक्तक मुनि मरकर अनुत्तरोपपातिक मे उत्पन्न होता है। अत. दोनो दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति होने चाहिए।[3]

अनुत्तरोपपातिक सूत्र के तीनो वर्गों में कही भी इसका उल्लेख नही है।

५०. (सू० ११५)

प्रस्तुत सूत्र में दशाश्रुतस्कध के दस अध्ययनो के विषयो का सूचन है। इनमे से कई एक विषय समवायाग मे भी आए हैं।

१. बीस असमाधिस्थान	समवाय २०
२. इक्कीस सबल	समवाय २१
३. तेतीस आशातना	समवाय ३३
४. दस चित्तसमाधिस्थान	समवाय १०
५ ग्यारह उपासक-प्रतिमा	समवाय ११
६. बारह भिक्षु-पतिमा	समवाय १२
७. तीस मोहनीय स्थान	समवाय ३०

दशाश्रुतस्कध गत इन विषयो के विवरणो मे तथा समवायाग गत विवरणों मे कहीं-कहीं क्रम-भेद, नाम-भेद तथा व्याख्या-भेद प्राप्त होता है। इन सबकी स्पष्ट मीमासा हम समवायाग सूत्र के सानुवाद सस्करण मे तत्-तत् समवाय के अन्तर्गत कर चुके है।

१ असमाधिस्थान—असमाधि का अर्थ है—अप्रशस्तभाव। जिन क्रियाओ से असमाधि उत्पन्न होती है वे असमाधिस्थान है। वे बीस है।

देखें—समवायाग, समवाय २०।

२ शबल—जिस आचरण द्वारा चरित्र धब्बों वाला होता है, उस आचरण या आचरणकर्ता को 'शबल' कहा जाता है। वे इक्कीस है।

देखें—समवायाग. समवाय २१।

---

१. स्थानागवृत्ति, पत्र ४८३ तेतलिसुत इति यो ज्ञाताध्ययनेषु श्रूयते, स नाय, तस्य सिद्धिगमनश्रवणात्।

२ स्थानागवृत्ति, पत्र ४८४ : सोऽय दशार्णभद्र सम्भाव्यते, परमनुत्तरोपपातिकागे नाधीत, क्वचित् सिद्धश्च श्रूयते इति।

३ स्थानागवृत्ति, पत्र ४८४ : इह त्वयमनुत्तरोपपातिकेषु दशमाध्ययनतयोक्तस्तदपर एवाय भविष्यतीति।

३. आशातना—जिन क्रियाओं से ज्ञान आदि गुणों का नाश किया जाता है, उन्हे आशातना कहते है। अशिष्ट और उद्दंड व्यवहार भी इसी के अन्तर्गत है। आशातना के तेतीस प्रकार हैं।

देखें—समवायांग, समवाय ३३।

४. गणि संपदा—इसका अर्थ है—आचार्य की अतिशायी विशेषताए अर्थात् आचार्य के आचार, ज्ञान, शरीर, वचन आदि विशेष गुण।

५. चित्त-समाधि—इसका अर्थ है—चित्त की प्रसन्नता। इसकी विद्यमानता मे चित्त की प्रशस्त परिणति होती है।

देखें—समवायांग, समवाय १०।

६. उपासक-प्रतिमा—श्रावको के विशेष व्रत।

देखें —समवायाग, समवाय ११।

७. भिक्षु-प्रतिमा—मुनियों के विशेष अभिग्रह।

देखें—समवायाग, समवाय १२।

८. पर्युषणाकल्प—मूल प्राकृत शब्द है 'पज्जोसवणाकप्प'।

वृत्तिकार ने 'पज्जोसवणा' के तीन संस्कृत रूप दिये हैं—

(१) पर्यासवना—जिससे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव संबंधी ऋतुबद्ध-पर्यायों का परित्याग किया जाता है।

(२) पर्युपशमना—जिसमे कषायो का उपशमन किया जाता है।

(३) पर्युषणा—जिसमे सर्वथा एक क्षेत्र मे जघन्यत: सतरह दिन और उत्कृष्टत: छह मास रहा जाता है।[1]

९. मोहनीयस्थान—मोहनीय कर्म बंध की क्रियाए। ये तीस हैं।

देखें—समवायाग, समवाय ३०।

१०. आजातिस्थान—आजाति का अर्थ है—जन्म। वह तीन प्रकार का होता है—सम्मूर्छन, गर्भ और उपपात।

५१. (सू० ११६)

स्थानाग मे निर्दिष्ट प्रश्नव्याकरण का स्वरूप वर्तमान में उपलब्ध प्रश्नव्याकरण से सर्वथा भिन्न है।[2]

प्रस्तुत सूत्र में उल्लिखित दस अध्ययनो के नामों से समूचे सूत्र के विषय की परिकल्पना की जा सकती है। इस सूत्र में प्रश्न-विद्याओ का प्रतिपादन था। इन विद्याओं के द्वारा वस्त्र, काच, अगुष्ठ, हाथ आदि-आदि मे देवता को बुलाया जाता था और उससे अनेक विध प्रश्न हल किए जाते थे।[3]

इस विवरण वाला सूत्र कब लुप्त हुआ यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता और वर्तमान रूप का निर्माण किसने, कब किया यह भी स्पष्ट नही है। यह तो निश्चित है कि वर्तमान मे उपलब्ध रूप 'प्रश्नव्याकरण' नाम का वाहक नही हो सकता।

उपलब्ध प्रश्नव्याकरण के अध्ययन ये हैं—

१. प्राणातिपात	६. प्राणातिपात विरमण
२. मृषावाद	७. मृषावाद विरमण
३. अदत्तादान	८. अदत्तादान विरमण
४. मैथुन	९. मैथुन विरमण
५. परिग्रह	१०. परिग्रह विरमण

दिगंबर साहित्य मे भी प्रश्नव्याकरण का वर्ण्य-विषय वही निर्दिष्ट है जिसका निर्देश यहा किया गया है।[4]

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८५।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८५ : प्रश्नव्याकरणदशा इहोक्तरूपा न दृश्यन्ते दृश्यमानास्तु पञ्चाश्रवपञ्चसंवरात्मिका इति।

३. स्थानागवृत्ति, पत्र ४८५ प्रश्नविद्या: यकाभि: क्षौमकादिषु देवतावतार: क्रियते इति।

४. तत्वार्थवार्तिक १।२०।

५२, ५३, ५४ (सू० ११७-११९)

वृत्तिकार ने बंधदशा के विषय मे लिखा है कि वह श्रौत-अर्थ से व्याख्येय है।[1] द्विगृद्धिदशा और दीर्घदशा को उन्होंने स्वरूपतः अज्ञात बतलाया है और दीर्घदशा के अध्ययनों के विषय मे कुछ सभावनाएं प्रस्तुत की हैं।[2] नदी की आगम सूची में भी इनका उल्लेख नही है। दीर्घदशा में आये हुए कुछ अध्ययनो का निरयावलिका के कुछ अध्ययनो के नाम साम्य है। जैसे—

दीर्घदशा	निरयावलिका
चन्द्र	चन्द्र [तीसरा वर्ग पहला अध्ययन]
सूर्य	सूर्य [,, ,, दूसरा अध्ययन]
शुक्र	शुक्र [,, ,, तीसरा अध्ययन]
श्रीदेवी	श्रीदेवी [चौथा वर्ग पहला अध्ययन]
प्रभावती	
द्वीपसमुद्रोपपत्ति	
बहुपुत्रीमदरा	बहुपुत्रिका [तीसरा वर्ग चौथा अध्ययन]
संभूतविजय	
पक्ष्म	
उच्छ्वास निःश्वास	

वृत्तिकार ने निरयावलिका के नाम-साम्य वाले पाच तथा अन्य दो अध्ययनों का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने के बाद शेष तीन अध्ययनो को [छठा द्वीपसमुद्रोपपत्ति, नौवा स्थविर पक्ष्म तथा दसवा उच्छ्वासनिःश्वास] 'अप्रतीत' कहा है—शेषाणि त्रीण्यप्रतीतानि।[3]

उनके अनुसार सात अध्ययनो का विवरण इस प्रकार है—

१. चन्द्र—एक बार भगवान् महावीर राजगृह मे समवसृत थे। ज्योतिष्कराज चन्द्र वहा आया। भगवान् को वदन कर, नाट्य-विधि का प्रदर्शन कर चला गया। गणधर गौतम ने भगवान् से उसके विषय मे पूछा। तब भगवान् बोले—यह पूर्वभव मे श्रावस्ती नगरी मे अगजित् नाम का श्रावक था। यह पार्श्वनाथ के पास दीक्षित हुआ। श्रामण्य की एक बार विराधना की। वहा से मरकर यह चन्द्र हुआ है।

२. सूर्य—यह पूर्व भव में श्रावस्ती नगरी मे सुप्रतिष्ठित नाम का श्रावक था। इसने भी पार्श्वनाथ के पास संयम ग्रहण किया, किन्तु उसे कुछ विराधित कर सूर्य हुआ।

३. शुक्र—एक बार शुक्र ग्रह राजगृह मे भगवान् को वंदना कर लौटा। गौतम के पूछने पर भगवान् ने कहा—'यह पूर्व भव मे वाराणसी मे सोमिल नामक ब्राह्मण था। एक बार यह लौकिक धर्म-स्थानों का निर्माण करा कर 'दिक्प्रोक्षक' तापस बना। विविध तप करने लगा। एक बार इसने यह प्रतिज्ञा की कि जहां कहीं मैं गड्ढे मे गिर जाऊंगा वहीं प्राण छोड़ दूंगा। इस प्रतिज्ञा को ले, काष्ठमुद्रा से मुह को बाध उत्तर दिशा की ओर इसने प्रस्थान किया। पहले दिन एक अशोक वृक्ष के नीचे होम आदि से निवृत्त हो बैठा था। एक देव ने वहा आवाज दी—'अहो सोमिल ब्राह्मण महर्षे! तुम्हारी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है।' पाच दिन तक भिन्न-भिन्न स्थानों मे यही आवाज सुनायी दी। पाचवें दिन इसने देव से पूछा—मेरी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८५ बन्धदशानामपि बन्धाद्यध्ययनानि श्रौतेनार्थेन व्याख्यातव्यानि।

२ वही, पत्र ४८५ द्विगृद्धिदशाश्चस्वरूपतो ऽप्यनवसिता। दीर्घदशा स्वरूपतोऽवगता एव, तदध्ययनानि तु कानिचिन्नरकावलिकाश्रुतस्कन्धे उपलभ्यन्ते।

३ वही, वृत्ति पत्र ४८६।

क्यों है ? देव ने कहा—'तूने अपने गृहीत अणुव्रतों की विराधना की है। अभी भी तू पुन: उन्हे स्वीकार कर।' तापस ने वैसे ही किया। श्रावकत्व का पालन कर वह शुक्र देव हुआ है।

४. श्रीदेवी—एक बार श्रीदेवी सौधर्म देवलोक से भगवान् महावीर को वंदना करने राजगृह मे आई। नाटक दिखाकर जब वह लौट गई तब गौतम ने इसके पूर्वभव के विषय में पूछा। भगवान् ने कहा—'इस राजगृह में सुदर्शन सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम 'प्रिया' था। उसकी सबसे बड़ी पुत्री का नाम 'भूता' था। वह पार्श्वनाथ के पास प्रव्रजित हुई, किन्तु उसका अपने शरीर के प्रति बहुत ममत्व था। वह उसकी सार-सभाल मे लगी रहती थी। उसने अतिचार की आलोचना नही की। मरकर वह देवलोक मे उत्पन्न हुई।

५. प्रभावती—यह चेटक महाराजा की पुत्री थी। इसका विवाह वीतभयनगर के राजा उद्रायण के साथ हुआ। यह निरयावलिका सूत्र मे उपलब्ध नही है।

६. बहुपुत्रिका—यह सौधर्म देवलोक से भगवान् को वंदना करने राजगृह मे आई। भगवान् ने इसका पूर्वभव बताते हुए कहा—'वाराणसी नगरी मे भद्र नाम का सार्थवाद रहता था। उसकी यह भार्या यह सुभद्रा थी। यह वध्या थी। इसके मन मे सतान की प्रबल इच्छा रहती थी। एक बार कई साध्विया इसके घर भिक्षा लेने आईं। इसने पुत्र-प्राप्ति का उपाय पूछा। उन्होंने धर्म की बात कही। वह प्रव्रजित हो गई। दीक्षित हो जाने पर भी वह दूसरो की सन्तानो की देख-रेख में दिलचस्पी लेने लगी। इस अतिचार का उसने सेवन किया। मरकर वह सौधर्म मे देवी हुई।

७. स्थविर सभूतविजय—ये भद्रबाहु स्वामी के गुरुभ्राता और स्थूलभद्र तथा शकडालपुत्र के दीक्षा-गुरु थे।

५५ (सू० १२०)

वृत्तिकार ने सक्षेपिकदशा सूत्र के स्वरूप को अज्ञात माना है।[1]

नदीसूत्र मे कालिक-श्रुत की सूची मे इन सभी अध्ययनों के नाम मिलते है।[2]

ऐसा प्रतीत होता है कि नदी मे प्राप्त दस ग्रन्थों का एक श्रुतस्कध के रूप मे संकलन कर उन्हे अध्ययनो का रूप दिया गया है।

१. क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति—

२. महतीविमानप्रविभक्ति—जिस ग्रन्थपद्धति मे आवलिका मे प्रविष्ट तथा इतर विमानो का विभाजन किया जाता है उसे विमानप्रविभक्ति कहा जाता है।[3] ग्रन्थ के छोटे और बडे रूप के कारण इन्हे 'क्षुल्लिका' और 'महती' कहा गया है।

३. अगचूलिका—आचार आदि अगो की चूलिका।

४. वर्गचूलिका—अन्तकृतदशा की चूलिका।

५. व्याख्याचूलिका—भगवती सूत्र की चूलिका।

व्यवहारभाष्य की वृत्ति मे अगचूलिका और वर्गचूलिका का अर्थ भिन्न किया है। उपासकदशा आदि पाच अगों की चूलिका को अगचूलिका और महाकल्पश्रुत की चूलिका को वर्गचूलिका माना है।[4]

इन पाचो—दो विमान प्रविभक्तिया तथा तीन चूलिकाओ को ग्यारह वर्ष की सयम-पर्याय वाला मुनि ही अध्ययन कर सकता है।[5]

---

१. स्थानागवृत्ति, पत्र ४८६ सक्षेपिकदशा अप्यनवगतस्वरूपा एव।

२. नंदी सूत्र ७८।

३. नंदी, मलयगिरीयावृत्ति, पत्र २०६ : आवलिकाप्रविष्टानामितरेषां वा विमानानां प्रविभक्ति. प्रविभजन यस्यां ग्रन्थपद्धतौ सा विमानप्रविभक्ति।

४. व्यवहार उद्देशक १०, भाष्यगाथा १०७, वृत्ति पत्र १०८ अगाणमगचूली महकप्पसुयस्स वग्गचूलिओ .....
अगानामुपासकदशाप्रभृतीना पञ्चाना चूलिका निरावलिका अगचूलिका, महाकल्पश्रुतस्य चूलिका वर्गचूलिका।

५. व्यवहारभाष्य १०।२६।

इसके अनुसार निरयावलिका के पांच वर्गों का नाम अंगचूलिका होता है।

६. अरुणोपपात [अरुण+अवपात]—अरुण नामक देव का वर्णन करने वाला ग्रन्थ। इस ग्रन्थ का परावर्तन करने से अरुण देव का उपपात (अवपात) होता है—वह परावर्तन करनेवाले व्यक्ति के समक्ष उपस्थित हो जाता है।

नंदी के चूर्णिकार ने एक घटना से इसे स्पष्ट किया है—

एक बार श्रमण अरुणोपपात ग्रन्थ के अध्ययन में संलग्न होकर उसका परावर्तन कर रहा था। उस समय अरुणदेव का आसन चलित हुआ। उसने त्वरता के साथ अवधिज्ञान का प्रयोग कर सारा वृतान्त जान लिया। वह अपने पूर्ण दिव्य ऐश्वर्य के साथ उस श्रमण के पास आया; उसे वन्दना कर हाथ जोड कर, भूमि से कुछ ऊंचा अधर मे बैठ गया। उसका मन वैराग्य से भरा था और उसके अध्यवसाय विशुद्ध थे। वह उस ग्रन्थ का स्वाध्याय सुनने लगा। ग्रन्थ का स्वाध्याय समाप्त होने पर उसने कहा—'भगवन्! आपने बहुत अच्छा स्वाध्याय किया; बहुत अच्छा स्वाध्याय किया। आप कुछ वर मागें।' मुनि ने कहा—'मुझे वर से कोई प्रयोजन नही है।' यह सुन अरुण देव के मन मे वैराग्य की वृद्धि हुई और वह मुनि को वन्दना-नमस्कार कर पुन अपने स्थान पर लौट गया।[1]

इसी प्रकार शेष चार—वरुणोपपात, गरुडोपपात, वेलधरोपपात और वैश्रमणोपपात—के विषय मे भी वक्तव्य है।[2]

५६. योगवाहिता (सू० १३३)

वृत्तिकार ने योगवहन के दो अर्थ किए हैं[3]—

१. श्रुतउपधान करना, २ समाधिपूर्वक रहना।

प्राचीन समय मे प्रत्येक आगम के अध्ययन-काल मे एक निश्चित विधि से 'योगवहन' करना होता था। उसे श्रुत-उपधान' कहते थे।

देखें—३।८८ का टिप्पण।

५७ (सू० १३६)

स्थविर का अर्थ है—ज्येष्ठ। वह जन्म, श्रुत, अधिकार, गुण आदि अनेक संदर्भों मे होता है।

ग्राम, नगर और राष्ट्र की व्यवस्था करनेवाले बुद्धिमान्, लोकमान्य और सशक्त व्यक्तियो को क्रमश ग्रामस्थविर, नगरस्थविर और राष्ट्रस्थविर कहा जाता है।

४. प्रशस्तास्थविर - धर्मोपदेशक।

५-७ कुलस्थविर, गणस्थविर, संघस्थविर—वृत्तिकार ने सूचित किया है कि कुल, गण और संघ की व्याख्या लौकिक और लोकोत्तर दोनों दृष्टियो से की जा सकती है।[4] कुल, गण और संघ ये तीनों शासन की इकाइयाँ रही है। सर्व-प्रथम कुल की व्यवस्था थी। उसके पश्चात् गणराज्य और संघराज्य की व्यवस्था भी प्रचलित हुई थी। इसमे जिस व्यक्ति पर कुल आदि की व्यवस्था तथा उसके विघटनकारी का निग्रह करने का दायित्व होता, वह स्थविर कहलाता था। यह लौकिक व्यवस्था-पक्ष है।

लोकोत्तर व्यवस्था के अनुसार एक आचार्य के शिष्यो को कुल, तीन आचार्य के शिष्यो को गण और अनेक आचार्य के शिष्यो को संघ कहा जाता है।

---

१ (क) नंदी, चूर्णि पृष्ठ ४९।
(ख) नंदी, मलयगिरीयावृत्ति, पत्र २०६, २०७।
(ग) स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८६।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८६ एवं वरुणोपपातादिष्वपि भणितव्य-मिति।

३. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८७।

४ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८९ ये कुलस्य गणस्य संघस्य लौकिकस्य लोकोत्तरस्य च व्यवस्थाकारिणस्तद्भंजकस्य निग्रहकास्ते तथोच्यन्ते।

इनमें जिस व्यक्ति पर शिष्यो मे अनुत्पन्न श्रद्धा उत्पन्न करने और उनकी श्रद्धा विचलित होने पर उन्हें पुनः धर्म मे स्थिर करने का दायित्व होता है वह स्थविर कहलाता है ।

८. जाति स्थविर—जन्म पर्याय से जो साठ वर्ष का हो ।

९. श्रुत स्थविर—स्थानांग और समवायांग का धारक ।[1]

१०. पर्याय स्थविर—बीस वर्ष की सयम-पर्याय वाला ।

व्यवहार भाष्य में इन तीनों स्थविरों की विशेष जानकारी देते हुए बताया है कि—जाति स्थविरों के प्रति अनुकम्पा; श्रुत स्थविर की पूजा और पर्याय स्थविर की वन्दना करनी चाहिए ।

जाति स्थविर को काल और उनकी प्रकृति के अनुकूल आहार, आवश्यकतानुसार उपधि और वसति देनी चाहिए । उनका सस्तारक मृदु हो और जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना पड़े तो दूसरा व्यक्ति उसे उठाए । उन्हें यथास्थान पानी पिलाए ।

श्रुत स्थविर को कृतिकर्म और वन्दनक देना चाहिए तथा उनके अभिप्राय के अनुसार चलना चाहिए । जब वे आयें तब उठना, उन्हे बैठने के लिए आसन देना तथा उनका पाद-प्रमार्जन करना, जब वे सामने हों तो उन्हें योग्य आहार ला देना, यदि परोक्ष मे हों तो उनकी प्रशसा और गुणकीर्त्तन करना तथा उनके सामने ऊचे आसन पर नहीं बैठना चाहिए ।

पर्याय स्थविर चाहे फिर वे गुरु, प्रव्राजक या वाचनाचार्य न भी हो, फिर भी उनके आने पर उठना चाहिए तथा उन्हे वन्दना कर उनके दड (लाठी) को ग्रहण करना चाहिए ।[2]

५८ (सू० १३७)

प्रस्तुत सूत्र मे दस प्रकार के पुत्रों का उल्लेख है । वृत्तिकार ने उनकी व्याख्याएं प्रस्तुत की है। उन्होंने आत्मज पुत्र की व्याख्या मे आदित्ययशा का उदाहरण दिया है । इससे आत्मज का आशय स्पष्ट होता है ।

क्षेत्रज की व्याख्या में उन्होने पाडवों का उदाहरण दिया है । लोकरूढि के अनुसार युधिष्ठिर आदि कुन्ति के पुत्र नियोग तथा धर्म आदि के द्वारा उत्पन्न माने जाते है ।

वृत्ति में 'उवजाइय' पाठ उद्धृत है । उसकी व्याख्या औपयाचितक और आवपातिक—इन दो रूपों में की है । औपयाचितक का अर्थ वही है जो अनुवाद मे दिया हुआ है । आवपातिक का अर्थ होता है—सेवा से प्रसन्न होकर स्वीकार किया हुआ पुत्र ।[3]

मनुस्मृति में बारह प्रकार के पुत्र बतलाए गए है—औरस, क्षेत्रज, दत्त, कृत्रिम, गूढोत्पन्न, अपविद्ध, कानीन, सहोढ, क्रीत, पौनर्भव, स्वयदत्त और शौद्र । इसकी व्याख्या इस प्रकार है—[4]

१. औरस—विवाहित पत्नी से उत्पन्न पुत्र ।

२. क्षेत्रज—मृत, नपुसक अथवा सन्तानावरोधक व्याधि से पीडित मनुष्य की स्त्री मे, नियोग विधि से कुल के मुख्यों की आज्ञा प्राप्त कर उत्पन्न किया जाने वाला पुत्र ।

बोधायन धर्मसूत्र के अनुसार पति के मृतक, नपुसक अथवा रोगी होने पर उसकी पत्नी नियोग-विधि से पुत्र प्राप्त कर सकती थी, यह नियोग दो पुत्रों की प्राप्ति तक ही सम्मत था[5] । विधवा की सम्पत्ति पर अधिकार करने के लिए भी लोग कभी-कभी नियोग स्थापित कर लेते थे, किन्तु यह सम्मत नही था,[6] नियोग द्वारा प्राप्त पुत्र वैध व धर्म्य नही माना जाता ।[7]

---

१. स्थानाग सूत्र ३।१८७ में स्थानांग और समवायांग के धारक को श्रुत स्थविर कहा है। प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या में वृत्तिकार ने 'श्रुतस्थविरा —समवायाद्यङ्गधारिण' (वृत्तिपत्र ४८९) समवाय आदि अंगों को धारण करनेवाला श्रुत स्थविर होता है—ऐसा लिखा है आदि से उन्हें क्या अभिप्रेत था यह स्पष्ट नहीं है ।

व्यवहार सूत्र में भी स्थानाग और समवायागधर को श्रुतस्थविर माना है । (ठाणसमवायधरे सुयथेरे—व्यवहार १०। सूत्र १५)

२ व्यवहार १०।१५, भाष्यगाथा ४६-४९, वृत्तिपत्र १०१ ।

३. स्थानागवृत्ति पत्र ४८९ 'उवजाइय' त्ति उपयाचिते—देवताराधने भव औपयाचितक, अथवा अवपात—सेवा सा प्रयोजनमस्येत्यावपातिक.—सेवक इति हृदयम् ।

४ मनुस्मृति ९।१६५-१७८ ।

५ बोधायन धर्मसूत्र २।२।१७, २।२।६८-७० ।

६ वसिष्ठ धर्मसूत्र १७।५७ ।

७. आपस्तम्ब धर्मसूत्र २।१०।२७।४-७ ।

३. दत्त (दत्तिम)—गोद लिया हुआ पुत्र।

४. कृत्रिम—जो गुण-दोष मे विचक्षण पुत्रगुणयुक्त समान-जातीय है उसे अपना पुत्र बना लिया जाता है—वह कृत्रिम पुत्र कहलाता है।

५. गूढोत्पन्न—जिसका उत्पादक बीज ज्ञात न हो वह गूढोत्पन्न पुत्र कहलाता है।

६. अपविद्ध—माता-पिता के द्वारा त्यक्त अथवा दोनो मे से किसी एक के मर जाने पर किसी एक द्वारा त्यक्त पुत्र को पुत्र रूप में स्वीकृत किया जाता है, वह अपविद्ध पुत्र कहलाता है।

७ कानीन—कन्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र।

८. सहोढ—ज्ञात या अज्ञात अवस्था मे जिस गर्भवती का विवाह सस्कार किया जाता है, उससे उत्पन्न पुत्र को सहोढ कहा जाता है।

९ क्रीतक—खरीदा हुआ पुत्र।

१०. पौनर्भव—पति द्वारा परित्यक्त, विधवा या पुनर्विवाहित स्त्री के पुत्र को पौनर्भव कहा जाता है।

११ स्वयदत्त—जिसके माता-पिता मर गए हो, अथवा माता-पिता ने बिना ही कोई कारण जिसका त्याग कर दिया हो, वह पुत्र स्वयदत्त कहलाता है।

१२. शौद्र (पारशव)—ब्राह्मण के द्वारा शूद्र स्त्री से उत्पन्न पुत्र को शौद्र कहा जाता है।

प्रस्तुत सूत्र मे गिनाए गए दस नाम तथा मनुस्मृति के १२ नामो मे केवल तीन नाम समान है—क्षेत्रज, दत्तक और औरस। प्रस्तुत सूत्र का 'सवर्द्धित पुत्र' और मनुस्मृति का 'अपविद्धपुत्र'—इन दोनो की व्याख्या समान है। 'दत्तक' की व्याख्या मे दोनो एकमत है, किन्तु क्षेत्रज और औरस की व्याख्या भिन्न-भिन्न है।

कौटलीय अर्थशास्त्र मे भी प्राय मनुस्मृति के समान ही पुत्रों के प्रकार निर्दिष्ट है।[1]

५६ (सू० १५४)

भारतीय साहित्य मे सामान्यतया मनुष्य को शतायु माना गया है। वैदिक ऋषि जिजीविषा के स्वर मे कहता है—हम वर्धमान रहते हुए सौ शरद्, सौ हेमन्त और सौ वसन्त तक जीए।[2] प्रस्तुत सूत्र मे शतायु मनुष्य की दस दशाओं का प्रतिपादन है। प्रत्येक दशा दस-दस वर्ष की है। दशवैकालिक निर्युक्ति (गाथा १०) मे भी इन दस दशाओं का निरूपण प्राप्त है। इनकी व्याख्या के लिए हरिभद्रसूरि ने दशवैकालिक की टीका मे पूर्व मुनि रचित दस गाथाएं उद्धृत की है। वे ही गाथाएं अभयदेवसूरि ने स्थानाग वृत्ति मे उद्धृत की है। उनके अनुसार दस दशाओं के स्वरूप और कार्य का वर्णन इस प्रकार है—

१. बाला—यह नवजात शिशु की दशा है। इसमे सुख-दुःख की अनुभूति तीव्र नही होती।

२. क्रीडा—इसमे खेलकूद की मनोवृत्ति अधिक होती है, कामभोग की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न नही होती।

३. मन्दा—इस दशा मे मनुष्य मे काम-भोग भोगने का सामर्थ्य हो जाता है। वह विशिष्ट बल-बुद्धि के कार्य-प्रदर्शन मे मन्द रहता है।

४. बला—इसमे बल-प्रदर्शन की क्षमता प्राप्त हो जाती है।

५. प्रज्ञा—इसमें मनुष्य स्त्री, धन आदि की चिन्ता करने लगता है और कुटुम्बवृद्धि का विचार करता है।

६ हायनी—इसमे मनुष्य भोगो से विरक्त होने लगता है और इन्द्रियबल क्षीण हो जाता है।

७. प्रपञ्चा—इसमे मुह से थूक गिरने लगता है, कफ बढ जाता है और बार-बार खासना पडता है।

८ प्राग्भारा—इसमें चमडी मे झुरिया पड जाती हैं और बुढ़ापा घेर लेता है। मनुष्य नारी-वल्लभ नही रहता।

---

१ कौटलीय अर्थशास्त्र ३।६, पृष्ठ १७५।
२ ऋग्वेद, १०।१६१।४ शत जीव शरदो वर्धमान शत हेमन्ता-ञ्छतमुवसन्तान्।

६. मृन्मुखी— इसमे शरीर जरा से आक्रान्त हो जाता है, जीवन-भावना नष्ट हो जाती है।

१०. शायनी—इसमे व्यक्ति हीनस्वर, भिन्नस्वर, दीन, विपरीत, विचित्त (चित्तशून्य), दुर्बल और दुःखित हो जाता है। यह दशा व्यक्ति को निद्राघूर्णित जैसा बना देती है।[1]

हरिभद्रसूरि ने नवी दशा का सस्कृत रूप 'मृन्मुखी' और दसवी का 'शायिनी' किया है।[2]

अभयदेवसूरि ने नवीं दशा का संस्कृतरूप 'मुङ्मुखी' और दसवी का 'शायनी' और 'शयनी' किया है।[3]

६०. आभियोगिक श्रेणियां (सू० १५७)

ये आभियोगिक देव सोम आदि लोकपालों के आज्ञावर्ती है। विद्याधर श्रेणियों से दस योजन ऊपर जाने पर इनकी श्रेणिया हैं।

६१. (सू० १६०)

प्रस्तुत सूत्र मे दस आश्चर्यों का वर्णन है। आश्चर्य का अर्थ है—कभी-कभी घटित होने वाली घटना। जो घटना सामान्यतया नही होती, किन्तु स्थिति-विशेष मे अनन्तकाल के बाद होती है, उसे आश्चर्य कहा जाता है। जैन शासन मे आदिकाल से भगवान् महावीर के काल तक दस ऐसी अद्भुत घटनाए घटी, जिन्हे आश्चर्य की संज्ञा दी गई है। वे घटनाए भिन्न-भिन्न तीर्थंकरो के समय मे घटित हुई है। इनमे १, २, ४, ६, और ८ भगवान् महावीर से तथा शेष भिन्न-भिन्न तीर्थंकरो के शासनकाल से सम्बन्धित है। उनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. उपसर्ग— तीर्थंकर अत्यन्त पुण्यशाली होते है। सामान्यतया उनके कोई उपसर्ग नही होते। किन्तु इस अवसर्पिणीकाल मे तीर्थंकर महावीर को अनेक उपसर्ग हुए। अभिनिष्क्रमण के पश्चात् उन्हे मनुष्य, देव और तिर्यञ्च कृत उपसर्गों का सामना करना पड़ा। अस्थिक ग्राम मे शूलपाणि यक्ष ने महावीर को अट्टहास से डराना चाहा; हाथी, पिशाच और सर्प का रूप धारण कर डराया और अन्त मे भगवान् के शरीर के सात अवयवो— सिर, कान, नाक, दात, नख, आंख और पीठ—मे भयकर वेदना उत्पन्न की।

एक बार महावीर म्लेच्छदेश दृढ़भूमि 'के' बहिर्भाग मे आए। वहा पेढाल उद्यान के पोलासचैत्य मे ठहरे और तेले की तपस्या कर एक रात्रि की प्रतिमा मे स्थित हो गए। उस समय 'सगम' नामक देव ने एक रात मे २० मारणान्तिक कष्ट दिए।

---

१. दसवकालिक हारिभद्रीयावृत्ति, पत्र ८, ९

आसा च स्वरूपामदमुक्त पूर्वमुनिभि .—

जा यामतस्स जतुस्स जा सा पढमिया दसा।
ण तत्थ सुहदुक्खाइ, बहु जाणति बालया ॥१॥
बियइ च दस पत्तो, णाणाकिड्डाहि किड्डइ।
न तत्थ कामभोगेहि, तिव्वा उप्पज्जई मई ॥२॥
तयइ च दस पत्तो पच कामगुणे नरा।
समत्थो भुजिउ भोए, जइ से अत्थि घरे धुवा ॥३॥
चउत्थी उ बला नाम, ज नरो दसमस्सिओ।
समत्थो बल दरिसिऊ जइ होइ निरुवद्दवो ॥४॥
पंचमि तु दसं पत्तो, आणुपुव्वीइ जो नरो।
इच्छियत्थ विचितेइ, कुडुबं वाऽभिकखई ॥५॥
छट्ठी उ हायणी नाम, जं नरो दसमस्सिओ।
विरज्जइ य कामेसु, इदिएसु य हायई ॥६॥
सत्तमि च दस पत्तो, आणुपुव्वीइ जो नरो।
निट्ठुहइ चिक्कण खेल, खासइ य अभिक्खण ॥७॥
सकुचियवलीचम्मो, सपत्तो अट्ठमि दस।
णारीणमणभिप्पेओ, जराए परिणामिओ ॥८॥
णवमी मम्मुही नाम, ज नरो दसमस्सिओ।
जराघरे विणस्सतो, जीवो वसइ अकामओ ॥९॥
हीणभिन्नसरो दीणो, विवरीओ विचित्तओ।
दुब्बलो दुक्खिओ सुवइ, सपत्तो दसमि दस ॥१०॥

२. दशवैकालिक हारिभद्रीयावृत्ति, पत्र ८।

३. स्थानागवृत्ति, पत्र ४६३ मोचन मुक् जराराक्षसी समाक्रान्तशरीरगृहस्य जीवस्य मुच प्रति मुख—आभिमुख्य यस्या सा मुङ्मुखीति, ' शाययति स्वापयति निद्रावन्त करोति या शेते वा यस्या सा शायनी शयनी वा।

केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद तीर्थंकरों के कोई उपसर्ग नही होते। किन्तु भगवान् महावीर को केवलज्ञान प्राप्ति के बाद गोशालक ने अपनी तेजोलब्धि से बहुत पीड़ित किया—यह एक आश्चर्य है।[1]

२. गर्भापहरण—भगवान् महावीर देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ में आषाढ शुक्ला ६ को आए, तब उसने चौदह स्वप्न देखे थे। बयासी दिन के बाद सौधर्म देवलोक के इन्द्र ने अपने पैदल सेना के अधिपति 'हरिनैगमेषी' को बुला कर कहा—'तीर्थंकर सदा उग्र, भोग, क्षत्रिय, इक्ष्वाकु, ज्ञात, कौरव्य और हरिवंश आदि विशाल कुलों मे उत्पन्न होते हैं। भगवान् महावीर अपने पूर्व कर्मों के कारण ब्राह्मण कुल में आए हैं। तुम जाओ, और उस गर्भ को सिद्धार्थ क्षत्रिय की पत्नी त्रिशला के गर्भ मे रख दो।' वह देव तत्काल वहां गया। उस दिन आश्विन कृष्णा त्रयोदशी थी। रात्रि का प्रथम प्रहर बीत चुका था। दूसरे प्रहर के अन्त में उसने हस्तोत्तरा नक्षत्र में गर्भ का संहरण कर त्रिशला के गर्भ मे रख दिया।[2]

गर्भ-संहरण का उल्लेख स्थानाग[3], समवयांग,[4] कल्पसूत्र[5], आचारचूला[6] और रायपसेणइय[7]—इन आगमों तथा निर्युक्ति साहित्य मे मिलता है। भगवतीसूत्र[8] मे गर्भ-संहरण की प्रक्रिया का उल्लेख है, किन्तु महावीर के गर्भ-संहरण का उल्लेख नही है। देवानंदा के प्रकरण मे भगवान् महावीर ने देवानंदा को अपनी माता और स्वयं को उसका आत्मज बतलाया है।[9] इसमें गर्भ-संहरण का संकेत अवश्य मिलता है फिर भी उसका प्रत्यक्ष उल्लेख वहां नहीं है।

दिगम्बर साहित्य में इस घटना का कोई उल्लेख नही है।

इस घटना का प्रथम स्रोत कल्पसूत्र प्रतीत होता है। अन्य सभी आगमों में वही स्रोत संक्रान्त हुआ है। कल्पसूत्रकार ने किस आधार पर इस घटना का उल्लेख किया, इसका पता लगाना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, किन्तु उसके शोध के उपादान अभी प्राप्त नहीं हैं। इस घटना का वर्णन कल्पसूत्र जितना प्राचीन तो है ही। कल्पसूत्र की रचना वीर निर्वाण की दूसरी शताब्दी में हुई है। यह काल श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा के पृथक्करण का काल है। यह सम्भव है कि इस काल में लिखित आगम की घटनाओं को दिगम्बर आचार्यों ने महत्त्व न दिया हो। यह भी हो सकता है कि आगमों के अस्वीकार के साथ-साथ दिगम्बर साहित्य मे अन्य घटनाओ की भांति इस घटना का विलोप हो गया हो। यह भी हो सकता है कि इस पौराणिक घटना का आगमों मे संक्रमण हो गया हो। क्षत्रियों और ब्राह्मणो के बीच स्पर्धा चलती थी। ब्राह्मणों के जातिमद को खंडित करने के लिए इस घटना की कल्पना की गई हो, जैसा कि हरमन जेकोबी ने माना है।[10]

इस प्रकार इस घटना के विषय मे अनेक सम्भावित विकल्प किये जा सकते हैं।

यहां गर्भ-संहरण का विषय विचारणीय नही है। उसकी पुष्टि आगम-साहित्य, आयुर्वेद-साहित्य, वैदिक-साहित्य और वर्तमान के वैज्ञानिक-साहित्य मे भी होती है। यहां विचारणीय विषय है—महावीर का गर्भ-संहरण।

भगवान् महावीर का जीवनवृत्त किसी भी प्राचीन आगम मे उल्लिखित नही है। आचारांग मे उनके साधक जीवन का संक्षेप में बहुत व्यवस्थित वर्णन है। उनके गृहस्थ जीवन की घटनाओं का उसमे वर्णन नही है। आयारचूला के 'भावना अध्ययन' मे भगवान् महावीर के गृहस्थ जीवन का वृत्त उल्लिखित है, पर वह कल्पसूत्र का ही परिवर्तित संस्करण प्रतीत होता है। क्योकि भावनाध्ययन का वह मुख्य विषय नही है। कल्पसूत्र पहला आगम है, जिसमें महावीर का जीवनवृत्त संक्षिप्त किन्तु व्यवस्थित ढंग से मिलता है।

बौद्ध और वैदिक विद्वान् अपने-अपने अवतारी पुरुषो के साथ दैवी चमत्कारो की घटनाएं जोड रहे थे। इस कार्य में जैन विद्वान् भी पीछे नही रहे। सभी परम्परा के विद्वानों ने पौराणिक साहित्य की सृष्टि की और अपने अवतारी पुरुषों को अलौकिक रूप प्रदान किया। हरिनैगमेषी देवता के द्वारा भगवान् महावीर का गर्भ-संहरण होना उस पौराणिक युग का एक प्रतिबिम्ब प्रतीत होता है।

---

१ विशेष विवरण के लिए देखें—आचारांग १।६, आवश्यक-निर्युक्ति, अवचूर्णि, भाग १, पृष्ठ २७३-२९३।

२ आवश्यकनिर्युक्ति, अवचूर्णि, प्रथमभाग, पृष्ठ २६२, २६३।

३ स्थानांग १०।१६०।

४ समवायांग, ८२।२, ८३।१।

५. कल्पसूत्र, सू० २७।

६ आचारचूला १५।१,३,५,६।

७ रायपसेणिय, सूत्र ११२।

८. भगवती, ५।७६,७७।

९. भगवती, ६।१४८।

10. The Sacred Book. of the East, Vol.XXII: Page 31.

भगवान् महावीर देवानंदा को अपनी माता और स्वयं को उसका आत्मज बतलाते हैं—यह एक विचारणीय प्रश्न है। यह हो सकता है कि देवानंदा महावीर के पालन-पोषण मे धायमाता के रूप में रही हो और गर्भ-संहरण की पुष्टि के लिए अर्थवादी शैली में उसे माता के रूप में निरूपित किया गया हो। आगम-संकलन काल में इस प्रकार के प्रयत्न की संभावना को अस्वीकार नही किया जा सकता।

३. स्त्रीतीर्थंकर—सामान्यतः तीर्थंकर पुरुष ही होते हैं, ऐसा माना जाता है। इस अवसर्पिणी में मिथिला नगरी के अधिपति कुंभकराज की पुत्री मल्ली उन्नीसवें तीर्थंकर के रूप मे विख्यात हुई। उसने तीर्थ का प्रवर्तन किया। दिगम्बर आचार्य इससे सहमत नही हैं वे मल्ली को पुरुष मानते हैं।

४. अभावित परिषद्—बारह वर्ष और साढ़े छह मास तक छद्मस्थ रहने के पश्चात् भगवान् को वैशाख शुक्ला दशमी को जृम्भिका गाव के बहिर्भाग मे केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। उस समय महोत्सव के लिए उपस्थित चतुर्विध देवनिकाय ने समवसरण की रचना की। भगवान ने देशना दी। किसी के मन मे विरति के भाव उत्पन्न नही हुए। तीर्थंकरों की देशना कभी खाली नही जाती। किन्तु यह अभूतपूर्व घटना थी।[1]

उनकी दूसरी देशना मध्यमपापा मे हुई और वहा गौतम आदि गणधर दीक्षित हुए।

५. कृष्ण का अपरकका नगरी मे जाना—धातकीखड की अपरकंका नगरी मे राजा पद्मनाभ राज्य करता था। एक बार नारद ने उससे द्रौपदी की बहुत प्रशंसा की। उसने अपने मित्र देव की सहायता से द्रौपदी का अपहरण कर दिया। इधर नारद ने इस अपहरण का वृत्तान्त कृष्ण वासुदेव को सुनाया। कृष्ण ने लवण समुद्र के अधिपतिदेव सुस्थित की आराधना की और पांचों पाडवो को साथ ले अपरकंका की ओर चल पड़े। वहा पद्मनाभ के साथ घोर सग्राम हुआ। वहा वासुदेव कृष्ण ने शंखनाद किया। तत्पश्चात् पद्मनाभ को युद्ध मे हराकर द्रौपदी को ले द्वारका मे आ गए।

उसी धातकीखड मे चपा नाम की नगरी थी। वहा कपिल वासुदेव रहते थे। एक बार अर्हत् मुनिसुव्रत वहा पुण्यभद्र चैत्य मे समवसृत हुए। वासुदेव कपिल धर्मदेशना सुन रहे थे। इतने मे ही उन्हे कृष्ण का शखनाद सुनाई दिया। तब उन्होने मुनिसुव्रत से शखनाद के विषय मे पूछा। मुनिसुव्रत ने उन्हे कृष्ण संबंधी जानकारी देते हुए कहा—एक ही क्षेत्र मे, एक ही समय मे दो अरहंत, दो चक्रवर्ती, दो बलदेव और दो वासुदेव नही हुए, नही हैं और नही होगे।

उन्होंने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तब वासुदेव कपिल वासुदेव कृष्ण को देखने गए। तब तक कृष्ण लवण समुद्र मे बहुत दूर तक चले गए थे। वासुदेव कपिल ने कृष्ण के ध्वज के अग्रभाग को देखा और शखनाद किया। जब कृष्ण ने यह शखनाद सुना तब उन्होने इसके प्रत्युत्तर पुनः शखनाद किया। दो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के दो वासुदेवों का शखनाद से मिलना हुआ।

इस प्रसग मे प्रस्तुत सूत्र में वासुदेव कृष्ण का अपरकका राजधानी मे जाने को आश्चर्य माना है। सामान्य विधि यह है कि वासुदेव अपनी क्षेत्र-मर्यादा को छोड़कर दूसरे वासुदेव की क्षेत्र मर्यादा मे नही जाते। भरत क्षेत्र के वासुदेव कृष्ण का धातकीखंड के वासुदेव कपिल की क्षेत्र मर्यादा मे जाना एक अनहोनी घटना थी, इसलिए इसे आश्चर्य माना गया है।

ज्ञाताधर्मकथा (अ० १६) के आधार पर दो वासुदेवों का परस्पर मिलन भी एक आश्चर्य है। धातकीखंड के वासुदेव कपिल के पूछने पर मुनिसुव्रत कहते हैं—यह कभी नही हुआ, न है और न होगा कि दो अरहंत, दो चक्रवर्ती, दो बलदेव और दो वासुदेव कभी परस्पर मिलते हों। कपिल ने कहा—'मैं उनसे मिलना चाहता हूं। मेरे घर आए अतिथि का मैं स्वागत करना चाहता हूं।'

मुनिसुव्रत ने कहा—एक ही स्थान में दो अर्हत्, दो चक्रवर्ती, दो बलदेव और दो वासुदेव नही होते। यदि कारणवश एक दूसरे की सीमा में आ जाते हैं तो वे कभी मिलते नहीं। किंतु कपिल का मन कुतूहल से भरा था। वह कृष्ण को देखने समुद्रतट पर गया और समुद्र के मध्य जाते हुए कृष्ण के वाहन की ध्वजा को देखा। तब कपिल ने शंखनाद किया। शंख-शब्द से कृष्ण को यह स्पष्टतया जताया कि 'मैं कपिल वासुदेव तुम्हे देखने के लिए उत्कंठित हूं अतः पुनः लौट आओ।' कृष्ण ने

---

१. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ५३६; अवचूर्णि, प्रथमभाग पृ० २६६।

शंख-शब्द के माध्यम से यह बात जानी। तब उन्होंने शखनाद कर उसे यह बताया कि 'हम बहुत दूर आ गए हैं। तुम कुछ मत कहो।' इस प्रकार शंख-समाचारी के माध्यम से दोनों का मिलन हुआ।[1]

स्थानांग में वासुदेव के क्षेत्रातिक्रमण को आश्चर्य माना है। और ज्ञाताधर्मकथा मे दो वासुदेवों के परस्पर मिलन को आश्चर्य माना है।

६. चन्द्र और सूर्य का विमान सहित पृथ्वी पर आना —एक बार भगवान् महावीर कौशाम्बी नगरी मे विराज रहे थे। उस समय दिन के अन्तिम प्रहर मे चन्द्र और सूर्य अपने-अपने मूल शाश्वत-विमानो सहित समवसरण मे भगवान् महावीर को वंदना करने आए। शाश्वत विमानों सहित आना —एक आश्चर्य है। अन्यथा वे उत्तरवैक्रिय द्वारा निर्मित विमानो मे आते है।[2]

७. हरिवंश कुल की उत्पत्ति—प्राचीन समय मे कौशाबी नगरी में सुमुख नाम का राजा राज्य करता था। एक बार बसंत ऋतु मे वह क्रीड़ा करने के लिए उद्यान मे गया। रास्ते में उसने माली वीरक की पत्नी वनमाला को देखा। वह अत्यन्त सुन्दर और रूपवती थी। दोनो एक दूसरे मे आसक्त हो गए। राजा उसे एकटक निहारने लगा और वहीं स्तब्ध सा खड़ा हो गया। तब उसके सचिव सुमति ने उसे आगे चलने के लिए कहा। ज्यो-त्यो वह लीला नामक उद्यान मे आया और अपनी सारी मनोकामना सचिव के समक्ष रखी। सचिव ने उसे आश्वस्त किया और आत्रेयिका नामकी परिव्राजिका को वनमाला के पास भेजा। परिव्राजिका वनमाला के पास गई और उसे भी चिन्तामग्न दशा मे देखकर उससे सारी बात जान ली। उसने सचिव से आकर कहा—राजा और वनमाला का मिलन प्रातःकाल हो जाएगा। सचिव ने राजा से यह बात कही। वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

प्रातःकाल परिव्राजिका वनमाला को लेकर राजा के पास आई। राजा ने वनमाला को अपने महलों मे रखा और उसके साथ सुख-भोग करने लगा।

वनमाला को घर मे न पाकर उसका पति वीरक ग्रथिल सा इधर-उधर घूमने लगा। एक बार वह महलों के नीचे से गुजर रहा था। उस समय राजा वनमाला के पास बैठा था। उसके कानो मे 'हा! वनमाला! हा! वनमाला!'—ये शब्द पड़े। उसने सोचा, अहो! हमने बहुत दुष्कर्म किए है। इसके फलस्वरूप हमें नरक प्राप्ति होगी। इस प्रकार वह आत्म-निंदा करने लगा। इतने मे ही आकाश मे बिजली चमकी और वह महलो पर आ गिरी। राजा-रानी दोनो मर गए।

वहा से मरकर दोनों हरिवर्ष क्षेत्र में हरि और हरिणी के नाम से—युगलरूप मे उत्पन्न हुए। वे दोनों वहा सुख-पूर्वक रहने लगे।

इधर वनमाला का पति वीरक भी मरकर सौधर्म देवलोक मे किल्विषिक देव हुआ। उसने अवधिज्ञान से अपना पूर्व-भव देखा और अपने शत्रु हरि और हरिणी को जाना। उसने सोचा —यदि ये दोनों यहा मरेंगे तो यौगलिक होने के कारण अवश्य ही देवलोक मे जायेंगे। अतः मैं इन्हें दूसरे क्षेत्र मे रख दूं ताकि वे यहा दुःख भोगें—यह सोचकर उसने दोनों को उठाकर भरतक्षेत्र के चम्पापुरी मे ला छोड़ा।

उस समय चम्पापुरी के राजा चन्द्रकीर्ति की मृत्यु हो गई थी। मंत्री दूसरे राजा की टोह मे इधर-उधर घूम रहे थे। उस समय आकाशस्थित देव ने कहा —'पुरुषो! मैं आपके लिए हरिवर्ष मे एक युगल लाया हू। वह राजा-रानी होने के लिए योग्य है। इस युगल को आप लोग कल्पद्रुम के फलो के साथ-साथ पशु और पक्षियो का मास भी देना।'

प्रजा ने देव की बात स्वीकार कर हरि को अपना राजा स्वीकार किया। देव ने अपनी शक्ति से उस युगल की आयुःस्थिति कम कर दी तथा उनकी अवगाहना भी केवल सौ धनुष्यमात्र रखी। देव अन्तर्हित हो गया।

हरि राजा हुआ। उसने बहुत वर्षों तक राज्य किया। उसके नाम से हरिवंश का प्रचलन हुआ।[3]

---

१ प्रवचनसारोद्धार, पत्र २५७, २५८।

२ वही, पत्र २५८।

३ क—प्रवचनसारोद्धार वृत्ति, पत्र २५८, २५९।
ख—वसुदेवहिण्डी, दूसरा भाग, पृष्ठ ३५६, ३५७।

८. चमर का उत्पात—प्राचीन समय में बिभेल सन्निवेश मे पूरण नाम का एक धनाढ्य गृहपति रहता था। एक बार उसने सोचा—'पूर्वभव मे किए हुए तप के प्रभाव से मुझे यह सारा ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है, सम्मान मिला है। अत. भविष्य में और विशेष फल की प्राप्ति के लिए मुझे गृहवास छोडकर विशेष तप करना चाहिए।' उसने अपने संबधियो से पूछा और अपने ज्येष्ठ पुत्र को उत्तराधिकार देकर 'दाणाम' नामक तापसव्रत स्वीकार कर लिया। उस दिन से वह यावज्जीवन तक दो-दो दिन की तपस्या मे संलग्न हो गया। पारणे के दिन वह चार पुट वाले लकड़ी के पात्र को लेकर मध्याह्न वेला मे भिक्षा के लिए जाता। पात्र के प्रथम पुट मे पड़ी भिक्षा वह पथिकों को बांट देता, दूसरे पुट की भिक्षा कौए आदि पक्षियों को खिला देता, तीसरे पुट की भिक्षा मछली आदि जलचरो को खिला देता और चौथे पुट में प्राप्त भिक्षा को स्वयं खाता। इस प्रकार उसने बारह वर्ष तक कठोर तप तपा और अंत में एक मास का अनशन कर चमरचंचा में असुरकुमारों के इद्ररूप मे उत्पन्न हुआ। उसने अवधिज्ञान से ऊपर स्थित सौधर्मावतंसक विमान में सौधर्मेन्द्र को देखा। उसका क्रोध प्रबल हो उठा। उसने अपने अनुचर देवों से कहा—'अरे! यह दुरात्मा कौन है जो मेरे शिर पर बैठा हुआ है!' उन्होंने कहा—स्वामिन्! यह सौधर्मदेवलोक का इन्द्र है, जिसने अपने पूर्व अर्जित पुण्यो के प्रभाव से विपुल ऋद्धि और अतुल पराक्रम प्राप्त किया है। इतना सुनते ही चमरेन्द्र का क्रोध और अधिक प्रबल हो गया। उसने उसके साथ युद्ध करने के लिए उत्सुक हो वहां से अपना शस्त्र ले प्रस्थान किया। सभी देवों ने ऐसा न करने के लिए आग्रह किया, परन्तु उसने अपना हठ नहीं छोडा।

'वह पराक्रमी है। यदि मैं किसी भी प्रकार से उससे पराजित हो जाऊगा तो किसकी शरण लूगा'—यह सोचकर चमरेन्द्र सुसुमारपुर मे आया। वहाँ भगवान् महावीर प्रतिमा मे स्थित थे। वह भगवान् के पास आकर बोला—'भगवन्! मैं आपके प्रभाव से इन्द्र को जीत लूगा—ऐसा कहकर उसने एक लाख योजन का वैक्रिय रूप बनाया। चारों ओर अपने शस्त्र को घुमाता हुआ, गर्जन करता हुआ, उछलता हुआ, देवो को भयभीत करता हुआ, दर्प से अन्धा होकर सौधर्मेन्द्र की ओर लपका। एक पैर उसने सौधर्मावतंसक विमान की वेदिका पर और दूसरा पैर सुधर्मा (सभा) मे रखा। उसने अपने शस्त्र से इन्द्रकील पर तीन बार प्रहार किया और सौधर्मेन्द्र को बुरा-भला कहा।

सौधर्मेन्द्र ने अवधिज्ञान से सारी बात जान ली। उसने चमरेन्द्र पर प्रहार करने के लिए वज्र फेंका। चमरेन्द्र उसको देखने मे भी असमर्थ था। वह वहाँ से डर कर भागा। वैक्रिय शरीर का संकोच कर भगवान् के पास आया और दूर से ही—'आपकी शरण है, आपकी शरण है'—ऐसा चिल्लाता हुआ, अत्यन्त सूक्ष्म होकर भगवान् के पैरों के बीच मे प्रवेश कर गया। शक्र ने सोचा—'अर्हद् आदि की निश्रा के बिना कोई भी असुर वहाँ नहीं जा सकता'। उसने अवधिज्ञान से सारा पूर्व वृत्तान्त जान लिया। वज्र भगवान् के अत्यन्त निकट आ गया। जब वह केवल चार अंगुल मात्र दूर रहा, तब इन्द्र ने उसका संहरण कर डाला। भगवान् को वदना कर वह बोला—'चमर! भगवान् की कृपा से तुम बच गए। अब तुम मुक्त हो, डरो मत! इस प्रकार चमर को आश्वासन देकर शक्र अपने स्थान पर चला गया। शक्र के चले जाने पर चमर बाहर आया और अपने स्थान की ओर लौट गया'[1]।

९. एक सौ आठ सिद्ध—वृत्तिकार ने इसका कोई विवरण नही दिया है।

वसुदेवहिण्डी के अनुसार भगवान् ऋषभ अपने ९९ पुत्र तथा आठ पौत्रों के साथ परिनिर्वृत हुए थे[1]। इस प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले एक साथ एक सौ आठ (९९ + ८ + १) सिद्ध हुए।

उत्तराध्ययन सूत्र में तीन प्रकार से एक साथ एक सौ आठ सिद्ध होने की बात कही है—

१. निर्ग्रन्थ वेश मे एक साथ एक सौ आठ (३६।५२)।

२. मध्यम अवगाहना मे एक साथ एक सौ आठ (३६।५३)।

३. तिरछे लोक मे एक साथ एक सौ आठ (३६।५४)।

प्रस्तुत सूत्र में जो आश्चर्य माना गया है, वह इसलिए कि भगवान् ऋषभ के समय मे उत्कृष्ट अवगाहना थी। उत्कृष्ट

---

१ प्रवचनसारोद्धार, पत्र २५९, २६०।

१. वसुदेवहिण्डी, भाग १, पृष्ठ १८५ . एगूणपुत्तसएण अट्ठहि य नत्तुएहिं सह एगसमयेण निव्वुओ।

अवगाहना में एक साथ केवल दो ही व्यक्ति सिद्ध हो सकते है[1]। प्रस्तुत सूत्र मे एक सौ आठ व्यक्ति उत्कृष्ट अवगाहना में मुक्त हुए — इसलिए उसे आश्चर्य माना है[2]।

आवश्यकनिर्युक्ति मे ऋषभ के दस हजार व्यक्तियों के साथ सिद्ध होने का उल्लेख मिलता है[3]। इसकी आगमिक संदर्भ के साथ कोई संगति नही बैठती। वसुदेवहिण्डी के एक प्रसग के संदर्भ मे एक अनुमान किया जा सकता है कि निर्युक्तिकार ने संक्षिप्त और सापेक्ष प्रतिपादन किया, इसलिए वह भ्रामक लगता है।

वसुदेवहिण्डी के अनुसार ऋषभ के दस हजार अनगार [१०८ कम] भी उसी नक्षत्र में, बहुत समय बाद तक, सिद्ध हुए है[4]।

प्रवचनसारोद्धार मे भी वसुदेवहिण्डी को उद्धृत करते हुए इसी तथ्य की पुष्टि की गई है[5]।

इन उद्धरणों के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि दस हजार अनगारो के एक ही नक्षत्र मे सिद्ध होने के कारण उनका भगवान् ऋषभ के साथ सिद्ध होना बतलाया गया है।

१०. असयति पूजा — तीर्थंकर सुविधि के निर्वाण के बाद, कुछ समय बीतने पर, हुण्डावसर्पिणी के प्रभाव से साधु-परम्परा का विच्छेद हुआ। तब लोगों ने स्थविर श्रावको को, धर्म के ज्ञाता समझकर, धर्म के विषय मे पूछा। श्रावकों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार धर्म की प्ररूपणा की। लोगो को कुछ समाधान मिला। वे धर्म-कथक स्थविर श्रावकों को दान देने लगे, उनकी पूजा, सत्कार करने लगे। अपनी पूजा और प्रतिष्ठा होते देख धर्म कथक स्थविरो के मन मे अहंभाव उत्पन्न हुआ। उन्होंने नये शास्त्रों की रचना की और भूमि, शय्या, सोना, चांदी, गो, कन्या, हाथी, घोडे आदि के दान की प्ररूपणा की तथा यह भी घोषित किया कि — 'संसार मे दान के अधिकारी हम ही है, दूसरे नही।' लोगो ने उनकी बात मान ली। धर्म के नाम पर पाखण्ड चलने लगा। लोग विप्रतारित हुए। दूसरे धर्म-प्ररूपको के अभाव मे वे गृहस्थ ही धर्मगुरु का विरुद वहन करते हुए अपनी-अपनी इच्छानुसार धर्म की व्याख्या करने लगे। तीर्थंकर शीतल के तीर्थ-प्रवर्तन से पूर्व तक यही स्थिति रही, असयति पूजा का बोल-बाला रहा।

प्रवचनसारोद्धार के वृत्तिकार का अभिमत है कि उपरोक्त दस आश्चर्य केवल उपलक्षण मात्र है। इनके अतिरिक्त इसी प्रकार की विशेष घटनाए समय-समय पर होती रही है[6]। दस आश्चर्यों मे से कौन-कौन से किसके समय मे हुए, इसका विवरण इस प्रकार है[7] —

प्रथम तीर्थंकर ऋषभ के समय मे — एक साथ १०८ सिद्ध होना।

दसवें तीर्थंकर शीतल के समय मे — हरिवश की उत्पत्ति।

उन्नीसवें तीर्थंकर मल्ली का स्त्री के रूप मे तीर्थंकर होना।

बावीसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के समय मे — कृष्ण वासुदेव का कपिल वासुदेव के क्षेत्र [अपरकङ्का] मे जाना अथवा दो वासुदेवो का मिलन।

चौबीसवें तीर्थंकर महावीर के समय मे —

१. गर्भापहरण, २. उपसर्ग, ३. चमरोत्पाद, ४ अभावित परिषद, ५. चन्द्र और सूर्य का अवतरण।
[ये पाचों क्रमश हुए है]

नौवें तीर्थंकर सुविधि से सोलहवें तीर्थंकर शान्ति के काल तक — असंयति पूजा।

वृत्तिकार का अभिमत है कि असयति पूजा प्राय. सभी तीर्थंकरो के समय मे होती रही है, किन्तु नौवें तीर्थंकर सुविधि से सोलहवें तीर्थंकर शान्ति के समय तक सर्वथा तीर्थच्छेदरूप असयति पूजा हुई है[8]।

---

१ उत्तराध्ययन ३६।५३।

२ प्रवचनसारोद्धार, पत्र २६० एतदाश्चर्यमुत्कृष्टावगाहनायामेव ज्ञातव्यम्।

३ आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ३११ :
दसहि सहस्सेहि उसभो ·

४. वसुदेवहिण्डी, भाग १, पृष्ठ १८५ : सेसाण वि य अणगाराण दस सहस्साणि अट्ठसयऊणगाणि सिद्धाणि तम्मि चेव रिक्खे समयतरेसु बहुसु।

५. प्रवचनसारोद्धार, पत्र २६०।

६ प्रवचनसारोद्धारवृत्ति, पत्र २६१ उपलक्षणं चैतान्याश्चर्याणि, अतोऽन्येऽप्येवमादयो भावा अनन्तकालभाविन: आश्चर्यरूपा द्रष्टव्या।

७. प्रवचनसारोद्धार, गाथा ८८८, ८८९
रिसहे अट्ठहियसय सिद्ध सीयलजिणंमि हरिवंसो।
नेमि जिणेऽवरकंकागमण, कण्हस्स संपन्नं॥
इत्थीतित्थं मल्ली पूया असंजयाण नवमजिणे।
अवसेसा अच्छेरा वीरजिणिंदस्स तित्थंमि॥

८ प्रवचनसारोद्धार वृत्ति, पत्र २६१।

परिशिष्ट

परिशिष्ट-१

विशेषनामानुक्रम

परिशिष्ट-२

प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची

अथर्ववेद
अनुयोगद्वार
अनुयोगद्वार चूर्णि
अनुयोगद्वार वृत्ति
अभिधानचिन्तामणि
अभिधान राजेन्द्र
अल्प परिचित शब्दकोष
आचारांग
आचारांग चूर्णि
आचारांग निर्युक्ति
आचारांग वृत्ति
आप्टे डिक्शनरी
आयारचूला
आयारो
आर्यभट्टीय गणितपाद
आवश्यक चूर्णि
आवश्यकनिर्युक्ति
आवश्यकनिर्युक्ति अवचूर्णि
आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका
आवश्यकनिर्युक्ति भाष्य
आवश्यक भाष्य
आवश्यक मलयगिरि वृत्ति
इसिभासिय
उत्तराध्ययन
उत्तराध्ययन निर्युक्ति
उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति
उपासकदशा वृत्ति
उवासगदसाओ
ओघनिर्युक्ति
ओघनिर्युक्ति वृत्ति
औपपातिक (ओवाइय)
औपपातिक वृत्ति
अंगसुत्ताणि
अंगुत्तरनिकाय
कठोपनिषद्
कल्पसूत्र
कल्याण
कसायपाहुड
काललोकप्रकाश
कौटिल्य अर्थशास्त्र
गणितसार संग्रह
गोम्मटसार
चरक
छान्दोग्य उपनिषद्
जीवाभिगम
तत्त्वार्थ
तत्त्वार्थभाष्य
तत्त्वार्थराजवार्तिक
तत्त्वार्थवार्तिक
तत्त्वार्थसूत्र
तत्त्वार्थसूत्र भाष्य
तत्त्वार्थसूत्र भाष्यानुसारिणी टीका
तत्त्वार्थसूत्र वृत्ति
तत्त्वार्थाधिगम सूत्र
तत्त्वानुशासन
तत्त्वोपप्लवसिंह
त्रिशतिका
तुलसी रामायण
थेरगाथा
दशवैकालिक
दशवैकालिक: एक समीक्षात्मक अध्ययन

दशवैकालिक चूर्णि
दशवैकालिक हारिभद्रीयावृत्ति
दसवेआलियं
दीघनिकाय
देशी नाममाला
धम्मपद
ध्यानशतक
न्यायदर्शन
न्यायसूत्र
नयोपदेश
नारदीशिक्षा
निशीथ
निशीथ चूर्णि
निशीथ भाष्य
निसीहज्झयण
नीतिवाक्यामृत
नंदी
नंदी वृत्ति
परिशिष्ट पर्व
पाइयसद्दमहण्णव
पातजल योगदर्शन
पातंजल योगप्रदीप
पंचसंग्रह
प्रज्ञापना
प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार
प्रवचनसारोद्धार
प्रवचनसारोद्धार वृत्ति
प्राचीन भारत के वाद्ययंत्र
वाह्य स्फुट सिद्धान्त
बृहत्कल्प
बृहत्कल्पचूर्णि
बृहत्कल्पभाष्य
बृहदारण्यक
बृहदारण्यकभाष्य
बौद्धधर्मदर्शन
भगवती
भगवद्गीता
भद्रबाहुसंहिता
भरत
भरत का संगीत सिद्धान्त
भरत कोश (प्रो० रामकृष्ण कवि)
भरत कोश (मतंग)
भरत नाट्य
भारतीय ज्योतिष
भारतीय संगीत का इतिहास
भावसंग्रह
भिक्षु न्यायकर्णिका
मज्झिमनिकाय
मनुस्मृति
महावीर चरित्र (श्री गुणचन्द्र कृत)
माण्डूक्यकारिका भाष्य
मूलाचार
मूलाचार दर्पण
मूलाराधना
यशस्तिलक का सास्कृतिक अध्ययन
याज्ञवल्क्यस्मृति
योगदर्शन
रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ
राजप्रश्नीय
लीलावती
लोकप्रकाश
लंकावतार सूत्र
वसुदेवहिण्डी
बाल्मीकि रामायण
विवागसुय
विशुद्धि मग्ग
विशेषावश्यक भाष्य
विष्णु पुराण
वैशेषिक दर्शन
व्यवहार भाष्य
व्यवहार सूत्र
शतपथ ब्राह्मण
शाकर भाष्य, ब्रह्म सूत्र
षट्खंडागम
षट्प्राभृत
षट्प्राभृत (श्रुतसागरीय वृत्ति)
षट्प्राभृतादि संग्रह
षट्विंश ब्राह्मण
सन्मति प्रकरण
समवायांग
समवायाग वृत्ति
साहित्यदर्पण

सांख्यकारिका
सांख्यकारिका (तत्त्वकौमुदी व्याख्या)
सुश्रुतसंहिता
सूत्रकृतांग
सूत्रकृतांगनिर्युक्ति
सूत्रकृतांग वृत्ति
संगीतदामोदर
संगीतरत्नाकर (मल्लीनाथ टीका)
स्थानांग
स्थानांग वृत्ति
स्याद्वाद मंजरी
स्वरूप संबोधन
हिन्दु गणित
हिन्दु गणित शास्त्र का इतिहास

- American Mathematical Monthly.
- A Sanskrit English Dictionary.
- Dictionary of Greck and Roman Antiquities.
- Encyclopedia of Religion and Ethics.
- Encyclopedia of Superstitions.
- Journal of Music Academy, Madras.
- Mackrindle.
- The Book of the Zodiac.
- The History of Mankind.
- The Wild Rule.
- The Sacred Books of the East, Vol. 22.
- The Golden Bough.